

हिंदी शब्दसागर

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा एवं युवक सेवा मंत्रालय, भारत
सरकार की ओर से भेंट

हिंदी शब्दसागर

तृतीय भाग

['क्षंतव्य' से 'ध्वाना' तक, शब्दसंख्या-२१०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास बो० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट	रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह	जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन	रामचंद्र वर्मा



संपादकमंडल

संपूर्णानंद
मंगलदेव शास्त्री
कृष्णदेवप्रसाद गौड़
हरवंशलाल शर्मा
शिवप्रसाद मिश्र
गोपाल शर्मा
भोलारांकर व्यास (सङ्ग० संबो०)

कमलापति त्रिपाठी
बीरेंद्र वर्मा
नगेंद्र
रामचन शर्मा
शिवनंदनलाल दत्त
सुधाकर पांडेय
करुणापति त्रिपाठी (संयोजक, संपादक)

सहायक संपादक

त्रिलोचन शास्त्री विश्वनाथ त्रिपाठी

काशी नगरी प्रचारिणी सभा

हिंदी शब्दसागर के संशोधन संपादन का संपूर्ण तथा इसके प्रकाशन का साठ प्रतिशत
व्ययभार भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया ।

29666

K 5.3

8.02

Accession No.

29666

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण

शकाब्द १८८६

सं० २०२५ वि०

१६६७ ई०

मूल्य २५), संपूर्ण दस भागों का १५०)

शंभुनाथ वाजपेयी द्वारा
नागरी मुद्रण, वाराणसी
में मुद्रित

प्रकाशिका

‘हिंदी शब्दसागर’ अपने प्रकाशनकाल में ही कोश के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशक तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या में इसे सन् १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया था। तब से निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गंभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्रकाशस्तम्भ के रूप में मर्यादित हो हिंदी की गौरवशाली का अध्ययन करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खंड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्य ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहस्र मुद्राओं में भी अधिक देना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में अभाव की स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी जगत् में हुआ, पर वे मारे प्रयत्न इसकी छाया के ही बल जीवित थे। इसीलिये निरंतर इसकी पुनः अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही। वित्त साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति मजबूत रहती हुई भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाहन कर सकने के कारण मर्यादित पीढ़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढ़ते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एवं हिंदीजगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दों में इस ओर आकृष्ट किया—‘हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ़ गया है। हिंदी में एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका बृहत् संस्करण निकालने की आवश्यकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।’

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करत हुए राष्ट्रपति ने कहा—‘वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोश सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपये व्यय किया है। आपने शब्दसागर का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी में बहुत बातों में और हिंदी के अलावा संसार में बहुत बातों में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके

और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारणतः पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयों का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के साहाय्यार्थ एक लाख रुपये, जो पांच वर्षों में बीस बीस हजार करके दिए जाएंगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जाएगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।’

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुनःसंपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामंत्रालय ने अपने पत्र सं० एफ।४—३।५४ एच० दिनांक ११।५।५४ द्वारा एक लाख रुपये पांच वर्षों में, प्रति वर्ष बीस हजार रुपए करके देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया, इस संबंध में देश के विभिन्न शक्तियों के अधिपति विद्वानों की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमंडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानों की राय के अनुसार इस कार्य का संयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवमिद्ध विद्वानों तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गंभीरतापूर्वक सभा के अनुगोच पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको मनोयोगपूर्वक मधकर शब्दसागर के संपादन हेतु सिद्धांत स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामंत्रालय भी सहमत हुआ।

उपर्युक्त एक लाख रुपये का अनुदान बीस बीस हजार रुपये प्रति वर्ष की दर से निरंतर पांच वर्षों तक केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय देता रहा और कोश के संशोधन, संवर्धन और पुनःसंपादन का कार्य लगातार होता रहा, परंतु इस अर्वाध में सारा कार्य निपटाया नहीं जा सका। मंत्रालय के प्रतिनिधि श्री डा० रामधन जी शर्मा ने बड़े मनोयोगपूर्वक यहाँ हुए नार्यों का निरीक्षण परीक्षण करके इसे पूरा करने के लिये आगे और ६५०००) अनुदान प्रदान करने की संस्तुति की जिसे सरकार ने कृपापूर्वक स्वीकार करके पुनः उक्त ६५०००) का अनुदान दिया। इस प्रकार संपूर्ण कोश का संशोधन संपादन दिसंबर, १९६५ में पूरा हो गया।

इस ग्रंथ के संपादन का संपूर्ण व्यय ही नहीं, इसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत बोझ भी भारत सरकार ने वहन किया है। इसीलिये यह ग्रंथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है। उसके लिये शिक्षा मंत्रालय के अधिकारियों का प्रशंसनीय सहयोग हमें प्राप्त है और तदर्थ हम उनके अतिशय आभारी हैं।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदीजगत् के संमुख उपस्थित किया जा रहा है, उसमें अद्यतन विकसित कोशालाप का यथासामर्थ्य उपयोग और

अयोग किया गया है, किंतु हिंदी की ओर हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, तथापि साधन की कमी तथा हिंदी ग्रंथों के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव में वैसा कर सकना संभव नहीं हुआ। फिर भी यह कहने में हमें संकोच नहीं कि अद्यतन प्रकाशित कोशों में शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोशों में अतुलनीय है, और इस क्षेत्र में काम करनेवाले प्रायः सभी क्षेत्रीय भाषाओं के विद्वान् इसमें प्राधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हम हिंदी-बंगाल को यह भी नम्रनापूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थायी विभाग का संकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और संशोधन के लिये कोशशिल्प संबंधी अद्यतन विधि से यत्नशील रहेगा।

शब्दसागर के इस संशोधित प्रवर्धित रूप में शब्दों की संख्या मूल शब्दसागर की अपेक्षा दुगुनी से भी अधिक हो गई है। नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल, सत एवं सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनंदन एवं पुरस्कृत ग्रंथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित उर्दू शैली आदि से सजलित किए गए हैं। परिशिष्ट खंड में प्राविधिक एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

हिंदी शब्दसागर का यह संशोधित परिवर्धित संस्करण कुल दस खंडों में पूरा होगा। इसका पहला खंड पौष, संवत् २०२२ वि० में छपकर तैयार हो गया था। इसके उद्घाटन का समारोह भारत गणतंत्र के प्रधान मंत्री स्वर्गीय माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री द्वारा प्रयाग में ३ पौष, सं० २०२२ वि० (१८ दिसंबर, १९६५) को भव्य रूप से मजे हुए पंडाल में काशी, प्रयाग एवं अन्य स्थानों के वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध साहित्यसेवियों, पत्रकारों तथा गण्यमान्य नामगिर्कों की उपस्थिति में संपन्न हुआ। समारोह में उपस्थित महानुभावों में विशेष उल्लेख्य माननीय श्री पं० कमलापति जी त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश के प्रधान संपादक श्री डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी, पद्यभूषण कविवर श्री पं० मुमित्रानंदन जी पंत, श्रीमती महादेवी जी वर्मा आदि हैं। इस संशोधित संपादित संस्करण की सफल पूर्ति के उपलक्ष्य में इसके समस्त संपादकों को एक एक फाउंटैन पेन, ताम्रपत्र और ग्रंथ की एक एक प्रति माननीय श्री शास्त्री जी के करकमलों द्वारा भेंट की गई। उन्होंने अपने संक्षिप्त सारगर्भित भाषण में इस सभा की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा की और कहा : 'सार्वजनिक

क्षेत्र में कार्य करनेवाली यह सभा अपने ढंग की अकेली संस्था है। हिंदी भाषा और साहित्य की जैसी सेवा नागरीप्रचारिणी सभा ने की है वैसी सेवा अन्य किसी संस्था ने नहीं की। भिन्न भिन्न विषयों पर जो पुस्तकें इस संस्था ने प्रकाशित की हैं वे अपने ढंग के अनूठे ग्रंथ हैं और उनसे हमारी भाषा और साहित्य का मान अत्यधिक बढ़ा है। सभा ने समय की गति को देखकर तात्कालिक उपादेयता के वे सब कार्य हाथ में लिए हैं जिनकी इस समय नितांत आवश्यकता है। इस प्रकार यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र में यह सभा अग्रतिम है।

शब्दसागर के द्वितीय खंड का उद्घाटनोत्सव नागरीप्रचारिणी सभाभवन में माननीय न्यायमूर्ति हरिश्चंद्रपति त्रिपाठी द्वारा १७ पौष, संवत् २०२३ को विशिष्ट विद्वानों की उपस्थिति में संपन्न हुआ। इस खंड में 'उ' वर्ण से 'कैलिया' तक के शब्द हैं जिनकी संख्या मुहावरे, योगिक एवं पर्याय को मिलाकर २०००० के लगभग है।

प्रस्तुत तृतीय खंड में 'संतव्य' से 'छवाना' तक के शब्दों का संचयन है। नए नए शब्द, उदाहरण, योगिक शब्द और मुहावरे तथा पर्यायवाची शब्दों से सजलित इस भाग की शब्दसंख्या लगभग २१००० है। अपने मूल रूप में यह ग्रंथ कुल ४२६ पृष्ठों में था जो अपने विस्तार के साथ इस परिवर्धित संशोधित संस्करण में ५६८ पृष्ठों में आ पाया है।

संपादकमंडल के प्रत्येक सदस्य ने यथासामर्थ्य निष्ठापूर्वक इसके निर्माण में योग दिया है। श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ नियमित रूप से नित्य सभा में पधारकर इसकी प्रगति को विशेष गंभीरतापूर्वक गति देते रहे हैं और पं० करुणापति त्रिपाठी ने इसके संपादन और संयोजन में प्रगाढ़ निष्ठा के साथ घर पर, यहाँ तक कि यात्रा पर रहने पर भी, पूरा कार्य किया है। यदि ऐसा न होता तो यह कार्य संपन्न होना संभव न था। हम अपनी सीमा जानते हैं। संभव है, हम सबके प्रयत्न में त्रुटियाँ हों, पर सदा हमारा परिनिष्ठित यत्न यह रहेगा कि हम इसको और अधिक पूर्ण करते रहें क्योंकि ग्रंथ का कार्य अस्थायी नहीं सनातन है।

अंत में शब्दसागर के मूल संपादक तथा सभा के संस्थापक स्व० डा० श्यामसुंदरदास जी को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह संकल्प हम पुनः दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उसका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा। इस क्षेत्र में यह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया संस्करण और भी अधिक प्रभोज्य होता रहेगा।

ना० प्र० सभा, काशी :
बिजया दशमी, २०२४ वि० }

सुधाकर पांडेय
प्रधान मंत्री

संकेतिका

[छद्मरूपों में प्रयुक्त संदर्भग्रंथों के इस विवरण में क्रमशः ग्रंथ का संकेताक्षर,
ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं ।]

अंधेरे०	अंधेरे की सुख, डा० रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण	अध०	अधकथानक, संपा० नाथूराम प्रेमी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००७	अष्टांग (शब्द०)	अष्टांग योगसंहिता
अग्नि०	अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	अधी	अधी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
अजात०	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १६वीं सं०	आकाश०	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
अणिमा	अणिमा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युग मंदिर, उत्तराखण्ड	आचार्य०	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, बाण्नी बितान, वाराणसी, प्र० सं०
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	आदि०	आदिभारत, अर्जुन चौधरी काश्यप, बाण्नी विहार, बनारस, प्र० सं०, १९५३ ई०
अनामिका	अनामिका, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० सं०	आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
अनुराग०	अनुरागसागर, संपा० स्वामी युगलानंद बिहारी, वैकुण्ठेश्वर प्रेस, बंबई, प्र० सं०	आनंदधन (शब्द०)	कवि आनंदधन
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)	आराधना	आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार संसद, इलाहाबाद, प्र० सं०
अनेकार्थ०	अनेकार्थमंजरी और नाममाला, संपा० बलभद्र-प्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०	आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामनगर गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, फाँसी, प्र० सं०, १९८४ वि०
अपरा	अपरा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग	आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० सं०, १९५३ ई०	आर्यों०	आर्यों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९६७ वि०, प्र० सं०
अभिषम	अभिषम, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०	इंद्र०	इंद्रजाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
अतीत०	अतीत स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३० ई०	इंद्रा०	इंद्रावती, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर	इंशा०	इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा०, अजयशंकरदास, कमलमणि ग्रंथ-माला, बुलानाला, काशी, प्र० सं०
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवी सं० ।
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २०१४ वि०	इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय', प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली
अर्चना	अर्चना, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कला-मंदिर, इलाहाबाद	इरा०	इरावती, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्रत्युप सं०
अर्थ०	अर्थशास्त्र, कौटिल्य, [५ खंड] संपा० आर० शाम शास्त्री, गवर्नमेंट ग्रंथ प्रेस, मैसूर, प्र० सं०, १९१९ ई०	उत्तर०	उत्तररामचरित नाटक, अनु० पं० सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, आगरा, पंचम, सं०
		एकांत०	एकांतवासी योगी, अनु० श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १८८६ वि०
		कंकाल	कंकाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम सं०

कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्लो उपनिषद्	किन्नर०	किन्नर 'दिप' में, राहुल सांकृत्यायन, इंडिया
कंठो०	कंठो में कोयला, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उप', गऊघाट मिर्जापुर, प्र० सं०	कीर्ति०	पल्लिबास, प्रयाग, प्र० सं०
कबीर ग्रं०	कबीर ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० मभा, काशी	कुकुर०	कीर्तिलता, सं० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र०
कबीर० बानी	कबीर साहब की बानी	कुणाल	सभा, वाराणसी, तृ० सं०
कबीर बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०	कृषि०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमंदिर, उन्नाव
कबीर बी०	कबीर बीजक, संपा० हंसदास, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी २००७ वि०	केशव (शब्द०)	कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी
कबीर मं०	कबीर मंसूर [२ भाग], बेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई, सन् १९०३ ई०	केशव ग्रं०	कृषिशास्त्र
कबीर० रे०	कबीर साहब की ज्ञानगुहड़ी व रेखे, बेलवेडि- यर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद	केशव० ग्रमी०	केशवदास
कबीर० शा०	कबीर साहब की शब्दावली [४ भाग] बेलवेडि- यर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, सन् १९०८	कोई कवि (शब्द)	केशव ग्रंथावली, संपा० पं० विश्वनाथप्रसाद
कबीर (शब्द०)	कबीरदास	कोटिल्य ग्रं०	मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
कबीर सा०	कबीर सागर [४ भा०], संपा० स्वा० श्री युग- लानंद बिहारी, बेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई	कवासि	केशवदास की ग्रमीपूट
कबीर सा० सं०	कबीर साखी संग्रह, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०	खानखाना (शब्द०)	अज्ञातनाम कोई कवि
कमलापति (शब्द०)	कवि कमलापति	खालिक०	कोटिल्य का अर्थशास्त्र
करुणा०	करुणानय, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०	खिलीना	कवासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल
कर्ण०	सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०	खुदाराम	प्रकाशन, बंबई, १९५३ ई०
कविद (शब्द०)	कविद कवि	बंम ग्रं०	अब्दुर्रहोम खानखाना
कवित् कौ०	कविना कोमुदी [१-४ भा०], संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, तृ० सं०	गदाधर०	खालिकबारी, संपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, संपा० उमाशंकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग	गबन	सभा, वाराणसी, प्र० सं० २०२१ वि०
कानन०	काननकुसुम, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम सं०	गालिब०	खिलीना (मासिक)
कामायनी	कामायनी, जयशंकर प्रसाद, ब्रजम सं०	गि०दा०, गि०दास (शब्द०)	खुदाराम और चंन हसीनों के ललित, पाण्डेय बेचन
काया०	कायावस्व, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ६५ म०	गिरिधर (शब्द०)	शर्मा 'उप', गऊघाट, मिर्जापुर, छठवीं सं०
काले०	काले कारनामे, 'निराला', कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग, २००७ वि०	गीतिका	बंम कवित्त [ग्रंथावली], संपा० बटुकृष्ण,
काव्य० निबंध	काव्य और कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद चतुर्थ सं०	गुंजन	ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
काव्य० य० प्र०	काव्य यथार्थ और प्रगति, डा० रागेय राघव, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र० सं०, २०१२ वि०	गुमान (शब्द०)	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	गुलाल०	गबन, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६वीं सं०
		गोदान	गानिव की कविता, सं० कृष्णदेवप्रसाद गोड़,
		गोपाल० (शब्द०)	वाराणसी, प्र० सं०
		गोरख०	गि०दा०, गि०दास (शब्द०) गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
		ग्राम०	गिरिधर (शब्द०) गिरिधर राय (कुंडलियावाले)
		ग्राम्या	गीतिका, 'निराला', भारती भंडार, इलाहाबाद
		घट०	प्र० सं०
			गुंजन, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर
			प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
			गुमान मिश्र
			गुलाब बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद,
			१९१० ई०
			गोदान, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०
			गिरिधर दास (गोपालचंद्र)
			गोरखबानी, सं० डा० पीतांबरदास बड़वाल,
			हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
			ग्राम साहित्य, संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी
			मंदिर, प्रयाग, प्र० सं०
			ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर
			प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
			घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी
			साहिब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०

घनानंद	घनानंद, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद् बाणुवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी	जयसिंह (शब्द०)	जयसिंह कवि
घाघ०	घाघ और भडूरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद	जायसी ग्रं०	जायसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
घासीराम (शब्द०)	घासीराम कवि	जायसी ग्रं० (गुप्त)	जायसी ग्रंथावली, संपा० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५१ ई०
चंद	चंद हसीनों के खतूत, 'उष', हिंदी पुस्तक-एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०	जायसी (शब्द०)	मलिक मुहम्मद जायसी
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवी सं०	जिप्सी	जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदया-चल, पटना, प्र० सं०	जुगलेश (शब्द०)	जुगलेश कवि
चरण (शब्द०)	चरणदास	ज्ञानदान	ज्ञानदान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४२ ई०
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका	ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
चरण० बानी	चरणदाम मी बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहा-बाद, प्र० सं०	भरना	भरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस प्रयाग, मतिवा सं०
चांदनी०	चांदनी रात और मजगर, उपेन्द्रनाथ शर्मा, नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग प्र० सं०	भांसी०	भांसी की रानी, बृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, भांसी, द्वि० सं०
चिता	'चिता', अज्ञेय, सरजनो प्रेस, प्र० सं०, सन् १९४० ई०	टैगोर०	टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
चितामणि	'चितामणि' : भाग I, रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, लि०. प्रयाग	ठंडा०	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
चितामणि (शब्द०)	कवि चितामणि त्रिपाठी	ठाकुर०	ठाकुर शतक, संपा० काशीप्रसाद, भारत-जीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १९६१
चित्रा०	चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	ठेठ०	ठेठ हिंदी का ठाठ अयोध्यासिंह उपाध्याय, खडगविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चुभने०	चुभते चौपदे, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरि-श्रीष', खडगविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०	ढोला० दू०	ढोला मारू रा दूहा, संपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
चोखे०	चोखे चौपदे,	तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवीं सं०
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला', किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०	तुलसी	तुलसीदास, 'निगला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०
छंद०	छंद प्रभाकर, भानु कवि, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०	तुलसी ग्रं०	तुलसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी, तृतीय सं०
छत्र०	छत्रप्रकाश, सं० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२६ ई०	तुरमी श०, तुलसी श०	तुलसी साहब की शब्दावली (हाथरसवाले) बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, १९११
छिताई०	छिताई वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	तेग० (शब्द०)	तेगबहादुर
छोत०	छोत स्वामी, संपा० ब्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, काँकरोली, प्र० सं०, संवत् २०१२	तेज०	तेजविद्रूपनिषद्
जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, प्र० सं०	तोष (शब्द०)	कवि तोष
जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली	त्याग०	त्यागपत्र, जैनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
जनानी०	जनानी ड्योढ़ी, अनु० यशपाल, मशोक प्रका-शन, लखनऊ	द० सागर	दरिया सागर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९६५ वि०	दक्षिणो०	दक्षिणी का गद्य और पद्य, संपा० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार, सभा, हैदराबाद, प्र० सं०

हरिया० बानी	दरिया साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०	नट०	नटनागर विनोद, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र-१
दश०	दशरूपक, संपा० डा० भोलाशंकर व्यास, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, प्र० सं०	नदी०	इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं० नदी के द्वीप, 'भोज्य', प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९५१ ई०
दशम० (शब्द०) दहकते०	भाषा दशम स्कंध दहकते धंगारे, नरोत्तमप्रसाद नागर, ग्राम्युदय कार्यालय, इलाहाबाद	नया०	नया साहित्य : नए प्रश्न. नंददुलारे वाजपेयी, विद्यामंदिर, वाराणसी, २०११ वि०
दादू०	श्री दादूदयाल की बानी, सं० सुभाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी	नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम सं०
दादूदयाल ग्रं०	दादूदयाल ग्रंथावली	नागरी (शब्द०)	नागरीदास कवि ।
दादू० (शब्द०)	दादूदयाल	नाथ (शब्द०)	नाथ कवि
दिनेश (शब्द०)	कवि दिनेश	नाथसिद्ध०,	नाथसिद्धों की बानियाँ, ना० प्र० सभा, वाराणसी प्र० सं०
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०	नारायणदास (शब्द०)	नारायणदास
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०	नील०	नीलकुसुम, रामधारीसिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
दीन० ग्रं०	दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, संपा० श्याम-सुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	नेपाल०	नेपाल का इतिहास, प० बलदेवप्रसाद, वैकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९६१ वि०
दीनदयालु (शब्द०) दीप०	कवि दीनदयालु गिरि दीपशिखा. महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०	पंचवटी	पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भाँसी, प्र० सं०
दी० ज०, दीप ज०	दीप जलेश, उपेन्द्रनाथ भट्टक, नीलाम प्रकाशन गृह, प्रयाग	पजनेश०	पजनेस प्रकाश, संपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन ग्रंथालय, काशी, प्र० सं०
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह	पदमावत	पदमावत, सं० वासुदेवशरण भट्टवाल, साहित्य सदन, चिरगांव, भाँसी, प्र० सं०
देव० ग्रं०	देव ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	पदु०, पदुमा०	पदुमावती, संपा० सूर्यकांत शास्त्री, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०
देव (शब्द०)	देव कवि (मैनपुरीवाले)	पद्याकर ग्रं०	पद्याकर ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
देशी०	देशी नाममाला	पद्याकर (शब्द०)	पद्याकर भट्ट
देनिकी	सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भाँसी, प्र० सं० १९६६ वि०	प० रा०, प० रासो	परमाल रासो, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
दो सौ बावन०	दो सौ बावन श्रेष्ठों की बातें [दो भाग], शुद्धाह्न एकडेमी, काँकरीली, प्रथम सं०	परमानंद०	परमानंदसागर
द्वंद्व०	द्वंद्वगीत, रामधारीसिंह 'दिनकर', पुस्तक भंडार, न्हेरियासराय, पटना, प्र० सं०	परमेश (शब्द०)	परमेश कवि
द्वि० अभि० ग्रं०	द्विवेदी अभिनदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी	परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी	पदे०	पदे की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९६६ वि०
धरनी० बा०	धरनी साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०	पलदू०	पलदू सहब की बानी [१-३ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०
धरम० शब्दा०, धरम०	धरमदास की शब्दावली	पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, प्र० सं०
धूप०	धूप और धूप्रा, रामधारीसिंह 'दिनकर', अजंता प्रेस, लि०, पटना ४	पाणिनि०	पाणिनिकापीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण भट्टवाल, मोतीलाल बनारसीदास, प्र० सं०
नंद० ग्रं०, नंददाम ग्रं०	नंददास ग्रंथावली, संपा० अजरन्तदाम, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	पारिजात०	पारिजातहरण
नई०	नई पीढ़ी, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५३	पावती	पावती, रामानंद तिवारी शास्त्री, भारतीयनवन, मंगलमवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई०

वा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०	बंगाल०	बंगाल का काल, हरिवंश राय 'बच्चन', भारती मंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०
पिजरे०	पिजरे को उद्धान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०	बाँकी० ग्रं०, बाँकीबास ग्रं०, बंदन०	बाँकीबास ग्रंथावली [तीन भाग], संपा० राम-नारायण दूगड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
पू० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वामदेव उपाध्याय भारती मंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००६ वि०	बंद०	बंदनवार, बेवेन्द्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४६ ई०
पू० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खंड], संपा० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, प्रियामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	बागिदरा बिल्ले०	बागिदरा बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० सं०
पू० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासो [४ खंड], स० कविगज मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०	बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, संपा० जगन्नाथदास 'रत्ना-कर', गंगा ग्रंथगार, लखनऊ, प्र० सं०
पोद्दार अभि० ग्रं०	पोद्दार अभिनंदन ग्रं०, संपा० वामदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय राज साहित्यमंडल, मथुरा, स० २०१० वि०	बिहारी (शब्द०) बी० रासो	कवि बिहारी बीसलदेव रासो, संपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
प्रताप ग्रं०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली, संपा० विजय-शंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	बीसल० रास बी० श० महा०	बीसलदेव रास, संपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं० बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपाल-सिंह छोरिएंटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
प्रताप (शब्द०) प्रबंध०	प्रतापनारायण मिश्र प्रबंधपत्र, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०	बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला', सरस्वती मंडार, लखनऊ, प्र० सं०	बृहत्० बृहत्संहिता (शब्द०) बेनी (शब्द०) बेला	बृहत्संहिता कवि बेनी प्रवीण बेला, 'निराला', हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसंगीत, संपा० संन संपूरणसिंह, बेल-वेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	बेलि०	बेलि क्रिसन स्विमणी री, सं० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३१ ई०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा० गंगेय राघव, आत्माराम पेंड संस, दिल्ली, प्र० सं०, १०५३ ई०	बज०	बजविलास, संपा० श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी बैंक-टेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० सं०
प्रिय०	प्रियप्रवास, जयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिप्रोब', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, षष्ठ सं०	बज० ग्रं०	बजनिधि ग्रंथावली, संपा० पुरोहित हरिनाथ वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
प्रिया० (शब्द०) प्रेम०	प्रियादास प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद, भारती मंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०	बजमाधुरी०	बजमाधुरी सार, संपा० वियोगी हरि, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, तृ० सं०
प्रेम० और गोकीं	प्रेमचंद और गोकीं, संपा० शचीरानी गुट्ट, राजकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०	भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, बैंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५३ वि०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९६६ वि०	भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्री भक्तिसुखाविदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि सं० १९८३ वि०
प्रे० सा० (शब्द०) प्रेमांजलि	प्रेमसागर प्रेमांजलि, टी० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०	भक्ति०	भक्तिसानाद, स्वामीचरण, बैंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६० वि०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग], पं० रतननाथ 'सरशार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०	भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, बैंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६०
फूसो०	फूसो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०	अगवतरसिक (शब्द०)	अगवतरसिक

भस्मावृत०	भस्मावृत चित्तगरी, यशपाल, विप्लव कार्यालय लखनऊ, १९४६ ई०	महाभारत (शब्द०)	महाभारत
भा० इ० इ०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्यालंकार, हिंदुस्तानी बुकशेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३३ वि०	महाराणाप्रताप (शब्द०)	महाराणा प्रताप
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाना, श्रीरामचंद्र हीराचंद प्रोभा, इतिहास कार्यालय, राजमेवाड़, प्र० सं०, १९५१ वि०	माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, चतुर्थ सं०
भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगांव, भीसी, नवम सं० ।	माधवानल०	माधवानल कामकंदला, बोधा कवि, नवल-किशोर प्रेम, लखनऊ, प्र० सं०, १८९१ ई०
भा० भू०, भारत० नि०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचंद्र विद्यालंकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० सं० १९८७ वि०	मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान	मानव	मानव कवितासंकलन, भगवतीशरण वर्मा, मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०
भारतेंदु प्र०	भारतेंदु ग्रंथावली [४ भाग], संपा० बजरत्न-दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	मानव०	मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली, १९५३ ई०	मानस	रामचरितमानस, संपा० शंभुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भाषा शि०	भाषा शिक्षण, पं० सीताराम चतुर्वेदी	मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती मंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९६६ वि०
मिहारी प्र०	मिहारीदाम ग्रंथावली [दो भाग], संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी	मिलन०	मिलनग्रामिनी, हरिवंश राय 'बच्चन', भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० सं०, १९५० ई०
भीखा श०, भीखा शब्दावली प्र० सं०		मुंशी अभि० प्र०	मुंशी अभिनंदन ग्रंथ, संपा० डा० विश्वनाथ-प्रसाद, हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
भूषण प्र०	भूषण ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०	मुबारक (शब्द०)	मुबारक कवि
भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी	पृथ०	पृथनयनी, बुधनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, भीसी
भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदय-नारायण तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्र० सं०	मैला०	मैला जीवन, फणोश्वर नाथ 'रेणु', समता प्रकाशन, पटना-४, प्र० सं०
मति० प्र०	मतिराम ग्रंथावली, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, द्वि० सं०	मोहन०	मोहनबिन्द, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, इलाहा-बाद ली जर्नेल प्रेस, प्र० सं०
मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी	यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भीसी, प्र० सं०
मधु०	मधुकलश, हरिवंशराय 'बच्चन', सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३६ ई०	यामा	यामा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० सं०
मधुञ्जाल	मधुञ्जाल-सुमित्रानन्दन पंत, भारती मंडार, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३६ ई०	युग०	युगवाणी, सुमित्रानन्दन पंत, भारती मंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
मधु मा०	मधुमालती बार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	युगपथ	युगपथ, " " "
मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय 'बच्चन', सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० सं०	युगांत	युगांत, सुमित्रानन्दन पंत, इंद्र प्रिंटिंग प्रेस, अल्मोड़ा, प्र० सं०
मनविरक्त०	मनविरक्तकरण गुटका सार (चरणदास)	रंगभूमि	रंगभूमि, प्रेमचंद, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ प्र० सं०, १९८१ वि०
मनु०	मनुस्मृति	रघु० रू०	रघुनाथ झाक गीतरी, संपा० महताबचंद्र खारैड़, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
मन्नालाल (शब्द०)	कवि मन्नालाल	रघु० दा० (शब्द०)	रघुनाथदास
मल्लक० बानी	मल्लकवास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग	रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ
मल्लक० (शब्द०)	मल्लकदास	रघुराज (शब्द०)	महाराज रघुराजमिह, रीवानरेश
महा०	महाराणा का महत्व, जयशंकर प्रसाद, भारती मंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०	रजत०	रजतशिक्षर, सुमित्रानन्दन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०
		रज्जब०	रज्जब की बानी, ज्ञानसागर प्रेस, बंबई, १९७५ वि०

रत्न०	रत्नहारा, संपा० श्री जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, १९८२ ई०	सहर	सहर, जयशंकर प्रसाद, भारतीय मंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९५३ ई०	लाल (शब्द०)	लालकवि (छत्रप्रकाशवाले)
रत्न० (शब्द०)	रत्नसार	बख्तरलाकर	बख्तरलाकर
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा, काशी, चतुर्थ और द्वि० सं०	विद्यापति	विद्यापति, संपा० खगेंद्रनाथ मिश्र, यूनाइटेड प्रेस, लि०, पटना
रस०	रसमीमांसा, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०	विनय०	विनयपत्रिका, टीका० पं० रामेश्वर भट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० सं०
रस क०	रसकलस, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिप्रोथ,' हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०	विशाल	विशाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
रसखान०	रसखान छोटा चवाना, संपा० बा० अमीरसिंह, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०	विश्राम (शब्द०)	विश्रामसागर
रसखान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम	वीणा	वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०
रस र०, रसरतन	रसरतन, संपा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	वेनिस (शब्द०)	वेनिस का बाँका
रसनिधि (शब्द०)	राजा पृथ्वीसिंह	वैशाली०, वै० न०	वैशाली की बगरबधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकशिपो, बिल्सी, प्र० सं०
रहीम०	रहीम रत्नावली	वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
रहीम (शब्द०)	अब्दुरहीम खानखाना	व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी
राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गोरीशंकर हीराचंद पोभा, अजमेर, १९६० वि०, प्र० सं०	व्यास (शब्द०)	व्यासकादत व्यास
रा० क०	राजकपूर, संपा० पं० रामकृष्ण, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	वज्र (शब्द०)	वज्र (शब्द०)
रा० वि०	राजविलास, संपा० मोतीलाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	शं० वि० (शब्द०)	शंकरदिविजय
राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवाँ सं०	शंकर०	शंकरसर्वस्व, संपा० हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद एंड संस, छापरा, प्र० सं०
रामकवि (शब्द०)	राम कवि	शकुं०	शकुंतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भाँसी
राम० चं०	संक्षिप्त रामचंद्रिका, संपा० साला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, वाराणसी, षष्ठ सं०	शकुंतला	शकुंतला नाटक, अनु० राजा लक्ष्मणसिंह, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, चतु० सं०
राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहवल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।	शाङ्गधर सं०	शाङ्गधर संहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रणालय, संवत् १९७१
राम० धर्म० सं०	रामस्नेह धर्म संग्रह, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहवल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।	शिक्षर०	शिवर वशोत्पत्ति, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०, १९८५
रामरसिका०	रामरसिकावली [भक्तमाल]	शिवप्रसाद (शब्द०)	राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद
रामानंद०	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, संपा० पीतांबरदत्त बड़वाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०	शिवराम (शब्द०)	शिवराम कवि
रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रंथकार, मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३६ वि०	शुक्ल० अग्नि० ग्रं०	शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य संमेलन
रेगुका	रेगुका, रामधारी मिह 'दिनकर,' पुस्तकमंडार लहेरिया मुराय. पटना, प्र० सं०	शृं० सत० (शब्द०)	शृंगार सतसई
रे० बानी	रेदास बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद	शेर०	शेर ओ मुखन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
लक्ष्मणसिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह	शैली	शैली, करुणापति त्रिपाठी
खल्लु (शब्द०)	खल्लुलाल	श्यामा०	श्यामास्वयं संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
		भद्रानंद (शब्द०)	स्वामी भद्रानंद
		श्रीधर पाठक (शब्द०)	श्रीधर पाठक
		श्रीनिवास ग्रं०	श्रीनिवास ग्रंथावली, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
		संतति०	चंद्रकांता संतति, देवकीनंदन खत्री, वाराणसी

संत तुरसी०	संत तुरसीदास की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।	सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), संपा० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०
सं० दरिया, संत दरिया	संत कवि दरिया, सं० धर्मद्व ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्र० सं०	सुनीता	सुनीता, जैनदेवकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० सं०
संत र०	संत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवसंघ हरिद्वार, प्र० सं०	सूत०	सूत की माला, पंत और बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
संतवाणी०, संत०सार०	संतवाणी सार संग्रह [२ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद	सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)
संन्यासी,	संन्यासी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	सूर०	सूरसागर, [दो भाग], ना० प्र० सभा, द्वितीय सं०
संपूर्णा० ग्रंथि० प्र०	संपूर्णानंद अभिनंदन ग्रंथ, संपा० प्राचार्य नरेंद्रदेव, ना० प्र० सभा, बाराणसी	सूर० (शब्द०)	सूरदास
स० दशम	समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	सूर० (राधा०)	सूरसामगर, संपा० राधाकृष्णदास, वैकटेश्वर प्रेस, प्र० सं०
सत्य०	कविराम सत्यनारायण जी की जीवनी, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०	सेवक (शब्द०)	'सेवक' कवि
सत्याग्रहप्रकाश (शब्द०)	सत्याग्रहप्रकाश	सेवक श्याम (शब्द०)	सेवक श्याम कवि
सबल (शब्द०)	सबलसिंह चौहान	सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि० सं०
सभा० वि० (शब्द०)	सभाविलास	सेर कु०	सेर कुहसार, प० रतननाथ 'सरदार', नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १९३४ ई०
स० शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, पं० सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्र० सं०	सी भजान० (शब्द०)	सी भजान और एक सुजान, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिप्रौढ'
स० सप्तक	सप्तसई सप्तक, संपा० श्यामसुंदरदास, हिंदु-स्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०	स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार-लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
सहजो०	सहजो बाई की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०८ वि०	स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
साकेत	साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिर-गाँव, झाँसी, प्र० सं०	स्वामी हरिदाम (शब्द०)	स्वामी हरिदाम
सागरिका	सागरिका, डा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	हंस०	हंसमत्ता, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
साम०	सामवेनी, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल पटना, द्वि० सं०	हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल बाहिक, प्र० संपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
सा० वर्षण	साहित्यवर्षण, संपा० जालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय शोधालय, लखनऊ, प्र० सं०	हनुमान (शब्द०)	हनुमानाटक
सा० लहरी	साहित्यलहरी, संपा० रामलोचनशरण बिहारी, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना	हनुमान कवि (शब्द०)	हनुमान कवि (शब्द०)
सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग	हम्मीर०	हम्मीरहठ, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग
साहित्य०,	साहित्यालोचन	ह० रासो०	हम्मीर रामो, संपा० डा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
सुंदर० प्र०	सुंदरदास शंखावली [दो भाग], संपा० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी कलकत्ता,	हरिजन (शब्द०)	कवि हरिजन
सुंदरीसिद्धर (शब्द०)	सुंदरी सिद्धर	हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
सुखदा	सुखदा, जैनदेवकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०	हरिचंद्र (शब्द०)	भारनेंदु हरिचंद्र
सुधाकर (शब्द०)	महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी	हरिसेवक (शब्द०)	हरिसेवक कवि
		हरी घास०	हरि घास पर क्षण भर, अजेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १९४९ ई०
		हर्ष०	हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेव-शरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०, १९५३ ई०
		हालाहल	हालाहल, हरिवंशराय बच्चन, भारती भंडार प्रयाग, १९४६ ई०
		हिंदी भा०	हिंदी आलोचना

हि० का० प्र०	हिंदी काव्य पर श्रीरंग प्रसाद, रवींद्रसहाय वर्मा, पण्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०	हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तान एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
हि० क० का०	हिंदी कवि श्रीर काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०	हिम कि०	हिमकिरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, प्र० सं०
हिंदी प्रदीप (शब्द०)	हिंदी प्रदीप	हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती मंदार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
हिंदी प्रेमगाथा	हिंदी प्रेमगाथा काव्यसंग्रह, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३६ ई०	हिम्मत०	हिम्मतबहादुर विद्यावली, लाला मगवान-दीन, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यातक काव्य, डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी भानसिंह प्रकाशन, कच्छहरी रोड	हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० सं०
हि० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरणकुमारो गुप्त, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग	हुमायूँ	हुमायूँनामा, धनु० बजरत्नदास, ना० प्र० सभा, बाराणसी, द्वि० सं०
हि० सा० सू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी शब्द रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०, १९४८	हृदय०	हृदयतरंग, सत्यनारायण कविरत्न

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों का विवरण]

अ०	अंग्रेजी	क्रि० वि०	क्रिया विशेषण
अ०	अरबी	क्रि० स०	क्रिया सकर्मक
अक० रूप	अकर्मक रूप	कव०	कवचित्
अनु०	अनुकरण शब्द	गीत	लोकगीत
अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक	गुज०	गुजराती
अनु० मू०	अनुकरणाधर्मूलक	ची०	चीनी भाषा
अनुर०	अनुरणनात्मक रूप	छंद	छंद
अप०	अपभ्रंश	जापा०	जापानी
अध० भा०	अधर्मागधी	जावा०	जावा द्वीप की भाषा
अल्पा०	अल्पार्थक	जी०, जीवन०	जीवनचरित्
अव०	अवधी	ज्या०	ज्यामिति
अव्य०	अव्यय	ज्यो०	ज्योतिष
इब०	इब्रानी	डि०	डिगल
उ०	उदाहरण	त०	तमिल
उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ	तर्क०	तर्कशास्त्र
उद्दि०	उद्दिष्टा	तु०	तुर्की
उप०	उपसर्ग	दू०	दूहा या दूहला
उभ०	उभयलिङ्ग	दे०	देशिए
एकव०	एकवचन	देश०	देशज
कहावत	कहावत	देशी	देशी
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र	धर्म०	धर्मशास्त्र
[को०], (को०)	अन्य कोश	नाम०	नामधातु
कोंक०	कोंकणी	ना० भा०	नामधातुज क्रिया
क्रि०	क्रिया	नामिक धातु	नामिक धातु
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक	ने०	नेपाळी
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग	व्याय०	व्याय या तर्कशास्त्र

पं०	पंजाबी	यी०	योगिक
परि०	परिशिष्ट	राज०	राजस्थानी
पा०	पाली	लश०	लशकरी
पुं०	पुंलिंग	ला०	लाक्षणिक
पुर्त०	पुर्तगाली	ले०	लैटिन
पु० हि०	पुरानी हिंदी	व० कृ०	वर्तमान कृत
पू० हि०	पूर्वी हिंदी	वि०	विशेषण
पृ०	पृष्ठ	वि० द्वि० मू०	विषमद्विरुक्तिमूलक
प्रत्य०	प्रत्यय	वे०	वैदिक
प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना	व्या०	व्याकरण
प्रा०	प्राकृत	(शब्द०)	शब्दसागर
प्रे०	प्रेरणार्थक रूप	सं०	संस्कृत
फ०	फरांसीसी भाषा	संयो०	संयोजक अव्यय
फकीर०	फकीरों की बोली	संयो० क्रि०	संयोजक क्रिया
फा०	फारसी	स०	सकर्मक
बंग०	बंगला भाषा	सक० रूप	सकर्मक रूप
बरमी०	बरमी भाषा	सधु०	सधुक्कड़ी भाषा
बहुव०	बहुवचन	सर्व०	सर्वनाम
बु० खं०	बुंदेलखंड की बोली	स्ये०	स्येनी भाषा
बोल०	बोलचाल	स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
भाव०	भाववाचक संज्ञा	स्त्री०	स्त्रीलिंग
भू०	भूमिका	हि०	हिंदी
भू० कृ०	भूत कृत	ॐ	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
मरा०	मराठी	>	व्युत्पन्न
मल०	मलयाली या मलयालम भाषा	†	प्रांतीय प्रयोग
मला०	मलायम भाषा	‡	ग्राम्य प्रयोग
मि०	मिलाड	✓	धातुचिह्न
मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त	•	संभाव्य व्युत्पत्ति
मुहा०	मुहावरा	?	अनिश्चित व्युत्पत्ति
यू०	यूनानी		

हिंदी शब्दसागर

क्ष

क्षंतव्य—वि० [सं० क्षन्तव्य] क्षमा करने के योग्य । क्षम्य । उ०—
हों नहीं क्षंतव्य जो मेरे विगृहित पाप, दो वचन अक्षय रहे
यह ग्लानि, यह परित्याग ।—साम०, पृ० ५० ।

क्षता—वि० [सं० क्षन्त] क्षमाशील । क्षमा करनेवाला ।

क्ष—संज्ञा पु० [सं०] १. विध्वंस । विनाश । २. हानि । अंतर्धान ।
लोप । ३. खेत । ४. कृषक । किसान । ५. विष्णु का चौथा
अवतार । ६. विद्युत् । बिजली । ७. एक राक्षस [को०] ।

क्षण—संज्ञा पु० [सं०] [वि० क्षणिक] १. काल या समय का एक
बहुत छोटा भाग ।

विशेष—क्षण की मात्रा के विषय में बहुत मतभेद है । महा-
भाष्यकार पतंजलि के मत से काल का वह छोटा भाग, जिसके
दुकड़े या विभाग न हो सकें, क्षण है । उनके मतानुसार क्षण का
काल के साथ वही संबंध है, जो परमाणु का द्रव्य के साथ
है । किसी के मत से पल या निमेष का चतुर्थांश, और किसी
के मत से दो दंड या मुहूर्त एक क्षण के बराबर हैं । अमर
के अनुसार तीस कला या मुहूर्त के बारहवें भाग का एक क्षण
होना है । पर न्याय के मत से महाकाल नित्य द्रव्य है और
उसके भाग या अंश नहीं हो सकते, इसलिये क्षण कोई अलग
पदार्थ नहीं ।

यो०—क्षणमात्र = थोड़ी देर ।

२. काफ । ३. अवसर । मौका । ४. समय । वक्त । ५. उत्साह ।
हर्ष । आनंद ।

क्षणतु—संज्ञा पु० [सं०] धाव । जलम [को०] ।

क्षणश्च—संज्ञा पु० [सं०] १. जल । २. ज्योतिषी । ३. वह जिसे रात
को दिखाई न पड़ता हो । ४. रात को दिखाई न पड़ने का
एक रोग । रतौधी [को०] ।

क्षणदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि । रात । २. हल्दी ।

क्षणदीकर—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा ।

क्षणद्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत् । बिजली ।

क्षणन—संज्ञा पु० [सं०] १. चोट पहुँचाना । प्रहार करना । २. हनन ।
वध करना [को०] ।

क्षणनिःश्वास—संज्ञा पु० [सं०] सूँस नामक जलचर । शिशुमार [को०] ।

क्षणप्रकाश—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'क्षणद्युति' ।

क्षणप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली । विद्युत् ।

क्षणभंग—संज्ञा पु० [सं० क्षणभङ्ग] एक बौद्ध सिद्धांत जिसमें
वस्तुओं की स्थिति एक क्षण की मानी गई है । इसे क्षणिकवाद
भी कहते हैं ।

विशेष—३० 'क्षणिकवाद' ।

यो०—क्षणभंगवाद = क्षणिकवाद (बौद्ध) ।

क्षणभंग—संज्ञा पु० [सं० क्षणभङ्ग] क्षण भर में नष्ट होनेवाला ।
अनित्य । नाशवान् । उ०—समर मरन पुनि सुरसरि तीरा ।
राम काज क्षणभंगु शरीरा ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्षणभंगुर—वि० [सं० क्षणभङ्गुर] शीघ्र नष्ट होनेवाला । क्षण भर
में नष्ट होनेवाला । अनित्य । उ०—मुख संपति दारा सुत हय
गय हठे सबै समुदाय, क्षणभंगुर ए सबै श्याम बिनु अंत नाहि
संग जाय ।—मूर (शब्द०) ।

क्षणमूल्य—संज्ञा पु० [सं०] नगद दाम । तुरंत ही दी जानेवाली कीमत ।

विशेष—शाम शास्त्री ने इसका अर्थ कमीशन किया है ।

क्षणरामी—संज्ञा पु० [सं० क्षणरामेन्द्र] कपोत । कबूतर ।

क्षणविध्वंसी—वि० [सं० क्षणविध्वंसिन्] क्षण भर में नष्ट होनेवाला ।

क्षणविध्वंसी—संज्ञा पु० अतीव्रवादी दार्शनिकों का एक समुदाय,
जो यह मानता है कि संसार प्रति क्षण नष्ट होता और नया
जन्म प्राप्त करता है ।

क्षणस्थायी—वि० [सं० क्षणस्थायिन्] क्षणिक । क्षणभंगुर ।

क्षणिक—वि० [सं०] एक क्षण रहनेवाला । क्षणभंगुर । अनित्य ।

क्षणिक—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'क्षणिकवाद' ।

क्षणिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षणिक का भाव । क्षणभंगुरता ।

क्षणिकवाद—संज्ञा पु० [सं०] बौद्धों का एक सिद्धांत जिसमें
प्रत्येक वस्तु को उसकी उत्पत्ति से दूसरे क्षण में नष्ट हो जानेवाला
मानते हैं ।

विशेष—इस मत के अनुसार प्रत्येक वस्तु में प्रतिक्षण कुछ न
कुछ परिवर्तन होता रहता है और उसकी अवस्था या स्थिति
बदलती जाती है । इस सिद्धांत में सब पदार्थों को अनित्य
मानते हैं । इसे क्षणिक या क्षणभंग भी कहते हैं ।

क्षणिकवादी—संज्ञा पु० [सं० क्षणिकवादिन्] १. क्षणिकवाद पर
विश्वास रखनेवाला व्यक्ति । २०—बौद्ध धर्म से संबंधित
क्षणिकवादी और शून्यवादी मतों का उल्लेख आया है ।—
हिंदु० सभ्यता, पृ० २२७ ।

शृणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली। विद्युत्।

शृणिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात। क्षणदा।

शृणो—वि० [सं० शृण्] १. प्रवकाशयुक्त। २. क्षणस्थायी। ३. उत्सव या आनन्दवाला [श्री०]।

शृत^१—वि० [सं०] जिसे क्षति या आघात पहुँचा हो। जो किसी प्रकार टूटा फूटा या चीरा फाड़ा हो।

शृत^२—संज्ञा पुं० १. घाव। जख्म। २. वण। फोड़ा। ३. एक प्रकार का फोड़ा जो गिरने, दौड़ने या किसी प्रकार का क्रूर कर्म करने से हृदय में हो जाता है। इसमें रोगी को ज्वर आता है और खाँसने से मुँह से रक्त निकलता है। ४. मारना। काटना। ५. क्षति या आघात पहुँचाना। ६. भय। खतरा। डर [श्री०]। ७. दुःख। कष्ट [श्री०]।

शृतकास—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत या आघात से होनेवाली खाँसी [श्री०]।

शृतघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] कुकरोष।

शृतघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाख। लाह।

शृतज^१—वि० [सं०] १. श्वेत से उत्पन्न। जैसे—श्वेतज शोथ, श्वेतज विद्रधि। २. लाल। सुर्ख। उ०—श्वेतज नयन उर बाहु विशाला। हिमगिरि निभ तनु कछु इक ताला।—तुलसी (शब्द०)।

शृतज^२—संज्ञा पुं० १. रक्त। रक्षिर। खून। २. मवाद। पीव। ३. एक प्रकार की खाँसी जो श्वेत रोग में होती है। इसमें खखार के साथ रक्षिर निकलता है और शरीर के जोड़ों में पीड़ा होती है। ४. सात प्रकार की प्यास में से एक, जो शरीर में शर्शों का घाव लगने या बहुत अधिक रक्त निकल जाने के कारण लगती है। यह प्यास शरीर पर गीला कपड़ा लपेटने से बुझती है।

शृतजनृष्ण—संज्ञा स्त्री० [सं०] चोट लगने या शरीर से अधिक रक्त निकल जाने से उत्पन्न प्यास।—माधव०, पृ० १०७।

शृतजवाह—संज्ञा पुं० [सं०] किसी घाव के कारण होनेवाली जलन। जिसमें दाह के कारण प्यास, मूर्च्छा और प्रलाप आदि उपद्रव होते हैं।—माधव०, पृ० १२०।

शृतयोनि—वि० स्त्री० [सं०] जिस स्त्री का पुरुष के साथ समागम हो चुका हो।

शृतरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] घाव का पूरा होना। घाव भरना [श्री०]।

शृतबिचक्ष—वि० [सं०] १. जिसे बहुत चोटें लगी हों। घायल। लह-लुहान। २. जिसे बहुत आघात पहुँचा हो। जो बहुत नष्ट-भ्रष्ट किया गया हो।

शृतवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीविका का नष्ट होना। रोजी का सहारा न रहना [श्री०]।

शृतव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में छह प्रकार के फोड़ों में से एक। किसी स्थान के कटने या उसपर चोट लगने के बाद, उस स्थान के पक जाने को शृतव्रण कहते हैं।

शृतव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] प्रवकीर्ण व्रत।

शृतवर्षण—संज्ञा पुं० [श्री०] गतिहीनता। गमनशक्ति का नाश [श्री०]।

शृतहर—संज्ञा पुं० [सं०] भगर का पेड़।

शृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जिसका विवाह से पहले ही किसी पुरुष से दूषित संबंध हो चुका हो।

शृतारि—वि० [सं०] जेता। विजयी। विजेता [श्री०]।

शृतारौच—संज्ञा पुं० [सं०] वह अशौच जो किसी मनुष्य को घायल या जख्मी होने के कारण लगता है। इस अशौच में मनुष्य किसी प्रकार का श्रौत या स्मृति कार्य नहीं कर सकता।

शृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हानि। नुकसान। २. क्षय। नाश। ३. चोट। घाव [श्री०]। ४. हास। न्यूनता [श्री०]।

क्रि० प्र०—करना।—पहुँचना।—पहुँचाना।—होना।

शृतिग्रस्त—वि० [सं०] किसी प्रकार की क्षति उठानेवाला।

शृतिपूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षति या हानि पूरी करना। मुआवजा।

शृतोदर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उदररोग।

विशेष—इसमें अन्न के साथ रेत, तिनका, लकड़ी, हड्डी या काँटा आदि पेट में उतर जाने, अधिक जैर्भाई आने या कम भोजन करने के कारण आँतें छिद जाती हैं और उनमें से जल रसकर गुदा के मार्ग से निकलता है। इसे परिन्नाब्जुदर भी कहते हैं।

शृता—संज्ञा पुं० [सं० शृत्] १. द्वारपाल। दरवान। २. मछली। ३. नियोग करनेवाला पुरुष। ४. दासीपुत्र। ५. वह वर्रांसकर जिसकी उत्पत्ति क्षत्रिय माता और शूद्र पिता से हो। ६. ब्रह्मा [श्री०]। ७. कोचवान। सारथी [श्री०]। ८. रथ द्वारा युद्ध करनेवाला। रथी [श्री०]। ९. कोशाध्यक्ष [श्री०]। १०. श्वेत करनेवाला। काटने या घाव करनेवाला [श्री०]।

शृत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. बल। २. राष्ट्र। ३. धन। ४. शरीर। ५. जल। ६. तगर का पेड़। ७. [श्री० अत्रानी] क्षत्रिय।

शृत्रकर्म—संज्ञा पुं० [सं० शृत्रकर्मन्] क्षत्रियोचित कर्म। वह कर्म जिसका करना क्षत्रियों के लिये आवश्यक हो; जैसे, युद्ध से कमी न हटना, यथाशक्ति दान देना, शत्रुओं का दमन करना, इत्यादि।

शृत्रधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों का धर्म। यथा,—अभ्ययन, दान, यज्ञ और प्रजापालन करना, विषय वासनाओं से दूर रहना, आदि।

शृत्रधर्मा—वि० [सं० शृत्रधर्मन्] १. क्षत्रियों के धर्म को पालन करनेवाला। २. बीर। योद्धा।

शृत्रधृति—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो सावन की पूर्णिमा को किया जाता है।

शृत्रप—संज्ञा पुं० [सं० या पु० फ्रा०] ईरान के प्राचीन मांडलिक राजाओं की उपाधि। उ०—साम्राज्य में २१ प्रांत थे जिनपर क्षत्रपों (प्रांतीय शासकों) का शासन था।—धर्म० भा०, पृ० १६४।

विशेष—प्रागे चलकर भारत के शक तथा गुजरात के एक प्राचीन वंश के राजाओं ने भी यह उपाधि धारण कर ली थी।

क्षत्रपति—संज्ञा पु० [सं०] १. राजा । २. शिवाजी की उपाधि ।
क्षत्रबन्धु—संज्ञा पु० [सं० क्षत्रबन्धु] १. क्षत्रिय जाति का व्यक्ति (को०) ।
 २. पतित, नाम मात्र का या कर्तव्यरहित क्षत्रिय ।
क्षत्रयोग—संज्ञा पु० [सं०] ज्योतिष में एक प्रकार का योग ।
विशेष—३० 'राजयोग' ।
क्षत्रविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षत्रियों की विद्या । धनुर्विद्या ।
क्षत्रवृक्ष—संज्ञा पु० [५०] मुचुकुन्द का पेड़ ।
क्षत्रवृद्ध—संज्ञा पु० [सं०] तेरहवें मनु के पुत्र का नाम ।
क्षत्रवृद्धि—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'क्षत्रवृद्ध' ।
क्षत्रवेद—संज्ञा पु० [सं०] धनुर्वेद ।
क्षत्रसव—संज्ञा पु० [सं०] वह यज्ञ आदि जो केवल क्षत्रिय ही कर सकते हैं । जैसे, अश्वमेध ।
क्षत्रांतक—संज्ञा पु० [सं० क्षत्रान्तक] परशुराम ।
क्षत्राणी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षत्रियाणी] १. क्षत्रिय जाति की स्त्री ।
 २. क्षत्रिय की स्त्री । ३. वीर स्त्री (को०) ।
क्षत्रिनो—संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ ।
क्षत्रिय—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० क्षत्रिया, क्षत्राणी] १. हिंदुओं के चार वर्णों में से दूसरा वर्ण ।
विशेष—इस वर्ण के लोगों का काम देश का शासन और शत्रुओं से उसकी रक्षा करना है । मनु के अनुसार इस वर्ण के लोगों का कर्तव्य वेदाध्ययन, प्रजापालन, दान और यज्ञादि करना तथा विषयवासना से दूर रहना है । वशिष्ठ जी ने इस वर्ण के लोगों का मुख्य धर्म अध्ययन, शस्त्राभ्यास और प्रजापालन बताया है । वेद में इस वर्ण के लोगों की सृष्टि प्रजापति की बाहु से कही गई है । वेद में जिन क्षत्रिय वंशों के नाम हैं, वे पुराणों में दिए हुए अथवा वर्तमान नामों से बिल्कुल भिन्न हैं । पुराणों में क्षत्रियों के चंद्र और सूर्य केवल दो ही वंशों के नाम आए हैं । पोछे से इस वर्ण में अग्नि तथा और कई वंशों की सृष्टि हुई और शक आदि विदेशी लोग आकर मिल गए । आजकल इस वर्ण के बहुत से अवांतर भेद हो गए हैं । इस वर्ण के लोग प्रायः ठाकुर कहलाते हैं ।
 २. इस वर्ण का पुरुष । ३. राजा । ४. बल । शक्ति ।
क्षत्रियका, क्षत्रिया, क्षत्रियिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षत्रिय जाति की स्त्री (को०) ।
क्षत्री—संज्ञा पु० [सं० क्षत्रिन्] ३० 'क्षत्रिय' ।
क्षदन—संज्ञा पु० [५०] दांत ।
क्षप—संज्ञा पु० [सं०] जल । पानी (को०) ।
क्षपण—संज्ञा पु० [सं०] १. बौद्ध भिक्षु । २. अशोच । ३. नष्ट करना । दमन करना । ४. उपवास (को०) ।
क्षपणक^१—वि० [सं०] निर्लज्ज ।
क्षपणक^२—संज्ञा पु० १. नगा रहनेवाला जैन यती । दिगंबर यती ।
 २. बौद्ध संन्यासी या भिक्षु । ३. एक कवि जो चित्रमादित्य के नौ रत्नों में से एक माना जाता है । इसने 'अनेकार्थ-च्यनिर्मजरी' नामक एक कोश बनाया था और उत्थावि-सूत्र पर एक वृत्ति लिखी थी ।

क्षपाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जाल । २. पतवार । नाव खेने का डोंडा (को०) ।
क्षपयु—संज्ञा पु० [सं०] अपराध (को०) ।
क्षपांत—संज्ञा पु० [सं० क्षपास्त] प्रभात । भोर ।
क्षपांश्व—संज्ञा पु० [सं० क्षपांश्व] रात में न दिखाई पड़ना । रतीषी का रोग (को०) ।
क्षपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात ।
यौ०—क्षपाकर । क्षपाचर ।
विशेष—'क्षपा' शब्द के अंत में पति या नाथ वाची शब्द जोड़ने से चंद्रमावाची शब्द बनता है । जैसे, क्षपाधिप, क्षपेश, क्षपाकर, आदि ।
 २. हल्दी । हरिद्रा ।
क्षपाकर—संज्ञा पु० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर ।
क्षपाचन—संज्ञा पु० [सं०] कृष्ण मेघ । काला बादल (को०) ।
क्षपाचर—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० क्षपाचरी] निशाचर । राक्षस ।
क्षपाट—संज्ञा पु० [सं०] राक्षस ।
क्षपानाथ—संज्ञा पु० [सं०] १. चंद्रमा । उ०—महामीड दासी सदा पाइ सोवे । प्रतीहार हूँ के कृपा शूर सोवे । क्षपानाथ लीन्हें रहे छत्र जाको । करेगो कहा शत्रु सुप्रीव ताको ।—केशव (शब्द०) । २. कपूर ।
क्षपापति—संज्ञा पु० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर ।
क्षपित—वि० [सं०] नष्ट । विध्वस्त । दमित । दबाया हुआ (को०) ।
क्षम^१—वि० [सं०] शक्त । योग्य । समर्थ । उपयुक्त ।
विशेष—हिंदी में यह शब्द केवल समस्त पद या योगिक शब्द के अंत में आता है । जैसे, अक्षम, सक्षम, कार्यक्षम आदि ।
क्षम^२—संज्ञा पु० १. शक्ति । बल । २. योग्यता । उपयुक्तता । ३. युद्ध (को०) । ४. शिव (को०) ।
क्षमणीय—वि० [सं०] क्षमा करने योग्य । माफ करने लायक ।
क्षमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग्यता । सामर्थ्य । शक्ति ।
क्षमताशील—वि० [सं० क्षमता + शील] क्षमता वाला । योग्य । समर्थ । उ०—अक्षम क्षमताशील बने जावें दुविधा, भ्रम ।—युगांत, पृ० १७ ।
क्षमना^१—वि० [सं० क्षमा] क्षमा करना । माफ करना । उ०—सम अपराध देवकी मेरो लिख्यो न भेटयो जाई । मैं अपराध कियो शिष्टु मारे कर जोरे बिललाई ।—सूर (शब्द०) ।
क्षमना^२—वि० [सं० क्षमणीय] क्षमणीय । क्षमा करने योग्य ।
क्षमणीय^२—वि० [सं० क्षम] बलवान् । शक्तिशाली । उ०—अंत-रिक्ख गच्छनीनि यच्छन सुलच्छनीनि अच्छी अच्छी अच्छनीनि छवि छमणीय है ।—केशव (शब्द०) ।
क्षमवाना^१—वि० [सं० क्षमता] क्षमता का प्रेरणार्थक रूप । क्षमा कराना । माफ कराना । उ०—बहुरि विधि जाय क्षमभाव के रूढ़ को विष्णु विधि रूढ़ तहें तुरत प्राये ।—सूर (शब्द०) ।
क्षमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्षति की एक प्रकार की वृत्ति जिससे

मनुष्य दूसरे द्वारा गृहचाए हुए कष्ट को चुपचाप सह लेता है और उसके प्रतिकार या दंड की इच्छा नहीं करता। यह वृत्ति तितिक्षा के अंतर्गत मानी गई है। शांति। २. सहिष्णुता। सहनशीलता। ३. खेर का गड़। ४. पृथिवी। ५. एक की संख्या। ६. वेत्रवती या बेतवा नदी का एक नाम। ७. दक्ष की एक कन्या का नाम। ८. दुर्गा का एक नाम। ९. ब्रह्मवैवर्त के अनुसार राधिका की एक सखी का नाम। १०. तेरह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति का नाम, जिसमें क्रम से दो नगण, एक जगण, एक तगण और अंत में एक गुण (न न ज त गु) होता है और सातवें गंगा छठे वर्ण पर यति होती है। जैसे— न निज तिगम मुभाव द्यौं डै खला। यद्यपि नित उठ पाव ताको फला। तिमि न मुज न भमाज धारै तमा। जग जिनकर मुमाज नीती क्षमा। ११. चंद्रशेखर के अनुसार भार्या नामक छंद का एक भेद, जिसमें २२ गुण और १३ लघु मात्राएँ होती हैं।

समाई—संज्ञा स्त्री [हि० क्षमा + ई (प्रत्यय)] क्षमा करने की क्रिया। उ०—केवल चरण गिरयो उन धाई। करहु नाथ अपराध क्षमाई। —रघुराज (शब्द०)।

क्षमाज—संज्ञा पुं [सं०] पृथिवी से उत्पन्न—मंगल ग्रह [को०]।

क्षमातल—संज्ञा पुं [सं०] पृथ्वीतल। जमीन की सतह [को०]।

क्षमादंश—संज्ञा पुं [सं०] गहिजन का पेड़।

क्षमाना—क्रि० सं० [हि० क्षमना] क्षमना का प्रेरणार्थक रूप। क्षमा कराना। माफ कराना। उ०—संत जाय सिंगरे सिंग नाये। निज अपराध अगाध क्षमाये। —रघुराज (शब्द०)।

क्षमाना—क्रि० सं० [हि० क्षमा] क्षमा करना। माफ करना। उ०—सब हरि उनके दोष क्षमाण। —सूर (शब्द०)।

क्षमान्वित—वि० [सं०] दे० 'क्षमावान्' [को०]।

क्षमावन—संज्ञा पुं [सं०] १. क्षमा करने का काम। माफी। २. माफ कराने का काम। उ०—(क) इस नगर को परित्याग कर दूसरी ओर हमारे उत्तम रीति में कालयापन करें और परमेश्वर से स्वापराध क्षमापन के लिये प्रयत्न करें। —हरिश्चंद्र (शब्द०)। (ख) सकल जाय ताके पद परह। निज अपराध क्षमापन करह। —रघुराज (शब्द०)।

क्षमाभुक्—संज्ञा पुं [सं० क्षमाभुज्] पृथ्वीपति। भूपति। राजा [को०]।

क्षमाभुज—संज्ञा पुं [सं०] १. मंगल ग्रह। २. दे० 'क्षमाभुक्' [को०]।

क्षमाभृत्—संज्ञा पुं [सं०] १. पर्वत। भूभृत्। २. रागकुमार [को०]।

क्षमामंडल—संज्ञा पुं [सं० क्षमामण्डल] पृथ्वी का भेग। अवनिमंडल [को०]।

क्षमालु—वि० [सं०] क्षमाशील। क्षमावान्।

क्षमावना—क्रि० सं० [हि० क्षमना का प्रे० रूप] क्षमा करना। माफ कराना। उ०—(क) परी पाँइ अपराध क्षमावत सुनत मिलैगी धाय। सुनत बचन दूतिका बदन ते स्वाम चहे

अकुलाय।—सूर (शब्द०) (ख) कह्यो कौन कीन्हों अपराधा।

काह क्षमावहु केहि की बाधा। —रघुराज (शब्द०)।

क्षमावान्—वि० पुं [सं० क्षमावत्] [स्त्री० क्षमावती] १. क्षमा करनेवाला। माफ करनेवाला। २. सहनशील। सहिष्णु। गमखोर।

क्षमाशील—वि० [सं०] १. माफ करनेवाला। क्षमावान्। २. शांतप्रकृति।

क्षमाष्ट—संज्ञा पुं [सं०] संगीत में चतुर्दश ताल का एक भेद।

क्षमित—वि० [सं०] क्षमाप्राप्त। जो क्षमा किया गया हो [को०]।

क्षमितव्य—वि० [सं०] क्षमा करने योग्य। जो क्षमा किया जा सके।

क्षमिता—वि० [सं० क्षमिन्] क्षमा करनेवाला। क्षमाशील [को०]।

क्षमी—वि० [सं० क्षमिन्] १. क्षमाशील। क्षमावान्। माफ करनेवाला। उ०—सुर हरि भक्त असुर हरि द्रोही। सुर प्रति क्षमी असुर प्रति कोही।—सूर (शब्द०)। २. शांतप्रकृति। ३. ममर्थ। सशक्त। उ०—मदन बदन लेत लाज को सदन देखि, यदपि जगत जीव मोहिबे को है क्षमी।—केशव (शब्द०)।

क्षम्य—वि० [सं०] माफ करने योग्य। जो क्षमा किया जाय।

क्षयंकर—वि० [सं० क्षयङ्कर] नाश करनेवाला। क्षयकारी। नाशक।

क्षय—संज्ञा पुं [सं०] [भाव० क्षयित्व] १. धीरे धीरे पटना। ह्रास। अपचय। २. प्रलय। कल्पांत। ३. नाश। ४. घर। भूकान। ५. निवासस्थान। रहने की जगह। ६. यक्ष्मा नामक रोग। क्षयी। ७. रोग। बीमारी। ८. अंत। समाप्ति। ९. नीति शास्त्र के अनुसार राजा के ऋषि, वस्ती, दुर्ग, सेतु, हस्तिबंधन, खान, करग्रहण और सेना के समूह (अष्टवर्ग) का ह्रास या नाश। १०. साठ संवत्सरों में से अंतिम संवत्सर का नाम। यह वर्ष बहुत भयानक और उपद्रवकारी होता है। उ०—इस बारहवें युग के पिछले वर्ष का नाम क्षय है। यह क्षयकारक है।—बृहत्, पृ० ५४। ११. ज्योतिष में एक प्रकार का मास, जो शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा में आरंभ होकर अमावस्या तक रहता है।

विशेष—इस मास में दो संक्रांतियाँ होती हैं और इससे तीन मास पहले और तीन मास पीछे एक एक अधिमास पड़ता है। कार्तिक, अग्रहन और पूस के अतिरिक्त और कोई महीना क्षयमास नहीं हो सकता। सिद्धांत शिरोमणि के अनुसार यह मास प्रायः १४१ वर्ष के अंतर पर पड़ता है। इस मास में किसी प्रकार का मंगलकार्य करना निषिद्ध है। कोई कोई इसे ग्रहंस्त्यति भी कहते हैं।

१२. जाति। वंश [को०]। १३. यमलोक। यमालय [को०]। १४. गणित में ऋण का चिह्न या राशि [को०]। १५. हाथी के घुटने का एक भाग [को०]।

क्षयकर—वि० [सं०] दे० 'क्षयंकर' [को०]।

क्षयकाल—संज्ञा पुं [सं०] प्रलय काल। संहार का समय [को०]।

क्षयकास—संज्ञा पुं [सं०] क्षयी रोग में होनेवाली खाँसी।

क्षयकासी—वि० [सं० क्षयकासिन्] क्षय रोग की प्रवस्था में खाँसी से पीड़ित। क्षयरोग से ग्रस्त।

क्षयण—संज्ञा पु० [सं०] १. शांत जलाशय । २. निवास का स्थान । ३. बंदरगाह या खाड़ी [को०] ।

क्षयतरु—संज्ञा पु० [सं०] स्थाली का वृक्ष । बेलिया । पीपल ।

क्षयतिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह चांद्र तिथि जिसमें प्रातःकाल सूर्योदय नहीं होता । तिथि क्रम में इसकी गणना नहीं की जाती । क्षयाह [को०] ।

क्षयथु—संज्ञा पु० [सं०] खाँसी । कास । क्षय की खाँसी ।

क्षयनाशिनो—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती या डोडी का वृक्ष ।

क्षयपक्ष—संज्ञा पु० [सं०] कृष्णपक्ष । अंधेरा पक्ष ।

क्षयमास—संज्ञा पु० [सं०] वह चांद्र मास जिसमें दो संक्रांतियाँ पड़ती हैं । यह मास ३४१ वर्षों के पश्चात् आता है । कभी कभी यह उन्नीसवें वर्ष भी पड़ता है [को०] ।

क्षयरोग—संज्ञा पु० [सं०] यक्ष्मा का रोग । तपेदिक [को०] ।

क्षयरोगी—वि० [सं० क्षयरोगिन्] क्षयरोग में ग्रस्त [को०] ।

क्षयवान्—वि० [सं० क्षयवत्] [स्त्री० क्षयवती] नाशवान् । नष्ट होनेवाला ।

क्षयवायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रलयकाल में चलनेवाली वायु । प्रलय की वायु [को०] ।

क्षयमपद—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षयसम्पत्] विनाश । सर्वनाश [को०] ।

क्षयाह—संज्ञा पु० [सं०] १० 'क्षयतिथि' [को०] ।

क्षयिक—वि० [सं०] क्षयरोगग्रस्त । क्षयपीडित [को०] ।

क्षयित—वि० [सं०] १. नष्ट । २. क्षय रोग से पीडित [को०] ।

क्षयित्व—संज्ञा पु० [सं०] क्षय का भाव ।

क्षयिष्णु—वि० [सं०] क्षय होनेवाला । नष्ट होनेवाला ।

क्षयी—वि० [सं० क्षयिन्] १. क्षय होनेवाला । नष्ट होनेवाला । २. क्षय रोग में ग्रस्त । जिसे क्षय या यक्ष्मा रोग हो ।

क्षयो—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा ।

विशेष—पुराणानुसार दक्ष के शाप से चंद्रमा को क्षय रोग हो गया था, इसी से उसे क्षयी कहते हैं ।

क्षयी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षय] एक प्रासिद्ध रोग । यक्ष्मा । राजयक्ष्मा । क्षय । तपेदिक ।

विशेष—इस रोग में रोगी का फेफड़ा तड़ जाता है और सारा शरीर धीरे धीरे गल जाता है । इसमें रोगी का शरीर गरम रहता है, उसे खाँसी आती है और उसके मुँह से बहुत बदबूदार कफ निकलता है, जिसमें रक्त का भी कुछ अंश रहता है । धीरे धीरे रक्त की मात्रा बढ़ने लगती है और रोगी कभी कभी रक्तवमन भी करता है । ऋग्वेद के एक सूक्त का नाम 'यक्ष्मापन्न' है, जिससे जाना जाता है कि वैदिक काल में इसका रोगी मंत्रों से भाड़ा जाता था । चरक ने इस रोग का कारण वेगावरोध, धातुक्षय, दुःसाहस और विषमक्षण आदि बतलाया है; और सुश्रुत के मत से इन कारणों के अतिरिक्त बहुत अधिक या बहुत कम भोजन करने से भी इस रोग की उत्पत्ति होती है, वैद्य लोग इसे महापातकों का फल समझते हैं और इसके रोगी की चिकित्सा करने के पहले उससे प्रायश्चित्त

करा लेते हैं । मनु जी ने इसे पुण्यानुक्रमिक बतलाया है और इसके रोगी के विवाह आदि संबंध का निषेध किया है । डाक्टरों के मत से इस रोग की तीन अवस्थाएँ होती हैं । प्रारंभिक अवस्था में रोगी को खूनी खाँसी आती है, पकावट मानूस होती है, नाड़ी तेज चलती है और कभी कभी मुँह से कफ के साथ रक्त भी निकलता है । मध्यम अवस्था में खाँसी बढ़ जाती है, रात को ज्वर रहता है, अधिक पसीना होता है, शरीर में बल नहीं रह जाता, छाती और पसलियों में पीड़ा होती है, मुँह से कफ की पीली गाँठें निकलती हैं और दस्त आने लगता है । इस अवस्था के आरंभ में यदि चिकित्सा का ठीक प्रबंध हो जाय, तो रोगी बच सकता है । अंतिम अवस्था में रोगी का शरीर बिल्कुल क्षीण हो जाता है और मुँह से अधिक रक्त निकलने लगता है । उस समय यह रोग बिल्कुल घसाध्य हो जाता है । यदि अधिक प्रयत्न किया जाय, तो रोगी कुछ काल तक जी सकता है ।

क्षय्य—वि० [सं०] क्षय होने योग्य । जिसका क्षय हो सके ।

क्षर—वि० [सं०] १. नाशवान् । नष्ट होनेवाला । उ०—क्षर देह यहाँ का यही रहा ।—साकेत, पृ० १६३ । २. चल । जंगम ।

क्षर—संज्ञा पु० १. जन । २. मेघ । ३. जीवात्मा । ४. शरीर । ५. अज्ञान । ६. कार्य कारण रूप वस्तु या द्रव्य जिसका क्षण क्षण अवस्थांतर हुआ करता है ।

क्षरण—संज्ञा पु० [सं०] १. रस रस के चूना । आब होना । रसना । २. झगड़ा । ३. विकार प्राप्त होना । नाश या क्षय होना । ४. छूटना ।

क्षरपत्रा, क्षरपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'क्षवपत्री' ।

क्षरित—वि० [सं०] टपका हुआ । चुप्रा हुआ । क्षयित [को०] ।

क्षरी—संज्ञा पु० [सं० क्षरिन्] वर्षाकाल । वरगाम ।

क्षव—संज्ञा पु० [सं०] १. छींक । २. खाँसी । ३. राई [को०] ।

क्षवक—संज्ञा पु० [सं०] १. अपामार्ग । लट्जीरा । २. राई । ३. लाही ।

क्षवकुत्—संज्ञा पु० [सं०] नर्कल्लिकनी नामक पौधा ।

क्षवथु—संज्ञा पु० [सं०] नाक के ३१ प्रकार के रोगों में से एक प्रकार का रोग जिसमें छींके बहुत अधिक आती हैं ।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार अधिक तीक्ष्ण और चरपरे पदार्थ सूँघने, सूर्य की ओर देखने और नाक में अधिक बत्ती आदि ठूसने से उसके अंदर का अमरस्थान दूषित हो जाता है और अधिक छींके आने लगती हैं । इसी को क्षवथु कहते हैं ।

क्षवपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'क्षवपत्री' ।

क्षवपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रोणपुष्पी । गूमा ।

विशेष—द्रोणपुष्पी की पत्ती सूँघने से छींक आती है, इसीलिये उसे क्षवपत्रा कहते हैं । कोई कोई इसे 'क्षरपत्रा' भी कहते हैं ।

क्षयिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बनभंडा । कटाई । बरहटा ।

विशेष—देखने में यह भटकटैया से मिलता जुलता होता है । इसके पत्ते बैंगन के पत्तों से मिलते हैं और फल भटकटैया के समान, पर उससे कुछ ही बड़े और चितकबरे होते हैं । यह

खानि में कढ़ाया, चरपरा और गरम होता है और मटकट्या के समान ओषधियों में काम आता है।

पर्या०—संपतनु । पीततंडुला । पुत्रप्रदा । बहुफला । गोघ्निनी ।

क्षांति^१—वि० [सं० क्षान्ति] [क्षी० क्षांता] १. क्षमाशील । क्षमा करनेवाला । २. सहनशील । सहिष्णु ।

क्षांति^२—संज्ञा पु० १. एक ऋषि का नाम । २. उन सात व्याधों में से एक जिन्हें अपने गुरु गंगे मुनि की गोएँ मार डालने के कारण शाय मिला था । ३. महादेव । शिव (क्षी०) ।

क्षांति—संज्ञा क्षी० [सं० क्षान्ता] पृथिवी । भूमि (क्षी०) ।

क्षांति—संज्ञा क्षी० [सं० क्षान्ति] १. सहिष्णुता । सहनशीलता । उ०—छाई तत्र नितात शान्ति सहिता सर्वत्र ही क्षान्ति थी ।—शकुं०, पृ० १६ । २. क्षमा ।

क्षांति^३—संज्ञा पु० [सं० क्षान्ति] पितृ । जनक (क्षी०) ।

क्षांति^४—वि० सहिष्णु । क्षमावान् । सहनशील (क्षी०) ।

क्षा—संज्ञा क्षी० [सं०] पृथिवी ।

क्षात्र^१—वि० [सं०] क्षत्रिय संबंधी । क्षत्रियों का । जैसे—क्षात्रतेज, क्षात्रधर्म, क्षात्रगुण, आदि ।

क्षात्र^२—संज्ञा पु० क्षत्रियत्व । क्षत्रीपन । क्षत्रिधर्म ।

क्षात्रि—संज्ञा पु० [सं०] क्षत्रिय पुरुष और अक्षत्रिय स्त्री से जन्मी हुई संतान (क्षी०) ।

क्षाम^१—वि० [सं०] [क्षी० क्षामा] १. क्षीण । कृश । दुबला पतला ।

क्षी०—क्षामोबरी = पतली कमरवाली (स्त्री) ।

२. दुर्बल । बलहीन । कमजोर । ३. अल्प । थोड़ा ।

क्षाम^२—संज्ञा पु० १. विष्णु का एक नाम । २. क्षय । नाश ।

क्षामा—संज्ञा क्षी० [सं०] पृथिवी । धरती । भूमि (क्षी०) ।

क्षाम्य—वि० [सं०] क्षमा किए जाने योग्य । क्षमणीय ।

क्षार^१—संज्ञा पु० [सं०] १. दाहक, जारक, विस्फोटक या इसी प्रकार की और वानस्पत्य ओषधियों को जमाकर या खनिज पदार्थों को पानी में घोल और रासायनिक क्रिया द्वारा साफ करके तैयार की हुई राख का नमक ।

विशेष—यह सूखा, साफ, चमकीला, मेल काटनेवाला और कलम या रंग के रूप में होता है । डाक्टरों के मत से क्षार उस पदार्थ को कहते हैं जो पानी में अच्छी तरह घुल सकता हो, अम्ल या तेजाब की शक्ति नष्ट करके उसका नमक बना सकता हो और भिन्न भिन्न वानस्पत्य रंगों को बदल सकता हो ।

२. चन्द्रदत्त के अनुसार एक प्रकार की ओषधि जो मोखा नामक वृक्ष की पत्तियों के क्षार से बनती है । ३. नमक । ४. सज्जी । खार । ५. शोरा । ६. सुहागा । ७. भस्म । राख । ८. काच । शीशा । ९. गुड़ । १०. काला नमक (क्षी०) । ११. जल (क्षी०) । १२. किसी वस्तु का सत या स्वरस (क्षी०) । १३. दुष्ट । ठग । धूर्त (क्षी०) ।

क्षार^२—वि० १. क्षरणशील । २. खारा । ३. धूर्त ।

क्षारक—संज्ञा पु० [सं०] १. क्षार । २. सज्जी । ३. चिड़िया फेंसाने का जाल । ४. मछली पकड़ने की खाँची या दीरी । ५. चिड़ियों

का पिंजड़ा (क्षी०) । ६. रस । घर्क (क्षी०) । ७. धोबी । रजक (क्षी०) । ८. मंजरी । कलिका (क्षी०) ।

क्षारकर्म, क्षारकर्म—संज्ञा पु० [सं०] एक नरक का नाम ।

क्षारगुड—संज्ञा पु० [सं० क्षार + गुड] चन्द्रदत्त के अनुसार एक ओषधि का नाम ।

विशेष—यह ओषधि पंचमूलादि के २२ बार फूँके हुए भस्म को गुड़ के पानी में मिलाकर पकाने से बनती है । इसकी गोतिर्या खदाक्ष के बराबर बनती और अजोरा, पांडु, प्लीहा, अर्श, शोथ, कफादि रोगों में उपकारी मानी जाती है ।

क्षारगुण—संज्ञा पु० [सं०] खारापन (क्षी०) ।

क्षारण—संज्ञा पु० [सं०] १. रसेश्वर दर्शन के अनुसार पारे का पंद्रहवाँ संस्कार । २. (विशेषतः व्यभिचार का) दोषारोपण (क्षी०) । ३. क्षार का निर्माण । खार बनाना । ४. टपकाना । चुभाना (क्षी०) ।

क्षारत्रय—संज्ञा पु० [सं०] सज्जी, शोरा और सुहागा इन तीन क्षारों का समूह ।

क्षारवराक—संज्ञा पु० [सं०] दश क्षारों का समूह । सहिजन, मूली, पलास, बूका शाक या तिनपतिया, चित्रक, अद्रक, नीम, ईस, अपामार्ग और कैले के क्षारों का समूह ।

क्षारदू—संज्ञा पु० [सं०] मोरवा नाम का वृक्ष ।

क्षारनदी—संज्ञा क्षी० [सं०] (पुराण के अनुसार) नरक की एक नदी का नाम (क्षी०) ।

क्षारपत्र—संज्ञा पु० [सं०] बथुआ नामक साग ।

क्षारपत्रक—संज्ञा पु० [सं०] बथुआ नामक साग ।

क्षारपत्रा—संज्ञा पु० [सं०] चितली नामक साग ।

क्षारपाक—संज्ञा पु० [सं०] मोथा के पौधे से निकले हुए क्षार को कोरेया, पलास, बहंडा, लोथ, केला, चीता, कनेर आदि ओषधियों के साथ जल में पकाने से बना हुआ पाक । यह क्षेदन, भेदन अर्थात् फोड़ा फुंसी बहाने के काम में आता है ।

क्षारपाल—संज्ञा पु० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

क्षारभूमि—संज्ञा क्षी० [सं०] ऊसर जमीन (क्षी०) ।

क्षारमृत्तिका—संज्ञा क्षी० [सं०] खारी मिट्टी । रंह (क्षी०) ।

क्षारमेह—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह रोग ।

क्षारकषय—संज्ञा पु० [सं०] खारा नमक ।

विशेष—वैद्यक में यह नमक पेशाब और दस्त लानेवाला माना गया है ।

क्षारवर्ग—संज्ञा पु० [सं०] सज्जीखार, सोहागा और शोरा इन तीनों का समूह । क्षारत्रय ।

क्षारश्रेष्ठ—संज्ञा पु० [सं०] १. वज्रक्षार । २. पलास । ३. मोरवा । मुख्यक क्षुप ।

क्षारषट्क—संज्ञा पु० [सं०] छह प्रकार के क्षारों का समूह । धव, अपामार्ग, कोरेया, सांगली, तिल और मोखा, जिनके भस्म से क्षार निकसता है ।

क्षाराक्ष^१—संज्ञा पु० [सं०] काच की बनी हुई नरली खाँस (क्षी०) ।

शाराद^२—वि० बनावटी आदि लगानेवाला [को०] ।

शारागद—संज्ञा पु० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक औषध ।

विरोध—ग्रह पलास, नीम, वेवदार, धव, धाबला, भिलावा, धाम आदि कई लकड़ियों के भस्म को क्षारपाक की रीति से गोमूत्र में मिलाकर पकाने से बनती है । यह औषध अर्श, वातगुल्म, काश, अजीर्ण, संग्रहणी आदि रोगों में दी जाती है ।

शाराष्टक—संज्ञा पु० [सं०] आठ प्रकार के क्षारों का समूह ।

विरोध—पलाश, हड़जोड़, चिचड़ा, इमली, तिल, मदार, जी तथा सज्जीखार इस वर्ग के अंतर्गत हैं ।

शारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूख । बुभुक्षा [को०] ।

शारित—वि० [सं०] १. अपवादग्रस्त । दूषित । २. सावित । भरा हुआ ।

शारोद—संज्ञा पु० [सं०] खारा समुद्र । लवण समुद्र ।

शारोदक, शारोदधि—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'शारोद' [को०] ।

शाला—संज्ञा पु० [सं०] डालन । धोना । साफ करना [को०] ।

शालान—संज्ञा पु० [सं०] धोना । निर्मल करना । साफ करना ।

शालित—वि० [सं०] धुना हुआ । साफ किया हुआ । उ०—शालित आत तरंग तनु पालित अवगाहित निकली दुति निर्मल ।—गीतिका, पृ० ८३ ।

क्षिण^७—संज्ञा पु० [सं० क्षण] ३० 'क्षण' । उ०—बज्रहं ते पृष्ण क्षिण में होई । पृष्ण ते बज्र करै पुनि सोई ।—कबीर बी०, पृ० १३० ।

क्षित^१—वि० [सं०] १. नष्ट । ध्वस्त । २. क्षीण । क्षीजा हुआ । ३. दुर्बल किया हुआ । ४. दीन । होन [को०] ।

क्षित^२—संज्ञा पु० १. वध । २. आघात । क्षति । प्रहार [को०] ।

क्षिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी । क्षिति [को०] ।

क्षिति—संज्ञा पु० [सं०] १. पृथिवी । २. वासस्थान । जगह । ३. गोलोचन । ४. एक ऋषि का नाम । ५. पंचम स्वर की चार श्रुतियों में से पहली श्रुति । ६. क्षय । ७. प्रलय काल ।

क्षितिक्षम—संज्ञा पु० [सं०] खैर का पेड़ ।

क्षितिजंतु—संज्ञा पु० [सं० क्षितिजन्तु] केंचुवा ।

क्षितिज—संज्ञा पु० [सं०] १. मंगल ग्रह । २. नरकासुर । ३. केंचुआ । ४. वृक्ष । पेड़ । ५. जगल में वह तिर्यग् वृत्त जिसकी दूरी आकाश के भाग से ९० अंश हो । ऊँचे स्थान पर खड़े होकर देखने से चारों ओर दिखाई पड़ता हुआ वह वृत्ताकार स्थान जहाँ आकाश और पृथ्वी दोनों मिले जान पड़ते हैं ।

क्षितिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी की कन्या-सीता [को०] ।

क्षितिक्षनय—संज्ञा पु० [सं०] मंगल ग्रह ।

क्षितिक्ष—संज्ञा पु० [सं०] पृथ्वीतल । घरातल [को०] ।

क्षितिदेव—संज्ञा पु० [सं०] भूगुरु । ब्राह्मण ।

क्षितिधर—संज्ञा पु० [सं०] पर्वत । भूधर ।

क्षितिप—संज्ञा पु० [सं०] भूपति । राजा । उ०—सब हर्षनिग्रह हो गए, क्षितियों के मन भग्न हो गए ।—साकेत, पृ० ३५६ ।

क्षितिपति—संज्ञा पु० [सं०] राजा । भूपति [को०] ।

क्षितोश, क्षितोश्चर—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'क्षितिपति' [को०] ।

क्षित्वद्वि—संज्ञा पु० [सं०] देवकी का नाम, जो भगवान् कृष्ण की माता थीं [को०] ।

क्षित्वधिप—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'क्षितिपति' [को०] ।

क्षिद्र—संज्ञा पु० [सं०] १. रोग । २. सूर्य । ३. छींग ।

क्षिप^१—संज्ञा पु० [सं०] १. फेंकने की क्रिया । क्षेपण । २. अपमानित करना । फिटकना [को०] ।

क्षिप^२—वि० १. क्षेपक । फेंकनेवाला । २. अपमान करनेवाला [को०] ।

क्षिपक—संज्ञा पु० [सं०] [क्षी' क्षिपिका] योद्धा । धनुर्धर [को०] ।

क्षिपण—संज्ञा पु० [सं०] १. फेंकना । डालना । २. भेजना । ३. अभियोग करना । मत्सना करना [को०] ।

क्षिपणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डौंड । चप्पू । २. अस्त्र । फेंककर प्रहार किया जानेवाला हथियार । ३. जाल । ४. पुरोहित [को०] ।

क्षिपणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चावुक का प्रहार । कशाघात [को०] ।

क्षिपण्यु—संज्ञा पु० [सं०] १. हवा । पवन । ३० 'क्षिपण्यु' [को०] ।

क्षिपण्यु—संज्ञा पु० [सं०] १. शरीर । २. वसंत ऋतु । ३. सुवास । सुगंध [को०] ।

क्षिपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. फेंकना । डालना । २. रात ।

क्षिप्त^१—वि० [सं०] १. त्यक्त । २. विकीर्ण । उ०—क्षिप्त खिलीने देख हठीले बाल के, रख दे माँ ज्यों उन्हें संभाल संभाल के ।—साकेत, पृ० ११५ । ३. अवज्ञात । अपमानित । ४. पतित । ५. वात रोग से ग्रस्त । पागल । ६. स्थापित [को०] ।

क्षिप्त^२—संज्ञा पु० [सं०] योग में चित्त की पाँच वृत्तियों या अवस्थाओं में से एक, जिसमें चित्त रजोगुण के द्वारा सदा अस्थिर रहता है । कहा गया है, यह अवस्था योग के लिये अनुकूल या उपयुक्त नहीं होती । वि० ३० 'चित्तभूमि' ।

क्षिप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि । रात [को०] ।

क्षिप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. फेंकना । डालना । २. कूट अर्थ को प्रकट करना [को०] ।

क्षिप्र^१—क्रि० वि० [सं०] १. शीघ्र । जल्दी । २. तत्क्षण । तुरंत ।

क्षिप्र^२—वि० [सं०] १. तेज । जल्द । जैसे,—क्षिप्रहस्त, क्षिप्रहोम । २. चंचल ।

क्षिप्र^३—संज्ञा पु० [सं०] १. सुश्रुत के अनुसार शरीर के एक ही सात भ्रम स्थानों में से एक, जो अंगूठे और दूसरी उँगली के बीच में है । २. एक मुहूर्त का पंद्रहवाँ भाग ।

क्षिप्रकर—वि० [सं०] कुशल । मुस्तैद । उ०—मकरंद तबला के बजाने में क्षिप्रकर था ।—श्यामा०, पृ० १०१ ।

क्षिप्रकारो—वि० [सं० क्षिप्रकारिन्] शीघ्र काम करनेवाला [को०] ।

क्षिप्रचेता—वि० [सं० क्षिप्रचेतस्] सचेत । जागरूक । प्रत्युत्पन्न मति ।

क्षिप्रपाकी—संज्ञा पु० [सं०] गर्दभांड नाम का वृक्ष । पारस पीपल ।

क्षिप्रभूत्र—संज्ञा पु० [सं०] भूत्रेणिय संबंधी एक प्रकार का रोग ।

क्षिप्रश्चेन—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार की शिकारी चिड़िया ।

क्षिप्रहस्त^१—वि० [सं०] क्षीघ्र या तेज काम करनेवाला ।

क्षिप्रहस्त^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि का एक नाम । २. एक राक्षस का नाम ।

क्षिप्रहोम—संज्ञा पुं० [सं०] सायंकाल और प्रातःकाल का होम, जो संक्षिप्त और जल्दी होता है ।

क्षिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विनाश । हानि । बर्बादी । २. आचार का उल्लंघन । अनौचित्य [को०] ।

क्षीण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० क्षीणा; भाव० संज्ञा क्षीणता, क्षीण्य] १. दुबला । पतला । २. सूक्ष्म । ३. क्षयशील । ४. घटा हुआ । जो कम हो गया हो । जैसे—क्षीणकोष; क्षीणवृत्ति । ५. निर्धन । संकटग्रस्त [को०] । ६. सुकुमार । नाजुक [को०] । ७. मृत । विध्वस्त [को०] ।

क्षीणकंठ—वि० [सं०] क्षीणकण्ठ] १. जिसका गला सूख गया हो । सूखे गलेवाला । २. मंद आवाज वाला । उ०—क्षीणकंठ कर रहा गुकार, जलधर से बनकर जलधार ।—वीणा, पृ० ६ ।

क्षीणकाय—वि० [सं०] दुबले पतले शरीरवाला । दुर्बल [को०] ।

क्षीणचंद्र—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीणचन्द्र] वह चंद्रमा जिसमें सात या दशसे कम कलाएँ हों । (कृष्ण पक्ष की अष्टमी से शुक्ल पक्ष की अष्टमी तक का चंद्रमा 'क्षीणचंद्र' कहलाता है ।)

क्षीणसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निर्बलता । कमजोरी । २. दुबलापन । पतलापन । ३. सूक्ष्मता ।

क्षीणपाप—वि० [सं०] जिसके पाप नष्ट हो गए हों [को०] ।

क्षीणपुण्य—वि० [सं०] जिसके पुण्य समाप्तप्राय हों । जो पुण्य का फल भोग चुका हो [को०] ।

क्षीणप्रकृति—वि० [सं०] (राजा) जिसकी प्रकृति अर्थात् प्रजा दरिद्र हो । जिसकी प्रजा दिन पर दिन दुर्बल और दरिद्र होती जाती हो ।

क्षीणमध्य—वि० [सं०] पतली कमरवाला [को०] ।

क्षीणवासी—वि० [सं०] क्षीणवासिन्] टूटे फूटे घर में रहनेवाला [को०] ।

क्षीणविक्रांत—वि० [सं०] क्षीणविक्रान्त] शक्ति या पौरुषहीन [को०] ।

क्षीणवित्त—वि० [सं०] गरीब । कंगाल [को०] ।

क्षीणबोध्य—वि० [सं०] शक्तिहीन ।

क्षीणवृत्ति—वि० [सं०] जीविका के साधनों से रहित । बेरोजगार । बेकार [को०] ।

क्षीणसार—वि० [सं०] रसरहित । तत्वहीन । शुष्क (वृक्षादि) ।

क्षीणार्थ—वि० [सं०] स्वल्प धनवाला । धनरहित [को०] ।

क्षीणपु—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीण] दे० 'क्षीण' । उ०—उपजत बिनसत क्षीन भइ देहा । कर्णयुग आवै क्षीन सनेहा ।—कबीर सा०, पृ० ५१ ।

क्षीब—वि० [सं०] दे० 'क्षीव' ।

क्षीयमाण—वि० [सं०] १. नित्य घटने या कम होनेवाला । २. नाशवान् ।

क्षीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूध । पय ।

यौ०—क्षीरसार = मक्खन ।

२. द्रव या तरल पदार्थ । ३. जल । पानी । ४. पेड़ों का रस या दूध । निर्यात । ५. खीर । ६. सरल नामक वृक्ष का गोंद ।

क्षीरकंठ, क्षीरकण्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरकण्ठ, क्षीरकण्ठक] दुधमुंहा बच्चा [को०] ।

क्षीरकंद—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरकन्द] क्षीरविदारि ।

क्षीरकांडक—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरकाण्डक] १. लूहड़ । २. मंदार ।

क्षीरकाकोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'क्षीरकाकोली' ।

क्षीरकाकोली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की काकोली जड़ी जो हलकी और वीर्यवर्धक होती है और जिसके खाने से स्त्रियों का दूध बढ़ता है । यह अष्टवर्ग के अंतर्गत है ।

क्षीरस्वर्जूर—संज्ञा पुं० [सं०] पिंडस्वर्जूर ।

क्षीरघृत—संज्ञा पुं० [सं०] वह मक्खन जो दूध को मक्खन निकाला गया हो । सुश्रुत के अनुसार यह मलरोधक, मूर्च्छा दूर करने-वाला और नेत्रों को हितकारी होता है ।

क्षीरज^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. शंख । ३. कमल । ४. दही । ५. मोती । मुक्ता [को०] । ६. समुद्रमंथन से उद्भूत अमृत या मक्खन [को०] । ७. शेषनाग [को०] । ८. समुद्री नमक [को०] ।

क्षीरज^२—वि० [सं०] दूध से उत्पन्न या बना हुआ ।

क्षीरजा—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मी ।

क्षीरतुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरतुम्बी] कद्दू । लोकी [को०] ।

क्षीरतैल—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का औषधसिद्ध तैल ।

क्षीरदल—संज्ञा पुं० [सं०] मंदार । आक ।

क्षीरदुग्ध—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थ ।

क्षीरधात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूध पिलानेवाली धाय [को०] ।

क्षीरधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २. क्षीरसागर । दुग्ध का समुद्र [को०] ।

क्षीरधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुराणानुसार एक प्रकार की कल्पित गौ, जो घड़े आदि को स्थापित करके बनाई और दान की जाती है । २. दूध देनेवाली गाय [को०] ।

क्षीरनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २. क्षीरसागर [को०] ।

क्षीरनीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. आलिंगन । गले लगाना । २. मिल जाना । मिलन । ३. दूध और जल [को०] । ४. दूध की तरह का जल [को०] ।

क्षीरप—संज्ञा पुं० [सं०] शिशु । बच्चा । बालक [को०] ।

क्षीरपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मंदार । आक ।

क्षीरपलांडु—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरपलाण्डु] सफेद प्याज ।

क्षीरपाक^१—वि० [सं०] दूध में पकाया हुआ ।

क्षीरपाक^२—संज्ञा पुं० वैद्यक में वह औषधि जो अठगुने दूध और चौगुने जल में आटाकर तैयार की जाय ।

क्षीरपाकौदन—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीर + पाक + ओदन] दूध में पकाया हुआ चावल । खीर । जाउर । उ०—क्षीरपाकौदन अर्थात् दूध में पकाए हुए भात (जिसे खीर कहते हैं) का भी उल्लेख है ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ८० ।

क्षीरपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरपुष्पी [को०] ।

क्षीरधृत—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार वह ग्वाला या चरवाहा जो अपने बैतन स्वरूप केवल दूध ही ले ।

क्षीरबल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरविदारी [को०] ।

क्षीरविदारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विदारी कंद से मिलती जुलती एक प्रकार की जड़ी जिसमें से दूध निकलता है । यह गूल और प्रमेह रोगों में उपकारी मानी जाती है ।

पर्याय—इक्षुपंधा । क्षीरबल्ली । पयःकंदा । पयोलता ।

क्षीरघृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. उदुंबर । गूलर । २. महुआ । ३. अश्वत्थ । ४. खिरनी ।

क्षीरघृत—संज्ञा पुं० [सं०] केवल दूध पीकर रहने का व्रत ।

क्षीरशर—संज्ञा पुं० [सं०] मलाई । साढ़ी [को०] ।

क्षीरशाक—संज्ञा पुं० [सं०] कच्चा फटा हुआ दूध । बचक में इसे बहुत बलकारक माना गया है ।

क्षीरषष्टिक—संज्ञा पुं० [सं०] दूध में पकाया हुआ साठी चावल का भात, जो ग्रहयज्ञ में बुध ग्रह को अर्पित किया जाता है ।

क्षीरसंतानिका—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीरसन्तानिका] एक प्रकार का बिगड़ा हुआ दूध ।

क्षीरस—संज्ञा पुं० [सं०] दूध या दही पर की मलाई ।

क्षीरसागर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से एक, जो दूध से भरा हुआ माना जाता है । नारायण इसी समुद्र में शेषशय्या पर सोते हैं ।

क्षीरसार—संज्ञा पुं० [सं०] नवनीत । मक्खन [को०] ।

क्षीरस्फटिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़िया स्फटिक ।

क्षीरहिंडीर—संज्ञा पुं० [सं० क्षीरहिण्डीर] दूध का फेन [को०] ।

क्षीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकोली नाम की जड़ी ।

क्षीराद्—संज्ञा पुं० [सं०] दुधमुहूर्त बच्चा [को०] ।

क्षीराब्धि—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरसागर । दूध का समुद्र ।

क्षीरिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प ।

क्षीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिंड खजूर । २. वंशलोचन । ३. दूध से बना साध पदार्थ [को०] । ४. खिरनी का पेड़ [को०] ।

क्षीरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्षीर काकोली । २. खिरनी । ३. दुग्धी नाम की लता । ४. वराहक्रांता ।

क्षीरो—वि० [सं०] दूध देनेवाला । दूधयुक्त । जिससे दूध निकले [को०] ।

क्षीरो—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीर ।

क्षीरोद्—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरसमुद्र ।

यौ०—क्षीरोदतनय, क्षीरोदतनवन = चंद्रमा । क्षीरोदतनया, क्षीरोदसुता = लक्ष्मी ।

क्षीरोदक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का रेशमी कपड़ा ।

क्षीरोदतनय—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा जो समुद्र का पुत्र और उससे उत्पन्न माना जाता है ।

क्षीरोदतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी जो समुद्र की कन्या और उससे उत्पन्न या निकली हुई मानी जाती है ।

क्षीरोदधि—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरसागर । क्षीरसमुद्र ।

क्षीरोदन—संज्ञा पुं० [सं०] दूध में पकाया चावल । क्षीर [को०] ।

क्षीव—वि० [सं०] मद्योन्मत्त । मतवाला । उत्तेजित । मत्त [को०] ।

क्षुण—संज्ञा पुं० [सं०] रीठे का पेड़ । रीठा [को०] ।

क्षुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धरती । भूमि [को०] ।

क्षुण्ण—वि० [सं०] १. अभ्यस्त । २. टुकड़े टुकड़े या चूर्ण किया हुआ । ३. जिसका कोई अंग टूट या कट गया हो । खंडित । ४. अनुगत । ५. पराजित [को०] ।

क्षुण्णक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का डोल जो अंत्येष्टि के समय बजाया जाता है [को०] ।

क्षुत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छींक । २. भूख । क्षुषा ।

यौ०—क्षुक्षाम = भूख से कृण । क्षुषिपासा = भूख प्यास । उ०—भाव मन की वेगयुक्त अवस्था विशेष है, वह क्षुत्पिपासा, काम वेग आदि शरीर वेगों से भिन्न है ।—रस०, पृ० १६४ ।

क्षुत^१—संज्ञा पुं० [सं०] छींक ।

क्षुत^२(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुत्, क्षुत्] भूख । उ०—छूटे सबै सबनि के सुख क्षुत पिपासा । विद्वद्विनोद गुणगुणित विधान बासा ।—केशव (शब्द०) ।

क्षुतक—संज्ञा पुं० [सं०] काली सरसो या राई [को०] ।

क्षुतपियास(पु)—संज्ञा स्त्री० [क्षुत् + पिपासा] भूख प्यास । उ०—हरि भर भृग जहँ इक संग चरे । क्षुतपियास नैक न संचरे ।—नंद० प्र०, पृ० २६७ ।

क्षुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] छींकना । छींक [को०] ।

क्षुद—संज्ञा पुं० [सं०] पिसा हुआ गोशूयचूर्ण । चूर्ण । आटा [को०] ।

क्षुद्र^१—वि० [सं०] १. कृपण । कंजूस । २. अधम । नीच । ३. अल्प । छोटा या थोड़ा । ४. क्रूर । खोटा । ५. दरिद्र । निर्धन ।

क्षुद्र^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. चावल का कण । २. मधुमक्खी या बरें [को०] ।

क्षुद्रक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश का नाम जो वर्तमान पंजाब के अंतर्गत है । २. क्षुद्र व्यक्ति । ३. तोला । एक परिमाण । ४. एक प्रकार का बाण [को०] ।

क्षुद्रक^२—वि० क्षुद्र । निम्न ।

क्षुद्रकुलिश—संज्ञा पुं० [सं०] वैक्रान्तयणि [को०] ।

क्षुद्रघंटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुद्रघण्टिका] १. एक प्रकार का प्राचीन आभूषण जो कमर में पहना जाता था । इसमें घुंघरू या घंटियाँ लगी रहती थीं, जो चलने में बजती थीं । घुंघरूदार करघनी । २. घुंघरू ।

क्षुद्रचंचु—संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्रचञ्चु] एक प्रकार का भाड़ [को०] ।

क्षुद्रचंदन—संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्रचन्दन] लाल चंदन ।

क्षुद्रजंतु—संज्ञा पुं० [सं० क्षुद्रजन्तु] बहुत छोटा और बिना हड्डी का जंतु या कीड़ा मकोड़ा ।

सुप्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नीचता । कमीनापन । २. ओछापन ।
सुप्रतुलसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की बबुई तुलसी ।
सुप्रदेशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मक्खी । डाँस [को०] ।
सुप्रधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] कँगनी, चेना, कोदों आदि कुधान्य ।
 विशेष—वैद्यक के अनुसार इस प्रकार के धान्य रूखे, कसैले, हलके और वातकारक होते हैं ।
सुद्रपति—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर । उ०—रुद्रपति, सुद्रपति, लोकपति, योक्पति, धरनिपति, गगनपति, भगमबानी ।—सूर (शब्द०) ।
सुद्रपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भ्रमलोनी । नोनिया साग ।
सुद्रपत्रो—संज्ञा स्त्री० [सं०] बच ।
सुद्रपद्म—संज्ञा पुं० [सं०] लंबाई की एक नाप जो १० अंगुल के बराबर होती है [को०] ।
सुद्रपनस—संज्ञा पुं० [सं०] लवङ्ग का पेड़ [को०] ।
सुद्रपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] तुलसी [को०] ।
सुद्रपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] बनपीपर । बनपिप्पली [को०] ।
सुद्रप्रकृति—वि० [सं०] छोछे या लोटे स्वभाववाला । नीच प्रकृति का ।
सुद्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूमिजंघु का वृक्ष । २. जीवन वृक्ष [को०] ।
सुद्रफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जामुन । २. इन्द्रायण ।
सुद्रबुद्धि—वि० [सं०] १. दुष्ट या नीच बुद्धिवाला । २. नासमर्थ । भूख ।
सुद्रम—संज्ञा पुं० [सं०] धातु आदि तौलने के लिये छह माशे की एक तौल, जिसे 'छवाम' कहते हैं ।
सुद्रमुस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कसेरू ।
सुद्ररस—संज्ञा पुं० [सं०] १. शहद । मधु । २. विषयसुख [को०] ।
सुद्ररोग—संज्ञा पुं० [सं०] छोटे रोग, सुश्रुत के अनुसार जिनकी संख्या ४४ (४८) है और जिनमें फोड़ा, फुसी, मुँहासा, भाई, कुनख आदि संमिलित हैं ।
सुद्रल—वि० [सं०] (रोग और जानवर के लिये विशेषतः प्रयुक्त) मामूली । तुच्छ । बहुत छोटा [को०] ।
सुद्रवर्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मिड़ । बरें । २. डाँस [को०] ।
सुद्रशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चीनी [को०] ।
सुद्रशार्दूल—संज्ञा पुं० [सं०] चीना । चित्रक [को०] ।
सुद्रशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] मयूरशिखा नाम का वृक्ष [को०] ।
सुद्रशवास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का श्वास रोग ।
 विशेष—सुश्रुत के अनुसार यह अधिक भोजन या कम परिश्रम करने और दिन को सोने से होता है । माधव निदान में इसे रूखे पदार्थ खाने से और श्रम करने से प्रकट माना गया है ।
सुद्रसुवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] पीतल ।
सुद्रहा—संज्ञा पुं० [सं०] सुद्रहन् [शिव का एक नाम ।
सुद्राजन—संज्ञा पुं० [सं०] सुद्राजन [सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का मंजन जो शोथे हुए आँखों आदि से बनाया जाता है ।

सुद्रात्र—संज्ञा पुं० [सं०] सुद्रात्र [हृदय के पास की एक छोटी नाड़ी ।
सुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या । २. बेंगरी । भ्रमलोनी । लोनी । ३. जटामासी । बालछड़ । ४. एक प्रकार की मधुमक्खी जिसे 'सरषा' कहते हैं । ५. गवेषुक । कौड़ियाला । कौड़िला । ६. कंटकारी । ७. हिबकी । ८. प्राचीन काल की एक प्रकार की नाब जो १६ हाथ लंबी, ४ हाथ चौड़ी और ४ हाथ ऊँची होती थी । यह केवल छोटी छोटी नदियों में चलती थी । ९. वेश्या । वारवधू (को०) । १०. लड़ाकू औरत (को०) । ११. विकलांग स्त्री (को०) । १२. वृत्त्यांगना । नाचनेवाली लड़की (को०) ।
सुद्रात्मा—वि० [सं०] सुद्रात्मन् [निम्न विचार का । निम्न प्रकृतिवाला [को०] ।
सुद्रावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुद्रावटिका । किकिणी । उ०—भंग भ्रूषण जननि उतारति । दुलरी प्रीय माल मोतिन की केयूर नै भुज श्याम निहारति । सुद्रावली उतारति बटि तें सैति धरति मन ही मन वारति ।—सूर (शब्द०) ।
सुद्राशय—वि० [सं०] नीचप्रकृति । कमीना । 'महाशय' का उलटा ।
सुद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] करवनी । किकिणी । सुद्रावटिका । उ०—मिलनस्मृति सी रहे यहाँ यह सुद्रिका । सीता देने लगीं स्वर्णमणिमुद्रिका ।—साकेत, पृ० १२६ । २. डंस । डाँस (को०) ।
सुद्रेंगुदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुद्रेंगुदी [जवासा ।
सुधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि०] क्षुधित, क्षुधात् [भोजन करने की इच्छा । भूख ।
सुधाक्षीण—वि० [सं०] भूख से कम या दुर्बल ।
सुधातुर—वि० [सं०] जिसे भूख लगी हो । भूखा ।
सुधानिधृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुधा की गाति । भूख का मिटना । पेट भरना ।
सुधार्त—वि० [सं०] भूख से कातर [को०] ।
सुधार्दित—वि० [सं०] क्षुधा+अर्दित [भूख से पीड़ित ।
सुधालु—वि० [सं०] जिसे सदैव भूख लगी रहती हो । भूखड़ ।
सुधावंत—वि० [सं०] क्षुधा+वंत (प्रत्यय) या सं० क्षुधावान् का बहु० व० क्षुधावन्त [सुधा से पीड़ित । भूखा । उ०—सुधावंत रजनीचर मेरे ।—तुलसी (शब्द०) ।
सुधावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक विशेष प्रकार की तैयार की हुई औषध जिसके सेवन से भूख बढ़ती है ।
सुधित—वि० [सं०] जिसे भूख लगी हो । भूखा । बुभुक्षित ।
सुध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुधा [३० 'सुधा' । उ०—अमृत फल के भोजन करहीं युगन युगन की क्षुध्या हरहीं ।—कबीर सा०, पृ० १००२ ।
सुप—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटी डालियोंवाला वृक्ष । पीथा । भाड़ी । २. धीकृष्ण के एक पुत्र का नाम, जिसका जन्म सत्यभामा के गर्भ से हुआ था । ३. महाभारत के अनुसार प्रसंघि के पुत्र और इक्ष्वाकु के पिता का नाम ।
सूपक—संज्ञा पुं० [सं०] भाड़ी । गुल्म [को०] ।

क्षुपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'क्षुपक' ।

क्षुब्ध^१—वि० [सं०] १. प्रादोक्षित । बंचन । अधीर । २. व्याकुल । विह्वल । ३. मयभीत । डरा हुआ । ४. क्रुपित । क्रुद्ध ।

क्षुब्ध^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. मयाती की डंडी । २. एक प्रकार का रतिबंध या कामशास्त्र की क्रिया ।

क्षुभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य के एक प्रकार के पारिषद् देवता ।

क्षुभित—वि० [सं०] क्षुब्ध ।

क्षुमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० क्षीम] १. बाण । २. एक प्रकार के पोथों की जाति जिनकी ढाली पतली और सीधी तथा छाल रेशेदार और छद् होती है जैसे, झलसी, पटसन, सन, इत्यादि । ३. झलसी । ४. सनई । ५. नील का पोषा ।

क्षुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षुरा । उस्तरा ।

यौ०—क्षुरकर्म, क्षुरकिया = हजामत । क्षुरचतुष्टय = हजामत के लिये आवश्यक उस्तरा, जल, कुशतृण और ब्रह्म आदि ४ वस्तुएँ ।

२ वह बाण जिसकी गांसी की धार क्षुरे के सदृश होती है । ३. गोखरू । ४. पशुओं के पावों का क्षुर । ५. शय्या का पावा । चारपाई का गोड़ा [को०] ।

क्षुरक—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'क्षुर' ।

क्षुरधान—संज्ञा पुं० [सं०] नाई की किसबत ।

क्षुरधार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक नरक का नाम । २. एक प्रकार का बाण ।

क्षुरधार^२—वि० [सं०] जिसकी धार क्षुरे की तरह तेज हो ।

क्षुरपत्र^१—वि० [सं०] [वि० क्षी० क्षुरपत्रा, क्षुरपत्री] जिसके पत्ते क्षुरे की तरह धारदार हों ।

क्षुरपत्र^२—संज्ञा पुं० १. शर नामक गुच्छ । २. क्षुरधार नामक बाण ।

क्षुरपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पालकी नामक साग । पालक ।

क्षुरपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पालकी नाम का साग । पालक ।

क्षुरपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] बच्चा । बच्चा ।

क्षुरप्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का बाण, जिसकी गांसी की धार तेज क्षुरे की धार के समान होती है । २. क्षुरा ।

क्षुरभांड—संज्ञा पुं० [सं० क्षुरभाण्ड] ३० 'क्षुरधान' ।

क्षुरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्षुरी । चाकू । २. पालकी नामक साग । ३. मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार एक यजुर्वेदीय उपनिषद् का नाम । ४. एक प्रकार का मिट्टी का पात्र [को०] ।

क्षुरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाइन । नाई जाति की स्त्री [को०] ।

क्षुरी^१—संज्ञा पुं० [सं० क्षुरिन्] [स्त्री० क्षुरिनी] १. नाई । हजामत । २. वह पशु जिसके पाँव में क्षुर हों ।

क्षुरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुरी । चाकू ।

क्षुल्ल—वि० [सं०] १. छोटा । २. थोड़ा [को०] ।

क्षुल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ३० 'क्षुद्र' । २. छोटा बंस [को०] ।

क्षुल्लवात—संज्ञा पुं० [सं०] पितृम्य । पिता का छोटा भाई [को०] ।

क्षुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षीक । २. राई । ३. नाही ।

क्षेत्रपाल^१—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्रपाल] ३० 'क्षेत्रपाल' । उ०—
कलिभुग क्षेत्रपाल है क्या भैंरो कोई भूत ।—कबीर मं०,
पृ० ५८८ ।

क्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ भन्न बोया जाता हो । खेत । २. समतल भूमि । ३. वह जगह जहाँ कोई चीज पैदा हो । उत्पत्तिस्थान । ४. स्थान । प्रदेश । जैसे,—हरिहर क्षेत्र । कुरुक्षेत्र । ५. पुण्यस्थान । तीर्थस्थान । ६. राशि (मेष आदि) । ७. स्त्री । जोरू । ८. शरीर । बदन । ९. गीता के अनुसार पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ, पाँचों कर्मेंद्रियाँ, मन, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, संस्कार, चेतनता और धृति । १०. भंत्-करण । ११. वह स्थान जो रेखाओं से घिरा हुआ हो ।

यौ०—क्षेत्रभक्ति = क्षेत्रों का बंटवारा । क्षेत्रमिति = क्षेत्रगणित । क्षेत्ररूपा = एक तरह की ककड़ी । क्षेत्रव्यवहार = किसी क्षेत्र का वर्गफल आदि निकालना । क्षेत्रसंस्थापन = किसी स्थानविशेष की सीमा के मंदर रहने का व्रत ।

१२. बाड़ा । घेरा (को०) । १३. गृह । घर (को०) । १४. रेखाचित्र । रेखांकन (को०) । १५. मलसत्र (को०) ।

क्षेत्रकर, क्षेत्रकर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] किसान । खेतिहर [को०] ।

क्षेत्रगणित—संज्ञा पुं० [सं०] गणित विद्या को वह शाखा जिसमें क्षेत्रों के नापने और उनके क्षेत्रफल निकालने की विधि का वर्णन रहता है ।

क्षेत्रज^१—वि० [सं०] जो क्षेत्र से उत्पन्न हो ।

क्षेत्रज^२—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्रानुसार बारह प्रकार के पुत्रों में से एक । वह पुत्र जो किसी भ्रमोन्मत्त या असमर्थ पुरुष की बिना संतानवाली स्त्री भ्रमवा भूत पुरुष की बिना संतानवाली विधवा के गर्भ और नियुक्त देवर आदि के वीर्य से उत्पन्न हो । इस प्रकार का पुत्र अपनी माता के पति के स्वत्व का अधिकारी माना जाता है । कलिभुग में इस प्रकार का पुत्र उत्पन्न करना वर्जित है ।

क्षेत्रजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सफेद कंटकारी । २. एक प्रकार की ककड़ी । ३. गोमूत्र तृण । ४. शिल्पिका । शिल्पी वास ।

क्षेत्रजात—वि० [सं०] परपुरुष द्वारा उत्पन्न (संतान) [को०] ।

क्षेत्रज्ञ^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर का अधिष्ठाता, जीवात्मा । २. परमात्मा । ३. किसान । खेतिहर । ४. साक्षी ।

क्षेत्रज्ञ^२—वि० [सं०] जानकार । ज्ञाता ।

क्षेत्रदूतिका, क्षेत्रदूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेतवर्ण की कंटकारी [को०] ।

क्षेत्रपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेत का रखवाला । क्षेत्रपाल । २. खेतिहर । कान्तकार । ३. जीवात्मा । ४. परमात्मा ।

क्षेत्रपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेत का रखवाला । क्षेत्ररक्षक । २. एक प्रकार के भैरव जो संख्या में ४६ हैं और पश्चिम के द्वारपाल माने जाते हैं । ३. द्वारपाल । ४. किसी स्थान का प्रधान प्रबंधकर्ता । स्वयंभू । भूमिपति ।

क्षेत्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] किसी क्षेत्र का वर्गात्मक परिमाण जो प्रायः उसकी लंबाई और चौड़ाई के घात या गुणन से जाना जाता है । वर्गपरिमाण । रकबा ।

चेत्रविद्^१—संज्ञा पुं० [सं०] जीवात्मा ।

चेत्रविद्^२—वि० [सं०] जिसे स्थानों और भागों का पूरा ज्ञान हो ।

चेत्रहिंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] खेत को नुकसान पहुँचाना ।

विशेष—कीटिल्य के समय में इस संबंध में ये नियम थे—खेत चर जाने पर पशुओं के मालिकों से दुगुना नुकसान लिया जाता था । यदि किसी ने कहकर करवाया हो तो उसपर १२ पण और जो रोज यही करे उसपर २४ पण जुर्माना किया जाता था । रखवालों को आधा दंड मिलता था ।

चेत्राजीव—संज्ञा पुं० [सं०] किसान । खेती करनेवाला [को०] ।

चेत्रादीपिक—संज्ञा पुं० [सं०] खेत में आग लगानेवाला ।

विशेष—प्राचीन काल में इसका दंड आग लगानेवाले को आग में जला देना था ।

चेत्राधिप—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार किसी राशि का स्वामी ।

चेत्रानुगत—वि० [सं०] कीटिल्य के अनुसार घाट या बंदरगाह पर लगा हुआ (जहाज) ।

चेत्रामलकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूँडआवला । भूम्यामलकी [को०] ।

चेत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] किसान । खेतवाला कृषक ।

चेत्रिय^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. चरागाह । २. परस्त्री से संबंध रखनेवाला पुरुष । ३. असाध्य रोग । कठिन रोग । ४. दवा । औषधि [को०] ।

चेत्रिय^२—वि० १. खेत संबंधी या खेत में उत्पन्न । ३. क्षेत्र का अधिकारी । ४. (रोग) असाध्य । कठिन [को०] ।

चेत्री—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्रिन्] १. खेत का मालिक । २. नियुक्ता स्त्री का विवाहित पति । नाममात्र का पति । उ०—जब इस गर्भवती के लेने से मुझे क्षेत्री कहलाने का डर है तो क्योंकि इसे स्वीकार कर सकता हूँ ।—शकुंतला, पृ० ६२ । ३. स्वामी । ४. आत्मा [को०] । ५. परमात्मा [को०] । ६. असाध्य वा कठिन रोग [को०] ।

चेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. शोक । २. रोदन [को०] ।

चेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेंकना । २. टोकर । घात । ३. अपांश । शर । ४. निंदा । बदनामी । कलंक । ५. दूरी । ६. बिताना । गुजारना । जैसे, कालक्षेप । ७. फूल का गुच्छा । पुष्पस्तवक [को०] । ८. पिलव । देरी [को०] । ९. घमंड । अहंकार [को०] । १०. अनादर । अपमान [को०] । ११. नाव का डौल खेना [को०] ।

चेपक^१—वि० [सं०] १. फेंकनेवाला । २. मिलाया हुआ । मिश्रित । ३. निंदनीय ।

चेपक^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. केवट । मल्लाह । कण्ठार । २. (पुस्तक आदि में) ऊपर या पीछे से मिलाया हुआ अंश ।

चेपण—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेंकना । २. गिराना । ३. बिताना । काटना । गुजारना । ४. अपवाद । निंदा । ५. फेंकने की वस्तु । फेंकने का साधन (गोफन, डेलवास आदि) । ६. विस्मृत करना । भूलना [को०] ।

चेपणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चप्पू । डांड । २. मछली पकड़ने का जाल । ३. गोफन । गुलेल । डेलवास [को०] ।

चेपणिक—संज्ञा पुं० [सं०] नाव या जहाज चलानेवाला । मल्लाह । केवट ।

चेपणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का अस्त्र जो शत्रु पर फेंका जाता है । २. नाव का डांड । बल्ली । उ०—अपनी इस नौका में मैं ही हूँ एकाकी, मेरे हाथों में है क्षेपणियाँ दुबिधा की ।—अपलक, पृ० ६८ । ३. मछली फँसाने का जाल [को०] ।

चेपणीय—वि० [सं०] फेंकने योग्य ।

क्षेप्ता—वि० [सं० क्षेप्] १. फेंकनेवाला । क्षेपण करनेवाला । २. तिरस्कार करनेवाला [को०] ।

क्षेप्य—वि० [सं०] १. फेंकने या नष्ट करने योग्य । २. रखने योग्य । भीतर रखने योग्य । ३. जोड़ने योग्य [को०] ।

क्षेमंकर—वि० [सं० क्षेमकर] शुभ या मंगल करनेवाला । हितावह । कल्याणकर [को०] ।

क्षेमंकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षेमङ्करी] १. एक प्रकार की चील जिसका गला सफेद होता है । क्षेमकरी । २. एक देवी का नाम ।

क्षेम—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राप्त वस्तु की रक्षा । सुरक्षा ।

यौ०—योगक्षेम ।

२. कल्याण । कुशल । मंगल । ३. अभ्युदय । ४. सुख । आनंद । ५. मुक्ति । ६. फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म के नक्षत्र से चौथा नक्षत्र । ७. चोवा । ८. धर्म का एक पुत्र जो शांति के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । ९. सुरक्षा । बचाव [को०] । १०. आधार [को०] । ११. विश्राम का स्थान [को०] ।

क्षेम^२—वि० १. सुखी । आनंदयुक्त । २. कल्याणकर । ३. सुरक्षाप्राप्त सुरक्षित । [को०] ।

क्षेमक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्लव क्षीप के एक वर्ष का नाम । २. शिव के एक गण का नाम । ३. एक राक्षस का नाम । ४. एक नाग का नाम । ५. एक प्रकार का गंधद्रव्य । चोवा ।

क्षेमकर—वि० [सं०] दे० 'क्षेमंकर' [को०] ।

क्षेमकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा देवी [को०] ।

क्षेमकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन के पीत्र का नाम, जो जनमेजय का सखा था । कहते हैं, अवध का खेरी या खीरी नामक नगर इसी ने बसाया था ।

क्षेमकल्याण—संज्ञा पुं० [सं० क्षेम + कल्याण] हम्मीर और कल्याण के संयोग से बना हुआ एक संकर राग ।—(संगीत) ।

क्षेमधूर्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम । उ०—क्षेमधूर्त, देश आदि देश २४-२५-२६ नक्षत्र में विराजमान हैं ।—बृहत्, पृ० ८६ ।

क्षेमधूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम, जिसने महाभारत के युद्ध में दुर्योधन का पक्ष लिया था ।

क्षेमफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] उदुंबर । गूलर ।

क्षेमरात्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कीटिल्य के अनुसार वह रात जिसमें चोरी आदि न हुई हो ।

शेमबती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नगरी का नाम जिसका वर्णन बौद्ध ग्रंथों में आया है और जो. कदाचित् वर्तमान गोरखपुर जिले का शेमराजपुर है।

शेमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कात्यायिनी का एक नाम। २. एक अप्सरा का नाम।

शेमासन—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का आसन, जिसमें दाहिने हाथ पर दाहिना पैर रखकर बैठते हैं। इस आसन से उपासना करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

शेमी—वि० [सं० शेमिन्] १. शेम से युक्त। सुरक्षित। निरापद। २. शेम कुशल करनेवाला। मंगलकारक। शुभदायक। उ०—जस तस करि हरि पूजन प्रेमी। लियो भ्रं क घरि हरि पद शेमी।—रघुराज (शब्द०)। ३. कुशल चाहनेवाला। भलाई चाहनेवाला। उ०—ज्ञानविराग विवेक तप योग याग जप नेम। प्रेम अधिक सब तैं अहै दायक शेमिन शेम।—रघुराज (शब्द०)।

शेमेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० शेमेन्द्र] काश्मीर का एक प्रसिद्ध संस्कृत कवि, ग्रंथकार और इतिहासकार। यह हिंदू होने पर भी बौद्ध धर्म पर बहुत अनुराग रखता था। इसने कई जीव, वैष्णव और बौद्ध ग्रंथों की समालोचना की थी। इसका पूरा नाम शेमेंद्र व्यास दास था।

विशेष—भिन्न भिन्न समयों और स्थानों में शेमेंद्र नाम के और भी कई कवि तथा ग्रंथकार हो गए हैं।

शेम्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

शेम्य^२—वि० १. मंगलदायक। हितकर। २. भाग्यवान्। किस्मत-वर। ३. स्वास्थ्यवर्धक [को०]।

शेम्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

शेय—वि० [सं०] क्षय किए जाने योग्य।

शैण्य—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीण का भाव। क्षीणता। क्षय।

शैत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षेत्रसमूह। खेतों का समूह। २. खेत।

शैत्रज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] आध्यात्मिकता। आत्मज्ञान [को०]।

क्षप्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. त्वरा। जीघ्रता। २. व्याकरण में एक प्रकार की स्वरसंधि [को०]।

क्षैरेय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० क्षैरेयो] दूध का बना हुआ। दूध युक्त। [को०]।

क्षोड—संज्ञा पुं० [सं० क्षोड] हाथी बांधने का खूँटा। आलान।

क्षोण—संज्ञा पुं० [सं०] १. जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर न जा सके। २. एक प्रकार की वीणा।

क्षोणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी।

यौ०—क्षोणिषेव = आह्वय। भूसुर। क्षोणिष। क्षोणिषति।

क्षोणिपाल = राजा। भूपाल। क्षेणिरूह = वृक्ष।

२. एक की संख्या।

क्षोणिप—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। उ०—क्षोणी में क्षोण्यो क्ष्यो क्षोणिप को क्षोना छोटी क्षोणिप क्षण बाँको विरद बहुतु हौं।—तुलसी (शब्द०)।

क्षोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी। जमीन। उ०—क्षोणी पर जो निज छाप छोड़ते चलते। पदपक्षों में मंजीर मराल मचलते।—साकेत, पृ० २०४।

क्षोणीपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। नरेश। उ०—क्षोणी में के क्षोणीपति छात्र जिन्हें छत्र छाया, क्षोणी क्षोणी छाये क्षिति आये निमिराज के।—तुलसी (शब्द०)।

क्षोद—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूर्ण। बुकनी। सकूफ। २. चूर्ण करने या पीसने का काम। ३. जल। पानी। ४. सिल या पत्थर जिसपर चूर्ण पीसा जाय [को०]।

क्षोदक्षम—वि० [सं०] परीक्षा में टिकने या साहस न छोड़नेवाला। पक्का। ठोस [को०]।

क्षोदित^१—वि० [सं०] पीसा हुआ। चूर्णित [को०]।

क्षोदित—संज्ञा पुं० १. चूर्ण। २. घूल। ३. भाटा [को०]।

क्षोदिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षोदिमन्] १. तुच्छता। लघुता। न्यूनता। २. सूक्ष्मता। बारीकी [को०]।

क्षोभ—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० क्षुब्ध, क्षुभित] १. विचलता। खलबली। २. व्याकुलता। घबराहट। ३. भय। डर। ४. रंज। शोक। ५. क्रोध।

क्षोभक—संज्ञा पुं० [सं०] कामाख्या का एक पहाड़।

क्षोभक^२—वि० [सं०] ३० 'क्षोभण'।

क्षोभकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] साठ संवत्सरों में से छत्तीसवाँ संवत्सर।

क्षोभण^१—वि० [सं०] १. क्षोभित करनेवाला। क्षोभक।

क्षोभण^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. काम के पाँच बाणों में से एक। २. विजय। ३. शिव।

क्षोभना^३—क्रि० प्र० [सं० क्षोभ] क्षुब्ध होना।

क्षोभिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में निषाद स्वर की दो श्रुतियों में से अंतिम श्रुति।

क्षोभित^४—वि० [सं० क्षोभ] १. घबराया हुआ। व्याकुल। २. विचलित। चलायमान। उ०—एक दिवस प्रभु ध्यान लगाय, क्षोभित चित्त प्रसाद बनाय।—कबीर सा०, पृ० ४०५। ३. डरा हुआ। भयभीत। ४. क्रुद्ध।

क्षोभी—वि० [सं० क्षोभिन्] उद्वेगशील। व्याकुल। चंचल। उ०—हरि गुमिरन कीजै जिमि लोभी। निसि दिन रहै द्रव्य हित क्षोभी।—रघुनाथ (शब्द०)।

क्षोम—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'क्षोप'।

क्षोहणि^५—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रक्षोहिणी] ३० 'प्रक्षोहिणी'। उ०—तैतिस क्षोहणि दल तिन जीता। जमन केर सम्हर पर बीता।—कबीर सा०, पृ० ४६।

क्षोणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'क्षोणी'।

क्षोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथिवी।

यौ०—क्षोणीप्राचीर = समुद्र। क्षोणीपति = भूपति। क्षोणीघर = पर्वत।

२. एक की संख्या।

क्षोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] छुरे, चाकू आदि की धार तेज करने का यंत्र। साव।

शौर—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षुद्र का भाव । क्षुद्रता । २. छोटी मक्खी का मधु जो पतला, ठंडा, हलका और क्लेदनाशक होता है । क्षुद्रा नामक मक्खियों का इकट्ठा किया हुआ मधु । ३. जल । ४. चपा का पेड़ । ५. घूल । ६. मागधी माता से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति ।

शौरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शहद । मधु । २. शूद्रक नामक प्राचीन देश जो वर्तमान पंजाब के अंतर्गत था ।

शौरज—संज्ञा पुं० [सं०] क्षुद्रा मक्खी का मोम ।

शौरजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शहद की बनी शनकर । मधु की शर्करा [को०] ।

शौरधातु—संज्ञा पुं० [सं०] सोना मक्खी ।

शौरप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] मधुमेह ।

शौद्रेष—संज्ञा पुं० [सं०] मोम । शौरज ।

शौम—संज्ञा पुं० [सं०] १. भलसी या सन आदि के रेशों से बुना हुआ कपड़ा । उ०—शौम के छत में लटकते गुच्छ हैं, सामने जिनके चमर भी तुच्छ हैं ।—साकेत, पृ० १६ । २. वस्त्र । कपड़ा । ३. घर या मटारी के ऊपर का कमरा । ४. रेशमी या ऊनी वस्त्र [को०] । ५. भलसी [को०] ।

शौमक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'शौमका' ।

शौमका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चोवा । एक गंधद्रव्य ।

शौमिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सन या भलसी के रेशों के तारों

से बनी हुई करघनी । २. शौम वस्त्र की बनी हुई गुदड़ी या कपरी ।

शौमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] टाट की बनी गुदड़ी । २. भलसी [को०] ।

शौर—संज्ञा पुं० [सं०] हजामत ।

शौरकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] हजामत । क्षीर ।

शौरिक—संज्ञा पुं० [सं०] नाई । हजाम ।

शूमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी । धरती ।

शौ०—कमाधर = भूधर । पर्वत । क्वाधृति, क्वापति, क्वापाल = राजा ।

२. एक की संख्या ।

श्वेड^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. अव्यक्त शब्द या ध्वनि । २. विष । जहर । उ०—गरल हलाहल श्वेड गर कालकूट रस भास । रस में विरस न घोरि बल चलिये बन कर वास ।—नंददास (शब्द०) । ३. शब्द । ध्वनि । ४. कान का एक रोग जिसमें सनसनाहट भी सुनाई पड़ती है । ५. चिकनाई । चिकनाहट । ६. त्याग ।

श्वेड^२—वि० [सं०] १. छिछोरा । नीच प्रकृति । २. कुटिल । कपटी ।

श्वेडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बाँस । २. युद्ध की ललकार । ३. सिंहगर्जन [को०] ।

श्वेडित—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह की दहाड़ । सिंहगर्जन [को०] ।

श्वेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रोडा । खेल । हँसी मजाक [को०] ।

ख

ख—हिंदी वर्णमाला में स्पर्श व्यंजन के अंतर्गत कवर्ग का दूसरा अक्षर । यह महाप्राण है और इसका उच्चारण कंठ से होता है । क, ग, घ और ङ इसके सवर्ण हैं ।

खं—संज्ञा पुं० [सं० खम्] १. शून्य स्थान । खाली जगह । २. बिल । छिद्र । ३. आकाश । ४. निकलने का मार्ग । ५. इन्द्रिय । ६. बिंदु । शून्य । सिफर । ७. स्वर्ग । देवलोक । ८. सुख । ९. कर्म । १०. कुंडली में जन्मलग्न से दसवाँ स्थान । ११. अम्रक । १२. ब्रह्मा । १३. मोक्ष । निर्वाण ।

खंका—वि० [सं० कङ्काल] १. दुर्बल । बलहीन । २. खंख । छद्मा ।

खंकर—संज्ञा पुं० [सं० खङ्कर] घूंघर । बालों की लट । भलक [को०] ।

खंख—वि० [सं० कङ्क] १. झूठा । खाली । २. उजाड़ । वीरान । ३. धनहीन ।

खंखड़—वि० [सं० खखट या अनु०] (पदार्थ) सुखने के कारण कड़ा । मुरझाया हुआ । दुर्बल । क्षीण । उ०—पचास बरस का खंखड़ भोला भीतर से कितना स्निग्ध है, यह वह न जानता था ।—गोदान, पृ० ६ ।

खंखणा—संज्ञा स्त्री० [सं० खङ्कणा] घूंघर, घंटी, नूपुर आदि की ध्वनि [को०] ।

खंखर^१—संज्ञा पुं० [सं० खङ्कर] दे० 'खंकर' [को०] ।

खंखर^२—संज्ञा पुं० [दे०] पलास का वृक्ष [को०] ।

खंखर^३—वि० [हि० खंख] दे० 'खंख' ।

खंग—संज्ञा पुं० [सं० खङ्ग] १. तलवार । उ०—भट चातक दादुर मोरन बोले । चपला चमकै न फिरे खंग खोले ।—केशव (शब्द०) । २. गंडा । ३. घाव । चीरा ।

खंगड़^१—संज्ञा पुं० [सं० खखट] शुष्क । निष्क्रिय । उ०—बर्फिस्तान में ठिठुरोगे । जम के खंगड़ हो जाओगे ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १६३ ।

खंगड़^२—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'अंगड़ खंगड़' ।

खंगड़^३—वि० उद्दंड । उग्र । उजड़ ।

खंगनखार—संज्ञा पुं० [देश०] पंजाब के पश्चिमी जिलों में होनेवाला एक प्रकार का पौधा जिसे जलाकर सज्जीखार तैयार करते हैं । इसकी सज्जी सबसे अच्छी समझी जाती है ।

खंगर^१—संज्ञा पुं० [देश०] अधिक पकने के कारण परस्पर सटी हुई कई हँटों का चक ।

खंगर^२—वि० बहुत सूखा । शुष्क क्षीण ।

मुहा०—खंगर लगना = सुलंठी रोग होना । दुर्बलता का रोग होना ।

खंगलीला—संज्ञा स्त्री० [सं० खङ्ग+लीला] असियुद्ध । तलवार की लड़ाई । उ०—खंगलीला लड़ी देखती रही मैं वहीं ।—लहर, पृ० ७३ ।

खंखना^१—कि० सं० [सं०/कृष्. प्रा०/खंख] १. तृप्त होना । संतुष्ट होना । उ०—करहा पाणी खंख पिउ त्रासा घणा सहेसि ।—ढोला०, दू० ४२६ । २. दे० 'खंखना' । उ०—(क) धावल ज्यू धन खंखइ भंग ।—वी० रासो, पृ० १०० । (ख) द्विप दोय लख धरि धातु खंखि ।—ह० रासो, पृ० ६० ।

खंज^१—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रकार का रोग जिसमें मनुष्य का पैर जकड़ जाता है और वह चल फिर नहीं सकता । वैद्यक के अनुसार इस रोग में कमर की वायु जाँघ की नसों को पकड़ लेती है, जिससे पैर स्तम्भित हो जाता है । उ०—गूँगे कुबजे बावरे बहिरे बामन वृद्ध । यान सये जनि आइगे खोरे खंज प्रसिद्ध ।—केशव (शब्द०) । २. लंगड़ा । पंगु । उ०—तारन की तरलाई सु ती तरनी खग खंजन खंज किए हैं । गंग कुरंग लजात जुदे जलजातन के गुन छीन लिये हैं ।—गंग ग्रं०, पृ० ११ ।

खंज^२—संज्ञा पु० [सं० खंजन] खंजन पक्षी । उ०—प्रातिगन दे अधर पान करि खंजन खंज लरे ।—सूर (शब्द०) ।

खंजक^१—वि० [सं० खंजक] लंगड़ा । पंगु ।

खंजक^२—संज्ञा पु० [देश०] पिस्ते की जाति का एक पेड़ ।

विशेष—यह बलूचिस्तान में होता है और इसमें रूमी मस्तगी के समान ही एक प्रकार का गौद निकलता है । यह गौद उतने काम का नहीं समझा जाता । इसकी पत्तियों के किनारे छोड़े की नाल के आकार में लाही लगती है । पत्तियाँ रंगेने और चमड़ा सिक्काने के काम में प्राती हैं ।

खंजकारि—संज्ञा पु० [सं० खंजकारि] खसोरी ।

खंजखेट—संज्ञा पु० [सं० खंजखेट] खंजन पक्षी । खंडरिच [को०] ।

खंजखेल—संज्ञा पु० [सं० खंजखेल] दे० 'खंजखेट' [को०] ।

खंजकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खंजरी' ।

खंजन—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रसिद्ध पक्षी । खंडरिच ।

विशेष—इसकी अनेक जातियाँ एशिया, युरोप और अफ्रिका में अधिकता से पाई जाती हैं । इनमें से भारतवर्ष का खंजन मुख्य और असली माना जाता है । यह कई रंग तथा आकार का होता है तथा भारत में यह हिमालय की तराई, आसाम और बरमा में अधिकता से होता है । इसका रंग बीच बीच में कहीं सफेद और कहीं काला होता है । यह प्रायः एक बालिष्ठ लंबा होता है और इसकी नाँव लाल और दुम हनकी काली भाई लिए सफेद और बहुत सुंदर होती है । यह प्रायः निर्जन स्थानों में और अकेला ही रहता है तथा जाड़े के आरंभ में पहाड़ों से नीचे उतर आता है । लोगों का विश्वास है कि यह पाला नहीं जा सकता; और जब इसके सिर पर पोटी निकलती है, तब यह छिप जाता है और किसी को दिखाई नहीं देता । यह पक्षी बहुत चंचल होता है इसलिये कवि लोग इससे नेत्रों की उपमा देते हैं । ऐसा प्रसिद्ध है कि यह बहुत कम और छिपकर रति करता है । कहीं कहीं लोग इसे 'खंडरिच' या 'ममोला' भी कहते हैं ।

पर्या०—खंजखेल । सुनिपुष्पक । भद्रनाभा । रत्ननिधि । चर । काकछड़ । नीलकंठ । कलाटीर ।

२. खंडरिच के रंग का घोड़ा । ३. 'गंगाधर' या 'गंगोदक' नामक छंद का एक नाम । ४. लंगड़ाते हुए चलना ।

खंजनक—संज्ञा पु० [सं० खंजनक] दे० 'खंजन' [को०] ।

खंजनरत—संज्ञा पु० [सं० खंजनरत] संत मैथुन । नवादाचित्त मैथुन [को०] ।

खंजनरति—संज्ञा पु० [सं०] (खंजन की तरह का) बहुत ही गुप्त विहार ।

खंजना—संज्ञा स्त्री० [सं० खंजना] १. खंजन के सदृश एक पक्षी । २. सर्प । सरसी [को०] ।

खंजनाकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० खंजनाकृति] खंजन के आकार से मिलता जुलता एक पक्षी ।

खंजनासन—संज्ञा पु० [सं० खंजनासन] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का आसन । इस आसन से उपासना करने पर विजयलाम होता है ।

खंजनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० खंजनिका] खंजन के आकार की एक चिड़िया जो प्रायः दलदलों में रहती है । इसे 'सर्पपी' भी कहते हैं ।

खंजर^१—संज्ञा पु० [फ़ा० खंजर] कटार । पेशकूज ।

मुहा०—खंजर तेज करना = मार डालने के लिये उत्थित होना ।

कि० प्र० उठाना ।—खंजना ।—खलाना ।—केरना ।—बाँधना ।

खंजर^२—संज्ञा पु० [देश० अथवा सं० खंज या खंजक + हि० र (प्रत्य)] सूसा हुआ पेड़ [को०] ।

खंजर^३—संज्ञा पु० [सं० खंजन, प्रा० खंजल] दे० 'खंजन' । उ०—मुख सिसहर खंजर नयण कुच श्रीफल कंठ वीण ।—ढोला०, दू० १३ ।

खंजरीटक—संज्ञा पु० [सं० खंजरीटक] खंजरीट । खंजन [को०] ।

खंजलेख—संज्ञा पु० [सं० खंजलेख] खंजनपक्षी [को०] ।

खंजा^१—वि० [सं० खंजक] खंज । लंगड़ा ।

खंजा^२—संज्ञा स्त्री० [सं० खंजा] वर्णार्थ सम वृत्तों में से एक वृत्त जिसके विषम पादों में ३० लघु और अंत में एक गुरु तथा सम पादों में २८ लघु और अंत में एक गुरु होता है । जैसे—नरधन जग भंह नित उठ गनपति कर जस बरनस प्रतिहित सों । तन मन धन सन जपत रहत तिहि भजन करत अस प्रति चित सों । किमि अरसत मन भजत न किमि तिहि भज भज भज भज शिव धरि चित हीं । हर हर हर हर हर हर हर हर हर हर हर कह नितहीं ।—छंदः०, पृ० २७२ ।

खंड—संज्ञा पु० [सं० खण्ड] १. भाग । टुकड़ा । हिस्सा । उ०—प्रभु दोउ चाप खंड महि डारे ।—मानस, १ । २६२ ।

मुहा०—खंड खंड करना = चकनाचूर करना । टुकड़े टुकड़े करना ।

२. अंश का विभाग या अंश । ३. देश । वर्ष । जैसे—भरतखंड (पौराणिक भूगोल में एक एक द्वीप के अंतर्गत नौ नौ या

सात सात खंड माने गए हैं)। नौ की संख्या। ५. गणित में समीकरण की एक क्रिया। ६. रत्नों का एक दोष जो प्रायः मानिक में होता है। ७. खांड। चीनी। ८. काला नमक। ९. दिशा। दिक्। उ०—चारहु खंड मानु अस तपा। जेहि की शृष्टि रैन ससि छिपा।—जायसी (शब्द०)। १०. समूह। उ०—तहें सजत उद्भूत भट विकट सटपट परत खल खंड में।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८५। ११. परशुराम। उ०—संग्राम पंड कैरवै कि खंड बाण सेणियं।—राज रू०, पृ० ६०। १२. मजिल। मरातिव। उ०—नव नव खंड के महल बनाए। सोना केरा कलस चढ़ाए।—कबीर सा०, पृ० ५४३।

खंड^२—वि० १. खंडित। अपूर्ण। उ०—अखंड साहब का नाम और सब खंड है।—कबीर सा०, पृ० १२१। २. छोटा। लघु। ३. विकलांग। दोषयुक्त (की०)।

खंड^३—संज्ञा पुं० [सं० खड्ग] खांड। उ०—करे शंभु खंड बरिबंड चंड खंड दे के जलधि धमंड को उमंड ब्रह्मंड मंड।—गोपाल (शब्द०)।

खंडकंद—संज्ञा पुं० [सं० खण्डकन्द] शकरकंद। खंडकर्ण (की०)।

खंडक^१—वि० [सं० खण्डक] १. खंडन करनेवाला। किसी मत या विचार को काटनेवाला। २. खंड करनेवाला। विभाग करनेवाला। टुकड़ों में विभक्त करनेवाला। ३. दूर करने या हटानेवाला (की०)।

खंडक^२—संज्ञा पुं० १. खंड। भाग। टुकड़ा। २. शंकरा। ईश की चीनी। ३. नखहीन प्राणी। वह प्राणी जिसे नाखून न हो (की०)।

खंडकथा—संज्ञा स्त्री० [सं० खण्डकथा] कथा का एक भेद। लघु कथा। छोटी कथा।

विशेष—इसमें मंत्री अथवा ब्राह्मण नायक होता है और चार प्रकार का विरह रहता है। इसमें करुण रस प्रधान होता है। कथा समाप्त होने के पहले ही इसका अंत समाप्त हो जाता है। २. उपन्यास का एक भेद।

विशेष—इसके प्रत्येक खंड में एक एक पूरी कहानी होती है और इसकी किसी एक कहानी का दूसरी कहानी के साथ कोई संबंध नहीं होता। इसके दो भेद हैं, सजात्य और वैजात्य। जिसमें सब कथाओं का आरंभ और अंत एक समान होता है, वह सजात्य कहलाती है, और जिसकी कथाएँ कई ढंग की होती हैं, उसे वैजात्य कहते हैं।

खंडकर्ण—संज्ञा पुं० [सं० खण्डकर्ण] १. शकरकंद। २. एक प्रकार का गाँठदार पीधा (की०)।

खंडकालु—संज्ञा पुं० [सं० खण्डकालु] शकरकंद (की०)।

खंडकाव्य—संज्ञा पुं० [सं० खण्डकाव्य] वह काव्य जिसमें 'काव्य' के संपूर्ण अलंकार या लक्षण न हों, बल्कि कुछ ही हों। जैसे, मेघदूत आदि।

खंडज—संज्ञा पुं० [सं० खण्डज] १. एक प्रकार की शंकरा। २. गुड़। भेली (की०)।

खंडत—(५) वि० [सं० खण्डित] दे० 'खंडित'।

खंडतरि(५) संज्ञा स्त्री० [देश०] कटी चटाई। उ०—घोछाघोन खंडतरि पालिआ चाह। आघोर कहव कत अहिरिनी नाह।—विद्यापति, पृ० ५६।

खंडताल—संज्ञा पुं० [सं० खण्डताल] संगीत में एकताला नामक ताल जिसमें केवल एक द्रुत होता है।

खंडधारा—संज्ञा स्त्री० [खण्डधारा] कतरनी। कंबी (की०)।

खंडन—संज्ञा पुं० [सं० खण्डन] [वि० खंडनीय खंडित, खंडी] १. तोड़ने फोड़ने की क्रिया। २. भंजन। छेदन। ३. किसी बात को अग्रधार्य प्रमाणित करने की क्रिया। किसी सिद्धांत को प्रमाणों द्वारा असंगत ठहराने का कार्य। निराकरण। भंडन का उलटा। जैसे—उसने इस सिद्धांत का खूब खंडन किया है। ४. नृत्य में मुँह या घोंठ इस प्रकार खलाना जिससे पढ़ने, बड़बड़ाने या खाने आदि का भाव झलके। ५. निराश करना। हताश करना (की०)। ६. धोखा देना। वंचना (की०)। ७. बाधा देना। रुकावट करना (की०)। ८. हिसमिस करना। बर्खास्त करना (की०)। ९. विद्रोह। विरोध (की०)। १०. हटाना। दूर करना (की०)। ११. विनष्ट करना (की०)।

खंडन^२—वि० १. तोड़ने, काटने या हिस्सा करनेवाला। २. विनाश करनेवाला। विध्वंस करनेवाला (की०)।

खंडनकार—संज्ञा पुं० [सं० खण्डनकार] १. खंडनखंडलाघ के लेखक श्रीहर्ष। २. खंडन करनेवाला व्यक्ति या प्राणी (की०)।

खंडनखंडलाघ—संज्ञा पुं० [सं० खण्डनखण्डलाघ] श्रीहर्ष कृत अद्वैत वेदांत का खंडनप्रधान ग्रंथ।

खंडनमंडन—संज्ञा पुं० [सं० खण्डनमण्डन] वादविवाद। खंडन और मंडन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

खंडनरत—संज्ञा पुं० [सं० खण्डनरत] ध्वंसकार्य में निपुण।

खंडना(५)—क्रि० सं० [सं० खण्डन] १. खंडन करना। तोड़ना। टुकड़े टुकड़े करना। उ०—कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं।—मानस, १। २६१। २. निराकरण करना। किसी बात को अग्रयुक्त ठहराना। ३. उल्लंघन करना। न मानना। उ०—पिता बचन खंडे सो पापी, सोइ प्रह्लादहि कीन्ही।—सूर०, १। १०४।

खंडनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० खण्डनी] मालगुजारी की किस्त। कर।

खंडनी^२—वि० [सं०] ३० 'खंडी', 'खंडिनी'।

खंडनीय—वि० [सं० खण्डनीय] १. तोड़ने फोड़ने लायक। २. खंडन करने योग्य। निराकरण के योग्य। ३. जिसका खंडन हो सके। जो अग्रयुक्त ठहराया जा सके।

खंडपति—संज्ञा पुं० [सं० खण्डपति] राजा।

खंडपरशु—संज्ञा पुं० [सं० खण्डपरशु] १. महादेव। शिव। उ०—खंडपरशु को शोभिजै सभा मध्य कोदंड। मानहु शेष अशेषधर धरनहार बरिबंड।—केशव (शब्द०)। २. विष्णु। ३. परशुराम। ४. राहु। ५. वह हाथी जिसके दाँत दूटे हों।

खंडपशु—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'खंडपरशु' (की०)।

खंडपाल - संज्ञा पुं० [सं० लण्डपाल] मिठाई बनाने और बेचनेवाला । हलवाई ।

खंडप्रलय - संज्ञा पुं० [सं० लण्डप्रलय] वह प्रलय जो चतुर्थी या ब्रह्मा का एक दिन बीत जाने पर होता है ।

विशेष—इसमें समस्त ब्रूतों का लय हो जाता है, केवल ब्रह्मा रह जाते हैं । पुराणानुसार इस प्रलय में सूर्य का तेज सहस्रगुना बढ़ जाता है और रुद्र समस्त प्राणियों का संहार कर डालते हैं ।

२. संघर्ष । झगड़ा । लड़ाई (को०) ।

खंडप्रस्तार - संज्ञा पुं० [सं० लण्डप्रस्तार] संगीत में एक प्रकार का ताल ।

खंडफण - संज्ञा पुं० [सं० लण्डफण] एक प्रकार का साँप ।

खंडफुल्ल - संज्ञा पुं० [सं० लण्डफुल्ल] कूड़ा कंकट ।

खंडमंडल - वि० [सं० लण्डमण्डल] ग्रंथ या अपूर्ण धरेवाला ।

खंडमंडल - संज्ञा पुं० ग्रंथ या अपूर्ण वृत्त (को०) ।

खंडमेरु - संज्ञा पुं० [सं० लण्डमेरु] पिंगल की वह रीति जिसके द्वारा मेरु या एकावली मेरु के बनाए बिना ही मेरु का नाम निकल जाता है ।

खंडमोदक - संज्ञा पुं० [सं० लण्डमोदक] गुड़ । एक प्रकार की शक्कर (को०) ।

खंडर - संज्ञा पुं० [सं० लण्डर = खंड, टुकड़ा] दे० 'खंडहर' ।

खंडर - संज्ञा पुं० [सं० लण्डर] लाड़ से बनी वस्तु । मिठाई (को०) ।

खंडरिच - संज्ञा पुं० [हि०] खंजन पक्षी । वि० दे० 'खंजन' ।

खंडल - संज्ञा पुं० [सं० लण्डल] खंड । टुकड़ा । भाग ।

खंडल - वि० [सं० लण्ड + ल (प्रत्यय)] १. (५) लण्ड धारण करनेवाला । २. विभाग या खंडवाला (दि०) ।

खंडलवण - संज्ञा पुं० [सं० लण्डलवण] काला नमक ।

खंडवर्षा - संज्ञा स्त्री० [सं० लण्डवर्षा] वह वर्षा जो सर्वत्र समान न हो । वह वृष्टि जिसमें कहीं पानी बरसे, कहीं पानी न बरसे (को०) ।

खंडविकार - संज्ञा पुं० [सं० लण्डविकार] चीनी । शक्कर (को०) ।

खंडविकृति - संज्ञा स्त्री० [सं० लण्डविकृति] मिसरी (को०) ।

खंडवृष्टि - संज्ञा स्त्री० [सं० लण्डवृष्टि] दे० 'खंडवर्षा' (को०) ।

खंडव्यायाम - संज्ञा पुं० [सं० लण्डव्यायाम] एक प्रकार का वृत्त्य जिसमें केवल कमर और पैरों को गति देते हैं ।

खंडशः - क्रि० वि० [सं० लण्डशः] खंड खंड करके । कई खंडों या भागों में बाँटकर । टुकड़े टुकड़े ।

खंडशर्करा - संज्ञा स्त्री० [सं० लण्डशर्करा] मिसरी (को०) ।

खंडशीला - संज्ञा स्त्री० [सं० लण्डशीला] १. नष्ट चरित्रवाली स्त्री । व्यभिचारिणी । २. बेश्या ।

खंडसर - संज्ञा पुं० [सं० लण्डसर] साक की हुई लाड़ । चीनी ।

खंडा - संज्ञा पुं० [सं० लण्ड] १. चावल का टुकड़ा । खूद । २. पंजाब में खेला जानेवाला 'लुकन भीची' नामक खेल । उ०—

एह मन सारि गोइ लए पिडा । एक पंच सिउँ खेले खडा ।—
प्राण०, पृ० ३१ ।

खंडा - संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'खंडा' ।

खंडाभ्र - संज्ञा पुं० [सं० लण्डाभ्र] १. दाँत का एक रोग । २. बिखरे हुए बादल (को०) । ३. दंतक्षत (रति) ।

खंडाली - संज्ञा स्त्री० [सं० लण्डाली] १. तेल नापने का एक परिमाण । २. काम की इच्छा रखनेवाली स्त्री । ३. वह स्त्री, जिसका पति दुश्चरित्रता का दोषी हो (को०) । ४. तालाब । झील (को०) ।

खंडिक - संज्ञा पुं० [सं० लण्डिक] १. काँस । कंसरी । २. वह विद्यार्थी जो किसी ग्रंथ को खंड खंड करके पढ़े । ३. एक ऋषि का नाम । ४. वह व्यक्ति जो चीनी बनाता हो (को०) । ५. केराब या मटर (को०) ।

खंडिका - संज्ञा स्त्री० [सं० लण्डिका] १. काँस । कंसरी । २. संघीत में लय का एक प्रकार । ३. केराब की बनी एक भोज्य वस्तु (को०) ।

खंडिकोपाध्याय - संज्ञा पुं० [सं० लण्डिकोपाध्याय] १. लड़ी से पटिया पर लिखाने और पढ़ानेवाला आरंभिक सोपान का अध्यापक । श्रोधी शिक्षक । गुस्सल मास्टर (को०) ।

खंडित - वि० [सं० लण्डित] १. टूटा हुआ । टुकड़े टुकड़े । भग्न । २. जो पूरा न हो । अपूर्ण । ३. ह्वस्त । नष्ट (को०) । ४. लुप्त (को०) । ५. त्यक्त (को०) । ६. जिसका खंडन या विरोध किया गया हो । निराकृत (को०) । ७. प्रवंचित उपेक्षित (को०) ।

खंडितविग्रह - वि० [सं० लण्डितविग्रह] विकृतांग । विकलांग । विकृत अंगोंवाला (को०) ।

खंडितवृत्त - वि० [सं० लण्डितवृत्त] नष्ट चरित्रवाला । दुश्चरित्र । २. छोड़ा हुआ । त्यक्त (को०) ।

खंडितव्रत - वि० [सं० लण्डितव्रत] जिसका व्रत या नियम टूट गया हो । जिसने प्रतिज्ञा भंग की हो (को०) ।

खंडिता - संज्ञा स्त्री० [सं० लण्डिता] वह नायिका जिसका नायक रात को किसी अन्य नायिका के पास रहकर सबेरे उसके पास आए और वह नायिका उस नायक में संभोग के चित्त देखकर कुपित हो ।

खंडिनी - संज्ञा स्त्री० [सं० लण्डिनी] पृथिवी । धरती ।

खंडी - वि० [सं० लण्डिन्] १. विभक्त । २. टुकड़े या हिस्सेवाला ।

खंडी - संज्ञा पुं० दाल की एक किस्म । वनमुद्ग (को०) ।

खंडी - संज्ञा स्त्री० [सं० लण्ड] १. गाँव के आस पास के वृक्षों का समूह । २. लगान या किराए की किस्त ।

मुहा०—खंडी करना = किस्त बाँधना ।

३. चौथ । राजकर । उ०—दतिया सु प्रथम दबा दई । खंडी सु मनमानी लई ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ६ । (५) ४. खंड । भाग । हिस्सा । उ०—किम किलकत खंडी लहि निज खंडी उमडि उमंडी हरषित ह्वै ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २६ ।

खंडी - संज्ञा स्त्री० [सं० लण्डिका] एक तोल या माप जो २० मन की होती है । उ०—मर्ना सूँ या रूपा खंडियाँ सूँ सोना ।

ये साह्यां करोड़ अशरफियां करोड़ सूँ होआ।—दक्खिनी०, पृ० २७७।

खंडीवन(५)†—संज्ञा पुं० [सं० खण्डववन] दे० 'खंडववन'। उ०—
खंडीवन जालवा, अजन जेही तन ओपे।—रा० ६०, पृ० १६२।

खंडीर—संज्ञा पुं० [सं० खण्डीर] पीले रंग का मुद्ग। पीली
मूँग [को०]।

खंडेदु—संज्ञा पुं० [सं० खण्डेदु] १. अपूर्ण चंद्र। २. ग्रह
चंद्र [को०]।

खंडेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० खण्डेश्वर] एक खंड का राजा।

खंडोद्भव, खंडोद्भूत—संज्ञा पुं० [सं० खण्डोद्भव, खण्डोद्भूत] खंड
से उत्पन्न शक्य या मुद्ग आदि [को०]।

खंडोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० खण्डोष्ठ] घोट का एक रोग [को०]।

खंडौति(५)†—संज्ञा पुं० [सं० खण्डौति] निगकरण। दे० 'खंडन'—३।
उ०—नारिउ वेद किया खंडौति। जन रेदास करे डंडौति।—
रे० बानी, पृ० ५७।

खंडय—वि० [सं० खण्डय] दे० 'खंडनीय' [को०]।

खंतरा—संज्ञा पुं० [सं० खान्तर या हि० अंतरा] १. दरार। खोहर।
२. कोना। अंतरा। उ०—गुप्तचरों ने एक एक कोना खंतरा
छान डाला, पर किसी को अक्लिहानो का चिह्न भी हस्तगत
न हुआ।—वेनिम०, (शब्द०)।

बिशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः 'कोना' के साथ योगिक
शब्दों के अंत में होता है। जैसे—कोना खंतरा।

खंता†—संज्ञा पुं० [सं० खनित्र या हि० खनना] [जी० अल्पा-
खतो] १. वह भोजार जिससे जमीन खादि खोदी जाती हो।
२. वह गड्ढा जिसमें से कुम्हार मिट्टी लाते हैं।

खंति†—संज्ञा स्त्री० [सं० ख्याति, राज० ख्याति, खति] १. खगन।
प्रीति। उ०—मो मारु मिनिवातणी, खरी विलगो खंति।—
ढोला०, पृ० २३८। २. आकांक्षा। इच्छा। उ०—जब देहों
तब पुजिहै मो मन मभभह खंति।—पृ० १०, १७। २७।

खंति†—संज्ञा स्त्री० [देश०] तलवार का बीजन। कमा। उ०—
(क) खंति खग खालि विहृथ।—पृ० रा०, १०। १८।
(ख) खंति खग खुल्लि विहृथ।—पृ० रा० (उदय०), पृ०
२७६।

खंदक—संज्ञा स्त्री० [अ० खंदक] १. शहर या किले के चारों ओर
खोदी हुई खाई। २. बछ गड्ढा।

खंदी—वि० [फ्रा० खंदी] १. हँसता हुआ। मुसकुराता हुआ।
हँसनेवाला। उ०—दिल सँ खुरम, मुक सो खंदी गाद माँ।—
दक्खिनी०, पृ० १८१।

खंदा(५)†—संज्ञा पुं० [हि० खनना] खोदनेवाला। उ०—दंत्य दलन
गजदंत उपासन केस केशधरि फंदा। सूरदास बलि जाह
यशोमति मुख के सागर दुख के खंदा।—सूर (शब्द०)।

खंदा†—संज्ञा पुं० [फ्रा० खंद] हँसी। खिलखिलाहट।

यो०—खंदावेशानी = दंगमुख। हंगीही।

खंदा—वि० दे० 'खंदी'।

खंघक(५)†—संज्ञा स्त्री० [हि० खंदक] दे० 'खंदक'। उ०—
तीन ओर निर्मल जल भरी सुहाती।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ६।

खंधा—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्धक प्रा०, खन्धा] धार्या गीति नामक
खंद का एक भेद।

खंधारी—संज्ञा पुं० [सं० खण्ड + धार] खंडाधीन। राजा। उ०—
फिरह दीनउला राजकुमार। खंड खंड का मील्या खंधार।—
बी० रासो, पृ० १०।

खंधारी†—संज्ञा पुं० [सं० स्कन्धाधार] दे० 'खंधार'।

खंधार†—संज्ञा पुं० [सं० गंधार] गंधार या कंदहार देशवासी
जन। उ०—फिरंगान खंधार बलकिय जुरे सु सन्बह।—
प० रासो, पृ० १०२। २. गंधार देश।

खंधारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कंधारी'।

खंधासाहिनी—संज्ञा स्त्री० [हि० खंधा] खंधा या धार्या। गीति
नामक खंद का एक प्रकार।

खंभायची†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खंभायची'।

खंभ—संज्ञा पुं० [सं० स्कम्भ या स्तम्भ, प्रा० खंभ] १. स्तम्भ।
खंभा। २. सहारा। आसरा। उ०—बिन जीवन भइ आस
पराई। कहीं सो पूत खंभ होइ आई।—जायसी (शब्द०)।

खंभा—संज्ञा पुं० [सं० स्कम्भ या स्तम्भ, प्रा० खम्भ] पत्थर या काठ
का लंबा खड़ा टुकड़ा अथवा इंट आदि की बोड़े धेरे की ऊँची
खड़ी जोड़ी जिसके आधार पर छत या छाजन रहती है।
स्तम्भ।

बिशेष—जहाँ छत या छाजन के नीचे का स्थान कुछ खुला रखना
होता है, वहाँ खंभों का व्यवहार किया जाता है। जैसे,
ओसारे, बरामदे, बारहदरी, पुल आदि में खंभे का व्यवहार
भारतीय स्थापत्य में बहुत प्राचीन काल से है; तथा उसके
भिन्न भिन्न विभाग भी किए गए हैं। जैसे, नीचे के आधार को
कुंभी (कुंभिया) और ऊपर के सिरे को भरणी कहते हैं।

खंभाइच—संज्ञा पुं० [सं० स्कम्भावती] दे० 'खंभात'। उ०—तातें
श्री गुसाईं जी खंभाइच पधारे।—दो सौ बावन० पृ० २०६।

खंभात—संज्ञा पुं० [सं० स्कम्भावती] १. गुजरात के पश्चिम प्रांत
का एक राज्य जो इसी नाम के एक उपसागर के किनारे है।
२. इस राज्य की राजधानी। ३. अरब सागर की एक
खाड़ी [को०]।

खंभार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खंभार'।

खंभारा(५)†—संज्ञा पुं० [सं० स्कम्भ] हाथी के रहने का स्थान।
उ०—पूटा मदकर जुग जाण खंभारा।—रघु० ६०, पृ० १५४।

खंभावती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्कम्भावती] दे० 'खंभात'।

खंभिया—संज्ञा स्त्री० [सं० स्कम्भ या स्तम्भ, प्रा० खंभ] छोटा खंभ।
खंभे का अल्पायं सूचक।

खंभेली—संज्ञा स्त्री० [हि० खंभ + एली (प्रत्यय०)] दे० 'खंभिया'।
उ०—कुटिया के ओसारे पर खंभेली के सहारे बैठते हुए
जयनाथ ने कहा 'तो क्या होगा?'—रति०, पृ० ४३।

खँखरा†—संज्ञा पुं० [देश०] १. तबे का बड़ा देग जिसमें चावल
आदि पकाया जाता है। २. बाँस का टोकरा।

खंखरा^१—वि० १० 'खखर' ।

खंखार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खखार' ।

खंखारना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'खखारना' ।

खंखाना—क्रि० प्र० [सं० खखण या हि० खीखना] कम होना । घट जाना । उ०—ऊखल में पुनि बांधन लागी । खंखी गुगां-गुलि रजु पुनि मांगी ।—विश्राम०, पृ० ३११ ।

खंखाना^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खंग' ।

खंखहा^१—वि० [हि० खंग + हा (प्रत्य०)] १. खंगवाला । जिसे खंग या निकले हुए दाँत हों । २. खंगेल ।

खंखहा^२—संज्ञा पुं० १. गेंडा । २. वाराह । शूकर ।

खंखारा—संज्ञा पुं० [देश०] क्षत्रियों की एक गुजरातवासी शाखा तथा उसका राजा ।

खंखारना^१—क्रि० स० [सं० खालन से] दे० 'खंगलना' ।

खंखालना—क्रि० स० [सं० खालन] १. हलका घोना । थोड़ा घोना । जैसे, लोटा खंगलना, गहना खंगलना । २. सब कुछ उड़ा ले जाना । खाली कर देना । जैसे,—रात को उनके घर चोर पाए थे; सब खंगल ले गए । ३. मँझाना । बहाना । उ०—घब जाओ उलझनों में न पड़, जंगलों को खंगल कर देखो ।—बोले०, पृ० १६ ।

खंखी—संज्ञा स्त्री० [हि० खंगना] कमी । घटी । छीज । उ०—द्विप हरवि शिशु मुख भूमि सुंदरि सकल दुलरावै लगीं । अनपार भँ उथानार निज रवि सरस तहँ रहै का खंगी ।—विश्राम०, पृ० ४०३ ।

खंखुवा—संज्ञा पुं० [हि० खंग] गेंडे की सींग । दे० 'खंग' ।

खंखैल—वि० [हि० खंग + ऐल (प्रत्य०)] १. खंग रोग से पीड़ित । जिसके खुर पके हों । खंगहा । २. दंतैला । लंबे दाँतवाला (हाथी) ।

खंगोरिया, खंगौरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] हंसुली नाम का गहना ।

खंधारना^१—क्रि० स० [हि० खंगलना] दे० 'खंगलना' ।

खंधना^१—क्रि० प्र० [हि० खंधना] चिह्नित होना । निशान पड़ना । उ०—लाजमयी सुर बाम भई पछितान्यो स्वयंभू महा मन सेखे । दूसरी ओर बनाइको को त्रिबली खंधी तीन तलाक की रेखे ।—शंभु कवि (शब्द०) ।

खंधना^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'खिचना' ।

खंधवाना—क्रि० स० [हि० खंधना] दे० 'खंधाना' ।

खंधाना^१—क्रि० स० [हि० खंधना] १. प्रकट करना । चिह्न बनाना । उ०—(क) राधिका की त्रिबली को बनाय विचारि विचारि यहै हृम लेखे । ऐसी न और न और न और है तीन खंधाय दई बिधि रेखे ।—कोई कवि (शब्द०) । (ख) रामानुज लघु रेख खंधाई । सो नहि लघिउ भस मनुसाई ।—तुलसी (शब्द०) । २. जल्दी जल्दी लिखना ।

खंधाना^२—क्रि० स० दे० 'खंधाना' ।

खंधाना^३—क्रि० स० [हि० खंधना का प्रे० रूप] प्रकट करवाना । खंधवाना ।

खंधिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० खंधी + इया (प्रत्य०)] दे० 'खंधी' ।

खंधुला^१—संज्ञा पुं० [हि० खंधा + उला (प्रत्य०)] १. छोटी खंधी । २. खंधा ।

खंधुली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० खंधी] छोटी खंधी । खंधिया ।

खंधैया^१—वि० [हि० खंध + ऐया (प्रत्य०)] खंधिनेवाला ।

खंधोला^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खंधुला' ।

खंधोली^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खंधुली' ।

खंधी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० खंधी] दे० 'खंधी' ।

खंधी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० खंधी = एक ताल] डफनी की तरह का एक छोटा बाजा ।

विशेष—इसका मेंडरा (गोलाकार काठ) चार या पाँच ग्रंथुल चौड़ा और एक ओर चमड़े से मड़ा तथा दूसरी ओर खुला रहता है । यह एक हाथ से पकड़कर दूसरे हाथ की थाप से बजाई जाती है । साधु लोग प्रायः अपनी खंधी के मेंडरे में एक प्रकार की हलकी भाँक भी बाँध लेते हैं, जो खंधी बजाते समय आपसे आप बजती है ।

खंधी^३—संज्ञा स्त्री० [प्रा० खंधी] १. खंधी का स्त्रीलिंग और प्रत्ययक रूप । २. एक प्रकार की लहरिएदार धारी जो रंगीन कपड़ों में होती है । ३. वह कपड़ा, विशेषतया रेखमी कपड़ा, जिसमें इस प्रकार की धारी हो ।

खंधा^१—संज्ञा पुं० [सं० खंध] खंड का हिंदी में प्रयुक्त समासगत रूप, जैसे,—खंडपूरी, खंडवानी आदि ।

खंडपूरी—संज्ञा स्त्री० [हि० खंड + पूरी] एक प्रकार की भरी हुई पूरी, जिसके भंदर में और मसाले के साथ चीनी भरी जाती है ।

खंडवारा^१—संज्ञा पुं० [हि० खंड + वारा या धोरा (प्रत्य०)] दे० 'खंडीरा' । उ०—खंडे कीन्ह ग्रामधुर परा । लौंग इनाची सों खंडवारा ।—जायसी (शब्द०) ।

खंडरा—संज्ञा पुं० [सं० खंध + हि० वरा] एक प्रकार का चौकोर बड़ा जो सूखा और गीला दोनों प्रकार होता है । उ०—खंडरा खंड जो खंडे खंडे । बरी प्रकोतर से कहं हंडे ।—जायसी (शब्द०) ।

विशेष—इसके बनाने के लिये पहले बेसन घोलकर उसे कड़ाही में पकाते हैं, जिसे पाक उठाना कहते हैं । पाक तैयार हो चुकने पर उसे पाली में ढालकर जमा देते हैं । ठंडा होकर जम जाने पर उसे चौकोर टुकड़ों में काटकर तेल में तल लेते हैं । इसी को सूखा खंडरा कहते हैं । पीछे इसे मसालों के साथ किसी काजी या रसे में भिगो देते हैं ।

खंडला^१—संज्ञा पुं० [सं० खंध + हि० ला (स्वा० प्रत्य०)] टुकड़ा । कतरा ।

खंडवानी—संज्ञा स्त्री० [हि० खंड + पानी] १. वह पानी जिसमें खंड या चीनी घोली हुई हो । गरबत । उ०—कड़ी संवारी और फुलीरी । धौ खंडवानी लाल बरीरी ।—जायसी (शब्द०) । २. कन्या पक्षवालों की ओर से बरातियों को जलपान भोजन भेजने की क्रिया । उ०—बोली सबहि नारि कुँभितानी । करहु सिंगार देहु खंडवानी ।—जायसी (शब्द०) ।

खंडविला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान । उ०—कोरहन, बड़हर, जड़हन मिला । श्री संसारतिलक खंडविला ।—जायसी (शब्द०) ।

खंडसार—संज्ञा स्त्री० [सं० खण्ड + शार] खंड या शकर बनाने का कारखाना । वह स्थान जहाँ खंड बनती हो ।

खंडसारी—संज्ञा स्त्री० [देश० सं० 'खण्ड' से] एक प्रकार की चीनी । देशी चीनी । शकर ।

खंडसाल—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खंडसार' ।

खंडहर—संज्ञा पुं० [सं० खण्ड + हि० घर] किसी दूटे फूटे या गिरे हुए मकान का बचा हुआ भाग । खंडर ।

खंडुला—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'खंडविला' ।

खंडिया^१—संज्ञा पुं० [सं० खण्ड + हि० इया (प्रत्य०)] ईख को काटकर उसकी छोटी छोटी गडेरियाँ या टुकड़े बनानेवाला व्यक्ति ।

खंडिया^२—संज्ञा स्त्री० [सं० खण्ड + दुपड़ा] खंड । जैसे—मछली की खंडिया ।

खंडुआ^१—संज्ञा पुं० [हि० खंड] १. वह कुआँ जिनकी जगह पत्थर के ढोंकों से बनाई गई हो । २. दे० 'कंदुआ' ।

खंडोरा^१—संज्ञा पुं० [हि० खंड + ओरा (प्रत्य०)] मिसरी का लट्ठा । मोला । उ०—पुहुप सुरंग रस अभिरित साँधे । कै कै सुरंग खंडींग बांधे ।—जायसी (शब्द०) ।

खंडोरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० खण्ड + हि० ओरी (प्रत्य०)] चावल के वे बड़े बड़े टुकड़े जो कूटने पर टूट जाते हैं ।

खंदना—वि० [सं० खनन] खोदना ।

खंदवाना—क्रि० सं० [हि० खंदना का प्रे० रूप] खोदवाना । खोदने के काम में लगाना ।

खंधवाना—क्रि० सं० [खंधियाना का प्रे० रूप] खाली करना । उ०—कंचन के पैना अंतर भरीना मुमन नयवाधे ।—विश्राम (शब्द०) ।

खंधारा^१—संज्ञा पुं० [सं० स्कंधावार] सेना का निवासस्थान । स्कंधावार । छावनी । उ०—कहा मोर सब दरब भँडाग । कहाँ मोर सब दरब खंधारा ।—जायसी (शब्द०) ।

खंधियाना^१—क्रि० सं० [हि० खाली] (पदार्थ को पात्र में से बाहर) निकालना । खाली करना । रिक्त करना ।

खंधायची, खंधायती—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खम्माच' ।

खंधारा^२—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'खंधार' ।

खंधायची—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खम्माच' । उ०—बगो राग खंधायची लगो केसर बोह ।—रा० क०, पृ० ३४७ ।

खंधायची कान्हडा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खम्माच कान्हडा' ।

खंधार^१—संज्ञा पुं० [सं० खोम, प्रा० खोम] १. अंधारा । चिता । २. धबराहट । व्याकुलता । ३. डर । भय । उ०—हरबर हस्त खंधार, निज अरणागत जनन को । भाषत अही तुम्हार, करत अमय संसार ते ।—रघुराज (शब्द०) । ४. शोक । उ०—कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर विधि, लोचननि वकाचीधि बिस्तन खंधार सो ।—तुलसी (शब्द०) ।

खंधार^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खंधारि', 'खंधारी' ।

खंधारि, खंधारी—संज्ञा स्त्री० [सं० काश्मरी, प्रा० कान्हरी] खंधारी नामक वृक्ष । वि० दे० खंधारी ।

खंधावती—संज्ञा स्त्री० [सं० स्कंधावती] पाइव जाति की एक रागिनी जो मालकोस राग की दूसरी स्त्री मानी जाती है । इसके गाने का समय प्राची रात है ।

खंधिया—संज्ञा स्त्री० [हि० खंधा + इया (प्रत्य०)] खंधा का अन्त्यार्थक रूप । छोटा पतला (विशेषतः काठ का) खंधा ।

खंधेली^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खंधेली' ।

खंधी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० खम्] वह गड्ढा जिसमें अनाज भरकर रखते हैं । खत्ता ।

खंधा^३—संज्ञा पुं० [हि० खंधे + डा (प्रत्य०)] अनाज रखने का बड़ा गड्ढा । बड़ा खत्ता । बड़ी खंधे ।

खंधना^४—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'खसना' ।

ख—संज्ञा पुं० [सं०] १. गड्ढा । गर्त । २. खाली स्थान । ३. निर्गम । निकास । ४. छेद । बिल । ५. इन्द्रिय । ६. गले की वह नाली जिससे प्राणवायु जाती जाती है । ७. कुम्भी । ८. तीर का घाव । ९. गाड़ी के पहिए की नाभि का छेद जिनमें घुरा रहता है । १०. आकाश । स्वर्ग । देवलोक । १३. कर्म । क्रिया । १४. जम्बुकुंडली में दसवाँ स्थान । १५. शून्य । १६. बिंदु । सिफर । १७. बड़ा । १८. शब्द । १९. अक्षर । २०. मोक्ष । निर्वाण । २१. नगर । शहर (की०) । २१. समझ । बोध (की०) । २२. भरना (की०) । २३. कृप । कुप्राँ (की०) । २४. सूर्य (की०) । २५. क्षेत्र (की०) ।

खई^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० खयी] १. क्षयकारिणी क्रिया । २. लड़ाई । युद्ध । ३. तकरार । झगड़ा । उ०—अंश परायो देत न नीके माँगत ही सब करत खई ।—सूर (शब्द०) ।

खए^(६)—संज्ञा पुं० [सं० खः = आकाश] ऊपर । व्योम । उ०—खए लगि बौह उसारि उसारि । अए इत उत जत्रे रिसि धारि ।—सुजान०, पृ० ३४ ।

खकत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश का घेरा । आकाशीय परिधि (की०) ।

खकामिनो—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम (की०) ।

खकुंतल—संज्ञा पुं० [सं० खकुन्तल] शिव का एक नाम । व्योमवेश । कपर्दी (की०) ।

खक्खट^१—वि० [सं०] १. ठोस । कड़ा । २. कठोर । कर्कश ।

खक्खट^२—संज्ञा पुं० दे० 'खंडिया' ।

खक्खर^३—संज्ञा पुं० [सं०] १. भिखारी की छड़ी । २. दे० 'खकर' (की०) ।

खक्खर^(४)—संज्ञा पुं० [?] पंजाब का एक पुराना प्रदेश तथा वहाँ के निवासी । उ०—खक्खर को देस । बारपो भक्खर भगाना जू ।—गंग ग्रं०, पृ० ६२ ।

खक्खा^५—संज्ञा पुं० [अ० कहकहा] जोर की हँसी । अट्टहास । कहकहा । उ०—पाह के खबर खूबी खुशी मानि खक्खा मारि, खतक के खाली करने की खैर भैर सो ।—रघुराज (शब्द०) ।

खखखा^२—संज्ञा पुं० [हि० खखी का ख, या 'खखर'] १. पंजाबी सिपाही ।

विशेष—पंजाब के खत्री प्रायः अपने आपको 'खख' कहा करते हैं; इसी से यह शब्द अनेक अर्थों में व्यवहृत होने लगा ।

२. अनुभवी पुरुष । तजुवेदार आदमी । ३. बड़ा और ऊँचा हाथी ।

खखखासाहु - संज्ञा पुं० [हि० खखखा + साहु] १. वह अनुभवी जो व्यापार में बहुत चतुर हो । २. खत्री जाति का व्यापारी ।

खखड़ा^३—वि० [देश० खखड़ा] १. शुष्क । नीरस । २. सूखा । खोखला ।

खखरा^४—संज्ञा पुं० [हि० खखड़ा] १. खंखरा । २. बाँस का बना हुआ बड़ा टोकरा ।

खखरा^५—वि० [हि० खखर] झीना । अत्यंत महीन ।

खखरिया^६—संज्ञा स्त्री० [देश०] मैदे और बेसन की बनी हुई पापड़ की तरह की हलकी पतली पूरी जो झलोनी होती है ।

खखसा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'खेकसा' या 'खेखसा' ।

खखार—संज्ञा पुं० [अनु०] गाढ़ा थूक या कफ जो खखारने से निकले । कफ ।

खखारना—क्रि० प्र० [सं० कफ क्षारण] १. पेट की वायु को फेफड़े से इस प्रकार निकालना जिससे खखराहट का शब्द हो तथा कभी कभी कफ या थूक भी निकले । २. दूसरे को सावधान करने के लिये गले से खखराहट का शब्द निकालना ।

खखेटना^७—क्रि० प्र० [देश०] १. दबाना । २. पीछा करना । ३. धाया करना । छेदना । उ०—वेई पठनेटे सेल साँगल खखेटे धूरि, धूरि सों लपेटे लेटे भेटे महाकाल के । —सूदन (शब्द०) ।

खखेटना^८—क्रि० प्र० [हि० खखेटा] खटका होना : आशंका होना । उ०—सोच भयो मुरनायक के कलपद्रुम के द्विज माँझ खखेटयो ।—कविता कौ०, भा० १, पृ० १५० ।

खखेटा^९—संज्ञा पुं० [हि० खखेटना] १. भगदड़ । दौड़धूप । २. दाब । दबाव । ३. छिद्र । ४. आशंका । खटका ।

खखेना^{१०}—क्रि० प्र० [देश०] दे० 'खखेटना' ।

खखेरा—संज्ञा पुं० [देश०] उपहास । कलंक । ताँछन ।

खखोंडर—संज्ञा पुं० [सं० ख + कोटर] १. पेड़ के कोटर में बना हुआ किसी पक्षी का घोंसला । २. उल्लू पक्षी का घोंसला ।

खखोरना^{११}—क्रि० प्र० [देश०] अच्छी तरह ढूँढ़ना । सब जगह खोज डालना । छानबीन करना ।

खखोल्क—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का नाम [को०] ।

विशेष—इनकी मूर्ति काशी में स्थित कही गई है । काशीखंड के ५०वें अध्याय में इनका विवरण है ।

खगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० खगङ्गा] आकाशगंगा । मंदाकिनी ।

खग^{१२}—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश में चलनेवाली वस्तु या व्यक्ति । २. पक्षी । चिड़िया । ३. बंधन । ४. बाण । तीर । ५. बह । तारा । सितारा । ६. बादल । ७. देवता । ८. सूर्य । ९. चंद्रमा । १०. वायु । हवा । उ०—खग रवि खग शशि खग

पवन खग अंबुद खग देव । खग विहंग हरि सुतक तजि खग उर सेवल सेव ।—अनेकार्थ० (शब्द०) ११. महादेव (को०) । १२. बलभ (को०) ।

खग^{१३}—वि० आकाशचारी । नभगामी [को०] ।

खग^{१४}—संज्ञा पुं० [सं० खङ्ग, हि० खंग] दे० 'खंग', 'खङ्ग' । (क) हाथी गखर खान खंति खग खोलि बिहृत्थं ।—पृ० रा०, १० १८ । (ख) नव ग्रहन मडि जुन सूर तोष । खग धम क्रम समर प्रदोष ।—पृ० रा०, ६।६ ।

खगकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ । उ०—बरणि न जाय समर खगकेतु ।—तुलसी (शब्द०) ।

खगखान—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्षकोटर । पेड़ का खोंडर [को०] ।

खगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छंद का नाम [को०] ।

खगना—क्रि० प्र० [हि० खग = काँटा] १. गड़ना । पैठना । चुभना । घेंसना । उ०—कह ठाकुर नेह के नेजन की उर में घनी आनि खगी सो खगी ।—ठाकुर (शब्द०) । २. चित्त में बैठना । मन में घेंसना । अंतर करना । उ०—जाही सों लागत नैन ताही के खगत नैन नख शिख लौ सब गात प्रसति ।—सूर (शब्द०) । ३. लग जाना । लिप्त होना । अनुरक्त होना । उ०—प्रफुलित बदन सरोज सुंदरी अंतरस नैन रंगे । पुहकर पुंडरीक पूरन मनो खंजन केलि खगे ।—सूर (शब्द०) । ४. चिह्नित हो जाना । छप जाना । उपट आना । उभर आना । उ०—यह सुनि धावत धरनि चर की प्रतिमा खगी पंथ में पाई ।—सूर (शब्द०) । ५. घटक रहना । घबल होकर रह जाना । गड़ जाना । उ०—करि कै महा घमसान । खगि रहे खंत पठान ।—सूदन (शब्द०) ।

खगनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ [को०] ।

खगपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. गरुड़ ।

विशेष—पक्षीवाची शब्दों के बाद स्वामीवाची या ध्वजावाची शब्द लगा देने से वह समस्त शब्द 'गरुड़' वाची हो जायगा । जैसे,—खगपति, खगराज, खगकेतु, खगनाथ, खगनायक ।

खगवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] लकुच का फल [को०] ।

खगवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] गृध्वी । धरती [को०] ।

खगवार—संज्ञा स्त्री० [देश०] गले का हंसुली नामक आभूषण । खंगौरिया ।

खगरात्रु—संज्ञा पुं० [सं०] पृथिवीपणी लता [को०] ।

खगस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेड़ का कोटर । खगखान । २. चिड़ियों का घोंसला [को०] ।

खगहा—संज्ञा पुं० [हि० खग = निकला हुआ पैना दाँत] गेंडा । उ०—खगहा करि हरि बाध बराहा । देखि महिष वृष साजु सराहा ।—तुलसी (शब्द०) ।

खगांतक—संज्ञा पुं० [सं० खगान्तक] खगों का अंत करनेवाला पक्षी । बाज । श्येन ।

खगासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु । २. उदयगिरि । उदयाचल नाम का पर्वत [को०] ।

खगुय—वि० [सं०] जिस राशि का गुणक शून्य हो (गणित) ।

खगोल—संज्ञा पुं० [सं० खगोल] गरुड़ [को०] ।

खगोल—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ ।

खगोल—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाशमंडल ।

विशेष—यद्यपि आकाश की कोई आकृति नहीं है, तथा विपरिमित दक्षिण के कारण वह गोलाकार देख पड़ता है। जिस प्रकार विद्वानों ने पृथ्वी की गोलाई में विषुवरेखा, अक्षांश और देशांतर रेखाओं तथा ध्रुव की कल्पना की है, ठीक उसी प्रकार खगोल में भी रेखाओं और ध्रुवों की कल्पना की गई है। ज्योतिषियों ने ताराओं के प्रधान तीन भेद किए हैं—नक्षत्र, ग्रह और उपग्रह। नक्षत्र वह है जो सदा अपने स्थान पर घटल रहे। ग्रह वह तारा है जो अपने सौर जगत् के नक्षत्र को परिक्रमा करे। और उपग्रह वह है जो अपने ग्रह की परिक्रमा करता हुआ उसके साथ गमन करे। जिस तरह हमारे सौर जगत् का नक्षत्र हमारा सूर्य है, उसी तरह प्रत्येक अन्य सौर जगत् का नक्षत्र उसका सूर्य है। पृथिवी की दैनिक और वृत्ताकार गतियों के कारण इन नक्षत्रों के उदय में विभेद पड़ता रहता है। यद्यपि गगनमंडल सदा पूर्व से पश्चिम की घूमता हुआ दिखाई पड़ता है, पर फिर भी वह धीरे धीरे पूर्व की ओर खसकता जाता है। इसलिये ग्रहों की स्थिति में भेद पड़ा करता है। प्राचीन आर्य ज्योतिषियों ने कुछ ऐसे तारों का पता लगाया था जो ग्रन्थों की अपेक्षा अत्यंत दूर होने के कारण अपने स्थान पर अचल दिखाई पड़ते थे। उन लोगों ने ऐसे कई तारों के योग से अनेक आकृतियों की कल्पना की थी। इनमें वे आकृतियाँ जो सूर्य के मार्ग के पास पास पड़ती थीं, अट्टाईस थीं। इन्हें वे नक्षत्र कहते थे। इन तारों से जड़ा हुआ गगनमंडल अपने ध्रुवों पर घूमता हुआ माना गया है। समस्त खगोल को प्राधुनिक ज्योतिर्विदों ने बारह वीथियों में विभक्त किया है, जिनमें प्रत्येक वीथी के अंतर्गत अनेक मंडल हैं। प्रथम वीथी में पर्शु, त्रिकोण, मेष, निमि, यज्ञकुंड और यमी ये छह मंडल हैं। द्वितीय में चित्रक्रमेल, ब्रह्म, वृष, घटिका, सुवर्णाश्रम और आठक ये छह मंडल हैं। तृतीय में मिथुन, कालपुरुष, शन, कपोत, मृगव्याध, अर्धवयान, चित्रपद, अश्र और चत्वाल नाम के नौ मंडल हैं। चतुर्थ में वन मारजार, कर्कट, शुनी, एकभृंगि, कृकलास और पतत्रिमीन मंडल नाम के छह मंडल हैं। पंचम वीथी में सिंहशावक, सिंह, हृदसर्प, षष्ठीश और वायुयंत्र नाम के पाँच मंडल हैं। षष्ठ में सप्तषि, सारमेय, करिमुड, कन्या, करतल, कास्थ, त्रिशंकु और मक्षिका आठ मंडल हैं। सप्तम में शिशुमार, भूतेश, तुला, शार्दूल, महिषासुर, वृत्त और भूमाट नामक सात मंडल हैं। अष्टम में हरिकुल, किरीट, सर्प, वृषिक और दक्षिण त्रिकोण पाँच मंडल हैं। नवम वीथी में तक्षक, वीणा, सर्पधारि, धनुष, दक्षिण किरीट, दूरबीक्षण और वेदि सात मंडल हैं। दशम में वक्र, शृगाल, बाण गरुड, अविष्टा, मकर, धनुवीक्षण, सिंधु, मयूर और अष्टांश नाम के दस मंडल हैं। एकादश में शेफालि, गोषा, पक्षिराज, अश्वतर, कुंभ, दक्षिण मीन, सारस और चंद्रभुत आठ मंडल हैं। और द्वादश

वीथी में काश्यपीय, ध्रुवमाता, मीन, भास्कर, संपाति, हृद और शव सात मंडल हैं। इन सब को लेकर बारह वीथियाँ और ८४ मंडल हैं। इनमें से प्राचीन भारतीय विद्वानों को शिशुमार (विष्णुपुराण), त्रिशंकु (वाल्मीकि), सप्तषि इत्यादि मंडलों का पता था। इन वीथियों को क्रमशः मेष, वृष, मिथुन, आदि वीथियाँ भी कहते हैं। सूर्य के मार्ग में अट्टाईस नक्षत्र पड़ते हैं, जिनके नाम अश्विनी आदि हैं। सूर्य मेष आदि बारह वीथियों में क्रमशः होकर जाता हुआ दिखाई पड़ता है, जिसे राशि या लग्न कहते हैं।

२. खगोल विद्या ।

खगोलक—संज्ञा पुं० [सं०] २० 'खगोल' [को०] ।

खगोलमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित ज्योतिष का वह अंग जिसमें तारों, नक्षत्रों की नाप जोख और गति, स्थिति आदि का विचार किया जाता है [को०] ।

खगोलविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जिससे खगोल अर्थात् ग्रह आदि की गति का ज्ञान प्राप्त हो। ज्योतिष ।

खगोल—संज्ञा स्त्री० [सं०] खगोल, प्रा० खगोल | तलवार । उ०—
हयं खगोल खगोल कटि तुष्टि यान् ।—पृ० रा०, ६६।१३७८ ।

खगोल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वेतस् । नरकुल या सरकंडा [को०] ।

खगोल—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा ग्रहण जिसमें सूर्य या चंद्र का सारा मंडल ढँक जाय । पूरा ग्रहण ।

खचन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० खचित] १. बाँधने या जड़ने की क्रिया । उ०—सर्वसाधारण के मनोरंजनार्थ रत्न को जैसे कुंदन में खचित करना पड़ता है, वैसे ही काव्य को उक्त गुणों से अलंकृत करना चाहिए ।—(शब्द०) । २. अंकित करने या होने की क्रिया । चित्रित होने की क्रिया । उ०—ध्यान रूपी चित्रालय में कौन कौन चित्र खचित हो गए ।—(शब्द०) ।

खचन—क्रि० प्र० [सं०] खचन . बाँधना, जड़ना] १. जड़ा जाना । उ०—मनि दीप राजहि भवन आर्जहि देहरी विद्रुम रची । मनिखंभ भीति विरंचि विरची कनकमणि मरकत खची । सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर अस्फटिकन रचे । प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बचन खचे ।—तुलसी (शब्द०) । २. अंकित होना । चित्रित होना । उ०—देत भाविरि कुंज मंडप पुलिन में वेदी रची । बैठे जो श्यामा श्याम बर नैलोक की शोभा खची ।—सूर (शब्द०) । ३. रम जाना । अड़ जाना । उ०—आजु हरि ऐसी रास रच्यो ।—गतगुन मद अभिमान अधिक खचि लै लोचन मन तहई खच्यो ।—सूर०, १०।११३६ । ४. अटक रहना । फँसना । उ०—नैना पंकज पंज खचे । मोहन मदत श्याम मुख निरखत भुवन विलास रचे ।—सूर (शब्द०) ।

खचन—क्रि० प्र० १. अंकित करना । २. जड़ना ।

खचमस—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०] ।

खचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. मेष । ३. ग्रह । ४. नक्षत्र । ५. वायु । ६. पक्षी । ७. बाण । ८. तीर । ९. राक्षस । १०. संगीत

दामोदर के अनुसार एक ताल का नाम जिसे रूपक भी कहते हैं । १०. कसीस ।

खचर^२—वि० आकाश में चलनेवाला । खेचर ।

खचरा—वि० [हि० खचर] १. वरगंसकर । दोगला । २. दुष्ट । पावी ।

खचाखच—क्रि० वि० [अनु०] बहुत भरा हुआ । ठसाठस । जैसे,—
देखते ही देखते सारा कमरा खचाखच भर गया ।

खचाना^३—क्रि० स० [सं० √ कृष्; प्रा० √ खच] दे० 'खेंचना' ।

मुहा०—अपनी खचाना = अपनी ही कही हुई बात को बार बार पुष्ट करते जाना, दूसरे के तर्क को कुछ न सुनना । उ०—
सुनी थीं मैं काल अपनी लोक लोकन कीति । सूर प्रभु अपनी खबाई रही निगमन जीति ।—सूर (शब्द०) ।

खचारी^४—संज्ञा पुं० [सं० खचारिन्] १. स्कंद का नाम । २. दे० 'खचर' (को०) ।

खचारी^५—वि० दे० 'खचर' ।

खचावट—संज्ञा स्त्री० [हि० खचना] १. खचन । २. गठन । †३. लिखावट ।

खचित—वि० [सं०] १. लींचा हुआ । चित्रित या लिखित । २. प्राबद्ध । जटित । ३. युक्त । संयुक्त । ४. परिपूर्ण । भरा हुआ (को०) । ५. विभिन्न प्रकार के तारों से तैयार या सिला हुआ (वस्त्र), (को०) ।

खचित्र—संज्ञा पुं० [सं०] अनहोनी और असंभव वार्ता अथवा वस्तु (को०) ।

खचिया^६—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'खेंचिया' ।

खचीना^७—संज्ञा पुं० [हि० खचाना] १. रेखा । लकीर । २. चिह्न ।

खचेरना^८—क्रि० स० [हि० खचना] घसीटना । बलपूर्वक खींचना ।

खचर^९—संज्ञा पुं० [देश०] १. गधे और घोड़े के संयोग से उत्पन्न एक पशु ।

विशेष—यह पशु घोड़े से बहुत मिलता जुलता होता है । इसके कान आदि अवयव गधे के समान होते हैं, पर शक्ति इसकी घोड़े से भी कुछ अधिक होती है । यह दीर्घजीवी होता है, बहुत कम बीमार पड़ता है और अधिक परिश्रम कर सकता है; इसीलिये कई अवसरों पर यह घोड़े की अपेक्षा अधिक उपयोगी होता है । यह घोड़े की तरह समझदार होता है; और ऊँची नीची भूमि पर इसका पैर बहुत मजबूत बैठता है । फौजों में और पहाड़ों पर इससे बहुत काम निकलता है ।

२. दे० 'खचरा' ।

खज^{१०}—वि० [म० खज, प्रा० खज्ज] खाने योग्य । जो खाया जा सके । भक्ष्य । उ०—छाली हंसन की चले चरन बोंब करि लाल । लखि परिहै बक तव कला, भक्ष्य भारत ततकाल । भक्ष्य भारत ततकाल ध्यान मुनिवर सों भारत । बिहृत पंख फुलाय नहीं खज भक्ष्य बिचारत । बरनै दीनदयाल बैठि हंसन की छाली । मंद मंद पग देत अहो यह छल की चाली ।—दीनदयाल (शब्द०) ।

यौ०—खज भक्ष्य = भक्ष्याभक्ष्य ।

खज^{११}—संज्ञा पुं० [सं०] १. मयानी । मंथनचक्र । २. मंथन की क्रिया । ३. कलछुल । दर्वी । ४. संघर्ष । युद्ध (को०) ।

खजक—संज्ञा पुं० [सं०] मयानी (को०) ।

खजप—संज्ञा पुं० [सं०] तपाया हुआ मखन । घी (को०) ।

खजमज—वि० [अनु०] खराब, भारी या गिरी हुई (तबीयत) ।

खजमजाना—क्रि० प्र० [अनु०] तबीयत का खराब या भारी होना ।

खजल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ओस । २. वर्षा । ३. कोहरा (को०) ।

खजला—संज्ञा पुं० [हि० खज्जा] एक प्रकार का पकवान जिसे खजा भी कहते हैं । उ०—गुपचुप गुना गुल पापरियाँ । खजला सुखचूरि पड़ाखरियाँ ।—सूदन (शब्द०) ।

खजलिया—संज्ञा पुं० [देश०] ग्रंगूर के पौधों का एक रोग जिसमें उसके पत्तों और बंठलों पर काली काली धूल सी जम जाती है और पत्ता बीरे बीरे सूखता जाता है ।

खजहजा—संज्ञा पुं० [सं० खज्जा, प्रा० खज्जाज्ज] खाने योग्य उत्तम फल या मेवा । उ०—(क) और खजहजा उनकर नाऊँ । देखा सब राजन भँवरऊँ ।—जायसी (शब्द०) । (ख) फरे खजहजा दाहिम दाखा । जो वह पंथ जाइ सो खाखा ।—जायसी (शब्द०) ।

खजांची—संज्ञा पुं० [फा० खजानची] कोषाध्यक्ष ।

खजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मयानी । २. मंथन का कार्य । मंथन । ३. दर्वी । ४. विनाश । विध्वंस । ५. संघर्ष । युद्ध (को०) ।

खजाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक पक्षी (को०) ।

खजाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दर्वी । कलछुल (को०) ।

खजाजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'खजाका' (को०) ।

खजानची—संज्ञा पुं० [फा० खजानची] खजाने का अफसर । कोषाध्यक्ष ।

खजाना—संज्ञा पुं० [म० खजानह] १. वह स्थान जहाँ धन संग्रह करके रखा जाय ।—धनागार । २. वह स्थान जहाँ कोई चीज संग्रह करके रखी जाय । कोष । ३. राजस्व । कर । ४. आधिक्य । बाहुल्य । ५. बंदूक में बारूद रखने की जगह ।

क्रि० प्र०—देना ।—माँगना ।—जमा करना ।—पहुँचाना ।

यौ०—खजाना अफसर = वह अधिकारी जिसके यहाँ जिले की सरकारी आय जमा होती है ।

खजार—संज्ञा पुं० [म० खजार] १. बहुत अधिक पानी मिला हुआ दूध (को०) ।

खजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कलछी । दर्वी (को०) ।

खजित—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के गूथ्यवादी बौद्ध ।

खजिला—वि० [फा०] खजित । शरमिदा ।

खजोना—संज्ञा पुं० [फा० खजोनह] खजाना । उ०—कायर भागा पीठ दै, सूर रहा रन माहि । पट लिखाया गुरू पै खरा खजोना खाहि ।—कबीर सा० मं०, पृ० २६ ।

खजुआ^{१२}—संज्ञा पुं० [हि० खजा] खजा नाम की मिठाई । खजला । उ०—दोना मेलि घरे हैं खजुआ । हाँस होय तो त्याऊँ पूवा ।—सूर (शब्द०) ।

खजुआ^१—मंजु पुं० [सं० खाद्य, पा० खाज्ज] अठवीस नामक भक्ष्य । भटनास ।

खजुआ^२—संज्ञा पुं०, वि० [हि०] दे० 'खजुआ' ।

खजुरहट—संज्ञा स्त्री० [हि० खजूर] नेपाल की तराइयों में उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का खजूर ।

विशेष—इसके पेड़ हाथ से हाथ ऊँचे होते हैं । इसकी पत्तियाँ साधारण खजूर से कुछ छोटी होती हैं और चटाई आदि बनाने के काम में आती हैं । इसके फल में प्रायः बीज ही बीज होता है जिसके कारण यह खाने योग्य नहीं होता ।

खजुरहट^३—संज्ञा स्त्री० [हि० खजूर] दे० 'खजुरहट' ।

खजुरा^४—संज्ञा पुं० [हि० खजूर] दो या तीन लर का बटा हुआ एक प्रकार का डोरा जिसके एक सिरे पर फुंदना होता है और जिसके साथ स्थिरा सिर की छोटी पूँछती है ।

खजुराहा—संज्ञा पुं० [सं० खजूर खाहक] दे० 'खजुराहो' । उ०—
यशोव्रमन् ने खजुराहि में एक मंदिर बनवाया —हिंदु०
सभ्यता, पृ० ४६४ ।

खजुराही—संज्ञा स्त्री० [हि० खजूर] वह स्थान जहाँ खजूर के बहुत से पेड़ हों ।

खजुराहो—संज्ञा पुं० [सं० खजूर खाहक] मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले का एक गाँव जो चंदेलों की प्रारंभिक एवं धार्मिक राजधानी रहा है ।

विशेष—यहाँ के मंदिर अपनी स्थापत्य कला की दृष्टि से दर्शनीय हैं । इनका निर्माण नवीं शती से ११वीं तक माना जाता है । स्थानीय परंपरा के आधार पर यहाँ पहले ८५ मंदिर थे किन्तु अब उनमें से २५ रह गए हैं जो अपनी विभिन्न दशाओं में सुरक्षित हैं ।

खजुरिया^१—संज्ञा स्त्री० [सं० खजूरिका] १. प्रकार की खजूर जिसके फल कुछ छोटे होते हैं । २. खजूर नाम की मिठाई । ३. एक प्रकार की ईंख जो गूरत के भाग पास होती है ।

खजुरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० खजुली] दे० 'खजुली' ।

खजुलाना—क्रि० सं० [हि० खजुलाना] दे० 'खजुलाना' ।

खजुली^३—संज्ञा स्त्री० [सं० खजुली] १. दे० 'खजुली' । २. एक प्रकार की काई जिसके छू जाने से खजुली उत्पन्न हो जाती है ।

खजुली^४—संज्ञा स्त्री० [हि० खाजा] खाजे की तरह की एक मिठाई जो चीनी में पगी होती है ।

खजूर—संज्ञा पुं० [सं० खजूर] १. एक प्रकार का पेड़ जो गरम देशों, समुद्र के किनारे या रेतीले मैदानों में होता है ।

विशेष—इस जाति के पेड़ सीधे खंभे की तरह ऊपर चले जाते हैं और उनके सिरे पर पत्तियाँ बहुत कड़ी, चार अंगुल से छह सात अंगुल तक लंबी, पतली और नुकीली होती हैं और एक सीके या छड़ी के दोनों ओर लगती हैं । पत्ते की यह छड़ी दो तीन हाथ तक लंबी होती है । खजूर कई प्रकार के होते हैं, जिनमें मुख्य दो हैं एक जंगली, दूसरा देशी । जंगली खजूर को सेंधी, खरक आदि कहते हैं । यह बहुत ऊँचा नहीं

होता और हिंदुस्तान में बंगाल, बिहार, गुजरात, करमंडल आदि प्रदेशों में होता है । लगाए हुए खजूर में जड़ के पास अंकुर निकलते हैं, जंगली में नहीं । जंगली के फल भी किसी काम के नहीं होते । ताड़ की तरह इसमें से भी पाछकर एक प्रकार का सफेद रस या दूध निकालते हैं और उसे भी ताड़ों कहते हैं । खजूर की ताजी ताड़ी मीठी होती है और उससे गुड़ तथा सिरका भी बनाया जाता है ।

लगाए जानेवाले खजूर को पिंड खजूर कहते हैं । इसका पेड़ साठ सत्तर हाथ ऊँचा होता है और जब छह वर्ष के ऊपर का हो जाता है, तब उसके नीचे जड़ के पास बहुत से छोटे छोटे अंकुर निकलते हैं । इस प्रकार के खजूर सिंध, पंजाब, गुजरात और दक्षिण में अधिक होते हैं । वहाँ इनकी खेती की जाती है । पीछे बीज से और जड़ के पाम के अंकुरों से उत्पन्न किए जाते हैं । पेड़ लगाने के लिये बलुई, दोमट और मटियार सब प्रकार की भूमि काम में लाई जा सकती है; पर पृथिवी में खार का कुछ अंश अवश्य होना चाहिए । तीन से छह वर्ष तक के अंकुर मुख्य पेड़ के पास से खोद लिए जाते हैं और उनकी बड़ी बड़ी पत्तियाँ काटकर फेंक दी जाती हैं । फिर इन पीछों को तीन फुट गहरे और चौड़े गड्ढों में दो ढाई सेर खली मिली हुई खाद के साथ बैठते हैं । जब पीछा आठ वर्ष से अधिक पुराना होता है, तब वह फलने लगता है । माघ फागुन में बालियाँ निकलती हैं । ये बालियाँ पत्ते के आवरण में लिपटी रहती हैं और पीछे बढ़कर फूल की घोंद हो जाती हैं । फल बड़े बड़े घोंद में लगते हैं । जबतक फल पक नहीं जाते, बराबर अधिक पानी देने की आवश्यकता पड़ती है । फल पकने के समय पीले होते हैं, फिर फूल आते हैं और अंन में लाल हो जाते हैं । इन फलों को छुहारा कहते हैं । सिंध में पेड़ के पके फल को खुरमा और पकने के पहले तोड़े हुए फल को छुहारा कहते हैं । इनकी अनेक जातियाँ हैं, पर नूर आदि अच्छी मानी जाती है ।

खजूर की लकड़ी बंडेर के काम आती है और इससे पुल भी बनाया जाता है । इसकी पत्तियों के डंठल से घर छापे जाते हैं और उनकी छड़ी भी बनाई जाती है । इसकी छान से एक प्रकार की लाल बुकनी निकलती है, जिससे चमड़ा रंगा जाता है । इसकी छाल चमड़ा सिंभाने के भी काम आती है । इससे एक प्रकार का गोंद भी निकलता है, जिसे 'हुकुमचिल' कहते हैं और जो दवा के लिये काम आता है । इसकी नरम पत्तियाँ, जिन्हें गाछी कहते हैं, सुखाकर रखी जाती हैं और उनकी तरकारी बनाई जाती है । इसकी छाल के रेशे से रस्सी बटी जाती है । अरब में इसके फूल की बाली के आवरण से, जिसे 'तर' कहते हैं, एक प्रकार का गुलाब या केवड़े की तरह का अर्क निकाला जाता है । वैद्यक में इसका फल पुष्टिकारक, वृध्य, वातपित्ताशक, कफघ्न, रुचिकर और अग्निवर्धक माना गया है ।

२. एक प्रकार की मिठाई जो आटे में घी और शक्कर मिलाकर गूँथकर बनाई जाती है । यह खाने में खसमसी और स्वादिष्ट होती है ।

खजूर छड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० खजूर + छड़ी] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जिसपर खजूर की पत्तियों की तरह छड़ियाँ या धारियाँ होती हैं।

खजूरा—संज्ञा पुं० [हि० खजूर] १. फूस से छाई हुई छत की बँडेर जो प्रायः खजूर की होती है। मँगरा। २. दे० 'कनखजुरा'।

खजूरी—वि० [हि० खजूर + ई (प्रत्यय)] १. खजूर संबंधी। खजूर का। २. खजूर के आकार का। खजूर की तरह का। ३. तीन तर का गूँथा हुआ। जैसे,—खजूरी चोटी, खजूरी डोरा।

खजूरी—संज्ञा स्त्री० [हि० खजूर] खजूर का फल। खजूर। उ०—कोई बिजौर करौदा खूरी। कोई अमिली कोई महुअ खजूरी।—जायसी (शब्द०)। २. दे० 'खजूर'। उ०—कीन्हैस तरिवर तार खजूरी।—जायसी ग्रं०, पृ० १।

खजोहरा—संज्ञा पुं० [सं० खजु + हर, प्रा० खजु + हर] एक तरह का रोएँदार कौड़ा जिसके शरीर पर रंगे या सू जाने से खुजली होने लगती है। उ०—डाल पर बड़ा सा था खजोहरा।—कुतुरा, पृ० ४३।

खज्योति—संज्ञा पुं० [सं०] ख्योत। जुगनू [को०]।

खट—संज्ञा पुं० [सं०] १. कफ। बलगम। २. अंधा कूड़ा। ३. घूसा। मुक्का। ४. एक प्रकार की सुगंधित घास। ५. कुल्हाड़ी। ६. हल।

खट—संज्ञा पुं० [सं० खट्] १. पांडव जाति का एक राग।

विशेष—यह दीपक राग का पुन माना जाता है। इसके गाने का समय प्रातःकाल एक बंद से पाँच बंद तक है। इसमें मध्य स्वर वादी होता है। कोई कोई इसे आसावरी, ललित, टोड़ी, भैरवी आदि रागिनियों से उत्पन्न संकर राग मानते हैं।

२. (क) खट की संख्या। उ०—(क) येक बार रहस्युं खट मास।—बी० रासो, पृ० ३६। (ख) खट सरदार नमीठ खडग्ये।—रा० रू०, पृ० २७६।

खट—संज्ञा पुं० [अनु०] दो चीजों के परस्पर टकराने या किसी कड़ी चीज के टूटने से उत्पन्न शब्द।

यौ०—खटखट। खटपट। खटाखट।

मुहा०—खट से = तुरंत। तत्काल। जैसे,—जरा याद दिलाते ही उसने खट से रुपए गिन दिए। उ०—दोनों छम्मीजान के साथ साथ पाटेनाले पर किसी हाफिज जी के बइतुलखुल्फ में खट से जा पहुँचे।—फिसाना, भा० १, पृ० ८।

खट—संज्ञा पुं० [हि०] खट शब्द का समास में व्यवहृत रूप। जैसे,—खटमल, खटवारी, छपरखट आदि।

खटक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. खटकना का भाव। २. खटका।

खटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शादी विवाह करानेवाला। घटक। २. आधी खुली मुट्ठी। ३. घूसा। मुष्टि [को०]।

खटकना—क्रि० प्र० [अनु०] १. 'खट' 'खट' शब्द होना। खटखटाहट होना। जैसे, किवाड़ खटकना। २. शरीर में किसी

काँटे आदि के गड़ने या कंकरी, तिनका आदि बाहरी चीजों के आ पड़ने के कारण रह रहकर पीड़ा होना। जैसे,—पैर में काँटा खटकना या आँखों में सुरमा खटकना। ३. बुरा मालूम होना। खलना। जैसे,—तुम्हारा यहाँ रहना सब को खटकता है। ४. 'आँख में खटकना'। ५. विरक्त होना। उचटना। हटना। जैसे,—अब तो हमारा जी यहाँ से खटक गया। ६. डरना। भय करना। जैसे,—वह यहाँ आते हुए खटकते हैं। ७. परस्पर झगड़ा होना। आपस में लड़ाई होना। जैसे,—आजकल दोनों भाइयों में खटक गई है। ८. किसी प्रकार के अनिष्ट या अपकार का अनुमान होना। अनिष्ट की भावना या आशंका होना। जैसे,—हमें यह बात उसी समय खटकी थी; पर कुछ सोचकर हम चुप रह गए। ९. अनुपयुक्त जान पड़ना। ठीक न जान पड़ना। जैसे,—यह शब्द कुछ खटकता है, बदल दो।

संयो० क्रि०—जाना।

खटकनी—संज्ञा स्त्री० [हि० खटकना] खट खट। खट खट करती हुई आवाज। उ०—खटकनी ढालन की अस अनकन तरवारन।—प्रेमचन०, भा० १, पृ० १३।

खटकरम—संज्ञा पुं० [सं० खट्कर्म] दे० 'खट्कर्म'। उ०—जानहीन के सुन खटकरमा। धर्मदास उनके ये धर्मा।—कबीर सा०, पृ० ८१६।

खटकरमी—वि० खट्कर्म करनेवाला। खटराग फैलानेवाला।

खटकर्म—संज्ञा पुं० [सं० खट्कर्म] दे० 'खट्कर्म'। उ०—हमके तुमके सबके छूई एह खटकर्म बनाई।—सं० दरिया, पृ० ६३।

खटका—संज्ञा पुं० [हि० खटकना] १. 'खट खट' शब्द। जैसे, जरा सा खटका होते ही पत्नी उड़ गई। २. डर। भय। आशंका। उ०—अब कोई खटका नहीं है; बासमती कुछ कर नहीं सकती।—अयोध्या (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।—मिटना।—पड़ना।—होना।

३. चिंता। फिक्र। जैसे,—तुम्हारे न आने के कारण रात भर सबको खटका लगा रहा।

क्रि० प्र०—लगना।—मिटना।—होना।—पड़ना।

४. किसी प्रकार का पेंच, कील या कमाना, जिसकी सहायता से किसी प्रकार का आवरण खुलता या बंद होता हो अथवा इसी प्रकार का और कोई कार्य होता हो। जैसे,—(क) खटका दबाते ही दरवाजा खुल गया। (ख) खटका दबाते ही सारे कमरे में बिजली का प्रकाश हो गया।

क्रि० प्र०—बनाना।

मुहा०—खटके पर होना = खटके के सहारे रहना। जैसे,—'कमरे के बीच खटके पर एक चौकोर पत्थर था, जो ऊपर से दबाते ही नीचे की ओर झूलने लगा।'

५. किवाड़े की सटकनी। बिल्ली।

क्रि० प्र०—गिराना।—लगाना।

६. बाँस का वह टुकड़ा जो फलदार वृक्षों में पक्षियों को डराकर उड़ाने के लिये बाँधा जाता है। इसके नीचे जमीन तक

खटकती हुई एक लंबी रस्सी बंधी रहती है, जिसे हिलाने या झटका देने से वह टुकड़ा किसी ढाल या तने से टकगकर 'खट' 'खट' शब्द करता है। खटखटा। खड़खड़ा।

क्रि० प्र०—खगाना।—बांधना।

खटकाना—क्रि० स० [हि० खटकना] १. 'खट' 'खट' शब्द करना। किसी वस्तु पर इस प्रकार आघात करना जिसमें खट खट शब्द हो। जैसे,—किवाड़ खटकाना, जंजीर खटकाना। २. झंका उत्पन्न करना। झटकाना (वच०)। ३. बिगाड़ करा देना। झगड़ा करा देना।

खटकामुख—संज्ञा पुं० [हि० खटका] १. नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा। २. तीर चलाने का एक आसन। ३. बाण चलाने के समय हाथों की मुद्रा (की०)।

खटकीड़ा, खटकीरा—संज्ञा पुं० [हि० खाट + कीरा] दे० 'खटमल'।

खटकना(पुं०)—क्रि० म० [हि० खटकना] दे० 'खटकना'। उ०—खटवके खटं सो विहू गूर वारे।—प० रासो, पृ० ८२।

खटक्कका—संज्ञा स्त्री० [म०] गवाक्ष। सिड़की (की०)।

खटक्रम(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० खट् क्रम; प्रा० खटक्रम] दे० 'पट् क्रम'। उ०—खटक्रम महिन जे विप्र होते हरि भगति चित पढ़ नाही रे।—रै० बानी, पृ० ४१।

खटखट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. 'खट' 'खट' शब्द। २. झंझट। झमेला। जैसे,—इस काम में बड़ी खटखट है, यह हमसे न होगा। ३. लड़ाई। झगड़ा। जैसे,—रात दिन की खटखट बुरी होती है।

खटखटा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खटका—६'।

खटखटाना—क्रि० म० [अनु०] १. खट खट शब्द करना। किसी वस्तु को ठोकना या पीटना। खड़खड़ाना। जैसे,—दरवाजा या कुंडी खटखटाना। २. रमण करना। याद दिलाना। ३. जैसे,—बीच बीच में उसे खटखटाए चलो, रुपया मिल ही जायगा।

खटखटिया—संज्ञा पुं० [अनु०] खट खट शब्द करनेवाली काठ की चट्टी। कठनही। (बोल०)।

खटखटिया—वि० [अनु०] दे० 'खटपटिया' (बोल०)।

खटखादक—संज्ञा पुं० [म०] १. शृगाल। सियार। २. कोआ। ३. पशु। जानवर। ४. शीशे का पात्र या बर्तन। ५. खानेवाला प्राणी (की०)।

खटना—क्रि० म० [देश० खट्टण] धन उपार्जन करना। कमाना। (पश्चिम)। २. अधिक परिश्रम करना। कड़ी मेहनत करना। जैसे,—दिन रात खट खट कर तो हमने मकान बनवाया; और आप मानिक मनवर आ बैठे। ३. कठिन समय में टहरे रहना। विपत्ति में पीछे न हटना। १. प्राप्त करना। पाना। उ०—धन ये पुण्य बढ़ा पणघारी, खलक सिरोमण मुजस खटे।—रघु० ६०, पृ० २४। ५. बूढ़ना। खोजना। उ०—सित हूर आपच्छर वीद खटे। किरमाल वहै वरमाल कटे।—रा० ६०, पृ० ३६।

खटपट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. झंझट। लड़ाई। झगड़ा। जैसे—

(क) उन दोनों में न जाने क्यों खटपट हो गई है। (ख) रोज रोज की खटपट अच्छी नहीं। २. दो कठोर वस्तुओं के टकराने का शब्द। 'खट खट' का शब्द। उ०—झंग बचाय उछरि पग धरै। झपटहि गदा गदा सों लरै। खटपट चोट गदा फटकारी। लागत शब्द कोलाहल भारी।—लक्ष्म (शब्द०)। ३. झमेला। झाल जाल। झंझट। बखेड़ा। उ०—ठाकुर कहत कोऊ हरि हरिदास जे बे तिनकी न व्यापं जे दुनी के खटपट है।—ठाकुर ग०, पृ० १३। ४. ऊहापोह। संशय। उ०—जो मन की खटपट मिटै, खटपट दरसन होय।—संतबानी०, भा० १, पृ० ५६।

खटपटिया—वि० [हि० खटपट] लड़ाई करनेवाला। झगड़ालू।

खटपटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खटपट—१'। उ०—भीख भागि बर खाय खटपटी नीक न लागै। भरी गोन गुड़ तजै तहाँ से साँभै भागै।—पलटू०, पृ० ७।

खटपट—संज्ञा पुं० [सं० खटपट] दे० 'खटपट'।

खटपटी—संज्ञा स्त्री० [सं० खटपटी] दे० 'खटपटी'।

खटपाटी—संज्ञा स्त्री० [हि० खाट + पाटी] खाट की पाटी। उ०—लचि लाय रही खटपाटी करोट ले भातो महोदधि को तट ज्यों। कटु बोल सुनो पटुता मुख की पटु दै पलटी पलटी पर ज्यों।—देव (शब्द०)।

मुहा०—खटपाटी लेना या लगना = हट या क्रोध के कारण स्वयं को काम धंधा छोड़ देना।

खटपापड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] करमई नाम का पेड़ जिसे झमली भी कहते हैं।

खटपूरा—संज्ञा स्त्री० [हि० खट + पूरा] मिट्टी तोड़कर बराबर करने की मृगरी।

खटबुना—संज्ञा पुं० [हि० खाट + बुना] खाट या चारपाई आदि बुननेवाला।

खटभिलार्वा—संज्ञा पुं० [देश०] पियाल नामक वृक्ष जिसमें चिरोजी होती है।

खटभेमल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़।

विशेष—यह हिमालय की तराई, आसाम, बंगाल और दक्षिण भारत में होता है। इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी हाती हैं और चारे के काम में आती हैं। जेट से कुआर तक इसमें एक प्रकार के पीले छोटे फूल और तदुपरांत मटर के समान छोटे फल लगते हैं, जो पकने पर काले हो जाते हैं।

खटमल—संज्ञा पुं० [हि० खाट + मल = मेल] मटमेले उन्नाबी रंग का एक प्रसिद्ध कीड़ा जो गरमी में मैली खाटों, कुरसियों और बिस्तरों आदि में उत्पन्न होता है। खटकीड़ा। उड़स।

विशेष—यह अपने डंक द्वारा मनुष्य के शरीर से रक्त चूसता है। यह आकार में प्रायः उरद के दाने के बराबर होता है; और इसके अंडे बहुत छोटे छोटे और सफेद होते हैं। अंडे से निकलने के प्रायः तीन मास बाद यह पूरे आकार का होता है। इसे छूने से बहुत बुरी दुर्गंध निकलती है। बहुत अधिक गरमी या सरदी में यह मर जाता है।

खटमली—वि० [हि० खटमल] खटमल के रंग का । गहरा उष्मावी या खैरा (रंग) ।

खटमिट्टा—वि० [हि० खट्टा + मीठा] कुछ खट्टा और कुछ मीठा । जिसमें खट्टा और मीठा दोनों स्वाद हों ।

खटमीठा—वि० [हि०] दे० 'खटमिट्टा' ।

खटमुख—संज्ञा पुं० [सं० खट्मुख] दे० 'खटमुख' ।

खटमुत्ता—वि० [हि० खट + घूटना] खट पर घूटनेवाला (बालक) ।

खटरस—वि० [सं० खट्स] दे० 'खट्स' ।

खटराग^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खटराग' ।

खटराग^२—संज्ञा पुं० [सं० खटराग = कई चीजों का मेल] १. भ्रंश । बखेड़ा । उ०—प्यारी की गिलहरी बया कम खटराग है न कि बच्चों का पालना ।—फिसाना०, भा०, ३. पृ० २६० ।

क्रि० प्र०—करना ।—फैलाना ।—मचाना ।

२. भंगड़ खंगड़ । फाट कबाड़ । व्यर्थ और अनावश्यक चीजें ।

क्रि० प्र०—फैलाना ।

खटरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कीड़ा ।

खटलर—संज्ञा पुं० [देश०] सान धरनेवालों का एक औजार जो लकड़ी का होता है ।

खटला^१—संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों के कानों का छेद जिसमें वे बालियाँ पहनती हैं ।

खटला^२—संज्ञा पुं० [सं० कलत्र] स्त्री और बाल बच्चे । परिवार । कुटुंब (वक्षिण) ।

खटवाँसा—संज्ञा पुं० [सं० खट्वा + वास] हसकर खट पर पड़ जाने की स्थिति । दे० 'खटवाट' । उ०—यहाँ वह खटवाँस लेकर पड़ी अब पकवान कोन बनाये ।—काया०, पृ० १२२ ।

खटवाट(पु) —संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खटपाटी' । उ०—मैं तोहि लागि लेति खटवाट । खोजति पतिहि जहाँ लगी घाट ।—जायसी (शब्द०) ।

खटवाटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खटपाटी' ।

खटाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खट्टा] १. खट्टापन । अम्लता । तुरशी । २. वह वस्तु जिसका स्वाद खट्टा हो । जैसे, आम, इमली आदि ।

मुहा०—खटाई देना या खटाई में देना = गहने आदि को साफ करने के लिये खटाई में रखना । खटाई में डालना = बहुत दिनों तक व्यर्थ किसी चीज या काम को लेकर लटकाए रखना । अम्ल में डालना । दुविधा में डालना । कुछ नियंत्रण न करना । खटाई में पड़ना = दुविधा में पड़ना । अनिश्चित दशा में होना ।

विशेष—सोनाओं को जब चीज बनाने की दी जाती है, तब तकाजा करने पर वे कभी कभी कह देते हैं कि वह अभी खटाई में पड़ी है ।

खटाक—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'खटाका' ।

मुहा०—खटाक से = दे० 'खट से' । उ०—सगे किवाड़ों को खटाक से खोल जोर से टकराता ।—माद्री, पृ० १२१ ।

खटाका—संज्ञा पुं० [अनु०] 'खट' का शब्द ।

खटाखट^१—संज्ञा पुं० [अनु०] 'खट खट' का शब्द ।

खटाखट^२—क्रि० प्रि० १. खटखट शब्द के साथ । २. चटपट । जैसे, —तकाजा नहीं करना पड़ा; सूरत देखते ही उसने खटाखट रूप गिन दिए । ३. जल्दी । शीघ्र ।

खटाना^१—क्रि० प्र० [हि० खट्टा] किसी वस्तु में खट्टापन आ जाना । खट्टा होना । जैसे, —गिरके का खटाना ।

खटाना^२—क्रि० प्र० [सं० स्कभ, > स्कब्ध, प्रा० खट्टु = ठहरा हुआ] १. निर्वाह होना । गुजारा होना । टिकना । निभना । उ०—(क) सहज एकाकिन के भवन, कयहुँ न नारि खटाहि ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) ज्यों जल मीन कमल मधुपन को छिन नहि प्रीति खटाति ।—गूर (शब्द०) । २. परीक्षा में ठहरना । उ०—जो मन लागे रामवरन अस । द्वंद्वरहित गतमान जानरत विषयविरत खटाय नाना कस ।—तुलसी (शब्द०) ।

खटाना^३—क्रि० प्र० [हि० खटना] श्रम में प्रयुक्त करना । मेहनत कराना ।

खटापट—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खटपट' ।

खटापटी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खटपट' ।

खटमिठा^१—वि० [हि०] दे० 'खट्टा मिठा' । उ०—खावते जुग सब चलि जावे । खटमिठा फिर पछतावे ।—दक्षिणी०, पृ० १०५ ।

खटारना(पु) —क्रि० प्र० [सं० खालन या देश०] पखारना । खोना । उ०—इतना करि तब चरण खटारो । होय अमीन तब मन को मारो ।—कबीर रा०, पृ० ५५८ ।

खटाला^१—संज्ञा पुं० [सं० कटाल] समुद्र की ऊँची लहर जो पूर्णिमा के दिन उठती है ।

खटाला^२—संज्ञा पुं० [देश०] वह स्थान या घेरा जहाँ गाय भैंस आदि रखी जाती है ।

खटाब^१—संज्ञा पुं० [हि० खटाना] निर्वाह । गुजर । जैसे,—तुम्हारी ऐसी बुरी आदत है कि किसी के साथ तुम्हारा खटाब नहीं हो सकता । २. खटने या श्रम करने की स्थिति । ३. खट्टापन । खटास ।

खटाब^२—संज्ञा पुं० [देश०] वह खूँटा जिसे गाड़कर नाव बांधते हैं ।

खटास^१—संज्ञा पुं० [सं० खट्बास] मुखकविलाई । गंधबिलाव ।

खटास^२—संज्ञा स्त्री० [हि० खट्टा] खट्टापन । खटाई । तुरशी ।

खटिक^१—संज्ञा पुं० [सं० खट्टिक] [स्त्री० खटकिन] हिंदुओं के अंतर्गत एक छोटी जाति जिसका काम फल तरकारी आदि बोना और बेचना है । बुंदेलखंड में इस जाति के लोग भंग और बिहार में ताड़ी भी बेचते हैं ।

खटिक^२—संज्ञा पुं० [सं०] अर्थविकसित हस्ताश्र । आधी खुली मुठ्ठी [को०] ।

खटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'खड्गिका' । उ०—सेप मुकृति, सुचि, सत्वगुन, संतनि के मन हास । सीपि चून, भोडर फटिक, खटिका फेन प्रकाश ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ११२ । २. कान का बाहरी छिद्र । कान का छेद [को०] ।

खटिकायुग—संज्ञा पुं० [सं० खटिका + युग] खटिका नामक एक धातु-विशेष का काल या युग । उ०—द्वितीय कल्प के अंतिम भाग खटिका युग से एक भारी भूकंपों का सिलसिला शुरू हुआ ।—भारत० नि०, पृ० १६ ।

खटिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खड़िया [को०] ।

खटिया—संज्ञा स्त्री० [हि० खाट + इया (प्रत्य०)] छोटी चारपाई या खाट । खटोली ।

मुहा०—खटिया मचमचाती निकलना = मृत्यु प्राप्त करना । मृत्यु की स्थिति को प्राप्त करना (म्रियी) । उ०—घल्ला करे भठवारे ही खटिया मचमचाती निकले ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २२८ ।

विशेष—इस शब्द के मुहावरों के लिये 'खाट' शब्द देखें ।

खटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खड़िया [को०] ।

खटीक(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि० खटिक] १. दे० 'खटिक' । २. कसाई । बकरकसाई । उ०—कबीर गाफिल क्या करे आया काल नजीक । कान पकरि के ले चला, ज्यों अजयाहि खटीक ।—कबीर सा०, भा०, पृ० ७६ ।

खटुली—संज्ञा स्त्री० [हि० खटोला का अल्पा०] खटोली । खटिया । (बोल०) ।

खटेटी—वि० [हि० खाट + टी (प्रत्य०)] जिसपर बिल्ली ना हो । जैसे,—खटेटी खटिया ।

खटोलना—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'खटोला' । उ०—चंदन खाट को बनल खटोलना तापर दुलहिन सूतल हो ।—कबीर सा०, पृ० २ ।

खटोला^१—संज्ञा पुं० [हि० खाट + ओला (प्रत्य०)] [स्त्री० अल्पा० खटोली] छोटी खाट या चारपाई ।

यौ०—उड़न खटोला ।

खटोला^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्राचीन देश का नाम जो बुंदेलखंड के अंतर्गत था । यहाँ भीलों की वस्ती अधिक थी । वर्तमान सागर, दमोह आदि जिले उसी के अंतर्गत हैं । उ०—पूछो जहाँ कुंड ओ गोला । तजि बाये अंधियार खटोला ।—जायसी (शब्द०) ।

खटोली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खटोला' ।

खट्ट—वि० [सं०] खट्टा [को०] ।

खट्टक—संज्ञा पुं० [सं०] खट्टा । चारपाई ।

खट्टन^१—वि० [सं०] नाटा । खवं । ठिगना ।

खट्टन^२—संज्ञा पुं० बीना व्यक्ति । ठिगना आदमी [को०] ।

खट्टना^३—क्रि० सं० [देश०] उगाड़न करना । जीतना ।—रा० रू०, पृ० १६६ ।

खट्टा^४—वि० [सं० कटु] कच्चे आम, इमली आदि के स्वाद का । तुषं । अम्ल ।

मुहा० खट्टा होना = अप्रसन्न होना । नाराज होना । खट्टा खाना = अप्रसन्न रहना । मुंह फुलाना । जो खट्टा होना = चित्त अप्रसन्न होना । दिल फिर जाना ।

यौ०—खट्टाचूक । खट्टामीठा । खट्टामिठा ।

खट्टा^५—संज्ञा पुं० [हि० खट्टा] नीबू की जाति का एक बहुत छोटा फल जिसे गलगल भी कहते हैं ।

खट्टा^६—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलंग । चारपाई । २. एक प्रकार का तृण [को०] ।

खट्टाचूक—वि० [हि० खट्टा + चूक] बहुत अधिक खट्टा ।

खट्टामीठा—वि० [हि० खट्टा + मीठा] कुछ खट्टा और कुछ मीठा । खटमिठा ।

मुहा०—जो खट्टामीठा होना = मुंह में पानी भर आना । जो ललचना ।

खट्टाश—संज्ञा पुं० [सं०] गंधबिलाव । खटास [को०] ।

खट्टाशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मादा गंधबिलाव [को०] ।

खट्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अरथी, जिसपर शव ले जाते हैं [को०] ।

खट्टिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कसाई । पशुघातक । २. शिकारी । बहेलिया । ३. भैंस के दूध का मक्खन [को०] ।

खट्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी चारपाई । खटिया । २. अरथी । ३. कसाइन । कसाई की स्त्री [को०] ।

खट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० खट्टा] १. खट्टी नारंगी । २. एक प्रकार का बड़ा नीबू जिसका अचार पड़ता है और जो बहुत अधिक खट्टा होता है ।

खट्टीमिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खट्टीमीठी' ।

खट्टीमीठी—संज्ञा स्त्री० [हि० खट्टी + मीठी] एक प्रकार की लता ।

खट्टू^१—संज्ञा पुं० [देश०] जैसलमेर में होनेवाला एक प्रकार का संग-मरमर, जिसका रंग पीला होता है ।

खट्टू^२—संज्ञा पुं० [पं०] खट्टना = रुपया पैदा करना । कमानेवाला । निखट्टू का उलटा ।

खट्टेरक—वि० [सं०] खवं । ठिगना [को०] ।

खट्टवर—वि० [सं०] खट्टा । तुषं [को०] ।

खट्टवांग—संज्ञा पुं० [सं० खट्टवाङ्ग] १. एक सूर्यवंशीय पौराणिक राजा का नाम, जिसका वर्णन भागवत में आया है । २. चारपाई का पाया या पाटी । ३. शिव के एक अस्त्र का नाम ।

यौ०—खट्टवांगधर । खट्टवांगभूत = दे० 'खट्टवांगी' ।

४. एक प्रकार का पात्र जिसमें प्रायश्चित्त करते समय भिक्षा मांगी जाती है । ५. तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा जिससे देवता बहुत प्रसन्न होते हैं ।

खट्टवांगी—संज्ञा पुं० [सं० खट्टवाङ्गिन्] शिव [को०] ।

खट्टवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खट्टिया । चारपाई । २. सुश्रुत के अनुसार फोड़ा आदि बाँधने की १४ प्रकार की पट्टियों में से एक, जिसका व्यवहार माथे या गले आदि को बाँधने के लिये किया जाता है । ३. दोला । झूला [को०] ।

खट्टवाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी खट्टिया [को०] ।

खट्टवाप्लुत—वि० [सं०] दे० 'खट्टवारूढ़' [को०] ।

खट्टवारूढ़—वि० [सं०] १. खाट पर पड़ा हुआ । पयभ्रष्ट । २. नीच । कुत्सित । ३. पाप । दुर्जन । ४. मंदबुद्धि । जड़मति [को०] ।

खट्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी खाट [को०] ।

खड़जा—संज्ञा पुं० [हि० खड़ा + मंग] ईंटों की खड़ी चुनाई । खड़ी ईंटों का जोड़ना । (ऐसी जोड़ाई फर्क पर होती है ।)

क्रि० प्र०—जोड़ना ।

खड़—संज्ञा पुं० [सं० खड्ग] १. धान की पेड़ी । पयाल । २. तृण । घास । उ०—घास लोग बाँस, खड़, सुतसी और दूसरा दरकारी चीज का इतना कर देगा ।—मैला० पृ० ५ । ३. श्वोनाक । ४. एक ऋषि का नाम । ५. चाँदी, सोने आदि की बुकनी, जिसकी सहायता से गिल्ट की हुई चीजों पर जिला करते हैं ।

खड़क—संज्ञा स्त्री० [धनु०] दे० 'खटक' ।

खड़कना—क्रि० प्र० [धनु०] [संज्ञा खड़खड़ाहट] 'खड़खड़' शब्द होना । वि० दे० 'खटकना' ।

खड़का—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खटका' ।

खड़काना—क्रि० स० [हि०] दे० 'खटकाना' ।

खड़क्किका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गवाक्ष । खड़की [को०] ।

खड़क्की—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊरोन्वा । खड़की [को०] ।

खड़खड़—संज्ञा स्त्री० [धनु०] दे० 'खटक' ।

खड़खड़ा—संज्ञा पुं० [धनु०] १. दे० 'खटक' या 'खटका'—६ । २. काठ का एक प्रकार का टाँचा जिसमें जोतकर गाड़ी के लिये छोड़े सबाएँ या निकाले जाते हैं ।

खड़खड़ाना^१—क्रि० प्र० [हि० खड़खड़] खड़खड़ शब्द करना । जैसे,—बाग में सूखी पत्तियाँ खड़खड़ा रही हैं ।

खड़खड़ाना^२—क्रि० स० किसी वस्तु में खड़खड़ शब्द उत्पन्न करना । जैसे,—वह कुंडी खड़खड़ा रहा है ।

खड़खड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० खड़खड़ाना] १. 'खड़खड़' शब्द । २. खड़खड़ाना का भाव या क्रिया ।

खड़खड़िया—संज्ञा स्त्री० [हि० खड़खड़ाना] १. पालकी जिसे चार कहार उठाते हैं । पीनस । २. काठ का गाड़ीनुमा वह ढाँचा जिसमें जोतकर नए घोड़ों को गाड़ी सींचने योग्य बनाया जाता है ।

खड़ग(५)—संज्ञा पुं० [सं० खड्ग] दे० 'खड्ग' ।

खड़गी(५)^१—वि० [सं० खड्गिन्] तलवार लिए हुए । तलवारवाला ।

खड़गी(५)^२—संज्ञा पुं० [सं० खड्गी] गैडा नामक जंतु ।

खड़जी—संज्ञा पुं० सं० [खड्गी] दे० 'खड़गी' । उ०—खड़जी खजाने, खरगोस खिलवत खाने, खोले खसखाने खांसत खबीस हैं ।—भूषण (शब्द०) ।

खड़ना^१(५)^१—क्रि० प्र० [सं० खेटन; प्रा० खेटण्ड] चलना । गमन करना । उ०—(क) ढोल उतूँगल पंथसिरि आणेंव अधिक खड़ति ।—ढोला०, दू० ४२३ । (ख) पहला दल पेशोर पी, खड़ आया लाहीर ।—रा० क०, पृ० २६ ।

खड़ना^२(५)^२—क्रि० स० चलाना । चलने के लिये प्रेरित करना । हौकना । उ०—(क) इसवर सीय सेस चड़े रच ऊमर । तहक सारपी खड़े सुरंग ।—रघु० क०, पृ० १०६ । (ख) खेता

सर फिर राव खिसाणी । बल खड़िया देखवा खिसाणी ।—रा० क०, पृ० ६२ ।

खड़बड़—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. खड़खड़ । खटक । २. व्यतिक्रम । गड़बड़ । उलटफेर । ३. हलचल । ४. दे० 'खटपट' ।

खड़बड़ाना^१—क्रि० प्र० [धनु०] १. विचलित होना । घबराना । उ०—छत्री खेत बोहारिया, खड़ा दर्द की गोद । कायर कापें खड़बड़े, सूर के मन मोद ।—दरिया० बानी, पृ० ११ । २. क्रमहीन होना । बेतरतीब होना ।

खड़बड़ाना^२—क्रि० स० १. किसी वस्तु को उलट पलटकर 'खड़बड़' शब्द उत्पन्न करना । २. क्रमहीन करना । उलट फेर करना । ३. विचलित करना । घबरा देना ।

खड़बड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० खड़बड़ाना] 'खड़बड़ाना' का भाव । खड़बड़ी ।

खड़बड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० खड़बड़ाना] १. व्यतिक्रम । उलटफेर । २. हलचल । घबराहट ।

खड़बिड़ा—वि० [हि० खड़ + सं० बिघट, प्रा० बिहड़] ऊँचा नीचा । असमतल ।

खड़बीहड़ा—वि० [हि०] दे० 'खड़बिड़ा' ।

खड़भड़—क्रि० वि० [धनु०] अस्तव्यस्त । इतस्ततः । उ०—हरि पालें नहि कहैं ठाँम । पीव बिन खड़भड़ गाँव गाँव ।—दादू०, पृ० ६५६ ।

खड़भंडल—संज्ञा पुं० [सं० खड्ग + मण्डल] १. गड़बड़ । धोला । २. अस्तव्यस्त । इतस्ततः ।

खड़सान—संज्ञा पुं० [हि० खरसान] दे० 'खरसान' ।

खड़हड़—क्रि० वि० [धनु०] आवाज करती हुई । धमाम से । धमाके के साथ । उ०—ऊभी थी खड़हड़ पड़ी, जागें उसी भुमंगि ।—ढोला०, दू० २३६ ।

खड़हड़ता(५)^१—वि० [प्रा० खड़हड़] व्यथ । हिलता डलता । कंपित । उ०—सो बाँभे भुजडंड सूँ, खड़हड़तो ब्रह्मंड ।—बाँकी प्र०, भा० १, पृ० ६ ।

खड़हड़ना(५)^१—क्रि० प्र० [धनु०] खटकना । गड़ना । घुभना । उ०—गया गसंती राति परजलती पाया नहीं । से सज्जन परभाति, खड़हड़िया खुरसाँण ज्यूँ ।—ढोला०, दू० ३८० ।

खड़ा—वि० [सं० खड्क = रुग्ण, धूनी] [वि० स्त्री० खड़ी] १. घरा-तल से समकोण पर स्थित । सीधा ऊपर को गया हुआ । ऊपर को उठा हुआ । जैसे,—खड़ी लकीर, खड़ा बाँस, झंडा खड़ा करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—रहना ।—होना ।

२. जो (प्राणी) पृथ्वी पर पैर रखकर टाँगों को सीधा करके अपने शरीर को ऊँचा किए हो । दंडायमान जैसे,—इतना सुनते ही वह खड़ा हो गया और चलने लगा ।

क्रि० प्र०—करना ।—रहना ।—होना ।

मुहा०—खड़ा जबाब=तुरंत प्रत्युत्तर । वह इनकार जो खटपट किया जाय । खड़ा बाँव=जूए का वह दाँव जो जुमारी उठते उठाते समय लगाते हैं । खड़ा होना=(१) सहायता देना ।

मदद करना। जैसे,—कोई किसी की विपत्ति में नहीं खड़ा होता। (२). किसी चुनाव में उम्मीदवार होना। खड़ी पछाड़ें खाना=क्रोध या शोक से पृथ्वी पर गिर पड़ना। खड़ी लगाना=सिर्फ पाँव के सहारे खड़े तैरना। उ०—पानी ने बीस कदम पीछे हटा दिया। कभी मल्लाही चोरते थे, कभी खड़ी लगाते थे।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १३०। खड़ी सवारी=(किसी के आवागमन के संबंध में व्यंग्यार्थ प्रयुक्त) तुरंत। भटपट। शीघ्र। खड़े खड़े=(१) खड़े रहने की दशा में। जैसे,—खड़े खड़े पानी मत पीओ। (२) तुरंत। भटपट। जैसे,—यों खड़े खड़े कोई काम नहीं होता। खड़े घाट=(१) एक दिन के भीतर ही कराई जाने-वाली कपड़ों की धुलाई। (२). भटपट। तुरंत। खड़े पाँव=(१) बीच में बिना रके या बैठे। (२) भटपट। तुरंत। खड़े बाल निगलना=प्रत्यंत हानिकार काम करना। अनुचित काम करना। उ०—खड़े बाल निगलनेवाले हैं।—चुभते०, पृ० ४। ३. ठहरा हुआ। टिका हुआ। रुका हुआ। स्थिर। जैसे,—इस तरह यहाँ दीवार कब तक खड़ी रहेगी। ४. प्रस्तुत। उपस्थित। उत्पन्न। तैयार। पैदा। जैसे,—दाम खड़ा करना, भगड़ा खड़ा करना, मामला खड़ा करना। जैसे—(क) उसने अपना दाम खड़ा कर लिया। (ख) उसने बीच में एक नई बात खड़ी कर दी। ५. संनद्ध। उद्यत। तैयार। जैसे,—(क) जिस काम के लिये आप खड़े होंगे, वह क्यों न होगा। (ख) बात समझते नहीं, लड़ने को खड़े हो जाते हो।

मुहा०—खड़ा बोना—मिठाई आदि जो किसी पीर को चढ़ाई जाय। ६. प्रारंभ। जारी। जैसे,—काम खड़ा करना।

७. (घर, दीवार आदि ऊँची वस्तुओं के विषय में) स्थापित। निर्मित। उठा हुआ। जैसे,—इमारत खड़ी करना, तंबू खड़ा करना।

मुहा०—खड़ा करना=ठाँचा खड़ा करना। स्थूल रूप से आकार आदि बनाना। जैसे,—तुम्हारा कुरता खड़ा कर चुके हैं, सोना बाकी है।

८. जो उखाड़ा न गया हो। जो नाटा न गया हो। जैसे,—खड़ी फसल, खड़ा खेत। ९. बिना पका। अगिद्ध। कच्चा। जैसे,—खड़ा चावल। १०. सभूचा। पूरा। जैसे,—खड़ा चना चबाना। ११. जिसमें गति न हो। ठहरा हुआ। स्थिर। जैसे,—खड़ा पानी।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

खड़ाऊँ—संज्ञा स्त्री० [हि० काठ+पाव या 'खटपट' अनु०] पैर में पहनने के लिये तलुए के आकार की, काठ की पटरी। इसमें आगे की ओर एक खूँटी लगी होती है, जिसे पहनने के समय पैर के झँगूठे और उसके पास की उँगली में भटका लेते हैं। पादुका।

खड़ाका^१—संज्ञा पुं० [अनु०] १. खड़ खड़ शब्द। खटका। २. आघात। रव। प्रतिध्वनि। टकराहट। उ०—जीरन के ऊपर खड़ाके खड़गन के।—भूषण प्र०, पृ० ३३०।

खड़ाका^२—क्रि० वि० चटपट। शीघ्रता से।

खड़ादसरंग—संज्ञा पुं० [देश०] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इसमें प्रतिद्वंद्वी की जाँघ में अपना हाथ अड़ाकर उसी के बल के उसके उस हाथ को, जो अपने पेट पर हो, दबाकर उसकी पीठ पर जाना और उसे मरोड़ा देकर गिराना पड़ता है। इसे हनुमत बंध भी कहते हैं।

खड़ानन^१—संज्ञा पुं० [सं० खडानन] '१०' 'खडानन'।

खड़ा पठान—संज्ञा पुं० [देश०] जहाज के पिछले भाग का मस्तूल।—(लगा०)।

खड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० खड़िका] खड़िया [को०]।

खड़िया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० खरिया] रुपया पैसा रखने की थैली। उ०—ता पाछे जब वैष्णवन जाइबे की कहे तब कृष्ण भट रात्रि कों उनकी गाँठ खड़िया खोलि खरची बाँधि देते।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० २७।

खड़िया^२—संज्ञा स्त्री० [सं० खटिका, खड़िका] एक प्रकार की सफेद मिट्टी या पत्थर की जाति का एक बहुत मुलायम सफेद पदार्थ।

विशेष—यह जमीन के संंदर शंग, घोंघे आदि जानवरों की हड्डियों के चूने से आप ही आप जमकर बनता है। खड़िया इंगलैड में लंडन के आसपास और फ्रांस के उत्तरी भाग में बहुत होती है। इससे दीवारों पर चूने की भाँति सफेदी की जाती है और अनेक प्रकार की धातुएँ साफ की जाती हैं। प्रायः काले तख्तों पर इससे लिखा भी जाता है। यह कई प्रकार की होती है।

२. एक प्रकार की खड़िया जो बहुत कड़ी होती है। खरिया। खड़ी। छुही। उ०—मोरियों पर ढकने के लिये सक्कर का सफेद खड़िया पत्थर काम में आता था।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १६।

विशेष—यह इमारतों में पत्थर के स्थान पर काम आती है। एक और प्रकार की खड़िया काली होती है जो स्लेट के अंतर्गत है।

मुहा०—खड़िया में कोयला=बेमेल बात। अच्छे के साथ बुरे का संयोग।

खड़िया^३—संज्ञा स्त्री० [सं० काखड या हि० खड़ा] भरहर का वह पेड़ या बड़ा डंठल जिसमें पत्तियाँ या फलियाँ बिलकुल न हों। साड़ी। रहटा।

खड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० खड़ी] खड़िया। खड़िया मिट्टी। छुही।

खड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० खड़ा=सोधा] १. पहाड़। पर्वत। २. दे० 'बारहखड़ी'।

खड़ी चढ़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खड़ी+चढ़ाई] बहुत थोड़ी ढाल-वाली सीधी चढ़ान की भूमि।

खड़ी ढंकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मालखेस की एक कसरत।

खड़ीणा^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] खड़ की सूखी हुई वह जमीन जो हल से जोती बोई जाती है। उ०—जेहन ताल खड़ीण है, तरवर लाकड़ होय।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० १०।

खड़ी तैराकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] खड़े होकर जल में तैरने की क्रिया। खड़ी लगाना।

खड़ी नियाज—संज्ञा स्त्री० [हि० खड़ी + फा० नियाज] मनोरथ सिद्ध होने पर की जानेवाली मनोती, प्रार्थना या चढ़ावा ।

खड़ी पाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] खड़ी सीधी रेखा (१) जो वाक्य समाप्त होने पर लगाई जाती है । पूर्ण विराम ।

खड़ी बोली—संज्ञा स्त्री० [हि० खड़ी (या खरी?) + बोली (भाषा)] वर्तमान हिंदी का एक रूप जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्तमान हिंदी भाषा की और फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है । वह बोली जिसपर ब्रज या अवधी आदि की छाप न हो । ठेठ हिंदी । आज की राष्ट्रभाषा हिंदी का पूर्व रूप । इसका इतिहास शताब्दियों से चला आ रहा है । परिनिष्ठित पश्चिमी हिंदी का एक रूप । वि० दे० 'हिंदी' ।

विशेष—जिस समय मुसलमान इस देश में आकर बस गए, उस समय उन्हें यहाँ की कोई एक भाषा ग्रहण करने की आवश्यकता हुई । वे प्रायः दिल्ली और उसके पूरबी प्रांतों में ही अधिकता से बसे थे, और ब्रजभाषा तथा अवधी भाषाएँ, क्लिष्ट होने के कारण अपना नहीं सकते थे, इसलिये उन्होंने मेरठ और उसके आसपास की बोली ग्रहण की, और उसका नाम खड़ी (खरी?) बोली रखा । इसी खड़ी बोली में वे धीरे धीरे फारसी और अरबी शब्द मिलाते गए जिससे अंत में वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि हुई । विक्रमी १४वीं शताब्दी में पहले पहल अमीर खुसरो ने इस प्रांतीय बोली का प्रयोग करना आरंभ किया और उसमें बहुत कुछ कविता की, जो सरल तथा सरस होने के कारण शीघ्र ही प्रचलित हो गई । बहुत दिनों तक मुसलमान ही इस बोली का बोलचाल और साहित्य में व्यवहार करते रहे, पर पीछे हिंदुओं में भी इसका प्रचार होने लगा । १५वीं और १६वीं शताब्दी में कोई कोई हिंदी के कवि भी अपनी कविता में कहीं कहीं इसका प्रयोग करने लगे थे, पर उनकी संख्या प्रायः नहीं के समान थी । अधिकांश कविता बराबर अवधी और ब्रजभाषा में ही होती रही । १८वीं शताब्दी में हिंदू भी साहित्य में इसका व्यवहार करने लगे, पर पद्य में नहीं, केवल गद्य में; और तभी से मानों वर्तमान हिंदी गद्य का जन्म हुआ, जिसके आचार्य मु० सदासुख, लल्लू जी लाल और सदास मिश्र माने जाते हैं । जिस प्रकार मुसलमानों ने इसमें फारसी तथा अरबी आदि के शब्द भरकर वर्तमान उर्दू भाषा बनाई, उसी प्रकार हिंदुओं ने भी उसमें संस्कृत के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान हिंदी प्रस्तुत की । इससे थोड़े दिनों से कुछ लोग संस्कृतप्रचुर वर्तमान हिंदी में भी कविता करने लग गए हैं और कविता के काम के लिये उसी को खड़ी बोली कहते हैं ।

खड़ी मसकली—संज्ञा स्त्री० [हि० खड़ा + अ० मसकला = रेतो] रस्सानी की तरह का कुंद धार का एक शीशर जिससे सिकली करनेवाले बरतन को खुरचकर जिला करते हैं ।

खड़ी सकी—संज्ञा स्त्री० [हि० खड़ा + देश० सकी] कुर्ती का एक पेंच ।

विशेष—इसमें बाएँ हाथ से प्रतिद्वंद्वी की दाहिनी कलाई पकड़कर और दाहिने हाथ से उसकी कुहनी पकड़कर अपनी

और खींचना, और अपने दाहिने पैर को उसके पैरों में डालकर उसकी पिडली और एंडी को अपनी और खींचते हुए उसकी छाती पर धक्का देकर उसे चित्त गिरा देना पड़ता है ।

खड़ी हुंभी—संज्ञा स्त्री० [हि०] वह हुंडी जिसका ढक्का चुकाया न गया हो ।

खडू—संज्ञा पुं० [सं०] अरथी । टिकठी [को०] ।

खडूआ—संज्ञा पुं० [हि० कड़ा + उआ (स्वा० प्रत्य०)] हाथ या पाँव में पहनने का कड़ा । चूड़ा ।

खडू—संज्ञा स्त्री० [सं०] खडू । अरथी [को०] ।

खडूला—संज्ञा पुं० [हि० कड़ा + ऊला (स्वा० प्रत्य०)] दे० 'खडूआ' । उ०—कोई कहे मैं इसका मामा । लाया खाँड़ खडूले जामा । —सहजो०, पु० २७ ।

खड्ग—संज्ञा पुं० [गं०] १. प्राचीन काल का एक प्रसिद्ध अस्त्र जिसका व्यवहार आजकल केवल पशुओं को बलि देने के लिये होता है । तलवार इसी का एक भेद है । खाँड़ा । २. गंडा । ३. एक बुद्ध का नाम । ४. चोर । भटेऊर । एक गंध-द्रव्य । ५. तंत्र के अनुसार शक्तिपूजा की एक मुद्रा । ६. लौह । लोहा [को०] । ७. गंडे की सींग [को०] ।

खड्गकोश—संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग रखने का म्यान [को०] ।

खड्गट—संज्ञा पुं० [सं०] कास का एक भेद [को०] ।

खड्गधर—संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग धारण करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

खड्गधार—संज्ञा पुं० [सं०] बदरिकाश्रम के एक पर्वत का नाम ।

खड्गधारा—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार की धार [को०] ।

खड्गधारा व्रत—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत दुष्कर कार्य [को०] ।

खड्गधारी—वि० [सं० खड्गधारिन्] [वि० स्त्री० खड्गधारिणी] हाथ में खड्ग लिए हुए । खड्गपाणि ।

खड्गधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटी घसि । छुरिका । २. माँदा । गंडा [को०] ।

खड्गधेनुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'खड्गधेनु' [को०] ।

खड्गपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का कल्पित वृक्ष ।

विशेष—कहते हैं, यह वृक्ष यमराज के यहाँ है और इसकी डालियों में पत्तों की जगह तलवारें और कटारें आदि लगी हुई हैं । पापियों को यातना देने के लिये इस वृक्ष पर चढ़ाया जाता है । गरुड़ पुगण में इसे असिपत्र भी कहा गया है ।

२. तलवार की धार [को०] ।

खड्गपाणि—वि० [सं०] खड्गधारी [को०] ।

खड्गपिधान—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार का कोश । म्यान [को०] ।

खड्गपिधानक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खड्गपिधान' ।

खड्गपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की कटारी जो प्रायः एक हाथ लंबी और दो अंगुल चौड़ी होती थी और जिसका व्यवहार बहुत निकट आए हुए शत्रु पर प्रहार करने के लिये होता था ।

खड्गपुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [म०] दे० 'खड्गपुत्र' ।
खड्गप्रहार—संज्ञा पुं० [म०] तलवार की काट । खड्गाघात [को०] ।
खड्गफल—संज्ञा पुं० [म०] खड्ग की धार । खड्गधारा [को०] ।
खड्गबंध—संज्ञा पुं० [म०] खड्गबन्ध । खड्ग की आकृति में लिखा गया काव्य (पद्य) जो चित्रकाव्य के अंतर्गत है ।
खड्गलेखा—संज्ञा स्त्री० [म०] तलवारों की पंक्ति या कतार [को०] ।
खड्गविद्या—संज्ञा स्त्री० [म०] तलवार चलाने की कला या हुनर [को०] ।
खड्गहस्त—वि० [म०] १. दे० 'खड्गपाणि' । २. लड़ने के लिये तैयार । संघर्ष के लिये उद्यत [को०] ।
खड्गाघात—संज्ञा पुं० [म०] दे० 'खड्गप्रहार' [को०] ।
खड्गाधार—संज्ञा पुं० [म०] खड्गकोण । म्यान [को०] ।
खड्गारीट—संज्ञा पुं० [म०] १. चमड़े की ढाल । २. घिस पर चलने का एक प्रकार का धार्मिक व्रत करनेवाला व्यक्ति [को०] ।
खड्गिक संज्ञा पुं० [म०] १. आखेट करनेवाला । शिकारी । २. तलवारधारी व्यक्ति [को०] । ३. भैंस के दूध का फेन । ४. कसाई ।
खड्गी—वि० [म०] खड्गिन् । [वि० स्त्री० खड्गिनी] खड्ग या घमि धारण करनेवाला [को०] ।
खड्गी—संज्ञा पुं० १. वह जिसके पास खड्ग हो । खड्गधारी । २. गंडा । ३. शिव ।
खड्गीक—संज्ञा पुं० [म०] छोटा हेंगुआ [को०] ।
खड्ग—संज्ञा पुं० [म०] गर्त, > प्रा० गड्ड, अथवा सं० खात । गड्ढा । गड्ढा ।
खड्ग—संज्ञा स्त्री० [म०] खात में बहनेवाली सरिता । नदी । उ०—और उरासे पहले खड्ग मिली ।—किन्नर०, पृ० ४५ ।
खड्ग—संज्ञा पुं० [म०] खात = खड्ग । १. गड्ढा । गड्ढा । २. बहुत अधिक रगड़ के कारण पड़ा हुआ चिह्न ।
खण—संज्ञा पुं० [म०] क्षण, प्रा० क्षण । दे० 'क्षण' । उ०—खण एक क्षण में रहइ गानी गाढ़ दे तत्व ही ।—कीर्ति०, पृ० ४२ ।
खणक—संज्ञा पुं० [म०] क्षणक । चूहा । मूसा (डि०) ।
खणनाडिका—संज्ञा स्त्री० [म०] क्षण + नाडिका । धर्म घड़ी (डि०) ।
खतंग—संज्ञा पुं० [म०] एक प्रकार का कबूतर जिसका रंग कुछ मैलापन लिए हुए होता है ।
खतंग—वि० [म०] खताङ्ग । १. अंग में खत या घाव करनेवाला । चमनेवाला । उ०—(क) बूठा बाँध दुहें दर्ना छूटा मूठ खतंग ।—रा०, क०, पृ० ८३ । (ख) खूनी न रही काय खतंगी खजना ।—बाँगी प्र०, भा० ३, पृ० ३२ । २. घायल अतंग । उ०—खत गडक सूर खतंग ।—रघु०, क०, पृ० २२३ ।
खतंगर—वि० [म०] खतंग + र (प्रत्य०) । अंग में खत करनेवाला । तेज । तीक्ष्ण । उ०—राघव उमंग हँस हँस रहे, खत खग खतंगरी ।—रघु०, क०, पृ० ४७ ।

खतंग—संज्ञा पुं० [देश०] तरकस । तूणीर । उ०—तरकस पंच गिरम तीर प्रति खतंग तीन सय । खुरासान कम्मान पंच परमान मान जय ।—पृ० रा० (उ०), ११२१ ।
खत—संज्ञा पुं० [म०] खत । पत्र । चिट्ठी । उ०—नहीं आता है अब करार मुझे । तेरे खत का है इंतजार मुझे ।—शेर०, भा० १, पृ० ३६३ ।
खौ—खतकिताबत = पत्रव्यवहार ।
 २. लिखावट । जैसे—से पहचानता हूँ; यह उन्हीं का खत है ।
 ३. रेखा । लकीर । धारी । ४. दाढ़ी के बाल (डि०) ।
 ५. हजामत ।
क्रि० प्र०—बनाना ।—बनवाना ।
मुहा०—खत बनाना = माथे के ऊपरी भाग के बालों को उस्तरे से बराबर करना ।
 ७. दाढ़ी मूँछ (को०) । ८. कान से सटे हुए बालों का निचला भाग । कनपटी के बाल । उ०—सफाई उठ गई बेहरे की जब खत का निकाल आया ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५८ । ९. चिह्न । निशान (को०) । १०. परवाना । राज्यादेश (को०) ।
खत—संज्ञा पुं० [म०] खत । आघात । प्रहार ।
खत—संज्ञा स्त्री० [सं०] खति । घाव । चोट । उ०—भरम काटि करि कलम छुरी छवि, तकि तृस्ता खत सारी ।—घग्नी०, पृ० ३ ।
खत—संज्ञा स्त्री० [म०] खति, प्रा० खति । पृथिवी । जमीन । (डि०) ।
खतकशी—संज्ञा पुं० [फ्रा०] खतकशी । बढ़इयों का एक औजार जिसके द्वारा वे लकड़ी पर निशान बनाते हैं [को०] ।
खतकशी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] खतकशी । तस्वीर बनाने के लिये रेखाएँ खींचना [को०] ।
खतकिताबत—संज्ञा पुं० [फ्रा०] खतकिताबत । पत्रव्यवहार । चिट्ठी पत्री । उ०—अधिकांश शिक्षितों के खतकिताबत में भी फारसी का प्रचार हुआ ।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३६२ ।
खतखुतूत—संज्ञा पुं० [फ्रा०] खतखुतूत । खतकिताबत । चिट्ठीपत्री [को०] ।
खतखोट—संज्ञा स्त्री० [सं०] खत + हि० खुट । घाव के ऊपर की सूखती हुई पपड़ी । खुरंद । उ०—तिय निज हिय जो लागि चलत पिय नखरेख खंरोट । सूखन देति न सरसई खोटि खोटि खतखोट ।—बिहारी (शब्द०) ।
खतना—संज्ञा पुं० [फ्रा०] खतनाह । मुसलमानों की एक रस्म, जिसमें उनके लिंग के अगले भाग का बड़ा हुआ चमड़ा काट दिया जाता है । सुन्नत । मुसलमानी ।
खतम—वि० [फ्रा०] खतम । १. पूर्ण । उ०—तुमहि कोरान खतम खतमाना ।—घग्नी०, पृ० १८ । २. समाप्त । (पुं०) ३. परम । अन्त्यत । हद । उ०—खतम खुसी अन्नखूट खजाना, निरमल चंदमुखी ग्रह नार ।—रघु०, क०, पृ० २२ ।
मुहा०—खतम करना = मार डालना । जैसे,—एक को तो यहीं खतम कर डाला है; एक बचा है सो देखा जायगा । खतम होना = मर जाना । प्राण निकल जाना ।

खतमाना^(५)—क्रि० स० [प्र० खत्म, खतम] समाप्त या पूर्ण करना ।
उ०—तुमहि कोगन खतम खतमाना ।—घरनी०, पृ० १८ ।

खतमाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल । मेघ । २. धुम्र । धूम्र [को०] ।

खतमी—संज्ञा स्त्री० [प्र०] गुलबैरु की जाति का एक प्रकार का पौधा ।
विशेष—यह कश्मीर और पश्चिम हिमालय में होता है । इसमें नीले, लाल, बैंगनी आदि कई रंगों के फूल होते हैं । पर सफेद फूल की खतमी सबसे अच्छी समझी जाती है । इसकी पत्तियाँ पीसकर लोग फोड़े पर लगाते हैं और इसके बीज और जड़ का व्यवहार औषधियों में होता है । इसके बीज को तुलसी खतमी और जड़ को रेशा खतमी कहते हैं ।

खतर—संज्ञा पुं० [प्र० खतर] दे० 'खतरा' ।

खतरनाक—वि० [फ्रा० खतरनाक] १. खतरे से युक्त । खतरवाला ।
२. भयजनक । आशंकाभय ।

खतरम्मा—संज्ञा पुं० [हि० खत्री] १. खत्रियों का समाज । २. वह स्थान जहाँ अधिकतर खत्री रहते हैं ।

खतरा—संज्ञा पुं० [प्र० खतरह] १. डर । भय । खोफ । २. आशंका ।

खतरानी—संज्ञा स्त्री० [हि० खत्री] खत्री जाति की स्त्री ।

खतरेटा—संज्ञा पुं० [हि० खत्री + एटा (प्रत्य०)] खत्री । उ०—केते मुगलाने सेख पठाने सेपद बाने बांधि चढ़े । कायथ खतरेटे लोह लपेटे देत चपेटे चाइ बड़े ।—सूदन (शब्द०) ।

खता^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० खता] [वि० खतावार] १. कपूर । अपराध । २. धोखा । फरेब ।

मुहा०—खता खाना = धोखे में पड़ना । धोखे में पड़कर हानि उठाना ।

३. झूल । चूक । गलती ।

मुहा०—खता खाना = गलती करना । चूकना ।

खता^(५)—संज्ञा पुं० [सं० खत] खत । पाव । उ०—सोइ साधु को कह्यो बोलाई । कैसी चरणोदक दिय लाई । कह्यो साधु सब को मैं लायो । खता चरण लखि एक बचायो ।—रघुराज (शब्द०) ।

खता^१—संज्ञा पुं० [फ्रा०] चीन या चीन का एक प्रदेश [को०] ।

खताई^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खताई] दे० 'नानखताई' । उ०—सोया-बीन की खताइयाँ ।—ज्ञानदान, पृ० १६३ ।

खताकार—वि० [फ्रा० खताकार] १. दोषी । अपराधी । मुजरिम ।
२. पापी । गुनहवार । पातकी [को०] ।

खतावार—पुं० [प्र० खता + फ्रा० वार] दोषी । अपराधी ।

खति^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० खति] क्षति । हानि । नुकसान । उ०—कहै पदमाकर त्यों बदन विशाल होत लाल होत हेरी छल छिद्रन की खति की । गंगा जी तिहारे गुणगान करे अजगैबे आन होत बरषा सुआनंद की प्रति की ।—पद्माकर (शब्द०) ।

खतिया^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खाती' ।

खतिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० खत्ता] छोटा गढ़ा ।

३-५

खतियाना—क्रि० स० [हि० खाता] प्रति दिन के प्राय व्यय और क्रय वित्त आदि को खाते में अलग अलग गद्द में लिखना ।

खतियौनी—संज्ञा स्त्री० [हि० खतियाना] १. वह बही या किताब जिसमें खतियाया जाय । खाता । २. खतियाने का काम । ३. पटवारी का वह कागज जिसमें प्रत्येक असामी का रकबा और लगान आदि दर्ज हों ।

खतिलक—संज्ञा पुं० [सं०] गुर्र [को०] ।

खतीब—वि० [प्र० खतीब] १. खुनवा पढ़नेवाला । २. धर्मोपदेशक । ३. वक्ता [को०] ।

खतीबा—संज्ञा स्त्री० [प्र० खतीबह] बोलनेवाली स्त्री । वक्तृत्व शक्ति से युक्त स्त्री । वक्त्री [को०] ।

खतेआजादी—संज्ञा पुं० [फ्रा० खत + ए + आजादी] मुक्तिपत्र । बंधमुक्त करने का आदेशपत्र [को०] ।

खतेगुलामी—संज्ञा पुं० [प्र० खत-ए-गुलामी] दामतापत्र [को०] ।

खतेनस्तालीक—संज्ञा पुं० [प्र० खत-ए-नस्तालीक] सुंदर असरोंवाली लिखावट जिसमें उर्दू की लीथो पद्धति से पुस्तकें छपती हैं [को०] ।

खतेशिकस्त—संज्ञा पुं० [फ्रा०] वह लिखावट या लेख जो बहुत टेढ़ा भेड़ा हो । घमीट लिखावट [को०] ।

खतौनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० लगन + खत्री (प्रत्य०)] दे० 'खतियौनी' ।

खत्ता—संज्ञा पुं० [सं० खात या गतक] [स्त्री० खत्ती] १. गड्ढा । २. अन्न रखने का स्थान । ३. नील या शीशु बनाने का गड्ढा ।

खत्तिअ, खत्तिय^(५)—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रिय, प्रा० खत्तिय] दे० 'क्षत्रिय' । उ०—(क) परसुराग अरु पुरिस जेन खत्तिअ खअ करिअउ ।—कीर्ति०, पृ० ८ । (ख) खत्तिय बंस गहै कर कत्तिय ।—प० रासो, पृ० ६० ।

खत्म—वि० [प्र० खत्म] दे० 'खतम' ।

खत्रवट, खत्रवाट^(५)—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्री + वट (प्रत्य०)] १. क्षत्रीपन । उ०—खत्रवट सगम सदा थां खोले । श्री हिंदवाण बचावो झोले ।—रा० रू०, पृ० ७७ । २. वीरता । (हि०) ।

खत्रिय—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रिय, प्रा० खत्तिय] क्षत्रिय ।—(हि०) ।

खत्री—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रिय, प्रा० खत्तिय] [स्त्री० खतरानी] १. हिंदुओं में क्षत्रियों के अंगरंगत एक जाति जो अधिकतर पंजाब में बसती है । इस जाति के लोग प्रायः व्यापार करते हैं । २. क्षत्रिय (हि०) । उ०—देख कहैं सको देस, खत्री बीज गयो खेस ।—रघु० रू०, पृ० ७६ ।

खत्री परदेदार—संज्ञा स्त्री० [हि० खत्री] लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का ठप्पा, जिससे कपड़ों पर देन बूटे छापे जाते हैं । यह ठप्पा तीन इंच से छह इंच तक लंबा होता है ।

खत्रीवाट^(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० खत्री + वाट] दे० 'खत्रवट' ।

खदंग—संज्ञा पुं० [फ्रा० खदंग] १. एक वृक्षविशेष जिसकी लकड़ी के वाण बनते हैं । २. छोटा वाण । नावक [को०] । ३. केकड़ा [को०] ।

खर्चगी^७—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खर्च] वाण । तीर । उ०—ताखन भीर बहादुर जंगी । जबुक कमानें तीर खर्चगी ।—जायसी (शब्द०) ।

खर्द—संज्ञा पुं० [सं० खर्द या निषिद्ध] मुसलमान ।—(हि०) ।

विशेष—'खर्द' शब्द का यह प्रयोग मिलता नहीं है, खर्द, खर्द और रोद आदि शब्द इस अर्थ में मिलते हैं । संभव है, लिपि के कारण 'खर्द' का 'खर्द' हो गया हो ।

खर्दखदाना—क्रि० प्र० [अनु०] दे० 'खर्दखदाना' ।

खर्दखर्द—संज्ञा स्त्री० [अनु०] खर्दखर्द या खर्दखर्द शब्द जो प्रायः किसी तरल पर गाढ़े पदार्थ को खीलाने से उत्पन्न होता है ।

खर्दखदाना—क्रि० प्र० [अनु०] खर्दखर्द शब्द करना, जो प्रायः किसी चीज के उबलने से उत्पन्न होता है ।

खर्दरा^१—संज्ञा पुं० [देश०] घास का एक भेद । खदी । उ०—समधिनि के दुरवा खर्दर लुये आइस, ओला गड़गै खर्दर वन के खोभा । लानि देवे तैं भइया वसुला वो विधना, हेरि देवे ओकर तन के खोभा ।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० १४२ ।

खर्दरा^१—संज्ञा पुं० [हि० खर्द या सं० गर्तक+हि० रा (स्वा० प्रत्य०)] १. गड़ड़ा । २. बिना निकाला हुआ छोटा बैल । बछड़ा ।

खर्दरा^२—वि० [सं० खर्द] निकम्मा । गद्दी । बेकाम । जैसे, खर्दरा माल ।

खर्दरा—संज्ञा पुं० [प्र० खर्दराह] १. भय । डर । घांका । २. संदेह, शक (को०) ।

खर्दाना—संज्ञा स्त्री० [हि० खोदना या खान] वह गड़ड़ा जिसे खोदकर उसके अंदर से कोई पदार्थ निकाला जाय । खान ।

खर्दिका—संज्ञा पुं० [सं०] मुना हुआ अन्न । लावा (को०) ।

खर्दिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. खैर का पेड़ । २. खैर । कथा । ३. चंद्रमा । ४. इंद्र । ५. एक ऋषि का नाम ।

खर्दिरचंचु—संज्ञा पुं० [सं० खर्दिरचंचु] बंजुल नाम का एक पक्षी ।—बृहत्०, पृ० ४१० ।

खर्दिरपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'खर्दिरपत्री' (को०) ।

खर्दिरपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाजवंती या लजाधुर नाम की लता ।

खर्दिरसार—संज्ञा पुं० [सं०] खैर । कथा (को०) ।

खर्दिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वराहकांता । २. लाजवंती । लजाधुर ।

खर्दी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो तालों में उत्पन्न होती है ।

खर्दीजा—संज्ञा स्त्री० [प्र० खर्दीजह] हजरत मुहम्मद की पहली पत्नी (को०) ।

खर्दीब—संज्ञा पुं० [पु०, फ्रा० खर्दीब] १. मिस्र के बादशाह की उपाधि । २. सामंत या मांडलीक राजा (को०) ।

खर्दुका—संज्ञा पुं० [सं० खर्दक=अधर्मल] १. महाजन से कर्ज लेकर व्यापार करनेवाला आदमी । २. ऋणी । कर्जदार । उ०—दो खेतवालों में सिवान का ऋणड़ा खड़ा करके उन्हें मुकदमें में बन्ना देना और उनमें से एक को खर्दुका बनाकर लील जाना ।—रति०, पृ० ६६ ।

खर्दुहा^१—संज्ञा पुं० [हि० खर्दुका] छोटी जाति का या छोटा व्यापार करनेवाला अनुष्य ।

खर्दुवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध की एक शक्ति का नाम ।

खर्देरना—क्रि० स० [हि०] दे० 'खर्देरना' ।

खर्देरना—क्रि० स० [हि० खेचना] दूर करना । हटाना । भगाना । उ०—माजत हम सब सूरत खर्देरत आवत माली ।—प्रेमचन०, भा० १, पृ० ३६ ।

खर्हर—संज्ञा पुं० [देश०] हाथ का काता और हाथ करधे पर बीना हुआ वस्त्र । सादी ।

खर्घोत—संज्ञा पुं० [सं०] १. जुगनू । २. सूर्य ।

खर्घोतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. एक प्रकार का वृक्ष जिसका फल बहुत विषैला होता है ।

खर्घोतन—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य (को०) ।

खर्धूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का अग्निवाण । २. एक प्रकार का गंधद्रव्य (को०) ।

खर्न^७—संज्ञा पुं० [सं० खर्न, प्रा० खर्न] १. खण । लहमा । २. समय । वक्त । ३. तुरंत । तत्काल । उ०—चेरी बाय सुनत खर्न धाई । हीरामन लै भाय बोलाई ।—जायसी (शब्द०) ।

खर्न^१—संज्ञा पुं० [सं० खर्न] (मकान का) खंड । मरातिब । तत्ता । मंजिल । जैसे,—चार खर्न का मकान । उ०—चार खर्न की भटारी के ।—लक्ष्मण (शब्द०) (ख) सत्त खर्न आवास ।—पृ० रा०, १।४४ । २. हिस्सा । विभाग ।

खर्न^२—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का वृक्ष जो 'खोर' की तरह का होता है । २. एक प्रकार का कपड़ा जिससे महाराष्ट्र स्त्रियाँ चोली बनाती हैं ।

खर्न^३—संज्ञा स्त्री० [अनु०] रुपए, पैसे, कूड़ियों आदि के बचने की आवाज । खनक ।

खर्नक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूहा । मूसा । २. संध लगानेवाला चोर । संधिया चोर । ३. जमीन या खान खोदनेवाला आदमी । ४. वह स्थान जहाँ सोना आदि उत्पन्न होता हो । ५. भूतत्वशास्त्र जाननेवाला व्यक्ति ।

खर्नक^२—संज्ञा स्त्री० [खर्न से अनु०] खनकाने की क्रिया या भाव । खनखनाहट ।

खर्नक^३—वि० जमीन खोदने या खननेवाला । उ०—हे खनक, किए जा कूप खनन, तू यहाँ बीच में ही न हार ।—देनिकी, पृ० ३० ।

खर्नकना—क्रि० प्र० [अनु०] 'खर्न' 'खर्न' शब्द होना । खनखनाना । उ०—आँखरियाँ भनकेगी खरी, खनकेगी चुरी तन की तन तोरे ।—भिसारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १२१ ।

खर्नकाना—क्रि० स० [अनु०] 'खर्न' 'खर्न' शब्द उत्पन्न करना ।

खर्नकार—संज्ञा स्त्री० [अनु०] भनकार । खनक । उ०—खनकार मरी काँपती हुई तान हृदय खुरचने लगी ।—घांभी, पृ० ६१ ।

खर्नखर्न—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कनखर्न' ।

खर्नखर्न—संज्ञा पुं० [अनु०] १. वह जिससे 'खर्न' 'खर्न' शब्द उत्पन्न हो । २. एक प्रकार का झुनझुना ।

खर्नखनाना^१—क्रि० प्र० [अनु०] 'खनखन' शब्द होना । खनकना ।

खनखनाना^२—क्रि० स० 'खन' 'खन' शब्द उत्पन्न करना । जैसे—
रूपया खनखनाना ।

खनधक^३—संज्ञा पुं० [प्र० खनक] दे० 'खनक' । उ०—खनधक जल
कन ले समीर सुभ लह बनावत ।—प्रेमचन०, भा० १,
पृ० १० ।

खनन—संज्ञा पुं० [सं०] १. खोदने खनने का कार्य । उ०—हे खनक
किए जा कूप खनन ।—दैनिकी, पृ० ३० । २. गाड़ना या
ढवाना (को०) ।

खननहारी^४—वि० [सं० खनन + हि० हारी (प्रत्य०)] १. खोदने-
वाली । २. नाश करनेवाली । उ०—सो नंदकुल की खननहारी
बुद्धि नित मो मैं रहे ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० १५७ ।

खनना^५—क्रि० स० [सं० खनन] १. खोदना । उ०—(क)
कीन्हेसि लोवा हंदुर चाटी । कीन्हेसि बहुत रहै खनि माटी ।
—जायसी (शब्द०) । (ख) कूप खनि कत जाय रे नर जरत
भुवन बुझाय । सूर हरि को भजन करि ले जन्म मरण
नसाय ।—सूर (शब्द०) । २. कोड़ना ।

खनयित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] खंती नामक भोजार ।

खनवाना—क्रि० स० [हि० खनना] खनना का प्रेरणायक रूप ।
किसी को खनन के काम में प्रवृत्त करना ।

खनबारा^६—वि० [हि० खन + बारा] खनकनेवाला । खन खन करने-
वाला । उ०—नथ के गड़ाइ दऊ गोखरू, खनवारे की छल्ला
छाप ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ८७७ ।

खनहना^७—वि० [सं० खोण + हीन] १. दुबला पतला । कमजोर । २.
जिसमें भक्षण न हो । खूबसूरत । सुंदर । जैसे,—खनहन
मुखड़ा ।

खनार्ही^८—संज्ञा स्त्री० [हि० खनना] १. खनने के काम की मजदूरी ।
२. खनने की स्थिति या क्रिया ।

खनाना—क्रि० स० [हि० खनना का प्रे० रूप] दे० 'खनवाना' ।
उ०—जाय खनावहु सागर साता ।—कबीर सा०, पृ० १७ ।

खनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रत्नों की खान । २. गुफा । कंदरा । ३.
गर्त । गड्ढा (को०) ।

खनिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खनक' (को०) ।

खनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तालाब (को०) ।

खनिज—वि० [सं०] खान से खोदकर निकाला हुआ । जैसे,
खनिज पदार्थ ।

खनिता—संज्ञा पुं० [सं०] खनने या खोदनेवाला व्यक्ति (को०) ।

खनित्र, खनित्रक—संज्ञा पुं० [सं०] खंता नाम का खोदने का
भोजार । गैनी ।

खनित्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा खंता या गैनी (को०) ।

खनिभोग—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रदेश या उपनिवेश जिसमें बातुओं
की खानें हों और जहाँ के निवासियों का निर्वाह खानों में
काम करने से ही होता हो ।

विशेष—कौटिल्य ने साधारणतः 'खनिभोग' की अपेक्षा शान्त्यपूर्ण
प्रदेश को भण्डा कहा है, क्योंकि खानों से केवल कोश की

बुद्धि होती है और शान्त से कोश और भंडार दोनों पूर्ण
होते हैं । पर यदि प्रदेश बहुत मूल्यवान् पदार्थों की खानोंवाला
हो तो वही भण्डा है ।

खप—संज्ञा पुं० [प्रनु०] किसी चोखी या पतली धारदार वस्तु का
शरीर या गोली मिट्टी आदि में घुसने का शब्द । उ०—उन्होंने
सूई में दवा मरी और निश्चित स्थान पर खप से सूई मारी ।
—किन्नर०, पृ० १६ ।

खनियाना^९—क्रि० स० [हि० खान या खानी] १. रिक्त करना ।
खाली करना । २. खनना । खोदना ।

खनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'खनि' (को०) ।

खनोना^{१०}—क्रि० स० [हि० खनना] खनना । खोदना । उ०—राधे
कत निकुंज ठाढ़ी रोवति । इंदु ज्योति मुखारविंद की शक्ति
चहूँ दिशि जोवति । द्रुम शाला भवलंब बेलि गहि नख सों
भूमि खनोवति । मुकुलित कच तन घन की भोट हूँ भ्रमुवन
कीर निचोवति । सूरदास प्रभु तजो गबं ते भये प्रेम गति
गोवति ।—सूर (शब्द०) ।

खप्पा—संज्ञा पुं० [सं० खनन = काटना] १. चारा काटने का स्थान ।
२. खत्रियों की एक उपाधि ।

खपचा—संज्ञा पुं० [तु० कपचा] १. बांस की पटरी या लकड़ी का
पटरा । उ०—ऐसा पहलवान था कि बस में क्या कहूँ । इधर
देखो यह खपचे (हाथ से दिखाकर) यह कल्ला ठल्ला ।—
फिसाना०, भा० ३, पृ० १७१ । २. लकड़ी की कलछी या
पलटा ।

खपची—संज्ञा स्त्री [तु० कपची] १. बांस की पतली तीली । कमठी ।
२. कबाब भूने की सीख या सलाई । ३. बांस की वह
पतली पटरी जिससे डाक्टर या जराह दूटा हुआ भंग बांधते
हैं । ४. कोड़ । गोद ।

क्रि० प्र०—भरना = भालिगन करना ।

खपक्की^{११}—संज्ञा स्त्री० [हि० खपची] दे० 'खपची' । उ०—बांस की
खपक्कियों पर लगे गन्ने के टुकड़ों पर मुनाफाखोरी बंद
करो ।—अभिषम, पृ० ५३ ।

खपची^{१२}—वि० बांस की पतली खपची सा अर्थात्—दुबला पतला ।
दुबल ।

खपड़^{१३}—वि० [हि० खपड़ा] खपड़े की तरह शुष्क । अत्यधिक शुद्ध ।
उ०—हीरा गया तो देखा कि भण्डासी और बूढ़ी खपड़
भुगलानी में गलखप हो रही है ।—फिसाना०, भा० ३,
पृ० २१४ ।

खपड़ा^{१४}—संज्ञा पुं० [हि० खपड़ा] दे० 'खपड़ा' ।

खपटी^{१५}—संज्ञा स्त्री० [हि० खपड़ा] १. छोटा खपड़ा । २. तखते के
छोटे छोटे टुकड़े जो कड़ियों के बीच में आड़नाबंदी के लिये
जड़े जाते हैं ।

खपड़भार^{१६}—संज्ञा पुं० [हि० खपड़ + भारना] किसानों की एक रसम ।

विशेष—प्रति वर्ष पहले पहल ऊख पेरने के समय यह रसम की
जाती है । इसमें ब्राह्मणों और गरीबों को नया रस पिलाया
जाता है और थोड़ा गुड़ बनाकर देवता के निमित्त प्रसाद
बाँटा जाता है ।

खपड़ा—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर, प्रा० खप्पर] १ मिट्टी का पका हुआ टुकड़ा जो मकान की छाजन पर रखने के काम आता है।

विशेष—यह प्रायः दो प्रकार का होता है। एक प्रकार का खपड़ा चिपटा और चौकोर होता है, जिसे 'थपुआ' या 'पटरी' कहते हैं। और दूसरे प्रकार का खपड़ा नाली के आकार का और लंबा होता है, जिसे 'नरिया' कहते हैं। 'थपुआ' खपड़ा छाजन पर बिनाकमर उनकी मधियों पर 'नरिया' खपड़ा ओढ़ाकर रख दते हैं। भिन्न भिन्न स्थानों के खपड़ों के आकार प्रकार आदि में थोड़ा बहुत भेद होता है। नए ढंग के अंगरेजी खपड़े केवल थपुआ के आकार के होते हैं और उनमें नरिया की आवश्यकता नहीं होती।

क्रि० प्र०—छाना।

२. मिट्टी के घड़े के नीचे का आग भग्न जो गोल होता है। ३. मिट्टी का वह वस्तु जिसमें भिस्सगने भीस मारते हैं। खप्पर। ४. मिट्टी के बड़े हुए बरतन का टुकड़ा। टीकरा। ५. कछुए की पीठ पर की कड़ा छतन।

खपड़ा—संज्ञा पुं० [सं० क्षुरपत्र] वह चीज जिसका फल चौड़ा हो।

खपड़ा—संज्ञा पुं० [सं०] वेग में हानेवाला एक प्रकार का कीड़ा।

खपड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० खर्पर] १. वह मिट्टी की हाँप्या जिसमें भटभूँजे दाना रहते हैं। २. नाद की तरह का मिट्टी का छोटा बरतन। ३. दू. 'खोपड़ी'।

खपड़ैल—संज्ञा स्त्री० [हि० खपड़ा + ऐल (प्रत्यय)] दे० 'खपरेल'।

खपड़ोइया—संज्ञा स्त्री० [सं० खर्पर, प्रा० खोपरा] नारियल की तिली के ऊपर रहनेवाला एक आवरण या छतका।

खपड़ोई—संज्ञा स्त्री० [सं० खर्पर] १. दे० 'खोपड़ी'। २. 'खपड़ोइया'।

खपत—संज्ञा स्त्री० [हि० खपना] १. समावेश। समाई। गुंजाइश। २. माल की गटती या बिन्धी। ३. खर्च। व्यय। ४. खपने का खपाने की क्रिया या स्थिति।

खपति—संज्ञा स्त्री० [सं० खपना] नाश। विनाश। क्षय। उ०—रखत तु साइ मिट्टी कबन, नमन्य ग्राह उतपति खपति।—पृ० रा०, १०।२४।

खपती—संज्ञा स्त्री० [हि० खपना] दे० 'खपत'।

खपना—क्रि० प्र० [सं० क्षपण] [संज्ञा खपत] १. किसी प्रकार व्यय होना। काम में आना। लगना। कटना। जैसे—धाजार में माल खपना। व्याह में खपना खपना। पूरी में घी खपना। २. चल जाना। गुजारा होना। समाई होना। निभना। जैसे—वह घर में खपे, खपे में दो चार बुरे रूप भी खप जाते हैं। ३. मिट जाना। दिक होना। ४. क्षय होना। समाप्त होना। नष्ट होना। उ०—जो खप भरे तू जाता है, वह खप गेना मत भला अपनी। अब कोई घटी पल साइत में यह खप पदन में है अपनी।—कबीर (शब्द०)। ५. मरना। मृत्यु प्राप्त करना। जैसे—उस युद्ध में कई हजार आदमी खप गए।

संयो० क्रि०—जाना।

खपर—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर] दे० 'खप्पर'। उ०—बिरह बैठ उर

खपर परोवा। भीजा नैन नीर जत रोवा।—चित्रा०, पृ० १७४। (ख) खपर हाथ मम मुजा अनंता।—कबीर सा०, पृ० २७४।

खपरट—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'खपड़ा'।

खपरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खपड़ा'।

खपराग—संज्ञा पुं० [सं०] तम। अंधकार (को०)।

खपराली—संज्ञा स्त्री० [सं० खर्पर] खप्पर धारण करनेवाली जोगिनी, डाकिनी आदि। उ०—चौसठ लख खपराली हड़ हड़ हड़ हेसे।—नट०, पृ० १६९।

खपरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० खर्परी] भूरे रंग का एक खनिज पदार्थ।

विशेष—वैद्यक में इसको जस्ते का उपधातु और क्षय, ज्वर, विष और कुष्ठ आदि का दूर करनेवाला माना गया है। यह आँख के अंजन और मुरमे आदि में भी पड़ता है। फारस आदि स्थानों में नकली खपरिया भी बनती है।

पर्या०—चक्षुष। दर्विका। रक्षक।

खपरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० खपड़ा का अन्वया०] १. छोटा खपड़ा।

२. एक प्रकार का कीड़ा जो चने की फसल में लगता है।

खपरिया—संज्ञा पुं० [सं० कार्पटिक; प्रा० कर्पटिय] हाथ में खप्पर रखनेवाले भिक्षुओं का एक वर्ग जिसे 'खेरा' भी कहते हैं।

खपरैल—संज्ञा स्त्री० [हि० खपड़ा + ऐल (प्रत्यय)] १. खपड़े की छाई हुई छत।

मुहा०—खपरैल डालना = खपड़े की छत छाना।

२. वह मकान जिसकी छत खपड़े से छाई हो। ३. खपड़ा।

खपरोही—संज्ञा स्त्री० [हि० खोपड़ी] दे० 'खपड़ोई'। उ०—उसके मुँह के खपरोही में अपनी शुद्धि के लिये भील मारी।—श्यामा०, पृ० १०।

खपली—संज्ञा पुं० [हि० खपड़ा] एक प्रकार का गेहूँ।

विशेष—यह बंबई, सिंध और मैसूर आदि प्रांतों में पैदा होता है और इसके दानों को भूमी से अलग करने में बड़ी कठिनाई होती है। इसे कहीं कहीं 'गोधी' या 'कफली' भी कहते हैं।

खपाच—संज्ञा स्त्री० [हि० खपची] १. रेशमवालों का एक औजार जो वाँस की दो खपचियों को तले उपर बाँधकर बनाया जाता है। २. दे० 'खपची'।

खपाची—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खपची'।

खपाट—संज्ञा पुं० [हि० खपची या कपाट] धोकरने के मुँह पर लगे लकड़ी के छोटे डंडे, जिनके सहारे वह उठाई दबाई जाती है।

खपाना—क्रि० सं० [सं० खपन, हि० खपना का प्रे० रूप] १. किसी प्रकार का व्यय करना। काम में लाना। लगाना।

मुत्रा०—माया या सिर खपाना = सिरपच्ची करना। मस्तिष्क से बहुत अधिक या व्यर्थ काम लेना। हैरान होना।

२. निर्वाह करना। निभाना। ३. नष्ट करना। समाप्त करना।

उ०—(क) मनो मेघनायक ऋतु पावस बाण वृष्टि करि सैन खपायो।—सूर (शब्द०)। (ख) भूषण शिवाजी गाजी साग सो खपाए खल खाने खाने खलन के खेरे भये खीस

है। —घृषण (शब्द०)। ४. संग करना। दिक करना। ५. बैचना। विक्रय करना। ६. मार डालना। खत्म करना।
उ०—सिरसवाह लघु भीर, वीर तुम बेग खपावहु।—प० रासो० पृ० ५६।

खपुआ^१—वि० [हि० खपना=नष्ट होना] डरपोक। भगोड़ा। कायर। उ०—तुलसी करि केहरि नाद भिरे भट खाग खपे खपुआ करके। नख दंतन सों भुजदंड विहंडत, मुंड सों मुंड परे भरके।—तुलसी (शब्द०)।

खपुआ^२—संज्ञा पुं० [हि० खपची] लकड़ी की वह खपची जो किसी दरवाजे के नीचे उसकी जूल की छेद में दृढ़ बैठाने के लिये लगाई या ठोकी जाती है।

खपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. गंधर्व मंडल जो कभी कभी आकाश में उदय होना है और जिसवा उदय होने से अनेक शुभाशुभ फल माने जाते हैं। २. पुराणानुसार एक नगर जो आकाश में है और जिसे पुनोमा और कालका नाम की दैत्य कन्याओं के प्रार्थना करने पर ब्रह्मा ने बनाया था। ३. राजा हरिश्चंद्र की पुत्री जो आकाश में स्थित मानी जाती है। ४. सुपागी का पेड़। ५. भद्रमोक्षा। भद्रमुक्तक। ६. वाघनख। वघनखा।

खपुष्प—संज्ञा पुं० [गं०] १. आकाशकुसुम। उ०—कोउ साहिब खपुष्प सम नाम धरयो मनमानो।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० ४१५। २. असंभव बात। अनहोनी घटना।

खपूवा^१—संज्ञा पुं० [सं० खप, हि० खप] खड्ग। खंग। उ०—आग अकेले द्वार पर खपूवा बाँध के अनीखान बैठयो।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० ३०४।

खप्ता—संज्ञा पुं० [अ० खत्त] दे० 'खत्त'। उ०—दुनिया के स्वप्न और खम यत्ताकर उड़ा दंते है।—वो दुनिया, पृ० १६८।

खप्पड़—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर] दे० 'खणर'।

खप्पर—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर] १. तमने के आकार का मिट्टी का पात्र। २. काली देवी का वह पात्र जिसमें वह रुधिरपान करती है।

मुहा०—खप्पर भरना—खप्पर में मदिगा आदि भगकर देवी पर चढ़ाना।

३. भिक्षापात्र। ४. खोपड़ी।

खफकान—संज्ञा पुं० [अ० खफकान] १. हृदय की धड़कन का रोग। हृत्कंप। २. वहशत। पागलपन [को०]।

खफकानी—वि० [अ० खफकानी] १. हृदोगी। हृदयरोगवाला। २. धनधानेवाला। वहशी [को०]।

खफगी—संज्ञा स्त्री० [फा० खफगी] १. अप्रसन्नता। नाराजगी। उ०—सब जग से वो लो हो हमसे दतनी खफगी? हाय।—कुंहुम, पृ० ६०। २. क्रोध। कोप।

खफा—वि० [अ० खफा] १. अप्रसन्न। नाराज। नालुश। उ०—ए सनम तू ही मेरी शकल से रहता है रूसा है अजल भी तो खफा।—श्यामा०, पृ० १०२। २. क्रुद्ध। रुष्ट।

खफी—वि० [अ० खफी] खिपा हुआ। गुप्त। उ०—करामोश कर आप उस जोक में खफी जिक्र भी ही के जानो तुम।—दक्खिनी०, पृ० २०८।

खफीफ—वि० [अ० खफीफ] १. अल्प। थोड़ा। कम। २. हलका। ३. तुच्छ। शूद्र। ४. लज्जित। शर्मिदा। ५. एक छंद या बहल [को०]।

खफीफा—वि० स्त्री० [अ० खफीफह] एक दीवानी म्यायालय जिसमें लेन देन के छोटे वाद या केस सुने जाते हैं। २. इसकी अपील नहीं होती। २. बदचलन या तुच्छ स्त्री।

खफफा—संज्ञा पुं० [दे०] कुश्ती का एक पेंच।

विशेष—इस दाँव में विपक्षी की गरदन पर बाएँ हाथ से थपकी देकर तुरत अपने दाहिने हाथ में उसे इस प्रकार फाँस लेते हैं, जिसमें अपनी कलाई उसके गले पर रहे; और तब अपने बाएँ हाथ से उसका दाहिना पहुँचा पकड़कर थोड़ा ऊपर उठाते या भटका देते हैं जिससे विपक्षी गिर पड़ता है।

खबर—संज्ञा स्त्री० [अ० खबर] [बहुव० खबरार] १. समाचार। वृत्तांत। हाल।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—पहुँचना।—पाना।—भेजना।—मिलना।—लाना।—सुनना।

मुहा०—खबर उड़ना—चर्चा फैलना। अफवाह होना। खबर फैलना = खबर उड़ना। खबर सेना = (१) समाचार जानना। वृत्तांत समझना। (२) दीन दशा पर ध्यान देना। सहायता करना या सहानुभूति दिखलाना। जैसे,—आप तो कभी हमारी खबर ही नहीं लेते। (३) दंडित करना। सजा देना। जैसे,—आज उनकी खूब खबर ली गई।

२. सूचना। ज्ञान। जानकारी। जैसे,—(क) हमें क्या खबर कि आप आए हुए हैं। (ख) उन्हें इन बातों की क्या खबर है।

क्रि० प्र०—रखना।—होना।

३. भेजा हुआ समाचार। संदेश।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—भेजना।—मिलना आदि।

४. चेत। सुधि। यज्ञ। जैसे,—उन्हें अपने तन की भी खबर नहीं रहती।

क्रि० प्र०—रहना।—होना।

५. पता। खोज।

क्रि० प्र०—मिलना।—लगना।

६. मुहम्मद साहब का प्रवचन। हदीस (को०)।

खबरगीर^१—वि० [फा० खबरगीर] १. खबर लेनेवाला। देख रेख करनेवाला। २. रक्षक। पालक।

खबरगीर^२—संज्ञा पुं० जानकारी लेनेवाला व्यक्ति। गुाचर।

खबरगीरी—संज्ञा स्त्री० [फा० खबरगीरी] १. देखरेख। देखभाल। चौकसी। २. सहानुभूति और सहायता। ३. पालन पोषण (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

खबरदार—वि० [फा० खबरदार] [संज्ञा खबरदारी] होशियार। सजग। चैतन्य। सावधान। उ०—गफलत न जरा भी हो खबरदार खबरदार।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२२।

खबरदारी—संज्ञा स्त्री० [फा० खबरदारी] सावधानी। होशियारी।

खबरविहंदा—वि० [फा० खबर + विहंदह] सूचना या खबर देनेवाला। सूचक (को०)।

खबरनवीस—वि० [फ्रा० खबरनवीस] सूचना या समाचार से जाने या लिखनेवाला । उ०—समाचार देने और आदेश लेने के लिये प्रधान जासूस सरदार और खबरनवीस हाबिर हो गए ।—पृ०, पृ० ७५ ।

खबरनवीसी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खबरनवीसी] दे० 'खबरनवीसी' । उ०—किसने मारी हाय हाय । खबरनवीसी हाय हाय ।—भारतेंदु सं०, भा० २, पृ० ६७८ ।

खबरसा—वि० [फ्रा०] संदेशवाहक । पत्रवाहक । सूचक [स्त्री०] ।

खबरि—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खबर] दे० 'खबर' । उ०—भूप द्वार तिन खबरि जनाई । दसरथ वृष सुनि लीन बोलाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

खबरिया—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खबर + हि० हिया (प्रत्य०)] दे० 'खबर' । उ०—पृथ्वी चली खबरिया, मितवा तीर । हरषित प्रतिहि तिरिधवा, पहिरत पीर ।—रहीम (शब्द०) ।

खबरी—संज्ञा पुं० [फ्रा० खबर + ई] दूत । संदेशवाहक ।—(हि०) ।

खबाष्प—संज्ञा पुं० [सं०] भोस । अवश्याय [स्त्री०] ।

खबीस^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० खबीस] [भाष०—खबासत, खबीसी] १. वह जो दुष्ट और भयंकर हो । २. भूत प्रेत आदि [स्त्री०] ।

खबीस^२—वि० १. अपवित्र । नापाक । गंदा । २. दुष्ट । फरेबी [स्त्री०] ।

खबीसन—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खबीस] दुष्ट या फरेबी औरत । उ०—कुछ दिन हुए एक खबीसन आई थी, क्या जाने कौन साहब उसके मालिक थे ।—भारतेंदु सं०, भा० १, पृ० ३५७ ।

खबीसी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खबीसी] दुष्टता । बदमाशी । फरेब । उ०—बुढ़ी खबीसी झाँड सवी शद साधू खेरत भी है ।—कबीर सा०, पृ० ८८७ । २. खबीस औरत ।

खब्ब—संज्ञा पुं० [फ्रा० खब्ब] [वि० खब्बी] पागलपन । सनक । भ्रमक ।

मुहा०—खब्ब सवार होना = सनक बढ़ना । पागलपन रहना ।

यौ०—खब्बुल हवास = खब्बी । विकृत बुद्धिवाला । पागल ।

खब्बी—वि० [फ्रा० खब्बी] जिसे खब्ब हो । सनकी । सोबाई । पागल ।

खब्बर, खब्बल—संज्ञा पुं० [देश०] दूब नाम की घास ।

खब्बा—वि० [पं०] १. दाहिने का उलटा । बायाँ । २. बाएँ हाथ से काम करनेवाला ।

खब्बाज—वि० [फ्रा० खब्बाज] रोटी पकानेवाला । नानवाई [स्त्री०] ।

खब्बड़—वि० [फ्रा० खब्बीस या हि० खभड़] बुद्धि और दुर्बल । दुबला पतला । उ०—वह गाय तो बिलकुल खब्बड़ हो गई है ।

खभड़ना—वि० [हि०] दे० 'खभरना' ।

खभरना—क्रि० सं० [हि० भरना] १. मिश्रित करना । मिलाना । जैसे,—मेहँ के आटे में जी का आटा खभरना । २. उथल पुथल मचाना । उ०—ओड़ि भदिन के डाल ठकेला । भलो सरपो बलकरत बुंदेला । खभरि खेत तहँ पर बिचसायो । सुवन के उर साल सलायो ।—लाल (शब्द०) ।

खभरुआ—वि० [हि० खभरना] पुँचली स्त्री से उत्पन्न (बालक) । किनास का (लड़का) ।

खभार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खँभार' । उ०—जो जाकी ताँके सरन, ताको ताहि खभार ।—दरिया० बानी, पृ० २१ ।

खभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रह । नक्षत्र [स्त्री०] ।

खभ्राति—संज्ञा स्त्री० [सं० खभ्राति] ब्येन या चील की जाति का पक्षी [स्त्री०] ।

खम^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० खम] १. टेढ़ापन । टेढ़ाई । कज । झुकाव ।

मुहा०—खम खाना = (१) मुड़ना । झुकना । दबना । उ०—सूदन समर साहि सैन तून तून गनी हनी देह गोलीन न खाई खेत खम है ।—सूदन (शब्द०) । (२) हारना । पराजित होना । नीचा देखना । उ०—पहर रात भर मार मचाई । मुरक्यो तुरक उहाँ खम खाई ।—लाल (शब्द०) । खम ठोकना = (१) लड़ने के लिये ताल ठोकना । उ०—आए तहँ जहँ खल छलकारी । फँट बाँधि खम ठोंकि खरारी ।—लल्लू (शब्द०) । (२) दड़ता दिखलाना । खम ठोंककर = (१) ताल ठोंककर । (२) दड़ता या निश्चयपूर्वक । जोर देकर । जैसे,—'मैं खम ठोंककर यह बात कह सकता हूँ । खम खजाना या मारना = दे० 'खम ठोकना' ।

यौ०—खमवम । खमवार ।

२. गाने के बीच बीच में वह विश्राम जो लय में लोच या लचक लाने के लिये लिया जाता है ।

क्रि० प्र०—लेना ।

खम^२—वि० [सं० खम, प्रा० खम] १. समर्थ । शक्तिमान् । २. झुका हुआ । ३. वक्र । टेढ़ा ।

खमकना—वि० [फ्रा०] खम खम शब्द करना । उ०—खमकत बीर करि करि सुबोख । लमकत तुरंगम पाइ पोष ।—सुजान०, पृ० ३८ ।

खमकरा—संज्ञा पुं० [देश०] मकड़ा नाम की घास जो पशुओं के लिये बहुत पुष्टिकारक समझी जाती है । वि० दे० 'मकड़ा' ।

खमणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य । रवि [स्त्री०] ।

खमणी—वि० [सं० खम, प्रा० खम + णी (प्रत्य०)] क्षमावती । क्षमाशीला । उ०—नमणी खमणी बहुगुणी, सुकोमली जु सुकच्छ । गोरी गंगा नीर ज्यूँ मन गरबी तन अच्छ ।—ढोला०, पृ० ४५२ ।

खमदम—संज्ञा पुं० [फ्रा० खम + दम] पुरुषार्थ । साहस ।

खमदार—वि० [फ्रा० खमदार] १. झुका हुआ । टेढ़ा । उ०—वही हिलदार खुश आता है जो होवे वाँका । खूब लगती नहीं वह तेग जो खमदार नहीं ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २० । २. पंचदार । गुमावदार । घँघराला । उ०—वह जुल्फ मेरे महल खमदार कहीं है ।—कबीर मं०, पृ० ३२४ ।

खमध्य—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश का मध्य भाग । सिर के ऊपर का केंद्रबिंदु [स्त्री०] ।

खमना—वि० [सं० खम, प्रा० खम] सहन करना । क्षमा

करना । उ०—न खमी ताप हजार नर, जुदो जुदो डर जाग ।
—बांकी० बं०, भा० १, पृ० २५ ।

खमर आलू—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का कंद । उ०—नहीं तो
कोठी के जंगल से 'खमर आलू' उखाड़ लाएंगी ।—मैला०,
पृ० १३ ।

खमसना—क्रि० स० [हि०] दे० 'खमरना' ।

खमसा—संज्ञा पु० [अ० खमसह = पाँच संबंधी] १. एक प्रकार की
गजल जिसके प्रत्येक बंद में पाँच चरण होते हैं । २. संगीत
में एक प्रकार का ताल जिसमें पाँच आघात और तीन खाली
होते हैं । इसका बोल यह है—

+ ० १ २ ० ३ ४ ० +
घा, घा, केटे, ताग्, तेरे केटे, तागर, देत, घा ।
४. पाँचो उँगलियाँ (कौ०) ।

खमसा^२—वि० पाँच संबंधी । पाँच से संबंध रखनेवाला (कौ०) ।

खमा^३—संज्ञा कौ० [सं० खमा, प्रा० खमा] दे० 'खमा' । उ०—
दौरि राज प्रथिराज सु आयो । खमा खमा प्रखै उज्जायो ।—
पृ० रा० ४ । ४ ।

खमाच—संज्ञा कौ० [हि० खम्माच] दे० 'खम्माच' ।

खमाल^४—संज्ञा पु० [देश०] खजूर के हरे फल जो पच्छिम में भेड़,
बकरी और गायों को खिलाए जाते हैं ।

खमाल^५—[अ० हम्माल] जहाज में असबाब की लदाई । लदनी ।

खमियाजा—संज्ञा पु० [फ्रा० खम्पाजह्] १. भ्रंशड़ाई । २. जंभाई ।
जुंभा । ३. एक दंड जिसमें अपराधी को शिकंजे में बस दिया
जाता था । ४. करनी का फल । बदला । ५. नतीजा ।
परिणाम । ६. कष्ट । दुःख । ७. दंड । सजा (कौ०) ।

मुहा०—खमियाजा उठाना = करनी का फल पाना । दंड पाना ।

खमीदगी—संज्ञा कौ० [फ्रा० खमीदगी] वक्रता । टेढ़ापन (कौ०) ।

खमीदा—वि० [फ्रा० खमीवह्] १. झुका हुआ । खमदार । २. वक्र ।
टेढ़ा (कौ०) ।

खमीर—संज्ञा पु० [अ० खमीर] १. गूँधे हुए आटे का सड़ाव ।

क्रि० प्र०—उठाना । उठाना ।

मुहा०—खमीर बिगड़ना = गूँधे हुए आटे का अधिक सड़ने के
कारण बहुत खट्टा हो जाना । खमीर खट्टा होना = दे० 'खमीर
बिगड़ना' ।

२. गूँधकर उठाया हुआ आटा । माया । ३. कटहल, अनन्नास आदि
को सड़ाकर तैयार किया गया एक पदार्थ जो तंबाकू में उसे
सुगंधित करने के लिये डाला जाता है । ४. स्वभाव । प्रकृति ।

मुहा०—खमीर बिगड़ना = स्वभाव या व्यवहार आदि में भेद
पड़ना ।

खमीरा^१—वि० [फ्रा० खमीर] [कौ० खमीरी] खमीर उठाकर
बनाया या खमीर मिलाया हुआ । खमीरवाला । जैसे,—
खमीरी रोटी । खमीरा तंबाकू ।

खमीरा^२—संज्ञा पु० १. चीनी या शीरे में पकाकर बनाई हुई घोषधि ।
जैसे, खमीरा बनफशा । २. पीने का सुगंधित तंबाकू (कौ०) ।

खमीरी—वि० कौ० [फ्रा० खमीर] दे० 'खमीरा' ।

खमीलन—संज्ञा पु० [सं०] तंद्रा । भ्रमकी (कौ०) ।

खमूर्ति—संज्ञा पु० [सं०] १. शिव । शंकर । २. दिव्य शरीर या दिव्य
पुरुष (कौ०) ।

खमूली—संज्ञा [सं०] जलकुंभी लता (कौ०) ।

खमो—संज्ञा पु० [देश०] एक छोटा सदाबहार पेड़ ।

विशेष—यह भारतवर्ष, बरमा और भंडमान टापू में समुद्र के
मटियाले किनारों और दरारों में उत्पन्न होता है । इसके
छिलके में सज्जी का अंग अधिक होता है और यह बमड़ा
सिक्काने के काम में आता है । इससे एक प्रकार का रंग
निकलता है जिसमें सूती कपड़े रंगे जाते हैं । इसके फल खाने
में मीठे होते हैं और खाए जाते हैं । इसकी छानियों से सूत
की तरह पतली जटा निकलती है जिससे एक प्रकार का
नमक बनता है । इसकी लकड़ी भी अच्छी होती है, पर बहुत
कम काम में आती है । इसे भार और रार्द भी कहते हैं ।

खमोश—वि० [फ्रा० खमोश] दे० 'खामोश' ।

खमोशी—संज्ञा कौ० [फ्रा० खमोशी] दे० 'खामोशी' ।

खमोस^३—वि० [फ्रा० खमोश] दे० 'खामोश' । उ०—ह्री को करं
खमोस होस ना तन को खाले । गगन गुफा के बीच पियाला
प्रेम का खाले ।—पलटू० बानी, भा० १, पृ० ६ ।

खम्माच—संज्ञा कौ० [हि० खंभावती] मालकोस राग की दूसरी
रागिनी ।

विशेष—यह षाड़व जाति की रागिनी है और रात के दूसरे पहर
की पिछली घड़ी में गाई जाती है ।

खम्माच कान्हड़ा—संज्ञा पु० [हि० खम्माच + कान्हड़ा] संपूर्ण जाति
का एक संकर राग जो रात के दूसरे पहर में गाया
जाता है ।

खम्माच टोरी—संज्ञा कौ० [हि० खंभावती + टोरी] संपूर्ण जाति
की एक रागिनी जो खंभावती और टोरी से मिलकर
बनती है ।

खम्हो^४—संज्ञा पु० [हि० खंभा] दे० 'खंभा' । उ०—एही
फिरिस्ता चारि कहाया । एही चारि खम्हो तन लाया ।—सं०
दरिया, पृ० ३१ ।

खम्माची—संज्ञा कौ० [हि०] दे० 'खम्माच' ।

खयंग^५—संज्ञा पु० [अ० खड्ग] दे० 'खड्ग' । उ०—ऊमर उताबलि
करइ पत्ताणियाँ पवंग । खुरसाणी सूधा खयंग चदिया दल
चतुरंग ।—दोला० दू० ६४० ।

खय^६—संज्ञा कौ० [सं० खय] १. विनाश । क्षय । २. प्रलय ।

खया^७—संज्ञा पु० [सं० खय] भुजमूल । खवा । उ०—कंदुक
केलि कुशल हय चढ़ि चढ़ि, मन कसि कसि ठोंकि ठोंकि खये ।
—तुलसी (शब्द०) ।

खयानत—संज्ञा कौ० [अ०] १. चरोहर रखी हुई वस्तु न देना अपव
कम देना । गवन । २. चोरी या बेईमानी ।

खयाल—संज्ञा पु० [अ० खयाल] दे० 'खयाल' । उ०—मैंने छोटी बड़ी

भेड़ का खयाल नहीं किया, भेड़ा कुछ कसूर नहीं।—भारतेंदु
पं० भा० १, पृ० ६६६।

खयालात—संज्ञा पुं० [अ० खयाल का बहुव०] अनेक विचार। ख्याल
या विचारधारा। उ०—खयालान्त रूपने निगाहें बिरानी,
किसी को न मानूम अना पराया।—हंस०, पृ० ४६।

खयाली—वि० [अ० खयाल] दे० 'ख्याली'।

मुहा०—खयाली पुलाव पकाना = दे० 'ख्याली पुलाव पकाना'।

खय्याम—संज्ञा पुं० [अ० खय्याम] फारसी के मधुयादी नवि अर्थान्
मधुमेमी, शराब पीनेवाले व्यक्ति। उ०—सिर्फ खय्यामों की
आवश्यकता है साकी हजारों मुगही निए गहाँ तयार मिलेंगे।
—किन्नर०, पृ० ३७।

खरंजा—संज्ञा पुं० [खं०] १. वह इंट जो बहुत अधिक पकने के कारण
जल गई हो। भाँवाँ। २. दे० 'खड़ंगा'।

खर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. गधा। २. खच्चर। ३. बगला। ४.
कौवा। ५. एक राक्षस जो रावण का भाई था और पंचवटी
में रामचंद्र के हाथ से मारा गया था। ६. तृण। तिनका।
घास।

खो—खर कतवार = दे० 'खरपतवार'। उ०—गा सब जनम
अविस्था मोरा। कत मै खर कतवार बटोग।—चित्रा०, पृ०
१३०। **खरपतवार**—कूड़ा कचरा।

७. ६० संवत्सरों में से २५वाँ संवत्। इस वर्ष में बहुत उपद्रव
होते हैं। ८. प्रलंवासुर का एक नाम। ९. छणय छंद का एक
भेद। १०. एक चौकोर वेदी जिसपर यज्ञों में यज्ञपात्र रक्खे
जाते हैं। ११. कंक। १२. कुरर पक्षी। १३. सूर्य का
पार्श्वचर। १४. एक प्रकार का तृण या घास जो पंजाब,
संयुक्त प्रांत और मध्य प्रदेश में होती है और जो घोड़ों के
लिये बहुत अच्छी समझी जाती है। १५. कुत्ता। खान
(अनेकार्थ०)।

खर^२—वि० [सं०] १. कड़ा। मरत। २. तेज। तीक्ष्ण। ३. घना।
मोटा। हानिकर। अमंगलक। जैसे, खर मास। ५. तेज
धार का। ६. आड़ा। तिग्छा।

खर^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खराई'।

मुहा०—खर मारना = दे० 'खराई मारना'।

खर^४—संज्ञा पुं० [सं० खर + तेज] कगरा। कुरकुरा।

मुहा०—(घी) खर करना = (भी) गरम करके तपाना।

खरक^१—संज्ञा पुं० [सं० खड़क = त्याग] १. जंगलों आदि में लकड़ियों
के खंभे गाड़कर और उनमें आड़ी बल्लियाँ बाँधकर घेरा और
छाया हुआ स्थान जिनमें गौएँ रक्खी जाती हैं। इसे कहीं कहीं
ढाढ़ा भी कहते हैं। उ०—वछरा सखी एक भग्यो खरका ते
मं तोहि दीन पदेगो तबो।—सेवक (अब्द०)। २. पशुओं
के चरने का स्थान। ३. चीरे हुए पतले बाँगे को बाँधकर
बनाया हुआ किताब जिसे गरीब लोग अपने घरों में लगाते
हैं। टट्टर।

खरक^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. 'खटा' या 'खरक'।

खरकता—संज्ञा पुं० [सं०] लटोरे की जाति का एक पक्षी।

खरकना^१—क्रि० अ० [अनु०] खर खर शब्द होना। खरखराना।
खड़कना। उ०—बागहि वाग विलोकत द्वारहि, चौकि परे
तिनके खरके हैं।—मार्तण्ड (अब्द०)।

खरकना^२—क्रि० अ० [हि० खर] १. फाँस चुभने के कारण दर्द
होना। फाँस चुभने का दर्द होना। ३. खड़कना। सरकना।
चल देना। उ०—तुलसी करि केहरि नाद भिरे भट खग
खगे, खुग्रा खरके।—तुलसी (अब्द०)।

खरकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। दिनकर [को०]।

खरकवट—संज्ञा स्त्री० [हि० खर = तिनका या आड़ा] दो अंगुल चौड़ी
एक चिकनी पटरी जो कंधे में दो खूँटियों पर अटकाकर
आड़ी रखी जाती है और जिसपर ताना फैलाकर बुनाई
होती है। इसका व्यवहार प्रायः गुलबदन आदि बुनने के
समय होता है।

खरका^१—संज्ञा पुं० [हि० खर] खड़ा तिनका।

मुहा०—खरका करना = भोजन के उपरान्त दाँतों में फँसे हुए
अन्न आदि को तिनके से खोदकर निकालना।

खरका^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खरक'।

खरका^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खटका'। उ०—(क) चीतल चीत
हिरन पाइ खरके भजि जंते।—पृ० रा०, ६।६४। (ख) कहे
रनधीर भग जाय पान खरका ते।—रघु० क०, पृ० २८४।

खरकुटी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गदहों का निवासस्थान। २. नाई
का निवास या दूकान। ३. नाई का चमोटा जिसमें नाई
अोजा रखते हैं [को०]। कस्यत।

खरकुटी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० खर + कुटी] खर और पत्ते आदि
से बनी झोपड़ी। उ०—राजगृह के चतुष्पथ पर एक खरकुटी
थी।—दे० न०, पृ० ३२१।

खरकोण—संज्ञा पुं० [सं०] तीतर पक्षी।—(हि०)।

खरकोमल—संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठ का महीना [को०]।

खरकवाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खरकोण' [को०]।

खरखरा—वि० [हि०] दे० 'खुरखुरा'।

खरखशा—संज्ञा पुं० [फा० खरखशह] १. भगड़ा। लड़ाई। २. भय।
आशंका। डर। ३. भ्रंश। बखेड़ा।

खरखोट—संज्ञा पुं० [हि० खरा + खोटा] धुलाई। बगवादी। हानि।
उ०—गाँधी बाध्यो दाम तो पगधो न फिर खरखोट।—
तुलसी ग्रं०, पृ० ५५४।

खरखौकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० खर + खाना] खर, तृण आदि
खानेवाली अग्नि। उ०—लागि दवार पहार ठही लहवी
कपि लंक जथा खरखौकी।—तुलसी (अब्द०)।

खरग^१—संज्ञा पुं० [सं० खड़ग] १. दे० 'खड़ग'। २. दे० 'खरक',
'खरिक' (अनेकार्थ०)।

खरगृह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खरकुटी' [को०]।

खरगेह—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुटिया। तंबू। २. दे० 'खरकुटी' [को०]।

खरगोश—संज्ञा पुं० [फा० खरगोश] खरक। चोगड़ा। वि०—दे०
'खरहा'।

खरघातन—संज्ञा [मं०] नागकेशर । नागचंपा [को०] ।

खरच—संज्ञा पुं० [फ्रा० खर्च] दे० 'खर्च' ।

मुहा०—खरच कर डालना(पुं०) = समाप्त करना । खपा डालना ।
माग डालना । उ०—यह बनियाँ कौन की हिमायत से बोलत
हैं । ताते यकी तुरत ही खरच करि डारो ।—दो सौ बावन०,
भा० १, पृ० २४५ ।

खरचनहार—वि० [हि० खरचना + हार (प्रत्य०)] खरच करने-
वाला । व्यय करनेवाला । उ०—माया तो है गम की, मोदी
सब संसार । जा को चिढ़ी ऊतगी मोदी खरचनहार ।—
संतवाणी०, भा० १, पृ० ५७ ।

खरचना—क्रि० स० [फ्रा० खर्च, हि० खरच या खर्च + ना (प्रत्य०)]
१. व्यय करना । खर्च करना । उठाना । लगाना । २. व्यवहार
में लाना । बर्तना ।

खरचर्मा—संज्ञा पुं० [सं० खरचर्मन्] मगर । नक्र [को०] ।

खरचा—संज्ञा पुं० [फ्रा० खर्च] दे० 'खर्च' ।

खरची—संज्ञा स्त्री० [हि० खरच + ई] दे० 'खर्ची' । उ०—ता पाछे
जब बैष्णवन जाइये की कहे तब कृष्ण भट रात्रि को उनकी
गाठि खरिया खोलि खरची बांधि देत ।—दो सौ बावन०,
भा० १, पृ० २७ ।

खरचूर(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० खर्चूर] एक प्रकार की चांदी । रजत ।
उ०—गजा के भंडार भैं, धन और दरब सपूर । पूरन
रतन पदारथ, गुलिक ननक खरचूर ।—दंडा०, पृ० ८ ।

खरच्छद—संज्ञा पुं० [मं०] १. भूमिसह वृक्ष । २. कुदर नामक वृक्ष ।
३. नक्र । मकर [को०] ।

खरज—संज्ञा पुं० [गं० खडज] दे० 'पटज' । उ०—खरज गांधे गाऊँ
में श्रवण सुनहु मुनाऊँ ।—अकबरी०, पृ० १०५ ।

खरजूर^१—संज्ञा पुं० [मं० खर्जर] दे० 'खर्जर' ।

खरजूर^२—संज्ञा स्त्री० [गं० खर्जर] एक प्रकार की चांदी । उ०—
खामा पट खरजूर, मुभूपण सारनै । दीधो दीलत पूर बधाई
दारनै ।—रघु० ६०, पृ० ६३ ।

खरतनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० खरादना] दे० 'खरदनी' ।

खरतर^२—वि० [हि० खर + तर (प्रत्य०)] १. अधिक तीव्र ।
बहुत तेज । उ०—क्या ताड़ के खरतर करई । प्रेम क संडसी
पोढ के धरई ।—जायसी (शब्द०) । २. लेनदेन में खग ।
व्यवहार का सच्चा या साफ ।

खरतरगच्छ—संज्ञा पुं० [गं०] उर्ल संप्रदाय की एक शाखा ।

खरतली^१—वि० [हि० खरा] १. खरा । स्पष्टवादी । २. शुद्ध हृदय-
वाला । ३. गुरीवत न करनेवाला । शील संकोच न करने-
वाला । ३. साफ । स्पष्ट ।

क्रि० प्र०—कहना ।—रहना ।

५. प्रचंड । उग्र ।

खरतवा(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि० खर + बयुष्मा] दे० 'खरतुष्मा' । उ०—
मुक्ति मरुण भूष मन जीते आगा सकत जगाए । भक्ति खेत में
लोभ खरतवा ताकूँ रहन न पाए ।—सहजो०, पृ० ५७ ।

खरतुआ—संज्ञा पुं० [हि० खर + बयुष्मा] बयुष् की तरह की एक
घास जो पंजाब और मध्यप्रदेश में अधिकता से होती है । इसे
चमरबयुष्मा भी कहते हैं । उ०—खेत बिगारयो खरतुष्मा,
सभा बिगारी कूर । भक्ति बिगारी लालची, ज्यों केसर में
धूर ।—कबीर सा० मं०, भा० १, पृ० ३६ ।

खरदंड—संज्ञा पुं० [गं० खरदण्ड] पद । कमल ।

खरदनी—संज्ञा स्त्री० [हि० खरादना] खगदने का भोजार । खराद ।
कजनी ।

खरदला—संज्ञा स्त्री० [मं०] एक प्रकार का गूलर । कठूमर [को०] ।

खरदा—संज्ञा पुं० [दं०] अंगूर का एक रोग जिसमें उसकी डालियों
पर लाल रंग की बुकनी बैठ जाती है और पीछे की बाढ़ नष्ट
हो जाती है ।

खरदिमाग—वि० [फ्रा० खरदिमाग] गधे की तरह बुद्धिवाला । नितान्त
मूर्ख । उजड़ु [को०] ।

खरदिमागी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खरदिमागी] नासमझी । मूर्खता ।
उजड़ुपन [को०] ।

खरदुका^१—संज्ञा पुं० [सं० क्षीरोदक, हि० क्षीरोदक] प्राचीन काल का
एक प्रकार का पहनावा । उ०—चंदनीता श्री खरदुक भारी ।
बांसपूर फिलमिल के सारी ।—जायसी गं०, पृ० १४५ ।

खरदूपण^१—संज्ञा पुं० [गं०] खर और दूषण नामक राक्षस जो रावण
के भाई थे । १. धतूरा । ३. ऋग्वेगी [को०] ।

खरदूपण^२—वि० जिसमें बहुत दोष हों ।

खरदूपण(पुं०)^३—संज्ञा पुं० [गं० खर = तीक्ष्ण + दोषन् = बाध] तीक्ष्ण
करेंवाला मूर्ख । उ०—वृष के खरदूपण ज्यों खरदूपण ।
तब दूर किए रवि के कुलभूपण ।—गमचं०, पृ० ७२ ।

खरधार—संज्ञा पुं० [मं०] तेज धारवाला अस्त्र ।

खरधावा^१—संज्ञा पुं० [हि० खर + धव] धय या धाव का पेड़ जिसकी
लकड़ी नाव आदि बनाने के काम में आती है । वि० दे० 'धव' ।

खरध्वंसो—संज्ञा पुं० [मं० खरध्वंसिन्] १. रामचंद्र । २. कृष्णचंद्र ।

खरना—क्रि० स० [हि० खरा] ऊन की पानी में उबालकर साफ
करना ।

खरनाद^१—संज्ञा पुं० [मं०] गधे की आवाज । रेंकना ।

खरनाद^२—वि० गधे की तरह आवाजवाला [को०] ।

खरनादिनो—संज्ञा स्त्री० [गं०] रेणुका नाम का गंधद्रव्य ।

खरनादो—वि० [सं० खरनादिन्] दे० 'खरनाद' ।

खरनाल—संज्ञा पुं० [सं०] कमल । पद [को०] ।

खरपत—संज्ञा पुं० [दं०] एक प्रकार का वृक्ष । धोतर ।

विशेष—यह वृक्ष रुहेलखंड, अवध, चम्पा तथा नीलगिरि में
अधिकता से होता है तथा जेठ बैसाख में फूलता और कांतिक
अग्रहन में फलता है । इसका फल मकोय के आकार का होता
है और कच्चा खाया जाता है । इसकी पत्तियों को हाथी
बहुत रुचि से खाते हैं । इसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता

Accession No.

29666

है और इसमें से हगपन लिए हुए पीले रंग का एक प्रकार का गोंद निकलता है। इसे धोहर भी कहते हैं।

खरपा—संज्ञा पुं० [सं० खर्ब] चौयगना।

खरपात—संज्ञा पुं० [सं० खर + हि० पात] घास पात। धाग फूग।

खरपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का वरतन [को०]।

खरपाल—संज्ञा पुं० [सं०] काठ का बना हुआ बरतन। कठीता।

खरप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] कपोत। क्यूत [को०]।

खरब—संज्ञा पुं० [सं० खर्ब] १. मो अरब। संख्या का बारहवाँ स्थान।
२. बारहवाँ स्थान की संख्या।

खरबिरई—संज्ञा स्त्री० [हि० खर + बिरई = बूटो] घास पात या जड़ी भूटी की दवा जो प्रायः देवती लोग करते हैं।

खरबुजा—संज्ञा पुं० [फा० खरबुजह्] दे० 'खरबूजा'।

खरबूजा—संज्ञा पुं० [हि० खरबूजा] दे० 'खरबूजा'।

खरबूजा—संज्ञा पुं० [फा० खरबुजह्] १. ककड़ी की जाति की एक वेल। २. इस वेल का फल।

विशेष—इसके फल गोल, बड़े मीठे और सुगंधित होते हैं। इसके बीज प्रायः नदियों के किनारे पूग माघ में गड़े खोदकर बो दिए जाते हैं, और घाग भूम से ढक दिए जाते हैं, जिनसे शीघ्र ही बहुत बड़ी बड़ी बेलें निकलकर चारों ओर त्व फैलती हैं। चैत से आषाढ़ तक इसमें फल लगते हैं। इसकी सरदा, राफेदा, चितला आदि अनेक जातियाँ हैं। इसके बीज ठंडाई के साथ पीसकर पिए जाते हैं और कई तरह से चीनी आदि में पागकर खाए जाते हैं। बीजों से एक प्रकार का तेल भी निकल सकता है जो खाने और साबुन बनाने के काम में आ सकता है।

मुहा०—खरबूजे को देखकर खरबूजे का रंग पकड़ना—किमी एक वस्तु की दिशादेशी या संग से दूसरे का भी वेशा ही हो जाना।

खरबूजी—वि० [हि० खरबूजा] खरबूजे की तरह रंगवाला।

खरबूजना—संज्ञा पुं० [हि० खर + बूजना] रंगरेजों का वह मटपड़ा जिगपार रंग का माट रखकर रंग टपकाने हैं।

खरबोरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० खरभराना] खलबली। हलचल।
उ०—फूलन देई की वरात मे खरबोरिया मचिगी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १००७।

खरब्बा—वि० [हि० खराब] चारुहीन। बदचलन।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः स्त्रियों के लिये ही होता है।

खरभर—संज्ञा पुं० [अनु०] १. खरभर का शब्द। २. होरा। शोर। गुनगपाड़ा। रोना। उ०—खरभर सुनत भए उठि ठाढ़े।
सिथिलित अंग भंग सुख गाढ़े। हम्मोर०, पृ० १०। ३. हलचल। गलबल। उ०—होनिहार का करतार को खरवार जग खरभर परा। दुष्ट साथ कहि रतिनाश जेहि कहँ कोप कर धनुमर परा। तुलसी (शब्द०)।

खरभरना—वि० प्र० [हि० खरभर] दे० 'खरभराना'।

खरभराना—वि० प्र० [हि० खरभर] १. खरभर शब्द करना। २. शोर करना। रोना करना। ३. गड़बड़ या हलचल मचाना। ४. चंचल होना। व्याकुल होना।

खरभरी—संज्ञा स्त्री० [हि० खरभर + ई] दे० 'खलबली'।

खरमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० खरमंजरी] अपामार्ग। चिचड़ा।

खरमंडल—संज्ञा पुं० [फा० खर + सं० मण्डल] गोलमाल। विघ्न। गुनगपाड़ा। होरा। उ०—जब कोई गुप्तवस्था की बात चली, कि खरमंडल मचा।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० २८७।

खरमस्त—वि० [फा० खरमस्तह्] दे० 'खरमस्ता'।

खरमस्ता—वि० [फा० खरमस्तह्] १. दुष्ट। शरारती। २. कामुक। ३. मतवाला [को०]।

खरमस्ती—संज्ञा स्त्री० [फा० खरमस्ती] १. दुष्टता। पाजीपन। शरारत। २. कामुकता [को०]। ३. मस्ती [को०]।

क्रि० प्र०—करना।—सूझना।

खरमास—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खरवाँस'।

खरमिटाव—संज्ञा पुं० [हि० खर + मिटाना] जलपान। कलेवा।
उ०—हम खरमिटाव कटली है रहिला चबाय के। भेवल धरल बा दूध मे खाजा तोरे बदे।—बदमाश०।

खरमिटौनी—संज्ञा स्त्री० [हि० खरमिटाव] दे० 'खरमिटाव'।

खरमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक राक्षस का नाम जिसे केकय देश में भरत जी ने मारा था। २. तुरगमुग। विधर [को०]।

खरमुख—वि० गधे की तरह मुखाकृतिवाला। बदशक्ल। कुरूप [को०]।

खरमुहरा—संज्ञा पुं० [फा० खरमुहरह्] छोटा धोंचा जो तालाबों में होता है। कीड़ी। कपड़िका। उ०—एक खरमुहरा खंच करना नहीं चाहता।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० १५६।

खरयान—संज्ञा पुं० [सं०] सवारी या गाड़ी जिनमें गदहे जुते हों [को०]।

खररश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] निग्गरश्मि। सूर्य [को०]।

खररोमा—संज्ञा पुं० [सं० खररोमन्] एक प्रकार का सर्प [को०]।

खरल—संज्ञा पुं० [सं० खल] पत्थर की गहरी, गोल और लंबोतरी कूटी जिसमें दस्तों से ओषधियाँ कूटी जाती हैं। खल।

मुहा०—खरल करना = ओषधि आदि को खल में डालकर गहीन पीमना। महीन कूटना।

खरलो—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खली'।

खरलोमा—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खररोमा' [को०]।

खरवट—संज्ञा स्त्री० [सं०] काठ के दो टुकड़ों से बना हुआ एक तिथीना औजार जिसमें रेती जानेवाली वस्तु को फँसाकर उसे रेतते हैं।

खरवाँस—संज्ञा पुं० [हि० खर + मास] पूस और चैत का महीना जब सूर्य धन और मीन का होता है। इन महीनों में भागलिक कार्य करना विजित है।

खरवार—संज्ञा पुं० [सं० खर + वार] रवि भास आदि अशुभ दिन।

खरशब्द—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुरंग नाम का एक पक्षी। २. गर्दन का रज्ज [को०]।

खरशाक—संज्ञा पुं० [सं०] भारंगी नाम का पौधा [को०]।

खरशाळा—संज्ञा पुं० [सं०] गदहों के रहने का स्थान [को०]।

खरशिला—पंजा ५० [५०] मंदिर आदि की कुर्सी का वह ऊपरी भाग जिसपर सारी इमारत खड़ी रहती है।

खरस—पंजा ५० [फ्रा० खिस] गीछ। भानू। (कलंदरों की बोली)।

खरसा^१(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० खरस] एक प्रकार का भोज्य पदार्थ।
उ०—भई मिथोरी खिरका पया। सोंठ लाय के खरसा धरा।—जायसी (शब्द०)।

खरसा^२—संज्ञा स्त्री० ['खर'] एक प्रकार की मछली जो आगाम और ब्रह्म देश की नदियों में पाई जाती है।

खरसा^३—संज्ञा ५० [देश०] १. श्रीराम ऋतु। गरमी का दिन। २. प्रकाल। कहत।

खरसा^४—संज्ञा ५० [फ्रा० खारिशा] खज। खुजनी। खारिण।

खरसान—संज्ञा स्त्री० [हि० खर + सान] एक प्रकार की सान जो अधिक तीक्ष्ण होती है। इसपर तलवार उतारी जाती है।
उ०—(क) शिप खाँडा गुरु मसकला चंड शब्द खरसान।
शब्द महे सम्मुख रहै निपजै शिष्य सुजान।—कबीर (शब्द०)।
(ख) बाना तेरे नैन की विगल गाल मोतिन के बलभद्र गाने है सुहाग खरसान के।—बलभद्र (शब्द०)।

खरसार—संज्ञा ५० [सं०] लांहा। इगान [को०]।

खरसुमा—वि० [फ्रा० खर + सुम] जिग (घोड़े) के गुम गंध के सुमो की भाँति बिलकुल लड़े हो।

खरसैला—वि० [हि० खरसा + साज + ऐल (प्रत्य०)] जिसे खुजली हुई हो।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः पशुओं के लिये होता है।

खरस्कंध—संज्ञा ५० [सं० खरस्कन्ध] १. पियाग या चिरोजी का पेड़। २. मज्जर वृक्ष [को०]।

खरस्पर्श—वि० [सं०] तीक्ष्ण। गरम (वायु) [को०]।

खरस्वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जंगली धमनी। वन-मल्लिका [को०]।

खरहर—संज्ञा ५० [देश०] बलून की जाति का एक पेड़।

विशेष—यह हिमालय की तराई में होता है। इसकी पत्तियाँ बर की पत्तियों से बड़ी होती है। फल बलून ही के से होते हैं। इसकी कच्ची लकड़ी, जो सफेद होती है और पकने पर गहरी भूरी हो जाती है, खेती के औजार बनाने के काम में आती है। छाल से चमड़ा सिमाया जाता है।

खरहरना^१—क्रि० प्र० [हि० खर + तिनका + हरना] भाँड़ देना।

खरहरना^२—क्रि० स० घोड़े के शरीर पर खरहरा करना। खरहरे से घोड़े का शरीर साफ करना।

खरहरना^३(५)—क्रि० प्र० [सं० खलन, प्रा० खलण + हि० हिलना, हलना या प्रा० खल खल] विचलित होना। कंपित होना। खड़बड़ाना।
उ०—ते ऊँचे चढ़िके खरहरे। धमक धमक नरकन में परे। नंद० प्र०, पृ० २२६।

खरहरा—संज्ञा ५० [हि० खरहरना] [स्त्री० अग्न्या० खरहरी] १. रहटे या अरहर की डंठलों से बना हुआ भाँड़ जिसे मँखरा

भी कहते हैं। २. एक चौकोर छोटी पट्टी जिसमें धान बोनी हुई, छोटे दाँतों की कंधियाँ जड़ी होती हैं।

विशेष—यह घोड़े का बदन खुजलाने और उसमें से गर्द और धूल निकालने के काम में आती है। चमटे के टुकड़े में एक विशेष प्रकार से लोहे के तार जड़कर भी खरहरा बनाया जाता है।

खरहरी^१(५)—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक मेवा (कदाचित् खजूर या छुहारा)। उ०—(क) तहरी पाक बोने श्री गरी। परी चिरोजी और खरहरी।—जायसी (शब्द०)। (ख) नरियर फरे फरी खरहरी। फरें जानु इंदारन गुरी।—जायसी (शब्द०)।

खरहरी^२—वि० स्त्री० [हि० खड़बड़] (खाट) जिगपर विद्यावन न बिछाया गया दो। निखरहर (बोल०)।

खरहा—संज्ञा ५० [हि० खर + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० खरही] चूहे की जाति का, पर उससे कुछ बड़े आकार का एक जंतु। खरगोश। उ०—बीली नाचे मुग मिग्दंगी खरहा ताल बतावे।—संत० दरिया, पृ० १२६।

विशेष—इसके कान लंबे, मुँह और मिर गोल, चमड़ा नरम और रोएदार, पूँछ छोटी और पिछली टांगें अपेक्षाकृत बड़ी होती हैं। यह संसार के प्रायः सभी उत्तरी भागों में भिन्न भिन्न आकार और वर्ण का पाया जाता है। यह जंगलों और देहातों में जमीन के अंदर बिल खोदकर झुंड में रहता है और रात के समय आसपास के खेतों, विशेषतः ऊँच के खेतों की बहुत हानि पहुँचाता है। यह बहुत अधिक डरपोक और अत्यंत कोमल होता है और जग से आघात से मर जाता है। यह छलांगें मारते हुए बहुत तेज दौड़ता है। इसके दाँत बड़े तेज होते हैं। खरही छह मास की होने पर गर्भवती हो जाती है और एक मास पीछे सात आठ बच्चे देती है। दस पंद्रह दिन पीछे वह फिर गर्भवती हो जाती है और इसी प्रकार बराबर बच्चे दिया करती है। किसी किसी देश के खरहे जाड़े के दिनों में सफेद हो जाते हैं। इनका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है। शास्त्रों के अनुसार यह भक्ष्य है और वैद्यक में इसका मांस ठंडा, लघु, शोथ, अनीसार, पित्त और रक्त का नाशक और मनवदकारक माना गया है। इसे चांगुटा, लमहा और खरगोश भी कहते हैं। इसका संस्कृत नाम 'शश' है।

खरही^१—संज्ञा स्त्री० [हि० खर] (धाग या अग्न आदि का) डेर। समूह। राशि।

खरांडक—संज्ञा ५० [सं० खराण्डक] शिव के एक अनुचर का नाम।

खरांशु—संज्ञा ५० [सं०] सूर्य। खरकर। तिग्मग्रिम।

खरा—वि० [सं० खर=तीक्ष्ण] [वि० स्त्री० खरी] १. तेज। तीखा। चोखा। २. अच्छा। बढ़िया। स्वच्छ। विशुद्ध। बिना मिलावट का। 'खोटा' का उलटा। जैसे, खरा गोना। खरा रुपया।
उ०—राजें नवीन निकाई भरी रतिहू ते खरी वे दुँ परजंक में।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

मुहा०—खरा छोटा = भला बुरा। खरा छोटा परखना = अच्छे बुरे की पहचान करना। जी खरा छोटा होना = चित्त चलाय-

मान होना । मन डगना । बुरी नीयत होना । खरे आए = अच्छे मिले । अच्छे आए । (व्यंग्य) ।

३. सँककर कड़ा किया हुआ । कराग ।

मुहा०—कान खरा करना = कान गरम करना । कान मलना ।

४. जो झुकने या मोड़ने से टूट जाय । चीमड़ । कटा । ५. जिसमें किसी प्रकार की बेईमानी न हो । जिसमें किसी प्रकार का धोखा न हो । जो व्यवहार में सच्चा और ईमानदार हो । साफ । छल-छिद्र-शून्य । जैसे,—खरा मामला । खरा आदमी ।

मुहा०—खरा प्रसामी = १० 'खरा आदमी' । खरा आदमी = जैन देन में सफाई रखनेवाला आदमी । व्यवहार में सच्चा मनुष्य । ईमानदार । खरा खेल = साफ मामला । शुद्ध व्यवहार । खरा खेल फर्खलाबादी = फर्खलाबाद के रूप की तरह शुद्ध और सच्चा व्यवहार ।

विशेष—फर्खलाबाद की टकसाल का रूपया किसी समय में बहुत खरा और चोखा समझा जाता था ।

६. नकद (दाम) । उ०—मगर खरी मजदूरी और चोखा काम । हमारे वतन में बागवा रोज के रोज उज्जत पाते हैं ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३१४ ।

मुहा०—खर होना = रूप में मिलने का निश्चय होना । जैसे,—तुम्हारे रूप तो खरे हो गए, अब हमारा उनका मामला रह गया ।

७. उचित बात कहने या करने में शील संकोच न करनेवाला । लगी लिपटी न कहनेवाला । स्पष्टवक्ता । जैसे, खरा कहैया । ८. (बात के लिये) यथातथ्य । गच्चा । अप्रिय सत्य । जैसे, खरी बात ।

मुहा०—खरी सुनाना, खरी खरी सुनाना = सच्ची बात कहना, चाहे किसी को बुरा लगें चाहे भला । उ०—मे लगी लिपटी नहीं रखती । खरी खरी कहती हूँ । दो ठूक । या उधर • या उधर ।—मर०, पृ० २६ ।

९. बहुत । अधिक । ज्यादा । उ०—(क) अरे, परखो को करे, तुही बिलोक बिचार । कहि नर केहि सर राखियो नरे बंटे पर पार ।—विहारी (शब्द०) । (ख) रस के उपजावन गुंज खरे पिय लेत परे रस के नसके ।—वृंद (शब्द०) ।

खराई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० खरा + ई (प्रत्य०)] 'खरा' का भाव । खरापन ।

खराई^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] सबेरे अधिक देर तक जलपान या भोजन आदि न मिलने के कारण जुकाम होना, गला बैठना या प्रकृति में होनेवाली इसी प्रकार की और कुछ गड़बड़ी ।

मुहा०—खराई मारना = जलपान करना । कलेवा करना ।

खराऊँ—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'खराऊँ' ।

खराकहैया—वि० [हि० खरा + कहना + ऐया (प्रत्य०)] खरा कहनेवाला । स्पष्टवक्ता ।—(बोल०) ।

खरागरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता का वृक्ष । देवताइक । जीपूत ।

खराज—संज्ञा पुं० [अ० खराज] खिराज । राजकर । राजस्व । उ०—बहुत से हिंदू राजाओं से केवल खराज लेकर वह संतुष्ट हो गए ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ५०४ ।

खराद^१—संज्ञा पुं० [अ० खरात, फ़ा० खराद] एक औजार । चरख । खरसान । उ०—मानो खराद चढ़े रवि की किण्वी गिरीं आनि सुमेरु के ऊपर ।—पजनेस०, पृ० १३ ।

विशेष—इसपर चढ़ाकर लकड़ी, धातु आदि की सतह चिकनी और सुडील की जाती है । चारपाई के पावे, डिब्बिया, खिलौने आदि बड़ई खराद ही पर चढ़ाकर सुडील और चमकीले करते हैं । ठंडे भी बरतनों को चिकना करने और चमकाने के लिये उन्हें खराद पर बढ़ाते हैं ।

मुहा०—खराद पर उतरना या चढ़ना = (१) ठीक होना । दुस्त होना । सुधरना । (२) लौकिक व्यवहार में कुशल होना । अनुभव प्राप्त होना । खराद या खराब पर उतारना या चढ़ाना ठीक करना । सुधारना । दुस्त करना । सँवारना । उ०—खैचि खराद चढ़ायें नहीं न सुधार के डारनि मध्य डराए ।—सरदार (शब्द०) ।

खराद^२—संज्ञा स्त्री० १. खरादने का भाव । २. खरादने की क्रिया । ३. ढंग । बनावट । गढ़न ।

खरादना—क्रि० सं० [हि० खराद + ना (प्रत्य०)] १. खराद पर चढ़ाकर किसी वस्तु को साफ और सुडील करना । २. काट छाँटकर सुडील बनाना ।

खरादी—संज्ञा पुं० [हि० खराद] जो खरादने का काम करे । खरादनेवाला ।

खरापन—संज्ञा पुं० [हि० खरा + पन] १. खरा का भाव । २. सत्यता । सच्चाई ।

मुहा०—खरापन बधारना = सच्चाई की डींग मारना । बहुत अधिक सच्चा बनना ।

३. उमन्तता ।

खराब—[अ० खराब] १. बुरा । निकृष्ट । होन । अच्छा का उलटा । २. जो बहुत दुरवस्था में हो । दुर्दशाग्रस्त । जैसे—मुकदमे लेकर उन्होंने अपने आपको खराब कर दिया । ३. पतित । मर्यादाभ्रष्ट । दुश्चरित्र ।

मुहा०—(किसी को) खराब करना = (१) (किसी परम्परी के साथ) कुकर्म करना । (२) किसी को बुरे गढ़ में जाना । बदचलन या दुश्चरित्र बनाना । खराब होना—दुश्चरित्र होना । बदचलन होना ।

४. विध्वस्त । वरवाद (को०) । ५. निर्जन । वीरान (को०) ।

खराबा—संज्ञा पुं० [फ़ा० खराब] १. निर्जन या अनजल से रहित स्थान । वीरान । २. खंडहर । उजाड़ (को०) ।

खराबात—संज्ञा पुं० [फ़ा० खराबात] १. मधुशाला । मदिरालय । २. जुआ खेलने का अट्टा । घूतगृह । ३. कुलटा स्त्रियों का अट्टा । चकला (को०) ।

खराबाती—वि० [फ़ा० खराबाती] १. हर समय नशे में । मस्त रहनेवाला । मदमस्त । उ०—मेरे शोखे खराबाती की कैफियत न कुछ पूछो । बहारे हुस्न को दी आब उमने जब बरस खोचा ।—कविता की०, भा० ४, पृ० ४८ । २. जुआ खेलने का आदी । जुआड़ी (को०) ।

खराबी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खराबी] १. बुरापन । दोष । अवगुण । २. दुर्दशा । दुरवस्था । ३. विध्वंस । बरबादी (को०) ।

क्रि० प्र०—खाना ।—खाना ।—होना ।

मुहा०—खराबो में पड़ना = विपत्ति या दुर्दशा में फँसना ।

३. गंदगी । गलीज (कहारों की बोली) ।

विशेष—जब अगला कहार कहीं विपत्ति आदि पड़ा देखता है, तब पिछले कहार को सचेत करने के लिये इस शब्द का प्रयोग करता है ।

खराब्दाकुरक—संज्ञा पुं० [सं० खराब्दाकुरक] लहसुनिया नाम का रस्त । वैदूर्यमणि ।

खरारि—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामचंद्र । २. विष्णु भगवान् । ३. कृष्णचंद्र । ४. बलराम (धेनुका असुर को मारने के कारण) । ५. एक छंद का नाम जो ३२ मात्राओं का होता है ।

खरायँध—संज्ञा स्त्री० [हि० खार(खार) + गंध] १. सूत्र की दुर्गंध ।

खरारी—संज्ञा पुं० [सं० खरारि] दे० 'खरारि' । उ०—ते द्विज मोहि प्रिय जया खरारी ।—मानस, १।१०६ ।

खरालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नापित । हज्जाम । २. नाई का सामान रखने का धैला । किसबत । ३. शिरोपधान । तकिया । ४. लोहे का बाण [को०] ।

खरालिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खरालक' [को०] ।

खराश—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. वह हल्का घाव जो छिलन आदि के कारण हो जाता है । खरोच । छिलन । ३. खुजली [को०] ।

खराश्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोचमस्तक । कृष्ण जीरक [को०] ।

खराह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा । अजवाइन [को०] ।

खरिक^१—संज्ञा पुं० [देश] १. वह उम्र जो खरीफ की फसल के बाद बोई जाय । २. एक प्रकार का भेषा । छहरा । खरहरी । उ०—खरिक, दाव्य अस गरी चिरारी । पिड बडाम, लेह बनवारी ।—सूर०, १०।३६६ ।

खरिका^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खरक', 'खरका' उ०—खरिका खिलावन गांदिनि ठाढ़े । इत नंदलाल ललित लरिका उन गोप महाबल ठाढ़े ।—छीत०, पृ० ३ ।

खरिका^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी का चूर्ण [को०] ।

खरिका^४(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खरक' । उ०—गयो हुतो चारन गो खारन के संग आज खरिका में खेतन मों लरिका डगायोरी ।—दीन० ग्रं०, पृ० ६ । २. दे० खरका ।

खरिच^१—संज्ञा पुं० [फा० खरिच] दे० 'खरिच' ।

खरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० खर = घास + इया(प्रत्य०)] १. पतली रस्सी से बनी हुई जाली जो घास, भूसा आदि बांधने के काम में आती है । पांसी । उ०—कृष्णागत ललात जो रोटिन वो घर बात धरे खुरपा खरिया ।—तुलसी (शब्द०) । २. भोली । थैली ।

खरिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० खार = राख] कंडे की राख ।

खरिया^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. वह लकड़ी जिसकी सहायता से नाँद में नील कसकर भरते या दबाते हैं । २. एक जंगली जाति ।

खरिया^४—संज्ञा स्त्री० [सं० खरिडका] दे० 'खड़िया' । उ०—खरिया, खरी, कपूर सब, उचित न प्रिय तिय त्याग । कै खरिया

मोहि भेलि, कै विमल विवेक बिराग ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२४ ।

खरियान(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० खल + स्थान, हि० खलियान, खलिहान] दे० 'खलियान' । उ०—देखति हो वृज की लुगाइन भयो धो कहाँ खेत की कहे तैं खरियान की समझती ।—ठाकुर०, पृ० १५ ।

खरियानां^१—क्रि० स० [हि० खरिया = भोली] १. भोली में डालना । थैली में भरना । २. हस्तगत करना । ले लेना । ३. भोली में से गिरना ।

खरिहट^१—संज्ञा स्त्री० [हि० खर इहट (प्रत्य०)] वह पतली लकड़ी या तिनका जिसमें एक डोरा बंधा रहता है और जिसकी सहायता से कुम्हार बने हुए बर्तन आदि को चाक की मिट्टी से काटकर अलग करता है ।

खरिहान^१—संज्ञा पुं० [हि० खलिहान] दे० 'खलियान' । उ०—गंग तीर मोरी खेती बारी जमुन तीर खरिहाना ।—कबीर ग्रं०, पृ० ६३ ।

खरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] गदही । गर्दभी । उ०—कह गंगस अस कवन अभागी । खरी सेव सुरधेनु त्यागी ।—मानस ७।११० ।

खरी^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ईल ।

खरी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० खली] दे० 'खली' ।

खरी^४—संज्ञा स्त्री० [सं० खरिडका, हि० खड़िया, खरिया] दे० 'खड़िया' । उ०—कर्म खरी कर, मोह धल, अंक चराचर जात । हनत गुनत गुनि गुनि हनत जगत ज्योतिपी काल ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२३ ।

खरीक(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खरका' ।

खरोखोटो—संज्ञा स्त्री० [हि०] स्पष्ट और कड़ी लगानवाली बात ।

खरीजंघ—संज्ञा पुं० [सं० खरीजङ्ग] शिव का एक नाम [को०] ।

खरीता—संज्ञा पुं० [अ० खरीतह] [अ० अरत्पा० खरीतो] १. थैली । खीसा । २. जेब । ३. वह बड़ा लिफाफा जिसमें किसी बड़े अधिकारी आदि की ओर से मातहत के नाम आज्ञापत्र आदि भेजे जायें । दजियों की वह थैली जिसमें वे सूई डोरा रखते हैं । ४. सूई डोरा रखने की थैली [को०] ।

खरीतिया—संज्ञा पुं० [अ० खरीतह] मुसलमानी राजन्यकाल का एक प्रकार का कर । इसे अकबर ने उठा दिया था ।

खरीद—संज्ञा स्त्री० [फा० खरीद] १. मोल लेने की क्रिया । क्रय ।

यौ०—खरीद करोस्त = क्रय विक्रय ।

२. मोल लिया हुआ पदार्थ । खरीदी हुई चीज । जसे, यह दुशाला पचास रुपए की खरीद है ।

खरीदना—क्रि० स० [फा० खरीदन] मोल लेना । क्रय करना ।

खरीदा^१—संज्ञा स्त्री० [फा० खरीदह] १. कुमारी कन्या । २. लज्जा-शील स्त्री [को०] ।

खरीदा^२—संज्ञा पुं० १. अनविधा मोती । २. दासी का पुत्र [को०] ।

खरीदा^३—वि० [वि० स्त्री० खरीदी] क्रीत । मोल लिया हुआ ।

खरीदार—संज्ञा पुं० [फा० खरीदार] १. मोल लेनेवाला । ग्राहक । २. चाहनेवाला । इच्छुक ।

- खरीदारी**—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खरीदारी] मोन लेने की क्रिया । क्रय ।
- खरीफ**—स्त्री० स्त्री० [ग्र० खरीफ] वह फसल जो आषाढ़ में आधे अगहन के बीच काटी जाय । इस फसल में धान, मकई, बाजरा, उद, मोर, मूंग आदि अन्न होत है । उ०—मुसलमान रब्बी मेरी हिंदू भैया खरीफ ।—पलटू०, पृ० ११७ ।
- खरोम**—संज्ञा स्त्री० [देश०] मूर्ति की शक्ति की एक चिड़िया जो प्रायः पानी के किनारे रहती है । इसके पर नील की तरह चितले होते हैं ।
- खरील**—संज्ञा पुं० [] एक प्रकार का जेवर जिसमें त्रिपरी वेदी की भांति सिर पर पहनती है ।
- खरु**—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्व । २. दांत । ३. गर्व । शान । ४. कामदेव । ५. शिव का एक नाम । ६. शेर वगैरे । ७. वज्रित वस्तुओं को लेने की आकांक्षा [को०] ।
- खरु**—संज्ञा स्त्री० अपना गति स्थान चुननेवाली कुमारी । पतिवरा कन्या [को०] ।
- खरु**—वि० १. श्वेत । गफेद । २. भूख । भगवान् । ३. अरु । कठोर । ४. वज्रित वस्तुओं को लेने का इच्छुक ।
- खरो**—संज्ञा पुं० [देश०] एक आने प्रति रूप की दलाली ।—(दलाली की बोली) ।
- खरोठ**—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है ।
- खरेडी**—संज्ञा पुं० [हि०] १. 'खरही' । २. भाजन तो वृत्तिका के फूटे खाली गान नाही तूटी में खरेडी खाटगल मो लहत है ।—राम० धर्म०, पृ० ६६ ।
- खरेडुआ**—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'मगेरी' ।
- खरेरा**—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'महरा' ।
- खरेला**—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का फल । २०—खरि खरेला दाख फिरनी आम मीफन लाइया ।—घट०, पृ० ६१ ।
- खरेया**—संज्ञा पुं० [हि०] खरा—सड़ा । ऐया (प्रत्य०)] खरे रहने-पाले । चुपचाप स्थित रहनेवाले । दर्शक । उ०—द्रोपदी विचारे रघुराज गाज जाती नाज सब है मरेया पे न देख को मुनेया है ।—राम० धर्म०, पृ० २६७ ।
- खरोच**—संज्ञा स्त्री० [अनुकरणमूलक देश०] १. नख आदि लगने या श्रीर किमी प्रकार छिलन वा हलका चिह्न । मराण । २. पतोर नामक भोज पदार्थ जो आर्द्र आदि के पत्तों की पीठी या धंसन में लपेटकर तलने से बनता है । खिचवच ।
- खरोचना**—क्रि० सं० [सं० क्षुरण] क्षुरचना । करोना । छीलना ।
- खरोट, खरोट**—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'खरोच' ।
- खरोटना**—क्रि० सं० [हि०] खरोट न (प्रत्य०)] ३० 'खरोटना' । २. नाखून गड़ाकर शरीर में घाव करना ।
- खरोदक**—संज्ञा पुं० [सं० क्षीरोदक] एक प्रकार का वरुण या पहिरावा । खरुदक । उ०—गाणिक मोती भोक पुगई दिया खरोदक पड़हरणद ।—वी० रामो, पृ० १११ ।
- खरोरा**—संज्ञा पुं० [हि० खरोरा] ३० 'खरोरा' ।

- खरोरी**—संज्ञा स्त्री० [हि० खड़ा] छकड़ा गाड़ी में दोनों ओर के वे खूँटे जिनपर रोक के लिये बाँस बंधे रहते हैं ।
- खरोश**—संज्ञा पुं० [फ्रा० खरोश] जोर की आवाज । हल्ला । शोर ।
- खरोष्ठी**—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'खरोष्ठी' ।
- खरोष्ठी**—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लिपि ।
- विशेष**—अध्याय के समय में यह लिपि भारत की पश्चिमोत्तर सीमा की ओर प्रचलित थी । यह लिपि फारसी की तरह दाहिने से बाएँ को लिखी जाती थी । इसे गाधार लिपि भी कहते हैं ।
- खरोट, खरोटी**—संज्ञा स्त्री० [हि० खरोच] खरोच । खराण । उ०—मैं बरजी के बार तू उत कित लेति करोट । पखुरी गई गुलाब की परिहै गात खरोट ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) तीन साँच करि मानिहै अलि अचरज की बात । ये गुलाब की पंखरी परो खरोटी गात ।—भिलाही० ग्रं०, भा० १, पृ० १४ ।
- खरोटना**—क्रि० सं० [हि० खरोट] ३० 'खरोचना' ।
- खरोहा**—वि० [हि० खारा + खोहा (प्रत्य०)] कुछ कुछ खारा । कुछ नमकीन । उ०—स्याम सुरति करि राधिका नकति सगनिजा तीर । भ्रंसुभन करति नरोस को छिनक खरोहो नीर ।—बिहारी (शब्द०) ।
- खरोटा**—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'खरोट' । उ०—पकरि मोहि जल बीच हिलोरघो तांगघो गर को दाम । सरि कंकन को दिखी खरोटा मेरे मुख सुनु बाम ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ११३ ।
- खखोद**—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का इंद्रजाल ।
- खर्ग**—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'खर्ग' । उ०—दूसर खर्ग कंध पर दीवहा । सुरज वे भोड़न पर लीवहा ।—जायसी (शब्द०) ।
- खर्च**—संज्ञा पुं० [ग्र० खर्च] १. किसी काम में किसी वस्तु का लगना । व्यय । सर्फा । खपत । जैसे,—(क) दस रूपए खर्च हो गए । (ख) इस शहर में पानी का बहुत खर्च है ।
- क्रि० प्र०—करना ।—बेना ।—बाँटना ।—होना ।**
- मुहा०—खर्च उठाना**—व्यय का भार सहना । खर्च करना । जैसे,—इस महीने में उन्हें बहुत खर्च उठाना पड़ा । खर्च चलना = व्यय का निर्वाह करना । आवश्यक व्यय के लिये धन देने रहना । खर्च में डालना—(१) व्यय करने के लिये विवश करना । (२) किसी रकम को खर्च के मद में निवृत्त । खर्च निकलना—लागत प्राप्त होना । खर्च में पड़ना = (१) व्यय के लिये विवश होना । (२) किसी रकम का खर्च के मद में लिखा जाना ।
- यो०—ऊपरी खर्च**—नियमित से अतिरिक्त या अनिश्चित व्यय । फुटकर खर्च ।
२. वह धन जो किसी काम में लगाया जाय । जैसे,—उनके पास कुछ भी खर्च नहीं है ।
- यो०—खर्चखानी**—(१) निजी खर्चा । व्यक्तिगत व्यय । २. पारिवारिक या घरेलू खर्च ।
- खर्चना**—क्रि० सं० [ग्र० खर्च + हि० ना (प्रत्य०)] ३० 'खर्चना' ।

खर्चो—संज्ञा पुं० [फ्रा० खर्चह्] दे० 'खर्च' ।

खर्चो—संज्ञा स्त्री० [हि० खर्च] वह धन जो वेषया आदि को कुकर्म करने के लिये मिले । कसब कराने का पुरस्कार ।

क्रि० प्र०—कमाना ।

मुहा०—खर्चों पर चलना या जाना = धन के लिये कुकर्म या प्रसंग करना ।

खर्ची—वि० दे० खर्चीला ।

खर्चीला—वि० [हि० खर्च+ईला (प्रत्य०)] जो बहुत अधिक व्यय करे । खूब खर्च करनेवाला ।

खर्ज(पुं)—संज्ञा पुं० [हि० खरज] दे० 'खरज', 'खडज' । उ०—तब लीनी कर कंजनि मुगली । खर्जादिक जु सम सुर जु रली ।—नंद ग्रं०, पृ० ३१७ ।

खर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] खुजलाना । खुजलाने की क्रिया या भाव ।

खर्जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जी मिट्टी ।

खर्जिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उपदंश या गरमी नाम का रोग । २. गजक । चिखना (को०) ।

खर्जु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खजूर का पेड़ । २. खुजली । ३. धतूरा का पौधा । ४. एक प्रकार का कीड़ा (को०) ।

खर्जुघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. चत्रमर्द । चकवड़ । २. धतूरा । ३. मदार । आक (को०) ।

खर्जुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चाँदी । २. खजूर (को०) ।

खर्जू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खुजली । कड़ू । २. एक कीटमर्द (को०) ।

खर्जूर—संज्ञा पुं० [सं०] १. खजूर । २. चाँदी । ३. हस्ताल । ४. बिच्छू । ५. गर्भ (अनेकार्थ०) । ६. जरायु (अनेकार्थ०) । ७. शूद्र (अनेकार्थ०) । ८. धतूरा (को०) ।

खर्जूरक—संज्ञा पुं० [सं०] वृश्चिक । बिच्छू (को०) ।

खर्जूररस—संज्ञा पुं० [सं०] खजूर का रस । ताड़ी । एक मादक पेय (को०) ।

खर्जूररसज—संज्ञा पुं० [सं०] खजूर के रस से बनी शर्करा या गुड़ (को०) ।

खर्जूरवेध—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक प्रकार का योग जिसमें विवाह होना वजित है । इसे एकार्गल भी कहते हैं ।

खर्जूरिका—संज्ञा पुं० [सं०] खजूर के रस से बनी हुई या खजूर के आकार की मिठाई (को०) ।

खर्जूरी—स्त्री० संज्ञा [सं०] खजूर (को०) ।

यौ०—खर्जूरीरस = खजूर की ताड़ी । खर्जूरीरसज = खजूर के रस का बना हुआ गुड़ या मिखी ।

खर्तल—वि० [हि०] दे० 'खर्तल' । उ०—जब ऐसे खर्तल अनुध्य का अंत मैं यह भेद खुला तो संसार मैं धर्मत्मा किस्को कह सकते हैं ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३३६ ।

खर्प(पुं)—संज्ञा पुं० [सं० खर्प] दे० 'खर्पर' । उ०—नरी ग्राह पावं वरं खर्प जैसे ।—हं० रासो, पृ० १५२ ।

खर्पर—संज्ञा पुं० [सं०] १. तसले के आकार का मिट्टी का बरतन ।

२. काली देवी का वह पात्र जिसमें वह रुधिर पान करती हैं ।

३. भिक्षापात्र । ४. खोपड़ा । ५. चोर । ६. धूर्त । ७. खपरिया नामक उपधातु । ८. छाता (को०) ।

खर्परिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छतरी । छाता (को०) ।

खर्परी, खर्परोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खपरिया नाम की एक उपधातु (को०) ।

खर्ब(पुं)—वि० [सं०] छोटा । लघु । क्षुद्र । उ०—खर्ब निसाचर बोधेउ नागपास सोइ राम ।—मानस, ७ । ५८ । दे० खर्ब ।

खर्बूर—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल का छिलका (को०) ।

खर्ब—संज्ञा पुं० [सं०] १. मिला । रेशम । २. श्रोज । शक्ति । ३. कठोरता । परुषता (को०) ।

खर्बच—वि० [हि०] दे० 'खर्बच' ।

खर्बट—वि० [हि०] दे० 'खुर्गट' ।

खर्बी—संज्ञा पुं० [खर खर से श्रुत०] १. वह लवा या बड़ा कागज जिसमें कोई भारी हिंगाव या विवरण लिखा हो । २. एक प्रकार का रोग जिसमें पीठ पर छोटी-छोटी फुंसियाँ निकल आती हैं और चमड़ा कुरा और खुरदुरा हो जाता है ।

खर्बच—वि० [फा० खर्बच] खर्चीला । उ०—वेशक उसी ने तो चोरी लुके गए दे देकर मानिक को ऐसा खर्बच होने दिया था ।—शरावी, पृ० १५५ ।

खर्बटा—संज्ञा पुं० [श्रुत०] वह शब्द जो सांते समय नाक से, विशेषतः बलगमी आदमी की नाक से, निकलता है ।

मुहा०—खर्बटा भरना, भरना या लेना = बेशबर सोना । उ०—मुगलानियाँ खर्बटि लेती थी ।—फिमाना, भा० ३, पृ० २५ ।

खर्बत—संज्ञा पुं० [श्रुत०] मराद का काम करनेवाला व्यक्ति । खरादी (को०) ।

खर्बती—संज्ञा स्त्री० [श्रुत०] खरादी का काम या पेशा (को०) ।

खर्बद्—संज्ञा पुं० [फा० खर्बद्] खरादी । खराती (को०) ।

खर्व—वि० [सं०] जिसका अंग भग्न या अपूर्ण हो । न्यूनांग । २. छोटा । लघु । उ०—यहाँ खर्व नर रहते युग युग से अभि-शापित ।—आगवा, पृ० १६ । ३. वामन । वीना ।

खर्व^२—संज्ञा पुं० १. संस्था का बारहवां स्थान । सी अरब । खरब । २. बारहवां स्थान की संख्या ।

विशेष—वैदिक काल में गन्था का २५वाँ स्थान खर्व कहलाता था ।

३. कुबेर की नौ निधियों में से एक । ४. कूजा नाम का वृक्ष ।

खर्वट—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहाट के ऊपर बसा हुआ गाँव । २. वह गाँव जो चार सौ गाँवों के बीच बसा हो । ३. दो सौ गाँवों के गन्ध का प्रमुख ग्राम (को०) । ४. नदी के किनारे बसा हुआ कस्बा और गाँवनुमा बस्ती (को०) ।

खर्वशाख—वि० [सं०] ठगना । छोटे वृद्ध का (को०) ।

खर्वित—वि० [सं०] छोटा या लघु किया हुआ । खर्व (को०) ।

खर्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह अमावस्या जिसमें चतुर्दशी मिली हुई हो । ऐसी अमावस्या बहुत कम होती है । २. वह तिथि

जिसका कालमान पहले दिन की तिथि के कालमान से कुछ कम हो।

खवुज—संज्ञा पुं० [म०] खग्वृज्जा [को०]।

खर्वेतर—वि० [म०] जो छोटा न हो। बड़ा [को०]।

खल^१—वि० [म०] [भाव० खलना] १. कृ०। कठोर। २. नीच। अधम। ३. दुर्जन। दुष्ट। ४. चुगलखोर। ५. निर्लज्ज। बेहया। ६. धोखेबाज। फरेबी।

खल^२—संज्ञा पुं० १. मूर्ख। २. तमाल का पेड़। ३. धतूरा। ४. खनिहान। ५. कोठिला। ६. वृलिपुज। ७. युद्ध। लड़ाई। ८. तराछट। ९. पृथ्वी। १०. स्थान। ११. खरल।

मुहा०—खल करना = खल में महीन पीसना। खल होना = विसना। खुर खुर होना। उ०—खल भई लोकलाज कुल कानी।—सूर (शब्द०)।

खल^३—संज्ञा पुं० [म० खल = खरल] १. पत्थर का बड़ा टुकड़ा। उ०—इसी मान यह गूर महा शठ हरिनग बदलि महा खल भानत।—सूर (शब्द०)। २. सोनारों का किटकिना नाम का छपा।

खलई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० भल + ई (प्रत्य०)] खलता। उ०—सीदत राधु साधुता मोक्षति खल बिलसत हुनसति खलई है।—तुलसी (शब्द०)।

खलक^१—संज्ञा पुं० [म०] घटा। कुभ [को०]।

खलक^२—संज्ञा पुं० [म० खलक] १. सृष्टि का प्राणी या जीवधारी। २. दुनिया। मगार। जगत्। उ०—खलक है रैन का सपना समझ दिल कोई नहीं अपना।—कबीर मं०, पृ० ११३।

खलक^३—संज्ञा स्त्री० [हि० खलकना] खलकने का भाव या क्रिया।

खलकत—संज्ञा स्त्री० [म० खलकत] १. गृष्टि। २. भीड़। भुंड। ३. जनसाधारण। जनता [को०]।

खलकना—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. खल खल ध्वनि करना। २. छलकना। बहना। उ०—जम किलक बकवक मुख जपिक, भुव खलक रुधरक भभक भक।—रघु० क०, पृ० २२३।

खलकाना(पु)—क्रि० प्र० [हि० खलकना का प्रे० रूप] छलकाना। बहाना। उ०—हिरणाकुरा ने हगं, निडर फाटै उर नख्वे। खलकाया रत खाल, भरे डावा पल भख्वे।—रघु० क०, पृ० ४०।

खलक्कना(पु)†—क्रि० प्र० [हि० खलकना] मं० 'खलकना'। उ०—जिण दीह धग हर धरइ नदी ललक्कइ नीर। तिरा दिन ठाकुर किम चल्इ धग किम वांधइ धीर।—ढोला० दू० ६१।

खलखल—क्रि० प्रि० [प्रनु०] खल् खल् ध्वनि करता हुआ। उ०—फिर मुना हँस रहा अट्टहास रावण खल खल।—अपरा, पृ० ४१।

खलखलाना—क्रि० प्र० [प्रनु०] किसी द्रव पदार्थ का उबलना। खोलना।

खलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० खल + डी (प्रत्य०)] छाल। चमड़ा।

खलता^१—संज्ञा स्त्री० [म०] दुष्टता। नीचता। 'खल' का भाव।

खलता^२—संज्ञा पुं० [हि० खरीता] सिपाहियों का वह धंला जिसमें वे अपना जरूरी सामान रखते हैं। थैला। ओला।

खलताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [म० खल + ताई = हि० ताई (प्रत्य०)] दे० 'खलता'। उ०—दंड दिये बिनु साधुनिहू संग सूटत क्यों खल की खलताई।—केशव ग्रं०, भा० १ पृ० १८।

खलति—वि० [म०] गंजा। खल्वाट [को०]।

खलतिक—संज्ञा पुं० [म०] पर्वत। पहाड़ [को०]।

खलत्व—संज्ञा पुं० [म०] खलता। दुष्टता।

खलवान, खलधान्य—संज्ञा पुं० [म०] खलियान [को०]।

खलना^१—क्रि० प्र० [म० खर = तोड़ना] बुरा लगना। नागवार मान्य होना। अप्रिय होना।

खलना^२—क्रि० स० [हि० खाली] पत्तर आदि को नली के रूप में बनाने के लिये मोड़ना या झुकाना।—(सोनारों की परिभाषा)।

खलना^३—क्रि० स० [हि० खल या खरल] १. खरल में ढालकर घोटना। २. नष्ट करना। पीस ढालना। उ०—रावन सो रसराज मुभट रस सहित लंक खल खलतो।—तुलसी (शब्द०)।

खलना^४(पु)†—क्रि० प्र० [दे०] दे० 'खलना'। उ०—सा धन खलती कसोर ज्यु जागिक बैठी प्रीव को खोलि।—बी० रासो, पृ० ६३।

खलनायक—संज्ञा पुं० [म० खल + नायक] नाटक या उपन्यास आदि में एक पात्र जो नायक का प्रतिद्वंद्वी और दुर्वृत्त होता है। प्रतिनायक।

खलनी—संज्ञा स्त्री० [फा० खाली] सोनारों का एक औजार जिसपर ग्वकर चूड़ी आदि बनाई जाती है।

खलपना—संज्ञा स्त्री० [म० खल + हि० पन (प्रत्य०)] खलता। दुष्टता। उ०—कपट रूप प्रलंब प्रवचना, खलपना पशुपालक व्योम का।—प्रिय०—पृ० १८।

खलपू—वि० [म०] साफ करनेवाला। सफाई करनेवाला [को०]।

खलफ—संज्ञा पुं० [म० खलफ] सुपुत्र। अच्छा बेटा। सपूत। उ०—खलफ चाँद मा नायब मनाब। दक्खिनी० पृ० १३६।

खलबल—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] १. हलचल। उ०—खलबल परत सिसहु पर बाजन निशान जब शब्द धरहात।—अकबरी०, पृ० १०८। २. शोर। हल्ला। ३. कुलबुलाहट।

खलबलाना—क्रि० प्र० [हि० खलबल] १. खलबल शब्द करना। २. खोलना। ३. कुलबुलाना। हिलना। डोलना। ४. विचलित होना। खड़बड़ाना।

खलबलाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० खलबल + आहट (प्रत्य०)] बेचनी। व्याकुलता। खलबली।

खलबली—संज्ञा स्त्री० [हि० खलबली] १. हलचल। २. घबराहट। व्याकुलता।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मचना।

खलभल—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] दे० 'खलबल'।

खलभलाना—क्रि० प्र० [हि० खलभल] दे० 'खलबलाना'।

खलभलाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० खलभल + आहट (प्रत्य०)] दे० 'खलबलाहट'।

खलभली—संज्ञा स्त्री० [हि० खलभल] दे० 'खलबली' ।

खलमलाना—क्रि० प्र० [हि० खलबल या खलभल] तिलमिलाना । खलबली में पड़ना । विचलित होना । उ०—खलमलित शेष कवि गंग भनि अमित तेज रवि रष स्वस्थो ।—अकबरी०, पृ० १४६ ।

खलमूर्ति—संज्ञा पुं० [मं०] पारा । पारद ।

खलयज्ञ—संज्ञा पुं० [गं०] खलियान में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

खलल—संज्ञा पुं० [अ० खलल] १. रोक । अवरोध । रुकावट । बाधा । क्रि० प्र०—डालना ।—पड़ना । २. विकार । खराबी (को०) ।

यो०—खलल अंदाज—हस्तक्षेप या विरोध करनेवाला । बाधक । खलल अंदाजो = खलल या बाधा डालने का कार्य । खलल दिमाग = (१) पागलपन । सनक । (२) सनकी । पागल ।

खलसंसर्ग—संज्ञा पुं० [मं०] दुष्ट । बुरे लोगों का साथ (को०) ।

खलसा—संज्ञा स्त्री० [मं० खलिज] एक प्रकार की बड़ी मछली ।

विशेष—यह मछली समस्त उत्तर भारत, आगाम और चीन में होती है । इसमें काँटे अधिक होते हैं और जल से निकाल लेने पर भी यह कुछ समय तक जीती रहती है । बच्चक के अनुसार इसका मांस रूखा और बात बढ़ानेवाला होता है ।

खलहलाना (पु०)—क्रि० प्र० [अनु०] दे० 'खलखलाना' । उ०—धुरि अमाह धडकया मेह । गलहल्ला पाल्या पहि गई मेह ।—बी० रामो, पृ० ७० ।

खलहाण (पु०)—संज्ञा पुं० [हि० खलिहान] दे० 'खलियान-१' उ०—हय गला आगी गलहाणा । लेना पक्षे गु धन लहाणो ।—ग० र०, पृ० २२० ।

खला—संज्ञा स्त्री० [गं०] गणिका । वेश्या ।—प्रनेकार्थ०, पृ० २७ ।

खलाइन—संज्ञा स्त्री० [हि० खाल+इत (प्रत्य०)] धाकनी । भाथी ।

खलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खल+आई (प्रत्य०)] गलता । दुष्टता । उ०—गान्ह कृपाय बडे नतपाय गए खल खेचर मास खलाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

खलाइना—क्रि० प्र० [हि० खलार से नाम०] खलाना । पचकाना । धँसाना । उ०—गाँव में लंगोटी चढ़ाए पेट खलाड़े, दुभिक्ष का रूप बनाए ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० २६६ ।

खलधारा—संज्ञा स्त्री० [गं०] चपड़ा । तेलचट्टा (को०) ।

खलाना—क्रि० प्र० [हि० खाली] १. पात्र आदि में से भरी हुई चीज बाहर निकालना । खाली करना । २. गड़वा करना । गड़वा बनाना । जैसे—कुप्रां खलाना । ३. सोने के पत्तर को घुँडी आदि बनाने के लिये बीच में दबाकर कटोरी की तरह बनाना । ४. किसी फूली हुई सतह को नीच की ओर घसाना । पचकाना । जैसे—पेट खलाना । उ०—माँगत पेट खलाय ।—तुलसी (शब्द०) ।

खलार—संज्ञा [हि० खाला] नीचा । गहरा । जैसे,—खलार भूमि ।

खलाल—संज्ञा पुं० [अ० खलाल] धातु आदि का बना हुआ लंबा,

नुकीला, छोटा टुकड़ा जिससे दाँतों में फँसा हुआ घन आदि खोदकर निकालते हैं ।

खलाल—संज्ञा स्त्री० [हि० खेल या अ० खलाल] (ताश आदि के खेल में) पूरी बाजी की हार । पूरी मात ।

क्रि० प्र०—करना ।—मानना ।

मुहा०—खलाल देना = मात करना ।

खलास—संज्ञा [अ० खलास] १. छुटा हुआ । मुक्त । २. खतम । समाप्त ।

खलास—संज्ञा पुं० मुक्ति । छुटकारा । [मिहार्ड (को०)] ।

खलासी—संज्ञा स्त्री० [हि० खलास] मुक्ति । छुटकारा । छुट्टी ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—पाना ।

खलासी—संज्ञा पुं० [उर्दू] १. जहाज पर का वह नौकर जो पाल चढ़ाता, रस्से बाँधता तथा इसी प्रकार के और कार्य करता है । खेमा आदि खड़ा करने और असबाब ढोनेवाला नौकर ।

खलि—संज्ञा स्त्री० [मं०] दे० 'खली' (को०) ।

खलित—संज्ञा [मं० खलित] १. चलायमान । चंचल । डिगा हुआ । उ०—दिग्गज चलित खलित मुनि आसन इन्द्रादिक भय मान ।—गूर (शब्द०) । २. गिरा हुआ । पतित ।

मुहा०—खलित होना = वीर्यपात होना । वीर्य निकल पड़ना ।

उ०—पारवती ऐसी पत्नी जाकी ताकी मन क्यों डोला । खलित गए छत्रि देशि मोहिनी हा हा करि के बोला ।—कवीर (शब्द०) ।

खलिना—संज्ञा पुं० [हि० खलिता] दे० 'खलीता' । उ०—बिन पर ने उड़ना है कैसा । खेन खेनते अविष के खलिते मे खुसा ।—दशगनी०, पृ० ६२ ।

खलिन—संज्ञा पुं० [गं०] १. लोटे की लगाम । २. वह लोहा जिसमें लगाम बँधी रहती है और जो घोड़े के मुँह में रहता है ।

खलिनी—संज्ञा स्त्री० [गं०] वह स्थान जिसमें गाँव भर के लोगों का खलिहान हो ।—सङ्गर्षा०, अंश० प्र० १, पृ० २४८ ।

खलियान—संज्ञा पुं० [गं० खल + यान] १. खेती के पास का वह स्थान जहाँ फसल काटकर रखा, माली और बरसाई जाती है । अनाज और भूसा रोना गरी अलग अलग किए जाते हैं ।

मुहा०—खलियान करना = (१) काटो हुई फसल का ढेर लगाना । (२) तितर बितर करना । भट्ट करना ।

२. गशि । ढेर । जैसे—तुमने तो यहाँ कपड़ों का खलियान लगा रखा है ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

खलियाना—क्रि० प्र० [हि० खाल] खाल उतारना । मृत पशु के, जरीर से खाल खींचकर खलियाना । चमड़ा अलग करना ।

खलियाना—क्रि० प्र० [हि० खाली] खाली करना ।

खलिवर्द्धन—संज्ञा पुं० [गं०] ममूरी का एक रोग ।

विशेष—इस रोग में वायु के प्रकोप से ममूरी की जड़ का मांस बढ़ जाता है और बड़ा पीड़ा होती है ।

खलिश—संज्ञा पुं० [गं०] खलसा नाम की मछली ।

खलिश^२ — संज्ञा स्त्री० [का० खलिश] वह कसक या पीड़ा जो किसी शिष्ट के चूमने अथवा घाय आदि के भरने के उपरांत पीव आदि द्वागद अशों के बाकी रह जाने के कारण होती है।
० चित्रा । पिक । उलभन (को०) ।

खलिहान^२ — संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खलियान' ।

खली^२ — संज्ञा स्त्री० [गं०] गेल निकाल लेने पर लेनहन की बची हुई चीज ।

खली^२ — संज्ञा [हि०] अन्ना जो बुरा मालूम हो । खलने या खटकने-वाला । ० अति गोर आगे खली दुष्ट होई । — विश्राम० (पृ० ६०) ।

खली^२ — संज्ञा पुं० [सं०] १. पहादेय । २. एक प्रकार के दानव । ३. अंगुष्ठा के अनुसार पण्डित देव ने मारा था ।

खली^२ — संज्ञा पुं० [सं०] खलियाला (को०) ।

खलीज^२ — संज्ञा स्त्री० [अ० खलीज] खाड़ी ।

खलीता^२ — संज्ञा पुं० [हि०] [अ० खल्य० खलीता] १. दे० 'खलीता' । २. आमतः खलीता धरि रही । ३. वी० रासो०, पृ० १७ । ४. शोभा । ५. उ०—प्रेम के डोर जतन से बाँधो । ६. अंगुष्ठा के अनुसार पण्डित देव ने मारा था । — धर्म०, पृ० ७४ ।

खलीता^२ — संज्ञा [हि०] खली । प्रकार । व्यर्थ । उ०—भोले भाव कर भटे मुकुन मोध दीह खलीता । रघु० ८०, पृ० १६६ ।

खलीन^२ — संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खलिन' (को०) ।

खलीफा^२ — संज्ञा पुं० [अ० खलीफह] १. अध्यक्ष । अधिकांश । २. कोई मुसलमान । ३. मुर्शिद (दर्जी) । ४. खानसामा । ५. अमीर । ६. अमीर । ७. मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी (को०) ।

खलु^२ — संज्ञा पुं० [अ०] १. शब्दालकार । २. प्रश्न । ३. प्रार्थना । ४. निवेदन । ५. निवेद्य । ६. निष्पत्ति । अवश्य । ७. अंगुष्ठा के अनुसार पण्डित देव ने मारा था । — तुलसी (पृ० १६६) ।

खलुरिका, खलुरी^२ — संज्ञा स्त्री० [गं०] वह स्थान जहाँ अत्र शम्भु का मन्दिर है । अथवा अत्र अत्र अत्र । अथवा अत्र अत्र ।

खलेटी^२ — संज्ञा स्त्री० [हि०] खल । खलार भूमि या नीची जमीन । ० खल खल गीतों के बीच की फाँड़ी छोड़कर गीत गीत गाया गया था । गोदान, पृ० ५ ।

खलेग^२ — संज्ञा पुं० [हि०] खल । खलार से उत्पन्न या संबद्ध । भीमेरा । उ०—अंगुष्ठा के अनुसार पण्डित देव ने मारा था । — धर्म०, पृ० ६ ।

खलेल^२ — संज्ञा पुं० [हि०] खली-लेन । खली आदि का वह अंश जो खली के लिये निकाला जाता है । खली निशाने या छानने पर निकलता है । ० अंगुष्ठा के अनुसार पण्डित देव ने मारा था । — धर्म०, पृ० ६ ।

खलक^२ — संज्ञा स्त्री० [हि०] खल । दे० 'खलक' । उ०—अंगुष्ठा के अनुसार पण्डित देव ने मारा था । — धर्म०, पृ० ६ ।

खलतमल्ल^२ — संज्ञा पुं० [हि०] [अ० खलतमल्ल] मिला जुला । मिश्रित । एकम-एक । गड्ढा (को०) ।

खल्या^२ — संज्ञा स्त्री० [गं०] वह भूमि जहाँ कई खलिहान हों (को०) ।

खल्ल^२ — संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का कपड़ा । २. चमड़े की मशक । ३. चमड़ा । ४. चातक । ५. श्रोत्राधि कटने का खल । खल । ६. गड्ढा (को०) । ७. खाल । नहर (को०) ।

खल्लड़^२ — संज्ञा पुं० [सं०] १. चमड़े का मशक या थैला । २. श्रोत्राधि कटने का खल । ३. चमड़ा । जेमे,—मारते मारते खल्लड़ उधेड़ देगे । ४. वह वृद्ध मनुष्य जिसका चमड़ा झूल गया हो ।

खल्ला^२ — संज्ञा पुं० [हि०] खली । १. नृत्य में एक प्रकार का भाव जिससे पैर का खलीपना भवकता है । २. सूता ।

खल्ला^२ — संज्ञा पुं० [सं०] खल । खलियान ।

खल्ला^२ — संज्ञा स्त्री० [सं०] खल, देवा० खल्ला = चमड़ा । सूता ।

खल्लाक^२ — संज्ञा पुं० [अ० खल्लाक] मृष्टि को बनानेवाला — ईश्वर । उ०—अर्वावे कीन त्रिन खल्लाक बारी । — कबीर मं०, पृ० ५७५ ।

खल्लासर^२ — संज्ञा पुं० [गं०] ज्योतिष में दशम योग ।

खल्लिका^२ — संज्ञा स्त्री० [गं०] कटाही (को०) ।

खल्लिट^२ — संज्ञा पुं० [गं०] गंजा । खल्लिट (को०) ।

खल्लिट^२ — संज्ञा पुं० [गं०] 'खलीट' ।

खल्लिश^२ — संज्ञा पुं० [गं०] खलगा नाम की मछली (को०) ।

खल्ली^२ — संज्ञा पुं० [गं०] एक वायुरोग जिसमें हाथ पाँव मुड़ जाते हैं । उ०—शिरागत वायु के होने से खल्ली रोग को उत्पन्न करता है । साधन०, पृ० १३६ ।

खल्ली^२ — संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खली' ।

खल्लीट^२ — संज्ञा पुं० [गं०] वह रोग जिसमें सिर के बाल भड़ जाते हैं । गंज ।

खल्लीट^२ — संज्ञा पुं० [गं०] गंजा ।

खल्व^२ — संज्ञा पुं० [गं०] वह रोग जिसके कारण सिर के बाल भड़ जाते हैं । २. एक प्रकार का धान । ३. चना ।

खल्वट^२ — संज्ञा पुं० [गं०] गंज रोग जिसमें सिर के बाल भड़ जाते हैं ।

खल्वट^२ — संज्ञा पुं० [गं०] जिसके सिर के बाल भड़ गए हों । गंजा ।

खल्वली^२ — संज्ञा स्त्री० [गं०] आकाशलता (को०) ।

खवा^२ — संज्ञा पुं० [सं०] खन्ध, प्रा० खंध] कंधा । भुजमूल । उ०—(क) कच समेटि कर भुज उलटि सए गीस पट टारि । काको मन बधि न यह लूगे बाधनिहारि । — विहारी (शब्द०) । (ख) माधव जी आवनहार भये । अंचल उडत मन होत गहगही फर-वन नैन खए । — मूर (शब्द०) । (ग) खए लगि बाह उसागि उगारि । भए टनउन जवे रिस धारि । — मूदन (शब्द०) ।

मुहा०—खवे से खवा छिलना = (बहुत अधिक भीड़ के कारण) कंधे से कंधा छिलना ।

खवाई^२ — संज्ञा स्त्री० [हि०] खाना । १. खाने की क्रिया । २. वह

धन आदि जो भोजन करने के पुरस्कार में दिया जाय।
जैसे,—कलेवा खवाई।

विशेष—विवाह आदि के अवसर पर वर या वरपक्ष के लोगों
को जलपान के समय कहीं कहीं नेत्र देने का नियम है।

खवाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] नाव का वह गढ़ा जिसमें मस्तूल खड़ा
किया जाता है।

खवाना^३—क्रि० स० [हि० खाना] भोजन कराना। खिलाना।
उ०—कमलनैन को पान खवावत पहरावत उर माल।—नंद०
५० पु० ३९६।

खवार^४—वि० [हि० कबाड़] खोटा। बुरा। खराब।

खवारि^५—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशजल। वर्षा [को०]।

खवारो^६—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० ख्वारी] दे० 'ख्वारी'। उ०—हं गत
तूँक गुणा बलिहारी, खाली बातों कीध खवारी।—रघु० रू०,
पृ० १६७।

खवाष्प^७—संज्ञा पुं० [सं०] अवधाय। ओस [को०]।

खवास^८—संज्ञा पुं० [अ० खवास] [स्त्री० खवासिन] १. राजाओं
और रईसों आदि का खास खिदमतगार, जिसका काम कपड़े
पहनाना, हुक्का भरना पान लाना आदि है। २. खास लोग।
मुख्य लोग [को०]। ३. गुण मं०। खाभिगत [को०]।

खवास^९—संज्ञा स्त्री० वह दारी जो राजा के पास एकांत में प्राप्ती
जाती हो। गामवान। रक्खली। उ०—हुँ बसीरो वागियो,
पातर हुँ खवास। हुँ तोमियागार ठग, निप हर जावै नाम।
—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६२।

खवास^{१०}—संज्ञा पुं० [अ० खवाम = सेवक] वह जो सेवा करता
हो। नापित। नाऊ।

खवासी^{११}—संज्ञा स्त्री० [हि० खवास + ई० प्रत्य०] १. खवास का
काम। खिदमतगारी। उ०—और आज्ञा करी जो अब तू
हमारी खवासी करि।—दो मी बावन० पु० १८१। २.
चाकरी। नौकरी। उ०—उग्रसेन की करत गधासी।—
विश्राम (शब्द०)। ३. हाथी के हौदे या गाड़ी आदि में पीछे
की ओर वह स्थान जहाँ खवास बैठता है।

खवासी^{१२}—संज्ञा स्त्री० [हि०] अंगिया में का वह जोड़ जो बगल में
रहता है।

खविद्या^{१३}—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिर्विद्या। ज्योतिष [को०]।

खवो^{१४}—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खवोद = हरी घास या फसल] एक प्रकार
की घास जिसे पंजाब में घटियारी कहते हैं।

विशेष—यह अंगिया घास की तरह होती है और इसमें से सुगंध
आती है। इसकी पत्तियाँ लंबी होती हैं जिनसे एक प्रकार
का सुगंधित तेल निकलता है और औषध के काम में आता
है। यह कराची से पेशावर और लुधियाना तक रेगिस्तान
में और बलुई भूमि में उगती है। इसे संस्कृत में 'भ्रूस्तृण'
कहते हैं।

खवैया^{१५}—संज्ञा पुं० [हि० √ खा + वैया (प्रत्य०)] १. खानेवाला।
अधिक खानेवाला। २. खिलानेवाला।

खश^{१६}—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खस'।

खशखाश^{१७}—संज्ञा पुं० [फ्रा० खशखाश] पोखरे का क्षुण्ण और लसका
बीज [को०]।

खशी^{१८}—वि० [सं० खशिन] हलका आसानी रंग का [को०]।

खश्म^{१९}—संज्ञा पुं० [फ्रा० खश्म, तुल० म० गव्य = काध] गुरा।
कोप। रोष [को०]।

यौ०—खश्मगीन, खश्मनाक = गुस्से से भरा हुआ। प्रकुपित।

खश्वास^{२०}—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा [को०]।

खव्य^{२१}—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोप। काव। गुस्सा। २. कुरता।
निर्दयता। ३. हिंसा [को०]।

खस^{२२}—संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्तमान गढ़वाल आदि उमका उत्तमर्ती
प्रांत का प्राचीन नाम। २. इस प्रदेश में राजपूतों एक प्राचीन
जाति। उ०—स्वपच सवर खस जगत जट पीयूष कोल
किरात। राम कहत पावन परम हंत नुधन पव्यात।—
तुलसी (शब्द०)।

विशेष—व्रात्य क्षत्रिय से उत्पन्न इस जाति का वर्णन महाभारत
और राजतरंगिणी में आया है। इस जाति के वंशज अब तक
नेपाल और किस्तवाड़ (तापथीर) में अपने नाम से स्थात
हैं और अपने आपको क्षत्रिय वनजाते हैं। वे लोग बड़े और श्रमी
और साहसी तथा प्रायः गनिक होते हैं। इन्होंने ही खानिमा
भी कहते हैं।

३. खजली [को०]।

खस^{२३}—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खस] १. गोंडर नामक धाग की प्रमिद्ध
सुगंधित जड़।

विशेष—यह घास भारत, बर्मा और लंका के मैदानों और छोटी
पहाड़ियों पर विशेषतः नदियों और तालों के किनारे उत्पन्न
होती है। गरमी के दिनों में कमरे प्रायः इस घास के तिनके
दारवाजों और लिङ्कियों में इसकी लट्ठियाँ लगाई जाती हैं।
कहीं कहीं इसकी पत्तियाँ और टोहियाँ भी लगी हैं। इसका
इस भी बहुत अच्छा बनता है और अधिक दम में बिकता
है। अनेक प्रकार की सुगंधियाँ बनाने के लिये मिश्रण में भी
इसकी बहुत खपत होती है।

२. सूखी घास [को०]।

खसकंती^{२४}—संज्ञा स्त्री० [हि० खसकना + कंती (प्रत्य०)] खसकाने
का काम।

खसकना^{२५}—क्रि० अ० [खनु०] धीरे धीरे एक स्थान से दूसरे स्थान
पर जाना। अपने स्थान से उधर उधर जा जाना। खानानाशित
होना। सरकना। जैसे,—(क) यह दंत गणक गई है। (ख)
उधर बहुत जगह है, जरा खसक चलो। (ग) हमें देखने ही के
खसक गए।

संयो० क्रि०—आना।—चलना।—देना।—पड़ना।

विशेष—इस शब्द में 'गुप्त रूप से' या 'अचानक' का भी कुछ
भाव मिला हुआ है।

खसकवाना^{२६}—क्रि० स० [हि० खसकना का प्रे० रूप] खसकाने का
काम दूसरे से कराना।

खसकाना^{२७}—क्रि० स० [हि० खसकना] १. खसकना का सकर्मक रूप।

खस्ता वि० [फा० खस्तह] १. बहुत थोड़ी दाब से टूट जानेवाला ।
भुरभुरा ।

यौ०—खस्ता कचोड़ी = एक प्रकार की छोटी कचोड़ी जो मोथन
बालकर बनाई जाती है और बहुत भुरभुरी होती है ।

२. जस्मी । घायल (को०) । ३. दुर्दशाग्रस्त । बदहाल (को०) । ३
थका हुआ । बलात (को०) ।

यौ०—खस्तादिल = जिराका मन दुखी हो । दुखित हृदय ।
खस्ताहाल = दुर्दशाग्रस्त । अकिंचन । दरिद्र ।

खम्फटिक—संज्ञा पुं० [मं०] १. सूर्यनात मणि । २. चंद्रकांत
मणि । चंद्रमणि । (को०) ।

खस्वस्तिक—संज्ञा पुं० [मं०] वह कल्पित विदु जो सिर के ऊपर
आकाश में माना गया है । शीपंचिदु । पार्दविदु का उलटा ।

खस्सी^१—संज्ञा पुं० [अ०] बकरा । उ०—देवी जां को खस्सी भेड़ा
पीरत की नी नेजा । कबीर ज०—पृ० ४१ ।

मुहा०—खस्सी चढ़ाना = बकरे को बलिदान करना ।

खस्सी^२—वि० १. बधिया । २. हिजड़ा । तपुंसक ।

खहखह—संज्ञा पुं० [अनु०] खिन्खिन्नाकर हंसने की आवाज । गह-
कहा । उ०—कहकह सु खोर कहो खहखह सु संभु हस्त ।—
प० रागी, पृ० ८० ।

खहदल^१—संज्ञा पुं० [मं० ख०] आकाश । उ०—धरणा खहदल
थरुदे ।—रा० २००, पृ० २८० ।

खहर—संज्ञा पुं० [मं०] गणित में बड़ा राशि जिसका हर शून्य हो ।

विशेष—इस राशि में कोई राशि जोड़ने या घटाने से भी गढ़
राशि ज्यों की त्यों बनी रहती है, घटती या बढ़ती नहीं ।
जैसे—४, इसमें यदि ३ जोड़ दिया जाय तो भी योग
४ ही रहेगा; और यदि ३ घटा भी दिया जाय तो भी ४ ही
रेखे रहेगा ।

(४ + ३ = ७ । ४ - ३ = १ । ४ - ४ = ०) ।

खांड—संज्ञा पुं० [मं० खाण्ड] १. खंड खंड होने या अंतराल या
व्यवधान होने की स्थिति । खंडित होने का कार्य । २. खांड
का बना पदार्थ मिथ्री आदि (को०) ।

खांडव—संज्ञा पुं० [मं० खाण्डव] १. कुरुक्षेत्र का एक प्राचीन वन ।

विशेष—महाभारत और तैत्तिरीय आरण्यक में इसका वर्णन
पाया जाता है । यह वन इंद्र द्वारा रक्षित था । अर्जुन और
कृष्ण की सहायता पाकर अग्नि ने अर्जुन के बाण से प्रकट
होकर इसे जलाया था । इंद्रप्रस्थ नगर इसी वन की भूमि में
बसाया गया था ।

२. खांड का बना पदार्थ ।

खांडघप्रस्थ—संज्ञा पुं० [मं० खाण्डवप्रस्थ] एक स्थान जो वृतराष्ट्र
द्वारा पांडवों को मिला था । पीछे पांडवों ने यही पर इंद्रप्रस्थ
बसाया था ।

खांडवराग—संज्ञा पुं० [मं० खाण्डवराग] खांड से बना एक प्रकार
का मिष्ठानन । उ०—और कंद, मूल, फल, तिल, मधु, घृत
मिलाकर खांडवराग तैयार किया जा रहा था ।—वै० न०,
पृ० ४१४ ।

खांडविक—संज्ञा पुं० [मं० खाण्डविक] मिठाई बनानेवाला हलवाई ।

खांडिक—संज्ञा पुं० [मं० खाण्डिक] हलवाई । खांडविक ।

खांडो—संज्ञा पुं० [मं० खाण्डव] दे० 'खाण्डव' ।

खाँ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खान' ।

खाँबहादुर—संज्ञा पुं० [फा० खाँ + तु० बहादुर] अंगरेजी राज्यकाल
को एक उपाधि जो राज्यभक्त, वफादार मुसलमानों को दी
जाती थी ।

खाँई^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खाई' ।

खाँख^१—संज्ञा स्त्री० [मं० खम्] छेद । गूराख ।

खाँखर^१—वि० [हि० खाख] १. जिसमें बहुत छेद हों । भूगखदार ।
जैसे—खाँखर बरतन । २. जिसकी कुनायट दूर दूर पर हो ।
जैसे—खाँखर कपड़ा, खाँखर खटिया । ३. खोखला । पोला ।

खाँग^१—संज्ञा पुं० [मं० खङ्ग, प्रा० खग] १. काटा । कंटक ।

क्रि० प्र०—गड़ना ।—लगना ।

२. कांटा जो तीतर, मुर्ग आदि पक्षियों के पैरों में निकलता है ।
३. गैरे के मुँह पर बा सींग । ४. जंगली भूखर का बड़ा दाँत
जो मुँह के बाहर कांटे की तरह निकलता होता है ।

क्रि० प्र०—चलाना । मारना ।

खाँग^२—संज्ञा पुं० [मं० खङ्ग] खु-बांटे गन्धुआ या एक राग जिगमे
उनके खुरो में राव हो जाता है । खुपका ।

खाँग^३—संज्ञा स्त्री० [हि० खंगना] १. नुटि । कमी । उ०—गम कटो
कलु आदि न खाँगा । को राखे जो आपन माँगा ।—चित्रा०,
पृ० २२७ ।

खाँगड़^१—वि० [हि० नाग + ड (प्रत्य०)] १. जिसके नांग हो । नाँग-
वाला । २. हथियारबंद । शस्त्रधारी । ३. चलवान् । ४.
अवलम्ब । उद्दंड ।

खाँगड़ा^१—वि० [हि०] दे० 'खाँगड़' ।

खाँगना^१—क्रि० अ० [मं० खङ्ग खोड़ा] खंगना होना या चलने में
असमर्थ होना । उ०—ही अब कुशल एक न माँगड । प्रेम पंथ
संत बोधि न खाँगड । जायसी (शब्द०) ।

खाँगना^२—क्रि० अ० [मं० खोण, हि० खोजना] कम होना ।
घटना । उ०—कहहु मो पीर काह बिनु खँगा । रामुद सुयेर
आव तुम माँगा ।—जायसी ग्रं०, पृ० ४८ ।

खाँगा^१—संज्ञा पुं० [मं० खङ्ग, प्रा० खग] खङ्ग । खाटा । उ०—
खङ्गपर तिसर पल भाव खागा पूर तन पहारियो ।—स्व०
रू०, पृ० १३१ ।

खाँगी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० खंगना] कमी । घाटा । नुटि ।

खाँगी^२—वि० न्यून । कम । छोटा । नुटिपूर्ण । उ०—सोरह सहस्र
पदुमिनी माँगी । सबही दीन्ह न काहू खाँगी ।—जायसी ग्रं०
(गुप्त), पृ० ३४५ ।

खाँची^१—संज्ञा पुं० [हि० खाँचना] १. दो वस्तुओं के बीच की
जगह । मंघि । जोड़ । २. खीन्कर बनाया हुआ निशान । ३.
गठन । खचन ।

खाँच^१—संज्ञा पुं० [हि०] खाँचा । २. लकड़ी आदि का महीन
नुकीला लंबा अंग ।

खाँचना (फुँ) - क्रि० स० [कर्पण या कसन - खीचना, अथवा खचन - बैठना] [हि० खँचैया] १. झकल करना। चिल्ल बनाना। खीचना। उ०—आप कीय रेख खाँनि देव गाखि दे चले। नापिहैं ते भयम होहि जीव जे बरे भने।—केशव (शब्द०)। २. खीन या कमकर बनाना। जैसे,—(क) जानी खाँचना। (ख) हलिया खाँचना। ३. जल्दी जल्दी या भद्दी निष्ठावट लिखना। ४. खचिन या युक्त करना।

खाँचा - संज्ञा पुं० [हि० खाँचना] [अ० खाँची] १. पतली टहनो आदि का बना बड़ा टोकरा। भाँचा। २. बड़ा पिजड़ा।

खाँचातोणी - संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खीनातान'। उ०—बड़े भार लूँ बड़े करे न खाँचाताण।—बौली० ग्रं०, भा० १, पृ० ४१।

खाँची - संज्ञा स्त्री० [हि० खाँचा का अन्त्य] खाँचिया। छोटा खाँचा।

खाँटी - संज्ञा स्त्री० [?] १. गुंथा। गाफ। बिना मिठावट का। २. निरा। बिलकुल। पूर्णतया।

खाँड - संज्ञा स्त्री० [सं० खण्ड] १. बिना गाफ की हुई चीनी। कच्ची शक्कर। २. दूध के रस को पकाकर तैयार किया गया कुछ गोला और दानेदार पदार्थ जिससे शक्कर तैयार की जाती है। राव।

खाँडना - क्रि० स० [सं० खण्ड - टुकड़ा] १. कुचल कुचलकर साना। चबाना। उ०—काहू अघर टाभ जन चीरा। सहिर चुवे जो खाँडे बीरा।—जायसी (शब्द०)। २. खंड खंड करना। उ०—अमर गुजान भोटकम बहलोल खान, खाँडे छींछे डाँडे उमराव दिलीपुर के।—भूपाल ग्रं०, पृ० २४१। ३. (दाँतो से) काटना। उ०—मेरे इनके बीच परी जिनि अघर दमन गाँडोगी।—सूर० (राधा०), १५११।

खाँडर (फुँ) - संज्ञा पुं० [सं० खण्ड - टुकड़ा] टुकड़ा। अण। खंड।

खाँडसारी - संज्ञा स्त्री० [हि०] खाँड की बनी हुई शर्करा।

खाँड़ा - संज्ञा पुं० [सं० खण्ड] खण्ड (अमर)। चौड़ी फलवाली तलवार। उ०—जाति भूर यह खाँड़े गूरा। अउ बुधित सबई गुन पूरा।—जायसी (शब्द०)।

खाँड़ा - संज्ञा पुं० [सं० खण्ड] भाग। टुकड़ा (विशेषतः चतुर्धा)।

खाँड़ी - संज्ञा स्त्री० [हि०] मित्रियों के गहनने का चमत्। साड़ी। उ०—राती खाँड़ी दीप कबीरा, देख हमारा गिगारी। सरग-लोक थै हम बलि आई, करन कबीर भरतारी।—कबीर ग्रं०, पृ० १८०।

खाँड़ो - संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'पाख'।

खाँद - संज्ञा पुं० [सं० खण्ड] कंधा। उ०—निप खादे ऊपर अज जान होर दिन।—दरियावासी, पृ० ११४।

खाँदी - संज्ञा पुं० [हि०] पैरो से किसी स्थान की जमीन या घास-पात को कुचलने का निशान।

खाँदना - क्रि० स० [हि० खाँद से नाम०] दे० 'खूंदना'।

खाँधी - संज्ञा पुं० [सं० खण्ड] कंधा। उ०—मो घर रा गाडा तराँ, ता खाँधी भर भार।—बौली ग्रं०, भा० १, पृ० ४०।

खाँधना - क्रि० स० [सं० खान] खाना। भक्षण करना। उ०—

जो तो कर पग नहीं कहौ ऊखन क्यों खाँधो। नैन नासिका मुखन चोरि दधि कोने खाँध्यो।—सूर०, १०। ४०६५।

खाँप - संज्ञा स्त्री० [हि०] टुकड़ा। फाँक।

खाँपणा - संज्ञा पुं० [अ० कफन] दे० 'कफन'। उ०—मन चलाय खापण मही काई नफो कुचीन।—बौली० ग्रं०, भा० २, पृ० ६७।

खाँपना - क्रि० स० [सं० खेपण प्रा० लेपन] १. खोसना। २. जड़ना। लगाना। ३. चारपाई की बुनावट में, एक नुकीली कील से उसकी बुनन को कम या दबाकर दृढ़ करना। गछना।

खाँभ (फुँ) - संज्ञा पुं० [हि० खंभा] खंभा। स्तंभ। उ०—कीन्ह खाँभ दुहुँ जगत की ताई।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १३२।

खाँभ (फुँ) - संज्ञा पुं० [हि० खाम] लिफाफा। उ०—ताहि पाणि नै लियो नकारी। वाचन लागी खाँभ उधारी।—रघुराज (शब्द०)।

खाँभना - क्रि० स० [हि० खाम, खाँभ + ना (प्रत्य०)] लिफाफे में बंद करना। उ०—अग पाती निषि खाँभ देवाना। चंद्र-हामकर दियो अज्ञाना।—रघुराज (शब्द०)।

खाँवी - संज्ञा पुं० [सं० खम्] अधिकांश चोड़ी और गहरी खाई। उ०—कंनन के कोट में कंगूरे अति रुहे बने, खाँवी जल पूरे रक्षे गूरे जख धारे है।—रघुराज (शब्द०)।

खाँवी - संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छोटा पीया जिसके फूल सफेद होते हैं।

खाँवी - संज्ञा पुं० [सं० खात] खेत या जलस्थान के किनारे का कुछ ऊँचा मिट्टी का पेरा। मेड़।

खासना - क्रि० अ० [सं० कासन, प्रा० खाँसना] कफ या और कोई अटकी हुई चीज निकालने या केवल शब्द करने के लिये वायु को भटके के साथ कंठ में बाहर निकालना।

खाँसी - संज्ञा स्त्री० [सं० कास, कास] १. गले और श्वास की नलियों में फँसे या जमे हुए कफ अथवा अन्य पदार्थों को बाहर फेंकने के लिये भटके के साथ हवा निकालने की क्रिया। काश।

विशेष—यह क्रिया कुछ तो स्वाभाविक और कुछ प्रयत्न करने पर होती है जिसमें कुछ शब्द भी होता है। डाकटरी मत से यह कलेजे और फेफड़े से संबंध रखनेवाले अनेक साधारण रोगों का चिह्न मात है।

२. वेद्यक के अनुसार एक स्वतंत्र रोग।

विशेष—यह रोग श्वास की नलियों में धुआँ और धूल लगने, रुखा अन्न खाने, भोज्य पदार्थों के श्वास की नलियों में चले जाने या स्निग्ध पदार्थ खाकर ऊपर से जल पीने से उत्पन्न होता है। इसमें उदानवायु की अनुगत होकर प्राणवायु दूषित हो जाती है और वायु के जोर से खों खों शब्द के साथ कफ निकलता है। खाँसी होने पर गले में गुग्गुलुहट होती है, भोजन गले में कुछ कुछ रुकता है, आवाज बिगड़ जाती है और अग्निमंदता तथा अरुचि हो जाती है। इसके बढ़ जाने से राजयक्ष्मा और उरक्षत आदि भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं। उत्पत्तिभेद से यह पाँच प्रकार की मानी गई है। यथा—

वातज, पित्तज, कफज, क्षयज और क्षतज । जिस खांसी के साथ मूँह से कफ निकले, उसे तर, और जिसके साथ कुछ भी न निकले, उसे सूखी खांसी कहते हैं ।

३. खांसी की क्रिया ।

क्रि० प्र० — आना । — उठना । — होना ।

४. खांसने का शब्द ।

खा - प्रत्य० [फ्रा० खा] खानेवाला । भक्षक । जैसे, - शकरखा ।

खाइन - वि० [अ० खाइन] रूपए पैसे में गड़बड़ी करनेवाला । खयानत करनेवाला । अर्थ संबंधी व्यवहार के अयोग्य [को०] ।

खाई—संज्ञा स्त्री० [सं० खानि, प्रा० खाई] १. वह नहर जो किसी गाँव, किले, याग यो महान् आदि के चारों ओर रक्षा के लिये खोदी गई हो । उ०—कबीर खाई कोट की पानी पिये न कोय । जाय मित्र जब गंग से सब गंगोदक होय ।—संत-बानी, भा० १, पृ० ३० । २. खंदक । उ०—बहूँ ओर फिरि आरु । जिन देखी तिन खाई । (खाई की पहेली ।) —छुसरो (शब्द०) । ३. युद्धक्षेत्र में सुरक्षार्थ खोदे जानेवाले गड्ढे जिनमें छिपकर अपनी रक्षा और शत्रु पर आक्रमण किया जाता है । अंगरेजी में इसे 'ट्रेंच' कहते हैं ।

खाऊ—वि० [हि० खा + ऊ (प्रत्य०)] १. बहुत खानेवाला । पेहू । २. घूम लेनेवाला । घूमखोर ।

खौं—खाक बीर = दूसरों का मान हड़प जानेवाला । खाऊ मीत = स्वार्थी मित्र । मतलबी दोस्त ।

खाक—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खाक] १. धूल । रज । गर्द । २. राख । भस्म । ३. मिट्टी । मृत्तिका ।

मुहा०—(कही पर) खाक उड़ना = बरबाद होना । तबाह होना । नाश होना । उजाड़ होना । जैसे,—अब वहाँ पर खाक उड़ रही है । खाक उड़ाना = खाक छानना । मारे मारे फिरना । धीमे वह उधर उधर खाक उड़ाता फिरता है । (किसी की) खाक उड़ाना = उपहास करना । मिट्टी पलीद करना । धूल उड़ाना । जोट उड़ाना । जैसे,—नोगों ने उसकी गूँव खाक उड़ाई । खाक करना = तबाह करना । नष्ट भ्रष्ट करना । खाक का पुतला = मनुष्य । आदमी ।—आदमी है तो खाक का गुल्ला मगर बला की तबीयत पाई है ।—फिमाना०, भा० ३, पृ० ७ । खाक का पैबंद होना मृत्यु होना । खाक चाटना = सिर नवाना । नम्रता करना । अनुनय विनय करना । खाक छानना = (१) अच्छी तरह तलाश करना । बहुत दूँदना । जैसे,—कहाँ कहाँ की खाक छानी पर वह न मिला । (२) माग माग फिरना । घावारा फिरना । चारों ओर भटकते फिरना । जैसे,—वह नौकरी के लिये चारों ओर खाक छानता फिरा । खाक डालना = (१) छिपाना । दबाना । जैसे,—उसके ऐबों पर कहाँ तक खाक डाली जाय । (२) भूल जाना । गई गुजरी करना । जैसे,—पुरानी बातों पर खाक डालकर अब भूल कर लो । खाक बरसना = अच्छी दशा न रहना । नष्ट भ्रष्ट हो जाना । खाक में मिलना = बिगड़ना । बरबाद होना । चौपट होना । नष्ट भ्रष्ट होना ।

खाक में मिलाना = बिगाड़ना । तबाह करना । नष्ट भ्रष्ट करना । सत्यानाश करना । जैसे,—उसने सारी आबरू खाक में मिला दी । खाक सिर पर उड़ाना या डालना = शोक करना । रोना पीटना । खाक सियाह करना = नष्ट कर देना । बर्बाद कर देना ।

खौं—खाक पत्थर = व्यर्थ वस्तु । निकम्मी चीज ।

४. भूमि । जमीन (को०) । ५. तुच्छ । अकिंचन । ६. कुछ नहीं । जैसे,—वे खाक पड़ते लिखते हैं ।

खाकअंदाज—संज्ञा पुं० [फ्रा० खाक अंदाज] १. कूड़ा करकट रखने का पात्र । कूड़ाखाना । २. किले से शत्रु पर गोली आदि चलाने और कूड़ा करकट फेंकने के लिये बना सूराख । ३. जूल्हे से राख निहालने का छेद या बरतन [को०] ।

खाकदान—संज्ञा पुं० [फ्रा० खाकदान] कूड़ाखाना । कूड़ाघर । २. संसार । दुनिया ।

खाकनाथ—संज्ञा पुं० [फ्रा० खाकनाथ] धरती का वह तंग हिस्सा जो दो बड़े धरती के टुकड़ों को मिलाता है । स्थलद्वारमध्य ।

खाकरोब—संज्ञा पुं० [फ्रा० खाकरोब] गलियों में झाड़ू देनेवाला ।

खाकरोबी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खाकरोबी] झाड़ू लगाने का काम । सफाई करने का काम । उ०—खाकरोबी सब सँ बेहतर था मुझे । ना छतर हो तबत यो अफसर मुझे ।—दक्खिनी०, पृ० १८८ ।

खाकशी—संज्ञा पुं० [फ्रा० खाकशी] ओपधि के कार्य में प्रयुक्त होनेवाला खाकसीर का दाना [को०] ।

खाकसार—वि० [फ्रा० खाकसार] १. विनीत । विनम्र । २. असहाय । निराश्रित । दीन [को०] ।

खाकसारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खाकसारी] १. विनम्रता । उ०—किननी खाकसारी है, इसी को शगाफत कहते हैं कि इंसान अपने को भूल न जाय ।—काया०, पृ० ५५१ । २. दीनता । निराश्रयता । अमहायपन ।

खाकसीर—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खाकसीर] एक ओपधि जिसे खूबकला भी कहते हैं ।

विशेष—यह एक घाम का बीज है जो मैदानों, बागों, जंगलों तथा पहाड़ों में होता है । इसकी गणियाँ लंबी और टहनी के दोनों ओर आमने सामने लगती हैं । फूल भट्ट जाने पर छोटी घुडियाँ लगती हैं, जिनमें छोटे छोटे दान भिल्लों में लिपटे रहते हैं । खाकसीर दो प्रकार की होती है—एक छोटी, दूसरी बड़ी । छोटी का रंग कुछ गुर्मी लिए होता है और बड़ी का रंग कुछ स्याही लिए होता है । बड़ी से छोटी अधिक कड़ी होती है । यह घास अरब, फार्स आदि देशों में होती है ।

खाका—संज्ञा पुं० [फ्रा० खाकह] १. चित्र आदि का डोल । रेखाचित्र । ढाँचा । २. नकशा । मानचित्र ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—खीचना ।—बनाना ।

मुहा०—खाका उड़ाना = (१) नकल उतारना । एक ही ढाँचे पर बनाना । (२) उपहास करना । निंदा करना । (३) धूल उड़ाना । बदनामी करना ।

३. किसी काम का अनुमान। वह कामज जिसमें किसी काम के खर्च का अनुमान लिया जाय। चिट्ठा। तखमीना। ४. कच्चा चिट्ठा। मसौदा। ५. किसी रहानी, निख आदि का ढाँचा।

खाकान—संज्ञा पुं० [तु० खाकान] १. महाराज। सम्राट्। शाहनशाह। २. तुर्की और चीन के पुराने शासकों की उपाधि [को०]।

खाकानो—संज्ञा स्त्री० [तु० खाकान + ई (प्रत्य०)] जाहानशाही।
उ०—तुमने मंगोलों के सीखी रणचतुर्गद्दें प्रोः खाकानो।—
हम०, पृ० १७।

खाकिस्तर—संज्ञा स्त्री० [फा० खाकिस्तर] १. जली हुई वस्तु का अवशेष। २. राख। भस्म [को०]।

खाकिस्तरा—संज्ञा स्त्री० [फा० खाकिस्तरा] १. मटपैला रंग। २. मटपैले रंग की कोई भी वस्तु [को०]।

खाकी—वि० [फा० खाक] १. मिट्टी के रंग का। भूरा। २. मिट्टी में संबंधित। मिट्टी का बना हुआ। भृंगमय [को०]। ३. बिना सींची हुई (भूमि)।

मुहा०—खाकी अंडा = (१) वह अंडा जो भीतर से बिगड़ गया हो और जिसमें से बच्चा न निकले। बयंटा। गंदा अंडा।
(२) हंगामावाद।

खाकी—संज्ञा पुं० [फा० खाक] १. एक प्रकार के मध्यम साधु जो नमाम शरीर में राख लगाया करते हैं। २. मुसलमान फकीरों का एक संप्रदाय जो साफी शाह का अनुयायी है। ३. पुलिस, फौज आदि के सिपाहियों की वर्दी के लिये प्रयुक्त होनेवाला मटपैले रंग का मोटा धातु।

खाकेपा—संज्ञा पुं० [फा० खाक-ए-पा] १. पदरज। पाँव की धूल। २. अत्यंत विनीत या दीन व्यक्ति [को०]।

खाखी—संज्ञा स्त्री० [फा० खाक] १. 'खाक'। उ०—हतभुक्त बिच जल खाखी, उदगो ह दिन गुह।—बार्का० ग्र०, भा०, पृ० ४१।

खाखर—संज्ञा पुं० [हि०] एक पक्षी। उ०—खाखर लावा पेरे पड़े। जाल माह परगट मय घरे।—चित्रा०, पृ० २५।

खाखरा—संज्ञा पुं० [हि०] एक मुद्दवाद्य। उ०—बज्जत गुज्जत खाखर। जे करन दिसि दिसि साकरे।—हिममत०, पृ० ७।

खाखरा—संज्ञा पुं० [हि० खखरग] १. सूखी आर कड़ी रोटी। २. आँव की मोयन देर धी में पकाया हुआ एक प्रकार का मुरा और ठंडा खाद्य पदार्थ। गुजरात में इसका विशेष व्यवहार है।

खाखसा—संज्ञा पुं० [फा० खखसा] पोस्ते का दाना। यखखग।
खाखी—संज्ञा स्त्री० [फा० खाक, पु० हि० खाख + ई (प्रत्य०)] पुलिस। भस्म। राख। उ०—प्रेम का खोलना सन मन्ही खनी, मान को यदि के हने खाखी।—पलटू०, पृ० २६।

खाग—संज्ञा पुं० [फा० खडग, प्रा० खग] खड्ग। तलवार।
उ०—(क) विग्रहभा खाग सामादी।—रा० रु०, पृ० १८।
(ख) गंगाग सनमुख पुं० अति गर्व सुद्ध दद।—ह० रासो, पृ० २५।

खाग—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खाग'।

खाग—संज्ञा पुं० [फा० खाग] मुर्गी का अंडा [को०]।

खागना—क्रि० प्र० [हि० खाग = काँटा] चुभना। गड़ना। उ०—
(क) शर मो प्रति वासर वासर लाग्य। तन धाव नहीं मन प्राणन खाये।—केशव (शब्द०)। (ख) नासा तिलक प्रसून पद विपर चित्रक चार चित खाग।—मूर (शब्द०)।

खागना—क्रि० प्र० [हि०] 'खागना'।

खागीना—संज्ञा पुं० [फा० खागीनह] अंडे की बनी तरकारी आदि [को०]।

खाज—संज्ञा स्त्री० [म० खजु] एक रोग जिसमें शरीर बहुत खुजलाता है। गुजली।

मुहा०—कोढ़ की खाज—दुःख में दुःख बढ़ानेवाली वस्तु। विपत्ति पर विपत्ति लानेवाली वस्तु। उ०—एक तो कगल कलिकाल मूल मूल तामें, कोढ़ में की खाज सी गनीचरी है मीन की।—तुलसी (शब्द०)।

खाज—संज्ञा पुं० [खज, प्रा० खज्ज] खाद्य। खुग्गा। उ०—वाका चेजा ऊजला, वाका खाज निगद। जन दरिया कैसे बने, हंस बगुल के भद।—दरिया० बानी, पृ० २२।

खाजा—संज्ञा पुं० [म० माछक प्रा० मज्जम] १. भक्ष्य वस्तु। खाद्य पदार्थ। जग, बिल्ली का खाजा। उ०—ये तन तोर काल कर खाजा।—पट०, पृ० २०६।

मुहा०—खाजा होना = शिकार होना।

२. एक प्रकार की मिठाई जो बागीक भेदे में बनाई जाती है। उ०—हम खरमिटाव कटली है रतिला चबाय के। भवल धरन वा दूध में खाजा सारे बंदे।—यदमाण०, पृ० ६।

विशेष—गंध हुए भेदे को घी लगाकर भीघा बेलते हैं। फिर मोयन देकर उसे दोहर देते हैं और फिर बेलते हैं। इसी प्रकार बार बार बेलकर मोयन देते, दोहरते और फिर बेलते जाते हैं। अन्त की उम्र चौकोर बनाकर घी में तनते हैं और चीनी की वाशनी में पायते हैं। खाजा प्रायः दूध में भिगोकर खाया जाता है।

३. एक जंगली पक्ष जो बहुत बड़ा नहीं होता।

खाजिक—संज्ञा पुं० [म०] तुना हुआ अन्न या धान्य [को०]।

खाजिन—संज्ञा पुं० [म० गजिन] कोशाध्यक्ष। खजाची। कैशियर [को०]।

खार्जी—संज्ञा स्त्री० [म० खाज] खाद्य पदार्थ।

मुहा०—खाजी जाना = मुँह की खाना। बुरी तरह परास्त और लज्जित होना। उ०—सानुज मगन ससचिव सुजोधन भए सुख मलिन साइ खल खानी।—तुलसी (शब्द०)।

खाट—संज्ञा स्त्री० [म० खट्वा] चारपाई। पलंगड़ी। खटिया। माचा।

यी०—खाट खटोला = वधना वोरिया। कपड़ा लता। गृहस्थी का सामान। जस-बस अपना खाट खटोला ले जाओ।

मुहा०—(किसी की) खाट कटना = किसी का इतना बीमार पड़ना कि उसके मलमूत्र त्याग करने के लिये चारपाई की बुनावट काटनी पड़े। बहुत बीमार पड़ना। खाट पड़ना या

खाट पर पड़ना = बीमार पड़ना । बीमार होकर चारपाई पर पड़ना । खाट लगना या खाट से लगना = बहुत बीमार पड़ना । इतना बीमार पड़ना कि उठ बैठ न सकना । खाट से उतारा जाना = आसन्नमरण होना । मरने के समीप होना ।

विशेष—हिंदू धर्म के अनुसार चारपाई पर मरना बुरा समझा जाता है । इससे जब प्राणी मरने के निकट होता है, तब वह चारपाई से नीचे उतार दिया जाता है ।

खाट^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] घरथी [को०] ।

खाटना^१(५)†—क्रि० सं० [हि० खटना] उपार्जन करना । पैदा करना । उ०—सादूलौ बन साहिबी खाट पग पग खून ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० २१ ।

खाटना^२(५)†—क्रि० प्र० निभना । टिकना । उ०—पिय बिन दिल में और न खाटा । सुंदर मन सब सौ भया खाटा ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३५ ।

खाटा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] घरथी [को०] ।

खाटा^२(५)—वि० [हि०] दे० 'खट्टा' उ०—(क) दाहू बेद बेचारा क्या करे रोगी रहे न साच । खाटा मीठा घरपरा, माँग मेरा बाच ।—दाहू०, पृ० २६ । (ख) पिय बिन दिल में और न खाटा । सुंदर मन सब सौ भया खाटा ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३५ ।

खाटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घरथी । २. क्षत या घाव का चिह्न । ३. बहम । सनक । चलचित्तता [को०] ।

खाटिका—संज्ञा स्त्री० [म०] खाट । घरथी । खाटि [को०] ।

खाटिनी—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का घान जो भ्रगहन के महीने में तैयार होता है ।

खाटो(५)—वि० [हि०] दे० 'खट्टा' ।

खाड़(५)—संज्ञा पुं० [सं० खात] गड़ढा । गर्त । उ०—तुई अस बहुत खाड़ खनि मूँदी । बहुर न निकसवार होय खूँदी ।—जायसी (शब्द०) ।

खाड़व—संज्ञा पुं० [सं०] मिसरी [को०] ।

खाड़ा(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खाड़ा' । उ०—खाड़ी घाही दुई दिसि धारा ।—कबीर सा०, बृ० ७६ ।

खाड़व—संज्ञा पुं० [सं० खाड़व] वह राग जिसमें केवल छह स्वर लगते हैं । पाड़व ।

खाड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० खाड़] समुद्र का वह भाग जो तीन और समुद्र से घिरा हो । आखाता । खलीज ।

खाड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० खोड़] अरहर का सूखा और बिना फल पत्ते का पेड़ ।

खाड़ी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० काड़ना] किसी चीज में से अंतिम बार निकाला हुआ रंग ।

खाड़ी^४—संज्ञा पुं० [हि० खांड] वे लंबी पतली लकड़ियाँ जिनके ऊपर रखकर खपड़े धाए जाते हैं ।

खाड़ेती(५)†—वि० [हि० खड़ना = चलना] चालक । हाँकनेवाला । चलानेवाला । उ०—खाड़ेती खोटी हुवे, धवल न खोटी होय ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ४२ ।

खादुर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खादर' ।

खात^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. खोदना । खोदाई । २. तालाब । पुष्करिणी । ३. कुआँ । ४. गड्ढा । ५. वह गड्ढा जिसमें खाद बनाने के लिये कूड़ा और मैला आदि जमा किया जाता है ।

खात^२†—संज्ञा स्त्री० १. मद्य बनाने के लिये रखा हुआ महुए का ढेर । २. वह स्थान जहाँ मद्य बनाने के लिये महुआ रखा जाता है ।

खात^३—संज्ञा स्त्री० [हि० खात] दे० 'खाद' । उ०—कोदो निपजन काज खात घनसारहि डारत ।—रज० ग्रं०, पृ० ७८ ।

खात^४—वि० [सं०] १. खना हुआ । २. मैला । गंदा ।

खातक—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटा तालाब । तलेया । २. खाई । परिखा । ३. ऋणी । अधर्मण । कर्जदार । ४. खोदनेवाला व्यक्ति । खनक [को०] ।

खातभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिखा । खाई । २. कुएँ का गड्ढा । खात ।

खातम—संज्ञा पुं० [प्र० खातम] १. अंगूठी । अंगुलीय । मुद्रा । २. मोहर लगाने की अंगूठी [को०] ।

यौ०—खातमकार, खातमबंद=(१) मुहर की अंगूठी बनानेवाला । (२) हाथीदाँत के ऊपर नक्काशी करनेवाला ।

खातमा—संज्ञा पुं० [फा० खातमा] १. अंत । समाप्ति । २. परिणाम । नतीजा । अंजाम । ३. मृत्यु । मौत ।

खातर—अव्य० [फा० खातिर] दे० 'खातिर' । उ०—सुनि सुनि प्रभु तेरो गुननि तुव खातर कै जात ।—स० सप्तक, पृ० ३४५ ।

खातरूपकार—संज्ञा पुं० [म०] मिट्टी का पात्र बनानेवाला कुम्हार । कुंभकार [को०] ।

खातव्यवहार—संज्ञा पुं० [म०] एक प्रकार का गणित जिससे पोखरे तालाब आदि का क्षेत्रफल जाना जाता है ।

खाता^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृत्रिम तालाब या बावड़ी [को०] ।

खाता^२—संज्ञा पुं० [सं० खात] अन्न रखने का गड्ढा । वखार ।

खाता^३—संज्ञा पुं० [हि० खत] १. वह बही या किताब जिसमें प्रत्येक आसामी या व्यापारी आदि का हिसाब मितिधार और व्योरेवार लिखा हो ।

मुहा०—खाता खोलना=(१) दे० 'खाता डालना' । (२) नया संबंध स्थापित करना । नया व्यवहार करना । खाता डालना=हिसाब खोलना । लेन देन आरंभ करना । खाता पड़ना=लेन देन आरंभ होना । खाते बाकी=वह रकम जो खाते में बाकी निकलती हो ।

२. मद विभाग । जैसे—घर्म खाता, खर्च खाता, माल खाता ।

३. हिसाब । लेखा । उ०—तुमसे छिपा नहीं है मेरा लंबा चौड़ा खाता ।—अपलक, पृ० १६ ।

खाति—संज्ञा स्त्री० [ख०] खुदाई। खोदने की स्थिति [को०]।

खातिम—वि० [प्र० खातिम] १. खत्म या समाप्त करनेवाला। २. सबसे बादवाला। सबसे पीछेवाला [को०]।

खातिमा—संज्ञा पुं० [प्र० खातिमह] १. मृत्यु। मरण। २. प्राखीर। अंत। समाप्ति। ३. किसी पुस्तक का आखिरी अध्याय या परिच्छेद। ४. फल। परिणाम। नतीजा [को०]।

खातिर¹—संज्ञा स्त्री० [प्र० खातिर] १. सत्कार। संमान। २. हृदय। मन [को०]। ३. आदर। तिहाज [को०]। ५. मन में उत्पन्न होनेवाला विचार। आकांक्षा। इच्छा [को०]।

यौ०—खातिरजमा। खातिरदार। खातिरनशी=बोधगम्य। हृदयगम्य। खातिरशिकनी=अप्रसन्न या असंतुष्ट होना।

खातिर¹—प्रत्यय० वास्ते। लिये। कारण।

खातिरखाह—प्रत्यय०, क्रि० वि० [फा० खातिरखाह] जैसा चाहिए वैसा। इच्छानुसार। यथेच्छ।

खातिरजमा—संज्ञा स्त्री० [प्र० खातिरजमा] संतोष। इतमीनान। तसल्ली।

क्रि० प्र०—रखना या होना। उ०—पलटू खातिरजमा भइ सतगुर के परसंग।—पलटू०, पृ० ४४।

खातिरदार—संज्ञा पुं० [फा० खातिरदार] आवभगत या आदर सत्कार करनेवाला [को०]।

खातिरदारी—संज्ञा स्त्री० [फा० खातिरदारी] संमान। आदर। आवभगत। उ०—मैंने अपनी दौलत इन झूठे खुशामदियों की खातिरदारी में खोई।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ७७।

खातिरन—क्रि० वि० [प्र० खातिरन] खातिर करने के लिये। दिल रखने के लिये [को०]।

खातिरो¹—संज्ञा स्त्री० [फा० खातिर] १. संमान। आदर। आवभगत। २. प्रचुर पट्टे परिचारक दल मई खबर बरातिन लीन्ही। आवन की पुनि अशन शयन की सबन खातिरो कीन्ही।—रघुराज (शब्द०)। २. तसल्ली। इतमीनान। संतोष।

खातिरी¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह फसल जो नदी के किनारे खाद के थल से या हाथ से पानी सींच मीचकर पैदा की जाय।

खाती¹—संज्ञा स्त्री० [ग० खातिका] १. खोदी हुई भूमि। खंती। २. छोटा तान। ३. जमीन खोदनेवाली एक जाति। खतिया। ४. बड़ई। उ०—बेगि बोलाइ चहुं दिस केरा। थवई खाती गुनी चितेरा।—चित्रा०, पृ० ४२। ५. मूर्तिकार। मूर्ति बनानेवाला। उ०—ईसीय न खाती कौ घड़इ। इसी अखी नहीं रवि तले दीठ।—बी० रासो, पृ० ४५।

खाती²—संज्ञा स्त्री० [ग० ख० प्रा०, फा० खत=घाव, अपराध अथवा प्र० खाती=जानकर अपराध करनेवाला] अपराध। घात। गलती। उ०—काह के बल मोहो करी खाती। हरिह कहा, गोप किह बाती।—नंद० ग्रं० पृ० १६१।

खाती³—वि० [प्र० खाती] जान बूझकर अपराध करनेवाला [को०]।

खातून—संज्ञा स्त्री० [तु० खातून] कुलीनललना। कुलांगना। भद्रमहिला।

उ०—उनकी सी पाकीजा सिफत खातून दुनिया में कम होगी।—काया०, पृ० ५५२।

यौ०—खातूने अरब, खातूने काबा=फातिमा का नाम। खातूने खाना=गृहिणी। गृहस्वामिनी। खातूने फलक=सूर्य। रवि। खातूने महकिल=सबसे मिलने जुलनेवाली स्त्री। सोसायटी गर्ल।

खातेदार—संज्ञा पुं० [हि० खाता+फा० दार=वाला (प्रत्य०)] खाता खोलनेवाला व्यक्ति। लेन देन आरंभ करनेवाला व्यक्ति।

खात्मा—संज्ञा पुं० [प्र० खातिमह] दे० 'खातमा'। उ०—अब थोड़ा सा प्रस्तावना के खात्मा और कथाप्रवेश पर लिहाज करना उचित है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४२७।

खात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. खनित्र। खंता। कुदाल। २. चौकोन बड़ा तालाब। ३. मृत। डोरा। ४. जंगल। वन। अरण्य। ५. त्रास। भय। डर [को०]।

खाद्¹—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन। खाना [को०]।

खाद्—वि० भोजन के योग्य। खाने योग्य [को०]।

खाद्²—संज्ञा स्त्री० [सं० खाद्य] वह पदार्थ जो खेत में उसकी उपजाऊ शक्ति बढ़ाने के लिये डाला जाता है। पस।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

विशेष—सब प्रकार की पत्तियाँ, डंठल, कूड़ा, कंकट, कीचड़, पशियों और पशुओं का मलमूत्र तथा मृत शरीर आदि सभी चीजें सड़ गलकर बहुत अच्छी खाद का काम देती हैं। इसके अतिरिक्त चूना, खड़िया आदि खनिज पदार्थों और उनके क्षारों से भी खाद बनती है।

खादक¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री खादिका] १. ऋण लेनेवाला। कर्ज लेनेवाला। अधर्मण। २. किसी धातु का वह भस्म जो खाने के काम में आता हो।

खादक²—वि० खानेवाला। भक्षक।

खादन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० खानोय, खादित, खाद्य] १. भक्षण। भोजन। खाना। २. दांत (डि०)। ३. भोजन करने की क्रिया या भाव [को०]।

खादनोय—वि० [सं०] भक्षणीय। खाने योग्य। खाद्य।

खादर—संज्ञा पुं० [सं० खात्र=तालाब अथवा हि० खाड़] १. नदी, भोल आदि के किनारे की वह नीची जमीन जिसमें वर्षा का पानी बहुत दिनों तक रुका रहता हो। बाँगर का उलटा। तराई। कछार। उ०—(क) मेघ परस्पर यह कहत हैं धोय करहु गिरि खादर।—मूर (शब्द०)। (ख) रुमि खँदि डारें खुरासान खँदि मारें खाक खादर लो आरे ऐसे साहू की बहार है।—भूपण (शब्द०)। २. गर्त। गड्ढा। ३. पशुओं के चरने की जगह। चरागाह।

मुहा०—खादर लगना=पशुओं के चरने योग्य घास उगना।

खादि¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. मध्य। साद्य। २. जिरहबकतर। कवच। ३. हस्तत्राण। दस्ताना। ४. पीरों और भुजाओं में पहना जानेवाला एक आभूषण। उ०—एक का नाम खादि था जो

भुजाओं और पैरों में पहना जाता था।—संपूर्ण। अभि० अं०, पृ० ६६।

खादि^२—संज्ञा स्त्री० [सं० छिद्] दोष। ऐव।

खादित—वि० [सं०] खाया हुआ। भक्षित।

खादिता—वि० [सं० खादिह्] खानेवाला। भक्षण करनेवाला [को०]।

खादिम—संज्ञा पुं० [प्र० खादिम] १. नोकर। सेवक। उ०—रहते थे नव्वाब के खादिम।—कुकुर०, पृ० १५। २. दरगाह आदि में रहनेवाला रक्षक।

खादिमा—संज्ञा स्त्री० [प्र० खादिमह्] नोकरानी। सेविका।

खादिर^१—वि० [सं०] खैर का बना हुआ। खदिर से उत्पन्न। खदिर संबंधी [को०]।

खादिर^२—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा स्त्री० खादिरो] खैर। कट्या।

खादिरसार—संज्ञा पुं० [सं०] कट्या। खैर।

खादी^१—वि० [सं० खादिन्] १. खानेवाला। भक्षक। २. शत्रु का नाश करनेवाला। रक्षक। ३. कैंटीला।

खादी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गजी या इसी प्रकार का घीर कोई मोटा कपड़ा। उ०—सब एक से होत न कहें, होत सबन में फेर। कपरी खादी बाफती, लोह तवा शमशेर।—सत्रा० वि० (शब्द०)। २. हाथ का काता और बुना हुआ एक प्रकार का मोटा वस्त्र। खदर।

यौ०—खादी आश्रम = वह स्थान जहाँ खादी के वस्त्र तैयार और विक्रय किए जाते हैं। खादी केंद्र = वह स्थान जहाँ खादी का उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। खादीधारी = खादी के वस्त्र पहननेवाला। खादी भंडार = खादी की दुकान। खादी आश्रम।

खादी^३—वि० [सं० खादि = दोष] १. दोष निकालनेवाला। छिद्रान्वेषी। २. जिसमें ऐव हो। दूषित।

खादुक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० खादुकी] १. जिसकी प्रवृत्ति सदा हिंसा की ओर रहे। हिंसालु। २. घोखेबाज। हानिकर [को०]।

खाद्य^१—वि० [सं०] खाने योग्य। भोज्य। भक्ष्य।

खाद्य^२—संज्ञा पुं० वह जो खाया जाय। भोजन।

खाद्यमंत्री—संज्ञा पुं० [सं० खाद्य + मन्त्रिन्] किसी देश या राज्य के खाद्य संबंधी विभाग का मंत्री।

खाद्यान्न—संज्ञा पुं० [सं०] वह अन्न जो खाने योग्य हो।

खाद्य(५)—संज्ञा पुं० [सं० खाद्य] दे० 'खाद्य'। उ०—सीस न देहि पतंग होइ तो लगि लहै न खाद्य।—जायसी ग्रं०, पृ० ६५।

खाधना(५)—क्रि० स० [सं० खाधन] दे० 'खाना'। उ०—सूर जतन उर री करे, जिण री खाधो अन्न।—बांकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३।

खाधि(५)—संज्ञा पुं०, वि० [हि०] दे० 'खाधु'। उ०—करे खाधि अखाधि सनचारा।—संत० दरिया, पृ० १२१।

यौ०—खाधि अखाधि = भक्ष्याभक्ष्य।

खाधु(५), खाधू(५)—संज्ञा पुं० [सं० खाद्य] भोज्य पदार्थ। भोजन। खाद्य। उ०—(क) जीवन पंखी बिरह बिधाधू। कैहर भयो

कुरंगिन खाधू।—जायसी (शब्द०)। (ख) भई व्याधि तृष्णा सैं खाधू। सुखी मुक्ति न सूर्भ व्याधू।—जायसी (शब्द०)।

खाधुक(५)—संज्ञा पुं० [हि० खाधु + क (प्रत्य०)] दे० 'खाधु'।

खान^१—संज्ञा पुं० [हि० खाना] १. खाने की क्रिया। भोजन।

उ०—खान तजोंगी धी पान तजोंगी धी मान तजोंगी न काह तजोंगी।—बिश्राम० (शब्द०)। २. भोजन की सामग्री।

३. भोजन करने का ढंग या आचार।

यौ०—खानपान। जैसे,—उनका खानपान ठीक नहीं।

खान^२—संज्ञा स्त्री० [सं० खानि] १. वह स्थान जहाँ से धातु, पत्थर आदि खोदकर निकाले जायें। खनि। आकर। खदान।

मुहा०—खान खुलना = खान के खोदने का काम जारी होना।

२. आचारस्थान। उत्पत्तिस्थान। जैसे,—गुणों की खान।

३. जहाँ कोई वस्तु बहुत सी हो। खजाना। जैसे,—यहाँ क्या रूप की खान खुली है।

खान^३—संज्ञा पुं० [तातार या मंगोल काङ् = सरदार, पुं० खान]

१. सरदार। उमराव। उ०—मैन के बरे तुहि मैन कहा मत मान। मोहि देखत बहुत छले इनने खान खुमान।—रसनिधि (शब्द०)। २. पठानों की उपाधि।

खान^४—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० खाना] कोल्हू का वह छेद जिसमें ऊँख की गेंदेरियाँ या तेलहन भरकर पेरते हैं। खाँ। घर।

खान^५—संज्ञा पुं० [सं०] १. खोदने का कार्य। खनन। खोदना। २. चोट। पाव [को०]।

खानक^१—वि० [सं०] खनने या खोदनेवाला [को०]।

खानक^२—संज्ञा पुं० १. खान खोदनेवाला व्यक्ति। २. बेलदार। ३. मेमार। राज। धवई। उ०—दारु-कर्मकारक अरु खानक अरु देवज्ञ सोहाये।—रघुराज (शब्द०)। ४. सेंध मारनेवाला चोर [को०]।

खानकाह—संज्ञा स्त्री० [प्र० खानकाह] मुसलमान साधुओं या धर्मशिक्षकों के रहने का स्थान या मठ।

खानखानों—संज्ञा पुं० [फ़ा० खान खानान] १. सरदारों का सरदार। बहुत ऊँचे दर्जे का सरदार। २. एक उपाधि जो मुगल राज्यों में मुसलमान सरदारों को दी जाती थी।

खानखानी—संज्ञा स्त्री० [हि० खानखाना] शाहंशाही। साम्राज्य। उ०—हाथी घोड़े खाक के खाक खानखानी। कहे मलूक रहि जायगा मोसाफ निसानी।—मलूक०, पृ० १५।

खानखाह—क्रि० वि० [हि०] दे० 'खाहमखाह'।

खानगाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'खानकाह'।

खानगी^१—वि० [फ़ा०] जिससे बाहरवालों का कुछ संबंध न हो। निज का। आपस का। घरेलू। घरू।

खानगी^२—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. केवल कसब करानेवाली घोर बहुत तुच्छ वेश्या। कसबी। २. रखेली। रखेल [को०]। ३. गुप्त रूप से व्यभिचार करनेवाली। व्यभिचारिणी। उ०—लखनऊवाले तो गुप्त पुबचली गृहस्थिनों ही को खानगी कहते हैं। परंतु इधर प्रत्यक्ष निम्न श्रेणी की निकृष्टतम वेश्याओं को।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० ३५३।

खानजादा—संज्ञा पुं० [फा० खानजाद] १. अमीर का पुत्र । अमीर-जादा । २. ऊँचे घराने का व्यक्ति । ३. अरबी जाति के वे हिंदू जिनके पूर्वजों ने मुसलमानों के राजत्वकाल में मुसल-मानी धर्म ग्रहण कर लिया था । इनमें अधिकांश शत्रिय ही हैं ।

खानदान—संज्ञा पुं० [फा० खानदान] [वि० खानदानी] वंश । कुल । घराना ।

खानदानी वि० [फा०] १. ऊँचे वंश का । अरबी कुल का । २. वंश परंपरागत । पेटक । पुत्रैनी । ३. (व्यंग्य) अकुलीन (की०) ।

खानदेश—संज्ञा पुं० [देश० खाँद = जंगली जाति + देश] सतपुरा की पर्वतमाला के दक्षिण में बंबई प्रांत का एक प्रदेश ।

खानपान—संज्ञा पुं० [फा०] अन्न पानी । आवदाना । भोजन और जल । २. भोजन करने और जल पीने की क्रिया । खाना । पीना । ३. खाने पीने का ढंग या भोजन करने की रीति । खाने पीने का आचार । ४. खाने पीने का संबंध । खुदशोश । जैसे,—उनसे हमारा खानपान नहीं है ।

क्रि० प्र०—करना ।—चला आना ।—होना ।—रहना ।

खानबहादुर—संज्ञा पुं० [फा० खानबहादुर] एक खिताब जो ब्रिटिश शासन में भारत सरकार की ओर से मुसलमानों को दिया जाता था । खानबहादुर ।

खानम—संज्ञा स्त्री० [तु० खानम] १. खान की स्त्री । २. कुलीन या प्रतिष्ठित महिला । उ०—बादशाह की माता खानम को छह दिन तक ज्वर प्राता रहा ।—हुमायूँ, पृ० ६ ।

खानसामा—संज्ञा पुं० [फा० खानसामा] अंगरेजों, मुसलमानों आदि का भंडारी या भोजन बनानेवाला ।

खानसाहब—संज्ञा पुं० [फा० खानसाहब] १. पठानों के लिये प्रयुक्त आदराधिकार शब्द । २. एक उपाधि ।

खाना—क्रि० म० [सं० खादन, पा० खाघ्न, खान] [प्रि० रूप खिलाना] १. आहार को मुँह में चबाकर निगलना । भोजन करना । भक्षण करना । पेट में डालना ।

विशेष—इसका प्रयोग घन पदार्थों के लिये होता है, द्रव के लिये नहीं, यद्यपि किसी किसी के मुँह से (अधिकतर बंगला में) 'जल खाना' आदि सुना जाता है ।

संयो० क्रि०—जाना ।—डालना ।—लेना ।

यो०—खाना कमाना । खाना पीना । खाना उड़ाना ।

मुहा०—जिसका खाना, उससे गुर्गना—जिसका अन्न खाना, उसी को शिक्षा दिखाना । उपकार न मानना । खाता कमाना आदमी—खाने पीने भर को कमानेवाला आदमी । वह मनुष्य जिसके पास धन संचित न हो । खाना कमाना = काम धंधा करके जीविका निर्वाह करना । मेहनत मजदूरी करके गुजर करना । खाने के दाँत और दिखाने के और = बाहर कुछ, अंदर कुछ । करना कुछ और, प्रगट करना कुछ और । खा पका जाना या डालना = खर्च कर डालना । उड़ा डालना । खाना पीना—(१) भोजन पान करना । (२) सुख से दिन बिताना । जैसे—लड़के बाले भूखों मरते हैं और घाप खाता

पीता है । खाना पीना लहू करना = क्रुद्ध या खिन्न करके खाने पीने को निरानंद कर देना । क्रोध या खेद उत्पन्न करना । खाने पीने से अच्छा या खुश = सुख से जीवन निर्वाह करनेवाला । खानो वहाँ, तो पानी पियो यहाँ = खाने के बाद पानी पीने के लिये भी वहाँ न ठहरो; तुरंत चले आओ । आने में क्षण भर की भी देर न करो । खानो वहाँ, तो हाथ धोओ यहाँ = तुरंत चले आओ । खाना न पचना = चैन न पड़ना । जी न मानना । जैसे,—जबतक वह इधर उधर गप नहीं मारता, तबतक उसका खाना नहीं पचता ।

विशेष—'खाना' क्रिया का प्रयोग कभी कभी प्रकर्मक के समान भी होता है । जैसे—वह खाने गया है ।

२. हिंसक जंतुओं का शिकार पकड़ना और भक्षण करना । जैसे—उसे शेर खा गया ।

मुहा०—खा जाना = मार डालना । जैसे,—वह ऐसा ताकता है मानो खा जायगा । कच्चा खा जाना = मारा डालना । प्राण ले लेना । जैसे,—जी चाहता है, उसे कच्चा खा जाऊँ । खाने दीड़ना = चिड़चिड़ाना । क्रुद्ध होना । जैसे,—जब उसके पास रुपया माँगे जाते हैं, तब वह खाने दीड़ता है ।

विशेष—विपरीत कीड़ों के काटने के अर्थ में केवल 'काला' (साँप) के साथ इस क्रिया का प्रयोग होता है । जैसे,—तुम्हें काला खाय । उ०—(क) आजुहि मेरे घर खेलन आई । जात कहँ कारे तेहि खाई ।—सूर (शब्द०) (ख) ताकी माता खाई कारे । सो मर गई शाप के मारे ।—सूर (शब्द०) । पर अमंकृत या मुहाबरेदार भाषा में अत्युक्ति का भाव लेकर इस क्रिया से खटमल, मच्छड़ आदि का बहुत काटना भी व्यक्त किया जाता है । जैसे,—(क) आज रात खटमलों ने खा डाला । (ख) यहाँ तो मच्छड़ खाए डालते हैं ।

३. किसी इन्द्रिय या अंग को उसके अरुचिकर विषय उपस्थित करके पीड़ित करना । तंग करना । दिक करना । कष्ट देना । जैसे,—(क) तुम तो हमारे कान खा गए । (कड़े शब्द से) । (ख) क्यों सिर या जान खाते हो । ४. (कीड़ों का) किसी वस्तु को कुतरना या काटना । जैसे,—किताब को कीड़े खा गए । तकड़ी को दीमक खा गए । छुरी को मुर्चा खा गया । ५. मुँह में रखकर रस आदि चूसना । चबाना । जैसे,—पान खाना, तंबाकू खाना । ६. नष्ट करना । बरबाद करना । सत्यानाश करना । जैसे,—(क) तुम्हारी चालाकी तुम्हें खा गई । (ख) क्रोध मनुष्य को खा जाता है । (ग) विदेशी माल देशी कारीगरी को खा गया । ७. उड़ा देना । दूर कर देना । न रहने देना । जैसे,—जूता दीवार के रंग को खा गया । ८. हजम करना । मार लेना । हड़प जाना । जैसे,—वे कोठी का बहुत रुपया खा गए । ९. खर्च करना । उड़ाना । जैसे,—तनखाह में से कुछ बचाते भी हो कि सब खा डालते हो ? १०. बेईमानी से रुपया पैदा करना । रिश्वत आदि लेना । जैसे,—अमले और नौकर चाकर सब जगह खाते पीते हैं । ११. खर्च करवाना । रुपया लगवाना । जैसे,—यह मकान उनकी सारी कमाई खा गया । १२. अमाना । समाना ।

घटना । खपना । भरना । जैसे—छोटी सी कुप्पी पाँच सेर की खा गई । १३. किसी काम को करते हुए उसके किसी अंग को छोड़ जाना । जैसे, लिखने पढ़ने में किसी अक्षर को छोड़ जाना । जैसे—तुम लिखने में कई अक्षर खा गए हो । १४. (आघात, प्रभाव आदि) सहना । बरदाश्त करना । प्रभाव पड़ने देना । जैसे,—मार खाना, लात खाना, छड़ी खाना, गाली खाना, चोट खाना, सरदी खाना, धूप खाना, हवा खाना, गम खाना, हार खाना आदि ।

मुहा०—सुह की खाना = (१) बुराई का ठीक बदला पाना । खूब नीचा देखना । किए का पूरा फल पाना । (२) पराजित होना । हार जाना ।

खाना^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० खानह्] १. भालय । घर । मकान । जैसे, बाकखाना, दवाखाना, कूड़ाखाना आदि । २. किसी चीज के रखने का घर । केस । जैसे,—बश्मे का खाना, बड़ी का खाना आदि । ३. भालभारी, मेज या संदूक आदि में चीजें रखने के लिये पटरियों या तक्तों के द्वारा किया हुआ विभाग । ४. सारणी या चक्र का विभाग । कोष्ठक ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—पूरना ।—भरना ।

५. संदूक । पेटी । —(लश०) ।

खानाआबाद—संज्ञा पुं० [फ्रा० खानह् आबाद] घर धनधान्य से पूर्ण रहे ऐसा आशीर्वादात्मक शब्द [को०] ।

खानाआबादी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खानह् आबादी] १. घर के आबाद होने या बसने की स्थिति । समृद्धि । २. विवाह । परिणय । शादी [को०] ।

खानाखराब—वि० [फ्रा० खानह् खराब] [संज्ञा खानाखराबी] १. चौपट करनेवाला । सत्यानाशी । २. जिसके रहने का ठिकाना या घर बार न हो । आवारा ।

खानाखुदा—संज्ञा पुं० [फ्रा० खानह् खुदा] ईश्वर का निवास । उपासना गृह [को०] ।

खानाजंगी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खानह् जंगी] आपस की लड़ाई । परस्पर का झगड़ा ।

खानाजाद^१—वि० [फ्रा० खानह् जाद] घर में पैदा या पाला पोसा हुआ । घरजाया (गुलाम) ।

खानाजाद^२—संज्ञा पुं० सेवक । गुलाम । दास । उ०—मन बिगरीये ये नैन बिगारे । ये सब कहो कीन हैं मेरे खानाजाद बिचारे । —सूर (शब्द०) ।

खानातलाशी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खानह् तलाशी] किसी खोई, छिपी या अनजानी चीज के लिये मकान के घंवर खानबीन करना ।

विशेष—यह क्रिया प्रायः राज्य या किसी बड़े अधिकारी की की ओर से या आज्ञा से होती है ।

खानादामाद—संज्ञा पुं० [फ्रा० खानह् दामाद] श्वसुर के घर रहनेवाला जामाता । धरजवाई [को०] ।

खानादार—वि० [फ्रा० खानह् दार] १. घरबारवाला । गृहस्थ । २. घर का मालिक । गृहस्वामी । ३. दरवान । द्वारपाल [को०] ।

खानादारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खानह् दारी] गृहस्थी ।

खानानशी—वि० [फ्रा० खानह् नशी] १. एकांतसेवी । विरक्त । २. घर में ही पड़ा रहनेवाला । बिना काम का । बेकार [को०] ।

खानापीना—संज्ञा पुं० [हि० खाना + पीना] खाने पीने का व्यवहार या संबंध । खान पान ।

क्रि० प्र०—छटना ।

खानापुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० खाना + पूरना अथवा फ्रा० खानह् पुरी] १. किसी चक्र या सारिणी (कारम या रजिस्टर) के कोठों में यथास्थान संख्या या वाक्य आदि लिखना । नकशा भरना । २. केवल दिखावे के लिये बेमन से काम करना [को०] ।

खानापूरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खानापुरी' ।

खानाबदोश^१—वि० [फ्रा० खानह् बदोशी] जिसके रहने या ठहरने का कोई निश्चित स्थान न हो । जिसका घरबार न हो ।

खानाबदोश^२—संज्ञा पुं० एक जनजाति । स्थायी निवास रहित एक संचरणशील जाति जो कुछ समय के लिये जहाँ वही बेमे, सिरकी आदि डालकर दिन बिताती है ।

खानाबदोशी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खानह् बदोशी] इधर उधर व्यर्थ घूमने या संचरणशील जीवन बिताने की स्थिति । उ०—खानाबदोशी जीवन के बारे में पूछने पर तरुण ने कहा ।—किन्नर०, पृ० ४१ ।

खानाबरबाद—वि० [फ्रा० खानह् बरबाद] दे० 'खानाखराब' ।

खानाबरबादी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खानह् बरबादी] १. आवागमन । २. बदकिस्मती । भाग्यहीनता [को०] ।

खानाशुमारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खानह् शुमारी] किसी गाँव या नगर आदि के मकानों की गिनती का काम ।

खानासाज—वि० [फ्रा० खानह् साज] घर का बना हुआ । गृह में निर्मित [को०] ।

खानि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खान । खदान । उ०—मो जहाँ हीरान की खानि हती तहाँ गयो ।—दो सी बावन०, भा० २, पृ० १०३ । २. गुफा । कंदरा [को०] ।

खानि^२—संज्ञा स्त्री० [सं० खानि वा हि० खान] १. उत्पत्तिस्थान । उपजने की जगह । उ०—दारिद बिदारिदे की प्रभु को तलास तो हमारे इहाँ अनगिन दारिद की खानि हैं ।—दास (शब्द०) । २. वह जिसमें या जहाँ कोई वस्तु अधिकता से हो । खजाना । उ०—हा गुणखानि जानकी सीता ।—तुलसी (शब्द०) । ३. ओर । तरफ । उ०—यम द्वारे में दूत सब करते ऐसा तानि । उनते कभू न छूटता फिरता चारों खानि ।—कबीर (शब्द०) । ४. प्रकार । तरह । ढंग । उ०—चार खानि जग जीव जहाना ।—तुलसी (शब्द०) ।

खानिक^१—संज्ञा स्त्री० [हि० खान] खदान । खान । उ०—सूरुहि रायचरित मणि मानिक । गुप्त प्रगट जहँ जो जेहि खानिक ।—तुलसी (शब्द०) ।

खानिक^२—संज्ञा पुं० [सं०] दीवान का छेद । सेंध [को०] ।

खानिल—संज्ञा पुं० [सं०] सेंध मारनेवाला तस्कर [को०] ।

खानेहार^१—वि० [हि० खाना + हार (प्रत्य०)] भोजन करनेवाला ।

खानेवाला । उ०—घरे हों रे पलटू जाने खानेहार और नहिं स्वाव उसी का ।—पलटू०, पृ० ७५ ।

खानोदक—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल का दूध [को०] ।

खाप—संज्ञा पुं० [हि० खपना या खपाना] चोट । वार । घाघात ।

खापरा—संज्ञा स्त्री० [म०] आकाशगंगा [को०] ।

खापट—संज्ञा स्त्री० [हि० खपटा] एक प्रकार की भूमि जिसमें लोहे का अंश अधिक होता है ।

विशेष—इस भूमि की मिट्टी बहुत कड़ी और भारी होती है और पानी बरसने पर बहुत लसदार हो जाती है । ऐसी भूमि केवल बरसात में ही जोती जा सकती है और इसमें धान के प्रति-रिक्त और कोई चीज नहीं उपज सकती । इसकी मिट्टी से, जिसे कपास और काबिस भी कहते हैं, कुम्हार लोग बरतन बनाते हैं ।

खापड़^१—संज्ञा पुं० [म० खपड़, प्रा० खप्पर, खप्पड़, हि० खपड़ा] खप्पर । शिक्षापात्र । खपड़ा ।

खापड़—संज्ञा स्त्री० [हि० खापट] १. दे० 'खापट' । २. ऊमड़ खाभड़ भूमि । ऊँची नीची जमीन ।

खाफड़—संज्ञा पुं० [हि०] खप्पर या खाली में धाने लायक खाना । भोजन । उ०—फरीदा घोर निमाणिया रे महलाल माल न लाय । खाफड़ सेती राखले रे और फकीरा बुलाय ।—राम० धर्म०, पृ० ३४ ।

खाब^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० खाब] स्वप्न । उ०—प्यारी के पायन की उपमा द्विज को सब जानि परि जिमि खाब की । पंज-पात की बात कहाँ जिन कोमलता लई जीति गुलाब की ।—द्विज (शब्द०) ।

खाब^२—संज्ञा पुं० [हि० खाना] भोजन । खाना ।

खाबड़ खूबड़—वि० [अनु०] जो राम न हो । ऊँचा नीचा ।

विशेष—यह विशेषण प्रायः 'भूमि' के लिये ही आता है ।

खाभा—संज्ञा पुं० [हि० खाभना] मिट्टी का वह बरतन जिससे तेनी कोल्ह के नीचे के बरतन में से तेल निकालते हैं ।

खाम^१—संज्ञा पुं० [हि० खामना] १. चिट्ठी का लिफाफा । उ०—बाँचत न कोऊ अब वेसई रहत खाम, युवती सकल जानि गई गति याकी है ।—द्विजदेव (शब्द०) । २. संधि । जोड़ । टाँका ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

विशेष—कहीं कहीं यह शब्द स्त्रीलिंग भी बोला या लिखा जाता है ।

खाम^२—संज्ञा पुं० [हि० खामा] १. खंभा । स्तंभ । उ०—कलेस भव के दे घबै तू भजन की दृढ़ खाम ।—ब्रज० धं०, पृ० १६० । २. जहाज का मस्तूल (लश०) ।

खाम^३—वि० [सं० खाम] घटने या क्षीण होनेवाला । उ०—नाम रूप भर लीला खामा । रहत नित्य ये पड़त न खामा ।—विश्राम (शब्द०) ।

खाम^४—वि० [फ्रा० खाम] १. जो पका न हो । कच्चा । २. जो

दृढ़ या पुष्ट न हो । ३. जिसे तजुरबा न हो । अनुभवहीन । ४. बुरा । उ०—खुदा को समझना बड़ा काम है जिते का उसका के घागे खाम है ।—दक्खिनी०, पृ० २६१ ।

खाम खयाल—संज्ञा पुं० [फ्रा० खामखयाल] व्यर्थ के विचार । गलत विचार । उ०—खाम खयाल करि दुरि दिवाना ।—कबीर श०, पृ० ३० ।

खाम खयाली—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खामखयाली] गलत धारणा । व्यर्थ विचार । उ०—देखती कला विधि के विधान में भी गुटियाँ, कल्पना सत्य ही खाम खयाली होती है ।—नील०, पृ० ६० ।

खामखाह, खामखाही—क्रि० वि० [फ्रा० खाह-म-खाह] दे० 'खामखाह' ।

खामण^१—वि० [सं० स्कम्भन या फ्रा० खाम + (राज०) ण (प्रत्य०)] खाम करनेवाला । रोकनेवाला । उ०—रीत मनीत फैलियो रावण खमियो नहीं मभायां खामण ।—रा० रू०, पृ० ३६४ ।

खामना—क्रि० सं० [सं० स्कम्भन = मूँदना, रोकना, प्रा० खंभन] १. गीली मिट्टी या घाटे आदि से किसी पात्र का मुँह बंद करना । २. चिट्ठी को लिफाफे में बंद करना ।

खामा—संज्ञा पुं० [फ्रा० खामह] कलम । लेखनी । उ०—पूछा ते ठात में मुल्ता खामा । हकीकत क्या लिखूं सो वो नामा ।—दक्खिनी, पृ० २५० ।

खामिद^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० खामिब] स्वामी । मालिक । उ०—खामिद कब गोहरावे चाकर रहै हज़ूर ।

खामियाजा—संज्ञा पुं० [फ्रा० खामियाज] नतीजा । परिणाम । उ०—इसका खामियाजा आप न उठाएँ तो कोन उठाए ।—मान०, पृ० ३१५ ।

खामी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खामी] १. कच्चाई । कच्चापन । २. नातजस्वेकारी । ३. कमी । अपूर्णता ।

खामोश—वि० [फ्रा० खामोश] चुप । मौन ।

खामोशी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खामोशी] मौन । चुप्पी ।

खायका—वि० [सं० क्षय] खोटा । निकम्मा । उ०—खल खूनी है तो धण खायक । दुनिया दुज देवा दुखदायक ।—रा० रू०, पृ० १७८ ।

खाया—संज्ञा पुं० [फ्रा० खायह] अंडकोष ।

खौं—खायावरक्षार = चापलूस । खुशामदी । खायावरदारी = अनिवार्यक चापलूसी । बहुत खुशामद ।

खार^१—संज्ञा पुं० [सं० खार, प्रा० खार] १. दे० 'खार' । २. सज्जी । ३. लोना । सोनी । कल्लर । रेह ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—खार खाना = छरछराना ।

४. घल । मरम । राख । ५. एक प्रकार की भाड़ी जिससे खार निकलता है ।

विशेष—यह पंजाब में नमक के पहाड़ के आसपास तथा पच्छिमी प्रांतों में होती है ।

खार^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० खार] १. काँटा । कंटक । फाँस । २. मुँगे, तीतर आदि पक्षियों के पैर का काँटा । खींग । ३. डाह । जलन । द्वेष ।

मुहा०—खार खाना = डाह करना । जलना । खार गुजरना = बुरा लगना । खटकना । खार निकलना = डाह या द्वेष मिटना । खार निकालना = बदला लेना । डाह या जलन मिटाना ।

खारक—संज्ञा पुं० [सं० खारक, प्रा० खारक, फ्रा० खारिक] छोहारा । उ०—खारक दास दबाय मरो किन अँटहि अँटकदारहि भावे ।—केशव (शब्द०) ।

खारच(प्र०)†—वि० [प्र० खारिज] १. खारिज । व्यर्थ या बेकार । उ०—दव विण सारा दाहिया, भयवा खारच भंग ।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० २३ । २. ऊसर । उ०—कमणारी मतवाल की, करसण खारच खेत ।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० ४६ ।

खारजार—संज्ञा पुं० [फ्रा० खारजार] काँटों से भरा स्थान । काँटों का जंगल । उ०—फिरे भई परेशान हो खारजार । जिबर जाय उधर सँ होय मार मार ।—दक्खिनी०, पृ० २३३ ।

खारवार—वि० [फ्रा० खार + वार (प्रत्य०)] कटीला । कटीवाला । उ०—कंजा कंजई रंग में लपेट फलों को खारदार जिरहबल्लर पिन्हाया ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २० ।

खारवा†—संज्ञा पुं० [देश०] खलासी । मल्लाह । जहाजी ।

खारा^१—वि० पुं० [सं० खार] [वि०, स्त्री० खारी] १. क्षार या नमक के स्वाद का । २. कड़ुआ । अश्चिकर । उ०—कृपासिंधु मैं देख बिचारी । एहि मरने ते जीवन खारी ।—विश्राम (शब्द०) ।

खारा^२—संज्ञा पुं० [सं० खारक] १. एक प्रकार का कपड़ा जो धारीदार होता है । २. [स्त्री० अल्पा० खारी] घास या सूखे पत्ते बाँधने के लिये जालदार बँधना, जिसे घसियारे या भड़भूँजे काम में लाते हैं । ३. वह जाली या धेला जिसमें भरकर तोड़े हुए ग्राम पेड़ से नीचे लटकाए जाते हैं । ४. बाँस, सरकंडे या रहटे आदि का बड़ा और गहरा टोकरा । यह विशेषतः चौखूँटा होता है । आवा । खौंचा । ५. बाँस का बड़ा पिंजड़ा । ६. उलटे टोकरे के आकार का सरकंडे आदि का बना हुआ एक प्रकार का चौकोर घासन ।

विशेष—इसका व्यवहार प्रायः सत्रियों में विवाह के अवसर पर घर और कन्या के बैठने के लिये होता है ।

खारा^३—संज्ञा पुं० [फ्रा० खारह्] कड़ा पत्थर । चट्टान (को०) ।

खारि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'खारी' ।

खारिक(प्र०)†—संज्ञा पुं० [सं० खारक, फ्रा० खारिक] छोहारा । खारक । उ०—(क) खारिक दास खोपरा खीरा । केरा ग्राम ऊख रस सीरा ।—सूर०, १० । २११ । (ख) खारिक खात न दारिउं दाख न माखन हूँ सह भेटि इठाई ।—केशव (शब्द०) ।

खारिज—वि० [प्र० खारिज] बाहर किया हुआ । निकाला हुआ । बहिष्कृत । २. भिन्न । अलग । ३. जिस (अभियोग) की सुनवाई न हो ।

खारिशा—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] खुजली । खज ।

खारिस्त—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] दे० 'खारिज' ।

खारी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी के मत से चार और किसी के मत से सोलह द्रोण की तीन ।

खारी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० खारा] एक प्रकार का क्षार लवण जो दवा के काम में आता है । संडास में मल गलाने के लिये भी इसे डासते हैं । उ०—लौंग सुपारी छाड़ि के, क्यों लादी खारी रे ।—कबीर श०, पृ० ३७ ।

खारी^३—वि० जिसमें खार का मेल हो । क्षारयुक्त । जैसे—खारी माट ।

खारीमाट—संज्ञा पुं० [हि० खारी + माट = मटका] नील का रंग तैयार करने का एक ढंग ।

विशेष—इसमें एक बड़े मटके में लगभग चार मन पानी छोड़कर उसमें सेर भर कच्चा नील, चूना और सज्जी डालते हैं और थोड़ा गुड़ मिलाकर उठने के लिये रख देते हैं । गरमियों में यह एक दिन में और जाड़ों में तीन चार दिन में तैयार हो जाता है । अधिक जाड़े में इसे कभी कभी घाय पर चढ़ा देते हैं ।

खारुआ, खारुवा—संज्ञा पुं० [सं० खारक] १. भाल से बना हुआ एक प्रकार का रंग जिसमें मोटे कपड़े रंगे जाते हैं । २. इस रंग से रंगा हुआ एक प्रकार का मोटा कपड़ा जो विशेषतः काल्पी में तैयार होता है ।

खारेजा—संज्ञा पुं० [फ्रा० खारिजा] एक प्रकार का जंगली कुसुम या बरें । बनबरें । बनकुसुम । कटियारी ।

विशेष—यह पंजाब के मैदानों में उगता है और बरें की अपेक्षा अधिक कटीला होता है । इसके दाने बहुत छोटे और निकम्मे होते हैं और इसमें अनेक रंग के सुहावने फूल लगते हैं ।

खारो(प्र०)†—वि० [हि०] दे० 'खारा' ।

खाकार—संज्ञा पुं० [सं०] गदहे का रेंकना (को०) ।

खाजूर^१—संज्ञा पुं० [सं०] खजूर के रस से बनी हुई मदिरा जो प्रायः महुए की मदिरा के समान होती है । वैद्यक में इसे हचिकर, कफघ्न, कषाय और हृद्य माना है ।

खाजूर^२—वि० खजूर संबंधी । खजूर का (को०) ।

खावी—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रेतायुग । दूसरा युग ।

खाल^१—संज्ञा स्त्री० [सं० खाल, प्रा० खाल] १. मनुष्य, पशु आदि के शरीर का उपरी आवरण । चमड़ा । त्वचा ।

मुहा०—खाल उड़ाना = बहुत मारना या पीटना । खाल उधेड़ना या खींचना = (१) शरीर पर से चमड़ा खींचकर अलग कर देना । उ०—खाल खींचि जम भुसा भरावै, ऐंचि लेहि जस भारा ।—घरम०, पृ० २७ । (२) बहुत मारना पीटना या कड़ा दंड देना । खाल बिगड़ना = दुर्दशा कराने या दंडित होने की इच्छा होना । शामत आना ।

२. किसी चीज का अंगीभूत आवरण । जैसे,—बाल की खाल ।

३. आधा चरसा । अथोड़ी । ४. चौकनी । भाषी । ५. मृत शरीर । उ०—कहि तू अपने स्वारथ सुख को रोकि कहा करिहँ लसु खालहि ।—सूर (शब्द०) ।

खाल^२—संज्ञा स्त्री० [सं० खाल, प्र० खाली] १. नीची भूमि। २. खाड़ी खलीज। ३. खाली जगह। अवकाश। ४. गहराई। निचाई।

खाल^३—संज्ञा पुं० [प्र० खाल] १. शरीर का काला दाग। तिल। उ०—घंदाज से जियादा निपट नाज खुश नहीं। जो खाल अपने हृद से बढ़ा सो मसा हुआ।—कविता को०, भा० ४, पृ० १२। २. अभिमान। अहंकार। गरूर (को०)। ३. माता का भाई। मामा (को०)।

खाल खाल—वि० [प्र० खाल खाल] बहुत कम। कहीं कहीं। कोई कोई (को०)।

खालड़ी (फ़ी)—संज्ञा स्त्री० [हि० खाल + डी (प्रत्यय)] खाल। खलड़ी। खचा। उ०—मानुष केरी खालड़ी छोड़े देखा बैल।—कबीर मं०, पृ० ३६५।

खालफूँका—संज्ञा पुं० [हि० खाल + फूँकना] धोकनी धोकनेवाला। भाषी बचानेवाला।

खालसा—वि० [प्र० खालिसह् = शुद्ध, जिसमें कितने प्रकार का मेल न हो] १. जिसपर केवल एक का अधिकार हो। जैसे,—उनकी मारो जायदाद खालसा है। २. राज्य का। सरकारी।

मुहा०—खालसा करना = (१) स्वायत्त करना। जन्तु करना। (२) नष्ट करना। चीपट करना। खालसे लगाना = दे० 'खालसा करना'।

खालसा^२—संज्ञा पुं० सिकखों का एक विशेष वर्ग या मंडल।

खाली^१—वि० [हि० खाल या खाली] [वि० खो० खाली] नीचा। निम्न।

मुहा०—खाली उँचा = (१) जो समतल न हो। (२) भला बुरा या हानि लाभ।

खाली^२—संज्ञा स्त्री० [प्र० खालह्] माता की बहिन। मौसी।

मुहा०—खाली का घर = वह काम जिसके करने में अधिक परिश्रम न करना पड़े। सहज काम। उ०—यह तो घर है प्रेम का खाली का घर नाहि।—कबीर सा० मं०, भा० १, पृ० ४७।

खालिक^१—वि० [ग०] खलिहान की तरह। खलिहान जैसा (को०)।

खालिक^२—संज्ञा पुं० [प्र० खालिक] बनानेवाला। सिरजनहार। जगृ। गृहप्रकर्ता। उ०—कबीर खालिक जागिया धीर न जागै कोइ। के जागै विपई विष भरघा के दास बंदगी होइ।—कबीर ग्रं०, पृ० २६।

खालिस—वि० [प्र० खालिस] जिसमें कोई दूसरी वस्तु न मिली हो। शुद्ध। मिलावट से रहित।

खाली^३—वि० [प्र० खाली] १. जिसके अंदर कुछ न हो। जिसके अंदर का स्थान शून्य हो। जो भरा न हो। रीता। रिक्त।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

मुहा०—खाली करना = भीतर कुछ न रहने देना। भीतर की वस्तु या सार निकाल लेना। जैसे,—घड़ा खाली करना, संदूक खाली करना।

२. जिसपर कुछ न हो। जगपर कोई वस्तु या व्यक्ति न हो। जैसे,—कुरसी खाली करना, मेज खाली करना। ३. जिसमें कोई एक विशेष वस्तु न हो। किसी विशेष वस्तु से शून्य।

जैसे,—(क) जंगल जानवरों से खाली हो गया। (ख) हमारा मकान खाली कर दो।

मुहा०—हाथ खाली होना, खाली हाथ होना = (१) हाथ या मुट्ठी में रुपया पैसा न होना। अकिंचन या निर्धन होना। खुल्ल होना। जैसे,—माई, आजकल हमारा हाथ खाली है; हम कुछ नहीं दे सकते। (२) हाथ में कोई हथियार न होना। (३) हाथ में लिया हुआ काम समाप्त होना। फुरसत मिलना। अवकाश मिलना। खाली पेट = बिना कुछ भोजन खाए हुए। निरन्ने पेट। बासी मुँह। जैसे,—खाली पेट पानी मत पीओ। खाली हाथ = (१) बिना मुट्ठी में कुछ दाम लिए। बिना कुछ रुपए पैसे के। जैसे,—खाली हाथ जाना ठीक नहीं। (ख) ब्राह्मण को खाली हाथ मत लौटाओ। (२) बिना किसी हथियार के। जैसे,—रात को जंगल में खाली हाथ निकलना अच्छा नहीं।

४. रहित। विहीन। जैसे,—(क) उनकी कोई बात मतलब से खाली नहीं होती। उ०—शुभ आचार धर्म को ज्ञानी रह्यो तनय ते खाली।—रघुराज (शब्द०)। ५. (व्यक्ति) जिसे कुछ काम न हो या जो किसी कार्य में न लगा हो। जैसे,—अब हम खाली हैं; लाभो तुम्हारा काम देख लें।

मुहा०—खाली बैठना = (१) कोई काम धाम न करना। (२) बेरोजगार रहना। बिना जीविका के रहना।

६. (वस्तु) जो व्यवहार में न हो या जिसका काम न हो। जैसे,—(क) चाकू खाली हो गया तो इधर लाभो। (ख) इतने खेत खाली पड़े हैं। ७. व्यर्थ। निष्फल। जैसे,—तुम्हारा प्रयत्न खाली न जायगा। उ०—पुनि लक्ष्मी हित उद्यम करे। अरु जब उद्यम खाली परे। तब वह रहे बहुत पुख पाई।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—जाना।—पड़ना।

मुहा०—निशाना या बार खाली जाना = निशाना या बार ठीक न बैठना। अस्त्र का लक्ष्य पर न पड़ना। आक्रमण व्यर्थ होना। बात खाली जाना या पड़ना = बचन निष्फल होना। कहने के अनुसार कोई बात न होना। वादा भूटा होना। जैसे,—(क) हमारी बात खाली न जायगी; वह कल अवश्य आवेगा। (ख) अगर आज रुपया उनके यहाँ न पहुँचेगा; तो हमारी बात खाली जायगी। खाली दिन = वह दिन जिस दिन कोई नया या शुभ कार्य न किया जाय। जैसे,—कल तो बुध है, खाली दिन है; कल आरंभ करना ठीक नहीं है। खाली देना = जिसपर बार या आपात किया जाय, उसके बार को बचा जाना। साफ निकल जाना। खाली महीना या खाली चाँद = मुसलमानों का ग्यारहवाँ महीना जो अशुभ माना जाता है।

खाली^२—क्रि० वि० केवल। सिर्फ। अकेले। जैसे—खाली रटने से काम न चलेगा; समझो।

खाली^३—संज्ञा पुं० तबला, शृदंग आदि बजाने में बहु ताल जो खाली छोड़ दिया जाता है और जिसमें बाएँ पर आपात नहीं लगाया

जाता। इसका व्यवहार ताल की गिनती ठीक रखने के लिये किया जाता है।

खासू—संज्ञा पुं० [फा० खासू] [खी० खाला] माता की बहन का पति। मौसा।

खाले—क्रि० वि० [हि०] दे० 'खाला' या 'खाल' (नीचा)। उ०—गुरु पितु मातु स्वामि सिख पासे। चलत कुमग पग परहि न खाले।—तुलसी (शब्द०)।

खाव'—संज्ञा स्त्री० [सं० खम्] खाली जगह। अवकाश।

खाव'—संज्ञा स्त्री० [ख०] जहाज की वह कोठरी जिसमें माल रखा जाता है।—(लश०)।

खावो'—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खावो'।

खाविद—संज्ञा पुं० [फा० खाविद] १. पति। स्वयं। उ०—खोलि पलक चित चेतै प्रजहै खाविद सों ली लावे।—कबीर श०, पृ० ३०।

मुहा०—खाविद करना = नया पति करना।

२. मालिक। स्वामी।

खाविदी—संज्ञा स्त्री० [फा० खाविदी] १. स्वामित्व। पतित्व। २. कृपा। दया (की०)।

खावो'—संज्ञा स्त्री० [हि० खाना] वह अन्न या धन जो मालिक अपने नौकरों को वर्ष के प्रारंभ में पेशगी देता है।

खास'—वि० [अ० खास] १. विशेष। मुख्य। प्रधान। 'ग्राम' का उलटा। उ०—सुधि किये बलि जाउ दास आस पूजिहै खास खीन की।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—खासकर = विशेषतः। प्रधानतः। खास खास = चुने चुने। चुनिंदे। अच्छे और प्रतिष्ठित। जैसे,—खास खास लोगो को न्योता दिया गया है।

२. निज का। आत्मीय। चाहता। प्रिय। जैसे,—यह खास घर के आदमी है। उ०—खास दास रावरो निवास तेरो तासु उर तुलसी सो देव दुखी देखियत भारिये।—तुलसी (शब्द०)। ३. स्वयं। खुद। जैसे,—खास राजा के हाथ से इनाम लूंगा। ४. ठीक। ठेठ। विशुद्ध। जैसे,—यह खास दिल्ली की बोलचाल में लिखा गया है।

खास'—संज्ञा स्त्री० [अ० कोसा] १. गाढ़े कपड़े की वह थेली जिसमें शक्कर भरकर बोरे में भरी जाती है। २. कपड़े की वह थेली जिसमें बनिए नमक, चीनी आदि रखते हैं।

खासकलम—संज्ञा पुं० [अ० खास + कलम] वह लेखक या सहायक जिसे बड़े लोग अपने निजी कार्यों के लिये रखते हैं। निज का मुंशी। प्राइवेट सेक्रेटरी।

खासगी—वि० [अ० खास + गी (प्रत्य०)] राजा या मालिक आदि का। निज का।

खासतराश—संज्ञा पुं० [फा० खास + तराश] वह नाई जो राजा के बाल बनाया करता हो।

खासतहसील—संज्ञा स्त्री० [अ० खास तहसील] वह तहसील जो ३-६

उस स्थान में हो, जहाँ स्वयं राजा या प्रांत का शासक रहता हो। हुजूर तहसील। जिला तहसील।

खासदान—संज्ञा पुं० [अ० खास + फा० दान] गिलोरी का सामान रखने का डिब्बा। पानदान।

खासनबीस—संज्ञा पुं० [अ० खास + फा० नबीस] दे० 'खासकलम'।

खासपसंद—वि० [अ० खास + फा० पसन्द] विशिष्ट लोगों को रुचनेवाला। उ०—इबारात वही अच्छी कही जायगी कि जो आमफहम और खासपसंद हो।—प्रेमधन०, पृ० ४०६।

खासबरदार—संज्ञा पुं० [अ० खास + फा० बरदार] वह सिपाही जो राजा की सवारी के साथ साथ सवारों के ठीक आगे आगे चलता है।

खासबाजार—संज्ञा पुं० [अ० खास + फा० बाजार] वह बाजार जो राजा के महल के सामने या निकट हो और जहाँ से राजा वस्तुएँ मोल लेता हो।

खासमहल—संज्ञा पुं० [अ० खास + महल] १. जनानखाना। अंतःपुर।

२. प्रमुख बेगम। पटरानी (की०)।

खासमहाल—संज्ञा पुं० [अ० खास + महाल] वह भूमि या संपत्ति जिसका प्रबंध सरकार स्वयं करे।

खासहू—संज्ञा पुं० [अ० खासहू] एक प्रकार का महीन और सफेद सूती कपड़ा। उ०—जिन तन पहने खासहू, मलमल।—कबीर मं०, पृ० ४६०।

खासा'—संज्ञा पुं० [अ० खासहू] १. राजा का भोजन। राजभोग। २. राजा की सवारी का घोड़ा या हाथी। ३. एक प्रकार का पतला सफेद सूती कपड़ा। उ०—(क) बिस्वा भोड़े खासा मलमल।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ५१। (ख) तब श्री गुसाईं जी खासा की थान रुपैया नव की नारायनदास की नजरि करायो।—दो सी बावन०, पृ० १२४। ४. मोयनदार पूरी।

खासा'—वि० पुं० [अ० या उर्दू] [वि० स्त्री० खासी] १. अच्छा। भला। उत्तम। २. स्वस्थ। तंदुरुस्त। नीरोग। ३. मध्यम श्रेणी का। ४. सुढोल। सुंदर। ५. भरपूर। पूरा।

खासादार—संज्ञा पुं० [अ० खासहू + फा० दार (प्रत्य०)] मुख्य प्रबंधक। प्रधान। उ०—और न अस्तबल के खासादार को इससे विशेष लाभ हुआ होगा।—किन्नर०, पृ० २६।

खासियत—संज्ञा स्त्री० [अ० खासियत] १. स्वभाव। प्रकृति। आदत। २. गुण। सिफत। हुनर।

खासिया—संज्ञा स्त्री० [ख० खस] १. आसाम की एक पहाड़ी का नाम। २. इस पहाड़ी में रहनेवाली एक जंगली जाति। खस।

खासियाना—संज्ञा पुं० [हि० खासिया] एक प्रकार की मंजीठ जिसका रंग बहुत अच्छा होता है। यह खासिया से आती है।

खासी'—वि० स्त्री० [अ० खासहू] 'खासा' का स्त्रीलिंग रूप। उ०—खासी परकासी पुनवासी चंद्रिका सी जाके वासी अविनासी अधनासी ऐसी काशी है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८२।

खासी^१—संज्ञा स्त्री० [ख०] खास राजा के बाने की तलवार, ढाल या बंदूक ।

खास्तई—संज्ञा पुं० [फा० खास्तई] कबूतर का एक विशिष्ट रंग [को०] ।

खास्सा—संज्ञा पुं० [प्र० खास्साह] स्वभाव । भावत । बानि । प्रकृति ।

खाह—अव्य० [फा० खाह] दे० 'स्वाह' ।

खाहनखाह, खाहमखाह—क्रि० वि० [फा० खाह-म-खाह] दे० 'स्वाहमस्वाह' ।

खाह्राँ—वि० [फा० खाह्राँ] दे० 'स्वाह्राँ' ।

खाहिश—संज्ञा स्त्री० [फा० खाहिश] दे० 'स्वाहिश' ।

खाहिशमंद—वि० [फा० खाहिशमंद] दे० 'स्वाहिशमंद' ।

खाहीनखाही—क्रि० वि० [फा० खाहमखाह] दे० 'स्वाहमखाह' ।

खिकिर—संज्ञा पुं० [सं० खिकिर] लोमड़ी [को०] ।

खिखिर—संज्ञा पुं० [सं० खिखिर] १. लोमड़ी । २. खटिया का पावा । ३. एक प्रकार का गंधद्रव्य [को०] ।

खिंग—संज्ञा पुं० [फा० खिंग] वह सफेद रंग का घोड़ा जिगके मुँह पर का पट्टा और चारों मुँह गुलाबीपन लिए सफेद हों । नुकरा । उ०—हरे हरेदिया हंस खिंग गर्रा फुलवारी ।—सुजान०, पृ० ८ ।

खिंगरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] भैरे की बनी हुई बहुत पतली और छोटी खस्ता पूरी या मठरी ।

खिचना—क्रि० प्र० [सं० कर्षण] १. किसी वस्तु का इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना कि वह गति के समय अपने आधार से लगी रहे । बसिटना । जैसे,—यह लकड़ी कुछ इधर खिच गई है । २. किसी कोश, थैले आदि में से किसी वस्तु का बाहर निकलना । जैसे,—दोनों तरफ से तलवारें खिच गईं । ३. किसी वस्तु के एक या दोनों छोरों क. एक या दोनों ओर बढ़ना । तनना । ४. किसी ओर बढ़ना या जाना । आकर्षित होना । प्रवृत्त होना ।

• मुहा०—चित्त खिचना = मन मोहित होना ।

५. सोखा जाना । खपना । चुसना । जैसे,—सोखता रखते ही उसमें सारी रगही खिच आई । ६. भ्रमके आदि से भ्रम या शराब आदि तैयार होना । ७. किसी वस्तु के गुण या तत्व का निकल जाना । जैसे,—उसकी सारी शक्ति खिच गई ।

मुहा०—पीड़ा या दर्द खिचना = (भीषण आदि से) दर्द दूर होना । जैसे,—उस लेप के लगते ही सारा दर्द खिच गया ।

८. कलम आदि से बनकर तैयार होना । चित्रित होना । जैसे,—तलवार गिनना । ९. रुक रहना । रुकना ।

मुहा०—हाथ खिचना = देना आदि बंद होना जैसे,—अगर उधर से हाथ खिचे, तो तुम भी बंद कर देना ।

१०. माल की चलाव होना । माल खपना । जैसे,—इस देश का मारा कच्चा माल बिलायत को खिचा जाता है । ११. अनुराग कम होना । उदासीन होना । १२. भाव तेज होना । महंगा होना । जैसे,—वर्षा न होने के कारण दिन पर दिन भाव खिचता जाता है ।

संयो० क्रि०—चुक्ना ।—जाना ।—पड़ना ।

खिचवा—वि० [हि० खीचना] खींचनेवाला ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः नाव की गून भयवा खराब की बढ़ी खींचनेवालों के लिये होता है ।

खिचवाना—क्रि० स० [हि० 'खीचना' का प्रे० रूप] खींचने की प्रेरणा देना । खींचने का काम किसी अन्य से कराना ।

खिचाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खीचना] १. खींचने की क्रिया । २. खींचने का भाव । ३. खींचने की मजदूरी ।

खिचवाना—क्रि० स० [हि०] दे० 'खिचवाना' ।

खिचाव—संज्ञा पुं० [हि० खिचना] १ 'खीचना' का भाव । तनाव । २. नाराजगी ।

खिचावट, खिचावट—संज्ञा स्त्री० [हि० खिचना] १. खींचने का भाव । २. खींचने की क्रिया ।

खिचिया—वि० [हि०] दे० 'खिचवा' ।

खिचाना^(५)—क्रि० स० [सं० क्लिप्त] इधर उधर फँसना । बिखेरना । बिखराना । छितराना ।

खिथा^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० कथ्या] दे० 'कथा' । उ०—नाँ तिसु खिथा नाँ तिसु बस्तर । नानक जोगी होया अस्पिर ।—प्राण०, पृ० १०६ ।

खिचना^(५)—क्रि० प्र० [दे०] दे० 'खिचना' । उ०—खिचि पार पले, भड़ धार खगे । ललकार उचार अपार लगे ।—रा० रू०, पृ० ३५ ।

खिखिंद—संज्ञा पुं० [सं० क्लिक्खिण्ड] १. दक्षिण देश के एक पहाड़ का नाम, जहाँ वनवास के समय में कुछ दिन रामचंद्र जी ने निवास किया था । यह पहाड़ मैसूर राज्य के उत्तरी भाग में है । क्लिक्खि पर्वत । २. बीहड़ भूमि ।

खिखि—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोमड़ी [को०] ।

खिचड़वार—संज्ञा पुं० [हि० खिचड़ी + वार] मकर संक्रांति । इस दिन खिचड़ी दान की जाती है ।

खिचड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० कूसर] १. एक में मिलाया या मिलाकर पकाया हुआ दाल और चावल ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—पढ़ाना ।—डालना ।—भूनना ।—पकाना ।

मुहा०—खिचड़ी पकना = गुप्त भाव से कोई सलाह होना । डाई चावल की खिचड़ी अलग पकना = सब की संमति के विरुद्ध कोई कार्य होना । बहुमत के विपरीत कोई काम होना । डाई चावल की खिचड़ी अलग पकाना = सब की संमति के विरुद्ध कोई कार्य करना । बहुमत के विरुद्ध कोई काम करना । खिचड़ी खाते पहुँचा उतरना = अत्यंत कोमल होना । बहुत नाजुक होना । खिचड़ी छुवाना = नववधू से पहले पहल भोजन बनवाना ।

२. विवाह की एक रसम जिस 'भात' भी कहते हैं ।

मुहा०—खिचड़ी खिलाना = घर और बरातियों को (कन्या पक्ष वालों का) कच्ची रसोई खिलाना ।

३. एक ही में मिले हुए दो या अधिक प्रकार के पदार्थ । जैसे,—सफेद और काले बाल, या रुपए और प्रशरफियाँ; भयवा

जोहरियों की भाषा में एक ही में मिले हुए अनेक प्रकार के जवाहिरात । ४. मकर संक्रांति । इस दिन खिचड़ी दान की जाती है ।

यौ०—खिचड़ी खिचड़वार ।

५. बेरी का फूल ।

क्रि० प्र०—घाना ।

बह पेशगी घन जो वेश्या आदि को नाच ठीक करने के समय दिया जाता है । बयाना । साई ।

खिचड़ी^१—वि० [सं० कृसर] १. मिला जुला । गहुमहु । २. गड़बड़ । जैसे,—खिचड़ी बोली या भाषा ।

खिचनी—क्रि० प्र० [हि०] १० 'खिचनी' ।

खिचरी^१—संज्ञा स्त्री [हि० खिचड़ी] १० 'खिचड़ी' ।

खिचरी^२—संज्ञा स्त्री [सं० खेचरी] १० 'खेचरी मुद्रा' । उ० छव चक्र प्रो पाँचो मुद्रा । खिचरी ओचरी कहि अनुकारा ।—सं० दरिया, पृ० ६ ।

खिचवाना—क्रि० सं० [हि०] १० 'खिचवाना' ।

खिचाव—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'खिचाव' ।

खिजना—क्रि० प्र० [हि०] १० 'खीजना' ।

खिजबार^(५)—वि० [हि० खीज + बार (प्रत्य०)] खीजनेवाला । क्षुब्ध होनेवाला । उ०—दिन भर बाट बिलोकनहारे । गए बार खिजबार सिधारे ।—हिंदी प्रेम०, पृ० २४२ ।

खिजमत, खिजमति—संज्ञा स्त्री [हि०] १० 'खिदमत' । उ०—साखिर ऊ गट मौजिएउ खिजमति करइ अनंत ।—ढोला०, पृ० ५३५ ।

खिजमतिया—संज्ञा पुं० [हि० खिजमत + इया (प्रत्य०)] खिदमत-गार । सेवक । टहलुवा । उ०—पहिरि पोसाक खास खिजमतिया संग सँग बहुत चुरे ।—सं० दरिया, पृ० १५६ ।

खिजर—संज्ञा पुं० [प्र० खिजर] १. पथप्रदर्शक । मार्गदर्शक । रहनुमा । २. एक पैगंबर । वि० १० 'खिज' । उ०—आवे-हयात जाके किस्ने दिया तो मया । मानिद खिजर जग मे भकेला जिया तो मया ।—कविता कौ०, भा० क, पृ० ४१ ।

खिजल^(५)—संज्ञा पुं० [प्र० खजल] लज्जा । शर्मिंदगी । उ०—खुरशीद खिजल होके चिपा अन्न के अंदर ।—कवीर मं०, पृ० ३८६ ।

खिजलाना^१—क्रि० प्र० [हि० खीजना] झुंझलाना । चिढ़ाना ।

खिजलाना^२—क्रि० सं० [हि० खीजना] 'खीजना' का प्रेरणार्थक रूप । दुखी करना । चिढ़ाना ।

खिजाँ—संज्ञा स्त्री [फा० खिजाँ] १. वह ऋतु जिसमें पेड़ों के पत्ते झड़ जाते हैं । पतझड़ की ऋतु । २. अवनति का समय ।

खिजाना—क्रि० सं० [हि०] १० 'खिझाना' । उ०—देखो आज तुमने मुझको बहुत खिजाया, पर बेत रखो, जो फिर मुझसे ऐसी बातें करोगी ।—ठेठ०, पृ० १३ ।

खिजाव—संज्ञा पुं० [प्र० खिजाव] सफेद बालों को काला करने की औषध । कैव कल्प ।

महा०—खिजाव करना = बालों में खिजाव लगाना ।

खिज—संज्ञा पुं० [प्र० खिज] १. मार्गदर्शक । २. एक पैगंबर जो अमर माने जाते हैं ।

खिरोष—इनके बारे में कहा गया है कि ये अमृत पीकर अमर हो गए हैं । जल इन्हीं के अधिकार में है और ये भूले भटकों को राह बताते हैं ।

३. एक समुद्र । कैस्पियन सागर । ४. दीर्घजीवी फरिश्ता [को०] ।

खिअसूरत—वि० [प्र० खिअ + सूरत] साधु या संत की आकृति का । साधु संतों जैसे रूपवाला [को०] ।

खिअ^(५)—संज्ञा स्त्री [हि०] १० 'खीज' । उ०—मनु न मनावन की करै देतु रुठाइ रुठाइ । कौतुक लाग्यो प्यो प्रिया खिअ हैं रिअवति जाइ ।—बिहारी (शब्द०) ।

खिअना—क्रि० प्र० [सं० खिअते, प्रा० खिअजइत] खीजना । उ०—सुंदर वा सों कितो खिअिए न तजै तऊ आपने शील मुआइन ।—सुंदर (शब्द०) ।

खिअाना—क्रि० सं० [सं० खिअते, प्रा० खिअजइत] चिढ़ाना । दिक करना । उ०—मैया मोहि दाऊ बहुत खिअायो ।—सूर (शब्द०) ।

खिअाना^(५)—क्रि० सं० [हि०] 'खिअाना' । उ०—निपट हमारे ब्याल परे हरि बन में नितहि खिअावत ।—सूर (शब्द०) ।

खिअुवर^(५)—वि० [हि० खीअना] शीघ्र अप्रसन्न होनेवाला । खीअने-वाला चिढ़नेवाला ।

खिअौना^(५)—वि० [हि० खीअ + औना (प्रत्य०)] खिअानेवाला । चिढ़ानेवाला ।

खिअकना—क्रि० प्र० [हि० खिअकना] चल देना । चला जाना । खिअक जाना । उ०—झोम भरी तिय को निरखि खिअकी सहचरि सोय ।—नंददास (शब्द०) ।

खिअकाना—क्रि० सं० [हि० खिअकाना] १. अलग करना । टालना । टरकाना । हटाना । २. बेच डालना । छोने पीने करना ।

खिअकी—संज्ञा स्त्री [सं० खडकिका, देशी खडकिकमा, खडककी] १. किसी मकान या इमारत की दीवार में प्रकाश और वायु आने के लिये बना हुआ छोटा दरवाजा । जहाज, रेल आदि के डब्बे में बनाया हुआ वातायन । दरीचा । झरोखा ।

मुहा०—खिअकी निकालना या फोड़ना—खिअकी बनाना ।

२. नगर या किले का घोर दरवाजा । ३. खिअकी के आकार का खाली स्थान ।

यौ०—खिअकीदार अंगरखा = एक प्रकार का अंगरखा जो आगे ऊपर की ओर खुला रहता है । खिअकीदार पगड़ी—एक प्रकार की पगड़ी जिसमें ऊपर की ओर कुछ भाग खुला रहता है । खिअकीबंद मकान = वह मकान जो पूरा का पूरा एक किराए-दार द्वारा लिया गया हो ।

खिअना^(५)—क्रि० प्र० [सं० खेल्, प्रा० खिअ] खिलना । विकसित होना । उ०—सखी री आज जन्मे लीलाधारी । तिमिर भज्यो भक्ति खिअंगो परायन पर नारी ।—सहजो०, पृ० ५८ ।

खित^(५)—संज्ञा स्त्री [सं० खिति] पुष्पटी । धरती । उ०—घणमाल ज्युंही असुरांण घड़ा । खित आबुत मेन किसेन खड़ा ।—रा० रू०, पृ० ३३ ।

खितवा^(५)—संज्ञा पुं० [प्र० खुतवा] १० 'खुतवा' । उ०—अकबर साह जलालदी, खितवा बली खुदाय ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६६ ।

खिताब—संज्ञा पुं० [अ० खिताब] १. पदवी । उपाधि ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।

२. मुखातिब होना । किमी की ओर मुंह करके उसमें बातचीत करना (को०) ।

खिताबी—वि० [अ० खिताबी] खिताब पाया हुआ । जिसे पदवी मिली हो ।

खित्ता—संज्ञा पुं० [अ० खित्ता] प्रांत । देश । क्षेत्र । इलाका ।

खिदमत—संज्ञा स्त्री० [अ० खिदमत] सेवा । टहन । गुश्रूपा ।

खिदमतगार—संज्ञा पुं० [फा० खिदमतगार] खिदमत करनेवाला । सेवक । टहनूवा ।

खिदमतगारी—संज्ञा स्त्री० [फा० खिदमतगारी] सेवा । टहन ।

खिदमती—वि० [अ० खिदमती] १. खिदमत करनेवाला । जो खूब सेवा करे । २. सेवा संबंधी, अथवा जो सेवा के बदले में प्राप्त हुआ हो । जैसे—खिदमती माफ़ी, खिदमती जागीर ।

खिदर^(१)—संज्ञा पुं० [अ० खिदर] १. 'खदिर' । उ०—कुतक खिदर धय काठरा, खिदर प जावग वेग ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १६ ।

खिदर—संज्ञा पुं० [अ०] १. चंदमा । हिमाञ्च । २. तपस्वी । तपमी । ३. दीन । ४. हृदय (को०) ।

खिद्यमान—वि० [अ०] [अ० खिद्यमान] वेदयुक्त । दुःखित । उ०—आते ही वे निपतित हुई खिन्नमूला जना गी । पाँवों के गनितवर्त पति के हो महा खिद्यमाना ।—प्रिय०, पृ० ७३ ।

खिद्र—संज्ञा पुं० [अ०] १. व्याधि । रोग । २. दरिद्रता ।

खिन^(१)—संज्ञा पुं० [अ० खिन] क्षण । लम्हा । उ०—एकै खिन खिन माँझ पावे पद गाहिली को एके खिन खिन माह होत लटपट हो ।—जायसी०, पृ० १०८ ।

मुहा० खिनखिन = प्रतिक्षण । हरदम ।

खिन—वि० [अ०] [अ० खिन] क्षीण । गिन । दुर्बल । उ०—उपकाल अर देह खिन, गगनंधी, तन उख । चातक बतिया ना रवी अर जल गोच हख ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०८ ।

खिनु^(१)—संज्ञा पुं० [अ० खिनु] १. 'खिन' । उ०—मेरेसि चंदन मकु गिनु जागा । अधिको मूत गिरा न लागे ।—जायसी ग्रं०, पृ० २५२ ।

खिन्न—वि० [अ०] १. उदासीन । चिंतित । २. अप्रगल्भ । नाराज । ३. दीन हीन । असहाय । उ०—गिरा अरथ जल बीचि सम, देखिअन भिन्न न भिन्न । बंदी सीताराम पद, जिनहि परम प्रिय भिन्न ।—मानस, १।१८ ।

खिपना^(१)—क्रि० प्र० [अ० खिप] १. खपना । २. मिल जुल जाना । तल्लीन होना । निमग्न होना । उ०—गदन महीपति के सदन समीप सदा दीपक ह्वै दूनी दिन दीपति से दिपि रहै । गरस गुजान के परस रस जानि जानु जपन निजं व तोन्यो खेलही मे खिपि रहे ।—देव (शब्द०) ।

खिपाना^(१)—क्रि० प्र० [अ०] ३. 'खपाना' । उ०—आगे लख दल किसे भारि हरि अमुर खिपाए ।—ह० रासो, पृ० १०५ ।

खिपफत—संज्ञा स्त्री० [अ० खिपफत] १. न्यूनता । कमी । २. लाज । कर्म । संकोच । ३. पछतावा । पश्चात्ताप (को०) ।

खियानत—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३. 'खियानत' ।

खियाना^(१)—क्रि० प्र० [अ० खियाना] रगड़ से या काम में आते आते कम हो जाना । घिस जाना । उ०—घास भुसा कहैं ध्यान लगावहि दाँत खियाने चरते ।—सं० दरिया, पृ० १३५ ।

खियाना^(१)—क्रि० प्र० [अ० खियाना] भोजन कराना । खिलाना । उ०—भोग भुगुति बहु भाँति उपाई । सबहि खियावइ आपु न खाई ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ११३ ।

खियाबी—संज्ञा पुं० [फा० खियाबी] १. उद्यान । बाग । २. फूल पत्ती लगाने की क्यारी ।

खियार—संज्ञा पुं० [अ० खियार] एक प्रसिद्ध फल । खीरा (को०) ।

खियाल—संज्ञा पुं० [हि०] ३. 'खयाल' ।

खिर—संज्ञा स्त्री० [अ०] जोलाहों की ढरकी जिसमें बाने का सूत रहता है और जो बुनते समय एक ओर से दूसरी ओर चलाई जाती है । इसे 'नार' भी कहते हैं ।

खिरक^(१)—संज्ञा पुं० [हि०] गाय भैस आदि रखने का बाड़ा । गोशाला । उ०—मंदिर ते ऊँचे यह मंदिर हैं द्वायिका के बज के खिरक मेरे हिय खिरक हैं ।—रसखान०, पृ० २७ ।

खिरका—संज्ञा पुं० [अ० खिरक] गुदड़ी । कंथा (को०) ।

खिरकी^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३. 'खिड़की' । उ०—सेज ते बाल उठी हरूप हरूप पट खोल दिए खिरकी के ।—मति० ग्रं०, पृ० ३०८ ।

खिरचा^(१)—संज्ञा पुं० [हि०] ३. 'खिरका' ।

खिरडरी^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि० खिर + डरी] सुगंधित मसाले मिलाकर बनाई हुई खिर की गोली ।

खिरद—संज्ञा स्त्री० [फा० खिरद] मेधा । बुद्धि । अक्ल ।

यौ०—खिरदमंद = बुद्धिमान । मेधावी । उ०—ये खिर मंदो मुखारक नी तुम्हें फजीतगी । हग हो ओ महरा हो ओ बहुशत हो ओ दीवानगी ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४३ ।

खिरना^(१)—क्रि० प्र० [अ० खिरना] १. नष्ट होना । मिटना । उ०—जे अक्खर खिरि जाहिगे ओहि अक्खर इन मंहि नाहि ।—कबीर ग्रं०, पृ० ३१० । २. गिरना । चूना । बिखरना । झरना । उ०—(क) मेहाँ बूँठा अर बहल थल तादा जल रेस । करसण पाका, कण खिरा, तद कउ बलण करेस ।—दोला०, दू० २६४ । (ख) केहर कुंभ बिदारियौ गज मोती खिरियाह ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० १८ ।

खिरनी—संज्ञा स्त्री० [अ० खिरनी] १. एक प्रकार का ऊँचा और छतनार सदाबहार पेड़ जिसके हीरे की लकड़ी लाल रंग की, चिकनी, बड़ी और बहुत मजबूत होती है और कोल्हू बनाने तथा इमारत के काम आती है । यह बड़ी सरलता से खरादी भी जा सकती है । २. इस वृक्ष का फल जो निमकीड़ी के आकार का, दूधिया और बहुत मीठा होता है और गरमी के दिनों में पकता है । ३. एक प्रकार का चावल । उ०—खरी

(खिरनी) नामक विशेष चावल का मूल्य २०० दीनार से ३६ दीनार हो गया ।—आदि०, पृ० ४६६ ।

खिरमन—संज्ञा पुं० [फा० खिरमन] खलिहान । डेर । उ०—भाव सस्ता हो या महंगा नहीं मोकूफ गले पर । य सब खिरमन उसी के हैं खुदा है जिसके पले पर ।—कविता की०, भा० ४, पृ० २५ ।

खिराज—संज्ञा पुं० [प्र० खिराज] राजस्व । कर । मालगुजारी । उ०—पात न कँपावे लेत पराग खिराज, आवत गुमान भरयो समीरन राज ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६८७ ।

क्रि० प्र०—लगाना ।—बढ़ाना ।—चढ़ाना ।—बेना ।—लेना ।

खिराम—संज्ञा पुं० [फा० खिराम] मस्त चाल । चीभी चाल ।

खिरामाँ—वि० [फा० खिरामाँ] खिरामवाले । मस्ती की चालवाले । उ०—प्रगो चलते थे यूमुफ शाद फरहाँ । खुशी करते हुए हँसते खिरामाँ ।—दक्खिनी०, पृ० ३३८ ।

खिरिरानाँ—क्रि० वि० [प्रनु०] १. सीक के छाज में रखकर अनाज को छानना जिसमें खराब दाने नीचे गिर पड़ें । २. सूरचना । खरोचना । उ०—सोई रघुनाथ कपि साथ पाषनाथ बाँधि प्रायो, नाथ ! भागे ते खिरिरि सेह साहिगो । तुलसी गरब तजि मिलिबे को साज सजि, देहि सिय ना तो पिय पायमाल जाहिगो ।—तुलसी (शब्द०) ।

खिरैदी—संज्ञा स्त्री० [सं० खरपट्टिका] बला । बरियारा । बीजबंद ।

खिरौराँ—संज्ञा पुं० [हि० खैर = कल्या + औरा (प्रत्य०)] कत्थे की टिकिया । उ०—पुहुप पंक रस प्रभृत साँधे । कोइ यह सुरंग खिरौराँ बाँधे ।—जायसी (शब्द०) ।

खिलंदराँ—वि० [सं० खेल] खिलाड़ी । खेल खेलनेवाला ।

खिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊसर धरती । रेतीली भूमि । २. रिक्त स्थान । खाली जगह । ३. पश्चिष्ट । ४. संकलन । ५. शून्यता । खालीपन । ६. शेष भाग । शेषांश । ७. ब्रह्मा । ८. विष्णु (को०) ।

खिलअत—संज्ञा स्त्री० [प्र० खिलअत] वह वस्त्र आदि जो किसी बड़े राजा या बादशाह की ओर से संमानभूचकार्य किसी को दिया जाता है ।

क्रि० प्र०—बेना ।—पाना ।—बखशना ।—मिलना ।—लेना ।

खिलकत—संज्ञा स्त्री० [प्र० खिलकत] १. सृष्टि । संसार । उ०—बंदे खुदा की रीत क्या खिलकत फना खोवे खुदी ।—तुलसी० श०, पृ० २४ । २. बहुत से लोगों का समूह । भीड़ ।

खिलकौरी—संज्ञा स्त्री० [हि० खेल + कौरी (प्रत्य०)] खेल । खिलवाड़ । उ०—बालकहूँ लगि लेयें संग करि प्रिय खिलकौरिन ।—श्रीधर (शब्द०) ।

खिलखाना ①—संज्ञा पुं० [प्र० खिल = यार, आत्मीय + फा० खानह = घर] पसारा । कुटुंब । उ०—दोस्त दिल तू ही मेरे किसका खिलखाना । प्ररचम जिद मेरे तू ही रहमाना ।—दादू०, पृ० ६०४ ।

खिलखिलाना—क्रि० प्र० [प्रनु०] खिलखिल शब्द करके हँसना । जोर से हँसना । मद्दहास करना ।

खिलखिलाहट—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] खिलखिलाकर हँसने का भाव ।

खिलजी—संज्ञा पुं० [खि०] १. अफगानिस्तान की सरहद पर रहनेवाली पठानों की एक जाति । २. भारतीय इतिहास का पठान राजवंश ।

खिरोष—प्रलाउहीन इस वंश का बड़ा प्रसिद्ध सम्राट हुमा है । इस वंश का राज्य भारत में सन् १२८८ ई० से सन् १३२१ ई० तक रहा ।

खिलत, खिलती—संज्ञा स्त्री० [प्र० खिलत] १. 'खिलमत' । उ०—खिलत मिलति तिनकों नरपति सों । जिमि वर देत अमर वर रति सों ।—गोपाल (शब्द०) ।

खिलना—क्रि० वि० [सं० खिल] १. कली के दल अलग अलग होना । कली से फूल होना । विकसित होना । २. प्रसन्न होना । प्रमुदित होना । ३. शोभित होना । उपयुक्त होना । ठीक या उचित जँचना । जैसे,—यह गमला यहाँ पर खूब खिलता है । ४. बीच से फट जाना । जैसे,—दीवार का खिल जाना । ५. अलग अलग हो जाना । जैसे,—चावल खिलना ।

संशो० क्रि०—उठना ।—जाना । उ०—हुस्नधारा खिली जाती थी ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २८६ ।—पड़ना ।

खिलबत—संज्ञा स्त्री० [प्र० खिलबत] जहाँ कोई न हो । एकांत । शून्य स्थान ।

यो०—खिलबतखाना ।

खिलबतखाना—संज्ञा पुं० [फा० खिलबतखानह] वह स्थान जहाँ कोई गुप्त मंत्रणा या विवाद हो । एकांत स्थान । उ०—खड़जी खजाने खरगोस खिलबतखाने खीसें खोले खसखाने खाँसत खबीस हैं ।—भूपण (शब्द०) ।

खिलबति—संज्ञा स्त्री० [प्र० खिलबत] १. 'खिलवत' ।

खिलवती—संज्ञा पुं० [फा० खिलबत] मुसाहब । पारिपद । उ०—निज खिलवतिन में हास है, भय रूप दुर्जन पास है ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ६ ।

खिलवाड़—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. 'खेलवाड़' ।

खिलवाड़िन—वि० स्त्री० [हि० खेलवाड़] क्रोड़ा करनेवाली । उ०—मित्र, खिलवाड़िन मैना क्या कहती है, सुनो ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४०२ ।

खिलवाना ①—क्रि० स० [हि० खाना का प्रे० रूप] किसी को दूसरे से भोजन कराना ।

खिलवाना ②—क्रि० स० [हि० खिलना का प्रे० रूप] विकसित कराना । प्रफुल्लित कराना ।

खिलवाना ③—क्रि० स० [हि० खील] खील बनवाना । जैसे,—मड़भूजे के यहाँ से घान अन्धरी तरह खिलवा लेना ।

खिलवाना ④—क्रि० स० [हि० 'खीलना' का प्रे० रूप] खील लगवाना । खील या तिनके गोदकर दोने आदि का मुँह बंद करवाना ।

खिलवाना ⑤—क्रि० स० [हि० खेल] १. 'खेलवाना' ।

खिलबार ⑥—संज्ञा पुं० [हि०] १. 'खेलवाड़' ।

खिलाई

खिलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खाना] १. भोजन की क्रिया । खाने का काम । २. खिलाने का काम ।

यौ०—खिलाई पिलाई = (१) खाना पीना । (२) खिलाना पिलाना ।

खिलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खेलाना (खेल)] वह दाईं या मजदूरनी जो बच्चों को खेलाती हो ।

यौ०—बाई खिलाई ।

खिलाक—संज्ञा पुं० [हि०] १. 'खिलाड़ी' ।

खिलाक—वि० स्त्री० बदचलन । पुं० चली ।

खिलाकिन—संज्ञा स्त्री० [हि० खेल+प्राङी (प्रत्य०)] १. कुलबुली । नटखट । २. पुण्डली । व्यभिचारिणी ।

खिलाकी—संज्ञा पुं० [हि० खेल + प्राङी (प्रत्य०)] [स्त्री० खिलाकिन] १. खेल करनेवाला । खेलनेवाला । २. कुश्ती लड़ने, पटा बनेटी खेलने या इसी प्रकार के और काम करनेवाला । ३. जादूगर । बाजीगर ।

खिलाकी—संज्ञा पुं० [देश०] बैलों की एक जाति जो खानदेश, मैयूर और हैदराबाद के पहाड़ी भागों में होती है ।

खिलाना—क्रि० स० [हि० खेलना] किसी को खेल में नियोजित करना । खेल कराना ।

खिलाना—क्रि० स० [हि० खाना] 'खाना' का प्रेरणार्थक रूप । भोजन कराना ।

यौ०—खिलाना पिलाना = भोजन कराना ।

खिलाना—क्रि० स० [हि० खिलना] विकसित करना । फुलाना ।

खिलाफ—संज्ञा पुं० [अ० खिलाफ] क्षेत्र । वेत का वृक्ष (को०) ।

खिलाफ—वि० जो अनुपलब्ध न हो । विरुद्ध । उलटा ।

यौ०—खिलाफकानून = प्रवेध । विधिविरुद्ध । खिलाफबयानी = झूठ कहना । गलत बयान देना । खिलाफमरजो = इच्छा के प्रतिकूल । खिलाफधरजो = अवज्ञा । अवमानना ।

खिलाफत—संज्ञा स्त्री० [अ० खिलाफत] १. प्रतिनिधित्व । स्थानापन्नता । २. खलीफा का पद । ३. मुहम्मद साहब के बाद उनका प्रतिनिधित्व । ४. विरोध ।

यौ०—खिलाफत आंदोलन = मन् १९१८-२१ के बीच भारत में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध छेड़ा गया एक आंदोलन जो खलीफा की गद्दीनशीनी के प्रश्न पर हुआ था ।

खिलार—संज्ञा पुं० [हि०] २० 'खिलाई' । उ०—उन पीतम सों यो जा कहियाँ तुम बिन व्याकुल नार । 'हरीचंद' क्यों मुरति बिसारी तुम तो चतुर खिलार ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २, पृ० ४८ ।

खिलारो—संज्ञा स्त्री० [हि० खील] मृत्ता हुआ खाना । धनिया और सखुजे, ककड़ी आदि के मुने हुए बीज जो भोजनोपरांत खाए जाते हैं ।

खिलाल—संज्ञा स्त्री० [अ० खिलाल] १. (ताश आदि के खेल में) पूरी बाजी की हार । २. मध्य । बीच । अंतर (को०) । ३. दाँत खोदने का तिनका । खरका (को०) ।

खिलौना—संज्ञा पुं० [हि० खेल + प्रोना (प्रत्य०)] काठ, मोम, मिट्टी, कपड़े आदि की बनी हुई कोई मूर्ति या इसी प्रकार की और कोई चीज जिससे बालक खेलते हैं ।

मुहा०—हाथ का खिलौना=प्रामोद प्रमोद की वस्तु । वह व्यक्ति जिससे मन बहले । प्रिय व्यक्ति । जैसे,—अपने गुणों की बदौलत वह अमीरों के हाथ खिलौना बना रहता है ।

खिल्त—संज्ञा पुं० [अ० खिलतह्] मिश्रण । मिलावट ।

यौ०—खिल्तमिल्त = मिला हुआ । एकाकार ।

खिल्त—संज्ञा स्त्री० [अ० खिल्त] वात, पित्त, कफ आदि रस या धातु । यूनानी मत से शरीर की चार धातुओं में से कोई एक धातु (को०) ।

खिल्य—वि० [अ०] खिल अर्थात् परिशिष्ट या पूरक अंश में कथित ।

खिल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरुस्थल । रेगिस्तान । २. सामान्य भूमि के बीच कोई चट्टान । ३. खारी नमक (को०) ।

खिल्ला—वि० [सं० खिल] परती । खाली । बिना जोते बोग हुआ । उ०—कोई किसान यदि नजराना देता तो वे खेत उसके नाम दर्ज हो जाते, नहीं तो खिल्ले पड़े रहते । —फूलो०, पृ० ८० ।

खिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि० खिलना] हँसी । हास्य । दिलगी । मजाक ।

क्रि० प्र०—उड़ाना । —करना ।

यौ०—खिल्लीबाज = दिलगीबाज । खिल्लीबाजी = दिलगी-बाजी । विनोद ।

खिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि० खिल्ली] पान का बीड़ा । गिल्लीरी ।

खिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि० खील] कील । काँटा ।

खिल्लो—वि० स्त्री० [हि० खिलना प्रमन्न होना] बहुत अधिक हँसनेवाली (स्त्री) ।

खिलना(पुं०)—क्रि० प्र० [अ० खिल्, प्रा० खिलन] चमकना । उ०—(क) च्यारह पासइ धण धणउ बीजलि खिलइ अगास । हरियाली रति तउ भलइ, धर संपति पिउ पास ।—ढोला०, पृ० २६० । (ख) बिरहा रवि सों घट व्योम तच्छो बिजुरी सी खिलै इक लौ छतिग ।—चनानंद, पृ० ८८ ।

खिलाही—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ईंट ।

खिल्त—संज्ञा स्त्री० [प्रा० खिल्त] १. छोटा नेजा । शक्ति । २. इष्टका । ईंट (को०) ।

खिल्तक—संज्ञा स्त्री० [प्रा० खिल्तक] १. कपड़े का वह टुकड़ा जो कुर्ते में बगल के नीचे लगाया जाता है । चौबगला । २. खौंगी ईंट । छोटी ईंट (को०) ।

खिसकना—क्रि० प्र० [हि० या अनु०] २० 'खसकना' । उ०—भूलति नाहि भुलाए भू सुधि सों सुधि जात सबे खिसकी सी । —रघुनाथ (शब्द०) ।

खिसकाना—क्रि० स० [हि०] २० 'खसकाना' ।

खिसना—क्रि० प्र० [हि०] २० 'खसना' । उ०—लोभी ठाकुर

भावि घरि काई करइ बिदेसि । दिन दिन जोवण तन खिसइ
लाभ किसा कह लेसि ।—ढोला०, दू० १७७ ।

खिसलना—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'फिसलना' ।

खिसलना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'फिसलना' । उ०—बार बार
ऊँचो करूँ खिसलि खिसलि यह जात । मुरवी हूँ की गूँधि दे
नैक नहीं ठैरात ।—शकुंतला, पृ० ५१ ।

खिसलाना—क्रि० स० [हि०] खिसलना का प्रेरणा० रूप ।

खिसलानावा—संज्ञा पुं० [हि० खिसलना या फिसलना] १. फिसलने
या खिसलने का भाव । २. फिसलने या खिसलने की जगह ।

खिसलाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० खिसलना या फिसलना] फिसलने या
खिसलने का भाव ।

खिसाना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'खिसियाना' । उ०—(क)
दुरि गए कीर कपोत मधुप पिक सारंग सुधि बिसरी । उड़-
पति विद्रुम बिब खिसान्यो दामिनि अधिक डरी ।—सूर
(शब्द०) । (ख) करहु उपाय पात लता भूमि गाई पाइ, रहे
वे खिसाइ कह्यो इतनोई लीजिए ।—प्रिया० (शब्द०) ।
(ख) तिन मधि की राती । हो रातो पै निपट खिसानी ।—
नंद० प्र०, पृ० ३०६ ।

खिसाना^२—क्रि० स० [हि० खिसकाना] १. सरकाना । हटाना ।
उ०—तो मो चरण खिसावै ताराँ सो वारें तो दीधी सीता ।
—रघु० उ०, पृ० १८० । २. हटाना । भगाना । उ०—
स्वाजे मोरी पीर सेव अजमेरि खिसाए ।—ह० रासो,
पृ० ७३ ।

खिसारा—संज्ञा पुं० [फा०] घाटा । नुकसान । हानि ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—पड़ना ।—सहना ।

खिसारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खिमारी' ।

खिसिआनपन—संज्ञा पुं० [हि० खिसिआना + पन] खिसियाना का
भाव । खिसिआहट ।

खिसिआना^१—क्रि० प्र० [हि० खीस=दाँत] १. लजाना । लज्जित
होना । शरमाना । उ०—लाज लए प्रभु भावत नाही ह्वै जां
रहे खिसिआने ।—सूर (शब्द०) । २. खफा होना । क्रुद्ध
होना । रिसिआना ।

खिसिआना^२—वि० लज्जित । शरमिदा । जैसे,—गह सुनकर वे तां
खिसिआने से हो गए ।

खिसिआहट—संज्ञा स्त्री० [हि० खिसिआना + हट (प्रत्य०)] खिसि-
आना का भाव । खिसिआनपन ।

खिसियाना^३—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'खिसिआना' । क्रुद्ध होना ।
उ०—यासों हमरी कछु न बसाइ । यह कहि असुर रह्यो
खिसियाइ ।—सूर०, ७७७ ।

खिसी^४—संज्ञा स्त्री० [हि० खिसिआना] १. लज्जा । शरम । उ०—
(क) सब सिधिल तनु मुकुलित बिलोचन पुलक मुख शशि
में खिसी । इमि निखिल निधुवन की कला पिय को हँसी
तिय को खिसी ।—गुमान (शब्द०) । (ख) खिसी दलेल
खान उर छाई । याद अनूप अरण की आई ।—लाल (शब्द०) ।
२. बिठाई । धृष्टता । उ०—दुरै न निषरषदी दिए, ए रावरी

कुचाल । बिल सी लागति है नुरी, हँसी खिसी की लाल ।—
बिहारी (शब्द०) ।

खिसीहाँ^५—वि० [हि० खीस + ओहाँ (प्रत्य०)] खिसिआया हुआ ।
लज्जित और संकुचित । उ०—गहक गाँसु ओरै गहै रहे
अधकहे नैन । देखि खिसीहाँ पिय नयन किए रिसीहाँ नैन ।—
बिहारी (शब्द०) ।

खींच—संज्ञा स्त्री० [हि० खींचना] खींचना का भाव ।

खींचतान—संज्ञा स्त्री० [हि० खींच + तान] १. किसी वस्तु की प्राप्ति
के लिये दो व्यक्तियों का एक दूसरे के विरुद्ध उद्योग । खींचा-
खींची । २. क्लृप्त कल्पना द्वारा किसी शब्द या वाक्य
प्रादि का अन्यथा अर्थ करना ।

खींचना—क्रि० स० [सं० कर्णण प्रा० कण्ण, बेगी खंण] प्रे०
खिचनाना] १. किसी वस्तु को इस प्रकार एक स्थान से
दूसरे स्थान पर करना कि वह गति के समय अपने आधार
से लगी रहे । घसीटना । जैसे,—(क) चारपाई इधर खींच
लाओ । (ख) घड़े में हाथ डालकर उस बीज को खींच
लो । २. किसी कोश, धँसे आदि में से किसी वस्तु को
बाहर निकालना । जैसे,—ध्यान से तलवार खींचना ।
३. किसी ऐसी वस्तु को छोर या बीच से पकड़कर अपनी
ओर बढ़ाना जिसका दूसरा छोर दूसरी ओर अथवा नीचे या
ऊपर हो । ऐंचना । जैसे, पंखे या खिड़की की डोरी खींचना ।
कुएँ से पानी खींचना । जैसे—रस्सी को बहुत मत खींचो, टूट
जायगी । ४. आकर्षित करना । बलपूर्वक किसी ओर ओर ले
जाना । किसी ओर बढ़ाना । किसी ओर प्रवृत्त करना ।

मुहा०—चित्त खींचना = मन को मोहित करना ।

५. सोखना । चूसना । जैसे—(क) मैदा बहुत घी खींचता है ।
(ख) अभी सोखता रख दो, सब स्याही खींच ले । ५. भभके
से भ्रक, शराब आदि टपकाना । भ्रक चुसाना । ७. किसी वस्तु
के गुण या तत्व को निकाल लेना । जैसे—इस कपड़े ने फूल
की सारी सुगंध खींच ली ।

मुहा०—पोड़ा या बर्ब खींचना = अप्रिय आदि का दर्द दूर करना ।
जैसे—यह लेप सब दर्द खींच लेगा ।

८. कलम फेरकर लकीर आदि डालना । लिखना । चित्रित
करना । जैसे—तसवीर खींचना ।

यौ०—खींच खाँचकर = झटपट देहा सीधा लिखकर । जैसे—एक
चिट्ठी में घंटा भर नंगा दिया, खींच खाँचकर किनारे करो ।

९. रोक रखना । जैसे—जितना बाजबी देना है, उसमें से भी
वह कुछ खींच रखना चाहता है ।

मुहा०—हाथ खींचना = देना या ओर कोई काम बंद करना ।
जैसे,—(क) उसने एकदम अपना हाथ खींच लिया है; एक
पैसा भी नहीं देता । (ख) हम अपना हाथ खींच लेते हैं, तुम
अकेले सब काम करो ।

१०. माल की चलान लेना । व्यापार का माल मँगाना । जैसे—
आजकल कलकत्ता बहुत अनाज खींच रहा है ।

संयो० क्रि०—डालना ।—रखना ।—लेना ।

खींचाखींची—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खींचतान' ।

खीचातान—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खींचतान' । उ०—जम द्वारा पर दून सब करने खीचातान । तिन तें कबहुं न छुटता, फिरता चारो खान ।—कबीर सा० मं०, पृ० ७ ।

खीचातानी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खींचतान' ।

खीखर—संज्ञा पु० [दश०] एक प्रकार का बनबिलाव जिसे कटास भी कहते हैं ।

खीच(पु०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'खिचड़ी' उ०—करमाबाई खीच पवायो उठ परभात सवारे । गुचि संजम करिया नहि देखी प्रेम भक्ति के प्यारे ।—राम० धर्म०, पृ० ५ ।

खीज—संज्ञा स्त्री० [हि० खीजना] १. खीजने का भाव । भुंभलाहट । उ०—गीऊ खीज मोज फोज दान श्री कृपान ऊँचे जगत बलाने दोऊ हाथ गोपीनाथ के ।—मतिराम (शब्द०) । २. चिढ़ाने का शब्द या वाक्य । वह बात जिससे कोई चिढ़े ।

मुहा०—खीज निकालना = किसी को चिढ़ाने के लिये कोई नई बात निकालना ।

खीजना—क्रि० प्र० [गि० खिछते, प्रा० खिज्जइ] दुखी और कुद हाना । भुंभलाना । खिजलाना ।

खीझ(पु०)†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'मीज' । उ०—खीझ में रीझने की बानि राम रीझत है, रीके हैं हैं राम की दोहाई रघुराय पू ।—तुलसी (शब्द०) ।

खीझना(पु०)†—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'खीजना' । उ०—दीन के दयाल की झूठी यह बानि झाली, खीझत है मान गहे रीझत नानि पै ।—दीनदयालु (शब्द०) ।

खीण(पु०)—गि० [गि० क्षीण, प्रा० क्षीण] दे० 'क्षीण' । उ०—हुए हिंदु बलहीण, भरा पण खीण मुरां ध्रम । गिटे वेद मरजाद, भद गुण आद गटे ध्रम ।—ग० रू०, पृ० २२ ।

खीन पु०—वि० [म० क्षीण] [वि० स्त्री० क्षीनी] क्षीण । उ०—दीन मुहामद को करि खीन मलीन करो मुख की छवि बाढ़ी ।—हमिरीर०, पृ० १८ । उ०—बसा लंक बरनै जग भीनी । तेहि तें अधिक लंक वह खीनी ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १६७ ।

खीनता(पु०)†—संज्ञा स्त्री० [म० क्षीणता] क्षीणता । कृशता ।

खीनताई पु०—संज्ञा स्त्री० [हि० खीनता+ई (प्रत्य०)] दे० 'खीनता' ।

खीनि पु०—वि० [हि०] दे० 'क्षीण' । उ०—भैं ससि खीनि गहन आस गही । बिधुरे नखन सेज भरि रही ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३३६ ।

खीप—संज्ञा पु० [दश०] १. एक प्रकार का घना सीधा पेड़ । उ०—खीप पिड़ाऊ गोमल मिडी ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—यह मिथ, पंजाब, राजपूताने और अफगानिस्तान की पथरीली और वनई जमीन में होता है । इसकी पत्तियाँ छोटी और लमोतारी होती हैं और इसमें जाड़े के दिनों में छोटे लंबे फूल निकलते हैं । इसकी पत्तियाँ और टहनियाँ शीतल होती हैं और राजपूताने में चारे के काम में आती हैं । पंजाब में इसके रेश से रस्सियाँ बनाई जाती हैं ।

२. लज्जालु । जजाधुर । ३. गंधप्रसारिणी । गंधपसारा ।

खीपट(पु०)—संज्ञा पु० [सं० क्षिप्त] बावला । पागल । उ०—ऊ दिन खीपट दूर गए अब सोरहो दंड एकासी ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० १, पृ० ३३२ ।

खीमा—संज्ञा पु० [हि० खेमा] दे० 'खेमा' ।

खीर†—संज्ञा स्त्री० [म० क्षीर] दूध में पकाया हुआ बावल ।

विशेष—लोग प्रायः तीखुर, पीया (लीघा) या इसी प्रकार के और पदार्थ भी दूध में पकाते हैं, जिसे खीर कहते हैं ।

मुहा०—खीर चटाना = बच्चे को पहले पहल अन्न खिलाना । अन्नप्राशन नामक संस्कार ।

खीर†(पु०)—संज्ञा पु० [म० क्षीर] दूध । उ०—(क) भरत बिनम मुनि सबहि प्रसंसी । खीर नीर बिबरन गति हूँसी ।—मानस, २ । ३१३ । (ख) खीर खडानन की मद केशव सो पल में करि पान लियोई ।—केशव (शब्द०) ।

खीरचटार्ई—संज्ञा स्त्री० [हि० खीर + चटाना] बच्चे को पहले-पहल अन्न खिलाने का संस्कार । अन्नप्राशन ।

खीरमोहन—संज्ञा पु० [हि० खीर + मोहन] छेने की बनी हुई एक प्रकार की बँगला मिठाई ।

खीरा—संज्ञा पु० [गि० क्षीरक] बरसात में होनेवाला ककड़ी की जाति का एक फल ।

विशेष—यह कुछ मोटा और एक बालिप्त तक लंबा होता है । इसकी तरकारी भी बनती है; परंतु अधिकतर लोग इसे नमक मिर्च के साथ कच्चा ही खाते हैं । इसके बीज दवा के काम में आते हैं । फल तथा बीजों की तासीर ठंडी है ।

मुहा०—खीरा ककड़ी = अत्यंत तुच्छ वस्तु । गाजर मूली ।

खीरी†—संज्ञा स्त्री० [गि० क्षीर] चौपायों के थन के ऊपर का वह मांस जिसमें दूध बनता और रहता है । बाख ।

खीरी†—संज्ञा स्त्री० [म० क्षीरिणी] खिरनी नाम का फल । उ०—कोई दागिजे, कोई दाख झो खीरी । कोई सदाफर मुरंग गंभीरी ।—जायसी (शब्द०) ।

खीरोदक(पु०)—संज्ञा पु० [गि० क्षीरोदक] दे० 'क्षीरोदक' । उ०—कहा भयो मेरो गृह माटी की । नवतन खीरोदक युवती पै भूषण हुतै न कहें माटी की ।—सूर (शब्द०) ।

खील†—संज्ञा स्त्री० [हि० खिलना] भूना हुआ घान । लावा ।

खील†—संज्ञा स्त्री० [हि० कील] १. कील । काँटा । मेल । २. लौग नाम का जेवर जिसे स्त्रियाँ नाक में पहनती हैं । ३. मांसकील ।

खील†—संज्ञा स्त्री० [दश०] वह भूमि जो बहुत दिनों तक परती पड़ी रहने के उपरांत पहले पहल जोती गई हो । नोतोड़ ।

खीलना—क्रि० स० [हि० खील] तिनके गोदकर पत्ते के दोने आदि का मुँह बंद करना । खील लगाना ।

खीला†—संज्ञा पु० [हि० कील] काँटा । मेल । कील । उ०—दादू खीला गाड़ि का निहचल थिर न रहाइ । दादू पण नहि साँच के भरमइ दह दिस जाइ ।—दादू (शब्द०) ।

खीली—संज्ञा स्त्री० [हि० खीन] पान का बीड़ा । खिल्ली ।

खिल्यौरी(पु०)—संज्ञा पु० [दश०] गड़ेरिया । उ०—ढोला, खिल्यौरी

कहइ सुंणे कुडंगा वेण । मारु म्हांजी गोठणी, सें मारुंदा
सेण ।—ढोलां, पृ० ४३८ ।

खीबन—संज्ञा स्त्री० [सं० खीबन] मतवालापन । मस्ती ।

खीबनि—संज्ञा स्त्री० [सं० खीबन] दे० 'खीबन' । उ०—मेरे माई
स्याम मनोहर जीबनि । निरखि नयन भूले ते वदन छवि
मधुर हँसनि पै खीबनि ।—सूर (शब्द०) ।

खीबर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० खीब = मस्त] शूर । वीर । सुभट ।
बहादुर ।—(हिं०) ।

खीश—संज्ञा पुं० [फ्रा० खेश] आत्मीय । स्वजन । उ०—सबी खीश
बेगाना हमसे खफा । जो थे बावफा हो गए बेवफा ।—
बक्सिनी, पृ० २११ ।

खीस(पु)—वि० [सं० क्षिप्त = वध, नाश] नष्ट । बर्बाद । उ०—
सती मरनु मुनि संमुगन, लगे करन मख खीस ।—मानस,
१ । ६४ ।

मुहा०—खीस जाना = नष्ट होना । उ०—काहू कृपाल बडे
नतयाल गए खन भेचर खीस खलाई ।—तुलसी (शब्द०) ।
खीस डालना = नष्ट करना । उ०—काहे को निर्गुण जान गनत
हो जित तिन डागत खीस ।—सूर (शब्द०) ।

खीस^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० खीज] १. अप्रसन्नता । नाराजगी । २.
क्रोध । रोष । गुस्सा ।

खीस^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० खिसिआना] 'खिसिआना' का भाव ।
लज्जा । शर्म ।

क्रि० प्र०—मिटाना ।

खीस^३—संज्ञा स्त्री० [सं० कौश - बंदर] थोठ से बाहर निकले हुए दाँत ।

मुहा०—खीस काटना, खीस निकालना, खीस निपोरना = (१)
बेढंगे तौर से हँसना । (२) दीन होकर कुछ माँगना । (३)
मर जाना ।

खीस^४—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खिसारह, खमारह] घाटा । हानि ।
क्रि० प्र०—उठाना ।—पड़ना ।

खीस^५—संज्ञा स्त्री० [देश०] गाय का वह दूध जो व्याने के पीछे सात
दिन तक निकलना है । पेउम ।

खीसा^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० खीसह] [स्त्री० अत्पा० खीसी] १. थैला ।
थैली । २. जूथ । पाकेट । खलीता । ३. एक प्रकार की
कपड़े की थैली जिसे हाथ में पहनकर लोग बदन साफ करते हैं ।

क्रि० प्र०—करना = खीसे से शरीर मलना ।

खीसा^२—संज्ञा पुं० [हिं० खीस] थोठ के बाहर निकले हुए दाँत ।

खीहा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार का पक्षी । उ०—पिउ पिउ
लामै करै पपीहा । तुही तुही कर गुडरु खीहा ।—जायसी ग्रं०
(गुप्त), पृ० २६ ।

खुँखणी—संज्ञा स्त्री० [सं० खुङ्खणी] वीणा का एक भेद [को०] ।

खुँगाह—संज्ञा पुं० [सं० खुङ्गाह] काले रंग का घोड़ा [को०] ।

खुँटकड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० खुँट + काटना] कान की मैन निका-
लनेवाला । कनमलिया ।

खुँटफारी^१—वि० [हिं० खुँटा + काटना] बहुत दुष्ट या पाजी ।
शरारती (बालक) ।

खुँटिला—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खुटिला' । उ०—मनि कुंडल खुँटिला
थी खुँटी ।—जायसी ग्रं०, पृ० २२३ ।

खुँटैया—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुँटी] एक प्रकार की दूब या घास जिसे
बट्टू भी कहते हैं ।

खुँड—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार की मोटी घास ।

विशेष—यह काली मिट्टी की भूमि में अधिकता से होती है ।
यह एक गज तक ऊँची होती है और इसका झंठल बहुत मोटा
होता है । सूखने पर तो कभी नहीं, पर हरी रहने पर कभी
कभी पशु इसे खा लेते हैं । इसे गुंड या गूनर भी कहते हैं ।

२. एक प्रकार का पहाड़ी टट्टू जिसे गुँट या गुंठा भी कहते हैं ।

खुँडला—संज्ञा पुं० [सं० खण्डल] टूटा फूटा घर । छोटा भोपड़ा ।

खुँदवाना—क्रि० सं० [सं० क्षुण्ण] कुचलवाना । दबवाना ।
रोदवाना ।

खुँदाना—क्रि० सं० [सं० खुद] (घोड़ा) कुदाना ।

खुँदी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खूँदी' ।

खुँबी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खुमी' ।

खुँभी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खुमी' ।

खुँभी^२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'खुमी' । उ०—गहिरे खुँभी सिंहल
दीपी । जानहुँ भगी कचपची सीपी ।—जायसी ग्रं० (गुप्त),
पृ० १६३ ।

खुआर(पु)—वि० [फ्रा० ख्वार] १. दुर्दशाग्रस्त । खराब । उ०—
नतर प्रजा पुर्जन परिवार । हमहि सहित सब होत
खुआर ।—मानस, २ । ३०४ । २. जिसकी कुछ भी प्रतिष्ठा
न हो । बेइज्जत ।

खुआरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० ख्वारी] १. बर्बादी । खराबी ।
नाश । २. अनादर । अप्रतिष्ठा । बेइज्जती ।

खुख वि० [सं० खुक्क या तुक्क, प्रा० खुक्क] १. जिसके पास
कुछ न हो । खूँखा । खाली । उ०—नेम अचार करै कोउ
कितनी, कवि कोविद गब खुख ।—पलहू, भा० ३, पृ०
११ । २. (ताश के खेल में) जो जिलाल हो गया हो ।

खुखल—वि० [हिं० खुखल + ल (प्रत्यय)] शून्य । खाली ।
रिक्त । उ०—जब तक रुपया पास है तब तक सब कुछ है और
खुखल हो गए तो घना बोल दी ।—सीर, पृ० २१ ।

खुखंड—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की गई ।

खुखड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० खुखल] वह पेड़ जो घुन गया हो या जिसका
गूदा सड़कर निकल गया हो ।

खुखड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. तकुए पर चढ़ाकर ऊपर लपेटा हुआ
सूत या ऊन जो बुनने के काम आता है । कुकड़ी । २. एक
प्रकार की बड़ी छुरी जो प्रायः नेपाल में बनती है । ३. काग
की तरह व्यावृत्त धास का सूखा डंठल ।

खुखला^१—वि० [हिं०] दे० 'खोखला' ।

खुखी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खुखी' ।

खुगोर—संज्ञा पुं० [प्रा० खुगोर] १. वह ऊनी कपड़ा जो घोड़ों के चारजामे के नीचे लगाया जाता है । नमदा । २. चारजामा । जीन ।

मुहा०—खुगोर की भरती बहुत ही अनावश्यक और व्यर्थ के लोगों या पदार्थों का गण्य ।

खुचर, खुचर—संज्ञा स्त्री० [म० कुत्तर=पराए दोष निकालनेवाला] व्यर्थ के दोष निकालने की क्रिया । झूठमूठ अवगुण दिखलाने का कार्य ।

क्रि० प्र०—करना निकालना ।—सगाना ।

खुचरी, खुचरी—[हि० खुचर] व्यर्थ के दोष निकालनेवाला ।

खुचुर—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खुचर' । उ०—मुझ क्या गी थी जो खुचुर करती ।—श्यामा०, पृ० ६४ ।

खुचुरी—वि० [हि०] दे० 'खुचरी' ।

खुजलाना—क्रि० प्र० [म० खज्ज, खजन] [संज्ञा, खुजलाहट, खुजली] मटमल, मच्छड़ आदि के काटने के कारण या गों ही किसी अंग में गुरगुराहट मान्य होने पर नागून आदि से उसे रगड़ना । राजकी मिटाने के लिये अंगुली आदि को अंग पर फेरना । गठलाना । जैसे,—(क) वह सिर खुजला रहा है । (ख) तिरन सींगों में एक दूसरे को खुजला रहे हैं ।

संयो० क्रि०—जालना । देना ।—लेना ।

खुजलाना—क्रि० प्र० किसी अंग में गुरगुरी या खुजली मान्य होना । अंग,—हमारे हाथ खुजला रहे हैं ।

मुहा०—किसी काम के लिये कोई अंग खुजलाना—किसी काम के करने में होने के लिय किसी अंग का चर्चन होना या फलना । किसी काम के लिए या हुए बिना न रहा जाना । जैसे,—(क) कुछ भाग के लिये हमारे हाथ खुजलाते हैं । (ख) गाँव वालों के लिये तुम्हारी पीठ खुजलाती है । (ग) बीग बिना तुम्हारा गँह खुजलाता है ।

खुजलाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० खुजलाना] अंग में खटमल, मच्छड़ आदि के काटने या किसी कृमि के घीरे घीरे रगने का या अनुभव । गुरगुरी । गुत्तली ।

खुजली—संज्ञा स्त्री० [हि० खुजलाना] १. खुजलाहट । गुरगुरी ।

क्रि० प्र०—उठना ।—होना ।

२. एक लोग जिसमें शरीर बहुत खुजलाता है और उसपर छोटे छोटे दान निकल आते हैं ।

मुहा०—खुजली उठना = (१) दह पाने की इच्छा होना । शामत आना (विशेषतः बालकों के लिये) । (२) प्रसंग कराने की इच्छा होना (राजाह) । खुजली मिटना = (१) दह मिलना । मिटना । (२) प्रसंग होना ।

खुजबाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'खोजबाना' ।

खुजाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'खुजलाना' । उ०—एक नारायण भोगने बायो—ही गुभाग ।—शकुंतला, पृ० ११६ ।

खुजाक—संज्ञा पुं० [म०] देयनाल वृक्ष [को०] ।

खुम्मा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खुम्मा' ।

खुम्मा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खुम्मा' ।

खुम्नानी—क्रि० प्र० [हि० खीम्ना] झुंझलाना । खीम्ना । उ०—कहै गुलाल राम नहि जानत खुम्निहै हमरी बलाई ।—गुलाल०, पृ० २५ ।

खुम्बर—संज्ञा पुं० [सं० कुम्भ+हि० खड्ग] पेड़ की वह जड़ जो धरती के भीतर कम जाती है, ऊपर ही चारों ओर फैलती है ।

खुटक—संज्ञा स्त्री० [अनु०, हि० खटकना] खटका । आशंका । चिंता । उ०—मन में नेक खुटक जनि राखहु । दीन बचन मुख ते तुम भाखहु ।—गूर (शब्द०) । (ख) सोचा फेंकने से मों को खुटक होगी, इससे इनका हाथों ही में रहना अच्छा है ।—ठेठ०, पृ० १८ ।

खुटकना—क्रि० प्र० [सं० खुट् या खुण्ड] किसी वस्तु का शिरोभाग तोड़ना । किसी वस्तु को ऊपर ऊपर से तोड़ या लेना । खोटना ।

खुटका—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खटका' ।

खुटकी—संज्ञा पुं० [हि०] खटका । आशंका । उ०—मैं चढ़ावली की पाती थाके यारें सोप देती तो इतनी खुटकीऊ न रहती ।—भारतेन्दु० प्र०, भा० १, पृ० ४४१ ।

खुटचाल—संज्ञा स्त्री० [हि० खोटो + चाल] १. दुष्टता । पाजीपन । उ०—करे क्यों न खुटचाल, पति सों पट न कटुक तिय । चद्रकला हरमाल, सदा एक परिवार हं ।—गुमान (शब्द०) । २. कुत्सित आचरण । खराब चालचलन । ३. उपद्रव । बखेड़ा । टंटा ।

खुटचाली—संज्ञा स्त्री० [हि० खुटचाल + ई (प्रत्य०)] १. दुष्ट । पाजी । २. उपद्रवी । दुराचारी । बदचलन ।

खुटना—क्रि० प्र० [सं० खुट्] खुटना । उ०—तो लगी या मन-रादन में, हरि आवे कहि बाट । निपट बिकट जी लो जुटे, खुटोह न कपट कपाट ।—बिहागी (शब्द०) ।

खुटना—क्रि० प्र० [सं० खुट्, प्रा० खुट्, हि० खुटना] अलग होना । पृथक् होना । सबंध छोड़ देना ।

खुटना—क्रि० प्र० [सं० खट् या खोट] समाप्त होना । खतम होना ।

खुटपन, खुटपना—संज्ञा पुं० [हि० खोटो + पन, पना (प्रत्य०)] खालापन । दोष । ऐव ।

खुटवा—संज्ञा स्त्री० [हि० खोटो] खोटा । बुरा । उ०—दरिया जो कहे दरे दालि भई, दर देखि परा खुटवा किहा जाना ।—सं० दरिया, पृ० ६१ ।

खुटाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खोटो] खोटापन । दोष । उ०—अरी मधुर अधरान तें, कटुक बचन मत बोल । तनक खुटाई तें घटे, लखि सुबन को मोल ।—रसनिधि (शब्द०) ।

खुटानी—क्रि० प्र० [सं० खुण्ड = खोश होना, या खोट] समाप्त होना । खतम होना । खुटना । उ०—जैहि सुभाय चितवहि हित जानी । सो जानै जनु आयु खुटानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

खुटिला—संज्ञा पुं० [देश०] करनफूल नामक कान का गहना । उ०—खुटिला सुभग जराह के, मुकुतामनि छवि देत । प्रगत भयो धन मध्य ते, शशि मनु नखत समेत ।—सूर (शब्द०) ।

खुटी ①—संज्ञा स्त्री० [हि०] सिकली। जंजीर। सिकड़ी। उ०—
खुटी सिकली सूता एकावली बुलिवलया मेपला चिका।—
वर्ण०, पृ० ४।

खुटेरा—संज्ञा पुं० [सं० खदिर] खेर का पेड़।

खुटी—संज्ञा स्त्री० [हि० खुद से अनु०] १. रेवड़ी नाम की मिठाई
जो तिल और चीनी या गुड़ से बनती है। २. बालकों की एक
किया जिससे वे परस्पर संबंधविच्छेद करते हैं। कुटी।

खुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि०] घाव से निकला हुआ वह मवाद जो सूखकर
घाव के ऊपर ही जम जाता है। घाव पर जमी हुई पपड़ी।
खुरंड।

खुठमेरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा या निकृष्ट धान।

खुदिया—संज्ञा पुं० [हि० खुदरा] सर्राफ। टके कीड़ी बेचनेवाला।
उ०—ऐ दलाल ऐ खुदिया हूँडो बाल बजाज।—बाँकी०
प्र०, भा० २, पृ० ६३।

खुड़ला—संज्ञा पुं० [देश०] मुगियों का दरवा। चिड़ियाखाना
(लश०)।

खुद आ—संज्ञा पुं० [देश०] वर्षा या जाड़े आदि से बचने के लिये
विशेष प्रकार से सिर पर डाला हुआ कंबल या और कोई
कपड़ा। घोषी।

क्रि० प्र०—बेना।—मारना।—लगाना।

खुड्डी, खुड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० गड्ढा] १. पाखाने में पेर रखने
के पायदान। २. पायखाना फिरने का गड्ढा। ३. छेटी
या कटी हुई घास या दूब। उ०—जिसके नीचे की खुड्डी
घास में बैठकर एक दिन दो भाने की बिलायती मलाई की
बर्फ खाई थी।—इत्यलम्, पृ० १७१।

खुतका—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुतका'।

खुतबा—संज्ञा पुं० [अ० खुतबाह] १. तारीफ। प्रशंसा। २. सामयिक
राजा की प्रशंसा जो इस हेतु से सर्वसाधारण को सुनाई जाय
कि सब लोग उस राजा की सत्ता को मान लें।

मुहा०—किसी के नाम का खुतबा पढ़ा जाना = सर्वसाधारण को
सूचना देने के लिये किसी के सिंहासनासीन होने की घोषणा
होना (मुसल०)।

३. व्याख्यान। भाषण (को०)। ४. किसी किताब की भूमिका (को०)।

खुत्थ—संज्ञा पुं० [हि० खूँटा या सं० कु (-पृथिवी) + उत्थित =
कूत्थित] पेड़ की जड़ के ऊपर का वह भाग जो पेड़ काट लेने
पर रह जाता है।

खुथी ①—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खुथी'।

खुथी ②—संज्ञा स्त्री० [हि० खूँटी] १. अरहर, ज्वार इत्यादि के
पेड़ों का वह भाग जो फसल काट लेने पर पृथ्वी पर गड़ा
रह जाता है। खूथी। खूँटी। २. चाती। धरोहर। अमानत।
३. वह पतली लंबी चाली जिसमें रुपया भरकर कमर
में बाँधते हैं। बसनी। हिमयानी। ४. धन। दौलत। संपत्ति।
उ०—क्षीपदी की देह में खुथी ही कहा दुःशासन खरोई
खिसानों खँचि बसन न छूटयो है।—केनव (शब्द०)।

खुद—प्रव्य० [फ्रा० खुद] स्वयं। आप।

मुहा०—खुद ब खुद = आपसे आप। विना किसी दूसरे के
प्रयास, यत्न या सहायता के। उ०—किसी तरह यह कम-
बस्त हाथ आता तो और राजपूत खुद ब खुद परत हो जाते।
—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५२१।

यौ०—खुदभाराई, खुदइस्तियार = स्वतंत्र। स्वयं अधिकारप्राप्त।
खुदइस्तियारी = स्वतंत्रता। मनचाहा करने का अधिकार।
खुदकाशत। खुदगरज। खुददार। खुददारी - आत्माभिमान।
खुदनुमाई = आत्मगर्व और ऐश्वर्य का प्रदर्शन। खुदपरस्त।
खुदकरामोश = गाफिल। खुद के प्रति विस्मृत। खुद ब खुद।
खुदबी = धमंडी। गर्वीला। खुदमतनब। खुदमतलबी। खुद-
मुस्तार। खुदरंग। खुदसर। खुदसिताई = आत्मप्रशस्ति।

खुदका—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'कुतका'।

खुदकाशत—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खुद + काशत] वह जमीन जिसे उसका
मालिक स्वयं जोते बोए, पर वह सीर न हो।

खुदकुशी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खुद + कुशी] अपने हाथों अपने को मार
डालना। आत्महत्या। उ०—आज खुदकुशी करने पर आमादा
है आकाश।—ठंडा०, पृ० ६३।

खुदगरज—वि० [फ्रा० खुद + गरज] [संज्ञा खुदगरजी] अपना मतलब
साधनेवाला। स्वार्थी।

खुदगरजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खुद + गरजी] स्वार्थपरता।

खुददार—वि० [फ्रा० खुद + दार (प्रत्य०)] १. स्वाभिमानी।
आत्माभिमान। २. आत्मनिग्रही (को०)।

खुदना—क्रि० प्र० [हि० खोदना] खोदा जाना।

खुदपरस्त—वि० [फ्रा० खुद + परस्त] १. अहंकारी। धमंडी। २.
मतलबी। स्वार्थी।

खुदपसंद—वि० [फ्रा० खुद + पसंद] अपनी बात या पसंद पर डटने-
वाला। अपनी रुचि को तर्जोह देनेवाला। हठी। खुदराय।
उ०—मैं तो खुदपसंद नहीं हूँ भाई जान।—सैर०, पृ० १२।

खुदपसंदी—स्त्री० [फ्रा० खुदपसंदी] १. आत्मानुराग। उ०—मगर
ममन की तबीयत में खुदपसंदी बहुत है।—गर्ग०, पृ० १२।
२. हठ। जिद। ३. धमंड। गर्व। गरूर।

खुदमुखतार—वि० [फ्रा० खुद + मुखतार] जिसपर किसी का दबाव
न हो। अनिरुद्ध। स्वतंत्र। स्वच्छंद।

खुदमुखतारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खुद + मुखतारी] स्वतंत्रता।
निरंकुशता। स्वच्छंदता।

खुदरंग—वि० [फ्रा० खुद + रंग] अपने स्वाभाविक रंगवाला। जिस
रंग पर दूसरे रंग की आभा न हो। उ०—नीचे खुदरंग हो
गई घोती का फेंटा घुटने तक कसा हुआ।—अस्माबुत०,
पृ० ५६।

खुदरा—संज्ञा पुं० [सं० खुद] धोक का जलटा। छोटी और साधारण
वस्तु। फुटकर चीज।

यौ०—खुदराफरोश = छोटी छोटी वस्तुएँ बेचनेवाला। फुटकर
चीजें बेचनेवाला।

मुहा०—खुदरा कराना = नोट या रुपया आदि मुनाना।

खुदराई—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खुद + राई] स्वेच्छाचार।—(वव०)।

खुराय—वि० [फ्रा० खुर+राय] स्वेच्छावासी ।- (ख०) ।

खुरहू—वि० [फ्रा० खुर+हू] स्वयं उगा हुआ । बिना जोता, बोया या रोपा हुआ । उ०—फिर बिना बोया जोता (खुरहू) चावल प्रादुर्भाव हुआ ।—भा० २०, पृ० ४६ ।

खुरो, खुरी—वि० [फ्रा० खुर+हू] दे० 'खुरहू' ।

खुरवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खुरवाना] १. खुरवाने का भाव । २. खुरवाने की क्रिया । ३. खुरवाने की मजदूरी ।

खुरवाना—क्रि० म० [हि० खोदना] 'खोदना' का प्रेरणार्थक रूप । खोदने का काम कराना ।

खुरसर—वि० [फ्रा० खुरसर] १. उजड़। अश्वत्थ । २. बागी । ३. हुक्म न माननेवाला ।

खुरसरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खुरसरी] १. उच्छ्वसलता । उद्वेगता । २. हुक्म अङ्गी । ३. बगावत की ।

खुरा—संज्ञा पु० [फ्रा० खुरा] स्वयंभू । ईश्वर । उ०—अरे किताब कुरान की खोज में । अलख चलनाए खुरा खुरा भाई ।—तुरगी०, पृ० १८ ।

यौ०—गुदा न ल्यास्ता (खास्ता) = ईश्वर ऐसा न करे । ईश्वर न करे ऐसा ही । गुदा हाफिज = ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे । यह पद निश्चाय लेने देने का मग्य कहा जाता है ।

मुहा०—खुरा खुरा करके = बहुत कठिनता से । बड़ी मुश्किल से । खुरा की मार = ईश्वरीय प्रकोप—(शाप) । गुदा भूठ न बुलाए = मनी बाल प्रतिशयोक्ति न हो । बात यथार्थ से परे न हो ।

खुराई—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खुराई] १. ईश्वरता । २. गृष्टि ।

खुराई—संज्ञा स्त्री० [हि० खोदना] १. खोदने का भाव । २. खोद का काम । ३. खोदने की मजदूरी ।

खुराबद—संज्ञा पु० [फ्रा० खुराबद] १. ईश्वर । मालिक । अन्नदाता । ३. हुक्म । शास्त्र । जनाब । श्रीमान्—(समानमूचक) ।

खुराव—संज्ञा पु० [हि० खुरवाना] खुरावने का काम ।

खुरी—संज्ञा पु० [फ्रा० खुरी] १. अहंभाव । अहंकार । आगा । उ०—जहाँ से जो खुर हो खुरा देखने हैं । खुरी को मिटाकर खुरा देखने हैं ।—हिमाल०, पृ० ४८ । २. अभिमान । धमंड । शेखी ।

खुरक—संज्ञा पु० [फ्रा० खुरक] चीर फिटकी में से सत्त पिटक का एक निकाल । खुरक निशान ।

खुरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खुरी] १. चावल, दाल आदि के बहुत छोटे छोटे टुकड़े । २. अन्न के रस की तलछट ।

खुरा—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खुरा] दे० 'खुरा' । उ०—घर घर से खुरकी माँग लीजे । खुरा को चार डार दीजे ।—पलटू०, पृ० ५४ ।

खुराल—वि० [फ्रा० खुराल] भूषा । अघाप्रस्त । बुभुक्षित । उ०—बगाल गिपान उनाल बगाकुल वारि बगाल खुराल सयू ।—राम० धर्म०, पृ० ३०४ ।

खुर्या—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खुर्या] दे० 'खुर्या' । उ०—निम वागुरि लागे नहीं नहि, लागे भीतल घाम । खुर्या तृषा लागे नहीं धटि धटि आतम राम ।—दादू०, पृ० ६२० ।

खुरक—वि० [फ्रा० खुरक] शीतल । ठंडा [क्रि०] ।

खुरकी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खुरकी] गरदी । ठंडक ।

खुरखुरा—संज्ञा पु० [अनु०] लड़कों का एक खिलौना जो भुनभुन या खुरखुर शब्द करता है । घुनघुना । भुनभुना । उ०—यह उमर ऐसी ही है जिसमें सिवाय खुरखुरा, लट्ट, गुड़ियों के और कुछ नहीं मुहता ।—श्यामा०, पृ० ५६ ।

खुरस—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खुरस] [फ्रा० खुरसो] क्रोध । गुस्सा । रिस । उ०—(क) खलत खुरस नहि देवी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) इशक मुश्क खुरगी खुरस, पर खुरस मद पान । चतुर छिपावत है सड़ी, आप परत है जान ।—कोई कवि (शब्द०) ।

खुरसना, खुरसाना—क्रि० प्र० [फ्रा० खुरसना] क्रोध करना । गुस्सा होना । उ०—दुख मुख की वार्त सब जानै श्री रघुवीर । खुरसाने नहि रह मके वीने कवि सब धीर ।—हनुमान (शब्द०) ।

खुरसी—वि० [हि० खुरसाना] गुस्सा करनेवाला । क्रोधी ।

खुरिया—वि० [फ्रा० खुरी+हा (प्रत्य०)] जहाँ खुर होता हो । खुरी । उ०—बहुत खुरिया जगह थी । इसी लिये गाथ में सिपाही लोग थे ।—मैला०, पृ० ३४८ ।

खुरी—संज्ञा पु० [फ्रा० खुरी] खुरी । उपद्रवी । उ०—पाँच घोट चंचल घट भीतर मन गरद नड़ खुरी ।—भीखा श०, पृ० २६ ।

खुरिया—वि० [अ० खुरीयह] गुप्त । पोशादा । छिपा हुआ ।

यौ०—खुरियाखाना = वह स्थान जहाँ कुटिया खुरियो को बहकाकर व्यभिचार करने के लिये ले जाती है ।

खुरिया पुलीस—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खुरियाह + अ० पुलीस] गुप्त पुलीस । भेदिया । जासूस ।

खुरना—क्रि० प्र० [हि० खुरना] दे० 'खुरना' । उ०—मगर साड़ी लेना जरूरी था । वह उसकी आँखों में सूँव गई थी ।—संन्यासी, पृ० १३१ ।

खुरबाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० खुरबाजी] चंगल नामक पीधे का फल जो दवा के काम में आता है । वि० दे० 'चंगल' ।

खुरना—क्रि० प्र० [अनु०] खुरना । घुसना । धँसना । उ०—सालति है नटमाल सी, क्यों न निकसति नाहि । मगमथ नेजा नोक सी, खुरी खुरी जिय माहि ।—विहारी २०, दो० ६ ।

खुरगाना—क्रि० प्र० [अ० खुरगाना] उपद्रव के लिये घुसना । उमड़ना । इतराए फिरना । उ०—गैयों गैयों वैयाँ से लुंग्यों लैयाँ पैयाँ चलो, वारी ना अगैयाँ बहूँ जाट खुरगाने हो ।—सूदन (शब्द०) ।

खुरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० खुरना] दे० 'खुरी' ।

खुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० खुरना] लोग के आकार का, कान में पहनने का एक आभूषण जिसे लोग भी कहते हैं । उ०—गालति है नटमाल सी क्यों न निकसति नाहि । मनमथ नेजा नोक सी, खुरी खुरी जिय माहि ।—विहारी २०, दो० ६ ।

खुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० खुरी] दे० 'खुरी' ।

खुम—संज्ञा पुं० [फ्रा० खुम, तुल० सं० कुम्भ] १. घड़ा। मटका। २. मदिरा का मटका। उ०—निशिदिन ये खुम पर खुम ढलते। जी के सब घरमान निकलते।—दीप०, पृ० ५६।

यौ०—खुमकदा = मदिरालय। शराबखाना। खुमकश = पूरी मटकी पी जानेवाला। खुमखाना = शराबखाना।

३. मुगियों का दरवा। ४. मट्टी।

मुहा०—खुम चढ़ाना = घोने के समय कपड़े को मट्टी पर चढ़ाना।

खुमताल—संज्ञा पुं० [फ्रा० खुम + हिं० ताल] मदिरा का पात्र। शराब का बर्तन। उ०—बुला शाह मजलिस में सेफोर कूँ दोनों भाई खुमताल खबतूर कूँ।—दक्खिनी०, पृ० २६०।

खुमरा—संज्ञा पुं० [अ० कुम्हार = अली (इमाम) का एकगुलाम] [भाव० खुमरो] १. प्रक प्रकार के भीख माँगनेवाले मुसलमान फकीर जो प्रायः पश्चिम में होते हैं। २. एक मुसलमान जाति।

खुमरिहा—वि० [अ० खुमार] जो खुमार में हो। जिसपर नशे की खुमारी हो। जिसकी खुमारी दूर न हुई हो। उ०—जहँ मद तहाँ कहीं संभारा। के सो खुमरिहा के मँतवारा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३३७।

खुमान—संज्ञा पुं० [सं० आयुमान्] बड़ी आयुवाला। दीर्घजीवी।—(आशीर्वाद)।

खुमानी—संज्ञा पुं० [फ्रा० खुमानी] दे० 'खुमानी'। उ०—प्रखरोट, खुमानी आदि भी प्रायः सभी पहाड़ों में मुगमता से उपजते हैं।—भारत० नि०, पृ० १६०।

खुमार—संज्ञा पुं० [अ० खुमार] दे० 'खुमारी'।

खुमारी—संज्ञा स्त्री० [अ० खुमार] १. मद। नशा। उ०—जब जान्यो ब्रजदेव सुगरी। उतर गई तब गर्ब खुमारी।—सूर (शब्द०)। २. वह दशा जो नशा उतरने के समय होती है और जिसमें कुछ हल्की घकावटें मान्य होती हैं। उ०—ध्रुव प्रह्लाद विभीषण माते, माती शिव की नारी। सगुण ब्रह्म माते बृंदावन, अजहूँ न छूटि खुमारी।—कबीर (शब्द०)। ३. वह दशा जो रात भर जागने से होती है। इसमें भी शरीर शिथिल रहता है।

क्रि० प्र०—उतरना।—चढ़ना।

खुमी—संज्ञा स्त्री० [अ० कुमा] पत्र-पुष्प-रहित क्षुद्र उद्भिद की एक जाति जिसके अंतर्गत भूफोड़, ढिंगरी, कुकुरमुत्ता, गगनधूल आदि हैं।

विशेष—इस जाति के पौधों में हरे कोशाणु नहीं होते, जिनके द्वारा और पौधे मिट्टी आदि निरवयव द्रव्यों को अपने शरीर के धातु रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। इसी से खुमी जाति के पौधे सफेद या मटमैले होते हैं और अपना आहार दूसरे पौधों या जंतुओं के जीवित या मृत शरीर से प्राप्त करते हैं। बरसात में भीगी, सड़ी लकड़ियों पर एक प्रकार की गोल और छोटी खुमी निकलती है, जिसे 'कठफूल' कहते हैं। यह प्रायः विषैली होती है। खुमी के शरीरकोश की बनावट और पौधों की सी नहीं होती। इसके कोशाणु सूत की तरह लंबे लंबे होते हैं;

पर किसी किसी खुमी के कोशाणु गोल भी होते हैं। खुमी के दो मुख्य भेद हैं—एक वह जो दूसरे जीवित पौधों के रस से पलती है; और दूसरी वह जो सड़े गले या मृत शरीर से आहारसंग्रह करती है। पहले प्रकार की खुमी गेहई आदि के रूप में अनाज के पौधों में देखी जाती है। दूसरे प्रकार की खुमी भूफोड़, कठफूल, कुकुरमुत्ता आदि हैं। खुमी के अधिकांश पौधे अंगुल डेढ़ अंगुल से लेकर आठ आठ, दस दस अंगुल तक के दिखाई पड़ते हैं। ये छूने में कोमल और छाते के आकार के होते हैं। छतरी की बनावट पतदार होती है। खुमी के कई भेद गूदेदार और खाने लायक होते हैं। जैसे,—भूफोड़, ढिंगरी (पजाब) आदि। कई दुर्गन्धयुक्त और विषैले होते हैं। जैसे,—कुकुरमुत्ता, कठफूल आदि। बंधक में खुमी विषैली और घमंशास्त्र में अभक्ष्य मानी गई है। खाने योग्य खुमी (भूफोड़) खूब गूदेदार और सफेद होती है। उसके डंठल में गोल गोल छल्ले से पड़े रहते हैं, और उसमें किसी प्रकार की गंध नहीं होती। खुमी बरसात में बहुत उपजती है।

पर्या०—छत्राक। कवक। शिलीध्र। उच्छिलीध्र। कुकुरमुत्ता। गगनधूल। रामछाता।

खुमी—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुमना] १. वह सोने की कील जिसे लोग दाँतों में जड़वाते हैं। २. धातु का बना हुआ वह पोला छल्ला जो हाथी के दाँत पर चढ़ाया जाता है। उ०—गति गयंद कुछ कुंभ किकणी मनहु घंट भहनाये। मोतिन हार जलाजल मालो खुमी दंत भलकावे।—सूर (शब्द०)।

खुम्हारि—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुमार] दे० 'खुमारी'।

खुरंट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'खुरंड'।

खुरंड—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षुर (= क्षरोचना) + अण्ड अथवा देश०] घाव के ऊपर सूखकर जमा हुआ मवाद। सूखे घाव के ऊपर की पपड़ी।

खुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सींगवाले चौपायों के पैर की बड़ी टाप जो बीच से फटी होती है। गाय, भैंस आदि सींगवाले चौपायों के पैर का निचला छोर, जो खड़े होने पर पृथ्वी पर पड़ता है। खुम। टाप।

यौ०—खुरणस = चिपटी टेढ़ी नाकवाला। खुरन्यास = (१) खुर का रखना। (२) खुर रखने से बना निशान। खुरत्राण = नाल। खुरपदबी = घोड़े के पैर का निशान। खुरप्र = खुरप्र वाण। खुरबंदी = घोड़े बैल आदि के खुरों में नाल जड़ना।

२. चारपाई या चौकी के पाए का निचला छोर जो पृथ्वी से लगा रहता है। ३. नख नामक गंध द्रव्य। ४. छुरा। उस्तारा (स्त्री०)।

खुरक—संज्ञा स्त्री० [हिं० खुटक] सोच। खटका। भ्रंश। उ०—सुभा न रहे खुरक जो अबहुँ काल सो भाव। शत्रु ग्रहे जेहि करिया कोह सो बूढ़ी नाव।—जायसी (शब्द०)।

खुरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिल का पेड़। २. एक प्रकार का नृत्य।

खुरक राँगा—संज्ञा पुं० [सं० खुरक + हिं० राँगा] हिरनखुरी राँगा जो नम, सफेद और जल्दी गल जानेवाला होता है। इस राँगे का बंग उत्तम होता है।

खुरका—संज्ञा स्त्री [दिश०] एक प्रकार की घाम जो अफीम के पीने को हानि पहुँचाती है।

खुरखुद—संज्ञा पुं [सं० खुर + हि० खूदना] दृष्टता। बदमाशी। पाजीपन। उ०—कहत रहे खुरखुद बड़ा सेतान है।—पलटू०, पृ० १००।

खुरखुर—संज्ञा स्त्री [घन०] वह शब्द जो गले में कफ आदि रहने के कारण साँस लेने समय होता है। घग्घर शब्द।

खुरखुरा—वि० [हि० अगुं खुरोचना] जो चिकना न हो। जिसको घूने से हाथ में कण या रवे रहें। जिमकी गतह बराबर न हो। अगमन। नाहमवार। खुरदरा।

खुरखुराना—वि० प्र० [हि० खुरखुर से घन०] १. खुरखुर शब्द करना। २. गले में कफ के कारण घग्घरगहट होना।

खुरखुराना—वि० प्र० [हि० खुरखुरा] खुरखुरा मान्य होना। कण या रवे आदि गटना।

खुरखुराहट—संज्ञा स्त्री [हि० खुरखुरा + हट (प्रत्य०)] साँस लेते समय गले में शब्द में वह विकार, जो कफ आदि के कारण होता है।

खुरखुराहट—संज्ञा स्त्री [हि० खुरखुरा] खुरदरापन।

खुरचन—संज्ञा स्त्री [हि० खुरचना] १. जो वस्तु खुरचकर निकाली जाय। २. दूध पकाने के बरतन में से खुरचकर निकाला हुआ दूध का घंघा जो जमा हुआ होता है। ३. कड़ाह से खुरचकर निकाला हुआ गुठ।

खुरचना—वि० प्र० [सं० क्षरण या ध्वन्यात्मक घन०] किसी जमी हुई वस्तु को उगलने आधार पर से कुरेदकर अलग कर लेना। करोचना। करोना।

खुरचनी—संज्ञा स्त्री [हि० खुरचना] १. ज़ेनी की तरह का एक औजार जिससे नमरे बरतन छीलकर साफ करते हैं। २. चमारों का एक औजार। ३. खुरचने का कोई औजार।

खुरचाल—संज्ञा स्त्री [हि० खोटी + चाल] दृष्टता। पाजीपन। बदमाशी। शरायत।

क्रि० प्र०—करना।—निकालना।

खुरचाली—वि० [हि० खुरचाल] भ्रुत्प्राप्त करनेवाला। पाजी। दुष्ट।

खुरजी—संज्ञा स्त्री [फा०] वह भोला जिममें जहरी सामान रखकर घोटमवाग अपने घोड़े पर रखता है। बड़ा धोला।

खुरट—संज्ञा पुं [हि० खुर + ट (विकारार्थक प्रत्य०)] चौपायों के खुर की एक बीमारी। खुरहा। खुरा। खुरपका।

विशेष—'खुरपका'।

खुरतारा—संज्ञा स्त्री [हि० खुर + तारा या ताल] टाप या खुर की चोट। गुम का आधान। उ०—(क) घुरवा खुर उठत रप पायक घोरन की खुरतारा—मूर (शब्द०)। (ख) दलत मलत खुरतारनि पहार हय घुंघुरी मो भयो भानु नभ में नखत सो।—गुमान (शब्द०)।

खुरथर—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'खुरहर'। उ०—कहं महिष लोटह विग भरा। कहं रोऊ डारह खुरथरा।—चित्रा०, पृ० २५।

खुरपी—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'कुलपी'।

खुरदनी—वि० [फा० खुरदनी] खाने योग्य। खाने की वस्तु। उ०—वे मिहर गुमराह गाफिल, गोष्ठ खुरदनी।—दादू०, पृ० २५३।

खुरदरा—वि० [हि०] दे० 'खुरखुरा'।

खुरदोया—संज्ञा पुं [हि० खुर + दाया] कटी हुई फसल को, अन्न के दाने अलग करने के लिये, बैलों से कुचलवाना।

खुरदादी—संज्ञा पुं [फा० खुर + दाद] भालू का जुलाव।—(कसंदरों की भाषा)।

खुरपका—संज्ञा पुं [हि० खुर + पकना] पशुओं का एक रोग।

विशेष—इसमें उनके मुँह और खुरों में दाने निकल आते हैं, और मुँह से बहुत लार बहती है, सारा बदन गरम हो जाता है, बहुत गरम साँस चलती है और पशु लँगड़ा कर चलने लगता है। यह रोग संसर्ग से बहुत जल्दी फैलता है।

खुरपा—संज्ञा पुं [सं० खुरपा] स्त्री० अल्पा० खुरपी] १. लोहे का बना हुआ एक छोटा सा औजार जिसमें एक सिरे पर पकड़ने के लिये लकड़ी की मुठिया लगी रहती है। इससे घाम छीली और भूमि गोड़ी जाती है। २. चमारों का एक औजार जिससे वे चमड़े की सतह छीलकर साफ करते हैं।

खुरपात—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'खुराकात'। उ०—मेरे ही किसी पाप से यह सब खुरपात उठ खड़ा हुआ।—नरद०, पृ० ६३।

खुरपी—संज्ञा स्त्री [हि० खुरपा] खुरपा का छोटा रूप। छोटे आकार का खुरपा। उ०—खुरपी लेकर आप निरातीं जब वे अपनी बेटी है।—पंचवटी, पृ० १०।

खुरफ—संज्ञा पुं [फा० खुरफह] लोनिया की तरह का एक माग जिसे कुलफा भी कहते हैं।

खुरफा—संज्ञा पुं [फा० खुरफह] कुलफे का माग।

खुरमा—संज्ञा पुं [प्र० खुरमा] १. छोटाग। उ०—मेरे घर कूँ भहमान जो आयगा। के यो शीर खुर्मां विने खायगा।—दक्खिनी०, पृ० ३३१। २. एक प्रकार का पकवान।

विशेष—यह सीठा और नमकीन दोनों प्रकार का होता है। इसमें पहले मोटे आटे को मोयन देकर दूध में सान लेते हैं और सानते समय यथावधि सीठा या नमक मिला लेते हैं। फिर मोटी रोटी सी बेलकर उसके छोटे, बड़े, लंबे, तिकीने या चौकोर खंड बनाकर घी में छान लेते हैं। कोई कोई इसे सादे ही बनाकर चीनी में पाय लेते हैं।

खुरली—संज्ञा स्त्री [सं०] सैनिक व्यायाम। सैनिक अभ्यास। शरत्-अभ्यास [को०]।

खुरशाल—संज्ञा पुं [सं०] मालिहोत्र (परिणिष्ट) में कथित खुरशाल देश का घोड़ा [को०]।

खुरशोद—संज्ञा पुं [फा० खुरशोद] सूर्य। दिनकर। रवि। उ०—तुज हुस्न के खुरशोद का तिरग्लोक में ताबिश पड़े।—दक्खिनी०, पृ० ३२१।

खुरशोद—संज्ञा पुं [फा०] दे० 'खुरशोद'।

खुरसाँण—संज्ञा पुं [फा० खुरसाँण] [वि० खुरसाँणी] खुरसाँण के घोड़े। उ०—गया गलती राति, परजनती पाया नही। से सज्जन परभाति, सड़हड़िया खुरसाँण ज्यूँ।—डोला०, दृ० ६६।

खुरसीटा—संज्ञा पुं० [सं० खुर + सीविठ = पीड़ित अथवा सं० खुर + देश० सीटा] पशुओं के खुरों का एक रोग जिसे खुरपका कहते हैं ।

विशेष—दे० 'खुरपका' ।

खुरहरा—संज्ञा स्त्री० [हि० खुर + हर (प्रत्य०)] १. खुर का चिह्न । जंगल आदि में पगडंडी की भाँति खुर से बना हुआ पतला रास्ता, जिसपर पशु चलते हैं ।

क्रि० प्र० - पड़ना ।—लगना ।

३. तंग रास्ता । पगडंडी ।

खुरहा—संज्ञा पुं० [हि० खुर + हा (प्रत्य०)] पशुओं का 'खुरपका' नाम का रोग ।

खुरहुरा—संज्ञा पुं० [हि० खुर + हुर] दे० 'खुर' ।

खुरा—संज्ञा पुं० [हि० खुरहा] पशुओं के खुरों का 'खुरपका' नाम का रोग । खुरहा । वि० दे० 'खुरपका' ।

खुरा—संज्ञा पुं० [सं० खुर] लोहे का एक काँटा जो हल में फाल या कुसी की दृढ़ता के लिये लगाया जाता है ।

खुराई—संज्ञा स्त्री० [हि० खुर] वह रस्सी जिससे पशुओं के दोनों पैर परस्पर बाँध दिए जाते हैं ।

खुराक—संज्ञा पुं० [सं०] [ग्री० खुराका] पशु [को०] ।

खुराक—संज्ञा पुं० [फा० खुराक] भोजन । खाना ।

खुराकी—संज्ञा स्त्री० [फा० खुराक] वह नगद दाम जो खुराक के लिये दिया जाय ।

खुराकी—वि० अधिक खानेवाला ।

खुराघात—संज्ञा पुं० [सं० खुर + आघात] खुर का प्रहार । मुम या टाय की मार ।

खुराफात—संज्ञा स्त्री० [अ० खुराफात का बहु व०] १. बेहूदा और रद्दी-बात । २. गाली गलौज ।

क्रि० प्र०—बकना ।

३. भगड़ा । बखेड़ा । उपद्रव ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचना ।—मचाना ।—होना ।

खुराफाती—वि० [अ० खुराफात] १. बेहूदा और रद्दी बात करने-वाला । २. गाली गलौज करनेवाला । ३. भगड़ा, बखेड़ा या उपद्रव करनेवाला ।

खुरायली—संज्ञा पुं० [हि० खुर + आयल] वह खेत जो बोन के लिये तैयार हो ।

खुरालक—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का बाण [को०] ।

खुरालिक—संज्ञा पुं० [सं०] अस्तुरे का घर । नाई का सामान रखने की किसबत । २. लोहे का वाण । ३. तकिया [को०] ।

खुरासान—संज्ञा पुं० [फा० खुरासान] [वि० खुरासानी] फारस देश का एक बड़ा सूबा ।

विशेष—यह अफगानिस्तान के पश्चिम में बिलकुल सटा हुआ है । यहाँ की अजवाइन बहुत प्रसिद्ध और अच्छी होती है ।

खुरासानी घोड़ा और यहाँ की तलवार भी प्रसिद्ध थे ।

खुरासानी—वि० [फा०] खुरासान संबंधी । खुरासान का । जैसे, खुरासानी अजवाइन ।

खुराही—संज्ञा स्त्री० [हि० खुर + फा० राह] कहारों की भाषा में रास्ते का ऊँचानीबापन सूचित करनेवाला एक शब्द ।

खुरिया—संज्ञा स्त्री० [फा० (घाब) खोरा] १. कटोरी । छोटी प्याली । २. घुटने के जोड़ पर की गोल हड्डी ।

खुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० खुर] टाय का चिह्न । मुम का निशान ।

सुहा—खुरी करना = (१) घोड़े बैल आदि मुमवाले पशुओं का पैर से जमीन खोदना । उ०—बहु चंचल बाजि करंत खुरी । —ह० रासो, पृ० ७८ । (२) बहुत जल्दी करना ।

खुरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] इतना तेज बहनेवाला पानी जिसके विरुद्ध नाव न चल या चढ़ सके —(मल्लाहों की भाषा) ।

खुरी—संज्ञा पुं० [सं० खुरिन्] खुरवाला पशु ।

खुरुक—संज्ञा पुं० [हि० खुरक] खुरक । खटका । आशंका । उ०—मोट बसे सोइ टोइ धरे । ऊबर दूबर खुरुकन चरे ।—जायसी (शब्द०) ।

खुरुचन, खुरुचनी—संज्ञा स्त्री० [हि० खुरचना] १. किसी चीज का वह जमा हुआ भाग जो खुरचने से अलग हो सके । २. खुरचने का औजार ।

खुरुहरा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खुरहरा' ।

खुरू—संज्ञा पुं० [हि० खुर] १. खुर या टायवाले पशुओं की खुर से भूमि खोदने की क्रिया जिसमें वे प्रायः डकारते या रँमाते भी हैं । चीपाएँ ऐसा क्रोध या प्रसन्नता के समय करते हैं । २. उपद्रव । नटखटी । बखेड़ा । टंटा । ३. सत्यानाश । ध्वंस ।

खुरू—संज्ञा पुं० [देश०] नारियल की गरौ ।—(बुंदेलखंड) ।

खुर्द—वि० [फा० खुर्द] १. छोटा । लघु । 'कल' का उलटा । २. कण । जरी ।

खुर्दनी—वि० [फा० खुर्दनी] खाद्य । भोजन के योग्य ।

खुर्दनी—संज्ञा स्त्री० खाद्य पदार्थ । भोजन की वस्तु ।

खुर्दखोन—संज्ञा स्त्री० [फा० खुर्दखोन] एक विशेष प्रकार के शीशे का बना हुआ वह यंत्र जिससे छोटी वस्तु बहुत बड़ी देख पड़ती है । सूक्ष्मदर्शक यंत्र ।

खुर्दबुर्द—स्त्री० वि० [फा० खुर्दबुर्द] १. नष्ट अष्ट । २. समाप्त । ३. गायब । उ०—बस, अब माल खुर्दबुर्द करने की कोई तदवीर करनी चाहिए ।—थी निवास प्र०, पृ० १२० ।

खुर्दसाल—वि० [फा० खुर्दसाल] अल्पवयस्क । कमसिन । उ०—जो पढ़ते दस जब थे खुर्दसाल । मस्जिद के दरमियान तल्ली कतें ले ।—दक्खिनी०, पृ० ११५ ।

खुर्दसाली—संज्ञा स्त्री० [फा० खुर्दसाली] बाल्यावस्था शिशुता । अल्पवयस्कता [को०] ।

खुर्दा—संज्ञा पुं० [फा० खुर्दह] १. छोटी मोटी चीज । २. टुकड़ा । कण [को०] । २. रेजगारी । खेरीज [को०] । ३. अल्प मात्रा [को०] ।

खुर्दाफरोश—संज्ञा पुं० [फा० खुर्दह फरोश] छोटी मोटी फुटकर चीजे बेचनेवाला । फुटकरिया ।

खुर्दा—संज्ञा स्त्री० [फा० खुर्दा] लघुता । छोटाई [को०] ।

खुर्रम—वि० [फा० खुर्रम] प्रसन्न । आनंदित । हर्षित । उ०—
दिल सँ खुर्रम, मुक सो खंदी भादमी ।—दक्खिनी०, पृ०
१८१ ।

खुर्रमी—संज्ञा श्री० [फा०] प्रसन्नता । आनंद । हर्ष ।

खुर्राट—वि० [देश०] १. बूढ़ा । वृद्ध । २. अनुभवहीन । नजरबंदकार ।
३. चालाक । कादही । उ०—अनेक खुशामदी टट्ट और
चापलुम खुर्राटों का वही जमगट रहता है ।—प्रेमधन०,
भा० २, पृ० ८४ ।

खुर्राटा—संज्ञा पु० [अनु०] दे० 'खुर्राट' ।

खुर्रा—वि० [हि० खुली, खुरी] ज़िमपर विज्ञापन न हो । बिना
विस्तरवाली (खाट) । खरहरी । उ०—दिन के दिन बच्चा
खुर्रा खाट पर पड़ा माता को नैराश्य दृष्टि से देखा करता ।
—मान०, भा० ५, पृ० १०१ ।

खुर्राद—वि० [फा० खुर्राद] प्रसन्न । हर्षित । आनंदी । उ०—घर
बार होये पैसे मे मत दिन को तुम खुर्राद करो ।—रामधर्म०,
पृ० ६३ ।

खुलती—संज्ञा श्री० [हि०] दे० 'कुलती' ।

खुलना—क्रि० प्र० [गं० खुल, खुल=भेदन] १. किसी वस्तु के मिते
या जुड़े हुए भागों का एक दूसरे से इस प्रकार अलग होना
कि उसके अंदर या उस पार तक आना, जाना, टटोलना,
देखना आदि हो सके । छिपाने या रोकनेवाली वस्तु का
हटना । अवरोध या आवरण का दूर होना जैसे,—किवाट
खुलना, संदूक का ढक्कन खुलना ।

विशेष—आवरण और आवृत तथा अवरोधक और अवच्छाद
दोनों के लिये इस क्रिया का प्रयोग होता है । जैसे,—मकान
खुलना, मट्ठा खुलना, ढक्कन खुलना, मोरी खुलना ।

संयो० क्रि० जाना । पड़ना ।

मुहा०—खुलकर बिना आग्रह के । खूब अच्छी तरह । जैसे,—
खुलकर भय जमाना, खुलकर दस्त होना । खुलकर बैठना ।
खुला स्थान बनावा स्थान । ऐसा स्थान जो धिरा न हो ।

२. ऐसी वस्तु का हट जाना या तितरबितर हो जाना जो छिपा
या धरे हो । जैसे,—बादल खुलना । ३. दराज होना । शिगाफ
होना । छेद होना । फटना । जैसे,—एक ही लाठी में
भिर खुल गया । ४. बाधनेवाली या जोड़नेवाली वस्तु का
हटना । बंधन का छूटना । जैसे,—बेटी खुलना, गाँठ खुलना,
सीवन खुलना, टांग खुलना । ५. किसी बाधी हुई वस्तु का
छूट जाना । जैसे—धोती खुलना । घोड़ा खुल गया ।

मुहा०—खुल जाना (१) गाँठ से जाता रहना । खो जाना ।
जैसे,—आज बटने ही १००) उसके भी खुल गए । (२)
स्पष्ट हो जाना । छिपा न रहना । प्रकट हो जाना । उ०—
बाह ! सीधामन दो चार दिन में खुल जाएगा ।—फिसाना०,
भा० ३, पृ० १४१

६. किसी क्रम का चलना या जारी होना । जैसे,—तनखाह
खुलना । ७. ऐसी वस्तुओं का तैयार होना, जो बहुत दूर तक
सक्कीर के रूप में चली गई हों और ज़िमपर किसी वस्तु का
घाना जाना हो । जैसे,—सड़क खुलना । नहर खुलना । उ०—

यहाँ से रेल की एक नई लाइन खुलनेवाली है । ८. ऐसे नए
कार्य का आरंभ होना जिसका लगाव सर्वसाधारण या बहुत
लोगों के साथ रहे । जैसे,—कारखाना खुलना । स्कूल
खुलना । दूकान खुलना । ९. किसी कारखाने, दूकान, दफ्तर
या और किसी कार्यालय का नित्य का कार्य आरंभ होना ।
जैसे,—अब तो दूकान खुल गई होगी; जाओ कपड़ा ले आओ ।
१०. किसी ऐसी सवारी का ग्वाना हो जाना, जिसपर बहुत से
आदमी एक साथ बैठे । जैसे,—नाव खुलना । रेलगाड़ी
खुलना । ११. किसी गूढ़ या गुप्त बात का प्रकट हो जाना ।
जैसे,—(क) अब तो यह बात खुल गई; छिपाने से क्या
लाभ ; (ख) इसका अर्थ कुछ भ्रुणता नहीं ।

मुहा०—खुले आम, खुले खजाने, खुले बाजार = सब के सामने ।
सब की जान में । छिपाकर नहीं । प्रकट में ।

१२. अपने मन की बात साफ साफ कहना । भेद बताना ।
जैसे,—(क) तुम तो कुछ खुलते ही नहीं; हम तुम्हारा हाल
कैसे जानें । (ख) मैं जब उससे खूब मिलकर बात करने लगा,
तब वह खुल पड़ा ।

संयो० क्रि०—पड़ना ।

मुहा०—खुलकर = बेधड़क । साफ साफ । जैसे,—जो कहना हो
खुलकर कहो । खुल खेलना = लज्जा या कलंक का भय
छोड़कर कोई काम सबके सामने करना । उ०—जब मेरे
सामने तुम्हारा यह हाल है तो वहाँ.....तो और भी खुल
खेलोगे ।—मंग०, पृ० २० ।

१३. सोहाबना जान पड़ना । चटकीला लगना । देखने में अच्छा
लगना । सुशोभित होना । खिलना । सजना । जैसे—यह
टोपी सफेद कपड़े पर खूब खिलती है । उ०—तेरे श्याम
बिदुलिया बहुत खुली । गोरे गोरे मुख पर श्याम बिदुलिया
नैनन में प्यारे की घुली ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ३८६ ।

मुहा०—खुलता रंग = हलका सोहाबना रंग । वह रंग जो बहुत
गहरा न हो ।

खुलवाँ—संज्ञा पु० [देश०] गली हुई धातु को साँचे में भरने या
ढालनेवाला ।

खुलवाना—क्रि० म० [हि० खोलना] 'खोलना' क्रिया का प्रेरणा-
र्थक रूप ।

खुला—वि० पु० [हि० खुलना] [श्री० खुली] १. बंधनरहित । जो बंधा
न हो । २. आच्छादन रहित । ३. जिसे कोई रुकावट न हो ।
अवरोधहीन । ४. जो छिपा न हो । स्पष्ट । प्रकट । जाहिर ।

मुहा०—खुले खजाने = सबके सामने । किसी से छिपाकर नहीं ।
खुले दिल = उदारतापूर्वक । खुले बंद = बेधड़क । निःशंक ।
खुले मैदान = सबके सामने । खुले खजाने । खुला मैदान या
स्थान = वह स्थान जहाँ चारों ओर से हवा आ सकती हो
और दृष्टि के लिये कोई अवरोध न हो । खुली हवा = वह हवा
जिसकी गति का अवरोध न होता हो ।

खुलापत्ता—संज्ञा पु० [हि० खुला + पत्ता] दोनों हाथों से एक साथ
या केवल बाएँ हाथ से तबले पर खुली थाप देकर बजाना
आरंभ करना—(संगीत) ।

खुलासा^१—संज्ञा पुं० [प्र० खुलासाह] सारांश। संक्षेप।

खुलासा^२—वि० [हि० खुलना] १. खुला हुआ। २. अवरोधरहित। बिना रुकावट का। जैसे—खुलासा दस्त होना। ३. साफ साफ। स्पष्ट। ४. संक्षिप्त। सारांशरूप। जैसे,—खुलासा हाल।

खुल्क—संज्ञा पुं० [प्र० खुल्क] सुशीलता। सज्जनता। अखलाक। उ०—निवेष्टे अपम मुख ते हर तन के न्याव। बँदे खुल्क मरहम सूँ हर दिल के धाव।—दक्खिनी०, पृ० १४१।

खुल्ल—संज्ञा पुं० [प्र०] १. अच्छा स्वभाव। उत्तम प्रकृति। २. साक्षात्। भागीदारी [को०]।

खुल्द^१—संज्ञा पुं० [प्र० खुल्द] १. स्वर्ण। उ०—ग्राज तो यह तस्तये खुल्द बन गई है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३४। २. अविनयवृत्ति। नित्यता।

खुल्द^२—संज्ञा स्त्री० छद्मदर [को०]।

खुल्दा—संज्ञा पुं० [प्र० खुल्दह] कान का बुँदा। लटकन। झुमका [को०]।

खुल्ल वि० [प्र०] १. क्षुद्र। नीच। २. छोटा। लघु [को०]।

यौ०—खुल्लतात = पिता का छोटा भाई। चाचा।

खुल्लम—संज्ञा पुं० [प्र०] चौड़ा मार्ग। सड़क [को०]।

खुल्लमखुल्ला—क्रि० वि० [हि० खुलना] प्रकाश्य रूप से। खुले ग्रास।

खुवारा^१—संज्ञा पुं० [फा० ख्वार] दे० 'ख्वार'। उ०—बेद भेद सब खुवार पत्थल जल मानी।—गुलाल०, पृ० १२७।

खुवारी^२—संज्ञा स्त्री० [फा० ख्वारी] दे० 'ख्वारी'।

खुश—वि० [फा० खुश] १. प्रसन्न। मगन। मुदित। आनंदित। २. अच्छा।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल योगिक शब्दों के आरंभ में ही आता है।

यौ०—खुश आनंदी = भले पधारे। स्वागत वाक्य। खुश आवाज = अच्छे स्वरवाला। सुरीला। खुशआवाजी = सुरीलापन। सुस्वरता। खुश इंतजाम = प्रबंध में दक्ष। प्रबंध-कुशल। खुश इंतजामी = प्रबंधकीर्ण। प्रबंधदक्षता। खुशखराबी = सुंदर चाल। मोहक गति। खुशखुश = प्रसन्न चित्त से। हँसी खुशी से। खुशगुराक = खाने पीने का शौकीन। खुशमू = अच्छे स्वभाववाला। खुशगवार = (१) रुचिकर। (२) सुखद। आरामदेह। खुशगुजरान = संपन्न। खुशजायका = सुस्वादु। स्वादिष्ट।

खुशकिस्मत—वि० [फा० खुश + किस्मत] भाग्यवान्। अच्छी किस्मतवाला।

खुशकिस्मती—संज्ञा स्त्री० [फा० खुश + किस्मत + ई (प्रत्य०)] सौभाग्य।

खुशकी—संज्ञा स्त्री० [फा० खुशकी] दे० 'खुशकी'।

खुशखत—वि० [फा० खुशखत] १. जिसकी लिखावट सुंदर हो। २. सुंदर अक्षर लिखनेवाला।

खुशखबरी—संज्ञा स्त्री० [फा० खुश + खबरी] प्रसन्न करनेवाला समाचार। अच्छी खबर।

क्रि० प्र०—बेना।—सुनना।—सुनाना।

खुशगुल—वि० [फा० खुशगुल] सुरीले गलेवाला। खुश आवाज। मधुर कंठवाला। उ०—जहाँ कोई खुशगुल मिले तुम वहाँ उसी का बोल सुनो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ११४।

खुशतर—[फा० खुशतर] बहुत अच्छा। श्रेष्ठतर [को०]।

खुशदामन—संज्ञा स्त्री० [फा० खुश + दामन] सास। श्वश्रू [को०]।

खुशदिल—वि० [फा० खुशदिल] १. जो प्रत्येक दशा में आनंदित रहे। सदा प्रसन्न रहनेवाला। २. हँसोड़। मसखरा।

खुशदिली—संज्ञा स्त्री० [फा० खुशदिली] १. आनंद। मस्ती। प्रसन्नता। २. मसखरापन। हँसोड़पन।

खुशानवीस—संज्ञा पुं० [फा० खुशानवीस] सुंदर अक्षर लिखनेवाला व्यक्ति। वह जिसकी लिखावट बढ़िया हो।

खुशानवीसी—संज्ञा स्त्री० [फा० खुशानवीसी] सुंदर अक्षर लिखने की कला।

खुशनसीब—वि० [फा० खुशनसीब] भाग्यवान्।

खुशनसीबी—संज्ञा स्त्री० [फा० खुश + नसीबी] सौभाग्य।

खुशनुमा—वि० [फा० खुशनुमा] जो देखने में भला मालूम हो। सुंदर। मनोहर।

खुशनुमाई—वि० [फा० खुश + नुमाई (प्रत्य०)] सुंदर होने का भाव। देखने में भला लगना [को०]।

खुशनूद—वि० [फा० खुशनूद] प्रसन्न। संतुष्ट। रजामंद। उ०—वो खुशनूद अपना है कर जान शाह।—दक्खिनी०, पृ० १६१।

खुशफाम—वि० [फा० खुशफाम] सुंदर। प्रसन्नवदन। भव्य। उ०—बफादार खुशफाम, शीरीं कलाम। हुनर गैब के पा समज में तमाम।—दक्खिनी०, पृ० ८६।

खुशबयान—वि० [फा० खुशबयान] अच्छा भाषण करनेवाला। सुवक्ता। भाषण में कुशल [को०]।

खुशबयानी—संज्ञा स्त्री० [फा० खुशबयान + ई (प्रत्य०)] सुंदर वार्ता माधुर्य। अच्छा भाषण [को०]।

खुशबू—संज्ञा स्त्री० [फा० खुशबू] सुगंध। सीरभ।

खुशबूदार—वि० [फा० खुशबू + दार (प्रत्य०)] उत्तम गंधवाला। सुगंधयुक्त। सुगंधित।

खुशमिजाज—वि० [फा० खुश + मिजाज] सदा प्रसन्न रहनेवाला। प्रसन्नचित्त। उ०—यद्यपि वे हँसमुख खुशमिजाज, मजाकपसंद थे।—अकबरी०, पृ० १७।

खुशमिजाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० खुशमिजाज + ई (प्रत्य०)] जिंदादिली। प्रसन्नता।

खुशरंग^१—वि० [फा० खुश + रंग] चटकीले रंगवाला। जिसका रंग बढ़िया हो।

खुशरंग^२—संज्ञा पुं० चटकीला रंग।

खुशहाल—वि० [फा० खुश + हाल] जिसकी स्थिति बहुत अच्छी हो। सुखी। संपन्न।

खुशहाली—संज्ञा स्त्री० [फा० खुश + हाली] उत्तम दशा। अच्छी अवस्था। संपन्नता।

खुराब—संज्ञा पुं० [फा०] धान की निरोनी का एक बंग, जिसका चलन कश्मीर देश में है।

खुरामद—संज्ञा स्त्री० [फा० खुरामद] वह झूठी प्रशंसा जो केवल दूसरे को प्रगन्न करने के लिये की जाय। चाटुगा। चापलूसी।

खुरामदी—वि० [फा० खुरामद+ई (प्रत्य०)] १. खुरामद करनेवाला। चापलूस। चाटुकार।

यौ०—खुरामदी टट्टर।

२. सब प्रकार का काम करनेवाला। ऊँच नीच सब प्रकार की दहल या सेवा करनेवाला।—(बुंदेलखंड)।

खुरामदी टट्टर—संज्ञा पुं० [हि० खुरामदी+टट्टर] वह जिसकी जीविका केवल खुरामद से ही चलती हो। भारी खुरामदी।

खुरियाली—संज्ञा स्त्री० [फा० खुरहाली] १. आनंद। खुशी। प्रसन्नता। २. कुशल क्षेम। खैर आफियत।

खुरी—संज्ञा स्त्री० [फा० खुरी] १. आनंद। प्रसन्नता।

क्रि० प्र०—करना।—सगाना।

मुहा०—खुरी खुरी=प्रसन्नता से। आनंद सहित।

२. ठगों की भाषा में, उनका निशान और कुन्हाड़ा जो उनके गंगेह के प्रांगे चलता है।

खुरक—वि० [फा० खुरक, तुल० म० खुरक] १. जो तर न हो। सूखा। शुष्क।

यौ०—खुरकाली।

२. जिसमें समतलता न हो। सूखे स्वभाव का। ३. बिना किसी और प्रकार की आश या सहायता के। केवल। मात्र। जैसे,—नीकर को स्वयं ४) मिलने है।

विशेष—इस शब्द में उमरा प्रयोग केवल वेतन के लिये होता है।

खुरकाली—संज्ञा स्त्री० [फा० खुरकाली] अनावृष्टि। उ०—मेह नाहें जिय। दर बरसे काम न पड़ेगा और खुरकाली हो तो काम नहीं होना जाना है।—फिगाना०, भा० ३, पृ० ६१।

खुरका—संज्ञा पुं० [फा० खुराह] केवल पानी में उबानकर पकाया हुआ भात। भात।

खुरकी—संज्ञा स्त्री० [फा० खुरकी] १. रुखागन। रुखाई। शुष्कता। नीरगता।

क्रि० प्र०—आना। जाना।

२. रक्षा या भय। (जल का विरोधी) जैसे,—खुरकी के गंगा में जान में दम दिन लगेगे। ३. वह सूखा भाटा जो गोले या गोली के पेड़े पर लगाया जाता है। पन्थन। ४. प्रकार। अवयव। खुरकाली।

खुरटिया—वि० [हि० खुरट+दया (प्रत्य०)] खुरट का अल्पा-भंक। तुल० उ०—दर से डबडब करते तारे देख तिमिर का सिधु अथा। यह छोटी सी जान खुरटिया, चीक चीख हो गई तबाल।—प्रतापी०, पृ० ६०।

खुरफुसाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० खुरफुस+आहट (प्रत्य०)] दे० 'खुरफुस'। उ०—बाहर कुत्र खुरफुसाहट और पैरों का शब्द सुनाई पड़ा।—आसी०, पृ० ६२।

खुरफैली—संज्ञा स्त्री० [फा० खुरफैली] आनंद। तफरीह। आराम। उ०—तो इतने में बड़ी खुरफैली से काम चल जायगा।—गोदान, पृ० २६२।

खुरबोई(पु)—संज्ञा स्त्री० [फा० खुरबू] दे० 'खुरबू'। उ०—है खुरबोई पास में जानि परे सोय। भरम लगे भटका फिरे तिरथ बरत मभ कोय।—मं० दरिया, पृ० ३४।

खुरबोही—संज्ञा स्त्री० [फा० खुरबू] दे० 'खुरबू'। उ०—जाहर जस खुरबोह जुत, मुदता कुसम मुमोह। काँटी सूँ भूँडो, कपण बप अपजग बदबोह।—बाकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ४८।

खुररंग—वि० [फा० खुररंग] दे० 'खुररंग'। उ०—कहँ दरिया गुन गुन खुररंग है मस्त मन मगन दिन ऐन आनी।—सं० दरिया, पृ० ७२।

खुरामत(पु)—संज्ञा स्त्री० [फा० खुरामद] दे० 'खुरामद'। उ०—करत खुरामत तिनकी।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५६।

खुरात—वि० [फा० खुरहात] आनंदित। मुदित। खुश।

खुरियाल(पु)—संज्ञा स्त्री० [फा० खुरी+हाल] खुरी। प्रसन्नता। उ०—दाखी मरज दुरग यां, सब खल करा संधार। साहब मन खुरियाल सूँ, जोवै भाल हजार।—रा० रू०, पृ० १११।

खुरिहारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० कोशकार हि० कुसवारी] दे० 'कुसवारी'। उ०—खुरिहारी के किरिम महँ किन्ह दिया है।—पलटू०, पृ० ६६।

खुरुर—संज्ञा पुं० [फा० खुरुर] श्वमुर। परती का पिता। उ०—नवाब साहिब के वालिदे माजिद के खुरुर के साले का दामाद हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६।

खुरिया—संज्ञा पुं० [अ० खुरियाह] अडकोश। फोता।

यौ०—खुरिया बरदार=खुरामदी। चाटुकार। खुरिनाबरदारी=बहुत श्रद्धा। खुरामद।

खुरी(पु)—वि० [फा० खुरी] प्रगन्न। खुश। व०—जब तुम खुरी मुचित होत हो, तब मैं गुरति मिलावो।—जग० वानी, पृ० ११।

खुरफुसुर—संज्ञा स्त्री० [अनु०] बहुत धीमी आवाज से कही हुई बात। चुपके चुपके की बातचीत। कानाफूमी।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—होना।

खुरफुसुर—क्रि० वि० बहुत धीमी आवाज से। अस्फुट स्वर से। सार्ये सार्ये। फुमफुग।

खुरूमत—संज्ञा स्त्री० [अ० खुरूमत] १. शत्रुता। बैर। २. लड़ाई। भगडा [को०]।

खुरूस—संज्ञा पुं० [अ० खुरूस] दे० 'खुरूमियत'।

खुरूसियत—संज्ञा स्त्री० [अ० खुरूसियत] १. विशेषता। खास बात। २. प्रेमभाव। मेन [को०]।

खुरूसी—वि० [अ० खुरूसी] विशेष। खास [को०]।

खुर्याल—वि० [फा० खुरहाल हि० खुरियाल] दे० 'खुर्याल'। उ०—छुटन न पियन छिनक बमि नेह नगर यह चाल। मारपो फिर फिर मारि पूनी फिरत खुर्याल।—बिहारी (शब्द०)।

खुहार—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खुही'।

खुही—संज्ञा स्त्री० [सं० खोलक] इस प्रकार का लपेटकर बनाया हुआ कंबल या कर्पड़ा जिसे सिर पर डाल लेने से शरीर का ऊपरी भाग जीत या वर्षा से बचा रहता है। प्रायः अहीर, गहेरिए आदि इसका व्यवहार करते हैं। खोही। घोची। खुइया।
उ०—सांवरी कामरी की है खुही, बलि, सांवरे पै चली सांवरी हूँ के।—पद्माकर (शब्द०)।

खूखार—वि० [फ्रा० खूखार] १. रक्तपान करनेवाला। खून पीनेवाला। २. भयंकर। डरावना। ३. क्रूर। निर्दय।

खूखारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खूखारी] निर्दयता। अत्याचार।

खूँट^१—संज्ञा पुं० [सं० खण्ड] १. छोर। कोना। उ०—पीतावर को खूँट लै आए प्रवध बिसेलि।—विश्राम (शब्द०)। २. भारी, चौकोर या गोल परस्पर जो मकान की मजबूती के लिये कोनों पर लगाया जाता है। ३. ओर। प्रातः। तरफ। उ०—दुई ध्रुव दुई खूँट बैसारे।—जायसी (शब्द०)। ४. भाग। हिस्सा। जैसे,—खूँटेंत। ५. बहुत छोटी पूरी जो देवी, देवता को चढ़ाने के लिये बनती है। ६. लकड़ी पर का महसूल। ७. कान में पहनने का एक प्रकार का गहना। उ०—कानन्ह कुंडल खूँट भी खूँटी। जानहु परी कचपची टूटी।—जायसी (शब्द०)।

खूँट^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] कान का एक बड़ा गहना जो गोल दीप के आकार का होता है। बिरिया। उ०—तेहि पर खूँट दीप दुई बारे। दुई ध्रुव दुई खूँट बैसारे।—जायसी (शब्द०)।

खूँट^३—संज्ञा पुं० [सं०] आठ सेर की तेल जो घी, तेल आदि के लिये प्रचलित थी।

खूँट^४—संज्ञा स्त्री० [हि० खूँटना] रोक। पूछताछ। जैसे,—वहाँ किसी तरह की खूँट पूछ नहीं होती; तुम डरते क्यों हो।

खूँट^५—संज्ञा पुं० [हि०] कान का मेल।

यौ०—खूँटकड़वा।

खूँटना—क्रि० सं० [सं० खण्डन=तोड़ना] १. कुछ पूछताछ करना। टोकना। २. छेड़छाड़ करना। उ०—गागरि मारि काँकरी सो लागे मेरे गात गी। गेल माँझ ठाढो रहै मोहि खूँटे आवत जात री।—(शब्द०)। ३. कम होना। घटना। चुकना। ४. दे० 'खूँटना'।

खूँटा—संज्ञा पुं० [सं० खोड] [अल्पा० स्त्री० खूँटी] १. बड़ी मेख जिसको भूमि में गाड़कर उसमें किंगी पशु को बांधते हैं। २. कोई लकड़ी जो भूमि पर खड़ी गड़ी हो और जिसमें कोई वस्तु बांधी या अटकई जाय। ३. कोई खड़ी गड़ी हुई लकड़ी।

मुहा०—खूँटा गाड़ना=(१) सीमा निर्धारित करना। हद बांधना। केंद्र निर्धारित करना। (२) बगबर एक ही स्थान पर दिखाई पड़ना। अड्डा या ठिकाना बना लेना। खूँटे के बंरा उछलाना या कूदना=किसी आश्रय या आघार के बल पर कूदना।

खूँटी—संज्ञा स्त्री० [हि० खूँटा] १. छोटी मेख। २. नील, अरहर या ज्वार के पीछे का वह सूखा डंडल जो फसल काट लेने पर खेत में गड़ा रह जाता है। ३. गुल्ली। घंटी। ४. बालों के कड़े अंगुर जो मूँढ़ने के पीछे रह जाते हैं या निकलते हैं।

मुहा०—खूँटी निकालना या लेना=ऐसा मूँढ़ना कि बाल की जड़ तक न रह जाय।

५. नील की दूसरी फसल जो एक बार फसल काट लेने पर उसकी जड़ से पैदा होती है। इसे दोरेजी भी कहते हैं। ६. सीमा। हद। ७. मेख के आकार का लकड़ी आदि का वह छोटा टुकड़ा जो किसी चीज में किसी दूसरी चीज के अटकाने आदि के लिये लगा रहता है। जैसे,—खड़ाऊँ की खूँटी। सितार की खूँटी।

मुहा०—खूँटी कसना=सितार आदि तंत्रवाद्यों के तार को खूँटी ऐंठकर कसना।

खूँटी उखाड़—संज्ञा पुं० [हि० खूँटी+उखाड़ना] घोड़े की एक भोरी जो पैरों में पुट्टे के पास होती है और जिसका मुँह ऊपर की ओर होता है। जिस घोड़े को यह भोरी होती है, वह बड़ा ऐबी समझा जाता है।

खूँटी गाड़—संज्ञा पुं० [हि० खूँटी+गाड़ना] घोड़े की एक भोरी जो पैरों में पुट्टे के ऊपर होती है और जिसका मुँह नीचे की ओर होता है। जिस घोड़े को यह भोरी होती है, वह कुछ ऐबी समझा जाता है।

खूँड़ा—संज्ञा पुं० [सं० खोड=खूँटा] लोहे की वह पतली छड़ जिसमें नरा लगाकर जुलाहे ताना तनते हैं।

खूँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० खूँड़ा] एक पतली लकड़ी जिसके सिरे पर काँच का एक चुल्हा फोड़कर बाँध देते हैं। इसी चुल्हे में रेशम के महीन तागे डालकर जुलाहे ताना तनते हैं।

खूँथी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खुत्थी'।

खूँद—संज्ञा स्त्री० [सं०/खुर्द, हि० खूँटना] थोड़ी जगह में घोड़े का इधर उधर चलते रहना। उ०—करे चाह रों चुटकि कै खरे उड़ोहैं मैंन। लाज नवाये तरफरत करत खूँद सी मैंन।—बिहारी (शब्द०)।

विशेष—जब किसी घोड़े को सवार एक स्थान पर कुछ देर तक खड़ा रखना चाहता है, तब वह घोड़ा सीधा और चुपचाप खड़ा न रहकर थोड़ी सी जगह में ही आगे पीछे हटना और घूमता रहता है। इसी हटने और घूमने को खूँद कहते हैं।

खूँदना—क्रि० प्र० [सं० क्षुण्णन अथवा क्षुरण=पिसा या कुचला हुआ। अथवा खुरदन=तोड़ना] १. पैर उठा उठाकर जल्दी जल्दी भूमि पर पटकना। उछल कूद करना। २. पैरों से रोदना। रोद रोदकर खराब कर देना। उ०—खभरी खोद खूँद छिमला सों। रोद राठ भंज्यो भोरा सों।—लाल (शब्द०)। ३. कुचलना। कूटना।

खू—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खू] स्वभाव। प्रकृति। आदत। टेव (को०)।
खूख—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] एक कीड़ा जो चैती फसल को जाड़े में नाश करता है। इसे खूखी भी कहते हैं। कूखी। कुकुही। गेहई।

खूखू—संज्ञा पुं० [फ्रा० खूक] शूकर। सूअर।

खूच—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] जल डमरूमध्य।—(लश०)।

खूभा—संज्ञा पुं० [सं० गुह्य, प्रा० गुष्क या गं० गुष्क] १. किसी फल आदि के अंदर का वह रेशेदार भाग जो निकम्मा समझकर फेंक दिया जाता है। जैसे—नेनुए का खूभा।

खटना^१—क्रि० प्र० [सं० खरडन] १. प्रवृद्ध होना । एक जाना । बंद हो जाना । उ०—छोड़ दई सरिता सब काम मनोरथ के रथ की गति खटी । - केशव (शब्द०) । २. कम हो जाना । चुक जाना । खतम हो जाना । उ०—कागज गये मेघ ममि गूटी सर दी लागि जरे । सेवक मूर लिखे ते आधो पलक कपाट अरे ।—सूर (शब्द०) ।

खटना^२—क्रि० प्र० [सं० खरड] खड़ना । उ०—असनेहिन हित नगर में सकत न कोऊ खट । चतुर जगाती लान रग नेत सनेहिन भूत ।—रसनिधि (शब्द०) ।

खूब—संज्ञा पु० [सं० खूब] किसी वस्तु को ध्यान लेने या माफ कर लेने पर निकामा बचा हुआ भाग । तलछट । मैल ।

खूबई, खूदर^१—संज्ञा पु० [सं० खूब, हि० खूद] दे० 'गूद' ।

खून—संज्ञा पु० [फा० खून] १. रक्त । रश्मि । लहू ।

क्रि० प्र०—गिरना ।—बहना ।—जमना ।—निकलना ।—निकालना ।—बहना ।—बहाना ।

महा०—खून उबलना या खोलना = क्रोध से शरीर लाल होना । गुस्सा बढ़ना । आँखों में खून उतरना = अत्यंत क्रोध के कारण आँखें लाल हो जाना । खून जमना = अत्यधिक शीत के कारण रक्त प्रवाह का रुक जाना । खून के आँसू रोना = अत्यंत शोकान्त होना । खून का प्यासा = वन का इच्छुक । खून लुप्त होना या सूखना = अत्यंत भयभीत होना । खून सफेद हो जाना = गुणनता या रंगहीनता आदि का नष्ट हो जाना । खून सिर पर चढ़ना या सवार होना = किसी को मार डालने या किसी प्रकार का और कोई अनिष्ट करने पर उद्यत होना । खून बिगड़ना (१) रक्त में किसी प्रकार का विकार होना । (२) मोठी हो जाना । खून का जोश = वंश या कुल का प्रेम । खून बहाना = मार डालना । खून निकलवाना = फसद खुलवाना । खून पीना = (१) मार डालना । (२) बहुत नंग करना । मारना । (३) बहुत दुःख गहनना ।

२. बध । हत्या । कत्ल ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

यौ०—खूनखराबा ।

खूनखराबा^१—संज्ञा पु० [हि० खून+खराबी] मारकाट ।

खूनखराबा^२—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार की वाणिज जो लकड़ी पर की जाती है ।

खूनखराबा^३—संज्ञा पु० [सं०] मजीठ ।

खूनी—वि० [फा०] १. मार डालनेवाला । हत्यारा । धातक । उ०—छुटन न पीयत छिनक वसि नेह नगर यह चाल । मारथो फिर फिर मारिगे खूनी फिरत मुखाल ।—बिहारी (शब्द०) । २. अत्याचारी । जालिम ।

खूब—वि० [फा० खूब] [संज्ञा खूबी] अच्छा । भला । उमदा । उत्तम ।

यौ०—खूबसूरत ।

खूब^२—अव्य० याधुवाद । बाह । क्या खूब । साधु ।

खूब^३—क्रि० प्रि० पूर्ण रीति से । अच्छी तरह से ।

खूबकली^१—संज्ञा स्त्री० [फा० खूबकली] फारस देश के माजिहरा नामक प्रांत में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की घास के बीज, जो पोस्ते के दानों के समान और गुलाबी रंग के होते हैं । खाकसीर ।

विशेष—दे० 'खाकसीर' ।

खूबइखाबई^१—वि० [अनु०] जो बराबर या समथल न हो । ऊँचा नीचा । विपम ।

खूबरू—वि० [फा० खूबरू] [संज्ञा स्त्री० खूबरई] गुंदर ।

खूबसूरत—वि० [फा० खूबसूरत] गुंदर । रूपवान ।

खूबसूरती—संज्ञा स्त्री० [फा० खूबसूरती] सौंदर्य । सुंदरता ।

खूबानी—संज्ञा स्त्री० [फा० खूबानी] एक प्रकार का मेवा । जर-दानू । कुषमालू ।

विशेष—इसका पेड़ काबुल की पहाड़ियों पर होता है । वही से यह मेवा भारत में आता है । इसे ज़रदानू भी कहते हैं । इसके फल सुखा लिए जाते हैं और इसके बीजों से तेल निकाला जाता है, जिसे 'कड़ुए बादाम का तेल' कहते हैं । इसके पेड़ से एक प्रकार का कसीर की भाँति का गोंद निकलता है, जिसे 'जेगी गम' कहते हैं । इसके फल मई से सितंबर तक पक्के हैं । इसका पेड़ मंगोले डील का होता है और हर साल इसके पत्ते झड़ने हैं ।

खूबी—संज्ञा स्त्री० [फा० खूबी] १. भलाई । अच्छाई । अच्छापन । उम्दगी । २. भुएँ । विशेषता । विश्वश्रुता ।

खूरन—संज्ञा स्त्री० [सं० खूर] हाथियों के पैरों के नाखूनों की एक बीमारी जिसमें नाखून फट जाता है । इसमें कुछ पीड़ा भी होती है जिसमें हाथी लंगड़ाने लगता है ।

खूलिजान—संज्ञा पु० [फा० खूलिजान] कुलजन । पाम की जड़ [को०] ।

खूसट^१—संज्ञा पु० [सं० कौशिक] उत्तु । पुष्पू । उ०—होय जँजियार वेठ जस तपै । खूसट मुँह न दिखोवै छपै ।—जायसी (शब्द०) ।

खूसट^२—वि० १. जिसे आमोद प्रमोद न भावे । शुष्कहृदय । अरसिक । मनहूस । २. बुढ़ा । खूबीस । डोकरा ।

खूसर^१—संज्ञा पु० [हि० खूसर] दे० 'खूसट' । उ०—राजमराल को बालक पेलि के पालत लालत गूसर को ।—तुलसी (शब्द०) ।

खूसर^२—वि० दे० 'खूसट' ।

खूष्टीय—वि० [अं० काइस्ट > हि० खोष्ट + सं० ईय (प्रत्य०)] ईसा संबंधी । ईसा का । ईसाई ।

खेई^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] भड़वैरी की सूखी भाड़ी । भाड़ भंखाड़ ।

खेऊ—संज्ञा पु० [देश०] बरमा, स्याम और मनीपुर के जंगलों में होने-वाला एक बड़ा पेड़, जिसकी लकड़ी बहुत अच्छी होती है ।

विशेष—इस पेड़ का रस बनी बनाई वाणिज का काम देता है । जुलाई से अक्टूबर तक इसके पेड़ों से जो रस निकाला जाता है, वह उत्तम समझा जाता है ।

खेकसा—संज्ञा पु० [देश०] परवल के आकार का एक फल जो तरकारी के काम आता है । ककोड़ा ।

विशेष—इसकी बेल प्रायः जंगलों और झाड़ियों में घापसे घाप लगती है। यह बेल कुँदरू की बेल के समान होती है और इसमें पीले फूल लगते हैं। इसका कच्चा फल हरा होता है और पकने पर लाल हो जाता है। इसका स्वाद करेले से मिलता जुलता होता है और इसके ऊपरी भाग में छोटे, कड़े काँटे या रोएँ होते हैं। वैद्यक में इसे चरपरा, गरम, पित्त, वात और विष का नाशक, दीपन और रुचिकारक कहा है; और कुष्ठ, अरुचि, खाँसी और ज्वर को दूर करनेवाला माना है। इसके पत्ते वीर्यवर्धक, त्रिदोषनाशक और रुचिकारक होते हैं तथा कृमि, क्षय, हिचकी और बवासीर को दूर करते हैं।

खेखसा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'खेकसा'।

खेचर^१—वि० पुं० [सं०] [वि० स्त्री० खेचरो] आकाशचारी [को०]।

खेचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो आसमान में चले। आकाशचारी। २. सूर्य चंद्रादि ग्रह। ३. तारागण। ४. वायु। ५. देवता। ६. विमान। ७. पक्षी। ८. बादल। ९. भूत प्रेत। १०. राक्षस। ११. विद्याधर। १२. शिव। १३. पारा। १४. कसीस। दूतिया।

खेचराज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] खिचड़ी।

खेचरो—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा का एक नाम। २. आकाश-चारिणी स्त्री। परी। ३. आसमान में उड़ने की विद्या या शक्ति [को०]।

खेचरो गुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार की योगसिद्ध गोली जिसको मूँह में रखने से आकाश में उड़ने की शक्ति आ जाती है।

खेचरो मुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. योगसाधन की एक मुद्रा।

विशेष—योगी इस मुद्रा में जवान को उलटकर तालू से लगाते हैं और दृष्टि का दोनों ओरों के बीच मस्तक पर लगाते हैं। इस स्थिति में चित्त और जीव दोनों ही आकाश में स्थित रहते हैं, इसी लिये इसे 'खेचरो' मुद्रा कहते हैं। इसके साधन से मनुष्य को किसी प्रकार का रोग नहीं होता।

२. तंत्र के अनुसार एक प्रकार की मुद्रा जिसमें दोनों हाथों को एक दूसरे पर लपेट लेते हैं।

खेचरोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] मूर्ध्नि [को०]।

खेजड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] शमी का वृक्ष।

खेट—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेतिहरों का गाँव। खेड़ा। खेरा। २. घास। ३. बारहों ग्रह। ४. घोड़ा। ५. मृगया। शिकार। आखेट। ६. कफ। ७. ढाल। सिपर। ८. लाठी। छड़ी। ९. चमड़ा। १०. एक प्रकार का अस्त्र। ११. तृण। तिनका। १२. बलराम की गदा [को०]।

विशेष—समास के अंत में आने पर यह शब्द सदोषता, क्षुद्रता, भाग्यहीनता तथा ह्रास आदि अर्थ देता है; जैसे,—'नगर-खेटम्' अर्थात् अभागा नगर, क्षुद्र नगर।

खेटक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेड़ा। गाँव। २. सितारा। तारा। ३. बसदेव जी की गदा। ४. ढाल। ५. लाठी।

खेटक^२—संज्ञा पुं० [सं० आखेटक] शिकार। मृगया।

खेटकी^१—संज्ञा पुं० [सं०] भडूरी। भडेरिया। भडुर। उ०—कोई पूछे खेटकीन कोई पूछे खेटकीन कोई नैष्ठिकिन पूछे कोई पूछे काग तें।—रघुराज (शब्द०)।

खेटकी^२—संज्ञा पुं० [सं० आखेटकी] १. शिकारी। भडेरि। २. बधिक।

खेटितान—संज्ञा पुं० [सं०] गीत वाद्य के द्वारा स्वामी को जगाने-वाला—वैतालिक। चारण बंदोजन [को०]।

खेटिताल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'खेटितान'।

खेटी^१—वि० [सं० खेटिन्] चरित्रहीन। कामी।

खेटी^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैतालिक। चारण। २. नागरिक। नगरवासी [को०]।

खेड—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा गाँव। खेट। खेटक [को०]।

खेड़ा^१—संज्ञा पुं० [सं० खेटक] छोटा गाँव।

यौ०—खेड़ापति।

मुहा०—खेड़े की दूब = अत्यंत बलहीन। दुर्बल या तुच्छ। उ०—नंदनंदन से गए हमारी सब ब्रजकुल की ऊब। सूरश्याम तजि और सूर्य ज्यों खेड़े की दूब।—सूर (शब्द०)।

खेड़ा^२—संज्ञा पुं० [देश०] कई प्रकार का मिला हुआ रङ्ग और सस्ता घनाज, जो प्रायः पालतू चिड़ियों विशेषतः कबूतरों को खिलाया जाता है। करकर।

खेड़ापति—संज्ञा पुं० [हि० खेड़ा + सं० पति] १. गाँव का मुखिया। २. गाँव का पुरोहित।

खेड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार का देशी लोहा।

विशेष—इसके बने हुए हथियार बहुत तंज होते हैं। यह एक प्रकार की लाठ है और नेपाल में बहुतायत से बनता है। इसे कहीं कहीं भरपुटिया लोहा भी कहते हैं।

२. वह मांसखंड जो जरायुज जीवों के बच्चों की नाल के दूसरे छोर में लगा रहता है।

खेड़ा^३—संज्ञा पुं० [फ्रा० खैल या हि० खेड़ा] समूह। जमात। जैसे,—साधुओं का खेड़ा।

खेड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'खेड़ी'।

खेत—संज्ञा पुं० [सं० खेत्र] १. वह भूमिखंड जो जोतने, बोने और घनाज आदि की फसल उत्पन्न करने के योग्य हो। जोतने बोने की जमीन।

क्रि० प्र०—जोतना।—निराना।—बोना।

मुहा०—खेत कमाना = खाद आदि डालकर खेत को उपजाऊ बनाना। खेत करना = (१) समथल करना। उ०—सोखि कै खेत कै बाँधि सेतु करि उतरिबो उदधि न बोहित चहिवो।—तुलसी (शब्द०)। (२) उदय के समय चंद्रमा का पहले पहल प्रकाश फैलाना। खेत काटना = खेत में उपजी हुई फसल काटना। खेत रखना = खेत की रखवाली करना। उ०—राखति खेत खरी खरी खरे उरोजन बाल।—बिहारी (शब्द०)।

२. खेत में खड़ी हुई फसल।

क्रि० प्र०—काटना।—काषा।

३. किसी चीज के विधेयन. पशुओं आदि के उत्पन्न होने का स्थान या देश। जैसे,—यह धाड़ा अच्छे खेत का है। ४. समरभूमि। रणक्षेत्र। उ०—हनों न खेत खेलाइ खेलाई। तोहि प्रबहि का कंगे बड़ाई।—मानस, ६। ३४।

मुहा०—खेत आना = युद्ध में मारा जाना। उ०—खड़ी न खेत आयो, कोपित करिंद घायो, भरन बचायो गुहगयो रघुबीर को।—रघुराज (शब्द०)। खेत करना = युद्ध करना। लड़ना। खेत छोड़ना = रणभूमि में परागत होना। रणभूमि छोड़कर भागना। खेत पड़ना = दे० 'खेत आना'। खेत मारना = दे० 'खेत रचना'। खेत रखना = समर में विजय प्राप्त करना। खेत रहना = दे० 'खेत आना'।

५. तलवार का फल।

खेतिहर—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्रधर या हि० खेती + हर] खेती करने वाला—कृषक। किसान।

खेती—संज्ञा स्त्री० [हि० खेत + ई (प्रत्यय०)] १. खेत में भनाज बोने का कार्य। कृषि। किसानी। कृषाकारी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—खेती बारी।

२. खेत में बोई हुई फसल। जैम, —खेती सूख रही है।

मुहा०—खेती मारी जाना = फसल नष्ट होना।

खेतोबारी—संज्ञा स्त्री० [हि० खेती + बारी = बाग बगीचा] किसानी। कृषि।

खेद—संज्ञा पुं० [सं०] [हि० खेदित, खिन्न] १. अप्रसन्नता। दुःख। रज। २. चित्त की शिथिलता। थकावट। रत्नानि। जैसे,—सुरतिभेद।

खेदना—क्रि० ग० [सं० खेद + लट्] मारकर हटाना। भगाना। खेदना।

खेदना—क्रि० ग० [सं० खेदन] शिकार के पीछे दौड़ना। शिकार का पीछा करना।

खेदा—संज्ञा पुं० [हि० खेदना] १. किसी बनेले पशु को मारने या पकड़ने के लिये उसे पीकर एक उपयुक्त स्थान पर लाने का काम। २. शिकार। अहेर। आसट।

खेदाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खेदना] १. खेदन का भाव। २. खेदन का काम। ३. खेदने की मजदूरी।

खेदित—वि० [सं०] १. दुःखित। बिन्न। रजोदा। २. परिश्रम से थका हुआ। शिथिल।

खेना—क्रि० स० [सं० खेपण, प्रा० खेवान] १. नाव के डोंड़ों को चलाना जिनमें नाव चले। नाव चाना। २. कालक्षेप करना। बिताना। काटना। गुजारना। जैसे,—हमने भी अपने बुरे दिन खे डाले।

खेप—संज्ञा स्त्री० [सं० खेप] १. उतनी वस्तु जितनी एक बार में ले जाई जाय। एक बार का बोझ। लदा माल। लदान। उ०—घायो धोप बटो व्योपारी। नादि खेप गुन जान जोग की बज में धनि उतारी।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—खेप भर एक बार का बोझ। एक बार की लदाई लायक। खेप लवाना = एक बार बोने योग्य माल को बैलगाड़ी

आदि पर रखना। खेप लावना = गाड़ी पर सामान लादना या रखना। उ०—यह खेप जो तूने लादी है सब हिस्सो में बट जाएगी।—कविता की०, भा० ४, पृ० ३०६। खेप हारना = माल में घाटा उठाना।

२. गाड़ी, नाव आदि की एक बार की यात्रा। जैसे,—दूसरी खेप में इसे भी लेते जाना।

खेप—संज्ञा स्त्री० [सं० खासेप] बोष। एब।

क्रि० प्र०—बेना।—घरना।—लगना।

खेप—संज्ञा स्त्री० १. खोटा सिक्का। २. वह सिक्का जो कौड़ा लगने की वजह से बाजार में न चल सके।

खेपना—क्रि० स० [सं० खेपण] बिताना। काटना। गुजारना। उ०—कैसे दिन खेपब रे। कबीर (शब्द०)।

खेपड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० खेपणी] नौका खेने का ढंड। पतवार। डंड।—(डि०)।

खेम—संज्ञा पुं० [सं० खेम] दे० 'क्षेम'।

यौ०—खेम करी = क्षेमकरी पक्षी। खेम कुसल = कुशल क्षेम।

उ०—दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेमकुसल रीताई।—मानस, २। ३५।

खेम कल्यानो—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'क्षेमकरी'।

खेमटा—संज्ञा पुं० [सं०] १. बारह मात्राओं का एक ताल।

विशेष—इस ताल में तीन आघात और एक खाली होता है।

इसका बोल यह है :

+ । । । ३ ० १ +
धा के टे ना धि ना ते' टे धि ना धि ना धा।

कोई कोई इसे केवल आठ मात्राओं का ताल मानते हैं। उनके अनुसार ढगका बोल इस प्रकार है :

+ ३ ० १ +
धागेधि नातिन नागेधि नातिन धा
+ ३ ४ +

प्रथवा, धाकेड़े धिन् धिन् ताकेड़े तिन् तिन् धा।

२. इस ताल पर गाया जानेवाला गाना। ३. इस ताल पर होनेवाला नाच।

खेमा—स्त्री० पुं० [प्रा० खमिह्] तंबू। डेरा।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।—गाड़ना।—डालना।

खेय—वि० [सं०] खोदने के योग्य। जो खोदा जा सके (को०)।

खेय—संज्ञा पुं० १. खदक। खाई। २. पुल (को०)।

खेरबा—संज्ञा पुं० [हि० केना] समुद्र में जहाज आदि चलानेवाला मल्लाह।

खेरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खेड़ा'। उ०—वन प्रदेश मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाँउं गन खेरे।—तुलसी (शब्द०)।

खेरापति—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खेड़ापति'।

खेरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बंगाल में अधिकता से होनेवाला एक प्रकार का गेहूँ जो लाल रंग का और बहुत कड़ा होता है। २. एक प्रकार की घास जो आस्ट्रेलिया नामक देश में बहुतायत

से होती है। यह पशुओं के लिये बहुत अच्छा चारा है। ३. एक प्रकार का जलपक्षी जो प्रायः दलबलों में रहता है और ऋतुपरिवर्तन के साथ साथ अपना स्थान भी बदलता रहता है। यह उड़ता कम और दौड़ता अधिक है। इसका मांस स्वादिष्ट होता है; इसलिये लोग इसका शिकार भी करते हैं। ४. ३० 'खेड़ी'।

खेरीरा—संज्ञा पुं० [हि० खीर + औरा (प्रत्य०)] खंडीरा या ओला नाम की मिठाई। मिसरी का लड्डू। उ०—भूती बहुत पकावन साधे। मोतिलाहू ओ खेरीरा बांधे।—जायसी (शब्द०)।

खेल—संज्ञा पुं० [सं०] १. केवल चित्त की उमंग से अथवा मन बहलाने या व्यायाम के लिये इधर उधर उछल कूद और दौड़ धूप या कोई साधारण मनोरंजन कृत्य, जिसमें कभी हार-जीत भी होती है। जैसे,—छाँल मिचौली, कबड्डी, ताश, गेंद, शतरंज आदि।

क्रि० प्र०—खेलना।

मुहा०—खेल के दिन = धाल्यावरथा। खेल खेलाना = बहुत तंग करना। गूब दिक करना।

२. मामला। बात।

मुहा०—खेल बिगड़ना = (१) काम खराब होना। (२) रंग में भंग होना।

३. बहुत हलका या तुच्छ काम।

क्रि० प्र०—जानना।—समझना।

मुहा०—खेल करना = किसी काम को अनावश्यक या तुच्छ समझकर हँसी में उड़ाना। खेल समझना = साधारण या तुच्छ समझना।

४. कामक्रीड़ा। विषयविहार। ५. किसी प्रकार का अभिनय, तमाशा, स्वांग या करतब आदि। ६. कोई अद्भुत कार्य। विचित्र लीला। उ०—यह देखो कुदरत का खेल।—कहावत।

खेल—संज्ञा पुं० वह छोटा कुंड जिसमें चौपाए पानी पीते हैं।

खेलक—संज्ञा पुं० [हि० खेलना या हि० खेल + क (प्रत्य०)]। खेलनेवाला व्यक्ति। वह जो मेले। खिलाड़ी। उ०—बोधम विमाननि विबुध विलोकत खेलक गेखक छाँह छये।—तुलसी (शब्द०)।

खेलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिलाना डुलाना। नचाना (नेत्र)। २. खेलने का भाव। आमोद प्रमोद। मनबहलाव। ३. नाटक, स्वांग, अभिनय आदि खेल [को०]।

खेलना—क्रि० प्र० [सं०] [प्रे० रूप खेलाना] १. केवल चित्त की उमंग से अथवा मन बहलाने या व्यायाम के लिये इधर उधर उछलना, कूदना, दौड़ना आदि। जैसे—लड़के बाहर खेल रहे हैं।

मुहा०—खेलना खाना = आनंद में दिन बिताना। निश्चित होकर चैन से दिन काटना। जैसे,—अभी तुम्हारे खेलने खाने के दिन हैं; सोच करने के नहीं। उ०—(क) खेलत खात रहे ब्रज भीतर।—नाहीं जाति तनिक घन इतर।—दूर (शब्द०)।

(ख) खेलत खात लरिकपन गो जोबन जुवतिन लियो जीति।—तुलसी (शब्द०)।

२. कामक्रीड़ा करना। बिहार करना।

मुहा०—खेलो खाई = पुरुष समागम से जानकारी (स्त्री)। खुल खेलना = खुलमखुल्ला कोई ऐसा काम करना जिसके करने में लोगों को लज्जा आती हो। सबकी जान में कोई बुरा काम करना।

३. भूत प्रंत के प्रभाव से सिर और हाथ पैर आदि हिलाना। अभुप्राना। ४. दूर हो जाना। चले जाना। ५. विचारना। चलना। बढ़ना। उ०—भयो रजायसु भ्रांग खेलहि। गढ़ तर छाड़ि भंत होइ मेनहि।—जायसी (शब्द०)।

खेलना—क्रि० सं० १. ऐसी क्रिया करना जो केवल मनबहलाव या व्यायाम आदि के लिये की जाती है और जिसमें कभी कभी हार जीत का भी विचार किया जाता है जैसे,—गेंद खेलना, छुआ खेलना, ताश खेलना इत्यादि।

मुहा०—जान या जी पर खेलना = अपने जीने की बाजी लगाना। अपने प्राण भय में डालना। ऐसा काम करना जिसमें मृत्यु का भय हो। (जान या जी के समान सिर, धन, इज्जत आदि कुछ और शब्दों के साथ भी यह मुहाविरा प्रायः बोला जाता है।)

२. किसी वस्तु को लेकर अपना जी बहलाना। किसी वस्तु को मनोरंजन के लिये हिलाना, डुलाना आदि। जैसे,—खिलौना खेलना। जैसे,—वागन यहाँ न छोड़ो; नहीं तो लड़के खेल डालेंगे। ३. नाटक या स्वांग रचना। अभिनय करना। जैसे,—यह नाटक कल लेना जायगा।

खेलने—संज्ञा स्त्री० [सं०] खेल का उपकरण। खेलने की वस्तु [को०]। **खेलवाड़**—संज्ञा पुं० [हि० खेल + वाड़] खेल। क्रीड़ा। तमाशा। मनबहलाव। दिल्लगी।

क्रि० प्र०—करना। होना।

खेलवाड़ी—क्रि० [हि० खेल + वार (प्रत्य०)] १. खेलनेवाला। खेलाड़ी। जैसे,—वह बड़ा खेलवाड़ी लड़का है। २. विनोद-शील। कौतुकप्रिय।

खेलवाना—क्रि० सं० [हि० खेलना] दूसरे को खेलने में प्रवृत्त करना।

खेलवार—संज्ञा पुं० [हि० खेल + वार] खेल करनेवाला। खेलाड़ी। उ०—संपति चकई भगत चक्र मुनि प्रायमु खेलवार। तेहि निसि आथम पीजरा राखे भा भिनसार।—तुलसी (शब्द०)।

खेलवार—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'खेलवाट'।

खेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रीड़ा। खेल। मनबहलाव [को०]।

खेलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खेल] १. खेलने का काम। खेल। जैसे,—प्रायः कल वही शतरंज की खूब खेलाई हो रही है। २. खेलने की मजदूरी।

खेलाड़ी—क्रि० [हि० खेल + आड़ी (प्रत्य०)] १. खेलनेवाला। क्रीड़ाशील। २. विनोदी।

खेलाड़ी—संज्ञा पुं० [हि० खेल] १. खेल में संमिलित होनेवाला व्यक्ति। वह जो खेले। २. तमाशा करनेवाला। ३. ईश्वर। जैसे,—उस खेलाड़ी के भी भयब खेल है।

खेलाना—क्रि० स० [हि० खेलना का प्रे० रूप] १. किसी दूसरे को खेल में लगाना । २० 'खेलना' । २. खेल में शामिल करना । जैसे,—जाओ, हम अब तुम्हें नहीं खेलेंगे । ३. उत्साह रखना । बहलाना ।

मुहा०—खेला खेलाकर मारना = दीड़ा दीड़ाकर धीरे धीरे मारना । साँगत से मारना । उ०—हतिही तोहि खेलाइ खेलाई । अबहि बहुत का नरी बड़ाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

खेलार(पु०)—संज्ञा पुं० [हि० खेल + आर (प्रत्य०)] खेलाडी । उ०—खेलत फागु खेलार खरे अनुराग भरे बड भाग कन्हई ।—मुंदगीमवेग (शब्द०) ।

खेलि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्रौट । मेल । २. ऋचा । गीत [को०] ।

खेलि^२—संज्ञा पुं० १. मूर्ख । रवि । २. इष्ट । बाल । ३. पशु । जानवर । ४. पक्षी [को०] ।

खेलुआ—संज्ञा पुं० [हि० खिलना या खिलना] चमड़ा रंगनेवालों का रकबी या घाली के आकार का काठ का एक औजार जिससे आंग्रे को रंगने के पहले मुलायम करने और खिलाने के लिये उसपर खारी नमक आदि रगड़ते हैं ।

खेलीना—संज्ञा पुं० [हि०] २० 'खिलोना' ।

खेवइया(पु०)—संज्ञा पुं० [हि०] खेनेवाला व्यक्ति । खेया ।

खेव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास ।

विशेष—यहाँ श्रुत है पहला पानी पड़ते ही यह बहुत अधिकता से उगती है और इसे छोड़े बहुत प्रसन्नता से खाते हैं । इसे पलजी या ऊगर की घास भी कहते हैं ।

खेवक(पु०) संज्ञा पुं० [सं० खेपक] नाव खेनेवाला । मल्लाह । केवट । माँभी । उ०—राजा कर भा भगमन खेवा । खेवक आगे मुवा परेवा । जायसी (शब्द०) ।

खेवट^१—संज्ञा पुं० [हि० खेलन बाट] पटवारी का एक कागज जिसमें हर एक पट्टीदार के हिस्से की तादाद और मालगुजारी का विवरण लिखा रहता है ।

यी०—खेवटहार = हिस्सेदार, पट्टीदार ।

खेवट(पु०)—संज्ञा पुं० [हि० खेना] नाव खेनेवाला । मल्लाह । माँभी ।

खेवटिया—संज्ञा पुं० [हि० खेवट] खेवट । मल्लाह ।

खेवणी—संज्ञा स्त्री० [सं० खेपणी] नाव का डीङ्ग ।—(डि०) ।

खेवनहार—संज्ञा पुं० [हि० खेना+हार (प्रत्य०)] १. खेनेवाला । मल्लाह । केवट । २. ठिकाने तक पहुँचानेवाला । पार लगानेवाला ।

खेवना—क्रि० स० [हि० खेना] २० 'खेना' ।

खेवनाव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष ।

विशेष—यह उत्तर भारत में चनाब नदी के पूर्व और बंगाल तथा उड़ीसा की नदियों के किनारे अधिकता से पाया जाता है । इसके गूदे से एक प्रकार के रेशे निकलते हैं । इसमें एक प्रकार की लाइ भी लगती है । कहीं कहीं इसे दुबरेख भी कहते हैं ।

खेवरिया(पु०)—संज्ञा पुं० [हि० खेवट] पार उतारनेवाला । केवट ।
खेवरियाना—क्रि० स० [सं०] १. एकत्र करना । संग्रह करना । बटोरना ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः चरवाह अपनी गोश्यों के लिये करते हैं ।

२. धता करना । चलता करना ।—(वेषा) ।

खेवा—संज्ञा पुं० [हि० खेना] १. वह धन जो केवट को नाव द्वारा पार उतारने के बदले में दिया जाय । नाव खेने का किराया । २. नाव द्वारा नदी पार करने का काम । जैसे,—अभी यह पहला खेवा है । ३. बार । दफा । अवसर । जैसे,—(क) पिछले खेवे उन्होंने कई भूलों की थी । (ख) इस खेवे सब झगड़ा निपट जायगा ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल कार्य आदि करने के संबंध में होता है ।

४. बोक से लदी हुई नाव । उ०—राजा का भा भगमन खेवा । खेवक आगे मुवा परेवा ।—जायसी (शब्द०) ।

खेवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खेना] १. नाव खेने का काम । नाव चलाने की क्रिया । २. नाव खेने की भजदूरी । ३. वह रस्सी जो डीङ्ग को नाव से बाँधने के काम में आती है ।

खेवैया—संज्ञा पुं० [हि० खेना] खेनेवाला । केवट ।

खेस—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत मोटे देशी मूँच की बनी हुई एक प्रकार की बहुत लंबी चादर, जो पश्चिम में अधिकता से बनती और प्रायः बिछाने के काम में आती है ।

खेसर—संज्ञा पुं० [सं०] खच्चर [को०] ।

खेसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० खसर या खजकार] एक प्रकार की मटर जिसकी फलियाँ चिपटी होती हैं । इसकी दाल बनती है । दुबिया मटर । चिपटीया मटर । खत्ती । तेउरा ।

विशेष—यह अन्न बहुत मस्ता होता है और प्रायः सार भारत में, और विशेषतः मध्यभारत तथा मिथ में इसकी खेती होती है । यह अगहन में बोई जाती है और इसकी फसल तैयार होने में प्रायः साढ़े तीन मास लगते हैं । लोग कहते हैं कि इसे अधिक खाने से आदमी लँगड़ा हो जाता है । वैद्यक में इसे कृशा, कफ-पित्त-नाशक, रुचिकारक, मलरोधक, शीतल, रक्तशोधक और पोष्टिक कहा गया है; और यह शूल, मूत्रन, दाह, बवासीर, हृदयगर्भ और खंज उत्पन्न करनेवाली कही गई है । इसके पत्तों का गांघ भी बनता है, जो वैद्यक के अनुसार बादी, रुचिकारी और कफ-पित्त-नाशक होता है ।

खेह—संज्ञा स्त्री० [हि०, मि० पं० खेह या अप० खेह] धूल । राख । लाक । मिट्टी । उ०—(क) कीन्हेमि अग्नि पवन जल खेहा । कीन्हेसि बहुतै रंग जरेहा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) दाहू क्योंकर पाइये न चरनन की खेह ।—दाहू (शब्द०) ।

मुहा०—खेह खाना = (१) धूल फाँटना । मिट्टी खानना । भ्रष्ट मारना । व्यर्थ समय खोना । नष्ट जाना । उ०—मुनि सीता, पति सील सुभाऊ । मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहहि लाऊ ।—तुलसी (शब्द०) । (२) दुर्दशाग्रस्त होना ।

उ०—सोई रघुनाथ कपि साथ पापनाथ बाँधि आयो नाथ भाये
ते खिरिर खेह खाहिगो ।—तुलसी (शब्द०) ।

खेहर(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० खेह] दे० 'खेह' । उ०—सो नर खेहर
झाउ ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५०६ ।

खैरा—संज्ञा पुं० [फ्रा० खैरा] घोड़ा ।—(दि०) ।

खैचना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'खीचना' ।

खैचनो—संज्ञा स्त्री० [हि० खीचना] डेढ़ हाथ लंबी और एक बिता
चोड़ी देवदार की लकड़ी की एक तस्ती जिसपर तेल लगाकर
सेकल किए हुए भोजार साफ किए जाते हैं ।

खैचाखैची—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खीचाखीची' ।

खैचातान—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खीचातान' ।

खैचातानी—संज्ञा स्त्री० [हि० खैचातान + ई(प्रत्य०)] खीचाखीची ।
खीचातान ।

खैबर—संज्ञा पुं० [देश०] भारत और अफगानिस्तान के बीच की एक
घाटी का नाम ।

खैयात—संज्ञा पुं० [अ० खैयात] दर्जी । सूचीकार । सिलाई करने-
वाला । सीवक (कौ०) ।

खैयाम^१—वि० [अ० खैयाम] खेमा बनानेवाला । तंबू बनाने-
वाला (कौ०) ।

खैयाम^२—संज्ञा पुं० फारसी का प्रसिद्ध कवि उमर खैयाम ।

विशेष—नैशापुर निवासी इस प्रसिद्ध कवि की कबाइयाँ संसार
की अनेक भाषाओं में अनूदिन हो चुकी हैं । कवि होने के साथ
ही यह बड़ा वैज्ञानिक, चिकित्सक, तथा ज्योतिषी भी था ।

खैर^१—संज्ञा पुं० [सं० खैर, प्रा० खैर, खयर] १. एक प्रकार का
बबूल । कथकीकर । सोनकीकर ।

विशेष—इसका पेड़ बहुत बड़ा होता है और प्रायः समस्त भारत
में अधिकता से पाया जाता है । इसके हीर की लकड़ी भूरे रंग
की होती है, घुनती नहीं और घर तथा खेती के भोजार बनाने
के काम में आती है । बबूल की तरह इसमें भी एक प्रकार का
गोंद निकलता है और बड़े काम का होता है ।

२. इस वृक्ष की लकड़ी के टुकड़ों को उबालकर निकाला और
जमाया हुआ रस जो पान में चूने के साथ लगाकर खाया
जाता है । कत्या ।

खैर^२—संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण भारत का भूरे रंग का एक पक्षी ।

विशेष—संबाई में यह एक बालिष्ठ से कुछ अधिक होता है और
भोपड़ियों या छोटे पेड़ों में घोंसला बनाकर रहता है । इसका
घोंसला प्रायः जमीन से सटा हुआ रहता है । इसकी गरदन
और चोंच कुछ सफेदी लिए होती है ।

खैर^३—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खैर] कुशल । श्रेम । भलाई ।

यौ०—खैरप्रवेश = हितचिंतक । शुभचिंतक । खैरप्रदेशी =
शुभचिंतन । भलाई चाहना । खैरप्राप्तियत । खैरखाह =
दे० 'खैरखाह' । खैरखाही = दे० 'खैरखाही' । खैरोबरकत =
कल्याण । समृद्धि । खैरोसलाह । खैरसलाह = कुशलश्रेम ।

खैर^४—अव्य० १. कुछ चिंता नहीं । कुछ परवा नहीं । २. भस्तु ।
भच्छा ।

खैर आफियत—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खैर-प्रो-आफियत] कुशल मंगल ।
श्रेम कुशल ।

क्रि० प्र०—कहना ।—पूछना ।

खैरखाह—वि० [फ्रा० खैरखाह] भलाई चाहनेवाला । शुभचिंतक ।

खैरखाही—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खैरखाही] शुभचिंतन । भलाई
सोचना ।

खैरखाल—संज्ञा पुं० [देश०] कोलियार नाम का वृक्ष ।

खैरसार—संज्ञा पुं० [सं० खैर + सार] कत्या । खैर ।

खैरा^१—वि० [हि० खैर] खैर के रंग का । कथई ।

खैरा^२—संज्ञा पुं० १. वह कबूतर या घोड़ा जिसका रंग कथई हो ।
२. एक प्रकार का बगुला जिसका रंग कथई होता है ।

खैरा^३—संज्ञा पुं० [देश०] १. धान की फसल का एक रोग, जिसमें
उसकी बाल पीली पड़ जाती है । २. तबला बजाने में एकताल (तास)
की दून । ३. एक प्रकार की छोटी मछली जो बंगाल
की नदियों में अधिकता से पाई जाती है ।

खैरात—संज्ञा पुं० [अ० खैरात] [वि० खैराती] दान । पुण्य ।

क्रि० प्र०—करना ।—बाहना ।—बाँटना ।—पाना ।—भोगना ।

यौ०—खैरातखाना = भन्नसत्र ।

खैराती—वि० [अ० खैरात] दान या खैरात में प्राप्त । मुफ्त का ।
जैसे,—खैराती भस्पताल । खैराती दवाखाना । खैराती माल ।

खैरियत—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खैरियत] १. कुशल श्रेम । राजीबुखी ।
२. भलाई । कल्याण ।

खैरीयत—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खैरीयत] दे० 'खैरियत' ।

खैल—संज्ञा पुं० [अ० खैल] समुदाय । जमाव । जनसमूह (कौ०) ।

यौ०—खैलखाना = कुटुंब । खानदान । वंश ।

खैलर—संज्ञा स्त्री० [सं० खैल] मथानी ।

खैला^१—संज्ञा पुं० [सं० खैल] वह बैल जिससे अभी तक कुछ काम
न लिया गया हो । नाटा । बछड़ा ।

खैला^२—संज्ञा पुं० [सं० खैल] मथानी । उ०—मन माठा सम अरु
के धोवै । तन खैला तेहि माहि बिलोवै ।—जायसी (शब्द०) ।

खोइचा—संज्ञा पुं० [हि० खूँट वा कोंछ, अथवा सं० कुक्ष्यजल या वेश०]
(स्त्रियों के कपड़ों का) अंचल । किनारा ।

मुहा०—खोइचा भरना = शकुन के रूप से किसी (स्त्री) के
अंचल में चावल, गुड़ आदि देना ।

खोइछा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खोइचा' ।

खोखना—क्रि० प्र० [खो खो से अनु०] खीसना ।

खोखर, खोखल—वि० [हि०] दे० 'खोखला' ।

खोखी—संज्ञा स्त्री० [हि० खोखना] खीसी । फास ।

खोखो—संज्ञा पुं० [अनु०] १. खीसने का शब्द । २. बंदरों के
घुड़कने का शब्द ।

क्रि० प्र०—करना ।

खोंगा^१—संज्ञा पुं० [देश०] घटकाव । रुकावट ।

खोंगा^२—संज्ञा पुं० [सं० खोङ्गाह] वह वेल जो अभी किसी काम में न लगाया गया हो । नाटा । दछड़ा ।

खोंगाह—संज्ञा पुं० [सं० खोङ्गाह] पीलापन लिए सफेद रंग का धोड़ा ।

खोंगी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० खोंसना या देश०] लगे हुए पानों का खोपड़ा ।

खोंच^१—संज्ञा स्त्री० [सं० कुञ्ज या सं० कोरणाञ्जन] १. किसी नुकीली चीज से छिने का घाघात । २. किसी खेल या कटि घादि में फँसकर कपड़े घादि का फट जाना ।

क्रि० प्र०—लगना ।

खोंच^२—संज्ञा पुं० [देश०] १. मुट्ठी । २. उतना घन या घोर कोई पदार्थ जो एक मुट्ठी में धा जाय ।

खोंच^३—संज्ञा पुं० [सं० खोञ्ज] एक प्रकार का बगुना ।

खोंचा—संज्ञा पुं० [सं० कुञ्ज या हि० खोंचा] १. बहेलियों का वह लंबा बाँस जिसके सिरे पर लासा लगाकर वे पत्तियों को फँसाते हैं । उ०—पाँच बान कर खोंचा लासा भरे सो पाँच । पाँच भरा तन उरभा कित मारे बिन बाँच ।—जायसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—मारना ।

२. दे० 'खोंच' । ३. छोटे बछड़े या बैलों के मुँह पर लगाने की एक प्रकार की जाली जिससे वे गाय का दूध न पी सकें या देवाई के समय खा न सकें ।

खोंचिया^१—संज्ञा पुं० [हि० खोंची] १. खोंची लेनेवाला । २. भिक्षुक । भिक्षुमंगा ।

खोंची—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह थोड़ा अन्न, फल, तरकारी आदि जो दूकानदार मंडी या बाजार में छोटी छोटी सेवाएँ करनेवालों या भिक्षुमंगों को देते हैं । उ०—लाई खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे । तेरे बल बलि आबु लो जग जागि जिया रे ।—तुलसी (शब्द०) ।

खोंटना—क्रि० सं० [सं० खणुन] किसी वस्तु का ऊपरी भाग तोड़ना । कपटना । नोनना । जैसे,—साग खोंटना ।

खोंटा—वि० [हि०] दे० 'खोटा' ।

खोंडर—संज्ञा पुं० [सं० कोटर] पेड़ का भीतरी पोला भाग ।

खोंड़ा—वि० [हि०] दे० 'खोड़ा' ।

खोंड़ा, खोंदा—वि० [सं० खुरण] जिसका कोई अंग भंग हो । सदाप । अण्णं ।

विशेष इस शब्द का प्रयोग प्रायः उस मनुष्य के लिये होता है, जिसके प्रागे के दो तीन दाँत टूटे हों ।

खोंतला^१—संज्ञा पुं० [सं० कोटर, देश० कोत्थर] खोता । घोंसला । उ०—यह सुधि नहि किहि की जटान में खंग कुल खोंतल लागे ।—प्रताप (शब्द०) ।

खोंता—संज्ञा पुं० [हि० खोता] घास, फूस, बाल आदि का बना हुआ चिड़ियों का निवासस्थान जो प्रायः वृक्षों आदि पर होता है । घोंसला ।

खोंथा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खोंता' ।

खोंप—संज्ञा स्त्री० [हि० खोंपना] सिलाई में दूर दूर पर लगा हुआ टाँका । सलंगा ।

क्रि० प्र०—भरना ।—मारना ।

खोंपना^१—क्रि० सं० [हि० खोंपना] घेंसाना । गड़ाना ।

खोंपा—संज्ञा पुं० [हि० खोंपना] [स्त्री० खोंपिया, खोंपी] १. हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगा रहता है । २. छाजन का कोहा । ३. भूसा रखने का धेरा जो छप्पर से धाया रहता है । ४. दे० 'खोपा'—३, ४ ।

खोंपी—संज्ञा स्त्री० [हि० खोंपा] १. दे० 'खोंपा' । २. हजामत में खत का कोना ।

खोंसना—क्रि० सं० [देश० या सं० कोश + ना (प्रत्य०)] किसी वस्तु को कहीं स्थिर रखने के लिये उसका कुछ भाग किसी दूसरी वस्तु में घुसेड़ देना । भटकाना । उ०—सखी री मुरली लीजें चोर । कबहूँ कर कबहूँ अधरन पर कबहूँ कटि में खोंसत जोर ।—सूर (शब्द०) ।

खोआ^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खोपा' ।

खोइया^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खोई' ।

खोइदार—संज्ञा पुं० [हि० खोई + दार (प्रत्य०)] कोल्होर में वह स्थान जहाँ खोई जमा की जाती है ।

खोइलरा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० खेल] तीन चार हाथ लंबी बाँस की छड़ी जिससे कोल्हू में पड़े हुए गंडों को उलटते पलटते हैं ।

खोइलटा^१—वि० [हि०] दे० 'खोई' ।

खोइहा—संज्ञा पुं० [हि० खोई + हा (प्रत्य०)] कोल्होर का वह मजदूर जो खोई उठाता या फेंकता है ।

खोई^१—संज्ञा स्त्री० [सं० भुइ] ऊख के गंडों के वे टंठल जो रस निकल जाने पर कोल्हू में शेष रह जाते हैं । छोई । २. भुने हुए चावल या धान की खील । लाई । ३. कंबल की घोषी । ४. एक प्रकार की घास जिसे 'बूर' भी कहते हैं । वि० दे० 'बूर' ।

खोई^२—वि० [हि०] नटखट । शरारती ।

खोखर—संज्ञा पुं० [देश०] संपूर्ण जाति का एक राग जो मालकोस राग का पुत्र माना जाता है । इसके गाने का समय दिन का पहला पहर है ।

खोखरा—संज्ञा पुं० [हि० खुखर, या खोखला] टूटा हुआ जहाज ।—(लश०) ।

खोखला^१—वि० [हि०] दे० 'खोखला' ।

खोखला^२—वि० [हि० खुखर + ला (प्रत्य०)] जिसके भीतरी भाग में कुछ न हो । सारहीन । पोला ।

खोखला^३—संज्ञा पुं० १. खाली स्थान । पोली जगह । २. बड़ा छेद । रंध्र ।

खोखा^१—संज्ञा पुं० [हि० खुखर] वह कागज जिसपर हुंडी लिखी हुई हो; विशेषतः वह हुंडी जिसका रुपया चुका दिया गया हो ।

खोखा^२—संज्ञा पुं० [सं० कोख, बें० खोका] [स्त्री० खोखी] बालक । लड़का ।

खोगीर—संज्ञा पुं० दे० [फ्रा० खुगीर] दे० 'खुगीर'।

खोचकिल—संज्ञा पुं० [देश०] चिड़ियों का खोता। घोंसला।

खोज—संज्ञा स्त्री० [हि० खोजना] १. अनुसंधान। तलाश। शोध।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—होना।

मुहा०—खोज खबर लेना = हालचाल जानना।

२. चिह्न निशान। पता। उ०—(क) रथ कर खोज कतहू नहि पावहि। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) राखी नहि काहू सब भारी। ब्रज गोकुल को खोज निवारौ।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पाना।—लगाना।

मुहा०—खोज मिटाना = नष्ट करना। ध्वस्त करना। बरबाद करना। चिह्न तक न रहने देना।

३. गाड़ी के पहिए की लीक ग्रथवा पैर आदि का चिह्न। उ०—चंदन मीरु कुरंभिन खोजू। ओहि को पाव को राजा भोजू।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—खोज मारना = लीक या पैर आदि का चिह्न इस प्रकार बचाना या नष्ट करना जिसमें कोई पता न लगा सके। उ०—खोज मारि रथ हाकहु ताता। आन उपाय बनहि नहि बाता।—तुलसी (शब्द०)।

खोजक—वि० [हि० खोज + क (प्रत्य०)] खोज करनेवाला। ढूँढ़नेवाला। तलाश करनेवाला।—(व०)।

खोजना—क्रि० स० [सं० खज = चोराना] तलाश करना। पता लगाना। ढूँढ़ना।

संयो० क्रि०—डालना।—मारना।—रखना।

खोजमिटाना—वि० [हि० खोज + मिटाना] [स्त्री०] जिसका चिह्न न रह जाय। जिसका नामनिशान न रह जाय। जो सत्यानाश हो जाय। नष्ट। (यह शब्द स्त्रियाँ परस्पर अधिक बोलती हैं)।

खोजवाना—क्रि० स० [हि० खोजना] खोजना का प्रेरणार्थक रूप। पता लगवाना। ढूँढ़वाना।

खोजा—संज्ञा पुं० [फ्रा० खोजह] १. वह व्यक्ति जो मुसलमानी हर्मों में द्वाररक्षक या सेवक की भाँति रहता है। २. सेवक। नौकर। ३. माननीय व्यक्ति। सरदार। ४. मुसलमानों की एक जाति जो अधिकांश महाराष्ट्र प्रदेश में रहती है।

खोजाना—क्रि० स० [हि० खोजना] दे० 'खोजवाना'।

खोजी^①—वि० [हि० खोज + ई (प्रत्य०)] १. खोजनेवाला। ढूँढ़नेवाला। २. नौकर।—(व०)। ३. शोधकर्ता। अन्वेषक (व्यंग्य)।

खोट^१—संज्ञा स्त्री० [सं० खोट = खोड़ा (दूषित)] १. दोष। ऐब। बुराई। उ०—सूरदास पारस के परसे मिटत खोट की खोट।—सूर (शब्द०)। २. किसी उत्तम वस्तु में निकृष्ट वस्तु की मिलावट। ३. वह निकृष्ट वस्तु जो किसी उत्तम वस्तु में मिलाई जाय।

खोट^२—वि० दे० 'खोटा'।

खोटत, खोटता^②—संज्ञा स्त्री० [हि० खोट + ता (प्रत्य०)] खोटाई। बुराई। खोटापन।—(व०)। उ०—अमरापति चरणन पर खोटत। रही नहीं मन में कछु खोटत।—सूर (शब्द०)।

खोटपन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खोटापन'।

खोटा—वि० [सं० खुद या खोट = खोड़ा (दूषित)] [स्त्री० खोटो] जिसमें कोई ऐब हो। दूषित। बुरा। 'खरा' का उलटा। जैसे,—खोटा रुपया, खोटा सोना, खोटा घादमी।

मुहा०—खोटा खरा = भला बुरा। उत्तम और निकृष्ट। खोटा खाना = बेईमानी से या बुरी तरह से कमाकर खाना। उ०—फाटक दं कै हाटक माँगत भोरो निपट सुघारी। धुर ही ते खोटो खाये है लिए फिरत सिर भारी।—सूर (शब्द०)। खोटी करना = खोटापन या बुराई करना। खोटी बोलना = बुरी बात बोलना। खोटी खरी सुनाना = दुर्वचन कहना। डाटना। फटकारना।

खोटाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खोटा + ई (प्रत्य०)] १. बुराई। दुष्टता। कुदृष्टता। २. छल। कपट। उ०—अहह बंध तँ कीन्ह खोटाई। प्रथमहि भोहि न जगायसि भाई।—तुलसी (शब्द०)। ३. दोष। ऐब। नुक्स।

खोटाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'खुटाना' या 'खुटाना'।

खोटापन—संज्ञा पुं० [हि० खोटा + पन (प्रत्य०)] खोटा होने का भाव। कुदृष्टता।

खोटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बालाक औरत। बालबाज या चानू औरत। मक्कारा [स्त्री०]।

खोड—वि० [सं०] छिन्नांग। अपंग। विकलांग। लंगड़ा लूला [स्त्री०]।

खोड^१—संज्ञा स्त्री० [हि० खोट] देवता, पितर, भूत, प्रेत, आदि का कोप। देवकोप। ऊपरी फेर। जैसे,—उसे किसी देवता की खोड है।

खोड^२—संज्ञा पुं० [सं० कोटर] वह छेद जो वृक्ष की लकड़ी के सड़ जाने से होता है। उ०—मानहु प्रायो है राज कछु चढ़ि ऐसे ही ऐसे पलास के खोडे।—मतिराम (शब्द०)।

खोड^३—वि० [सं० खोड] दे० 'खोड'।

खोडरा—संज्ञा पुं० [सं० कोटर] पुराने पेड़ का खोखला भाग।

खोडा—वि० [हि० खोड़ा] दे० 'खोड़ा'।

खोद^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० खोद] लोहे का बना हुआ टोप जिसे योद्धा लड़ाई के समय पहनते थे। टोप। कूंड। शिरस्त्राण।

खोद^२—संज्ञा पुं० [हि० खोदना] जाँच परताल। पृथक्ताछ।

यो०—खोद विनोद।

खोदई—संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड़ जो हिमालय की तराई में होता है। यह रँगने और दवा के काम में आता है।

विशेष—दे० 'लोध'।

खोदना—क्रि० स० [सं० खुद = भेदन करना] १. किसी स्थान को गहरा करने के लिये वहाँ की मिट्टी आदि उखाड़कर फेंकना। गड्ढा करना। खनना। जैसे, जमीन खोदना, कुआँ खोदना।

संयो० क्रि०—डालना।—फेंकना।

२. खोदकर उखाड़ना या गिराना। जैसे,—कुश खोदना, घर खोद डालना। ३. किसी कड़ी वस्तु पर पानी या नुकीली वस्तु से कुछ चिह्न, अंक या बेल बूटे आदि बनाना। नक्काशी

करना । जैसे, मोहर खोदना । ४. उँगली छड़ी आदि से छुना या बबाना । उँगली या छड़ी आदि से हिलाना हुलाना । गड़ाना । जैसे,—(क) उसे खोदकर जगा दो । (ख) वह लड़का उसके गाल में खोदकर भागता है । लकड़ी बोड़ा खोद दो; धाग जलने लगैगी । ५. छेड़छाड़ करना । छेड़ना ।

मुहा०—खोब खोबकर पूछना = एक एक बात पर शंका करके पूछना । अन्धरी तरह पूछना ।

१. उत्तेजित करना । उसकाना । उभाड़ना ।

खोदनी—संज्ञा स्त्री० [हि० खोदना] खोदने का छोटा औजार ।

यौ०—कनखोदनी = कान से खोदकर मैल निकालने की सीक या कील । दाँतखोदनी = दाँत से खोदकर मैल निकालने की सीक या कील ।

खोद बिनोदा—संज्ञा पुं० [हि० खोब + बिनोद (अनु०)] बहुत अधिक छानबीन । जाँच पड़ताल । पूछ नाछ । छेड़छाड़ ।

खोदवाना—क्रि० सं० [हि० खोदना का प्रे० रूप] खोदने में लगाना । खोदने का काम करवाना ।

खोदाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खोदना] १. खोदने का काम । २. खोदने की मजदूरी । ३. कड़ी वस्तु पर किमी नोकदार वस्तु से अंक, चिह्न, बेलबूटे आदि बनाने का काम । जैसे,—शाहजहाँपुर में लकड़ी पर खोदाई अच्छी होती है ।

खोना—क्रि० सं० [सं० खेपण, प्रा० खेवण सं० 'खी का प्रे० रूप] १. अपने पास की वस्तु को निकल जाने देना । व्यर्थ फेंक देना । गंवाना । जैसे,—उसने अपनी पुस्तक खो दी । २. भूल से किसी वस्तु को कहीं छोड़ आना । ३. खराब करना । बिगाड़ना । नष्ट करना ।

संयो० क्रि०—देना । —डालना ।

खोना—क्रि० प्र० पाम की वस्तु का निकल जाना । किसी वस्तु का कहीं भूल से छूट जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

विशेष—संयोज्य क्रिया के साथ ही यह क्रिया प्रकर्मक भाववाच्य रूप में आती है, अकेले नहीं ।

मुहा०—खोया जाना = चकपका जाना । सितपटा जाना । हक्का बक्का होना । पबराना । खोया खोया रहना = किसी विचार या चिन्ता में डूब जाना । सुध बुध न रहना ।

खोन्चा—संज्ञा पुं० [फ्रा० खान्चा] १. एक बड़ी परात या थाल जिसमें मिठाई या और खाने पीने की वस्तुएँ भरी रहती हैं । वह थाल जिसमें रखकर फेरीवाले मिठाई आदि बेचते हैं ।

मुहा०—खोन्चा लगाना = बेचने के लिये खोन्चे में मिठाई सजाना या रखना ।

खोपड़ा—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर] [स्त्री० खोपड़ी] १. सिर की हड्डी । कपाल । २. सिर । ३. गरी का गोला । गरी । ४. नारियल । ५. भिक्षुओं का खप्पर जिसमें वे भीख लेते हैं । बहुधा यही दरियाई नारियल का आधा टुकड़ा होता है । ६. गाड़ी में वह मोटी लकड़ी जो दोनों पहियों के बीच में धुरों से मिली होती है ।

खोपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० खोपड़ा] १. सिर की हड्डी । कपाल । २. सिर ।

मुहा०—बंघी खोपड़ी का, घोड़ी खोपड़ी का = नासमझ । मूर्ख । खोपड़ी खा जाना = बहुत बात करके दिक् करना । खोपड़ी खुजलाना = (१) कोई ऐसी बात या शरारत करना, जिससे मार खाने की नौबत आवे । मार खाने को जी चाहना । जैसे,—तुम न मानोगे, तुम्हारी खोपड़ी खुजल रही है । (२) सिर पर जूता मारना । खोपड़ी बंजी होना = मार खाते खाते सिर के बाल झड़ जाना । सिर पर खूब जूते पड़ना । खोपड़ी बंजी करना = मारते मारते सिर के बाल न रहने देना । सिर पर खूब जूते लगाना । खोपड़ी चटकना = अधिक धूप, प्यास या पीड़ा के कारण सिर में गर्मी और चक्कर मात्र होना । सिर टनकना । खोपड़ी खाट जाना = बकवाद करके तंग करना ।

खोपरा—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर] दे० 'खोपड़ा' ।

खोपरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खोपड़ी' । उ०—फटो खोपरी गुंद फैलत पिंडी । मनो माय मारग्य फूटी दहिंदी । —रसर०, पृ० २२७ ।

खोपा—संज्ञा पुं० [सं० खर्पर, हि० खोपड़ा] १. छप्पर का कोना । २. मकान का कोना जो किसी रास्ते की ओर पड़े । ३. केश-विन्यास में वह तिकोनी बनावट जो ठीक ब्रह्मरंध्र पर पड़ती है । इसके सिरे का कोना माँग से मिला रहता है और ठीक इसी के आधारे पर लूढ़ा बाँधा जाता है । ४. लूढ़ा बँधी हुई वेणी । उ०—सरवर तीर पदमिनी आई । खोपा छोरि केस बिखराई । —जायसी (शब्द०) । ५. गरी का गोला ।

खोवा—संज्ञा पुं० [दे०] गन्ध या पलस्तर पीटने की थापी ।

खोभना—क्रि० सं० [सं० क्षोभण] गड़ाना । धँसाना ।

खोभरना—क्रि० प्र० [हि० खोभना] १. झाड़ा पड़ना । २. बीच में पड़ना ।

खोभरना—क्रि० सं० [हि०] समथल न रहने देना । खोदना ।

खोभराना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'खोभराना' ।

खोभार—संज्ञा पुं० [प्रा० खोभ + आर (प्रत्य०)] १. गड़वा जिसमें कूड़ा करकट फेंका जाय । २. सुप्ररों को बंद करने की ओपड़ी । ३. कोई तंग स्थान या कोठरी ।

खोम^१—संज्ञा पुं० [प्र० कौम] समूह । झुंड । उ०—सिवाजी की धाक, मिले खल फुल खाक बसे खलन के खेरन खबीसन के खोम हैं । —भूषण (शब्द०) ।

खोम^२—संज्ञा पुं० [सं० क्षोम] किले का दुर्ग । —(दि०) ।

खोम^३—संज्ञा पुं० [सं० क्षोम] ऐसा कार्य जो अहितकर हो ।

खोया—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० खू] आदत । बान । स्वभाव ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

खोया^१—संज्ञा पुं० [सं० खू या देश०] १. आँच पर चढ़ाकर इतना गाढ़ा किया हुआ दूध कि उसकी पिंडी बाँध सके । मावा । खोबा । २. ईंट पाथने का गारा ।

खोया^२—क्रि० सं० [हि० खोना क्रिया का भूतकालिक रूप] गुम, गायब या बिगड़ा हुआ ।

खोर^१—संज्ञा स्त्री० [हि० खुर] १. बस्तियों की तंग गली । सँकरी गली । कूचा । २. नाँद, जिसमें चौपायों को चारा दिया जाता है ।

खोर^२—संज्ञा पुं० [दे०] बबूल की जाति का एक ऊँचा सुंदर पेड़ ।

विरोध—यह सिध के रेगिस्तानों में होता है । इसकी लकड़ी

पीलापन लिए सफेद, भारी और सख्त होती है और साफ करने पर खूब चिकनी हो जाती है। यह खेती के भीजर बनाने के काम आती है। इसे खन, साहीकाटा और बनरीठा भी कहते हैं।

खोर^१—संज्ञा स्त्री [सं० क्षालन, हि० खोरना] नहाने की क्रिया। नहाना। स्नान।

खोरना^१—क्रि० प्र० [सं० क्षालन] स्नान करना। नहाना। उ०—ब्रज बनिता रवि को कर जोरें। शीत भीत नहि करत छोरी ऋतु विविध काल यमुना जल खोरें।—सूर (शब्द०)।

खोरनी—संज्ञा स्त्री [हि० खोवना] वह लकड़ी जिससे भड़भूँजे भाड़ भोंकते समय बाहर रह गए हुए ईंधन को भाड़ के अंदर करते हैं।

खोरा^१—संज्ञा पुं० [सं० खोलक, फा० आबखोरह, या खोरह] [जी० खोरिया] १. कटोरा। बेला। २. पानी पीने का बरतन। आबखोरा। गिलास।

खोरा^२—वि० [सं० खोर या खोट] लंगड़ा। सूला। भंगभंग। उ०—काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि। तिय विशेष पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि।—तुलसी (शब्द०)।

खोराका^१—संज्ञा स्त्री [फा० खुराक] [वि० खोराकी] १. भोजन सामग्री। २. खाने की मात्रा। जैसे,—उसकी खोराक बहुत है। ३. औषध की मात्रा जो एक बार सेवन की जाय। जैसे,—इतने में चार खोराक होगी।

खोराकी^१—वि० [हि० खोराक + ई (प्रत्य०)] खूब खानेवाला। अधिक भोजन करनेवाला।

खोराकी^२—संज्ञा स्त्री [हि० खोराक] वह धन जो खोराक के लिये दिया जाय।

खोरि^१—संज्ञा स्त्री [हि० खुर] तंग गली। उ०—खेलत अवध खोरि, गोला भोरा चकडोरि मूरति मधुर बस तुलसी के हियरे।—तुलसी (शब्द०)।

खोरि^२—संज्ञा स्त्री [सं० खोट या खोर] १. एंव। दोष। नुस्स। उ०—(क) कही पुकारि खोरि मोहि नाही।—तुलसी (शब्द०)। (ख) साँकरी गेल वा खोरि हमे किन खोरि लगाय खिजेबो करो कोउ।—देव (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगाना।

२. बुराई। निंदा।

खोरि^३—संज्ञा स्त्री [हि० खोर] दे० 'खोर' वा 'खोरि'। उ०—तनु अनुहरत सुचंदन खोरी। श्यामल गौर मनोहर जोरी।—तुलसी (शब्द०)।

खोरिया—संज्ञा स्त्री [हि० खोरा] १. छोटा कटोरा या बेलिया। छोटा आबखोरा या गिलास। पानी पीने का छोटा बरतन। २. छोटे चमकीले बूंदे जिन्हें स्त्रियाँ या लीलावाने शोभा के लिये मुँह पर चिपकाते हैं। ३. कुएँ की पैड़ी का वह सबसे बिचला भाग जो चरसा खींचते खींचते बैलों के पहुँचने पर कुएँ के मुँह पर आ जाता है।

खोल^१—वि० [सं०] लंगड़ा। विकलांग।

खोल^२—संज्ञा पुं० [सं० खुल, खुल] शिरस्त्राण। कूंड। खोद [को०]।

खोल^३—संज्ञा पुं० [सं० खोल, शिरस्त्राण, तुल० फा० खोल = आवरण, म्यान] १. ऊपर से चढ़ा हुआ ढकना। गिलाफ। उछाड़। आवरण। २. कीड़ों का ऊपरी चमड़ा जिसे समय समय पर वे बदला करते हैं। ३. मोढ़ने का मोटा कपड़ा। मोटी चादर।

खोलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. खोद। शिरस्त्राण। २. बाँधी। बन्दीक। ३. सुपारी का आवरण या छिनका। ४. कटाह। कड़ाही। डेंगची [को०]।

खोलना—क्रि० स० [सं० खुल, खुल = भेदन] [हि० खुलना का सक० रूप] १. किसी वस्तु के मिले या जुड़े हुए भागों को एक दूसरे से इस प्रकार अलग करना कि उसके अंदर या उसके पार तक आना, जाना, टटोलना, देखना आदि हो सके। छिपाने या रोकनेवाली वस्तु को हटाना। अवरोध या आवरण का दूर करना। जैसे,—किवाड़ खोलना।

संयो० क्रि०—डालना।—बेना।

२. ऐसी वस्तु को हटाना या इधर उधर करना जो किसी दूसरी चीज को छापे या घेरे हो। ३. दरार करना। छेद करना। शिगाफ करना। जैसे,—फोड़े का मुँह खोलना। ४. बाँधने या जोड़नेवाली वस्तु को अलग करना। बंधन तोड़ना। जैसे,—टाँका खोलना, गाँठ खोलना, बेड़ी खोलना। ५. किसी बँधी हुई वस्तु को मुक्त करना। जैसे,—घोती खोलना। ६. किसी क्रम को चलाना या जारी करना। जैसे,—तनखाह खोलना। ७. ऐसी वस्तुओं का तैयार करना जो दूर तक रेखा के रूप में चली गई हों और जिनपर किसी वस्तु का आना जाना हो। जैसे,—सड़क खोलना, नहर खोलना। ८. कोई ऐसा नया कार्य आरंभ करना जिसका लगाव सर्वसाधारण या बहुत से लोगों के साथ हो। जैसे,—कारखाना खोलना, पाठशाला खोलना, दूकान खोलना। ९. किसी कारखाने, दूकान, दफ्तर आदि का दैनिक कार्य आरंभ करना। जैसे,—वह नित्य बड़े तड़के दूकान खोलता है। १०. किसी ऐसी सवारी को चला देना, जिसपर बहुत आदमी एक साथ बैठ सकें। जैसे,—नाव खोलना। ११. किसी गुप्त या गुढ़ बात को प्रकट या स्पष्ट कर देना। जैसे,—आप के पूछते ही वे सब खोल देंगे।

संयो० क्रि०—डालना।—बेना।

१२. किसी को अपने मन की बात कहने के लिये उद्यत करना। जैसे,—हमने उसे खोलना चाहा, पर वह नहीं खुला।

खोली—संज्ञा स्त्री [सं०] तरकश [को०]।

खोलिया—संज्ञा स्त्री [देश०] एक प्रकार की पनालीदार रस्सानी, जिससे बड़ई लकड़ी पर फूलपत्ती या बेलबूटा खोदते हैं।

खोली^१—संज्ञा स्त्री [सं० खोल] १. तकिए आदि के ऊपर चढ़ाने की पैली। गिलाफ। २. मोटी चादर।

खोली^२—संज्ञा स्त्री [हि० खोल] छोटी कोठरी।

खोवा—संज्ञा पुं० [सं० खुदि वेषणे = पीसना] खोया। मावा।

खोरा—संज्ञा पुं० [फ्रा० खोराह्] १. गेँ या जी की बाल ।
२. गुच्छा । मंजरी । गुच्छ [को०] ।

यौ०—खोशाचीं = (१) खेत में गिरे दाने बीननेवाला । उद्धृति ।
सिला बीननेवाला । (२) लाभ उठानेवाला । खोशाचीनी =
(१) मिला चुनना । उद्धृति (२) लाभ । प्राप्ति ।

खोशीदा—वि० [फ्रा० खोशीदह्] सूखा । सूखाया हुआ [को०] ।

खोसना—क्रि० म० [फ्रा० खोसना] भटकना ।

खोह—संज्ञा स्त्री० [सं० खोह] १. गुहा । गुहा । कंदरा । २.
पहाड़ के बीच का गहरा गड्ढा । ३. दो पहाड़ों के बीच की
तंग जगह ।

खोही—संज्ञा स्त्री० [सं० खोहक] १. पत्तों की छत्ररी । उ०—
सिर्गन जटा मुकुट मनुज गुमन युग तेगिने लगति नव पल्लव
खोही ।—तुलसी (शब्द०) । २. धोधी । खुदुआ । गेह । धूल ।

खौं—संज्ञा स्त्री० [सं० खन] १. खान । गड्ढा । २. अन्न संचित
करने का गहरा गड्ढा । इसका मुह ऊपर गुएँ का सा होता है ।

खौं(पुं) संज्ञा पुं० [सं० खन, प्रा० गघ] वृक्ष में वह स्थान जहाँ
ढाल से टहनी या टहनी में पानी निकलती है ।

खौंचा—संज्ञा पुं० [सं० घट + च] गोट छट का पहाड़ा । जैसे, -
ढोँचा, पोँचा, लोँचा आदि ।

खौंचा—संज्ञा पुं० [फ्रा० खानचा] एक प्रकार का मट्क या घाली
जिसमें मिर्चा आदि खाने पीने की वस्तुएँ रची जाती हैं ।

खौंटा—संज्ञा स्त्री० [हि० खोटना] १. खोटने की क्रिया या भाव ।
२. खोटने या नोचने के कारण (शरीर आदि पर) पड़ा-
हुआ चिह्न । खगोट । उ० निय निय हिय जु लगी चलत
पिय नखरेल खगोट । मगन देति न मरसई खौंटा खौंटा
खय खौंटा ।—बिहारी (शब्द०) ।

खौंटा—संज्ञा पुं० [सं० खन या खान्थ देश] १. अनाज रखने
का गड्ढा । खो । २. गड्ढा । गड ।

खौंदना—क्रि० म० [हि० खूंदना] नष्टभट करना । एकदम बेकार
कर देना । खरना । उ०—हय हिडिमात भागे जात,
पहुरात गज, भारी भीर डेलि पेनि रौद्र खौंदि टारही ।
—तुलसी ग्रं०, पृ० १०८ ।

खौफ—संज्ञा पुं० [सं० खौफ] १. वि० खौफनाक । डर । भय ।
भीति । दहशत ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगना ।—होना ।

खौफनाक—वि० [फ्रा० खौफनाक] डरावना । भयानक । भीतिप्रद ।
दहशत उत्पन्न करनेवाला ।

खौर—संज्ञा स्त्री० [सं० खौर या खुर से हि०] १. मस्तक पर लगे हुए
चंदन का आड़ा या धनुषाकार तिलक । चंदन का आड़ा
टीका । त्रिपुंड ।

विशेष—चंदन का मस्तक पर लप करके ऊपर उँगनी से खौरच-
कर चिह्न बनाते हैं ।

क्रि० प्र०—बेना ।—लगाना

२. स्त्रियों का एक गहना जो मस्तक पर पहना जाता है । ३.
मछली फँसाने का एक प्रकार का जाल ।

खौरना—क्रि० स० [हि० खौर + ना (प्रत्य०)] १. खौर लगाना ।
तिलक करना । चंदन का टीका लगाना । २. उलट पलट
देना । एक में मिला देना । बेतरतीब करना ।

खौरहा—वि० [हि० खौरा + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० खौरही]
१. जिसके सिर के बाल भड़ गए हों । २. जिसे खौरा रोग
हुआ हो (पशु) । जिसके शरीर में खुजली का रोग हो
(पशु) ।

खौरा—संज्ञा पुं० [सं० खौर, फ्रा० बालखौरह्] [वि० खौरहा]
एक प्रकार की बुरी खुजली जिसमें चमड़ा बिलकुल रूखा हो
जाता है और बाल प्रायः झड़ जाते हैं । यह रोग कुत्तों और
बिल्लियों आदि को भी होता है ।

खौरा—वि० जिसे खौरा रोग हुआ हो ।

खौरि(पुं)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खौर' । उ०—कठ मनि माल
कलवर चंदन खौरि गुहाई ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६५ ।

खौरी—संज्ञा स्त्री० [हि० खोपड़ी] १. खोपड़ी । २. (पुं० दे०
'खौरि' ।

खौरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] राख ।—(सोनारों की बोली) ।

मुहा०—खौरी करना = राख में मिला देना । राख के रूप में
कर देना ।

खौरी(पुं)—वि० [हि० खौरि] दीपयुक्त । दुष्ट । पीड़क ।

खौरु—संज्ञा पुं० [देश०] बैल या साड़ की डकार या बोली ।

खौलना—क्रि० प्र० [सं० ख्वेलन] (किसी तरल पदार्थ का)
उबलना । अत्यंत गरम होना । जोश खाना ।

मुहा०—भिजाज या दिमाग खौलना = बहुत अधिक क्रोध या
आवेश भाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

खौलाना—क्रि० स० [हि० खौलना] गरम करना । उबालना ।

खौहड़ा—वि० [हि०] दे० 'खौहा' ।

खौहा—वि० [हि० खाना > खाव + हा (प्रत्य०)] १. बहुत अधिक
खानेवाला । जिसकी खुराक बहुत ज्यादा हो । २. जिसको
खाने का लालच बहुत अधिक हो । ३. जो दूसरे की कमाई
पर अपना जीवन व्यतीत करे । दूसरे की कमाई खानेवाला ।

ख्यात—वि० [सं०] १. प्रसिद्ध । विदित । मशहूर । २. कथित ।
कहा हुआ । बरिष्ठ ।

ख्यात(पुं)—संज्ञा पुं० [सं० ख्याति] वर्णन । कथन । कथा ।
आख्यान । जैसे,—मुहणोत नैणसी री ख्यात ।

ख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रसिद्धि । शोहरत । नामावरी । २.
नाम । शीर्षक । अभिधान (को०) । ३. वर्णन । कथन (को०) ।
४. प्रशंसा । प्रशंस्त (को०) । ५. दर्शन में उपयुक्त पद द्वारा
वस्तुओं के विवेचन की शक्ति । ज्ञान (को०) ।

क्रि० प्र०—फैलाना ।—होना ।

ख्यापक—वि० [सं०] ख्यापन करनेवाला । व्यक्त करनेवाला [को०] ।

ख्यापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विख्यात करना । प्रसिद्ध करना । २.
व्यक्त करना । खोलना । उद्घाटित करना । ३. अपराध
स्वीकार करना । ४. घोषणा करना [को०] ।

ख्याल^१—संज्ञा पुं० [घ० ख्याल] [वि० ख्याली] १. ध्यान ।

मुहा०—ख्याल करना = सोचना । याद करना । ख्याल पड़ना = ध्यान में आना । याद आना । ख्याल पर चढ़ना = दे० 'ख्याल पड़ना' । ख्याल में आना = समझ में आना । ख्याल में रखना = ध्यान रखना । देखते भालते रहना । याद रखना । स्मरण रखना । ख्याल रहना = याद रहना । ख्याल से उतरना या उतर जाना = भूल जाना । विस्मृत हो जाना । किसी के ख्याल पड़ना = किसी के पीछे पड़ना । किसी को दिक करने पर उतारू होना । उ०—राधा मन मैं यहै विचारति । ये सब मेरे ख्याल परी हैं अबहीं बातन लै निरुधारति ।—सूर (शब्द०) ।

२. अनुमान । अंदाज । अटकल । जैसे,—हमारा ख्याल है कि वह यहाँ नहीं आवेगा ।

मुहा०—ख्याल बाँधना = अनुमान लगाना । कल्पना करना ।

३. विचार । भाव । संमति । जैसे,—उनके बारे में आपका क्या ख्याल है ।

४. आदर । लिहाज । अदब ।

मुहा०—ख्याल करना—रिश्चायत करना । ख्याल में लाना = (१) रिश्चायत करना । (२) महत्वपूर्ण समझना । ख्याल रखना = (१) लिहाज रखना । (२) कृपादृष्टि रखना ।

५. एक विशेष प्रकार का गान जिसमें केवल एक स्थायी पद और एक अंतरा होता है तथा अधिकतर श्रृंगार रस का वर्णन रहता है । यह अनेक गग गगिनियों का होता है और तिल-वाड़ा ताल पर गाया बजाया जाता है । जैसे,—ख्याल केदारा, ख्याल देश, ख्याल जैतथी, ख्याल मिर्दूरिया आदि । ६. लावनी गाने का एक ढंग ।

ख्याल^१—संज्ञा पुं० [हि० खेल] खेल । क्रीड़ा । हँसी । बिलगो । उ०—(क) यह मुनि रुकमिणि भई बेहाल । जान परघो नहि हरि को ख्याल ।—सूर (शब्द०) । (ख) कंत बीस लोचन बिलोकिये कुमंत फल ख्याल लंका लाई कपि राई की सी भोपड़ी ।—तुलसी (शब्द०) ।

ख्यालिया—वि० [हि० ख्याल + इया (प्रत्य०)] ख्याल गानेवाला । वह जो ख्याल गाता हो ।

ख्याली^१—वि० [हि० ख्याल] १. कल्पित । फर्जी । अनुमित ।

मुहा०—ख्याली गुलाब पकाना = अमभव बातें सोचना । मनोराज्य करना । कल्पित बातें सोचना ।

२. खाली । सनकी । वहमी ।

ख्याली^२—वि० [हि० खेल] किसी प्रकार का खेल या कौतुक करने-वाला । उ०—ख्याली कपाली है ख्याली चर्ह दिसि भाँग के टाटिन के परदा है ।—तुलसी (शब्द०) ।

खिष्टान—संज्ञा पुं० [हि० खीष्ट] ईसाई । क्रिस्तान ।

खिष्टीय—वि० [अ० काइस्ट] १. ईसाई । २. ईसा संबंधी । ईसाई धर्म संबंधी ।

खीष्ट—संज्ञा पुं० [अ० काइस्ट] [वि० खिष्टीय] हजरत ईसामसीह ।

यौ०—खीष्टगोता = बाइबिल ।

ख्या^१—प्रत्य० [फा० ख्या] पढ़नेवाला । जैसे, गजलख्या ।

ख्या^२—संज्ञा पुं० [फा० ख्यान्] खान का लघु रूप । दे० 'खान' ।

ख्याद^१—वि० [फा० ख्यादह] १. पढ़ा लिखा । शिक्षित । २. निर्मित ।

ख्याजा—संज्ञा पुं० [तु० ख्वाजह] १. मालिक । स्वामी । पति । २. सरदार । ३. कोई प्रसिद्ध पुरुष । ४. बड़ा व्यापारी । ५. ऊँचे दर्जे का मुसलमान फकीर । ६. रनिवास का नपुंसक भृत्य । ख्वाजसारा । खोजा ।

ख्यान्—संज्ञा पुं० [फा० ख्यान्] थाल । परात ।

यौ०—ख्यानपोश = वह कपड़ा जिससे पकवान, मिठाई आदि से भरे खान को ढक देते हैं ।

ख्यान्चा—संज्ञा पुं० [फा० ख्यान्चह] एक बड़ी यात्री (या शीशेदार मंदूक) जिसमें मिठाई, पकवान आदि बेचने के लिये रखते हैं । दे० 'खोन्चा' ।

ख्याना(पुं०)—क्रि० स० [हि० ख्याना] खिलाना । उ०—छल कियो पांडवनि कौरव कपट पासा ठरन । ख्याय विष, गृह लाय दीन्हो, तउ न पाए जरन ।—सूर, १२०२ ।

ख्यानी—संज्ञा स्त्री० [फा० ख्यानी] पढ़ना । मुनाना ।

विशेष—इसका व्यवहार समास के अंत में ही होता है; जैसे, गजलख्यानी ।

ख्याब—संज्ञा पुं० [फा० ख्याब] १. सोने की अवस्था । नींद । २. स्वप्न ।

यौ०—ख्याबगाह = सोने का घर । शयनागार ।

मुहा०—ख्याब होना या हो जाना = (१) स्वप्नदोष होना । स्वप्न में वीर्यपात हो जाना । (२) कभी प्राप्त न होना ।

ख्यार—वि० [फा० ख्यार] १. बर्बाद । खराब । नष्टभ्रष्ट । सत्यानाश । २. अनाथ । निररक्त । बेइज्जत । अपमानित ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ख्यारी—संज्ञा स्त्री० [फा० ख्यारी] १. बर्बादी । खराबी । नष्टता । भ्रष्टता । २. अनादर । निरङ्कार । बेइज्जती । अपमान ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

ख्यास्त—संज्ञा स्त्री० [फा० ख्यास्त] चाह । इच्छा ।

ख्यास्तगार—संज्ञा पुं० [फा० ख्यास्तगार] [भाव० ख्यास्तगारी] चाहनेवाला । इच्छा करनेवाला ।

ख्यास्ता—वि० [फा० ख्यास्तह] चाहा हुआ । इच्छित । कासित । वाञ्छित ।

ख्याह—अव्य० [फा० ख्याह] या । अथवा । या तो ।

यौ०—ख्याह म ख्याह = (१) चाहे कोई चाहे या न चाहे । अपनी टेक से । जबरदस्ती । (२) जरूर । अवश्य ।

ख्याहाँ—वि० [फा० ख्याहाँ] १. इच्छा रखनेवाला । इच्छुक । चाहने-वाला । अनुरागी । प्रेमी ।

ख्याहिर—संज्ञा स्त्री० [फा० ख्याहिर] वहन । भगिनी ।

यौ०—ख्याहिरजादा = भानेज । भानजा ।

ख्याहिश—संज्ञा स्त्री० [फा० ख्याहिश] [वि० ख्याहिशमंद] इच्छा । अभिलाषा । आकांक्षा ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।

ख्याहिशमंद—वि० [फा० ख्याहिशमंद] ख्याहिश रखनेवाला । इच्छुक । आकांक्षी ।

ख्वैतर—संज्ञा पुं० [देश०] गोफना । डेलवास ।—(लश०) ।

ग—व्यंजन के स्पर्शत्रिक में कवर्ग का तीसरा वर्ण। इसका उच्चारण-स्थान कंठ है और शिक्षा में यह 'क' का गंभीर संस्पृष्ट रूप माना गया है। इसका प्रयत्न अवोष अल्पप्राण है।

गंग^१—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गा] १. एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में नी मात्राएँ होती हैं। अंत में दो गुरु होना आवश्यक है। जैसे,—रामा भजो रे। कामा तजो रे। नित याहि कीजै। सब छाँड़ि दीजै। २. एक कवि का नाम जो अकबर के समय में था।

गंग^२—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा] गंगा नदी। उ०—करै रखि तप्यं दिनं गंग न्हावै।—पृ० रा०, २१।१६८।

विशेष—समास में समस्त पद के आदि में गंगा का कभी कभी गंग हो जाता है। जैसे,—गंगदत्त, गंगबास, गंगजमुन, गंग-बचन, गंगजल इत्यादि।

मुहा०—गंगगति खेला = गंगालाभ करना। मृत्यु होना। उ०—मरे जो चले गंगगति लेई। तेहि दिन तहाँ धरी को देई।—जायसी प्र०, पृ० ५३।

गंग^३—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] गंगा नदी (स्त्री०)।

यौ०—गंगबहार। गंगशिकस्त।

गंगई—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व० गे गे] मैना की जाति की एक चिड़िया। गलगनिया।

विशेष—यह डेढ़ दो बालिश लकी और गहरे भूरे रंग की होती है। यह भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रांतों में होती है और खेतों, मैदानों और जंगलों में छोटे छोटे झुंडों में फिरती है। इसके झंडा देने का कोई नियम समझ नहीं है। यह झाड़ में घोंगला बनाती है और चार अंडे देती है। यह बहुत कोनती है।

गंगका—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा] गंगा नदी (स्त्री०)।

गंगकुरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा + कुर] एक प्रकार की हल्दी जो कटक में होती है। इसकी गाँठें लंबी और बड़ी होती हैं।

गंगख (पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा] गंगा। मंदाकिनी। उ०—करै रखि तप्यं दिनं गंग न्हावै। तहाँ उज्जल गंगख नीर धावै।—पृ० रा०, २१।१३८।

गंगतिरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० गंग + तीर] एक पौधा जो सजल भूमि में होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ बड़ी और नोनिया की पत्तियों के समान सिरे पर नुकीली होती हैं। इसमें पीपल के समान बाल निकलती हैं। वंशक में यह शीतल, रूखी, कड़ई, नेत्र और हृदय को हितकारी, शुभ्रजनक, मलशोधक तथा दाह और घण को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसे पनिमिगा और जलपीपल भी कहते हैं।

गंगवत्त—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गावत्त] मेंढको के एक राजा का प्राचीन नाम।

विशेष—इसने अपने दायादों को वित्त कर देने के लिये प्रिय-दर्शन नामक साँप को निमंत्रित किया। प्रियदर्शन ने दायादों को समाप्त कर इसके कुल को भी उच्छिन्न कर दिया। तब गंगवत्त अपनी जात लेकर बाहर निकल भागा। पंचतंत्र में यह कथा विस्तार से निखित है।

गंगधर—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गाधर] महादेव। शंकर। उ०—गिरिवर-धर अरु गंगधर चरन सरन सिर नाई।—हम्पीर०, पृ० १।

गंगधार(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि० गंगा + धार] गंगा की धारा या प्रवाह। उ०—संभु जटासूट पर चंद की छुटी है छटा चंद की छटान पै छटा है गंगधार की।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५३।

गंगबहार—संज्ञा पुं० [फ्रा० अपवा हि० गंगा + फ्रा० बहार = बाहर या ऊपर लाया हुआ] वह जमीन जो गंगा या किसी और नदी की धारा या बाढ़ के हटने से निकल आती है और जिसपर उस नदी के द्वारा लाई हुई मिट्टी जमी रहती है।

गंगजा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कंद। शलजम।

गंगशिकस्त—संज्ञा पुं० [फ्रा० या हि० गंगा + फ्रा० शिकस्त = तोड़ा हुआ] वह जमीन जिसे कोई नदी काट ले गई हो।

गंगसुत—संज्ञा पुं० [हि० गंग + सं० सुत] दे० 'गंगासुत'। उ०—मारघो करण गंगसुत दौना।—कबीर सा०, पृ० ५०।

गंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा] भारतवर्ष की एक प्रधान नदी जो हिमालय से निकलकर १५६० मील पूर्व की बहकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है।

विशेष—इसका जल अत्यंत स्वच्छ और पवित्र होता है और इसमें कभी कीड़े नहीं पड़ते। हिंदू इस नदी को परम पवित्र मानते हैं और इसमें स्नान करना पुण्य समझते हैं। पुराणों में इसे हिमालय की पुत्री माना है और इसकी माता का नाम मनोरमा लिखा है, जो सुमेर की कन्या थी। कहते हैं, गंगा पहले स्वर्ग में थी। जब सगर के साठ हजार पुत्रों को कपिल जी ने भस्म कर डाला। तब उनके उद्धार के लिये भगीरथ गंगा जी को स्वर्ग से पृथिवी पर लाए। गंगा जब स्वर्ग से गिरी थी, तब उन्हें शिव जी ने अपनी जटा में धारण किया था। इसी से शिव जी की जटा में गंगा मानी जाती है। पृथिवी पर गिरने पर गंगा भगीरथ के साथ गंगासागर की, जहाँ कपिल जी ने सगर के पुत्रों को भस्म किया था, जा रही थी कि इसी बीच में जह्नु ऋषि ने उन्हें पी लिया और भगीरथ के बहुत प्रार्थना करने पर उन्हें अपने जानु से निकाला। इसी से गंगा का नाम जह्नुसुता आदि पड़ा। पुराणानुसार गंगा की तीन धाराएँ हैं—एक स्वर्ग में जिसे 'आकाशगंगा' कहते हैं, दूसरी पृथिवी पर और तीसरी पाताल में। यह नदी गंगोत्री की पहाड़ी से, जो १३, ८०० फुट ऊँची है, बर्फ के पिघलने से निकलती है और मंदाकिनी तथा अलकनंदा से मिलकर हरि-

द्वार के पास पथरीले मैदान में उतरती है। यमुना, गोमती, घाघरा, बानगंगा, गंडक आदि नदियाँ इसमें गिरती हैं। हिंदुओं के प्रधान तीर्थ काशी, प्रयाग आदि इसी के किनारे हैं। (कभी कभी साधारणतः नदी के लिये भी इस पद का प्रयोग होता है। यौ०—गंगाधर। गंगाजल। गंगापुत्र।

मुहा०—गंगा उठाना = गंगाजल उठाकर शपथ खाना। गंगा की शपथ करना। गंगा और मदार का साथ होना = दो असम वस्तुओं या प्रवृत्तियों का साथ साथ होना। उ०—आपका हसारा मेल जैसे गंगा और मदार का साथ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४। गंगा पार करना = देश से निकालना। गंगा नहाना = कृतार्थ होना। छुट्टी पाना। जैसे,—तुम यहाँ से जाओ, तो हम गंगा नहाएँ। गंगा बुहाई = गंगा की शपथ। गंगालाभ होना = देहावसान होना। मृत्यु प्राप्त करना।

पर्या०—विष्णुपदी। जाह्नवी। भार्गवी। त्रिपथगा। सुरनि-
मग्रा। त्रिस्तोता। स्वरापगा। सुरापगा। अलकनंदा। अंदा-
किनी। सुरनदी। अघ्वगा।

गंगाका—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गाका] गंगा।

गंगाक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] गंगा और गंगा के दोनों तटों से दो दो कोस पर्यंत भूभाग।

विशेष—इसके अंदर मरनेवाले का मोक्ष हो जाता है।

गंगागति—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गागति] मोक्ष। मुक्ति।

गंगाचिल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गाचिल्ली] एक जलपक्षी जिसका सिर काले रंग का होता है।

पर्या०—देवट्टी। विदवका। जलकुक्कुटो।

गंगाजमुनी—वि० [हि० गंगा + जमुना] १. मिलाबुला। संकर। दो-
रंगा। २. सोने चाँदी, पीतल तंबू आदि दो धातुओं का बना हुआ। सुनहले रूपहले तारों का बना हुआ। जिसपर सोने चाँदी दोनों का काम हो। ३. काला उजला। स्याह सफेद।
अबलक।

गंगाजमुनी^२—संज्ञा स्त्री० १. कान का एक गहना। २. वह दाल जिसमें भरहर और उर्द की दाल मिली हो। केवटी दाल। ३. जरतारी का ऐसा काम जिसमें सुनहले और रूपहले दोनों रंग के तार हों। ४. अफीम मिली हुई भांग। अफीम से युक्त भांग की सरदाई (बनारस)।

गंगाजल—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गाजल] १. गंगा का पानी। २. एक कपड़े का नाम जो बारीक और सफेद रंग का होता है। पश्चिम में लोग इसकी पगड़ी बाँधते हैं। उ०—गंगाजल की पाग सिर सोहत श्री रघुनाथ। शिव सिर गंगाजल किषी चंद्र चंद्रिका साथ।—केशव (शब्द०)।

गंगाजली^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गाजल + हि० ई] १. काँच या धातु की बनी हुई सुरगही या शीशी जिसमें यात्री गंगाजल भरकर ले जाते हैं। उ०—बद्रीनाथ गंगोतरी की यात्रा में राता ने रामेश्वर के लिये गंगाजली भरी।—किन्नर०, पृ० १००।

मुहा०—गंगाजली उठाना = गंगाजली हाथ में लेकर शपथ खाना। गंगा की कसम खाना।

२. धातु की सुरगही जिसमें पीने के लिये पानी रखा जाता है।

३. लोटे जैसा एक वात्र जिसमें कड़ीदार ढक्कन रहता है।

गंगाजली^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गेहूँ जो भूरे रंग का और कड़ा होता है।

गंगाजाल—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गा + जाल] बंगाल के मछवाहों का जाल जो रीहा घास से बनता है।

गंगाटेय—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गाटेय] एक प्रकार का मत्स्य। भींगा मछली [को०]।

गंगादत्त—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गादत्त] भीष्म पितामह [को०]।

पर्या०—गंगाजज। गंगापुत्र। गंगासुत। गंगेय।

गंगाद्वार—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गाद्वार] हरिद्वार।

गंगाधर—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गाधर] १. शिव। महादेव। २. समुद्र। ३. एक औषध का नाम।

विशेष—यह नागरमोथा, मोचरस आदि के योग से बनती है और संग्रहणी रोग में दी जाती है। इसे 'गंगाधर रस' भी कहते हैं।

४. चौबीस अक्षरों का एक वर्णवृत्त।

विशेष—इसके प्रत्येक चरण में आठ रगण होते हैं। इसे गंगोदक भी कहते हैं। ३० 'गंगोदक'।

गंगाधार—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गाधार] समुद्र [को०]।

गंगानहान—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गा + नहान] १. किसी पर्व पर गंगा-स्नान का मेला। २. किसी तीर्थ में स्नान करना। उ०—कलकी में गंगानहान की बड़ी उमंगें।—अपरा, पृ० ११६।

क्रि० सं०—करना।—होना।

गंगापत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गापत्री] एक वृक्ष का नाम। सुगंधा। गंधपत्रिका [को०]।

गंगापथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश। (डि०)।

गंगापाट—संज्ञा पुं० [हि० गंगा + पाट] एक भीरी जो घोड़े के तंग के नीचे होती है।

विशेष—यह भीरी यदि तंग से बाहर हो, तो शुभ मानी जाती है; अन्यथा तंग के नीचे पड़ने से अशुभ होती है।

गंगापार—संज्ञा पुं० [सं०] गंगा का दूसरा किनारा या तीर।

गंगापुजैया—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा + हि० पुजैया] २० 'गंगापूजा'।

गंगापुत्तरी—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गापुत्र] २० 'गंगापुत्र'। उ०—घाट जाओ तो गंगापुत्तर नौचें दें गलफाँसी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३३३।

गंगापुत्र—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गापुत्र] १. भीष्म। २. कार्तिकेय [को०]।

३. एक प्रकार के ब्राह्मण जो गंगा आदि नदियों के किनारे पर रहते हैं और घाटों पर दान लेते हैं। ४. ब्रह्मवैवर्त के अनुसार एक वर्णसंकर जाति।

विशेष—यह जाति भेट पिता और तीवरी माता से पैदा कही गई है। यथा—'लैटालीवरकन्यायां गंगातीरे च शौनक। बभूव सद्यो यो बालो गंगापुत्रः प्रकीर्तितः'।

गंगापूजा—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गापूजा] विवाह के बाद की एक रीति। कंगन छोड़ना। बरनवार।

विशेष—इसमें गौतम और कुटुंब की स्त्रियाँ वर को साथ लेकर गाती बजाती गाँव के बाहर नदी या तालाब पर जाती हैं और वहाँ गाँव के देवता आदि की पूजा करके घर लौट आती हैं। इसी दिन वर या वधू के हाथ के कंगन खोले जाते हैं। इस दिन विवाह का कृत्य समाप्त होता है। इस रीति को 'कंगन छोड़ना' या 'वरनवार' भी कहते हैं।

गंगायात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गायात्रा] १. मरणासन्न मनुष्य का गंगा के तट पर मरने के लिये गमन। २. प्रत्यु।

गंगाराम—संज्ञा पुं० [हि० गंगा + राम] तोते का प्यार का नाम।

गंगाल—संज्ञा पुं० [सं० गंगा + आलय] पानी रखने का बड़ा बरतन। कंठान।

गंगालहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गालहरी] गंगा से संबंधित स्तुति-परक पद्यों का संग्रह। जैसे,—पंडितराज जगन्नाथ, पृथ्वीराज राठौर, और पद्माकर आदि द्वारा रचित इस प्रकार के छंदों का संग्रह।

गंगाला—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गा + आलय] वह भूमि जहाँ तक गंगा का खड़ाव पंचता है। कछार।

गंगालाभ—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गालाभ] गंगा की प्राप्ति। प्रत्यु।

मुहा०—गंगालाभ होना = (१) गंगा के किनारे पर मरना। मृत्यु होना। (२) बूबकर मरना। (३) मरना।

गंगावतरण—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गावतरण] स्वर्ग से गंगा का पृथ्वी पर आना [को०]।

गंगावतार—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गावतार] दे० 'गंगावतरण'।

गंगावासी—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गावासिन्] गंगा के किनारे रहनेवाला।

गंगासप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गासप्तमी] वैशाख महीने की शुक्ल पक्ष की सातमी [को०]।

गंगासागर—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गासागर] १. एक तीर्थ जो उग स्थान पर है जहाँ गंगा समुद्र में गिरती है।

विशेष—कहते हैं, यहाँ कपिल मुनि का आश्रम था और यही जगत् के पुत्रों को उन्होंने भस्म किया था। यह स्थान कलकत्ते से दक्षिणपूर्व गुरुवन में है, जहाँ मकर की संक्राति के दिन बड़ा मेला लगता है।

२. गोरे कपड़े की लड़ी हुई जनानी धोती जो १७-१८ हाथ लंबी होती है। ३. एक प्रकार की बड़ी टोंटीदार भारी जो हाथ धुलाने के काम आती है।

गंगासुत—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गासुत] १. कातिकेय। २. भीष्म [को०]।

गंगामून—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गामून] दे० 'गंगासुत'।

गंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गिका] गंगा।

गंगेऊ—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गेय, गङ्गेय] भीष्म। उ०—तुम ही द्रोण और गंगेऊ। तुम सेवो जैसे सहदेऊ। जायसी (शब्द०)।

गंगेय—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गेय] गंगा के पुत्र भीष्म पितामह।

गंगेश—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गेश] शिव। महादेव।

गंगोक्त—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गोक्त] दे० 'गंगोदक'। उ०—तुलसी रामहि पवित्रे निपट हानि सुनु ओक्त। सुरसरि गत गोई सलिल, सुरा सरिस गंगोक्त।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६१।

गंगोतरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गंगोतरी] दे० 'गंगोत्तरी'। उ०—वहीनाथ गंगोतरी की यात्रा में रातों में रामेश्वर के लिले गंगाजली मरी।—किन्नर०, पृ० १००।

गंगोत्तरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गावतार] गढ़वाल में हिमालय पर्वत पर एक स्थान जहाँ गंगा ऊपर से गिरती है।

विशेष—यह हिंदुओं का एक प्रधान तीर्थ है और यहाँ गंगादेवी का एक मंदिर बना हुआ है।

गंगोद—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गा + उद = जल] दे० 'गंगोदक'। उ०—धन्य नदी नद खोन, विमल गंगोद गोत जल।—काश्मीर०, पृ० १।

गंगोदक—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गोदक] १. गंगाजल। २. चौबीस यक्षों का एक वर्णवृत्त जिसमें आठ रंगण होते हैं।

विशेष—इसे गंगाधर, खंजन आदि भी कहते हैं। यह यषार्थ में सविष्णु छंद का दूता है। जैसे,—जन्म बीता सबै, चेत मीता अवे, कीजिन् का तबै, काल के आन के। मुंडमाला गरी, सीस गंगा धरे, आठ यामै हरे, घ्याइ लै गान के।

गंगोदिक—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गोदिक] दे० 'गंगोदक'। उ०—एक घट भाँहि पुलि गंगोदिक राख्यो आनि।—मुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५६४।

गंगोदुभेद—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गोदुभेद] जहाँ से गंगा नदी निकलती है। गंगा का उद्गम [को०]।

गंगोला—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गोल] गोमेदक नामक मणि। उ०—गंधक गंजाफल गंगोला। गोपीचंदन लुटेउ अतोला।—सूदन (शब्द०)।

गंगौटी—संज्ञा स्त्री० [हि० गंगा + मिट्टी] गंगा के किनारे की बालू या मिट्टी।

गंगौलिया—संज्ञा पुं० [हि० गंगाल] एक प्रकार का खट्टा नीबू जिसका छिचका दानेदार होता है।

गंज—संज्ञा पुं० [सं० कञ्ज या खञ्ज] १. एक रोग का नाम जिसमें मिर के बाल उड़ जाते हैं और फिर नहीं जमते। चाँद। चंदलाई। खल्वाट। बुर्का। २. सिर का एक रोग जिसमें मिर में छोटी छोटी फुंगियाँ निकलती रहती हैं और जल्दी अच्छी नहीं होती। बालखोरा।

गंज—संज्ञा स्त्री० [सं० कञ्ज, सं० गञ्ज] १. खजाना। कोष। २. ढेर। अंबार। राशि। अटाला।

क्रि० प्र०—लगाना।

३. समूह। भुंड। उ०—के निदरहु के आदरहु सहहि स्वान सियार। हरप बिषाद न केसरिहि कुंजर गंजनिहार।—तुलसी (शब्द०)। ४. वह स्थान जहाँ अन्न आदि रखा जाय। गल्लाखाना। अंबारखाना। कोठी। भंडार। ५. गले की मंडी। गोला। हाट। बाजार।

मुहा०—गंज डालना = बाजार लगाना। मंडी आबाद करना।

६. वह आबादी जिसमें बनिए बसाए जाते हैं और बाजार लगता है। जैसे,—पहाड़गंज, रायगंज। ७. मद्यपात्र। ८. मदिरालय। कलवरिया। ९. वह चीज जिसमें बहुत सी काम की चीजें एक

साथ एकत्र हों। जैसे,—एक बरतन जो गगरे या बाल्टी के आकार-का होता है और जिसमें रसोई बनाने के बहुत से बरतन होते हैं, गंज कहलाता है। इसी प्रकार वह चाकू जिसमें चाकू, कैंची मोचने आदि बहुत सी चीजें होती हैं, गंज कहलाता है।

यौ०—गंजगुठारा, गंजगुठारा = दे० 'गंजगोला'। गंजगोला। गंजचाकू।

गंज^३—संज्ञा पुं० [सं० गज] १. भवजा। तिरस्कार। २. गोशाला। गोठ (को०)।

गंज^४—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक मोटी बना जिगमें नीचे की ओर झुकी हुई टहनियाँ निकलती हैं।

विशेष—इसकी पत्तियाँ सीकों में लगती हैं और चार से आठ इंच तक लंबी, सिर की ओर चौड़ी, दलदार और चिकनी होती हैं। इसमें पाँच सात इंच लंबी, एक इंच मोटी फलियाँ लगती हैं, जिनपर रोंई होती हैं। टहनियों से रेशा निकलता है और पत्तियाँ चौपायों को खिलाई जाती हैं। यह लता जंगल के पेड़ों की बहुत हानि पहुँचाती है और देड़गाढ़न से लेकर गोरखपुर और बुंदेलखंड तक पाई जाती है। इसे गोंज भी कहते हैं।

गंजगोला—संज्ञा पुं० [हि० गंज+गोला] तोप का वह गोला जिसके अंदर बहुत सी छोटी छोटी गोलियाँ भरी रहती हैं। दे० 'किरिच' का गोला'।—(नश०)।

गंजचाकू—संज्ञा पुं० [हि० गंज + का चाकू] वह चाकू जिसमें फल के साथ ही सरीता, मोचना आदि लगा हो।

गंजड़—वि० [हि० गाँजा] दे० 'गँजेड़ी'। उ०—लोग निकम्मे भंगी गंजड़ लुच्चे बे बिसवासी।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० १, पृ० ३३३।

गंजन^१—संज्ञा पुं० [सं० गज्जन] १. भवजा। तिरस्कार। उ०—(क) रस सिगार गंजन किये, कंजन भंजन देन। भंजन रंजन हू बिना खंजन गंजन नैन।—बिहारी (शब्द०)। (ख) काली विष गंजन दह आये।—सूर (शब्द०)। २. हरा देना। ३. संगीत में अष्टताल के आठ भेदों में से एक। ३. कष्ट। तकलीफ। उ०—(क) जेहि मिलि बिछुरनि श्री तपनि अंत होइ जो नित। तेहि मिलि गंजन को सहे नरु विनु मिले निश्चित।—जायसी (शब्द०)। (ख) पुण्यात्मा सुख से, वो पापी सब नाना गंजन से जाते है।—सदल मिश्र (शब्द०)। ४. नीचा दिखाना। ५. नाश।

गंजन^२—वि० १. भवजा करनेवाला। २. हरा देनेवाला। ३. कष्ट या दुःख देनेवाला। ४. नीचा दिखानेवाला। ५. नाशक। उ०—जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन विपति बरुष।—मानस, १। १८६।

गंजना—क्रि० स० [सं० गज्जन] १. भवजा करना। निरादर करना। २. घूर घूर करना। नाश करना। उ०—राम कामअरि कर धनु भंजा। भृगुपति सहित नृपन मद गंजा।—विश्राम (शब्द०)।

गंजनी—संज्ञा स्त्री० [देश० ?] एक घास जो सुगंध बनाने के काम में आती है। इसकी महक नीबू से मिलती जुलती होती है।

गंजफा—संज्ञा पुं० [फा० गंजफह] दे० 'गंजीफा'।

गंजबख्श—वि० [फा० गंजबख्श] खजाना लुटा देनेवाला। बहुत बड़ा दानी (को०)।

गंजा^१—संज्ञा पुं० [सं० खज्ज या कज्ज] गंज रोग। वि० दे० 'गंज'।

गंजा^२—वि० [वि० स्त्री० गंजी] जिसमें गंज रोग हो गया हो। जिसके सिर के बाल झड़ गए हों।

गंजा^३—संज्ञा स्त्री० [सं० गज्जा] १. पराङ्गुटी। भोपडी। २. मदिरालय। शराबखाना। ३. मद्य पीने का पाय। ४. रत्न की खान (को०)।

गंजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गज्जिका] शराबखाना। मदिरालय (को०)।

गंजित—वि० [सं० गज्जित] १. अपमानित। तिरस्कृत। २. कष्ट-युक्त। दुखी। ३. नष्ट (को०)।

गंजी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गंज] १. डेर। समूह। गाँज। जैसे,—घास की गंजी, घास की गंजी। २. शकरकंद। कंदा।

गंजी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० गुएरनेसी = एक टाग] बुनी हुई छोटी कुरती या बंडी जो बदन में बिपकी रहती है। बनिपायन।

गंजी—संज्ञा पुं० [हि० गाँजा] दे० 'गँजेड़ी'।

गंजीना—संज्ञा पुं० [फा० गंजीनह] कोष। खजाना (को०)।

गंजीफा—संज्ञा पुं० [फा० गंजीफह] एक खेल जो आठ रंग के ६६ पत्तों से खेला जाता है।

विशेष—इसके पत्तों के आकार गोल होते हैं और रंग लाल। ये पत्ते कड़े होते हैं और फेंकने से मुड़ने नहीं है। रंगों के नाम चंग, बरात, कियस, शमसेर आदि हैं। प्रत्येक रंग के १२, १२ पत्ते होते हैं। इस खेल को तीन आदमी खेलते हैं।

गंटम—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ ?] लोहे की कलम जिसमें ताड़पत्र पर लिखते थे।

गंठ^१—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थि प्रा० गंठि] गाँठ। उ०—कर डेरा पण धारियो, जमण तणी उपकंठ। उवर तणी इंद्रमिध गूँ, साह प्रकामी गंठ।—रघु० क०, पृ० २७।

गंठिय(पुं)—वि० [सं० ग्रन्थित, प्रा० गंठिय] १. बाँधा हुआ। २. गुँथा हुआ। ३. गाँठवाला।

गंठी^१—संज्ञा स्त्री० [वि०] दे० 'गाँठ'।

गंड—संज्ञा पुं० [सं० गण्ड] १. कपोल। गाल। २. कनपटी। ३. गाल से कनपटी तक का भाग।

यौ०—गंडवेश। गंडपिंड। गंडप्रवेश। गंडमंडल। गंडस्थल। गंडस्थली—कनपटी। गाल।

४. ज्योतिष के अनुसार ज्येष्ठा, श्लेषा और रेवती के अन्त के पाँच दंड और मूल, मघा तथा अश्विनी के आदि के तीन दंड।

विशेष—इनमें उत्पन्न होनेवाले लड़के को दूषित मानते हैं। लोगों का विश्वास है कि गंड में उत्पन्न लड़के का मुँह पिता को नहीं देखना चाहिए। दिन में ज्येष्ठा और मूल का गंड, रात में श्लेषा और मघा का गंड तथा सायंकाल, प्रातःकाल

रेवती और अश्विनी का गंड अधिक दोषकारक माना जाता है; और इनमें उत्पन्न बालक क्रम से पिता, माता, और धपना घातक माना गया है।

५. गंडा जो गले में पहना जाता है। ६. फोड़ा। ७. चिह्न। लकीर। दाग। ८. गोल मंडनाकार चिह्न या लकीर। गराड़ी। गंडा। ९. गाँठ। ग्रंथि। (लाश्व०, शरीर की नाड़ी)। उ०—नव गज दम गज गज उगनीमा पुगिया एक तनाई। सात सूत डे गंड बहतरि पाट लगी ग्रथिकाई।—कबीर ग्रं०, पृ० १५३। १०. गेडा। ११. बोधी नामक नाटक का एक अंग जिसमें सहसा प्रश्नोत्तर होते हैं। १२. घेघा (की०)। १३. योद्धा (की०)।

गंडक^१—संज्ञा पुं० [सं० गण्डक] १. गले में पहनने का जंतर या गंडा। २. वह देश जहाँ गंडकी नदी बहती है तथा वहाँ के निवासी। ३. गाँठ। ४. एक रोग जिसमें बहुत से फोड़े निकलने हैं। ५. गेडा। ६. चिह्न। निशान। ७. रुकावट। बाधा (की०)। ८. वियोजन। पाण्डव। अलगवाव (की०)। १०. चार चार करके किमी वस्तु की गणना (की०)। ११. चार कोड़ियों के मूल्य का सिक्का (की०)। १२. ज्योतिष का एक अंग। फलित ज्योतिष (की०)।

गंडक^२—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डकी] दे० 'गंडकी'।

गंडका^१—संज्ञा पुं० [सं०] श्वान। कुत्ता। उ०—बीछु बानर ब्याल निष गरदभ गंडका गोल। ऐ अलगगाइज रासगा श्री उपदेश प्रमोल।—बाँगी० ग्रं०, भा० २, पृ० ११।

गंडका^२—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डका] वीग वणों का एक वृत्त जिसे 'वृत्त' और 'दंडिका' भी कहते हैं।

गंडकी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डकी] एक नदी जो नेपाल में हिमालय से निकलती है और बहुत सी छोटी छोटी नदियों को लेती हुई पटने के पास गंगा में गिरती है। इसमें काले रंग के गोल गोल पत्थर निकलते हैं, जो शालिग्राम कहलाते हैं। इन्हें विष्णु का प्रतीक मानकर लोग पूजते हैं। उ०—गंगा यमुना सरस्वती गोदावरी समान। रची नदी तब गंडकी जहाँ तहें शिल उत्पान।—कबीर सा०, पृ० ११८।

यौ०—गंडकीपुत्र। गंडकीशिला = शालिग्राम।

गंडकी^२—संज्ञा पुं० रात्रि मात्राओं का एक ताल जिसमें १३ आघात और ४ खाली होते हैं।

विशेष—इसका बोल इस प्रकार है—
 + २
 देत देत गून गून धा कता
 ० ३ ४ ५ ६ ७ ० ८
 दंता केटे ताग देत देत गून गून धा कता दंता कड़ा धा धा
 ९ १० ११ १२ १३ +
 तेरे केटे तांघा गुंगा गदिधेने नागदेत तेरे केटे। धा।

गंडकुसुम—संज्ञा पुं० [सं० गण्डकुसुम] हाथी की कनपटी से बूनेवाला मद (की०)।

गंडकूप—संज्ञा पुं० [सं० गण्डकूप] १. पर्वत की चोटी का ऊपरी भाग। २. गहाड़ की चोटी पर बना हुआ कुआँ (की०)।

गंडगात्र—संज्ञा पुं० [सं० गण्डगात्र] शरीफा (की०)।

गंडगोपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डगोपालिका] एक प्रकार का फोड़ा। म्बालिन्।

गंडग्राम—संज्ञा पुं० [सं० गण्डग्राम] बड़ा या प्रसिद्ध गाँव (की०)।

गंडवूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डवूर्वा] १. गाँड़र घास जिसकी जड़ खस कहलाती है। २. वह दूब जो पृथ्वी पर फैलती और जड़ पकड़ती हुई दूर तक चली जाती है।

गंडदेश—संज्ञा पुं० [सं० गण्डदेश] कपोल। गंडप्रदेश। गाल (की०)।

गंडनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डनी] सरपोका। सर्पाधी। सरहटी।

गंडभित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डभित्ति] हाथी के गंडस्थल का छिद्र जिससे मद निकलता है (की०)।

गंडमंडल—संज्ञा पुं० [सं० गण्डमण्डल] कनपटी। उ०—ललित गंडमंडल सुविमल भाल तिलक भनक मंजु तर मयंक अंक रुचि बंक भौहै।—तुलसी (शब्द०)।

गंडमालक—संज्ञा पुं० [सं० गण्डमालक] दे० 'गंडमाला' (की०)।

गंडमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डमाला] एक रोग जिसमें गले में छोटी छोटी बहुत सी फुड़ियाँ लगातार माला की तरह एक पंक्ति में निकलती हैं। यह रोग दड़ी कठिनता से अच्छा होता है। गलगंड। कंठमाला।

गंडमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डमालिका] लजाधुर की लता। लज्जालु। लाजवंती (की०)।

गंडमाली—वि० [सं० गण्डमालिन्] गंडमाला का रोगी (की०)।

गंडमूर्ख—वि० [सं० गण्डमूर्ख] घोर मूर्ख। भारी बेवकूफ।

गंडरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डरी] गंडरा घास। गाँड़र।

गंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डलिन्] १. छोटी पहाड़ी। २. शिव।

गंडशिला—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डशिला] भागी चट्टान (की०)।

गंडसूचि—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डसूचि] नृत्य में एक प्रकार का भाव।

गंडस्थल—संज्ञा पुं० [सं० गण्डस्थल] कनपटी। उ०—उरभि मरगजी माल चाल मदगज जिमि मलकत। धूमत रसभरे नैन गंडस्थल थमकन भलकत।—नंद० ग्रं०, पृ० २३।

गंडांत—संज्ञा पुं० [सं० गण्डान्त] फलित ज्योतिष शास्त्र के अनुसार ज्येष्ठा, श्लेषा और रेवती के अंत के पाँच या तीन दंड तथा मूल, मघा और अश्विनी के अंत के तीन दंड।

विशेष—इनमें उत्पन्न होनेवाले बालक दोषी माने जाते हैं और उनके उस दोष की शांति के लिये पूजा की जाती है।

गंडा^१—संज्ञा पुं० [सं० गण्डक = गाँठ] १. गाँठ जो किमी रस्ती या तांग में लगाई जाय। जैसे—गेराँव का गंडा।

क्रि० प्र०—मारना।—लगाना।

गंडा^२—संज्ञा पुं० [सं० गण्डक = गले में पहनने का जंतर] १. वह बटा हुआ तागा जिसमें मंत्र पढ़कर गाँठ लगाई जाती है। इसे लोग रोग और भूत प्रेत की बाधा दूर करने करने के लिये गले में बाँधते हैं। उ०—इसके हाथ से गंडा गिर गया सो यह पड़ा है।—शकुंतला, पृ० १४३।

मुहा०—गंडालाबीज = मंत्रयंत्र। झाड़फूँक। जादूटोना। टोटका।

गंडा ताबीज करना = गंडे ताबीज से इलाज करना।

मंत्र तंत्र से रोग को अच्छा करना। झाड़फूँक करना।

२. वह धागा जिसे मंत्र पढ़कर रोगी के गले या हाथ में बाँधते हैं।

३. जोड़ों के गले में पहनाने का पट्टा जिसमें कमी कमी कौड़ियाँ और पुँघरू के दाने भी मूँचे जाते हैं ।

गंडा^३—संज्ञा पुं० [सं० गण्डक] पैसे, कौड़ी आदि के गिनने में चार चार की संख्या का समूह । जैसे,—पाँच गंडे कौड़ियाँ, चार गंडे पैसे ।

गंडा^३—संज्ञा पुं० [सं० गण्ड = चिह्न] १. झाड़ी लकीरों की पंक्ति जैसी कनखूरे की पीठ पर या साँप के पेट में देखी जाती है । झाड़ी धारी । २. तोते आदि चिड़ियों के गले की रंगीन धारी । कंठा । हँसली ।

मुहा०—गंडा पड़ना = धारी होना वा निकलना ।

गंडाताबीज—संज्ञा पुं० [हि० गंडा + प्र० ताबीज] झाड़ू फूँक । जंतर मंतर ।

गंडारि—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डारि] कचनार ।

गंडाली—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डाली] गंड दूर्वा । गोडर घास ।

गंडासा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गंडासा' ।

गंडि—संज्ञा स्त्री० [सं० गरिड] १. पेड़ का स्कंध । तना । २. घघेला । घेघा [को०] ।

गंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गरिडका] १. एक प्रकार का छोटा पत्थर । २. एक प्रकार का पेय । ३. वह वस्तु जो पहली भवस्था पार कर दूसरी भवस्था में पहुँच गई हो । ४. गंडे के चमड़े की बनी हुई एक प्रकार की छोटी नाव ।

गंडिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गरिडिनी] दुर्गा ।

गंडीर—संज्ञा पुं० [सं० गण्डीर] १. एक साग जिसे गिडनी भी कहते हैं । वैद्यक में यह कफनाशक माना जाता है । २. पोई का साग । ३. सेहूड़ा । ४. धनुष । उ०—कुंजर चीटी के पगि बाँधा । गहि गंडीर उलटि सर साधा ।—प्राण०, पृ० १३६ । ५. गन्ना या ऊख की छोटी टुकड़ी । गंडेरी । उ०—कोलु बिच गंडीर ज्यो एहु जन एवँ होय ।—प्राण०, पृ० २४८ । ५. थोड़ा । बीर (को०) ।

गंडीरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डीरी] दे० 'गंडीर' ।

गंडु—संज्ञा पुं० [सं० गण्डु] १. घण्टि । गाँठ । २. अस्थि । हड्डी । ३. गेंडुक । तकिया [को०] ।

गंडुक^७—संज्ञा पुं० [सं० गण्डुक] दे० 'गंडूष' ।

गंडुपथ—संज्ञा पुं० [सं०] पील पाँव रोग ।

गंडू^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डू] १. तेल । २. दे० 'गंडू' [को०] ।

गंडू^२—वि० [हि० गंडू] दे० 'गंडू' ।

गंडूक—संज्ञा पुं० [सं० गण्डूक] दे० 'गंडूष' ।

गंडूपद—संज्ञा पुं० [सं०] केंचुआ ।

यौ०—गंडूपदभब ।

गंडूपदभब—संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु ।—(डि०) ।

विशेष—संभव है, प्राचीनों का यह विश्वास रहा हो कि केंचुएँ से 'सीसा' निकलता है, जैसे, अबतक बहुत से लोगों की धारणा है कि मोर के पंख से ताँबा निकलता है ।

गंडूल—वि० [सं० गण्डूल] गाँठवाला । गाँठदार । २. टेढ़ा । बक । झुका हुआ [को०] ।

गंडूष—संज्ञा पुं० [सं० गण्डूष] [स्त्री० गंडूषा] १. हथेली का गड्ढा । मूल्फ । २. कुल्फी । ३. हाथी की सूँड़ की नोक ।

गंडोपधान, गंडोपधानीय—संज्ञा पुं० [सं० गण्डोपधान, गण्डोपधानीय] तकिया [को०] ।

गंडोपल—संज्ञा पुं० [सं० गण्डोपल] बड़ा शिलाखंड [को०] ।

गंडोल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कन्ची शकर । गुड़ । २. ईख । इक्षु । ३. घास । कोर ।

गंडोलक—संज्ञा पुं० [सं० गण्डोलक] एक प्रकार का कीड़ा [को०] ।

गंडोलकपाद, गंडोलपाद—संज्ञा पुं० [सं० गण्डोलकपाद, गण्डोल पाद] फीलपाँव [को०] ।

गंतव्य—वि० [सं० गन्तव्य] जाने योग्य । गम्य । चलने योग्य । उ०—अपनी दुर्बलता बल सम्हाल गंतव्य मार्ग पर पैर धरे ।—कामायनी, पृ० १७० ।

गंता—संज्ञा पुं० [सं० गन्त] [स्त्री० गन्ती] जानेवाला । १. उ०—अघट घटना सुघट विघट विघटन विघट भूमि पाताल जल गगन गंता ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—इसका प्रयोग विशेष करके समस्त पद के अंत में होता है । जैसे—अप्रगंता ।

गंतु^१—वि० [सं० गन्तु] १. जानेवाला । चलनेवाला । २. पथिक । बटोही [को०] ।

गंतु^२—संज्ञा पुं० पथ । मार्ग [को०] ।

गन्त्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्त्रिका] छोटी गाड़ी [को०] ।

गन्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्त्री] गाड़ी जिसमें घोड़े या बैल जुते हों । यौ०—गन्त्रीरथ ।

गंद—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. मलिनता । मिलापन । २. अपवित्रता । ३. दुर्गंध । बदबू । ४. दोष । खराबी । ५. अशुद्धि । ६. गंदलापन । मटमिलापन ।

मुहा०—गंद बकना = गंदी बातें कहना या गालियाँ बकना ।

यौ०—गंदबहन = (१) जिसके मुँह से दुर्गंध आती हो । (२) दुर्गंधी । गालियाँ बकनेवाला । गंदबहनी = मुँह से कुबास या दुर्गंध आने का रोग । गंदबगल = जिसके बगल से दुर्गंध आती हो । गंदबगली = काँख या बगल से दुर्गंध आने का रोग ।

गंदगी^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. मिलापन । मलिनता । २. अपवित्रता । अशुद्धता । नापाकी ।

क्रि० प्र०—करना ।—फैलना ।—फैलाना ।—होना ।

३. मैला । गलीज । मल ।

गंदगी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्ध] दुर्गंध । बदबू ।

गंदना—संज्ञा पुं० [सं० गन्धन या फ्रा०] १. लहसुन या प्याज की तरह का एक मसाला जो तरकारी आदि में डाला जाता है । २. एक घास जो लहसुन की गाँठ में जो डालकर बोने से उत्पन्न होती है । यह चटनी आदि के लिये काम आती है । इसे दंदना भी कहते हैं ।

गंदम—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० गंदमी] एक पत्ती ।

विशेष—यह सात आठ इंच लंबा होता है और श्वेत के अनुसार

रंग बदलता है। जाड़े के महीनों में यह पंजाब और संयुक्त प्रांत में दिखाई पड़ता है। यह भुंड में रहता है; और छोटी झाड़ियों में घाम फूम से प्याले के आकार का घोंसला बनाता है।

गंधमगंदा—वि० [फ्रा० गदह + गंध] बहुत ही गंदा, खराब या बुरा।
उ०—दसी दुबारे मेल है सब गंधमगंदा।—चरण० बानी, पृ० ६२।

गंदा—वि० [फ्रा० गदह] [वि० स्त्री० गंदी] १. मैला। मलिन। उ०—बरसात में नदियों का पानी गंदा हो जाता है। २. नापाक। अशुद्ध। जैसे,—एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है। ३. घिनोना। घृणित। जैसे, तुम्हारी गंदी आदत नहीं जाती।
यौ०—गंदाहून। गंदापानी।

महुँ—गंदा करना = (१) खराब करना। अष्ट करना। (२) दागी करना। दाग लगाना। कलंकित करना।

गंदाहून—वि० [फ्रा० गदह + हून] जिसके मुँह से दुर्गंध आती हो। गंदहून।

गंदापानी—संज्ञा पुं० [फ्रा० गंदह + हि० पानी] १. मल। खराब। २. वीर्य। शुक्र धातु।—(बाजारू)।

महुँ—गंदा पानी निहालना = अशोभ्य स्त्री से मेल करना। संभोग करना।

गंदाबगल—संज्ञा पुं० [हि० गंदा + फ्रा० बगल] यह घोड़ा जिसके दोनों बगल दो भीरियाँ हो।

गंदुम—संज्ञा पुं० [फ्रा० तुन्स + सं० गोधूम] [वि० गंदुमी] गेहूँ।

गंदुमी—वि० [फ्रा० गंदुम] गेहूँ के रंग का। ललाई लिए हुए भूरा। गेहूँभा। जैसे,—गंदुमी रंग। उ०—रंग तेरा गंदुमी देख और बदन मलमल सा साफ।—कविता की०, भा० ४, पृ० २३।

गंदांलना—क्रि० स० [फ्रा० गंदह] ललाई चीज, विशेषतया पानी को गंदा करना।

गंदप(घुं)-संज्ञा पुं० [सं० गन्ध + प] दे० 'गंधर्व'। उ०—सो हूतो गंदप आप बागव धिके प्राकप धारियो। विष्णुगीत दूर प्रसार बाहों धर्या जीव संहारिया।—रघु० क०, पृ० १२५।

गंध—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्ध] १. बास। महक।

विशेष—न्याय या वैज्ञानिक में गंध का पृथिवी का गुण और घ्राण या नासिका का विषय कहा है। यद्यपि साधारण भेद दो है—सुगंध और दुर्गंध, पर शास्त्रकारों ने इसके प्रधान दस भेद किए हैं। (क) इष्ट, जैसी कस्तूरी आदि की। (ख) अनिष्ट, जैसी गुर्दे आदि की। (ग) मधुर, जैसी मधु, फूल आदि की। (घ) अम्ल, जैसी आम, आंवले की। (च) कटु, जैसी मिर्च आदि की। (छ) निहारी, जैसी हींग आदि में। (ज) संहत, जैसी चित्रगंध की। (झ) स्निग्ध जैसी घी की। (ट) रुक्ष, जैसे सरसों, राई आदि की। (ठ) विशद, जैसी धावल आदि की।

२. सुगंध। सुवास।

विशेष—इसे लोगों ने पाँच प्रकार की माना है। (क) चूणकृत, (ख) धूप, (ग) दाहकषित, (घ) संमर्दज और (ङ) प्राण्यगोद्भव।

३. सुगंधित द्रव्य जो शरीर में लगाया जाय। जैसे,—चंदन आदि का लेप। ४. लेख। अणुमात्र। संस्कार। संबंध। जैसे,—उसमें भलमंसाहत की गंध भी नहीं है। उ०—जेहि घंध जाकर मन बसे सपने सूझ सो गंध। तेहि कारन तपसी तप साधहि करहि प्रेम चित बंध—जायसी (शब्द०)। ५. गंधक। ६. शोभांजन। सहजन।

गंधकंदक—संज्ञा पुं० [सं० गन्धक + क] कसेरू [को०]।

गंधक—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धक] [वि० गंधकी] एक खनिज पदार्थ जिसे वैद्यक में उपधातु माना है।

विशेष—यह खरी और बिना स्वाद की और ज्वालघ्राहिणी होती है। इसकी कलमें चमकदार होती हैं और इसे घिसने या गरम करने से इसमें से एक प्रकार की असह्य तीव्र गंध निकलती है। यह ज्वालामुखी पर्वतों से निकले पदार्थों में प्रायः मिलती है। धातुओं के साथ भी यह लगी मिलती है। गंधक पानी, अलकोहल और ईधर में नहीं घुलती; पर द्विगंधित कार्बन, मिट्टी के तेल और बेंजीन में सुगमता से घुल जाती है। आग में जलाने से इसमें से नीले रंग की ती निकलती है। यह २३८ दर्जे की आँच में पिघलती है और ८२४ दर्जे की आँच में उबलने लगती है। उबलने के समय इसमें से लाल रंग की घनी आप निकलती है। आइसलैंड के ज्वालामुखी पर्वतों के पास यह शुद्ध रूप में मिलती है, पर सिसली में यह नीली मिट्टी के साथ मिली हुई पाई जाती है। इसे साफ करने के लिये गंधक मिली हुई मिट्टी को एक गड्ढे में आग के ऊपर रखकर ऊपर से मिट्टी डाल देते हैं। इससे गंधक जलने लगती है और पिघल पिघलकर नीचे गड्ढे में जमा होती जाती है। इसे हिंदुस्तान में फिर साफ करके बत्तियों के रूप में बनाते हैं। ये बत्तियाँ बाजार में ब्रिम स्टोन या गंधक की बत्तियाँ कहलाती हैं। गंधक प्रायः लोहे, तामे आदि धातुओं और कभी कभी पशु, पक्षी और वनस्पतियों में भी मिलती है। इससे रबर भी कड़ा करते हैं। चर्मरोग में यह लगाई और खिनाई भी जाती है।

वैद्यक के ग्रंथों के अनुसार गंधक चार प्रकार की होती है; सफेद, लाल, पीली और नीली। पर लाल और सफेद गंधक देखने में नहीं आती; पीली और नीली मिलती है। नीली को तुतिया, नीला थोथा आदि कहते हैं। गंधक शब्द से आजकल केवल पीली गंधक समझी जाती है। कुछ लोग हरताल को भी एक प्रकार की गंधक मानते हैं। वैद्य लोग खाने के लिये गंधक को शोधते हैं। शोधने के लिये इसकी बुकनी को खोलते हुए घी में डालते हैं। फिर जब घी में मिली गंधक खूब गरम हो जाती है, तब उसे एक बर्तन में दूध रखकर छानते हैं, जिससे गंधक छनकर नीचे बैठ जाती है। यह क्रिया तीन बार की जाती है। डाक्टर लोग गंधक जलाकर वायु शुद्ध करते हैं।

पर्या०—गंधाश्या। गंधमोहन। पूतिगंध। अतिगंध। बर। सुगंध। दिव्यगंध। कीटघ। क्रूरगंध। गंधी। गंधिक। पामागंध। रसगंधक। सौगंधिक। सुगंधिक कुटुआर। गोरीबीज।

गंधकबटी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धक + बटी] एक ओषध या गोली

जो शुद्ध गंधक, चित्रक, मिर्च, पीपल आदि के योग से बनाई जाती है। यह गोली अजीर्ण, शूल, आमदोष, गोल आदि रोगों में दी जाती है।

गंधकाम्ब—संज्ञा पुं० [सं० गन्धकाम्ब] गंधक का तेजाब [को०]।

गंधकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धकारिका] सुगंधित अंगराग आदि तैयार करनेवाली सेविका। कपड़ों को सुगंध से बसाने का काम करनेवाली दासी या सेविका [को०]।

गंधकालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धकालिका] सत्यवती। योजनगंधा।

गंधकाली—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धकाली] सत्यवती। योजनगंधा।

गंधकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. अमर की लकड़ी। अमर। २. चंदन।

गंधको^१—वि० [हि० गंधक + ई (प्रत्यय)] गंधक के रंग का। हलका पीला।

गंधको^२—संज्ञा पुं० एक रंग जो कुछ सफेदी लिए पीला होता है। यह रंग असवर्ग से निकाला जाता है और छीट छापने तथा सूती और रेशमी कपड़े रंगने में काम आता है।

गंधकी तेजाब—संज्ञा पुं० [हि० गंधकी + फा० तेजाब] गंधक का तेजाब।

गंधकुटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी देवानय के अंतर्गत वह कमरा या दालान जिसमें बहुत सी देवमूर्तियाँ रखी हों।

गंधकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुरा नामक एक गंधद्रव्य [को०]।

गंधकुसुमा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्ध + कुसुमा] एक पौधा। गन्ध-यारी [को०]।

गंधकेलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी [को०]।

गंधकोकिल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धकोकिल] एक सुगंधित वस्तु। सुगंध कोकिल।

गंधलेद, गंधलेदक—संज्ञा पुं० [सं० गन्धलेद, गन्धलेदक] एक सुगंधित घास। गंधतृण [को०]।

गंधग—वि० [सं० गन्धग] गंधवाला। गंधयुक्त [को०]।

गंधगज—संज्ञा पुं० [सं० गन्धगज] वह हाथी जिसके कुंभस्थल से मद निकलता हो।

पर्या०—गंधद्विप। गंधद्विख। गंधेभ।

गंधगात(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गन्धगात्र] चंदन।—(हि०)।

गंधगुण—वि० [सं० गन्धगुण] जिसका गुण गंध हो [को०]।

गंधग्राहक—वि० [सं० गन्धग्राहक] गंध ग्रहण करनेवाला (जैसे, घ्राण)।

गंधग्राही—वि० [सं० गन्धग्राहिन्] १. गंधग्राहक। २. सुगंधित [को०]।

गंधघ्राण—संज्ञा पुं० [सं० गन्धघ्राण] किसी भी गंध का ग्रहण करना [को०]।

गंधचेलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धचेलिका] कस्तूरी।

गंधज—वि० [सं० गन्धज] सुगंधित पदार्थ संबंधी या उससे युक्त [को०]।

गंधजल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धजल] सुगंधित तोय या सुवासित जल [को०]।

पर्या०—गंधोद। गंधोदक।

गंधजात—संज्ञा पुं० [सं० गन्धजात] तेजपात।

गंधज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धज्ञा] नासिका। नाक [को०]।

गंधशु—वि० [फ्रा० गंधह्] मलिन। अपवित्र। उ०—गंधशु वैण नहीं पतिआवे। अंतरि जान तिन आघावे।—प्राण०, पृ० २४२। [को०]।

गंधतंडुल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धतण्डुल] गंध शालि। सुगंधित चावल [को०]।

गंधतूर्य—संज्ञा पुं० [सं० गन्धतूर्य] विगुल, तुरही, बूंदुभी आदि युद्ध का बाजा [को०]।

गंधतृण—संज्ञा पुं० [सं० गन्धतृण] एक प्रकार की सुगंधित घास जो वैद्यक में कुछ तिक्त, सुगंधित, रसायन, स्निग्ध, मधुर, शीतल, और कफ तथा पित्त की नाशक कही गई है।

गंधतैल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धतैल] सुगंधित तैल [को०]।

गंधत्राण—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध + त्राण] ज्वरांकुश नाम की घास, जिसमें से नीबू की सी गंध आती है। नीली चाय।

गंधद—संज्ञा पुं० [सं० गन्धद] चंदन।

गंधदला—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धदला] अजमोदा। अजवायन।

गंधदारु—संज्ञा पुं० [सं० गन्धदारु] अमर। गंधकाष्ठ [को०]।

गंधद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं० गन्धद्रव्य] सुगंधित पदार्थ, जैसे, चंदन, केसर आदि।

गंधद्वार—वि० [सं० गन्धद्वार] जो गंध से जाना जाय [को०]।

गंधधारी^१—वि० [सं० गन्धधारिन्] सुगंधयुक्त। जो सुगंध लगाए हो।

गंधधारी^२—संज्ञा पुं० शिव [को०]।

गंधधूलि—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धधूलि] कस्तूरी।

गंधन^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गंदना'।

गंधन^२—संज्ञा पुं० [सं० कुन्दन] सोना।—(सुनारों की बोली)।

गंधनकुल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धनकुल] छद्मदेव [को०]।

गंधनाकुली—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धनाकुली] एक प्रकार का नाकुली कंद जो साधारण नाकुली से अच्छा होता है। रास्ना। चोड़रासन।

गंधनाडी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धनाडी] नासिका। नाक [को०]।

गंधनामा—संज्ञा पुं० [सं० गन्धनामन्] लाल तुलसी [को०]।

गंधनाम्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धनाम्नी] साधारण बीमारी। मामूली बीमारी। क्षुद्र रोग [को०]।

गंधनाल(पु)—संज्ञा पुं० [हि० गंध + नाल] नाक का छेद। नथुना। उ०—गंधनाल दुइ राह एक सम राखिये। चढ़ि सुखमना घाट अमीरस चाखिये।—कवीर (शब्दः)।

गंधनालिका, गंधनाली—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धनालिका, जन्धनाली] नासिका। नाक [को०]।

गंधनिलया—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धनिलया] चमेली का एक भेद [को०]।

गंधप—संज्ञा पुं० [सं० गन्धप] पितरों का एक वर्ग [को०]।

गंधपत्र—संज्ञा पुं० [सं० गन्धपत्र] १. सफेद तुलसी। २. महुवा। ३. नारंगी। ४. बेल।

गंधपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धपत्रा] कपूरकचरी।

पर्या०—गंधपत्रिका। गंधनिशा। गंधपीता।

गंधपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धपत्री] अजमोदा । अजवायन ।

गंधपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धपर्णी] समपर्णी ।

गंधपलाशिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धपलाशिका] हृदिद्रा । हरदी [को०] ।

गंधपलाशी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धपलाशी] कपूरकचरी ।

गंधपसार(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० गंध + पसार] दे० 'गंधप्रसारिणी' ।

गंधपसारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० गंधपसार + ई (प्रत्य०)] दे० 'गंधप्रसारिणी' ।

गंधपाक्षी—संज्ञा पुं० [सं० गन्धपाक्षिन्] शिव [को०] ।

गंधपाषाण—संज्ञा पुं० [सं० गन्धपाषाण] गंधक [को०] ।

गंधपिशाचिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धपिशाचिका] सुगंधित पदार्थ का घुसा [को०] ।

गंधपुर—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वपुर या हि०] दिल्ली का एक नाम ।
उ०—प्रथम पुत्र सोमेश गंधपुर दुंठा गङ्गिय । भई मुडि गंधवन
पुत्रप मंगल दुज पङ्गिय ।—पृ० रा०, १ । ६८६ ।

गंधपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० गन्धपुष्प] १. सुगंधयुक्त पुष्प । २. केवड़ा ।
३. गनियारी । ४. बेत [को०] ।

गंधपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धपुष्पा] नील का पौधा । [को०] ।

गंधपूतना—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धपूतना] एक प्रेतिनी या चुड़ैल ।

गंधप्रत्यय—संज्ञा पुं० [सं० गन्धप्रत्यय] घ्राणेंद्रिय । नाक ।

गंधप्रसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धप्रसारिणी] एक लता जिसकी पत्तियाँ डेढ़ इंच चौड़ी और दो इंच लंबी तथा नुकीली होती हैं । पत्तियों के किनारे कटावदार होते हैं । गंधपसार । गंधपसारी ।

विशेष—इसकी गंध कड़ई और असह्य होती है । वैद्यक में इसे गरम, भारी तथा बल और वायवर्धक माना है । यह वातपित्त नाशक तथा दूदी हृदियों को जोड़नेवाली है । खाने में कड़वी चरमरी होती है । इसका प्रयोग वैद्यक में स्वरभंग और बजाभीर में भी किया है ।

पर्या०—सारिवा । शारिवा । गोपी । उत्पलशारिवा । भद्रवल्ली । नागजिह्वा । कराला । भद्रवल्लिका । गोपवल्ली । सुगंधा । भद्रश्यामा । शारदा । आस्कोता । काष्ठशारिवा । श्वल-सारिवा ।

गंधप्रियंगु—संज्ञा पुं० [सं० गन्धप्रियङ्गु] प्रियंगु । फूलफेन ।

गंधफल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धफल] १. कैय । २. बेत ।

गंधफला—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धफला] १. प्रियंगु । २. विदारी ।

गंधफली—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धफली] प्रियंगु । २. चंपा ।

गंधबन्धु—संज्ञा पुं० [सं० गन्धबन्धु] ग्राम ।

गंधबबूल—संज्ञा पुं० [हि० गंध + बबूल] बबूल की जाति का एक छोटा वृक्ष जिसके फूल विशेष सुगंधित होते हैं ।

विशेष—यह अमेरिका से भारतवर्ष में लाया गया है और अब भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रांतों में मिलता है । इसे लोग विलायती बबून या कीकर कहते हैं । फास देश में इसके फूलों से इत्र निकाला जाता है और वहाँ इसकी खेती भी लोग

बहुत करते हैं । हिंदुस्तान में भी इसके फूलों से तेल तैयार किया जाता है ।

गंधबहुल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धबहुल] दे० 'गंधतंडुल' ।

गंधबहुला—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धबहुला] गोरक्षी का पौधा [को०] ।

गंधबाह—संज्ञा पुं० [सं० गन्धबाह] हवा । उ०—गंधबाह सीरे करे
हीरे ताप अछेह । दर्ई ताहु पर निरदर्ई दाहत देह अदेह ।—
स० समक, पृ० २७३ ।

गंधबिलाव—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध + हि० बिलाव] नेबले की तरह का एक जंतु ।

विशेष—यह जंतु अफ्रीका में होता है । यह दो फुट लंबा और पीलापन लिए हुए भूरे रंग का होता है । इसके सारे बदन में मटमैले रंग के दाग पंक्तियों में होते हैं । इसके घूतड़ के पास गिलटी होती है जिसमें पीले रंग का चेष होता है । हवा में लोग इस जंतु को इसी चेष के लिये पालते हैं । यह मांसभक्षी है । इसे कच्चा मांस दिया जाता है । सप्ताह में दो बार इसकी गिलटी से पीला चेष निकालते हैं । एक गंधबिलाव से अधिक से अधिक एक बार में एक मासे चेष निकलता है, जो सुगंधित होता है और पोष्टिक औषध में काम आता है । इसे मुषकबिलाव भी कहते हैं ।

गंधबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धबीजा] मेथी [को०] ।

गंधबेन—संज्ञा पुं० [सं० गन्धबेणु] एक घास जो अत्यंत सुगंधित होती है । इसका तेल निकाला जाता है । रोहिष । रुसा । सूत्रिण । सुरीस ।

गंधभांड—संज्ञा पुं० [सं० गन्धभाण्ड] दे० 'गर्दभांड' [को०] ।

गंधमांसी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमांसी] जटामासी का एक भेद [को०] ।

गंधमाता—संज्ञा स्त्री० [पुं० गन्धमातृ] पृथ्वी [को०] ।

गंधमाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. भौरा । २. एक यादव का नाम ।

गंधमादन^१—संज्ञा पुं० [सं० गन्धमादन] १. एक पर्वत का नाम ।

विशेष—पुराणानुसार यह पर्वत इलाबत और भद्राश्व खंड के बीच में है । नील निषध पर्वत तक इसका विस्तार है । देवी भागवत के अनुसार यह भगवती कामुकी का पीठस्थान है । २. रामायण के अनुसार राम की सेना का एक प्रधान बंदर । ३. भौरा । ४. एक सुगंधित द्रव्य । ५. गंधक । ६. रावण का एक नाम [को०] । ६. सुगंधित औषधियों से युक्त गंधमादन पर्वत का जंगल [को०] ।

गंधमादन^२—वि० गंध से उन्नत करनेवाला [को०] ।

गंधमादनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमादनी] १. मदिरा । मय । २. लाख ।

गंधमादिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमादिनी] लाख । लाक्षा [को०] ।

गंधमार्जार—संज्ञा पुं० [सं० गन्धमार्जार] दे० 'गंधबिलाव' ।

गंधमालती—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमालती] एक गंध द्रव्य ।

गंधमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमालिनी] एक प्रकार का गंधद्रव्य [को०] ।

गंधमाली—वि० [सं० गन्धमालिन्] एक नाग का नाम [को०] ।

गंधमाल्य—संज्ञा पुं० [सं० गन्धमाल्य] सुगंध द्रव्य और माला [को०] ।

गंधमासी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमासी] जटामासी ।

गंधमुंड—संज्ञा पुं० [सं० गन्धमुण्ड] एक लता का नाम ।

पर्या०—नंदी । ताम्रपाकी । फलपाकी । पीतक । गर्वभांड ।
सिप्रपाकी ।

गंधमूल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धमूल] कुलंजन [को०] ।

गंधमूला—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमूला] दे० 'गंधमूली' [को०] ।

गंधमूलिका, गंधमूली—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमूलिका] कपूरकचरी ।

गंधमूषिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमूषिका] छत्रूंदर ।

पर्या०—गंधमूषिक । गंधमूषी । गंधगुडिनी । गंधसुखी । गंधसूयी ।

गंधमृग—संज्ञा पुं० [सं० गन्धमृग] १. कस्तूरी मृग । २. गंधबिलाव [को०] ।

गंधमैथुन—संज्ञा पुं० [सं० गन्धमैथुन] सांड [को०] ।

गंधमोदन—संज्ञा पुं० [सं० गन्धमोदन] गंधक [को०] ।

गंधमोहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धमोहिनी] चंपा की कली [को०] ।

गंधयुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धयुक्ति] सुगंध द्रव्य तैयार करने की विद्या [को०] ।

गंधयुति—संज्ञा पुं० [सं० गन्धयुति] सुगंधित वृक्ष [को०] ।

गंधरव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्व] दे० 'गंधर्व' । उ०—जच्छ मृत
बासुकी नाग मुनि गंधरव सकल बसु जीति मैं किए चेरे ।—
सूर०, ६।१०६ ।

गंधरविन(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गंधविन' ।

गंधरस—संज्ञा पुं० [सं० गन्धरस] १. सुगंधसार । २. गुग्गुलु [को०] ।

गंधराज—संज्ञा पुं० [सं० गन्धराज] १. मोगरा बेला । २. नख नामक
सुगंधद्रव्य । ३. चंदन ।

गंधराज गुग्गुलु—संज्ञा पुं० [सं० गन्धराज गुग्गुलु] एक प्रकार की
धूप या गोंद । वि० दे० 'गुग्गुलु' ।

गंधराजी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धराजी] नख नामक सुगंधित द्रव्य ।

गंधर्प(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्व] दे० 'गंधर्व' । उ०—देव मुन
देत गंधर्प और मानवी । केवली काल मुख सकल जाई ।
—तुलसी० श०, पृ० १५ ।

गंधर्व—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्व] [सं० स्त्री० गन्धर्वी, हि० स्त्री० गंधविन]
१. देवताओं का एक भेद ।

विशेष—ये पुराण के अनुसार स्वर्ग में रहते हैं और वहाँ गाने
का काम करते हैं । अग्निपुराण में गंधर्वों के ग्यारह गण माने
गए हैं,—अश्राज्य, अंधारि, बंभारि, क्षयवर्चस्, क्रुधु, हस्त,
सुहस्त, स्वन्, मूर्धन्वा, विश्वावसु, और कृशानु । इन गंधर्वों
में हाहाहूह, चित्ररथ, हंस, विश्वावसु, गोमायु, तुंबुरु और
नंदि प्रधान माने गए हैं । वेदों में गंधर्व दो प्रकार के माने
गए हैं—एक द्युस्थान के, दूसरे अंतरिक्ष स्थान के । द्युस्थान
के गंधर्वों को दिव्य गंधर्व भी कहते हैं । ये सोम के रक्षक,
रोगों के चिकित्सक, सूर्य के अश्वों के वाहक, तथा स्वर्गीय ज्ञान
के प्रकाशक माने गए हैं । यम और यमी के उत्पादक भी
गंधर्व ही कहे गए हैं । मध्यस्थान के गंधर्व नक्षत्रचक्र के

प्रवर्तक और सोम के रक्षक माने गए हैं । इंद्र इनसे लड़कर
सोम को छीनता और मनुष्यों को देता है । इनका स्वामी
वरुण है । द्युस्थान के गंधर्व से सूर्य, सूर्य की रश्मि, तेज,
प्रकाश इत्यादि और मध्यस्थान के गंधर्व से मेघ, चंद्रमा, विद्युत्
आदि निरुक्त शास्त्र के आधार पर लिए जाते हैं क्योंकि 'गा'
या 'गो' को धारण करनेवाला गंधर्व कहा जाता है; और
'गा' या 'गो' से पृथिवी, वाणी, किरण इत्यादि का ग्रहण
होता है । इसके अतिरिक्त उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रंथों में
भी गंधर्वों के दो भेद मिलते हैं—देव गंधर्व और मनुष्य
गंधर्व । कहीं कहीं गंधर्व को राक्षस, पिशाचादि के समान एक
प्रकार का भूत माना है ।

पर्या०—विद्याधर ।

२. मृग । ३. घोड़ा । ४. वह आत्मा जिसने एक शरीर छोड़कर
दूसरा ग्रहण किया हो । मृत्यु के बाद तथा पुनर्जन्म के पूर्व की
आत्मा । प्रेत । ५. स्त्रियों की वह अवस्था जब उनके स्वर
में माधुर्य उत्पन्न होता है । ६. वैद्यक में एक प्रकार का
मानसिक रोग जिसे 'ग्रह' कहते हैं ।

विशेष—इस रोग से अरत मनुष्य बाग, वन, नदी या झरनों के
किनारे घूमता है । गंध और माल्य उसे अच्छे लगते हैं । वह
नाचता, गाता, हँसता और दूसरों से कम बोलता है । गंधर्व-
ग्रह, गंधर्वरोग आदि नामों से इसका वर्णन मिलता है ।

७. एक जाति जिसकी कन्याएँ नाचती गाती और वेषयात्रा
करती हैं । ये लोग कुमाऊँ आदि पहाड़ों तथा काशी आदि
नगरों में पाए जाते हैं । ८. संगीत में ताल के साठ मुख्य
भेदों में से एक । यथा—चत्वारो गुरवो विदुश्चत्वारश्च प्लुता
अपि । विदवो दश षट्पात्रच ताले गंधर्वसंज्ञके ।—संगीत
दामोदर (शब्द०) । ९. विधवा स्त्री का दूसरा पति । १०.
गायक [को०] । ११. सूर्य [को०] । १२. कोकिल [को०] । १३.
एरंड । रेंड [को०] ।

गंधर्वखंड—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वखण्ड] भारतवर्ष के नव खंडों में
से एक का नाम [को०] ।

गंधर्वग्रह—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वग्रह] एक मानसिक रोग । ६०
'गंधर्व-६ । —माधव०, पृ० १२५ ।

गंधर्वतैल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वतैल] रेंडी का तेल ।

गंधर्वनगर—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वनगर] १. नगर, ग्राम आदि का
का वह मिथ्या आभास जो आकाश में या स्थल में दृष्टिदोष से
दिखाई पड़ता है ।

विशेष—जब गरमी के दिनों में मरुभूमि या समुद्र में वायु की
तहों का घनत्व उष्णता के कारण असमान होता है, उस
समय प्रकाश की गति के विच्छेद से दूर के शहर, गाँव, वृक्ष,
नौका आदि का प्रतिबिंब आकाश में पड़ता है और कभी कभी
उस आकाश के प्रतिबिंब का प्रतिबिंब उलटकर पृथिवी पर
पड़ता है, जिससे कभी दूर के गाँव, नगर आदि या तो आकाश
में उलटे टोंगे या समीप दिखाई पड़ते हैं । यह दृष्टिदोष वायु की
असमान तह के कारण उस समय होता है जब नीचे की तह

की वायु इतनी जल्दी हल्की हो जाती है कि ऊपर की वायु धीरे ऊपर नहीं जा सकती। मृगमरीचिका भी इसी दृष्टिकोण से दिखाई देती है। गंधर्वनगर का फव्वारा हस्तहिंसा में बिखा है।

२. मिथ्या भ्रम। (वेदांत में संसार की उपमा गंधर्वनगर से दी जाती है।) ३. चंद्रमा के किनारे का मंडल जो रात को दिखाई पड़ता है, जब आकाश हमके बादलों की तरह से ढका रहता है। ४. वह दृश्य जो कोसों तक फैली हुई नमक की बट्टों पर सूर्य की किरणों के पड़ने से दिखाई पड़ता है। ५. संध्या के समय पश्चिम दिशा में रंग बिरंगे बादलों के बीच फैली हुई लाली। ६. महाभारत के अनुसार मानसरोवर के निकट का एक नगर।

विशेष—इस नगर की रक्षा गंधर्व करते थे। अर्जुन ने गंधर्वनगर को जीतकर तिसिर, कल्पाश और मंजूक नामक घोड़े प्राप्त किए थे।

गंधर्वपद—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वपद] गंधर्वों का वासस्थान। गंधर्वलोक [को०]।

गंधर्वपुर—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वपुर] गंधर्वनगर।

गंधर्वराज—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वराज] गंधर्वों का राजा चित्ररथ [को०]।

गंधर्वलोक—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वलोक] विद्याधर और गुह्यक लोक के मध्य में कथित एक लोक जहाँ गंधर्वों का निवास माना जाता है [को०]।

गंधर्वबधू—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धर्वबधू] चीड़ा नामक गंधर्ववधू।

गंधर्वविद्या—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वविद्या] गानविद्या। संगीत।

गंधर्वविवाह—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वविवाह] आठ प्रकार के विवाहों में से एक वह संबंध जो पिता माता की आज्ञा के बिना वर और वधू अपने मन से परस्पर कर लेते हैं।

गंधर्ववेद—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्ववेद] संगीतशास्त्र।

विशेष—यह चार उपवेदों में से एक है। इसमें स्वर, ताल, राग, रागिनी आदि का वर्णन है।

गंधर्वहस्त, गंधर्वहस्तक—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वहस्त, गन्धर्वहस्तक] एरंड। रेड।

गंधर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धर्वा] दुर्गा का एक नाम।

गंधर्वास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्व + अस्त्र] एक अस्त्र का नाम।

गंधर्विन—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धर्व + हिं० इन (प्रत्य०)] १. गंधर्व की स्त्री। २. गंधर्व जाति की स्त्री, जो बड़ी सुंदरी होती है। उ०—जो तुम मेरी इच्छा धरो। गंधर्विन के हित तप करो।—सूर (शब्द०)।

गंधर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धर्वी] १. गंधर्व की स्त्री। २. सुरभी की पुत्री। यह पुराणानुसार घोड़ों आदि की माता थी।

गंधर्वी—वि० [सं० गन्धर्व + ई (प्रत्य०)] गंधर्व का। गंधर्व संबंधी। उ०—पुनि शकुनी प्रतिसय रिसि छाया। करत भयो गंधर्वी माया।—गोपाल (शब्द०)।

गंधर्वोन्माद—संज्ञा पुं० [सं० गन्धर्वोन्माद] गंधर्वप्रह। गंधर्व रोग। वि० दे० 'गंधर्व'—६।

गंधस्तता—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धस्तता] प्रियंगु नाम की लता [को०]।

गंधलुब्ध—संज्ञा पुं० [सं० गन्धलुब्ध] मधुकर। भौरा [को०]।

गंधलोलुपा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धलोलुपा] १. मधुकर। २. मक्खी या मच्छर [को०]।

गंधवणिक, गंधवणिज—संज्ञा पुं० [सं० गन्धवणिक, गन्धवणिज] गंधविक्रेता। गंधी [को०]।

गंधवती^१—वि० स्त्री० [सं० गन्धवती] गंधवाली। गंधयुक्त, जैसे; गंधवती पुष्पिणी।

गंधवती^२—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धवती] १. चमेली का एक भेद। वनमल्लिका। २. गंधोत्तमा। सुरा। ३. सुरा नाम का एक गंधद्रव्य। ४. व्यास की माता सत्यवती का एक नाम। ५. पृथ्वी। ६. वरुणपुरी।

गंधवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धवधू] कपूरकचरी। गंधपलाशी [को०]।

गंधवल्कल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धवल्कल] दारचीनी [को०]।

गंधवल्सरी, गंधवल्सो—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धवल्सरी, गन्धवल्सो] सहवेई [को०]।

गंधवह—संज्ञा पुं० [सं० गन्धवह] १. वायु। २. नाक।—(डि०)।

गंधवहा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धवहा] नासिका। नाक [को०]।

गंधवान—वि० [सं० गन्धवान्] गंधगुण से युक्त। २. सुगंधित [को०]।

गंधवाह—संज्ञा पुं० [सं० गन्धवाह] वायु। हवा।

गंधवाहा, गंधवाही—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धवाहा, गन्धवाही] दे० 'गंधवहा' [को०]।

गंधविह्वल—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध + विह्वल] गेहूँ। गोधूम [को०]।

गंधवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] साल का वृक्ष।—प्रा० भा० प०, पृ० ३४।

गंधवेणु—संज्ञा पुं० [सं० गन्धवेणु] एक सुगंधित धास। गंधवेन।

गंधव्याकुल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धव्याकुल] कंकाल का पेड़ [को०]।

गंधशालि—संज्ञा पुं० [सं० गन्धशालि] दे० 'गंधतंदुल' [को०]।

गंधशेखर—संज्ञा पुं० [सं० गन्धशेखर] कस्तूरी [को०]।

गंधसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंदन। २. भोगरा बेला। ३. कचूर।

गंधसेवक—वि० [सं० गन्धसेवक] गंध या सुगंध का उपयोग करने-वाला [को०]।

गंधसोम—संज्ञा पुं० [सं० गन्धसोम] कुमुद। कुई [को०]।

गंधहर—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध + गृह, प्रा० हर] नाक।—(डि०)।

गंधहस्ती—संज्ञा पुं० [सं० गन्धहस्तिन्] वह हाथी जिसके कुंभ से मद बहता हो। मदोन्मत्त हाथी।

गंधहारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धहारिका] स्वामिनी के साथ गंधद्रव्य लेकर चलनेवाली सेविका [को०]।

गंधासु—संज्ञा पुं० [सं० गन्धासु] छछूंदर [को०]।

गंधाजीव—संज्ञा पुं० [सं० गन्धाजीव] इत्र बेचनेवाला। गंधी [को०]।

गंधाढ्य^१—वि० [सं० गन्धाढ्य] सुगंधपूर्ण [को०]।

गंधाढ्य^२—संज्ञा पुं० १. नारंगी का पेड़। २. चंदन। ३. जवादि नाम का गंधद्रव्य [को०]।

गंधाढ्या—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धाढ्या] १. गंधनिष्ठा। गंधपत्रा। २.

स्वर्णद्वीप । ३. रामद्वीप । ४. धारामशीतला । ५. गंधाली [को०] ।

गंधाधिक—संज्ञा पुं० [सं० गन्धाधिक] एक प्रकार का गंधद्रव्य [को०] ।
गंधाला^१—क्रि० सं० [हि० गन्ध] गंध देना । बसाना ।
दुर्गंध करना ।

गंधाना^१—संज्ञा पुं० [सं० गन्धान] रोला छंद का एक नाम ।

गंधानुवासन—संज्ञा पुं० [सं० गन्धानुवासन] भक्त का एक संस्कार ।
भक्त को गंध की वासना देना, जिससे वह तेज रहे ।

गंधाविरोजा—संज्ञा पुं० [हि० गंध + विरोजा] चीर नामक वृक्ष का
गोंद जो फारस से आता है ।

विशेष—शीराज और किरमान इसके लिये प्रसिद्ध स्थान हैं ।
यह तीन प्रकार का होता है—खसनिब जो सेवान्त से आता
है, बिरोजा लुपक और बिरोजा गावशीर या जवाशीर ।
बिरोजा या गावशीर पीले रंग का गोंद है, जो बहुत पतला
होता है । यह कभी कभी हरापन लिए भी होता है । इसमें
झंडल, फूल और पत्तियाँ मिली रहती हैं । इसकी गंध बुरी नहीं
होती और इसका स्वाद कड़वा होता है । यहाँ इसे शुद्ध करते
हैं और इससे लीचकर बिरोजे का तेल निकालते हैं । मिट्टी के
तेल में से भी इसका तेल निकाला जाता है । यह औषध में
बहुत काम आता है । इसका शोषा हुआ सत्त निकालकर दवा
में मिलते हैं और मरहम बनाकर फोड़े आदि पर भी लगाते
हैं । लुपक बिरोजे में ताड़पीन के ऐसी गंध आती है । इसे
कुंदुर भी कहते हैं । यह हिमालय और शिवालक पर्वतों के
जंगल से भी आता है । इसे गंधाविरोजा, सरल का गोंद,
चंद्रस भी कहते हैं ।

पर्या०—बीवास । धीवेष्ट । वृक्षधूपक । ओपिष्ट । पद्मदर्शन ।
नृक्षधूप । घास । बायस । बितागंध । ओरस । धूपग ।
तिलपण ।

गंधान्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली नीबू [को०] ।

गंधार—संज्ञा पुं० [सं० गन्धार] दे० 'गंधार' ।

गंधारी—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धारी] दे० 'गंधारी' ।

गंधाला—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धाला] एक गंधमयी लता [को०] ।

गंधाली—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धाली] १. प्रसारिणी । गंधपसार ।
२. भिड़ । ततैया [को०] ।

गंधालु—वि० [सं० गन्धालु] गंधाढ्य । गंधपूर्ण । सुगंधित [को०] ।

गंधाशन—संज्ञा पुं० [सं० गन्धाशन] पवन । वायु ।

गंधाष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] आठ गंधद्रव्यों के मिलाने से बना हुआ
एक संयुक्त गंध जो पूजा में चढ़ाने और यंत्रादि लिखने के काम
में आता है । अष्टगंध ।

विशेष—तंत्र के अनुसार भिन्न भिन्न देवताओं के लिये भिन्न भिन्न
गंधाष्टक का विधान पाया जाता है । तंत्र में पंचदेव प्रधान हैं ।
उन्हीं के अंतर्गत सब देवता माने गए हैं; अतः गंधाष्टक भी
पाँच ही हैं । शक्ति के लिये चंदन, अमर, कपूर, चोर, कुंकुम,
रोचन, जटामासी, कपि; विष्णु के लिये चंदन, अमर, ह्रीवेर,
कुट, कुंकुम, उशीर, जटामासी और मुर; शिव के लिये चंदन,

अमर, कपूर, तमाब, जल, कुंकुम, कुशीद, कुष्ठ; गणेश के लिये
चंदन, चोर, रोचन, अमर, मृग और मृगी का मद, कस्तूरी,
कपूर; भयवा चंदन, अमर, कपूर, रोचन, कुंकुम, मद, रक्त-
चंदन, ह्रीवेर; सूर्य के लिये जल, केसर, कुष्ठ, रक्तचंदन,
चंदन, उशीर, अमर, कपूर ।

गंधिक^१—वि० [सं० गन्धिक] गंधयुक्त । सुगंधित ।

गंधिक^२—संज्ञा पुं० १. गंधी । इत्रफरोश । २. गंधक [को०] ।

गंधिकापण—संज्ञा पुं० [सं० गन्धिकापण] वह स्थान जहाँ सुगंध-
द्रव्य का विक्रय हो [को०] ।

गंधिन^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धिनी] १. गंधी की स्त्री । २. गंधद्रव्य
बेचनेवाली स्त्री । ३. मदिरा । सुरा । शराब ।

गंधिन^२—वि० स्त्री० गंधयुक्त । गंधवाली ।

गंधिनि^(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] गंधद्रव्य बेचनेवाली औरत । गंधिन ।
उ०—चंदन अरगजा सूर केसर धरि लेऊँ । गंधिनि ह्वै जाऊँ
निरखि नैनन सुख देऊँ । —सूर (शब्द०) ।

गंधी^(५)—संज्ञा पुं० [सं० गन्धिन् [स्त्री० गन्धिनो; गंधिन, गंधिनि^(५)]
१. सुगंधित, तेल और इत्र आदि बेचनेवाला । अन्तार । उ०—
ए गंधी, मति ग्रंथ तू अंतर दिखावत काहि । करि फुलै को
आचमन मीठो कहत सराहि । —बिहारी (शब्द०) । २. गंधिया
नाम की घास । गांधी । ३. गंधिया नाम का कीड़ा ।

गंधीला^(५)—वि० [हि० गंधा] मैला । गंदला । बदबूदार । उ०—
बहुता पानी निर्मला, बंधा गंधिला होय । साधू जन रमते मले,
दाग न लावै कोय । —कबीर (शब्द०) । (ख) भी सागर को
धार तीच्छन महा गंधीलो नीर । —चरण० बानी, पृ० ६० ।

गंधेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धेन्द्रिय] घ्राण । नासिका [को०] ।

गंधेज—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्ध] अग्निया घास ।

गंधेल—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध] एक छोटा पेड़ या झाड़ ।

विशेष—यह हिमालय के किनारे किनारे पंजाब से सिक्किम
तक होता है । यह बंगाल और दक्षिण में भी मिलता है ।
इसकी पत्तियों और टहनियों में रोई होती है और उनमें से
कड़ी सुगंध निकलती है । पत्तियाँ आठ दस इंच लंबे सीकों
में लगती हैं, जो नुकीली और डेढ़ दो इंच लंबी होती हैं ।
इसमें सफ़ेद रंग के फूल और बेर के समान लंबी लंबी फलियाँ
लगती हैं । पत्तियाँ मसाले के काम में तथा छाल और जड़
दवा के काम में आती हैं ।

गंधैला^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गंध] [स्त्री० गंधेली] एक प्रकार की
चिड़िया ।

गंधैला^२—वि० दुर्गंध करनेवाला ।

गंधोत्कट—संज्ञा पुं० [सं० गन्धोत्कट] दमनक । दोना [को०] ।

गंधोत्तमा—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धोत्तमा] द्राक्षा मधु । अंगूर की शराब
[को०] ।

गंधोपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० गन्धोपजीविन्] सुगंधविक्रेता । गंधी [को०] ।

गंधोपल—संज्ञा पुं० [सं० गन्धोपल] गंधक [को०] ।

गंधोली—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धोली] १. भिड़ । ततैया । २. सोंठ ।
३. इंद्राणी [को०] ।

गंधोष्णीष—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध + षणीष] सिंह [को०] ।

गंधौतु—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध + औतु] दे० 'गंधविलाव' ।

गंधौली—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्धौली] कपूरकचरी ।

गंध्य—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध] वह वस्तु जिनमें अच्छी महक हो ।
सुगंधयुक्त वस्तु ।

गंधप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गन्धवं, प्रा० गंधव] दे० 'गंधवं' । उ०—
गंधपं जिन अम्य निहि लिन्य । गोरख गुरु वरदान
सु दिनव । —प० रागो, पृ० १३४ ।

गंधपेश(पु)—संज्ञा पुं० [हि० गंधप + सं० ईश] गंधर्वों के राजा ।
गंधर्वराज । उ०—गंधपेश गोवर्धनु गुह्यपति गंधवाह गुर ।—
सुजान०, पृ० १ ।

गंधव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गन्धवं, प्रा० गंधव] दे० 'गंधवं' । उ०—
सुरंग गुनाल कदम और ह्मा । सुगंध वकीरी गंधव पूजा ।—
जायसी ग्रं०, पृ० १३ ।

गंधव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गन्धवं, प्रा० गंधव] दे० 'गंधवं' । उ०—
प्रथम पुत्र सोमस गंधपुर दुहा गह्वि । मई सुद्धि गंधवन पुहुप
मंगल दुज पट्टिय । —पृ० रा०, १ । ६८६ ।

गंफा(फाँ)—संज्ञा पुं० [हि० गफ्फा] बड़ा कोर जो तेजी से खाया जा
रहा हो । आम । उ०—गरमें गरमें हेलुआ गंफा लोजी
मारि । पल०, भा० १, पृ० २१ ।

गंभारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गंभारिका] दे० 'गंभारी' ।

गंभारी—संज्ञा स्त्री० [सं० गंभारी] एक बड़ा पेड़ जिसके पत्ते पीपल
के पत्तों के से बड़े होते हैं ।

विशेष—इसकी छाल सफेद रंग की होती है और उसमें से दूध
निकलता है । फूल और फल पीले होते हैं । इसकी छाल और
फल दवा में काम आते हैं । छाल कुछ कुछ कसीलापन और
मिठाग लिए कड़वी होती है । वैद्यक में यह भारी, दीपक,
पाचक, वृध्य, मेधाजनक तथा रेषक मानी गई है । इसका
प्रयोग आमणल बवासीर, ओष, क्षयी और ज्वरादि में होता
है । फल पकने पर कसीला और सटमिट्टा होता है ।

पर्या०—बाधमरी । श्रीपर्णी । मधुपर्णी । भद्रपर्णी । भद्रा ।
गोपभद्रा । कृष्णफला । कफला । कंभारी । कुमुदा । हीरा ।
कृष्णवृत्तिका । सर्वतोभद्रिका । महाभुद्रा । स्निग्धपर्णी ।
कृष्णा । रोहिणी । गृष्टि । मधुमती । सुफला । मोहिनी ।
महाकुमुदा । काश्मीरी । मयूरसा ।

गंभीर^१—वि० [सं० गंभीर] १ जिसकी याह जल्दी न मिले ।
नीचा । गहरा । जैसे, गंभीर नदी । २ जिसमें जल्दी घुस न
सकें । घना । गहन । ३ जिसके अर्थ तक पहुँचना कठिन हो ।
गूढ़ । जटिल । जैसे, गंभीर विचार । ४ घोर । भारी ।
जैसे, गंभीर निनाद । ५ शांत । सौम्य । जैसे,—वह बड़ा
गंभीर आदमी है ।

गंभीर^२—संज्ञा पुं० १ जंभीरी नीबू । २ कमल । ३ ऋग्वेद में एक
प्रकार का मंत्र । ४ शिव । ५ एक राग जो श्रीराग का पुत्र
माना जाता है । हनुमत् के मत से यह हिंडोल राग का पुत्र
है । ६ वात रोग का एक भेद । उ०—यह वात रक्त चरक ने

दो प्रकार का कहा है एक तो उत्तान दूसरा गंभीर ।—
माधव०, पृ० १५१ ।

गंभीरक—वि० [सं० गंभीरक] गहरा । गंभीर [को०] ।

गंभीरज्वर—संज्ञा पुं० [सं० गंभीर + ज्वर] मल के एक जाने से,
जलन से, श्वास खाँसी से उत्पन्न ज्वर ।—माधव०, पृ० ३६ ।

गंभीरवेदी—संज्ञा पुं० [सं० गंभीरवेदिन्] वह हाथी जो अंकुश की
गहरी चोट को भी कुछ न माने । मत्त हाथी ।

गंभीरा—संज्ञा स्त्री० [सं० गंभीरा] एक नदी का नाम [को०] ।

गंभीरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा झोल ।

गंस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गंस] १. गाँठ । द्वेष । उ०—कहा हमहि
रिसि करत कन्हाई । इह रिसि जाइ भरो मयुरा पर जहँ है
कंस बसाई । अपने घर के तुम राजा हौ सब के राजा कंस ।
सूर श्याम हम देखत ठाढ़े अब सीखे ए गंस ।—सूर (शब्द०) ।
२. लाग की बात । आक्षेप । ताना । उ०—चलत सो सोहति
गति गजहंस । हँसति परस्पर गावत गंस ।—सूर (शब्द०) ।

गंसना(पु)—क्रि० सं० [सं० गंसन] अच्छी तरह कसना । जकड़ना ।
गाँठना । उ०—लाल उन सुनी मनोहर बंसी । नहि सँभार
अजहँ युवतिन बल मदन भुंगम डंसी । वृंदावन की माल
कलेवर लता माधुरी गंसी । सूरदास प्रभु सब सुख दाता नै
भुज बीच प्रसंसी ।—सूर (शब्द०) ।

गंगन—संज्ञा पुं० [सं० गगन] दे० 'गगन' । उ०—धूनि रमा गुरिया
सगवार । गंगन चढ़ाय के जग भरमाव ।—कबीर सा०, पृ०
८२६ ।

गंगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जिसको बनी भी
कहते हैं ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ चौड़ी और बड़ी तथा रेशे पतले और
नरम होते हैं । फूल के नीचे की कमरखी पत्तियाँ बड़ी और
बैंगनी रंग की होती हैं । इसे बिहार में जेठी, बंगाल में भोगला
और बरार में टिकड़ी या लूड़ी आदि कहते हैं ।

गंगला—संज्ञा पुं० [हि० गंगा] एक प्रकार का शलगम जो गंगा के
किनारे होता है । यह आकार में बड़ा और अच्छा होता है ।

गंगवा—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम जो दक्षिण में समुद्र के
किनारे तथा बरमा, अडमन और लंका में होता है ।

विशेष—यह सदाबहार होता है । इससे सफेद रंग का दूध
निकलता है जो हवा लगने से जम जाता है और काले रंग का
होता है । ताजा दूध बहुत खट्टा होता है और लोगों का
विश्वास है कि जहरीला होता है । इसकी लकड़ी बियासलाई
आदि बनाने के काम में आती है । इसे कड़वा फल या कड़वा
फल भी कहते हैं ।

गंगेटी—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गाटी] एक बूटी जो दवा के काम में
आती है । यह फोड़े को गलाती और मल-मूत्र लाती है ।

गंगेरन—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गेरुकी] एक प्रकार का पौधा जो औषध-
शास्त्र में चतुर्विध बला के अंतर्गत माना जाता है और सहदेई
के पौधे के समान होता है ।

विशेष—सहदेई से इसमें भेद यह है कि इसके पत्ते अधिक मोटे

और वो अनीषाले होते हैं। फूल गुलाबी होते हैं और फल भी कुछ बड़े होते हैं। फल में विशेषता यह है कि पकने पर उसके पाँच भाग हो जाते हैं। गंगेरन के गुण भी वैद्यक में बरियारा या खिरटी के से माने जाते हैं। गंगेरन मूत्रकुण्ड, क्षत और क्षीण रोग, खुजली, कुष्ठ आदि में दी जाती है। गंगेरन दो प्रकार की होती है—एक छोटी, दूसरी बड़ी। बड़ी गंगेरन भी अम्ल, मधुर, त्रिबोषणाशक तथा दाह और ज्वर को दूर करनेवाली मानी जाती है। इसे गुलशकरी भी कहते हैं।

पर्या०—नागबला। गांगेहकी। अषा। हस्वगवेधुका। खरगंघनी। गोरक्षतंडुला। भद्रोदनी। चतुःपला। खरवल्गिका। महोदया। महापत्रा। विश्वदेवी। घनिष्ठा। वैवदंडा।

गंगेरुवा—संज्ञा पुं० [सं० गाङ्गेरुक] एक पहाड़ी पेड़।

विशेष—इसके फल धाँवले की तरह छोटे छोटे होते हैं। पत्तियों की पंक्ति सीकों में लगी होती है। वैद्यक में इस पेड़ का फल कफ-वात-नाशक, पित्तकारक, भारी, गरम और स्निग्ध माना जाता है। इसके फल दो प्रकार के होते हैं खट्टे और मीठे।

गंगेरु—संज्ञा स्त्री० [हि० गंगेरन] दे० 'गंगेरन'।

गंजना^१(५)—क्रि० सं० [हि० गंजना] गंजना। नाश करना। चूर चूर करना। नष्ट करना। उ०—(क) जुरे जुद्ध कर तेग ले पंचम के असवार। गंजि गरेब गरबीन के करे अरिन पर वार।—लाल (शब्द०)। (ख) दाढ़ू काल गंजे नहीं जपे जो नाम कबीर।—कबीर मं०, पृ० ४१२।

गंजना^२—क्रि० प्र० [हि० गंजना] ढेर लगना। गंजने का काम होना।

गंजाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. गंजने या ढेर लगाने की क्रिया। २. गंजने की मजदूरी।

गंजाना—क्रि० सं० [हि० गंजना] गंजने या ढेर लगाने का काम दूसरे से कराना।

गंजिया—संज्ञा स्त्री० [सं० गन्जिका या क्रा० गंज] १. सूत की बुनी हुई रपया रखने की जालीदार थेली। २. वह जाल की थेली जिसमें घसियारे घास रखते हैं। खारी। बाँसुली। नौला। ३. मिट्टी का बना हुआ एक बरतन जिसका मुँह तंग होता है। यह दबकी की तरह चिपटा होता है। पहले इसमें घाराब रखते थे। ४. गंजी। कंदा।

गंजेड़ी—वि० [हि० गंजा + एड़ी (प्रत्य०)] गंजा पीनेवाला।

गंठकटा—संज्ञा पुं० [हि० गंठ + काटना] गंठ में बंधे हुए रुपए पैसे को काट लेनेवाला। गिरहकट। उचवका।

गंठछोरी^१—संज्ञा पुं० [हि० गंठ + छोरीना] गंठ का माल छीन लेनेवाला। गिरहकट। गंठकटा।

गंठजोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० गंठ + जोड़ना] गंठबंधन। उ०—देवपुर के दयाशंकर पांडे के लड़के रमानाथ से आप देवबाला का गंठजोड़ा करना चाहते हैं।—ठेठ०, पृ० ८।

गंठजोरा^२—संज्ञा दे० [हि० गंठ + जोरना] गंठबंधन। उ०—जनक स्वयंबर बर धनु तोरा। सीय विवाहि करयो गंठजोरा।—गोपाक्ष (शब्द०)।

गंठबंधन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिबन्धन, हि० गंठ + बंधन] १. विवाह की एक रीति जिसमें वर और वधू के वस्त्र को परस्पर बांध देते हैं। २. धार्मिक आदि कर्म करते समय पति पत्नी के वस्त्र के छोरों को मिलाकर गंठ देने की रीति। इस अवस्था में दोनों कुछ पूजा आदि करते हैं। यह संस्कार विवाह के चौथे दिन या किसी और दूसरे दिन अच्छी साइत देखकर होता है। ३. दो चीजों या व्यक्तियों के बीच प्रतिशय ऐक्यः घनिष्ठ संग। ४. साठगाँठ। गुप्त समझौता।

गंठिवन^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थिपर्णी] ग्रन्थिपर्णी। गाढर दूब।

गंठिवन^२—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिपर्ण] गंठिवन का पेड़। वि० दे० 'गंठिवन'।

गंठुआ—संज्ञा पुं० [हि० गंठ + उआ (त्वा० प्रत्यय)] ताने या बाने के टूटे हुए तागों को, अथवा नई पाई के तागे को, पुराने उतरे हुए कपड़े के तागे से जोड़ना।—(जुलाहा)।

गंठघिसनी—संज्ञा स्त्री० [हि० गंठ + घिसना] १. प्रत्यंत निकट परिश्रम। २. बहुत खुशामद और विनती।

गंठभप—संज्ञा पुं० [हि० गंठ + भेपना] बुरी तरह से भेपने या लजाने की क्रिया।—(बाजारू)।

मुहा०—गंठभप खाना = बुरी तरह भेपना। बहुत बेनगह नज़िजत होना।

गंठतरा^१—संज्ञा पुं० [हि० गंठ + तर = नीचे] वह कपड़ा जो बच्चों के चूतड़ के नीचे इसलिये बिछाया जाता है, जिसमें उनका मलमूत्र बिछावन पर न लगे। इसे 'गंठरा' भी कहते हैं।

गंठदार—संज्ञा पुं० [सं० गंठ या गंठासा + फा० दार (प्रत्य०)] महाबल। फीलवान। उ०—ज्यों मलंग गंठदार को लिए जात गंठदार।—मतिराम प्र०, पृ० ३१२।

गंठपुत्र—संज्ञा पुं० [हि० गंठ + पुत्र] मलमार्ग से उत्पन्न पुत्र।—(परिहास)।

गंठरा—संज्ञा पुं० [सं० गण्डाली] [स्त्री० गंठरी] १. मूँज की तरह की एक घास जो तर जमीन में होती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ आध अंगुल चौड़ी और हाथ डेढ़ हाथ लंबी होती हैं। यह ऊँचाई में दो फुट से पाँच छह फुट तक होती है। इसके डंठल के बीच से डेढ़ दो हाथ लंबी पतली सीक निकलती है जो सूखने पर सुनहले रंग की हो जाती है। सीक के सिरे पर जीरे लगते हैं। ये जीरे कुपार के महीने में फूटते हैं। पूस तक यह घास सूखने लगती है। किसान हरी सीकों को निकाल लेते हैं और उन्हें भाड़ू बनाने और डब्बे, पिटारियाँ आदि बुनने के काम में लाते हैं। इसे फागुन, चैत में सोग काटते हैं और इसके डंठलों से छप्पर आदि छाते हैं। इसकी चटाइयाँ भी बनती हैं। इसकी जड़ में सोंधी महक होती है और वह खस कहलाती है। खस की टट्टियाँ बनती हैं तथा इससे इत्र निकाला जाता है।

२. एक घान का नाम जो भादों कुआर में तैयार होता है।

गंठरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डाली] दे० 'गंठरा'।

गंठसल्ल—वि० [हि० गंठ] १. गुदाभंजन करानेवाला। २. डरपोक। कायर।

गैडासा—संज्ञा पुं० [हि० गैड़ी + सं० अस्ति = तलवार] [बी० अल्पा० गैडासी] चौपायों के खाने के लिये चारे या घास के टुकड़े करने का हथियार ।

विशेष—यह एक हाथ के लगभग लंबा होता है । यह एक लकड़ी में, जिसे जाली कहते हैं, जड़ा हुआ एक चौड़ा लोहे का पारदार टुकड़ा होता है । इससे कोल्हू में डालने के लिये गन्ने की गैदेरी भी काटते हैं और साठी में लगाकर हथियार का काम भी लेते हैं ।

गैडासी—संज्ञा बी० [हि०] दे० 'गैडासा' ।

गैदियल—वि० [हि० गैद + इत्यल (प्रत्य०)] १. गुदाभंजन कराने-वाला । कायर । डरपोक ।

गैदियाँ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गैद' ।

गैदूष(७)—संज्ञा पुं० [मं० गैदूष] दे० 'गैदूष' । उ०—मुख भरि नीर परसपर डारति, सोभा अतिहि अपूप बढ़ी तब । मनहुँ चंदगन सुधा गैदूषनि, डारति हैं आनंद भरे सब ।—सूर०, १० । १७५३ ।

गैदेरी—संज्ञा बी० [मं० काण्ड या गण्ड + हि० एरी (सा० प्रत्य०)] १. ईल या गन्ने का छोटा टुकड़ा जो बूंसने या कोल्हू में पेरने के लिये काटा जाता है । २. छोटा लंबोतरा टुकड़ा ।

गै—गैदेरी का लड्डू = एक मिठाई जो गूँधे हुए मैदे के छोटे टुकड़ों की धी में छान और चाशनी में मिलाकर लड्डू की तरह बांधने से बनती है ।

गैदोरा—संज्ञा पुं० [गं० गैदोरा = ईल या गुड़] हरा कच्चा लहसुन ।

गैदोलना—संज्ञा पुं० [हि० गैदो] बच्चों के खेलने की छोटी गाड़ी ।

गैदला—वि० [हि० गैदा + ला (प्रत्य०)] मैला कुचैला । गंदा । मलीन । जैसे,—तालाब का पानी गैदला हो गया ।

गैदीला—संज्ञा पुं० [सं० गन्ध] एक घास जो काली मिट्टी में तथा ऊसर और तर भूमि में उपजती है । गंधिया । गाँधी ।

गैदोलन—क्रि० मं० [फ्रा० गैदो से नाम०] तालाब आदि के पानी को मथकर मटमैला करना । गंदा करना । गंदला करना ।

गैधिया^१—संज्ञा पुं० [हि० गंध + इया (प्रत्य०)] १. गुबरेले की जाति का एक छोटा कीड़ा । यह बरसात के दिनों में रात को उड़ता है और बहुत दुर्गंध करता है । २. हरे रंग का एक कीड़ा जो भुनगे के आकार का होता है और घान मक्के आदि को हानि पहुँचाता है ।

क्रि० प्र०—लगना ।

गैधिया^२—संज्ञा बी० एक बरसाती घास । इसकी पत्तियाँ पतली पतली होती हैं और इसके बीच में एक सीका निकलता है । यह उत्तरी भारत के मैदानों में नीची उपजाऊ भूमि में होती है । बुंदेलखंड में भी यह बहुत मिलती है । गाँधी ।

गैमीर(७)—संज्ञा पुं० [सं० गम्भीर] दे० 'गम्भीर' । उ०—चतुर गंभीर राम महतारी । बीधु पाइ निज बात सँवारी ।—मानस, २।१८ ।

गैमाना(७)—क्रि० स० [हि०] दे० 'गैमाना' । उ०—(क) जाके लिए गृह काज तज्यो, न सिखी सखियान की सीख सिखाई । बैर कियो सिगरे ब्रजगाम सो, जाके लिए कूल कानि गैमाई ।—

वति० प्रं०, पु० ३०० । (ख) बसि निकुंज में रास रचायी ।

बिया गैमाई मेंन की ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २२८ ।

गैवाँ—संज्ञा बी० [सं० गव्य] १. गात । दूध । २. मतलब । प्रयोजन । जैसे,—(क) वह हमारी गैवाँ का है । (ख) वह अपनी गैवाँ का पार है ।

क्रि० प्र०—गाँठना ।—साधना ।

३. अवसर । मौका । जैसे—गैवाँ देखकर काम करना चाहिए ।

क्रि० प्र०—लगना ।—मिलना ।

मुहा०—गैवाँ से = (१) बंग से । युक्ति से । (२) धीरे से ।

चुपके से । उ०—(क) बैठे हैं राम लखन भर सोता । पंचवटी बर परनकुटी तर कहै कछु कथा पुनीता । कपट कुरंग कनक मनिमय लखि प्रिय सों कहति हैंसि बाला । पाए पलिवे जोग मंजु मृग मंजुल छाला । प्रिया बचन सुनि बिहँसि प्रेमबस गैवाँहि चाप सर लीन्हे । चल्थो सो भाजि फिर फिर हेरत मुनि रखवारे चीन्हे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) रावन बान महाभट भारे । देखि सरासन गैवाँहि सिधारे ।—तुलसी (शब्द०) ।

गैवाई—संज्ञा बी० [हि० गाँव] [वि० गैवाँयाँ] १. छोटा गाँव उ०—कर ले सूँधि सराहि कै, सबे रहै गहि मोन । गंधी ग्रंथ गुलाब को, गैवाई गाहक कोन ।—बिहारी (शब्द०) । २. गाँव ।

गैवनना(७)—क्रि० प्र० [सं० गमन से नामिक धातु] गमन करना । जाना ।

गैवना(७)†—क्रि० प्र० [सं० गमन, प्रा० गवण] जाना । गमन करना ।

गैवरदल—वि० [हि० गैवार > गैवर + दल] १. गैवारों का सा । गैवारों के समान । २. गैवार । ३. भद्दा । बेहूदा ।

गैवर मसला—संज्ञा पुं० [हि० गैवार > गैवर + प्र० मसल] गैवारों की कहावत । ग्रामीणों की उक्ति ।

गैवहियाँ†—संज्ञा पुं० [सं० गोघ्न = प्रतिधि] प्रतिधि । मेहमान ।

गैवाऊँ—वि० [हि० गैवाना] गैवानेवाला । उड़ानेवाला । उड़ाऊ ।

गैवाना—क्रि० स० [मं० गमन, पु० हि० गवन] १. (समय) बिताना । (समय) काटना । उ०—दई दई कैसी रितु गैवाई । सिरी पंचमी पूजी आई ।—जायसी (शब्द०) । २. पास की वस्तु को निकल जाने देना । खोना । जैसे,—लोभ से उसने अपने हाथ की पूँजी भी गैवा दी ।

गैवार—वि० [हि० गाँव + वार (प्रत्य०)] [बी० गैवारो, गैवारिन । वि० गैवारू, गैवारो] १. गाँव का रहनेवाला । ग्रामीण । देहाती । असभ्य । जैसे—वह गैवार आदमी सभ्यों की बात क्या जाने । उ०—(क) बरने तुलसीदास किमि अति मतिमंद गैवार ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) तुम तो हो अहीरी गैवारी । और मथुरा की हैं सुंदरी नारी ।—लल्लू (शब्द०) ।

मुहा०—गैवार का लड्डू = उजड़ । उजबक ।

२. बेवकूफ । मूर्ख । ३. अनाड़ी । अनजान । नासमझ ।

गैवारता(७)—संज्ञा बी० [हि० गैवार + ता (प्रत्य०)] गैवारपन । उ०—उत्तर कोन सो देहीं कहा मैं गैवारता कैसी रही ठहराई ।—सेवक (शब्द०) ।

गैवारि(७)—वि० [हि०] मूर्खा । फूहड़ । गैवारी । उ०—नंदबाबे

प्रभु तुम बहु नाइक, हम गैवारि, तुम चतुर कहाये ।—नंद०
प्र० पृ० ३५७ ।

गैवारि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गैवार स्त्री । गैवारी । उ०—बरषा
रितु बीतन लगी, प्रति दिन सरद उदोति । लह लह जुवार
की अरु गैवारि की होति ।—मति० प्र०, पृ० ४४४ ।

गैवारि^२—वि० [हि० गैवार + इन (प्रत्य०)] अशिष्ट । बेतहजीब ।
फूहड़ । उ०—अंगरेजी फौजवालिरी औरों को गैवारिनें
समझती थीं, और गैवारिनें उन्हें कुलटा कहती थीं ।—
काया०, पृ० १७२ ।

गैवारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गैवार] १. गैवारपन । देहातीपन । २.
मुखता । बेवकूफी । अज्ञानता । ३. गैवार स्त्री ।

गैवारी^२—वि० स्त्री० [हि० गैवार + ई (प्रत्य०)] १. गैवार का सा ।
जैसे, गैवारी बोल । २. भद्दा । बदसूरत । बेढंगा । जैसे, गैवारी
बूढ़ी । गैवारी हजारबंद ।

विशेष—इस विशेषण का प्रयोग स्त्रीलिंग ही में विशेष होता है,
यद्यपि दिल्ली आदि में पुं० में भी होता है ।

गैवारू—वि० [हि० गैवार + ऊ (प्रत्य०)] गैवार का सा । गैवार
की रचि का । भद्दा । बेढंगा ।

गैवेलि^१, गैवेली^२—संज्ञा स्त्री० [हि० गांव + एली (प्रत्य०)] गांव
की स्त्री । ग्राम में रहनेवाली औरत । उ०—(क) हम हैं
गैवेलि ग्वाल गोपन की बेटी तिन्हें, ढीबे को संकोच प्रति
स्याम पासि ल्याइयो ।—ब्रज० प्र०, पृ० २७ । (ख) रूप
मद छाके तें गैवेली गरबीली ग्वारि, तोहि तार्के रूपी उमगनि
उमदात है ।—घनानंद, पृ० २१ ।

गैस^१—संज्ञा पुं० [सं० ग्रंथि] १. गाँठ । द्वेप । वैर । उ०—मानी
राम अधिक जननी ते जननिहुँ गैस न गही । सीय लखत
रिपुदमन राम रख लखि सब की निबही ।—तुलसी (शब्द०) ।
२. लाग की बात । मन में चुभनेवाली बात । आक्षेप । ताना ।
खुटकी ।

गैस^२—संज्ञा स्त्री० [सं० कषा = चाबुक] तीर की नोक । गाँसी ।
दे० 'गाँस' ।

गैसना^१—क्रि० प्र० [सं० ग्रन्थन] १. अच्छी तरह कसना ।
जकड़ना । गाँठना । २. बुनावट में तागों या सूतों को परस्पर
खूब मिलाना जिसमें छेद न रह जाय । बुनावट में बाने को
कसना ।

गैसना^२—क्रि० प्र० १. बुनावट में सूतों का खूब पास पास होना ।
गँठ जाना । कस जाना । २. ठसाठसा भरना । छा जाना ।
उ०—(क) भनै रघुराज बहलोक ते अवध लागि गगन में
गैसिगी विमान के कतार हैं ।—रघुराज (शब्द०) । (ख)
बिधु कैसी कला बधू गैलनि में गैसी ठाढ़ी गोपाल जहाँ
जुरिगो ।—पजनेस (शब्द०) ।

गैसना^३—क्रि० प्र० [सं० प्रसन] दे० 'प्रसना' । उ०—बहु रहस्यशील
दुरधिगम्य सुनीता को मानो एक ही साथ गैस लेता है ।—
सुनीता, पृ० २६६ ।

गैसि^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] गाँसी । गाँस । कोष । उ०—सुनि पिय

के रस बसन सबनि गैसि छाड़ि दयो है । बिहंसि घापने उर
सों लास लगाय लयो है ।—नंद० प्र०, पृ० २१ ।

गैसीला^१—वि० [हि० गाँसी] [वि० स्त्री० गैसीली] गाँसीवाला । तीर
के समान नोकदार । चुभनेवाला । उ०—लखनि गैसीली त्यों
फँसीली नथ फाँसी श्री हँसीली सों हिय में विषम विष है
गई ।—(शब्द०) ।

गैसीला^२—वि० [हि० गैसना] गैसा हुआ । ठस । दे० 'गैसीला' ।

गैसीली—संज्ञा स्त्री० [] चुभनेवाली । गाँठवाली । उ०—सुन गैसीली
बात हाथों के मले । छिल गया दिल हाथ में छाये पड़े ।—
चोखे०, पृ० ६१ ।

ग^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. गीत । २. गंधर्व । ३. गुहमात्रा । २. गणेश ।

ग^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. जानेवाला । जैसे,—सामग । २. जानेवाला ।
पहुँचनेवाला । जैसे,—अवग, कठग ।

विशेष—इस अर्थ में यह समस्त शब्दों के अंत में आता है ।

गज^१—संज्ञा पुं० [सं० गज, प्रा० गज, गय] हाथी । उ०—कि
करब ततिलने होय गज मनिषने भलइते बेभाकुल मने ।—
विद्यापति, पृ० ५०६ ।

गइ^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गयंद' ।

गइनाही^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ज्ञान] जानकारी । उ०—इसी री माई
श्याम भुभंगम कारे । मोहन मुख मुसकान मनहु विष जाते मरे
सो मारे । फुरै न मंत्र यंत्र गइनाही चले गुनी गुन डारे ।—
सूर (शब्द०) ।

गई करना^१—क्रि० प्र० [सं० गति, प्रा० गइ + हि० करना] तरह
देना । जाने देना । छोड़ देना । ध्यान न देना । उ०—(क)
केलि को रैन परी है, चरीक गई करि जाहु दर्द के निहोरे ।—
दास (शब्द०) । (ख) तुम्हें लग लागी मुबारक आन सुनागर
हो सुख सागर सार । नई दुलही की लहरता देखि गई करि
जैषत बारह बार ।—मुबारक (शब्द०) ।

गईबहोर^१—वि० [हि० गया + बहोरना = लोटना] खोई हुई वस्तु
को पुनः देने अथवा बिगड़ी हुई वस्तु को बनानेवाला । उ०—
गई बहोर गरीब निवाज । सरल सबल साहब रघुराज ।—
तुलसी (शब्द०) ।

गउंथ—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो अफगानिस्तान
और बिलोचिस्तान में आपसे आप होती है और भारत में
अनेक स्थानों में चारे के लिये बोई जाती है ।

विशेष—इसे तैयार करने के लिये पहले जमीन को अच्छी तरह
जोतते और उसमें खाद डालते हैं । इसके बीज कुआर कातिक
में खेत में बनाई हुई मेड़ों पर बो देते हैं और पानी से खूब
सींचते हैं । जाड़े में आठवें दिन और गरमी में पाँचवें छठे दिन
इसमें पानी की आवश्यकता होती है । पहली बार यह छह
महीने में तैयार होती है और तदुपरांत साल भर में दस बार
काटी जा सकती है । इसे विलायती होल या हूल भी कहते हैं ।

गउल^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गवाक्ष] दे० 'गोला' । उ०—बाबहिया
चढ़ि गउलसिरि, चढ़ि ऊँचदरी भीत । मत ही साहिब बाहुडइ,
कउ गुन भावइ भीत ।—डोला०, पृ० २५ ।

गउरि—संज्ञा स्त्री० [सं० गौरी] १० 'गौरी' । उ०—रुतने जतने गउरि धराधिप भागिप्र स्वामि मोहाग ।—विद्यापति, पृ० १२० ।

गउब—संज्ञा स्त्री० [सं० गो] गऊ । गाय । उ०—गउब सिध रेंगहि एक बाटा । दूअउ पानि पिअहि एक घाटा : - जायसी पं० (गुप्त), पृ० १३० ।

गउह—संज्ञा पुं० [प्रा० गोहर] मोती । आये गउह आये हीग । आये परवि विमाहे हीरा ।—प्राण०, पृ० २४० ।

गऊ—संज्ञा स्त्री० [सं० गो, गी] गाय । गो । उ०—कर्महि ते बन गऊ चराई । कर्म ने गोपी केलि कराई ।—कबीर सा०, पृ० ६६० ।

गौ—गऊघाट = गाय बैलों के पानी पीने का समय का घाट । = गोपद ।

गऊपद—संज्ञा स्त्री० [सं० गोऊपद] ३० 'गोपद' । उ०—गऊपद माहीं पहोकर फदकै, दादर भरेंय झिलोर ।—गोरख०, पृ० २११ ।

गककर—संज्ञा पुं० [सं० केकय] पंजाब के उत्तरपश्चिम में रहनेवाली एक जाति ।

गगनंतरि—संज्ञा पुं० [सं० गगन + अन्तर] अक्षरंध्र या त्रिकुटी का स्थान । उ०—चंचल नारिन जाय अवाड़े । गगनंतरि धनुष सहजि महि हाडे । प्राण०, पृ० १०१ ।

गगन—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश ।

मुहा०—गगन खेलना = बहने हुए पानी या नदी आदि का उछलना । गगन होना = पक्षी या गुट्टी आदि का बहुत ऊपर आकाश में जाना ।

यो०—गगनध्वज । गगनध्वज । गगनेचर । गगनोत्सुक ।

२. गगन स्थान । ३. छप्पय छंद का एक भेद जिसमें १२ गुरु और १२८ लघु, कुल १४० वर्ण या १५२ मात्राएँ अथवा १२ गुरु और १२४ लघु, कुल १३६ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं । ४. अबरक ।

गगनकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] आकाशकुसुम ।

गगनगढ़—संज्ञा पुं० [सं० गगन + गढ़] गगनस्पर्शी प्रासाद । बहुत ऊँचा महल । बहुत ऊँचा गढ़ । उ०—देखा साह गगनगढ़ इदलोका कर साज । रहिय राज फुर ताकर सरग करे अस राज ।—जायसी (शब्द०) ।

गगनगति—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो आकाश में चले । आकाश-जारी । २. गुरु, चंद्र आदि ग्रह । ३. देवता ।

गगनगिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० गगन + गिर] आकाशवाणी । उ०—गगनगिरा गंभीर भर हरिन लोक संदेह ।—मानस, १।१८६ ।

गगनगुफा—संज्ञा पुं० [सं० गगन + हि० गुफा] ब्रह्मरंध्र । उ०—गगन गुफा के घाट निरंजन भेटिए ।—घरम०, पृ० ४१ ।

गगनचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्षी । २. ग्रह । नक्षत्र । ३. देव । देवता (को०) । ४. २७ नक्षत्र जो चंद्रमा की पत्नी के रूप में हैं । (को०) । ५. राशिनक्षत्र (को०) ।

गगनचर—वि० आकाश में चलनेवाला । आकाशगामी ।

गगनचुंबी—वि० [सं० गगन + चुम्बन्] आकाश को छूनेवाला । बहुत ऊँचा । जैसे,—गगनचुंबी प्रासाद ।

गगनधूल—संज्ञा स्त्री० [सं० गगन + धूलि > हि० धूल] १. कुकुर-मुत्ते का एक भेद ।

विशेष—यह गोल गोल सफेद रंग की होती है और बरसात के दिनों में साव आदि के पेड़ों के नीचे या मैदानों में निकलती है । इसके ताजे फूल की तरकारी बनाई जाती है । कई दिनों की हो जाने पर इसके बीच से सूखने पर हरे रंग की मैली धूल निकलती है, जो कान बहने की बहुत अच्छी दवा है ।

२. केकड़े या केतकी के फूल पर की धूल ।

गगनधूलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केतकी या केकड़े के पेड़ पर पड़ी धूलि । २. एक प्रकार का कुकुरमुत्ता (को०) ।

गगनध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. बाबल ।

गगनपति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

गगनबाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश की बाटिका अर्थात् असंभव बात । वि० दे० 'गंधर्वनगर' । उ०—गगनबाटिका सींचहि भरि भरि मिधु तरंग । तुलसी मानहि मोद मन ऐसे प्रथम प्रभंग ।—तुलसी (शब्द०) ।

गगनभेड़—संज्ञा स्त्री० [सं० गगन + हि० भेड़] करंजुल या कूज नाम की चिड़िया जो पानी के किनारे रहती है ।

गगनभेदी—वि० [सं० गगनभेदिन्] आकाशभेदी । बहुत ऊँचा ।

गगनरोमंथ—संज्ञा पुं० [सं० गगनक्षोमंथ] निरर्थक बात । असंभव बात (को०) ।

गगनवटी—संज्ञा पुं० [सं० गगनवर्ती] सूर्य ।—(डि०) ।

गगनवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशवाणी ।

गगनविहारी—संज्ञा पुं० [सं० गगनविहारिन्] १. प्रकाशपिंड । २. सूर्य । ३. देवता (को०) ।

गगनविहारी—वि० आकाशचारी । नभचारी ।

गगनस्थ, गगनस्थित—वि० [सं०] आकाश में स्थित (को०) ।

गगनस्पर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १. आठ मरुतों में से एक । २. वायु । पवन (को०) ।

गगनस्पर्शी—वि० [सं०] आकाश को छूनेवाला । बहुत ऊँचा ।

गगनस्पृक्—वि० [सं०] आकाश को छूनेवाला । बहुत ऊँचा ।

गगनांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० गगनाङ्गना] १. अम्बरा । २. एक छंद का नाम (को०) ।

गगनांबु—संज्ञा पुं० [सं० गगनाम्बु] आकाश से गिरा हुआ या बृष्टि का जल ।

विशेष—वैद्यक में यह जल त्रिदोषघ्न, बलकारक, रसायन, शीतल और विषनाशक माना जाता है ।

गगनाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश का सबसे ऊँचा भाग या स्थान (को०) ।

गगनाधिवासी—संज्ञा पुं० [सं० गगनाधिवासिन्] ग्रह । नक्षत्र (को०) ।

गगनाध्वग—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. ग्रह । ३. देवता (को०) ।

गगनानंग—संज्ञा पुं० [सं० गगनानङ्ग] पचीस मात्राओं का एक मात्रिक छंद ।

विशेष—इसके प्रत्येक चरण में सोलहवीं मात्रा पर विश्राम होता है और आरंभ में रगण होता है । इस छंद में विशेषता यह है कि प्रत्येक चरण में पाँच गुरु और पंद्रह लघु होते हैं । किसी किसी के मत से बारह मात्राओं के बाद भी यति होती है । जैसे—माधव परम वेद निधि देवक, असुर हरंत तू । पावन धरम सेतु कर पूरण, सजन गहंत तू । दानव हरण हरि सुजग संतन, काज करंत तू । देखदू कस न नीति कर मोहि कहें, मान धरंत तू ।

गगनापगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा ।

गगनेचर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रह । नक्षत्र । २. पक्षी । ३. देवता ।

४. वायु । ५. राक्षस । दैत्य । दानव । ६. बाण । इषु । ७. चंद्र ।

गगनेचर^२—वि० आकाश में चलनेवाला । आकाशचारी ।

गगनोल्लुक्—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह ।

गगरा—संज्ञा पुं० [सं० गर्गर = बही मथने का बर्तन] [स्त्री० प्रत्या० गगरी] पीतल, ताँबे, काँसे आदि का बना हुआ बड़ा घड़ा । कलसा ।

गगरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गगरी' ।

गगरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्गरी = बही मथने की हौड़ी] ताँबे, पीतल, मिट्टी आदि का छोटा घड़ा । कलसी । उ०—नौके देहु न मोरी गगरी ।जमुना दह गेंडुरी फटकारी फोरी सब सिर की अस गगरी ।—सूर (शब्द०) ।

गगल—संज्ञा पुं० [सं०] साँप का जहर । सर्पविष [स्त्री०] ।

गगली—संज्ञा पुं० [देश०] अगर् की एक जाति ।

गगोरी—संज्ञा पुं० [सं० गर्ग] एक छोटा कीड़ा जो पृथ्वी के अंदर बिल बनाकर रहता है ।

गच—संज्ञा पुं० [अनु०] १. किसी नरम वस्तु में किसी कड़ी या पेनी वस्तु के धँसने का शब्द । जैसे,—गच से छुरी धँस गई ।

यौ०—गचागच = बार बार धँसने का शब्द ।

२. चूने, सुरखी आदि के मेल से बना हुआ ममाला, जिससे जमीन पक्की की जाती है । उ०—जातरूप मनिरचित अटारी । नाना रंग रुचिर गच ठारी ।—तुलसी (शब्द०) । ३. चूने सुरखी आदि से पिटी हुई जमीन । पक्का फर्श । लेट । उ०—महि बहुरंग रुचिर गच काँचा । जो बिलोकि मुनिवर रुचि राँचा ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पीटना ।

यौ०—गचकारी ।

४. पक्की छत । ५. संग जराहत या सिलखड़ी फूँककर बनाया हुआ चूना, जिसे अंगरेजी में प्लास्टर आफ पैरिस कहते हैं । उ०—दीवारों पर गच के फूलपत्तों का सादा काम अबरख की चमक से चाँदी के ढले की तरह चमक रहा था ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० १७८ ।

विशेष—यह पत्थर राजपूताने और दक्षिण (चिगलपेट, नेलीर आदि) में बहुत होता है । राजपूताने में खिड़की की जालियाँ

बनाने में इसका उपयोग बहुत होता है । इस मसाले से मूर्तियाँ, खिलौने आदि भी बहुत अच्छे बनते हैं ।

गचकारी—संज्ञा स्त्री० [हि० गच + कारी] गच पीटने का काम । चूने, सुरखी का काम ।

गचगर—संज्ञा पुं० [हि० गच + कार = बनानेवाला] वह कारी-गर जो गच बनाता हो । गच पीटनेवाला । यवई ।

गचगोरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गच + कारी] चूने, सुरखी का पक्का काम । गचकारी । उ०—कायर का घर फूस का भग्नी चढ़ पछीत । सूर के कछु डर नहीं गचगोरी की भीत ।—कबीर (शब्द०) ।

गचना^१—क्रि० स० [अनु० गच] १. बहुत अधिक या कसकर भरना । ठूसकर भरना । उ०—तीनों लोक रचना रचत हैं बिरंच यासों अचल खजानों जानी राख्यो गुण गधि के ।—गोपाल (शब्द०) । २. दे० 'गंसना' ।

गचपच—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गिचपिच' ।

गचाका^१—संज्ञा पुं० [हि० गच से अनु०] गच से गिरने या लगने का शब्द ।

गचाका^२—संज्ञा स्त्री० [हि० गच से अनु०] जवान औरत । जवानी से भरी स्त्री (बाजारू) ।

गचाका^३—क्रि० वि० भरपूर ।

गच्चा—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. धोखा । २. बेइज्जती । उ०—नारी जाति पर बल का प्रयोग करके गच्चा खा चुका था ।—गोदान, पृ० ३७ ।

गच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेड़ । गाछ । २. साधुओं का मठ (जैन) । ३. वे साधु जो एक ही गुरु के शिष्य हों (जैन) ।

गच्छना^१—क्रि० स० [सं० गच्छ = जाना, प्रा० गच्छ] जाना । चलना । उ०—(क) पच्छ बिन गच्छत प्रतच्छ अंतरिच्छन में अच्छ अवलच्छ कला कच्छन न कच्छे हैं ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३०५ । (ख) कहं पद्माकर निपच्छन के पच्छ हित पच्छि तजि लच्छि तजि गच्छिबो करत हैं ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३४३ ।

गछना^२—क्रि० प्र० [सं० गच्छ = जाना] चलना । जाना ।

गछना^३—क्रि० स०, चलाना । निबाहना । उ०—अवधि अवधार न होतो जीवन को गछतो ।—व्यास (शब्द०) ।

गछना^४—क्रि० स० [सं० गच्छन, हि० गच्छना] १. अपने जिम्मे लेना । अपने ऊपर लेना । २. बहुत बनाव चुनाव से बात करना । गछ गछकर बातें करना । ३. गूँथना । ग्रंथन करना ।

गछेबाजो—संज्ञा स्त्री० [हि० गछना + फा० बाजो] बनाव चुनाव की बातें । शेखी । उ०—इस तरह कई दिनों तक गछेबाजियाँ हुआ कीं ।—रंगभूषि, पृ० ५६६ ।

गजंद^१—संज्ञा पुं० [सं० गजेन्द्र, प्रा० गयंद, गइद] दे० 'गजेंद्र' । उ०—मन गजंद ज्ञान करि सीकरि पकरि के जेर भरावे ।—गुलाल, पृ० ४ ।

गज^१—संज्ञा पुं० [सं०] [जी० गजी] १. हाथी। २. एक राजस का नाम, जो महिषासुर का पुत्र था। ३. एक बंदर का नाम जो रामचंद्र की सेना में था। ४. आठ की संख्या। ५. मकान की नींव या पुण्डा। ६. ज्योतिष में नक्षत्रों की बीषियों में से एक। ७. लंबाई नापने की एक प्राचीन माप जो साधारणतः ३० अंगुल की होती थी (को०)।

गज^२—संज्ञा पुं० [पा० गज] १. लंबाई नापने की एक माप जो मोलह गिरह या तीन फुट की होती है।

विशेष—गज कई प्रकार का होता है; किसी से कपड़ा, किसी से जमीन, किसी से लकड़ी, किसी से दीवार नापी जाती है। पुगने समय से भिन्न भिन्न प्रांतों तथा भिन्न भिन्न व्यवसायों में भिन्न भिन्न माप के गज प्रचलित थे और उनके नाम भी भिन्न भिन्न थे। उनका प्रचार अब भी है। सरकारी गज ३ फुट या ३६ इंच का होता है। कपड़ा नापने का गज प्रायः लोहे की छड़ या लकड़ी का होता है जिसमें १६ गिरहें होती हैं और बार बार गिरहों पर चौपाटे का चिह्न होता है। फोड़ मोड़ २० गिरह का भी होता है। राजगीरों का गज लकड़ी का होता है और उसमें २४ तगू होते हैं। एक एक तगू के बराबर तगू होता है। यही गज बड़ई भी काम में लाते हैं। अब इसकी जगह विशेषकर विनायकी दो फुटे से काम लिया जाता है। दर्जियों का गज कपड़े के फीते का होता है, जिसमें गिरह के चिह्न बने होते हैं।

मुहा०—गजभर = बनिशों की बोलचाल में एक रूप में सोलह सेर का भाव। गज भर की छाती होना = बहुत प्रसन्नता या समान का बोध करना। गज भर की जबान होना = बड़बोला होना। उ०—क्यों जान के दुश्मन हुए हो, इतनी सी जान गज भर की जबान।—किसाना०, भा० ३, पृ० २१६।

२. वह पतली लकड़ी जो बेलगाड़ी के पहिए में मूंडी से पुट्टी तक लगाई जाती है।

विशेष—यह आरे से पतली होती है और बूड़ी के अंदर आरि की श्रृंखला लगाई जाती है। यह पुट्टी और आरों को मूंडी में जकड़े रहती है। गज चार होते हैं।

३. लोह या लकड़ी की वह छड़ जिससे पुराने ढंग की बंदूक भरी जाती है अर्थात् जिसमें बारूद गोली आदि बंदूक में ठूसी जाती है।

क्रि० प्र० करना।

४. कपानी, जिसमें बारंगी आदि बजाते हैं। ५. एक प्रकार का तीर जिसमें पर और पैकान नहीं होता। ६. लकड़ी की पटरी जो थोड़ियों के ऊपर रखी जाती है।

गजअसन(प्र) —संज्ञा पुं० [सं० गज + अशन] दे० 'गजाशन'।

गजइलाही—संज्ञा पुं० [पा० गज + इलाही] धक्करी गज जो ४१ अंगुल का होता है।

गजओबरि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ओबरी'। उ०—सागु मोरि गुने गज ओबरि, ननद मोरि भंगना हो। हम धन सुते धवराहर पिप सग जगना हो।—पलटू०, पृ० ७३।

गजकंद—संज्ञा पुं० [सं० गजकन्द] इस्तिकंद।

गजक—संज्ञा पुं० [क्रा० कजक, गजक] १. वह बीज जो शराब आदि पीने के बाद मुंह का स्वाद बदलने के लिये खाई जाती है। जैसे,—कबाब, पापड़, दालमोठ, सेव, बादाम, पिस्ता आदि शराब के बाद, और मिठाई, दूध, रवड़ी आदि अफीम या भंग के बाद। चाट। २. तिलपपड़ी। तिलशकरी। ३. नाश्ता। जलपान। ४. चटपट खा जाने की बीज।

गजकरन आलू—संज्ञा पुं० [सं० गजकर्णालु] अरुवा नाम की सता जिसमें लंबा कंदा पड़ता है। वि० दे० 'अरुवा'।

गजकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक यक्ष का नाम (को०)। † २. दाढ़। ददु रोग।

गजकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बनीषधि (को०)।

गजकुंभ—संज्ञा पुं० [सं० गजकुम्भ] हाथी के माथे पर दोनों ओर उठे हुए भाग। हाथी का उभरा हुआ मस्तक।

गजकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर।

गजकूर्माशी—संज्ञा पुं० [सं० गजकूर्माशिन] वेनतेय। गरुड (को०)।

गजकेसर—संज्ञा पुं० [सं० गज + केसर] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

गजक्रीडित—संज्ञा पुं० [सं० गजक्रीडित] नृत्य में एक प्रकार का भाव।

गजखाल—संज्ञा पुं० [सं० गज + खाल] हाथी का चमड़ा। गज की खाल। उ०—गजखाल कपाल की माल बिसाल सो गाल बजावत घावत है।—रसखान०, पृ० ३२।

गजगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हाथी की चाल। २. हाथी की सी मंद चाल। (स्त्रियों का धीरे धीरे चलना भारतवर्ष में सुलक्षण समझा जाता है।) गौरव से भरी गति। ३. रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा में शुक्र की स्थिति या गति। ४. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में नगण, भगण तथा एक लघु और एक गुरु होता है। जैसे,— न भल गोपिकन सों। हैसन लाख छन सों।

गजगमन—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी की सी मंद चाल।

गजगवनी^(७)—वि० [सं० गज + गवनी] गज के समान चालवाली। मंद गतिवाली। उ०—गजगवनी प्रति चंद छंद कोमल उच्चारिय।—पृ० १०, १।१५।

गजगामी—वि० [सं० गजगामिन्] [वि० स्त्री० गजगामिनी] हाथी के समान मंद गति से चलनेवाला। मंदगामी।

गजगामिनी—वि० स्त्री० [सं०] हाथी के समान मंद गतिवाली। गजगवनी। उ०—गजगामिनि वह पथ तेरा संकीर्ण कंटकाकीर्ण।—अनामिका, पृ० ३४।

विशेष—इस विशेषण का प्रयोग स्त्रियों के लिये अधिकतर होता है; क्योंकि भारतवर्ष में उनकी मंद चाल अच्छी समझी जाती है।

गजगाह—संज्ञा पुं० [सं० गज + गाह] १. हाथी की झूल। उ०—(क) साजि कै सनाह गजगाह सज्जाह दल महाबली धाए वीर जातुधान धीर के।—तुलसी (शब्द०)। (ख) गजगाह गंगप्रवाह सम निगिनाह दुति मोतिन लसे। सिर चंद चंद दुचंद दुति धानंदकर मनमय नसे।—गोपाख (शब्द०)।

२. भूल। पाखर। उ०—तैसे चँवर बनाये धी घाले गल कप। बाँध सेत गजगाह तहँ जो देखे सो कप।—जायसी (शब्द०)।

गजगौन(५)—संज्ञा पुं० [सं० गज+गमन > प्रा० गजगण] दे० 'गजगमन'।

गजगौनी(५)—वि० स्त्री० [सं० गजगामिनी] दे० 'गजगवनी'।

गजगौहर(५)—संज्ञा पुं० [हि० गज+फ्रा० गौहर] गजमोती। गज-मुक्ता। उ०—घोषम की क्यों गनै नरमी गजगौहर चाह गुलाब गंभीरे।—पद्माकर (शब्द०)।

गजचर्म—संज्ञा पुं० [सं० गजचर्मन्] १. हाथी का चमड़ा। २. एक रोग, जिससे शरीर का चमड़ा हाथी के चमड़े की तरह मोटा और कड़ा हो जाता है। यह रोग घोड़े को भी होता है। इसमें खाज भी होता है।

गजचिर्भटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रायन।

गजचिर्भिट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी।

गजचिर्भिट्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रायन।

गजच्छाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष का एक योग जो उस समय होता है, जब कृष्ण त्रयोदशी के दिन चंद्रमा मेषा नक्षत्र में और सूर्य हस्त नक्षत्र में हो। यह योग आढ़ के लिये अच्छा माना जाता है।

गजट—संज्ञा पुं० [सं० गजेट] १. समाचारपत्र। अखबार। २. वह विशेष सामयिक पत्र जो भारतीय सरकार अथवा प्रांतीय सरकारों द्वारा प्रकाशित होता है और जिसमें बड़े बड़े अफसरों की नियुक्ति, नए कानूनों के मसौदे और भिन्न भिन्न सरकारी विभागों के संबंध की विशेष और सर्वसाधारण के जानने योग्य बातें प्रकाशित की जाती हैं।

मुद्रां—गजट कराना = किसी प्रकार की सूचना आदि को गजट में प्रकाशित कराना। गजट होना = (१) किसी बात का गजट आदि में प्रकाशित होना। (२) किसी बात का बहुत अधिक प्रसिद्ध होना।

गजटक्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी के ऊपर रखकर बजाया जाने-वाला नगाड़ा या धोसा (को०)।

गजता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हाथी की स्थिति या भाव (को०)। २. हाथियों का झुंड।

गजदंड—संज्ञा पुं० [सं० गजदण्ड] पारिस पीपल नाम का पेड़। पारीश पिप्पल।

गजदंत—संज्ञा पुं० [सं० गजदन्त] १. हाथी का दाँत। २. वह खूँटी जो दीवार में कपड़े आदि लटकाने के लिये गाड़ी जाती है। ३. एक प्रकार का घोड़ा जिसके दाँत हाथी के दाँतों की तरह मुँह के बाहर ऊपर की ओर निकले रहते हैं। ४. दाँत के ऊपर निकला हुआ दाँत। ५. नृत्य में एक प्रकार का भाव जिसमें दोनों हाथ सीधे करके कंधे के पास लाते हैं, और हाथों की उँगलियों को सॉप के फन की तरह बनाकर आगे की ओर झुकाते हैं।

विशेष—प्राचीन काल में नृत्य का यह भाव उस समय दिखाया जाता था, जब विवाह के उपरांत कन्या को घर ले जाता

था। इसके अतिरिक्त झूलने अथवा वृक्ष आदि उखाड़ने की मुद्रा दिखलाने के समय भी इसका व्यवहार होता था।

६. गणपति का एक विशेषण (को०)।

गजदंतफला—संज्ञा स्त्री० [सं० गजदन्तफला] चिचड़ा।

गजदंती—वि० [हि० गजदंत + ई (प्रत्य०)] हाथी के दाँत का। हाथीदाँत का बना हुआ। उ०—कर कंकण चूरो गजदंती। नख मणिमाणिक भेटति देती।—सूर (शब्द०)।

गजद्वज्ज, गजद्वयस—वि० [सं०] हाथी जैसा लंबा या ऊँचा (को०)।

गजदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी का दान। २. हाथी का मद।

गजदैत्यभिद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] गज नामक असुर के संहारक शिव (को०)।

गजधर—संज्ञा पुं० [फ्रा० गज+हि० धर] १. मकान बनानेवाला। मिल्ही। राज। मेमार। थवई। २. वह राज या मेमार जो घर बनाने के पहले उसका नकशा आदि तैयार करता हो।

गजनक—संज्ञा पुं० [सं०] गंडा। गंडक (को०)।

गजनवी—वि० [फ्रा० गजनवी] गजनी नगर का रहनेवाला। जैसे,—महमूद गजनवी।

गजना(५)—कि० प्र० [सं० गजर्जन, प्रा० गज्जण] दे० 'गरजना'। उ०—ठाँ ठाँ मधुर मथानी बजे। जनु मव आनंद अंबुद गर्जै।—नंद० ग्रं०, पृ० २४८।

गजनाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की बड़ी तोप जिसे हाथी खींचते थे। बड़ी भारी तोप।

गजनासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी की सूँड़ (को०)।

गजनि(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० गजना] गूँज। गुंजन। ध्वनि। उ०—उड़त गुलाल अनुराग रंग छाई दिस, सब मनभाई भई ब्रजनिधि ही की है। मूपुरनिनाद कटिकिकिनी की नौकी धुनि, चंगनि की गजनि बजनि मुरली की है।—ब्रज० ग्रं०, पृ० २५।

गजनिमोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोई चीज देखने का बहाना करना। जानबूझकर अनजाना बनना या दिखाना। उपेक्षा (को०)।

गजनी^१—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की मिट्टी।

गजनी^२—संज्ञा पुं० [फ्रा०, मि० सं० गज्जन] [वि० गजनवी] अफ-गानिस्तान के एक नगर का नाम, जहाँ महमूद की राजधानी थी।

गजपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह राजा जिसके पास बहुत से हाथी हों। उ०—अमुपतीक सिरमौर कहावे। गजपतीक आंगुस गज नावे।—जायसी (शब्द०) २. कलिंग देश के राजाओं की उपाधि। महाराज विजयनगर या विजयानगरम् के नाम के साथ अब भी यह उपाधि लगाई जाती है। उ०—रतनसेन भा जोगी जती। सुनि भेटद पावा गजपती।—जायसी (शब्द०)। ३. बहुत बड़ा हाथी।

गजपाँव—संज्ञा पुं० [हि० गज+पाँव] एक प्रकार का जलपक्षी।

विशेष—इसके पैर लाल, सिर, गरदन, पीठ और डेन काले तथा बाकी भाग सफेद होते हैं। यह जाड़े के दिनों में ठंड देशों से भारतीय मैदानों में चला आता है और प्रायः तीन चार झंड़े देता है।

गजपादप—संज्ञा पुं० [सं०] बेलिया पीपल।

गजपात—संज्ञा पुं० [सं०] महावन । हाथीवान । उ०—क्रोध गजपात के ठठकि हाथी रह्यो देन अंकुम मसकि कह सकान्यो ।—सूर० १०।३०५४ ।

गजपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मझोले कद के एक पौधे का नाम जिसके पत्ते चौड़े और गुदार होते हैं और जिसके किनारे पर लहरिया नोकदार कटाव होता है ।

विशेष—इसमें दो तीन पत्तों के बाद बीच से एक पतला सीका निकलता है जिसके सिरे पर दम बारह अंगुल लंबी एक इंच के लगभग मोटी मंजरी निकलती है । मंजरी में छोटे छोटे फूल लगते हैं । यह मंजरी सुखाई जाती है और सूखने पर बाजारों में शीपक के लिये बिकती है । बाजार में इसके एक अंगुल मोटे और चार पाँच अंगुल लंबे टुकड़े मिलते हैं । स्वाद में यह मंजरी कड़वी और चरपरी होती है । वैद्यक में यह गरम, मलशोधक, कफ-वात-नाशक, स्तन को बढ़ानेवाली, रसिकारक और अग्निबोधक मानी गई है और कहा गया है कि पकने से पहले इसमें शीश भी कुछ गुण होते हैं ।

पर्याय—कपिपिप्पली । इभकगा । कपिवल्नी । कपिल्लिका । बक्षिर । कोलवल्नी । चव्यफल । दीर्घपंधी । तैजसी ।

गजपीपर—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गजपिप्पली' ।

गजपोपल—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गजपिप्पली' ।

गजपुंगव—संज्ञा पुं० [सं० गजपुङ्गव] बड़ा या विशाल हाथी [को०] ।

गजपुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. धातुओं के फूँकने की एक रीति ।

विशेष—इसमें सवा हाथ लबा, सवा हाथ चौड़ा और सवा हाथ गहरा एक गड्ढा खोदने हैं । उसमें पाँच मी बिनुए कंड़े बिछाकर बीच में जिन वस्तु को फूँकना होता है, उसे रखकर ऊपर से फिर ५०० कंड़े बिछाकर गड्ढे के भुँह पर चारों ओर से मिट्टी ढाल देते हैं । केवल थोड़ा सा स्थान बीच में खुला छोड़ देते हैं । इस प्रकार जब गड्ढे ठीक कर चुकते हैं, तब ऊपर से उसमें आग लगा देते हैं । धातु फूँकने की इस रीति को गजपुट कहते हैं ।

२. धातु को फूँककर उस तैयार करने के लिये बनाया जानेवाला निश्चित मान का गड्ढा ।

गजपुर—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिनापुर ।

गजपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] नागपुष्पी । नागदीन ।

गजपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गजपुष्प' ।

गजप्रिया—संज्ञा स्त्री० [ग०] सलई । शलकी ।

गजबंध—संज्ञा पुं० [सं० गजबन्ध] एक प्रकार का चित्रकाव्य ।

विशेष—इसमें किसी कविता के अक्षरों को एक विशेष रूप से हाथी का चित्र बनाकर उसके अंग प्रत्यंग में भर देते हैं ।

गजबंधन—संज्ञा पुं० [सं० गजबन्धन] [स्त्री० गजबंधनी, गजबंधनी] हाथी के बांधने का सूटा या स्थान । गजशाला [को०] ।

गजब—संज्ञा पुं० [अ० गजब] १. कोप । रोष । गुस्सा ।

यौ०—गजब इलाही = ईश्वर का कोप । देवी कोप । उ०—कापे यों परैया भयो गजब इलाही है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—घाना ।—टूटना ।—पड़ना ।

२. आपत्ति । आपत । विपत्ति । अनर्थ । जैसे,—उनपर गजब दूट पड़ा ।

क्रि० प्र०—घाना ।—करना ।—टूटना ।—ढाना ।—तोड़ना ।—गिरना ।—साना ।—पड़ना ।

३. अंधेर । अन्याय । जुल्म । जैसे,—क्या गजब है कि तुम दूसरे की बात भी नहीं सुनते । ४. विलक्षण बात । विचित्र बात ।

मुहा०—गजब का = विलक्षण । अपूर्व । बड़ा भारी । अत्यंत । अधिक । जैसे,—(क) वह गजब का चोर है । (ख) वहाँ गजब की भीड़ और गरमी थी । (ग) उसकी खूबसूरती गजब की थी ।

गजबदन(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं०] गरांश । उ०—जय गजबदन बढानन माता । जगतजननि दामिनि दुति गाता ।—मानस, १।२३५ ।

गजबरन(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० गज+बारण] क्वाड़ों पर रक्षार्थ लगाई जानेवाली मोटी नोकदार कीले । उ०—पुष्ट डार मजबूत कपाटन जड़े गजबरन । प्रेमघन०, पृ० ६२ ।

गजबसा(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० गज+बसा] कैला ।—अनेकार्थ०, पृ० १७ ।

गजबाँक—संज्ञा पुं० [सं० गज+बल्गा>हि० बाग] दे० 'गजबाग' ।

गजबाग—संज्ञा पुं० [सं० गज+बल्गा>हि० बाग] हाथी का अंकुश ।

गजबीथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्र की गति के विचार से रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा के समूह का नाम जिसके बीच से होकर शुक्र गमन करे ।

गजबीला(पुं०)—पिं० [अ० गजब+हि० ईला (प्रत्य०)] १. गजब का । २. गजब करनेवाला ।

गजबेली—संज्ञा स्त्री० [सं० गज+बल्ली] एक प्रकार का लोहा । कातिसार । उ०—भाला भारा गजबेली का सोहैं निसरि गयो वहि पार ।—मालहा (शब्द०) ।

गजभक्त—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल ।

गजभक्षा, गजभक्ष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] शलकी । सलई [को०] ।

गजमंडल—संज्ञा पुं० [सं० गजमण्डल] हाथी के माथे पर चित्रित की हुई रंगीन रेखाएँ [को०] ।

गजमंडलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गजमण्डलिका] रथ के चारों ओर स्थापित हाथियों का मंडल या घेरा [को०] ।

गजमणि—संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं०] गजमुक्ता ।

गजमद—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का मदजल [को०] ।

गजमनि—संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं० गजमणि] दे० 'गजमणि' । उ०—बीथी सकल सुगंध बसाई । गजमनि रचि बहु चौक पुराई ।—तुलसी (शब्द०) ।

गजमचल—संज्ञा पुं० [सं०] शार्दूल । सिंह [को०] ।

गजमुक्ता(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० गजमुक्ता] दे० 'गजमुक्ता' । उ०—गजमुक्ता हीरामनि चौक पुराई हो ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १ ।

गजमुक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीनों के अनुसार एक प्रकार का मोती । विशेष—इस मोती का हाथी के मस्तक से निकलना प्रसिद्ध है पर आजतक ऐसा मोती कहीं पाया नहीं गया ।

गजमुक्ताह्वल^५—संज्ञा स्त्री० [सं० गजमुक्ताफल] दे० 'गजमुक्ता' ।
उ०—गजमुक्ताह्वल घाल भरार्ई । चंदन घून को चौक पुरार्ई ।—
कबीर सा०, पृ० ४७३ ।

गजमुख—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश का नाम ।

गजमुख्य—संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों में श्रेष्ठ हाथी । गजपुंगव [को०] ।

गजमोचन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक रूप जिसे धारण कर
उन्होंने ग्राह से एक हाथी की रक्षा की थी । उ०—गजमोचन
ज्यों भयो अवतार । कहीं सुनों सो अब बित धार ।—सूर
(शब्द०) ।

यौ०—गजमोचन कीड़ा = हाथी को ग्राह से बचाने की क्रिया ।

उ०—एहि घर बनी कीड़ा गजमोचन और अनंत कथा स्तुति
गार्ई । सूर०, १।६ ।

गजमोटन—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह [को०] ।

गजमोती—संज्ञा पुं० [सं० गजमोक्तिक, प्रा० गजमोत्तिप्र] गजमुक्ता ।

गजयूथ—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का झुंड [को०] ।

गजर^१—संज्ञा पुं० [सं० गर्ज, हि० गरज] १. पहर पहर पर घंटा बजने
का शब्द । पारा । उ०—पहरहि पहर गजर नित होई । हिया
निसो गा जान न कोई ।—जायसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—बजना ।

२. घंटे का वह शब्द जो प्रातःकाल चार बजे होता है । सबेरे
के समय का घंटा । उ०—फजर को गजर बजाऊं तेरे पास
मैं ।—सूदन (शब्द०) ।

मुहा०—गजरदम या गजरबजे = तड़के । पी फटते । सबेरे ।
भोरे । जैसे,—वह गजरदम उठ खड़ा हुआ । गजर का वक्त =
सबेरा । उषःकाल । जैसे,—उठो गजर का वक्त हुआ; ईश्वर
का नाम लो ।

३. जगाने की घंटी । जगोनी । अलारम । ४. चार, आठ और
बारह बजने पर उतनी ही बार जल्दी जल्दी फिर घंटा बजने
का शब्द ।

गजर^२—संज्ञा पुं० [हि० गजर बजर = मिला जुला] लाल और
सफेद मिला हुआ गेहूँ ।

गजरथ—संज्ञा पुं० [सं०] वह बड़ा रथ जिसे हाथी खींचते थे । पहले
ऐसे रथ राजाओं के यहाँ होते थे और लोग उनपर चढ़कर
लड़ाइयों में जाते थे ।

गजरप्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० गजरप्रबन्ध] गायन और नृत्य आदि के
आरंभ में श्रोताओं के सामने गाने और बजानेवालों का अपना
स्वर और बाजा आदि मिलाना ।

गजर बजर—संज्ञा पुं० [अनु०] १. घाल मेल । बेमेल की मिला-
वट । झंडझंड ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

२. खायाखाद्य । भक्ष्याभक्ष्य । पथ्यापथ्य । जैसे,—लड़के ने कुछ
गजर बजर खा लिया होगा ।

गजरभत्ता—संज्ञा पुं० [हि० गाजर + भत्ता] गाजर के टुकड़ों को
मिलाकर उबाला हुआ भावल ।

गजरभास—संज्ञा पुं० [हि०] 'गजरभत्ता' ।

गजरा^१—संज्ञा पुं० [हि० गाजर] गाजर के पत्ते जो चौपायों को
खिलाए जाते हैं ।

गजरा^२—संज्ञा पुं० [हि० गज = समूह] १. फूल आदि की बनी गुथी
हुई माला । माला । हार । उ०—कर मंडित मोतिन को गजरा
दुग मीड़त आनन ओपत से ।—बेनी (शब्द०) । २. एक
गहना जो कलाई में पहना जाता है । उ०—छाप छसा मुंदरी
भ्रमकै दमकै पहुँची गजरा मिलि मानो ।—गुमान (शब्द०) ।
३. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा । मगरू ।

गजराज—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा हाथी । उ०—महामत्त गजराज कहैं
बस कर भंक्रुष खबं ।—तुलसी (शब्द०) ।

गजरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] रात्रियों का क्रम या श्रृंखला [को०] ।

गजरो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गजरा] एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ कलाई
में पहनती हैं ।

गजरी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० गाजर] छोटी गाजर । इसके कंद छोटे,
पर अधिक मीठे होते हैं ।

गजरौट—संज्ञा स्त्री० [हि० गाजर + औट (प्रत्य०)] गाजर की
पत्ती । गजरा ।

गजल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गजल] फारसी और उर्दू में विशेषतया
शृंगार रस की एक कविता जिसमें कोई शृंखलाबद्ध कथा
नहीं होती ।

विशेष—इसमें प्रेमियों के स्फुट कथन या प्रेमी अथवा प्रेमिका के
हृदय के उद्गार आदि होते हैं । इसका कोई नियत छंद नहीं
होता । गजल में शेरों की संख्या 'ताक' होती है । साधारण
नियम यह है कि एक गजल में पाँच से कम और ग्यारह से
अधिक शेर न होने चाहिए । पर कुछ माने शायरों ने कम से
कम तीन शेर और अधिक से अधिक पच्चीस शेर तक की
गजलें मानी हैं । आजकल सत्रह, उन्नीस और इक्कीस तक की
गजलें लिखी जाती हैं ।

यौ०—गजलगो = गजल लिखनेवाला ।

गजलील—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक जिसमें
चार लघु मात्राएँ और अंत में विराम होता है ।

गजवदन—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश । गज्रास्य ।

गजवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गिरिकदली [को०] ।

गजवान—संज्ञा पुं० [हि० गज + वान (प्रत्य०)] महावत । हाथीवान ।

गजविलसिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त [को०] ।

गजवीथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा नक्षत्रों
का समूह [को०] ।

गजवैद्य—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का चिकित्सक । हस्तिवैद्य ।

गजव्रज—संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों का समूह या सेना [को०] ।

गजशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घर जिसमें हाथी बंधे जाते हैं ।
फीलखाना । हथिसाल ।

गजशिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हस्तिशास्त्र जिसमें हाथियों के विषय में
सारी ज्ञातव्य बातों का समावेश है [को०] ।

गजसाहस्य—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिनापुर नगर का नाम [को०] ।

गजस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी का स्नान । २. निरर्थक कार्य क्योंकि हाथी नहाने के बाद अपने ऊपर पूल कीचड़ आदि शाल लेता है (को०) ।

गजही—संज्ञा स्त्री० [हि० गज = फेन] १. लकड़ी जिससे कच्चा दूध मथकर मक्खन निकाला जाता है । यह चार पाँच हाथ लंबी एक बाँस की लकड़ी होती है जिसका एक गिरा चौकाल चिरा होता है । २. वे पतली लकड़ियाँ जिनसे दूध मथकर फेन निकालते हैं ।

गजा^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गज] नगाडा बनाने की लकड़ी । चोव । उ०—सुर दुंदुभि सीस गजा सर राम के रायन के मिर साथहि साथ्यो । —रामचं०, पृ० १३७ ।

गजा^२—संज्ञा स्त्री० [बें०] पी में भूनकर नीली के रंग में पायी हुई मैदा की एक मिठाई ।

गजाख्या—संज्ञा स्त्री० [मं०] चक्रमर्द । चक्रवत् (को०) ।

गजाजीव—संज्ञा पुं० [मं०] महावत । हाथीवान । फीलवान (को०) ।

गजाधरी—संज्ञा पुं० [मं० गदा, प्रा० गया + मं० धर] दे० 'गदाधर' ।

विशेष—इसका प्रयोग केवल नामों में होता है ।

गजानन—संज्ञा पुं० [मं०] गरुड का एक नाम ।

गजायुर्वेद—संज्ञा पुं० [मं०] हाथियों की चिकित्सा का शास्त्र (को०) ।

गजारि—संज्ञा पुं० [मं०] १. सिंह । २. शिव का एक नाम । ३. एक प्रकार का शाल वृक्ष ।

विशेष—यह प्रायः आसाम में अधिकता से होता है । इसके पत्ते बड़े होते हैं और इसकी डालियों से सूटियाँ बनाते हैं ।

गजारोह—संज्ञा पुं० [मं०] फीलवान । महावत (को०) ।

गजाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की मछली । २. खंटी ।

गजाक्षा—संज्ञा पुं० [सं० गजाक्ष] गृगशावक । हिरन का बच्चा । उ०—तुम्ह लव की फिसत लाल बदरुणाँ से कह्या । जादू है तेरे नैन गजाला से कह्या । —कविता को०, भा० ४, पृ० ५ ।

गजाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीपल । २. अश्वत्थ वृक्ष । ३. कमल की जड़ (को०) ।

गजासुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर जिसका संहार शिव ने किया था (को०) ।

गजास्य—संज्ञा पुं० [मं०] गरुड का एक नाम ।

गजाक्षा—संज्ञा स्त्री० [मं०] गजपिप्पली (को०) ।

गजिया—संज्ञा स्त्री० [हि० गज + इया (प्रत्य०)] बिटार्ड करनेवालों का एक प्रोजार ।

विशेष—इसपर बिटा हुआ तार उतारा जाता है । यह लकड़ी की होती है और इसके दोनों कोने भुके होते हैं ।

गजी^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० गज] कुछ कम चौड़ा एक प्रकार का मोटा देशी कपड़ा जो सस्ता होता है । गाढ़ा । सत्त्वम । उ०—पतिव्रता की गजी जुरे नहि रूखा सुख ग्रहार । —कबीर० भा०, भा० ३, पृ० ५१ ।

मुहा०—गजी गाढ़ा = मोटा, साधारण और सस्ता कपड़ा ।

गजी^२—संज्ञा पुं० [मं० गज + ई (प्रत्य०)] धपवा गजिन् हाथी का सवार । वह जो हाथी पर सवार हो ।

गजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी ।

गजीना(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि० गभिन्] दे० 'गभिन्' । उ०—ऐसे तनि मुनि गहर गजीना साई के मनभावे । —दादू०, पृ० ६०६ ।

गजेन्द्र—संज्ञा पुं० [मं० गजेन्द्र] १. ऐरावत । २. बड़ा हाथी । गजराज । ३. इन्द्रधुम्न नामक राजा जो अगस्त्य मुनि के शाप से हाथी हो गया था और ग्राह से गृहीत होने पर शाप से मुक्त हुआ ।

गजेंद्रगुरु—संज्ञा पुं० [मं० गजेन्द्रगुरु] संगीत में रदताल का एक भेद ।

गजेटियर—संज्ञा पुं० [अं०] सरकार की ओर से प्रकाशित परिचायक सामयिक पत्र । जैसे,—उत्तर प्रदेश गजेटियर । बनारस गजेटियर । उ०—कुछ समय तक शुक्ल जी स्व० डा० हीरालाल के साथ गजेटियर बनाने के कार्य में लगे रहे । —शुक्ल अभि० अं० (जी०), पृ० ६ ।

विशेष—इसमें देश के विभिन्न प्रांतों, जिलों आदि की जनसंख्या, पैदावार, विशिष्ट स्थानों, धर्म, रीति रिवाज, इतिहास तथा भूगोल आदि का विशद वर्णन होता है ।

गजेष्टा—संज्ञा स्त्री० [गं०] बिदारी कंद । भुईं कुम्हड़ा ।

गजोपणा—संज्ञा स्त्री० [मं०] गजपिप्पली (को०) ।

गजना(पुं०)—क्रि० अ० [गं० गजन, प्रा० गजण] दे० 'गरजना' । उ०—मृग व्याघ्र चीते गिछं जत्र गजजै । —ह० रासो, पृ० ३६ ।

गजरा^१—संज्ञा पुं० [अनु०] वह भूमि जो कीचड़ से भरी हो और जिसमें पैर धँसे । दलदल ।

गजरा^२—संज्ञा पुं० [सं० ?] अंजीर ।

गज्झा^१—संज्ञा पुं० [गं० गज्झ - शब्द] बहुत में छोटे छोटे बुलबुलों का समूह जो पानी, दूध या किसी और तरल पदार्थ में उत्पन्न हो । गाज ।

मुहा०—गज्झा देना या छोड़ना—मछली का पानी के अंदर से बाहर बुलबुला फेंकना ।

विशेष—(सौरी या गिरदा मछली के पानी के अंदर साँस लेने से प्रायः ऊपर बुलबुले निकलते हैं । इसे शिकारी या मछुए 'गज्झा देना या छोड़ना' कहते हैं । इससे उनको मान्य हो जाता है कि यहाँ सौरी या गिरदा मछली है) । गज्झा मारना = गज्झा छोड़ना ।

† २. गज ।

गज्झा^२—संज्ञा पुं० [गं० गज्झ, मि० फ्रा० गंज] १. डेर । गाँज । अंबार । २. खजाना । कोश । ३. धन । संपत्ति ।

मुहा०—गज्झा मारना = माँ मारना । रुपया हाथ में करना । गज्झा दबाना = माल दबाना या हड़प करना । अनुचित रूप से बहुत सा धन एकबारगी ले लेना । माल मारना ।

४. लम्ब । फायदा । मुनाफा ।

गज्झिन^१—वि० [हि०] दे० 'गभिन्' ।

गभिन्^१—वि० [हि० गंभना] १. सघन । उ०—लंबी गभिन् दाढ़ी के कारण सौ साहिब का चेहरा बड़ा भयानक लगता था । —भारतेंदु अं०, भा० १, पृ० १८४ ।

गम्बिनाना—क्रि० अ० [हि० गभिन्] गभिन् होना । सघन होना ।

उत्तरोत्तर वृद्धि होना । उ०—गोधूमि गम्भिनाय ।—प्रेमघन०, पृ० ८१७ ।

गट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गट्ट' ।

गटइयाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० गटई] कंठ । गला । गर्दन । उ०—
जबै जमराज रजायसु ते तोहि ले चलिहै भट बाँधि गटइया ।
—तुलसी (शब्द०) ।

गटई—संज्ञा स्त्री० [सं० कण्ठ, हि० घंठ अथवा सं० गल, गर > गड, हि० गट + ई] कंठ गला ।

गटई—संज्ञा स्त्री० [सं० गुटिका] १. दे० 'गोटी' । २. दे० 'गिट्टी' ।

गटकना—क्रि० स० [सं० कण्ठ, या सं० गर (= निगलना) > गट + क या हि० गटई, अथवा गट से अनु०] १. खाना । निगलना । उ०—(क) मीठा सब कोई खात है विष होइ लागे धाय । नीब न कोई गटकई, सबै रोग मिटि जाय ।—कबीर (शब्द०) । (ख) लटक निरखन लयो मटक सब भूलि गयो हटक हूँ वै गयो गटक शिल सो रह्यो मीधु जागी । मुष्टि को गदं मरदि के चागूर चुरकुट कच्यो कंस कोऽनुकंप भयो भई रंग भूमि अनुराग रागी ।—सूर (शब्द०) २. हड़पना । दबा लेना । जैसे,—दूसरों का माल गटकना सहज नहीं है ।

गटकना†—क्रि० स० [हि०] दे० 'गटकना' । उ०—गटकनि गिद्धिनि दोऊ मुनारे ।—प० रासो, पृ० ८२ ।

गटगट—संज्ञा पुं० [अनु०] किसी पदार्थ को कई बार करके निगलने या घूट घूट पीने में गले से उत्पन्न होनेवाला शब्द ।

गटगट—क्रि० वि० गट गट शब्द के सहित । घड़ाधड़ । लगातार । (कोई चीज खाना या पीना) । जैसे,—साहब बहादुर देखते देखते सारी बोतल गटगट करके खाली कर गए ।

गटना†—क्रि० प्र० [सं० ग्रन्थन, प्रा० गंठन] गँटना । बंधना । उ०—
हृदय की कबहुँ न पीर घटी । बिनु गोपाल विषा या तनु की कैसे जात कटी । अपनी रुचि जितही तित खँचति इंद्रिय ग्राम गटी । होति तहीं उठि चलति कपट लगि बाँधे नयन पटी ।—सूर (शब्द०) ।

गटपट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. दो या दो से अधिक मनुष्यों या पदार्थों का परस्पर बहुत अधिक मेल । मिलावट । २. सहवास । संयोग । प्रसंग । उ०—जासों गटगट भए आस राखी वाही की ।—व्यास (शब्द०) ।

गटर—संज्ञा पुं० [अं०] गंदा नाला । जैसे, गटर का कीड़ा ।

गटरगूँ—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'गुटरगूँ' । उ०—पेड़ों पर बुलबुल, तोते रुकमिने, गलारे, कबूतर आदि चहकते और गटरगूँ करते हैं ।—काले०, पृ० ५१ ।

गटरमाला—संज्ञा स्त्री० [हि० गटर+माला] बड़े बड़े दानों की माला ।

गटा—संज्ञा पुं० [हि० गट्टा] गाँठ । उ०—कमल के हिरदय महँ जो गटा । हर हर हार कीन्ह का घटा ।—जायसी (शब्द०) । २. गट्टा । बीज । उ०—पट्टुची रुद्र कँवल के गटा ।—जायसी अं०, पृ० ६० ।

गटागट—क्रि० वि० संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गटगट' ।

गटापारखा—संज्ञा पुं० [मला० गट = गोंद + परखा = कुछ अथवा

सुमात्रा टोप का काम] एक प्रकार का गोंद जो कई ऐसे बूँदों से निकलता है जिनमें सफेद दूध रहता है ।

विशेष—यह प्रायः रबर की तरह काम में आता है, पर उतना मुलायम और लचीला नहीं होता । बिलकुल खुले स्थानों में दूध और पानी आदि सहता हुआ भी यह दस दस बरस तक ज्यों का त्यों रहता है; और यदि नालियों आदि से सुरक्षित स्थानों में रखा जाय, तो बीस बीस वर्ष तक काम देता है । यह प्रायः बिजली के तारों के ऊपर रक्षार्थ लगाया जाता है । इसके खिलौने, बटन आदि भी बनते हैं ।

गटी—स्त्री० संज्ञा [सं० ग्रन्थि, प्रा० गंठि] १. गाँठ । उ०—(क) चेटक लाइ हरहि मन, जब लगि हो गटि फँट । साठ नाठ उठि भागहि, न पहिचान न भेंट ।—जायसी (शब्द०) । (ख) रंग भरि आये ही मेरे ललना बाँधे कहत ही अटपटी । अति अलसात जम्हात हौ प्यारे पिय प्रगट त्रिया प्रताप छुटत नाहिन अंतर की गटी ।—सूर (शब्द०) । ३. गठरी । उ०—अथ ओष की बेगी कटी विकटी, निकटी प्रकटी गुरु जान गटी ।—रामचं०, पृ० ६८ ।

गटैया†—संज्ञा स्त्री० [हि० गटई] गला । कंठ ।

गट्ट—संज्ञा पुं० [अनु०] किसी वस्तु के निगलने में गले से उत्पन्न होनेवाला शब्द ।

मुहा०—गट्ट करना = (१) निगल जाना । (२) हड़प जाना । दबा बैठना । अनुचित अधिकार कर लेना ।

गट्टा—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ, प्रा० गंठ, हि० गाँठ] १. हथेली और पट्टे के बीच का जोड़ । कलाई ।

मुहा०—गट्टा पकड़ना = तगावा या ऋगड़ा करने अथवा बलपूर्वक कुछ माँगने या पूछने आदि के लिये किसी की कलाई पकड़ना । गट्टा उल्लाड़ना = परास्त करना । दबाना ।

२. पैर की नली और तलुए के बीच की गाँठ । ३. गाँठ । ४. नेत्र के नीचे की वह गाँठ जहाँ दोनों नै मिलती हैं और जो फरशी या हुक्के के मुँह पर रहती है । ५. बीज । जैसे,—कमल गट्टा, गिधाड़े का गट्टा । ६. एक प्रकार की मिठाई जो चीनी या शक्कर का तार खींचकर उसे गोल या चौकोर टुकड़ों में काटकर बनाई जाती है । ७. गाँठ । कंद । उ०—सौ गट्टे प्याज सौ जूतियों के साथ खायेंगे ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६१ ।

गट्टी—संज्ञा स्त्री० [दश०] १. जहाज या नाव में उस खंभे के नीचे की चूल जिसमें पाल बँधी रहती है ।—(लश०) ।

मुहा०—गट्टी करना = किसी खंभे में बँधी हुई पाल को चूल के सहारे घुमाना ।

२. नदी का किनारा ।

गट्टी—संज्ञा पुं० [हि० गट्टा] मुठिया । दस्ता ।

गट्टर—संज्ञा पुं० [हि० गाँठ] बड़ी गठरी । गट्टा । बोझा ।

मुहा०—गट्टर साधना = घुटनों को छाती से लगाकर और ऊपर से हाथ बाँधकर गट्टर की तरह पानी में कूटना ।

गट्टल—संज्ञा स्त्री० [हि० गाँठ + ल (प्रत्य०)] गुटल । गाँठ । उ०—बड़ी हाथ अघेड़ पिता जी, माता जी, सिर गट्टल पक्का ।—आराधना, पृ० ७४ ।

गढ़ा—संज्ञा पुं० [हि० गंठ] [बी० अल्पा० गढ़ी, गठिया] १. पास लकड़ी आदि का बोझ। भार। गट्टर। २. बड़ी गठरी। बुकचा। ३. प्याज या सहगुन की गंठ। ४. जरीब का बीसवाँ भाग जो तीन गज का होता है। कट्टा।

गढ़ी—संज्ञा स्त्री० [मं० ग्रन्थि, हि० गंठ] दे० 'गंठ'।

गठ—संज्ञा पुं० [मं० गढ] दे० 'गढ़'। उ०—लंक विधुमी बानर के; काई सराहो राजा गठ भजमेर।—बीमल० रास पु० ३३।

गठ—संज्ञा पुं० [हि०] गंठ का समासगत रूप। गंठ। जैसे,—गठकटा, गठजोरा आदि।

गठकटा—वि० पुं० [हि० गंठ + काटना] १. गंठ काटकर रूप ले लेनेवाला। गिरहकट। उ०—बहुत अच्छा! अरे गठकटे चल।—शकुंतला, पु० १०२। २. धोला देकर या बेईमानी में रुपया लेनेवाला।

गठजोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० गंठ + जोड़ना] दे० 'गंठजोड़ा'। उ०—मैं सोच रहा था कि बिना किमी घाड़बंद के जयंती का और मेरा गठजोड़ा करके कोई ब्राह्मण मंत्र पढ़ देता, बस।—संन्यासी, पु० ६२।

गठजोरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गंठजोड़ा'। उ०—दूल्हा दुलहिन तुरंग हिलोरे झूलत प्रथम समागम गो गठजोरे।—नंद० ग्रं०, पु० ३७८।

गठबंड—संज्ञा पुं० [हि० गड्ढा + बंड = एक प्रकार की कसरत] एक प्रकार का बंड जो दोनों हाथों के बीच के स्थान में गड्ढा बनाकर किया जाता है। इस प्रकार बंड करने में अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

गठकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गठरी'। उ०—लोग लगे घमाधम गठकी पटकने।—प्रेमघन०, भा० २, पु० १११।

गठन—संज्ञा स्त्री० [मं० घटन अथवा मं० घन्यन, प्रा० गंठन] बनावट।

गठना—क्रि० प्र० [मं० घन्यन, प्रा० गंठन, हि० गंठना का प्रकर्मक रूप] १. दो वस्तुओं का परस्पर मिलकर एक होना। जुड़ना। सटना। जैसे,—ये दोनों गेड़ आपस में खूब गठ गए हैं। २. मोटी सिलाई होना। बड़े बड़े टाँके लगना। जैसे,—झूता गठना। ३. बनावट का रह होना।

गंठ—गठ बवन—ऐसा हृष्ट पुष्ट शरीर जो बहुत अधिक मोटा न हो। गठी बखिया—एक प्रकार की बखिया जिसे पोस्तदाना भी कहते हैं।

विशेष—इसमें पहले जिम स्थान पर सूई गड़ाकर घागे की और निकालते हैं फिर उसी स्थान के पास ही उसटकर सूई गड़ाते और निकालने के पहलेवाले स्थान से कुछ और घागे बढ़ाकर निकालते हैं और इसी प्रकार बराबर सीते हुए चले जाते हैं। इसमें ऊपर की सिलाई एगहरी और नीचे की दोहरी होती है। दोड़ की बखिया में और इसमें केवल यही भेद है कि दोड़ की बखिया में केवल आधी दूर तक लौटकर सूई डाली जाती है।

४. किसी षट्चक्र या गुप्त विचार में सहमत या संमिलित होना। जैसे,—भगर वह किसी तरह गठ जाय तो सब काम बन

जाय। ५. अच्छी तरह निमित्त होना। भली भाँति रचा जाना। ठीक ठीक बनना। उ०—भंग भंग बनी मानो लिखी चित्र घनी गठी, निज मन मनी आजु बएँ सूप काम की।—हनुमान (शब्द०)। ६. स्त्री पुरुष या नर मादा का संयोग होना। विषय होना। ७. अधिक मेल मिलाप होना। जैसे,—आजकल उन लोगों में खूब गठती है।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

गठबंध—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गठबंधन'।

गठबंधन—संज्ञा पुं० [मं० ग्रन्थिबन्धन, प्रा० गंठबंधन] विवाह में एक रीति जिसमें बर और वधू के वस्त्रों के छोर को परस्पर मिलाकर गंठ बाँधते हैं।

गठरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गट्टर का स्त्री और अल्पा०] १. कपड़े में गंठ देकर बाँधा हुआ सामान। बड़ी पोटली। बकची।

मुद्रा—गठरी बाँधना = (१) (असबाब बाँधकर) यात्रा की तैयारी करना। (२) पैरों और घुटनों को छाती से लगाकर और उन्हें दोनों हाथों से जकड़कर गठरी की आकृति बना लेना। गठरी साधना = दे० 'गठरी साधना'। गठरी कर देना = (१) हाथ पैर तोड़ या बाँधकर अथवा और किसी प्रकार बेकाम कर देना। ढेर करना। मारकर गिरा देना। (२) कुप्ती में बिपक्षी को इस प्रकार दोहरा कर देना जिसमें उसकी आकृति गठरी के समान हो जाय। गठरी मारना = दे० 'गठरी बाँधना (२)'।

२. संचित धन। जमा की हुई दौलत।

मुद्रा—गठरी मारना = अनुचित रूप से किसी का धन ले लेना। टगना।

३. एक प्रकार की तैराकी।

विशेष—इसमें तैरनेवाला अपने पैरों और घुटनों को छाती से लगाकर और उन्हें दोनों हाथों से जकड़कर गठरी की सी आकृति बना लेता है और इस प्रकार तैरता रहता है।

गठरीमुटरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गठरी + मुटरी] गठरी में बंधा हुआ सामान। उ०—यह गठरी मुटरी लेकर हाथी पर क्यों बैठेगे।—प्रभावती, पु० १६५।

गठरेखा—संज्ञा पुं० [हि० गंठ] चौपायों का एक रोग। गलफुला। हाहा।

विशेष—इस रोग में चौपाए को पहले ज्वर आता है फिर उसकी जाँघ, पसली और जीभ के नीचे और विशेषकर गले के नीचे सूजन हो जाती है। उसे साँस लेने में कष्ट होता है और वह चल फिर नहीं सकता। वह पैरों को जोड़कर खड़ा रहता है। यह सूत का रोग है और अचानक होता है। पशु इस रोग में विशेषकर मर जाते हैं। पहले लोगों का अनुमान था कि यह रोग सर्दी लगने या बदहजमी से होता है। पर अब डाक्टरों ने यह निश्चय किया है कि यह रोग रक्त के विकार से कीटाणुओं द्वारा फैलता है। इस रोग में रोगी को बंद और गर्म, साफ सुथरे और सूखे स्थान में रखना चाहिए। खाने के लिये सूखे स्थान की घास, सूखा भूसा और जौ के आटे की

लेई या नर्म माड़ उपयोगी है। इसे गलफुला और हाहा भी कहते हैं।

गठर्वासी—संज्ञा स्त्री [हि० कट्टा + अंश] गट्टे या बिस्वे का बीसवाँ अंश। बिस्वांसी।

गठवाही—संज्ञा स्त्री [हि० गाँठना] १. जूता गाँठना। २. जूता गाँठने की मजदूरी।

गठवाना—क्रि० स० [हि० गाँठना] १. गठाना। सिलवाना। जैसे,—जूता गठवाना। २. मोटी मोटी सिलाई कराना। टीका मरवाना। ३. जुड़वाना। जोड़ मिलवाना। ४. जोड़ा खिलाना। संयोग कराना।

गठा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गुठ्ठा'।

गठाना—क्रि० स० [हि० गाँठना] १. गठवाना। सिलवाना। मोटी सिलाई कराना। जैसे,—जूते गठाना। २. जोड़ मिलवाना।

गठाना—संज्ञा पुं० [हि० घुटना] वह जलस्थल जहाँ कम पानी हो (माँझी)।

गठानी—संज्ञा स्त्री [दे०] एक प्रकार का कर जो जमींदार असा-मियों से वसूल करता है।

गठाव—संज्ञा पुं० [हि० गठना] गठन। बनावट।

गठित—वि० [सं० बटित अथवा प्रस्थित, प्रा० गठित] गठा हुआ। बना हुआ।

गठबंध—संज्ञा पुं० [सं० पण्डित] गठबंधन। गठजोड़ा। उ०—बड़ि प्रतीति गठबंध ते बड़ो जोग ते छेम। बड़ो सुसेवक साई ते बड़ो नेम ते प्रेम।—तुलसी (शब्द०)।

गठिया—संज्ञा स्त्री [हि० गाँठ इया (प्रत्य०)] १. वह बोरा या दोहरा थैला जिसमें व्यापारी अन्न आदि भरकर चोड़े या बैल की पीठ पर लादते हैं। खुरजी। २. पोटली। छोटी गठरी। ३. कोरे कपड़े के थानों की बँधी हुई बड़ी गठरी। ४. एक रोग जिसमें जोड़ों में विशेषकर घुटनों में सूजन और पीड़ा होती है।

विशेष—जिस अंग में यह रोग होता है वह अंग फँस नहीं सकता और जकड़ जाता है। इनमें कभी कभी ज्वर और सन्निपात भी हो जाता है जिससे रोगी शीघ्र मर जाता है। वैद्यक में वायुविकार इसका कारण माना जाता है। उपदंश, सूजाक आदि के कारण भी एक प्रकार की गठिया हो जाती है।

५. पीधों या वृक्षों का एक रोग जिसमें डालियों का बढ़ना बंद हो जाता है।

विशेष—इसमें पत्तियाँ सिकुड़कर ऐंठ जाती हैं। नई पत्तियाँ धनी और परस्पर लिपटी हुई निकलती हैं। यद्यपि यह रोग आम आदि बड़े पेड़ों में भी होता है पर फसली पीधों में बहुत देखा जाता है। उरद, मूँग तथा कुम्हड़ा, ककड़ी, करेला आदि तरकारियों में यह रोग प्रायः लग जाता है।

गठियाना—क्रि० स० [हि० गाँठ से नाम०] १. गाँठ देना। गाँठ लगाना। २. गाँठ में बाँधना। गाँठ में रखना। उ०—आतम कर्म भाव गठियाना। बंधन आतम वेद बखाना।—घट०, पृ० २८७।

मुहा०—किसी बात को गठिया रखना = किसी बात को निश्चय समझना।

गठिवन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिपत्र] मध्यम आकार का एक पेड़ जिसकी डालियाँ पतली होती हैं।

विशेष—इसकी पत्तियों में स्थान स्थान पर गाँठें होती हैं। फूल नीले रंग के होते हैं। यह नेपाल की तराई में अधिक होता है। इसकी गोल गोल घुँडियाँ या कलियाँ शीघ्र के काम में आती हैं और बाजार में गठिवन के नाम से बिकती हैं। काले रंग का गठिवन उत्तम, पांडु रंग का मध्यम और स्थूल निरुष्ट समझा जाता है। वैद्यक में इसे तीक्ष्ण, चरपरा, गरम, अग्नि-दीपक तथा कफ, वात, श्वास और दुग्ध को नाश करनेवाला माना है। शरीर पर इसका लेप करने से रुखाई आती है और खुजली दूर होती है।

गठीला—वि० [हि० गाँठ + ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० गठीला] गाँठवाला। जिसमें बहुत सी गाँठें हों। जैसे, यह छड़ी गठीली है।

गठीला—वि० [हि० गठना] १. गठा हुआ। घुस्त। सुडौल। जैसे,—गठीला बदन। २. मजबूत। दृढ़। अच्छा।

गठुआ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गुठ्ठा'।

गठुरा—संज्ञा पुं० [हि० गाँठ] भूसे की गाँठ जो खलिहान में फँक दी जाती है।

विशेष—इसे बुंदेलखंड में गेठुआ और अवध में खूँटी कहते हैं।

गठुवा—संज्ञा पुं० [हि० गाँठ + उवा (प्रत्य०)] १. कपड़े का वह टुकड़ा जिसे जुलाहे कपड़े में इसलिये रखते हैं कि उराके तागे से ताने के तागों को गठकर बुनने के लिये चढ़ाएँ। २. भूसे के छोटे छोटे गाँठदार टुकड़े जो खलिहान में फँक दिए जाते हैं। गेठुआ। गठुरा। खूँटी।

गठौद—संज्ञा स्त्री [हि० गाँठ + द] १. गाँठ की बँधाई। गिरहबंदी। २. वह माल जो अलग बाँधकर अमानत की तरह रखा जाय। धरोहर। थाती।

गठौत—संज्ञा स्त्री [हि० गठ + औत (प्रत्य०)] १. मेल। मिलाप। मिश्रता। घनिष्टता। २. गठी गठाई बात। मिलकर पक्की की हुई बात। आँट साँट। अभिसंधि।

क्रि० प्र०—करना।—गाँठना।

३. उपयुक्तता। मौजूनियत।

गठौसी—संज्ञा स्त्री [हि० गठना] १. मेलजोल। मैत्री। घनिष्टता। २. गठी गठाई बात। आँट साँट। अभिसंधि। पड़चक।

क्रि० प्र०—करना।—गाँठना।

गड़क—संज्ञा पुं० [हि० गड़ + अंग] दे० 'गड़ंग'।

गड़ंग—संज्ञा पुं० [हि० गड़ + अंग] वह स्थान जहाँ बारूद, गोले और हथियार आदि रखे जाते हैं। मैगजीन।

गड़ंग—संज्ञा पुं० [सं० गर्भ पुं० हि० गारो] [वि० गड़ंगिया] १. घमंड। शेखी। डींग। २. आत्मश्लाघा। बड़ाई।

मुहा०—गड़ंग मारना या होकर = (१) डींग मारना। शेखी बघारना। बड़ बड़कर बातें करना। (२) अहंकार करना। शेखी करना।

गङ्गिया—वि० [हि० गङ्ग + इया (प्रत्य०)] चमड़ी। डींग मारनेवाला। मोखी बाज। बड़ बढ़कर बात करनेवाला।

गङ्गत—संज्ञा स्त्री० [हि० गाङ्गा] वह वस्तु जिसे लोग टोटे के या अभिचार के लिये गाड़ देते हैं।

विशेष—तांत्रिक या प्रेतविद्या के जाननेवाले प्रायः मारण, मोहन और उच्चाटन आदि के लिये कुछ पदार्थों को मंत्र पढ़कर किसी चौराहे में गाड़ देते हैं और इस गाड़ने को गङ्गत कहते हैं। यह गङ्गत कभी कभी प्रागतुक दुस्खों के निवारण के लिये भी की जाती है।

गङ्ग—संज्ञा पुं० [गं०] १. झोट। झाड़। २. घेरा। चारदीवारी। ३. वह भूसत या टीला जो किसी स्थान के चारों ओर बनाया जाय। ४. गङ्गा। खाई। ५. प्राकार। गङ्ग। ६. एक प्रकार की मछली (को०)।

गङ्गक—संज्ञा पुं० [देश०, या गं० गङ्ग + क (प्रत्य०)] एक प्रकार की मछली।

गङ्गक^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गङ्गकना] १. गङ्गड़ शब्द करना (बादलों का)। २. गरजने या डटने की क्रिया या भाव।

गङ्गक^२—संज्ञा पुं० [अ० गङ्ग] डूबने या गङ्ग होने का भाव।

गङ्गक^३—संज्ञा स्त्री० [हि० गङ्गकना] गटका जाना। पचा जाना (ऋण, रुपया आदि)।

क्रि० प्र०—लेना।

गङ्गकना^१—क्रि० प्र० [अनु०] गङ्ग गङ्ग शब्द करना (बादलों का)। २. गरजना। डटना। उफटना।

गङ्गकना^२—क्रि० प्र० [अ० गङ्ग] १. डूबना। २. नष्ट होना।

गङ्गकना^३—क्रि० प्र० [हि० गङ्गक] ऋण आदि का रुपया मार लेना। दे० 'गटकना'।

गङ्गकना^४—क्रि० प्र० [अनु० गङ्ग + क] १. गङ्ग गङ्ग शब्द उत्पन्न करना। गङ्गड़ाना। २. डाटना। ३. धमकाना। डगाना।

गङ्गकना^५—क्रि० प्र० [अ० गङ्ग] डूबना। शराबोर करना।

गङ्गक^१—संज्ञा पुं० [अ० गङ्ग] डूबाव। २. डूबने का शब्द।

गङ्गक^२—संज्ञा पुं० [अ० गङ्ग] ३० 'गङ्गक'।

गङ्गगङ्ग—संज्ञा पुं० [अनु०] १. गङ्गड़ शब्द जो हुक्का पीने के समय या सुगही से पानी उलटने के समय होता है। २. पेट में होनेवाला गङ्गड़ शब्द।

गङ्गगङ्ग—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गङ्गगङ्ग'।

गङ्गगङ्गा—संज्ञा पुं० [अनु०] १. एक प्रकार का हुक्का। २. बड़ा हुक्का।

गङ्गगङ्गाना^१—क्रि० प्र० [हि० गङ्गगङ्ग] गरजना। गङ्गड़ गङ्गड़ करना। कटाना। जैसे,—प्राज सबेरे से बादल गङ्गगङ्गा रहा है।

गङ्गगङ्गाना^२—क्रि० प्र० गङ्गगङ्ग बोलना। गङ्गगङ्ग शब्द निकालना। गुड़गुड़ाना। जैसे,—वे दिन भर बैठे बैठे हुक्का गङ्गगङ्गा करते हैं।

गङ्गगङ्गाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० गङ्गगङ्गाना] १. गङ्गगङ्गाने का शब्द। गगाड़ी धूमने, गाड़ी चलने या बादल गरजने आदि का शब्द। कड़क। २. हुक्का पीने का शब्द।

गङ्गगङ्गी—संज्ञा स्त्री० [हि० गङ्गगङ्ग] नगाड़ा। डुगी। उ०—ढोल दमामा गङ्गगङ्गी गहनार्द्र श्री तूर। तीनों निकसि न बाहुरें साधु सती श्री सूर।—कबीर (शब्द०)।

गङ्गगुदड़—संज्ञा पुं० [अनु० गुदड़] चिपड़ा। लट्ठा। उ०—लखनऊ-वानों का पहनावा जनाना है, पाजामे की मोहड़ियाँ इतनी चौड़ी रखने हैं कि उठावें तो सिर तक पहुँचें और पगड़ियों का घेरा इतना बड़ा कि छतरी का भी काम न पड़े, बोझ में तो छोटी मोटी गट्टरी से कम न होगी, धरतू कहीं खुल जावे तो अदर से गङ्गगुदड़ का डेरा इतना निकल पड़े कि एक टोकरी भरे।—(शब्द०)।

गङ्गगुच्चा—संज्ञा पुं० [देश०] १. धमकी। घुड़की। २. दबोच। ३. चकमा।

गङ्गणहारी—वि० [गं० घटन + हि० हार] गङ्गनेवाला। मूर्तिकार। उ०—ज एह मूर्ति सावि है तो गङ्गणहारे खाउ।—कबीर ग्रं०, पृ० ३०५।

गङ्गदार—संज्ञा पुं० [हि० गङ्ग + दार] वह नौकर जो मस्त हाथी के साथ साथ भाला लिए हुए चलता है और जब हाथी इधर उधर अगने मन से जाना चाहता है तब उसे भाले से मारकर राह पर से चलता है। उ०—(क) अनी चली मवला हिलै, पिय नै साजि सिगार। ज्यो मत्तंग अट्टदार को लिए जात गङ्गदार।—मतिराम (शब्द०)। (ख) अरे ते गुसलखाने बीच ऐसे उमरा लै चले मनाय महाराज भिवराज को। दाबदार निरखि रिसानो दी दलराज जैसे गङ्गदार अट्टदार गजराज को।—भूपरण (शब्द०)।

गङ्गना—क्रि० प्र० [म० गर्त, प्रा० गङ्ग - गङ्गा] १. घंसना। घुसना। चुभना। जैसे,—काटा गङ्गना। उ०—खरकें छत्रि घनि गङ्गी उर में नृप रावर मैंन रमै कलकै।—गुमान (शब्द०)। २. शरीर में चुभने की सी पीड़ा पहुँचाना। खुश्चुरा लगना। जैसे,—पीठ के नीचे ककड़ गङ्ग रहे हैं। ३. दर्द करना। पीड़ित होना।

विशेष—इस अर्थ में 'गङ्गना' केवल 'आँख' और 'पेट' के साथ आता है। जैसे,—आँख गङ्ग रही। पेट गङ्गता है।

४. मिट्टी आदि के नीचे दबना। दफन होना। नीचे पड़ जाना। जैसे,—जमीन में गङ्गे पत्थर निकाल लो।

मुहा०—गङ्गे मुँह उखाडना = दबीदबाई या पुरानी बात उभाडना।

५. ससाना। गेटना। उ०—क्यों न गङ्ग जाहु गाड गहिरी गङ्ग जिन्हें गोरी गुरुजन लाज निगड गटाइती।—देव (शब्द०)।

मुहा०—गङ्ग जाना = भेपना। लज्जित होना। लजाना। जैसे,—तुम तो बेहया हो दूसरा कोई होता तो गङ्ग जाता। लज्जा-ग्लानि आदि से गङ्गना = लज्जा आदि से दृष्टि नीची करना। उ०—देखि अरन गति मुनि भृदुबानी। सब सेवक गन गरहि गलानी।—तुलसी (शब्द०)।

६. लड़ा होना। भूमि पर टहलना। जमीन पकड़ना। जैसे,—भंडा गङ्गना, खीमा गङ्गना। उ०—भूलेह जाहि बिलोकत ही गङ्ग गाढ़े रहे प्राति ही द्य दूर।—(शब्द०)। ७. जमना।

स्थिर होना । डटना । ठहरना । स्तम्भित होना । जैसे,—(क) उनकी आँख वहाँ गड़ी है । (ख) तुम तो जहाँ जाते हो वहाँ गड़ जाते हो । उ०—प्यारी कुच श्यामता डीठ गड़ी श्यामता पे कहै हनुमान इन काहू को न चीन्ही है । (शब्द०) ।

गड़पल—संज्ञा पुं० [सं० गड़+हि० पल] १. एक बड़ी चिड़िया । २. लड़कों का एक खेल जिसमें वे किसी लड़के से यह कहकर कि तुम्हें उड़ना सिखावेंगे उसके हाथ पैर डंडों में बाँध देते हैं और धोती खोल देते हैं ।

मुहा०—गड़पल बनाना = मूर्ख बनाना । बेवकूफ बनाना ।

गड़प—संज्ञा स्त्री० [अनु०] पानी की चड़ आदि में किसी वस्तु के सहसा समाने का शब्द । जैसे,—उसका पैर गड़प से पानी में चला गया ।

मुहा०—गड़प से = (१) गड़प शब्द करके (पानी आदि में एकबारगी पड़ जाना ।) । (२) तुरत । शीघ्र ।

विशेष—खट, चट आदि अनुकरण शब्दों के समान प्रकार सूचित करने के लिये इस शब्द के साथ भी प्रायः 'से' आता है ।

गड़पना—क्रि० स० [अनु० गड़प] १. निकलना । ला लेना । २. किसी की चीज हजम करना । किसी की वस्तु पर अनुचित अधिकार करना ।

गड़प्पा—संज्ञा पुं० [हि० गड़] १. भारी गड्ढा जिसमें कोई वस्तु ऋट से चली जाय या गिर पड़े । २. धोखा खाने का स्थान ।

गड़बड़—वि० [हि० गड़ = गड़्हा + बड़ = बड़ा, ऊँचा] [वि० गड़-बड़िया] १. ऊँचा नीचा । असमतल । जैसे,—गड़बड़ रास्ते से मत चलो । २. क्रमविहीन । अस्तव्यस्त । झंडबंड । ऊटपटांग । अनियमित । बेठिकाने का । बेठीक । जैसे,—उसका सब काम गड़बड़ होता है ।

गड़बड़—(५) संज्ञा पुं० [बेसी गड़बड़] १. क्रमभंग । गोलमाल । ऊटपटांग कारंवाई । नियमविरुद्ध कार्य । अव्यवस्था । कुप्रबंध । जैसे,—हमने सब ठीक कर दिया है, अब इसमें गड़बड़ मत करना ।

यौ०—गड़बड़घोटाला—दे० 'गड़बड़झाला' । गड़बड़झाला = क्रमभंग । गोलमाल । अव्यवस्था । ऊटपटांग काम । गड़बड़-ध्याव = दे० 'गड़बड़झाला' ।

२. उपद्रव । दंगा । जैसे,—यहाँ गड़बड़ मत करो, चलो ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचना ।—होना ।

३. (गेग आदि का) उपद्रव । आगति । जैसे,—शहर में आज-कल बड़ा गड़बड़ है, मत जाओ ।

विशेष—कोई कोई इस शब्द को स्त्रीलिंग भी बोलते हैं ।

गड़बड़ाना—संज्ञा पुं० [सं० गड़, प्रा० गड़] खटा । गड़हा ।

गड़बड़ाना—क्रि० प्र० [हि० गड़बड़] १. गड़बड़ी में पड़ना । चक्कर में आना । क्रम का ध्यान न होना । भूल में पड़ना । जैसे,—थोड़ी दूर तक तो उसने ठीक ठीक पढ़ा, पीछे गड़बड़ा गया । २. क्रमभ्रष्ट होना । अव्यवस्थित होना । ३. अस्तव्यस्त होना । बिगड़ना । नष्ट होना । जैसे,—वहाँ का सब मामला गड़बड़ा गया ।

गड़बड़ाना—क्रि० स० १. गड़बड़ी में डालना । चक्कर में डालना । २. भ्रम में डालना । भुलवाना । ३. क्रम भ्रष्ट करना । अस्तव्यस्त करना । झंडबंड करना । बिगाड़ना । खराब करना ।

गड़बड़िया—वि० [हि० गड़बड़ + इया (प्रत्यय०)] गड़बड़ करनेवाला । क्रम बिगाड़नेवाला । उपद्रव करनेवाला ।

गड़बड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० गड़बड़] अव्यवस्था । गोलमाल । दे० 'गड़बड़' ।

गड़यंत, गड़यिन्नु—संज्ञा पुं० [सं० गड़यन्त; सं० अथवा (अनु० गड़गड़ शब्द करनेवाला)] बादल (को०) ।

गड़रा तवा—संज्ञा पुं० [देश० गड़रा = गाढ़ा + हि० तवा] एक प्रकार का लोहा जो पहले मध्य भारत में निरालता था ।

गड़रिया—संज्ञा पुं० [सं० गड़रिक, प्रा० गड़रिअ] [स्त्री० 'गड़ेरिन'] एक जाति जो भेड़ें पालती और उनके ऊन से कंबल बुनती है । दे० 'गड़ेरिया' ।

यौ०—गड़रिया पुरान = महीर गड़ेरियों की कहानी । गंवारों की बात ।

गड़री—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गेंडली', 'गेंडुरी' ।

गड़रू—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गुड़रू' ।

गड़लवण—संज्ञा पुं० [सं० गतलवण या गड़ + लवण] वह नमक जो झीलों से, विशेषकर साँभर से, निकलता है । साँभर लवण ।

गड़वाँत—संज्ञा स्त्री० [हि० गाड़ी + वांट] गाड़ी के पहिए का चिह्न । लीक । लकीर ।

गड़वाँत—संज्ञा पुं० [सं० गर्त] दे० 'गाढ़ा' ।

गड़वाँत—संज्ञा पुं० [हि० गेरना] दे० 'गड़वा' । उ०—(क) सोने के गड़वा दूध से भरिया पिये नागयण आगे धरिया । दक्खिनी०, पृ० १६ । (ख) जो कोउ राम बिना नर मूरख औरन के गुन जीभ भनैगी । आनि क्रिया गढ़ तें गड़वा पुनि होत है भेरि कछु न बनैगी ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ४६१ ।

गड़वाट—संज्ञा स्त्री० [हि० गाड़ना] १. जमीन में गाड़ने की क्रिया । २. गड़हा खोदने का काम ।

गड़वाना—क्रि० स० [हि० गड़ना का प्रे० रूप] गाड़ने का काम करना । गाड़ने में लगाना ।

गड़हरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोड़] १. नात । २. सूता ।

गड़हा—संज्ञा पुं० [सं० गर्त, प्रा० गड़] [स्त्री० अस्या० गड़ही] वह जमीन जो अपनी आसपास की चारों ओर की जमीन से एक-बारगी गहरी या नीची हो । जमीन में वह खानी स्थान जिसमें लंबाई, चौड़ाई और गहराई हो । खाता । गड़हा । खड्ड ।

क्रि० प्र०—करना ।—खोदना ।—भरना ।—होना ।

मुहा०—गड़हा पड़ना = गड़हा होना । जैसे,—वहाँ की मिट्टी बह जाने से जगह जगह गड़हे पड़ गए हैं । गड़हा खोदना = बुराई करना । हानि पहुँचाना । जैसे,—तुमने जो हमारे लिये गड़हा खोदा है उसका फल तुम्हें मिल जाएगा । गड़हा भरना या पाठना = (१) टोटा भरना । कमी या घाटा पूरा करना । जैसे,—वह तो खा पकाकर चलते बने, गड़हा भरने को हम रह गए । (२) कूकी मूसी से पेट भरना । भली बुरी से पेट

भरना । जैसे,—क्या करें गेट नहीं मानना, किसी तरह गड़हा भरना ही पड़ता है । गड़हे में पड़ना = घनघनस में पड़ना । फेर में पड़ना । फटिनाई में पड़ना ।

गड़ही—संज्ञा स्त्री० [हि० गड़हा] छोटा गड़हा उ०—घर की गंगा गड़ही बरोबर ।—किन्नर०, पृ० ७७ ।

गड़ा—संज्ञा पुं० [मं० गण = समूह] १. डेर । राशि । घटाला । प्रचार । २. काटी हुई फसल के डंठलों का ढेर जो दाएँ जाने के लिये खलिहान में रखा हो । गोज । खरही ।

घौं—गड़घटाई ।

गड़कू—संज्ञा स्त्री० [मं० गल] एक प्रकार की मछली ।

गड़कड़—संज्ञा स्त्री० [मं० गल ?] विशाल गड़हा । गार । उ०—तीया गड़कड़ घंत किष्टु नाही । प्राण०, पृ० ४३ ।

गड़ान—संज्ञा पुं० [हि० गड़ना] चुभन । उ०—हृदय में तृप्ति की एक विविध गड़ान थी ।—ज्ञानदान, पृ० १५५ ।

गड़ाना^१—क्रि० म० [हि० गड़ना] चुभाना । घँसाना । भोंकना ।

गड़ाना^२—क्रि० स० [हि० 'गड़ना' का प्रे० रूप] गड़ने में लगाना । गड़ने का काम करना ।

गड़ाय^१—संज्ञा पुं० [मं०] पानी आदि में किसी भारी चीज के डूबने का शब्द । जैसे, पैर गड़ाप से पानी में चला गया ।

गड़ाय^२—क्रि० वि० गड़ना । गड़नायक । प्रचानक ।

गड़ापा—संज्ञा पुं० [हि० गड़ाप] गड़ाप से डूबने लायक स्थान । गहरा स्थान ।

गड़ाघटाई—संज्ञा स्त्री० [हि० गड़ा + घटाई] खेत की उपज की घटाई जिसमें बिना दाईं हुई फसल का भाग लगाए जाते हैं । वह घटाई जिसमें फसल दाएँ जाने के पहले डंठल सहित बाँटी जाय ।

गड़ायत(पु)—वि० [हि० गड़ना] [वि० स्त्री० गड़ायती] गड़नेवाला । चुभनेवाला । उ०—क्या न गड़ि जाहु गाड़ गहिरी गड़ति जित्ते गोरी गुहजन लाज निगड गायती ।—देव (शब्द०) ।

गड़ारी^१—संज्ञा स्त्री० [मं० कुबडल] १. मंडलाकार रेखा । गोल लकीर । घुंटा । २. धेरा । मंडल । जैसे,—गड़ारीदार पायजामा ।

गड़ारी^२—संज्ञा स्त्री० [मं० गण्ड + चिह्न] आड़ी धारी । आड़ी लकीरों की पक्ति । गडा । जैसे,—गनगजूरे की पीठ पर या रूप की ओंठ पर जो धारियाँ होती हैं, वे गड़ारियाँ कहलाती हैं ।

गड़ारी^३—संज्ञा स्त्री० [मं० कुएल्ली] १. गोल बरखी जिसपर रस्सी चढाकर कुएँ से पानी खींचते हैं । घिरनी । २. घिरनी के बीच का गहरा गड्ढा जिसमें रस्सी बैठाई जाती है । ३. एक घास जिसका साग बनाया जाता है ।

गड़ारीदार—वि० [हि० गड़ारी + फ्रा० दार] १. जिसपर गंडे वा धारियाँ पड़ी हों । जैसे,—गड़ारीदार रुपा, गड़ारीदार कुसीदा । २. जिसमें गड़ारी जैसा लंबा गड्ढा हो । ३. धेरेदार ।

घौं—गड़ारीदार पायजामा = चोड़ी मोहरी का पायजामा ।

गड़ावन—संज्ञा पुं० [सं० गडलवन] एक प्रकार का नमक । गडलवन ।

गड़ासा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गड़ासा' ।

गड़ि—संज्ञा पुं० [सं०] १. बछड़ा । २. मटुर बैल ।

गड़ियार—वि० [हि० गरियार] दे० 'गरियार' ।

गडु—संज्ञा पुं० [सं०] १. बनोरी । कुबड़ । २. गलगंड । ३. गडुवा (को०) । ४. कुंत । भाना । बरखी (को०) । ५. वह जिसे कुबड़ हो (को०) । ६. केचुवा (को०) । ७. निरर्थक वस्तु (को०) ।

गडुआ—संज्ञा पुं० [सं० गडुवा, प्रा० गडुप्र] [स्त्री० गडुई] दे० 'गडुवा' ।

गडुई—संज्ञा स्त्री० [हि० गडुवा] पानी पीने का एक छोटा बरतन जिसमें टोंटी लगी रहती है । यह गड़वे से छाँटी होती है । भारी ।

गडुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गडुवा । २. मुँदरी । मंगूठी (को०) ।

गडुर—संज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'गडुल' ।

गडुरो—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का पक्षी जिसे गेदुरी भी कहते हैं । उ०—पीव पीव कर लाग पपीहा । तुही तुही कर गडुरी जीहा ।—जायसी (शब्द०) ।

गडुल^१—संज्ञा पुं० [सं०] कुबड़ा आदमी ।

गडुल^२—वि० कुबड़ा । कुब्ज । कुबड़वाला ।

गडुलवा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गडोलना' ।

गडुवा^१—संज्ञा पुं० [सं० गडुक] वह लोटा जिसमें पानी गिराने के लिये बत्तख की गर्दन के आकार की एक पतली टोंटी लगी रहती है । तमहा । उ०—(क) गडुवन हीर पदारथ लागे । देखि विमोहे पुरुष सभागे ।—जायसी (शब्द०) । (ख) हमारे चौपदे कुछ कड़वे होवें मगर वे हितजल के गड़वे हैं ।—चुभते० (भू०), पृ० ८ ।

गडुवा^२—संज्ञा पुं० सरसों के फूलों का गुच्छा या गुनदस्ता जिसे गडुवे में रखकर बसंत के दिन लोग मंदिरों में चढ़ाने या बड़े आदमियों को भेंट करने के लिये जाते हैं ।

गडेर—संज्ञा पुं० [सं०] मेघ । बादल (को०) ।

गडेरिया—संज्ञा पुं० [सं० गडेरिक, प्रा० गडेरिअ] [स्त्री० गडेरिन] एक जाति जो भेंड़े पालती और उनके ऊन से कंबल बुनती है ।

गडेरुआ—संज्ञा पुं० [सं० गण्डोल=घास] एक रोग जिसमें चौपाए के गले में एक गोला सा बन जाता है, जिसके कारण वह खासता रहता है ।

विशेष—यह गोला जबतक चौपाए के गले से बाहर नहीं निकल जाता या टूटकर अंदर नहीं सरक जाता, तबतक वह ठाँसा करता है । चौपाए एक दूसरे को चाटते हैं; इससे चाटने में उनके गले के अंदर कुछ रोएँ चले जाते हैं जो एक दूसरे से चिपटते जाते हैं और उनपर घास भुसे की तरह भी जमती जाती है । अंत में होते होते गेद सा एक गोला बन जाता है ।

गडोना—क्रि० स० [हि० गड़ना] चुभाना । घँसाना । घुसेड़ना ।

गंडोल—संज्ञा पुं० [सं०] १. घास । कोर । २. गुड़ ।

गडोलना—संज्ञा पुं० [हि० गाड़ी+ओला, ओलना (प्रत्य०)]
छोटी गाड़ी जिसमें बच्चों को चढ़ाकर फिराते हैं।

गढ़ौना^१—संज्ञा पुं० [हि० गढ़ (गाढ़ना)+ औना (प्रत्य०)] पान की एक जाति।

गढ़ौना^२—संज्ञा पुं० [हि० गढ़ना] कौटा। उ०—सुनि तुम्हार संसार बड़ौना। जोग लीन्ह तन कीन्ह गढ़ौना।—जायसी (शब्द०)।

गड़^१—संज्ञा पुं० [दे०] [खी० गड़ो] एक ही आकार की ऐसी वस्तुओं का समूह जो एक के ऊपर एक जमाकर रखी हों। गंज। जैसे, ताश का गड़। कागज का गड़।

मुद्दा०—गड़ का गड़ = ढेर का ढेर। बहुत सा।

गड़^२+^३—संज्ञा पुं० [सं० गर्त = गड़] गड़हा। खंटा।

गड़ना^४—क्रि० सं० [हि० गाड़ना] गाड़ना। उ०—भुगवैति कोई गड़ैति कोई कोइक पड़ कोइ लंभवे।—पृ० रा०, २४। २४।

गड़बड़^१—संज्ञा पुं० [हि० गड़+भ्रु० बड़] बेमेल की मिलावट। क्रमगुन्य भिन्न। घालमेल। घपला। जैसे,—मैंने अभी सब पत्रे छाँटकर अलग किए थे; उसने आकर सब गड़बड़ कर दिया।

गड़बड़^२—वि० बिना किसी क्रम के। मिलाजुला। भंडबंड।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गड़मड़^३—संज्ञा पुं०, वि० [हि० गड़+भ्रु० मड़] दे० 'गड़बड़'।

गड़र^४—संज्ञा पुं० [सं०] [खी० गड़री] [वि० गड़रि] भेड़। भेष।

गड़रि^५—संज्ञा पुं० [सं०] गड़ेरिया।

गड़रि^६—वि० १. भेड़ का। भेड़ संबंधी। २. भेड़ के ऐसा।

यौ०—गड़रि प्रवाह = एक के पीछे दूसरे का गमन। भेड़िया-धसान। प्रचानुसरण।

गड़रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भेड़ों की पंक्ति या श्रेणी। २. ताँता। प्रसंडगति। प्रविच्छिन्न धारा।

यौ०—गड़रिका प्रवाह = दे० 'गड़रि प्रवाह'।

गड़रिका—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गड़रि'।

गड़रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गड़रिका'।

यौ०—गड़रिका प्रवाह = दे० 'गड़रि प्रवाह'।

गड़ाम—वि० [सं० गड़+अम] लुच्चा। बदमाश। पाजी। नारकीय।

गड़ामियर, गड़ामियरी—वि० [हि० गड़ामी] [वि० खी० गड़ामियरी] पाजियों का सा। लुच्चों का सा। जैसे, गड़ामियरी पोशाक।—प्रेमघन०, पृ० २५२।

गड़ामी—वि० [सं० गड़+अम+ई] नीच। लुच्चा। बदमाश। पाजी।

यौ०—गड़ामी जूता = भंगेजी जूता। बूट। गड़ामी बोली = भंगेजों की बोली।

गड़ो—संज्ञा स्त्री० [हि० गड़] १. एक ही आकार की ऐसी वस्तुओं का ढेर जो तले-ऊपर रखी हों। गंज। जैसे,—कागज की गड़ो। ताश की गड़ो। पान की गड़ो। २. ढेर। समूह। गंज। जैसे,—घामों की गड़ो।

गड़ूक, गड़ूक—संज्ञा पुं० [सं०] गड़वा। झारी [खी०]।

गड़हा^१—संज्ञा पुं० [सं० गर्त, प्रा० गड़] दे० 'गड़हा'।

गड़ो^२—संज्ञा पुं० [हि० गाड़ा या गाड़ी] १. बैलगाड़ी। छकड़ा। २. लकड़ी आदि का बड़ा पूला या गट्टा। ३. रेशम या सूत आदि का गट्टा।

गड़ंत^३—वि० [हि० गड़ना] कल्पित। बनावटी (बात)। जैसे,—तुम्हारी गड़ंत बातों पर कौन विश्वास करे।

गड़ंत^४—संज्ञा स्त्री० १. बनावटी बात। कल्पित प्रसंग। मन की उपज। उ०—(क) ये आख्यायिकाएँ मन की गड़ंत नहीं हैं, सर्वथा सत्य हैं।—सरस्वती (शब्द०)। (ख) अभी चार दिन ही की बात है कि निवासीराम कायरथ की गड़ंत पर कैसा लंबा चौड़ा दस्तखत हमने कर दिया है।—भारतेंदु प्र०, भा० ३, पृ० ८२५। २. कुपती के तीन भेदों में से एक।

विशेष—यह कुपती जैसे, हाथी और भेड़े आदि की लड़ाई का अनुकरण है। पंजाबी और मथुरा के बीच प्रायः गड़ंत कुपती लड़ते हैं।

गड़—संज्ञा पुं० [सं० गड़ = खोई] [खी० प्रत्या० गड़ो] १. खोई। २. किला। कोट। उ०—गड़ पर बसहि चार गड़पती।—जायसी (शब्द०)।

मुद्दा०—गड़ जीतना या गड़ तोड़ना = (१) किला जीतना। किले पर अधिकार करना। (२) कठिन काम करना। जैसे,—कौन सा गड़ तोड़ना था जो इतनी देर लगी। (३) प्रथम समागम में कृतकार्य होना।—(बाजारी)।

३. युद्ध की सामग्री में लकड़ी का एक बड़ा संदूक या कोठरी। दबावा।

विशेष—इसमें कुछ आदमियों को बैठाकर किले में डाल देते हैं। वे लोग उसमें बैठे हुए सुरंग खोदते हैं।

गड़कमान—संज्ञा पुं० [हि० गड़+प्र० कैप्टन > हि० कमान] किले की फौज का प्रकसर। किलेदार।

गड़त—संज्ञा स्त्री० [हि० गड़ना] बनावट। ढाँचा। रचना। आकृति।

गड़न—संज्ञा स्त्री० [हि० गड़ना] बनावट। गठन। जैसे,—उसके मुँह की गड़न बड़ी लुभावनी है।

गड़ना^१—क्रि० सं० [सं० घटन, प्रा० घडन] १. किसी सामग्री को काट छाँट या ठोंक ठाँककर कोई काम की वस्तु बनाना। सुघटित करना। रचना। जैसे,—(क) मोम पर गड़ने गड़ता है। (ख) गड़े कुम्हार, भरे संसार। उ०—तुलसी रही है ठाढ़ी, पाहन गड़ी सी काढ़ी, न जानै कहाँ ते आई कोन की को ही।—तुलसी (शब्द०)। २. ठोंक ठाँककर सुधील करना। तोड़कर या छीन छालकर दुष्ट करना। जैसे—इसमें गड़ गड़कर ईंटे लगाई जायेंगी। ३. बात बनाना। कपोल-कल्पना करना। झूठमूठ की बात खड़ी करना। जैसे,—गढ़ी हुई बात। वहाना गड़ना। कथा गड़ना, इत्यादि।

मुद्दा०—गड़ गड़कर बातें करना या बनाना—झूठमूठ की कल्पना करके बात कहना। नमक मिर्च लगाकर बातें करना। उ०—तू मोही को मारन जानति। उनके चरित कहा कोउ जानै, उर्नाहि कही तू मानति। कदम तीर के मोहि बुलायो गड़ि गड़ि बातें बानति। मटकति गिरी गागरी सिर ते सब ऐसी बुधि

ठानति ।—सूर (शब्द०) । गढ़ छोनकर बोलना = नमक मिश्रं लगाकर कहना । सजा मर्वारकर कहना । उ० सजि प्रतीति बहुविधि गढ़ि छोनी । अवय सादमातो तब बोनी ।—मानस, २ । १७ ।

४. मारना । पीटना । ठोंकना । जैसे,—तुम गढ़ जाधोगे, तब मानोगे ।

गढ़ना^२—क्रि० स० [भं० घटन] प्रस्तुत करना । उपस्थित करना । उ०—छाखें संजोग सोसाई गढ़े ।—जायसी (शब्द०) ।

गढ़पति^१—संज्ञा पुं० [हि०] २० 'गढ़पति' । उ०—गङ्गान मूगमाह निग गादी । एको छत्र घरा आराधी ।—रा० रू०, पृ० १५ ।

गढ़पति—संज्ञा पुं० [हि० गढ़+पति] १ किलेदार । उ०—गढ़पर बसो चार गढ़पती । असुपति गजपति भू नरपति ।—जायसी (शब्द०) । जोनी गढ़पति जग नाही ।—कबीर सा०, पृ० २१७ । २ राजा । गङ्गा ।

गढ़पाल—संज्ञा पुं० [हि० गढ़+पाल] २० 'गढ़पति' ।

गढ़वना^(१)—क्रि० प्र० [गं० गढ़ + किला] १ किले में जाना । २. रक्षित स्थान में पहुँचना । उ०—गढ़ि न सकी सब जगत में तिसिर सीत के आग । गरम भाजि गढ़ी भई तिय कुच अचल मवास ।—बिहारी (शब्द०) ।

गढ़वा^१—संज्ञा पुं० [रा०] चारण । उ०—जिम नोगुण भवनी अमर, जिम हिरण्खी हार । तुम गढ़वा बाधा गये, जहल राजकुं-वार ।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० ६ ।

गढ़वाई संज्ञा स्त्री० [हि०] २० 'गढ़ाई' ।

गढ़वाना—क्रि० स० [हि० गढ़ना का प्रे० रूप] गढ़ने का काम दूसरे से कराना ।

गढ़वार^(१)—संज्ञा पुं० [हि०] २० 'गढ़वाल' ।

गढ़वाल^१—संज्ञा पुं० [हि० गढ़ + गं० पाल, प्रा० नाल] वह निगके अधिकार में गढ़ हो । गढ़वाला ।

गढ़वाल^२—संज्ञा पुं० एक जनपद का नाम जो उत्तर प्रदेश के हिमालय या उत्तराखण्ड में हरद्वार के उत्तर में पड़ता है । बदरीनाथ और केदारनाथ नामक तीर्थ इसी जनपद में हैं । यहाँ की बोली गढ़वाली कही जाती है ।

गढ़ा—संज्ञा पुं० [हि०] २० 'गढ़ना' ।

गढ़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि० गढ़ना] १ गढ़ने की क्रिया । गढ़ने का काम । २. वह मजदूरी जो सोनारों, बढइयों आदि को कोई चीज बनाने के बदले में दी जाती है । गढ़ने की मजदूरी ।

गढ़ाना^१—क्रि० स० [हि० गढ़ना का प्रे० रूप] गढ़ने का काम कराना । गढ़वाना । बनवाना ।

गढ़ाना^२—क्रि० प्र० [हि० गढ़ = कठिन] कष्टकर प्रतीत होना । मुश्किल गुजरना । बुरा लगना । खलना । जैसे,—बिना काम के किसी के घर जाना बड़ा गढ़ाता है ।

गढ़ास^(१)—संज्ञा पुं० [हि० गढ़+आस(प्रत्य०)] गढ़न उ०—जहाँ शुभ प्रसुभ करम को गढ़ास तहाँ मोह के बिनास में अंधेर कूप है ।—सुंदर बं० (जी०), पृ० १०० ।

गढ़िया^१—संज्ञा पुं० [हि० गढ़ना] गढ़नेवाला । उ०—और कवि गढ़िया नंददास जड़िया ।—इतिहास, पृ० १०४ ।

गढ़िया^२—वि० [सं० गाढ़] स्थिर । दृढ़ । मर्याद । उ०—दादू भूठा जीव है गढ़िया गोविंद बैन । मनसा मूंगी पटव सौ सुरज सरीबे नैन ।—दादू०, पृ० १५१ ।

गढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० गढ़] १. छोटा किला । २. किले या कोट के ढंग का मजबूत मकान । जैसे,—हनुमानगढ़ी ।

गढ़ीस^(१)—वि० [हि० गढ़ + गं० ईश] गढ़ का मालिक । किलेदार । गढ़पति । उ०—सोभा गुमर की संधितटी किधौ मैं न मवास गढ़ीस की घाटी ।—अनदधन (शब्द०) ।

गढ़ैया—वि० [हि० गढ़ना] गढ़नेवाला । बनानेवाला । रचनेवाला । उ०—(क) पण्यो है छगद छवीले काहू कैहूँ कैहूँ खोजिये खवास खासो कूबरी से बाल को । जान को गढ़ैया बिनु गिरा को पढ़ैया बार खाल को कढ़ैया सो बढैया उर साल को ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) आनि धरयो नंद द्वार, प्रति ही सुंदर सुंदार, नजबधू देख बार बार, सोभा नहि बार पार घनि घनि घन्य है गढ़ैया ।—सूर (शब्द०) ।

गढ़ाई^(१)—संज्ञा पुं० [हि० गढ़] किलेदार । गढ़पति ।

गढ़^(१)—संज्ञा पुं० [हि० गाढ़] कठिनता । गाढ़ । विपत्ति । कष्ट । उ०—सो अठिठाय हम नम सु रहु । तुम अवस्य प्राप्ति प्रभु गढ़ ।—पृ० रा०, २५ । २०४ ।

गण—संज्ञा पुं० [गं०] १ समूह । भूट । जत्था । २. श्रेणी । जाति । कोटि । ३. ऐसे मनुष्यों का समुदाय जिनमें किसी विषय में समानता हो । ४. जैनशास्त्रानुसार एक स्थविर या प्राचार्य के शिष्य । महावीर स्वामी के शिष्य । ५. वह स्थान जहाँ कोई स्थविर अपने शिष्यों को शिक्षा देता हुआ रहता हो । ६. सेना का वह भाग जिसमें तीन गुल्म अर्थात् २७ हाथी, २७ रथ, ८१ घोड़े और १३५ पैदल हों । ७. नक्षत्रों की तीन कोटियों में से एक ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार नक्षत्रों के तीन गण हैं—देव, मनुष्य और राक्षस । अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अनुगधा, मृगशिरा और श्रवण नक्षत्र देव गण हैं । पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्रपद, भरणी, आर्द्रा और रोहिणी मनुष्य गण हैं और शेष चित्रा, मघा, विशाखा, ज्येष्ठा, अश्लेषा और कृत्तिका राक्षस गण हैं ।

८. छंदःशास्त्र में तीन वर्णों का समूह ।

विशेष—लघु गुरु के क्रम के अनुसार गण ८ माने गए हैं, यथा—

मगण—SSS (गुरु गुरु गुरु) जैसे, माधो जू ।

यगण—SSS (लघु गुरु गुरु) जैसे, सुनो रे ।

रगण—SSS (गुरु लघु गुरु) ,, राम को ।

सगण—SSS (लघु लघु गुरु) ,, सुमिरी ।

तगण—SSS (गुरु गुरु लघु) ,, आवास ।

जगण—SSS (लघु गुरु लघु) ,, विमान ।

भगण—SSS (गुरु लघु लघु) ,, कारण ।

नगण—SSS (लघु लघु लघु) ,, सुजन ।

इनके अतिरिक्त ५ मात्रिक गण भी होते हैं; यथा—

टगण—६ मात्राओं का ।

डगण—५ " "

डगण—४ " "

ढगण—३ " "

णगण—२ " "

पर इनका प्रयोग प्राचीन ग्रंथों में ही मिलता है ।

६. पाणिनीय व्याकरण में धातुओं और शब्दों के वे समूह जिनमें समान लोप, आगम, वर्णविकारादि हों ।

विशेष—ये दो प्रकार के हैं—एक धातु के गण, दूसरे शब्दों के । शब्दों के गण गणपाठ में हैं और धातुओं के गण धातुपाठ में । धातुओं के प्रधान दस गण हैं,—भ्वादि, भ्रदादि, जुहोत्यादि या ह्वादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, जयादि, चुरादि ।

१०. शिव के पारिवर्त । प्रमथ । ११. दूत । सेवक । परिषद् । ड०—गणन समेत सती तहें गई । तासैं दक्ष बान नहि कही । —सूर (शब्द०) । १२. परिचारक वर्ग । अनुचरों का बल । १३. पक्षपाती । अनुयायी । जैसे,—ये सब उन्हीं के गण हैं; इनसे सावधान रहना । १४. चोबा नामक सुगंध द्रव्य । १५. किसी विशेष कार्य के लिये संघटित समाज या संघ । जैसे,—व्यापारियों का गण, भिक्षुक, संन्यासियों का गण । १६. शासन करनेवाली जाति के मुखियों का मंडल । जैसे,—मालवों का गण, क्षुद्रकों का गण ।

विशेष—प्राचीन काल में कहीं कहीं इस प्रकार के गणराज्य होते थे । मालवा में पहले मालवों का गणराज्य था जिनका संवत् पीछे विक्रम संवत् कहलाया ।

गणक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गणकी] १. ज्योतिषी । २. गणना करनेवाला ।

गणककेतु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धूमकेतु जो तागापुंज के ऐसा दिखाई पड़ता है । बृहत्संहिता के अनुसार यह ब्रह्मा का पुत्र है । इस प्रकार के आठ धूमकेतु हैं ।

गणकरिणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इन्द्रवारुणी ।

गणकाना—क्रि० प्र० [हिंदी] चक्कर खाना । उ०—पड़े गणकानाय मुरझाय इल ऊपर, पूर मंगल हुवा राषसां रूपरे ।—रघु० ६०, पृ० १८६ ।

गणतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० गणतन्त्र] वह राज्य या राष्ट्र जिसमें समस्त राज्यसत्ता जनसाधारण के हाथ में हो और वे सामूहिक रूप से या अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा शासन और न्याय का विधान करते हों । जनतंत्र । प्रजातंत्र । लोकतंत्र । अंग० डेमोक्रेसी ।

यौ०—गणतंत्रवाद । गणतंत्रिक । गणतंत्रप्रमक ।

गणत—संज्ञा स्त्री० [हिं०] गिनती । गणना । उ०—सुनि भरथरि इक शिष्या लीजै इसकी गणत न काई कीजै ।—प्राण०, पृ० ७७ ।

गणता—संज्ञा स्त्री० [हिं० गणना] गिनती । प्रतिष्ठा । उ०—गणता मेरी न गई । आई फिर ज्योति नई ।—आराधना, पृ० १४ ।

गणदीप्ती—संज्ञा पुं० [सं० गणदीप्तिन्] वह याज्ञिक जो बहुतों का यज्ञ कराता हो ।

गणदीप्ती—वि० १. बहुतों का यज्ञ करानेवाला । बहुयाजक । २. जो शिव या गणेश की दीक्षा ग्रहण करे । गणेशदीक्षित ।

गणदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] समूहचारी देवता ।

विशेष—ये एक प्रकार के देवता हैं जो समूह में रहते हैं । गण देवता नौ हैं—आदित्य १२, विश्वेदेवा १०, वसु ८, तुषित ३६, अमास्वर ६४, अनिल ४६, महाराजिक २२०, साध्य १२, रुद्र ११ ।

गणद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जिसपर मनुष्यों के गण या समुदाय का समान अधिकार हो । सर्वसाधारण की संपत्ति ।

गणधर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के जैनाचार्य जो तीर्थंकरों के शिष्य होते हैं । ये लोग तीर्थंकरों के उपदेशों का संग्रह कर उन्हें आचारांग आदि बारह अंगों में विभक्त करते हैं और शिष्यों में उनका प्रचार करते हैं ।

गणन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गणनीय, गणित, गणक] १. गिनना । २. गिनती ।

गणना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गिनती । शुमार । २. हिसाब । ३. संख्या । ४. केशव के मत से एक अलंकार जिसमें एक ही संख्या बार बार आई हो । जैसे,—(क) एक आत्मा चक्र रवि, एक शुक्र की बिट्टि । एक दशन गणेश की, जानति सगररे सृष्टि । (ख) गंगामग गंगेश दग श्रीव रेख गुण लेखि । पावक काल त्रिशूल बनि, संख्या तीन बिसेखि ।—(शब्द०) ।

यौ०—गणनापति = (१) गणपति । गणेश । (२) अंक शास्त्र का ज्ञाता ।

गणनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणों का मालिक । २. गणेश । गजानन । ३. शिव ।

गणनायक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गणनायिका] १. गणेश । २. शिव । ३. गणों का स्वामी या मालिक (को०) ।

गणनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

गणनीय—वि० [सं०] १. गिनने योग्य । गिनती के योग्य । २. नामी । प्रसिद्ध । विख्यात ।

गणप—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश ।

गणपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणों का मालिक या स्वामी । २. गणेश । ३. शिव ।

गणपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] वह पर्वत जहाँ प्रमथ या शिव के गण रहते हों । कैलास ।

गणपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] एक ग्रंथ का नाम जिसमें अष्टाध्यायी में आए हुए गणों के अतर्गत शब्दों श्री, प्रत्येक गण में दिखलाया है ।

गणपीठक—संज्ञा पुं० [सं०] सीना । छाती । वक्ष [को०] ।

गणमुख्य—संज्ञा पुं० [सं०] गण या समूह का प्रधान । जातिप्रधान । मुखिया ।

गणराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह राज्य जो किसी एक राजा के अधीन न हो, बल्कि प्रजा में से चुने हुए मुखियों या गणों के द्वारा चलाया जाता हो । २. एक देश जो बृहत्संहिता के अनुसार उत्तराफाल्गुनी, हस्त और चित्रा के अधिकार में है ।

गणरूप—संज्ञा पुं० [सं०] आक । मदार [को०] ।

गणवती—संज्ञा स्त्री० [गं०] धन्वंतरि दिवोदास की माता का नाम ।
गणवाद—संज्ञा पुं० [गं० गण + वाद] प्रज्ञानंत्र । उ०—गीता में गण-
 वाद का वह रूप है जो ब्राह्मणवाद का समर्थक होकर भी,
 अनेक नई सद्दलितों देकर, नए गणतन्त्र का उदय प्रारंभ
 करता है ।—प्रा० भा० पृ०, पृ० ३२५ ।

गणवेश—संज्ञा पुं० [गं०] यन्त्री । परिधान । पहनावा [को०] ।

गणहास—संज्ञा पुं० [गं०] एक प्रकार का गंध द्रव्य [को०] ।

गणाधिप—संज्ञा पुं० [गं०] १. गणों का मानिक या अधिपति । २.
 गणेश । ३. जैनों के मनुमार वह जो साधुओं के समुदाय में
 सबसे श्रेष्ठ या बड़ हो । साधुओं का अधिपति या महत ।

गणाधिपति—संज्ञा पुं० [गं०] दे० 'गणाधिप' ।

गणाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [गं०] १. गणों का स्वामी । २. गणेश ।
 ३. निष ।

गणि—संज्ञा स्त्री० [गं०] गणना । गिनती [को०] ।

गणिका—संज्ञा स्त्री० [गं०] १. वेश्या । २. गनियार वृक्ष । ३. एक
 फूल जो चमेली की तरह का होता है । ४. नायिका के तीन
 भनों में से एक । वह नायिका या स्त्री जो द्रव्य के लोभ
 से नायक से प्रीति रखे । ५. हस्तिनी । हथिनी [को०] ।

गणिकाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [गं०] वेश्याओं का निरीक्षक राजकर्मचारी
 या चौकरी ।

विशेष—कोटिल्य के समय में इस प्रकार के कर्मचारी नियत
 करने की व्यवस्था थी ।

गणिकारिका—संज्ञा स्त्री० [गं०] गनियार का पेड़ ।

गणिकारी—संज्ञा स्त्री० [गं०] गनियार का पेड़ ।

गणित—संज्ञा पुं० [गं०] वह शास्त्र जिसमें मात्रा, सख्या और
 परिमाण का विचार हो ।

विशेष—इसमें निर्धारित नियमों और क्रियाओं द्वारा ज्ञात
 मात्राओं, सख्याओं या परिमाणों के संबंध के आधार पर
 अज्ञात मात्रा, सख्या या परिमाण का निश्चय किया जाता है ।
 भ्रं० गणित, बीजगणित, ज्यामिति, त्रिकोणमिति आदि इसकी
 शाखाएँ हैं ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

२. निम्ना ।

ग्री०—गणितविद्या । गणितशास्त्र—दे० 'गणित' ।

गणित—पि० १ जो गिना हुआ हो । २. जोड़ा हुआ [को०] ।

गणितज्ञ—पि० [गं०] १. गणित शास्त्र जाननेवाला । हिसाबी । २.
 ज्योतिषी ।

गणितविक्रय—संज्ञा पुं० [गं०] गिनती के हिसाब से पदार्थ बेचना ।
 गणनापूर्वक वस्तुओं का विक्रय [को०] ।

गणितानन्द—संज्ञा पुं० [गं० गणित + आनन्द] प्रसिद्ध या गिना
 हुआ मुख । उ०—देवलोक । इदलोक विधिलोक शिवलोक
 भेकुंड के मुख भी गणितानन्द गावी ।—सुंदर ग्रं०, भा० २,
 पृ० ६२२ ।

गणितो—संज्ञा पुं० [गं० गणित] १. गणना करनेवाला व्यक्ति ।
 २. गणितज्ञ [को०] ।

गणी—संज्ञा पुं० [गं० गणिन्] आचार्य । सूरि । उ०—बुद्ध के समय
 में ही महावीर को संघो. गणी, गणाचार्य, यशस्वी.....और
 परिव्राजक में ज्येष्ठ माना गया ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २३२ ।

गणीभूत—पि० [गं०] किसी गण या वर्ग में मिला हुआ । २. गिना
 हुआ [को०] ।

गणेश—पि० [गं०] गणनीय । गिनने योग्य [को०] ।

गणेश—संज्ञा पुं० [गं०] कणिकार वृक्ष [को०] ।

गणेश—संज्ञा स्त्री० १. वेश्या । गणिका । २. हथिनी [को०] ।

गणेशका—संज्ञा स्त्री० [गं०] १. गणिका । कुटनी । २. नीकरानी ।
 सेविका [को०] ।

गणेश—संज्ञा पुं० [गं०] हिंदुओं के एक प्रधान देवता जिनका सारा
 शरीर मनुष्य का है, पर सिर हाथी का सा है ।

विशेष—इनके चार हाथ और एक दाँत हैं । तोंब निकली हुई है ।
 सिर में तीन आँखें और ललाट पर अर्धचंद्र है । ये महादेव
 के पुत्र माने जाते हैं । इनकी सवारी चूहा है । पुराणों में लिखा
 है कि पहले इनका सिर मनुष्य का सा था; पर शनैः शनैः
 बृष्टि पड़ने से इनका सिर कट गया । इसपर विष्णु ने एक
 हाथी का सिर काटकर धड़ पर जोड़ दिया । इसके पीछे ये
 एक बार परशुराम जी से भिड़े, जिसपर परशुराम जी ने एक
 दाँत परशु से तोड़ डाला । किसी किसी पुराण में लिखा है कि
 दाँत रावण ने उखाड़ा था । किसी के मत से बीरभद्र या
 कातिकेय ने दाँत तोड़ा था । इसी प्रकार सिर कटने के विषय
 में भी मतभेद है । गणेश महादेव के गणों के अधिपति है ।
 पुराणों का कथन है कि जो शुभ कार्यों के प्रारंभ में इनकी
 पूजा नहीं करता, उसके काम में ये विघ्न कर देते हैं । इसी
 लिये समस्त मंगल कामों में इनकी पूजा होती है । यह बड़े
 लेखक भी हैं । ऐसा प्रसिद्ध है कि व्यास के महाभारत को पहले
 पहल इन्हीं ने लिखा था । इनके हाथों में पाश, अंकुश, पद्म
 और परशु है । ये हिंदुओं के पंचदेवों अर्थात् पाँच प्रधान
 देवताओं में है ।

परी०—विनायक । बिघ्नराज । इमानुर । गणाधिप । एकबंस ।
 हेरंब । संबोदर । गजानन । बिघ्नेश । परशुपाणि । गणाध्य ।
 आक्षुप । शूर्पकर्ण । गजानन ।

गणेश—पि० गणों का मालिक । गण का स्वामी । गण में जो
 प्रधान हो ।

गणेशकुसुम—संज्ञा पुं० [गं०] लाल कनेर ।

गणेशक्रिया—संज्ञा स्त्री० [गं०] योग की एक क्रिया जिसमें उँगलियों
 आदि की सहायता से गुदा का मल साफ करते हैं ।

गणेशखंड—संज्ञा पुं० [गं० गणेशखण्ड] स्कंद पुराण का एक खंड
 जिसमें गणेश संबंधी विवरण दिए गए हैं [को०] ।

गणेशचतुर्थी—संज्ञा स्त्री० [गं०] किसी मास की, मुख्यतः भादों और
 माघ की कृष्ण चतुर्थी । इस दिन गणेश का व्रत और पूजन
 किया जाता है ।

गणेशपुराण—संज्ञा पुं० [गं०] एक उपपुराण का नाम ।

गणेशभूषण—संज्ञा पुं० [गं०] सिद्धर ।

गणेशसंहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणपत्य संप्रदाय के एक उपपुराण का नाम [को०] ।

गण्य—वि० [सं०] १. गिनने के योग्य । गिनती के लायक । २. जिसकी पूछ हो । जिसे लोग कुछ समझें । प्रतिष्ठित । उ०—
सु बधू इस गण्य गेह की ।—साकेत, पृ० ३६२ ।

यौ०—गण्यमान्य = प्रतिष्ठित ।

गण्यपण्य—संज्ञा पुं० [सं०] गिनती के हिसाब से बिकनेवाली वस्तुएँ । वे पदार्थ जिनकी बिक्री गिनती के हिसाब से हो ।

गतंढा—संज्ञा पुं० [सं० गताण्ड] [स्त्री० गतंढी] पुंस्त्वविहीन । हिजड़ा । नपुंसक । — (मारवाड़ी) ।

गत—वि० [सं०] १. गया हुआ । बीता हुआ । जैसे,—गत मास, गत दिन, गत वर्ष ।

विशेष—समस्त पद के आदि में यह शब्द 'गया हुआ', 'रहित', 'शून्य' का अर्थ देता है और अंत में 'प्राप्त', 'प्राप्त हुआ', 'पहुँचा हुआ' का अर्थ देता है । जैसे,—गतप्राण, गतायु, तथा कंठगत, कुक्षिगत । उ०—अंजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोउ ।—तुलसी (शब्द०) ।

२. मरा हुआ । मृत ।

मुहा०—गत होना = मरना । मर जाना ।

३. रहित । हीन । खाली । उ०—सरिता सर निमल जल सोहा । संत हृदय जस गत मद मोहा ।—तुलसी (शब्द०) ।

गत—संज्ञा स्त्री० [सं० गति] १. अवस्था । दशा । हालत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—गत का = काम का । अच्छा । भला । जैसे—गत का कपड़ा भी तो उसके पास नहीं । गत बनाना = (१) दुर्दशा करना । दुर्गति करना । (२) अपमान करना । डाँटना उपटना । मारना पीटना । दंड देना । खबर लेना । जैसे,—घर पर जाओ, देखो तुम्हारी कैसी गत बनाई जाती है । (३) हँसी ठट्ठे में लज्जित करना । उपहास करना । झिपाना । उल्लू बनाना । जैसे,—वे अपने को बड़ा बोलनेवाला लगाते थे; कल उनकी भी खूब गत बनाई गई ।

२. रूप । रंग । वेश । आकृति ।

मुहा०—गत बनाना = (१) रूप रंग बनाना । वेश धारण करना । जैसे,—तुमने अपनी क्या गत बना रखी है । (२) अदभुत रूप रंग बनाना । आकृति बिगाड़ना । जैसे—होली में उनकी खूब गत बनाई जायगी ।

३. काम में लाना । सुगति । उपयोग । जैसे—ये ग्राम रखे हुए हैं; इनकी गत कर डालो ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

४. दुर्गति । दुर्दशा । नाश । जैसे—तुमने तो इस किताब की गत कर डाली ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

५. मृतक का क्रिया कर्म । ६. संगीत में बाजों के कुछ बोलों का क्रमबद्ध मिलान । जैसे—सितार पर मँरवी की गत बजा रहे थे ।

क्रि० प्र०—निकालना ।—बजाना ।

१-१७

७. तृत्य में शरीर का विशेष संचालन और मुद्रा । नाचने का ठाठ । जैसे,—मोर की गत, बाली की गत, झुरमुट की गत ।

क्रि० प्र०—भरना ।

यौ०—गतकल्मष = पापरहित । कालुष्यविहीन । गतकाल = व्यतीत समय । बीता समय । गतकलम = यकान रहित । गतचेतन = चेतनारहित । बेहोश । गतत्रप = लज्जारहित । निलज्ज । गतपंचमी(पु) = सूर्यमंडल भेदकर मुक्ति प्राप्त करने की अवस्था । पौचवी गति । मोक्ष । उ०—सूक्त मुवा रण में जिके, गत पंचमी गयाह ।—वांकी ग्रं०, भा०, १, पृ० ३ ।

गतक—संज्ञा पुं० [सं०] गमन । गति । जाना [को०] ।

गतका—संज्ञा पुं० [सं० गदा या गवक; मि० तु० कुत्कह् = छोटा और छोटा डंडा; फ्रा० कुतका] १. लकड़ी का एक डंडा जिसके ऊपर चमड़े की खोल चढ़ी रहती है ।

विशेष—यह डंडा ढाई तीन हाथ लंबा होता है जिसमें प्रायः दस्ता भी लगा रहता । लोग इसे लेकर खेलते हैं । खेलते समय दो खेलाड़ी परस्पर खेलते हैं । खेलनेवाले दाहिने हाथ में गतका और बाएँ हाथ में फरी रखते हैं । गतके के बार को विपक्षी फरी से रोकता है और रोक न सकने की अवस्था में चोट या मार खाता है । कभी कभी खेलाड़ी केवल गतके ही से खेलते हैं । उस समय के खेल को 'एकगी' कहते हैं ।

३. वह खेल जो फरी और गतके से खेला जाता है ।

गतकुल—संज्ञा पुं० [सं०] वह संपत्ति जिसका कोई अधिकारी न बचा हो । लावारसी माल या जायदाद ।

गतप्रत्यागत—संज्ञा पुं० [पुं०] १. संगीत में ताल के साथ भेदों में एक । २. गतागत । पैतरा । कावा । उ०—गतप्रत्यागत में और प्रत्यावर्तन में दूर वे चले गए ।—लहर, पृ० ६६ ।

गतप्रत्यागता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मशास्त्र में वह स्त्री जो अपने पति के घर से उसकी आज्ञा के बिना निकलकर चली गई हो और फिर कुछ दिन बाद यथेच्छ बाहर रहकर अपने पति के घर लौट आई हो । ऐसी स्त्री के साथ उसके पूर्व पति का शास्त्रानुसार पुनर्विवाह संस्कार होना लिखा है ।

गतप्राय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० गतप्राण] बीता हुआ सा [को०] ।

गतविस्मय(पु)—वि० [सं०] आश्चर्य से मुक्त । विस्मय रहित । उ०—
मुनि ये बचन नंद के नये । गोप सब गतविस्मय भये ।—नंद ग्रं०, पृ० ३११ ।

गतभर्तृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विधवा स्त्री । २. वह स्त्री जिसका पति परदेश गया हो । प्रोपितभर्तृका (वव०) ।

गतरस—वि० [सं०] रस से रहित । आनंदशून्य । नीरस । उ०—
और कई जगह मकान गतरस हो गये ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १७४ ।

गतलक्ष्मीक—वि० [सं०] १. कांतिहीन । दीप्तिरहित । म्लान । २. घाटे की यंत्रणा से पीड़ित । धनवंचित [को०] ।

गतव्यय—वि० [सं०] पीड़ा या कष्ट से रहित [को०] ।

गतरुच—वि० [सं०] इच्छारहित । आकांक्षारहित (को०) ।

गता०—संज्ञा पु० [सं० गत] दे० 'गान' । उ०—पीन पयोधर दूबरि गता । मेरु उपजल कनकनता ।—विद्यापति, पृ० १७७ ।

गताक—वि० [सं० गताङ्क] जिसमें सत्यरूप के चिह्न अब न रह गए हों । गया बीना । निकम्मा । उ०—जाति का रणू ब्राह्मण था, पर कर्कशता में अत्यंत पामर महाशूद्र से भी गताक केवल नामधारी ब्राह्मण था ।—सौ अज्ञान और एक सुज्ञान (शब्द०) । २. विद्युत्ता शंक (पत्रपत्रिकाओं के लिये) ।

गतांत—वि० [सं० गतांत] १. जिसका अंत आ गया हो । २. अंत या पार तक पहुँचा हुआ (को०) ।

गताक्ष—वि० [गं०] नेत्रविहीन । अंधा (को०) ।

गतागत—वि० [सं०] आया गया ।

गतागत—संज्ञा पु० १. आवागमन । जन्ममरण । २. पैतरा । कावा (को०) ।

गतागति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गतागत' (को०) ।

गतागम—संज्ञा पु० [गत + आगम] भूत और भविष्य ।

गताधि—वि० [गं०] आधि से युक्त । चितारहित (को०) ।

गतानुगत—संज्ञा पु० [सं०] अतीत का अनुगमन । पूर्व की प्रथाओं को मानना (को०) ।

गतानुगतिक—वि० [गं०] अतीत का अंशानुसरण करनेवाला । अंशानुसरण करनेवाला (को०) ।

गतायु—वि० [सं० गतायुष] १. जिसकी आयु समाप्तप्राय हो । अत्यंत बुढ़ा । २. निर्बल । कमजोर । अशक्त (को०) ।

गतारी—संज्ञा स्त्री० [गं० गन्त्री + बैलगाड़ी] १. बैल के जूए में वे दोनों लकड़ियाँ जो उपरोष्ठी और तरोष्ठी के बीच समानांतर लगी रहती हैं । इन लकड़ियों के इधर उधर बैल नाथे जाते हैं । २. वह रस्सी जो जूए में बैल नाथने पर दोनों के गले के नीचे से ले जाकर लगा दी जाती है, जिससे बैल जूए को सहसा छोड़ नहीं सकते । ३. वह रस्सी जिससे बोझ बाँधा जाता है । छन ।

गतारि—संज्ञा स्त्री० [हि० गतार] दे० 'गतार' ।

गतार्तवा—वि० स्त्री० [सं०] १. जिसे ऋतु या रजोदर्शन न होता हो । २. अंधा । ३. बुढ़ा ।

गतार्थ—वि० [गं०] १. धनहीन । निर्धन । २. अर्थरहित । अर्थहीन । ३. जाना या गमना हुआ (को०) ।

गताज्ञाक—वि० [गं०] प्रकाशरहित । ज्योतिहीन (को०) ।

गतासु—वि० [गं०] मरा हुआ । जीवनरहित । निष्प्राण (को०) ।

गति—संज्ञा स्त्री० [गं०] १. एक स्थान से दूसरे स्थान पर क्रमशः जाने की क्रिया । निरंतर स्यादत्याग की परंपरा । चाल । गमन । जैसे—वह बड़ी मंद गति से जा रहा है । २. हिलने डोलने की क्रिया । हरकत । जैसे—उसकी नाड़ी की गति मंद है । ३. अवस्था । दशा । स्थान । उ०—मंद गति साँप छल्लूँदर केरी ।—तुलसी (शब्द०) । ४. रूप रंग । वेष । उ०—तन स्त्रीन, कोउ प्रति पीन पावन कोउ अपावन गति धरे ।—तुलसी (शब्द०) । ५. पहुँच । प्रवेश । पैठ । दखल ।

जैसे—(क) मनुष्य की क्या बात, वहाँ तक वायु की भी गति नहीं है । (ख) राजा के यहाँ तक उनकी गति कहीं । (ग) इस हाल में उनकी गति नहीं है । ६. प्रयत्न की सीमा । अंतिम उपाय । दीड । तदबीर । जैसे—उसकी गति बस यहीं तक थी, आगे वह क्या कर सकेगा । ७. सहारा । अवलंब । कारण । उ०—तुमहि छाँड़ि दूसरी गति नाहीं । बसहु राम तिनके उर माहीं ।—तुलसी (शब्द०) । ८. चाल । वेष्टा । करनी । क्रियाकलाप । प्रयत्न । जैसे—उसकी गति सदा हमारे प्रतिफल रहती है । ९. लीला । विधान । माया । उ०—दयानिधि, तेरी गति लखि न परे ।—सूर (शब्द०) । १०. ढंग । रीति । चाल । दस्तूर । जैसे—वहाँ की तो गति ही निराली है । ११. जीवात्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन ।

विशेष—हिंदू शास्त्रों के अनुसार जीव की तीन गतियाँ हैं—उच्चगति (देवयोनि), मध्यगति (मनुष्य योनि) और अधोगति (निर्यक्योनि) । जैन शास्त्रों में गति पाँच प्रकार की कही गई है—नरकगति, तिर्यकगति, मनुष्यगति, देवगति और सिद्धगति ।

१२. मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा की दशा । उ०—(क) गीघ अपम खग आमिष भोगी । गति दीन्हो जो जाँचत जोगी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) माधुन की गति पावत पापी ।—केशव (शब्द०) । १३. मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा की उत्तम दशा । मोक्ष । मुक्ति । जैसे—पापियों की गति नहीं होती । उ०—हे हरि कौन दोष नाहि दीजे । जहि उपाय सपने दुर्लभ गति सोइ निसि बासर कीजे ।—तुलसी (शब्द०) । १४. कृष्ण आदि के गमय नड़नेवालों के पैर की चाल । पैतरा । उ०—जे मल्लयुद्धि पैच बनिग गतिहु प्रत्यगतादि । ते नरत लंकानाय बानरनाथ हैं न प्रमादि ।—रघुराज (शब्द०) । १५. ग्रहों की चाल, जो तीन प्रकार की होती है—शीघ्र मंद और उच्च । १६. नाल और खर के अनुसार अंगचालन । उ०—(क) सब अंग करि राखी गुंथर नायक नेह सिखाय । रस जुत लेति अंग गति पुनरी पातुर राय ।—बिहारी (शब्द०) । (ख) कविहू अरख आखर बल साँचा । अनुहरि ताल गतिहि नट नाचा ।—तुलसी (शब्द०) । १७. सितार आदि बजाने में कुछ बोलों का क्रमबद्ध मिलान । दे० 'गत' । १८. रिसनेवाला घण । नामूर (को०) । जान (को०) ।

गतिक—संज्ञा पु० [गं०] गति । गमन । २. आसरा । आश्रय । सहारा । ३. मार्ग । राह । रास्ता । ४. अवस्था । स्थिति (को०) ।

गतिभंग—संज्ञा पु० [गं० गतिभङ्ग] १. ठहरना । रुकना । २. छंद, गान आदि में गायन या पाठ के क्रम में रुकावट या रोध आना (को०) ।

गतिभेद—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'गतिभंग' ।

गतिमंडल—संज्ञा पु० [सं० गतिमण्डल] नृत्य में एक प्रकार का अंगहार ।

गतिमय—वि० [गं०] गतिमान् । गति से युक्त (को०) ।

गतिमान्—वि० [सं० गतिमान्] गतियुक्त । गतिशील । हरकत करनेवाला ।

गतियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० गत + दया (प्रत्य०)] तबलची ।

गतिरोध—संज्ञा पु० [सं० गति + रोध] चाल में रुकावट । गति रोकने

की क्रिया । उ०—गुम्हारा करता है गतिरोष पिता का कोई
पूत शबोध ।—अपरा, पृ० १३८ ।

गतिज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समान वस्तुओं की परंपरा या सरणि ।
सिलसिला । ताँता । २. एक नदी का नाम । ३. क्षेत्र सता [को०] ।

गतिवर्द्धक—संज्ञा पुं० [सं० गति+वर्द्धक] गति बढ़ानेवाला ।

गतिवान—संज्ञा पुं० [सं० गति+हि० वान] वेगयुक्त । गतिवाला ।
क्रियाशील । उ०—सात्या ने तुरंत अपनी छावनी के दो भाग
करके उसको गतिवान किया और उसे एक ओर हटा लिया
गया ।—झोसी०, पृ० ।

गतिविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गतिविद्या' ।

गतिविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित और विज्ञान का वह विभाग
जिसमें द्रव्य की क्षमता या गति संबंधी सिद्धांत निर्धारित किए
जाते हैं ।

गतिविधि—संज्ञा स्त्री० [सं० गति+विधि] चेष्टा । उद्यम । चालढाल ।
कार्य । उ०—सौराष्ट्र की गतिविधि देखने के लिये एक रण-
दल सेनापति की आवश्यकता है ।—स्फंद०, पृ० १३ ।

गतिशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गतिविद्या' । उ०—भारतीय भूगोल
तथा ग्रहमंडल संबंधी गतिशास्त्र से भी परिचित थे ।
—पू० म० भा०, पृ० २८१ ।

गतिशील—वि० [सं०] गतिमाना [को०] ।

गतिहीन—वि० [सं०] १. स्थिर । ठहरा हुआ । २. असहाय । परि-
त्यक्त [को०] ।

गत्ता—संज्ञा पुं० [देश०] कागज के कई परतों को साटकर बनाई हुई
दपती जो प्रायः जिल्द आदि बाँधने के काम आती है । कुट ।

गत्तालखाता—संज्ञा पुं० [सं० गत्तं, प्रा० गत्त+हि० खाता] बड़ा
खाता । गई बीती रकम का लेखा ।

मुहाना—गत्तालखाने में जाना = हजम हो जाना । हड़प हो जाना ।
जैसे—हमने जो १० रु० पेशगी दिए, वह सब गत्तालखाते में
गए । गत्तालखाते लिखना = हजम हुआ समझना । गया हुआ
समझना ।

गत्थ^१(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थ] दे० 'गथ' ।

गत्थ^२(५)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ, प्रा० गत्थ] १. पूँजी । जमा । गाँठ
का धन । उ०—चिंता न कर प्रचित रहूँ देनहार समरत्थ । पसू
पलेरू जंतु जिव, तिनकी गाँठि न गत्थ ।—कबीर (शब्द०) ।
२. गरोह । समूह । झुंड । उ०—फटकारि सेलहि हृत्थ में
हुय हाँकियो अरि गत्थ में ।—सूदन (शब्द०) ।

गत्वर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० गत्वरी] १. जानेवाला । गमनशील ।
२. क्षणिक । नाशवान् ।

गत्वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव जो
८० हाथ लंबी, १० हाथ चौड़ी और ८ हाथ ऊँची होती थी
और समुद्रों में चलती थी ।

गथ^३(५)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ, प्रा० गत्थ] १. पूँजी । जमा । गाँठ का
धन । उ०—(क) अति मलीन बुधभानुकुमारी । हरि श्रम
जल अंतर तनु भीजे ता लालच न धुवावति सारी । अपोमुख
रहति उरध नहि चितवति ज्यों गथ हारे शक्ति जुमारी ।—

सूर (शब्द०) । (ख) बाजार चार न बनइ बरनत वस्तु
बिनु गथ पाइये ।—तुलसी (शब्द०) । २. माल । उ०—मेरे
इन मननन इसे करे । मोहन बदन चकोर चंद्र ज्यों इकट ठे
न टरे ।—रही तडी लिजि लाज लकुट ले एकहु डर न डरे ।
सूरदास गथ छोटी काहे पारखि दोष धरे ।—सूर (शब्द०) ।
३. झुंड । गरोह ।

गथना^१(५)—क्रि० सं० [सं० ग्रन्थन] एक को दूसरे से मिलाना । एक
में एक जोड़ना । आपस में गुथना । उ०—रथ ते रथ गथि
मार मचावहि । भट ते भट फिर तनहि नचावहि ।—गोपाल
(शब्द०) ।

गथना^२(५)—क्रि० सं० [सं० गाथा] बातें बना बनाकर कहना ।
गढ़ गढ़कर कहना ।

गद्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोग । २. बिष । ३. श्रीकृष्णचंद्र का छोटा
भाई । यह भगवान् का भक्त था । उ०—सात्यकि दानपती
कृतवर्मा । गद्य उत्पुन निसठहु भृत वर्मा ।—रघुराज (शब्द०) ।

यौ०—गदाप्रज्ञ = कृष्ण । गद्यबंधु = कृष्ण । उ०—चल्यो रुपद
नृप विसद घोर मदमत्त बीर बर । संग पदचर हय दुरव हिये
गद्यबंधु बीर बर ।—गोपाल (शब्द०) ।

४. रामचंद्र जी की सेना का सेनापति एक वानर । उ०—संग,
नील नल कुमुद गद्य जामवंत जुवराजु । चले रामपद नाइ
सिर सगुन सुमंगल साजु ।—तुलसी (शब्द०) । ५. एक
असुर का नाम । ६. गर्जन । गड़गड़ाहट । मधध्वनि [को०] ।
७. भाषण । बोलना । कथन [को०] । ८. वाक्य [को०] ।

गद्य^२—संज्ञा पुं० [अनु०] १. वह शब्द जो किसी गुलगुली वस्तु पर
गुलगुली वस्तु का आघात लगने से होता है । जैसे,—पीठ पर
गेंद गद्य से गिरा ।

यौ०—गदागद्य = एक के ऊपर एक । लगातार (आघात) ।
२. स्थूलता । मोटापन ।

गद्यका—संज्ञा पुं० [हि० गतका] १. दे० 'गतका' । २. बच्चों के
हाथ पैर और कमर में पहनाया जानेवाला काला डोरा ।

गद्यकारा—वि० पुं० [अनु० गद्य + कारा (प्रत्यय०)] [वि० स्त्री०
गद्यकारी] मुलायम और दबाने से दब जानेवाला । गुलगुला ।
गुलगुदा । उ०—गोरी गद्यकारी परे, हंसत कपोलन गाड़ ।
कैसी लसति गंवारि यह, सुनकिरवा की आड़ ।—बिहारी
(शब्द०) ।

गद्यगद्य^३(५)—वि० [सं० गद्यगद्य] दे० 'गद्यगद्य' । उ०—रुकि भासू
गद्यगद्य गिरा भासिन कछु न लखात ।—शकुंतला, पृ० ७० ।
(ख) कबहूँ कै हंसि उठय नृत्य करि रोवन लागय । कबहूँ
गद्यगद्य कंठ शब्द निकसे नहि प्रागय ।—सुंदर भं०, भा० १,
पृ० २६ ।

गद्यगदा—संज्ञा पुं० [देश०] रस्ती का पोधा ।

गद्यगोल^१(५)—संज्ञा पुं० [सं० गद्य + गोल (= एक अनिष्ट योग) + गोल]
गोलमाल । उपद्रव । उ०—राजसा माहि गद्यगोल बहु उपज्या
तामसा माहि अंधार भाई ।—राम० धर्म०, पृ० ३८३ ।

गद्यचाम—संज्ञा पुं० [सं० गद्यचर्म] हाथी का एक रोग जिसमें उसकी
पीठ पर घाव हो जाता है ।

गहन—संज्ञा पुं० [सं०] कहना । कथन । वार्ता [को०] ।

गहना^(५)—क्रि० सं० [सं० गहन] कहना । उ०—गदेउ गिरा
गीर्वाण सौं गुणि बहुरि बतावहु याता । कीन उपाय पाय
सुर ऋषि गुणि करहि लकपति घाता ।—रघुराज (शब्द०) ।

गदबदा—वि० [हि०] कोमल । गदराया । गुदगुदा । उ०—तंगे तन,
गदबदे, मोयने सहज, मिट्टी के मटमैले पुतले, पर फुर्तीले ।—
युगवाणी, पृ० २७ ।

गदम—संज्ञा पुं० [सं० गदम या गेश०] वह लकड़ी या कड़ी जो
नाव बनाने या मरम्मत करने के समय उसके पेटे में दोनों
ओर इगलिये लगा देने हैं कि जिसमें वह इधर उधर गिर न
पड़े । थाम । घाड़ । पुश्ता ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

गदमूल—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोग की जड़ । उ०—जजन जाजन जापर-
टन तीरथ दान ओषधि रमिक गदमूल देता ।—२० बानी,
पृ० २० ।

गदयिज्ञ^१—वि० [सं०] १ मृत्वर । बातूनी । बाचाल । २. कामी ।
कामुक [को०] ।

गदयिज्ञ^२—संज्ञा पुं० १ शब्द । धोप । २ धनुष । ३. कामदेव [को०] ।

गदर^१—संज्ञा पुं० [सं० गदर] १ हलचल । खलबली । उपद्रव । २.
बलवा । अगाधता । बिद्रोह ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।

गदर^२—संज्ञा पुं० [हि० गदर] पृष्ठिमार्ग के अनुसार एक प्रकार की
रुईदार बगलबंदी जो जाड़े में ठाकुर जी को पहनाते हैं ।

गदरा—वि० [हि०] दे० 'गदर' ।

गदराना^१—क्रि० प्र० [अनु० गद] १. (फल आदि का) पकने
पर होना । परिपक्व होने के निकट होना । जैसे,—इस पेड़ के
फल गदराए हैं । २ जवानी में भ्रमों का भरना । युवा-
वस्था के आरंभ में शरीर का पुष्ट और मृदोल होना । जैसे,—
गदराया बदन । ३ घाल में कीचड़ आदि आना । घाल आने
पर होना । जैसे, घाल गदराना ।

गदराना^२—क्रि० प्र० [हि० गदराना] गदराया हुआ । भरा हुआ ।
उ०—गदराने तन गोरदी पैगन घाड़ लिलार । हठघी दै
हल्लाह रंग करे गवारि गुवार ।—बिहारी (शब्द०) ।

गदल^(५)—वि० [हि०] दे० 'गदयका' । उ०—समंद खार गंगा गदल,
जल गुनवता सीत ।—दरिया० बानी, पृ० ४० ।

गदला—वि० [सं० गदह] मिट्टी या कीचड़ मिला हुआ । मटमैला ।
गंदा (पानी के लिये) ।—उ०—यह संसार सभी बदना है,
फिर भी नीर वही गदला है ।—आराधना, पृ० ७२ ।

गदलाना^१—क्रि० सं० [हि० गदला] गदला करना । मटमैला
करना (पानी के लिये) ।

गदलाना^२—क्रि० प्र० गदला होना । मटमैला होना ।

गदशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० गद + शत्रु] वैद्य । चिकित्सक । उ०—
गदशत्रु त्रिदोष ज्यो दूखि करे वर ! त्रिजिह्वा शिर त्यो रघुनंदन
के शर ।—रामचं०, पृ० ७२ ।

गदह—संज्ञा पुं० [हि० गदहा] 'गदहा' का समासगत रूप । जैसे,—
गदहपचीसी, गदहपन आदि ।

गदहपचीसी—संज्ञा स्त्री० [हि० गदहा + पचीसी] प्रायः १६ से
२५ वर्ष तक की अवस्था जिसमें लोगों का विश्वास है कि
मनुष्य अननुभवी रहता है और उसकी बुद्धि अपरिपक्व होती
है । उ०—सच पूछो तो विचार को अवकाश उमर के धंसने
ही पर मिलता है; गदहपचीसी प्रसिद्ध है ।—हिंदी प्रदीप
(शब्द०) ।

गदहपन—संज्ञा स्त्री० [हि० गदहा + पन (प्रत्य०)] मूर्खता ।
बेवकूफी ।

गदहपूरना—संज्ञा स्त्री० [सं० गदह = रोग रहनेवाला + पुनर्नवा]
पुनर्नवा नाम का एक पौधा जो दवा के काम में आता है ।
वि० दे० 'पुनर्नवा' ।

गदहरा^१—संज्ञा पुं० [हि० गदहा] दे० 'गदहा' ।

गदहरा^२—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'गदला' ।

गदहला—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गदहिला' ।

गदहलोट—संज्ञा स्त्री० [हि० गदहा = गधा + लोटना] कुश्ती का
एक पेंच ।

गदहलोटन—संज्ञा पुं० [हि० गदहा + लोटना] १. थकावट मिटाने
या प्रसन्नता आदि के लिये गदहे का जमीन पर लोटना । २.
वह स्थान जहाँ पर गदहा लोटता है ।

विशेष—लोगों का विश्वास है कि ऐसे स्थान पर पैर रखते ही
मनुष्य थक जाता है और उसके पैरों में दर्द होने लगता है ।

गदहलेंचू—संज्ञा पुं० [हि० गदहा + हेंचू (गदहे की बोली)] लड़कों
का एक खेल ।

विशेष—इस खेल में एक लड़का एक दूसरे लड़के की आंखें बंद
करके बैठ जाता और उस लड़के से इधर उधर छिपे हुए शेष
लड़कों का पता पूछता है । जिन लड़कों का पता वह ठीक
बनला दे, उन्हें 'गदही' और जिन्हें ठीक न बनला गके, उन्हें
'गदहा' कहते हैं । पीछे 'गदहे' एक एक करके 'गदहियों' पर
चढ़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं । इस खेल को
'गदहा गदही' भी कहते हैं ।

गदहा^१—संज्ञा पुं० [सं०] रोग हरनेवाला, वैद्य । चिकित्सक ।

गदहा^२—संज्ञा पुं० [सं० गदम, प्रा० गदह] [स्त्री० गदही] १.
घोड़े के आकार का पर उससे कुछ छोटा एक प्रसिद्ध घोषाया
जो प्रायः मटमैले रंग का और दो हाथ ऊँचा होता है । गधा ।
गदम । खर ।

विशेष—इसका कान और सिर अपेक्षाकृत बड़ा होता है और पैर
छोटे और बहुत मजबूत होते हैं, जिनके कारण यह ऊँची या
ढालुप्रां जमीन पर बड़ी सरलता से चल सकता है । यह बहुत
मजबूत होता है और बहुत अधिक बोझ उठा सकता है ।
इस देश में इससे प्रायः घोषी, कुम्हार आदि अधिक काम लेते
हैं । जंगली गदहे, जो प्रायः मध्य एशिया और फारस आदि में
झुंड बंधकर रहते हैं, अधिक चपल होते हैं, पर पालतू गदहे
बोदे होते हैं । किसी किसी देश के गदहे सफेद रंग के या घोड़े

से बड़े भी होते हैं। फारस में गद्गे का शिकार किया जाता है और लोग उसका मांस बड़ी रुचि से खाते हैं। इसकी अवस्था प्रायः २० से २५ वर्ष तक की होती है। युरोप आदि देशों में इनके चमड़े के सूते और थैले आदि बनते हैं। घोड़ी के साथ गद्गे का प्रथवा गद्गी के साथ घोड़े का संयोग होने से खच्चर की उत्पत्ति होती है। वैद्यक के अनुसार इसका मांस कुछ भारी और बलप्रद होता है और इसका मूत्र कड़ुवा, गरम और कफ, महावात, विष तथा उन्माद का नाशक और दीपक माना गया है।

पर्या०—चक्रीवान। बालेय। रासभ। खर। शंककण। घूसर। भारग। वेशव। शीतलावाहन। वैशाखनन्दन।

यौ०—गदहलोटन। गदहलेंचू।

मुद्गा०—गद्गे पर चढ़ाना = बहुत बेइज्जत या बदनाम करना। गद्गे का हल चलना = बिलकुल उजड़ जाना। बरबाद हो जाना। जैसे, वहाँ कुछ दिनों में गद्गो के हल चलेंगे।

गद्गा^१—वि० मूलं। बंक्कफ। नासमभ।

यौ०—गदहपचोसी।

गद्गागद्गी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गदहलेंचू'।

गद्गहिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गद्गा + इया (प्रत्य०)] गद्गी।

गद्गहिला—संज्ञा पुं० [गं० गदंभी, पा० गदभी, प्रा० गद्गी] [स्त्री० गद्गहिली] १. यह गद्गा जिसपर ईंट, सुरखी आदि लादते हैं। २. गुबरोले की तरह का एक विशेषा कीड़ा जो चने आदि की फसल में लगकर उसे नष्ट करता है।

गदसक—संज्ञा पुं० [सं० गद + अन्तक] अश्विनीकुमार [को०]।

गदाधर—संज्ञा पुं० [सं० गद + धर] मेघ।

गदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्राचीन अस्त्र का नाम जो लोहे आदिका होता है। इसमें लोहे का एक डंडा होता है जिसके एक सिरे पर भारी लट्टू लगा रहता है। इसका डंडा पकड़कर लट्टू की ओर से शत्रु पर प्रहार करते हैं। २. कमरत के उपकरणों में एक, जिसमें बाँस आदि के एक मजबूत डंडे के सिरे पर पत्थर का गोला छेदकर लगाने और उसे मुगद की भाँति भाँजने हैं।

गदा^२—वि० [फ्रा०] भिक्षुक। भिखमंगा। फकीर। उ०—सीकंदर और गदा दोऊ को एक जाने।—पलटू०, भा० १, पृ० १४। (ख) गदा समझ के वो चुप था मेरी जो शामत आई। उठा भी उठ के कदम मेने पासवाँ के लिए।—कविता की०, भा० ४, पृ० ४७८।

यौ०—गदाई, गदागरी = भिक्षुकी। भिखमंगापन। फकीरी।

गदाई—वि० [फ्रा० गदा = फकीर + ई (प्रत्य०)] १. तुच्छ। नीच। क्षुद्र। उ०—नामा कहे बुनो आई ये तो बम्भन गदाई।—दक्खिनी०, पृ० ४६। २. वाहियात। रद्दी।

गदाका^१—वि० [हि० गद] गुदार और सुडोल शरीरवाला।

गदाका^२—संज्ञा पुं० किसी को उठाकर जमीन पर पटकने की क्रिया।

मुद्गा०—गदाका सुनाना = झिड़की सुनाना। फटकारना।

गदाखुब—संज्ञा पुं० [सं०] कुष्ठरोग [को०]।

गदागद^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] किसी आर्द्र या मुलायम चीज पर गिरने या आघात करने से उत्पन्न शब्द।

क्रि० प्र०—गिरना।—मारना।

गदागद^२—संज्ञा पुं० [सं० द्विब० गदागदी] अश्विनीकुमार [को०]।

गदाग्रणी—संज्ञा पुं० [सं०] क्षय रोग। यक्ष्मा।

गदाधर^१—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु। नारायण।

विशेष—विष्णु ने गदासुर नामक राक्षस की हड्डियों से एक गदा बनाकर धारण की थी, इसी से उनका नाम गदाधर पड़ा।

गदाधर^२—वि० गदा धारण करनेवाला। जिसके पास गदा हो।

गदाराति—संज्ञा पुं० [सं०] दवा। औषध [को०]।

गदाला^१—संज्ञा पुं० [हि० गदा] हाथी पर कसने का गदा।

गदाला^२—संज्ञा पुं० [सं० प्रा० कुदाल, हि० कुवाल] रंभा या बड़ी कुदाल।

गदावारण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्राचीन बाजा, जिसमें तार लगा रहता था।

गदाह, गदाहय—संज्ञा पुं० [सं०] कुष्ठ रोग [को०]।

गदि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कथन। बोलना। भाषण [को०]।

गदित—वि० [सं०] कहा हुआ। कथित।

गदियान(७)—संज्ञा पुं० [सं० गद्याणक, गद्यानक] दे० 'गद्याणक'। उ०—उनमनि डाही मन तराजू, पवन किया गदियाना। गोरखनाथ जोषण बैठा, तब मोमां सहज समाना।—गोरख०, पृ० ६२।

गदी^१—वि० [सं० गदिन्] [स्त्री० गदिनी] १. रोगी। २. जो गदा लिए हो। जिसके पास गदा हो।

गदी^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. कृष्ण [को०]।

गदेला^१—संज्ञा पुं० [हि० गदा] १. रुई या पर आदि से भरा हुआ बहुत मोटा ओढ़ना या बिछोना। २. टाट का बना हुआ वह मोटा और भारी गदा जो हाथी की पीठ पर कसा जाता है।

गदेला^२—संज्ञा पुं० [हि०] [स्त्री० गदेली] छोटा लड़का। बालक।

गदेली^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गदोरी'। उ०—टाढ़ी को गदेली में भरकर पुचकारा।—मृग०, पृ० ५७।

गदोरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गद्दी] हथेली। हथोरी।

गद्गद^१—वि० [सं०] १. अत्यधिक हर्ष, प्रेम, थड़ा आदि के आवेग से इतना पूर्ण कि अपने आपको भूल जाय और स्पष्ट शब्द उच्चारण न कर सके। २. अधिक हर्ष, प्रेम आदि के कारण रुका हुआ, अस्पष्ट या असबद्ध। जैसे,—गद्गद कंठ। गद्गद वाणी। गद्गद स्वर। ३. प्रसन्न। आनंदित। पुलकित।

गद्गद^२—संज्ञा पुं० [सं०] वह रोग जिसमें रोगी शब्दों का स्पष्ट उच्चारण न कर सके अथवा उसके दोषवश एक एक अक्षर का कई कई बार उच्चारण करे। यह रोग या तो जन्म से होता है या बीच में लकवे आदि के कारण हो जाता है। हकलाना।

गद्गदस्वर—संज्ञा पु० [सं०] १. अस्पष्ट स्वर। हकलाना। २. महिष। भैंसा [को०]।

गद्गदिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गद्गदिका] हकलाहट [को०]।

गद्ग^१—संज्ञा पु० [अनु०] १. मुलायम जगह पर किसी चीज के गिरने का शब्द। २. किसी गरिष्ठ या जल्दी न पकनेवाली चीज के कारण पेट का भारीपन।

मुद्ग^०—(किसी चीज का) गद्ग करना = (किसी चीज का) पेट में जाकर न पचना और जम जाना। गद्ग करना = गद्ग का रोग होना।

३. एक कल्पित नकड़ी जिसके विषय में गँवारों का विश्वास है कि वह जिसे स्पर्श करा दी जाय, उसे मुख बना देती है अथवा स्पर्श करानेवाले के बगल में कर देती है।

मुद्ग^०—गद्ग मारना = अपने वंश में करना। गद्ग मारा जाना = जड़ हो जाना। बेवकूफ बन जाना।

गद्ग^२—वि० जड़। मूर्ख। अवकूफ।

गद्गम—संज्ञा पु० [शब्०] पीले रंग की एक छोटी चिड़िया जिसका पेर सफेद और पेट भान होता है।

गद्ग^३—वि० [शब्०] १. जो अच्छी तरह पका न हो। अधकचरा। अधपका। २. गुदगर। मोटा। गद्ग।

गद्गह^(५)—गद्ग पु० [गद्ग गर्वभ, प्रा० गद्गह] दे० 'गर्दभ'। उ०—बेसरि धर गद्गह लज्ज इति का महिमा कोटी।—कीर्ति०, पु० ६४।

गद्ग^४—संज्ञा पु० [हि० गद्ग से अनु०] १. रुई, पयाल आदि भग हुआ बहुत मोटा और गुदगुदा बिछोना। भारी तोशक आदि। गदला। २. टाट का बना हुआ फुट भर मोटा एक चौकोर बिछावन जिसके बीच में प्रायः गज भर लंबा एक छेद होता है और जो हाथी की पीठ पर हौदा कसने से पहले रखकर बाँधा जाता है।

कि० प्र०—कसना।—सीधना।

३. घास, पयाल, रुई आदि मुलायम चीजों का बोझ। ४. किसी मुलायम चीज को मार या ठोकर।

कि० प्र०—लगना।—लगाना।

गद्ग^५—संज्ञा पु० [शब्०] दे० 'गदहिला'।

गद्ग^६—संज्ञा पु० [हि० या देश०] अनुमान। अटकल। उ०—किसी फिलासकर ने अपनी गद्ग सड़ाने के सिवा और कुछ किया है?—गोदान, पु० १२६।

गद्गी—संज्ञा स्त्री० [हि० गद्ग का स्त्री और अल्पा०] १. छोटा गद्ग। २. वह कपड़ा जो घोड़े, ऊँट आदि की पीठ पर काटी या जीन आदि रखने के लिये डाला जाता है। ३. व्यवसायी आदि के बैठने का स्थान। जैसे,—सराफ की गद्गी, कलवार की गद्गी। ४. किसी बड़े अधिकारी का पद। जैसे—राजा की गद्गी, महंत की गद्गी। उ०—हंद ने.....देवताओं के देखते मुझे अपनी गद्गी पर बिठाया।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

गद्गी—राजगद्गी। गद्गीनशीन।

मुद्गा^०—गद्गी पर बैठना = (१) सिंहासनालङ्घ होना। (२) उत्तराधिकारी होना। गद्गी लगाकर बैठना = अधिकार जताने हुए आराम के साथ बैठना।

५. किसी राजवंश की पीढ़ी या आचार्य की शिष्यपरंपरा। जैसे,—(क) चार गद्गी के बाद इस वंश में कोई न रहेगा। (ख) यह.....गुरु की चौथी गद्गी है।

मुद्गा^०—गद्गी चलाना = वंशपरंपरा या शिष्यपरंपरा का जारी होना। उत्तराधिकारियों का क्रम चलना।

६. कपड़े आदि की बनी हुई वह मुलायम तह जो किसी चीज के नीचे रखी जाय। ७. हाथ या पैर की हथेली।

मुद्गा^०—गद्गी लगाना = घोड़े को हथेली या कुहनी से मलना।

८. एक प्रकार का मिट्टी का गोल बरतन जिसमें छोपी रंग रखकर छपाई का काम करते हैं।

गद्गीनशीन—वि० [हि० गद्गी + फा० नशीन] दे० 'गद्गीनशीन'।

गद्गीनशीन—वि० [हि० गद्गी + फा० नशीन] १. सिंहासनालङ्घ। जिसे राज्याधिकार मिला हो। २. उत्तराधिकारी।

गद्गीनशीनी—संज्ञा स्त्री० [हि० गद्गी + फा० नशीनी + ई (प्रत्यय०)] गद्गी पर बैठना। अधिकारालङ्घ होना।

गद्य^१—संज्ञा पु० [सं०] १. वह लेख जिसमें मात्रा और वर्ण की संख्या और स्थान आदि आचार्य पर विराम या यति या कोई नियम या बंधन न हो। वार्तिक। वचनिका। २. काव्य के दो भेदों में से एक जिसमें छंद और वृत्त का प्रतिबंध नहीं होता और बाकी रस, अलंकार आदि सब गुण होते हैं।

विशेष—अग्निपुराण में गद्य तीन प्रकार का माना गया है—चूर्णक, उत्कलिका और वृत्तगंधि। चूर्णक वह है जिसमें छोटे छोटे समास हों; उत्कलिका वह है जिसमें बड़े बड़े समस्त पद हों, और वृत्तगंधि वह है जिसमें कहीं कहीं पद्य का सा आभास हो। जैसे,—हं बनवारी, कुंजविहारी, कृष्णमुरारी, यमोदानंदन हमारी विनती सुनो।' वामन ने भी अपने वामन-सूत्र में ये ही तीन भेद माने हैं। विश्वनाथ महापात्र ने साहित्यदर्पण में एक और भेद मुक्तक माना है जिसमें कोई समास नहीं होता। ये भेद तो पदयोजना या शैली के अनुसार हुए। साहित्यदर्पण के अनुसार गद्यकाव्य दो प्रकार का होता है—(क) कथा और (२) आख्यायिका। कथा वह है जिसमें सरस प्रसंग हो, राज्यों और खलों के व्यवहार आदि का वर्णन हो और आरंभ में पद्यबद्ध नमस्कार हो। आख्यायिका में केवल इतनी विशेषता होती है कि उसमें कवि के वंश आदि का भी वर्णन होता है। गद्य के विषय में प्राचीनों के ये सब विवेचन आजकल उतने काम के नहीं हैं।

३. संगीत में कुछ राग का एक भेद।

गद्य^२—वि० बोलने, कहने या उच्चारण के योग्य [को०]।

गद्याण—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'गद्याणक'।

गद्याणक—संज्ञा पु० [सं०] कलिंग देश का एक प्राचीन मान जो ४८ रस्ती या ६४ घुंघचियों का होता था।

गद्यात्मक—वि० [सं०] [स्त्री० गद्यात्मिका] गद्य में लिखा या रचा हुआ। गद्य का।

गद्यानक, गद्यालक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गद्यालक' [कौ०] ।

गद्या^१—संज्ञा पुं० [हि० गदहा] [कौ० गधी] दे० 'गदहा' ।

गद्या^२—वि० [हि०] नायकम् । मूलं । कमप्रबल (ला०) ।

मुहा०—गधा पीटे घोड़ा नहीं होता = सिखाने से मूलं आदमी विद्वान् और नीच आदमी भला नहीं होता । गधे को बाप बनाना = काम साधने के लिये तुच्छ या जड़ आदमी की बड़ाई करना । गधे पर चढ़ना = दे० 'गदहे पर चढ़ाना' । गधे से हल चलवाना = बिलकुल उजाड़ देना । बरबाद कर देना ।

गधापन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गदहपन' ।

गधीला^१—संज्ञा पुं० [देश०] [कौ० गधीली] एक जंगली जाति ।

गधीला^२—संज्ञा पुं० दे० 'गदहिला' ।

गधूल—संज्ञा पुं० [देश०] एक फूल का नाम ।

गधेड़ी^१—संज्ञा कौ० [हि० गधी+एड़ी] घयोग्य या फूहड़ धीरत ।

गन्^(१)—संज्ञा पुं० [सं० गण] १. दूत । सेवक । पारिवद । उ०—जम गन मुँह मसि जग जमुना सी ।—तुलसी (शब्द०) । २. बोवा नाम का गंधद्रव्य । उ०—स्वेद भरे तनसिज खरे करज लगे मन ठाम । मुखरे कच बिधुरे धरी लरी जलन ते बाम ।—शृ० सत (शब्द०) । वि० दे० 'गण' ।

गनक^(१)—संज्ञा पुं० [सं० गणक] दे० 'गणक' । उ०—सुनि सिल पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि ।—मानस, २।३२२ ।

गनकेन्द्रा—संज्ञा पुं० [सं० गणक+एण] एक प्रकार की घास जो गाय भैंस के चारे के काम में आती है ।

गनगनाना—क्रि० प्र० [अनु०] (रोमाँ) खड़ा होना । रोमाँच होना ।

गनगौर—संज्ञा कौ० [सं० गण+गौरी] १. चैत्र शुक्ल तृतीया । इस दिन गणेश और गौरी की पूजा होती है । उ०—घोस गनगौर के सु गिरिजा गुसाइन की छाई उदयपुर में बधाई ठौर ठौर है ।—पद्माकर प्र०, पृ० ३२५ । २. पावती । गिरिजा । उ०—(क) दै बरदान यहै हमको सुनिये गनगौर गुसाइन मेरी ।—पद्माकर प्र०, पृ० ३२२ । (ख) पारावार हला महामेला में महेश पूछें गौरन में कोन सी हमारी गनगौर है ।—पद्माकर प्र०, पृ० ३२५ ।

गनतो—संज्ञा कौ० [हि०] दे० 'गिनती' ।

गनना^१—क्रि० सं० [हि०] दे० 'गिनना' ।

गनना^२—संज्ञा कौ० [हि०] दे० 'गणना' ।

गननाना^१—क्रि० प्र० [अनु० गन, गन] १. शब्द से भर जाना । गूँजना । उ०—छुटे बान कुह कुह कुह बोला । नम गननाइ उठें मुख गोला ।—लाल (शब्द०) । २. चक्कर में आना । घूमना । फिरना ।

गननायक^(१)—संज्ञा पुं० [सं० गणनायक] दे० 'गणनायक' । उ०—गननायक बरदायक देवा ।—मानस, १।२५७ ।

गनप^(१)—संज्ञा पुं० [सं० गणप] दे० 'गणप' । उ०—करि भज्जन पूजाहि नर नारी । गनप गौरि तिपुरारि तमारी ।—मानस, २।२७२ ।

गनपति^(१)—संज्ञा पुं० [सं० गणपति] दे० 'गणपति' । उ०—आचार करि गुर गौर गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं ।—मानस, १।३२३ ।

गनरा भाँग संज्ञा कौ० [हि० गाँठ+गनरा+भाँग] जंगली भाँग जिसमें नशा बिलकुल नहीं होता । कहीं कहीं इसकी टहनियों से रेशे निकाले जाते हैं ।

गनराय^(१)—संज्ञा पुं० [सं० गणराज] गणेश ।

गनवर^(१)—संज्ञा कौ० [हि० गाँठ+वर (प्रत्य०)] नरकट नाम की घास ।

गनाना^१—क्रि० सं० [हि०] दे० 'गिनाना' । उ०—बहुत बिने करि पातो पठई नृप लीवै सब पुहुप गनाइ ।—सूर०, १०।५८२ ।

गनाबा^१—क्रि० प्र० गिना जाना । गिनती में आना । उ०—बारह भोनइस चारि सताइस । जोगिनि पच्छिउँ बिसा गनाइस ।—जायसी (शब्द०) ।

गनिका^(१)—संज्ञा कौ० [सं० गणिका] दे० 'गणिका' । उ०—गनिका सुत सोभा नहि पावत जाके कुल कोऊ न पिता री ।—सूर०, १।३४ ।

गनियारी—संज्ञा कौ० [सं० गणिकारी] या शमी की तरह का एक पौधा या झाड़ु जिसे भ्रमण या छोटी घरनी (घरणी) भी कहते हैं ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ बबूल की पत्तियों से थोड़ी और गोलाई लिए होती हैं । इसमें सफेद फूल और करोदे के समान छोटे छोटे फल लगते हैं । इसकी लकड़ी रगड़ने से प्राग जल्दी निकलती है, इसी से इसे 'क्षुद्राग्निमंथ' कहते हैं । वैद्यक में यह कटु, उष्ण, अग्निदीपक और वातनाशक मानी जाती है ।

गनी^१—वि० [प्र० गनी] १. धनी । धनवान । उ०—(क) गनी, गरीब, ग्राम नर नागर ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सुमन बरसि रघुबर गुन बरतन हरषि देव दुहुभी हनी । रंकनिवाज रंक राजा किए गए गरब गरि गरि गनी ।—तुलसी प्र०, पृ० ३८६ । २. निस्पृह । अनिच्छुक (कौ०) ।

गनी—संज्ञा पुं० [प्र०] पाट या सन की रस्तियों का बुना हुआ मोटा खुरदरा कपड़ा जो बोरा या थैला बनाने के काम में आता है । जैसे,—गनी माकेंट । गनी बोरकर ।

गनीम—संज्ञा पुं० [प्र० गनीम] १. लुटेरा । डाकू । २. बेरी । शत्रु । उ०—प्रकबक बोले यों गनीम धो गुनाही है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

गनीमत—संज्ञा कौ० [प्र० गनीमत] १. लूट का माल । २. वह माल जो बिना परिश्रम मिले । मुफ्त का माल । जैसे,—उससे जो कुछ मिल जाय, वही गनीमत है ।

क्रि० प्र०—जानना ।—समझना ।

३. संतोष की बात । धन्य मानने की बात । बड़ी बात । जैसे,—किसी तरह पेट पाल लें, यही गनीमत है ।

मुहा०—किसी का दम गनीमत होना = किसी का बना रहना । किसी के लिये अच्छा होना । किसी के जीवन से किसी प्रकार की भलाई होना ।

गनेख—संज्ञा कौ० [देश०] एक प्रकार की घास जो छप्पर छाने के काम में आती है ।

गनोरिया—संज्ञा पुं० [सं०] गूजाक रोग ।

गनीरी—संज्ञा स्त्री० [म० गुन्ना] नागरमोषा ।

गन्ना—संज्ञा पुं० [सं० कारण] ईस । ऊस ।

गन्नाटा—संज्ञा पुं० [अनु०] गननाने की ध्वनि । उ०—ज्यो ज्यो गथा गया जीवनरम, त्यों त्यों धीर जोर से उफना, मंचन के दाएं बाएँ इन गन्नाटों में उलझा लघु मन । अपनक, पृ० ३४ ।

गन्नी—संज्ञा पुं० [हि० गोन (= रस्सी), या म० गनी] १. पाट या टाट जिसके बोर आदि बनते हैं । २. भेंगारे की तरह का एक कपड़ा जो गिकिम में बनता है । यह रीहा घाम या उमी तरह के धीर पीघो की ध्यान से बनता है ।

गन्नेस(पु)—संज्ञा पुं० [म० गणेश] दे० 'गणेश' । उ०—जिते मेल मुर हेति मुरपति कीने । तिते सेम गन्नेस जाई न चीने ।—पृ० २०, २।१११ ।

गन्ध(पु)—वि० [म० गन्ध] दे० 'गन्ध' । उ०—हरि भक्त अनन्य में गन्ध सदा, मुहारे गम धन्य न अन्य ग्रहे ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४६३ ।

गप^१—संज्ञा स्त्री० [सं० कल्प, प्रा० कल्प अथवा म० जल्प > गल्प, हि० गल्प] वि० गप्पी] १. इधर उधर की बात जिगकी सत्यता का निश्चय न हो । २. वह बात जो केवल जी बहलाने के लिये की जाय । वह बात जो किसी प्रयोजन से न की जाय । बकवाद ।

क्रि० प्र०—मारना ।

यौ०—गप शप—इधर उधर की बातें । वार्तालाप ।

३. झूठी बात । मिथ्या प्रसंग । कपोलकल्पना । जैसे,—यह सब गप है; एक बात भी ठीक नहीं है । ४. झूठी खबर । मिथ्या समाचार । अपवाद ।

मुहा०—गप उड़ना = झूठी खबर फैलना ।

५. यह झूठी बात जो बड़ाई प्रकट करने के लिये की जाय । रींग ।

क्रि० प्र०—मारना । हाँकना ।

गप^२—संज्ञा पुं० [अनु०] १. वह शब्द जो भट से निगलने, किसी नाम अथवा गोपनीय वस्तु से छुपने या पड़ने आदि से होता है । जैसे,—(क) वह गप से गिराई सा गया । (ख) पाव में इतनी गलाई गप से प्य गई ।

विशेष—इस प्रकार के धीरे अनुप्रास शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग भी प्रकार गूँथित करने के लिये प्रायः 'से' के साथ होता है ।

यौ०—गपगप = जल्दी जल्दी । भटपट ।

२. निगलने या छानने की क्रिया । भक्षण । जैसे—(क) सब मन गप कर जाओ, हमारे खान के लिये भी रहने दो । (ख) सीठा सीठा गप कड़ा कड़वा ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

गपकना—क्रि० रा० [अनु० गप + हि० करना] जटपट निगलना । भट से छान लेना । जैसे—वह पानी में का सब भात गपक जायगा ।

गपझिया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] बाजू में छिपनेवाली एक प्रकार की मछली जिसे । रेगमाही कहते हैं ।

गपड़चौथ^१—संज्ञा पुं० [हि० गपोड़ (= बातचीत) + चौथ < हि० चौथना] व्यर्थ की गोपनी । वह व्यर्थ की बातचीत जो चार आदमी मिलकर करे ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

गपड़चौथ^२—वि० जीपवान । अडबड़ । ऊटपटांग ।

गपना(पु)—क्रि० म० [हि० गप] गप मारना । व्यर्थ बात करना । बकवाद करना । बकना । उ०—राम राम राम राम राम राम जपन । मंगल मुद उदित होत कनिमल छल छपत । कहूँ के लह फल रसाल बबुर बीज बपन । हरहि जनि जनम जाय गालगूल गपत ।—तुलसी (शब्द०) ।

गपाटा—संज्ञा पुं० [हि० गप] गपड़चौथ । गप्पवाजी । उ०—सर्व मनुष्य गपाटा में लग रहे हैं किसी को सत्य की सुधि नहीं, अचेत हो रहे हैं ।—कबीर मं०, पृ० ६१४ ।

गपिया—वि० [हि० गप + घ्या (प्रत्य०)] गप मारनेवाला । झूठ मूठ की बात कहनेवाला । बकवादी । गप्पी ।

गपिहा(पु)—वि० [हि० गप + हा (प्रत्य०)] गप हाँकनेवाला । गप्पी । बकवादी । उ०—चूँकी कलापी न चूँकी कहूँ भुकि भूँकी समीर की आन गकोरन । त्यों गपिहा गपिहा गपिहा भयो पीव को नाव ने हीय हलोगन ।—गुदरीसर्वस्व (शब्द०) ।

गपोड़^१—संज्ञा पुं० [हि० गप+ओड़ (प्रत्य०)] दे० 'गपोड़ा' ।

गपोड़^२—वि० गप्पी, गप्प हाँकनेवाला ।

गपोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० गप] मिथ्या बात । कपोल कल्पना । गप । जैसे,—आजकल वे सब गपोड़े उड़ाते हैं ।

क्रि० प्र०—उड़ना ।—उड़ाना ।—मारना ।

यौ०—गपड़चौथ । गपोड़ेवाजी ।

गपोड़ेवाजी—संज्ञा स्त्री० [हि० गपोड़ा + वाजी] झूठमूठ की बकवास ।

गप्प—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गप' ।

गप्पा—संज्ञा पुं० [अनु० गप] १. घोषा ।

मुहा०—गप्पा खाना = घोषे में आना । चुकना ।

२. गुरुप की इच्छा । निग । (बाजारू) ।

गप्पाष्टक—संज्ञा स्त्री० [हि० गप्प + ग० अष्टक] दे० 'गपड़चौथ' । उ०—गकड़ों मनुष्यों में बंड भौति भौति की गप्पाष्टक होती । —प्रेमनन०, भा० २, पृ० ४१० ।

गप्पी—वि० [हि० गप्प + ई (प्रत्य०)] १. गप मारनेवाला । छोटी बात को बढ़ाकर कहनेवाला । जल्पक । २. मिथ्याभाषी । झूठा ।

गप्फा—संज्ञा पुं० [म० प्रास, हि० गप्फा अथवा अनु० गप] १. बहुत बड़ा ग्राम जो खाने के लिये उठाया जाय । बड़ा कोर । जैसे,—दो गप्फे खा लें, तब चले ।

मुहा०—गप्फा मारना = बड़ा कोर खाना ।

२. लाभ । फायदा । उ०—जिधर गप्फा अच्छा मिले, वही चले जाय ।—सत्यार्थप्रकाश (शब्द०) ।

गफ—वि० [सं० गप्स = गुच्छा] धना । ठस । गाढ़ा । गहिरा । 'झीना' का उलटा ।

विशेष—यह शब्द ऐसी बुनावट के लिये प्रयुक्त होता है, जिसके लगे घने धरात परस्पर खूब मिले हों। जैसे,—वह कपड़ा गफ है। यह खाट गफ बुनी है।

गफलव—संज्ञा स्त्री० [प्र० गफलव] घसावधानी। बेपरवाई। २. चेत या मुष का धभाव। बेखबरी। ३. प्रमाद। भूल। चूक। भ्रम।

गफिलाई (५)—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गफिल] १. घसावधानी। बेपरवाई। २. भ्रम। मोह। उ०—ऐसा योग न देखा भाई। भूला फिरे लिए गफिलाई।—कबीर (शब्द०)।

गफकार—वि० [प्र० गफकार] बहुत बड़ा दयालु। ईश्वर का एक विशेषण। उ०—तू दातार है तू सतार, गफकार गमखार है।—दक्खिनी०, पृ० २३०।

गबड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'कबड़ी'।

गबदा—वि० पुं० [हि० गबद] [वि० स्त्री० गबदी] दे० 'गबद'।

गबदी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़।

विशेष—इसकी लकड़ी बहुत मुनायम और डालियाँ घनी तथा छतनार होती हैं। इसकी पत्तियाँ तीन बार इंच लंबी होती हैं और उनके पीछे की ओर रौंद होती है। माघ मास में इसमें सुनहले पीले रंग के फूल लगते हैं। यह पेड़ सिवालिक की पहाड़ियों तथा उत्तरीय प्रवध, बुंदेलखंड और दक्षिण में होता है। इसकी छाल से कतीरे की तरह का एक प्रकार का सफेद गोंद निकलता है।

गबद—वि० [हि० गबदी] पशु की सी बुद्धिवाला। जड़। मूर्ख।

गबन—संज्ञा पुं० [प्र०] व्यवहार में मालिक के या किसी दूसरे के सोये हुए माल को लाने का चोरी। चोरी।

क्रि० प्र०—करना।

गबर^१—संज्ञा पुं० [प्र० स्केमर] वह पाल जो सब पालों के ऊपर होता है।

गबर^२—क्रि० वि० [हि०] शीघ्रता। जल्दबाजी।

यौ०—गबर गबर।

गबरगंड—वि० [हि० गबर + सं० गण्ड = मूर्ख] मूर्ख। अज्ञानी। जड़। उ०—क्या क्षमा के योग्य घर क्षमा न करना, अयोग्य पर क्षमा करना, गबरगंड राजा के तुल्य यह कर्म नहीं है?—सत्यार्थप्रकाश (शब्द०)।

गबरहा—वि० [हि० गोबरहा] गोबर मिला हुआ। गोबर लगा।

मुहा०—गबरहा करना = बरतन के सचि पर गोबर और मिट्टी चढ़ाना।

गबरा (५)—वि० [हि०] दे० 'गबर'।

गबर^१—वि० [फ्रा० खूबरू] १. उभड़ती जवानी का। जिसे रेश उठती हो। पट्टा। उ०—काहे को भये उदास सैया गबर। तुमरी खुशी से खुशी मोरे लबरू।—दुर्गाप्रसाद मिश्र (शब्द०)। २. भोलाभाला। सीधा।

गबर^२—संज्ञा पुं० बूढ़ा। पति।

गबरून—संज्ञा पुं० [फ्रा० गबरून] चारखाने की तरह का एक मोटा कपड़ा जो लुधियाने में बुना जाता है।

विशेष—कहते हैं कि यह पहले गबरून नामक स्थान से आता था। गबरून को कोई कोई फारस के बंदर अब्बास का पुराना नाम बतलाते हैं और कोई शाम देश (सीरिया) का गबरूनिया नामक नगर बतलाते हैं।

गबी—वि० [प्र० गबी] मंदबुद्धि। कमप्रबल (को०)।

गबीना—संज्ञा पुं० [देश०] कतीला। कतीरा।

गब्ब (५)—संज्ञा पुं० [सं० गर्ब, प्रा० गब्ब] गर्व। अभिमान। प्रकट। उ०—नहिं गब्बत करि गब्ब, नहिं गज्जत धन गज्जत।—पृ० रा०, ६। १०३।

गब्बना (५)—क्रि० प्र० [सं० गमन, प्रा० गब्बण] दे० 'गमना'। उ०—नहिं गब्बत करि गब्ब, नहिं गज्जत धन गज्जत।—पृ० रा०, ६। १०३।

गब्बर—वि० [सं० गर्व, गर्वर, प्रा० गब्ब] १. घमंडी। गर्वोला। अहंकारी। उ०—सजि चतुरंग बीर रंग में तुरंग बद्ध मरजा सिवा जी जंग जीतन चलत हैं। भूषण भगत नाद बिहद नगरन के नदी नद मद गब्बरन के रलत हैं।—भूषण (शब्द०)। डोढ़। ३. कहने पर किसी काम को जल्दी न करनेवाला या पूछने पर किसी बात का जल्दी उत्तर न देनेवाला। मट्ठर। ४. बहुमूल्य। कीमती। जैसे,—गब्बर माल। ५. मालदार। धनी। जैसे,—गब्बर असामी।

गब्बू—संज्ञा पुं० [प्र० गबी] मंद। सुस्त। कमजोर।

गब्बा—संज्ञा पुं० [सं० गर्म पा० गब्ब] १. वह बिछावन जिसमें रूई भरी हुई हो। गद्दा। तोशक। २. चारे का गट्टा।

गब्र—संज्ञा पुं० [फ्रा०] जरतुस्त का अनुयायी। पारस देश का अग्नि-पूजक। पारसी।

गभ—संज्ञा पुं० [सं०] भग।

गभरू—संज्ञा पुं० [फ्रा० खूबरू, हि० गबरू] दे० 'गबरू'। उ०—साबना सोहन मोहन गभरू इत बल घाई गया।—घनानंद, पृ० ३४०।

गभस्तल—संज्ञा पुं० [भं० गभस्तिमान्] गभस्तिमान् द्वीप का नाम।

गभस्ति^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. किरण। २. सूर्य। ३. बाँह। हाथ।

गभस्ति^२—संज्ञा स्त्री० अग्नि की स्त्री। स्वाहा।

गभस्तिकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। आदित्य (को०)।

गभस्तिनेमि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम (को०)।

गभस्तिपाणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

गभस्तिमान्^१—संज्ञा पुं० [भं० गभस्तिमान्] १. सूर्य। २. एक द्वीप का नाम। ३. एक पाताल का नाम।

गभस्तिमान्^२—वि० किरणयुक्त। प्रकाशयुक्त। चमकीला।

गभस्तिमाली—संज्ञा पुं० [सं० गभस्तिमालिन्] सूर्य। किरणमाली (को०)।

गभस्तिहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

गभस्थल—संज्ञा पुं० [सं० गभस्तिमान्, हि० गभस्तल] गभस्तिमान् द्वीप। उ०—द्वीप गभस्थल आरन परा। दीप महस्थल मानस हरा।—जायसी ग्रं०, पृ० १०।

गभार (५)—संज्ञा पुं० [सं० गब्बर, प्रा० गब्बर, गह्वर ?] अनेक अर्थों

का संकट,] अपशकुन । संकट । विपत्ति । उ०—सबद्ध सियाँन
मुलेन कपोत । सनमुख साहि दिख्यो दस दोत । भयो दिसि
बानिय कग करार । क्यो दिवि घोमय धूम गभार ।—पु०
रा०, ६।६६ ।

गभीर—वि० [गं०] दे० 'गंभीर' ।

गभीरा—वि० स्त्री० [गं० गभीर] दे० 'गंभीर' । उ०—गई शयनालय में
तरकाल; गभीरा सगिता सी धी चाल ।—साकेत, पु० ३२ ।

गभीरिका—संज्ञा स्त्री० [गं०] गंभीर ध्वनि देनेवाला बड़ा ढोल (की०) ।

गभुधारा(पुं०)—वि० [गं० गभं, पा० गभ + धार (प्रत्य०)]
[वि० स्त्री० गभुधारी] १. गर्भ का (बाल) । जन्म के समय
का रखा हुआ (बाल) । उ०—(क) गभुधारी चलकावली
लसै लटकन ललित ललाट । जनु उड़गन बिधु मिसन को चले
तम बिदारि करि बाट ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) गभुधारे
सिर केश है ते बधु सेंवारे । लटकन लटके भाल पर बिधु मधि
गत तारे ।—सूर (शब्द०) । २. जिसके सिर के जन्म के
बाल म कटे हों । जिसका मुँह न हुआ हो । ३. नादान ।
बहुत छोटा । अनजान । उ०—अपर सारिस सुंदर मुखबि ता
गर प्रति गभुधार । नहि जानत रणविधि कछु नहि देहों निज
वार ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

गभुधार(पुं०)—वि० [हि० गभुधार] दे० 'गभुधार' ।

गम'—संज्ञा पुं० [गं०] १. राह । मार्ग । रास्ता । २. गमन । प्रयाण ।
३. मैथुन । सहवास । ४. सड़क । पथ (की०) । ५. शत्रु पर
अभियान । कूच (की०) । ६. अविचारिता । विचारणान्यता
(की०) । ७. ऊपरीपन । अटकलपच्च निरीक्षण (की०) । ८.
पासे का खेल (की०) ।

गम'—संज्ञा स्त्री० [गं० गम्य] (किसी वस्तु या विषय में) प्रवेश ।
पहुँच । गुजर । पेट । जैसे—जिस विषय में तुम्हारी गम नहीं
है, उसमें न बोलो । उ०—(क) चीटी जहाँ न चाँड़ गकै राई
नहि ठहराई । आवागमन कि गम नहीं तहँ सकलो जग जाई ।
—कबीर (शब्द०) (ख) असुरपति प्रति ही गर्व धरयो ।
तिहँ भुवन भरि गम है मेरो मो सन्मुख को झाड़ ?—
सूर (शब्द०) ।

गुहा०—गम करना = चट कर जाना । पेट में डाल लेना । खा लेना ।
उ०—चारि वृक्ष छह शाखा वाके पत्र अठारह भाई । एतक
से गया गम भीन्हों गया प्रति हरहाई ।—कबीर (शब्द०) ।

गम'—संज्ञा पुं० [गं० गम] १. दुःख । शोक । रंज ।

गुहा०—गम खाना = क्षमा करना । जाने देना । ध्यान न देना ।
उ०—तत्काल के कुत धर्म, दुष्ट के कुत गम खाना ।—रघुनाथ
(शब्द०) । गम गलत करना = दुःख भुलाना । शोक दूर करने
का प्रयत्न करना ।

२. चिता । फिक । ध्यान । उ०—सरस सर जिन बेधिया सर
बिनु गम कछु नाहि । लागि चोट जो शब्द की करक करेजे
माहि ।—कबीर (शब्द०) ।

गमक'—वि० [गं०] [वि० स्त्री० गमिका] १. जानेवाला । २.
बोधक । सूचक । बतलानेवाला ।

गमक'—संज्ञा पुं० [गं०] १. संगीत में एक श्रुति या स्वर पर से दूसरी
श्रुति या स्वर पर जाने का एक प्रकार ।

विशेष—इसके सात भेद हैं—कपित, स्फुरित, लीन, भिन्न,
स्थविर, ग्राहत और आंदोलित । पर साधारणतः लोग गाने में
स्वर के कंपने को ही गमक कहते हैं ।

२. तबले की गंभीर आवाज ।

गमक'—संज्ञा स्त्री० [गं० गमक=जाने या फैलनेवाला] महक । सुगंध ।
जैसे,—इस फूल की गमक चारों ओर फैल रही है ।

गमकना—क्रि० प्र० [हि० गमक+ना (प्रत्य०)] १. सुगंध
देना । महकना । २. गुँज पैदा होना । ३. खुशी या उत्साह
से भरना ।

गमकीला'—वि० [हि० गमक+ईला (प्रत्य०)] गमकने या महकने-
वाला । सुगंधित ।

गमकौला'—वि० [हि० गमक] दे० 'गमकीला' ।

गमखार—वि० [फा० गमखार] १. गमखोर । २. हमदर्द । उ०—
कोई दिलवर धार नहीं गमखार किसे ठहराऊँ ।—प्रेमचन्द०,
भा० १, पृ० १६० ।

गमखोर—वि० [फा० गमखार या गमखोर] [संज्ञा गमखोरी]
सहिष्णु । सहनशील ।

गमखोरी—संज्ञा स्त्री० [फा० गमखारी] सहिष्णुता । सहनशीलता ।

गमरूखार—वि० [फा० गमरूखार] [संज्ञा गमरूखारी] १. सहिष्णु ।
सहनशील । २. दुःख या कष्ट में हाथ बढ़ानेवाला । हमदर्द ।

गमगीन—वि० [फा० गमगीन] [संज्ञा गमगीनी] दुःखी । उदास ।
खिन्न । व्यथित ।

गमगुसार—संज्ञा पुं० [फा० गमगुसार] वह जो किसी को कष्ट में देख
कर दुःखी होता हो । सहानुभूति रखने या दिला देनेवाला ।
हमदर्द ।

गमजदा—वि० [फा० गमजदह] संतप्त । दुःखी । खिन्न ।

गमत—संज्ञा पुं० [गं० गमन या गमथ = पथिक] १. रास्ता । मार्ग ।
२. पेशा । व्यवसाय ।

गमतखाना—संज्ञा पुं० [गं० गमत = कुएँ में जल की अधिकता ?] नाब
में वह स्थान जहाँ पानी रसकर या छेदों से आकर इकट्ठा
होता है और उलीचकर बाहर फेंक दिया जाता है । बंवाल ।
गमतरी ।—(लश०) ।

गमतरी—संज्ञा स्त्री० [गं० गमत] गमतखाना । बंवाल (लश०) ।

गमता—वि० [गं० गमत ?] [स्त्री० गमती] चूनेवाला (लश०) ।

गमथ—संज्ञा पुं० [गं०] १. मार्ग । राह । २. व्यापार । पेशा । ३.
आमोद प्रमोद । ४. राह चलनेवाला । पथिक ।

गमन—संज्ञा पुं० [गं०] [वि० गमनीय, गम्य] १. जाना । चलना ।
यात्रा करना । २. वैशेषिक दर्शन के अनुसार पाँच प्रकार के
कर्मों में से एक । किसी वस्तु के क्रमशः एक स्थान से दूसरे
स्थान को प्राप्त होने का कर्म । ३. संभोग । मैथुन । जैसे,—
वैश्यागमन । ४. राह । रास्ता । ५. सवारी आदि, जिनकी
सहायता से यात्रा की जाय । ६. प्राप्त करना । पहुँचना (की०) ।

यौ०—गमनागमन = आवागमन । आना जाना ।

गमनना(पुं०)—क्रि० प्र० [गं० गमन+हि० ना (प्रत्य०)] जाना ।

उ०—साहसुता गमनी तहाँ विषाद कनात लिवाह ।—रघुराज (शब्द०) ।

गमनपत्र—संज्ञा पु० [सं०] वह पत्र जिसके द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने का अधिकार मिले । बालान । रचना ।

गमना^१—क्रि० प्र० [सं० गमन] जाना । चलना । उ०—प्रगम सबहि बरनत बर बरनी । जिमि जलहीन मीन गमु बरनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

गमना^२—क्रि० प्र० [प्र० गम = रंज + हि० ना (प्रत्य०)] १. गम करना । शोक करना । २. परवाह करना । ध्यान देना । उ०—मेरे तो न उर रघुवीर सुनी साँची कहीं खल भनखेहैं तुम्हें सज्जन न गमिहैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

गमनाक—वि० [फ्रा० गमनाक] शोकपूर्ण । दुःखमरा ।

गमनीय—वि० [सं०] दे० 'गम्य' ।

गमला—संज्ञा पु० [?] १. नाँद के आकार का मिट्टी या घातु आदि का बना हुआ एक प्रकार का पात्र जिसमें फूलों के पेड़ और पौधे लगाए जाते हैं । २. लोहे, चीनी मिट्टी आदि का बना हुआ एक प्रकार का बरतन जिसमें पाखाना फिरते हैं । कमोड ।

गमागम—संज्ञा पु० [सं०] घाना जाना ।

गमाना^१—क्रि० स० [हि० गुम] गुम करना । खोना । गँवाना । उ०—(क) हा हा करति कंचुकी मांगति अंबर दिए मन भाए । कीन्हों प्रीति प्रगट मिलिबे की अखियन शर्म गमाए ।—सूर (शब्द०) । (ख) हा ! लाल ! उसे भी आज गमाया मैंने ।—साकेत, पृ० २३१ ।

गमार^१—वि० [हि० गँवार] गाँव का रहनेवाला । गँवार । देहाती । उ०—त्यों रन ठाठ बुदेला टाटे । खेत गमार चार से काटे ।—लाल (शब्द०) ।

गमारि^१, गमारी^१—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'गँवारी' । उ०—(क) एक हमे नारि गमारि सबहु तह दोसरे सहज मतिहीनी ।—विद्यापति, पृ० १२५ । (ख) हरिक संगे किछु डर नहि हे तुहे परम गमारी ।—विद्यापति, पृ० २५५ ।

गमि^१—संज्ञा स्त्री [हि०] पट्टा । पैठ । प्रवेश ।

गमो^१—वि० [सं० गमिन्] जानेवाला । गमन करनेवाला [स्त्री०] ।

गमी^१—संज्ञा पु० पथिक । यात्री [स्त्री०] ।

गमी^२—संज्ञा स्त्री [प्र० गम] १. शोक की अवस्था या काल । २. वह शोक जो किसी मनुष्य के मरने पर उसके संबंधी करते हैं । सोग । २. मृत्यु । मरनी । जैसे,—उनके यहाँ गमी हो गई । उ०—रूपया इस मुक्त के आदमियों का शादी गमी में बहुत खर्च होता है ।—शिवप्रसाद (शब्द०) ।

गम्मसा^१—संज्ञा स्त्री [मराठी] १. हँसी दिल्लीगी । विनोद । २. मोज । बहार ।

गम्य—वि० [सं०] १. जाने योग्य । गमन योग्य । २. प्राप्य । लभ्य । ३. गमन करने योग्य । संभोग करने योग्य । भोग्य । ४. साध्य । ५. समझ में आ जानेवाला । सुबोध [स्त्री०] ।

गय^१—संज्ञा पु० [सं० गजेन्द्र, प्रा० गयिद, गयिद] १. बड़ा हाथी । २. बोहे का बसवा भेद जिसमें १३ गुह और २२ तपु होते हैं ।

जैसे—राम नाम मनि दीप घर, जीह देहरी द्वार । तुलसी भीतर बाहिरहु जी चाहसि उँजियार ।—तुलसी ।

गय^२—संज्ञा पु० [हि०] गजेन्द्र । श्रेष्ठ हाथी । उ०—कूपति चलि मद मत्त गयद ज्यों मलकत बाह दुराह ।—नंद० प्र०, पृ० ३८६ ।

गय^३—संज्ञा पु० [सं०] १. घर । मकान । २. अंतरिक्ष । आकाश । ३. घन । ४. प्राण । ५. रामायण के अनुसार एक बानर का नाम जो रामचंद्र की सेना का एक सेनापति था । ६. महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम जिनकी कथा द्रोण पर्व में है । ७. पुत्र । अपत्य । ८. एक असुर का नाम । ९. गया नामक तीर्थ ।

गय^४—संज्ञा पु० [सं० गज, प्रा० गय] हाथी । उ०—सुरगण सहित इंद्र ब्रज आवत । धवल बरन ऐरावत देख्यो उत्तरि गगन ते बरनि बँसावत । अमरा मिव रवि शशि चतुरानन हय गय बसह हंस भृग जावत ।—सूर (शब्द०) ।

गय^५—संज्ञा स्त्री [सं० गति, प्रा० गय] दे० 'गति' । उ०—लौवी काँब चटक्कड़ा गय लंबा बड़ जाल ।—ढोला०, दू० ४१० ।

गयगैनि^१—वि० स्त्री [सं० गजगामिनी] दे० 'गजगामिनी' । उ०—मलयज घसि घनसार में खौरि किए गयगैनि ।—स० सतक, पृ० २५० ।

गयण^१—संज्ञा पु० [सं० गगन, प्रा० गयण] गगन । आकाश । उ०—कूभावत आनी जुध कोडे, उठियो गयण भुजा बँड मोडे ।—रा० रू०, पृ० २५२ ।

गयनाल^१—संज्ञा स्त्री [हि० गय (= गज) + नाल = नली] एक प्रकार की तोप जिसे हाथी खींचते हैं । गजनाल ।

गयल^१—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'गैल' ।

गयबली^१—संज्ञा पु० [दश०] मझोले कद के एक पेड़ का नाम ।

विशेष—यह अवध, अजमेर, गोरखपुर और मध्यप्रदेश में होता है । इसका फल लोग खाते हैं और छाल चमड़ा सिझाने के काम में लाते हैं । इसकी लकड़ी मजबूत होती है और खेती के 'संगहे' और गाड़ी बनाने के काम में आती है ।

गयवा^१—संज्ञा स्त्री [दश०] एक प्रकार की मछली जिसे मोहेली भी कहते हैं ।

गयशिर^१—संज्ञा पु० [सं०] १. अंतरिक्ष । आकाश । २. गया के पास का एक पर्वत जिसके विषय में पुराणों का कथन है कि यह गय नामक असुर के सिर पर है । ३. गया तीर्थ ।

गया^१—संज्ञा पु० [सं०] बिहार या मगध देश का एक विशेष पुण्यस्थान जिसका उल्लेख महाभारत और वाल्मीकीय रामायण से लेकर पुराणों तक में मिलता है ।

विशेष—यह एक प्राचीन तीर्थ स्थान और यज्ञस्थल था । पुराणों में इसे राजा गय की राजधानी लिखा है, जहाँ गयशिर पर्वत पर उन्होंने एक बृहत् यज्ञ किया था और ब्रह्मसर नामक तालाब बनवाया था । महात्मा बुद्धदेव के समय में भी गयशिर प्रधान यज्ञस्थल था । राजगृह से आकर वे पहले यहीं पर ठहरे थे और किसी यज्ञ के यजमान के प्रतिष्ठा हुए थे । फिर वे यहीं से थोड़ी दूर निरंजना नदी के

किनारे उखेला गाँव में तप करने लगे गए थे। इस स्थान को आजकल बोधगया कहते हैं। यहाँ बहुत सी छोटी छोटी पहाड़ियाँ हैं। यह तीर्थ श्राद्ध और पिंडदान आदि करने के लिये बहुत प्रसिद्ध है; और हिंदुओं का विश्वास है कि बिना वहाँ जाकर पिंडदान आदि किए पितरों का मोक्ष नहीं होना। कुछ पुराणों में इसे गम नामक असुर द्वारा निर्मित या उसके शरीर पर बसी हुई कहा गया है।

गया^२—संज्ञा स्त्री० [सं० गया (तीर्थ)] गया में होनेवाली पिंडोदक आदि क्रियाएँ।

मुहा०—गया करना = गया में जाकर पिंडदान आदि करना।
जंग—बहु वाप की गया करने गए हैं। गया बैठाना = गया में पितरों का श्राद्ध करके स्थापित करने की परंपरा।

गया^३—क्रि० प्र० [सं० गम्] 'जाना' क्रिया का भूतकालिक रूप। प्रस्थानित हुआ।

मुहा०—गया गुजरा या गया बीता = बुरी दशा को पहुँचा हुआ। नष्ट। निकट।

गयापुर—संज्ञा पुं० [सं० दे० 'गया']।

गयारी—संज्ञा स्त्री० [दे०] किसी कारनकार की वह जोत जिसे वह लाचारिम छोड़कर मर गया हो।

गयाल^१—संज्ञा स्त्री० [दे०] वह जायदाद जिनका कोई उत्तराधिकारी या दावेदार न हो। गलन।

गयाल^२—संज्ञा पुं० [सं०] एक जानवर का नाम।

विशेष—यह भ्रामा में मिलता है। वहाँ इसका मास खाया जाता है और मादा का दूध पीते हैं।

गयावाल^१—संज्ञा पुं० [हि० गया+वाल] गया तीर्थ का पंढा।

गयावाल^२—वि० १. गया से संबंध रखनेवाला। २. गया में होने या रहनेवाला।

गरंड—संज्ञा पुं० [सं० गरण्ड = मंडलाकार रेखा] चक्की के चारों ओर बना हुआ मिट्टी का भेरा जिसमें आटा गिरता है।

गरंथ^१—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ] दे० 'ग्रंथ'। उ०—कहा होई जोगी भए श्री पुनि पड़े गरंथ।—चित्रा० पृ० ४८।

गरंऊ^१—संज्ञा पुं० [दे०] आटा गिरने के लिये बना हुआ चक्की के चारों ओर का भेरा। गरठ।

गर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का बहुत कड़ुवा और मादक रस जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था। २. एक रोग जिसमें विषधी बंध जाती है और मूर्च्छा आती है। ३. रोग। बीमारी। ४. विष। जहर। ५. बत्सनाभ। बखनाम। ६. ज्योतिष में ग्यारह कर्णों में से पाँचवाँ कर्ण। ६. निगलना। घोंटना (को०)।

गर^२—संज्ञा पुं० [हि० गल] गला। गरदन। उ०—होती जो अजान तो न जानती इतीक बिधा मेरे जिय जान तेरो जानिबो मेरे गरयो।—देव (शब्द०)।

गर^३—प्रत्यय [क्रा०, ने०] (किसी काम को) बनाने या करनेवाला। इसका प्रयोग केवल समस्त पदों के अंत में होता है। जैसे,—सोबागर, कारीगर, बाजीगर, कलिंगर, कुंदीगर आदि।

गर^४—प्रत्यय [क्रा० अगर् का संलित रूप] यदि। जो। अगर्।

गरई^१—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मछली।

गरक^१—वि० [प्र० गर्क] १. दूबा हुआ। निमग्न। २. विलुप्त। नष्ट। बरबाद। तबाह। ३. (किसी कार्य आदि में) लीन। मग्न। उ०—शुभदेव बोलें नहीं रहे ब्रह्ममें होइ, गरक भए निज ज्ञान में द्वैत भाव नाह कोइ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७८६।

गरक^२—वि० [दे०] सघन। गंभीर। गहरा। उ०—गरक घटा उमड़ी गरज, हरष सिखंडी होय।—रघु० क०, पृ० ६३।

गरकाब^१—संज्ञा पुं० [प्र० गरकाब] डूबने का भाव। डूबाव।

गरकाब^२—वि० १. निमग्न। दूबा हुआ। २. बहुत अधिक लीन।

गरकी^१—संज्ञा स्त्री० [प्र० गरक + क्रा० ई (प्रत्य०)] १. डूबने की क्रिया या भाव। डूबना।

मुहा०—गरकी देना = कष्ट देना। दुःख देना।

२. पानी का इतना अधिक बरसना या बाढ़ आना कि जिससे फसल आदि डूबकर नष्ट हो जाय। बूड़ा। प्रतिवृष्टि।

क्रि० प्र०—लगना।

३. वह भूमि जो पानी के नीचे हो। ४. नीची भूमि जहाँ पानी रुकता हो। खलार। ५. लंगोटी। कोपीन।

गरकी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] चरखी। घिरनी। गराड़ी।

गरक^३—वि० [हि०] दे० 'गरक'। उ०—छत्र खसे धरनी वसै तीनो लोक गरक।—सतनामी०, पृ० १३६।

गरगज^१—संज्ञा पुं० [हि० गरु + गज] १. किले की दीवारों पर बना हुआ बुज, जिसपर तोपें रहती हैं। उ०—गरगज बाँधि कमरान धरी। बज्ज अगिन मुल दारु भरी।—जायसी (शब्द०)। २. वह ऊँचा कृत्रिम ढूह या टीला जिसपर युद्ध की सामग्री रखी जाती है और जहाँ से शत्रु की सेना का पता चलाया जाता है।

क्रि० प्र०—बाँधना।

३. नाव के ऊपर की तल्लों से बनी हुई छत। ४. वह तस्ता जिसपर फाँसी देने के समय अपराधी को खड़ा करके उसके गले में फंदा लगाते हैं। टिकड़ी।

गरगज^२—वि० बहुत बड़ा। विशाल। जैसे,—गरगज घोड़ा, गरगज जवान।

गरगरा—संज्ञा पुं० [अनु०] गराड़ी। घिरनी। चरखी।—(लण०)।

गरगवाड़—संज्ञा पुं० [दे०] १. नर गोरैया। चिड़ा। २. एक प्रकार की घास।

विशेष—यह धान की फसल को बढ़ने नहीं देती। इसे केवल भैंस खाती हैं।

गरगाब^२—वि० [प्र० गरकाब] दे० 'गरकाब'।

गरघन—वि० [सं०] १. विष को नष्ट करनेवाला। विषनाशक। २. स्वास्थ्यकर (को०)।

गरज^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गरज] बहुत गंभीर और सुमुख शब्द। जैसे, बादल की गरज, सिंह की गरज, वीरों की गरज आदि।

गरज^१—संज्ञा स्त्री० [ध० गरज] १. धाराय । प्रयोजन । मतलब ।
उ०—अपनी गरजनु बोलियतु कहां निहोगे तोहि । तू प्यारी
भो जीय कौ, भो ज्यो प्यारी मोहि ।—बिहारी २०, दो० ४०६ ।

मुहा०—गरज गाँठना=मतलब सीधा करना । प्रयोजन ।
निकालना । काम सिद्ध करना ।

२. आवश्यकता । जरूरत ।

क्रि० प्र०—रखना ।—रहना ।—निकालना ।

३. चाह । इच्छा ।

यौ०—गरजमंद ।

क्रि० प्र०—रखना ।—रहना ।—होना ।

मुहा०—गरज का बाबला=अपनी गरज के लिये सब कुछ करने-
वाला । जो अपनी लालसा पूरी करने के लिये भला बुरा सब
कुछ करने को तैयार हो जाय । जो अपना मतलब पूरा करने
के लिये हानि भी सह ले ।

गरज^२—क्रि० वि० १ निदान । आखिरकार । अंततोगत्वा । २.
वस्तु । मला । अच्छा । खैर ।

विशेष—यह संयोजक अव्यय का भाव लिए रहता है ।

मुहा०—गरज कि=मतलब यह कि । तात्पर्य यह कि । अर्थात् ।
यानी ।

गरजन^३—संज्ञा पुं० [सं० गर्जन] १. गंभीर शब्द । गरज । कड़क ।
२. गरजने का भाव । ३. गरजने की क्रिया ।

गरजना^४—क्रि० प्र० [सं० गर्जन] १. बहुत गंभीर और तुमुल शब्द
करना । जैसे,—बादल का गरजना, शेर का गरजना, वीरों
का गरजना । उ०—(क) घन घमंड नभ गरजत घोरा ।
प्रिया हीन डरपत मन मोरा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) दस
दस सर सब मारेसि, परे भूमि कपि बीर । सिहनाद करि
गरजा, मेघनाद बलबीर ।—तुलसी (शब्द०) । २. चटकना ।
तड़कना । जैसे,—मोती का गरजना, या गरजा हुआ मोती ।

गरजना^५—क्रि० वि० [हि० गरजना] गरजनेवाला । जोर से बोलने-
वाला । उ०—राजपंखि पेला गरजना ।—जायसी (शब्द०) ।

गरजमंद—वि० [ध० गरज + फ्रा० मंद] [स्त्री० गरजमंदी] जिसे
आवश्यकता हो । जरूरतवाला । ३. इच्छुक । चाहनेवाला ।

गरजी—वि० [ध० गरज + फ्रा० ई (प्रत्य०)] १. गरजमंद । गरज-
वाला । मतलब रखनेवाला । २. चाहनेवाला । इच्छा करने-
वाला । चाहक । उ०—बजराम कुमार बिना सुनु भृंग अनंग
भयी जिय को गरजी ।—तुलसी (शब्द०) ।

गरजुआ^६—संज्ञा पुं० [हि० गरजना] एक एकार की लुमी ।

विशेष—यह गोल और सफेद रंग की होती है और बरसात में
पहला पानी पड़ने पर प्रायः साखू आदि के पेड़ों के पासपास
या मैदानों में भूमि से निकल आती है । इसके अंदर डंठी और
ऊपर छत्ता नहीं होता, केवल गूदा ही गूदा होता है । इसकी
तरकारी खाने में स्वादिष्ट होती है । लोगों का विश्वास है कि
यह बादल के गरजने से पृथ्वी से निकलता है । सफरा,
गगनचूल आदि इसी के भेद हैं ।

गरजुआ^७—वि० [हि०] गरजमंद । जरूरतवाला ।

गरजू^८—वि० [हि०] दे० 'गरजी' ।

गरट्ट^९—संज्ञा पुं० [पुं० ग्रन्थ, पा० गंठ, हि० गट्ट] १. समूह । भुंड ।
उ०—(क) गजन गरट्ट दे के वाजिन के ठट्ट दे के ग्राम धाम
दे के प्रियघंड सतकारे है ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) ठेवर
हरट्ट साजि गैबर गरट्ट सम पैदर के ठट्ट फोज जुरी तुरकाने
की ।—भूषण (शब्द०) । २. बहुत घना । सघन । उ०—
आब मली ऊगो अठे गहरो छाँह गरट्ट ।—बाँकी० धं०,
भा० १, पृ० ४६ ।

गरड^{१०}—संज्ञा पुं० [मं० गरुड] दे० 'गरुड' । उ०—ज्यूँ ज्यूँ भुयंगम
आवै जाइ सुरही घर नहीं गरड रहाइ ।—गोरख०, पृ० ६३ ।

गरडा^{११}—संज्ञा पुं० [दे०] १. एक प्रकार का मोटा चावल । उ०—
दुबइ अहिवाजं घणी हो नीबात । भैस को दही घर गरडा की
भात ।—बी० रासो, पृ० ६३ । २. एक प्रकार का मटमैला
रंग । उ०—अबलख सु गरडा रंग, लखी जु प्रति ही उभंग ।
—ह० रासो, पृ० १२५ ।

गरथ^{१२}—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गथ' । उ०—गरथ न बांधे गारुडी
नहि नारी सो नेह ।—दादू०, ३०४ ।

गरव^{१३}—वि० [सं०] १. विष देनेवाला । विषप्रद । २. अस्वास्थ्यकर (कौ०) ।

गरव^{१४}—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा ।

गरव^{१५}—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] दे० 'गर्द' ।

गरदन—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. थड़ और सिर को जोड़नेवाला अंग ।
ग्रीवा ।

मुहा०—गरदन उठाना=दिरोध करना । सिर उठाना । गर्दन
उठाना=सिर काटना । मार डालना । गरदन ऐँठना=दे०
'गरदन मरोड़ना' । गर्दन ऐँठी रहना=घमंड में रहना या
नाराज रहना । गरदन काटना=(१) थड़ से सिर अलग
करना । मार डालना । (२) बुराई करना । हानि पहुँचाना ।
गरदन का डोरा=गले की वे नसें जो सिर के हिलाने या
बात करने के समय हिलती हुई दिखाई पड़ती हैं । गरदन का
बोझ=कर्तव्य या उत्तरदायित्व संबंधी भार । गरदन झुकना=
(१) नम्र, आज्ञाकारी या अधीन होना । (२) लज्जित
होना । शरमाना । (३) बेहोश होना । (४) मरना । गरदन
झुकाना=(१) नम्रता, आज्ञाकारिता या अधीनता प्रकाशित
करना । (२) लज्जित होना । झंपना । गरदन डलना या
डलकना=मरना । आसन्न मरण होना । गरदन न उठाना=
(१) सब बातों को चुपचाप सुन या सह लेना । (२) लज्जित
होना । शरमिदा होना । (३) बीमारी के कारण पड़े रहना ।
जैसे,—जबसे यह लड़का बुखार में पड़ा है, तबसे इसने
गरदन नहीं उठाई । गरदन आपना=(१) कहीं से निकाल
बाहर करने के लिये किसी की गरदन पकड़ना । गरदनियाँ
देना । (२) अपमान करना । बेइज्जती करना । गरदन
पकड़कर निकालना=अपमान करना । बेइज्जती करना ।
गरदन पर=ऊपर । जिम्मे । जैसे,—इसका पाप तुम्हारी
गरदन पर है । गरदन पर खून सेना=अपने ऊपर हत्या लेना ।
हत्या का अपराधी होना । (अपनी) गरदन पर जुवा रखना=
किसी भारी काम का बोझ लेना । किसी भारी काम में तत्पर

होना । (दूसरे की) गरदन पर बुझा रखना = मारी काम सुपुर्द करना । गरदन पर बोझ होना = (१) खलना । बुरा लगना । फटकर प्रतीत होना । (२) भार होना । सिर पड़ना । गरदन पर सवार होना = 'मिर पर सवार होना' । गरदन फेंकना = (१) अधिकार में आना । वश में होना । काबू में होना । (२) जोखी में पड़ना । गरदन मरोड़ना = (१) गला दबाना । मार डालना । (२) पीड़ित करना । छुट पड़ना । गरदन मारना = सिर काटना । मार डालना । गरदन में हाथ बेना या डालना = (१) अपमान करना । बेइज्जती करना । (२) कत्ती से निकाल बाहर करने के लिये गरदन पकड़ना । गरदनियाँ देना । गरदन हिलने लगना = बहुत वृद्ध होना ।

२. वह लंबी लकड़ी जो जुलाहों की लपेट के दोनों सिरो पर आड़ी साली जाती है । साल । ३. बरतन आदि का ऊपरी पतला भाग ।

घो०—गरदनजनी—मार डालना । कत्ल करना । गरदनबंध = गले में पहनने का एक प्रकार का आभूषण जिसे गुलबंद कहते हैं ।

गरदन धुमाव—संज्ञा पुं० [हि० गरदन + धुमाना] कुश्ती का एक पंच विशेष—इसमें जुलाही अपने जोड़ का दाहिना या बायाँ हाथ पकड़कर अपनी गरदन चढ़ाना और उसे सामने की ओर पटक देता है ।

गरदन तोड़—संज्ञा पुं० [हि० गरदन + तोड़ना] कुश्ती का एक दांव । विशेष—इसमें जोड़ की गरदन पर दोनों हाथों की उंगलियों को गाँठकर ऐसा झटका देते हैं कि वह भुंक जाता है और कुछ अधिक जोर करने पर बेकाम होकर गिर जाता है ।

घो०—गरदनतोड़ बुझार—एक प्रकार का साधारण ज्वर ।

गरदन बाँध—संज्ञा पुं० [हि० गरदन + बाँधना] कुश्ती का एक गेज । विशेष—इसमें जोड़ की गरदन में दोनों हाथ उसकी बगल में से ले जाकर अंदर उसकी छाती पर बाँधते और उसके सिर को बगल में दबाकर गेज के झटके से गिरा देते हैं ।

गरदना—संज्ञा पुं० [हि० गरदन] १. मोटी गरदन । गरदन । २. वह धील या झटका जो गरदन पर लगे ।

क्रि० प्र०—जड़ना । देना । लगाना ।

मुह्ता०—गरदन सहो या रसीद करता गरदन पर धील लगना । ३. गरदन पर का मास । (कसाई) ।

गरदनियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० गरदन + इयाँ (प्रत्य०)] (किसी को किसी स्थान से) गरदन पकड़कर या गरदन में हाथ डालकर निकालने की क्रिया । अर्द्धचंद्र ।

क्रि० प्र०—देना । खाना । मिलना ।

गरदनी—संज्ञा स्त्री० [हि० गरदन + ई (प्रत्य०)] १. अंग्रे या कुरते आदि का गला । गेबान । २. एक आभूषण जो गले में पहना जाता है । हंसुली । ३. अर्द्धचंद्र । गरदनियाँ । ४. घरसा जो पहलवान एक दूसरे की गरदन पर लगाते हैं । रदा । कुवा । ५. वह कपड़ा जो घोड़े की गरदन से बाँधा और पीठ पर डाला जाता है । ६. कारनिस । कंगना ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

७. कुश्ती का एक पंच ।

गरदर्प—संज्ञा पुं० [सं०] सर्प । साँप । मुजंग ।—घनेक (शब्द०) ।

गरदा—संज्ञा पुं० [क्रा० गर्द] धूल । गुबार । मिट्टी । खाक । गर्द । क्रि० प्र०—उड़ना । उड़ाना । फेंकना । डालना ।

गरदान^१—वि० [क्रा०] घूम फिरकर एक ही स्थान पर घानेवाला ।

गरदान^२—संज्ञा पुं० वह कवूतर जो घूम फिरकर सदा अपने स्थान पर आता हो ।

गरदान^३—संज्ञा स्त्री० १. व्याकरण में कारकों या लकारों की भाव्यत पुनरावृत्ति । २. शब्दों की रूपसाधना । ३. कुरान की भाव्यति या उद्धरण ।

गरदानना—क्रि० सं० [क्रा० गरदान] १. शब्दों का रूप साधना । २. बार बार कहना । उद्धरण करना । ३. गिनना । समझना मानना । जैसे,—वे अपने प्रांगे किसी को कुछ नहीं गरदानते ।

संयो० क्रि०—डालना । देना । लेना ।

गरदिशव—संज्ञा स्त्री० [क्रा० गर्दिश] दे० 'गर्दिश' ।

गरदुआ—संज्ञा पुं० [हि० गरदन] एक प्रकार का ज्वर जो वर्षा के आरंभ में बहुत अधिक भीगने के कारण पशुओं को हो जाता है ।

विशेष—इसमें उसके सब अंग जकड़ जाते हैं और उसके गले में घरघराहट होने लगती है । इसे कहीं कहीं गरदुहा, घेरवा या घुरका भी कहते हैं ।

गरधरन(५)—संज्ञा पुं० [सं० गर + धृ > धरण = रखनेवाला] विष को धारण करनेवाले, शिव । महादेव ।

गरध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] अभ्रक ।

गरना(५)—क्रि० प्र० [हि० गलना] १. दे० 'गलना' । उ०—इस नीर महि गरि जाइ लवनं एकमेंकहि जानिए ।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० ५५ । २. दे० 'गड़ना' । उ०—उहाँ ज्वाल जरि जात, दया ग्लानि गरे गात, सूखे सकृचात सब कहत पुकार है ।—तुलसी (शब्द०) ।

गरना^१—क्रि० प्र० [हि० गारना अथवा सं० √ गृ > गर] १. गारा जाना । निचोड़ा जाना । २. किसी चीज में से किसी पदार्थ का बूँद बूँद होकर गिरना । निचुड़ना । टपकना । उ०—चुंबक लोहड़ा झौटा खोवा । भा हलुआ धिउ गरत निचोवा ।—जायसी (शब्द०) ।

गरनाल—संज्ञा स्त्री० [हि० गर + नली] एक बहुत चौड़े मुँह की तोप जिसमें आदमी चला जा सकता है । घननाल । घननाद ।

गरप्रिय—संज्ञा पुं० [गं०] महादेव । शिव ।

गरब^१—संज्ञा पुं० [सं० गर्व] हाथी का मद । उ०—गरब गर्वदनह गगन पसीजा । रहि चुबै धरती सब भीजा ।—जायसी (शब्द०) ।

गरब^२(५)—संज्ञा पुं० [सं० गर्व] दे० 'गर्व' ।

दो०—गरबगहेला । गरबगहेली । गरबप्रहारी = गर्व का नाश करनेवाले । उ०—गरबीलन के गरबनि ठाहै । गरबप्रहारी बिरद निबाहै ।—लाल (शब्द०) ।

गरबई(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्व हि० ई(प्रत्य०)] गर्व या अभिमान का भाव । उ०—अली गई अब गरबई इकताई मुकुताई । जली गई ही अमलई जो पो रई दिलाई ।—शु० सत० (शब्द०) ।

गरबगहेला—वि० [हि० गरब+गहेला = ग्रहण करनेवाला] [वि० बी० गरब गहेली] जिसने गर्ब धारण किया हो। गर्वीला।
उ०—(क) तू गज नाभिनि गरबगहेली। अब कस घास छाड़ू तू बेली।—जायसी (शब्द०)। (ख) जानत गरबगहेली सबे छपीं मन लाजि।—जायसी ग्रं०, पृ० १३३।

गरबना—क्रि० प्र० [सं० गर्ब से नायिकधातु] गर्ब करना। अभिमान करना। शेखी करना। उ०—इहि देही मोती मुगध तू नव गरबि निसीक। जिहि पहिरे जग दग असति लसति हंसति सी नाक।—बिहारी (शब्द०)।

गरबहियाँ—संज्ञा बी० [हि०] दे० 'गलबोही'। उ०—बैठी जदपि बिमाननि महियाँ। अपने पतिन सों दे गरबहियाँ।—मंद० प्र०, पृ० २६५।

गरबा—संज्ञा पु० [देश०] १. एक प्रकार का गीत जो प्रायः गुजराती स्त्रियाँ गाती हैं। २. एक प्रकार का नृत्य जो रंगीन और छेददार घड़े के अंदर दिया रखकर इसके चारों ओर गोल घेरे में किया जाता है।

गरबाना—क्रि० प्र० [हि० गरबना का प्रे० रूप] चमंड में आना। अभिमान करना। शेखी करना। उ०—जा तन देखि मन में गरबाना। मिलि गया माटी तजि अभिमाना।—संतबानी०, भा० २, पृ० ६२।

गरबित—वि० [हि० गरब + इत (प्रत्य०)] दे० 'गवित'। उ०—तिनसों मिलि डोलै करै कलोलै गरबित बोलै वाम जहाँ।—हम्मीर०, पृ० ८।

गरबीजना—क्रि० प्र० [हि० गरब] गरब युक्त होना। गरबाना। उ०—तौताँ तणकाराह, गाणाँ क्यों गरबीजिया।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ८२।

गरबीला—वि० [हि० गरब + ईला प्रत्य०] जिसे गर्व हो। चमंडी। अभिमानी। उ०—गरबीलन के गरबनि डहि। गरबग्रहारी विरद निबाहे।—लाल (शब्द०)।

गरभ—संज्ञा पु० [सं०] १. दे० 'गर्भ'। २. भीतर। अंदर। गर्भ। उ०—समी गरभ में अनल ज्यों त्यों तेरी धिय संत।—शकुंतला, पृ० ६७।

गरभे—संज्ञा पु० [सं० गर्व हि० गरब, गरभ] दे० 'गर्व'।

गरभदान—संज्ञा पु० [सं० गर्भाधान] गर्भाधान के लिये ऋतुप्रदान।
गरभवास—संज्ञा पु० [सं० गर्भवास] गर्भ के अंदर रहने की स्थिति। उ०—गरभवास प्रति त्रास, अधोमुख, तहाँ न मेरी सुधि बिसरी।—सूर०, १। ११६।

गरमाना—क्रि० प्र० [हि० गर्भ से नायिकधातु] १. गर्भिणी होना। गर्भ से होना। २. धान, गेहूँ आदि के पीछों में बाल लगाना।

गरभी—वि० [सं० गर्भ] अभिमानी। चमंडी।

गरभी—वि० [सं० गरभ+हि० ई (प्रत्य०)] गरभवास। गर्भस्थ। उ०—गरभी की यातना सुन ले रे माई नव मास बंधन डारे लू।—दक्खिनी०, पृ० १५।

गरम—वि० [फ़ा० गर्म, मिलाओ सं० गर्म] [क्रि० गरमाना, संज्ञा

गरमी] १. जिसके छूने से जलन मालूम हो। जलता हुआ। तप्त। तत्ता। उष्ण।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—गरमागरम=(१) तत्ता। उष्ण। (२) ताजा पका हुआ।

विशेष—इसका प्रयोग साधारणतः खाने पीने की वस्तुओं के लिये होता है। जैसे,—गरमागरम पूरी, हलुवा आदि; पर धलंकार से—गरमागरम सबर (ताजी सबर), गरमागरम बहस या बात (=आवेश या जोश भरी बात, आदि) भी बोलते हैं।

मुहा०—गरम चोट=तुरंत की लगी चोट। ताजा धाव। जैसे—गरम चोट मालूम नहीं होती। गरम मामला=हाल की बात। ऐसी घटना जिसका प्रभाव लोगों पर बना हो। जैसे,—अभी मामला गरम है; जो करना हो सो कर डालो। गरम पानी=वीर्य। शुक्र।—(बाजारी)। गरम सब उठाना, देखना या सहना=संसार का ऊँचा नीचा देखना। भले बुरे दिन काटना।

२. तीक्ष्ण। उग्र। खरा।

मुहा०—भिजाज गरम होना=क्रोध आना। गरम होना=आवेश में आना। क्रुद्ध होना। जैसे,—तुम तो जरा सी बात में गरम हो जाते हो।

३. तेज। प्रबल। प्रचंड। जोर शोर का। जैसे,—गरम सबर।

मुहा०—किसी चीज (प्रायः भाव) का बाजार गरम होना=किसी बात की अधिकता होना। जैसे,—प्राजकल लूट का बाजार गरम है।

४. जिसका गुण उष्ण हो। जिसके व्यवहार या सेवन से गरमी बढ़े। जैसे,—लहसुन बहुत गरम होता है।

यौ०—गरम कपड़ा=शरीर गरम रखनेवाला कपड़ा। जाड़े का कपड़ा। ऊनी कपड़ा। गरम मसाला=सुगंध की वस्तु जो भोजन को चरपरा, पाचक और सुस्वादु करने के लिये उसमें पड़ती है। जैसे,—धनियाँ, लौंग, बड़ी इलायची, जीरा, मिर्च इत्यादि।

५. उत्साहपूर्ण। जोश से भरा। आवेशपूर्ण। उ०—परम धरमधर धरम करम कर सुरस गरम नर।—गोपाल (शब्द०)।

गरमाई—संज्ञा बी० [फ़ा० गरम] गरमी।—(पंजाब)।

गरमागरमी—संज्ञा [हि० गरमा+गरम] मुस्तंदा। जोश। सन्नद्धता। उत्साह। जैसे,—पहले तो बड़ी गरमागरमी थी; अब क्यों ठंडे पड़ गए।

गरमाना—क्रि० प्र० [हि० गरम से नायिकधातु] १. गरम पड़ना। उष्ण होना। जैसे,—अभी तो कपिते थे, ओढ़ने से जरा गरमाए हैं।

मुहा०—टेंट या हाथ गरमाना=टेंट या हाथ में रुपया आना। पास में रुपया पैसा आना।

२. उमंग पर आना। मस्ताना। मद में भरना। जैसे,—घोड़ी गरमाई है। ३. आवेश में आना। क्रोध करना। नाराज होना। आगबबूला होना। झूलाना। जैसे,—तुम तो जरा

सी बात में गरमा जाते हो। ४. कुछ देर लगातार बीड़ने या परिष्कम करने पर थोड़े खादि पशुओं का तेजी पर घाना।

विशेष—कभी कभी जब थोड़े अधिक गरमा जाते हैं, तब बल में नहीं रहते।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

गरमाना^२—क्रि० स० गरम करना। तपाना। झोटाना। जैसे,—बूध गरमाना, बूँहा गरमाना, पानी गरमाना आदि।

संयो० क्रि०—बालना।—देना।

मुहा०—टेंट गरमाना = (१) हाथ में रुपया देना। (२) कुछ इनाम या रिशवत देना।

गरमाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० गरम + आहट (प्रत्य०)] गरमी। उष्णता।

गरमी—संज्ञा संज्ञा [फा०] १. उष्णता। ताप। जलन। जैसे,—घाग की गरमी।

क्रि० प्र०—करना।—पडना।—होना।

मुहा०—गरमी करना = प्रकृति में उष्णता लाना। पेट या कलेजे में ताप उत्पन्न करना। जैसे,—कुनैन बहुत गरमी करता है। गरमी निकालना = (१) उष्णता दूर करना। (२) प्रसंग करना।

२. तेजी। उग्रता। प्रचंडता।

मुहा०—गरमी निकालना = गर्ब दूर करना। जैसे,—अभी हम तुम्हारी सारी गरमी निकाल देते हैं।

३. आवेग। क्रोध। गुस्सा। जैसे,—पहले तो बड़ी गरमी दिखाते थे; अब मामले क्यों नरी आते। ४. उमंग। जोश। ५. ग्रीष्म ऋतु। बड़ी धूप के दिन। (साधारणतः फागुन से जेठ तक गरमी के महीने समझे जाते हैं।)

क्रि० प्र०—आना।—जाना।

मुहा०—गरमियों में = गरमी के दिनों में। ग्रीष्मकाल में। ६. हाथी घोड़ों का एक रोग जिसमें उन्हें पेशाब के साथ खून मिरता है। ७. एक रोग जो प्रायः दुष्ट मैथुन से उत्पन्न होता है और खून का रोग माना जाता है। आतंक। उपद्रव।

विशेष—हम रोग में गुम इटिय में एक प्रकार का लेप निकलता है, जिसके लग जाने से यह रोग एक से दूसरे को हो जाता है। पहले छोटी छोटी पुरियाँ होती हैं; फिर धीरे धीरे चमड़े पर चट्टे पड़ने लगते हैं; यहाँ तक कि सारे शरीर में घाव हो जाते हैं, फाँसे पड़ जाते हैं, रग, पट्टे और हड्डियाँ तक सराव हो जाती है। कभी कभी तानु चटक जाता है।

क्रि० प्र०—निकलना।—फूटना।—होना।

गरमोदाना—संज्ञा पुं० [हि० गरमो + दाना] छोटे छोटे लाल दाने जो गरमी में पपीने के कारण शरीर पर निकलते हैं। ग्रंथीरी। ग्रंथीरी। ग्रंथीरी।

गररा^५—संज्ञा पुं० [दे० गर्रा] एक प्रकार का थोड़ा। गर्रा। उ०—हरे कुरग गृह्य बहु भाँती। गरर कोकाह बलाह गु-भाँति।—जायसी (शब्द०)।

गरराना^५—क्रि० प्र० [धनु०] १. भीषण ध्वनि करना। गंभीर ध्वनि करना। गड़गड़ाना। गरजना। उ०—सुनत मेघवर्तक

साजि सैन लें आए।...वहरात गररात हहरात पररात
भहरात माव नाए।—सूर (शब्द०)। २. गुराँता। उ०—
पटक पूँछि गरराइ गुंजरहि बरिह सरोस सेर सिर बाई।—
अकबरी०, पृ० ३१६।

गररो—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक चिड़िया। किलहटी। गलगलिया। सिरौही। उ०—फटकत श्रवन श्रवान द्वारे पर गररी करत लराई। माये पर दँ काक उड़ानों कुशगुन बहुतक पाई।—सूर (शब्द०)।

गरल—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विष। गर। जहर। २. सर्पविष। साँप का जहर। ३. घास का मुट्ठा। घाम की छँटिया। पूसा।

गरलघर—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष धारण करनेवाले, महादेव। २. साँप।

गरलारि—संज्ञा पुं० [सं०] मरकत मणि। पन्ना।

गरली—वि० [सं० गरलिन] विषैला। विषयुक्त [को०]।

गरबा^५—वि० [सं० गुरुक] [वि० स्त्री० गरबी] गरुआ। भारी। महान्।

गरबी^५—वि० स्त्री० [सं० गर्बी] १. विशाल। भारी। बज्जी। उ०—गद भारघो गरबी गदा मस्तक भरि के जाइ। फूटो सिर निसरत भई रुधिर धार अधिकाई।—गोपाल (शब्द०)। २. गंभीर। गुह्यतायुक्त। उ०—गोरी गंगा नीर ज्यूँ मन गरबी, तन अन्ध।—ढोला०, दू० ४५२।

गरवत—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

गरसन^५—क्रि० स० [सं० ग्रसन] दे० 'ग्रसना'।

गरह^५—संज्ञा पुं० [सं० ग्रह] १. ग्रह। २. ग्रहण। बाधा।

मुहा०—गरह कटना = ग्रहण दूर होना। दुःख नष्ट होना। आपत्ति टलना।

गरह^५—वि० दे० 'ग्रह'। उ०—समता दादु कंड हरपाई। हरष बिषाह गरह बहुताई।—तुलसी (शब्द०)।

गरहन^५—संज्ञा पुं० [सं० गर + हन] १. काली तुलसी। २. बबई। ममरी।

गरहन^५—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की मछली।

गरहन^५(^५)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहण] १. चंद्र या सूर्य ग्रहण। २. पकड़ने की क्रिया। धारण। वि० दे० 'ग्रहण'।

गरहर—संज्ञा पुं० [हि० गर = गला + सं० हर, प्रा० हर] वह काठ जो नटखट लोपायों के गले में लटकाया जाता है। कुंदा। ठेंगा। टेकुर।

गरहेंडुवा—संज्ञा पुं० [सं० गवेडुका] गवेडुक। कसेई। कोडिल्ला।

गराँबीज—वि० [सं० ग्रांड या फा० गरी] लंबा तडंगा या मोटा ताजा। उ०—इस रोख जैसे गराँडील बादमी से रानी को इतनी सूक्ष्मता की आशा नहीं थी।—जनानी०, पृ० १७२। २. बहुत बड़ा या भारी।

गराँ—वि० [फा०] दे० 'गिरा'।

मुहा०—गराँ गुजरना = (१) भारी या असह्य होना। (२) अप्रिय या नापसंद होना।

यौ०—गराँकड = प्रतिष्ठित। संमानित। गराँकीमत = बेशकीमत। बहुमूल्य। गराँलातिर = (१) असह्य। अप्रिय। (२) असह्य।

गर्गाचार—वि० [फ्रा०] १. बोझ से लवा हुआ । २. ऋण या उपकार के भार से दबा हुआ ।

गर्गाच—संज्ञा पुं० [हि० गर = गला + आच (प्रत्य०)] एक दोहरी रस्सी जिसके एक सिरे पर मुट्ठी और दूसरे सिरे पर गाँठ होती है । यह पगहे के छोर पर बीचोबीच से लगाई जाती है और बेल, घोड़े आदि के गले में डाली जाती है ।

गरा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली लता । बंदास । गरागरी ।

गरा^२—संज्ञा पुं० [हि० गला] दे० 'गर' या 'गला' ।

गराऊ^१—संज्ञा पुं० [सं० गरुड] पुराना भंडा । (गंहेरियों की बोली) ।

गरागरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली । बंदास । चघर बेल । बंदाली । सोनैया बेल । कर्कोटी । देवताड़ी ।

गराज^१(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्जन] गर्जना । गंभीर शब्द । गरज । उ०—जसवंत जसावत साजबाज ।। चड्ढे किक्क्यान करि करि गरज ।—सूदन (शब्द०) ।

गराज^२—संज्ञा पुं० [अ० गैरेज] १. मोटर कार रखने का स्थान । २. रिक्शा रखने की जगह ।

गराड़ी—संज्ञा स्त्री० [अनु० गड़ गड़ या सं० कुरखली] काठ या लोहे का वह गोल चक्कर जिसके घेरे में रस्सी बैठने के लिये गड्ढा बना रहता है और जिसमें रस्सी डालकर कुएँ से घड़ा निकालते हैं, पंखा खींचते हैं तथा इसी प्रकार के और बहुत से काम करते हैं । घिरनी । चरखी ।

गराड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्ड = चिह्न] रंगड़ आदि से पड़ी हुई गहरी लकीर । गड्ढे के रूप में दूर तक पड़ा हुआ लंबा चिह्न । साँट ।

मुहा०—गराड़ी पटना = गहरा चिह्न होना ।

गराधिका—संज्ञा स्त्री० [गं०] १. लाख का कीड़ा । २. लाख का रंग [गो०] ।

गरान—संज्ञा पुं० [फ्रा० गैनग्रोब] चोरी नाम का वृक्ष जिसकी छाल से रंग निकाला और चमड़ा सिक्काया जाता है ।

गराना^१(पु)—क्रि० सं० [हि० गलाना] दे० 'गलाना' ।

गराना^२—क्रि० सं० [हि० गारना] निचोड़कर दूर करना । निचोड़ना । वहाना । उ०—तब मधवा मनमारि हारि कै बड़े सोंच सों छाया । भयो कृष्ण अवतार भूमि पे भरो गर्ब गरायो (शब्द०) ।

गरानि(पु), गरानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्लानि, पु० हि० गलानि] दे० 'ग्लानि' ।

गरानी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गिरानी] दे० 'गिरानी' ।

गराब—संज्ञा पुं० [देश०] १. तीन मस्तूलोंवाला एक प्रकार का बड़ा जहाज जिसका व्यवहार १४ वीं शताब्दी में बंगाल और उसके आसपास की खाड़ियों में होता था । उ०—रज्जब प्राण पषान जड़ गुरु गराब लिए देव । षट पेखी पिड पलटै प्रथमहि, सृष्टि जु लगी सेव ।—रज्जब०, पृ० ७ । २. साधारण नाव ।

गरामी—वि० [फ्रा०] दे० 'गिरामी' ।

गरारा^१—वि० [सं० गर्व, प्रा०, पु० हि० गरो + आर (प्रत्य०)] गर्वयुक्त । प्रवल । प्रचंड । बलवान । उद्धत । उ०—(क)

कुंडल कीट कवच तनु धारे । बले तीन मर्ह सुमट गरारे ।—गोपाल (शब्द०) । (ख) सुंडन उठाए फिर घाये घने सम बैठे असवार मिले मुदित पतंग संग । गरजे गरारे कजरादे प्रति बीह देह जिनिहि निहारे फिर बीर करि घोर भंग ।—गोपाल (शब्द०) ।

गरारा^२—संज्ञा पुं० [अ० गरारह, गरारह, फ्रा० गरारह] १. कंठ में पानी डालकर गर गर शब्द करके कुल्ली करना ।

क्रि० प्र०—करना ।

२. गरगरा करने की दवा ।

गरारा^३—संज्ञा पुं० [हि० घेरा] १. पायजामे की डीली मोहरी । जैसे,—गरारेदार पाजामा । २. डीली मोहरी का पायजामा । ३. वह पैला जिसमें खेमा भरकर रखा जाता है ।

गरारा^४—संज्ञा पुं० [अनु०] चोपायों का एक रोग जिसमें उनके कंठ से घुरघुर शब्द निकलता है । घुरकवा ।

गरारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गराड़ी' ।

गराबना^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गड़ावन' ।

गराबा^१—संज्ञा पुं० [देश०] कम उपजाऊ भूमि । हलकी जमीन ।

गरास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रास] दे० 'ग्रास' ।

गरासना^१—क्रि० सं० [सं० ग्रास, हि० गरास + ना (प्रत्य०)] दे० 'ग्रासना' । उ०—रेनु रेनि होइ रविहि गरासा ।—जायसी (शब्द०) ।

गरास मोअर—संज्ञा पुं० [अ० ग्रास + मोअर] मैदान की घास बराबर करने की करने की कल ।

गरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारियल की गरी । गरी [को०] ।

गरित^१—वि० [सं०] विषयुक्त । विषेला [को०] ।

गरित^२(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गर्त] दे० 'गर्त' । उ०—सुनि सुबचन गिरि-राज की कहि रिषि कारन खात । पुन एक जच्चं तुमहि गरित सपूरन गात ।—पृ० रा०, १।१७७ ।

गरिमता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गरिमा] भारीपन । भराव । उ०—उरजनि नहिन गरिमता तैसी । बचन चातुरी फुरी न वैसी ।—नंद० ग्रं०, पृ० १५७ ।

गरिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० गरिम्न] १. गुरुत्व । भारीपन । बोझ । २. महिमा । महत्व । गौरव । ३. गर्व । अहंकार । घमंड । ४. आत्मश्लाघा । शेखी । ५. आठ सिद्धियों में से एक सिद्धि जिससे साधक अपना बोझ चाहे जितना भारी कर सकता है ।

गरियर—वि० [हि०] दे० 'गरियार' ।

गरियल^१—वि० [हि०] दे० 'गरियारा' ।

गरियल^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का किल किला पसी जिसका सिर भूरे रंग का होता है ।

गरिया—संज्ञा पुं० [देश०] एकार का पेड़ ।

घिरोष—यह मध्यप्रदेश, मध्यभारत, बरार और मद्रास में होता है । यह पेड़ साधारण ऊँचाई का होता है और शिगिर श्वेतु में इसकी पत्तियाँ झड़ जाती हैं । इसकी लकड़ी दृढ़, कठिन, सुंदर, चमकीली और साफ होती है और प्रति घनफुट पचीस

तीस सेर तक भारी होती है। इससे गाड़ी, तस्वीरों के चौखटे, खेती के सामान तथा मेज, कुर्सी आदि बहुत सी चीजें बनाई जाती हैं। यह पानी में बहुत दिनों तक बनी रहती है और इसपर नक्काशी भी अच्छी होती है। हिंदुस्तान से यह लकड़ी बिलायत की बहुत जाती है और वहाँ आलमारी, कुर्सी, मेज, बूझ का दस्ता आदि बनाने के काम में आती है। इसे बहुष्पी भी कहते हैं।

गरियाना—क्रि० प्र० [हि० 'गारो' से नायिक धातु] दुर्वचन कहना। गानी देना। अपशब्द कहना।

गरियार—वि० [हि० गह्वर = एक जगह रुक जाना] [अन्य रूप, गरि-घर, गरियन, गरियारा, गरियालू] जगह से जल्दी न उठने वाला। मुरत। बोदा। मट्टर। उ०—पेड़े पग चालइ नहीं, होइ रहा गरियार। राम अरुष निबहै नहीं, खड़े धो हुसियार।—दादू (शब्द०)। (ख) कोई भल जम धाव तुलाक। कोई जम चले बैल गरियाक।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—बोपायो के लिये इस शब्द का प्रयोग अधिक होता है।

गरियालू—संज्ञा पु० [हि० करिया से करियालू] एक प्रकार का रंग जो काला नीला होता है।

विशेष—इसमें ऊन रंगा जाता है। इसके बनाने की विधि यह है कि दो सेर नील की बुकनी गंधक के तेजाब में मिलाकर एक मजबूत मटके में रख देते हैं। यह उसमें एक दिन और रात रमी रहती है। ऊन को रंगने के पहले उसे चूने के पानी में डुबाकर कई बार साफ पानी से धोकर धूप में सुखाते हैं। फिर उबलते हुए पानी में थोड़ा सा रंग मटके में से लेकर मिला लेते हैं और ऊन को उसमें डाल देते हैं। यह ऊन उसमें तबतक पड़ा रहता है जबतक उसपर रंग नहीं चढ़ जाता। फिर उसे निकालकर पिटकरी मिले पानी में पछार डालते हैं।

गरियालू—वि० काले नीले रंग का। गरियाले रंग का।

गरिष्ठ—वि० [ग०] अति गुह। अत्यंत भारी। २. अत्यंत आवश्यक। अत्यंत महत्वपूर्ण (को०)। ३. जो पचने में हलका न हो। जो जल्दी न पचे। जिसमें कोष्ठबद्ध हो। कब्ज करनेवाला। ४. गौरवयुक्त। गरिमामंडित।

गरिष्ठ—संज्ञा पु० [ग०] १. एक रागा का नाम। २. एक दानव का नाम। ३. एक तीर्थ का नाम।

गरी—संज्ञा स्त्री० [ग०] देयताड वृक्ष।

गरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गिरी] १. नारियल के फल के अंदर का वह गोला जो छिलके के छोड़ने से निकलता है और मुलायम तथा खान लायक होता है। २. बीज के अंदर की गूदी। गिरी। मीगी।

गरीठ—वि० [ग० गरिष्ठ, प्रा० गरिट्ट] गरिष्ठ। गौरवयुक्त। उ०—प्रावध वधे ऊठिया आकारीठ गरीठ।—रा० रू०, पृ० १०६।

गरीब—वि० [प्र० गरीब] [वि० स्त्री० गरीबिन, गरीबिनी (न०)] संज्ञा गरीबी। १. नम्र। दीन। हीन। उ०—(क) कोटि इंदर बिनासा। मोहि गरीब की केतिक आसा।—मूर (शब्द०)। (ख) देखियत भूप और कैसे उड़गन गरत

गरीब गलानि है। तेज प्रताप बड़न भुँभरिन को जवधि सकोची बानि है।—तुलसी (शब्द०)।

गरीब—गरीबनिवाज। गरीबपरवर।

२. दरिद्र। निर्धन। अकिंचन। कंगाल। जैसे—दे दो, गरीब आदमी का भना हो जायगा।

गरीब—गरीबगुरबा—निधन और कंगाल लोग।

३. विदेशी। परदेशी (को०)। ४. सुमाफिर। सफर करनेवाला।

गरीब—गरीबनादा = वेश्यापुत्र। रंडी या खानगी का लड़का।

गरीब—संज्ञा पु० संगीत में एक प्राधुनिक राग जो मुकाम राग का पुत्र माना जाता है।

गरीबखाना—संज्ञा पु० [प्र० गरीब + फ्रा० खानह] दीन या निर्धन का घर।

विशेष—विनय या नम्र भाव से अपने घर को 'गरीबखाना' कहते हैं। इसके साथ 'अपना' शब्द व्यवहृत होता है।

गरीबनिवाज—वि० [फ्रा० गरीब + निवाज] दीनों पर दया करने-वाला। दुस्त्रियों का दुःख दूर करनेवाला। दयालु। उ०—गई बहोर गरीबनिवाज। मरल सबल साहेब रघुराज।—तुलसी।

गरीबनेवाज—वि० [फ्रा० गरीब + निवाज] दे० 'गरीबनिवाज'। उ०—(क) नाथ गरीबनेवाज है मैं गही न गरीबी। तुलसी प्रभु निज ओर तैं बनि परे सो कीबी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) आजु गरीबनेवाज मही पर तो सो तुही सिवराज बिराजै।—भषण ग्र०, पृ० ७।

गरीबपरवर—वि० [फ्रा० गरीबपरवर] गरीबों को पालनेवाला। दीनप्रतिपालक। दीनों का रक्षक।

गरीबान—संज्ञा पु० [फ्रा०] दे० 'गरीबान'।

गरीबाना—वि० [फ्रा० गरीबानह] गरीबों की तरह। गरीबामऊ।

गरीबामऊ—वि० [हि० गरीब + मय (प्रत्य०)] गरीबों के योग्य। कंगाल के वित्त के अनुकूल। छोटा मोटा। भना बुरा।

गरीबी—संज्ञा स्त्री० [प्र० गरीब + प्रा० ई (प्रत्य०)] १. दीनता। अधीनता। नम्रता। उ०—(क) पुर पाँव धारिहैं उधारिहैं तुलसी से जन जिन जानि कै गरीबी गाढ़ी गही है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कबिरा केवल राम कहू शुद्ध गरीबी लाज। कूर बड़ाई वृद्धि भारी परसी काज।—कबीर (शब्द०)। २. दरिद्रता। निर्धनता। कंगाली। मुहताजी। जैसे—कपड़ा फटा, गरीबी आई।

मुहा०—गरीबी आना = दरिद्रता होना। मुहताजी होना।

गरीयस्—वि० [स० गरीयस्] [वि० स्त्री० गरीयसी] १. बड़ा भारी। गुह। २. महान्। प्रबल। जैसे—हरीच्छा गरीयसी। ३. गौरवान्वित। महत्वपूर्ण।

गरु—वि० [म० गरु] १. भारी। बजनी। २. जिसका स्वभाव गंभीर हो। शात।

गरुअ—वि० [म० गरुअ] १. भारी। बजनी। २. गंभीर। उत्तम। उ०—सुदरि गरुअ तोर विवेक, बिनु परिचये पेसक आँकुर पल्लव भल अनेक।—विद्यापति, पृ० २२६।

गरुअरी—वि० [हि०] भारी। बजनी।

गरुड्या ७१—वि० [सं० गरुड] [वि० श्री० गरुड ७१, गरुड] १. भारी । बजनी । २. गौरवयुक्त । गौरवशाली । उ०—बैठहु पाट छत्र नव केरी । तुम्हरे गरब गरुड मैं चेरी ।—जायसी (शब्द०) ।

गरुड्याई ७१—संज्ञा श्री० [हि०] गुरुता । भारीपन । उ०—हरि हित हरहु चाप गरुड्याई—तुलसी (शब्द०) ।

गरुड्याना—क्रि० अ० [हि० गरुड्या + ना (प्रत्य०)] भारी लगना । बजनी महसूस होना ।

गरुड—संज्ञा पुं० [सं० गरुड] १. विष्णु के वाहन जो पक्षियों के राजा माने जाते हैं ।

विशेष—ये विनता के गर्भ से उत्पन्न कश्यप के पुत्र हैं । इनकी उत्पत्ति के विषय में यह कथा है कि एक बार कश्यप जी ने पुत्रप्राप्ति की इच्छा से यज्ञ का अनुष्ठान किया । उनके यज्ञ के लिये इंद्र, बालखिल्य तथा और और देवता लकड़ी आदि सामग्री इकट्ठी करने लगे । इंद्र ने थोड़ी ही देर में लकड़ी का ढेर लगा दिया और अंगुष्ठ भर के बालखिल्यों को पलाश की एक टहनੀ पसीटते देखकर वह उनकी हँसी करने लगा । इसपर बालखिल्यगण क्रुपित होकर कश्यप का पुत्र दूसरा इंद्र उत्पन्न करने के प्रयत्न में लगे । अंत में कश्यप ने उन्हें समझाकर शांत किया और कहा कि तुम जिसे उत्पन्न करना चाहते हो, वह पक्षियों का इंद्र होगा । अंत में विनता के गर्भ से कश्यप ने अग्नि और सूर्य के समान गरुड और अरुण दो पुत्र उत्पन्न किए । गरुड विष्णु के वाहन हुए और अरुण सूर्य के सारथी । गरुड सर्पों के शत्रु समझे जाते हैं ।

पर्याय—गरुडमान् । तार्क्ष । बंस्तेय । सुपर्ण । नागांतक । पन्नगानान । पन्नगारि । पक्षिराज । विष्णुरथ । तरस्वी । अभूताहरण । शात्मलित्थ । सगेश्वर ।

श्री०—गरुडगामिनी । गरुडासन । गरुडकेतु । गरुडध्वज ।

२. बहुतों के मत से उकाब पक्षी, जो गिड़ की तरह का और बहुत बलवान् होता है ।

विशेष—इसकी चोंच की नोक कुछ मुड़ी होती है और इसके पैर पंजों तक छोटे छोटे पंरों से ढके रहते हैं । यह अपने चंगुल में भेड़ बकरी के बच्चों तक को उठा ले जाता और खाता है । अपने बल के कारण यह पक्षिराज कहा जाता है । पश्चिम की प्राचीन जातियों में रोमक (रोमन) लोग उकाब को जीव (प्रधान देवता इंद्र) का पक्षी मानते थे और उसे मंगल तथा विजय का चिह्न समझते थे । अब भी रूस, आस्ट्रेलिया और जर्मनी आदि देश उकाब का चिह्न ध्वजा आदि पर धारण करते हैं । इन सब बातों से संभव जान पड़ता है कि गरुड उकाब ही का नाम हो ।

३. एक सफेद रंग का बड़ा पक्षी जो पानी के किनारे रहता है ।

विशेष—यह तीन साढ़े तीन फुट ऊँचा होता है और इसकी गरदन सारस की तरह लंबी होती है, जिसके नीचे एक थेली सी लटकती रहती है । यह मछलियाँ, केकड़े आदि पकड़कर खाता है । इसे पेंडवा डेक भी कहते हैं ।

४. सेना की एक प्रकार की व्यूहरचना । गरुडव्यूह ।

विशेष—इसमें अगला भाग नोकदार, मध्य का भाग विस्तृत और पिछला भाग पतला होता है । ।

५. बीस प्रकार के प्रासादों में से एक ।

विशेष—इसमें बीच का भाग चौड़ा तथा अगला और पिछला भाग नुकीला होता है ।

६. चौदहवें कल्प का नाम । ७. जैन मत के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी के सोलहवें अर्हत् का गणधर । ८. श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम । ९. छप्पय छंद का एक भेद । १०. नृत्य में एक प्रकार का स्थानक जिसमें बाएँ पैर को सिकोड़कर दाहिने पैर का घुटना जमीन पर टेकते हैं ।

गरुडकेतु—संज्ञा पुं० [सं० गरुडकेतु] कृष्ण (को०) ।

गरुडगामिनी—संज्ञा पुं० [सं० गरुडगामिनी] १. विष्णु । २. श्रीकृष्ण । उ०—इहाँ श्री काशों कैहीं गरुडगामिनी ।—सूर (शब्द०) ।

गरुडघंटा—संज्ञा पुं० [सं० गरुड + घंटा] ठाकुर जी की पूजा में बजाया जानेवाला वह घंटा जिसके ऊपर गरुड की मूर्ति बनी रहती है ।

गरुडध्वज—संज्ञा पुं० [सं० गरुडध्वज] १. विष्णु । २. एक प्रकार का स्तंभ जिसपर गरुड की आकृति बनी रहती है । ३. गुप्त राजाओं का राजकीय चिह्न (को०) ।

गरुडपक्ष—संज्ञा पुं० [सं० गरुडपक्ष] नृत्य में कुहनी टेढ़ी करके दोनों हाथ कमर पर रखने का भाव ।

गरुडपाश—संज्ञा पुं० [सं० गरुडपाश] एक प्रकार का फंसा या फाँसी । इसे प्राचीन काल में शत्रु को फँसाने और बाँधने के लिये उस पर फँकते थे ।

गरुडपुराण—संज्ञा पुं० [सं० गरुडपुराण] अठारह पुराणों में से एक ।

विशेष—इसमें विशेषकर यमपुर तथा अनेक प्रकार के नरकों का वर्णन है । प्रेत कर्म का विधान भी इसमें है । घर के किसी बड़े बड़े व्यक्ति की मृत्यु के अनंतर लोग इसकी कथा सुनते हैं ।

गरुडप्लुत—संज्ञा पुं० [सं० गरुडप्लुत] नृत्य में एक प्रकार का भाव जिसमें हाथों को लता की तरह और पैरों को बिच्छू की तरह फैलाकर छाती ऊपर की ओर उभारते हैं ।

गरुडभक्त—संज्ञा पुं० [सं० गरुडभक्त] गरुड की उपासना करनेवाला एक संप्रदाय ।

विशेष—भारतवर्ष में ईसा के जन्म के पूर्व से यह संप्रदाय प्रचलित था ।

गरुडयान—संज्ञा पुं० [सं० गरुडयान] १. विष्णु । २. श्रीकृष्ण ।

गरुडरुत—संज्ञा पुं० [सं० गरुडरुत] सोलह पक्षरों का एक वर्ण वृत्त ।

विशेष—इसके प्रत्येक चरण में नगण, जगण, भगण, जगण और तगण तथा अंत में एक गुरु होता है—न, ज, भ, ज, त, ग । जैसे,—नजु भज तै गुरुगाल निशि वासर रे मना । लहसि न सौर झल कहुँ मल कीन्हें घना । हरि हरि के कहे भजत पाप को सह यों । गरुडरुत सुनै भजन सर्प को व्यूह ज्यों ।

गरुडव्यूह—संज्ञा पुं० [सं० गरुडव्यूह] रणस्थल में सेना के जमाव या स्थापन का एक प्रकार ।

विशेष—इसमें सेना का अग्रगण्य भाग नोककार, मध्य भाग अधिक विस्तृत तथा पीछे का भाग पतला होता है।

गरुडांक—संज्ञा पुं० [सं० गरुडाङ्क] विष्णु [को०]।

गरुडांकित—संज्ञा पुं० [सं० गरुडाङ्कित] मरकत मणि। पन्ना [को०]।

गरुडाग्रज—संज्ञा पुं० [सं० गरुडाग्रज] गरुड का ज्येष्ठ भ्राता। सूर्य का सारथी। धरणि [को०]।

गरुडाशम्भ—संज्ञा पुं० [सं०] पन्ना। मरकत मणि [को०]।

गरुड—संज्ञा पुं० [सं०] पक्ष। पंख। पर।

गरुडा (पुं०) —संज्ञा स्त्री० [सं० गरुडा] १. गरुडा। भारोपन। २. गभीरता। बड़ाई। बढप्पन। उ०—कानन की छवि दीह लगे गिरिधरदास, गरुडा अपार जाकी बरतन वेद है।—गोपाल (शब्द०)।

गरुडा (पुं०) —संज्ञा पुं० [सं० गरुड] १. गरुड पक्षी। २. (लाक्ष०) मृत्यु। काल। यम। उ०—डेन पसारी गरुडा आया लिहिस पकरि धरि केसा।—स० दरिया, पृ० १२६।

गरुडा —संज्ञा पुं० [सं० गरुड] दे० 'गरुड'।

गरुडा (पुं०) —वि० [सं० गरुड प्रा० गरुड] भारी बोझवाला। उ०—कोई हरव जब रथ हाँका। कोई गरुड भार तें थाका।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २०६।

गरुडा (पुं०) —वि० [सं० गरुड, प्रा० गरुड] १. भारी बोझवाला। २. श्रेष्ठ। गंभीर। धीर। उ०—बड़े कहावन आप सो गरुडे गोपीनाथ। ती बदिही जो राखिहो। हाथनु नखि मन हाथ।—विहारी (शब्द०)। ३. वजनी। भारी। गुफ्ता से युक्त। उ०—गरुडा होय गुरु होय बैठे हलका डग मग गले।—कबीर श०, पृ० १०३।

गरुडाई (पुं०) —संज्ञा स्त्री० [हि० गरुडा + ई] दे० 'गरुडाई'। उ०—धरिही मैं नर तन अब आई। हरिही गलल भूमि गरुडाई।—विश्राम (शब्द०)।

गरुडहर —संज्ञा पुं० [हि० गरुड + हर (प्रत्य०)] भारी बोझ।

गरुड (पुं०) —वि० [सं० गरुड] भारी। वजनी। बड़ा। उ०—गरुड गमंद न टारे टरही।—(शब्द०)।

गरुड —संज्ञा पुं० [सं० गरुड] घमंड। अभिमान।

गरुड (पुं०) —संज्ञा पुं० [हि०] दे० गरुड-४। उ०—राजो सेन अप्पान व्यूहं गरुडं।—पृ० रा०, १।३२६।

गरुडत (पुं०) —संज्ञा पुं० [सं० गरुड] घमंड। अभिमान। गर्व। अहंकार। उ०—धूरत पर बग भुरि हृदय मई पूरि गरुडत।—गोपाल (शब्द०)।

गरुडताई (पुं०) —संज्ञा स्त्री० [सं० गरुड + हि० ताई (प्रत्य०)] दे० 'गरुड'। 'गरुडत'।

गरुडा (पुं०) —वि० [सं० गरुड] [वि० स्त्री० गरुडी] अहंकारी। अभिमानी। घमंडी। २. मत्त। मस्त। मतवाला। उ०—ते मरजा सिवराज लिए कबिराजन को गजराज गरुडे।—भूपण ग्रं०, पृ० ६५।

गरुडा (पुं०) —संज्ञा पुं० अहंकार। अभिमान। घमंड।

गरुडी —वि० [सं० गरुड + प्रा० ई (प्रत्य०)] घमंडी। अभिमानी।
गरुडी —संज्ञा स्त्री० अभिमान। घमंड। उ०—नर का जनम मिलता नहीं गाकिल गरुडी ना रखो।—तुलसी श०, पृ० २३।

गरेटना —क्रि० सं० [हि० गरेटना] दे० 'गरेटना'।

गरेडिया —संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गरेरिया'।

गरेबा —संज्ञा पुं० [फ्रा० गरेबान] दे० 'गरेबान'। उ०—पहने कमाल का जामा वह जिसका कि गरेबा तार बने।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६५।

गरेबान —संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. अंगे, कुस्ते आदि कपड़ों की काट और सिलाई में वह भाग जो गले पर पड़ता है। गला।

मुहा०—गरेबान चाक करना, गरेबान फाड़ना = (१) उन्माद की दशा में खासकर गने के नीचे के कपड़े फाड़ना। (२) विक्रिप्त होना। पागल होना। गरेबान में मुँह या सिर डालना या छिपाना = (१) लज्जित या शर्मिदा होना। (२) अपराध स्वीकार करना।

२. कोट आदि में वह पट्टी जो गले पर रहती है। कालर।

गरेरना —क्रि० सं० [हि० घेरना] १. घेरना। उ०—भा घावा गढ़ लीन्ह गरेरी। कोपा कटक लाग चढ़ुं फेरी।—जायसी (शब्द०)। २. छेंकना। रोक्ना।

गरेरा —वि० [हि० घेरा] [वि० स्त्री० गरेरी] चक्करदार। घुमावदार। घुमाव फिरानवाली (वस्तु, रचना)।

गरेरा (पुं०) —संज्ञा पुं० घेरा।

गरेरा —संज्ञा पुं० [हि०] गदेल। नग्हा बच्चा। शिशु।

गरेरी —संज्ञा स्त्री० [हि० घेरा या गराड़ी] गराड़ी। धरनी।

गरेरी (पुं०) —संज्ञा स्त्री० [सं० गरुड, हि० गरेरी] दे० 'गरेरी'।

गरेरी —वि० चक्करदार। घुमावदार। खेंड खेंड सीढ़ी भई गरेरी। उतरहि चढ़हि लोग चढ़ुं फेरी।—जायसी (शब्द०)।

गरेली —संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गरेरी'।

गरेरुआ —वि० [सं० गरुड] १. भारी। वजनी। २. भयंकर। विकट। ३. चक्करदार। घुमावदार।

गरेवा (पुं०) —वि० [हि०] गरुड। जानी। उ०—जुम पंडित बुधवंत गरेवा। उतरहु आइ करउं मैं सेवा।—इंद्रा०, पृ० १००।

गरेठी (पुं०) —वि० [सं० ग्रन्थिल] टेढ़ी। उ०—सूधे न चाहे कहूँ धन आनंद सोहे सुमान गुमान गरेठी।—घनानंद, पृ० ३७।

गरेयाँ —संज्ञा स्त्री० [हि० गसा] गरीब। गले का पगहा। उ०—बछरे खरी प्यावे गऊ तिहि को पदमाकर को मन ल्यावत है। तिय जान गरेयाँ गही वनमाल सु ऐचे लला ईचे आवत है।—पद्माकर (शब्द०)।

गरोह —संज्ञा पुं० [फ्रा०] झुंड। जत्था। समूह। गोल।

गर्क —वि० [सं० गर्क] डूबा हुआ। उ०—ज्ञान बाह लेता था जिससे, गर्क हो रही वह गुनिया।—मिट्टी०, पृ० १०७।

गर्ग —संज्ञा पुं० [सं०] १ एक गोत्रप्रवर्तक वैदिक ऋषि।

विशेष—ये आगिरस भरद्वाज के वंशज थे और ऋग्वेद के छठे मंडल का ४७ वाँ सूक्त इनका रचा हुआ है।

२. अथर्ववेद के परिशिष्ट के अनुसार एक प्राचीन ज्योतिषी । ३. धर्मशास्त्र के प्रवर्तक एक ऋषि । ४. वितथ्य राजा का एक पुत्र । ५. नंद के एक पुरोहित का नाम । ६. दैल । सीढ़ । ७. एक कीड़ा जो पृथिवी में घुसा रहता है । गगोरी । ८. बिच्छू । ९. कंचुआ । १०. एक पर्वत का नाम । ११. ब्रह्मा के एक मानसपुत्र का नाम जिसकी सृष्टि गया में यज्ञ के लिये हुई थी । १२. संगीत में एक ताल ।

विशेष—इसमें चार द्रुत मात्राएँ और अंत में एक खाली या विराम होता है ।

गर्गत्रिरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] कात्यायन श्रौत सूत्र के अनुसार एक प्रकार का याग जो तीन दिनों में होता है ।

गर्गर—संज्ञा पुं० [सं०] १. भँवर । २. एक प्रकार का प्राचीन बाजा जो वैदिक काल में बजाया जाता था । ३. गगर । ४. एक प्रकार की मछली ।

गर्गरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह बतन जिसमें दही मथा जाता है । माठ । दहेड़ी । २. गगरी । कलसी । ३. मथनी ।

गर्ज^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्जन] दे० 'गरज' ।

गर्ज^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी की चिंगाड़ । २. मेष या बादलों का गरजना । ३. गर्जन । ४. वह हाथी जो चिंगाड़ रहा हो [को०] ।

गर्ज^३—संज्ञा स्त्री० [प्र० गरज] दे० 'गरज' ।

यौ०—गर्जमंथ=दे० 'गरजमंद' । उ०—गर्जमंद सब हैं ।—मुनीता, पृ० ४७ ।

गर्जक^१—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०] ।

गर्जक^२—वि० गरजनेवाला [को०] ।

गर्जन^१—संज्ञा पुं० [न०] १. भीषण ध्वनि । गरजना । गरज । गंभीर नाद ।

यौ०—गर्जन तर्जन = (१) तड़प । (२) डाँट डपट ।

२. शोर । आवाज । कोनाहल [को०] । ३. क्रोध । आवेश [को०] ।

४. संग्राम । रण । युद्ध [को०] । ५. तिरस्कार । झिड़की । भत्सना [को०] ।

गर्जन^२—संज्ञा पुं० [दे०] शाल की जाति का एक पेड़ ।

विशेष—इसके जंगल के जंगल हिंदुस्तान में द्रावकोर, मलाबार, कनारा, कोंकन, चटगाँव, बरमा, अंडमान आदि में पाए जाते हैं । इसके पेड़ पीले रंग के, सीधे और सौ सवा सौ हाथ ऊँचे होते हैं और इनकी डालियाँ बहुत दूर तक नहीं फैलती । इनके कई भेद हैं, जिनमें से कुछ सदाबहार भी होते हैं । इस पेड़ से एक प्रकार का निर्यास निकलता है जो कभी कभी इतना पतला होता है कि वह अलसी के तेल की तरह रँगई के काम में लाया जाता है । बरमा में दो प्रकार के गर्जन होते हैं । एक तेलिया गर्जन जिसका निर्यास लाल रंग का होता है, और दूसरा सफेद गर्जन जिसका निर्यास सफेद रंग का होता है । इन दोनों के निर्यास पतले और अच्छे होते हैं । तेल निकालने की विधि यह है कि नवंबर से मई तक इसके पेड़ की जड़ में दो तीन गहरे चौकोर गड्ढे खोद दिए जाते हैं । फिर उनके

किनारे किनारे घाग जलाई जाती है, जिससे तेल सिमट सिमटकर गड्ढों में इकट्ठा होता जाता है और तीसरे चौथे दिन गड्ढा भर जाता है । जो तेल मिट्टी पर बहकर जम जाता है, उसे खुरचकर पत्तियों में लपेट लेते और जंगलों में मोम-बत्ती की तरह जलाते हैं । आसाम और बरमा का होलंग नामक सदाबहार वृक्ष भी इसी जाति का है, जिसका निर्यास बिरोजे की तरह का और सफेद होता है । इस जाति के कुछ वृक्षों का निर्यास अधिक गाढ़ा होता है और राल की तरह जलाने के काम में आता है । यह वृक्ष बीजों से उगता है और इसके फल तथा बीज शाल के फलों और बीजों की तरह होते हैं । इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और प्रति घन फुट २५-३० सेर भारी होती है और नाव तथा घर बनाने के काम में आती है ।

गर्जना—क्रि० प्र० [सं० गर्जन] दे० 'गरजना' । उ०—बलत दसानन डोलत भवनी । गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

गर्जर—संज्ञा पुं० [सं०] गाजर [को०] ।

गर्जा—संज्ञा स्त्री० [मं०] बादलों का गर्जन [को०] ।

गर्जाफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. जवासा । विकटक । २. युद्ध । लड़ाई । ३. भत्सना [को०] ।

गर्जि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बादलों का गरजना [को०] ।

गर्जित^१—वि० [सं०] गर्जा हुआ ।

गर्जित^२—संज्ञा पुं० १. मेघगर्जन । बादलों का गरजना । २. मल या मतवाला हाथी [को०] ।

गर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. गड्ढा । गड्हा । २. दरार । ३. षर । ४. रथ । ५. जलाशय । ६. एक नरक का नाम । ७. नहर [को०] । ८. समाधि या कब्र [को०] । ९. एक प्रकार का रोग [को०] । १०. त्रिगर्त देश का भागविशेष [को०] । १०. सिंह की माँद या गुफा [को०] ।

यौ०—गर्ताश्रय = बिलेशय या बिल में रहनेवाले जीव । जैसे, बूढ़ा, खरगोश आदि ।

गर्तकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह जगह जहाँ जुलाहे बस्त्र बुनते हैं । जुलाहे का कपड़ा बुनने का स्थान [को०] ।

गर्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिल । छेद । २. गुहा । गुफा । खोह [को०] ।

गर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गर्तकी' ।

गर्ध^(५)—संज्ञा पुं० [हि० गर्ध, गरथ] संपत्ति । उ०—दुनिया संघे गर्ध भँडारा सोना रूपा दाम रे ।—राम० धर्म०, पृ० २१६ ।

गर्द^१—वि० [सं०] गरजने या चिल्लानेवाला [को०] ।

गर्द^२—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] धूल । राख । खाक ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—उड़ाना ।

मुहा०—गर्ब उठाना या उड़ाना = हवा के साथ धूल का फैलना ।

गर्द उठाना = दरी की बुनावट में नीचेवाले डंडे के तागों को बैठ चुकने के बाद, रस्सी के दोनों छोरों को खड़ी लकड़ी में बाँधकर ऊपर के डंडे के तागों को बैठाना या जमाना । गर्द

उड़ाना—नष्ट या चोपट करना। धूल में मिलाना। बरबाद करना। जैसे,—सेना ने नगर की गर्द उड़ा दी। गर्द ऋतुना= ऐसी मार खाना जिसकी परवाह न हो। गर्द फाँकना= व्यर्थ धूमना। धावारा फिरना। गर्द को न पहुँचना या न लगना = समता न कर सकना। गर्द होना=(१) तुच्छ होना। समता के योग्य न होना। हेच होना। जैसे,—इसके सामने सब गर्द है। (२) नष्ट होना। चोपट होना।

यौ०—गर्द गुबार= धूल मिट्टी। गरबा।

क्रि० प्र०—उठना।—उड़ना।—निकलना।—बेठना।—जमना।

गर्द^३—वि० [क्रा०] घूमने या भटकनेवाला।

विशेष—यह केवल समस्त रूप में प्राप्त है। जैसे, धावारागर्द।

गर्दखोर^१—वि० [क्रा० गर्दखोर] जो गर्द या मिट्टी आदि प्रदूषने से जल्दी मैला या खराब न हो। जैसे,—खाली रंग।

गर्दखोर^२—संज्ञा पुं० नारियल की जटा या इसी प्रकार की धीर चीजों का बना हुआ गोल या चौकोर टुकड़ा जो पाँव पोंछने के काम आता है।

गर्दखोरा—वि०, संज्ञा पुं० [क्रा० गर्दखोर] दे० 'गर्दखोर'।

गर्दन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गरदन'।

गर्दना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गरदना'।

गर्दनाह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] कुमुद। कोई [को०]।

गर्दभंग—संज्ञा पुं० [हि० गर्द + भंग] एक प्रकार का गीजा।

विशेष—यह कश्मीर के दक्षिणी भागों में उत्पन्न होता है। इसे बूख खरस भी कहते हैं।

गर्दभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. गधा। गदहा। २. श्वेत कुमुद। सफेद कोई। ३. बिड़ंग। ४. गदहिला नामक कीड़ा।

गर्दभक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुबरेला नामक कीड़ा। २. एक चर्म रोग। गदहिला। गर्दभिका [को०]।

गर्दभगाद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चर्मरोग। गर्दभिका [को०]।

गर्दभयाग—संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ जो ब्रह्मचर्य व्रत से ज्युत होने के दोष के प्रागश्चित्त के रूप में किया जाता है। भवकीर्ण याग।

गर्दभशाक—संज्ञा पुं० [सं०] भारंगी। ब्रह्मयष्टि।

गर्दभशाख, गर्दभशाखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गर्दभशाक'।

गर्दभांड—संज्ञा पुं० [सं० गर्दभाण्ड] १. पलखा। पाकड। पाखर। पलख। २. पीपल [को०]।

गर्दभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद कंटकारी।

गर्दभि—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

गर्दभिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग का नाम जिसमें वात पित्त के विकार से गोल जँबी कुंसियाँ निकलती हैं। इन कुंसियों का रंग लाल होता है और इसमें बहुत पीड़ा होती है। गर्दहिला। गर्दहिली।

गर्दभी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुभूत के अनुसार एक कीड़ा। २. अपरा-

जिता नाम की लता। ३. सफेद कंटकारी। ४. गर्दभिका नामक रोग। ५. गदही।

गर्दावाद—वि० [क्रा०] १. गर्द से भरा हुआ। २. उजाड़। ध्वस्त। गिरा पड़ा। ३. बेगुष। बेहोश।

गर्दालू—संज्ञा पुं० [क्रा० गर्द (= गोला) + आलू] आलू बुखारा।

गर्दिश—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. घुमाव। चपकर।

क्रि० प्र०—करना।

२. विपत्ति। आपत्ति। दिनों का फेर।

क्रि० प्र०—ग्राना।—होना।

यौ०—गर्दिशे जमाना = दिनों का फेर। दुर्भाग्य।

३. गति। हरकत। ४. परिवर्तन।

गर्दुआ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गरदुआ'।

गर्दू—संज्ञा पुं० [क्रा०] १. गाड़ी। यान। रथ। २. आकाश [को०]।

गर्दू, गर्ध—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गर्दू, गर्दित] १. स्पृहा। लोभ। लिप्ता। २. गर्दभाड नाम का वृक्ष। पलखा। पाकर।

गर्दून, गर्धन—वि० [सं०] लुब्ध। लालची।

गर्दित, गर्धित—वि० [पुं०] लुब्ध। लालची। लोभी।

गर्द्री, गर्धी—वि० [सं० गर्दित्] [स्त्री० गर्दिनी] १. लोभी। लालची। २. लुब्ध।

गर्नाल—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गर्नाल'।

गर्ब—संज्ञा पुं० [सं० गर्व] दे० 'गर्व'।

गर्वगहोली(पुं०)—वि० स्त्री० [हि०] गर्वहीली। गर्वगहोली। गर्व से भरी हुई। उ०—राधा हरि के गर्वगहोली।—सूर०, १०।१७७२।

गर्वना—क्रि० स० [सं० गर्व] गर्व करना। अभिमान करना।

गर्विला(पुं०)—वि० [हि०] [वि० स्त्री० गर्वीनी] गर्वयुक्त। अभिमानी।

गर्भंड—संज्ञा पुं० [सं० गर्भण्ड] वह नाभि जा अंडे की तरह उभरी हो। नाभि का बढ़ना।

गर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेट के अंदर का वच्चा। हमल। जैसे—उसे तीन महीने का गर्भ है। उ०—चलत दमानन डोलति अचनी। गर्जत गर्भ सखाहि सुर रचनी।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—स्त्री के रज और पुरुष के धर्म के संयोग से गर्भ की स्थिति होती है। हारीत के मत से प्रथम दिन शुक्र और शोणित के संयोग से जिम सूक्ष्म पिंड की सृष्टि होती है, उसे कलल कहते हैं। इस दिन में यह कलल बबूनों के रूप में होता है। एक महीने में सूक्ष्म रूप में पाँचों इंद्रियों की उत्पत्ति और पंचभूतों की प्राप्ति होती है। तीसरे महीने हाथ पैर निकलते हैं और साढ़े तीन महीने पर सिर या मस्तक उत्पन्न होता है और उसकी भीतरी बनावट पूरी होती है। चौथे महीने में रोएं निकलते हैं। पाँचवें महीने जीव का संचार होता है। छठे महीने में वच्चा हिलने डोलने लगता है। दसवें या अधिक से अधिक ग्यारहवें महीने में बच्चे का जन्म होता है। इसी प्रसार सुश्रुत ने पहले मस्तक, फिर शीवा, फिर दोनों पाशवं और फिर गीठ का होना सिखा है। सुश्रुत ने वक्षस्थल के अंदर कण्ठ के आकार का हृदय माना

है और उसे जीवात्मा या चेतना शक्ति का स्थान कहा है। कन्या और पुत्र के भेद के विषय में भावप्रकाश आदि ग्रंथों में लिखा है कि जब गर्भ में शुक्र की प्रबलता होती है, तब पुत्र और जब रज की प्रबलता होती है, तब कन्या होती है। आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिकों के मत से रज और शुक्र के संयोग से गर्भ की स्थिति और बच्चे का जन्म होता है। पर उनके मत से अंडकोश के दाहिने भाग में ऐसे पदार्थ की स्थिति रहती है जिसमें पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति होती है, और बाएँ भाग में कन्या उत्पन्न करने की शक्तिवाला पदार्थ रहता है। गर्भाधान के समय गर्भाशय में जिस पदार्थ की अधिकता हो जाती है, उसी के अनुसार कन्या या पुत्र की सृष्टि होती है। इसी सिद्धांत के बल पर वे कहते हैं कि मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार पुत्र या कन्या उत्पन्न करने में समर्थ हो सकता है। पाश्चात्य लोग इस विषय में बहुत आगे बढ़ी हुई है। पुष्प वीर्य के एक बूँद में सूत के से लगे सूक्ष्म वीर्याणु रहते हैं, जो सूक्ष्म रीर्यों के सहारे तैरते रहते हैं। वीर्याणु से स्त्री के रज्याणु कुछ बड़े और कीड़ी के आकार के होते। पुष्ट होने पर ये ही गर्भाणु हैं या गर्भांड कहलाते हैं। इनका व्यास १/३२ इंच होता है और इनके अंदर प्राण रस रहता है। जब रज और वीर्य का संयोग होता है, तब सूक्ष्म गर्भाणु और शुक्राणु एक दूसरे को आकर्षित करके मिल जाते हैं। इस आकर्षण का कारण प्राण या रसानुभव से मिलती जुलती एक प्रकार की चेतना बतलाई जाती है, जो इन सूक्ष्म प्राणाणुओं या प्राणकोशों में होती है। बहुत से शुक्राणु गर्भाणु की ओर झुकते हैं और उसमें घुसना चाहते हैं, पर घुसने पाता है कोई एक ही। जब कोई शुक्राणु सिर के बल उसमें घुस जाता है, तब गर्भांड के ऊपर की एक झिल्ली छूटकर अलग हो जाती है और रक्त कोश की तरह बन जाती है, जिससे और शेष शुक्राणु गर्भांड के अंदर नहीं घुसने पाते। इस प्रकार इन दोनों प्राणाणुकोशों के संयोग से एक स्वतंत्र कोश की सृष्टि होती है, जिसे मूलकोश कहते हैं। इसके उपरांत प्राण रस का विभाग होता है। इस विभागक्रम के द्वारा धीरे धीरे बहुत से प्राणकोशों का समूह बबूलों (या शहतूत) की तरह बन जाता है, जिसे आयुर्वेदिक आचार्यों ने कलल कहा है।

कि० प्र०—रहना।—होना।

यौ०—गर्भपात। गर्भलाव।

मुद्गा०—गर्भ गिरना=पेट के बच्चे का पूरी बाढ़ के पहले ही निकल जाना। गर्भपात होना। गर्भ गिराना=पेट के बच्चे को श्लेष्म या आघात द्वारा पूरी बाढ़ या पूरे समय के पहले निकाल देना। गर्भपात कराना।

२. स्त्री के पेट के अंदर का वह स्थान जिसमें बच्चा रहता है। गर्भाशय। उ०—जाके गर्भ माहि रिपु मोरा। ताको बध करिहीं यहि ठौर।—रघुराज (शब्द०)। ३. फलित ज्योतिष में नए मेघों की उत्पत्ति जिससे वृष्टि का आगम होता है। ४. गर्भाधान का समय (को०)। ५. किसी वस्तु के भीतर का या मध्यवर्ती भाग (को०)। ६. छिद्र। बिल (को०)।

४. नदी का पेट या उसकी तलहटी (को०)। ८. फल (को०)। ९. आहार (को०)। १०. सूर्य की किरणों द्वारा सुखाई हुई और आकाशस्थ वाष्प की राशि (को०)। ११. गृह या मंदिर का केंद्रीय या आंतरिक भाग (को०)। १२. अन्न (को०)। १३. अग्नि (को०)। १४. नाटक की पाँच संधियों में से एक (को०)। १५. कटहल का कटिदार छिलका (को०)। १६. संयोग (को०)। १७. कमल का कोश। पद्मकोश (को०)।

गर्भ (पु०)—संज्ञा पु० [सं० गर्व, प्रा० गव्व, गव्वर, पु० हि० गव्व, गव्व] गर्व। अभिमान। अकड़। उ०—भरहि दंड बल संड गर्भ गर्भन डर छंडहि। सगपन इक षण त्रास धलक सेवा सिर मंडहि।—पृ० रा०, ८।२।

गर्भक—संज्ञा पु० [सं०] पुत्रजीव वृक्ष। पतजिव। २. वह माला जो बालों के बीच धारण की जाय (को०)। ३. दो रातों और उनके मध्यवर्ती दिन का समय (को०)।

गर्भकर—संज्ञा पु० [सं०] १. दे० 'गर्भकार'। २. पुत्रजीव नाम का एक वृक्ष (को०)।

गर्भकरण—संज्ञा पु० [सं०] कोई वस्तु जो गर्भकारक हो (को०)।

गर्भकर्ता—संज्ञा पु० [सं० गर्भकर्तृ] गर्भसूक्त का प्रणेता (को०)।

गर्भकार—संज्ञा पु० [सं०] १. जिससे गर्भ रहे। गर्भ धारण कराने वाला। जैसे—पति, जार आदि। २. सामगान का एक भेद जिसमें वैराज के आदि और अंत में रथंतर का गान किया जाता है।

गर्भकारी—वि० [सं० गर्भकारिन्] गर्भ धारण करानेवाला। गर्भकारक (को०)।

गर्भकाल—संज्ञा पु० [सं०] १. गर्भाधान के उपयुक्त काल। ऋतुकाल। २. वह समय जिसमें स्त्री के पेट में बच्चा रहता है।

गर्भकेसर—संज्ञा पु० [सं०] फूलों में वे बाल के से पतले सूत जो गर्भनाल के अंदर होते हैं और जिनके साथ परागकेसर के पराग का मेल होने से फलों और बीजों की पुष्टि होती है।

गर्भकोष—संज्ञा पु० [सं०] गर्भाशय।

गर्भक्लेश—संज्ञा पु० [सं०] गर्भ धारण का कष्ट। प्रसव की पीड़ा (को०)।

गर्भक्षय—संज्ञा पु० [सं०] गर्भक्षय। गर्भपात (को०)।

गर्भगुर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भिणी (को०)।

गर्भगृह—संज्ञा पु० [सं०] १. मकान के बीच की कोठरी। मध्य का घर। २. घर का मध्य भाग। अग्नान। ३. मंदिर में बीच की वह प्रधान कोठरी जिसमें मुख्य प्रतिमा रखी जाती है। ४. प्रसूतिकागृह (को०)।

गर्भगेह—संज्ञा पु० [सं०] गर्भाशय। गर्भ।

गर्भग्रह—संज्ञा पु० [ग०] गर्भ की स्थिति। गर्भधारण (को०)।

गर्भग्राहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धात्री। धाय। दाई (को०)।

गर्भधातिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लांगलिका वृक्ष।

गर्भधातो—वि० [सं० गर्भधातिन्] [स्त्री० गर्भधातिनी] गर्भपात करनेवाला।

गर्भचक्षुः—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भ में बच्चे का हिलना डोलना [को०] ।
गर्भच्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गर्भपात । २. प्रसव [को०] ।
गर्भज—वि० [सं०] १. गर्भ से उत्पन्न । संतान । २. जो जन्म से हो । जिसे साथ लेकर कोई उत्पन्न हो । जैसे, गर्भज गेग ।
 गर्भज गुण ।
गर्भजात—वि० [सं०] दे० 'गर्भज' ।
गर्भद—वि० [गं०] गर्भ देनेवाला । जिससे गर्भ रहे ।
गर्भद—संज्ञा पुं० पुत्रजीव वृक्ष ।
गर्भदा—संज्ञा स्त्री० [गं०] सफेद भटकटैया ।
गर्भदात्री—संज्ञा स्त्री० [गं०] श्वेत कंटकारि । सफेद भटकटैया ।
गर्भदास—संज्ञा पुं० [गं०] वह जो जन्म से दास हो । दासीपुत्र ।
गर्भदिवस—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्भ का समय । गर्भकाल । २. बृहत्संहिता के अनुसार १६५ दिन का काल जिसमें भेष का गर्भ होता है । यह समय प्रायः कार्तिकी पूर्णिमा के बाद आता है ।
गर्भदुःख—संज्ञा पुं० [सं०] पारे का तेरहवाँ संस्कार जो शुद्धि के लिये किया जाता है ।
गर्भदुःख—वि० [गं०] जो गर्भ रहने का विरोधी हो । जो गर्भाधान न चाहे ।
गर्भदुःख—वि० [गं०] (स्त्री) जो गर्भधारण की विरोधिनी हो । जो गर्भ धारण करना न चाहती हो । जो गर्भ गिरावे ।
गर्भध—वि० [गं०] गर्भ धारण करनेवाला ।
गर्भधरा—वि० स्त्री० [गं०] गर्भ धारण करनेवाली । गर्भवती [को०] ।
गर्भधारण—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भ होने की अवस्था । गर्भवती रहना ।
गर्भन(पुं०)—वि० [गं०] गर्भन । गर्भन । गर्भवती । उ०—
 भति प्रचंड बल मंड गर्भ गर्भन डर छड़हि ।—पृ० रा०, ८२ ।
गर्भनाडी—संज्ञा स्त्री० [गं०] गर्भनाडी । सुश्रुत के अनुसार गर्भाणय की एक नाडी जिसमें गर्भधारण होता है ।
गर्भनाल—संज्ञा स्त्री० [गं०] फूलों के अंदर की वह पतली नाल जिसमें सिरे पर गर्भकेसर होता है ।
विशेष—दूसी गर्भकेसर और परागकेसर के संमिश्रण से फलों और बीजों की पुष्टि और वृद्धि होती है ।
गर्भनिलव—संज्ञा पुं० [गं०] वह भित्ती आदि जो बच्चे के उत्पन्न होने पर पीछे से निकलती है । जैसे—घावर, खेड़ी ।
गर्भपत्र—संज्ञा पुं० [गं०] १. कोमल पत्ता । गाभा । कोणल । २. फूल के अंदर के पत्ते जिनमें गर्भकेसर रहता है । गर्भनाल ।
गर्भपाकी—संज्ञा पुं० [गं०] गाढो घान ।
गर्भपात—संज्ञा पुं० [गं०] १. गर्भ का पाँचवें या छठे महीने में गिर जाना । २. गर्भ का गिरना । पेट के बच्चे का पूरी बाढ़ के पहले निकल जाना ।
 क्रि० प्र०—करना ।—होना ।
गर्भपातक—संज्ञा पुं० [गं०] लाल सहिजन । रक्त गोभाजन ।
गर्भपातन—संज्ञा पुं० [गं०] १. पट गिराना । गर्भहत्या । २. रीटा ।
गर्भपातिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कलिहारी । कलियारी । २. विनत्या नामक ओषधि ।

गर्भभवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह घर जो बीच में हो । मध्य की कोठरी । २. प्रसूतिकागृह । सोरी ।
गर्भमंडप—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भमण्डप । १. गर्भगृह । २. शयनागार [को०] ।
गर्भमास—संज्ञा पुं० [सं०] वह महीना जिसमें गर्भाधान हो ।
गर्भमोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] प्रसव । जनन [को०] ।
गर्भरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव ।
विशेष—यह ११२ हाथ लंबी, ५६ हाथ चौड़ी और ५६ हाथ ऊँची होती थी और नदियों में चलती थी ।
गर्भलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भ के सूचक चिह्न [को०] ।
गर्भवंत(पुं०)—वि० स्त्री० [हि०] गर्भ धारण करनेवाली । गर्भवती ।
 उ०—गर्भवंत होती तिहि नारी । इंद्र प्रवाज सुनी अधि-
 कारी ।—कबीर सा०, पृ० ८५६ ।
गर्भवती—वि० स्त्री० [सं०] जिसके पेट में बच्चा हो । गर्मिणी ।
 गुविणी ।
गर्भवध—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भ का विनाश । भ्रूणहत्या [को०] ।
गर्भवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्भ के अंदर की स्थिति । २. गर्भाणय ।
गर्भव्याकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चिकित्सा शास्त्र का वह ग्रंथ जिसमें गर्भ की उत्पत्ति तथा वृद्धि आदि का वर्णन होता है ।
 २. गर्भ की स्थिति और वृद्धि [को०] ।
गर्भव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध में सेना की एक प्रकार की रचना ।
विशेष—इसमें सेना कमल के पत्तों की तरह अपने सेनापति या रथ वस्तु को चारों ओर से घेरकर खड़ी होती और लड़ती थी ।
गर्भशंक्रु—संज्ञा पुं० [गं०] गर्भशंक्रु । चिकित्सा शास्त्रानुसार एक प्रकार की सेंडरी ।
विशेष—इससे मरे हुए बच्चे को पेट के अंदर से निकालते हैं ।
 इसके मुँह का धरा आठ अंगुल का होता है ।
गर्भशय्या—संज्ञा स्त्री० [गं०] गर्भ की उत्पत्ति का स्थान ।
गर्भसंधि—संज्ञा स्त्री० [गं०] गर्भसंधि । नाट्य शास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार की संधियों में से एक ।
गर्भस्थ—वि० [सं०] जो गर्भ में हो । जिसका जन्म होनेवाला हो ।
गर्भस्थली—संज्ञा स्त्री० [गं०] गर्भाणय ।
गर्भस्त्राव—संज्ञा पुं० [सं०] चार महीने के अंदर का गर्भपात जिसमें रुधिरादि गिरता है ।
विशेष—इस अवस्था में शास्त्रानुसार जितने महीने का गर्भ होता है, उतने दिनों तक का मृतक लगता है, जिसे गर्भस्त्राव शीघ्र कहते हैं ।
गर्भस्त्रावी—संज्ञा पुं० [गं०] गर्भस्त्राविन् । हिताल नामक वृक्ष, जो एक प्रकार का ताड़ है ।
गर्भस्त्रावी—वि० गर्भपात करने या करानेवाला [को०] ।
गर्भहत्या—संज्ञा स्त्री० [गं०] भ्रूणहत्या । गर्भपात ।
गर्भांक—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भांक । नाटक के अंक का एक अंश जिसमें केवल एक दृश्य होता है ।

विशेष—इसकी समाप्ति पर पहली जबनिका उठाई अथवा दूसरी गिराई जाती है; और तब दूसरा वृष्य आरंभ होता है।

गर्भागार—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह कोठरी जो घर के मध्य में हो। घर के बीच का कमरा। गर्भगृह। २. अग्नय। ३. गर्भस्थान। गर्भाशय।

गर्भाधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. गृहसूत्र के अनुसार मनुष्य के सोलह संस्कारों में से पहला संस्कार।

विशेष—यह संस्कार उस समय होता है, जब स्त्री श्रुतमती हो चुकती है।

२. गर्भ की स्थिति। गर्भधारण।

गर्भाधाना—वि० [हि० गर्भ = गर्ब] गर्बीला होना। गर्भयुक्त होना। गर्भाना। उ०—गरभ जन्म बालक भयो रे तरुनाये गर्भान।
—दरिया० बानी, पृ० ४१।

गर्भारि—संज्ञा पुं० [सं०] छोटी इलायची [को०]।

गर्भाशय—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों के पेट में वह स्थान जिसमें बच्चा रहता है। बच्चादानी।

विशेष—स्त्रियों का गर्भाशय या गर्भकोश वास्तव में वही अवयव है जो पुरुषों का प्रंढकोश है। स्त्रियों में यह भ्रंश होता है, पुरुषों में बाहर। इसी की भिन्नता से स्त्री और पुरुष के और और लक्षणों की भिन्नता उत्पन्न होती है। इसी गर्भाशय में रजागु या गर्भागु रहते हैं। जो जीव जितने ही अधिक भ्रंश देते हैं, उनके गर्भाशय उतने ही बड़े होते हैं। स्त्री का गर्भाशय ११ इंच लंबा, ३ इंच चौड़ा और ३ इंच मोटा होता है और उसमें एक गर्भनाड़ी रहती है, जिससे बच्चा निकलता है।

गर्भिणी^१—वि० स्त्री० [सं०] जिसे गर्भ हो। गर्भवती। पेटवासी।

यौ०—गर्भिणी अवस्था = गर्भवती की अवस्था। गर्भिणी बोहव = गर्भवती की लालसा या रुचि। गर्भिणी व्याकरण, गर्भिणीव्याकृति = गर्भ के विकासक्रम का विज्ञान। आयुर्वेद शास्त्र का एक अंग।

गर्भिणी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव।

विशेष—यह ८० हाथ लंबी, ४० हाथ चौड़ी और ४० हाथ ऊंची होती थी और समुद्र में चलती थी। इसपर यात्रा करना अशुभ और अनिष्टकारक समझा जाता था।

२. खिरनी। क्षीरिका।

गर्भिणीत्व—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भिणी होना। गर्भयुक्त होना [को०]।

गर्भित^१—वि० [सं०] १. गर्भयुक्त। २. भरा हुआ। पूर्ण। पूरित। जैसे,—अर्धगर्भित।

गर्भित^२—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य का एक दोष जिसमें कोई अतिरिक्त वाक्य किसी वाक्य के अंतर्गत आ जाता है।

गर्भी—वि० [सं० गर्भिन्] गर्भयुक्त [को०]।

गर्भेष्ट—वि० [सं०] १. गर्भस्थ बालक की तरह संकुचित। आहारादि की चिंता से मुक्त। २. आलसी। अकर्मण्य [को०]।

३-२०

गर्भोपचास—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्भ का नष्ट होना। २. बाबल में जल उत्पन्न करने की शक्ति का नष्ट हो जाना।

गर्भोपनिषद्—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद संबंधी एक उपनिषद्।

विशेष—इसमें गर्भ की उत्पत्ति और उसके बढ़ने आदि का वर्णन किया गया है।

गर्भ—वि० [फा०] दे० 'गरम'।

गर्भागर्भ—वि० [हि०] गरमागरम। ताजा। उ०—कोई गर्भागर्भ जलेबी और पूरी।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४३।

गर्भुत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की घास। २. नरकुल की एक जाति। ३. सोना। कनक। ४. एक प्रकार की मधुमक्खी [को०]।

गर्भालू—वि० [हि० गरियालू] काले नीले रंग का। गरियालू।

गर्भी^१—वि० [सं० गरहाधिक = लाल] लाल के रंग का। लाही।

गर्भी^२—संज्ञा पुं० १. लाही रंग। २. घोड़े का एक रंग जिसमें लाही बालों के साथ कुछ सफेद बाल मिले होते हैं। ३. इस रंग का घोड़ा। उ०—ताजी सुरखी चीनिया लक्खी गर्भी बाज। कुल्हा मुसकी तोलिया केहरि मगसी साज।—प० रासो, पृ० १३८।

गर्भी^३—संज्ञा पुं० [अनु०] १. बहते हुए पानी का थपेड़ा। उ०—भेड़ा भेंवर उछालन चकरा समेट माला। बैठा गंभीर तस्ता कट्टे पछार गर्भी।—नजीर (शब्द०)। २. गर्दन पर मारा जानेवाला थपेड़ा। रद्दा। ३. बहावलपुर वा भावलपुर में प्रयुक्त (जो अब पाकिस्तान में है) सतलज नदी का नाम।

गर्भी^४—संज्ञा पुं० [हि० गराड़ी] गराड़ी।

गर्भी^५—संज्ञा पुं० [अ० गर्ह] १. अभिमान। घमंड। २. घुमाव। ऐंठन। मरोड़।

क्रि० प्र०—करना।—बेना।

गर्भी—संज्ञा स्त्री० [हि० गरेरना] १. खलिहान में लगाई हुई डंठलों की गांज। २. तागा या तार लपेटने का एक औजार।

गर्ल—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. लड़की। बालिका। २. युवती। जवान स्त्री। ३. प्रेमिका।

गर्लस्कूल—संज्ञा पुं० [अं० गगर्ल्स स्कूल] वह विद्यालय जिसमें लड़कियाँ पढ़ती हों। कन्या विद्यालय।

गर्व—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गर्वित, गर्ववान्] १. अहंकार। घमंड। २. एक प्रकार का संचारी भाव। अपने को सब से बड़ा और दूसरों को अपने से छोटा समझने का भाव।

गर्वगरु—[सं० गर्व + हि० गरु] उद्धत।—नंद अं०, पृ० १११।

गर्वप्रहारी—वि० [सं० गर्वप्रहारिन्] गर्व का नाश करनेवाला। घमंड ख़ुण करनेवाला।

गर्वर—वि० [सं०] अभिमानी। घमंडी [को०]।

गर्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

गर्ववन्त—वि० [सं० गर्ववान् का बहु व० गर्ववन्त] घमंडी। अभिमानी। अहंकारी। उ०—गर्ववन्त सुरपति चढ़ि आयो। काम करज गिरि टेकि दिलायो।—सूर (शब्द०)।

गर्वाट—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारपाल । बीकीवार (को०) ।

गर्वाना (उ)—क्रि० प्र० [सं० गर्व] गर्व होना । अभिमान होना । घमंड या अहंकार होना । उ०—कहा गुप्त इतनेहि को गर्वानी । जोवन रूप दिवस दसही को ज्यों जेपुरी को पानी ।—सूर (शब्द०) ।

गर्वित—वि० [सं०] गर्वयुक्त । अभिमान भरा । घमंडी ।

गर्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जिसे अपने रूप और गुण आदि का घमंड हो । यह दो प्रकार की होती है—रूपगविता और प्रेमगविता ।

गर्विष्ठ—वि० [सं०] अहंकार करनेवाला । गर्वयुक्त । घमंडी ।

गर्वी—वि० [सं० गर्विन्] घमंडी । अहंकारी । मगहर ।

गर्वीला—वि० [सं० गर्व + हि० ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० गर्वीली] धमज से भरा हुआ । अभिमानयुक्त । घमंडी । उ०—जिनि वह सुधागान गुण कीन्हों वे कैसे कटु देखत । त्यों ए नैन गए गर्वीन अथ काहे हम देखत ।—सूर (शब्द०) ।

गर्वीक—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्वपूर्ण कथन या बात ।

गर्हण—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा स्त्री० गर्हणा] [वि० गर्हणीय, गर्हित, गर्हा, गर्हितव्य] निंदा । शिकायत ।

गर्हणीय—वि० [सं०] निंदा करने के योग्य । बुरा । निन्दनीय ।

गर्हा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निंदा ।

गर्हित—वि० [सं०] जिसकी निंदा की जाय । निन्दित । दूषित । बुरा ।

गर्हितव्य—वि० [सं०] निन्दनीय । गर्हणीय (को०) ।

गर्ही—वि० [सं० गर्हिन्] निंदा करनेवाला । निन्दक (को०) ।

गर्हा—वि० [सं०] निंदा करने योग्य । निन्दनीय ।

गौ—गर्हवादी = गितथ या गित भाषण करनेवाला ।

गर्हाणक—वि० [सं०] दुष्ट । बुरा (को०) ।

गलंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गलन्तिका] १. छोटा कलश । २. जेद युक्त धडा जिसमें शिबानिग आदि पर जल का अभिषेक होता रहता है (को०) ।

गलन्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० गलन्ती] ३० 'गलन्तिका' ।

गलंश—संज्ञा स्त्री० [सं० गलन्तश] वह जायदाद जिसका मालिक मर गया हो और उसका कोई उत्तराधिकारी न हो ।

गल—संज्ञा पुं० [सं०] १. गला । कट । गरदन । २. राल । ३. गडाकू नाम की मछली । ४. एक प्राचीन नाजे का नाम । ५. रस्सी (को०) । ६. एक प्रकार की लंबी पास । बृहत्काश (को०) ।

गलई—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गलही' ।

गलकंबल—संज्ञा पुं० [सं० गलकम्बल] गाय के गले के नीचे का वह भाग जो लटकता रहता है । झालर । लहर । उ०—अंतर भगन भगनु गल यनु फल बन्धवेद विषवारी । गलकंबल बरना विभानि जनु लुप्त लगति सरिता सी ।—तुलसी (शब्द०) ।

गलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गला । २. गडाकू मछली । ३. मोती (को०) ।

गलका—संज्ञा पुं० [हि० गलना] १. एक प्रकार का फोड़ा जो हाथ की उंगलियों के अंग्रे भाग में होता है और बहुत कष्ट देता है । २. एक तरह का चाबुक । गलकोड़ा ।

गलका—संज्ञा पुं० [देश०] खट्टे या कच्चे फल का शकर तथा मसालों के साथ बनाया हुआ अचार । उ०—कबीर मन बिकरे पक्का गया स्वाद के साथि । गलका खाया बरजता अथ क्यूँ भाई हाथि ।—कबीर प्र०, पृ० २६ ।

गलकोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० गला + कोड़ा] १. मालसंध की एक कसरत ।

विशेष—इसमें पीठ की तरफ गरदन पर से बेत को ले जाकर एक हाथ में उसे लपेट लेते हैं और दूसरी ओर के पाँव में घंटी देकर गले के जोर पर लटक जाते हैं ।

२. कुपती का एक पेंच ।

विशेष—इसमें एक बगल में शत्रु की गरदन दबाकर दूसरा हाथ उसकी बगल से पीठ पर ले जाते हैं और उसे उलटकर टाँग के सहारे गिरा देते हैं ।

३. एक प्रकार का कोड़ा या चाबुक ।

गलखप—संज्ञा स्त्री० [सं० गल्प, प्रा० गल्ल या देश०] गलगोज । खलखल । भकभक । उ०—होरा गया तो देखा अबासी और बूढ़ी खपट मुगलानी में गलखप हो रही है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१४ ।

गलखोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० गला + कोड़ा] दे० 'गलकोड़ा' ।

गलगंजना—क्रि० प्र० [सं० गल + गर्जन,] जोर से आवाज करना । भारी शब्द करना । उ०—बीस सहस्र घहराहि निसाना । गलगंजहि भरी असमाना ।—जायसी (शब्द०) ।

गलगंड—संज्ञा पुं० [सं० गलगण्ड] गले का एक रोग । घेघा ।

विशेष—इसमें गले में सूजन हो आती है और क्रमशः बढ़ते बढ़ते सामने एक गाँठ सी निकल पड़ती है । यह गाँठ भिन्न भिन्न आकार की होती है; और कभी कभी इतनी बढ़ जाती है कि थोले की तरह गले में लटकने लगती है । वैद्यक के अनुसार यह रोग तीन प्रकार का माना गया है—वानज, कफज और मेदज । डाक्टरों का कथन है कि पहाड़ी तराईयों में लोगों को, विशेषकर स्त्रियों को गलगंड रोग हो जाता है । उनके मत से इसमें गले के एक या दोनों ओर की किल्ली फूल आती है ।

गलगंड—संज्ञा पुं० [देश०] हरगीला नाम की चिड़िया ।

गलगल—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. मैना की जाति की एक चिड़िया । सिंगोटी । गलगलिया ।

विशेष—यह कुछ सुर्खी लिए काले रंग की होती है । इसके गले पर दोनों ओर पीली या लाल धारियाँ होती हैं और इसकी दुम के नीचे का भाग सफेद होता है ।

२. एक प्रकार का बहुत बड़ा नीबू ।

विशेष—यह चकोतरे के बराबर होता है और पकने पर गहरे बसंती रंग का हो जाता है । यह बहुत अधिक खट्टा होता है और अचार डालने तथा मोक्षधियों के काम में आता है ।

३. बर्बों की बत्ती का एक टुकड़ा ।

विशेष—यह जहाज में समुद्र की गहराई नापनेवाले यंत्र में सीसे की एक नली से लगा रहता है । यह नली बार-बार समुद्र में

फेंकी और निकाली जाती है और इसमें बालू आदि समुद्र की तह की चीजें लगकर बाहर निकलती हैं।—(लक्ष्मी) ।

४. गलसी और चूने के तेल को मिलाकर बनाया हुआ एक प्रकार का मसाला ।

विशेष—यह लकड़ी आदि की चीजों को जोड़ने या छोटा छेद धमका दवार आदि बंद करने के काम में आता है । इसे पोटीन भी कहते हैं ।

गलगली—वि० [हि० गीला या घनु०] [वि० ली० गलगली] भीगा हुआ । आर्द्र । तर । उ०—ललन चलन सुनि चुप रही बोली धायन ईठि । राख्यो गहि गाढ़े गरी मनो गलगली दोठि ।—बिहारी (शब्द०) ।

गलगलाना^१—क्रि० प्र० [हि० गीला या घनु०] गीला होना । तर होना । भीगना ।

गलगलाना^२—क्रि० स० [सं० गल्य + जल्पना] बेकार की बातें करना । बढ़ बढ़कर बातें करना । जोर से बोलना ।

गलगलिया^१—संज्ञा ली० [देश०] किलहंटी या सिरौही नाम की एक बिड़िया ।

गलगलिया^२—वि० [हि०] बढ़ बढ़ करनेवाला । बेकार की बातें करनेवाला ।

गलगलाना—क्रि० प्र० [हि० गाल + गलना] खुली से गरजना । गाल बजाना । बढ़ बढ़कर बातें करना । उ०—राम सुमाउ चुने तुलसी हुलसे गलसी हमसे गलगलाने ।—तुलसी (शब्द०) ।

गलगुच्छा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'गलमुच्छा' ।

गलगुथना—वि० [हि० गाल + गुथना] जिसका बदन खूब भरा और गाल फूले हों । मोटा ताजा ।

गलगोज^१—संज्ञा पु० [हि० गाल + गोज] बकबक । व्यर्थ विवाद । गप्पाशूक । उ०—राम जी सों नेह नाहीं सदा प्रबिबेक माही मनुवा रहत नित करत गलगोज है ।—भीखा० श०, पृ० ५६ ।

गलग्रह—संज्ञा पु० [सं०] १. ज्योतिष के अनुसार कृष्ण पक्ष की चतुर्थी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, अमावस्या और प्रतिपदा ।

विशेष—गर्गादि के मत से जब स्वाध्याय के आरंभ करते ही स्मृति के अनुसार अनध्याय पढ़ जाय, तब उसे भी गलग्रह कहते हैं ।

२. मछली का काँटा । ३. वह आपत्ति जो कठिनता से टले । ४. गले का एक रोग जिसमें कफ बढ़ जाने से गला बंद हो जाता है । ५. एक प्रकार की पकी हुई मछली । ६. गला पकड़ना । गला घोटना (को०) ।

गलगोट्ट—वि० [हि० गला + घोट्ट = घोटनेवाला] १. गला घोटनेवाला । २. अप्रिय । जैसे, गलगोट्ट काम या बात ।

गलगुमनी—संज्ञा ली० [हि० गाल + गुमना] कान का एक गहना जो गालों पर गोलाकार रहता है । उ०—सिर पर है बंदवा शीशफूल, कानों में भुमके रहे झूल, बिरिया गलगुमनी कण-फूल ।—ग्राम्या ।

गलगुट्ट—संज्ञा ली० [हि० गला + छोट] मछली के गलफड़े के दोनों और कुरी हड्डियों का बना हुआ, कमानी के आकार का

वह भाग जिसके ऊपर साल सूइयों की झालर लगी रहती है और जिसकी सहायता से मछली पानी में मिली हुई वायु को अंदर खींचकर सांस लेती और पानी को बाहर ही छोड़ देती है ।

गलगुट्ट^१—संज्ञा पु० [हि०] गले का हार । गलगुट्टा ।

गलगुट्टा—संज्ञा पु० [सं० गल + गुट्ट, पं० जंबरा] १. वह जो सदा साथ रहे । वह जो कभी पिड़ न छोड़े । गले का हार । २. रूमाल या कपड़े की पट्टी ।

विशेष—यह गले में उस समय हाथ के सहारे या उसे लटकाने के लिये बांधी जाती है, जब कि हाथ में किसी प्रकार की चीज लगी हो या कोई घाब हो ।

गलगुट्ट—ली० ली० [हि०] दे० 'गलगुट्ट' ।

गलगुट्ट^२—संज्ञा ली० [हि० गला + गुट्ट] १. वह रस्सी या पगही आदि जिससे एक बैल के गले को दूसरे बैल के गले से लगाकर बांधते हैं । गलगुट्ट । २. गले का हार । गलगुट्टा ।

गलगुट्ट^३—वि० असह्य ।

गलगुट्ट^४—संज्ञा पु० [हि० गला + गुट्ट] एक प्रकार की लोहे की झूल जो युद्ध के समय हाथियों के गले में पहनाई जाती थी । उ०—तैसे बँवर बनाए और घाले गलगुट्ट । बंधे सेन गलगुट्ट तँह जो देखे सो कंप ।—जायसी (शब्द०) ।

गलगुट्ट^५—वि० [हि० गला + गुट्ट] बेसुध । बे खबर ।

गलगुट्ट^६—वि० [सं० गलित + गुट्ट] टूटाफूटा । नष्टभ्रष्ट । सड़ागला ।

गलगुट्ट^७—संज्ञा पु० [सं० गलित + गुट्ट] १. ऐसा मनुष्य जो कोई संपत्ति न छोड़कर मरा हो । २. ऐसे मनुष्य की संपत्ति जिसे कोई संतति न हो ।

गलगुट्ट—वि० [प्र० गलगुट्ट] [संज्ञा ली० गलगुट्टी] १. असुद्ध । असमूलक । २. असत्य । मिथ्या । झूठ ।

क्रि० प्र०—करना ।—ठहरना ।—ठहराना ।—होना ।

गलगुट्टकार—वि० [प्र० गलगुट्ट + कार] [संज्ञा गलगुट्टकारी] गलगुट्ट करनेवाला । जानबूझ कर तूक जानवाला । अंत संत काम करनेवाला (को०) ।

गलगुट्टकिया—संज्ञा ली० [हि० गाल + तकिया] छोटा, गोल और मुलायम तकिया जो गालों के नीचे रखा जाता है ।

गलगुट्टगो—वि० [प्र० गलगुट्ट + गो] मिथ्यावादी । झूठा (को०) ।

गलगुट्टनामा—संज्ञा पु० [प्र० गलगुट्ट + नाम] अशुद्धियों का विवरण या परिशिष्ट । शुद्धिपत्र ।

गलगुट्टनी—संज्ञा ली० [हि० गला + तनना] वह रस्सी जो बैलों के गेराव में बांधी जाती है । पगहा ।

गलगुट्टहमी—संज्ञा ली० [प्र० गलगुट्ट + हमा + फा० ई (प्रत्य०)] किसी ठीक बात को गलगुट्ट समझना । झूल से कुछ का कुछ समझना । भ्रम ।

क्रि० प्र०—बैसा होना ।—होना ।

गलगुट्टी—वि० [फा० गलगुट्टी] दे० 'गलगुट्टान' ।

गलगुट्टा—संज्ञा पु० [प्र० गलगुट्ट] १. एक प्रकार का बहुत चमकीला और गहक कपड़ा ।

विशेष—इसका ताना रेशम का और बाना सूत का होता है। यह सादा, धारीदार और अन्य कई प्रकार का होता है।

२. मकान की कारनिस।

गलताड—संज्ञा पुं० [सं०] छए या जुघाटे की वह मेल या खूँटी जो अंदर की ओर होती है।

गलतान^१—वि० [फ्रा० गलतान] चक्कर मारता हुआ। लुढ़कता हुआ। घूमता हुआ। उ०—गगन दुधारे मन गया करे अमृत रस पान। रूप सदा भसकत रहै, गगन बँडल गलतान।—कबीर (शब्द०)

गलतान^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का रेशमी वस्त्र।

गलतानी(पु)—वि० [फ्रा० गलतान] दे० 'गलतान'। उ०—दरिया तीनों लोक में, देखा दोय बिना न गुजरानी गुजरान में, गलतानी गलतान।—दरिया० बानी, पृ० ३७।

गलती—संज्ञा स्त्री० [अ० गलत + हि० ई] १. भूल। त्रुटि। धोखा। मुहा०—गलती में पड़ना = धोखा खाना। भूल करना।

२. अशुद्धि। भूल।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—निकलना।—पड़ना।—होना।

गलधन—संज्ञा पुं० [सं० गलधन] दे० 'गलधना'।

गलधना—संज्ञा पुं० [सं० गलधन, प्रा० गलधन, गलधन] वे धूलियाँ जो एक विशेष प्रकार की बकरियों की गरदन में दोनों ओर लटकती रहती हैं। उ०—नाम जपत कन्या भली साकट भला न पूत। छेरी के गल गलधना जायें दूध न पूत।—कबीर (शब्द०)।

गलधैली—संज्ञा स्त्री० [हि० गाल + धैली] बंबरो के गाल के नीचे की धैली जिसमें वे खाने की वस्तु भर लेते हैं।

गलध्रु—त्रि० वि० [सं०] आसू बहाता हुआ। रोता हुआ (को०)।

गलद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्र। मूँह (को०)।

गलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बूँद बूँद गिरना। घूना। टपकना। रिसना। क्षरण। २. झड़ना। ३. टंड आदि से गल जाने की स्थिति। गलना। ४. पिघलना। ५. सरकना (को०)।

गलनही^१—संज्ञा पुं० [हि० गलना + नहिं = नाखून] हाथियों का एक रोग जिसमें उनके नाखून गल गलकर निकला करते हैं।

गलनही^२—वि० (हाथी) जिसे गलनही रोग हो।

गलना—त्रि० प्र० [सं० गरण = तर होना] १. किसी पदार्थ के पनत्व का कथ या लपट होना। किसी द्रव्य के संयोजक अणु या अणुओं का एक दूसरे से इस प्रकार पृथक् हो जाना जिससे वह द्रव्य विहृत, कोमल या द्रव हो जाय।

विशेष—यह विशेषण किसी द्रव्य के बहुत बिनो तक यों ही अववा जल, तेजाब आदि में पड़े रहने, गरमी या आँच लगने प्रयत्न किसी ओर प्रकार के संयोग के कारण हो जाता है। जैसे—आँच के द्वारा सोने, चाँदी आदि का गलना; जल में बताशे, मिट्टी आदि का गलना; गरम जल की आँच में दाल चावल आदि का गलना; तेजाब में दवा या खनिज पदार्थों का गलना; कीटाणुओं के संयोग से (कोढ़ आदि व्याधियों में) शरीर

के अंगों, और बहुत अधिक पकने या अधिक समय तक पड़े रहने के कारण फल पत्तों आदि का सड़कर गलना।

२. बहुत जीर्ण होना। जैसे, कपड़ा या कागज गलना। ३. शरीर का दुर्बल होना। बदन सूखना। जैसे—आठ दिन की बीमारी में बिल्कुल गल गए। ४. बहुत अधिक सरदी के कारण हाथ पैर का ठिठुरना। जैसे, आज तो सरदी के मारे हाथ गल रहे हैं। ५. बुरा या निष्फल होना। बेकाम होना। नष्ट होना। जैसे,—दाँव गलना, मोहरा गलना।

मुहा०—कोठी गलना = कुँए या पुल के खंभे में जमवट या गोले के ऊपर की जोड़ई का नीचे धँसना। चीनी गलना = मिठाई आदि बनाने के लिये चीनी का कड़ाही में ढाला जाना। नाम पर गलना(पु) = प्रिय को प्राप्त करने के लिये अनेक कष्ट सहना। उ०—गलों तुम्हारे नाम पर ज्यों आटे में नोन, ऐसा बिरहा मेलकर नित दुख पावै कीन।—कबीर सा० सं०, पृ० ४५। रूपया गलना = व्यर्थ व्यय होना। फूल लख होना। जैसे—कल उनके पचास रुपए तमाशे में गल गए।

संयो० क्रि०—जाना।

गलपासी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गल + पाश] दे० 'गलफासी'। उ०—सुख कौं चाहै पड़े गलपासी, देखत हीरा हाथ धँ जाती—संतवाणी०, पृ० १००।

गलफड़ा—संज्ञा पुं० [हि० गाल + फटना] १. जलजंतुओं का वह अवयव जिससे वे पानी में साँस लेते हैं।

विशेष—ऐसे जंतुओं में फेफड़ा नहीं होता। यह सिर के नीचे दोनों ओर होता है और भिन्न भिन्न जलजंतुओं में भिन्न भिन्न आकार का होता है। मछलियों के गले में सिर के दोनों ओर दो अर्धचंद्राकार छेद या कटाव होते हैं। इन्हीं छेदों के अंदर चार चार अर्धचंद्राकार कमानियाँ होती हैं जिनके ऊपर लाल लाल नुकीली मूँदियों की झाल होती है जिसे गलछट कहते हैं। इन्हीं गलछटों से होकर मछलियाँ पानी में साँस लेती हैं जिससे पानी में मिली हुई वायु मात्र अंदर जाती है और पानी छँटकर बाहर रह जाता है।

२. गालों के दोनों ओर का वह भाग जो दोनों जबड़ों के बीच में होता है। गाल का चमड़ा।

गलफरा, **गलफरा**—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गलफड़ा'।

गलफाँस—संज्ञा स्त्री० [सं० गलपाश] मालखंभ की एक कसरत।

विशेष—इसमें बेत को गले में लपेटकर उसके एक छोर को छाती पर से ले जाकर पैर के अँगूठे के नीचे दबाकर केवल गले के जोर से अपने माथे को पेट तक झुकाते हैं। इस कसरत में इस बात पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है कि गला अधिक न कसने पाए, अन्यथा गले में फाँसी लग जाने की आशंका होती है।

गलफाँसी—संज्ञा स्त्री० [हि० गला + फाँसी] १. गले की फाँसी या फंदा। २. कष्टदायक वस्तु का कार्य। जंजाल। ३. मालखंभ की एक कसरत।

गलफूट—संज्ञा स्त्री० [हि० गाल + फूटना] बड़बड़ाने की लत। बेधड़क अंडबंड बकने की लत। कल्लेदराजी।

गलफूला^१—वि० [हि० गाल + फूलना] जिसका गाल फूला हो।

गलफूला^२—संज्ञा पुं० एक रोग जिसमें गले में सूजन होती है।

गलफेड़—संज्ञा पुं० [सं० गल+फेड़] गले की गिलटो।

गलबंदनी—संज्ञा स्त्री० [हि० गला + बंधना या हि० गला + बन्ध + नी (प्रत्य०)] गुल्बन्ध नामक आभूषण जो गले में पहना जाता है।

गलबबरोड़—संज्ञा स्त्री० [हि० गलना + बबली] ऐसा बादल जिसके साथ हाथ पाँव गलानेवाला जाड़ा पड़े। यह अवस्था प्रायः जाड़े के दिनों में होती है।

गलबल्ल—संज्ञा पुं० [प्रनु०] [वि० गलबलिया] कोलाहल। खलबली। गड़बड़ी। उ०—(क) गलबल सब नगर परधो प्रगटे यदुबंशी। द्वारपाल इहै सूर ब्रह्म ग्रंथी।—मूर (शब्द०)। (ख) गोपद पयोधि करि होलिका ज्यों लाई लंक निपट निसंक पर पुर गलबल भो।—तुलसी (शब्द०)।

गलबलिया—वि० [हि० गलबल + हया (प्रत्य०)] १. गड़बड़ी करनेवाला। २. बड़बड़ानेवाला। बातूनी।

गलबली—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] दे० 'गलबल'।

गलबहियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० गला + बाँह] दे० 'गलबाँही'।

गलबाँही—संज्ञा स्त्री० [हि० गला + बाँह] गले में बाँह डालना। कंठालिगन। उ०—सुमन कुंज बिहरत सदा दे गलबाँही माल। बंदी चरन सरोज तिन जुगुल लाडिली लाल।—(शब्द०)।

गलबा—संज्ञा पुं० [प्र० गलबह] १. प्रबलता। प्राचुर्य। आधिक्य। २. प्रभुत्व। सत्ता। ३. जय। जीत। विजयप्राप्ति। ४. सामूहिक भगडा। मारकाट। बलवा [को०]।

गलमँदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गाल + सं० मुद्रा] १. शिवजी के पूजन, शयन आदि के समय उन्हें प्रसन्न करने के लिये गाल बजाने की मुद्रा। गलमुद्रा। २. गाल बजाना। व्यर्थ बकवाद या गप करना। उ०—इत नृप मूढन की गलमँदरी। मिटन न पाई जब तक सगरी।—विश्राम (शब्द०)।

गलमुच्छा—संज्ञा पुं० [सं० गाल + हि० मूछ] दोनों गालों पर के बढ़ाए हुए बाल। गलमुच्छा।

विशेष—इसे कुछ लोग बोक से रख लेते हैं। ऐसे लोग टोढ़ी के बाल तो मुँड़वा डालते हैं, पर गालों के बाल बढ़ने देते हैं।

गलमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० गल + मुद्रा] शिवजी के पूजन, शयन आदि के समय उनको प्रसन्न करने के लिये गाल बजाने की मुद्रा। गलमँदरी।

गलमेखला—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंठ का हार [को०]।

गलबाना—क्रि० सं० [हि० 'गलाना' का प्रे० रूप] गलाने का काम कराना। गलाने में लगाना।

गलवार्त—वि० [सं०] १. गले के द्वारा जीविका अर्जित करनेवाला। २. गले की क्रिया में निपुण। चाटुकार। ३. खाने और पचाने-वाला। वंदुस्त। स्वस्थ [को०]।

गलबिद्रधि—संज्ञा पुं० [सं०] गले का रोग। सूजन आदि।

गलवत—संज्ञा पुं० [सं०] मोर। मयूर [को०]।

गलशुद्धिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गलशुद्धिका] दे० 'गलशुद्धी' [को०]।

गलशुद्धी—संज्ञा स्त्री० [सं० गलशुद्धी] १. जीभ के आकार का मांस का एक छोटा टुकड़ा जो प्राणियों के गले के अंदर जीभ की जड़ के पास होता है। छोटी जबान या जीभ। जीभी। कोमा।

विशेष—शब्द का उच्चारण करने में यह प्रधान सहायक है। इससे श्वास की नलियों की रक्षा होती है और उनमें खाने पीने की चीजें नहीं जाने पातीं। पुरुषों में यह अंश आध इंच से कुछ बड़ा और स्त्रियों में कुछ छोटा होता है। बाल्यावस्था में यह बहुत छोटा रहता है; पर युवावस्था में दो तीन वर्षों के अंदर ही इसका आकार दूना या तिगुना हो जाता है। युवावस्था में जो आवाज कड़ी हो जाती है और जिसे 'कंठ फूटना' कहते हैं, उसका प्रधान कारण इसी के रूप और आकार का परिवर्तन है। कुछ पशुओं में यह बहुत नीचे की ओर फेफड़े की नलियों के पास होता है। साधारणतः पक्षियों में दो और कभी कभी तीन तक गलशुद्धियाँ होती हैं।

२. एक रोग।

विशेष—इसमें कफ और रक्त के विकार के कारण तालु की जड़ में सूजन हो जाती है और खाँसी तथा साँस की अधिकता हो जाती है।

गलशोथ—संज्ञा पुं० [सं०] जुकाम आदि के कारण गले के भीतर होनेवाली पीड़ा या सूजन [को०]।

गलसिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गल + स्त्री] कंठश्री नाम का गहना जो गले में पहना जाता है।

गलसुष्मा^१—संज्ञा पुं० [हि० गाल + सूजना] एक रोग जिसमें गाल के नीचे का भाग सूज जाता है।

गलसुष्मा^२—संज्ञा पुं० [हि० गला + सूजना] पशुओं का एक रोग जिसमें उनके गले में सूजन हो जाती है और उन्हें खाँसी होने लगती है।

गलसुई—संज्ञा स्त्री० [सं० गाल + सुई] गालों के नीचे रखने का एक छोटा, गोले और कोमल तकिया। गलतकिया। उ०—कुसुम गुलाबन की गलसुई। बरणी जाय न नयनन छुई।—केशव (शब्द०)।

गलस्तन—संज्ञा पुं० [सं०] [मज्ञा गलस्तनी] स्तन के आकार की वे पतली धेलियाँ जो एक प्रकार की बकरियों के गले के दोनों ओर लटकती रहती हैं। गलधन।

गलस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकरियों की एक जाति जिनके गले के पास स्तन के आकार की दो छोटी पतली धेलियाँ लटकती रहती हैं।

गलस्वर—संज्ञा पुं० [सं० गल + स्वर] प्राचीन काल का एक बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता था।

गलहँड़ा—संज्ञा पुं० [सं० गलस्तन, प्रा० गलस्थल, गलधन > हि० गलहँड; अथवा हि० गला + हंडा = एक बरतन] गले का एक रोग जिसमें गले में धेली सी लटक आती है। धेधा।

गलहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. अर्धचंद्र। गर्दनियाँ। २. अर्धचंद्र के आकार का एक बाण [को०]।

गलहस्ति—वि० [सं०] १. गले से पकड़ा हुआ। २. गर्दनियाँ दिया हुआ। अर्धचंद्र दिया हुआ [को०]।

गलाहस्त्य—संज्ञा पु० [मं०] घर्षनंदा या गर्दनिया देना [को०] ।

गलाहार—संज्ञा पु० [सं०] गले का हार । कंठहार । उ०—जानता गलाहार हूँ जंजीर को भी ।—मिनन०, पृ० ३० ।

गलाही—संज्ञा स्त्री० [मं० गला+ही (प्रत्य०)] नाव का वह अगला धीर ऊपर का भाग, जहाँ उसके दोनों पार्श्व आकर समाप्त होते हैं ।

गलाङ्कुर—संज्ञा पु० [मं० गलाङ्कुर] एक प्रकार का रोग जिसमें गले का कौवा बढ़ जाता है [को०] ।

गला—संज्ञा पु० [मं० गलक, प्रा० गलप्र] १. शरीर का वह अवयव जो सिर को घड़ से जोड़ता है । गर्दन । कंठ ।

विशेष—इसके अंदर एक पतली नासी रहती है जिससे होकर भोजन किया हुआ पदार्थ तथा श्वास द्वारा खींची हुई वायु पेट में जाती है । नाभिमूल से नाद के साथ उठी हुई वायु इसी में से होकर मुख के भिन्न भिन्न स्थानों में टकराती हुई भिन्न भिन्न प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करती है ।

यौ०—गलाफाड़ । गलेबाज । गलाही ।

मुहा०—गला घाना = गले के अंदर छाला पड़ना । सूजन होना ।

गला उठाना या गला करना—बच्चों के गले में उँगली डालकर या कमाल बाँधकर उनके बड़े हुए कौवे को ऊपर को दबाना जिसमें वह अपने ठिकाने पर आ जाय । घंटी बैठाना ।

गला कटना—(१) गर्दन कटना । घड़ से मिर जुदा होना ।

(२) अनुचित हानि पहुँचाना । किसी की विरुद्ध कार्रवाई से नुकसान पहुँचाना । गला कटवाना या कटाना = (१) लोगों के कहनेसे या अपनी इच्छासे कोई ऐसा काम करना जिससे अपनी बड़ी हानि हो । (२) जान देना । प्राण देना । गला काटना =

(१) गर्दन काटना । घड़ से सिर जुदा करना । (२) अत्यंत कष्ट पहुँचाना । बहुत दुःख देना । अन्याय करना । जैसे—वह लोगों का गला काट काटकर रुपया इकट्ठा कर रहा है ।

(३) गूरन, बड़े आदि का गले के अंदर एक प्रकार की जलन और भुनचनाहुट उत्पन्न करना । गले के अंदर कनकनाना ।

जैसे—यह गूरन बहुत गला काटता है । (४) विरुद्ध कार्रवाई करके हानि पहुँचाना । बुराई करना । अहित करना । जैसे—

जो पहले मित्र बनते थे, वे ही पीछे गला काटते हैं । गला घुटना = दम रुकना । अच्छी तरह साँस न लिया जाना ।

गला घोटना = (१) गले को ऐसा दबाना कि साँस रुक जाय ।

टँटुप्पा दबाना । (२) जबरदस्ती करना । जबर करना । जैसे—गला घोटकर कोई किसी से कबतक काम ले सकता है ।

(३) भार डालना । गला दबाकर भार डालना । गला ढालना—कंठ से सुरीला स्वर निकलना । आवाज का सुरीला होना । जैसे—उसका गला मूब चलता है । गला सूटना =

पीछा छूटना । पल्ला छूटना । छुटकारा मिलना । निस्तार होना । किसी अशुचिकर या इच्छाविरुद्ध बात का दूर होना ।

बचाव होना । जैसे—उसको ५) दिए तब जाकर गला छूटा ।

गला छुटाना या गला छुड़ाना—पीछा छुड़ाना । पल्ला छुड़ाना ।

पिड़ छुड़ाना । बचाव करना । किसी ऐसी बात को दूर करना

जिससे चिन्ता भ्रंश, हैरानी, दबाव या दुःख में पड़ा हो ।

जैसे—(क) उसे कुछ देकर गला छुड़ाओ । (ख) कल वह रास्ते में मुझसे ऐसा उलझ पड़ा कि गला छुड़ाना कठिन हो गया । गला जोड़ना = (१) प्रीति या मैत्री प्रकट करने के लिये एक दूसरे के गले में हाथ डालना । मिलना । मैत्री करना । (२) साथ देना । गला टोपना = दे० 'गला दबाना' । गला दबाना = (१) गले को इतने जोर से पकड़ना कि साँस रुकने लगे । (२) गला दबाकर भार डालना । (३) जबरदस्ती करना । अनुचित दबाव डालना । जैसे—(क) उसने लोगों का गला दबाकर रुपया वसूल किया । (ख) जब वह नहीं जाना चाहता, तब क्यों उसका गला दबाते हो । गला पकड़ना = (१) गले में बैठना । किसी खाई हुई वस्तु का गले में चिपकना या रुकना तथा जल्दी नीचे न उतरना । जैसे—सूखा सतू गला पकड़ता है । (२) कंठावरोध करना । कंठ से स्पष्ट शब्द न निकलने देना । गला पड़ना या बैठना = (१) गले के अंदर सूजन होने या कफ आदि रहने तथा जोर से बहुत बोलने या गाने के कारण शब्द मुँह से स्पष्ट न निकलना या घबराहट के साथ निकलना । जैसे—रात भर गाते गाते इसका गला बैठ गया । (२) गले के अंदर सरदी के कारण छोटी छोटी गिच्छियाँ निकलना जिससे खाने पीने में बहुत कष्ट होता है । गला फटना = गला दुखना । गले के अंदर दर्द होना । जैसे—चिल्लाते चिल्लाते उसका गला फट गया । गला फँसना = बंधन में पड़ना । लाचार होना । मजबूर होना । कोर दबाना । विवश होना । जैसे—जब आदमी का गला फँसता है, तब सब कुछ करने को तैयार हो जाता है । गला फँसाना = (१) दाँव में कसना । बंधन में डालना । बन्धीभूत करना । (२) आपत्ति में फँसाना । संकट में डालना । मुश्किल में डालना । जवाबदेही में डालना । श्रेष्ठ आदि का बोझ ऊपर डालना । जैसे—हमारा गला फँसाकर आप बचते बने । गला फँसना = दे० 'गला फँसाना' । गला फाड़ना = इतना चिल्लाना कि गला दुखने लगे । जोर भर आवाज लगाना । जैसे—(क) वह इतना गला फाड़ फाड़कर चिल्ला रहा था, पर तुमने न सुना । (ख) क्यों व्यर्थ गला फाड़ते हो, वह नहीं बोलेगा । गला फिरना गले का तान और तय पर चलना । गले से स्वर का तान, स्वर और गिटकरी के अनुसार निकलना । गला फूँचना = उकता जाना । दम फूलना । गला बँधना = (१) मजबूर होना । बंध जाना । (२) विवश होना । गला बँधाना = दे० 'गला फँसाना' । गला बाँधना = (१) बंधन में डालना । मजबूर करना । (२) दे० 'गला फँसाना' । गला बाँधकर धन जोड़ना = खाने पीने का कष्ट उठाकर धन इकट्ठा करना । गला रेतना = (१) अत्यंत कष्ट पहुँचाना । अधिक और असह्य दुःख देना । (२) अहित करना । बुराई करना । विरुद्ध कार्रवाई करके हानि पहुँचाना । गले का ढोलना = (१) गले का बोझ । (२) दे० 'गले का हार' । गले का बोझ = व्यर्थ का भार । ऐसी वस्तु जिसका रहना बुरा लगता हो । गले का हार = (१) इतना प्याग (व्यक्ति या वस्तु) कि पास से कभी जुदा न किया जाय । अत्यंत प्रिय । चिर

सहचर । जैसे—इस समय वह राजा साहब के गले का हार हो रहा है ।

क्रि० प्र०—करना । —बनना । —बनाना । —होना ।

(२) पीछा न छोड़नेवाला । लाल न चाहने पर भी सदा पास में बना रहनेवाला । वह जो बोक भासूम हो । जैसे—पहले तो उसे परचाते अच्छा लगा, अब वही गले का हार हो रहा है ।

क्रि० प्र०—करना । —बनना । —बनाना । —होना ।

(बात) गले के नीचे उतरना या गले उतरना = (बात) मन में बैठना । जी में जँचना । ध्यान में आना । समझ में आना । स्वीकृत होना । जैसे—उसे इतना समझाया जाता है, पर उसके गले के नीचे उतरता ही नहीं । गले उतारना = स्वीकार कराना । गले या गले पड़ना = (१) इच्छा के विरुद्ध प्राप्त होना । न चाहने पर भी मिलना । मरने पड़ना । जैसे—(क) गले पड़ा डोल बजाए सिद्ध । (ख) गए निमाज छुड़ाने, रोजा गले पड़ा । (ग) (२) सिर पड़ना । प्राप्ति आना । भोगने या सहने के लिये सामने उपस्थित होना । उ०—होती अनजान तो न जानती इतीक बिधा मेरे जिय जान मेरो जानिबो गले परधी ।—देव (शब्द०) । गले पर छुरी चलाना = अपराध कराना । उ०—वेबगों पर छुरी चला करके, क्यों गले पर छुरी चलाते हो ।—चुभते०, पृ० ३४ । गले पर छुरी करना = प्रहित करना । हानि करना । उ०—तो छुरी वेडंग आपस में चला, मत गले पर जाति के फेरो छुरी ।—चुभते०, पृ० ३५ । (अपने) गले बाँधना = (१) संग लगाना । सिर पर ले लेना । (२) व्यथ पास में रखना । निष्प्रयोजन लिए रहना । जैसे—इस टूटे गिलास को लेकर क्या हम गले बाँधेंगे । (३) इच्छा के विरुद्ध किसी से विवाह करना । (दूसरे) के गले बाँधना = दूसरे की इच्छा के विरुद्ध उसे देना । जबरदस्ती देना । दूसरे के न चाहने पर भी उसे लेने के लिये विवश करना । जैसे—जब वह इसे नहीं लेना चाहता, तो क्यों उसके गले बाँधते हो । गले मड़ना = (१) किसी की इच्छा के विरुद्ध उसे देना । जबरदस्ती देना । जैसे—वह दूकानदार टूटी फूटी चीजें लोगों के गले मड़ता है । (२) किसी की इच्छा के विरुद्ध उसपर किसी कार्य का भार देना । दूसरे के न चाहने पर भी उसे कोई काम सौंपना । (३) किसी की इच्छा के विरुद्ध उसके साथ किसी को ब्याहना । जैसे—वह कानी ली उसके गले मड़ी गई । गले मिलना = गले पर हाथ रखकर प्रालिप्त करना । गले लगना = (१) मिलना । गले मिलना । गले में हाथ डालना । (२) गले पड़ना । इच्छा के विरुद्ध प्राप्त होना । गले लगाना = (१) गले मड़ना । दूसरे की इच्छा के विरुद्ध उसे देना । दूसरे के न चाहने पर भी उसे लेने के लिये विवश करना । जैसे—यदि आप इसे नहीं लेना चाहते, तो कोई आपके गले नहीं लगाता है । (२) प्यार से मिलना या भेंटना । (३) आत्मीय बनाना । अपनाना ।

२. गले का स्वर । कंठस्वर । जैसे—उसे भगवान ने अच्छा गला

दिया है । ३. अंगरखे, कुरते आदि की काट में कपड़े का वह भाग जो गले पर पड़ता है । गरेबान ।

क्रि० प्र०—काटना । —कटा करना ।

४. बरतन का वह तंग या पतला भाग जो उसके मुँह के नीचे होता है । जैसे—घड़े का गला, लोटे का गला । ५. चिमनी का कल्ला । बनर ।

गलाऊ—वि० [हि० गलना] जो गल जाय । जो गल सके । गलने-वाला । जैसे—गलाऊ दाल ।

गलाकट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० गला + काटना] गला काटना । भारी नुकसान पहुँचाना । उ०—मिलशाही सबकी गलाकट्टी कर रही थी ।—मान०, भा० १, पृ० ३३० ।

गलाना—क्रि० सं० [हि० गलना का सकर्मक रूप] १. किसी वस्तु के संयोजक अणुओं को पृथक् पृथक् करके उसे नरम, गीला या द्रव करना । जैसे—पानी में बत्ताया गलाना, घाँच पर सोना, चाँदी, रंगा आदि गलाना, खोलते पानी में दाल, चावल गलाना इत्यादि ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

२. नरम या मुलायम करना । पुलपुला करना । जैसे—यह दवा फोड़े को गला देगी । ३. अणुओं को पृथक् पृथक् करके किसी वस्तु को धीरे धीरे लुप्त करना । बहुत थोड़ा थोड़ा करके क्षय करना । जैसे—यह दवा तिल्ली को गलाती है । ४. (रूपया) खर्च कराना । जैसे—तुमने हमारा बहुत रूपया गलाया ।

गलानि—(गु) संज्ञा स्त्री० [सं० गलानि] १. दुःख या पछतावे के कारण खिन्नता । अपने किए का पछतावा या खेद । अपनी करनी पर लज्जा । उ०—(क) गरइ गलानि कुटिलि कैकेई । काहि कहइ केहि दूषण देई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) तुम गलानि जिय जनि करहु, समुक्ति भातु करतूति । तात कैकहि दोष नहि, गई गिरा मति भूति ।—तुलसी (शब्द०) । २. खेद । दुःख । परिताप । उ०—(क) राम सुपेमहि पोषत बानी । हरत सकल कलि कलुष गलानी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) भ्रमर नाग मुनि मनुज सपरिजन विगत विषाद गलानि ।—तुलसी (शब्द०) ।

गलानिल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०] ।

गलार^१—संज्ञा पुं० [?] एक पेड़ का नाम ।

गलार^२—वि० [हि० गाल] १. थोड़ी सी बात के लिये बहुत अंडबंड बकनेवाला । झगड़ातू । २. गलबलिया । गप्पी ।

गलार^३—संज्ञा पुं० मैना वली ।

गलारा—(गु) संज्ञा पुं० [हि० गली] गलियारा । गली कूचा । उ०—नाम तेरे की ज्योति जगाई भए उजियारे भवन गलारे ।—संत रवि०, पृ० १३० ।

गलारी—संज्ञा स्त्री० [सं० गलप, प्रा० गल्ल] गिलगिलिया नाम की चिड़िया ।

गलाघट—संज्ञा स्त्री० [हि० गला + घट (प्रत्य०)] १. गलने का भाव या क्रिया । २. वह वस्तु जो दूसरी वस्तु को गलावे । जैसे—सोडागा, नोसादर आदि ।

गल्लाबिल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मत्स्य । गलामिल [को०] ।

गल्लि—संज्ञा पुं० [सं०] हृष्ट पुरुष परंतु गरिब्यार वैज । मट्टर वैज [को०] ।

गलित—वि० [सं०] १. गला हुआ । २. अधिक बिन का होने के कारण नरम पड़ा हुआ । जिसमें नएपन की चुस्ती और कड़ाई न हो ।

यो०—**गलितकुष्ठ** = एक प्रकार का कीड़ा । **गलितदंत** = दांत से रहित । **गलितनख** = जिनके नख गल गए हों । **गलितनखदंत** = बाढ़व्य के कारण जिसे नख और दांत न हों । नख और दांत से रहित । **गलितनेत्र** = दे० 'गलितनयन' । **गलितयौवना** ।

३. पुराना पड़ा हुआ । जीर्ण शीर्ण । खंडित । ४. चुपचा हुआ । च्युत । ५. नष्ट भ्रष्ट । ६. परिगलव । परिपुष्ट । उ०—दान लैहीं सब अंगनि को । अति मद गलित तालफल से गुरु युगल उरोज उत्तंगनि को ।—मूर (शब्द०) । ७. गला हुआ । मिला हुआ । एकता । उ०—मैं तो और कछु नहि चाहूँ कहो और क्या कीजै । दाढ़ू एक गलित गोविंद सो इहि बिधि प्राण पनीजै ।—दाढ़ू०, पृ० ५६६ ।

गलितक—संज्ञा पुं० [गं०] एक प्रकार का नृत्य रूप । नृत्य की एक मुद्रा । अगभंगी [को०] ।

गलितकुष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] आठ प्रकार के कुष्ठों में से एक ।

विशेष—इसमें शरीर के अवयव, जैसे—हाथ, पैर की उंगलियाँ आदि, सड़ने और कट कटकर गिरने लगते हैं और उनमें कीड़े पड़ जाते हैं । यह कुष्ठ सबसे अनाथ माना गया है ।

गलितनयन—वि० [सं०] जिसकी आँखों में देखने की शक्ति न रह गई हो । अंधा [को०] ।

गलितयौवना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका यौवन डल गया हो । डलती जवानी की स्त्री । उ०—आज से हमारा काम वही गलितयौवना और चपटी नाकवाली करेगी ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

गलितांग—वि० [गं० गलिताङ्ग] जिसके अंग गल गए हों । उ०—गलितांगों का गंध लगाए आया फिर तू अलख जगाए ।—हि० भा० प्र०, पृ० ११५ ।

गलिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गली] चपली या जाँते के ऊपर के पाट में वह छेद जिसमें से दबने या गोसने के लिये दाना डाला जाता है ।

गलिया^२—वि० [सं० गल्लि, गनि, हि० गल्लिघार] मट्ठर । सुस्त । (बैल आदि चोपायों के लिये) ।

गलियारा—संज्ञा पुं० [हि० गली + घारा (प्रत्य०)] [स्त्री० घत्पा० गलियारी] पतली या तंग छोटी गली ।

गलियारी—संज्ञा स्त्री० [हि० गलियारा] पतला मार्ग । गली ।

गलिहरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गलियारी] दे० 'गलियारी' । उ०—गलिहरिया में रोने लगे फिर परतिगिया लख मुसकाय ।—कबीर श०, पृ० ३७ ।

गली—संज्ञा स्त्री० [गं० गल] १. घरों की पंक्तियों के बीच से हो कर गया हुआ तंग रास्ता जो सड़क से पतला हो । खोरी । कूचा ।

उ०—(क) बलवान है श्वान गली तेहि लाजे न गाल बजावत सो है ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—गली कूबों में कुत्ते लोटना = रोने लगे रह जाना ।

उ०—हे है, अब यहाँ रह क्या गया, गली कूबों में कुत्ते लोटते हैं ।—फिसाना०, भा० १, पृ० ४ । गली गली भूँसते फिरना = व्यर्थ इधर उधर घूमना । उ०—गली गली भूँसत फिरे दूक न डारे कोय ।—कबीर सा०, मं०, पृ० १७ । गली गली मारे मारे फिरना = (१) इधर उधर व्यर्थ घूमना । (२) जीविका के लिये इधर से उधर भटकना । (३) चारों ओर अधिकता से मिलना । सब जगह दिखाई पड़ना । साधारण वस्तु होना । जैसे,—ऐसे वैद्य गली गली मारे मारे फिरते हैं । गली भँकाना—इधर उधर हेरान करना । खोज में फिराना । जैसे,—तुमने हमें कितनी गनियाँ भँकाईं । गली कमाना = (१) गली में झाड़ू देना । (२) मेहतर का काम करना । पाखाना साफ करना ।

२. महल्ला । महाल । जैसे,—कचोड़ी गली, सकरकंद गली ।

गलीचा—संज्ञा पुं० [फ्रा० गालीचह्, (तु० कालीचह्, कालीनचह्, < तु० काली या कालीन से)] १. एक प्रकार का खूब मोटा बुना हुआ बिछोना जिमपर रंगबिरंगे बेल बूटे बने रहते हैं और घने बालों की तरह सूत निकले रहते हैं । दे० 'कालीन' ।

विशेष—अब तक फारस, दक्षिण आदि से ऊन के गलीचे आते हैं । अब यह सूती भी बनाया जाता है ।

२. कहारों की बोली में कंकड़ीली भूमि ।

गलीज^१—वि० [अ० गलीज] १. गंदला । भंला । २. नापाक । अशुद्ध । अपवित्र ।

गलीज^२—संज्ञा पुं० १. गूड़ा कचकाट । गंदी वस्तु । भंला । गंदगी ।

यो०—गलीजखाना = गूड़ाखाना ।

२. पाखाना । मल । बिप्टा ।

गलीत^१—वि० [सं० गलित] जीर्णशीर्ण । गलित । दुर्दशाग्रस्त ।

गलीत^२(५)—वि० [अ० गलीज] १. भंला कुचला । मलिन । गंदा । दुर्दशाग्रस्त । उ०—मीत न नीति गलीत हूँ जो धरिये धन जोरि । खाए खरचे जो जुरे तो जोरिये करोरि ।—बिहारी (शब्द०) । २. गलत । मिथ्या ।

गलु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गल' [को०] ।

गलुआ^१—वि० [हि० गलना] गलने या भरनेवाला । उ०—धुँधटा बदरिया उनई रसिया, गलुआ बरस गए मेंह, अब पुरवैया के बादर ऊन आए ।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० १५६ ।

गलुका^१(५)—संज्ञा पुं० [हि० गला > गलुका] गाल में भरने की वस्तु । आनंद या स्वाद देनेवाला पदार्थ उ०—ये पंचो चाहें गलुका, ये पंच करें पुनि हलुका ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १४५ ।

गलू—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पत्थर या नग जिससे प्राचीन काल में मद्यपात्र आदि बनते थे ।

गलेगंड—संज्ञा पुं० [सं० गलेगरण्ड] एक प्रकार की चिड़िया जिसके गले में मांस की थैली लटकी रहती है [को०] ।

गलेफ—संज्ञा पुं० [फ्रा० गिलाफ़] १. दे० 'गिलाफ'। २. दे० 'गिलेफ'।
गलेबाज—वि० [हि० गला + बाज] जिसका गला अच्छा चलता हो। अच्छा गानेवाला।

गलेस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अज्ञा। बकरी [को०]।

गलेचा—संज्ञा पुं० [हि० गलीचा] दे० 'गलीचा'।

गलोना—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का सुरमा जो कंधार और काबुल से आता है।

गलौ—संज्ञा पुं० [सं० गलौ] चंद्रमा। उ०—गंग गाइ गोमती गली ग्रहपति अरु सुरगिर।—सूदन (शब्द०)।

गलौआ—संज्ञा पुं० [हि० गाल] बंदरों के गालों के अंदर की धेली जिसमें वे अपने खाने की वस्तु भर लेते हैं।

गलौघ—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग।

विशेष—इसमें रोगी के गालों के अंदर एक प्रकार की सूजन हो जाती है और उसे सस लेने में कठिनाता होती है। वैद्यक में यह रोग कफ और रक्त के प्रकोप से माना गया है। इसमें ज्वर भी आता है।

गल्प—संज्ञा स्त्री० [सं० जल्प या कल्प] १. मिथ्या प्रलाप। गप्प। २. डींग। शेखी। ३. मृदंग के बारह प्रबंधों में से एक। ४. छोटी छोटी कहानियाँ।

गल्भ—संज्ञा पुं० [सं०] घृष्ट। डीठ। अभिमानी। अहंकारी [को०]।

गल्यारा—संज्ञा पुं० [हि० गली + आरा (प्रत्य०)] दे० 'गल्यारा'।

गल्ला^१—संज्ञा पुं० [सं०] गाल। कपोल।

गल्ला^२—संज्ञा स्त्री० [हि० गाल या गं० गल्प, प्रा० गल्ह = बातचीत; तुल० फ्रा० गिला] बात। (पंजाबी) उ०—इसी गल्ल धरि कन्न में बकती मुसकाना। हमनू वृक्षत तुसी क्यों किया पणाना।—सूदन (शब्द०)।

गल्लाई^१—वि० [हि० गल्ला] गल्ले के रूप में।

गल्लाई^२—संज्ञा पुं० १. वह खेत जिसका लगान जिस में दिया जाता हो। बटाई। २. खेत का वह लगान जो उसकी उपज के रूप में काश्तकारों से लिया जाता हो।

गल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मद्य पीने का पात्र। २. चक्क। पुस्तराज। नीलमणि [को०]।

गल्लचातुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गलतकिया। गल्लसुई [को०]।

गल्ला^३—संज्ञा पुं० [अ० गुल, हि० गुल्ला; जैसे हल्ला गुल्ला] शोर। होरा। उ०—हल्ला परघो अवध महल्ला ते महल्ला मध्य गल्ला मच्यो बाहर ह जनम कुमार को।—रघुराज (शब्द०)।

गल्ला^४—संज्ञा पुं० [फ्रा० गल्लह्] झुंड। दल।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः चरनेवाले पशुओं के लिये होता है। जैसे,—गाय भैंस का गल्ला। भेड़ बकरियों का गल्ला।

गल्ला^५—संज्ञा पुं० [हि० गोत्र] एक प्रकार का बेत जिसे गोला भी कहते हैं।

गल्ला^६—संज्ञा पुं० [हि० गाल] उतना अन्न जितना एक बार चक्की में पीसने के लिये डाला जाय। कौरी।

गल्ला^७—संज्ञा पुं० [अ० गल्लह्] [वि० गल्लई] १. जोतने बोलने से उत्पन्न होनेवाले पौधों के फल, फूल आदि की उपज। फसल। पैदावार। उपज। २. अन्न। अनाज।

गौ—गल्लाफरोश।

३. वह धन जो दूकान पर नित्य की विक्री से मिलता है। धनराशि। गोलक। ४. मद। फंड। खाता।

गल्लाफरोश—संज्ञा पुं० [फ्रा० गल्लह् फ़रोश] वह दूकानदार जो गल्ला या अन्न बेचता हो। अनाज का व्यापारी। अन्न का विक्रेता।

गल्लो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गली] दे० 'गली'।

गल्लक^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. मद्य पीने का व्याला। प्राचीन काल में यह पात्र गल्ल नामक पत्थर से बनाया जाता था। २. स्फटिक। ३. वैदूर्य मणि।

गल्लह्—संज्ञा स्त्री० [पं० गल्ल] बात। उक्ति। उ०—तिन सुगल्ल अच्छी कहहि।—पृ० रा०, १। १४।

गल्ल^३—संज्ञा स्त्री० [सं० गल्ल, या गल्ल्य प्रा० गल्ल] १. प्रयोजन सिद्ध होने का अवसर। घात। २. मतलब। प्रयोजन। वि० दे० 'गौ'।

मुहा०—गल्ल से = (१) घात देकर। मौका नजवीज कर। (२) धीरे से। चुपचाप। उ०—रावन बान महाभट भारे। देखि सरासन गल्लोहि सिधारे।—तुलसी (शब्द०)।

गल्लन^१—संज्ञा पुं० [सं० गमन] गति। चाल। उ०—पदुमिनि गल्लन हंस गौ दूरी। हस्ती लाजि मेल मिर धूरी।—जायसी श्रं० (गुप्त), पृ० ३२६।

गल्लसना^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गल्लेयणा] अन्वेषण करना। खोजना। उ०—तिहि चढ़ि इंदुं करत गल्लसिया अंतरि जमवा जागू हो।—कबीर, श्रं० पृ० ११२।

गल्ल—संज्ञा पुं० [सं० गल्ल] एक बंदर का नाम जो रामचंद्र जी की सेना में था।

गल्लण^१—संज्ञा पुं० [सं० गमन, प्रा० गमण] दे० 'गवन'। उ०—गिण शत्रु मित्र मारण गवण शत्रु दास उदाम रह।—र० रू०, पृ० ६।

गल्लना^१—संज्ञा पुं० [देश०] घास। तृण।

गवन^१—संज्ञा पुं० [सं० गमन] १. प्रस्थान। प्रयाण। चलना। जाना। उ०—सुनि बन गवन कीन्ह रघुनाथा।—तुलसी (शब्द०)। २. बधू का पहले पहल पति के घर जाना। गवना। गोना।

गवनचारा^१—संज्ञा पुं० [सं० गमन + आचार] बधू का घर के घर जाना। गोना। उ०—गवनचार पचावति सुना। उठा घमकि जिय औ सिर घुना।—जायसी (शब्द०)।

गवनना^१—क्रि० अ० [सं० गमन] जाना। उ०—(क) पुनि रानी हंसि कूल पूछा। कित गवनेहु पीजर करि छूछा।—जायसी (शब्द०)। (ख) गवने तुरत वहाँ रिषिराई। जहाँ स्वयंबर भूमि बनाई।—तुलसी (शब्द०)।

गवनहरी, गवनहारी—संज्ञा स्त्री० [सं० गायन, हि० गवन + हारी

(प्रत्य०)] विशेषर गानेवाली स्त्री । गायिका । उ०—
गृहस्थियों के गाने से मयुरी तब गवनहारिनी की होनी ।—
प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३५३ ।

गवना—संज्ञा पु० [सं० गवन] दे० 'गोना' ।

गवय—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० गवयी] १. नील गाय । उ०—
उस नाद की सुनकर गवय घोर गज भी भीत होकर पर्वत
के भविष्य विचार मायबर भागत है ।—रघुमा०, पृ० ७ ।
२. एक वृद्ध जो रामचंद्र जी की सेना में था । ३. एक वृद्ध
। नाम जिसके प्रथम चरण में १६ भाजाएँ होती हैं और ११
मात्राओं पर विराम होता है । दूसरे चरण में दोहा होता है ।
जैसे,—सूरभी बेगम बसै नील नद माह । मनो नगर मृण्मय
को सोहन मुंदर छोड़ ।

गवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोरी] घबिया । गीरी ।

गवरी^(१)—संज्ञा पु० [फा० गोरी = गोर का निवासी] गोरी ।
गुलामद गोरी । उ०—मात बेर प्रधिराज मेह गवरी माह
गये ।—ह० शमी, पृ० ६३ ।

गवर्नमेंट—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. राज्य । शासनपद्धति । २. शासक-
मंडल । सरकार ।

गवर्नमेंटी—[अ०] गवर्नमेंट संबंधी ।

गवर्नर—संज्ञा पु० [अ०] १. शासक । हाकिम । २. किसी प्रांत का
वह प्रधान हाकिम जिसे उस प्रदेश पर राजा या प्रजा ने चुना
हो । ३. वह प्रधान नायक जिसे राजा या मंत्रिमंडल किसी
दण्ड में शासन करने के लिये नियुक्त करे । राज्यपाल ।
४. आचार्य से किसी प्रेसिडेन्सी (प्रांत) का वह प्रधान
मंत्रिण जो प्रेसिडेन्ट या गवर्नर या मंत्रिमंडल द्वारा गवर्नर
जनरल । अभीम रहकर शासन करने के लिये नियुक्त किया
जाता या शासनार्थ में बर्बर, मद्रास और बंगाल में गवर्नर
• रह चुके हैं ।

गौ०—गवर्नर जनरल ।

गवर्नर जनरल—संज्ञा पु० [अ०] किसी देश का सबसे बड़ा वह
हाकिम जिसे राजा या मंत्रिमंडल ने नियुक्त किया हो और
जिसे वह राज्य में एक गवर्नर और लेफ्टिनेंट गवर्नर हों ।
गवर्नर जनरल ।

विशेष—जैन भागत वर्ग के गवर्नर जनरल, जो संपूर्ण भागतवर्ग
में शासन करने थे और जिनके मातहत बर्बर, मद्रास और
बंगाल । गवर्नर तथा सयुक्त प्रांत, पंजाब आदि के गवर्नर
अथवा लफ्टिनेंट गवर्नर थे । गवर्नरी की नियुक्ति एंग्लोइंडियन
राज्यपाल थे, पर लीफ्टिनेंट गवर्नर गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त
जाते थे । बाद में लीफ्टिनेंट गवर्नर का पद समाप्त कर दिया ।
गवर्नर जनरल एवं लीफ्टिनेंट या मंत्रिमंडल द्वारा शासन करने
वाले नागरिकों के शासन के अनुसार अब यह पद समाप्त
कर दिया गया है । श्री श्री० राजगोपालाचारी भारत के
प्रथम गवर्नर जनरल या गवर्नर थे ।

गवर्नरी—संज्ञा स्त्री० [अ० गवर्नर + ई (प्रत्य०)] १. जहाँपर गवर्नर
शासन करता हो । प्रेसिडेन्सी । प्रांत । २. शासन । अधिकार ।

गवर्मेंट—संज्ञा स्त्री० [अ० 'गवर्नमेंट'] दे० 'गवर्नमेंट' ।

गवर्मेंटी—वि० [अ० गवर्नमेंट] सरकार की । गवर्नमेंटी ।

गवल—संज्ञा पु० [सं०] १. जगनी भैंसा । अरना । २. भैंसे की सींग
(सि०) ।

गवहियौ—संज्ञा पु० [सं० गोघ्न = प्रतिघ्न] प्रतिघ्न । मेहमान ।

गवहियौ^(२)—वि० [हि० गवही] ग्रामीण । गाँव का । उ०—
बिचारे भोले गवहियें और अपढ़ ठग लिए जाते हैं ।—प्रेमघन०,
भा० २, पृ० ५३ ।

गवर्ना—क्रि० [सं० गवन, हि० 'गवन' का प्र० रूप] खो देना ।
खोना ।

गवा^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि० गो + गाय] उ०—नाना वर्ग गवा
उनका एक वर्ग दूध ।—दक्खिनी, पृ० १८ ।

गवाक्ष—संज्ञा पु० [सं०] १. छोटी चिड़की । गोया । भरोखा । २.
एक वृद्ध का नाम जो रामचंद्र की सेना का सेनापति था ।

गवाक्षित—वि० [सं०] चिड़की या भरोखे से युक्त । खिड़कीवाला
(की०) ।

गवाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उद्वायन । २. एक प्रकार की ककड़ी ।
३. महारा या मिहोर नाम का पद । ४. अपराजिता लता ।
विष्णुक्रता ।

गवाख^(२)—संज्ञा पु० [सं० गवाक्ष] दे० 'गवाक्ष' ।

गवाख्य—संज्ञा पु० [सं० गवाक्ष] दे० 'गवाक्ष' । उ०—पुर मंदिर
भीट्टे श्री गवाख्य ।—ह० रामो, पृ० १६ ।

गवाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मछली (की०) ।

गवाल्लु^(३)—संज्ञा पु० [सं० गवाक्ष] दे० 'गवाक्ष' ।

गवादन—संज्ञा पु० [सं०] १. गाने की रीति । नगागाह । २. धाम (की०) ।

गवादनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धाम । २. नगागाह । ३. पशुओं को
चारों ओर का पाल । गारा । नार (की०) ।

गवाधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नार । नारा । नारा (की०) ।

गवाना—क्रि० सं० [सं० गवन, हि० 'गवन' का प्र० रूप] खोना ।

गवामयन—संज्ञा पु० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का यज्ञ जो
एक वर्ष में मर्याप्त होता था । दस या बारह महीने में पूरा
होनेवाला एक वैदिक यज्ञ ।

गवार—प्रत्य० [फा०] अधिकतर । गह । अनुसूल । जैसे,—भुशगवार,
नागवार ।

गवारा—वि० [फा०] १. मनभाता । अनुसूल । पसंद । २. गह ।
अंगीकार ।

क्रि० प्र० करना ।—होना ।

गवारिश—संज्ञा स्त्री० [फा०] आपधियों का क्षुर्ण जिनका प्रयोग
पाचन के लिये किया जाय ।

गवालीक—संज्ञा पु० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह मिथ्या भाषण जो
या आदि बोधार्थ के लिये किया जाय ।

गवालूक—संज्ञा पु० [सं०] नील गाय । गवय (की०) ।

गवाराश—वि० [सं०] गोमांस खानेवाला । गोभक्षी ।

गवाशन^२—संज्ञा पुं० १. वह व्यक्ति जो जाति से बहिष्कृत हो। २. चमार। चांडाल [को०]।

गवास^१—संज्ञा पुं० [मं० गवाशन] गोनाशक। कसाई। हत्यारा।
उ०—कासी मगु सुरसरि कमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा।—तुलसी (शब्द०)।

गवास^२—संज्ञा स्त्री० [हि० गाना + घास (प्रत्य०)] गाने का मन। गाने की इच्छा।

गवाह—संज्ञा पुं० [फ्रा०] [संज्ञा गवाही] १. वह मनुष्य जिसने किसी घटना को साक्षात् देखा हो। वह जिसके सामने कोई बात हुई हो। २. वह जो किसी मामले के विषय में जानकारी रखता हो। साक्षी। साखी।

यौ०—गवाह साखी।

मुहा०—गवाह बेना = अपने दावे को सिद्ध करने के लिये प्रमाण-स्वरूप साक्षी उपस्थित करना। गवाह बनाना = (१) साक्षी बनाना। मुकदमे में किसी को गवाही देने के लिये नियत करना। (२) झूठा गवाह बनाना। गवाह ऐनी या रूपत = वह गवाह जिसने घटना अपनी आँखों देखी हो। चश्मदीद गवाह। गवाह समई = वह गवाह जिसने घटना आँखों से न देखी हो और जो सुनी सुनाई बात कहे। चश्मदीद गवाह - वह गवाह जिसने कोई घटना आँखों देखी हो।

गवाही—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] किसी घटना के विषय में किसी ऐसे मनुष्य का कथन जिसने यह घटना देखी हो या जो उसके विषय में जानता हो। साक्षी का प्रमाण। साक्ष्य।

मुहा०—गवाही करना या लिखना = किसी दस्तावेज पर साक्षी के रूप में हस्ताक्षर करना। गवाही बेना = किसी साक्षी का किसी घटना के विषय में अपना इजहार लिखाना।

गविष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथिवी या आकाश से संबंधित कोई वस्तु। वह जो पृथिवी या आकाश का हो। २. रवि। सूर्य [को०]।

गविष्टि^१—वि० [सं०] १. गायों की इच्छा रखनेवाला। २. उत्सुक।

गविष्टि^२—संज्ञा स्त्री० १. इच्छा। आकांक्षा। २. युद्ध करने की इच्छा युद्धलिप्सा [को०]।

गवीधुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गवेधुक'।

गवीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोरवामी। २. विष्णु। ३. माँड़।

गवेजा—संज्ञा पुं० [?] बातचीत। वार्तालाप। उ०—केवट हँसे गो सुनत गवेजा। समुद्र न जानु कुवाँ कर भेजा।—जायसी (शब्द०)।

गवेडु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २. धान्य विशेष [को०]।

गवेधु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गवेधुक'।

गवेधुक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गवेधुका] १. कसेई। कौबिल्ला। वि० दे० 'कसी'।

विशेष—ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार रुद्र देवता के लिये गवेधुक के चर की प्राहुति दी जाती थी। मीमांसा के अनुसार रुद्र को गवेधुक के चर से यज्ञ करने का अधिकार है।

२. एक प्रकार का सर्प [को०]। ३. गेरू। गैरिक [को०]।

गवेरुक—संज्ञा पुं० [सं०] गेरू।

गवेली^१—वि० [हि० गाँव + एल (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० गवेली] गँवार। देहाती। उ०—नागरि बिबिध विनास तजि बसी गवेनिन माहि। मूढो में गनिबी कितू हूठयो दे इठलाहि।—बिहारी (शब्द०)।

गवेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गवीश' [को०]।

गवेष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गवेषण' [को०]।

गवेषण—संज्ञा पुं० [सं०] (हरी हुई गायों के) खोजने का कार्य। २. खोज ढूँढ़। तलाश। ३. गो की इच्छा या चाह [को०]।

गवेषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] खोज। अन्वेषण। तलाश। ध्यानबीन।

विशेष—प्राचीन काल में गायों का सर्वस्व गो थी। जब गो हरी जाती थी या कोई चुरा ले जाता था, तब वे लोग उसे बड़े परिश्रम से ढूँढ़ते थे। वेदों में एलि असुर के गो चुराने और इंद्र का अपनी कुतिया सरमा को उसे ढूँढ़ने को भजने की गाथा इसका उदाहरण है। इसी लिये यह शब्द, जिसका वास्तविक अर्थ गो की इच्छा है, खोज या तलाश के अर्थ में लिया जाता है।

गवेधित—वि० [सं०] जिसके विषय में गवेषणा हुई हो। अन्वेषित [को०]।

गवेपो—वि० सं० [सं० गवेधित्] अन्वेषक। गवेषणा करनेवाला। शोध करनेवाला [को०]।

गवेसना(पु)—संज्ञा स्त्री० [मं० गवेषणा] दे० 'गवेषणा'।

गवेसो—वि० [मं० गवेधित् > गवेसी] गवेषणा करनेवाला। ढूँढ़ने-वाला। उ०—बहाँ से गुरु पावो उपदेसी। अगग पथ जो कहै गवेसी।—जायसी (शब्द०)।

गवैहाँ^१—वि० [हि० गाँव + ऐहा (प्रत्य०)] गाँव का रहनेवाला। ग्रामीण। देहाती।

गवैया^१—वि० [पुं० हि० गायब = गाना + ऐया (प्रत्य०)] गानेवाला। गायक।

विशेष—'गिया' प्रत्यय पूर्वय है। इससे यह क्रिया अथवा धातु के पूर्वय रूप 'गावना' में ही लगता है।

गवैया^२—वि० [हि० गवन या गान + ऐया (प्रत्य०)] गानवाला।

गव्य^१—वि० [सं०] गो से उत्पन्न। जो गाय से प्राप्त हो। जैसे—दूध, दही, घी, गोबर, गोमूत्र आदि। २. गाय बैदी के अंगुल या उपयुक्त [को०]।

यौ०—पंचगव्य।

गव्य^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाय का भ्रूट। गोमूत्र। (पुं०) २. पंचगव्य। उ०—गवाछरी प्रात मुद्र माधय गव्य गृ पचनरा सी।—तुलसी (शब्द०)। ३. गोदुग्ध [को०]। ४. गोचर भूमि। चरागाह [को०]। ५. ज्या। प्रजा [को०]। ६. रंगने की वस्तु। पीत रंग। गोमोचन [को०]।

गव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गायों का भ्रूट। २. दो लोग की एक माप। गव्यूति। ६. घनुष की डोरी। ज्या। ४. गायोचन [को०]।

गव्यु—वि० [सं०] १. नाय या गोदुग्ध का इच्छुक। २. लड़ाई चाहने-वाला। युद्धप्सु [को०]।

गव्यूत—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गव्यूति'।

गव्यूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दो कोस का एक मान। दो हजार

धनुष की दूरी । २. जगगाह । ३. दो बीज या एक बीज की दूरी (को०) ।

गश—संज्ञा पु० [प्र० गशी से प्रा० गश] पूर्वा । बेहोशी । असंज्ञा । तबिर । उ०—अमीर गण खा के जमान पर गिर पड़ा । —शिवप्रसाद (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—घाना ।

मुहा०—गश जाना = गूँझना होना । बेहोश होना ।

गशी—संज्ञा स्त्री० [प्र० गशी] बेहोशी । गूँझ ।

क्रि० प्र०—घाना ।

गशत—संज्ञा पु० [प्रा०] [वि० गशती] १. टहलना । घूमना । फिरना । भ्रमण । दोगा । चक्कर ।

यी०—गहन गिरदाबरी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—गशत मारना या लगाना चक्कर देना । चारों ओर फिरना ।

२. पुलिस आदि के कर्मचारियों का पहरे के लिये किसी स्थान के चारों ओर या गली-दुर्गों आदि में घूमना । गेट । गिरदाबरी । दोगा ।

क्रि० प्र०—घूमना ।—फिरना ।

३ एक प्रकार का नाच जिसमें नाचनेवाली वेश्याएँ बरात के आगे नाचती हुई चक्की हैं ।

गशत सलामी—संज्ञा स्त्री० [प्रा० गशती+प्र० सलाम] वह भेंट या नमस्कार करने की रीत पर गण-गुण हाकिमों को मिला करती थी । यह प्रथा अंगरेजों के शासन के आरंभ में जारी रही है ।

गशती—वि० [प्रा०] घूमनेवाला । फिरनेवाला । फिरता । चलता । जैसे—गशती निहारी, गशती हुकुम, गशती गश्ताना, गशती महुँदा, गशती अमरनाथ इत्यादि ।

गशती—संज्ञा स्त्री० गश्तीचरणी । कुलटा ।

गसत—पु०—संज्ञा पु० [प्रा० गसत] दे० 'गस्त' । उ०—दिन दिन छोड़ गसत नित दोष, शर्मिष भरा पासगना कीजे ।—रा० ए०, पृ० २७५ ।

गसना—क्रि० प्र० [प्र० गसन] १. जकड़ना । गींजना । २. बुनावट में खाना या लगाना । बुनावट में तांगी या सूतों को परस्पर गुँथ मिश्रित जिसमें खूब लय रह जाय । वि० दे० 'गंगना' ।

गसीला—वि० [हि० गसना] [वि० स्त्री० गसीली] १. जकड़ा हुआ । गंगा हवा । २. दुगद से गुँथ मिला हुआ । गुथा हुआ । ३. (कपड़ा आदि) जिसके सूत परस्पर गुँथ मिले हों । जिसकी बुनावट घनी हो । गफ ।

गस्स—संज्ञा स्त्री० [हि० गस्स] दे० 'गस' । उ०—सब खान तस्तर गस मस्तर ।—'मस्तर' काम मन मन्नि गस ।—पृ० रा० १।१४६ ।

गस्सना—पु०—क्रि० प्र० [प्र० गसन] दे० 'गसना' । उ०—कच भाग भूमि चिटुकोद गस्स । तारिग सुमन दाग्मि बिगस्स ।—पृ० रा०, १।१६६ ।

गस्सा—संज्ञा पु० [प्र० गस, प्रा० गस, गस्त] गस । कोर ।

मुहा०—गस्सा मारना = और मुँह में डालना ।

गहमह—पु०—[हि० गहमह] चहल पहल में भरा । आनंदयुक्त । प्रफुल्लित । उ०—गहमह गहमह गुर, नूर नवलन नवला मुख ।—पृ० रा०, ३।५५ ।

गहडिली—वि० [हि० गडहा] [वि० गहडेल] गंदला । मटमैला । मटीला (पानी) ।

गह—संज्ञा स्त्री० [हि० गहना] १. हथियार आदि पकड़ने की जगह । गुँठ । दगना । कबजा । पकड़ ।

मुहा०—गह बैठना = घुट पर अच्छी तरह हाथ बैठना ।

२. किसी कमर या कोठरी की ऊँचाई । ३. मधान की खंड । मंजिल ।

गहकना—क्रि० प्र० [प्रनु० या देण०] १. चाह से भरना । लालसा से पूर्ण होना । लचकना । लहकना । लपकना । २. उमंग से भरना । उ०—माखन के लोदा गहकि गोपन दिए उछारि । ३. दूक हँस कद (चंद) जनु गयो कृष्ण प वारि ।—सुकवि (शब्द०) ।

गहकी—पु०—वि० [प्र० गहक, हि० गहक] ग्राहक । खरीद करनेवाला । उ०—माघ सत गहकी भए, गुह हाट लगाई ।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ६ ।

गहकोड़ा—संज्ञा पु० [हि० गहक+कोड़ा (प्रत्यय)] ग्राहक । खरीददार ।—(दराल) ।

गहकना—पु०—क्रि० प्र० [हि०] १. उमंग से बीनना । उ०—गिरिव मोर गहकिया तरवार मंगया पात । बगिया धरु मालग लगा बूँट तो बरसात ।—दोना०, दू० ३६ । २. उल्लास से भर जाना । लचकना । उ०—गहककेव जगयो गु कैमास जाम, नहगइ सेन भगी भीम ताम ।—पृ० रा०, १।२।३८३ ।

गहगच—संज्ञा पु० [हि० कचकच] फेर । चक्कर । घंघोड़ । प्राच । उ०—गहगच परधी कुटब क कठे रहि गयो राम ।—कबीर श०, पृ० २५२ ।

गहगह—वि० [प्र० गह—गहरा+गह=गड्ढा] गहरा । भारी । गोर । जैसे,—गहगह नशा, गहगह छतना ।

विशेष—इसका प्रयोग नशे या नशे की बीज ही के संबंध में होता है ।

गहगह—वि० [प्र० गद्गद या प्रनु० दश०] प्रफुल्लित । प्रसन्नतापूर्ण । उमंग से भरा ।

गहगह—क्रि० प्र० [प्र० पमाधम] घूम के साथ । उ०—गहगह गगन दुंदुभी बाजी ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—इस अर्थ में यह वाजों ही के संबंध में आता है ।

गहगहा—वि० [प्र० गद्गद] १. उमंग और आनंद से भरा हुआ । प्रफुल्लित । उ०—माधव हू आवनहार भर । अचल उड़त मन होत गहगही फरकन नैन खए ।—सूर (शब्द०) । २. पमाधम । धमधम के साथ । उ०—अति गहगहे बाजने बाजे ।—तुलसी (शब्द०) ।

गहगहाना—क्रि० प्र० [हि० गहगहा] १. आनंद में मग्न होना ।

बहुत प्रसन्न होना । प्रफुल्लित होना । आनंद और उमंग से फूलना । उ०—बायस गहगहात शुभवाणी विमल पूर्व दिशि बोले । आजु मिलाओ धाम मनोहर तू सुनु सखी राधिके बोले ।—सूर (शब्द०) । २. फसल आदि का बहुत अच्छी तरह तैयार होना । खेती लहलहाना ।

गहगहे—क्रि० वि० [हि० गहगहा] बड़ी प्रफुल्लता के साथ । बहुत अच्छी तरह से । उ०—(क) गहगहे गावत गीत मंगल किये मंडल मंजु । कोउ बाल विरुद बखानती गति ठान गजगति मंजु ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) राजरुख लखि गुरु भूचूर सुभासिनिहि समय समाज की ठवनि भलि ठई है । चली गान करत निसान बाजे गहगहे लहलहे लोयन सनेह सरसई है ।—तुलसी (शब्द०) ।

गहगोरी—वि० [हि० गह = गहरा + गोरी] [वि० स्त्री० गहगोरी] दीप्तियुक्त । अत्यधिक गौर वर्णवाला । उ०—पूरन जोयन है गहगोरी । अधिक प्रनग लाज तिहि थोरी ।—नंद० ग्रं०, पृ० १४७ ।

गहगवाल—संज्ञा पुं० [हि० गहरवार] दे० 'गहरवार' ।

गहगोरना—क्रि० सं० [अनु० या देश०] १. थोड़े जल को नीचे की मिट्टी सहित हिलाकर गंदा करना । २. मथ कर गंदला करना । उ०—दूरि कीजै द्वार तैं लबार लालची प्रपंची सुषा सो सलिन सूकरी ज्यों गहगोरिहो ।—तुलसी (शब्द०) ।

गहन—वि० [सं०] १. गभीर । गहरा । अथाह । जैसे,—गहन जलाशय । २. दुर्गम । घना । दुर्भेद्य । जैसे,—गहन वन, गहन पर्वत । ३. कठिन । दुर्बुद्ध । जैसे,—गहन विषय । ४. निविड । जैसे,—गहन अंधकार ।

गहन—संज्ञा पुं० १. गहराई । ग्राह । २. दुर्गम स्थान । जैसे,—झाड़ी, गढ़वा, जंगल, अंधकारपूर्ण स्थान । ३. वन या कानन में गुप्त स्थान । कुंज । निकुंज । उ०—गहन उजारि सुत मारि तव, कुशल गये कीस बर बैरिखा को ।—तुलसी (शब्द०) । ४. दुःख । कष्ट । ५. जल । सलिल । ६. गुफा । कंदरा (को०) । ७. छिपने या लुकने की जगह (को०) । ८. एक आभूषण (को०) । ९. ईश्वर । परमात्मा (को०) ।

गहन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहण, प्रा० गहरण] १. दे० 'ग्रहण' । उ०—गहन जाग देखु पुनिम क चंद ।—विद्यापति, पृ० ५४ । २. कलंक । दोष । ३. दुःख । कष्ट । विपत्ति । ४. बंधक । रेहन ।

गहन—संज्ञा स्त्री० [हि० गहना = पकड़ना] १. पकड़ । पकड़ने का भाव । २. हठ । जिद । अड़ । टेक । उ०—एकै गहन घरी उन हठ करि मेदि वेद विधि नीति । गोपवेष निज सूरमयाम से रही विश्ववर जीति ।—सूर (शब्द०) । ३. जोते हुए खेत से घास निकालने का एक औजार । पाँची । पांजी ।

विशेष—इसमें दो ढाई हाथ लंबी लकड़ी के नीचे की ओर पतली नुकीली खूंटियाँ गड़ी रहती हैं और ऊपर एक सीधी लकड़ी जड़ी रहती है जिसमें मुठिया लगी रहती है । खेत जोते जाने पर इसे बैलों के जुआँठों में बाँधकर खेत में फिराते हैं और ऊपर से मुठिया से दबाए रहते हैं ।

गहन—संज्ञा स्त्री० [हि० गहना] वह हलकी जुताई जो पानी बरसने पर धान के बोए हुए खेतों में की जाती है । विदहनी ।

गहना—संज्ञा पुं० [सं० गहन = आभूषण या ग्रहण = धारण करना] १. आभूषण । जेवर । २. रेहन । बंधक । ३. छोटी लोटिया के आकार का मिट्टी का कुम्हारों का एक औजार, जिसका व्यवहार घड़े आदि के बनाने में होता है । ४. गहन नामक एक औजार जिसका व्यवहार जोते हुए खेत में से घास निकालने के लिये होता है । पाँची ।

गहना—क्रि० सं० [सं० ग्रहण, प्रा० गहरण] पकड़ना । धरना । धामना । उ०—(क) गहत चरन कह बालिकुमारा । मम पद लहे न तोर उबारा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) तब एक सखी प्रीतम ! कहति प्रेम ऐसो प्रगट कीन्हो धीर काह न गहति ।—सूर (शब्द०) ।

गहना—क्रि० सं० [सं० गहन] दे० 'गहना' ।

गहनि—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रहण] टेक । अड़ । जिद । हठ । उ०—(क) हरि पिय तुम जिनि चलन कहो । यह जिनि मोहि सुनावहु बलि जाउँ जिनि जिय गहनि गहो ।—सूर (शब्द०) । (ख) छवि तरंग गरितागण लोचन ए सागर जनु प्रेम धार लोभ गहनि नीके अवगाही ।—सूर (शब्द०) ।

गहनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पलास की जड़ आदि कूटकर उससे नाव के छेदों को बंद करने की क्रिया । २. पशुओं का एक रोग जिसमें उनके दाँत हिलने लगते हैं । ३. गहन नामक औजार जिससे जोते हुए खेत में से घास निकाली जाती है ।

गहन—संज्ञा पुं०, स्त्री० [हि० गहन] दे० 'गहन' ।

गहने—क्रि० वि० [हि० गहना = बंधक] रेहन में । रेहन के रूप में । बंधक । उ०—जो इन हग पतिप्राय नहि प्रीतम साहु सुजान । दरस रूप धन दे इन्हे धर गहने मम प्रान ।—रस-निधि (शब्द०) ।

गहबर—संज्ञा पुं० [सं० गह्वर] [क्रि० गहबराना, घबराना] १. दुर्गम । विषम । उ०—नगर सफल बन गहवर भारी । खग मृग विपुल सकल नरनारी ।—तुलसी (शब्द०) । २. व्याकुल । उद्विग्न । उ०—(क) और सो सब समाज कुशल न देखों आजु गहबर हिय कहैं सोसलपान ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मुख मलीन हिय गहवर आवे ।—मान (शब्द०) । ३. किसी ध्यान में मग्न या बेसुध । उ०—सजल नयन गदगद गिरा गहबर मन पुलक शरीर ।—तुलसी (शब्द०) । ४. भीतर । गह्वर । गर्भ । उ०—गावति चली कुंज गहबर तैं कुँवर राधिका रूपमदो ।—घनानंद, पृ० ४६४ ।

गहबरना—क्रि० प्र० [हि० गहबर] १. घबराना । व्याकुल होना । उ०—ततखन रतनसेन गहबरा । रोउब छाँड़ि पाँव लेइ परा ।—जायसी ग्रं०, पृ० ६२ । २. करुणा आदि के कारण (जो) भर आना । उ०—(क) कपि के चलत सिय को मनु गहबरि आयो ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बिलखो डभकीहँ चखन तिय लखि गवन बराइ । पिय गहबरि पाएँ गरै राखी गरै लगाइ ।—बिहारी (शब्द०) ।

गह्वराना—क्रि० स० [हि० गह्वरना] घबरा देना । धातुल
करना । घबराहट में जानना । शिथिल करना ।

गह्वराना^१—कि० प्र० ३० 'गह्वराना' ।

गह्वरह—संज्ञा श्री० [१२०] ३ : 'गह्वरह' ।

गहमह—संज्ञा स्त्री० [हि०] अहम पठान । उ०—गाकुल गहमरिगिनी
महा गहमह मारी । जनानद, पृ० ३४० ।

गहमदई :- राजा स्वामी [द्वितीय गहमद] ज्ञान पहन को स्थिति ।
 प्राण्यः प्रथितः ।

गहमागहमी कक्षाओं [हि. गहपरा] १. चरम पहल । गम
काजी । गीतक । समाग । २. भोट भाड । जन गमद ।

गहर—सका श्री । हि० घरी, घरी या न० वह सयबा का० गह
 सय ? । दे० । सं० । ७०—गहर्जिन नाकह गोकुल
 जा० । रु० । बि० । व्या० । ह० । हो० । गहर्जिन करी सनु
 या० । १० । (७०) ।

गहर—संज्ञा पुं० । गह्वर वा गभीर हि० गहिर। दुर्गम । गूढ ।
उ०—गह गहन मयमाया फिज्जा गहर गभीरा । दोहरी
गहरी लीलाही पावै गह प्रेम जेजीतः—कबीर (शब्द०) ।

[illegible]

महर्षि :- (६० अ० । १०० ग० ३ व०) देव गमना । बिलंब
करना । ३० । १०० । आये मनमोहना महर्षिदेव, दहस्त आये
गुज पवित्रा । पु० को । शिवक ह्यो महर्षि आये उयो उयो
बहिरी शो कहस्त आये मा । मेरो गानि दूर को । -- सेवक
(७० अ०) ।

गहरना । प्रि० अ० । प्र० कहर । १ भागना । उभना । उ०—
 तुम सो । ११ । गहरना मरति । स्नाय के गुन । १४ । न जानि
 जान हगो गहर । १५ । १४० । १४२ । २ कुरना ।
 नागज । १४३ । १४४ । गहरना नाम चरित भगवती ।
 प्रपन्न जग मरि मरि मरि मरि मरि मरि ही मन गहरनी । — गुर
 (शब्द०) ।

गह्वरवार ११११० [१०० पट्टिश्वर एक राजा] १११ क्षत्रिय वंश ।

विशेष उमर के लोग गोयापुर और गाजीपुर से लेकर कन्नौज तक पाए जाते हैं। ये लोग अपना आदिस्नान प्रायः काशी यातायात है। जयनर से चार पांच घड़ी पहले के चंद्रदेव और मणिपालादि कन्नौज के राजा महेश्वर से, ऐसा शिवा-लेखा से प्राप्त जाता है। बरेलीज के बंदिने क्षत्रिय भी अपने या काशी के महाराज यश से उत्पन्न बताते हैं।

गहरा—[१०० गजगहर, पा० गहोर] [१०० गहो० गहरो] १.
(पानी) जिसमें जमीन बहुत अदृश जाय मिले। जिसकी
गहरा बहुत लोनी हो। गभीरा। निम्न। अवलम्बणं। जैसे, गहरी
तबी। उ०—जिन कुँडा जिन पादिया, गहरे पानी पैठ। हो
बीरी दुँडा गहरी (हा देखो)।—हरीर (अ००)।

मुद्दा०—गहरा पेट=गैमा गट जिससे बहुत सी बातें पच जायें ।
गैमा हृदय जिसका भेद न मिले । जैमे,—उसकी बाते कोई
नहीं जान सकता ; उगका वड़ा गहरा पेट है ।

२ जा मतह मे नीचे दूर तक चला गया हो । जिसका विस्तार नीचे की ओर अधिक हो । जैसे,—गहरा गड्ढा, गहरा धरतल । ३ बहुत अधिक । ज्यादा । घोर । प्रचंड । भारी । जैसे,—गहगा नशा, गहरी नींद, गहरी भूल, गहरी मार, गहरी चोट, गहरी मित्रता इत्यादि ।

मुहा०—गहग असाधी - (१) भारी आदमी । बड़ा आदमी । ज्यादा देनेवाला । गहरे लोग - चतुर लोग । भारी उम्माद । घोर धुन । गेमे लोग जिनका मद पीने न पावे । जैसे,— लडके घटी कैसे उड़ा ले जायेंगे । यह गहरे लोगों का काम है । (२) गेमे लोग जिनकी विद्या गभीर हो । विद्वान् लोग । गहरा हाथ—हथियार का भंगूर बार जिससे मुब चोट लगे । शस्त्र का पूर्ण आगम । गहरा हाथ मारना = (१) हथियार का भंगूर बार करना । (२) भारी माल उठाना । खूब पन चुगना । (३) बहुत माल पैदा करना । किसी वडी भारी या अन्तरी वस्तु को प्राप्त करना । जैसे,— इस बार तो तुमने गहरा हाथ मारा ।

४ एव। मज्झिमा। भारी। तटि। ७००-॥ गीत तत्तु छयां
मुनच्छदग तव दाके धर जेयां। कट्ट कट्टी आय विग सोदा।
गहगी गठि लयायो। -कवीर (शब्द०)। ५ जो हलका या
पतला न हो। गहवा जम- गहवा रंग, गहगी भय।

मुहा० गहरी घटना - (१) गूब गाड़ी भंग घटना या पिंगना ।
(२) गाड़ी मिचता होना । (३) नाच से नाच आ मोद प्रमोद होना । जैम, - उन लामो की आजकल गूब गहरी घुटती है ।
गहरी छटना = (१) गूब गाड़ी या अधिक भंग या पिया जाना । (२) गाड़ी मिचता होना । अत्यन्त धनिलता होना । बहुत हल मेल होना । (३) साथ से भूत आ मोद प्रमोद होना । गूब घुग घुलार खानचीन होना । गहरी मार लेना = ठंडी मार लेना । सोप या अती का शरणा करना ।

गहराई—सखा श्री० । हि० गहरा + ई (प्रत्यय) । गहरा का भाव ।
गहरापन । गभीर्य

गहराना^१—क्रि० अ० । हि० गहरा । गहरा होना ।

गहराना^२—क्रि० स० गहरा करना ।

गहराना कि० प्र० [हि० गहर] नागाज होना । स्थाना । ३०
'गहरना', 'धहराना' ।

गहरापन—सका पुं० [हिं० गहरा + पन (प्रत्यय०)] गहरा होने का भाव । गहराव ।

गहराव - संज्ञा पु० । हि० गहरा + आव (प्रत्य०) । गहराई ।

गहरू पुं—गञ्जाली श्री० [हि० घड़ी, घरो या फा० गह = समय ?]
 देर । विन्व । ज०—(क) न् रिभि छ्वाँड राध राधे ।
 ज्यो ज्यो तो को गहरू त्यो त्यो मो को बिद्या री साधे
 साधे । --हृदिदाम (शब्द०) । (ख) नेग चाग पहुँ सागरि
 गहरू लगारहि । निरखि निरखि आनंद मृलोचन पावहि ।
 तुलसी (शब्द०) ।

गहरे—क्रि० वि० [हि० गहरा] अच्छी तरह। खूब। यथेच्छ।

मुहा०—गहरे करना = माल मारना। खूब लाम उठाना।

गहरे चलना = (१) घात में लगना। (२) जाते हुए पथिक के प्राण लेना।—(ठग भाषा)। (३) एक के घोड़े का खूब जोर से कदम चलना।

गहरेबाजी—संज्ञा स्त्री० [हि० गहरे + बाजी] एक के घोड़े की खूब जोर की कदम चाल।

गहलौत—संज्ञा पुं० [सं० गोभिल ?] राजपूताने के क्षत्रियों का एक वंश।

विशेष—सिसोदिया और अहेरी इसी वंश की शाखाएँ हैं। गहलौत नाम के विषय में भिन्न भिन्न प्रकार के प्रवाद प्रचलित हैं। कोई इसे गोहिल या गोभिल से निकला बतलाते हैं; कोई कोई कहते हैं कि गुजरात से भगाए जाने पर जब मेवाड़ के महाराणा के पूर्वपुत्र भागे, तब राजमहिषी को एक ब्राह्मण ने शरण दी और उन्हें वही एक गुहा में एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम गुहलौत रखा गया।

गहवा—संज्ञा पुं० [पुं० हि० गहव, हि० गहना = पकड़ना] सेंडसी।

गहवाना—क्रि० स० [हि० गहना का प्रे० रूप] पकड़ने का काम करना। पकड़ना।

गहवारा—संज्ञा पुं० [हि० गहना] रस्सी में लटकाया हुआ खटोला जिसपर बच्चों को सुलाकर भुलाते हैं। पालना। भूला। हिडोला।

गहवह(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि०] चहल पहल। शोर। उ०—सुने गहवह केहरी उठयो ह्वकोर।—पृ० रा०, २४। ३४५।

गहाड़—संज्ञा पुं० [सं० गह्र] ग्राह। मगर। उ०—फिर बाके एक गहा मिलो। पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १००५।

गहाई(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि० गहना] गहने का भाग। पकड़।

गहागह—वि० [देश०] दे० 'गहगह'।

गहागह—क्रि० वि० [प्रनु०] दे० 'गहगह'। उ०—सुनत राम अभिपंक गुहावा। बाज गहागह अवध बघावा।—मानस, २७।

गहाना—क्रि० स० [हि० गहना (= पकड़ना) का प्रे० रूप] धराना। पकड़ाना। गहवाना। उ०—भाजु जो हरिहि न सख गहाऊँ। तो लाजो गंगा जननी की, सांतनु सुत न कहाऊँ।—सूर०, १। २७०।

गहिरा—वि० [सं० गम्भीर] दे० 'गहरा'। उ०—बाँधल हीर घर लए हेम। सागर तह हे गहिर छल पेम।—विद्यापति, पृ० ३१४।

गहिरदेव—संज्ञा पुं० [हि० गहिर + देव] काशी के एक राजा का पुत्र जिसे गहरवार लोग अपना आदिपुरुष मानते हैं।

गहिरा—वि० [हि० गहरा] [वि० स्त्री० गहिरी] उ०—तिन ते बहनि जु सगिता गहिरी। दूरि दूरि लो पमरति लहरी।—नंद० ग्रं०, पृ० २८४।

गहिराई—संज्ञा स्त्री० [हि० गहराई] दे० 'गहराई'।

गहिराव—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गहराव'।

गहिरा, गहिरो(पुं०)—वि० [हि०] दे० 'गहरा'। उ०—प्रागं जाउं जमुन जल गहिरो पाखें सिंह जु लागं।—सूर०, १०।४।

गहिला—वि० [हि० गहेला] बाबला। पागल। उन्मत्त। उ०—तन मन मेरा पीव सौं, एक सेज मुख सोइ। गहिला लोग न जानहीं, पचि पचि आपा खोइ।—दादू (शब्द०)। वि० दे० 'गहेला'।

गहिलाना(पुं०)—क्रि० प्र० [हि० गहराना] गहरा होना। फैलना। बहना। उ०—तांमे पाँगी पाहरइ जलि काजल गहिलाइ।—ढोला०, दू० ६६।

गहीर(पुं०)—वि० [सं० गभीर] दे० 'गहरा'।

गहीला—वि० [हि० गहेला] [वि० स्त्री० गहीली, गहेली] १. गर्वयुक्त। घमंडी। उ०—(क) राधा हरि के गर्व गहीली।—सूर (शब्द०)। (ख) बहनि नागरी श्याम सों तजो मानु हठीली। हम तैं चूक कहा परी तिय गर्व गहीली।—सूर (शब्द०)। २. पागल। मदोन्मत्त।

गहुँ—संज्ञा स्त्री० [सं० गह्वर या गँव] छोटा रास्ता। गली।

गहुआ—संज्ञा पुं० [हि० गहना = पकड़ना] एक प्रकार की सेंडसी जिसका मुँह बहुत छोटा होता है। गहवा।

विशेष—इससे लोहार आग में से गरम लोहा पकड़कर निकालते हैं और निहाई पर रखकर उसे पीटते हैं। इसी प्रकार की छोटी सेंडसी मोनारो के पास भी होती है जिससे पकड़कर वे तार आदि खींचते हैं। इसे भी गहुआ कहते हैं।

गहूरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गहना = धारण करना] किसी दूसरे के माल को अपने गहाँ हिफाजत के साथ रखने की मजदूरी।

गहेजुआ—संज्ञा पुं० [देश०] छद्मदर। उ०—मछरी मुख जस केजुआ, मुमवन मुह गिहदाग। गगन माँह गहेजुआ, जाति सबन की जान।—सबोर (शब्द०)।

गहेलरा—वि० [हि० गहेला] [वि० स्त्री० गहेलरी] १. उन्मत्त। पागल। २. गुप्त। अज्ञान। गँवार। उ०—बिरहिन धी तो क्यों रही, जगी न पावक साथ। रह रह भुड़ गहेलरी, अब क्यों मीज हाथ।—कवि (शब्द०)।

गहेला—वि० [हि० गहना = पकड़ना + गला (प्रत्यय)] [वि० स्त्री० गहेली] १. हठी। जिद्दी। २. अहंकारी। मानी। घमंडी। जैसे,—नारद को मख मोड़ि के सीन्हे बदन छिनाइ। गर्व गहेली गर्व ते उलटि क्यों मृत्काइ। कबीर (शब्द०)। ३. पागल। खराबी। उ०—मुवा पीछे मुकुति बतावे, मुवा पीछे मेला। मुवा पीछे अमर अवध पद, दाहू भूल गहेला।—दादू (शब्द०)। ४. गँवार। अज्ञान। गुप्ते।

गहेया—वि० [हि० गहना + गेया (प्रत्यय)] १. पकड़नेवाला। ग्रहण करनेवाला। २. अंगीकार करनेवाला। स्वीकार करनेवाला।

यो०—हाथ गहेया—गहायक। मददगार।

गहर—वि० [सं०] १. दुर्गम। विषम। २. विद्या द्वारा। गुप्त। ३. घना। गहग। निबिड।

गहर—संज्ञा पुं० [सं०] १. अशुभारम्भ और शुद्ध स्थान। २. जमीन में छोटा सूर्याश। बिल। ३. विषम स्थान। दुर्गम स्थान। ४. गुफा। कदग। गुहा। ५. निबुज। लतागृह। ६. आडी। ७. जंगल। वन। उ०—कटि तट तून, हाथ सायक धनु, सीता

बंधु समेत । मूर गमन गङ्गरी की कीन्हीं जानत पिता
घबेत ।—मूर०, ६। ३७। ८. वह स्थान जिसमें छिपने से
छिपनेवाले का पता न चले । गुप्त स्थान । ६. दंभ । पाखंड ।
१०. रोग । ११. वह वाक्य जिसके अनेक अर्थ हो सकते हैं ।
१२. गंधीर विषय । कठिन विषय । गूढ़ विषय । १३. जल ।

गङ्गरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा] गुफा । खोह । कंदरा [को०] ।

गंगा^१—वि० [सं० गङ्गा] गंगा संबंधी । गंगा का ।

गंगा^२—संज्ञा पुं० १. भीष्म । २. कातिकेय । ३. सोना । ४. घनूरा ।
५. मधनि गृत जय । वर्गा का पानी । ६. गंगा या नदी का
किनारा । ७. हेलमा मछली । ८. लंबा और बड़ा तालाब ।
सागर ।

गंगाट—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गाट] १. केकड़ा । २. एक प्रकार की
मछली [को०] ।

गंगाटक, गंगाटेय—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गाटक, गङ्गाटेय] दे० 'गंगाट' ।

गंगाधनि—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गाधनि] १. भीष्म । २. कातिकेय ।
३. एक प्रकार का ऋषि ।

गंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा] गंगा की एक धारा जो बंगाल में
गौड़ नगर के पास गंगा में मिलती है ।

गंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा] दुर्गा [को०] ।

गंगेय^१—वि० [सं० गङ्गाये] १. गंगा संबंधी । गंगा का । २. गंगा
में स्थित । गंगाजल पर स्थित ।

गंगेय^२—संज्ञा पुं० १. भीष्म । २. कातिकेय । ३. हेलमा मछली ।
४. कर्मण । भद्रमोषा । ५. सोना । ६. घनूरा । ७. दक्षिण
का एक राजवंश ।

विशेष—यह पहले कोलहापुर के पास गंगवाडी नामक स्थान में
राज्य करता था । पद्मनभ के पुत्र कोलाहल ने कोलाहलपुर
या कोलहापुर बनाया था । पौंड्रे बहुत पीढ़ियों के बाद कामा-
गौर नामक राजा ने आनुष राजा बालादित्य से कलिंग राज्य
जोता । इस वंश का राज्य ११ वीं शताब्दी तक विद्यमान
था । इसी वंश के राजा भगव भीमदेव ने जगन्नाथ का प्रसिद्ध
मंदिर बनवाया था ।

गंगेयी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गाये] हेलमा नाम की मछली ।

गंगेरुक—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गाेरुक] गोरख इमली का बीज ।

गंगेरुका—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गाेरुका] १. नागवल्ली । २. एक
प्रकार का अदृश्य [को०] ।

पर्याय—गंगेरुकी । नागवल्ली । अषा । हृस्वगवेषुका । सरबल्ल-
रिका । विभवेदा । गोरक्षनटुनी ।

गंगेष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गाेष्टी] गटनकरा नाम की एक
प्रकार की मत्ता [को०] ।

गंग्य—वि० [सं० गङ्गाय] गंगा संबंधी ।

गंगिकाय—संज्ञा पुं० [सं० गङ्गािकाय] बत्तख पक्षी [को०] ।

गंडाली—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डाली] एक प्रकार का तृण जिसे
गांडी भी कहते हैं ।

गांडिब—संज्ञा पुं० [सं० गाण्डिब] दे० 'गांडीब' [को०] ।

गांडी—संज्ञा पुं० [सं० गाण्डी] गंडा । लहंग । गंडक [को०] ।

यौ०—गांडीमय = दे० 'गांडीव' ।

गांडीर—वि० [सं० गाण्डीर] गंडीर संबंधी । गंडीर का [को०] ।

गांडीव—संज्ञा पुं० [सं० गाण्डीव] अर्जुन के वनूष का नाम ।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि पहले इसे बह्मा ने बनाकर
सोम को दिया था । सोम ने वरुण को दिया; और अग्नि के
प्रायना करने पर वरुण ने अर्जुन को दिया ।

यौ०—गांडीवधन्वा । गांडीवधर । गांडीवी = अर्जुन ।

गांडीवी—संज्ञा पुं० [सं० गाण्डीविन्] १. अर्जुन । २. अर्जुन
वृक्ष ।

गांडू^१—वि० [हि० गांडू] दे० 'गांडू' ।

गांडु—संज्ञा पुं० [सं० गान्तु] १. चलनेवाला । पथिक । २. गायक
[को०] ।

गांड्री—संज्ञा स्त्री० [सं० गान्त्री] बैलगाड़ी । गंड्री रथ [को०] ।

गांदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गान्दिनी] १. अकूर की माता जो काशी-
राज की कन्या तथा स्वफल्क की भार्या थी । २. गंगा ।

यौ०—गांदिनीसुत = (१) भीष्म पितामह । (२) कातिकेय ।
(३) अकूर ।

गांदी—संज्ञा स्त्री० [सं० गान्दी] दे० 'गांदिनी' ।

गांधर्व^१—वि० [सं० गान्धर्व] [वि० गांधर्वी] १. गंधर्व संबंधी ।
२. गंधर्व देशोत्पन्न । ३. गंधर्व जाति का ।

गांधर्व^२—संज्ञा पुं० १. सामवेद का उपवेद जिसमें सामगान के स्वर,
ताल आदि का वर्णन है । गंधर्व विद्या । गंधर्व वेद । २. गान
विद्या । संगीत शास्त्र । ३. वह मंत्र जिसका देवता गंधर्व हो ।
४. भारतवर्ष का एक भाग या उपद्वीप ।

विशेष—इसे गंधर्व द्वीप भी कहते थे । यहाँ के लोग गाने बजाने
में बड़े चतुर होते थे । इसमें कन्या और वर परस्पर मिलकर
विवाह करते थे । स्त्रियाँ रूपवती होती थीं । इस देश के घोड़े
अच्छे होते थे । यह दश हिमालय के प्रांत भाग में माना
जाता था ।

५. आठ प्रकार के विवाहों में से एक ।

विशेष—इसमें वर और कन्या परस्पर अपनी इच्छा से अनुराग-
पूर्वक मिलकर पतिपत्नीवत् रहते हैं । मनु के अनुसार क्षत्रियों
के नियम गांधर्व विवाह निहित है ।

६. घोड़ा । अश्व । ७. गंधर्व ।

गांधर्ववेद—संज्ञा पुं० [सं० गान्धर्ववेद] १. सामवेद का उपवेद ।
वि० दे० 'गांधर्व'—१ । २. संगीत शास्त्र ।

गांधर्विक—वि० [सं० गान्धर्विक] संगीत शास्त्र में कुशल । गांधर्व वेद
जाननेवाला ।

गांधर्वी—संज्ञा स्त्री० [सं० गान्धर्वी] १. दुर्गा । २. वाणी । गिरा ।
सरस्वती [को०] ।

गांधार—संज्ञा पुं० [सं० गान्धार] १. सिंधु नद के पश्चिम का देश ।

विशेष—यह पेशावर से लेकर कंधार तक माना जाता था ।
इस देश की सीमा भिन्न भिन्न समयों में बदलती रही है ।

हृयमन्वांग के समय में इस देश के अंतर्गत सिंधु नद से लेकर जलालाबाद तक और स्वांत से कालाबाग तक का प्रदेश था। ऋग्वेद में यहाँ अश्वि मेड़ों का होना लिखा है। गांधारी इस देश की कन्या थी।

२. [जी० गांधारी] गांधार देश का रहनेवाला व्यक्ति। ३. गांधार देश का राजा या राजकुमार। ४. संगीत में सात स्वरों में तीसरा स्वर।

विशेष—इसकी दो श्रुतियाँ हैं—रीढ़ी और क्रोधा। इसकी जाति वैश्य, वर्ण सुनहला, देवता सरस्वती, ऋषि चंद्रमा, छंद त्रिष्टुप्, बार मंगल, ऋतु वसंत और स्थान दोनों हाथ हैं। इसकी आकृति अग्नि की और संतान हिबोल राग है। इसका अधि-कार शात्मली द्वीप में है। इसका प्रयोग करण रस में होता है। नाभि से उठकर कंठ और शीर्ष में लगकर अनेक गंधों को ले जानेवाली वायु से इसकी उत्पत्ति होती है। यह स्वर बकरे की बोली से लिया गया है। इसके दो अंश होते हैं—शुद्ध और कोमल। इस स्वर का ग्रहस्वर बनाने से निम्नलिखित प्रकार से स्वरग्राम होता है—गांधार—स्वर। तीव्र मध्यम—ऋषभ। कोमल धैवत—गांधार। धैवत—मध्यम। निषाद—पंचम। कोमल ऋषभ—धैवत। कोमल गांधार—निषाद। कोमल गांधार को ग्रहस्वर बनाने से स्वरग्राम इस प्रकार होता है—गांधार कोमल—स्वर। मध्यम—ऋषभ। पंचम—गांधार। कोमल धैवतमध्यम। कोमल निषाद—पंचम। स्वर—धैवत। ऋषभ—निषाद।

५. संपूर्ण जाति का एक राग।

विशेष—यह प्रातःकाल १ दंड से ५ दंड तक गाया जाता है। हनुमत् के मत से यह भैरव राग का पुत्र है और किसी के मत से दीपक राग का पुत्र है।

६. एक संकर राग जो कई रागों और रागिनियों को मिलाकर बनाया जाता है। ७. संगीत के तीन स्वरग्रामों में से एक।

विशेष—इसमें नंदा, विविशाखा, सुमुखी, विचित्रा, रोहिणी, सुधा और भालापिनी ये सात मूर्च्छनाएँ हैं और जिसका व्यवहार स्वर्गलोक में नारद द्वारा होता है। इसके अधिष्ठाता देवता शिव कहे गए हैं।

८. गंधरस नामक सुगंध द्रव्य। ९. सिद्धर (जी०)।

गांधार पंचम—संज्ञा पु० [सं०] एक बाहुव राग।

विशेष—यह मंगलीक राग है और अद्भुत, हास्य तथा करुण रस में इसका प्रयोग होता है। इसमें ऋषभ नहीं लगता। म, प, ध, नि, स, ग, म इसका सरगम है। इसमें प्रसन्न मध्यम अलंकार और काकली का संचार होना आवश्यक है। इसे केवल गांधार भी कहते हैं।

गांधार भैरव—संज्ञा पु० [सं० गान्धार भैरव] एक राग का नाम।

विशेष—यह राग देवगांधार के मेल से बनता है। इसमें सातों स्वर लगते हैं और यह प्रातःकाल गाया जाता है। इसका सरगम यह है—घ, नि, स, रि, ग, म, प, ध।

गांधारि—संज्ञा पु० [सं० गान्धारिः] गांधार राजकुमार। दुर्योधन का मामा। गकुनि (जी०)।

गांधारी—संज्ञा जी० [सं० गान्धारी] १. गांधार देश की स्त्री या राज-कन्या। २. धृतराष्ट्र की पत्नी या दुर्योधन की माता का नाम।

विशेष—यह गांधार देश के राजा सुबल की कन्या थी। शिव ने इन्हें सौ पुत्र होने का वर दिया था। धृतराष्ट्र की पत्नी होने पर इन्होंने पति को अंधा देख अपनी आँखों पर भी पट्टी बांध ली थी।

२. मेघ राग की पाँचवीं रागिनी।

विशेष—यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और दिन के पहले पहर में गाई जाती है। रि, ध, नि, प, म, ग, रि, स—इसका सरगम है। कोई कोई इसे हिबोल राग की रागिनी मानते हैं। कुछ लोगों का मत है कि यह धनाश्री और स्वराष्टक को मिलाकर बनाई गई है। कोई इसे सारस्वत और धनाश्री से मिलकर बनी हुई बतलाते हैं।

४. तंत्र के अनुसार एक नाड़ी। ५. जैनों के एक शासन देवता।

६. पार्वती की एक सखी का नाम। ७. जवासा। ८. गाँजा।

गांधारेय—संज्ञा पु० [सं०] दुर्योधन (जी०)।

गान्धिक—संज्ञा पु० [सं० गान्धिक] १. गंधी। २. गाँधी नामक कीड़ा।

३. गंधद्रव्य। ४. लिपिकार। लेखक (जी०)।

गांधी—जी० [सं० गान्धिक] १. हरे रंग का एक छोटा कीड़ा।

विशेष—यह वर्षा काल में धान के खेतों में अधिक होता है। इससे धान के पीछों को बड़ी हानि पहुँचती है। इसमें एक तीव्र दुर्गंध होती है। रात को यह चिराग के सामने भी उड़कर पहुँचता है और इसके आते ही खटमल की तरह की एक असह्य दुर्गंध उठती है।

२. एक घास। ३. हींग। ४. किराने का व्यापारी। ५. वैश्यों की एक जातीय उपाधि या अल्ल। ६. महात्मा गाँधी। अंग्रेजों के शासन से भारत को स्वतंत्रता दिलानेवाले एक प्रमुख नेता। इनका पूरा नाम मोहनदास कर्मचंद गाँधी था। ये गुजराती थे। इनका जन्म २ अक्टूबर, १८६९ और निधन ३० जनवरी, १९४८ को एक व्यक्ति द्वारा गोली मारे जाने के कारण हुआ।

गौ०—गाँधी टोपी = श्वेत सट्टर की किश्तीनुमा टोपी। गाँधी बाबू=गाँधी जी के विचारों के आधार पर स्थापित या पोषित मत।

गांधीर्य—संज्ञा पु० [सं० गांधीर्य] १. गहराई। गंभीरता। २. स्थिरता। अचंचलता। ३. हर्ष, क्रोध, भय आदि मनोवेगों से अचंचल न होने का गुण। शांति का भाव। धीरता। ४. किसी विषय की गूढ़ता। गहनता। जटिलता।

गाँइ†—संज्ञा जी० [हि० गाय] दे० 'गाय'। उ०—तब माता ने गाँइ को दूध दियो तो इत कछुक पियो।—दो० सौ बावन०, भा० २, पृ० ४२।

गाँइ†—संज्ञा पु० [सं० घाम, हि० गाँव] दे० 'गाँव'। उ०—सहर मुसक सब गँवई गाँइ।—घट०, पृ० ३५१।

गॉकर—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुर + कर, पुं० हि० अङ्गाकरी, अङ्गाकरि] १. अङ्गाकरी। बाटी। लिट्टी। २. घरहर की लिट्टी।

गॉग (गुं)—संज्ञा स्त्री० [सं० गङ्गा] दे० 'गंगा'। उ०—गॉग जउने जो लहि जल तो लहि अम्बर माय।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० १५।

गॉगट—संज्ञा पुं० [गं० गाङ्गट] केकड़ा।

गॉगन—संज्ञा स्त्री० [?] या देश०] एक प्रकार की फोडिया।

गॉगना—क्रि० सं० [सं० गुप्तन] गूँथना। गौथना। जैसे—माना गॉगना, नाग गॉगना।

गॉज—संज्ञा पुं० [फ्रा० गंज] १. राशि। डेर। अंबार। २. डंठल, लकड़ी आदि का वह डेर जो तले ऊपर रखकर लगाया गया हो। जैसे,—लकड़ी का गॉज, लकड़ा का गॉज, पयाल का गॉज इत्यादि।

गॉजना—क्रि० सं० [हि० गॉज, फ्रा० गंज] १. राशि लगाना। डेर करना। २. घास, लकड़ी, डंठल आदि को तले ऊपर रखकर डेर लगाना।

गॉजा—संज्ञा पुं० [सं० गञ्जा] भाँग की जाति का एक पौधा।

विशेष—यह देखने में भाँग से भिन्न नहीं होता, पर भाँग की तरह दसमें फूल नहीं लगते। नेपाल की तराई, बंगाल आदि में यह भाँग के साथ घापसे घाप उगता है; पर कहीं कहीं इसकी खेती भी होती है। इसमें बाहर फूल नहीं लगते, पर बीज पड़ते हैं। वनस्पति शास्त्रविदों का मत है कि भाँग के पौधे के तीन भेद होते हैं—झी, पुरुष और उभयलिंगी। इसकी खेती करनेवालों का यह भी अनुभव है कि यदि गॉज के पौधे के पास या जगह में भाँग के पौधे हों, तो गॉजा अच्छा नहीं होता। इसलिये गॉज के खेत से किसान प्रायः भाँग के पौधे उखाड़कर फेंक देते हैं। गॉज के पौधे से एक प्रकार का लामा भी निकलता है। यद्यपि नीचे के देशों में यह लामा उतना नहीं निकलता, तथापि हिमालय पर यह बहुतायत से निकलता है और इसी से खरम बनती है। हिंदुस्तान में गॉजा खाय़ा नहीं जाता; लोग इसमें तमाकू मिलाकर इसे चिलम पर पीते हैं; पर अंगरेजी दवाओं में इसका सत नाम में लाया जाता है। गॉज की कई जातियाँ हैं—बालूचर, पहाड़ी, चपटा, गोली, भंगरा इत्यादि। बालूचर के तैयार होने पर उसे काटकर और गुला बनाकर पेरों से रोदते हैं। इस प्रकार तले ऊपर रखकर रोदने से कलियाँ घागम में दबकर चिपटी हो जाती हैं। वैद्यक में गॉज को कड़वा, कौसा, तीता और उष्ण लिखा है और उसे कफनाशक, शाही, पाचक और अग्निवर्धक माना है। यह नशीला और पित्तात्पादक होता है। इसके रेशे मजबूत होते हैं और रस की तरह सुनसी बनाने के काम में आते हैं। नेपाल आदि पहाड़ी देशों में इन रेशों से एक प्रकार का मोटा कपड़ा भी बुनते हैं जिसे भंगरा कहते हैं।

पर्या०—गंजा। गॉबका। अखबार। भंगा। भारिता। गंजाशन। अकृष्णारि। मातुली। गंजाकिनी। माविनी। शकाशन। अया। बिजया। तुरंत-मानंदा। हविणी।

गॉमी—संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़। उ०—बाहू गॉमी जान है मंजन है सब नोक। राम दुध सब भरि रह्यो, ऐसा अमृत पोल।—दाहू०, पृ० १५१।

गॉठ—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध, पा० गंठ] [वि० गंठीला] १. रस्सी, डोरी तागे आदि में पड़ी हुई मुट्ठी की उलझन जो खिचकर कटी और रूढ़ हो जाती है। वह कड़ा उभार जो तागे, रस्सी, डोरी आदि में उनके छोरों को कई फेरों से लपेटकर या नीचे ऊपर निकालकर खींचने से बन जाता है। गिरह। ग्रंथि। जेमे,—रस्सी में गॉठ पड़ गई है।

क्रि० प्र०—खोलना।—डासना।—बेना।—पड़ना।—बाँधना।—लगाना।

यौ०—गॉठ गंठीला = गॉठों से भरा हुआ। गॉठवाला। जिसमें उलझन और गॉठ हो।

मुहा०—गॉठ खुलना = उलझन मिटना। किसी भारी समस्या का समाधान होना। कोई भारी प्रश्न हल होना। गॉठ खोलना या छोरना = उलझन मिटाना। अड़चन दूर करना। कठिनाई मिटाना। उ०—कहनि रहनि एक विरति विवेक नीति वेद बुधगंमत पथन निरवान की। गॉठि विनु गुन की कठिन जड़ चेतन की खोरी अनायास साधु सोधक अपान की।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१५। (मन या हृदय की) गॉठ खोलना = (१) खोलकर कोई बात कहना। मन में कोई बात गुप्त न रखना। मन में रखी हुई बात कहना। (२) अपनी भीतरी इच्छा प्रकट करना। (३) अपना हौसला निकालना। लालसा पूर्ण करना। (मन में) गॉठ गकड़ना या करना = भेद मानना। अंतर रखना। बुरा मानना। खिचा रहना। बैर मानना। कोना रखना। गॉठ पर गॉठ पड़ना = (१) उलझन बढ़ती जाना। किसी बात का उत्तरोत्तर कठिन होता जाना। माथना गेचीना होता जाना। (२) मनमोटाव बढ़ना जाना। द्वेष बढ़ता जाना। मन में गॉठ = चिन्त में बुरा भाव। द्वेष भाव। बैर। मन में गॉठ रखना = जी में बुरा मानना। बैर मानना। मन या हृदय में गॉठ पड़ना = आपस के संबंध में भेद पड़ना। मनमोटाव होना। बैर होना। द्वेष होना। उ०—(क) मन को मार्गों पटक के दूक दूक उड़ि जाय। दूटे पाछे फिर जुरे, वीचि गॉठि पड़ि जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) रंग उरभत नूटन कूटन जुरत चतुर संग प्रीति। परति गॉठ दुर्जन हिये दर्द नई यह रीति।—बिहारी (शब्द०)।

२. अंचल, चदर या किसी कपड़े की खूंट में कोई वस्तु (जैसे, रुपया) लपेटकर लगाई हुई गॉठ। उ०—राम गाइ औरन रामभावे हरि जाने बिन विकल फिरे। एकादशी अती नहि जानै जान गमाये मुगुष फिरे।—कबीर (शब्द०)।

मुहा०—किसी की गॉठ कटना = (१) गॉठ में बंधी वस्तु का खोरी जाना। जेब कतरा जाना। (२) सोदे में जट जाना। अधिक दाम दे देना। ठगा जाना। गॉठ कतरना या काटना = (१) गॉठ काटकर रुपया निकाल लेना। जेब कतरना। (२) मूल्य से अधिक लेना। नूटना। ठगना। गॉठ करना = (१) संघर्ष करना। इकट्ठा करना। अपने पास रख लेना।

उ०—रहा द्रव्य तब कीन न गाँठी। पुनि कत मिलै लच्छ जो नाठी।—जायसी (शब्द०)। (२) याद रखना। गाँठ का=पास का। पल्ले का। जैसे—तुम्हारी गाँठ का रुपया लगे तो मालूम हो। गाँठ का पूरा=घनी। मालदार। जैसे—गाँठ का पूरा, मति का हीन। गाँठ खोलना=यँसी या जेब से रुपया निकालना। पास का खर्च करना। गाँठ जोड़ना=विवाह आदि के समय स्त्री पुरुष के कपड़ों के पल्ले को एक में बाँधना। गाँठजोड़ा करना। ग्रंथिबंधन करना। किसी के साथ गाँठ जोड़ना=किसी के साथ व्याह करना। गाँठ में=पल्ले में। पास में। जैसे—गाँठ में कुछ है कि यों ही बाजार चले। उ०—राजा पदुमावति सों कहा। साँठ नाठ कछु गाँठ न रहा।—जायसी (शब्द०)। (कोई बात) गाँठ में बाँधना=अच्छी तरह याद रखना। स्मरण रखना। सदा ध्यान में रखना। उ०—कहल हमारा गाँठी बाँधी, निसि बासरहि होहु दुसियारा। ये कलि के गुन बड़ परपंची, डारि ठगौरी सब जग मारा।—कबीर (शब्द०)। गाँठ से=पास से। जैसे—गाँठ से लगाना पड़े तो मालूम हो।

३. गठरी। बोरा। गट्टा। जैसे—गेहूँ की गाँठ, चावल की गाँठ। मुहा०—गाँठ करना=(१) गाँठ में बाँध लेना। (२) बटोरना। जमा करना।

४. ग्रंथ का जोड़। बंद। जैसे—पैर की गाँठ, हाथ की गाँठ, उँगली की गाँठ।

मुहा०—गाँठ उलड़ना=किसी ग्रंथ का अपने जोड़ पर से हट जाना। जोड़ उलड़ना।

५. ईस, बाँस आदि में थोड़े थोड़े अंतर पर कुछ उभड़ा हुआ कड़ा स्थान जिसमें गंडा या चिह्न पड़ा रहता है और जिसमें से कनखे निकलते हैं। पोर। पर्व। जोड़। ६. गाँठ के आकार की जड़। जँटी। गुथी। जैसे—हल्दी की गाँठ। ७. पास का वह बोझ जिसे एक आदमी उठा सके। गट्टा। ८. एक गहना जो कटोरी के आकार का होता है और जिसकी बारी में छोटे छोटे धुंधलू लगे रहते हैं। इसे रेशम में गुँथकर स्त्रियाँ हाथों की कुहनी में लटकाती हैं।

गाँठकट—संज्ञा पु० [हि० गाँठ+काटना] [जी० गाँठकटी] १. वह चोर जो पल्ले में बँधे हुए रुपए काटकर उड़ा लेता हो। गिरहकट। २. उचित से अधिक मूल्य पर सौदा बेचनेवाला। ठग।

गाँठकतरा—संज्ञा पु० [हि० गाँठ+कतरना] दे० 'गाँठकट'।

गाँठगोभी—संज्ञा जी० [हि० गाँठ+गोभी] गोभी का एक भेद।

विशेष इसके पीछे की पेड़ी में जड़ से चार पाँच ग्रंथुल पर एक गाँठ पड़ती है जो धीरे धीरे बढ़कर खरबूजे के आकार की हो जाती है। यह गाँठ गुदेदार होती है और इसकी तरकारी बनाई जाती है।

गाँठदार—वि० [हि० गाँठ+दार (प्रत्य०)] जिसमें बहुत गाँठें हों। गठीला।

गाँठना—क्रि० सं० [सं० ग्रन्थन, पा० गण्ठन] १. गाँठ लगाना। सीकर, मुरी लगाकर या बाँधकर मिलाना। साटना। २. फटी हुई चीजों को ढाँकना या उसमें चकती लगाना। भरम्भत करना।

गूथना। जैसे, सूता गाँठना, गुदड़ी गाँठना। ३. मिलाना। जोड़ना। ४. तरतीब देना। क्रमबद्ध करना। जैसे—मनसूबा गाँठना, मजबूत गाँठना।

मुहा०—मतलब गाँठना=काम निकालना। अपना प्रयोजन सिद्ध करना।

५. अपनी ओर मिलाना। अनुकूल करना। पक्ष में करना। निर्धारित करना। नियत करना। मुकर्रर करना। जैसे—तुमने अपने मन में हमें तंग करना गाँठ लिया है। ८. दबाना। दबोचना। गहरी पकड़ पकड़ना। जैसे—पंजा गाँठना, सवारी गाँठना। ९. बश में करना। बशीभूत करना। दाँव पेंच पर चढ़ाना। १०. बार को रोकना। आघात को किसी वस्तु पर लेना।

गाँठि—संज्ञा जी० [हि०] दे० 'गाँठ'। उ०—पाछे वा मुरारीदास वा पातरि की गाँठ बाँधि सिरहाने धरि सोबते।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १४३।

गाँठी—संज्ञा जी० [हि० गाँठ] १. एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ हाथों की कुहनी में पहनती हैं। वि० दे० 'गाँठ'। २. भूसे या डंठल का छोटा टुकड़ा।

खिशोष—इसमें गाँठ ही गाँठ होती है। यह किसी काम का नहीं होता, बल भी इसे नहीं खाते। खलिहान में इसे लोग बेकाम का समझकर फेंक देते हैं।

गाँड़—संज्ञा जी० [सं० गर्ल, प्रा० गड्ड] १. पाखाने का मुकाम। शरीर की वह इन्द्रिय जिससे मल बाहर निकलता है। गुदा।

पर्या०—गुब। अपान। पास। गुह्य।

मुहा०—गाँड़ की खबर न होना=सुध या चेत न होना। सावधानी न होना। गफलत होना। किसी बात की जानकारी न होना। गाँड़ की खबर न रखना=बेसुध रहना। अचेत रहना। होश में न रहना। असावधान रहना। गाँफिल रहना। किसी बात से अनजान रहना। गाँड़ की खबर न रहना=होश हवास न रहना। जानकारी न रहना। गाँड़ की गह या रास्ते निकलना=(१) किसी वस्तु का न पचकर ज्यों का त्यों पाखाने से निकल जाना। (२) निकल जाना। जाता रहना। खो जाना। गाँड़ के नीचे या तले गंगा बहना=अधिक ऐश्वर्य होना। अत्यंत धन होना। गाँड़ खोला देना=(१) दबकर बात मान लेना। डर से किसी की बात मान लेना। अधीन हो जाना। (२) चापलूसी करना। ठकुरसुहाती कहना। गाँड़ खोले फिरना=(१) गंगा फिरना। (२) बच्चों की तरह अनजान बना रहना। बचपन की अवस्था में रहना। जैसे,—कल वह मेरे सामने गाँड़ खोले फिरता था; आज बड़ा पंडित बना है। गाँड़ गंजीका खेलना=(१) चित्त संकट में पड़ना। डर और घबराहट होना। (२) तंग होना। हैरान होना। गाँड़ गरदन की सुध या खबर न रखना=बेहोश रहना। अचेत रहना। असावधान रहना। गाँफिल रहना। गाँड़ गरदन एक हो जाना=(१) थककर लथपथ हो जाना। थककर होश हवास खो देना। (२) बेहोश हो जाना। बेसुध हो जाना। घापा खोना। (३) संडमुसंड हो जाना। बहुत मोटा हो जाना। गाँड़ गले में आना=(१) संकट में पड़ना।

प्राक्त में फँसना । (२) तंग घाना । ऊब जाना । प्राजिज घाना । हिरान होना । गाँड़ घिसना या रगड़ना = (१) बड़ा उद्योग करना । बहुत प्रयत्न करना । बड़ी बौद्ध धूप करना । कड़ी मेहनत करना । कठिन परिश्रम करना । जैसे,—१० रुपया महीने पर कौन गाँड़ घिसने जायगा । (२) चापलूसी करना । ठकुरसुहानी कहना । सुशामद करना । गाँड़ घिसवाना = (१) बड़ी सुशामद करना । बड़ी चापलूसी कराना । (२) नाकों चले चबवाना । बहुत तंग करना । गाँड़ चलना = दस्त घाना । पेट चलना । गाँड़ घाटना = चापलूसी करना । सुशामद करना (बाजार) । गाँड़ खिरना = २० 'गाँड़ कटना' । गाँड़ जलना = (१) बुरा लगना । न सुहाना । (२) माह उत्पन्न होना । ईर्ष्या होना । गाँड़ धोना = धावदस्त लेना । किसी को गाँड़ धोना = चापलूसी करना । सुशामद करना । गाँड़ धोने न घाना = कुछ बंग न घाना । कुछ भी गऊ न होना । गाँड़ कटना = (१) डर लगना । भय होना । (२) डर के मारे घबराहट होना । गाँड़ कटकर होब या होबा या होज होना = भयभीत होना । घातक से घबरा जाना । सहम जाना । गाँड़काड़ या गाँड़मार = (१) भयानक । डरावना । (२) कठिन । विकट । दुष्कर । गाँड़ काड़ना = (१) डराना । धमकाना । भय दिताना । (२) दिक करना । सताना । नाक में दम करना । (३) कठिन काम लेना । अत्यंत अधिक श्रम कराना । गाँड़ में गू होना = पास पैसा होना । पास में धन होना । (किसी को) गाँड़ में घुसा रहना = चापलूसी करना । गाथ गाथ लगा फिरना । सुशामद करना । गाँड़ में घुस जाना = दूर हो जाना । निकल जाना । जैसे,—चार लात देगे, राब बहमासी गाँड़ में घुस जायगी । गाँड़ में घटखनी, चिउँटी या पतिगी लगना = (१) बुरा लगना । न सुहाना । नागवार गुजरना । (२) डाह होना । जलन होना । गाँड़ में घुसना या घुस लगाना = (१) नीचा दिखाना । कलंकित करना बध्ना लगाना । अपमानित करना । इज्जत उतारना । (२) भ्रियाना । लज्जित करना । गाँड़ मराना = (१) गुदामैयुन कराना । प्रकृतिविच्छिन्न मैयुन कराना । (२) हानि सहना । नुकसान उठाना । (३) चापलूसी करना । सुशामद करना । दुर्ध्वबहार और दुर्ध्वचन सहना । गाँड़ मारना = (१) लोडेबाजी करना । (२) तंग करना । दुःख देना । सताना । (३) बहुत अधिक काम लेना । कठिन परिश्रम लेना । गाँड़ में उंगली करना = (१) छेड़ना । छकाना । (२) तंग करना । दिक करना । हिरान करना । सताना । गाँड़ में भिरखे लगना = बुरा लगना । न सुहाना । खसना । गाँड़ में लंगोटी न होना = कपड़े बिना लंगे फिरना । अत्यंत दरिद्र होना ।

२. किसी वस्तु के नीचे का वह भाग जिसके बल पर वह खड़ी रह सके या रखी जा सके । पैदी । तला । तली ।

गाँडर—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्डाली] १. मूँज की तरह की एक घास जिसकी पत्तियाँ बहुत पतली और हाथ सवा हाथ लंबी होती हैं । बीरन । खस । उ०—सो मैं कुमति कहीं केहि भाँती । बाजु सुराग कि गाँडर ताँती ।—सुलसी (शब्द०) ।

विशेष—जड़ से इसके अंकुर गुच्छों में निकलते हैं । यह घास

तराई में तथा ऐसे स्थानों पर होती है जहाँ पानी बकट्टा होता है । नेपाल की तराई में तालों और भीलों के किनारे यह बहुत उगती है । इसकी मूखी जड़ जेठ असाढ़ से पनपती है और उससे बहुत में अंकुर निकलते हैं जो बढ़ते जाते हैं । कुपार के महीने में बीच से पतली पतली सीकें निकलती हैं, जिनके सिरे पर छोटे छोटे जोरे लगते हैं । किसान सीकों को निकालकर उनसे झाड़ू, पखे, टोकरियाँ आदि बनाते हैं और पीछों को काटकर उनसे छप्पर छाते हैं । इस घास की जड़ सुगंधित होती है और उसे संस्कृत में उषोर तथा फारसी में खस कहते हैं । यह पतली, सीधी और लंबी होती है और बाजारों में खस के नाम से बिकती है । खस का अंतर निकाला जाता है और उसकी टट्टियाँ भी बनती हैं । खस के नैचे भी बांधे जाते हैं ।

२. एक प्रकार की दूब जिमें बहुत सी गाँड़ होती हैं । गंडदूर्वा ।

विशेष—यह जमीन पर दूर तक फैलती और जगह जगह जड़ पकड़ती जाती है । पशु इसे बड़े चाव से खाते हैं । यह कड़ुई, कसेली और मीठी होती है; दाह, वृषा और कफ पित्त को दूर करती है तथा रुधिर के विकार को हरती है । भावप्रकाश में इसे सोहृद्राविणी अर्थात् लोहे को गलानेवाली लिखा है ।

गाँडा—संज्ञा पुं० [सं० काष्ठ या खरष | श्री० गेंडो] १. किसी पेड़ पीधे या डंठल का वह खंड जो उससे काट लिया गया हो । जैसे—लकड़ी का गाँडा, ईख का गाँडा । २. ईख का वह छोटा टुकड़ा जिसे पत्थर या लकड़ी के कोल्ट में डालकर पेरते हैं । गंडेरी । ३. ईख । उ०—निगम के भाँडे कत बोलत हैं बचन बाँडे काँडे को पाँडे गाँडे हाथिन सों खात हैं ।—हनुमान (शब्द०) ।

गाँडा—संज्ञा पुं० [सं० गण्ड = गंडा । चिल्ल | वह मंड या चवूतरा जो घाटा पीसने की चक्की के चारो ओर इसलिये बनाया जाता है कि घाटा गिरकर इधर उधर न फैले । मंडरी ।

गाँडी—संज्ञा स्त्री० [सं० गण्ड] एक प्रकार की घास जो चौपायों के चरने के काम आती है ।

विशेष—यह घास हिसार और भीर में होती है । भैंसे इसे बड़े चाव से खाती है । यह सुलाकर रखी जाती है और दस महीने तक बनी रहती है । इसकी जड़ में एक प्रकार की सुगंध होती है । यह घन्छी धरती में, जहाँ गेहूँ होता है, उपजती है । इसे घोड़े भी खाते हैं ।

गाँदू—वि० [हि० गाँड़] जिसे गाँड़ मराने की लत हो । २. निष्क्रिया । ३. जिसमें हिम्मत न हो । डरपोक । बुजदिल । असाहसी ।

गाँती—संज्ञा स्त्री० [हि०] २० 'गाती' ।

गाँधना—क्रि० स० [सं० घन्धन] १. गूथना । गूँथना । उ०—गुह के बचन फूल हिय गाँधे । देखउँ नयन चढ़ावउँ माँधे ।—जायसी (शब्द०) । (ख) सोहत मउर मनोहर माँधे । मंगलमय मुकतामणि गाँधे ।—सुलसी (शब्द०) । २. मोटी सिलाई करना । गाँठना । जोड़ना ।

गाँदला—वि० [हि० गंदला] २० 'गदला' । उ०—सागर गहूरा गाँदला अगनि बिब असरावु ।—प्राण०, पृ० २३७ ।

गौरी—संज्ञा पुं० [सं० गन्विक्] १. वह जो इधर और सुगन्धित तेल आदि बेचता हो। गौरी। २. गुजराती वैश्यों की एक जाति।

गौन—संज्ञा पुं० [सं० गान] दे० 'गान'। उ०—दधि दूध दूरदूर करि कनक पाल बहु गौन करत प्रबिसंघ बास।—ह० रासो, पृ० ३२।

गौम—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम] दे० 'ग्राम'। उ०—बीस गौम कवि बंद प्रति करी कुँवर बगसीस। एक बाजि साजति सजहि विधो सु संभरि ईस।—पृ० रा०, ६। १७८।

गौमी—वि० [हि० गौम + ई (प्रत्यय)] गौवार। अगिष्ट। उजड़। उ०—साहाब सुकर कुरमान दिय गौमी छलबल लगया। कब्दी सु लच्छि आहुदुपति मुख बहुमान विसगया।—पृ० रा०, २४४१।

गौब—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम] दे० 'गाँव'।

गौब—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम, प्रा० ग्राम, प्रा० गाँव] [वि० गौवार] वह स्थान जहाँपर बहुत से किसानों के घर हों। छोटी बस्ती। खेड़ा।

मुहा०—गौब निरावे = (१) देहात। (२) जमींदारी। गौब गौबई = देहात। गौब मारना = डाका मारना। डाका डालना। उ०—जिमींदार सुता ताके उभे भाई रहे आपस में बैर, गौब मारयो सब छीजिए।—प्रिया (शब्द०)।

गौ—गौब पंचायत = ग्राम की पंचायत। गौब सभा = ग्राम की सभा।

गौबटी—संज्ञा स्त्री० [हि० गौब + टी (प्रत्यय)] गौव। पुरवा। उ०—कुराज्य था, कुशासन था परंतु गौबटी पंचायतें बनी हुई थीं।—फाँसी०, पृ० १३।

गौस—संज्ञा स्त्री० [हि० गौसना] रोक टोक। बाधा। प्रतिरोध। बंधन। उ०—सब गौस फाँस मिटाय दास हुलास ज्ञान अखंड के। नहि नास तेहि इतिहास सुनि सो आदि संत प्रचंड के (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना—वेना—रखना।

२. बैर। द्वेष। ईर्ष्या। मनोमालिन्य। उ०—विपुत्रयो जावक सीति पग, निरखि हँसी महि गौस। सकल हँसीही लखि लियो आधी हँसी उतास।—बिहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—रखना।—घरना।—पकड़ना।—गहना।

मुहा०—गौस निकालना = बैर निकालना।

३. हृदय की गुप्त बात। भेद की बात। रहस्य। उ०—(क) जीवन दान लेहिगे तुम सों। चतुराई मिलवति है हम सों। इनकी गौस कहा री जानो। इतनी कही एक जिय मानो।—सूर (शब्द०)। (ख) बहु बात साँची याकी गौस एक और सुनो साधु को न हँसे कोऊ यह मैं बिचारी है।—प्रिया (शब्द०)। ४. गठ। फंदा। गठन। बनावट। जमावट। उ०—इतने सबे तुम्हारे पास। निरखि न देखहु अंग अंग सब चतुराई की गौस।—सूर (शब्द०)। ५. तीर या बछी का फल। हथियार की नोक। उ०—कोटिन मनोज की बनाज जाके आगे पुनि दबति कलानिधि की लोज को न काढ़ी है। रघुनाथ हेरि छोई हरखि हरिनैनी गहै गौस पैनी रीक

बतरस बाढ़ी है।—रघुनाथ (शब्द०)। ६. वश। अधिकार। शासन।

मुहा०—गौस में करना या रखना = अधिकार में रखना। देखरेख में रखना। शासन में रखना। उ०—निगुन कीन देश को बासी।……पावेगो पुनि कियो आपनो करेगो गौसी। सुनत मोन हँ रह्यो बावरो सूर सबै मति नासी।—सूर (शब्द०)।

७. देखरेख। निगरानी।

गौसना—क्रि० सं० [हि०] १. गौसने का सकर्मक रूप। एक दूसरे से सगाकर कसना। गूथना। २. सालना। छेदना। कुभोना। धारपाकर करना। ३. रस्सी या सूत के बाने बुनते समय उसे ठोंक ठोंककर ताने में कसना, जिससे बुनावट घनी हो। ठस करना। गठना। कसना।

मुहा०—ठात को गौसकर रखना = मन में बैठाकर रखना। हृदय में जमाना। स्मरण रखना। मन में लिए रहना। उ०—तुम बहु बात गौस करि राखी हमको गई भुलाइ। ता दिन कछो नहीं मैं जानी मानि लई सति भाइ।—सूर (शब्द०)।

४. इधर उधर न जाने देना। देखरेख में रखना। वश में रखना। अपने मन का न होने देना। शासन में रखना। रोकना। ५. पकड़ में करना। वश में करना। दबोचना। ६. ठूसना। भरना। ७. जहाज का छेद बंद करना।

गौसी—संज्ञा स्त्री० [हि० गौस] १. तीर या बरछी आदि का फल। हथियार की नोक। जैसे—प्रीतम के उर बीच अए दुलही को बिलास मनोज की गौसी।—मतिराम (शब्द०)।

मुहा०—गौसी लगना = तीर लगना। उ०—फाँस से फुलेल लागे गौसी सी गुलाल लागे गाज अरगजा लागे बोवा लागे चहकन।—(शब्द०)।

२. गौठ। गिरह। ३. कपट। छलछंद। ४. मनोमालिन्य।

गौहक—संज्ञा पुं० [म० ग्राहक] दे० 'ग्राहक'।

गा(उ)†—क्रि० प्र० [म० गत, प्रा० गच्छ] गया। उ०—जो जो गा सतसंग में सो सो बिगरा जाय।—पलटू०, भा० २, पृ० ३६।

गाइ†—संज्ञा स्त्री० [हि० गाय] दे० 'गाय' उ०—ठाढ़े गाइ गहन के काज किए फिरत ग्वालिन को साज।—नंद० प्र०, पृ० २६७।

गाइह—संज्ञा पुं० [प्र०] आगे आगे रास्ता बतलाने वाला। पथप्रदर्शक। रहनुमा। २. वह पुरुष जो किसी स्थान में विदेशियों के साथ रहकर उन्हें वहाँ के प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थलों और वस्तुओं को दिखलाता हो। ३. वह पुस्तक जिसमें किसी विशेष संस्था या कार्यविभाग के नियम आदि लिखे हों।

गाइना—वि० [सं० गायन] गानेवाला। गायक। उ०—पंडित भट्ट, कवि गाइना रुप सौदागिर बार हुआ।—पृ० रा० २७। २८।

गाउँ†—संज्ञा पुं० [हि० गाँव] दे० 'गाँव'। उ०—नंद गाउँ नीको लागत री।—नंद० प्र०, पृ० ३३०।

गाउन—संज्ञा पुं० [प्र०] १. एक प्रकार का लंबा ढीला पहनावा जो प्रायः युरोप, अमेरिका आदि देशों की स्त्रियाँ पहनती हैं। २. एक तरह का चोगा जो कई आकार और प्रकार का होता

है और जिसके पहनने के अधिकारी ईमाई धर्म के आचार्य, पंजुएट, बड़े म्यायाधीश प्रथमा कुछ अन्य विविष्ट नाग ही समझे जाते हैं।

गाऊपथ—वि० [हि० गाऊ + पथ] १. दूसरे के माल को हड़प लेनेवाला। जगामार। २. बहुत खर्च करनेवाला। बहुत उड़ानेवाला।

गाकरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गाकरी] अगाकरी। निट्टी।

गागरा—संज्ञा स्त्री० [सं० गार्ग] गगरी। घड़ा।

मुहा०—गागर में सागर भरना (१) अल्प स्थान में या छोटी जगह में बहुत अधिक का समावेश कर देना। (२) संक्षिप्त पदावली या वाक्ययोजना में अत्यधिक भावों या प्रयोगों का समावेश करना।

गागरा—संज्ञा स्त्री० [हि० गागर] दे० 'गगरा'। २. भंगियों की एक जाति।

गागरि(पु०)—संज्ञा स्त्री० [हि० गागरी] दे० 'गागरी'। उ०—ऊपर तें दधि, पूध, सोमन गागरि गन डरे।—नद० प्र०, पृ० ३३४।

गागरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गार्ग, पा० गगर] गगरी। उ०—(क) कदम नीचे ते मोहि बुलायो गति गति बातें बानति। मटकति गिरी गागरी मिरने अब ऐसी भुमि जानति।—गूर (शब्द०)। (ख) लो यह लतिका भी भर लार्, मधु मुकुल नवल रस गागरी।—नद०, पृ० १६।

गाच—संज्ञा पु० [सं० गाज] बहुत महीन जालीदार सूती कपड़ा जिसपर रेशमी रंग बूटे बने रहते हैं। फुलबग।

गाछ—संज्ञा पु० [सं० गच्छ] १. छोटा पेड़। पीछा। उ०—जम्पों जगति में गाछ बनाहूँ धुनि गुनि भिटि जजान जी।—भीष्मा० श०, पृ० ३६। २. पेड़। वृक्ष। ३. एक प्रकार का पान जो उत्तरी बंगाल में होता है।

गाछमरिच—संज्ञा स्त्री० [हि० गाछ + मरिच] मिर्च की जानि का एक प्रकार का वृक्ष।

गाछी—संज्ञा स्त्री० [हि० गाछन ई (पत्त०)] १. पेड़ों का गुंज। बाग। २. झगड़ की नरम कोपल जिसे लोग पड़कट जाने पर सुझाकर रख छोड़ता है और तरकारी के काग में लाते हैं। ३. बोरा जो बैल आदि पशुओं की पीठ पर बोझ लादने के लिये रखा जाता है। लुग्जी।

गाज—संज्ञा स्त्री० [सं० गज, प्रा० गज] १. गर्जन। गरज। शोर। उ०—(क) कविग। शूत। क्या करे सूते होय धकाज, बढ़ा को घासन डिगो मुनी कान की गाज।—कबीर (शब्द०)। (ख) नंदराय के चौक में खड़े करत सब गाज।—जय जय करि चिचियाहए तबै गिलत बजरज।—मुकवि (शब्द०)।

गो०—गाजा बाजा = धूम मड़वरा।

२. बिजली गिरने का शब्द। वज्रपात ध्वनि। जैसे,—गाज्यो कपि गाज ज्यो बिराज्यो जाल जालपुर भाज पीर बीर भकुलाइ उठयो राबनो।—तुलसी (शब्द०)। ३. बिजली।

वज्र। उ०—गाज्यो कपिराज रघुराज की सपथ करि भूदे कान जातुधान मानो गाजे गाज के।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—गाज पड़ना = वज्रपात होना। बिजली गिरना। उ०—मानहुँ परी स्वर्ग हुत गाजा। फाटी बरति भाइ सो बाजा।—जायसी (शब्द०), किसी घर गाज पड़ना = आफत आना। ध्वंस होना। नाश होना। उ०—जो सत पूछसि गंधर्व राजा। सत पर कबहुँ परे गहि गाजा।—जायसी (शब्द०)। (किसी बात पर) गाज पड़े = नष्ट हो। दूर हो। न रह जाय। उ०—(क) गाज परे ऐसी लाज पै जो अरि लोचन देखि न मोहि निहारन (शब्द०)। (ख) गाज परे ब्रज को बसिबौ तुमहूँ, सखि, देखति हो बरजोरी।—दूल्हा (शब्द०)। (किसी को कोसने या किसी बात से अनिच्छा प्रकट करने के लिये इस मुहावरे का प्रयोग स्त्रियाँ बहुत अधिक करती हैं)। **गाज मारना** = (१) बिजली गिरना। वज्रपात होना। (२) आफत आना। उ०—देव कहा सुनु बडरे राजा। देवहि धनुमन मारा गाजा।—जायसी (शब्द०)।

गाज—संज्ञा पु० [सं० गजगज] पानी आदि का फेन। फेन। भाग।

क्रि० प्र०—उठना। छूटना।—छोड़ना।—निकलना।—फेंकना।

गाज—संज्ञा स्त्री० [सं० काच] काच की चूड़ी।

गाजना—क्रि० प्र० [सं० गज्जन, प्रा० गज्जन] १. शब्द करना। हुंकार करना। गरजना। चिल्लाना। उ०—(क) सन मेघ अस दुहुँ दिसि गाजा। स्वर्ग के बीच बीचु अस बाजा।—जायसी (शब्द०)। (ख) उनई प्राय दुहुँ दल गाजे। हिंदू तुलक दोऊ सम बाजे।—जायसी (शब्द०)। २. हँसना। लुगना होना। प्रसन्न होना।

मुहा०—गलगाजना = हँसित होना।

गाजनी(पु०)—वि० स्त्री० [सं० गज्जन, हि० गंजना] लज्जित करनेवाली। पराजित करनेवाली। गंजनेवाली। उ०—सब ही को मनमथ, सब तिय जानति नीके कै रस बम आनंदधन सोलिन गाजनी गार्ह।—मनानंद०, पृ० ५८४।

गाजर—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पीछे का नाम जिसकी पत्तियाँ पत्रिण की पत्तियों से मिलती जुलती, पर उससे बहुत बड़ी होती हैं।

विशेष—इसकी जड़ मूली की तरह, पर अधिक मोटी और कालिमा लिए भटे की तरह गहरे लाल रंग की होती है। पीले रंग की भी गाजर होती है। यह खाने में बहुत मोटी होती है। यह गरम होती है और छोड़े को बहुत खिलाई जाती है। छोटी और नरम जड़ों को गरीब लोग और बच्चे बड़े चाव से खाते हैं। इसकी जड़ को सुखाकर उसके घाटे का हनुसा बनाया जाता है जो पुष्ट माना जाता है। काछी लोग इसे अपने खेतों में कातिक अगहन में बोत है। इसकी तरकारी, अचार और मुरब्बे भी बनाए जाते हैं।

मुहा०—गाजर मूली समझना = तुच्छ समझना।

गाजरघोट—संज्ञा पु० [दे०] गंजा नाम की कंटीली झाड़ी। वि० दे० 'कंजा'—१।

गाजा—संज्ञा पुं० [क्रा० गाज्] घुँह पर मलने का एक रोगन। पाउडर।

क्रि० प्र०—मलना। लगाना।

गाजी—संज्ञा पुं० [प्र० गाजी] १. मुसलमानों में वह वीर पुरुष जो धर्म के लिये विधियों से युद्ध करे। २. बहादुर। वीर। जैसे—साहि के सिवाजी गाजी सरजा समस्त महा मदगल अफजले पंजाब पटवयो।—भूषण (शब्द०)।

गाजोमर्द—संज्ञा पुं० [प्र० गाजी + फा० मर्द] १. वह जो बहुत बड़ा योद्धा या वीर हो। २. घोड़ा। प्रबल। (बोलचाल)।

गाजोमियाँ—संज्ञा पुं० [प्र० गाजोमियाँ] सालार मसऊद गाजी। बाले मियाँ।

विशेष—यह महम्मद गजनवी का भानजा था। हिंदुओं को काफिर समझकर उनसे लड़ने के लिये यह अवध तक बढ़ आया था, पर प्रारंभ ही में श्रावस्ती (सहेतमहेत) के जैन राजा सुहृददेव या सुहेलदेव के हाथ से बहुराष्ट्र में मारा गया था।

गाटर^१—संज्ञा स्त्री० [पुं० गटर् = गला] जुघाटे की वह लकड़ी जिसके इधर उधर बेल जोते जाते हैं।

गाटर^२—संज्ञा पुं० [हि० गाटा ?] १. दे० 'कट्टा'। २. छोटा खेत। गाटा।

गाटर—संज्ञा पुं० [प्र० गार्टर] लोहे की लंबी धीर मोटी धरन जिसे दीवारों पर डालकर छत पाटी जाती है।

गाटा—संज्ञा पुं० [हि० कट्टा] १. खेत का छोटा टुकड़ा। छोटा खेत। गाटर। २. पयाल दाने की बेलों की नषाई।

गाठरी^(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि० गठरी] दे० 'गठरी'। उ०—कस करि बाँधी गाठरी उठ करि चालो बाद।—कबीर सा० सं०, पृ० ६१।

गाड—संज्ञा पुं० [प्र० गाड] १. देवता। २. ईश्वर। खुदा।

विशेष—जर्मन भाषा में इस शब्द का उच्चारण गॉट्ट है, जैसे—'माल मीन गॉट्ट (ओ मेरे ईश्वर)।—श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था'।

गाड़—संज्ञा स्त्री० [सं० गर्त, प्रा० गड्ढा, मिलाओ प्र० गार] १. गड्ढा। गड्ढा। उ०—(क) गधिर गाड़ भरि भरि जमेउ ऊपर धुरि उड़ाइ। जिमि अंगार रासीन पर मृतक धूम रह छाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) वेई गड़ि गाड़ें परीं उपटयो हार हिये न। आन्यो मोरि मतंग मनु मानि गरेरनि मैन।—बिहारी (शब्द०)। (ग) चित चंचल जग कहत है मो मति सो ठहरे न। या ठोढ़ी की गाड़ परि पिर होइ सो निकरे न।—शृ० सत० (शब्द०)। २. पृथिवी के अंदर खोदा हुआ वह गड्ढा जिसमें भ्रष्ट रखा जाता है। ३. कोल्हाड़ में वह गड्ढा जिसमें बचा खुचा रस निचोड़ने के लिये ईख की छोई डालते हैं और ऊपर से पानी छिड़क देते हैं। इसके चारों ओर हाथ डेढ़ हाथ ऊँची दीवार होती है और अंदर से यह खूब लिपा पुता रहता है। इसके एक ओर छोटा सा छेद होता है जिसमें से होकर खोई से रस निचुड़ता है। ४. नील आदि के कारखाने में वह गड्ढा जिसमें पानी भरा रहता है। ५. कुएँ की डाल।

भगाड़। ६. वह छिछला गड्ढा जिसमें से पानी शीघ्र बह जाता है। खत्ता। ७. खेत की मेंड़। बाढ़।

गाड़ना—क्रि० सं० [हि० गाड़ = गड्ढा से नामिक धातु] १. पृथ्वी में गड्ढा खोदकर किसी चीज को उसमें डालकर ऊपर से मिट्टी डाल देना। जमीन के अंदर दफनाना। तोपना। जैसे,—रुपया गाड़ना, मुग्दा गाड़ना। २. पृथ्वी में गड्ढा खोदकर उसमें किसी लंबी चीज के एक सिरे का कुछ भाग डालकर उसे खड़ा करना। जमाना। जैसे,—बाँस गाड़ना, लट्टा गाड़ना, पेड़ गाड़ना। ३. किसी नुकीली चीज को नोक के बल किसी चीज पर ठोककर जमाना। धँसाना। जैसे,—खूँटी गाड़ना, कील गाड़ना। ४. गुप्त रखना। छिपाना। जैसे,—वह जो चीज पाता है, गाड़ रखता।

महा०—गाड़ गूड़ बेना = दफनाना। गाड़ना। उ०—गला चोटकर कहीं गाड़गूड़ देतीं।—प्रेमचन, भा० १६१।

गाड़र^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गड्ढरी या गड्ढरिका] १. मेंड़। उ०—(क) स्वामी होनो सहज है दुर्लभ होनो दास। गाड़र साये ऊन की लागी चरन कपास।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मतिराम कहै कारबार के करिया केते गाड़र से मूँड़े जग हाँसी को प्रसंग भो।—मतिराम (शब्द०)। २. दे० 'गाड़र'।

गाड़र^२—संज्ञा पुं० [सं० गाड़री] दे० 'गाड़री'।

गाड़व—संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल (को०)।

गाड़ा^(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० गान्त्री = बेलगाड़ी] गाड़ी। छकड़ा। बेलगाड़ी। उ०—कुंडल कान कंठ माला दै ध्रुव नंद प्रति मुख पायो। सीधे बहुत मुगमुर नंद गाड़ा भरि पचायो।—सूर (शब्द०)।

गाड़ा^२—संज्ञा पुं० [सं० गर्त, प्रा० गड्ढा] १. वह गड्ढा जिसमें आगे लोग छिपकर बैठ रहते थे और शत्रु, चोर, डाकू आदि का पता लेते थे। पहले गाँवों में ऐसे गड्ढे रहा करते थे।

मुहा०—गाड़े बैठना = (१) घात में बैठना। (२) चौकी या पहरे पर बैठना। गाड़ा बैठना = चौकी बैठना। पहरा बैठना।

२. वह खत्ता या गड्ढा जो कोल्हाड़ के नीचे रहता है और जिसमें तेज या रस जमा करने के लिये बरतन रखा रहता है।

गाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० गान्त्री या शकट, प्रा० सगड] १. घूमनेवाले पहियों के ऊपर ठहरा हुआ लकड़ी, लोहे आदि का ढाँचा। एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल असबाब या आदमियों को पहुँचाने के लिये एक यंत्र। यान। शकट। उ०—(क) गाड़ी के स्थान की नाई माया मोह की बड़ाई छिनहि तजि छिन भजत बहोरि हो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) लीक लीक गाड़ी चले, लीकहि चले कपूत।—(शब्द०)।

क्रि० प्र०—चलाना = होकना।

विशेष—इसे पोढ़े, बेल आदि पशु खींचते हैं और आदमियों के बैठने या माल असबाब आदि रखने के लिये इसपर स्थान बना रहता है। आदमियों को चढ़ानेवाली गाड़ी को सवारी गाड़ी और मान असबाब लादने की गाड़ी को छकड़ा, सगड आदि कहते हैं। सवारी गाड़ी कई प्रकार की होती है; जैसे,

रख, बहल, बहनी, एक्का, टीगा, बाधी, जोड़ी, फिटन, टमटम प्रादि ।

मुहा०—गाड़ी भर = बहुत सा । ढेर का ढेर । गाड़ी जोतना = गाड़ी में थोड़े जोतना । चलने के लिये गाड़ी तैयार करना । गाड़ी छूटना = गाड़ी का रवाना हो जाना ।

विशेष—ऐसा प्रायः ऐसी गाड़ियों के ही संबंध में बोलते हैं जिनका संबंध सर्वसाधारण से होता है और जिनके छाने जाने का समय नियत होता है । रेलगाड़ी छूटना, बस या मोटर छूटना आदि । २. रेलगारी ।

मुहा०—गाड़ी काटना = (१) किसी हिस्से का टुकड़ा से अलग होना । (२) चलती गाड़ी में से माल चोरी जाना ।

गाड़ीखाना—संज्ञा पुं० [हि० गाड़ी + खाना] वह स्थान जहाँ गाड़ियाँ रखी जाती हैं ।

गाड़ीखान—संज्ञा पुं० [हि० गाड़ी + खान (प्रत्य०)] १. गाड़ी हाँकने वाला । २. कोचवान ।

गाड़(पु)—वि० [हि०] शब्द 'गाड़' । उ०—एक एक रूप में रहते गाड़ गाड़ दे न बही ।—कीर्ति०, पृ० ४२ ।

गाड़'—वि० [ग० गाड़] १. अधिक । बहुत । अतिशय । २. दुक । मजबूत । उ०—अजहं न लक्ष्मी चंद्रगुप्तहि गाड़ आलिगन करे ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० १६३ । ३. घना । गाढ़ा । उ०—आसा ही के लंब बोध गाड़ के धरन है ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ४५२ । ४. गहरा । घनाह । ५. विकट । कठिन । दृक् । दुर्गम । उ०—क्षेत्र अगम गढ़ गाड़ मुहावा । सपनेई नहिं प्रतिपत्तिछन पाया ।—तुलसी (शब्द०) ।

गाड़'—संज्ञा पुं० [मं० गाड़] १. कठिनाई । आपत्ति । संकट । उ०—(क) जहें जहें गाड़ परे संन पर सकल काम तजि होहु सहाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) इसी मरी माई श्याम मुषंगम । कारे । मोहन मुख भुसकानि मनई बिष जाते परे सो मारे ।—निधिवि होत नही कैतव करि बहुत गुणी पवि हारे । गुरुश्याम गाड़ही बिना को सो सिर गाड़ उतारे ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पटना ।

मुहा०—गाड़े में पड़ना = संकट में पड़ना । आपत्तिग्रस्त होना । उ०—एक परे गाड़े, एक डावत ही काड़े, एक देखत हैं ठाड़े, कहै पावक भयावनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

२. जुनाहो का करघा ।

गाड़ा'—वि० [मं० गाड़] [वि० श्री० गाड़ी] १. जो पानी की तरह पतला न हो । जिसमें जल के समान बहनेवाले अंश के अतिरिक्त ठोस अणु भी मिला हो । जिसकी तरलता घनत्व लिए हो । जैसे,—गाढ़ा दूध, गाढ़ा रस, गाड़ी स्याही, गाढ़ा गरीर ।

मुहा०—गाड़ी छनना = (१) खूब भाग का पिया जाना । (२) गहमगहन होना ।

२. जिसके मूल परस्पर खूब मिले हों । ठम । मोटा । (कपड़े आदि के लिये) जैसे,—गाड़ी बुनावट, गाढ़ा कपड़ा । ३. घनिष्ट । गहरा । गूढ़ । जैसे,—गाड़ी मित्रता ।

मुहा०—गाड़ी छनना = (१) गहरी मित्रता होना । अत्यंत हेल मेल होना । गूढ़ प्रेम होना । जैसे,—भाजकल उन दोनों की खूब गाड़ी छनती है । (२) घुल घुलकर बातें होना । गुप्त सलाह होना । (३) लाग डोट होना । विरोध होना ।

४. बढ़ा चढ़ा । घोर । कठिन । विकट । प्रचंड । कट्टर । दुरूह । जैसे, गाड़ी मेहनत । उ०—द्विज देवता घरहि के बाड़े । मिले न कबहुं सुभट रन गाड़े ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—गाड़े की कमाई = बहुत मेहनत से कमाया हुआ धन । अत्यंत परिश्रम से उपार्जित धन । गाड़े का साथी या संगी = संकट के समय का मित्र । विपत्ति के समय सहारा देनेवाला । उ०—दस्तगीर गाड़े कर साथी । बहु अलगहाही दीन तेहि हाथी ।—जायसी (शब्द०) । गाड़े दिन = संकट के दिन । विपत्ति काल । मुसीबत का वक्त । गाड़े में = विपत्ति के दिनों से । संकट के समय में । जैसे,—मित्र वही जो गाड़े में काम आवे ।

गाड़ा'—संज्ञा पुं० [मं० गाड़] १. एक प्रकार का मोटा और भटा सूती कपड़ा जिसे जुनाहे बुनते हैं और गरीब आदमी पहनते हैं । २. मस्त हाथी ।

गाड़ावटी—संज्ञा स्त्री० [मं०] भारतीय वातरंज का एक भेद [को०] ।

गाड़े(पु)—क्रि० वि० [हि० गाड़ा] १. छटता से । जोर से । उ०—मैं गोरस ले जान अकेली कान्हि कान्ह बहिषी गही मेरी । हार सहित अंचरा गयो गाड़े एक कर गयो मडुकिया मेरी ।—सूर (शब्द०) । २. अच्छी तरह । भली भाँति । खूब । उ०—लाहिली के कर की मेंहदी छबि जात कही नहिं शंभुदू पर । झूलि जाहि बिलोकत ही गड़ि गाड़े, रहै प्रति ही दग दू पर ।—शंभु (शब्द०) ।

गाणपत'—वि० [मं०] [वि० श्री० गाणपती] १. गणपति संबंधी । २. सेना में गण के नायक से संबद्ध ।

गाणपत'—संज्ञा पुं० एक संप्रदाय जो गणेश की उपासना करता है । गाणपत्य—संज्ञा पुं० [मं०] १. गणेश का उपासक । २. गणेश की उपासना । ३. सेना की टुकड़ी का नायक ।

गाणिक्य—संज्ञा पुं० [मं०] गणिकाओं का समूह [को०] ।

गाणितिक—संज्ञा पुं० [मं०] गणित विद्या का जानकार । गणितज्ञ [को०] ।

गाणेश—संज्ञा पुं० [मं०] गणेश का उपासक [को०] ।

गात—संज्ञा पुं० [मं० गात्र, पा० गत] १. शरीर । अंग । उ०—कैंठ देख कुशामन जटा मुकुट कृष्ण गात ।—तुलसी (शब्द०) । २. लज्जा का अंग । गुप्तांग । जैसे,—गात दिखाना । ३. स्तन । कुच ।

मुहा०—गात उभगना = छाती उठना । कुच निकलना । ४. गर्भ ।

मुहा०—गात से होना = गर्भवती होना ।

गातलीन—संज्ञा स्त्री० [अ० गातलिन] जहाज में की एक डोरी जो मस्तूल के ऊपर एक चरखी में लगी रहती है और रीगन उठाने में काम आती है ।

गातव्य - वि० [सं०] गाने योग्य । गेय [को०] ।

गाता^१—संज्ञा पुं० [सं० गातृ > गातु, गातृ (गाता)] १. गानेवाला । गवैया । उ०—जयति रन अजिर गंधर्वं गन गंधर्व फेरि किय राम गुन गाथ गाता ।—तुलसी (शब्द०) । २. गंधर्व । देव गायक (को०) ।

गाता^२—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गता' ।

गातानुगतिक—वि० [सं०] दे० 'गतानुगतिक' ।

गाती—संज्ञा स्त्री० [सं० गात्री या गात्रिका] १. वह चट्टर जिसे प्राचीन काल में लोग अपने शरीर पर लपेटते थे और अब भी साधु लोग अपने गले में बांधे रहते हैं । स्त्रियाँ बच्चों के गले में अब भी गाती बाँधती हैं । उ०—सारी सुभग काछ सब दिये । पाटंबर गाती सब दिये । एकन जाइ दूर हरि पाये । सैन देइ राधिका बुलाये ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—कसना ।—बाँधना ।—लगाना ।

मुहा०—गाती भारना=गाती बाँधना ।

२. चट्टर या अंगोछा लपेटने का एक ढंग जिसमें उसे शरीर के चारों ओर लपेटकर गले में बाँधते हैं ।

गातु—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोयल । २. भीरा । ३. गंधर्व । ४. गवैया । गानेवाला । ५. गान । ६. चलनेवाला । पथिक । ७. पृथ्वी ।

गात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंग । देह । शरीर । २. हाथों के अक्षरे पेरों का ऊपरी भाग । ३. शरीर का कोई अंग या अवयव (को०) ।

गात्रक—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर (को०) ।

गात्रकषण—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का कृश या कमजोर होना (को०) ।

गात्रगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम जो लक्षणा या लक्ष्मणा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ।

गात्रभंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० गात्रभङ्गा] केवाच । कौच ।

गात्रमार्जनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगोछा । तौलिया (को०) ।

गात्ररुह—संज्ञा पुं० [सं०] बाल । रोझाँ । रोम (को०) ।

गात्रयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुबला पतला शरीर । २. शरीर (को०) ।

गात्रलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गात्रयष्टि' ।

गात्रवत्—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम जो लक्षणा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । गात्रगुप्त ।

गात्रवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] स्वरसाधन की वह प्रणाली जिसमें सातों स्वरों में से प्रत्येक का उच्चारण तीन बार करते हैं । जैसे,—सा सा सा, रे रे रे, ग ग ग आदि ।

गात्रविन्द—संज्ञा पुं० [सं० गात्रविन्द] श्रीकृष्ण के एक पुत्र जो लक्षणा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ।

गात्रसंकोचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] साही नामक जंतु (को०) ।

विशेष—यह उछलते या छलाँग मारते समय अपने शरीर को सिकोड़ लेता है ।

गात्रसमित—वि० [सं० गात्रसमित] तीन महीने के ऊपर का (गर्भ) । (गर्भ) जिसका शरीर बन गया हो ।

गात्रसौष्ठव—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर की सुंदरता । देह की सुधराई ।

गात्रानुलेपनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उबटन । अंगराग (को०) ।

गात्रावरण—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर ढकनेवाली वस्तु । कवच । जिरह-वस्त्र (को०) ।

गाथ^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. गान । २. स्तोत्र ।

गाथ^२—संज्ञा स्त्री० [सं० गाथा] १. यम । प्रशंसा । उ०—उत्तम गाथ सताय जबै धनु श्री रघुनाथ जी हाथ के तीनों ।—केशव (शब्द०) । २. कथा । वृत्तांत । हान । उ०—गुरु शिष के संवाद की कहीं अब गाथ नवीन । पेखि जाहि जिज्ञासु जन, होत विचार प्रवीन ।—निश्चल (शब्द०) ।

गाथक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गाथिका] गानेवाला । गायक ।

गाथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्तुति । २. वह श्लोक जिसमें स्वर का नियम न हो । ३. प्राचीन काल की एक प्रकार की ऐतिहासिक रचना जिसमें लोगों के दान, यज्ञादि का वर्णन होता था । ४. आर्या नाम की वृत्ति । ५. एक प्रकार की प्राचीन भाषा जिसमें संस्कृत के साथ कहीं कहीं पाली भाषा के विकृत शब्द भी मिले रहते हैं । ६. श्लोक । ७. गीत । ८. कथा । वृत्तांत । हास । ९. बारह प्रकार के बौद्ध शास्त्रों में चौथा । १०. पारसियों के धर्मग्रंथ का एक भेद । जैसे—गाथा अल्लवेति गाथा उल्लवेति इत्यादि ।

गाथाकार—संज्ञा पुं० [सं० गाथा + √कृ > कार (प्रत्य०)] १. प्राकृत की गाथा रचनेवाला व्यक्ति । २. स्तुति काव्य का रचयिता । ३. गायक । गवैया ।

गाथिक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गाथिका] दे० 'गाथक' (को०) ।

गाथी—संज्ञा पुं० [सं० गाथिन्] १. सामवेद गानेवाला । २. वह व्यक्ति जो गायन से परिचित हो (को०) ।

गादी—संज्ञा स्त्री० [सं० गाथ = चल के नीचे का तल] १. तरल पदार्थ के नीचे बैठी हुई गाढ़ी चीज । तलछट ।

मुहा०—गाढ़ बैठना=(१) तलछट बैठना । (२) कीट जमना ।

२. तेल का चीकट । कीट । ३. गाढ़ी चीज । जैसे,—गोंद, राब ।

गाद^१—वि० [सं० कातर या कदर्य, प्रा० कादर] कायर । डरपोक । भीर ।

गाद^२—संज्ञा पुं० १. वह बैल जो मारने पर भी न चले । २. [स्त्री० गादड़ी] गीदड़ । सियार ।

गाद^३—संज्ञा पुं० [सं० गदुर] भेड़ा । मेढ़ा । मेघ ।

गावर^१—वि० [सं० कातर या कदर्य, प्रा० कादर] १. डरपोक । भीर । कायर । २. सुस्त । मंदुर ।

गादर^१—वि० [हि० गबराना] गदराया हुआ ।

गादर^२—संज्ञा पुं० १. वह बैल जो जोतने पर मारने से भी धागे न बड़े । २. [स्त्री० गादरि, गादरी] गीदड़ । उ०—तहाँ भूप देखेउ अस सपना । पकरेउ पैर गादरी अपना । भूप छुड़ायो चाहत निज पग । तजत न गादरि पकरि जो पग रग ।—निश्चल (शब्द०) ।

गाव्ह ④—संज्ञा पुं० [सं० गवंध, प्रा० गवध, गवह] दे० 'गदहा' ।
उ०—जइ करहउ कोइउ हुबइ गाव्ह दीजइ दग ।—डोला०,
पृ० ३३३ ।

गावा—संज्ञा पुं० [म० गावा = बलवल] १. खेत का वह भूज जो
अच्छी तरह न पका हो । अधपका भूज । गहर । जैसे,—मटर
का गावा, बाजरे का गावा । २. बे पकी फसल । कच्ची फसल ।
३. मट्ट का फूल जो पेड़ से टपका हो । उ०—गुर गोरस
मट्टा कइ गावा । एन्हें का गुँह छोई दादा ।—लोकोक्ति ।
४. हरा मट्टा ।

गादी—संज्ञा स्त्री० [हि० गद्दी] १. एक पकवान का नाम । यह एक
छोटी टिकिया होती है जिसमें इलायची, चिरोजी और गरी
मिलाकर पूर भरा रहता है । २. दे० 'गद्दी' । उ०—गह घरती
रिणमल जिण गादी । बिग्रहिया जागे समवादी ।—रा० ६०,
पृ० १४ ।

गादुर—संज्ञा पुं० [म० कादुर, प्रा० कादुर = कपोक] बमगादुर ।
उ०—पानी रहे मच्छ छो दादुर, टांगे रहे बने बँह गादुर ।—
ग० हगिया, पृ० ६ ।

गाध^१—संज्ञा पुं० [म०] १. स्थान । जगह । २. जल के नीचे का
स्थल । बाह । ३. नदी का बहाव । बूल । ४. लोम । लिप्ता ।

गाध^२—वि० [वि० स्त्री० गाधा] १. जिसे हलकर पार कर सके । जो
बहुत गहरा न हो । छिछला । पायाब । २. मोड़ा । स्वल्प ।
जैसे,—तो गति भगवाब सिधु, गाध मति भरी वह भसाधुता
को राधे भपराध क्षमा कीजिये ।—देव (शब्द०) ।

गाधा—संज्ञा स्त्री० [म०] गायत्री स्वरूपा महादेवी ।

गाधि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्वामित्र के पिता का नाम ।

विशेष—य कुशिक राजा के पुत्र थे । हरिवंश में लिखा है कि
कुशिक ने इंद्र के समान पुत्र प्राप्त करने के लिये तपस्या की
तब इंद्र के अंश से विष्वामित्र उत्पन्न हुए ।

* यौ०—गाधिनगर । गाधिपुर । गाधिर्नहन । गाधितनय । गाधि-
पुत्र । गाधिसुभन ।

गाधिपुर—संज्ञा पुं० [म०] कान्यकुब्ज । कन्नोज ।

गाधय—संज्ञा पुं० [म०] विष्वामित्र ।

गाधया—संज्ञा स्त्री० [म०] गाधि की कन्या सत्यवती जो भागवतपुत्र
ऋचोक की पत्नी थी ।

गान—गङ्गा पुं० [सं०] [वि० गेय, गेय्य] १. गाने की क्रिया ।
संगीत । गाना ।

यौ०—गानविद्या = संगीत कला ।

२. गाने की बीज । गीत । ३. ध्वनि । आवाज । शब्द (को०) ।

४. स्तवन । प्रशंसन । बखान (को०) । ५. गमन । चलना (को०) ।

गाननाः पुं० क्रि० सं० [सं० गान] गाना । गान करना । उ०—
सकर नीकै जानत सारइ नारद गानत । तार्ते सब जगतगुरु
गोपिन गुरु करि मानत ।—नंद० बं०, पृ० ४१ ।

गाना—क्रि० सं० [सं० गान] १. ताल, स्वर के नियम के अनुसार
शब्द उच्चारण करना । आलाप के साथ ध्वनि निकालना ।

जैसे,—गीत गाना, मसाल गाना । २. मधुर ध्वनि करना ।

जैसे,—तूती का गाना, कोयल का गाना । ३. वर्णन करना ।

विस्तार के साथ कहना । उ०—द्विजदेव पू देखि अनोखी प्रभा
अलि बारन कीरति गायो करै । बिरजीवो बसंत सवा द्विजदेव
प्रमूनन की ऊँर लायो करै ।—द्विजदेव (शब्द०) ।

मुहा०—अपनी अपनी गाना = अपनी अपनी बात सुनाना । अपना
दुखड़ा रोना । अपनी ही गाना = अपनी ही बात कहते जाना ।
अपना ही हाल कहना । अपना ही विचार प्रकट करना । अपने
ही मतलब की बात करना । जैसे, तुम तो अपनी ही गाते हो,
दूसरे की सुनते नहीं ।

४. स्तुति करना । प्रशंसा करना । बखान करना । जैसे,—(क)
सब लोग उसका गुन गाते हैं । (ख) वह जिससे पाता है,
उसकी गाता है । उ०—(क) गाव्ये गणपति जगबंदन ।—
तुलसी (शब्द०) । (ख) द्विजदेव पू देखि अनोखी प्रभा
अलि बारन कीरति गायो करै ।—द्विजदेव (शब्द०) ।

मुहा०—गाना बजाना = प्रमोद प्रमोद करना । उत्सव मनाना ।
जैसे,—सब लोग गाते बजाते अपने घर गए ।

गाना^२—संज्ञा पुं० १. गाने की क्रिया । गान । २. गाने की बीज ।
गीत । जैसे,—कोई अच्छा गाना सुनाओ ।

गानिनी, गानिली—संज्ञा स्त्री० [सं०] बच्चा ।

गानी—वि० [सं० गानिन्] १. गानेवाला । २. जानेवाला (को०) ।

गाफला—वि० [अ० गाफल] दे० 'गाफल' । उ०—अकबर साह
गाफल गुमान सँ आसी । तहबूर खान हाथ सब राजबोझ
धारयो ।—रा० ६०, पृ० १०१ ।

गाफिल—वि० [अ० गाफिल] [संज्ञा गफिलत] १. बेसुध । बेखबर ।
२. असावधान । बेपरवाह ।

गाघ—संज्ञा पुं० [अ०] एक पेड़ ।

विशेष—इसके फल से एक प्रकार का चिपचिपा रस निकलता है
जो नाव के पेंडे में लगाया जाता है और जाल में मीका देने के
काम में आता है ।

गाबर(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० गज + बर, प्रा० गय + बर] दे० 'गैबर' ।
उ०—उषट्ट घटें गाबर तुड तुट्ट ।—पृ० रा०, १ । ४५४ ।

गाबलीन—संज्ञा स्त्री० [अं० केवल + लेड] एक घोड़ा जिससे
जहाज पर पाल चढ़ाया जाता है । सिंजालपारी ।

विशेष—इसमें चरख पर चढ़ी हुई एक मोटी रस्सी होती है, जो
भटके से ऊपर चढ़ती है ।

गाम—संज्ञा पुं० [सं० गमं, पा० गम्भ] १. पशुओं का गर्भ ।

मुहा०—गाम डालना = (१) गर्भ गिराना । गर्भ फेंकना । बच्चा
डालना । (२) अत्यंत भयभीत होना ।

२. दे० 'गाभा' । ३. बरतन का साँचा जिसपर गोबरी की तह न
चढ़ाई गई हो । ४. बुझ, पेड़ आदि का हीर । उ०—(क)
चंदन गाम की भुजा सेंबारी । अनो सो बेल कमल पीनारी ।—
जायसी (शब्द०) । (ख) घाय जुरी औरन की पीती ।
चंदन गाम बास की मीती ।—जायसी (शब्द०) ।

गामा—संज्ञा पुं० [सं० गन्, प्रा० गम्] [वि० गामिन] १. नया निकलता हुआ मुँहबंसा पत्ता जो नरम और इसके रंग का होता है। नया कल्ला। कौपल। उ०—ऐपन की ओप इंदु कुंदन की गामा चंगा केतकी की गामा जीत जोतिन सों जटियत।—देव (शब्द०)। २. केसे प्रादि के बंठल के अंदर का भाग। पेड़ के बीच का हीर। ३. लिहाफ, रजाई प्रादि के अंदर की निकाली हुई पुरानी रुई। गुद्ड़। ४. भरतवालों के सींचे के अंदर का भाग। ५. कच्चा अनाज। खड़ी बेती।

गामिन—वि० स्त्री० [सं० गमिणी, प्रा० गमिण] दे० 'गामिनी'।

गामिनी—वि० स्त्री० [सं० गमिणी, प्रा० गमिणी] जिसके पेट में बच्चा हो। गमिणी।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग चौपायों के लिये अधिक होता है, मनुष्यों के लिये कम।

गाम^१—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम, प्रा० गाम] गाँव। उ०—गाम तो है नंद गाम तहाँ की हों प्यारी।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६६।

गाम^२—संज्ञा पुं० [फ्रा०] पग। कदम। टग।

गामचा—संज्ञा पुं० [फ्रा०] थोड़े के पैर का वह भाग जो सुम और टखने के बीच में होता है। यह चार अंगुल के लगभग होता है।

गामजन—वि० [फ्रा०] चलनेवाला। गमन करनेवाला [को०]।

गामत—संज्ञा स्त्री० [सं० गमन] विकास।—(जहाज)।

मुहा०—गामत होना = पानी का टपकना या रसना।

गामभोजक—संज्ञा पुं० [प्रा० गाम + सं० भोजक] ग्रामणी। मुखिया।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २६३।

गामरू^१—वि० [हि०] गमन करनेवाला। उ०—मन नितंब पर गामरू तरफरात परिलंक। बर बेनी नागिनि हव्यो खर बीछी को डंक।—स० सप्तक, पृ० २३६।

गामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव।

विशेष—यह नाव ६६ हाथ लंबी, १२ हाथ चौड़ी और ६ हाथ ऊँची होती थी और समुद्रों में चलती थी। ऐसी नाव पर यात्रा करना असुख और दुःखदायी समझा जाता था।

गामिण^२—वि० [सं० ग्रामिक, प्रा० गामिय] 'गामी'। उ०—बुल्यो बर गामिय गुज्ज गवार। कहे सुरतानप सेन उबार।—पृ० रा०, १२। १३६।

गामी^१—वि० [सं० ग्रामिन्] [वि० स्त्री० गामिनी] १. चलनेवाला। चालवाला। जैसे,—गजगामिनी, हंसगामी, रथगामी। उ०—कठिन भूमि कोमल पद गामी। कौन हेतु बन बिचरहु स्वामी।—तुलसी (शब्द०)। २. गमन करनेवाला। संभोग करनेवाला। रमण करनेवाला। जैसे,—परस्त्रीगामी, वेश्या-गामी इत्यादि।

गामी^२—वि० [सं० ग्रामिन्] १. ग्राम का निवासी। २. गंवार। मूख। उ०—गामी गवार मैवात पति राजराज सहो मिरै।—पृ० रा०, १५। २१।

गामुक—वि० [सं०] जानेवाला।

गायंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गायन्तिका] हिमालय पर का एक स्थान जिसका उल्लेख महाभारत के उद्योग पर्व में है।

गाय—संज्ञा स्त्री० [सं० गो] १. सींगवाला एक मादा चौपाया जिसके नर को साँड़ या बैल कहते हैं।

विशेष—गाय बहुत प्राचीन काल से दूध के लिये पाली जाती है। भारतवासियों को यह अत्यंत प्रिय और उपयोगी है। इसके दूध और घी से अनेक प्रकार की खाने की चीजें बनाई जाती हैं। गाय बहुत सीधी होती है; बच्चा भी उसके पास जाय, तो नहीं बोलती।

मुहा०—गाय की तरह कांपना = (१) बहुत डरना। (२) घर घर कांपना। धरना। गाय का बछिया तले और बछिया का गाय तले करना = (१) हेरी फेरी करना। धर धर करना। (२) काम निकालने के लिये कुछ का कुछ प्रकट करना।

२. बहुत सीधा सादा मनुष्य। दीन मनुष्य। जैसे,—वह बेचारा तो गाय है; किसी से नहीं बोलता।

गायक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गायकी] गानेवाला। गवैया।

गायकवाड—संज्ञा पुं० [मरा० गायकवाड] बरोडा के महाराजाओं की उपाधि। बड़ोदा नरेशों की उपाधि।

गायकी—संज्ञा स्त्री० [सं० गायक] १. गाने की क्रिया या भाव। गाने का तीर तरीका। २. गाने का काम। ३. दे० 'गायिका'।

गायगोठ—संज्ञा स्त्री० [हि० गाय + गोठ] गायों के रहनेवाला बाड़ा। गोशाला।

गायण^१—संज्ञा पुं० [सं० गायन, प्रा० गायण] दे० 'गायन'।

गायणी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गायन, प्रा० गायण + हि० ई (प्रत्यय)] गाने का धंधा करनेवाली स्त्री। उ०—गहकं गायणी जी गावें धवल मंगल गीत।—र० रू०, पृ० ७१।

गायत—वि० [म० गायत] बहुत अधिक। हृद से ज्यादा। अत्यंत। जैसे,—वह गायत दरजे का पाजी है।

गायत—संज्ञा स्त्री० १. उद्देश्य। मतलब। सबब। २. अंत। सीमा। छोर। किनारा [को०]।

गायताल^१—संज्ञा पुं० [हि० गाय + ताल] १. बैलों में निकट, निकम्मा चौपाया। २. निकम्मी और रद्दी बीज। गई गुजरी बीज।

गायताल^२—वि० निकम्मा। रद्दी।

यौ०—गायताल खाता या गेतन खाता = गई बीती रकम का लेखा। बट्टा खाता।

मुहा०—गायताल लिखना = बट्टे खाते डालना। गया गुजरा समझना। जैसे,—टूटे मणि माले निर्गुण गायताल लिखे पोथिन ही अंक मन कलह बिचारही।—गुमान (शब्द०)। गायताल खाते लिखना या डालना = बट्टे खाते में डालना। गया गुजरा समझना। गायताल खाते में जाना = बट्टे खाते में जाना। हजम होना। हड़प होना। गया गुजरा होना। जैसे,—इतना रुपया जो हमने तुम्हें दिया, सब गायताल खाते में गया।

गायत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [श्री० गायत्री] गायत्री छंद ।

गायत्री^१—संज्ञा पुं० [सं० गायत्रिम्] [श्री० गायत्रिणी] १. स्त्री का पेड़ । २. उदगता । मास का गायक ।

गायत्री^२—संज्ञा श्री० [सं०] १. एक वैदिक छंद का नाम ।

विशेष—यह छंद तीन चरणों का होता है और प्रत्येक चरण में साठ साठ अक्षर होते हैं । इसके आर्य, देवी, आमुनी, प्राजा-पत्या, याजुगी, मामनी, आर्यी और ब्राह्मी साठ अक्षर हैं, जिनमें क्रमशः २०, १, १४, ८, ६, १२, १८ और ३६ वर्ण होते हैं । प्रत्येक अक्षर के पिपीलिका, मध्या, निचुत्, यवमध्या, भूरिक, धिराट और रवराट आदि अनेक अक्षर होते हैं ।

२. एक पवित्र मंत्र का नाम जिसे सावित्री भी कहते हैं ।

विशेष—हिंदूधर्म में यह मंत्र बड़े महत्व का माना जाता है । इसमें यज्ञोपवीत के समय वेदार्थ संस्कार करने हुए आचार्य इस मंत्र का उपदेश श्रद्धावागी को करता है । इस मंत्र का देवता सविता और ऋषि विश्वामित्र हैं । मनु का कथन है कि प्रजापति ने प्रकार प्रकार और प्रकार वर्णों, भू, भुव, और स्वः तीन व्याहृतियों तथा सावित्री मंत्र के ताना पादों को ऋक, यजु और सामवेद से यथाक्रम निकाला है । इस सावित्री मंत्र के भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न अर्थ किए हैं और ब्राह्मणा, उपनिषदों से लेकर पुराणों और तंत्रों तक में इसके महत्व का वर्णन है । सावित्री मंत्र यह है—तत्सवितुर्वरेण्य । भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।

३. स्त्री । ४. दुर्गा । ५. गंगा । ६. छह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति । इसके अनुषंग्या, गणिवचना आदि अनेक अक्षर हैं ।

गायन—संज्ञा पुं० [गाय] [श्री० गायनी] १. गानेवाला । गीता । गायक । २. गान का व्यवसाय करनेवाला ।

विशेष—मन में गायन के अभ्यसना का निषेध किया है ।

३. गान । गाना । ४. कानिकेय ।

गायनी—संज्ञा श्री० [गाय] गाने का धधा करनेवाली स्त्री ।

गायब^१—क्रि० प्र० [गायब] लुप्त । अंतर्धान ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—गायब गुल्ला—ऐसा लुप्त कि फिर पता न लगे ।

गुहा०—गायब करना=चुरा लेना । उड़ा लेना । जैसे,—वह दखने ही दखने चीज गायब कर लेता है । गायब होना=चोरी जाना ।

गायब^२—संज्ञा पुं० [प्र०] शतरंज खेलने का एक प्रकार ।

विशेष—इसमें शतरंज की बिमात से परोक्ष में बैठकर खेलते हैं । इस खेल में बिमात या तो किसी कोठरी में अथवा अंगूठ साट में बिछी रहती है अथवा खेलाडी बिमात की ओर पीठ करके बैठते हैं और दूसरे आदमी उनके आज्ञानुसार मुहरों को चलते हैं ।

क्रि० प्र०—खेलना ।

गाय बगला—संज्ञा पुं० [हि० गाय + बगला] एक प्रकार का बगला ।

विशेष—यह घान के सेतों में होता है । यह पशुओं के झुंड के साथ रहता है और उनके बीड़ों को खाता है । इसे सुरखिया बगला भी कहते हैं ।

गायबानर—क्रि० वि० [प्र० गायबानह] १. गुप्त रीति से । २. पीठ पीछे । अनुपस्थिति में ।

गायरीन^१—संज्ञा पुं० [सं० गोरोचन] गोरोचन ।

गायिनी—संज्ञा श्री० [सं०] १. गानेवाली स्त्री । २. एक मात्रिक छंद ।

विशेष—इसके पादों में क्रमशः १२+१८ और १२+२० मात्राएँ होती हैं और प्रत्येक चरण के अंत में गुरु तथा बीस बीस मात्राओं के पीछे एक जगण होता है । बीस मात्राओं के पीछे यदि चार लघु आ जायें, तो भी दोष नहीं माना जाता । जैसे,—भादो चारा मत्ता दूजे हैं तो सजाय मांद लहो । तीजे भासू कीजे चौथे बीमे जु गाविनी मुक्ति कहो ।

गारंटी—संज्ञा श्री० [सं०] प्रतीति । विश्वास । वचन । आश्वासन । उ०—इस बात की गारंटी मुझसे लो ।—संख्यासी, पृ० २६२ ।

गार^१—संज्ञा श्री० [हि० गाली] गाली । उ०—बिन और न सुझाय तन चंदन लीगे गार । और की लीकी लगे मीता सी सी गार ।—रसनिधि (शब्द०) ।

गार^२—संज्ञा पुं० [प्र० गार] १. गहरा गड्ढा । गर्त । खड्ड । २. गुफा । कदरा ।

गार^३(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आगार] दे० 'आगार' । उ०—दार गार सुन पति इनकार (कहो) कवन आहि सुख ।—नंद० प्र०, पृ० ४२ ।

गार^४(पु)—संज्ञा पुं० [हि० गारा] दे० 'गारा' । उ०—कंठी माला काठ की तिलक गार का होय ।—कबीर० बानी, पृ० ३५ ।

गार^५—प्रत्यय [का०] करनेवाला । जैसे,—विदमनगार ।

गारड^१—संज्ञा पुं० [सं० गार्ड] दे० 'गार्ड' । उ०—इच्छा कर्म मंजोगी इन्जिन गारड आप अकेला है ।—श्यामा०, पृ० ११४ ।

गारड^२—संज्ञा पुं० [सं० गारडो] दे० 'गारडो' । उ०—तब गारड में विष का माता । काहे न जियावो गारे प्रभृत दाता ।—कबीर प्र०, पृ० ११४ ।

गारत—क्रि० [प्र० गारत] नष्ट । बरबाद । मटियामेट । ध्वस्त ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

गारत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गार्त] दे० 'गार्त' । उ०—प्रविस कियो गारत गिरि, जय जय वचन सरोर हुआ ।—पृ० २०, १ । ११८ ।

गारद—संज्ञा श्री० [सं० गार्ड] १. सिपाहियों का झुंड जो एक अफगर के मातहत हो । २. सिपाहियों का झुंड जो किसी व्यक्ति या वस्तु की रक्षा के लिये अथवा किसी असामी को भागने से रोकने के लिये नियत हो । पहरा । चौकी । उ०—जब भोपेरा हुआ, तब हम लोगों की निगरानी के लिये जो गारद थी, वह डबल कर दी गई ।—द्विवेदी (शब्द०) ।

गारद—संज्ञा पुं० [हि० गाय + बगला] एक प्रकार का बगला । विशेष—यह घान के सेतों में होता है । यह पशुओं के झुंड के साथ रहता है और उनके बीड़ों को खाता है । इसे सुरखिया बगला भी कहते हैं ।

हवालात में देना । हाजत में करना । पहरे में करना । गारब में देना = हवालात में बंद करना । गारब में रखना = पहरे में रखना । हवालात में रखना । नजरबंद रखना ।

गारना^१—क्रि० सं० [सं० गालन = निचोड़ना] १. दबाकर पानी या रस निकालना । निचोड़ना । उ०—गीमे कपड़े उसने देह से उतारे, उनको भली भाँति गारा, देह को पोछा, पीछे उम्हीं कपड़ों को पहन लिया ।—अयोध्या (शब्द०) । २. (दूध) दूहना । जैसे, गाय गारना । ३. पानी के साथ चिसना जिसमें उसका अंश पानी में मिले । जैसे,—चंदन गारना । उ०—बिन ओसर न सुहाय तन चंदन लीपे गार । ओसर की नीकी लगे मीता सो सी गार ।—रसनिधि (शब्द०) । ५. निकालना । श्यागना । दूर करना । उ०—मार दई अरविदन की तऊ मानत नाहि न ओगुन गारे । गारी दई पछितानि भरी अब लाज गहो कछु नंददुलारे ।—(शब्द०) ।

गारना^२—क्रि० सं० [सं० गल] १. गलाना । बुलाना ।

मुहा०—तन या शरीर गारना = शरीर गलाना । शरीर को कट देना । तप करना । उ०—ब्रज युवतिन मन हरयो कन्हार ।—रास रंग रस मन रचि आन्यो निसि बन नारि बुलाई । तब तन गारि बहुत श्रम कीन्हो सो फल पूरन दें । बेनुनाद रस विवस कराई सुनि धुनि कीनो गीन ।—सूर (शब्द०) ।

१. नष्ट करना । बरबाद करना । खोना । उ०—आछो गात अकारण गारयो । करी न भक्ति श्यामसुंदर सों जन्म जुषा ज्यों हारयो ।—सूर (शब्द०) ।

गारभेली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का जंगली फालसा ।

विशेष—इसका पेड़ बहुत छोटा होता है और यह उत्तर और पूर्व भारत तथा हिमालय की तराई में चार हजार फीट की ऊँचाई तक होता है । इसकी छाल भूरे हरे रंग की होती है और इसकी डालियों के रेशे से रस्सियाँ बनाई जाती हैं । यह कातिक, अगहन में फूलता और पूस से बैसाख तक फलता है । फल देहातियों के खाने के काम आता है ।

गारहस्थ^१—संज्ञा पुं० [सं० गार्हस्थ्य] गार्हस्थ्य । गृहस्थी । उ०—केचित् गारहस्थ बहु भाँती । पुत्र कलत्र बंधे दिन राती ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ८६ ।

गारा^१—संज्ञा पुं० [हि० गारना] मिट्टी अथवा बूने, सुर्खी आदि को पानी में सानकर बनाया हुआ लसदार लेप जिससे ईंटों की जोड़ाई होती है ।

यौ०—बूने गारे का काम = पलस्तर का काम । गच का काम ।

गारा^२—संज्ञा पुं० [देश०] संकीर्ण जाति का एक राग जो दोषहर को गाय जाता है ।

गारा^३—संज्ञा पुं० [देश०] वह नीची सूँधी जिसमें पानी बहुत दिन न टिके ।

गारा कान्हड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] संपूर्ण जाति का एक राग जो संध्या के उपरांत गाय जाता है ।

गारि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गालि] दे० 'गालि' । उ०—दीपक जोर लै बली बाट में, छवि सों बड़ो करि देति गारि ।—नंद० सं०, पृ० ३५३ ।

गारित्र—संज्ञा पुं० [सं०] धान्य । चावल । [कौ०] ।

गारिय^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गालि] दे० 'गाली' । उ०—गारिय सुधीन उगार हृत्थ, विरच्यी सु बाहि पत्थर समध्य ।—प० रासो, पृ० ४० ।

गारी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गालि] १. गाली । दुर्वचन । उ०—नारी गारी बिनु नहि बोले पूत करे कलकानी । घर में आदर कादर को सों खोक्त रेन बिहानी ।—सूर (शब्द०) । २०. कलंक-जनक आरोप । अरित्र संबंधी लोछन ।

मुहा०—गारी आना, पड़ना, लगना = कलंक लगना । लोछन लगना । दाग लगना । बदनामी होना । उ०—लोचन लालच भारी । इनके लए लाज या तन की सबै श्याम सों हारी । बरजत मात पिता पति बांधव अरु भावै कुल गारी । तदपि रहत न नंदनंदन बिनु कठिन प्रकृति हठ नारी ।—सूर (शब्द०) । गारी देना = दे० 'गारी बकना' । उ०—चंगुल बेहरा खइलन खेत । बुलबुल अइलन गारी देत । ए बुलबुल तूँ काहें गारी देलस अपने खेत क भूसी लस हमरी मझरी दस (बच्चों के गीत) । गारी बकना = अपशब्द, अपलोचन शब्द कहना । लोछन करना । गारी लगाना = कलंकित करना । दाग लगाना । वि० दे० 'गाली' ।

३. एक गीत जो विवाह आदि में स्त्रियाँ भोजन के समय गाती हैं । उ०—जैवत देहि मधुर धुनि गारी । ले ले नाम पुरुष अरु नारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—गाना ।—देना ।

गारुड^१—संज्ञा पुं० [सं० गारुड] १. जिस मंत्र का देवता गरुड हो । साँप के विष उतारने का मंत्र । उ०—आवति लहरि बिरहा की को हरि बेगि हकाये । सूरदास गिरिधर जो आर्वाहि हम सिर गारुड डारें ।—सूर (शब्द०) । २. सेना की एक व्यूहरचना जिसमें सेना को गरुड के आकार की बनाते हैं । इसे गरुडव्यूह भी कहते हैं । ३. मरकत । मणि । पन्ना । ४. सुवर्ण । सोना । ५. एक अस्त्र का नाम । गारुत्मक । ६. गरुड पुराण ।

गारुड^२—वि० [वि० स्त्री० गारुडी] गरुड संबंधी । गरुड का ।

गारुडि—संज्ञा पुं० [सं० गारुडि] १. संगीत शास्त्र में आठ प्रकार के तालों में से एक । २. गारुडी । उ०—तय सरूप गारुडि रघुनायक मोहि जिआएउ जन सुल दायक ।—मानस, ७।६३ ।

गारुडिक—संज्ञा पुं० [सं० गारुडिक] १. साँप का विष भाड़नेवाला । गारुडी । २. मंत्र से साँप पकड़नेवाला । सेंपेरा ।

गारुडी—संज्ञा पुं० [सं० गारुडिन] मंत्र से साँप का विष उतारनेवाला । साँप भाड़नेवाला । उ०—(क) चले सब गारुडी पछिताइ । नेकहू नहि मंत्र लागत समुझि काहु न जाइ ।—सूर (शब्द०) । (ख) डसी री भाई श्याम मुधंगम कारे । आनहु बेगि गारुडी गोविंद जो यहि विषहि उतारै ।—सूर (शब्द०) । २. साँप पकड़नेवाला । सेंपेरा ।

गारुत्मक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरकत । पन्ना । २. गरुड जी का अस्त्र । गारुड ।

गारुत्मक^२—वि० गरुड संबंधी या गरुड का ।

गाहरि, गारो—संज्ञा पु० [मं० गारडि] दे० 'गारडि'। उ०—
कच विषधर सरवर इसा, मूरि न गारि सग। नय सिख
सेती लहरि अनु, बिभुरि गई सब संग।—चित्रा०, पृ० ४७।
(क) जायल गुनी गारो धाए। मोझा बैद सवान बोलाए।—
जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २००।

गारो—संज्ञा पु० [मं० गर्व] १. गर्व। घमड़। ग्रहंकार। अभिमान।
उ०—देखत बल दूरि करयो मेघनाद गारो। आपुनि भयो
सक्रुचि मूर बंधन ते न्यारो।—मूर (शब्द०)। (क) मुनि
लग कहत प्रब मोगी रहि समुक्ति प्रेम पथ न्यारो। गए ते प्रभु
पहुंचाइ किये पुनि करत करम गुन गारो।—तुलसी (शब्द०)।
२. मान। प्रतिष्ठा। उ०—जो मेरे लाल लिखावै। सो
अपनो कियो फल पावै। तोहि देहो देस निकारो। ताको बज
नाहिन गारो।—मूर (शब्द०)। ३. गृह। निवास। घर।

गारो—संज्ञा पु० [मं०] १. एक पहाड़ी का नाम जो आसाम के
दक्षिण पश्चिम में है। २. एक जंगली जाति जो गारो पहाड़ी
में रहती है।

गारो(पु०)—संज्ञा पु० [सं० गोरग या म० गुरु] गौरव। गुरुता। उ०—
जिन्ह पर कता ते मुखी तिन्ह गारो ओ गर्व।—जायसी
ग्रं०, पृ० १५२।

गार्गे—वि० [सं०] १. गर्म संबंधी। २. गर्म द्वारा निर्मित, या कथित।

गार्गे—संज्ञा पु० संगीत में एक तान [को०]।

गार्मि—संज्ञा पु० [सं०] गर्म मुनि का मंत्र [को०]।

गार्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्म गोत्र में उत्पन्न एक प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी
स्त्री। इसकी कथा बृहद्वाग्वेद उपनिषद् में है। गार्मी
वाचस्पती। २. दुर्गा। ३. याज्ञवल्क्य ऋषि की एक स्त्री
का नाम।

गार्मीय—वि० [सं०] १. गर्म का रचा हुआ। २. गर्म संबंधी [को०]।

गार्मीय—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० गार्मीय] १. गर्म गोत्र का पुरुष।
२. गर्म रचित ग्रंथ [को०]।

गार्म्य—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० गार्मी] १. गर्म गोत्र में उत्पन्न पुरुष।
२. एक प्राचीन वेदाकरण जिनके मत का उल्लेख यास्क
और पाणिनि ने किया है। निरक्त टीकाकार दुर्गासिंह के
अनुसार सामवेद के पदपाठ की रचना इन्हीं ने की थी।
इनकी बनाई एक स्मृति भी है।

गार्जर—संज्ञा पु० [मं०] गाजर [को०]।

गार्जियन—संज्ञा पु० [सं०] देखभाल करनेवाला व्यक्ति, संरक्षक।
प्रतिभाषक। उ०—मेरे गार्जियन की हैसियत से इस प्रकार
की सूचना प्राप्त करने के संबंध में उनकी उत्सुकता स्वाभाविक
है।—पर्व०, पृ० ६४।

गार्ड—संज्ञा पु० [सं०] १. पहरा देनेवाला मनुष्य। रक्षक।

यौ०—बाड़ीगार्ड।

२. रेल का वह प्रधान उत्तरदाता नर्सबारी जो ट्रेन की रक्षा के
लिये पीछे ब्रेक में रहा करता है। इसके आमानुसार इंजन
का इंजिनर गाड़ी रोकता और चलाता है। ३. निगरानी
रखनेवाला मनुष्य। निरीक्षक। जैसे, इमतिहान का गार्ड।

गार्डेन—संज्ञा पु० [सं०] बाग। बगीचा।

यौ०—कंपनी गार्डेन। गार्डेन पार्टी। गार्डेन सिटी। गार्डेन
सुपरिटेण्डेंट। गार्डेन हाउस।

गार्डेन पार्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भोज जो नगर के बाहर किसी
बाग बगीचे में दिया जाय।

गार्दभ—वि० [सं०] गर्दभ संबंधी। गर्दहे का [को०]।

गार्दर्थ—संज्ञा पु० [सं०] तृष्णा। लोभ। लालच [को०]।

गार्ध—वि० [सं०] [वि० स्त्री० गार्धो] गृध संबंधी [को०]।

गार्ध—संज्ञा पु० [सं०] १. लालच। लोभ। २. तीर। बाण। [को०]।

यौ०—गार्धपक्ष, गार्धबाना = वह बाण जिसमें गिद्ध के पंख
लगे हों।

गार्ध—वि० [सं०] १. गर्म संबंधी। गर्म का। २. गर्म से उत्पन्न।
गर्भज। ३. गर्म के लिये हितकर [को०]।

गार्ध—वि० [मं०] १. गृह अथवा गृहपति के लिये उचित। २. गृह
संबंधी [को०]।

गार्धपत—वि० [सं०] गृहपति संबंधी [को०]।

गार्धपत—संज्ञा पु० [सं०] गृहपति होने की स्थिति या भाव। गृह-
पतिरव [को०]।

गार्धपत्य—संज्ञा पु० [सं०] १. दे० 'गार्धपत्याग्नि'। २. गार्धपत्य अग्नि
के रखने का स्थान। ३. सांभिक गृहस्थ [को०]।

गार्धपत्याग्नि—संज्ञा स्त्री० [मं० गार्धपत्य + अग्नि] छह प्रकार की
अग्नियों में से पहली और प्रधान अग्नि।

विशेष—परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी इस अग्नि को रखने का
विधान है। यज्ञों में पात्रतपन आदि कर्म इसी अग्नि में किए
जाते थे। श्रौतमूत्र के अनुसार अग्निहोत्र ग्रहण करनेवाले के
लिये इस अग्नि का रखना अत्यंत आवश्यक है। साधारण भोजन
पकाने से लेकर संस्कार तक सभी कृत्य इसी अग्नि में किए
जाते हैं। शास्त्रानुसार प्रत्येक गृहस्थ को इस अग्नि की रक्षा
करनी चाहिए।

गार्धमेध—संज्ञा पु० [मं०] पंचयज्ञ आदि गृहस्थों के कर्तव्य कर्म।

गार्धस्थिक—वि० [मं० गार्धस्थ] गृहस्थ जीवन संबंधी।

विशेष—यह शब्द संस्कृत व्याकरण से असाधु है पर हिंदी में
इस शब्द का प्रयोग प्रचलित है।

गार्धस्थ्य—संज्ञा पु० [सं०] १. गृहस्थाश्रम। २. गृहस्थ के मुख्य कृत्य।
पंच महायज्ञ।

गार्धस्थ्य विज्ञान—संज्ञा पु० [मं० गार्धस्थ्य + विज्ञान] वह विज्ञान
जिसमें गृह संबंधी बातों का विवरण रहता है। जैसे,—घर
की व्यवस्था, भोजन आदि की तैयारी की पूरी जानकारी,
बच्चों का पालन पोषण आदि।

गाल—संज्ञा पु० [सं० गल्ल] १. मुँह के दोनों ओर ठूड़ी और
कनपटी के बीच का कोमल भाग जो आँखों के नीचे होता
है। गंड। कपोल। जैसे,—लाल गुलाल सो सीनी मुठी भरि
बाल के गाल की ओर चलाई।—देव (शब्द०)।

मुहा०—गाल फुलाना = (१) गर्वसूचक आकृति बनाना।
अभिमान प्रकट करना। जैसे,—सो मनु न लाब हम

माई । बचन कहहि सब गाल फुलाई ।—तुलसी (शब्द०) ।
 (२) कठकर न बोलना । रुठना । रिसाना । उ०—कोउ एक
 संग न होइ मुधानु । हंसब ठठाइ फुलाउब गासु ।—तुलसी
 (शब्द०) । गाल बजाना = (१) डींग मारना । बढ़ बढ़कर
 बातें करना । उ०—(क) बुधा मरहु अनि गाल बजाई ।
 मनमोदकन कि भूख बुझाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख)
 बलवान है खान गली अपनी तोहि लाज न गाल बजावत
 सोहि ।—तुलसी (शब्द०) ।—(२) व्यर्थ बकबाद करना ।
 मिथ्या प्रलाप करना । उ०—कबीर बणहि फेरि के भवरण
 भई छिनार । बैठी प्रापु अतीत हूँ कियो अनंत मतार । कबीर
 बठी शेष हूँ बिना रूप की राइ । गाल बजावै नेति कहि कियो
 मतारहि भाइ ।—कबीर (शब्द०) । गाल में जाना =
 मुंह में पड़ना । काल के गाल में जाना = मृत्यु के मुख में
 पड़ना । मरना । गाल में भरना = खाने के लिये मुंह में
 रखना । गाल मारना = (१) डींग हानना । बढ़ बढ़कर बातें
 करना । सीटना । उ०—मूढ़ मृषा अनि मारेसि गाला । राम
 बैर होइहै अस हाल ।—तुलसी (शब्द०) (२) व्यर्थ बकबाद
 करना । बढ़बड़ाना । मिथ्या जल्पना । उ०—क्यों न मारे
 गाल बैठी काल डाढ़न बीच ।—तुलसी (शब्द०) ।

२. बढ़बड़ाने का स्वभाव । बकबाद करने की लत । मुंहजोरी ।
 उ०—हंस कह राति गाल बड़ तोरे ।—दीन्ह लखन सिख अस
 मन मोरे ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—गाल करना = (१) बोलने में शंका संकोच न करना ।
 मुंहजोरी करना । मुंह से मंडबंड निकालना । उ०—कत सिख
 देइ हमहि कोउ भाई । गालु करब केहि कर बल पाई ।—
 तुलसी (शब्द०) । (२) बढ़ बढ़कर बातें करना । डींग
 मारना । जैसे,—वह मधवा बलि लेतु है नित करि करि गाल ।
 गिरि गोवर्द्धन पूजिये जीवन गोपाल ।—सूर (शब्द०) ।

३. मध्य । बीच । जैसे,—वे पर्वत के गाल में उड़ते दीखते हैं ।—
 वायुसागर (शब्द०) । ४. उतना धन जितना एक बार मुंह में
 डाला जाय । फंका । घास । जैसे,—एक गाल मार लें तो
 चलें ।

मुहा०—गाल मारना = घास मुख में रखना । कोर मुंह में
 डालना ।

५. वह मुट्ठी भर धन जो चक्की में पीसने के लिये एक बार
 डाला जाता है । झीक । ६. मुंह । जैसे,—काल के गाल में
 जाना ।

गाल^२—संज्ञा पुं० [देश०] तमाकू की एक जाति ।

गालगूल^५—संज्ञा पुं० [हि० गाल+गूल०] व्यर्थ बात । गपराप ।
 अनाप शनाप । मंडबंड बात । उ०—हरहि अनि जन्म जाय
 गालगूल गपत । कर्मकाल गुन सुभाव सबके सीस तपतः ।—
 तुलसी (शब्द०) ।

गालन—संज्ञा पुं० [सं०] १. निचोड़ना । २. किसी तरल पदार्थ को
 एक बर्तन से दूसरे बर्तन में इस तरह डालना कि उसका पैल
 पहले ही बर्तन में रह जाय । ३. पिघलना । गल जाना [की०] ।

गासना^५—क्रि० सं० [सं० गालन] दे० 'गलाना' । उ०—यह

तन जालीं, यह मन गालीं, करवत सीस चढ़ाऊँ रे राम ।—
 बाहू०, पृ० ५२० ।

गासना^५—क्रि० सं० [हि० गाल] बोलना । कहना ।

गासना^५—क्रि० सं० [सं० गाल = फेंकना, दूर करना] छोड़ना ।
 त्याग करना । उ०—सज्जन दुज्जन के कहे भड़िक न दीजइ
 गालि । हलिवइ हलिवइ छंडियइ जिम जल छंडइ पालि ।—
 बोला, दू० १६६ ।

गालबंद—संज्ञा पुं० [हि० गाल+बंद] एक प्रकार का बंधन जिसमें
 चमड़े के तस्मे को किसी कांटी में फँसाकर अटकाते हैं ।—
 (जहाजी) ।

क्रि० प्र०—बांधना ।

गालमसूरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पकवान या मिठाई । उ०—अब
 तैसहि गालमसूरी । जेहि खातहि मुख दुख दूरी ।—सूर
 (शब्द०) ।

गालव—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम ।

विशेष—महाभारत के अनुसार ये विश्वामित्र जी के भ्रातेवासी
 थे । विद्या समाप्त कर समावर्तन के समय इन्होंने अपने गुरु
 विश्वामित्र जी से यथेच्छ दक्षिणा मांगने के लिये अनुरोध किया ।
 विश्वामित्र जी ने इनके हठ से चिढ़कर भाठ सी श्यामकर्ण
 घोड़े मांगे । गालव जी ने राजा ययाति के पास जाकर उनसे
 भाठ सी श्यामकर्ण घोड़ों के लिये याचना की; पर ययाति के
 यहाँ भी भाठ सी श्यामकर्ण घोड़े नहीं थे; अतः ययाति ने
 उन्हें अपनी कन्या, जिसका नाम माधवी था, देकर कहा—
 'गालव जी, आप इस कन्या को ले जाइए; और जो दो सी
 श्यामकर्ण घोड़े दे, उसे इससे एक पुत्र उत्पन्न कर लेने
 दीजिए । इस प्रकार आप भाठ सी श्यामकर्ण घोड़े लेकर
 अपने गुरु को गुरुदक्षिणा दे दीजिए । गालव जी माधवी को
 लेकर हय्यंश्व राजा के पास गए; और हय्यंश्व ने दो सी
 श्याम कर्ण घोड़े देकर उससे एक संतान उत्पन्न की । इसी
 तरह वे उसे दिवोदास और उशीनर के पास ले गए; और उन
 लोगों ने भी दो दो सी घोड़े देकर उस कन्या से एक एक पुत्र
 उत्पन्न किया । अब गालव जी को कोई राजा ऐसा न मिला
 जो उन्हें शेष दो सी घोड़े देकर माधवी से एक और पुत्र
 उत्पन्न करता । अंत को गालव जी छह सी घोड़े और माधवी
 को लेकर विश्वामित्र जी के आश्रम पर लौट गए और उन्होंने
 उनसे सब हाल कहा । विश्वामित्र जी ने उन छह सी घोड़ों को
 ले लिया और उस कन्या से एक पुत्र उत्पन्न कर गालव जी को
 गुरुदक्षिणा के ऋण से मुक्त किया । हरिवंश में इन्हें
 विश्वामित्र जी का पुत्र लिखा है ।

२. एक प्रसिद्ध वैयाकरण जिनका मत पाणिनि ने अष्टाध्यायी
 में उद्धृत किया है । ३. लोष का पेड़ । श्वेत लोघ । ४. तेंदू
 का पेड़ । ५. एक स्मृतिकार ।

गालवि—संज्ञा पुं० [सं०] गालव के पुत्र प्राशंगवत् । इन्होंने कुण्डिनी
 की एक बृद्धा कन्या से विवाह किया था ।

गाला^१—संज्ञा पुं० [हि० गाल = घास] १. धुनी हुई रुई का गोला
 जो चरखे में कातने के लिये बनाया जाता है । पूनी । २. वह

कई जो कपास के बोहे के फटने पर उसमें से निकलती है।—
(पंजाब) ।

मुहा०—कई का गाला = बहुत उज्जल । सफेद । धोला । गाला
ला = बहुत उज्जला । सफेद । धोला ।

गाथा^{२१}—संज्ञा पु० [हि० गाथ] १. बहबहाने की लत । अंडबंड
बकने का स्वभाव । झूठजोरी । गल्लेदराजी । २. घास । कोर ।

गाथि—संज्ञा स्त्री० [म०] गाली [की०] ।

गाथित—वि० [म०] १. प्रकट की तरह सीधा प्रपचा निचोड़ा हुआ ।
२. गलाया हुआ [की०] ।

गाथिनी—संज्ञा स्त्री० [म०] तंत्र की एक सुवा ।

गाथिब—वि० [म० गाथिब] १. जीतनेवाला । बढ़ जानेवाला ।
विजयी । श्रेष्ठ । जैसे,—गल पर गाथिब कमल हैं कमलन पर
शु गुलाब ।—पचाकर (शब्द०) ।

मुहा०—(किलो पर) गाथिब आना या होना = जीतना ।
भागें बढ़ जाना ।

२. उर्दू के एक प्रसिद्ध कवि का उपनाम ।

विशेष—उनका पूरा नाम मिर्जा अमदुल्ला खाँ था । संवत् १८५३
में इनका जन्म और भृत्य संवत् १८२६ में हुई थी । पहले
इन्होंने अपना उपनाम 'असद' रखा था । गालिब मूलतः
फारसी के कवि थे । फारसी में इनकी कई पुस्तकें हैं । उर्दू में
इनका एक ही दीवान है । फिर भी उर्दू के कवियों में ये
सर्वश्रेष्ठ मान जाते हैं । पद्य के साथ इनका उर्दू गद्य भी
आदर्श माना जाता है । इनके गद्यग्रंथों में 'उर्दू-ए-मुबल्ला'
जिसमें इनके पत्रों का संग्रह है, तथा 'और-ए-हिंदी' है ।

गालिबन—क्रि० वि० [म० गालिबन] संभवतः । बहुत संभव है ।

गालिम—वि० [म० गालिम] प्रचल । उड़ । प्रचल । चलवान् ।
विजयी ।—गिर के सरथो है गजराज गोष्ट गोष्टो आह,
गालिम गंभीर नीर बाह्यो सो गिरायो है ।—रघुराज
(शब्द०) ।

गाली—संज्ञा स्त्री० [म० गालि] १. निंदा या कलकसूचक वाक्य ।
पूछा बात । दुर्वचन ।

यौ०—गाली गलीज । गाली गुफता ।

क्रि० प्र०—उगबना ।—बेना । बकना ।—सुनना ।—सुनाना ।

मुहा०—गालो खाना—दुर्वचन सुनना । गाली महना । गाली
बेना—दुर्वचन कहना । गालियों पर उतरना—गालियाँ देने
लगना । गालियों बकने पर उतरा हुआ । गालियों पर मुड़
खोलना—गाली बकना आरंभ करना ।

२. कलकसूचक आरोप । जैसे,—ऐसा मत कहो; तुम्हीं को
गाली पड़ती है ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—लगना ।

३. विवाद आदि में गाया जानेवाला एक प्रकार का रसमी गीत
जो प्रचलित होता है ।

क्रि० प्र०—गाना ।

गालीगलीज—संज्ञा स्त्री० [हि० गालो + गलीज] परस्पर
गाली प्रदान । तू तू मैं मैं । दुर्वचन ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

गालीगुफता—संज्ञा पु० [हि० गाली + फा० गुफतार = कहना] १.
परस्पर गाली प्रदान । तू तू मैं मैं । गालियों की लड़ाई । २.
गाली । दुर्वचन ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—बकना ।—होना ।

गालु—वि० [हि० गाल + ऊ (प्रत्य०)] १. व्यर्थ बड़ बढ़कर बातें
करनेवाला । गाल बजानेवाला । बकवादी । २. डींग हाँकने-
वाला । शेखीबाज ।

गालोडित^१—वि० [म०] १. नशे में चूर । २. बीमार । अस्वस्थ ।
३. मूर्ख [की०] ।

गालोडित^२—संज्ञा पु० १. परीक्षण । जाँच । २. अनुसंधान [की०] ।

गालोड्य—संज्ञा पु० [म०] १. कमलगट्टा । २. एक प्रकार का
प्रनाज ।

गाल्हना^(१)—क्रि० प्र० [म० गाल्य—बात] बात करना । बोलना ।
उ०—छठपहरे घरम में ऊभोई आहें । दाडू पसे तिनके आला
गल्हाए ।—दाडू (शब्द०) ।

गाल्हो^(२)—संज्ञा स्त्री० [प० गल] वार्ता । बातचीत । उ०—गुभयू
गाल्हो कनि ।—दाडू, पृ० १२६ ।

गाब—संज्ञा पु० [सं० गो । तुल० फा० गाब] गाय । बैल ।

यौ०—गावकुशी । गावजबान । गावकुस । गावतकिया । गाबखाना
गावपछाड़ । नोनगाव ।

गावकुशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] गोघान । गोवध ।

गावकुस—संज्ञा पु० [म० घोवा = गला + कुश = फाल] लगाम (डि०) ।

गावकोहान—संज्ञा पु० [फा०] वह छोटा जिनकी पीठ पर बैल की
तरह खूँड़ निकलती हो । (ऐसा घोड़ा दोषी माना जाता है) ।

गावखाना—संज्ञा पु० [फा० गाव + खानह] गोशाला । खरक । घारी ।

गावखुर्द—वि० [फा० गावखुर्द] १. गूँस । हडप । गावब । लापता ।
२. नष्ट भ्रष्ट । बरबाद ।

मुहा०—गावखुर्द होना—(१) बरबाद होना । नष्ट भ्रष्ट हो
जाना । चौपट हो जाना । (२) गायब होना । लापता होना ।
उड़ जाना । जैसे—देखते ही देखते किताब यहाँ से गावखुर्द
हो गई ।

गावघप, गावघप्प—वि० [फा० गाब + हि० घप, घप्प] १. दूसरे
का मालमता हथम कर जानेवाला । २. बड़े पेटवाला
(आदमी) ।

गावचेहरा—वि० [फा० गावचेहरह] गाय बैल के चेहरे जैसा ।

गावजबान^१—संज्ञा स्त्री० [फा० गावजबान] दे० 'गावजबान' ।

गावजबान—संज्ञा स्त्री० [फा० गावजबान] एक वूटी ।

विशेष—यह फारम देश के गीतान प्रदेश में होती है । इसकी
पत्तियाँ मोटी, खुदरी और हरे रंग की होती हैं, जिनपर बैल
की जीभ की तरह छोटे छोटे सफेद रंग के उभरे हुए दाँने
होते हैं । इनके पूरे लाल रंग के छोटे छोटे होते हैं । यह
पानी हकीमो की बवा के काम आती है । इसकी प्रकृति मात-
दिल होती है और यह ज्वर खाँसी आदि में दी जाती है ।

मल्लजनुल् प्रदविद्या में लिखा है कि इस देश में इसे संखाहुली कहते हैं और यह पटने के पास होती है। पर संखाहुली की पत्ती गावजबान की पत्ती से नहीं मिलती।

गावजोर—वि० [फा० गावजोर] बलशाली या बलवान, जो दाँव पेंच न जानता हो। केवल बल का प्रयोग करनेवाला।

गावजोरी—संज्ञा स्त्री० [फा० गावजोरी] १. सबसे लड़ने की इच्छा। बलप्रदर्शन। २. हाथापाई। भिड़ंत।

गावड़(उ)—संज्ञा स्त्री० [सं० प्रोवा] गला। गर्दन। (हि०)।
क्रि० प्र०—करना।

गावड़ा(उ)—संज्ञा प्र० [सं० ग्राम, हि० गाँव + डा (प्रत्य०)] ग्राम। गाँव।

गावड़ियाँह(उ)—वि० [हि० ग्राम] ग्रामवासी। गाँव का रहनेवाला।
उ०—भूसर भारन भल्लरी गोधा गावड़ियाँह।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० १५।

गावण(उ)—संज्ञा पुं० [सं० गायन] गायन। गाना।

गावणहार—वि० [सं० गायन + हि० हार (प्रत्य०)] गानेवाला। गवैया। उ०—गावणहार मौडह (घ) र गाई। रास कद सम-यइ बंसली वाई।—बी० रासो, पृ० ५।

गावतकिया—संज्ञा पुं० [फा०] बड़ा तकिया जिसे कमर लगाकर लोग फर्श पर बैठते हैं। मसनद।

गावदरती—संज्ञा पुं० [फा०] जंगली धूल।

गावदो—वि० [फा०] झुंठित बुढ़ि का। अबोध। नासमझ। बेवकूफ।
कूदमगज। जड।

गावदुंबाल^१—संज्ञा स्त्री० [फा०] गाय की पूँछ।

गावदुंबाल^२—वि० गाय की पूँछ की तरह चढ़ाव उतार।

गावदुम—वि० [फा०] १. जो ऊपर से बेल की पूँछ की तरह पतला होता आया हो। जिसका घेरा एक घोर मोटा और दूसरी ओर बराबर पतला होता गया हो। २. चढ़ाव उतार। ढालुवाँ।

गावदुमा—वि० [फा० गावदुम] दे० 'गावदुम'।

गावदोश—संज्ञा पुं० [फा०] दूध दूहने का बरतन।

गावदोशा—संज्ञा पुं० [फा० गावदोशह] दे० 'गावदोश'।

गावदोशना—संज्ञा पुं० [फा० गावदोशनह] दे० 'गावदोश'।

गावन(उ)—संज्ञा पुं० [हि० गाना] १. गाने की क्रिया। २. गाने का ढंग।

यी०—गावनहार।

गावना(उ)—क्रि० प्र० [सं० गायन] दे० 'गाना'। उ०—देह गारि रनिवासहि प्रमुदित गावह हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४।

गावनिया—वि० [हि० गावना + इया (प्रत्य०)] गानेवाला। उ०—गावनिया के मुख बसों, सोता के मैं कान।—कबीर सा०, पृ० ६२।

गावपछाड़—संज्ञा स्त्री० [हि० गाव = गरदन + पछाड़] कुश्ती का एक दाँव जिसमें प्रतिद्वंद्वी को गर्दन पकड़कर पटकते हैं।

गावपैकर—वि० [फा०] सड़ि जैसे विशाल या भारी अरकम शरीरवाला।

३-२४

गावबहल—संज्ञा पुं० [फा०] कुश्ती का एक दाँव या पेंच। गावपछाड़।

गावल—संज्ञा पुं० [हि० गौ = घात] दलाल।

गावली—संज्ञा स्त्री० [हि० गौ = घात] दलाली का घन। (दलाल)।

गावलाणि—संज्ञा पुं० [सं०] संजय का नाम जो धृतराष्ट्र का मंत्री और सारथी था।

गावशुमारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] पशुगणना [की०]।

गावसुमा—संज्ञा पुं० [फा० गावसुमह] दे० 'गावसुम्मा'।

गावसुम्मा—संज्ञा पुं० [हि० गाव + सुम = खुर] वह घोड़ा जिसका सुम या खुर फटा हो।

विशेष—इस प्रकार के घोड़े को रखना लोग अच्छा नहीं समझते।

गावार(उ)—संज्ञा पुं० [हि० गँवार] गँवार। उ०—समझि देख साकत गावार।—कबीर ग्रं०, पृ० २६४।

गावो—संज्ञा स्त्री० [?] जहाज में ऊपर का पाल।

विशेष—इसके कई भेद हैं। अगले को तिकंट, निचले को बड़ा और पिछले को कलमी कहते हैं। इसके ऊपर का पाल साबर, उससे ऊपर का ताबार और ताबार के ऊपर का सवाई कहलाता है।

गास(उ)—संज्ञा पुं० [सं० शास] संकट। दुःख। आपत्ति। उ०—अजहूँ नाहि डरात मोहन बचे कितने गास। तब कह्यो हरि बलहु सब मिलि भारि करहु बिनास।—सूर (शब्द०)।

गासिया—संज्ञा पुं० [प्र० गाशिपा] जीनपोश। उ०—पग में पुरट पैजन परे हैकल मुहीरन के जड़े। चामर सड़ाके प्रति प्रभा के गासिया मखमल मड़े।—रघुराज (शब्द०)।

गाह^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. गहन। दुर्गम। २. वह जो अवगाहन करे। अवगाहन करनेवाला मनुष्य।

गाह^२—वि० गाहन या अवगाहन करनेवाला [की०]।

गाह^३—संज्ञा पुं० [सं० ग्राह] १. ग्राहक। गाहक। उ०—खल अन्न अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा।—तुलसी (शब्द०)। २. पकड़। घात। गों। उ०—पाय सों पाय को नेउर टारि बिचारि रची लखि वे कियो गाहैं।—बेनी (शब्द०)। ३. ग्राह। मगर।

गाह^४—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. स्थान। जगह। २. समय। काल।

यी०—गाहबगाह, गाहे गाहे या गाहेमाहे = कभी कभी। समय समय पर। जब तब। कभी कभी। उ०—चना खाते मियाँ जुलाहे। डाढ़ी हिलनी गाहबगाहे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६१।

३. अवसर। बारी।

गाहक^१—संज्ञा पुं० [सं०] अवगाहन करनेवाला।

गाहक^२—संज्ञा पुं० [सं० ग्राहक, प्रा० गाहक] १. लेनेवाला। खरीदनेवाला। खरीददार। मोल लेनेवाला। जैसे—(क) धन्य नर नारि जे निहारि बिनु गाहक हैं आपने आपने मन मोल बिनु बीके हैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कर लै सूँघि सराहि कै

सबे रहे गहि मौन । गंधी संघ ! गुलाब को गवाई गाहक कोन ?
—बिहारी (शब्द०) ।

मुहा०—जी या प्राण का गाहक=प्राण लेनेवाला । मार डालने की ताक में रहनेवाला ।

२. कदर करनेवाला । चाहनेवाला । दूँ देनेवाला । दबकु । अमिनारी । प्रेमी । उ०—(क) हम तो प्रेम प्रीति के गाहक भाजी माग लवाएग ।—गूर (शब्द०) । (ख) हो मत गम नाम को गाहक । सीरासी लख जिया जीन में भटका दिअ प्रनाहक ।—गुलसी (शब्द०) । (ग) मन ना डगली मन गाहक देगनो है ।—(शब्द०) ।

गाहकवाही^१—गुलसी शी० [गं० गाहक + ता ताति (प्रत्य०)] गहर-
दानी । चाह । उ०—कहू काँप तब गुन गाहकवाही । गहन
पवनगुन मोहि गुनाई ।—गुलसी (शब्द०) ।

गाहकी^२—गुलसी शी० [हि० गाहक] १. खरीददारी । २. बिपरी ।

मुहा०—गाहकी पटना=मोटा पटना । ३. गाहक होने का भाव या स्थिति ।

गाहकी^३—गुलसी शी० गाहक । खरीददारी ।

गाहटना^४—गुलसी शी० [गं० गाह] १. मथना । बिगोना । २. मृदु
प्रपूर करना । उ०—मोढ़वाड घर गाहटे, पहला पानी मार ।
रा० क०, पृ० २८७ ।

गाहन—छंदा पु० [गं०] [गि० गाहल] १. गोता लगाने की क्रिया ।
मना । २. अवगाहन । गाह लेना । उ०—प्रादि संत गाहन
किया, माया ब्रह्म विचार ।—दादू०, पृ० ३३७ । ३. तला-
शना । मथना । ४. छानने का काम करना । छानना (को०) ।

गाहना^५—गुलसी शी० [गं० गाहन—अवगाहन] १. दूबकर धार लेना ।
अवगाहन करना । २. मथना । बिलोडना । हलचल मचाना ।
छाना करना । उ०—बजरौज निनके भीर तो ब्रमराज के
पटनाप । जिन राह के तन गाहि के निज साहिबी फार
थाप । गूदन (शब्द०) । ३. धातु प्रादि के छठन का दाने
माग एक छंटे से उठा उठाकर गिराना, जिसमें दाभा नीचे
भट जाय । ओहना । उ०—कहो तुम्हारी लागत राटे ।
बोलीन जवन कही जो ठोरो नाहि बहकिही बाटे । गाहना
धाने जी भोगी त मत से मन चाहे । यह भ्रम तो अबही भिटि
जोई जो पयार के गाहे । काशी के लोगन से भिरगती तो
गमकिया मोह । गूर श्याम बिहरन राज अंदर जीजतु है मूर
भा ।—गूर (शब्द०) । ४. जहाज प्रादि की दरारों में रुक
प्रादि दान भरना । कालगट्टी करना ।—(जहाज) । ५. बि
म दूर दूर पर जोताई करना । ६. घूमना । फिरना । चलना ।
उ०—बज बन गेल गव्यारन गाहल । सरत फिरत ज्यो ज्यो
मुन गाहन ।—मनानंद, पृ० १६० ।

गाहा^६—गुलसी शी० [गं० गाहा, प्रा० गाहा] १. कया । मर्गंत ।
चरित्र । घन्टा । उ०—(क) करन चहो रघुपति गुन गाहा ।
लपु भनि भोर चरित अवगाहा ।—गुलसी (शब्द०) । (ख)
मन्त्राई पात ममन उखाहा । कहै परस्पर होर गुन गाहा ।
—गुलसी (शब्द०) । २. आर्या छंद का एक नाम ।

विशेष—इसके चारों पदों में क्रमशः १२, १८, १२, और १५
मात्राएँ होती हैं । वि० दे० 'आर्या' । जैसे,—रामचंद्रपद पद्य,
गुदायक वृंदाभिर्वंदनीयं । केशव मति भूतनया, लोचनं
सर्वरक्षणायते ।

गाहल^७—गुलसी शी० [गं० गाहन किया हुआ] उ०—पवन मंद मृदु गंध
प्रसाहित । मधु मकरंद गुमन गर गाहल । २. प्रविष्ट । पैठा
रखा (को०) ।

गाहला^८—गुलसी शी० [गं० गाहल] [गि० को० गाहली] १. गाहन
करनेवाला । २. लेनेवाला । ३. मथनेवाला । बिलोडन
करनेवाला । ४. विराणक (को०) ।

गाहा^९—गुलसी शी० [गं० गाहा] १. फल प्रादि गिनने का एक मान
जो पाँच पदों का होता है । पाँच वस्तुओं का समूह ।

मुहा०—गाही ते गाही = बहुत अधिक ।

२. पाँच पाँच की गणना की राशि ।

गाहू^{१०}—गुलसी शी० [हि० गना] आगीनि छंद का एक नाम । वि० दे०
'आगीनि' ।

गिंदर^{११}—गुलसी शी० [गं० गीटा जो फलम को बहुत हानि पहुँचाता है ।

गिदुक^{१२}—गुलसी शी० [गं० 'गदुका, गेदुक] १. रोद । कंदुक । २. गेदुक
गणक (को०) ।

गिजना^{१३}—गुलसी शी० [हि० गीजना का अक० रूप] किसी चीज
(विशेषतः रूप) का हाथ लगने या अधिक उलटे पुलटे
रूप में आगमन गिराव आना अथवा मेलना या खराब हो
जाना । गिरना (को०) ।

गिजाई^{१४}—गुलसी शी० [गं० गिजना विपाक भाँस] एक प्रकार का
कोई फल जिसमें पीदा होता है । गालिन । घिनोरी ।
उ०—विजित सुन गहर । जनमा । गरी गाहल गिजाई बन
मा । एतल पर पोसा पड़े गमि जोई । विप दे बदला लीन्हेनि
मो ।—(गिजाई, पृ० १००) ।

विशेष—यह लक्ष्मण की मृत्यु में बा' अगुल तक लंबा होता
है । मरण के बाद बाँध उसके भी बहुत मे गैर होते हैं । एक
ही स्थान पर बहुतों का उर पड़े मिलते हैं । कभी कभी
कोई कीड़ा या दूसरे की चींठ पर गवार भी देखा जाता है,
इससे इसे पोथसार भी कहते हैं । यदि कोई पशु छोखे से
इसे खा लए, तो वह तुरंत मर जाता है । ये कीड़े वर्षा के
आरंभ में पैदा होते हैं, और ऐसा कहा जाता है कि हथिया
नगर के जंगल पर मर जाते हैं ।

गिजाई^{१५}—गुलसी शी० [हि० गीजना] गीजने की भाव या क्रिया ।

गिंजो^{१६}—गुलसी शी० [गं०] एक प्रकार का साग जिसकी पत्तियाँ दो
रंग मयुव लकी प्रौर जी रंग चौड़ी होती हैं ।

विशेष—इसका पठन इस होता है और उसकी गाँठों पर सफेद
संकेत गुलाब के गुल्ल लगते हैं । फूल भट जाने पर छोटे छोटे
रंग पड़ते हैं ।

गिंझा^{१७}—गुलसी शी० [हि० गिदुरी] क्रिया ।

गिदुरी^{१८}—गुलसी शी० [हि०] १० डेढ़ गे ।

गिंदोड़ा^{१९}—गुलसी शी० [हि० गेंद] [शी० गिंदोड़ी] बहुत मोटी रोटी
क या फार में गनाकर ढानी हुई चीनी ।

विशेष—इसका व्यवहार प्रायः विवाह आदि शुभ कार्यों में बिरादरी में बाँटने के लिये होता है।

गिदौरा^७—संज्ञा पुं० [हि० गिदोड़ा] [ली० गिदोरी] दे० 'गिदोड़ा'। उ०—पेठापाक जलेबी पेरा। गोद पाग तिनगरी गिदोरा।—सूर (शब्द०)।

गिमार^७—वि० [हि० गमार, गेवार] दे० 'गेवार'। उ०—मारपणी तू प्रति चतुर, हीयइ चेत गिमार।—ढोला०, दू० ६३३।

गिम्मान^७—संज्ञा पुं० [म० ज्ञान] दे० 'ज्ञान'। उ०—एहि बिधि चीन्हहु करहु गिम्मान।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १२५।

गिउ^७—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] गला। गरदन। उ०—अब जो फाँद परा गिउ, तब रोए का होय?—जायसी (शब्द०)।

गिचपिच—वि० [अनु०] १. जो साफ या क्रम से न हो। एक में मिलाजुला। अस्पष्ट। २. बहुत सटाकर लिखा हुआ।

गिचपिचा^१—संज्ञा ली० [अनु०] दे० 'कचपचिया'।

गिचपिचा^२—वि० [अनु०] दे० 'गिचपिच'।

गिचपिचिया—संज्ञा ली० [अनु०] दे० 'कचपचिया'।

गिचिर पिचिर—वि० [अनु०] दे० 'गिचपिच'।

गिजई^१—संज्ञा पुं० [श्लो०] सलमे के काम का एक प्रकार का तार।

गिजई^२—संज्ञा ली० [पं० गृञ्जन] गिजाई या कनमलाई नाम का बरसाती कीड़ा (पूरय)। वि० दे० 'गिजाई'।

गिजगिजा—वि० [अनु०] [वि० ली० गिजगिजी] १. ऐसा गीला और मुलायम जो अच्छा न मानूम हो। जैसे,—कच्ची मोटी रोटी दाँत के नीचे गिजगिजी लगती है। २. जो छूने में माँगन मानूम हो। जैसे,—पैर के नीचे कुछ गिजगिजा भा मानूम हुआ, देखा तो मरा साँप था।

गिजा—संज्ञा ली० [अ० गिजा] वह जो खाया जाय। भोजन। खाद्यवस्तु। खोराक। उ०—और खाना जो कि हो खुश का तेरी सो कर गिजा।—कविता को०, भा० ४, पृ० १०।

गिजाइयत—संज्ञा ली० [अ० गिजाइयत] आहार गुण। पोषकता। अन्नत्व (को०)।

गिजाई^१—वि० [अ० गिजा + फा० ई (प्रत्य०)] १. आहार संबंधी। २. जो आहार के रूप में हो (को०)।

गिजाई^२—संज्ञा ली० [हि० गिजाई] दे० 'गिजई'।

गिटकिरी^१—संज्ञा ली० [हि०] दे० 'गिट्टी'।

गिटकिरी^२—संज्ञा ली० [अनु०] तान लेने में विशेष प्रकार से स्वर का काँपना जो बहुत अच्छा समझा जाता है।—(गंभीर)।

क्रि० प्र०—निकालना।—लेना।

गिटकौरी—संज्ञा ली० [हि० गिट्टी या गिटकिरी] पत्थर या गेरू का गोल छोटा टुकड़ा। कंकड़ी।

गिटगिरी^७—संज्ञा ली० [हि० गिटकिरी] दे० 'गिटकिरी'। उ०—कोऊ तराने गावत, कोऊ गिटगिरी भरे जहँ।—प्रेमधन०, भा० १, पृ० २०१।

गिटपिट—संज्ञा ली० [अनु०] निरर्थक शब्द।

मुहा०—गिटपिट करना = (१) हठी फूटी या साधारण अंगरेजी भाषा बोलना। (२) किसी बात का साफ साफ न कह पाना।

यौ०—गिटपिट बानी, गिटपिट बोली, गिटपिट भाषा = अंगरेजी।

गिट्ट^७—संज्ञा पुं० [हि० गिट्टा] साग। खंड। उ०—एक नाली दुई गिट्टे करे।—प्राण०, पृ० २४।

गिट्टक^१—संज्ञा ली० [हि० गिट्टा] १. चिलम के नीचे रखने का कंकड़। २. चुगल। ३. लकड़ी या लोहे आदि का छोटा और मोटा टुकड़ा।

गिट्टक^२—संज्ञा पुं० [अनु०] गिटकिरी लेने में स्वर या तान का वह सबसे छोटा भाग जो केवल एक कंप में निकलता है। दाना।—(संगीत)।

गिट्टा—संज्ञा पुं० [सं० गिरिज; हि० गेरू + टा (प्रत्य०)] चिलम का कंकड़। केकड़ा।

गिट्टी—संज्ञा ली० [हि० गिट्टा] १. गेरू या पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े जो प्रायः सड़क, नींव या छत आदि पर बिछाकर फूटे जाते हैं। २. भिट्टी के बरतन का टूटा हुआ छोटा टुकड़ा। ३. चिलम की गिट्टक। ४. बादले या ताने की लपेटी हुई रील। फिरकी।

गिट्टा—संज्ञा पुं० [श्लो०] जुलाहे का करघा। झुड़ा।

गिट्टरा^१—संज्ञा पुं० [हि० गेंदुरा] दे० 'गेंदुरा'।

गिट्टगिड़ाना—क्रि० प्र० [अनु०] आवश्यकता से अधिक विनोत और नम्र होकर कोई बात या प्रार्थना करना।

गिट्टगिड़ाहट—संज्ञा ली० [हि० गिट्टगिड़ाना] १. विनती। विनोती। २. गिट्टगिड़ाने का भाव।

गिट्टनी^७—संज्ञा पुं० [श्लो०] तालों में होनेवाला एक प्रकार का माग।

गिट्टराज^७—संज्ञा पुं० [पं० गहराज] सूर्य।—(दि०)।

गिट्टडा^१—वि० [श्लो०] नाटा। ठिगना।

गिणना^७—क्रि० प्र० [हि० गिनना] दे० 'गिनना'। उ०—गिण शत्रु मित्र मारग गवण, शत्रुदास ऊदास उर।—रघु०, पृ० ६।

गितार—संज्ञा पुं० [अं० गिटार] एक बाजा जिसमें छह तार होते हैं और जो उँगलियों से बजाया जाता है।

गिद—संज्ञा पुं० [सं०] रथपालक देवता।

गिहा—संज्ञा पुं० [हि० गीत] एक प्रकार का चलता गीत जिसे स्त्रियाँ गाती हैं। नकटा।

गिद्ध—संज्ञा पुं० [मं० गृध्र] एक प्रकार का बड़ा मांसाहारी पक्षी।

विशेष—इसकी छोटी बड़ी कई जातियाँ होती हैं। सबसे बड़ा गिद्ध प्रायः तीन फुट लंबा होता और प्रायः बकरियों, भुंगियों तथा दूसरी पालतू चिड़ियों को उठा ले जाता है। यह पक्षी प्रायः भरे हुए जीवों का मांस खाता है; इसी से कवियों ने रणस्थल में गिद्धों का दृश्य प्रायः दिखलाया है। इसकी आँख बहुत तेज होती है और यह आकाश में बहुत ऊँचा उड़ सकता है। इसके शरीर का रंग मटमिला होता है और पैरों में

उपस्थितों तक पर होते हैं। इसका किसी मनुष्य के शरीर पर मँढ़राना या मकान पर बैठना अनुमत्त माना जाता है।

२. एक प्रकार का बड़ा कनकौवा या पतंग। ३. छाप्य छंद का ५२ वां भेद।

गिनिराज—संज्ञा पुं० [हि० गिद्ध + राज] जटायु।

गिद्धि ७—संज्ञा पुं० [हि० गिद्ध] दे० 'गिद्ध'। उ०—बहुकत डक्क बाइन बरान। गहकंत गिद्धि सिद्धनिय बान।—पृ० रा०, १।६६१।

गिध ७—संज्ञा पुं० [हि० गिद्ध] दे० 'गिद्ध'। उ०—एक जीव को ठाढ़े कीना। काग गिध को हुकुम करि दीना।—कबीर सा०, पृ० ३६२।

गिनगिनाना १—क्रि० प्र० [प्रभु० गन गन = कापना] १. अधिक बल लगाते समय शरीर का कापना। जैसे,—वह पत्थर पकड़ कर घटों गिनगिनाना रहा, पर पत्थर न हटा। २. रोमांच होना। रोगटे लड़े होना।

गिनगिनाना २—क्रि० स० [हि० गिझो, घिरनी - चक्कर] पकड़ कर घुमाना या चक्कर देना। झकझोरना। उ०—बिल्ली ने बूढ़े को गिनगिनाना डाला।

गिनती—संज्ञा स्त्री० [हि० गिन + ती (प्रत्य०)] १. वस्तुओं की समूह से तथा एक दूसरी से अलग अलग करके उनकी संख्या निश्चित करने की क्रिया। गणना। शुमार। उ०—गिनती गनबे से रहे छत हूँ अक्षय समान।—बिहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—गिनना।

मुहा०—गिनती में आना या होना = किंगो कोटि में सम्मत्त जाना। कुछ सम्मत्त जाना। कुछ महत्व का सम्मत्त जाना। ब०—जिन भूपत जग जीति बागि यम अपनी बाँह बसायो। तेऊ काल कलेऊ कीन्हू गिनती कब आयो।—सुलसी (शब्द०)। गिनती कगना हिरी कोटि के भ्रमगत सम्मत्त जाना। जैसे,—वह विद्वानों में अपनी गिनती कराने के लिये भरा जाता है। गिनती गिनाने या कराने के लिये—नाम मात्र के लिये। कहने सुनने भर को। जैसे,—गिनती गिनाने के लिये वे भी लोड़ी देर प्राकर बैठ गए थे। गिनती होना—किसी महत्व का सम्मत्त जाना। कुछ सम्मत्त जाना। जैसे—वहाँ बड़े बड़ों का गुजर नहीं; तुम्हारी क्या गिनती है?

२. संख्या। तादाद। जैसे, ये चार गिनती में कितने होंगे।

मुहा०—गिनती के—बहुत थोड़े। संख्या में बहुत कम। जैसे,—वहाँ गिनती के घादमी आए थे। ३. उपस्थिति की जाँच जो प्रायः नाम बोल बोलकर की जाती है। हाजिरी।—(सिपाही)।

मुहा०—गिनती पर जाना = हाजिरी देने या लिखाने जाना।

४. एक से सी तक की संख्या। जैसे—रलेट पर गिनती लिख-कर दिखाओ।

क्रि० प्र०—गाना।

गिनना—क्रि० स० [प्र० गणन] १. वस्तुओं की समूह से तथा एक दूसरी से अलग अलग करके उनकी संख्या निश्चित करना। गणना करना। शुमार करना।

संयो० क्रि०—जाना—डालना।—देना।—रखना।—लेना।

मुहा०—गिन गिनकर सुनाना या गालियाँ देना = बहुत अधिक गालियाँ देना। गिन गिनकर मारना या लगाना = खूब पीटना। गिन गिनकर दिन काटना = बहुत कष्ट से समय बिताना। गिन गिनकर पैर रखना = बहुत धीरे धीरे और सावधानता से चलना। गिन देना = तुरत हिसाब चुकता करना। तुरत रूप गिन देना। जेम,—देखा? एक फटकार पर उसके रूप गिन दिए। गिने गिनाए = थोड़े से। संख्या में बहुत कम। दिन गिनना = (१) आशा में समय बिताना। सुख की प्राप्ति या दुःख की निवृत्ति के अवसर की ऊब ऊब-कर प्रतीक्षा करना। उ०—दिन मोधि के को लौ गिनौं सजनी भंगुरीन के पोहन छाले परे।—ठाकुर (शब्द०)। (२) किसी प्रकार कालक्षेप करना।

२. गणित करना। हिसाब लगाना। जैसे,—ज्योतिषी ने गिन गिनाकर कह दिया है कि मूर्त प्रच्छा है। ३. कुछ महत्व का सम्मत्त। मान करना। प्रतिष्ठा करना। कुछ सम्मत्त। स्वातिर में लाना। जैसे,—वहाँ तुम्हारे ऐगो को गिनता कीन है?

गिनवाना—क्रि० स० [हि० गिनना का प्रे० रूप] १. दे० 'गिनाना'। २. गिनती पढ़ाना या सिगाना (छोटे बच्चों को)। ३. दूसरों की दृष्टि में ऊँचा उठाना। सम्मान करवाना। सम्मान का पात्र होना। ४. दंभ या अहंकार से दूसरों के द्वारा अपनी प्रतिष्ठा कराना।

गिनान ७—संज्ञा पुं० [मं० जान] दे० 'जान'। उ०—ब्रह्मदेवतं सहसं अक्षर। केवल गिनान कथि भक्ति सार।—पृ० रा०, १।३६।

गिनाना—क्रि० स० [हि० गिनना का प्रे० रूप] गिनने का काम दूसरे से कराना।

गिनी—संज्ञा स्त्री० [अ०] सोने का एक सिक्का जिसका व्यवहार इंग्लैंड में सन् १६६३ में आरम्भ हुआ था और सन् १८१३ से जिसका बनना बंद हो गया। यह २१ ग्रेनिंग (लगभग १५।। रुपए) मूल्य की होती थी।

विशेष—यह सिक्का पहले पहल अफ्रीका महाद्वीप के गिनी नामक देश से आए हुए सोने से बनाया गया था, इसी से इसका यह नाम पड़ा। भारत में प्रायः लोग आजकाल के प्रचलित पाउंड या सावरेन को ही भूल से गिनी कहा करते हैं।

गिनो—संज्ञा स्त्री० [अ० गिनी ग्रास] एक प्रकार की विनायती बारह-मासी घास।

विशेष—यह पशुओं के लिये बहुत बलवर्धक और आरोग्यकारक होती है। इसे गोघो और भैंसों को खिलाने से उनका दूध बहुत बढ़ जाता है और घोड़ों को खिलाने से उनका बल बहुत बढ़ जाता है। यह घास सभी प्रकार की जमीनों में भली भाँति हो सकती है पर क्षार या लोड़वाली जमीन में अच्छी नहीं होती। यद्यपि यह बीजों से भी बोई जा सकती है, तथापि जड़ों से बोना अधिक उत्तम सम्मत्त जाता है। यदि

वर्षा ऋतु के आरंभ में यह थोड़ी सी भी बो सी जाय तो बहुत दूर तक फैल जाती है। इसके लिये थोड़े की सड़ी हुई लीद की खाद बहुत अच्छी होती है। यदि इसपर उचित ध्यान दिया जाय तो साल में इसकी छह फसलें काटी जा सकती हैं।

गिनीगवट—संज्ञा स्त्री० [गं०] एक प्रकार की लंबी घास।

विशेष—यह अफ्रीका के गिनी नामक देश में होती है। अब यह भारत में भी लगाई गई है और खूब होती है।

गिनीगोल्ड—संज्ञा पुं० [गं०] वह सोना जिसमें ताँबा मिला हो।

गिनीग्रास—संज्ञा स्त्री० [गं०] दे० 'गिनीगवट'।

गिनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० घिरनी] घुमाने या चक्कर खिलाने की क्रिया। चक्कर।

मुहा०—गिनी खाना = चक्कर भरना।—(पतंग के लिये प्रायः बोलते हैं।) गिनी खिलाना = चक्कर देना।

गिनी^२—संज्ञा स्त्री० [गं० गिनी] दे० 'गिनी'।

गिब्बन—संज्ञा पुं० [गं०] एक प्रकार का बंदर जो सुमात्रा जावा आदि द्वीपों में होता है।

विशेष—इसके पूँछ और गालों की थेलियाँ नहीं होती। इसको बाँहें बहुत लंबी होती हैं और प्रायः जमीन तक पहुँचती हैं। इसकी प्राकृति मनुष्य से बहुत मिलती जुलती होती है। किसी किसी जाति के गिब्बन थोड़ा बहुत गाते भी सुने गए हैं।

गिम(^३)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] गला। गरदन।

गिमटी^१—संज्ञा स्त्री० [गं० गिमटी] एक प्रकार का मजबूत सूती कपड़ा।

विशेष—इसकी बुनावट में बेल बूटे बने होते हैं और यह प्रायः बिछाने के काम में आता है।

गिमटी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० गुमटी] गोलाकार या चौकोर कोठरी या कमरा जो रेलवे लाइन के किनारे बना होता है।

विशेष—ऐसे कमरे बहुधा उन जगहों पर बने होते हैं जहाँ आवाजाही अधिक होती है। गाड़ियों के आने जाने पर झंझड़ दिखानेवाला रेलवे कर्मचारी वर्षा और धूप से बचने के लिये इसका उपयोग करता है।

गिमर(^३)—संज्ञा पुं० [हि० गमार या गवार] दे० 'गँवार'। उ०—इए रति साहिब ना चलइ चालइ तिके गिमर।—बोला०, पृ० २४६।

गिय(^३)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] दे० 'गिर'। उ०—जैहि कारन गिय कायरि कथा। जहाँ सो मिलै जाउ तेहि पंथा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २१७।

गियान(^३)—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञान] दे० 'ज्ञान'। उ०—सेवक लिए प्रेम जल झारी, खरिका ब्रह्म गियान।—धरम०, पृ० ३०।

गियानी—वि० [हि० गानी] दे० 'ज्ञानी'। उ०—हम लोग मूरख ठहरे और तुम गियानी।—मैला०, पृ० १२।

गियाह—संज्ञा पुं० [सं० हय ?] एक प्रकार का घोड़ा। ताड़ के पके फल के रंग का अश्व। कियाह। उ०—हसिल और, गियाह बखाने।—जायसी (शब्द०)।

गिरंट—संज्ञा पुं० [गं०] १. एक रेशमी कपड़ा जो प्रायः गोट लगाने के काम में आता है। ग्वारन्ट। २. एक प्रकार की साधारण सूती मलमल जो बस्ती जिले में बनती है।

गिरं(^३)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ] दे० 'ग्रंथ'। उ०—सुनियत बेव गिरं पुकारत, जिन मति जान बिचारी।—जग० श०, पृ० ११६।

गिरंद(^३)—संज्ञा पुं० [फ्रा० गीर] फंदा। उ०—दे गिरंद गिरंद हूवा बे जिद असाही छीनी है।—धनानंद, पृ० १८०।

गिरंदा—वि० [हि० गिरद] फंदा डालनेवाला। पकड़नेवाला।

गिरं(^३)—वि० [?] भारी। उ०—तरकस पंच गिरं तीन प्रति षगत् तीन सह।—पु० रा०, ६। २५।

गिरं(^३)—संज्ञा पुं० [सं० गिरौन्ना] दे० 'गिरौन्ना'। उ०—उरजलती लागी असुर, गिरं दुहूँ बल आप।—रा० क०, पृ० २६१।

गिरं(^३)—वि० [हि० गिरंदी] फंदा लगानेवाला। बंधन बांधनेवाला। उ०—दे गिरंद गिरं हूवा बे जिद असाही छीनी है।—धनानंद, पृ० १८०।

गिर—संज्ञा पुं० [सं० गिरि] पहाड़। पर्वत। उ०—जहँ यह गिरि गोबरधन सोहै। इंद बराक या आगे को है।—नंद० प्र०, पृ० १६०। २. संन्यासियों के बस भंदों में से एक। ३. काठियावाड़ देश का भँसा।

गिरई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो सोरी मछली से छोटी होती है।

गिरगट—संज्ञा पुं० [हि० गिरगिट] दे० 'गिरगिट' उ०—माया की मकड़ी ने जाल बिछाया। गो के जो गिरगट ने सैन सुनाया।—संत तुरसी०, पृ० ८८।

गिरगिट—संज्ञा पुं० [सं० कृकलास या गलगति] छिपकली की जाति का प्रायः एक बालिशत लंबा एक जंतु। उ०—गिरगिट छंद धरइ दुख तेता। खन खन रात पीन खन सेता।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—यह सूर्य की किरणों की सहायता से अपने शरीर के अनेक रंग बदल सकता है। इसका चमड़ा सदा बहुत ठंडा रहता है और यह कीड़े मकोड़े खाता है। गिरगिटान। गिरदोना।

मुहा०—गिरगिट की तरह रंग बदलना = बहुत जल्दी संमति या सिद्धांत बदल देना। कभी कुछ कभी कुछ कहना और करना।

गिरगिटाना—संज्ञा पुं० [हि० गिरगिट] दे० 'गिरगिट'।

गिरगिट्टी—संज्ञा स्त्री० [?] समस्त उत्तर भारत, चीन और आस्ट्रेलिया तक पाया जानेवाला एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसकी छाल लाली रंग की होती है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी, पतली और गहरे हरे रंग की होती हैं, जिनका ऊपरी भाग बहुत चमकीला होता है। गरमी और बरसात में इसमें सफेद रंग के बहुत सुगंधित फूल लगते हैं और जाड़े में एक प्रकार के छोटे फूल लगते हैं, जिनका रंग पकने पर लाल या गहरा नारंगी होता है। इसकी लकड़ी मुलायम होती है और चीड़ के स्थान में काम आती है। यह वृक्ष बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है और लोग

इसकी टहनियों से बनुवन का काम लेने हैं। बरमावाले कभी कभी बंदन के स्थान में इसकी सुगन्धित छान का भी व्यवहार करते हैं।

गिरगिरी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] लकड़ी का एक खिलौना जो बिकाने या सारंगी के ढंग का होता है। उ०—फूले बजावत गिरगिरी गार मदन भेरि चहराई अपार संतन हित ही धूल डोल।—सूर (शब्द०)।

गिरजा—संज्ञा पुं० [देश०] कीड़े मकोड़े खानेवाला एक प्रकार का पक्षी।

विशेष—यह पञ्जाब और राजपूजाने के अतिरिक्त गारे भारत में पाया जाता है। यह प्रायः सिवाड़े के तालाबों के आसपास रहता है और अनुपरिवर्तन के अनुसार अपना स्थान भी बदला करता है। यह बहुत तेज उड़ता है और इसका शब्द बहुत भीमा और विचित्र होता है। यह वृक्षों पर बोंसला बनाता है। इसके स्वादिष्ट मांस के लिये लोग इसका शिकार करते हैं।

गिरजा—संज्ञा पुं० [पुन० इक्ष्वा] ईसाइयों का प्रार्थना मंदिर।

गिरजा—संज्ञा स्त्री० [म० गिरजा] दे० 'गिरिजा'।

गिरजाधर—संज्ञा पुं० [हि० गिरजा + धर] ईसाइयों का प्रार्थना-मंदिर। गिरजा।

गिरम्ह—संज्ञा स्त्री० [ग० गृह ?] मादा गिद्ध। गिडिनी। उ०—गिरम्ह आते ले चाली, जाए पतंग डोर।—नट०, पृ० १७१।

गिरद—अव्य० [क्रा० गिर्द] दे० 'गिर्द'। उ०—नई सोरई मग साढोरो। जूट गीव गिरद के ओरो।—लाल (शब्द०)।

गिरदा—संज्ञा पुं० [क्रा० गिर्द] १. धरा। चक्कर। २. तकिया। गेहूँ। बालिश। उ०—अने पुगज कोई गद्दी गिरदा पे बर्द, कोई गोद गेरे हरे हरे लपटाई के।—रघुराज (शब्द०)। ३. काठ की बाली जिसमें हलवाई लोग मिठाई रखते हैं। ४. वह कपड़ा जो दरबार के समय राजाओं के हुक्के के नीचे बिछाया जाता है। ५. ढाल। फरो। ६. ढोल या खंजड़ी का गेढरा।

गिरदाइय—संज्ञा पुं० [क्रा० गिर्द] घेरा। आवर्त। उ०—दस हप्पा परिमान पीठ छत्ती गिरदाइय।—पृ० रा०, २४३३४।

गिरदागिरद—क्रि० वि० [हि० गिर्दागिर्द] दे० 'गिर्दागिर्द'।

गिरदाना—संज्ञा पुं० [हि० गिरगिट] गिरगिट। उ०—मछली मुख जस के बुझा मुसवन मुँह गिरदान। सर्पन मुँह गहेजुवा जाति सबन की जान।—फरीद (शब्द०)।

गिरदानक—संज्ञा पुं० [क्रा० गिर्द] करगह की लकड़ी जो लपेटन में उसे घुमाने के लिये लगी रहती है।—(जुलाहे)।

गिरदाना—संज्ञा पुं० [क्रा० गिर्द] लगभग एक हाथ की लंबी चौपट लकड़ी जो तूर के छेद में पड़ी रहती है।—(जुलाहे)।

गिरदाब—संज्ञा पुं० [क्रा० गिर्द] जलावर्त। भँवर। उ०—गया होय बिस तिस करे ताब में, पूँछा ज्यों पड़ गम के गिरदाब में।—बक्सनी, पृ० १४४।

गिरदाबो—संज्ञा स्त्री० [क्रा० गिर्द] वह लंबी प्रकुसी जिससे गला हुआ कच्चा लोहा समेट समेटकर एकत्र किया जाता है।—(लोहार)।

गिरदावर—संज्ञा पुं० [क्रा० गिर्दावर] दे० 'गिर्दावर'।

गिरदावरी—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. गिरदावर का काम। २. गिरदावर का पद।

गिरद—संज्ञा पुं० [क्रा० गिर्द] दे० 'गिर्द'। उ०—गिरद उड़ी और घंघार रन। नई मूँचि सुभके नहीं मभिन्न नन।—पृ० रा०, ५६५।

गिरदध—अव्य० [क्रा० गिर्द] घेरा। उ०—पंगह सुबीर गढ़ करि गिरद। सर्वरी पग्स चंदा सगढ़।—पृ० रा०, २६४२।

गिरधर—संज्ञा पुं० [म० गिरि + धर] १. वह जो पहाड़ को धारण करे। पहाड़ उठानेवाला व्यक्ति। २. कृष्ण। वामुदेव।

यौ०—गिरधर गोपाल = कृष्ण जी।

गिरधारन—संज्ञा पुं० [म० गिरि + धारण] दे० 'गिरधर'।

गिरधारा—संज्ञा पुं० [म० गिरि + धार] दुर्गम पहाड़ी मार्ग। पहाड़ की ढोटी पर ना सकरा और संकटपूर्ण मार्ग। उ०—जाइ तहाँ का संजम कीजै, बिकट पथ गिरधारा।—दादू०, पृ० ५०६।

गिरधारी—संज्ञा पुं० [हि० गिरिधारी] दे० 'गिरधर'।

गिरना—क्रि० प्र० [गि० गलन = गिरना] १. आधार या अवरोध के अभाव के कारण किसी चीज का एकदम ऊपर से नीचे आ जाना। रोक या सहारा न रहने के कारण किसी चीज का अपने स्थान से नीचे आ रहना। जैसे,—छत पर से गिरना, हाथ में से गिरना, गुएँ में गिरना, आँग से आँसू गिरना, ओस, पानी या मोले गिरना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

२. किसी चीज का खड़ा न रह सकना या जमीन पर पड़ जाना। जैसे—मकान का गिरना, घोड़े का गिरना, पेड़ का गिरना।

यौ०—गिरना पड़ना। जैसे,—वह गिरते पड़ते किसी प्रकार पर पहुँचा।

३. अचानक या घटाव पर होना। ह्रासोन्मुख होना। जैसे,—किसी जाति या देश का गिरना। ४. किसी जलधारा का किसी बड़े जलाशय में जा मिलना। जैसे,—नदी का समुद्र में गिरना, मोरी का कुंड में गिरना। ५. शक्ति, स्थिति, प्रतिष्ठा या मूल्य आदि का कम या मंदा होना। जैसे,—किसी मनुष्य का (किसी की दृष्टि या समाज में) गिर जाना, धोमारी के कारण शरीर का गिर जाना, भाव या बाजार गिरना।

यौ०—गिरे दिन = दरिद्रता या दुर्दशा का समय।

६. किसी पदार्थ को लेने के लिये बहुत चाव या तेजी से आगे बढ़ना। दूटना। जैसे,—कबूतर पर बाज गिरना, माल पर खरीदनेवालों का गिरना, यात्रियों पर डाकुओं का गिरना। ७. जीएँ या दुर्बल होने अथवा इसी प्रकार के अन्य कारणों से किसी चीज का अपने स्थान से हट, निकल या भङ्ग जाना।

जैसे—दीत गिरना, सींग गिरना, बाल गिरना, (चोट काया हुआ) नाखून गिरना, गर्म गिरना । ८. किसी ऐसे रोग का होना जिसके विषय में लोगों का विश्वास हो कि उसका वेग ऊपर की ओर से नीचे की ओर आता या होता है । जैसे—नजला गिरना, काजिल गिरना । ९. सहसा उपस्थित होना । प्राप्त होना । जैसे—(क) तुम यहाँ कहाँ आ गिरे ? (ख) आज बहुत सा काम आ गिरा ।

विशेष—इम अर्थ में इसमें पहले 'ग्राना' किया लगती है ।

१०. युद्ध में काम ग्राना । लड़ाई में मारा जाना । खेत रहना । जैसे—उस लड़ाई में दो सी आदमी गिरे । ११. कबूतर का किसी दूसरे की छतरी पर चला जाना ।—(कबूतर बाज) । १२. बरसना । १३. घायल होकर गिरना । १४. हारना । १५. खाट पर जमीन पकड़ना पड़ना । खाट पकड़ना । बीमार होना । १६ किसी वस्तु के लिये बहुत अधिक लोलुपता दिखाना । १७. उससाहसी होना । मंद होना ।

यौ०—गिरता पड़ता = (१) कठिनाई से । (२) लड़खड़ाता हुआ । गिर पड़ कर = दे० 'गिरता पड़ता' । गिरा पड़ा = छूटा हुआ । जमीन पर पड़ा हुआ ।

मुहा०—गिर कर सोदा करना = दबकर या दबाव के साथ सोदा करना या मामला हल करना ।

गिरनार—संज्ञा पुं० [सं० गिरि + नार (= नगर)] [वि० गिरनारी] जैनियों का एक पवित्र तीर्थ ।

विशेष—यह गुजरात में जूनागढ़ के निकट एक पर्वत पर है । इसे पुराणों में रैवतक पर्वत कहते हैं ।

गिरनारी—वि० [हि० गिरनार] गिरनार पर्वत का निवासी ।

गिरनाली—वि० [हि० गिरनार] दे० 'गिरनारी' ।

गिरपत—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गिरपत] १. पकड़ने का भाव । पकड़ । २. पकड़ने की क्रिया । ३. हिसाब किताब में गलती पकड़ना । ४. आपत्ति । एतराज । ५. अधिकार । कब्जा । ६. बंगुल । पंजा । ७. हस्तक । दस्ता ।

मुहा०—गिरपत करना = कोई दोष निकालना या आपत्ति करना ।

गिरपतगी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गिरपतगी] १. गिरपत । पकड़ । २. आवाज का बैठ जाना । ३. उदासीनता । उदासी ।

गिरपतार—वि० [फ्रा० गिरपतार] १. जो पकड़ा, कैद किया या बाँधा गया हो । २. ग्रसा हुआ । ग्रस्त ।

गिरपतारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गिरपतारी] १. गिरपतार होने का भाव । कैद । २. गिरपतार होने की क्रिया ।

मुहा०—गिरपतारी निकलना = किसी के गिरपतार होने का परवाना या वारंट निकलना ।

गिरबान—संज्ञा पुं० [सं० गोर्बान] देवता । सुर ।

गिरबान—संज्ञा पुं० [फ्रा० गरीबान] गर्दन । गला । उ०—खंजर असिपुनिय लरत, धरत सिख गिरबान ।—प० सो०, पृ० ७२ ।

गिरबूटी—संज्ञा स्त्री० [सं० गिरि + हि० बूटी] जंगूर बोफा ।

गिरमा—संज्ञा स्त्री० [हि० गरीब] रस्सी । डोरी । बंधन । उ०—इची खिची गिरमा गती गया सो तुम साथ ।—श्यामा०, पृ० १६७ ।

गिरमिट—संज्ञा पुं० [फ्रा० गिरमिट = बड़ा बरमा] (लकड़ी में छेद करने का) बड़ा बरमा ।—(बढ़ई) ।

गिरमिट—संज्ञा पुं० [फ्रा० एपीमेट = इकरारनामा] १. वह पत्र जिसमें किसी प्रकार की शर्तें लिखी हो; विशेषतः वह पत्र जिसपर कुलियों से उन्हें उपनिवेशों में काम करने के लिये भेजने के समय हस्ताक्षर कराया जाता था । इकरारनामा । शर्तनामा ।

क्रि० प्र०—करना ।—लिखना ।—होना ।

२. कोई काम करने की स्वीकृति या प्रतिज्ञा । इकरार ।

गिरमिटिया—संज्ञा पुं० [हि० गिरमिट] अंग्रेजी शासन काल में शर्त के साथ किसी उपनिवेश में गया हुआ भारतीय मजदूर ।

यौ०—गिरमिटिया प्रथा ।

गिरराज—संज्ञा पुं० [सं० गिरिराज] गोवर्धन पर्वत ।

गिरवर—संज्ञा पुं० [सं० गिरि + वर] बड़ा पहाड़ ।

यौ०—गिरवरधारी = गिरधर । श्रीकृष्ण ।

गिरवाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० गरीब] रस्सी । डोरी । उ०—जैसे कसाई के हाथ की गिरवाँ से गसी गया कातर नैनो से पीछे देखती जाती हो ।—श्यामा०, पृ० १५५ ।

गिरवाँ—संज्ञा पुं० [सं० गोर्वाण] दे० 'गोर्वाण' । उ०—तहक नीसाण गिरवाँण हरखाण तन, चित्ता सरसाण रंभगाण चासै ।—रघु० रू०, पृ० २६ ।

गिरवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोर्वाण] देवी । उ०—तस जंभ जंभी ताणिया, वरमाल गह गिरवाणिया ।—रघु० रू०, पृ० २२१ ।

गिरवान—संज्ञा पुं० [सं० गोर्वाण] देवता । देव । सुर । उ०—तेरे गुन गान सुनि गिरवान पुलकित सजल विलोचन विरंचि हरि हृ के ।—तुलसी (शब्द०) ।

गिरवान—संज्ञा पुं० [फ्रा० गरीबान] १. अंग्रे या कुरते का वह गोल भाग जो गर्दन के चारों ओर रहता है । कालर । २. गर्दन । गला । उ०—नेही सनमुख जुरत ही तेहि मन की गिरवान । बाहत हैं रनबावरे तेरे रग किरवान ।—रसनिधि (शब्द०) ।

गिरवाना—क्रि० स० [हि० गिराना] गिराने की प्रेरणा करना । गिराने का काम किसी दूसरे से कराना ।

गिरबी—[फ्रा०] गिरो रखा हुआ । बंधक । रेहन ।

यौ०—गिरबोदार, गिरबोनामा, गिरबोजन्सी, गिरबोमाठा = रेहन । बंधक ।

क्रि० प्र०—करना ।—मारना ।—रखना ।

गिरबीदार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] वह व्यक्ति जिसके यहाँ कोई वस्तु बंधक रखी हो ।

गिरबीनामा—संज्ञा पुं० [फ्रा०] वह पत्र जिसमें गिरों की शर्तें लिखी हों । रेहननामा ।

गिरवीपत्र—संज्ञा पु० [हि० गिरवी+पत्र] दे० 'गिरवीपत्र' ।

गिरस्ती—संज्ञा पु० [सं० गृहस्थ] दे० 'गृहस्थ' ।

गिरस्ती—संज्ञा स्त्री० [वि० गृहस्थ, हि० गिरस्त + ई (प्रत्य०)] दे० 'गृहस्थ' । उ०—फिर गिरस्ती में लोग लगे—कुछ काल के अनंतर उन्हें एक कन्या धीर हुई ।—श्यामा०, पृ० ४७ ।

गिरह—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. गीठ । बंधि ।

क्रि० प्र०—देना ।—बांधना ।—मारना ।—जगाना ।

२. जेब । कोमा । लगीना ।

यौ०—गिरहकट ।

३. दो पोरों के जुड़ने का स्थान । ४. एक गज का सोलहवाँ भाग जो सवा दो इंच के बराबर होता है । ५. पुष्पों का एक बँध । ६. कलैया । उलटी । उ०—ऊँची चित्तै सराहियत गिरह कबूतर लेत । दृग भलकित मुलकित बदन तन पुलकित केहि है ।—बिहारी (शब्द०)

क्रि० प्र०—खाना ।—मारना ।—जगाना ।—लेना ।

यौ०—गिरहबाज ।

मुहा०—गिरह खोलना = गीठ खोलना । मन से मेल दूर करना । मन में बुराई दूर करना । गिरह पड़ना = गीठ पड़ना । भेद पैदा होना । उ०—पत्र न पावे गिरह किसी बिल में ।—चोखे०, पृ० ३६ । गिरह बांधना या बाँध लेना = गीठ में बाँध लेना । मन में बैधा लेना । उ०—से गिरह बाँध दिन गिरह खोलें ।—चोखे०, पृ० ३६ ।

गिरहकट—वि० [फ्रा० गिरह = जेब या गीठ + हि० काटना] जेब या गीठ में बँधा हुआ मान काट लेनेवाला ।

गिरहवार—वि० [फ्रा०] जिसमें गीठ हो । गीठवाला । गँठोला ।

गिरहबाज—संज्ञा पु० [फ्रा० गिरहबाज] एक जाति का कबूतर जो उड़ते लपके उलटकर कलैया गा जाता है और फिर उड़ने लगता है । इसे मोटन कबूतर भी कहते हैं ।

गिरहबाज उड़ो—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गिरहबाज + उड़ो = कलैया] वह उलटी कलैया जो कसरत करनेवाले कबूतर की तरह उलटकर लगाते हैं ।

गिरह—वि० [हि० गिरना = हर (प्रत्य०)] जो गिरनेवाला हो । जो गिरने के लिये तैयार हो । पतनोन्मुख ।

गिरहस्त(पु)—संज्ञा पु० [सं० गृहस्थ] दे० 'गृहस्थ' उ०—हस्ति घोर भी कापर सर्वाह् बीन्ह नो साजु । भै गिरहस्त लक्ष्मणी, घर घर मानहि राजु ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० ३४६ ।

गिरही(पु)—संज्ञा पु० [सं० गृहिन्] जो घरबागवाला हो । गृहस्थ । उ०—बाटे बाटे सब कोइ दुखिया क्या गिरही बैरागी । शुकाचार्य दुख ही के कारण गरने सागा त्यागी ।—कबीर (शब्द०) ।

गिरा—वि० [फ्रा० गरी] १. जिसका घाम अधिक हो । महंगा । २. भारी । बजनी । हलका का उलटा ३. जो असा न या उस हो । अप्रिय ।

क्रि० प्र०—गुजरना ।

गिराया—संज्ञा पु० [सं० ग्रैवेय, हि० गरीव] दे० 'गरीव' ।

गिराव—संज्ञा पु० [सं० ग्रैवेय, हि० गरीव] दे० 'गरीव' ।

गिरावि^२—संज्ञा पु० [सं० घ्राव] गाँव ।

यौ०—गाँव गिराव ।

गिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह शक्ति जिसकी सहायता से मनुष्य बोलने करता है । बोलने की ताकत । २. जिह्वा । जीभ । जबान । उ०—पीर थके अरु पीर थके पुनि धीर थके बहु बोलि गिरा तै ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ६६० । ३. बोल । वचन । वाणी । कलाप । ४. सरस्वती देवी ।

यौ०—गिरापति । गिरापितृ ।

५. सरस्वती नदी । ६. भाषा । बोली । ७. कविता । शायरी ।

गिराधव—संज्ञा पु० [सं०] ब्रह्मा [को०] ।

गिराना—क्रि० सं० [हि० गिरना का सक० रूप] १. किसी चीज का ढाँचा या अवरोध आदि हटाकर उसे अपने स्थान पर ले नीचे डाल देना । पतन करना । जैसे, छत पर से पत्थर गिराना, हाथ से छड़ी गिराना, घाल से घाँसू गिराना । २. किसी चीज को खड़ा न रहने देकर जमीन पर डाल देना । जैसे,—खंभा गिराना, मकान गिराना । ३. प्रवतन करना । घटाना । हटाना करना । जैसे,—विलासप्रियता ने ही उस जाति को गिरा दिया । ४. किसी जलधारा या प्रवाह को किसी ढाल की ओर ले जाना । जैसे,—ताली गिराना, मोरी गिराना । ५. शक्ति, प्रतिष्ठा, मूल्य या स्थिति आदि में कमी कर देना । जैसे,—(क) बीमारी ने उसे ऐसा गिराया कि वह छह महीने तक किसी काम का न रहा । (ख) व्यापारियों ने साल खरीदना बंद करके बाजार गिरा दिया । ६. जीर्ण या दुर्बल करके अथवा इसी प्रकार के किसी उपाय से किसी चीज को उसके स्थान से हटा या निकाल देना । जैसे,—(क) दो महीने बाद उसने गर्भ गिरा दिया । यह दवा तुम्हारे सब दाँत (या बाल) गिरा देगी । ७. कोई ऐसा रोग उत्पन्न करना जिसके विषय में लोगों का यह विश्वास हो कि उसका वेग ऊपर से नीचे आता या होता है । जैसे,—तुम्हारी यह नापसवाही जरूर नजला गिरावेगी । ८. सहसा उपस्थित करना । अचानक सामने ला रखना । जैसे,—यह भमेला तुमने हमारे सिर ला गिराया ।

विशेष—इस अर्थ में इसमें पहले 'लाना' किया लगती है ।

९. युद्ध में प्राण लेना । लड़ाई में मार डालना । जैसे,—उसने पाँच आदमियों को गिराया ।

गिरानी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गरानी] १. मूल्य का अधिक होना । महंगापन । महंगी । २. अकाल । कहत । ३. कमी । अभाव । टोटा । ४. किसी चीज का विशेषतः पेट का भारीपन । उ०—रसनिधि प्रेम तबीय यह दियो इलाज जताय । छवि अश्रवा-इन चल दगल बिरह गिरानी जाय ।—रसनिधि (शब्द०) ।

गिरापति—संज्ञा पु० [सं०] ब्रह्मा । उ०—इस न गनेश न दिनेश न धनेश न सुरेश सुर गोरि गिरापति नहि जपने ।—गुलसी (शब्द०) ।

गिराव—संज्ञा पु० [सं० ग्रैव] तोप का वह गोला जिसमें छोटी छोटी गोलियाँ या छर्रे भी रहते हैं ।

गिराव—संज्ञा पुं० [हि० गिरना + घाव (प्रत्य०)] गिरने की क्रिया या भाव । पतन । गिरावट ।

गिरावट—संज्ञा स्त्री० [हि० √ गिर + घावट (प्रत्य०)] १. ह्रास । पतन । २. न्यूनता । कमी । ३. अवनति । अपकर्ष । ४. मान या पद की मर्यादा में दोष या बाधा होना ।

गिरावना^५—क्रि० सं० [हि० गिराना] दे० 'गिराना' ।

गिरास^६—संज्ञा पुं० [सं० घ्रास] दे० 'घ्रास' ।

गिरासना^७—क्रि० सं० [हि० गिरास + ना (प्रत्य०)] दे० 'घ्रासना' । उ०—परी रेणु ह्येष रविर्हि गिरासा । मानुष पंथ लेहि फिरि बासा ।—जायसी (शब्द०) ।

गिरासी—संज्ञा स्त्री० [नेरा०] एक प्राचीन जाति ।

विशेष—यह जाति गुजरात देश में रहती थी । इस जाति के लोग बड़े फसादी और डाकू होते थे ।

गिराह^८—संज्ञा पुं० [सं० ग्राह] ग्राह या मगर नामक जलजंतु ।

गिरि^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत । पहाड़ । २. दशनामी संप्रदाय के एक प्रकार के संन्यासी ।

विशेष—ये अपने नामों के पीछे उपाधि की भाँति 'गिरि' शब्द लगाते हैं । (जैसे—नारायण गिरि, महेश गिरि आदि) । इनमें कुछ लोग मठधारी महंत होते हैं और कुछ जमींदारी तथा अनेक प्रकार के व्यापार करते हैं । इनमें से कुछ लोग वैष्णव हो गए हैं, जो गिरि वैष्णव कहलाते हैं । ये विवाह नहीं करते ।

३. परिव्राजकों की एक उपाधि । ४. तांत्रिक संन्यासियों का एक भेद । ५. पारे का एक दोष जिसका शोधन यदि न किया जाय, तो खानेवाले का शरीर जड़ हो जाता है । ६. आँख का एक रोग जिसमें डँडर या टेटर निकल आता है और आँख कानी हो जाती है । ७. गेंद (को०) । ८. मेघ । बादल (को०) । ९. घाट की संख्या (को०) । १०. शिला । चट्टान (को०) ।

गिरि^२—संज्ञा स्त्री० [सं० गिरि] १. निगलने की क्रिया । २. बुढ़िया । मूषिका (को०) ।

गिरिकंटक—संज्ञा पुं० [सं० गिरिकण्टक] वज्र ।

गिरिकंदर—संज्ञा पुं० [सं० गिरिकन्दर] पहाड़ की गुफा (को०) ।

गिरिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । महादेव । २. वह जो पर्वत से उत्पन्न हो । ३. गेंद (को०) ।

गिरिकच्छप—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ की गुफा में रहनेवाला कछुआ (को०) ।

गिरिकदंब, गिरिकदंबक—संज्ञा पुं० [सं० गिरिकदंब, गिरिकदंबक] एक प्रकार का कदंब (को०) ।

गिरिकदली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड़ी केला (को०) ।

गिरिकर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपराजिता सता । २. बिबिधा । अपामार्ग । ३. पृथ्वी (को०) ।

गिरिकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपराजिता या कोयल नाम की सता । २. जवासा ।

गिरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुढ़िया । मुसटी । २. पुरुवंशी बसु राजा की स्त्री जिसकी कथा महाभारत में है ।

गिरिकाण्ड—वि० [सं०] गिरी नामक रोग के कारण जिसकी एक आँख नष्ट हो गई हो (को०) ।

गिरिकानन—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ के ऊपर लगा हुआ बाग (को०) ।

गिरिकुहर—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ की खोह या गुफा (को०) ।

गिरिकूट—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ की चोटी या शिखर (को०) ।

गिरिक्षिप—संज्ञा पुं० [सं०] अक्रूर के एक भाई का नाम ।

गिरिगुड—संज्ञा पुं० [सं०] गेंद । कंदुक (को०) ।

गिरिगुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड़ की गुफा । उ०—प्रथमहि देवन्हु गिरिगुहा राखे रुचिर बनाइ ।—मानस, ४।१२ ।

गिरिचर^१—वि० [सं०] पर्वत पर चलने या रहनेवाला (को०) ।

गिरिचर^२—संज्ञा पुं० तस्कर । चोर (को०) ।

गिरिज^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिलाजीत । २. लोहा । ३. अवरक । अन्नक । ४. गेरू । ५. एक प्रकार का पहाड़ी महुआ ।

गिरिज^२—वि० पहाड़ से उत्पन्न ।

गिरिजा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] नगाधिराज हिमालय की कन्या, पार्वती । गौरी ।

यौ०—गिरिजाधर गिरिजापति = महादेव । शंकर । गिरिजा-कुमार, गिरिजातनय, गिरिजानन्दन, गिरिजासुत = (१) कार्तिकेय । (२) गणेश ।

२. गंगा । ३. चकोतरा । ४. पहाड़ी केला । ५. चमेली ।

गिरिजा^२—संज्ञा पुं० [हि० गिरजा] दे० 'गिरजा' ।

गिरिजागृह—संज्ञा पुं० [सं०] पार्वतीमंदिर । उ०—सर समीप गिरिजागृह सोहा ।—मानस, १।२२८ ।

गिरिजाधर—संज्ञा पुं० [हि० गिरजाधर] दे० 'गिरजाधर' ।

गिरिजामल—संज्ञा पुं० [सं०] अन्नक ।

गिरिजारमन—संज्ञा पुं० [सं० गिरिजारमल] शंकर । महादेव । शिव । उ०—चरित सिधु गिरिजारमन वेद न पारहि पार ।—मानस, १।१०३ ।

गिरिजाल—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत का विस्तार या पर्वतश्रेणी (को०) ।

गिरिजाबोज—संज्ञा पुं० [सं०] गंधक ।

गिरिज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र ।

गिरित्त—वि० [सं०] १. लाया हुआ । अक्षित । २. निगला हुआ (को०) ।

गिरित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव । शिव । २. समुद्र ।

विशेष—जब इंद्र ने पर्वतों के पर काटे थे, तब मैनाक पर्वत समुद्र में जा छिपा था । इसी से समुद्र का यह नाम पड़ा ।

गिरिर्दान^५—संज्ञा पुं० [फ्रा० गर्दन] दे० 'गरदन' । उ०—उंच कहुर कंधान छोट गिरिर्दान लंब भुम ।—पु० रा०, ८।५५ ।

गिरिदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ पर बना हुआ किला ।

विशेष—मनु ने इस प्रकार का दुर्ग बड़ा उपयोगी बतलाया है ।

गिरिबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० गिरिबुद्धि] पार्वती [को०] ।

गिरिदुः—अव्य० [क्रा० गिरि] दे० 'गिरि' । उ०—गिरिदुः शेरि
रामं सुपंच रंगं भवं ।—पृ० २१०, १७।५२ ।

गिरिद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] दर्रा [को०] ।

गिरिधर—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रीकृष्ण ।

गिरिधरन—संज्ञा पुं० [सं० गिरिधर] श्रीकृष्ण ।

गिरिधाम—संज्ञा पुं० [सं०] गेरू ।

गिरिधारन—संज्ञा पुं० [सं० गिरिधारण] श्रीकृष्ण ।

गिरिधारी—संज्ञा स्त्री० [सं० गिरिधारि] श्रीकृष्ण ।

गिरिध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

गिरिनंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गिरिनन्दिनी] १. पार्वती । २. गंगा ।
३. नदी ।

गिरिनगर—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिरनार पर्वत पर बसा हुआ नगर
जो जैनियों का एक पवित्र तीर्थ है । २. पुराण के अनुसार
रैवतक पर्वत [को०] ।

गिरिनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड़ी नदी [को०] ।

गिरिनाइक—संज्ञा पुं० [सं० गिरि + नायक] गिरिराज । गोवर्धन
पर्वत । उ०—तिन करि सेवित सब मुखदाइक । अन्य अन्य
गोवर्धन गिरिनाइक ।—नंद ग्रं०, पृ० २६७ ।

गिरिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव । उ०—कछु बिन तहाँ
रहे गिरिनाथ ।—तुलसी (शब्द०) ।

गिरिनिध—संज्ञा पुं० [सं० गिरिनिध] बकायन ।

गिरिपथ—संज्ञा पुं० [सं०] दो पहाड़ों के बीच का संकीर्ण मार्ग ।
दर्रा [को०] ।

गिरिपीलु—संज्ञा पुं० [सं०] फालसा ।

गिरिपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पथरकोट नाम का पौधा । २.
शिलाजीत [को०] ।

गिरिप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ के ऊपर का चौरस मैदान ।
पठार [को०] ।

गिरिप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुग गाय ।

गिरिप्रसार—संज्ञा पुं० [क्रा० गिरिप्रसार] दे० 'गिरिप्रसार' । उ०—अजी
करना है उसको गिरिप्रसार ।—मैला०, पृ० २६६ ।

गिरिबरधर—संज्ञा पुं० [हि० गिरिबरधर] दे० 'गिरिबरधर' ।
उ०—गोपीनाथ गोविंद गोपसुत गुनी भीतप्रिय गिरिबरधर
रंगाल के ।—घनानंद, पृ० ३६५ ।

गिरिबांधव—संज्ञा पुं० [सं० गिरिबांधव] महादेव । शिव [को०] ।

गिरिवृटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वनस्पति जो घोषध के
काम में आती है । संगवृटी । अंगूरशेफा । हि० दे० 'अंगूरशेफा' ।

गिरिभव—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत से उत्पन्न । गिरिजात । उ०—सत्य कहें
गिरिभव ननु एहा । हठ न छूटें बरु देहा ।—मानस, १।८० ।

गिरिभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] पलानभद ।

गिरिमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटज । कुरेया ।

गिरिमान—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी । विशालकाय एवं शक्तिशाली
हाथी [को०] ।

गिरिमृत—संज्ञा स्त्री० [सं०] गेरू ।

गिरिमृद्व—संज्ञा पुं० [सं०] गेरू [को०] ।

गिरियक, गिरियाक—संज्ञा पुं० [सं०] गेंद [को०] ।

गिरिगज—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा पर्वत । २. हिमालय । ३. गोवर्धन
पर्वत । ४. मेरु ।

गिरिवर—संज्ञा पुं० [सं०] गिरिराज । उ०—भूक होइ बाचाल पगु चढ़ै
गिरिवर गहन ।—मानस, १।१ ।

गिरिवरधर—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण ।

गिरिर्वर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की पहाड़ी हस्तिनी ।
बतव [को०] ।

गिरिवर्य—संज्ञा पुं० [सं०] गिरिवर । हिमालय । उ०—दिए तुमने
भारत को दिव्य न जाने कितने नए विचार । तुम्हारे श्रृंगों
से गिरिवर्य । विविध धर्मों का हुस्मा प्रचार ।—सागरिका,
पृ० ७ ।

गिरिग्रज—संज्ञा पुं० [सं०] १. केकय देव की राजधानी । २. जरासंध
की राजधानी, जिसे पीछे राजगृह कहते थे ।

गिरिश—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव [को०] ।

गिरिशाल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाज पत्ती ।

गिरिशालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रपगजिता लता ।

गिरिशिखर—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ की चोटी । गिरिकूट [को०] ।

गिरिशृंग—संज्ञा पुं० [सं० गिरिशृंग] १. पहाड़ की चोटी । २.
गगन [को०] ।

गिरिसंभव—संज्ञा पुं० [सं० गिरिसंभव] एक प्रकार का पहाड़ी
चूहा [को०] ।

गिरिसंभव—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ या पर्वत से उत्पन्न । उ०—सुनत बचन
बिहसे रिपय गिरिसंभव तव देह । नारद का उपदेश सुनि
कहहु बसेउ किमु मेह ।—मानस, १।७८ ।

गिरिसालु—संज्ञा पुं० [सं०] पठार । अधित्यका [को०] ।

गिरिसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोहा । २. शिलाजीत । ३. रांगा ।
४. मनय पर्वत ।

गिरिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] मैनाक पर्वत ।

गिरिसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती ।

गिरिस्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० गृहस्थ, हि० गिरिस्ती + स्ती (प्रत्यय)]
दे० 'गृहस्थी' ।

गिरिस्त्रवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड़ी नदी [को०] ।

गिरिहो—संज्ञा पुं० [सं० गृही] दे० 'गृही' । उ०—होइ गिरिहो
पुनि होइ जगसी । अंतकाल दुनहैं बिसवासी ।—जायसी
सं० (गुप्त), पृ० ३३१ ।

गिरींद्र—संज्ञा पुं० [सं० गिरीन्द्र] १. बड़ा पर्वत । २. हिमालय ।
३. शिव । ४. पाठ की संख्या [को०] ।

गिरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गरी] १. वह गूदा जो बीज को तोड़ने पर

उसके अंदर से निकलता है। जैसे—बादाम, अलरोट या खरबूजे आदि की गिरी। २. दे० 'गिरि'। ३. दे० 'गरी'।

गिरीयक—संज्ञा पुं० [सं०] गेंद। कंदुक [को०]।

गिरीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव। शिव। २. हिमालय पर्वत। ३. सुमेरु पर्वत। ४. कैलाश पर्वत। ५. गोवर्धन पर्वत। ६. कोई बड़ा पहाड़। ७. बृहस्पति [को०]।

गिरेबान—संज्ञा पुं० [फ्रा० गिरेबान] गले में पहनने के कपड़े का वह भाग जो गरबन के चारों ओर रहता है।

गिरेबा—संज्ञा पुं० [सं० गिरि अथवा सं० प्राक्, प्राचा] १. छोटी पहाड़ी। टीला। २. षडार्ध का रास्ता।

गिरेबा—संज्ञा पुं० [सं० गिरा+ईश] १. ब्रह्मा। २. विष्णु।

गिरैया[†]—संज्ञा स्त्री० [हि० गेराब का अल्पा०] छोटा या पतला गेराब। उ०—तिय जानि गिरैया गहो बनमाल सो ऐंच लवा ईच्यो आवत है।—पद्माकर (शब्द०)।

गिरैया[‡]—वि० [हि० गिरना] गिरनेवाला। पतनोन्मुख। जो गिरने को हो।

गिरैया[†]—वि० [हि० गिरना+ऐया (प्रत्य०)] गिरनेवाला।

गिरां[†]—वि० [हि० गिरो] दे० 'गिरो'।

गिरो—वि० [फ्रा० गिरो] रेहन। बंधक। गिरवी।

क्रि० प्र०—करना।—घरना।—रलना।

यौ०—गिरो गाठा=रेहन।

गिरोह—संज्ञा पुं० [फ्रा० गिरोह या गुरोह] समूह। समुदाय। जमात। जनसमूह। दल। गोल [को०]।

गिरोही—संज्ञा पुं० [हि० गिरोह+ई (प्रत्य०)] समूह का आदमी। जमात का आदमी। संगी। साथी [को०]।

गिरिगिट—संज्ञा पुं० [हि० गिरिगिट] दे० 'गिरिगिट'।

गिर्जा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गिरजा'। (प्रार्थनामंदिर)

गिर्जाघर—संज्ञा पुं० [हि० गिरजा+घर] दे० 'गिर्जा'।

गिर्ब—अव्य० [फ्रा०] आसपास। चारों ओर। उ०—माया लता रह दुमं गिर्द है बिबिध रचा फुलबारी।—सं० दरिया, पृ० १३४।

यौ०—इर्ब गिर्द।

गुहा०—गिर्ब होना=पास होना। णटुचना। उ०—आदमी की आवाज कान में आई और हम लठ से के गिर्द हुए।—सैर कु०, भा० १, पृ० १४।

गिर्बाब—संज्ञा पुं० [फ्रा०] भँवर।

गिर्बाबर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. घूमनेवाला। दौरा करनेवाला। २. घूम घूमकर काम की जाँच करनेवाला।

यौ०—गिर्बाबर कानूनगो=कलक्टर मुहकमे का वह छोटा अफसर जो गाँवों में घूम घूमकर पटवारियों या लेसपालों के कागजों की जाँच करता है।

गिलकां[†]—संज्ञा स्त्री० [देश०] परिहास। मजाक। दिल्लगी।

गिलबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गिलबंजाजी] १. सड़क बाँध आदि पर मिट्टी डालना। २. पुस्ताबंदी।

गिल^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. मिट्टी। २. गारा।

यौ०—कहगिल। गिलकारो।

गिल^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. मगर। घड़ियाल। २. जंबोरी नीबू।

गिल^३—वि० भक्षण करनेवाला। निगलनेवाला।

गिलकना^④—क्रि० सं० [सं० गिल] भक्षण करना। निगलना। उ०—गिलकी सत कंठरि, कृष्ण उरंघरि, साज सब करि लूझारं।—पृ० रा०, ६।११०।

गिलकार—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] गारा या पलस्तर करनेवाला व्यक्ति। राज।

गिलकारो—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] गारा लगाने या पलस्तर करने का काम।

गिलकिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] नेनुवाँ या घियातोरी नाम की तरकारी।

गिलगिल^१—संज्ञा पुं० [सं०] नाक नामक जलजंतु। नक।

गिलगिल^२^④—संज्ञा स्त्री० [हि० गिलगिलिया] दे० 'गिलगिलिया'। उ०—पन मघनहार पच्छी अपार। गिलगिल बिहार करि डार डार।—सुजान०, पृ० २२।

गिलगिलिया—संज्ञा स्त्री० [अनु०] सिरौही नाम की चड़िया।

विशेष—यह आपस में बहुत लड़ती हैं। इसे कहीं कहीं किलहेंटी और मैना भी कहते हैं।

गिलगिली—संज्ञा पुं० [देश०] १. घोड़े की एक जाति। २. गुदगुदी। ३. मंद सुरसुराहट या खुजली जो किसी अंग के हल्के हल्के स्पर्श से होती है।

गिलमाह—संज्ञा पुं० [सं०] नक। गिलगिल [को०]।

गिलजई—संज्ञा स्त्री० [देश०] अफगानिस्तान में रहनेवाली एक जाति।

विशेष—इस जाति के लोग अस्त्र शूरवीर होते हैं।

गिल्लट—संज्ञा पुं० [अ० गिल्ल=सोना चढ़ाना] १. सोना चढ़ाने का काम। २. एक प्रकार की बहुत हलकी और कम मूल्य की धातु, जिसका रंग सफेद और चमकीला होता है और जिससे जेवर और बरतन बनते हैं।

गिलटी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि] १. चेप की गोल छोटी गाँठ।

विशेष—यह शरीर के अंदर संघिस्थान में होती है। कुहनी, गल, गरदन और घुटने में तथा पैरु और रान के बीच में एक से अधिक गाँठें होती हैं।

२. एक प्रकार का रोग।

विशेष—इसमें या तो संघिस्थान की इन्ही गाँठों में से कोई एक गाँठ सूज या फूल जाती है अथवा शरीर के किसी अन्य भाग में कोई गाँठ उत्पन्न हो जाती है। भावप्रकाश के अनुसार इनकी उत्पत्ति का कारण मांस, रक्त या मेद आदि का दूषित हो जाना है। गिलटी में प्रायः बहुत पीड़ा होती है, और कभी कभी उसके चीरने तक की नौबत आ जाती है। यदि निकलने के साथ ही गिलटी को सँक दिया जाय, तो वह सब भी जाती है।

क्रि० प्र०—उभरना।—निकलना।—बँटना।

गिलटी^२^④—संज्ञा स्त्री० [देश०] कहकर मुकरना या पलटना।

गिलग^१^④—वि० [हि० गिलना] निगलनेवाला।

गिलावा^१—संज्ञा [फ्रा० गिलावा] गर्दन ।

गिलान^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० गिलान] १. अंगरेजी नाव ।

विशेष—यह १० पाउंड । (प्रायः ५ सेर) का होता है और इससे प्रायः तरस पदार्थ नाप जाते हैं ।

२. टीन आदि का वह बरतन जिससे इतना पदार्थ नापा जाता हो ।

गिलान^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० गिलान] निगलना । नीलना ।

गिलाना - क्रि० म० [फ्रा० गिलाना] १. किसी चीज को बिना दाँतो से तोड़े गले में उतार जाना । निगलना । उ०—
(क) बेगु के राज्य में घोषणी मिल गई होइ है सकल किमपा तुम्हागे ।—सूर (शब्द०) । (ख) तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई । गगन मगन मकु मघहि मिलई ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ग) कोरक सहित अग्रग्नितया लख्यो गहु अग्रतार । कला कलाधर को गिली अनु उगिलन यह गार ।—गुमान (शब्द०) । २. मन ही में रखना । प्राप्ति न होने देना । उ० कीधी हमहि देख उठि जैह की उठि हमको मिलिहै । कीधी बात उधारि कहैगो की मन हाँ मन मिलिहै ।—सूर (शब्द०) ।

गिलबिला^१—क्रि० [अनु०] १. बहुत कोमल । पिलपिला । जैसे,—गिलबिला फोडा । २. अस्पष्ट भाषण या उच्चारण करनेवाला ।

गिलबिला^२—संज्ञा पुं० [देश०] मुसलमान ।

गिलबिलाना—क्रि० प्र० [अनु०] १. अस्पष्ट बोलना । अस्पष्ट उच्चारण से कुछ कहना । २. व्याकुल होकर बोलना या अस्पष्ट प्रलाप करना ।

गिलबा^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० गिलबा] कोलाहल । हल्लागुल्ला । शोर ।

गिलम^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गिलम = कंबल] १. ऊन का बना हुआ नरम और चिकना कालीन । २. बहुत मोटा मुलायम गद्दा या बिछोना । जैसे,—(क) भावरनदार भक्ति भूमि बितान बिंदु गहव गलीबा अरु गुलगुनी गिलम । पयाकर (शब्द०) । (ख) नील के चीर नवीन सों गिलम गुनजार हजार बिछाई ।—गुमान (शब्द०) ।

गिलम^२—क्रि० कोमल । नरम । मुलायम ।

गिलमा^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० गिलमा, गुलाम का बहु०] इस्लाम धर्म के अनुसार वे मुंदर बालक जो बहिष्ठ मे धर्मात्माओं की सेवा और भोग इस्लाम के लिये रहते हैं ।

गिलमिल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कपड़ा जो पुराने जमाने में बनता था । उ०—बादला दरिआई नौरंग साईं जरबम कई मिलमिल है । ताफता कलंदर बाफता बंदर मुमजर मुंदर गिलमिल है ।—गूदन (शब्द०) ।

गिलमुखे—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गिलमुख] गेरू ।

गिलाहरी^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का कपड़ा ।

विशेष—यह कपड़ा सूत का बनता है और इसमें मोटी मोटी धारियाँ होती हैं ।

२. [स्त्री० गिलहरी] बाँस की कट्टियों आदि का बना हुआ एक पात्र, जिसमें पान रखा जाता है । बेलहरा ।

गिलहरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गिलहरी, कलहरी] एक प्रकार का छोटा जानवर जो एशिया, यूरोप और उत्तरी अमेरिका में बहुत अधिकता से होता है ।

विशेष—गिलहरी की कई जातियाँ होती हैं और यह आकार में बूढ़े से लेकर बिल्ली तक की होती है यह प्रायः छोटे फल और घने छाती है और पेड़ों पर रहती है । इसके कान लंबे और नुकीले होते हैं और दुम घने और मुलायम रोयी से ढकी होती है । इसकी पीठ पर कई रंग की धारियाँ भी होती हैं । इसकी दुम के रोपों से रंग भगने की कूँची बहुत अच्छी बनती है । यह बहुत चंचल होती है और बड़ी सरलता से पाची जा सकती है । यह अपने पिछले पैरों के सहारे बैठकर अगले पैरों से हाथों की तरह काम ले सकती है । इसकी चंचलता बहुत जली मालूम होती है । एक बार में यह तीन से चार तक बच्चे दे सकती है । इसे कहीं कहीं चिलुरी या गिलाई भी कहते हैं ।

गिला—संज्ञा पुं० [फ्रा० गिलह] १. उलाहना । उ०—खरिक्ह नहि मिले कहै कह अनमिले करन दे मिले नू दिनन थोरी ।—सूर (शब्द०) । २. शिकायत । निहा ।

गिलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० गिलहरी] दे० 'गिलहरी' ।

गिलाजत—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गिलाजत] १. गंदगी । मल । २. अविवशता । ३. गढ़ापन ।

गिलाण^१, गिलाणी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्लानि] ग्लानि ।

गिलान^१, गिलानो^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्लानि] ग्लानि ।

गिलान^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्लानि] ग्लानि । गृणा । नफरत । उ०—
तलि दरिद्र विद्वान को जग जन करे गिलान ।—दीन० प्र०, पृ० ७६ ।

गिलाफ—संज्ञा पुं० [फ्रा० गिलाफ] १. कपड़े की बनी हुई बड़ी थैली जो तकिए, लिहाफ आदि के ऊपर चढ़ा दी जाती है । खोल । २. बड़ी रजाई । लिहाफ । ३. म्यान ।

गिलाय—संज्ञा स्त्री० [सं० गिर = चुहिया] गिलहरी ।

गिलायु—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग ।

विशेष—इसमें गले के धंदर आँखों की गुठली के आकार की एक गाँठ हो जाती है । इसमें बहुत पीडा होती है और रोगी के गले में कोई चीज अटकती हुई मालूम होती है । इस रोग में शस्त्र चिकित्सा कराने की आवश्यकता होती है ।

गिलार^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गला] गला । गर्दन ।

गिलारि^१—संज्ञा पुं० [?] नुसिह । उ०—खंभा में प्रगटयो गिलारि ।—कबीर प्र०, पृ० २१४ ।

गिलारो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गिलहरी] दे० 'गिलहरी' ।

गिलावा^१—संज्ञा पुं० [हि० गिलावा] दे० 'गिलावा' ।

गिलावा^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० गिल + प्राव] वह गीली मिट्टी जिससे राज लोग ईंट जोड़ते हैं । गारा । उ०—होरा ईंटें कपूर गिलावा । जो नय लाय स्वर्ग लय लावा ।—जायसी (शब्द०) ।

गिज्ञास—संज्ञा पुं० [अं० ग्ज्ञास] १. एक गोल संज्ञा पीने का बरतन । पानपात्र ।

विशेष—यह पेदी की ओर कम और मुँह की ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है और इसमें पानी दूध आदि तरल पदार्थ पीते हैं ।
२. आलूबालू या भोलची नाम का पेड़ ।

विशेष—इसका फल बहुत मुलायम और स्वादिष्ट होता है । यह सावन में केवल १५-२० दिन तक फलता है । यह कश्मीर का फल है जिसे अंग्रेजी में चेरी कहते हैं । वि० दे० 'आलू बानू' ।

गिलित—वि० [सं०] निगला हुआ । भक्षित [को०] ।

गिलिम—संज्ञा स्त्री० [हि० गिलिम] दे० 'गिलिम' । उ०—गिलिम गलीचे दूध फेन को लजाए है ।—रघुराज (शब्द०) ।

गिली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गुल्ली' । उ०—खेलत हो लाल संग गयो उठि दाँव लै कै भारी खँच गिली देखि मंदिर में श्याम है ।—प्रिया० (शब्द०) ।

गिलेफा—संज्ञा पुं० [हि० गिल्लाक] दे० 'गिल्लाक' ।

गिल्लोणा, गिल्लोना—क्रि० स० [हि० गीला] गीला करना ।

गिल्लोणा, गिल्लोना—क्रि० स० [हि० घालना] १. मिश्रित करना । मिलाना । २. गूँधना । सानना ।

गिल्लोइ—संज्ञा स्त्री० [हि० गिलोय] दे० 'गिलोय' । उ०—अमर स्वर्ग पवि तदन तरु, अमर जुनास गिलोइ । अमर देव के देव हरि, प्रभु सम अमर न कोई ।—नंद० प्र०, पृ० ७० ।

गिल्लोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० बिलोड़ी] १. घी, गुड़े और घाटे से बनाई जानेवाली मोटी रोटी । २. घी रखने का धातुपात्र ।

गिलोय—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] गुरुच । गुड़ची । उ०—नीब की छाल चिरायता, भाने केर गिलोय ।—इंद्रा०, पृ० १५१ ।

गिल्लोला—संज्ञा स्त्री० [हि० गुलेल] दे० 'गुलेल' ।

गिल्लोला—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुलेला] मिट्टी का बना हुआ छोटा गोला जो गुलेल से फेंका जाता है । उ०—तेरी कंठसिरी के नवल मुकता फल न तिनके गिल्लोला काम करतु बनाय कै ।—गुमान (शब्द०) ।

गिल्लौदा—संज्ञा पुं० [हि० गुलदा] दे० 'गुलदा' ।

गिल्लौरो—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक या कई पानों का बीड़ा जो साधारण बीड़े से कुछ भिन्न और तिकोना, चौकोना तथा कई आकार का होता है ।

क्रि० प्र०—बनाना ।

यौ०—गिल्लौरोदान ।

गिल्लौरीदान—संज्ञा पुं० [हि० गिल्लौरी+दान] पान रखने का ढिन्वा । पानदान । पनढन्वा ।

गिल्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० गिलटी] दे० 'गिलटी' ।

गिल्लान—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्लानि] दे० 'ग्लानि' । उ०—ताके मन उपजी गिल्लान । मैं कीन्ही बहु जिय की हान ।—सुर (शब्द०) ।

गिल्ला—संज्ञा पुं० [हि० गिला] दे० 'गिला' ।

गिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि० गुल्ली] दे० 'गुल्ली' ।

मुहान—गिल्लिमा गठना=वितंडावाद करना । व्यर्थ बकवाद करना ।

गिब—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] गरदन । गला । उ०—चूरहि गिब अमरन श्री हारू । अब काकहँ हम करब मिगारू ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २१० ।

गिवार—वि० [हि० गँवार] दे० 'गँवार' । उ०—नराना नारा सुरा नार, जूज जीत लीधजार । घपे न कोता बुधार है गिवार है गिवार ।—रघु०, पृ० १३६ ।

गिष्णु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सामवेद का गानेवाला । यज्ञों में सामवेद के मंत्र को सविधि गानेवाला मनुष्य । २. गवैया । गायक ।

गिष्णु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गिष्णु' ।

गीजना—क्रि० स० [हि० गीजना] १. किसी कोमल पदार्थ, विशेषतः कपड़े, फूल आदि को इस तरह दवाना या मलना जिसमें वह खराब हो जाय । उ०—गीजी फूल माल सी लसत सेज परी हाय ऐसी सुकुमारी ऐसे गीजि मारियतु है ।—रघुनाथ (शब्द०) । २. खाने के पदार्थ को अद्दं ढंग से एक दूसरे में मिलाना । सानना ।

गीद—संज्ञा स्त्री० [सं० गिन्दुक, हि० गेद] दे० 'गेद' । उ०—अपणी मारी गीद चलाऊँ ।—कबीर प्र०, पृ० १७७ ।

गी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बाणी । बोलने की शक्ति । २. सरस्वती देवी ।

गउ—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] गरदन । उ०—दीरघ नेन तीक्ष्ण तहँ देखा । दीरघ गीउ कंठी निति रेखा ।—जायसी, (शब्द०) ।

गीज—संज्ञा पुं० [हि०] आँख का मेल । कीचड़ । उ०—आँखि में गीज रुनाक मे सेडौ ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ४३६ ।

गीजद—संज्ञा पुं० [हि०] आँख का मेल । कीचड़ ।

गीठम—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घटिया सादा कालीन या गलीचा ।

गीड़ा—संज्ञा पुं० [सं० किट्ट अथवा हि० कीट = मेल] आँख का कीचड़ या मेल ।

गीडर—संज्ञा पुं० [हि० कीट ?] कीचड़ [को०] ।

गीणना—क्रि० स० [हि० गिनना] दे० 'गिनना' । उ०—मइला राजा धारउ कीसउ हो बेसास, तो हूँ दासी करि गीणी ।—बी० रासो, पृ० ३७ ।

गीत—संज्ञा पुं० [सं०] वह वाक्य, पद या छंद जो गाया जाता हो । गाने की चीज । गाना ।

विशेष—संगीत शास्त्र के अनुसार जो वाक्य धातु और मात्रा युक्त हो वही गीत कहलाता है । गीत दो प्रकार का होता है—वैदिक और लौकिक । वैदिक गीत को साम कहते हैं । (दे० 'साम') सारा सामवेद ऐसे ही गीतों से भरा हुआ है । लौकिक गीत भी दो भागों में विभक्त हैं—मार्ग और देशी । शुद्ध राग और रागिनियाँ मार्ग के अंतर्गत हैं और आजकल के चलते गाने (दादरा, टप्पा, गजल, दुमरी, आदि) देशी कहलाते हैं । गीत के दो भेद और हैं—यंत्र और गातृ ।

स्वर निकालनेवाले (वीन, सितार, हारमोनियम आदि) बाजों से उत्पन्न ध्वनिसमूह या गीत को यंत्र और अनुष्य के गले से निकले हुए को गानू कहते हैं। पर साधारण बोलचाल में यंत्र को कोई गीत नहीं कहता, केवल गानू को गीत कहते हैं।

क्रि० प्र०—गाना।

अर्थात्—गीत गाना=बड़ाई करना। प्रशंसा करना। जैसे,—
जिससे चार पैसा पाते हैं उसके गीत गाते हैं। अर्थात् गीत गाना=प्रशंसा ही अर्थात् कहना। अपनी ही बात कहना, दूसरे की न सुनना।

२. बड़ाई। यन्त्र। उ०—गीत मानो गुरु, कवि मानु माने मीत के, पुनीत गीत साके सब साहेब समस्त के।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०४। ३. वह जिसका यन्त्र गाया जाय।

गीत^२—वि० १. गाया हुआ। २. चोषित। कथित [को०]।

गीतक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. गीत। गाना। २. प्रशंसा [को०]।

गीतक^२—वि० १. गीत गानेवाला। २. गीत बनानेवाला [को०]।

गीतकार—संज्ञा पुं० [सं०] गीत लिखनेवाला। गीतों की रचना करनेवाला [को०]।

गीतकीर्ति—वि० [सं०] बहुत प्रसिद्ध। विख्यात [को०]।

गीतकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार की तान।

गीतगोविन्द—संज्ञा पुं० [सं० गीतगोविन्द] जयदेव कृत संस्कृत का प्रसिद्ध गीत काव्य।

गीतप्रिय^१—वि० [सं०] गीतों का प्रेमी। गीतों में रुचि रखनेवाला [को०]।

गीतप्रिय^२—संज्ञा पुं० १. शिव। २. श्रीकृष्ण। उ०—गोपीनाथ गोविंद गोपमुत्त गुनी गीतप्रिय गिरिवरधर रसाल के।—घनानंद, पृ० ३६५।

गीतप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

गीतभार—संज्ञा पुं० [सं०] गीत की प्रथम पंक्ति जो टेक के रूप में होती है। टेक। उ०—देखता है मगना ही भारत की नारियों का एक गीतभार है।—लहर, पृ० ७१।

गीतमोदी—संज्ञा पुं० [सं० गीतमोदिक] किन्नर [को०]।

गीतशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत विद्या [को०]।

गीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह ज्ञानमय उपदेश जो किसी बड़े से भाँगने पर मिले। जैसे,—रामगीता, शिवगीता, धनुगीता, उत्तरगीता आदि। २. भगवद्गीता। ३. संकीर्ण राग का एक भेद। ४. २६ मात्रा का एक छंद जिसमें १४ और १२ मात्राओं पर विराम होता है। उ०—मन बावरे भ्रम समझ संसार भ्रम दरियाउ। इहि तरन को यही छोड़ के कछु नाहि और उपाय।—(शब्द०)। ५. वृत्तांत। कथा। हाल। उ०—सीता गीता पुत्र की सुनि गुनि भई अचेत। मनो चित्र की पुत्रिका मन कम बचन समेत।—केशव (शब्द०)।

गीतासीत—वि० [सं०] १. जो गाया न जा सके। गान के परे। २. जिसका वर्णन न किया जा सके। अकथनीय [को०]।

गीतायन—संज्ञा पुं० [सं०] गायन के साधन, मृदंग, वीणा, बाँसुरी आदि [को०]।

गीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गान। गीत। २. भार्या छंद के मेंदों में से एक जिसके विषम चरणों में १२ और सम चरणों में १८ मात्राएँ होती हैं। इसे उदगाहा या उदगाथा भी कहते हैं। ३. एक साम यंत्र [को०]।

गीतिका—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में २६ मात्राएँ होती हैं, १४ तथा १२ पर यति होती है और अंत में लघु गुरु होते हैं। उ०—धन्य श्री वसुदेव देवकि, पुत्र करि जिन पाइया। धन्य यशुमति नंद जिन पय प्याय गोद खिलाइया।—(शब्द०)। २. एक वर्णिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में सगण, जगण, जगण, भगण, रगण, सगण और लघु गुरु होते हैं। ३. गीत। गान। गायन।

गीतिकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा काव्य जो गीति प्रधान अथवा गेय हो और आत्मपरक हो। उ०—गीति काव्य और गेय काव्य दोनों एक ही वस्तु नहीं है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १६७।

गीतिनाट्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा नाटक जिसमें काव्य की प्रधानता हो। काव्य नाटक। उ०—यह दृश्य काव्य गीतिनाट्य के ढंग पर लिखा गया है।—कल्याण, (गूचना)।

गीतिरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का रूपक जिसमें गद्य कम और पद्य या गान अधिक होता है। २. काव्यरूपक [को०]।

गीती—वि० [सं०] गीतिन। गाकर पाठ करनेवाला। गाकर पढ़नेवाला [को०]।

गीत्यार्या—संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ५ नगण और एक लघु होता है। इसे अचलवृत्ति भी कहते हैं।

गीथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गीत। गाना। २. वचन। वाणी [को०]।

गीथिन(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हिं० गीथिन] गिरस्तिन। गिरस्ती संभालनेवाली स्त्री।

गीथिनी(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० गृहस्थ] गृहस्थिनी। गृहिणी। घरनी। उ०—पलटू सूजी गीथिनी कहूँ भात कहूँ दाल।—पलटू, भा० १, पृ० १०४।

गीद(पुं०)—संज्ञा पुं० [हिं० गीध] गीध 'गीध'। उ०—रज्जब पट्टे गीद ज्यों प्रति चलते के पाय।—रज्जब, पृ० १७।

गीदक^१—संज्ञा पुं० [सं० गृध्र = सुव्य या फ्रा० गीदी] [स्त्री० गीदड़ी] सियार। शृगाल। भेड़िया या कुत्ते की जाति का एक जानवर जो लोमड़ी से मिलता जुलता होता है।

विशेष—यह भूँड़ों में रहता है और एशिया तथा अफ्रीका में सर्वत्र पाया जाता है। दिन में यह मौड़ में पड़ा रहता है और रात को भूँड़ के साथ निकलता है और छोटे छोटे जंतु जैसे, भेड़ भुर्गी, बकरी आदि पकड़कर खाता है। कभी कभी यह भुँड़ तथा मरे हुए जीवों की लाश खाकर ही रह जाता है। यह कुत्ते के साथ जोड़ा खा जाता है। गीदक बहुत डरपोक समझा जाता है।

गीदक^२—गीदक भवकी = मन में डरते हुए भी ऊपर से दिखाऊँ साहस या क्रोध प्रकट करने की क्रिया।

मुहा०—गीवद् बोलना = बुरा शकुन होना । किसी स्थान पर गीवद् बोलना = उजाड़ होना । निर्जन होना ।

गीवद्^२—वि० डरपोक । घसाहसी । बुजदिल ।

गीवद्बख्ख—संज्ञा पुं० [हि० गीवद् + बख्ख = वृक्ष] मकोले कद का एक प्रकार का पेड़ जो समस्त उत्तर, मध्य और पूर्व भारत में अधिकता से होता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ छोटी, बड़ी और कई आकार-प्रकार की होती हैं और अधिकता से पशुओं के चारे के काम में आती हैं । गरमी के आरंभ में इसका पतझड़ हो जाता है । चैत से जेठ तक इसमें बहुत छोटे छोटे लंबोतरे और लाल रंग के फूल होते हैं । इसमें बेर से कुछ छोटे गोल फल भी लगते हैं जो देहात में खाने के काम आते हैं ।

गीव्दर—संज्ञा पुं० [हि० गं बड़] [स्त्री० गीवदरी] दे० 'गीदड़' ।

गीदी—वि० [फ्रा०] १. जिसे साहस न हो । डरपोक । कायर । उ०—गीदी काया देख भुलाया दीनन से क्यों डरता है ।—कबीर श०, पृ० १७ । २. बेहया । निर्लज्ज ।

गीध—संज्ञा पुं० [सं० गृध्र, प्रा० गिद्ध] १. गृध्र । गिद्ध । २. जटायु नामक गिद्ध । उ०—तबहि गीध घावा करि क्रोधा ।—मानस, ३।२३ ।

गीधना^१—क्रि० प्र० [सं० गृध्र = लुब्ध अथवा सं० √ गृध्] १. एक बार कोई अनुकूल काम होते देख सदा उसके प्रयत्न में रहना । एक बार कोई लाभ उठाकर सदा उसका ह्छुक रहना । परचना । उ०—(क) कौन भीति रहिहै बिरद अब देखिबी मुरारि । बीधे मोसों आय के गीधे गीधहि तार ।—विहारी (शब्द०) । (ख) गीध्यों डीठ हैम तस्कर ज्यो ग्रहि आतुर मति मंद ।—सूर (शब्द०) । २. ललचना । लोभवश होना ।

गीधराज—संज्ञा पुं० [सं०] जटायु । उ०—(क) मरत सिखावन देख चले, गीधराज मारीच ।—तुलसी श्र०, पृ० ११० । (ख) गीधराज सँ भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ । गोदावरी निकट प्रभु रहे पर्नगृह छाई ।—मानस, ३।७ ।

गीधता^१—संज्ञा संज्ञा [प्र० गीधत] १. अनुपस्थिति । गैरहाजिरी । २. पिशुनता । चुगलखोरी । चुगली ।

गीर^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गिर, गी] वाणी । उ०—कुंज तजि गुजत गहीर गीर तीर तीर रह्यो रंगभोन भरि भोरन की भीर सों ।—देव (शब्द०) ।

गीर^२—प्रत्य० [फ्रा०] १. पकड़नेवाला । जैसे, राहगीर । २. अपने अधिकार में रखनेवाला । जैसे, जहाँगीर [को०] ।

गीरथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. बृहस्पति का एक नाम । २. जीवात्मा ।

गीरबाण, गीरवान^१—संज्ञा पुं० [सं० गीर्वाण] देवता । सूर । उ०—चहूँ और सब नगर के लसत दिवालय चार । आसमान तजि जनु रह्यो गीरवान परिवार ।—गुमान (शब्द०) ।

गीर्ण^१—वि० [सं०] १. वणित । कहा हुआ । २. निगला हुआ ।

गीर्ण^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वर्णन । स्तुति । १. निगलने की क्रिया ।

गीर्देवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती । शारदा ।

गीर्भाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गीर्वाणी' [को०] ।

गीर्लता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी मालकगनी ।

गीर्वाण—संज्ञा पुं० [सं०] देवता । सूर । उ०—गद्यो गिरा गीर्वाण सों गुनि बहुरि बतावहु बाता ।—विश्राम (शब्द०) ।

गीर्वाणकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] लवंग । लोग ।

गीर्वाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देववाणी । संस्कृत [को०] ।

गीर्वि—वि० [सं०] निगलनेवाला [को०] ।

गीला^१—वि० [हि० बलना] [वि० स्त्री० गीली] भीगा हुआ । तर । नम । उ०—पग है चलत ठठकि रहै ठाढ़ी मौन धरे हरि के रस गीली ।—सूर (शब्द०) ।

गीला^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की जंगली लता ।

गीलापन—संज्ञा पुं० [हि० गीला + पन (प्रत्य०)] गीला होने का भाव । नमी । तरी ।

गीली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़ । बरमी ।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी चिकनी, भारी, मजबूत और सुखी लिए पीले रंग की होती है और मेज, फुरसियाँ आदि बनाने के काम में आती है । इसका पेड़ हिमालय की तराई में अधिकता से होता है ।

गील्लना^१—क्रि० स० [हि० निगलना] निगलना । ग्रसना । उ०—चंद कइ भोलइ तोहि गील्लसइ राह ।—बी० रासो, पृ० ७२ ।

गीव^१—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] दे० 'गिड़', 'ग्रीवा' ।

गीवा^१(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीवा] ग्रीवा । गरदन । उ०—राते स्याम कंठ दुइ गीवा । तेहि दुइ फंद डरी सुठि जीवा ।—जायसी (शब्द०) ।

गीष्पति—संज्ञा पुं० [सं०] १. बृहस्पति । २. विद्वान् । पंडित ।

गुंकार—संज्ञा पुं० [प्रनु० ?] हुंकार । ललकार । उ०—येहि कार के लार गुंकार भयो ।—घट०, पृ० ६८ ।

गुंग^१—वि० [फ्रा०] दे० 'गूंगा' । उ०—गुंग सकल पिगल पढ़े, पंगु चढ़े गिरि मेर ।—नंद श्र०, पृ० २१६ ।

गुंग^२(पु)—क्रि० प्र० [प्रनु०] गुं गुं की ध्वनि करना । बजना । उ०—गहिर गुंग नौसैन जाँनु बदवल गुर गज्जिय ।—पृ० रा०, ७।३२ ।

गुंगारा—वि० [हि० गुंग] दे० 'गूंगा' ।

गुंगी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गूंगा] दोमुहों साँप । चुकरेंड ।

गुंगी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० गुंग + ई (प्रत्य०)] १. गूंगापन । वाक्-शक्ति का अभाव । २. चुप्पी । मौन ।

यौ०—गुंगी साधना = चुप हो जाना ।

गुंगी^३—वि० [हि०] दे० 'गुंग', 'गूंगी' ।

गुंवा—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुंवाह] १. कली । कोरक । २. नाच रंग । विहार । जमन ।

मुहा०—गुंवा खिलना = खूब नाच रंग होना । जमन होना । आनंद उठना ।

३. कुरमुट ।

बौ०—गुंभावहू = (१) कली जैसे छोटे मुँहवाला। (२) सुमुख। (३) प्रेनपान या मायूक।

गुंभी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुंभ्रा] दे० 'गुंभची'।

गुंज^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गुंज] १. भोरों के मनभनाने का शब्द। गुंजार। २. आनन्दध्वनि। कलरव। ३. दे० 'गुंजा'।

बौ०—गुंजभाल। गुंजहार।

४. सोने के तार को गुँवर बनाया हुआ कर्पू लड़का कहना जो गले में पहना जाता है। गोप। ५. फूँती या फनियों का गुच्छा (को०)।

गुंज^२—संज्ञा पुं० [गुंज] गवई का पेड़।

गुंज^३—संज्ञा स्त्री० [गुंज] सनाह। राय। उ०—अजन कयोगइ ईखवा, घरियो गुंज मधीर।—रा० क०, गु० ३४५।

गुंजक^१—संज्ञा पुं० [सं० गुंजक] एक प्रकार का पोषा (को०)।

गुंजक^२—वि० गुंजन करनेवाला। मनभनानेवाला (को०)।

गुंजन—संज्ञा स्त्री० [सं० गुंजन] १. भोरों के गुंजने की क्रिया। कोमल मधुर ध्वनि निकालने की क्रिया। मनभनाहट। २. गुनगुनाने की क्रिया या स्थिति (को०)। ३. विड़ियों का बसेरा लेते हुए या प्रातःकाल चहचहाना (को०)।

गुंजना—क्रि० प्र० [हि० गुंज] भोरों का मनभनाना। मधुर ध्वनि निकालना। गुनगुनाना। उ०—मुँदर बन कुमुमित प्रति सोभा। गुंजत मधुग फिर मधु लोभा।—तुलसी (शब्द०)।

गुंजनिकेतन—संज्ञा पुं० [सं० गुंज + निकेतन] भोरा। मधुकर। उ०—प्रति मधुन संजुल गुंज बिराजै। बहु गुंजनिकेतन गुंजनि साजै।—केशव (शब्द०)।

गुंजर—संज्ञा पुं० [हि० गुंजार] गुंजार। गुंजन।

गुंजरण—संज्ञा पुं० [सं० गुंजन, हि० गुंजार] गुंजार। गुंज। उ०—मधुर गुंजरण भर, अब बहुता प्राण समीरण सुख से चंचल।—युगपथ, गु० १४५।

गुंजरना—क्रि० प्र० [हि० गुंजार] १. गुंजार करना। भोरों का गुंजना। मनभनाना। मधुर ध्वनि निकालना। उ०—घोर भीति कुंजन में गुंजरन भोग भोग घोर लीग भोरन में बोरन के हँ गए।—पद्माकर (शब्द०)। २. शब्द करना। गरजना। उ०—बाघ सिंह गुंजरत, गुंज कुंजर तर तोरत।—केशव (शब्द०)।

गुंजलक—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. कुंडली। कुंडली। २. कपड़े आदि की शिफन। मिलवट। ३. उलझन की बात। गुत्थी। ४. गाँठ। ग्रथि।

गुंजलक—संज्ञा स्त्री० [फा० गुंजलक] कुंडली या कुंडल। उ०—नहीं जानता, गोन गोन पिस जाए इसकी गुंजलकी में।—बादनी०, गु० १०८।

गुंजा—संज्ञा स्त्री० [सं० गुंजा] १. गुंभची नाम की लता।

विशेष—यह जंगल में भाँटो पर चढ़ती है और इसकी फलियों में से घरघर के बराबर गुँब लाल दाने निकलते हैं। वि० दे० 'गुंभची'।

गुंजाइरा—संज्ञा पुं० [फा०] १. स्थान। जगह। बैठने की जगह।

समाने भर को स्थान। अबकाश। जैसे,—इस कोठरी में बस आदमियों से अधिक की गुंजाइश नहीं है। २. समई। सुबीता। जैसे,—इस समय इतने की गुंजाइश तो हमारे यहाँ नहीं है। ३. लाभ। बचत।

गुंजान—वि० [फा०] घना। अविरल। सघन।

गुंजायमान—वि० [सं० गुंजायमान] मधुर ध्वनि करता हुआ। गुंजायता हुआ। गुंजता हुआ।

गुंजार—संज्ञा पुं० [सं० गुंज + आर] भोरों की गुंज। मनभनाहट। उ०—जहाँ बुंदावन आदि भजर जहाँ कुंजलता बिस्तार। तहाँ विहगत प्रिय प्रीतम दोऊ निगम भृंग गुंजार।—सूर (शब्द०)।

गुंजारना—क्रि० प्र० [हि० गुंजार] भोरों का गुंजना। २. मधुर ध्वनि करना।

गुंजारित—वि० [हि० गुंजार + इत (प्रत्य०)] गुंजाया हुआ। गुंजित।

गुंजाहल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गुंजा + हल] गुंजा। गुंजा का बीज। उ०—अहं रंग रत्तउ हुबह, मुख कागज मसि ब्रह्म। जौरायउ गुंजाहल ब्रह्म, तेण न दूकउ मस।—ढोला०, दू० ५७२।

गुंजिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गुंजिका] गुंभची (को०)।

गुंजिया—संज्ञा स्त्री० [हि० गुंज = लपेटा हुआ पतला तार] एक प्रकार का जेवर जिसे घोरतें कान में पहनती हैं।

गुंजी—वि० [सं० गुंजन्] १. गुंजनयुक्त। २. गुंजनेवाला (को०)।

गुंभ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि] उलझन। गुत्थी। उ०—करै दिखावा और को, आप समाने गुंभ।—दरिया० बानी, गु० ३८।

गुंभल(पु)—संज्ञा स्त्री० [फा० गुंजलक, हि० गुरभन] भुरिया। उ०—तन गुंभल पड़ने लगी सूखन लागी आत।—सहजो०, गु० २६।

गुंढा—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड अथवा दे०] ताल। छोटा जलाशय।

गुंठ—संज्ञा पुं० [गुंठ] एक प्रकार का छोटा घोड़ा। टट्टू। टाँघन। उ०—कोई किमयी भुठार फुलवाई। गरी गुंठ जुम्मिल दरियाई।—विश्राम (शब्द०)।

गुंठन—संज्ञा पुं० [सं० गुंठन] १. आच्छादन। ढक्कन। २. घूँघट। ३. लेपन। जैसे, भस्मगुंठन (को०)।

गुंठा^१—संज्ञा पुं० [हि० गठना] एक प्रकार का घोड़ा जो माटे कद का होता है। दौगन।

गुंठा^२—वि० [गुंठा] माटे कद का। नाटा। बोना।

गुंठित—वि० [सं० गुंठित] १. ढका हुआ। २. छिपा हुआ। ३. आवृत। ४. लेपन किया हुआ। लेपित (को०)।

गुंढ^१—संज्ञा पुं० [?] मलार राग का एक भेद। उ०—पिक बैनी मृग लोचनी सारद मसि सम तुंड। राम सुयश सब गावहीं सस्वर सारंग गुंढ।—तुलसी (शब्द०)।

गुंढ^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. कसेरू का पोषा। २. पेचण। चूँल करना (को०)।

गुंढ^३—वि० पिसा हुआ। चूँल किया हुआ।

गुंई—संज्ञा स्त्री० [हि० गुंई] गुंटापन । मोहदापन । बदमाशी ।
 गुंडक—संज्ञा पुं० [सं० गुण्डक] १. धूल । २. चूर्ण । ३. तैल रखने का बरतन । तैलपात्र । ४. कर्णप्रिय कोमल मधुर ध्वनि ।
 ५. गंदा घाटा । ६. गंदी धूल मिली भोज्य सामग्री [को०] ।
 गुंडन—संज्ञा पुं० [सं० गुण्डन] गुंठन । छिपाव ।
 गुंडली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] कुंडली । गेंदुरी [को०] ।
 गुंडा^१—[सं० गुण्डक = मलिन] [वि० स्त्री० गुंडी] १. दुर्बल । पापी । बदचलन । कुमार्गी । बदमाश । २. छेला । चिकनिया ।
 गुंडा^२—संज्ञा पुं० बदमाश आदमी ।
 गुंडा—संज्ञा पुं० [सं० गुण्ड] गोला । उ०—प्रति गह सुमर खोदाए खाए सैं आंग क गुंडा ।—कीर्ति०, पृ० ४० ।
 गुंडानी—वि० [हि० गुंआ] गंडों का । गुंटापन लिए हुए ।
 गुंडापन—संज्ञा पुं० [हि० गुंआ + पन (प्रत्य०)] बदमाशी ।
 गुंडासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुण्डासिनी] एक प्रकार का तृण । विशेष—यह वैद्यक में कटु, तिक्त, उष्ण और पित्त, दाह, शोष तथा ग्रण दोष का नाशक कहा है ।
 पर्या०—गुंडाला । गुंडाला । गुच्छमूलिका । क्षिपटा । कृष्णपत्री । यवासा । पृथुना । बिष्टुरा ।
 गुंडिक—संज्ञा पुं० [सं० गुण्डिक] घाटा । चूर्ण [को०] ।
 गुंडिचा—संज्ञा स्त्री० [सं० गुण्डिचा] १. पुरुषोत्तम के १२ उत्सवों में से एक । २. इस उत्सव का स्थान । ३. उत्कल खंड [को०] ।
 गुंडित—वि० [सं० गुण्डित] १. चूर्ण किया हुआ । २. धूल से ढका हुआ [को०] ।
 गुंडी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] सूत की लच्छी । गेंदुरी ।
 गुंडी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्ड] पीतल का छोटा जलपात्र या कलसा ।
 गुंडीर—वि० [सं०] १. चूर्ण करनेवाला । पीसनेवाला । २. नष्ट भ्रष्ट करनेवाला [को०] ।
 गुंदल—संज्ञा पुं० [सं० गुन्दल] छोटे नगाड़े या डोल की मंद ध्वनि [को०] ।
 गुंदाज—संज्ञा पुं० [सं० गुन्दाल] चातक । पपीहा [को०] ।
 गुंद्र—संज्ञा पुं० [सं० गुन्द्र] एक प्रकार की घास । शर तृण [को०] ।
 गुंद्राल—संज्ञा पुं० [सं० गुन्द्राल] पपीहा । चातक [को०] ।
 गुंफ—संज्ञा पुं० [सं० गुम्फ] [वि० गुंफित] १. उलझन । फंसाव । दो या कई वस्तुओं का परस्पर गुंथमगुंथा । २. गुच्छा । ३. दाढ़ी । गलमुच्छा । ४. कारणमाला अलंकार । ५. सज्जा [को०] । ६. बाजूबंद [को०] । ७. संयोजन । रचना । व्यवस्था [को०] ।
 गुंफन—संज्ञा पुं० [सं० गुम्फन] [वि० गुंफित] १. उलझन । फंसाव । गुंथमगुंथा । गुंथना । गांधना । २. कमबद्ध करना [को०] ।
 गुंफना—संज्ञा स्त्री० [सं० गुंफना] १. गुंथना । २. व्यवस्था । रचना । ३. शब्दों और अर्थ की वाक्य में सम्यक् रचना [को०] ।
 गुंफा—संज्ञा पुं० [सं० गुहा; मरा०, हि० गुफा] दे० 'गुफा' । उ०—मधुरा की जैन मूर्तियाँ और कलिंग की जैन गुंफाओं की मूर्तियाँ प्रायः एक सी हैं ।—मा० ६० रु०, पृ० १४१ ।

गुंभज—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुंभज] देवालियों की गोल गेंदनुमा छत ।
 यौ०—गुंभजदार ।

गुंभजदार—वि० [फ्रा० गुंभजदार] जिसपर गुंभज हो ।

गुंभद—संज्ञा पुं० [फ्रा०] दे० 'गुंभज' ।

गुंभदी—वि० [फ्रा०] १. गुंभद की शक्ल का । गुंभदवाला ।

गुंभा—संज्ञा पुं० [हि० गोल + भ्रं = घ्रास] वह कड़ी गोल सूजन जो सिर या मथे पर चोट लगने से होती है । गुनमा । गूमड़ा ।

गुंभी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुम्फ = गुच्छा] अंगुर ।

गुंभज—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुंभज, हि० गुंभज] दे० 'गुंभद' । उ०—कसे कंचुकी मैं दुवी उच कुच करत बिहार । गुंभज के गजकुंभ के गरभ गिरावनहार ।—स० सप्तक, पृ० ३५३ ।

गुंभट(पुं)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गुंभद' । उ०—गुंभट में जब जाय लगा, मुक्ता सो नजर में आवत है ।—पल्लव०, पृ० ११ ।

गुंमी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुन = रस्सी] पाल खींचने की रस्सी ।

गुहा०—गुम्मी बांधना = पाल को खींच खींचकर ठीक करना ।
 —(लश०) ।

गुंथहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुंथ + बहरा] एक प्रकार की लंबी मछली जो देखने में साँप की तरह मात्स्य होती है । बास । बाँबी ।

गुंथाना—क्रि० प्र० [अनु०] १. धुमा देना । अच्छी तरह न जलना । उ०—बिरह की ओदी लाकरी सपसौ श्री गुंथुआय । दुख ते तबहीं बाँचिही, जब सगरो जरि जाय ।—कबीर (शब्द०) । २. गुं गुं शब्द करना । अस्पष्ट शब्द निकालना । गुंगे की तरह बोलना ।

गुंजरा(पुं)—संज्ञा पुं० [हि० गजरा] दे० 'गजरा' । उ०—गुंजरा हियरे बिहरे तन सोभित, धातु विविध लहो करिये ।—नट०, पृ० १६ ।

गुंजाना—क्रि० स० [हि० गुंजना] गुंजनमय करना । गुंज से भरना ।

गुंउली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] १. फेटा । कुंडली । २. गेंदुरी । इडुरी ।

गुंथना—क्रि० प्र० [हि० गुथना] दे० 'गुथना' ।

गुंथला—संज्ञा पुं० [सं० गुण्डाला] नागरमोथा नाम की घास जो प्रायः दलदल के पास होती है ।

गुंदीला—वि० [हि० गौदीला] दे० 'गौदीला' ।

गुंथना^१—क्रि० प्र० [सं० गुथ = खीड़ा अथवा हि० गुंथना का अक० रूप] पानी में सानकर मगला जाना । मंड़ा जाना । साना जाना । जैसे,—घाटा गुंथ रहा है ।

गुंथना^२—क्रि० प्र० [सं० गुंथ या गुथ = गुच्छ] तागों, बाल की लटों, या इसी प्रकार की और वस्तुओं का गुच्छेदार लड़ी के रूप में बनना । गुंथना । जैसे, चोटी गुंथना ।

गुंथाना—क्रि० स० [हि० गुंथना का प्रे० रूप] गुंथने का काम दूसरे से कराना ।

गुँबाई—संज्ञा स्त्री० [हि० गुँबना] १. गुँबने या माड़ने की क्रिया या भाव । २. गुँबने या माड़ने की मजदूरी । ३. गुँबने की क्रिया या भाव । ४. गुँबने या गुँबने की मजदूरी । जेमे,—चोटी गुँबाई ।

गुँबावट—संज्ञा स्त्री० [हि० गुँबना] १. गुँबने या गुँबने की क्रिया । गुँबने या गुँबने का ढंग ।

गुप्ता—संज्ञा पुं० [सं० गुप्ताक] १. एक प्रकार की गुपारी । चिकनी सुपारी । उ०—गुप्ता गुपारी जायकर सब कर करे भूष । आग पास घन हँविली अउ घन गार खरूर ।—जायसी (शब्द०) । २. गुपारी । उ०—चोटा कुचमं गुप्ता पुनि पूग गुपारी जाहि ।—नददास (शब्द०) ।

गुप्पार—संज्ञा स्त्री० [सं० गोराणी] खार ।

गुप्पावपाठा—संज्ञा पुं० [हि० ग्वारपाठा] दे० 'ग्वारपाठा' ।

गुप्पारि—संज्ञा स्त्री० [हि० ग्वार] दे० 'ग्वार' ।

गुप्पारी—संज्ञा स्त्री० [हि० ग्वार] दे० 'ग्वार' ।

गुप्पालिन—संज्ञा स्त्री० [हि० ग्वार] दे० 'ग्वार' ।

गुइयाँ—संज्ञा स्त्री० पुं० [हि० गोहन साथ] १. मेल का साथी । २. साथी । मित्र । सँभाली । ३. गद्दी । सहचरी । उ०—तुम्हारे भग्न भाग जो तुम्हारे गाग सबमे धुपके मै जो इनकी लड़कपन की गुइयाँ हैं गुंफे अपने गाव से के आई हैं ।—अमोघ्या० (शब्द०) । दे० 'गोइयाँ' ।

गुई—संज्ञा स्त्री० [हि० गुइयाँ] दे० 'गुइयाँ' । उ०—नहीं गुई, इनमें बड़ा भेद है, उमे गुनीगी तो छाती में छेद हो जायगा ।—ब्याणा०, गु० ८२ ।

गुखरू—संज्ञा पुं० [हि० गोखरू] दे० 'गोखरू' ।

गुगरल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बल्लभ ।

गुगानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी के ऊपर की हलकी हिलोर जो थोड़ी दूरी तक कागम उठती है । खलभनी ।—(लण०) ।

गुगुलिया—संज्ञा पुं० [अनु०] बंदर लचानेवाला । मदारी ।

गुगुर—संज्ञा पुं० [सं० गुग्गुलु] दे० 'गुग्गुलु' ।

गुग्गुलु—संज्ञा पुं० [सं०] एक गूँदादार पेड़ ।

विशेष—यह मिष, काठियावाड़, राजपूताना, खानदेश आदि में होता है । इस पेड़ के छिलके को जाड़े के दिनों में स्थान स्थान पर खीन देते हैं जिससे उन स्थानों से कुछ हरागन लिए और रंग का गोद निकलता है । यही गोद बाजार में गुग्गुलु के नाम से खिन्ता है । यह पेड़ वास्तव में मरुभूमि का है, हमारे शरब और अफीका में इसकी बहुत सी जातियाँ होती हैं । बलर्मा और बोल (मुर) नाम के गोद जो मक्का और अफीका में पाते हैं पश्चिमी गुग्गुलु ही से निकलते हैं । इनमें से गरम या बंदर गरम उत्तम और भीटिया या चिनाई बोन मध्यम होता है । भारतवर्ष में गुग्गुलु की चलाव विशेषकर धमरावती से होती है । बंबई में इसे गारे में भी मिलाते हैं जा दक्कदी के काम में आता है । गुग्गुलु को चबन हत्यादि के साथ मिलाकर सुगंध के लिये जलाते हैं । वैद्यक

में गुग्गुलु कीर्त्यजनक, बलकारक, हूटी हूटी जोड़नेवाला, श्वरपोषक तथा वातव्याधि और कोढ़ की दूर करनेवाला माना जाता है । राजनिघंटु में गुग्गुलु के रस के अनुसार पाँच भेद किए हैं । प्रयोगावृत्त में गुग्गुलु की परीक्षाविधि इस प्रकार लिखी है, जो आग में गिरने से जल जाय, गरमो पाकर पिघल जाय, और गरम जल में डालने से घुल जाय वह गुग्गुलु उत्तम होता है । श्रोष में नया गुग्गुलु काम में लाना चाहिए, पुराना नहीं । खाने के लिये गुग्गुलु प्रायः शोधकर काम में लाया जाता है । इसे कई प्रकार से पोषते हैं । कोई गिलोय या त्रिफला के काढ़े अथवा दूध में पकाते हैं, कोई दणमूल के गरम काढ़े में डालकर उसे छान लेते हैं और फिर भूप में सुखा देते हैं ।

पर्या०—कालनिर्वास । महिषाक्ष । पलंकष । जटायु । कीशिक । देवधूप । शिवपुर । कुम्भ । बल्लभलक । सर्वसाह । उष । कुंती । पवनद्विष्ट । वापुष्प । रुद्रगंधक ।

२. एक बड़ा पेड़ जो दक्षिण में कोकण आदि प्रदेशों में होता है ।

विशेष—इसके पत्ते जब तक नए रहते हैं प्याजी रंग के दिखाने पड़ते हैं । पच्छिमी घाट के पहाड़ों पर इन पेड़ों की बड़ी शोभा दिखाई पड़ती है । इनमें से एक प्रकार की राल या गोद निकलता है जो दक्षिण का काला रामर कहलता है । यह राल बारनिश बनाने के काम में विशेष आती है । पेड़ को राल भूप और मंद भूप भी कहते हैं ।

३. सलई का पेड़ जिससे राल या भूप निकलती है ।

गुग्गुलक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गुग्गुलु' ।

गुग्गुलु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गुग्गुलु' ।

गुच—संज्ञा पुं० [हि०] डाढीदार भेड़ ।

विशेष—यह भेड़ पंजाब में पाई जाती है ।

गुची—संज्ञा स्त्री० [सं० गुच्छ] सो पानों की गद्दी । आधी होली ।

गुच्ची—संज्ञा स्त्री० [अनु०] भूमि में बना हुआ बहुत छोटा गूदा जिसे लड़के गोली या गुल्लनी डंडा मेलने समय बनाने हैं ।

गुच्ची—वि० बहुत छोटी । नन्ही । जैसे,—गुच्ची आँख (शब्द०) ।

गुच्चीपारा—संज्ञा पुं० [हि० गुच्ची गुच्चीपारना = डालना] एक खेल जिसमें लड़के एक छोटा सा गूदा बनाकर उगमें कीड़ियाँ या गोलियाँ फेंकते हैं ।

गुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुच्छा । २. एक में बंधे या लगे हुए फूलों का समूह । ३. घाग की छुरी ।

यौ०—गुच्छदंतिका । गुच्छपत्र । गुच्छपुष्प । गुच्छफल । गुच्छमूलिका । गुच्छार्ध ।

३. वह पोषा जिगमे दूध काय या पेड़ी न हो, केवल पत्तियाँ या पतली लचीली टहनियाँ फैले । भाड़ । जेमे,—धान्यमालिका आदि । ४. जलौस लड़ी का हार । ५. मोती का हार । ६. मोर की पूँछ ।

गुच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गुच्छ' ।

गुच्छकविरा—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मत्त । रागी घान [सं०] ।

गुच्छकरंज—संज्ञा पुं० [सं० गुच्छकरंज] करंज का एक प्रकार [को०] ।

गुच्छदंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गुच्छदंतिका] कदली । केला ।

गुच्छपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पत्र ।

गुच्छपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रशोक वृक्ष । २. सतिवन या खतिवन का पेड़ । ३. रोठा । ४. धवई या घाय का पेड़ । घातकी ।

गुच्छफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोठा । २. निर्मलो । ३. दोना । ४. मकोय । काकमाची । ५. अंगूर । ६. कदली ।

गुच्छफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दाक्षा । २. कदली [को०] ।

गुच्छमूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोंदला घास ।

गुच्छल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास [को०] ।

गुच्छा—संज्ञा पुं० [सं० गुच्छ] १. एक में लगे या बंधे कई पत्तों, फूलों या फलों का समूह । जैसे,—अंगूर का गुच्छा, फूलों का गुच्छा । २. एक में लगी, गुंथी या बंधी छोटी वस्तुओं का समूह । जैसे,—घुघुरधों का गुच्छा, कुंजियों का गुच्छा । ३. फुलरा । फुंदना । फुन्वा ।

गुच्छातारा—संज्ञा पुं० [हि० गुच्छा + तारा] कचपचिया नाम का तारा ।

गुच्छाद्ध, गुच्छार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] चौबीस लड़ी का हार । (किसी किसी के मत से) सोलह लड़ी का हार ।

गुच्छो—संज्ञा स्त्री० [सं० गुच्छ] १. करंज । कंजा । २. रोठा । ३. एक प्रकार का पौधा ।

विशेष—यह पंजाब के ठंडे स्थानों में तथा कश्मीर में होता है । इसके फूलों या बीजकोश के गुच्छों की तरकारी बनती है और वे सुखाकर बाहर भेजे जाते हैं ।

गुच्छेदार—वि० [हि० गुच्छा + फ्रा० दार (प्रत्य०)] जिसमें गुच्छा हो ।

गुज—संज्ञा पुं० [दे०] बाँस की एक कील जो तीली और परे के मोड़ के छेदों में लगाई जाती है । (रेणम खोलनेवाले) ।

गुजर—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुजर] १. निकास । गति । जैसे,—उस रास्ते से गुजर मुशकिल है । २. पैठ । पहुँच । प्रवेश । जैसे,—वहाँ फरिश्तों तक का तो गुजर नहीं आदमी की कील चलावे । ३. निर्वाह । कालक्षेप । जैसे,—इतने वेतन में कैसे गुजर हो सकती है ।

यौ०—गुजर बसर । गुजरबान । गुजरगाह ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

गुजरगाह—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गुजर + गाह (स्थान)] १. रास्ता । बाट । २. घाट जहाँ से कोई नदी पार की जाय ।

गुजरना—क्रि० प्र० [फ्रा० गुजर + हि० ना (प्रत्य०)] १. समय व्यतीत करना । होना । कटना । बीतना । जैसे,—रात तो जैसे जैसे गुजरी पर दिन कैसे कटेगा ।

मुहा०—किसी पर गुजरना = किसी पर (संकट या विपत्ति) पड़ना । जैसे,—हमपर जो गुजरी, हमीं जानते हैं ।

२. किसी से होकर आना या जाना । जैसे,—बड़े लाट साहेब थिमला से कसकता आते समय बनारस से गुजरेंगे ।

मुहा०—गुजर जाना = मर जाना । जैसे,—कई दिन हुए वे गुजर गए ।

३. नदी पार करना । ४. निर्वाह होना । पटना । निपटना । बनना । निभना । जैसे,—तुम चिंता न करो, उन दोनों की खूब गुजरेगी । ५. (दर्शास्त आदि का) पेश होना । ६. मन में आना । विचार में आना ।

गुजरनामा—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुजरनामह] किसी मार्ग से जाने का अधिकारपत्र । राहदारी का परवाना । पारपत्र ।

गुजर बसर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] निर्वाह । गुजारा । कालक्षेप ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—गुजर बसर करना = किसी प्रकार समय व्यतीत करना ।

गुजर बसर होना = किसी प्रकार समय व्यतीत होना ।

गुजरबान—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. मल्लाह । पार उतारनेवाला । २. वह व्यक्ति जो घाट की उतराई वसूल करता हो ।

गुजरात—संज्ञा पुं० [सं० गुर्जर + राष्ट्र] [वि० गुजराती] भारत-वर्ष के पश्चिम प्रांत का एक देश जो राजपूताने के आगे पड़ता है ।

गुजराती^१—वि० [हि० गुजराती] १. गुजरात देश का । गुजरात का निवासी या रहनेवाला । गुजरात देश संबंधी । गुजरात देश में उत्पन्न । जैसे,—गुजराती इलायची । २. गुजरात का बना हुआ । जैसे,—गुजराती सेंदुर ।

गुजराती^२—संज्ञा स्त्री० १. गुजरात देश की भाषा । ३. छोटी इलायची । जैसे, गुजराती इलायची ।

गुजराती^३—संज्ञा पुं० गुजरात का निवासी । गुजरात में रहनेवाला ।

गुजरान—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुजरान] निर्वाह । गुजर । कालक्षेप । उ०—केवल कंदमूल पर अपनी गुजरान करना ।—भारतेंदु प्र०, भा० ३, पृ० ३८० ।

गुजरानना^५—क्रि० स० [हि० गुजारना] १. उपस्थित या पेश करना । २. बिताना । व्यतीत करना ।

गुजरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० गुजरी] १. गुजर जाति की स्त्री । ग्वालिन । गोपी । २. † धोबियों के नृत्य में स्त्री के रूप में नाचनेवाला । उ०—लो छन छन, छन छन, छन छन, छन छन नाच गुजरिया हरती मन ।—आग्या०, पृ० ३१ ।

गुजरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गुजर] १. कलाई में पहनने की एक प्रकार की पहुँची ।

विशेष—इसके गोल दानों की कोर पर छोटी बाँदियाँ रहती हैं । मारवाड़िने इसे बहुत पहनती है ।

२. दीपक राग की एक रागिनी ।

विशेष—कोई कोई इसे मेघ राग की रागिनी मानते हैं ।

३. वह भेड़ जिसके कान न हों या कटे हुए हों । बूची ।

गुजरी^५—संज्ञा स्त्री० [हि० गुजरी] दे० 'गुजरी' । उ०—'गुजरी एक बुदावन माँही । तिन पुनि कथा सुनी एक ठाहीं ।—घट०, पृ० २२६ ।

गुजरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गुजरना] शाम को सड़क या मार्ग के किनारे लगनेवाला बाजार ।

गुब्बरेडा—संज्ञा पुं० [हि० गुब्बर] १. गुब्बर का पुत्र । गुब्बर लड़का ।
२. गुब्बर जाति का व्यक्ति ।

गुब्बरेडी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुब्बर] १. गुब्बर जाति की कन्या ।
गुब्बर की बेटी । २. गुब्बरी । ग्वानिन ।

गुब्बरेडा—वि० [फ्रा० गुब्बरह] बीता हुआ । गत । व्यतीत । भूत
(काल) । जैसे, गुब्बरेडा हान ।

गुब्बाना—क्रि० ग० [हि० गुब्बाना] दे० 'गुब्बाना' । उ०—नर वीर
दिवादिब देवम पुष्पक प्रथम गुब्बाना पुष्पक करे ।—पृ० रा०,
१३।१३१ ।

गुब्बार—वि० [फ्रा० गुब्बार] गुब्बारनेवाला । करनेवाला । जैसे, गुब्बर-
गुब्बार, मालगुब्बार ।

विशेष—इसका प्रयोग समस्त पद में ही अत में मिलता है ।

गुब्बारना—क्रि० ग० [फ्रा० गुब्बार+हि० ना (प्रत्यय)] १.
बिताना । काटना । २. उपस्थित या पेश करना (की०) । ३.
(कष्ट में) डालना ।

गुब्बाना—नमाज गुब्बारना = ईश्वर की प्रार्थना करना । घरजो
गुब्बारना = किसी बड़े हाकिम के दरबार में प्रार्थनापत्र
पेश करना ।

गुब्बारा—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुब्बारा] १. गुब्बारा । गुब्बारा । निर्वाह ।
२. वृत्ति जो किसी का जीवननिर्वाह के लिये दी जाय । ३.
नाव या घाट की उत्तगई । ४. महगूल लेने का स्थान जो
सड़क पर हो । ५. मार्ग । ६. घाट ।

गुब्बारिश—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गुब्बारिश] निवेदन ।

गुब्बारिशानामा—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुब्बारिशानाम] प्रार्थनापत्र ।
निवेदनपत्र ।

गुब्बारेदार—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुब्बारे+दार] जीवननिर्वाह के लिये
वृत्ति पानेवाला व्यक्ति ।

गुब्बी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गुब्बी] नाक का मल जो सूखकर नयनों के
भीतर ही जम जाता है । नकली ।

गुब्बुवा—संज्ञा पुं० [हि० गुब्बुवा] १. गुब्बुवा । गुब्बुवा । एक प्रकार का काला
फोड़ा या गुब्बरेला जो वर्तमान में पैदा होता है । यह गोबर के
नीचे बिल बनाकर रहता है ।

गुब्बु—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुब्बु] १. 'गुब्बर' । उ०—बुल्लो बर गामिय
गुब्बु गवार । कहे गुरतानप मेन उवार ।—पृ० रा०,
१२।१३६ ।

गुब्बरी—संज्ञा पुं० [हि० गुब्बर] दे० 'गुब्बर' ।

गुब्बरी—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. गुब्बरी । २. एक रागिनी जो भेरव राग
की स्त्री है ।

विशेष—किसी किसी का मत है कि यह भय राग की स्त्री है ।

गुब्बु—वि० [हि० गुब्बु] दे० 'गुब्बु' । उ०—महरम दिलजानी
भंडरा गुब्बु गला दी गुब्बु सोलम ।—घनानंद, पृ० ५४८ ।

गुब्बुना—क्रि० प्र० [फ्रा० गुब्बुना] छिपना ।

गुब्बु—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुब्बु] १. गोभा नाम की बांस की कोल ।
दे० 'गोब्बु' । २. एक प्रकार की कंटीली घास । गोब्बु । ३.
गूदा । रेसेदार गूदा ।

गुब्बु—वि० छिपा हुआ । अप्रकट । गुप्त । भीतरी । (पश्चिम) ।

गुब्बुना—क्रि० प्र० [फ्रा० गुब्बुना] छिपाना । गुप्त करना ।

गुब्बुनी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गुब्बुनी+हि० बान] १. गुप्त बात । छिपी
हुई बात । रहस्यमय बात ।

गुब्बुरोट—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुब्बुरोट] १. कपड़े की मिश्रित शिकन । सिलवट ।
उ०—कर उठाय धूँध करति, उत्तमन पट गुब्बुरोट । सुख
मोटे नूटी नलन लखि नलना की लोट ।—विहारी (शब्द०) ।
२. स्त्रियों की नाभि के पाम का भाग जहाँ बिल्ली या पेटी
रहती है ।

गुब्बुरोट—संज्ञा पुं० [हि० गुब्बुरोट] दे० 'गुब्बुरोट' ।

गुब्बुरोट—संज्ञा पुं० [हि० गुब्बुरोट] दे० 'गुब्बुरोट' ।

गुब्बुरिया—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गुब्बुरिया] १. एक प्रकार
का पकवान । कुमली । पिराक ।

विशेष—मैदे की छोटी लोई में मीठा, मसाला आदि पूर भरकर
उसे दोहर देते हैं और फिर उसकी धनुषाकार ओठ या किनारे
को मोड़ मोड़कर बंद कर देते हैं । अतः इसी बंद लोई को
घी में छान लेते हैं ।

२. पौष्ट की एक मिठाई ।

विशेष—यह ऊपर लिय पकवान के आकार की होती है और
इसके भीतर थोड़ा मिर्ची घबघा इलायची और मिर्च
रहती है ।

गुब्बु—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गुब्बु] गुप्त । छिपी हुई । उ०—साईं मिका
मउकेला, गुब्बु गालि गुब्बु ।—दादू, पृ० ५४४ ।

गुब्बु—संज्ञा पुं० [हि० गुब्बु] दे० 'गुब्बु' ।

गुट—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुट] सपूट । १. किसी विशेष अभिप्राय से
बनाया हुआ दल । २. दे० 'गुट' ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—बाधना ।

चौ०—गुटबंदी । गुटबाज । गुटबाजी ।

गुट—संज्ञा पुं० [अनु०] क्यूतरी के बोलन का स्वर जो० ।

गुटकना—क्रि० प्र० [अनु०] क्यूतरी की तरह गुटरगू करना ।

गुटकना—क्रि० प्र० [हि० गुटकना] १. निगलना । खा जाना ।

गुटका—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुटका] १. दे० 'गुटिका' । २. छोटा आकार
की पुस्तक । ३. लट्टू । ४. गुपचुप मिठाई । ५. एक प्रकार का
मसाला ।

विशेष—यह जावित्री, पिस्ता, कृत्था, लोण, इलायची, सुपागी
इत्यादि मिलाकर बनाया जाता है और कहीं कहीं पान के
स्थान पर खाया जाता है ।

गुटकाना—क्रि० प्र० [अनु०] १. (तबला आदि) बजाना । २. गुट
गुट की ध्वनि करना ।

गुटकी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० गुटकी] दे० 'गुटिका' ।

गुटनिरपेक्ष—वि० [हि० गुट+अ० निरपेक्ष] वह व्यक्ति या राष्ट्र
जो किसी गुट विशेष में न हो ।

पर्या०—तटस्थ ।

गुटबंदी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुट+फ्रा० बंदी] १. कुछ लोगों का

घापस में मिलकर छोटा सा बल बनाना । २. किसी संस्था में विरोध या स्वार्थ के आधार पर कुछ लोगों का गुट बनना ।

गुटबैंगन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार कंटीला पोधा ।

गुटरगूँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] कूतरों की बोली ।

गुटिका—संज्ञा स्त्री० [म०] १. बटिका । बटी । गोली । २. एक सिद्धि । उ०—घंजन, गुटिका, पादुका धातुभेद, बैताल, वज्र रसायन जोगिनी, मोहि सिद्धयहि कान्य ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

विशेष—इसके अनुसार एक गोली या गुटका मुँह में रख लेने से कहते हैं कि जहाँ चाहे वहाँ चले जायें और कोई बेल नहीं सकता ।

गुटी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोटी] दे० 'गोट' ।

गुट्ट—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ = समूह, प्रा. गोठ] झुंड । दल । यूथ । जैसे,—उन लोगों का गुट्ट ही मलग है ।

मुहा०—गुट्ट करना = मिल जुलकर सलाह करना । गुट्ट बनाना गुट्ट बाँधना = झुंड इकट्ठा करना । जैसे,—डाकू गुट्ट बाँधकर चलते हैं ।

गुट्टा^१—संज्ञा पुं० [हि० गोटी] लाल की बनी हुई चोकोर गोटी जिनसे लड़कियाँ खेला करती हैं ।

गुट्टा^२—वि० [देश०] नाटा । ठिगना ।

गुट्टल^१—वि० [हि० गुठली] १. (फल) जिसमें बड़ी गुठली हो । २. जड़ । मूख । कूठ मगज । ३. गुठली के आकार का ।

गुट्टल^२—संज्ञा पुं० १. किसी वस्तु के इकट्ठा होकर जमने से बनी हुई गाँठ । गुलथी । जैसे,—न जाने यह रजाई कैसे भरी गई है कि जगह जगह गुट्टल पड़ गए हैं ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

२. गिलटी ।

गुट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि, हि० गाँठ] १. कोई मोटी गोल या लंबोतरी गाँठ । २. दे० 'बल्ब' ।

गुठला^१—संज्ञा पुं० [हि० गुठली] १. मोटी और बड़ी गुठली । २. गुठली के आकार प्रकार की कोई कड़ी चीज ।

गुठला^२—संज्ञा पुं० [सं० स्थल अङ्ग प्रा० अंगुठल] अँगूठे में पहनने का एक प्रकार का आभूषण ।

गुठला^३—वि० [सं० कुण्ठ] कुण्ठित । मोथरा ।

गुठलाना^१—क्रि० प्र० [हि० गुठली] १. गुठली की तरह कड़ा और गोल होना ।

गुठलाना—क्रि० प्र० [सं० कुण्ठ] चाकू या अस्त्र शस्त्र की धार का कुण्ठित भयवा मोथरा होना ।

गुठली—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थिल, गुटिका] १. किसी फल का बड़ा और कड़ा बीज । ऐसे फल का बीज जिसमें केवल एक ही बड़ा बीज होता हो । जैसे,—आम की गुठली । बेर की गुठली । २. गिलटी ।

गुठाना^२—वि० [सं० कुण्ठ] कुण्ठित । मंद ।

गुड्ढाव—संज्ञा पुं० [हि० गुड + अंब, आम] १. कच्चा आम जो उबालकर पीरे में डाला गया हो । २. गुड या चीनी में कच्चे आम को डालकर पकाया हुआ एक पदार्थ ।

गुड—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुड़ । २. गेंद । कुंदुक । ३. घास । कोर । ४. हाथी का कबच । ५. कपास का पेड़ । ६. गोली [को०] ।

गुड—संज्ञा पुं० [सं०] कड़ाह में गाढ़ा पकाकर जमाया हुआ ऊल का रस जो कतरे, बट्टी या गेंदी के रूप में होता है ।

विशेष—खजूर के फलों के रस का भी गुड बनता है ।

यौ०—गुड भरा हँसिया = प्रसमंजस का काम जिसे न तो करते बने और न तो छोड़ते ही । ऐसा काम जिसे करने से भी जी हिचकता है और छोड़ने को भी जी नहीं चाहता । गूँगे का गुड = दे० 'गूंगा' का मुहा० ।

मुहा०—कुहिया में गुड फूटना = (१) गुम रीति से कोई कार्य होना । छिपे छिपे कोई सलाह होना । (२) गुम रीति से कोई पाप होना । गुड गोबर करना = बिगाड़ना । खराब करना । गुड गोबर होना = बिगड़ जाना । खराब हो जाना । जो गुड खाएगा सो कान छेदावेगा = जो कुछ धन लेगा उसे कष्ट भी उठाना होगा ।

विशेष—लड़कों का कान छेदते समय प्रायः रीति है कि लड़कों के हाथ में कुछ मिठाई दे देते हैं जिससे वे उसी में भूले रहें और भट से कान छेद दिए जायें ।

गुड लाएगी अंधेरे में घाएगी = जो कुछ लाभ उठावेगा उसे समय पर काम देना ही पड़ेगा । गुड दिलाकर ठेला मारना = कुछ लालच देकर फिर ऐसा बरताव करना जिससे कुछ प्राप्त न हो, उलटा कष्ट उठाना पड़े । गुड बिए मरे तो जहर क्यों है = जब कोमल व्यवहार से काम निकले तो कड़ाई करने की क्या आवश्यकता । जब सीधे से काम चले तब कोई उप्र उपाय क्यों करे । गुड खाना गुलगुली से घिनाना या परहेज करना कोई बड़ी बुराई करना और छोटी बुराई से बचना । किसी कार्य का बड़ा अंश करना और छोटे से दूर रहना । गुड होगा तो मक्खियाँ बहुत आ जाएँगी = पास में धन होगा तो खाने-वाले बहुत आ जायेंगे । जब गुड गजन सहे तब मिसरी नाम धराए = कष्ट पाने के बाद ही आश्वोदय होता है । उ०—'मरे भाई ! यह सब महतमा जी का परताप है । कौन सह सकता है ? जब गुड गंजन सहे तो मिसरी नाम धराए ।—मैला०, पृ० ३१ ।

गुडईचनिंग—संज्ञा स्त्री० [प्र०] संध्या के समय का अंगरेजी अभिवादन का वचन जो किसी से मिलने के समय कहा जाता है और जिसका अभिप्राय है यह संध्या आपके लिये शुभ हो ।

गुडक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोल पदार्थ । २. घास । कोर । ३. गुड में पकाकर बनाई गई दवा (को०) ।

गुडकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी । गुजरी [को०] ।

गुडगुड—संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द जो जल में नली आदि के द्वारा वेगपूर्वक वायु के घुसने और बुलबुला छूटने से होता है, वैसा इसके में ।

गुडगुडाना^१—क्रि० प्र० [अनु०] गुडगुड शब्द होना । जैसे,—आज तो पेट गुडगुडा रहा है ।

विरोध—जल के भीतर बेग से नली प्वादि के द्वारा वायु के बसने से ऐसा शब्द होता है।

गुड़गुड़ाना^२—क्रि० सं० [अनु०] हुक्का पीना। हुक्का या फर्शी को मुँह से लगाकर इस प्रकार खींचना कि उसमें से गुड़गुड़ शब्द निकले। जैसे,—तुम तो जब देखो तब हुक्का गुड़गुड़ाया करते हो।

गुड़गुड़ाना^३—क्रि० सं० [.] गुड़ना का सकर्मक रूप।

गुड़गुड़ायन—संज्ञा पुं० [सं०] खोपी से होनेवाली कठ की ध्वनि [को०]।

गुड़गुड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० गुड़गुड़ाना+हट (प्र०)] गुड़गुड़ शब्द होने का भाव।

गुड़गुड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुड़गुड़ाना] फर्शी। एक प्रकार का हुक्का। पंचवान।

गुड़च—संज्ञा स्त्री० [सं० गुड़ची] १० 'गुड़च'।

गुड़ची—संज्ञा स्त्री० [सं० गुड़ची] १० 'गुड़च'।

गुड़चूण—संज्ञा पुं० [सं० गुड़चूण] ईश्वर।

गुड़त्वच्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारचीनी [को०]।

गुड़त्वचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १० 'गुड़त्वच्'।

गुड़वारु—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर [को०]।

गुड़धनियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० गुड़+धान] लड्डू जो भुने हुए गेहूँ को गुड़ में पागकर बांधे जाते हैं।

विशेष—ऐस लड्डू प्रायः महावीर या गणेश को चढ़ाए जाते हैं।

गुड़धानी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुड़+धान] १० 'गुड़धनिया'।

गुड़बेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान में देने के लिये बनाई हुई गुड़ की गाय [को०]।

गुड़ना^४—क्रि० सं० [सं०] चलना। जाना। उ०—अम्मी गहम लखी गुड़्या।—बी० रागी, पृ० १०५।

गुड़ना—क्रि० सं० [सं०] डके की दस्त तरङ्ग फेंकना कि वह अपने सिरों के बल पलटा खाता हुआ दूर तक चला जाय।

विशेष—लडके एक प्रकार का खेल खेलते हैं जिसमें इस प्रकार का डडा फेंकते हैं।

गुड़नाइट—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंध्या या रात के समय किसी से बिदा होने पर कहा जानेवाला एक अंगरेजी अभिवादन वचन जिसका अभिप्राय है—'यह रात आपके लिय शुभ हो।

गुड़पाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुड़ की चाशनी में डालकर ओषधि बनाने की एक प्रक्रिया। २. इस प्रकार की बनी हुई ओषधि।

गुड़पिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] भाट और गुड़ के योग में पागकर बनाई हुई मिठाई [को०]।

गुड़पुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] महुवा [को०]।

गुड़फल—संज्ञा पुं० [सं०] पीलु वृक्ष [को०]।

गुड़वाई—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी से बिदा होने के समय कहा जानेवाला अंगरेजी अभिवादन वचन जिसका वास्तविक अभिप्राय

है—ईश्वर तुम्हारे साथ रहे या तुम्हारा रक्षक हो। यह अभिवादन किसी समय किया जा सकता है।

गुड़मार्निग—संज्ञा पुं० [सं०] प्रातःकाल किसी से मिलने या बिदा होने के समय कहा जानेवाला एक अभिवादन वचन।

गुड़रू—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया जिसे गड़री भी कहते हैं।—उ०—घरे परेवा पड़कू हेरी। खेहा गुड़रू और बगेरी।—जायसी (शब्द०)।

गुड़शर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चीनी [को०]।

गुड़भृंग—संज्ञा पुं० [सं० गुड़भृङ्ग] कलश। गुंबद [को०]।

गुड़भृंगिका—संज्ञा स्त्री० [सं० गुड़भृङ्गिका] गेंद फेंकने का एक आला या झोला [को०]।

गुड़हर—संज्ञा पुं० [हि० गुड़+हर] १. अड़हूत का पेड़ या फूल। जवा।

विशेष—पुराना विश्वास है कि गुड़हर का फूल यदि घर में रखा जाता है तो लड़ाई होती है।

२. एक छोटा वृक्ष।

विशेष—इसकी पत्तियाँ और इसके फूल अरहर के से होते हैं। इसकी दो तीन पत्तियाँ अबाकर यदि गुड़ लाया जाय तो गुड़ का स्वाद ही नहीं जान पड़ता।

गुड़हरीतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़ की चाशनी में हुबाकर रखी गई हर [को०]।

गुड़हल—संज्ञा पुं० [हि० गुड़हर] १० 'गुड़हर'।

गुड़हुर—संज्ञा पुं० [हि० गुड़हर] १० 'गुड़हर' उ०—भले पक्षारे पाहुने हैं गुड़हुर की फूल। (शब्द०)।

गुड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दाख। उ०—गुड़ा. प्रयाता, गोस्तनी, चाहफला पुनि सोह।—नंद० प्र०, पृ० १०४। २. कपास का पेड़ [को०]। ३. गोभी [को०]।

गुड़ाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तंदा। आलस्य। २. नींद [को०]।

गुड़ाकू—संज्ञा पुं० [हि० गुड़] गुड़ मिला हुआ पीने का तमाकू।

गुड़ाकेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। महादेव। २. अर्जुन।

गुड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटी गेंद। २. गोली। बटिका [को०]।

गुड़िया—संज्ञा स्त्री० [हि० गुड़ या गुड़डा] कपड़ों की बनी हुई पुतली जिससे लड़कियाँ खेलती हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।

यौ०—गुड़ियों का ब्याह = (१) लड़कियों का खेल जिसमें वे गुड़ों और गुड़िया की भाँदी करती हैं। (२) गरीब आदमी का ब्याह जिसमें बहुत धूमधाम नहीं होती।

मूहा०—गुड़िया सो—छोटी और सुंदर। रूपवती। गुड़िया खंवारना = वित्त के अनुसार लड़की का ब्याह करना। गुड़ियों का खेल = सहज काम।

गुड़िया—संज्ञा पुं० [हि० गुड़िया] १. बड़ी गुड़िया। २. किसी की बनी हुई भाँति। मृति। पुतला।

गुड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गुड़डी] पतंग। चंग। कनकीवा। गुड़ी। उ०—गुड़ी उड़ी लखि लाल की अँगना अँगना माहि। बीरी लो दोरी फिरे छुवत छबीली छाहि।—बिहारी (शब्द०)।

गुड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गुडिका] १. गीठ । गोली । २. कपट की गीस । मनमोटाव । कीना । द्वेष । ३. ऐठन ।

गुड़ीला^१—वि० [हि० गुड + ईला (प्रत्य०)] १. गुड का सां भीठा । २. उत्तम । बढ़िया ।

गुडूच^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गुडूची] दे० 'गुरुच' ।

गुडूची—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुरुच । गुर्च [कौ०] ।

गुडूरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० कुरुरल] १. द्वार में लगा हुआ लकड़ी का टुकड़ा । ठेहरी । बूल ।

विशेष—यह नीचे दीवार में बँसा रहता है और इसपर किवाड़ के धूमने के लिये गड्ढा बना रहता है ।

२. मडलाकार रेखा । ३. छोटा गड्ढा या बिल ।

गुडूबा^१—संज्ञा पुं० [सं० गुड = खेलने की गोली] कपड़े का बना हुआ पुतला ।

गुडूची—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुरुच । गिलोय ।

गुडेर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोलाकृति । २. गेंद । कंदुक । ३. घास । कौर [कौ०] ।

गुडेरक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोलाकृति । २. गेंद । कंदुक । ३. घास । कौर [कौ०] ।

गुड्डा^१—संज्ञा पुं० [सं० गुड = खेलने की गोली] गुडवा । कपड़े का बना हुआ पुतला जिसे लड़कियाँ खेलती हैं ।

मुहा०—गुड्डा बाँधना = अपकीर्ति करते फिरना । निंदा करना ।

विशेष—भाट लोग जब अपने किसी जजमान से इच्छानुसार धन नहीं पाते तब एक लंबे बाँस में एक पुतला बाँधकर लटकते हैं और उस पुतले को वही सूँभ जजमान मानकर उसकी निंदा करते फिरते हैं । इसी को गुड्डा बाँधना कहते हैं । भवष में इसे 'पुतला बाँधना' बोलते हैं जैसे गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है, अब तुलसी पूतरा बाँधि है सहि न जात मोसों परिहास ऐसे ।

गुड्डा^२—संज्ञा पुं० [हि० गुड्डी] बड़ी पतंग ।

गुड्डी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गुड + उड्डीन] पतंग । कनकौवा । चंग ।
उ०—हम दामी बिन मोल की ऊँधो ज्यों गुड्डी बस डोग ।—
सूर (शब्द०) ।

गुड्डी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० गुटिका] १. घुटने की हड्डी ।

यौ०—हड्डी गुड्डी । जैसे,—ऐसी मार मारूँगा कि हड्डी गुड्डी न बचेगी ।

मुहा०—हड्डी गुड्डी सोझना = बहुत अधिक भारना पीटना ।

२. एक प्रकार का छोटा हुक्का । ३. चिड़ियों के डेनों या परों की वह स्थिति जो उड़ने के कुछ पहले होती है । कुंदा ।

गुड्डू^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गुड्डू] दे० 'गुड्डू' ।

गुड्डू^२—संज्ञा पुं० [हि० गुड्डू] एक छोटा कीड़ा ।

विशेष—यह मूल में घर बनाकर रहता है । इसका घर भँवर के आकार का होता है । बहुधा लड़के बीटी पकड़कर उसमें डालते हैं जिसे वह कीड़ा खा जाता है ।

गुड^१—संज्ञा पुं० [सं० गूढ] छिपकर रहने का स्थान । बचकर रहने की जगह ।

गुदना^१—क्रि० प्र० [सं० गूढ] छाड़ में होना । छिपना । लुप्त होना ।
उ०—लखि दारत पिय कर कटकु वास छुड़ावन काज ।
बरनिल बन गाढ़े दगनु रही गुदी करि लाज ।—बिहारी (शब्द०) ।

गुण^१—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गुणी] १. किसी वस्तु में पाई जानेवाली वह बात जिसके द्वारा वह दूसरी वस्तु से पहचानी जाय । वह भाव जो किसी वस्तु के साथ लगा हुआ हो । धर्म । सिफत ।

विशेष—सांख्यकार तीन गुण मानते हैं । सत्त्व, रज और तम; और इन्हीं की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं जिससे सृष्टि का विकास होता है । सत्त्वगुण हलका और प्रकाश करनेवाला, रजोगुण चंचल और प्रभृत करनेवाला और तमोगुण भारी और रोकनेवाला माना गया है । तीनों गुणों का स्वभाव है कि वे एक दूसरे के आश्रय से रहते तथा एक दूसरे को उत्पन्न करते हैं । इससे सिद्ध होता है कि सांख्य में गुण भी एक प्रकार का द्रव्य ही है जिसके अनेक धर्म हैं और जिससे सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं । विज्ञानभिक्षु का मत है कि जिससे आत्मा के बंधन के लिये महत्त्व आदि रज्जु तैयार होती है उसी को सांख्यकार ने गुण कहा है । वैशेषिक गुण को द्रव्य का आश्रित मानता है और उमने उसकी परिभाषा इस प्रकार की है—जो द्रव्य में रहनेवाला हो, जिसमें कोई गुण न हो, जो संयोग विभाग का कारण न हो वह गुण है । रूप, रस, गंध, स्पर्श, परत्व, अपरत्व, गुणत्व, द्रवत्व, स्नेह और वेग ये मूल द्रव्यों के गुण हैं । बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना और शब्द ये अमूर्त द्रव्यों के गुण हैं । संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग ये मूल और अमूर्त दोनों के गुण हैं । गुण दो प्रकार के माने गए हैं, विशेष और सामान्य । रूप, रस, गंध, स्पर्श, स्नेह, सांख्यिक द्रवत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना और शब्द ये विशेष गुण हैं, अर्थात् इनके द्रव्यों में भेद जाना जाता है । संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुणत्व, नैमित्तिक द्रवत्व और वेग ये सामान्य गुण हैं । द्रव्य स्वयं आश्रय हो सकता है पर गुण स्वयं आश्रय नहीं हो सकता । कर्म संयोग विभाग का कारण होता है, गुण नहीं ।

२. निपुणता । प्रवीणता । ३. कोई कला या विद्या । हुनर ।

यौ०—गुणग्राहक । गुणग्राही ।

क्रि० प्र०—आना ।—जानना ।—सिखाना ।—सोखना ।

४. असर । तासीर । प्रभाव । फल । जैसे,—यह दवा अवश्य ही अपना गुण दिखावेगी ।

क्रि० प्र०—करना ।—दिखाना ।

५. तारीफ की बात । अज्झा स्वभाव । शील । सद्वृत्ति । जैसे,—यही तो उनमें बड़ा भारी गुण है कि वे क्रोध नहीं करते ।

बी०—गुणगाथा । उ०—प्रानपियारे की गुणगाथा साधु कहीं तक मैं गाऊँ :-**श्रीधर (शब्द०) ।**

मुहा०—गुण गाना = प्रशंसा करना तारीफ करना । गुण मानना = एहसान मानना । निहोरा मानना । कृतज्ञ होना ।

१. विशेषता । स्वभाव । लक्षण । खासियत । प्रवृत्ति । जैमे,— अपने इन्हीं गुणों से तो तुम मार लाने हो । ७. तीन की संख्या । ८. राजनीति में परराष्ट्र के साथ व्यवहार के छह ढंग सचि, विषह, धान, धासन, द्वेष और धाश्रय । ९. प्रकृति (छांदोग्य) । १०. व्याकरण में 'अ', 'ए' और 'ओ' को गुण कहते हैं । ११. रम्मी या तागा । डोरा । मूत । १२. वनुष की प्रत्यंघा । १३. वह रम्मी जिगमे मन्साह नाव खींचने है । १४. लाभ । फायदा (को०) । १५. स्नायु (को०) । १६. ज्ञानेन्द्रिय का विषय (को०) । १७. वत्ती (को०) । १८. पाचक (को०) । १९. मूद (को०) । २०. भीम (को०) । २१. परित्याग (को०) । २२. विभाग (को०) । २३. काव्य को सोदर्य प्रदान करनेवाला मन्त्र, (ओज प्रमाद, माधुर्य) (को०) ।

गुण^२—प्रत्य० एक प्रत्यय जो संख्यावाचक शब्दों के भाग सगता है और उतनी ही बार किसी विशेष संख्या, मात्रा या परिमाण को सूचित करता है । जैसे,—द्विगुण, त्रिगुण ।

गुणक—संज्ञा पुं० [गं०] १. वह अंक जिससे किसी अंक को गुणा करे । २. माली (को०) ।

गुणकथन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुणगान । प्रशंसा । २. नाटक में नायिका को एक दशाविशेष (को०) ।

गुणकर—वि० [गं०] फायदेमंद । लाभदायक ।

गुणकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी ।

विशेष—यह किसी के मत से भेरव राग की और किसी के मत से हिंदोल राग की भायां मानी जाती है । हनुमत् के मत से इसका स्वरराम दम प्रकार है—ग नि सा रा म प नि । अथवा—सा ग म प नि या । इसके गाने का समय सवेरे १ बजे से ५ बजे तक है ।

गुणकर्म—संज्ञा पुं० [सं० गुणकर्मन्] '३०' 'कर्म' ।

गुणकली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी । '३०' 'गुणकरी' । उ०— सति गायत्री महलादिनी महलादिनी वर रागिनी । गुणकली रासकली भस्मी सुरकली मरम सृहागिनी ।—रघुराज (शब्द०) ।

गुणकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. संगीत विद्या का पूर्ण ज्ञान । २. पाककर्ता । रसोदय । बाबर्ची । पाचक । ३. पाकशास्त्र का ज्ञाता । ४. भीमसेन (पांडव) ।

गुणकारक—वि० [सं०] फायदा करनेवाला । लाभदायक ।

गुणकारी—वि० [सं० गुणकारिन्] [वि० स्त्री० गुणकारिणी] लाभदायक । फायदेमंद ।

विशेष भीषण के लिये अधिक प्रयात है ।

गुणकीर्तन—संज्ञा पुं० [गं०] गुणगान । प्रशंसा (को०) ।

गुणगाथा—संज्ञा स्त्री० [गं०] प्रशंसा । बतर्ही ।

गुणगान—संज्ञा पुं० [सं०] गुणवर्णन । प्रशंसाकथन (को०) ।

गुणगौरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गौरी के समान गुणवाली कोई सौभाग्यवती स्त्री । पतिव्रता स्त्री । सोहागिन स्त्री । २. स्त्रियों का एक व्रत । उ०—द्योस गुणगौरि के सु गिरिजा गोमाइन को आवत यहाँ की प्रति भानंद इतरे रहे ।—पद्याकर (शब्द०) ।

विशेष—यह चैन में चौथ के दिन किया जाता है । सौभाग्यवती स्त्रियाँ इस दिन व्रत करती हैं ।

गुणग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] (किमी का) गुण या महत्व समझना । गुण का आदर करना ।

गुणग्राम^१—संज्ञा पुं० [सं०] गुणों का समूह ।

गुणग्राम^२—वि० गुणकर । गुणनिधान ।

गुणग्राहक^१—संज्ञा पुं० [सं०] गुण की खोज करनेवाला मनुष्य । गुणियों का आदर करनेवाला मनुष्य । कदरदान ।

गुणग्राहक^२—वि० गुण की खोज करनेवाला । गुणियों का आदर करनेवाला ।

गुणग्राही—वि० [गं० गुणग्राहिन्] [वि० स्त्री० गुणग्राहिनी] गुण की खोज करनेवाला । गुणियों का आदर करनेवाला ।

गुणधानी—संज्ञा पुं० [गं० गुणधातन्] द्वेयी । ईर्ष्यालु (को०) ।

गुणज्ञ—वि० [सं०] १. गुण का जाननेवाला । गुण को पहचाननेवाला । गुण का गारखी २. गुणी ।

गुणज्ञता—संज्ञा स्त्री० [गं०] गुण की जानकारी । गुण की परख । गुण की पहिचान ।

गुणतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० गुणतन्त्र] गुणों के आधार पर विचार (को०) ।

गुणत्रय, गुणत्रितय—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकृति के तीन गुण—सत्त्व, रज और तम (को०) ।

गुणधर्म—संज्ञा सं० [गं०] गुण विशेष की प्राप्ति के लिये धर्म या कर्तव्य (को०) ।

गुणन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गुण्य, गुणनीय, गुणित] गुणा । जरब ।

गुणनफल—संज्ञा पुं० [गं०] वह अंक या संख्या जो एक अंक को दूसरे अंक के साथ गुणा करने से आवे ।

गुणना—पुं० क्रि० गं० [गं० गुणन] जरब देना । गुणन करना ।

गुणनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक में वह अनुष्ठान जो नट लोग अभिनय आरंभ करने से पहले ग्रहों की शांति के लिये करते हैं । पूर्वरेण ।

गुणनिधान—वि० [सं०] गुणागार । गुणी (को०) ।

गुणनिधि—वि० [गं०] गुणागार । गुणी (को०) ।

गुणनीय—वि० [सं०] गुणा करने योग्य ।

गुणभोक्ता—संज्ञा पुं० [सं० गुणभोक्तृ] पदार्थों के गुणों को समझनेवाला (को०) ।

गुणराग—संज्ञा पुं० [गं०] दूसरों के गुणों पर भ्रान्तित होनेवाला (को०) ।

गुणराशि^१—वि० [गं०] गुणनिधि । गुणसमूह (को०) ।

गुणराशि^२—संज्ञा पुं० शिव (को०) ।

गुणलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] आंतरिक गुण का परिचायक चिह्न संकेत [को०] ।

गुणलयनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लेखा । तबू [को०] ।

गुणलयनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लेखा । तबू [को०] ।

गुणवत्—वि० [सं० गुणवत्] [वि० स्त्री० गुणवती] जिसमें गुण हो । गुणी ।

गुणवचन—संज्ञा पुं० [सं०] गुण का परिचायक शब्द । विशेषण [को०] ।

गुणवती—वि० स्त्री [सं०] गुणवाली । जिसमें कुछ गुण हो ।

गुणवाचक^१—वि० [सं०] जो गुण को प्रकट करे ।

यौ०—गुणवाचक संज्ञा = व्याकरण में वह संज्ञा जिससे द्रव्य का गुण सूचित हो । विशेषण ।

गुणवाचक^२—संज्ञा पुं० [सं०] गुण का परिचायक शब्द । विशेषण [को०] ।

गुणवाद—संज्ञा पुं० [सं०] भीमांसा में अर्थवाद का एक भेद ।

विरोध—कुमारिल के अनुसार अर्थवाद तीन प्रकार का है, गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थवाद । जहाँ विशेषण और विशेष्य का एक में अन्वय करने से ठीक अर्थ नहीं सिद्ध होता वहाँ विशेषण का कुछ दूसरा अर्थ कर लेते हैं और उसे अंगकथन या गुणवाद कहते हैं । जैसे—यज्ञमानः प्रस्तरः । प्रस्तर शब्द का अर्थ है कुशमुष्टि । यहाँ विशेषण और विशेष्य के द्वारा कोई अर्थ नहीं निकलता इससे प्रस्तर का कुशमुष्टिधारी अर्थ कर लिया गया ।

गुणवान्—वि० [सं० गुणवत्] [वि० स्त्री० गुणवती] गुणवाला । गुणी ।

गुणविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भीमांसा में वह विधि जिसमें गुण कर्म का विधान हो । जैसे—‘दध्ना जुहोति’ दही से अग्निहोत्र करे । अग्निहोत्र करने का विधिवाक्य दूसरा है । अतः उसी अग्निहोत्र के अतर्गत जो आहुति का विधान है उसकी विधि इस वाक्य में है । वि० ३० ‘कर्म’ ।

गुणवृक्ष, गुणवृक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] नाव बांधने का खूँटा [को०] ।

गुणवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुण वृत्ति [को०] ।

गुणव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों में मूलव्रतों की रक्षा करनेवाले तीन व्रत—दिव्रत, भोगोपभोग नियम और अनर्थदंड निषेध ।

गुणशब्द—संज्ञा पुं० [सं०] विशेषण [को०] ।

गुणसंग—संज्ञा पुं० [सं० गुणसङ्ग] १. गुणों का मेल । २. इन्द्रिया-सक्ति [को०] ।

गुणसागर^१—वि० [सं०] गुणों का समुद्र । गुणों से भरा ।

गुणसागर^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिंडोल राग का एक पुत्र । २. ब्रह्मा [को०] । ३. गुणी व्यक्ति [को०] ।

गुणहीन—वि० [सं०] गुणरहित । जिसमें गुण न हो [को०] ।

गुणांक—संज्ञा पुं० [सं० गुणाङ्क] वह अंक जिसको गुणा करना हो ।

गुणा—संज्ञा पुं० [सं० गुणन] [वि० गुण्य, गुणित] गुणित की एक क्रिया । एक अंक पर दूसरे अंक का ऐसा प्रयोग जिसके द्वारा वही फल निकलता है जो पहले अंक को उतनी ही बार अलग अलग रखकर जोड़ने से निकलता है जितना दूसरा अंक है । जरब ।

३-२७

क्रि० प्र०—करना ।—लवाना ।—सोखना ।

गुणाकर—वि० [सं०] गुणों की स्नान । अत्यंत गुणी ।

गुणाकार—वि० क्रि० वि० [सं०] गुणा के चिह्न जैसा [को०] ।

गुणागार—वि० [सं०] गुणों का भंडार । अत्यंत गुणी ।

गुणाढ्य^१—वि० [सं०] गुणपूर्ण । बहुत गुणोंवाला ।

गुणाढ्य^२—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध कवि ।

विशेष—इसने पैशाची भाषा में वह बड़ा ग्रंथ लिखा था जिसके आचार पर पीछे से क्षेमेंद्र ने बृहत्कथामंजरी और सोमदेव ने कथासरित्सागर नाम की पुस्तकें लिखीं । कथासरित्सागर में गुणाढ्य की कथा इस प्रकार लिखी है । प्रतिष्ठानपुर में सोमशर्मा नाम का एक ब्राह्मण रहता था, जिसे भूतार्थ नाम की एक परम सुंदरी कन्या थी । इस कन्या के साथ नागराज वासुकि के छोटे भाई कीर्ति ने गांधर्व विवाह किया । इसी कन्या के गर्भ से गुणाढ्य का जन्म हुआ । गुणाढ्य के बचपन ही में उसका पिता मर गया । गुणाढ्य ने दक्षिणापथ में जाकर तब अध्ययन किया और वह बड़ा प्रसिद्ध विद्वान् होकर प्रतिष्ठान देश के राजा सात-बाहन की सभा में रहने लगा । राजा संस्कृत नहीं जानता था, मूर्ख था । एक दिन वह अपनी रानी के व्यवहार से अपनी मूर्खता पर बड़ा लज्जित हुआ और उसने संस्कृत सीखने का विचार किया । गुणाढ्य ने उसे छह वर्षों में व्याकरण सिखा देने का वादा किया । शर्व शर्मा नामक एक पंडित ने छह महीने में ही राजा को व्याकरण सिखा देने को कहा । इसपर गुणाढ्य ने चिढ़कर कहा ‘यदि तुम राजा को छह महीने में व्याकरण सिखा दोगे तो मैं संस्कृत और प्राकृत आदि समस्त देशी भाषाओं का व्यवहार छोड़ दूंगा ।’ शर्वशर्मा ने कलाप व्याकरण का निर्माण करके छह महीने में राजा को व्याकरण सिखा दिया । इसपर अपमानित गुणाढ्य ने बस्ती का रहना छोड़ दिया और वह जंगल में जाकर पिशाचों के बीच रहने और उन्हीं की भाषा का व्यवहार करने लगा । वहाँ पर उससे काणभूति से साक्षात्कार हुआ जो कुबेर के शाप से पिशाच हो गया था । काणभूति के मुख से उसने पुष्पदंत का कहा हुआ सप्तकथामय उपाख्यान सुना और उसे लेकर सात लाख श्लोकों का, पिशाच भाषा का एक ग्रंथ लिखा । राजसभा में उपस्थित होने पर, ग्रंथ की भाषा पैशाची होने से लोगों ने पुनः उसकी उपेक्षा की । दुःखी गुणाढ्य वन में पशुपक्षियों को यह ग्रंथ सुनाने और प्रत्येक पृष्ठ को अग्नि में जलाने लगा । कालांतर में राजा ने अपनी मूल का परिमार्जन किया पर ग्रंथ का एक अंश ही बचा पाए जिसके आचार पर सोमदेव और क्षेमेंद्र ने अपने अपने ग्रंथ लिखे ।

गुणातीत^१—वि० [सं०] गुणों से परे । जो गुणों के प्रभाव से अलग हो । त्रिगुणात्मिका से निर्मित ।

गुणातीत^२—संज्ञा पुं० परमेश्वर ।

गुणानुरोध—संज्ञा पुं० [सं०] अन्धे गुणों की अनुकूलता [को०] ।

गुणानुवाद—संज्ञा पुं० [सं०] गुणकथन । प्रशंसा । तारीफ़ । बड़ाई ।

गुणान्वित—वि० [सं०] गुणों से युक्त [को०] ।

गुणाक्षय—वि० [सं०] गुणों का मंझार । अनेक गुणों से मंगल [को०]

गुणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गिस्ती । २. सूजन [को०] ।

गुणित—वि० [सं०] १. गुणा किया हुआ । २. एकत्र । संगृहीत [को०] । ३. जिसकी गणना की गई हो [को०] ।

गुणी—वि० [सं० गुणिन्] गुणवाला । जिसमें कोई गुण हो । जो किसी कला या विद्या में निपुण हो ।

गुणी—संज्ञा पुं० निपुण मनुष्य । कलाकुशल पुरुष । हनरमंद आदमी । २. आड़ फूँक करनेवाला । उ०—श्याम भुजग दस्यो हम देखत न्यायहु गुणी बोलाई । रोबत जननि कंठ लपटानी सूर बसाम गुनराई ।—सूर (शब्द०) ।

गुणीभूत—वि० [सं०] १. मुख्यार्थ से रहित । २. गौण बनाया हुआ [को०] ।

गुणीभूत व्यङ्ग्य—संज्ञा पुं० [सं० गुणीभूत व्यङ्ग्य] काव्य में वह व्यङ्ग्य जो प्रधान न हो, बरन् वाच्यार्थ के साथ गौण रूप से आया हो ।

गुणेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीनों गुणों पर प्रभुत्व रखनेवाला ईश्वर । २. चित्रकूट पर्वत ।

गुणोपेत—वि० [सं०] १. गुणी । गुणयुक्त । जिसमें गुण हो । २. किसी कला में निपुण ।

गुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह शक जिसको गुणा करना हो ।

गुण्य—वि० १. गुणा करने योग्य । २. गुणी । ३. वर्णनीय [को०] ।

गुण्यार्क—संज्ञा पुं० [सं० गुण्यार्क] यह शक जो गुणा किया जाय ।

गुत्तला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मछली जिसे बगू भी कहते हैं ।

गुत्ता—संज्ञा पुं० [देश०] १. लगान पर खेत देने का व्यवहार । २. लगान ।

गुत्थ—संज्ञा पुं० [हि० गुथना] १. हुक्के के नैबों की वह बुनावट जो चटाई की बुनावट के ढंग की होती है । २. इसी बुनावट का नैबा ।

गुत्थमगुत्था—संज्ञा पुं० [हि० गुथना] १. उलझाव । फंसाव । दो या कई वस्तुओं का ऐसा मिलना या जुटना कि दोनों लिपट गए हों । २. हाथापाई । भिड़ंत । लड़ाई ।

गुत्थी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुथना] वह गांठ जो कई वस्तुओं के एक से गुथने से बन । गिरह । उलझन ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

मुहा०—गुत्थी सुलझाना—समस्या हल करना । कठिनाई दूर करना ।

गुत्स—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गुच्छ' ।

गुत्सक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुच्छ । २. फूलों का गुच्छ । ३. खैर । ४. संघ का भाग या अध्याय [को०] ।

गुथना—क्रि० प्र० [सं० गुत्थन, प्रा० गुत्थन] १. कई वस्तुओं का तागे आदि के द्वारा एक में बँधना या फँसना । कई वस्तुओं का एक लड़ी या गुच्छे में नाथा जाना । २. किसी वस्तु का

दूसरी वस्तु में सुई तागे आदि के सहारे टँकना । गाँथा जाना । जैसे,—झूल में मोती गुथे हुए थे । ३. भट्टी सिलाई होना । टीका लगना । टीके या मिलाई द्वारा दो वस्तुओं का जुड़ना । ४. एक का दूसरे के साथ लड़ने के लिये लिपट जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

गुथवाना—क्रि० प्र० [हि० गुथना का प्रे०] गुथने का काम करवाना ।

गुथवा—वि० [हि० गुथना] जो गुथकर बनाया गया हो ।

गुद—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँठ । मलद्वार ।

गुदकार, गुदकारा—वि० [हि० गुद या गुदार] १. गुदेदार । जिसमें गुदा हो । २. गुदगुदा । मोटा । उ०—चार कपोल गोल गुदकारे अरु सुंदर सी ठोड़ी । परति आद के होड़ाहोड़ी सबकी डीठि निगोड़ी ।—भूदन (शब्द०) ।

गुदकोल, गुदकोलक—संज्ञा पुं० [सं०] घर्ष रोग । बवासीर ।

गुदगरा—वि० [हि० गुदा+गर (प्रत्य०)] दे० 'गुदगुदा' ।

गुदगुदा—वि० [हि० गुदा] १. गुदेदार । मांसल । मारा से भरा हुआ । २. गुदगुदा । जिसकी गन्ध दबाने से दब जाय । गुलायम ।

गुदगुदाना—क्रि० प्र० [हि० गुदगुदा] १. काँख, तलवे, पेट आदि मांसल स्थानों पर उँगनी आदि फेरना जिससे सुगुहाहट या मीठी खुजली मात्तम हो और आदमी हँसने और उछलने कूदने लगे । किसी को हँसाने या छेड़ने के लिये उसके तलवे, काँख आदि को सुदराना । २. मन बहलाव या विनोद के लिये छेड़ना ।

मुहा०—गुदगुदाना वहीं तक जहाँ तक हँसी आये—उतनी ही हँसी दिलवायी करना जितनी प्रच्छ्दी लगे ।

३. चित्त को चलायमान करना । उमगाना । उत्कंठा उत्पन्न करना ।

गुदगुदाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० गुदगुदाना+आहट (प्रत्य०)] दे० 'गुदगुदी' ।

गुदगुदी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुदगुदाना] १. वह सुगुहाहट या मीठी खुजली जो काँख, पेट आदि मांसल स्थानों पर उँगनी आदि से होने से होती है ।

क्रि० प्र०—लगना ।—होना ।

मुहा०—गुदगुदी करना—गुदगुदाना ।

२. उत्कंठा । शौक । ३. आह्लाद । उत्साह । उमंग । ४. प्रसन्न-चेष्टा । काम का वेग । चुन ।

गुदग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] कोष्ठवृद्धता का रोग । उदावर्त रोग ।

गुदङ्गिया—संज्ञा पुं० [हि० गुदङ्ग+इया (प्रत्य०)] १. गुदड़ी पहनने या ढोढ़नेवाला ।

यौ०—गुदङ्गिया फकीर—गुदड़ी पहननेवाला फकीर । गुदङ्गिया पोर=गाँव के पास का वह पेड़ जिसपर ग्रामीण जन चिथड़े इत्यादि बाँधते और मनीषी मानते हैं ।

२. फटे पुराने काड़े आदि बेचनेवाला । ३. खेमा, फर्श, दर्री आदि आड़े पर देनेवाला ।

गुदड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० गूधना = मोटी सिलाई करना] फटे पुराने कपड़ों की कई तहों को एक में गाँव या सीकर बनाया हुआ झोढ़ना या बिछावन । फटे, पुराने टुकड़ों को जोड़कर बनाया हुआ कपड़ा । कंथा ।

विशेष—साधुओं की गुदड़ी में कभी कभी रंग बिरंगे कपड़ों के जोड़ भी लगते हैं ।

मुहा०—गुदड़ी में लाल = तुच्छ स्थान में उत्तम वस्तु । छोटे स्थान में बहुमूल्य वस्तु या गुणी व्यक्ति । गुदड़ी का लाल = कोई ऐसा घनी या गुणी जिसके रूप रंग, वेश आदि से उसका धन या गुण न प्रकट होता हो । क्या गुदड़ी है ? = क्या विशा है ? क्या मजाल है ? क्या हकीकत है ?

गुदड़ी फरोश—संज्ञा पुं० [हि० गुदड़ी + फा० फरोश] रही और फटा पुराना सामान बेचनेवाला ।

गुदड़ीबाजार—संज्ञा पुं० [हि० गुदड़ी + फा० बाजार] वह बाजार जहाँ फटे पुराने कपड़े या टूटी फूटी चीजें बिकती हों । यह बाजार प्रायः संध्या समय लगता है ।

गुदन—संज्ञा स्त्री० [हि० गोदना] वह स्त्री जिसके शरीर पर गोदना गुदा हुआ हो (पश्चिम) ।

गुदनहर—संज्ञा पुं० [हि० गोदनहारी का पुं०] दे० 'गोदनहर' ।

गुदनहारी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोदनहारी] दे० 'गोदनहारी' ।

गुदना^१—संज्ञा पुं० [हि० गोदना] दे० 'गोदना' ।

गुदना^२—क्रि० प्र० [हि० गोदना] चुभना । घँसना । गड़ना । खुभना ।

गुदनिर्गम—संज्ञा पुं० [सं०] गुदा का एक रोग । कौच निकलना [को०] ।

गुदनी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोदनी] दे० 'गोदनी' ।

गुदपाक—संज्ञा पुं० [सं०] गुदा पक जाने का रोग ।

विशेष—छोटे बच्चों को यह रोग बहुधा हुआ करता है ।

गुदभ्रंश—संज्ञा पुं० [सं०] कौच निकलने का रोग ।

गुदमी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा और गुलायम कंबल जो ठंडे पहाड़ी देशों में बुना जाता है ।

गुदरना^(१)—क्रि० प्र० [फा० गुदर + हि० ना (प्रत्य०)] १. त्याग करना । अलग रहना । दर गुजर करना । उ०—मिलि न जाय नहि गुदरत बनई । सुकवि लखन मन की गति बनई । —तुलसी (शब्द०) । २. निवेदन करना । हाल कहना । उ०—तब द्वापर ही तुष सों गुदरे । सुकदेव भबै दरबार खरे । —केशव (शब्द०) । ३. व्यतीत होना । बीतना । गुजरना । मंतर सेह होहु सँग लागू । गुदर जाइ तब होइहि भागू । —जायसी (शब्द०) । ४. उपस्थित किया जाना । पेश होना ।

गुदरानना^२—क्रि० स० [फा० गुदरान + हि० ना (प्रत्य०)] १. पेश करना । सामने रखना । उपस्थित करना । नजर करना । भेंट देना । उ०—गुदरानी तेहि द्वार ते पारिजात की माल । —गुमान (शब्द०) । २. निवेदन करना । हाल कहना । उ०—देखि तिन्हैं तब द्वार ते गुदराव्यो प्रतिहार । भाए विषवामित्र ब्रजु दूजो करतार । —केशव (शब्द०) ।

गुदरिया^३—संज्ञा स्त्री० [हि० गुदरी + इया (प्रत्य०)] दे० 'गुदरी' ।

गुदरिया^३—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नीबू ।

गुदरी^४—संज्ञा स्त्री० [हि० गुदरी] दे० 'गुदरी' ।

गुदरैना^(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० गुदरना] १. पढ़ा हुआ पाठ शुद्धतापूर्वक सुनाना जिससे ज्ञात हो जाय कि पाठ भली भाँति याद किया गया है । जायजा । २. परीक्षा । इस्तहान । परताल । उ०—सारो शुक्र शुभ मराल, केकी कोकिल रसाल बोलत कल पारावत भूरि भेद गुनिए । मनहु मदन पंडित ऋषि शिष्य गुणन मंथित करि अपनी गुदरेन देन पठए प्रभु सुनिए । —केशव (शब्द०) ।

गुदखदन—संज्ञा पुं० [सं०] गुदा [को०] ।

गुदखाना—क्रि० स० [हि० गोदना] दे० 'गुदना' ।

गुदस्तंभ—संज्ञा पुं० [गुदस्तम्भ] कंज [को०] ।

गुदाकुर—संज्ञा पुं० [सं० गुदाकूर] बवासीर ।

गुदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मलद्वार । गोंड ।

गुदाज—वि० [फा० गुदाज] गूदेदार । गदराया हुआ । गुदकार । माँस से भरा हुआ ।

गुदाना—क्रि० स० [हि० गोदना का प्र०] गोदने की क्रिया कराना ।

गुदाभंजन—संज्ञा पुं० [सं० गुदा + भंजन] पुरुष का पुरुष से मैथुन । समलैंगिक मैथुन ।

क्रि० प्र०—करना । —कराना ।

गुदाम^१—संज्ञा पुं० [हि० गोदाम] दे० 'गोदाम' ।

गुदाम^२—संज्ञा पुं० [पुर्त० बोताब, हि० बुताम] बटन । घुंड़ी ।

गुदारा^३—वि० [हि० गूहा + धार (प्रत्य०)] गूदेदार । जिसमें अधिक गुदा हो । मँसीला । गुदाज । गुदकारा ।

गुदारा^(५)—संज्ञा पुं० [फा० गुज्जरहू] १. नाव पर नदी पार करने की क्रिया । उतारा । उ०—यहि विधि राति लोग सब जागा । भा भिनसार गुदारा लागा । —तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगना ।

२. दे० 'गुजारा' ।

गुदारा^२—वि० [हि० गूदा + धारा (प्रत्य०)] दे० 'गुदारा' ।

गुदावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] कोष्ठबद्धता [को०] ।

गुदियारा^४—वि० [हि० गुदकारा] दे० 'गुदारा' ।

गुदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] नदियों के किनारे का वह स्थान जहाँ नारें बनती हैं या भरमत्त के लिये रखी जाती है ।

गुदुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गदरना] १. मटर की फली । २. एक प्रकार का कीड़ा जो मटर और चने की फसल को हानि पहुंचाता है ।

क्रि० प्र०—घावा । —निहोरना । लगना ।

गुदौष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] गुदा के मुख पर का चमड़ा [को०] ।

गुहा^१—संज्ञा पुं० [हि० गूहा] दे० 'गूदा' ।

गुहा^२—संज्ञा पुं० [देश०] पेड़ की मोटी डाल ।

गुशी—संज्ञा पुं० [हि० गूवा] १. मोँगी । गिरी । किसी फल से भीतर का गूदा । मगज । २. सिर का पिछला भाग । त्योंही ।

गुहा—घाँसे गुहरी में होना या बची जाना = सुभाई न देना ।
देख न पड़ना । समझ में न आना । किसी वस्तु के प्रत्यक्ष
होते हुए भी उसे न देखना या न समझना या न मानना ।
गुहरी भाषना = गुहरी पर धील लगाना । गुहरी की भाषिण—
गरदन के पीछे वालों की बोरी जिसे लोग बहुत समझते हैं ।
गुहरी से जीभ खींचना = जवान खींच लेना । बहुत कड़ा दंड
देना । (माली) ।

३. हवेली का मांस ।

- गुन (पुं०—संज्ञा पुं० [सं० गुण] दे० 'गुण' ।
गुनकारी—वि० [हि० गुणकारी] दे० 'गुणकारी' ।
गुनगाहक—संज्ञा पुं०, वि० [सं० गुणग्राहक] दे० 'गुणग्राहक' ।
गुनगुना—वि० [अनु०] नाक में बोलनेवाला ।
गुनगुना—वि० [हि० कुनकुना] दे० 'कुनकुना' ।
गुनगुनाना—क्रि० प्र० [अनु०] १. गुनगुन शब्द करना । २. नाक
में बोलना । ३. अस्पष्ट स्वर में गाना ।
गुनगौरि—संज्ञा पुं० [हि० गुणगौरि] १. पतिव्रता स्त्री । सौभागिनी ।
उ०—धनि धनि सुव बहियाँ ए गुनगौरि । कंकन की जहँ कीमत
लाज करोरि ।—सेवक (शब्द०) । २. दे० 'गुणगौरि' ।
गुनग्राम—संज्ञा पुं० [सं० गुणग्राम] गुणों का समूह । उ०—जग
मंगल गुनग्राम राम के । दानि मुकुति धन चरम धाम के ।
—मानस, १। ३२ ।
गुनना (पुं०—क्रि० प्र० [सं० गुणन] १. मनन करना । विचार
करना । जैसे,—पढ़ना गुनना । २. समझना । सोचना ।
उ०—(क) मुनि चितउर राजा मन गुना । विधि संवैस मैं
कासी सुना ।—जायसी (शब्द०) (ख) सुमति महामुनि
सुनि । तन धन कै मन गुनि ।—केशव (शब्द०) ।
गुनमंत—वि० [हि० गुनमंत] दे० 'गुनमंत' ।
गुनरखा—संज्ञा पुं० [हि० गुन] १. दे० 'गुनरखा' । २. दे० 'गुनिया' ।
गुनबंत—वि० [हि० गुन + बंत (प्रत्य०)] [वि० भी० गुनवती]
जिममें कोई गुण हो । गुणी । उ०—जो कह भूठ भमलरी
जाना । कनिजुग सोइ गुनवत बलाना ।—मानस, ७। ६८ ।
गुनवतिन पुं०—वि० स्त्री० [हि० गुनवती] गुणवाली । गुणवती ।
गुनवान—वि० [सं० गुणवान्] दे० 'गुणवान्' ।
गुनहागर—वि० [फ्रा०] १. पापी । २. दोषी । अपराधी ।
गुनहागरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. पाप । २. दोष । अपराध ।
गुनही—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुनह + हि० ई (प्रत्य०)] गुनहागर ।
अपराधी । उ०—जो गुनही ती मारिए बालिन माहि प्रगोटि ।
—बिहारी (शब्द०) ।
गुना—संज्ञा पुं० [सं० गुण] १. एक प्रत्यय जो केवल संख्यावाचक
शब्दों के अंत में लगता है । यह जिस संख्या के अंत में लगता
है उसनी ही बार कोई मात्रा, संख्या या परिमाण सूचित
करता है । जैसे,—दुगुना, चौगुना, दसगुना, बीसगुना ।
२. गुणा । (गणित) ।
गुना—संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ के आटे और गुड़ से बना हुआ एक
पकवान ।

गुनाबन—संज्ञा पुं० [सं० गुणन] १. सोच विचार । २. सलाह
मशविरा ।

गुनाह—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. पाप । २. दोष । कसूर । अपराध ।
गुनाहगर—वि० [फ्रा०] १. गुनाह करनेवाला । पाप करनेवाला ।
२. अपराध करनेवाला । कसूर करनेवाला । दोषी ।

गुनाहगरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] गुनहागर का भाव । अपराधी या
दोषी होने का भाव ।

गुनाही—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. पाप करनेवाला । पापी । २. अपराध
करनेवाला । दोषी । कुसूरवार ।

गुनिया—संज्ञा पुं० [हि० गुन + इया (प्रत्य०)] वह व्यक्ति जिसमें
गुण हो । गुणवान् ।

गुनिया—संज्ञा स्त्री० [हि० कोन, कोनिया] राजों, बड़इयों और
संगतराशों का एक झोजार जिससे वे कोने की सीध नापते हैं ।
माघन । दे० 'गोनिया' ।

गुनिया—संज्ञा पुं० [सं० गुण, हि० गुन + इया (प्रत्य०)] वह मल्लाह
जो नाव की गून खींचता है । गुनरखा ।

गुनियाला—वि० [हि० गुण] गुणवाला । गुणी ।

गुनी—वि० संज्ञा पुं० [हि० गुणी] दे० 'गुणी' ।

गुनोबर—संज्ञा पुं० [फ्रा० सनोबर] एक प्रकार का देवदार या
सनोबर का पेड़ ।

विशेष—यह उत्तर पश्चिमी हिमालय में ६००० से १००००
फुट की ऊँचाई तक होता है । इसकी लकड़ी बड़ी मजबूत और
कड़ी होती है । पर उसका कोई विशेष उपयोग नहीं होता ।
बिलगोजा नाम का मेवा इसी का फल है । इस वृक्ष को चोरी
भी कहते हैं ।

गुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुण, हि० गुन रस्सी] एक प्रकार का कोड़ा
जिससे ब्रजचंदल में होली के अवसर पर स्त्री पुरुष एक दूसरे
को मारते हैं ।

गुप—वि० [हि० घुप] दे० 'घुप' ।

गुप—संज्ञा पुं० [अनु०] सुनसान होने का भाव । मन्नाटा ।

गुपचुप—क्रि० वि० [हि० गुप + चुप] बहुत गुप्त रीति से । छिपाकर ।
चुपचाप । चुपके से । जैसे,—तुम अपना काम करके वहाँ से
गुपचुप चले जाना ।

गुपचुप—संज्ञा स्त्री० १. एक प्रकार की मिठाई जो मुँह में रखते ही
गुल जाती है ।

विशेष—यह लोबे और मैदे या सिपाहे के आटे को धी में पकाकर
और लीरे में ढालकर बनाई जाती है ।

२. लड़कों का एक खेल जिसमें एक गान फुलाता है और दूसरा
उसपर धूँसा मारता है । ३. एक प्रकार का खिलौना ।

गुपाल—संज्ञा पुं० [सं० गोपाल] दे० 'गोपाल' ।

गुपिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा । २. रक्षक (की०) ।

गुपुत—वि० [सं० गुप्त] दे० 'गुप्त' । उ०—सूक्तहि रामचरित मनि
मानिक । गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक ।—मानस, १। १ ।

गुप्त—वि० [सं०] १. छिपा हुआ । पोकीदा ।

यौ०—गुप्तचर । गुप्त गोष्ठी । गुप्तवान ।

२. गूढ़ । जिसके जानने में कठिनाता हो । ३. रक्षित ।

गुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. पदवी जिसका व्यवहार वैश्य अपने नाम के साथ करते हैं । २. एक प्राचीन राजवंश जिसने पहले मगध देश में राज्य स्थापित करके सारे उत्तरीय भारत में अपना साम्राज्य फैलाया ।

विशेष—इस वंश में समुद्रगुप्त बड़ा प्रतापी सम्राट् हुआ । इस वंश का राज्य ईसा की ५ वीं और ६ वीं शताब्दी में वर्तमान था । चंद्रगुप्त, समुद्रगुप्त और स्कंदगुप्त आदि इसी वंश में हुए थे । गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त का दूसरा नाम विक्रमादित्य भी था । बहुत लोगों का मत है कि प्रसिद्ध विक्रमादित्य चंद्रगुप्त ही हैं ।

गुप्तक—संज्ञा पुं० [सं०] सुरक्षित रखनेवाला [को०] ।

गुप्तकाशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक तीर्थ जो हरिद्वार और बदरीनाथ के बीच में है ।

गुप्तगति—संज्ञा पुं० [सं०] भेदिया । गुप्तचर [को०] ।

गुप्तगृह—संज्ञा पुं० [सं०] शयनगृह [को०] ।

गुप्तगोदावरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रकूट के निकट एक तीर्थस्थान [को०] ।

गुप्तचर—संज्ञा पुं० [सं०] वह दूत जो किसी बात का गुप्तवाप भेद लेता हो । भेदिया । जासूस ।

गुप्तदान—संज्ञा पुं० [सं०] वह दान जिसे देने समय दाता ही जाने और कोई न जाने ।

विशेष—ऐसा दान लोग प्रायः बिना अपना नाम प्रगट किए अथवा वस्तु को छिपाकर देते हैं । ऐसा दान बहुत श्रेष्ठ समझा जाता है ।

गुप्तमतदान—संज्ञा पुं० [सं०] वह मतदान या वोट देना जो अपना मत प्रकट किए बिना गुप्त रूप से दिया जाय ।

गुप्तमार—संज्ञा स्त्री० [सं० गुप्त + हि० मार] १. ऐसा घाघात जिसका शरीर पर कुछ चिह्न न रहे । ऐसी मार जिससे शरीर से रक्त आदि न निकले, जैसे, धूँसे, चप्पड़ आदि की । भीतरी मार । २. छिपा हुआ दाँवपेच । ऐसा अनिष्ट जो बहुत छिपाकर किया जाय ।

गुप्तवेश—वि० [सं०] छिपेवशी । जो भेष बदले हुए हो [को०] ।

गुप्तस्नेह—वि० [सं०] गुप्त रूप से प्रेम करनेवाला [को०] ।

गुप्तांग—संज्ञा पुं० [सं० गुप्ताङ्ग] स्त्री या पुरुष के गोपनीय अंग । उपस्थ ।

गुप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह नायिका जो सुरति छिपाने का उद्योग करती है ।

विशेष—यह छह प्रकार की परकीया नायिकाओं में से मानी गई है । काल के अनुसार इसके तीन भेद हैं—(क) भूत-सुरति-गुप्ता, (ख) वर्तमान-सुरति-गुप्ता और (ग) भविष्य-सुरति-गुप्ता । २. रखी हुई स्त्री । सुरतिन । रखेल ।

गुप्तासन—संज्ञा पुं० [सं०] सिद्धासन [को०] ।

गुप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छिपाने की क्रिया । २. रक्षा करने की क्रिया । ३. तंत्र के अनुसार ग्रहण किए जानेवाले मंत्र का एक संस्कार । ४. कारागार । कैदखाना । ५. गुफा । गुहा । ७. अहिंसा आदि योग के अंग । यम । ८. मलद्वार [को०] । ९. नाक का छेद [को०] ।

गुप्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० गुप्त] वह छड़ी जिसके अंदर गुप्त रूप से किरच या पतली तलवार इस प्रकार रखी हो कि आवश्यकता पड़ने पर तुरंत बाहर निकाली जा सके ।

क्रि० प्र०—चलाना ।

गुप्तोत्प्रेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उत्प्रेक्षा जिसमें 'मानो', 'जानो' आदि साव्यवाचक शब्द न हों । प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा ।

गुप्फा—संज्ञा पुं० [सं० गुप्फ] १. फुंदना । भुब्बा । २. फूलों का गुच्छा ।

गुफा—संज्ञा स्त्री० [सं० गुहा] वह गहरा अंधेरा गुहा जो जमीन या पहाड़ के नीचे बहुत दूर तक चला गया हो । कंदरा । गुहा ।

गुप्त वि० [फा० गुप्त] कथिन ।

गुप्तगू—संज्ञा स्त्री० [फा० गुप्तगू] बातचीत । वार्तालाप ।

गुप्तार—संज्ञा स्त्री० [फा० गुप्तार] १. बाणी । बोली । आवाज । २. बातचीत । वार्तालाप ।

गुप्तोशनीद—संज्ञा स्त्री० [फा० गुप्तोशनीद] १. वार्तालाप गुप्तगू । २. कहा सुनी । वाद विवाद । ३. तर्क बितर्क ।

गुबरैला—संज्ञा पुं० [हि० गोबर + ऐला (प्रत्यय)] एक प्रकार का कीड़ा जो गोबर और मल आदि खाता तथा दकट्टा करता है ।

विशेष—यह गोबर की गोलियाँ लुढ़काता हुआ प्रायः खेतों आदि में पाया जाता है ।

गुबार—संज्ञा पुं० [अ० गुबार] १. गर्द । धूल ।

यौ०—गर्द गुबार ।

क्रि० प्र०—उठना ।—उड़ना ।—झाना ।

२. मन में दबाया हुआ क्रोध, दुःख या द्वेष आदि ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—निकालना ।—रखना ।

मुहा०—गुबार निकालना = कटु और अप्रिय बातें कहकर मन का क्रोध दूर करना ।

गुबारा—संज्ञा पुं० [फा० गुब्बारह्] दे० 'गुब्बारा' ।

गुब्बिद (उ) —संज्ञा पुं० [सं० गोबिन्द, प्रा० गोबिद] दे० 'गोबिंद' ।

गुब्बा—संज्ञा पुं० [सं०] रस्सी के बीच में डाला हुआ फंदा ।—(लश०) ।

गुब्बाड़ा—संज्ञा पुं० [हि० गुब्बारा] दे० 'गुब्बारा' ।

गुब्बार—संज्ञा पुं० [हि० गुबार] दे० 'गुबार' ।

गुब्बारा—संज्ञा पुं० [फा० गुब्बारह्] १. थैली या उसके आकार की और कोई चीज जिसके अंदर गरम हवा या हवा से हलकी किसी प्रकार की भाग आदि भरकर आकाश में उड़ाते हैं ।

विशेष—इसके बनाने में पहले रेशम या इसी प्रकार की और किसी चीज के थैले पर रबर की या और बान्निश चढ़ाकर उसमें से हवा या भाप निकलने का मार्ग बंद कर देते हैं और तब उसमें गरम हवा या हवा से हलकी और कोई भाप भर देते हैं । इस थैले को एक जाल में भरकर उस जाल के नीचे कोई बड़ा संदूक या खटोना बाँध देते हैं जिसमें आदमी बैठते हैं । गुब्बारा हवा से हलका होने के कारण आकाश में उड़ने लगता है । उसे नीचे लाने के लिये इसमें की गरम हवा या भाप निकाल देते हैं ।

२. गुब्बारे के आकार का कागज का बना हुआ बड़ा गोला ।

विरोध—इसके नीचे तेज से जीया हुआ कपड़ा जलाकर रख देते हैं। इसके धुरे से गोला भर जाता और आकाश में उड़ने लगता है। इसका व्यवहार आतिशबाजी में या विवाह आदि गुम अवसरों पर होता है।

३. एक प्रकार का बड़ा गोला जो आकाश की ओर फेंकने पर फट जाता है और जिरा में से आतिशबाजी छूटती है।

क्रि० प्र०—उड़ना ।—उड़ाना ।—छूटना ।—छोड़ना ।

गुम—संज्ञा पुं० [देश०] समुद्र की खाड़ी । —(लक्ष०) ।

गुमी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुम्फ = गुम्फा] भंकर । गाम । उ०—मुरली मोर मनोहर बानी मुनि इकट्ठ जु उमी । मूरदास मनमोहन निरन्तर उपजी काम गुमी ।—सूर०, १०।१८७० ।

गुमोला—संज्ञा पुं० [देश०] गोटा जो सब दाने के कारण पेट में रुक जाता है।

गुम—वि० [क्रा०] १. लुप्त । छिपा हुआ । अप्रकट । २. अशुद्ध । ३. खोया हुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।—बाना ।—होना ।

बी०—गुमनाम । गुमराह ।

गुम—संज्ञा पुं० [देश०] बातावरण की वह स्थिति जिसमें हवा न चल रही हो।

गुमक—संज्ञा स्त्री० [हि० गुमक] दे० 'गुमक' ।

गुमकना—क्रि० स० [सं० गुम] शब्द का भीतर ही भीतर गुंजना ।

गुमका—संज्ञा पुं० [देश०] भूमी से दाना अलग करने का काम ।

गुमचा—संज्ञा पुं० [सं० गुम्जा] गुंजा । घुमची ।

गुमची—संज्ञा स्त्री० [सं० गुम्जा] गुंजा । घुमची ।

गुमजी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुमटी] दे० 'गुमटी' ।

गुमटा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कीड़ा ।

विरोध—यह कपास के फूल को नष्ट कर देता है जिससे फसल मारी जाती है।

गुमटा—संज्ञा पुं० [सं० गुम्फा + हि० टा (प्रत्यय०)] वह गोल सृजन जो माथे या सिर पर चोट लगने से होती है। गुलमी ।

गुमटी—संज्ञा स्त्री० [क्रा० गुम्ब] १. मकान के ऊपरी भाग में सीढ़ी या कमरों आदि की छत जो शेष भाग से अधिक ऊपर उठी हुई होती है। २. गोलाकार या चौकोर कोठरी या कमरा जो रेलवे लाइन के किनारे प्रायः लाइन पार जानेवाले मार्गों पर बना होता है। वि० दे० 'गिमटी' ।

गुमटी—संज्ञा पुं० [?] नाव या जहाज में का पानी फेंकनेवाला मस्साह या लनासी ।

गुमना—क्रि० प्र० [क्रा० गुम] गुम होना । खो जाना ।

गुमनाम—सं० [क्रा०] अप्रसिद्ध । अज्ञात । जिसे कोई न जानता हो ।

बी०—गुमनाम पत्र = ऐसा पत्र जिसमें लेखक ने अपना नाम न दिया हो ।

गुमर—संज्ञा पुं० [क्रा० गुमान] १. अभिमान । घमंड । शेखी । २. मन में छिपाया हुआ क्रोध या डेव आदि । गुबार । ३. धीरे धीरे की बातचीत । कानाफूसी । उ०—मेरे नैन अंजन तिहारे

अधरन पर खोमा देखि गुमर बढ़ायो सब सखियाँ ।—रस-कुसुमाकर (शब्द०) ।

गुमरना—क्रि० प्र० [हि० घुमरना] घिरना । घुमड़ना ।

गुमराह—वि० [क्रा०] १. कुपयगामी । बुरे मार्ग में चलनेवाला । २. भूला हुआ । भटका हुआ ।

गुमराहो—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. भूल । भ्रम । २. कुपय । बुरा मार्ग । कुमार्ग ।

गुमगुदा—वि० [क्रा० गुमगुदह] गुम । खोया हुआ । भूला हुआ ।

गुमसुम—वि० [क्रा० गुम + अनु० सुम] १. चुप । जो कुछ भी बोल न रहा हो । २. जो बिल्कुल हिल डुल न रहा हो । ३. उदास । चिंतित । ४. खोया हुआ ।

गुमसुम—क्रि० वि० १. चुपचाप । शांतिपूर्वक । २. ध्यानस्थ । खोया हुआ सा ।

क्रि० प्र०—बैठना ।—होना ।

गुमान—संज्ञा पुं० [क्रा०] १. अनुमान । कयास । २. घमंड । अहंकार । गर्व ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

३. लोगों की बुरी धारणा । बदगुमानी । लोकापवाद । उ०—तुलसी जुषे गुमान की होती कछु उपाउ । तो कि जानकिहि जानि जिय परिहरते रघुराउ ।—तुलसी (शब्द०) । ४. शंका । शुबहा ।

गुमाना—क्रि० स० [क्रा० गुम = खोया हुआ] खोना । गंवाना ।

क्रि० प्र०—बैना ।—बैठना ।

गुमानो—वि० [हि० गुमान] घमंडी । अहंकारी । गरूर करनेवाला ।

गुमाश्ता—संज्ञा पुं० [क्रा० गुमाश्तह] वह मनुष्य जो किसी बड़े व्यापारी या कोठीवाल की ओर से बही आदि लिखने या मास खरीदने और बेचने पर नियुक्त हो ।

गुमाश्तागीरो—संज्ञा स्त्री० [क्रा० गुमाश्तह गीरो] १. गुमाश्ते का पद । २. गुमाश्ते का काम ।

गुमिटना—क्रि० प्र० [सं० गुम्फित] लिपटना । लपेटा जाना ।

गुमेटना—क्रि० स० [सं० गुम्फित] लपेटना ।

गुम्मत—संज्ञा पुं० [क्रा० गुम्बद] गुम्बद । गुम्बज ।

गुम्मर—संज्ञा पुं० [हि० गुम्मत] चेहरे या किसी और अंग पर निकला हुआ बहुत बड़ा गोल मसा या मांस का लोथड़ा ।

गुम्मा—संज्ञा पुं० [देश०] बड़ी मोटी ईंट जो अंगरेजी ढंग की इमारतों में लगती है ।

गुम्बा—संज्ञा पुं० [हि० गुम्बा] दे० 'गुम्बा' ।

गुर—संज्ञा पुं० [सं० गुरुमंत्र] वह साधन या क्रिया जिसके करते ही काम तुरंत हो जाय । मूलमंत्र । सार ।

गुर—संज्ञा पुं० [सं० गुर] तीन की संख्या । (डि०) ।

गुरा—संज्ञा पुं० [हि० गुर] दे० 'गुड' ।

गुरा—संज्ञा पुं० [सं० गुरु] दे० 'गुरु' ।

गुरखी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुर + हि० रचना] एक प्रकार की देहन या बंधक ।

गुरसाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह रेहन जिसमें रेहन रखनेवाला रेहन रखी हुई जमीन का ३ मास गुजारी देता है।

गुरगा—संज्ञा पुं० [सं० गुरु] [स्त्री० गुरगी] १. गुरु का अनुगामी। चेला। शिष्य। २. टहलुषा। नौकर। छोकरा। अनुचर। ३. चर। दूत। गुप्तचर। जासूस।

गुरा—गुग छटना = दूतों या गुप्तचरों का किसी कार्य के लिये प्रस्थान करना।

गुरगाबी—संज्ञा पुं० [क्रा०] मुंदा घुता।

गुरच—संज्ञा पुं० [सं० गुरुच] दे० 'गुरुच'।

गुरचाना—क्रि० प्र० [हि० गुरुच] १. किसी वस्तु का उलझकर टेढ़ा मेढ़ा होना। २. आपस में उलझना।

गुरचियाना—क्रि० प्र० [हि० गुरुच] सिकुड़कर टेढ़ा मेढ़ा हो जाना।

गुरचो—संज्ञा स्त्री० [हि० गुरुच] सिकुड़ना। बट। बल।

गुरचो—संज्ञा स्त्री० [अनु०] परस्पर चीरे चीरे बातें करना। कानाफूसी।

यौ०—गुरचों गुरचों।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गुरज—संज्ञा पुं० [क्रा० गुर्ज] दे० 'गुर्ज'।

गुरजा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसे लोवा कहते हैं।

गुरभन—स्त्री० [हि० गुरभना] उलभन। पेंच की बात। धंषि।

गुरभना—क्रि० स० [हि० उलभना] उलभना।

गुरभनि—संज्ञा स्त्री० [हि० गुरभन] दे० 'गुरभन'।

गुरभियाना—क्रि० प्र० [हि० गुरभना] सिकुड़कर टेढ़ा हो जाना। गाँठ या उलभन पड़ना।

गुरभियाना—क्रि० स० [हि० गुरभना] गाँठ डालना या उलभाना।

गुरण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रयत्न। चेष्टा। उद्योग [की०]।

गुरदा—संज्ञा पुं० [क्रा० सं० गोर्दा] १. रीढ़दार जीवों के अंदर का एक अंग जो पीठ और रीढ़ के दोनों ओर कमर के पास होता है।

विशेष—इसका रंग लाली लिए भूरा और आकार भालू का सा होता है। इसके चारो ओर चरबी मढ़ी होती है। साधारणतः जीवों में दो गुरदे होते हैं जो रीढ़ के दोनों ओर स्थित रहते हैं। शरीर में इनका काम पेशाब को बाहर निकालना और खून को साफ रखना है। यदि इनमें किसी प्रकार का दोष आ जाय तो रक्त बिगड़ जाता और जीव निर्बल हो जाता है। मनुष्य में बायाँ गुरदा कुछ ऊपर की ओर और दाहिना कुछ नीचे की ओर हटकर होता है। मनुष्य के गुरदे प्रायः ८-९ अंगुल लंबे, ५ अंगुल चौड़े और २ अंगुल मोटे होते हैं।

२. साहस। हिम्मत। जैसे—(क) वह बड़े गुरदे का आदमी है।

(ख) यह बड़े गुरदे का काम है। ३. एक प्रकार की छोटी तोप। ४. लोहे का एक बड़ा चमचा या करछा जिससे गुड़ बनाते समय उबलता हुआ पाग चलाते हैं।

गुरना—क्रि० प्र० [हि० सुलगा] गलना। घुनना।

गुरनियमालू—संज्ञा पुं० [देश०] रतालू, जमीकंद आदि की जाति का एक फल।

विशेष—यह बंगाल और मध्य, पश्चिम तथा दक्षिण भारत में होता है। इसका रंग ऊपर से लाल होता है। इसकी सत्ता बहुत बड़ी होती है।

गुरबत—संज्ञा स्त्री० [अ० गुर्बत] १. विदेश में रहना। प्रवास। २. परदेश। विदेश। २. कंगाली। दरिद्रता।

गुरबिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुर्बिणी] दे० 'गुर्बिणी'।

गुरबो—वि० [सं० गुर्बिन्] अभिमानी। घमंडी।

गुरमुख—वि० [हि० गुरु+मुख] जिसने गुरु से मंत्र लिया हो। दीक्षित। दीक्षाप्राप्त।

गुरमुखी—संज्ञा स्त्री [हि० गुरुमुखी] दे० 'गुरुमुखी'।

गुरम्मरा—संज्ञा पुं० [हि० गुरु+अंभ] मोटे आम का वृक्ष। आम का वह वृक्ष जिसका फल बहुत मीठा होता हो। उ०—वृक्ष गुरम्मर बैठि अमृत फल खाए। जन्म जन्म की भूल सो तुलें बुझाए।—कबीर (शब्द०)।

गुरम्मा—संज्ञा पुं० [हि० गुर्म्मा] दे० 'गुर्म्मा'।

गुरवार—संज्ञा पुं० [सं० गुरुवार] दे० 'गुरुवार'।

गुरवो—वि० [सं० गुर्व] घमंडी। अहंकारी। उ०—देहे कृष्ण ब्रह्मरी चरबी। गुरु के सरिस बुझावत गुरवी।—(शब्द०)।

गुरसल—संज्ञा पुं० [देश०] गिलगिलिया। सिरोंही। किलहंटी।

गुरसो—संज्ञा स्त्री० दे० [हि०] 'गोरसी' या 'बोरसी'।

गुरसुम—संज्ञा पुं० [देश०] सोनारों की एक प्रकार की छेनी।

गुरहा—संज्ञा पुं० [देश०] १. वह तस्ती जो छोटी नावों में अंदर की ओर दोनों सिरों पर जड़ा रहता है। इन्हीं तस्ती में से एक पर खेनेवाला मस्ल्लाह बैठता है। २. एक प्रकार की छोटी मछली जो प्रायः एक बालिशत लंबी होती है। यह उत्तर प्रदेश बंगाल और आसाम की नदियों में पाई जाती है।

गुराई—संज्ञा स्त्री० [हि० गोरई] दे० 'गुराई'।

गुराई—संज्ञा स्त्री० [हि० गोर] दे० 'गुराई'।

गुराउ—संज्ञा स्त्री० [हि० गुराव] दे० 'गुराव'।

गुराउ—संज्ञा पुं० [हि० गोर+गुर+आउ (प्रत्य०)] गुरापन। गुराई।

गुराव—संज्ञा पुं० [देश०] १. तोप लादने की गाड़ी। उ०—तिमि चरनाल और करनाल सुतरवाल जंजालें। गुर गुराव रहेंकले भले तहें लामे विपुल बयाने।—रघुराज (शब्द०)। २. वह बड़ी नाव जिसमें केवल एक मस्तूल हो (लक्ष०)।

गुरावा—संज्ञा पुं० [हि० गुरिया] १. चौपायों को खिलाने के लिये चारा टुकड़े टुकड़े करने की क्रिया। २. वह हथियार जिससे चारा काटा जाता है। गेंडासा।

गुरिदा—संज्ञा पुं० [क्रा० गोर्द+वह्] गुप्तचर। भेदिया। गोर्दा। जैसे—कोतवाल तथा उनके गुरिदों ने छेदालाल जी का जीवन भारभूत कर दिया।—प्रताप (शब्द०)।

गुरिदा—संज्ञा पुं० [क्रा० गुर्ज] १. गदा।—(शब्द०)। उ०—बाँधे धायुधि गुरिद सवाई। महि पर पटकत भरि मर जाई।—रघुराज (शब्द०)। २. गुर्ज।

गुरिख—संज्ञा पुं० [श्रु०] १. किलकिला की आति का एक पक्षी जो जलाशयों के निकट रहता है और मछली खाता है। इसे नदामी कहते हैं। २. कचनार का पेड़।

गुरिया—संज्ञा स्त्री [सं० गुरिका] १. वह बाना, भक्का या गठ जो किसी प्रकार की माला या लड़ी का एक अंग हो। जैसे—माला की गुरिया, रीढ़ की गुरिया, माँग की गुरिया आदि। २. बीकोर या मोल छोटा टुकड़ा जो काटकर भलग गया हो। बटा हुआ छोटा खंड। ३. मांस का छोटा टुकड़ा। बोटी।

गुरिया—संज्ञा स्त्री [श्रु०] १. दरी घुनने के करघ की वह बड़ी लकड़ी या सहतीर जिसमें बै या बाँध लगा रहता है। इसे झिलन भी कहते हैं। २. हेग या पोई की वह रस्सी जिसका एक सिरा हेग में और दूसरा बैलों की गरदन के पास गुए के बीच में बँधा रहता है।

गुरिल्ला—संज्ञा पुं० [प्र० गोरिल्ला] दे० गोरिल्ला।

गुरीरा—वि० [हि० गुरु + ईरा (प्रत्य०)] १. गुरु का या मीठा। २. सुंदर। बढ़िया। उत्तम। उ०—मूर परग सों भयो गुरीरा।—जागसी (शब्द०)।

गुरु—वि० [गं०] [संज्ञा गुरुच, गुरुता] १. लंबे चौड़े आकारवाला। बड़ा। २. भारी। वजनी। जो तौल में अधिक हो। ३. कठिनता से पकने या पचनेवाला (खाद्य पदार्थ)। ४. जोड़ा (हि०)। ५. पूजन्य (को०)। ६. महत्वपूर्ण (को०)। ७. कठिन (को०)। ८. दीर्घमात्रावाला (वर्ण) (को०)। ९. प्रिय (को०)। १०. तीव्रनापूर्ण (को०)। ११. सामान्य (को०)। सर्वोत्तम। सुंदर (को०)। १२. दंपण (बात)। १३. अदमनीय (को०)। १४. शक्तिशाली। बलवान् (को०)। १५. गुरुत्ववान् (को०)।

गुरु—संज्ञा पुं० [मं०] [को० गुरुआनी] १. देवताओं के आचार्य बृहस्पति। २. बृहस्पति नामक ग्रह।

यी०—गुरुवार।

३. मुख्य नक्षत्र जिसके अधिपत्या बृहस्पति हैं। ४. अपने अपने गुरु के अनुसार यज्ञोपवीत आदि मन्त्रधार करनेवाला, जो गायत्री मंत्र का उपदेष्टा होता है। आचार्य। ५. किसी मंत्र का उपदेष्टा। ६. किसी विद्या या कला का शिक्षक। सिखाने, पढ़ाने या बतलानेवाला। उन्नाद।

यी०—गुरुकुल। गुरुगृह = गुरुकुल।

७. दो मात्राधोवाला अक्षर। दीर्घ अक्षर जिसकी दो मात्राएँ या कलाएँ गिनी जाती हैं। जैसे—गग मे रा।—(पिंगल)।

विशेष—समुक्त अक्षर के पहचानेवाला अक्षर (संयु होने पर भी) गुरु माना जाता है। पिंगल में गुरु वर्ण ता सकते हैं। अनुस्वार और विसर्गयुक्त अक्षर भी गुरु ही माने जाते।

८. वह ताल जिसमें एक शेष या दो साधारण मात्राएँ हों।

विशेष—पिंगल के गुरु की भाँति ताल के गुरु का चिह्न भी ७ ही है।—(संगीत)।

९. वह व्यक्ति जो विद्या, बुद्धि, बल, वय या पद में सबसे बड़ा हो।

यी०—गुरुजन। गुरुवर्य।

१०. ब्रह्मा। ११. विष्णु। १२. शिव। १३. कौंछ। १४. पिता (को०)। १५. द्रोणाचार्य (को०)।

गुरुअई—संज्ञा स्त्री [हि० गुरु + अई (प्रत्य०)] दे० 'गुरुआई'।

गुरुआइन—संज्ञा स्त्री [मं० गुरु + आइन (प्रत्य०)] १. गुरु की स्त्री। २. वह स्त्री जो शिक्षा देती हो।

गुरुआई—संज्ञा स्त्री [मं० गुरु + आई (प्रत्य०)] १. गुरु का धर्म। २. गुरु का कृत्य। गुरु का काम। ३. चालाकी। धूर्तता।

गुरुआनी—संज्ञा स्त्री [हि० गुरु + आनी (प्रत्य०)] दे० 'गुरुआइन'।

गुरुकंठ—संज्ञा पुं० [मं० गुरुकण्ठ] मयूर। मोर (को०)।

गुरुकार्य—संज्ञा पुं० [गं०] कोई गंभीर कार्य। गंभीर महत्व का कार्य। २. आध्यात्मिक गुरु का कार्य। आचार्य का कार्य अथवा आचार्य का पद (को०)।

गुरुक—वि० [मं०] १. छोटा। भारी। २. दीर्घ (पिंगल) (को०)।

गुरुकार—संज्ञा पुं० [गं०] उपासना। पूजा (को०)।

गुरुकुंडली—संज्ञा स्त्री [सं० गुरुकुण्डली] फलित ज्योतिष में एक चक्र।

विशेष—इसके द्वारा जन्मनक्षत्र के अनुसार एक एक वर्ष के लिये अधिपति ग्रह का निश्चय किया जाता है। इस चक्र के मध्य में गुरु अर्थात् बृहस्पति स्थित होते हैं और उनके आठ और आठ ग्रह स्थित होते हैं। इसी से इस चक्र को गुरुकुंडली कहते हैं।

गुरुकुल—संज्ञा पुं० [गं०] १. गुरु, आचार्य या शिक्षक के रहने का वह स्थान जहाँ वह विद्यार्थियों को अपने साथ रखकर शिक्षा देता हो। गुरुगृह।

विशेष—प्राचीन काल में भारतवर्ष में यह प्रथा थी कि गुरु और आचार्य लोग साधारण अनुष्ठानों के निवासस्थान से बहुत दूर एकान्त में रहने थे और लोग अपने बालकों को शिक्षा के लिये वही भज देते थे। वे बालक, जबतक उनकी शिक्षा समाप्त न होती, वहीं रहने थे। ऐसे ही स्थानों को गुरुकुल कहते थे।

२. प्राचीन गरिपाटी के रहने सहन का विद्यालय।

गुरुकृत—वि० [मं०] १. पूजित। मानित। २. अत्यधिक किया हुआ (को०)।

गुरुकर्म—संज्ञा पुं० [मं०] गुरुवरं परा द्वारा दी जानेवाली शिक्षा (को०)।

गुरुगंधर्व—संज्ञा पुं० [मं० संगीत शास्त्र में गुरुगन्धर्व] इद्रताल के छह भेदों में से एक भेद।

गुरुगृह—संज्ञा पुं० [मं०] १. गुरुकुल। २. धनु और मीन नामक राशियाँ (को०)।

गुरुघ्न—संज्ञा पुं० [मं०] १. वह पापी जिसने अपने किसी गुरुजन को मार डाला हो। गुरु को मार डालनेवाला व्यक्ति। २. सफेद सरसों (को०)।

गुरुघ्न—वि० गुरु या गुरुजन को मार डालनेवाला (को०)।

गुरुच—संज्ञा स्त्री [मं० गुरुचो] एक प्रकार की मोटी बेल जो रस्सी के रूप में बहुत दूर तक चमी जाती है।

विशेष—यह बेल पेड़ों पर चढ़ी मिलती है और बहुत दिनों तक रहती है।

हमकी पत्तियाँ पान के आकार की गोल गोल होती हैं। इसकी गाँठों में से जटाएँ निकलती हैं जो बढ़कर जड़ पकड़ लेती हैं। गुरुच दो प्रकार की देखने में आती है। एक में फल नहीं लगते। दूसरी में गुच्छों में मकोय की तरह के फूल, फल लगते हैं और उसके पत्ते कुछ छोटे होते हैं। गुरुच के डंठल का आयुर्वेदिक औषधियों में बहुत प्रयोग होता है। वैद्यक में गुरुच तिक्त, उष्ण, मलरोधक, अग्निदीपक तथा ज्वर, दाह, वमन, कोढ़ आदि को दूर करनेवाली मानी जाती है। नीम पर की गुरुच दवा के लिये अच्छी मानी जाती है। इसे घूटकर इसका सत भी बनाते हैं। ज्वर में इसका काढ़ा बहुत दिया जाता है।

पर्या०—गुरूची । अमृतवल्ली । कुंडली । मधुपर्णी । सोमवल्ली । विशल्या । तन्त्री । निर्जरा । वत्सादनी । छिन्नरुहा । अश्वत्ता । जीवतिका । उद्धारा । बरा । ज्वरारि । झ्यावा । चक्रांगी । मधुपर्णिका । रसायनी । छिन्ना । भिषक्प्रिया । चन्द्रहासा । नागकुमारिका । छपा ।

गुरुच खाप—संज्ञा पुं० [सं०] बहुक्षयों का रंटे की तरह का एक औजार जिससे लकड़ी गोल की जाती है।

गुरुचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुरु की सेवा [को०]।

गुरुचांद्री—वि० [सं० गुरुचान्द्रोय] गुरु और चंद्रमाकृत । जो गुरु और चंद्रमा के योग से होता हो (ज्योतिष)।

विशेष—ज्योतिष में गृहस्पति और चंद्रमा का कर्कराशि में होना ही गुरुचांद्री योग कहलाता है। जिसकी जन्मकुंडली में यह योग लग्न या दशम स्थान में पड़ता है वह दीर्घजीवी और भाग्यवान् होता है।

गुरुज(पुं०)—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुरुज] दे० 'गुरुज'। उ०—तीसर लड़ग कूंड पर लाया। कांध गुरुज हुत घाव न भावा।—जायसी (शब्द०)।

गुरुजन—संज्ञा पुं० [सं०] बड़े लोग । माता पिता, आचार्य आदि।

गुरुदम—संज्ञा पुं० [मं० गुरु + दम (प्रत्य०)] गुरुमाई का दम।

गुरुतल्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. विभाता से गमन करनेवाला पुरुष।

विशेष—मनु ने ऐसे पुरुष को महापातकी लिखा है और उसके लिये यही प्रायश्चित्त या दंड लिखा है कि वह या तो लोहे के जलते हुए वरतन में सोकर या लोहे की जलती हुई स्त्री का आलिंगन करके मर जाए।

२. गुरु की शोभा (पत्नी) (को०)।

गुरुतल्पग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गुरुतल्प'।

गुरुतल्पी—संज्ञा पुं० [सं० गुरुतल्पिन] दे० 'गुरुतल्प' [को०]।

गुरुता—संज्ञा स्त्री० [मं०] १. गुरुत्व । भारीपन । २. महत्त्व । बड़प्पन । ३. गुरुपन । गुरु का कर्तव्य । गुरुमाई।

गुरुताई—संज्ञा स्त्री० [सं० गुरुता + ई (प्रत्य०)] दे० 'गुरुता'।

गुरुताल—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत का एक ताल [को०]।

गुरुतोमर—संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जो तोमर छंद के अंत में दो मात्राएँ रख देने से बन जाता है। जैसे,—सल और प्रसेन पुकारि कै । सरते भये धनु धारि कै।

गुरुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. भारीपन । वजन । बोझ।

विशेष—पदार्थ विज्ञान के अनुसार पदार्थों का गुरुत्व वास्तव में उस वेग या शक्ति की मात्रा है जिससे वह पृथ्वी की आकर्षण शक्ति द्वारा नीचे की ओर जाता है। वेग की इस मात्रा में उस अंतर का भी विचार कर लिया जाता है जो प्रक्ष पर घूमती हुई पृथ्वी के उस वेग के कारण पड़ता है जिससे वह पदार्थों को (केंद्र से) बाहर हटाती है। अतः आकर्षण वेग की मात्रा समुद्रतल और क्रांति वृत्त पर ३८५.१ और ध्रुव पर ३८७.१ इंच प्रति सेकंड होती है। यह गुरुत्व वेग समुद्रतल पर की अपेक्षा पहाड़ों पर कुछ कम होता है, अर्थात् उसमें प्रति दो मील की ऊँचाई पर सहस्रांश की कमी होती जाती है। किसी पदार्थ का वजन जितना क्रांतिवृत्त पर तोलने से होगा उससे ध्रुव पर उसे ले जाकर तोलने से १/२५ वां भाग अधिक रहेगा। वैशेषिक सूत्र में रूप, रस आदि केवल १७ गुण बतलाए हैं पर प्रणस्तपाद आध्य में गुरुत्व, द्रवत्व आदि ६ गुण और बतलाए हैं। गुरुत्व को मूलतः और सामान्य गुण माना है, अर्थात् ऐसा गुण जो पृथ्वी, जल, वायु आदि स्थूल या सूक्ष्म द्रव्यों में पाया जाता है तथा जो अनेक ऐसे द्रव्यों में रहता है। प्राचीन नैयायिक केवल जल और मिट्टी में ही गुरुत्व मानते थे। उनके मत से तेज, वायु आदि में गुरुत्व नहीं। सांख्य मतवाले गुरुत्व को तमोगुण का धर्म मानते हैं, सत्व या रजोगुण में गुरुत्व नहीं मानते। आजकल की परीक्षाओं द्वारा वायु आदि का गुरुत्व अच्छी तरह सिद्ध हो गया है।

२. महत्त्व । बड़प्पन । ३. गुरु का काम।

गुरुत्वकेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० गुरुत्वकेन्द्र] पदार्थ विज्ञान में पदार्थों के बीच वह बिंदु जिसपर यदि उस पदार्थ का सारा विस्तार समेटकर आ जाय तो भी गुरुत्वाकर्षण में कुछ अंतर न पड़े। किसी पदार्थ में वह बिंदु जिसपर समस्त वस्तु का भार एकत्र हुआ और कार्य करता हुआ मान सकते हैं।

विशेष—इस गुरुत्वकेंद्र का पता कई रीतियों से लग सकता है। वृत्ताकार या गोल वस्तुओं का केंद्र ही गुरुत्वकेंद्र होता है। पर बेडोल या विस्तार की वस्तुओं में गुरुत्वकेंद्र वह होता है जिसे किसी नोक पर टिकाने से वह पदार्थ ठीक ठीक तुल जाय, इसपर उधर झुका न रहे। प्रत्येक तराजू या तुला में इस प्रकार का गुरुत्वकेंद्र होता है।

गुरुत्वलंब—संज्ञा पुं० [सं० गुरुत्वलम्ब] वह रेखा जो किसी पदार्थ के गुरुत्वकेंद्र से नीचे की ओर खींची जाय।

गुरुत्वाकर्षण—संज्ञा पुं० [मं०] वह आकर्षण जिसके द्वारा भारी वस्तुएँ पृथ्वी पर गिरती हैं।

विशेष—इस आकर्षण शक्ति का थोड़ा बहुत पता भास्कराचार्य को १२०० संवत् में लगा था। उन्होंने अपने सिद्धांत

गिरोमणि में स्पष्ट लिखा है—'आकृष्टशक्तिरथ मही तथा यत् कस्यं गुरुस्वाभिमुखं स्वशक्त्या । आकृष्टते तत्पततीव भाति, सये समंतात् नव पतस्त्रियं खे ।' अर्थात् पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है इसी से वह आकाशस्थ (निराधार) भारी पदार्थों को अपनी ओर खींचती है; जो पदार्थ गिरते हैं वे पृथ्वी के आकर्षण से ही गिरते हैं । योरप में गुरुत्वाकर्षण के मिट्टात का पता सन् १६८७ ई० में न्यूटन को लगा । उसने अपने बगीच में पेड़ से फल नीचे गिरते देखा । उसने सोचा कि यह फल जो ऊपर या भगल बगल की ओर न जाकर नीचे की ओर गिरा उसका कारण पृथ्वी की आकर्षण शक्ति है । इस आकर्षण की विशेषता है कि यह उत्पन्न ओर नष्ट नहीं किया जा सकता और न कोई व्यवधान बीच में पड़ने से उसमें कुछ रुकावट या धीर बालना है ।

गुरुदक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [मं०] विद्या पढ़ने पर जो दक्षिणा गुरु को दी जाय । आचार्य को दी जानेवाली भेंट ।

विशेष—जब लोग गुरु के पास विद्या पढ़ने जाते थे तब घर आने के समय गुरु को बही दक्षिणा देते थे जो गुरु माँगें और गुरु का भरण पूरा कर स्नातक की पदवी पाकर गृहस्थ होते थे ।

गुरुदैवत—संज्ञा पुं० [मं०] पुण्य नक्षत्र ।

गुरुद्वारा—संज्ञा पुं० [मं० गुरु + द्वार] १. गुरु का स्थान । आचार्य या गुरु के रहने की जगह । २. सिलों का मंदिर या मठ ।

गुरुपत्र, गुरुपत्रक—संज्ञा पुं० [मं०] बंग धातु या रंगी [को०] ।

गुरुपत्रा—संज्ञा स्त्री० [मं०] इमली का पेड़ [को०] ।

गुरुपाक—वि० [मं०] जो ठीक से न पच सके । देर से पचनेवाला [को०] ।

गुरुपुण्य—संज्ञा पुं० [मं०] बृहस्पति के दिन पुण्य नक्षत्र के पड़ने का योग । ज्योतिष में यह एक अच्युत योग माना जाता है ।

गुरुपूर्णिमा—संज्ञा स्त्री० [मं०] आषाढ मास की पूर्णिमा जिस दिन गुरु की पूजा होती है [को०] ।

गुरुबला—संज्ञा स्त्री० [मं०] संकीर्ण राग का एक भेद ।

गुरुबिनी(प)—संज्ञा पुं० [मं० गुरुबिनी] दे० 'गुरुबिनी' ।

गुरुभ—संज्ञा पुं० [मं०] १. पुण्य नक्षत्र । २. मीन राशि । ३. धन राशि ।

गुरुभाई—संज्ञा पुं० [मं० गुरु + हि० भाई] दो या दो से अधिक ऐसे गुरुज जिनमें से प्रत्येक का गुरु वही हो जो दूसरे का । एक ही गुरु के शिष्य ।

गुरुभाष—संज्ञा पुं० [मं०] १. महारथ । बडप्पन । २. भार [को०] ।

गुरुमंत्र—संज्ञा पुं० [मं० गुरुमंत्र] गुरु का दिया हुआ मंत्र [को०] ।

गुरुमर्दल—संज्ञा पुं० [मं०] एक प्रकार का डोल या नगाडा [को०] ।

गुरुमुख—वि० [मं० गुरु + मुख] दीक्षित । जिसने गुरु से मंत्र लिया हो ।

कि० प्र०—करना ।—होना ।

गुरुमुखी—संज्ञा स्त्री० [मं० गुरु + मुखी] गुरु नानक की बनाई हुई एक प्रकार की लिपि ।

विशेष—यह पंजाब में प्रचलित है और देवनागरी का परिवर्तित रूप माना है ।

गुरुवर्ति, गुरुवर्तिता—संज्ञा स्त्री० [मं०] गुरु या गुरुजन के प्रति समानपूर्ण आचरण ।

गुरुरत्न—संज्ञा पुं० [मं०] १. पोखराज नाम का रत्न । २. गोमेद नाम का रत्न ।

गुरुवर्चोद्धन—संज्ञा पुं० [मं०] ज्ञान [को०] ।

गुरुवर्ती—संज्ञा पुं० [मं० गुरुवर्तिन्] वह ब्रह्मचारी जो गुरु के यहाँ निवास करता हो [को०] ।

गुरुवार—संज्ञा पुं० [मं०] बृहस्पति का दिन । बृहस्पति । बीफे । समाह का पाँचवाँ दिन ।

विशेष—बृहस्पति जी देवनाग्री के गुरु थे इसी से गुरु शब्द से बृहस्पति का ग्रहण होता है ।

गुरुवासर—संज्ञा पुं० गुरुवार । बीफे ।

गुरुवासी—संज्ञा पुं० [मं० गुरुवासिन्] गुरुगृह में रहनेवाला शिष्य । भतेवासी [को०] ।

गुरुवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [मं०] १. शिष्य का गुरु के प्रति कर्तव्य । २. गुरुभाई [को०] ।

गुरुव्यथ—वि० [मं०] अत्यधिक दुःखी [को०] ।

गुरुशिखरी—संज्ञा पुं० [मं० गुरुशिखरिन्] हिमालय [को०] ।

गुरुश्रुति—संज्ञा स्त्री० [मं०] मंत्रस्वरूपा गायत्री [को०] ।

गुरुसमुत्थ—वि० [मं०] जोहित्य अर्थशास्त्र में कथित (राष्ट्र या राजा) जो लड़ाई के लिये बड़ी मुश्किल से तैयार हो ।

गुरुसिंह—संज्ञा पुं० [मं०] एक पर्व जो उस समय लगता है जब बृहस्पति सिंह राशि पर आता है । उ०—सुनो प्रभास महात्म राजा । अथ कहँ हरत पुन्य कर ताजा । गोदावरि गुरुसिंह नहाई । कुंभ माहि हवि दोत्र गुहाई ।—गि० दा० (शब्द०) ।

विशेष—इस पर्व में नासिक क्षेत्र की यात्रा और गोदावरी नदी का स्नान पुण्य समझा जाता है ।

गुरुस्व—संज्ञा पुं० [मं०] गुरु की मंषति [को०] ।

गुरू—संज्ञा पुं० [मं० गुरु] गुरु । अध्यापक । आचार्य ।

यौ०—गुरुघंटाल = (१) बड़ा भारी चालाक । अत्यंत चतुर । (२) भूत । चालबाज ।

गुरेट—संज्ञा पुं० [हि० गुर, गुड़ + बेट] चार पाँच हाथ के डंडे में लगा हुआ एक प्रकार का बेलन जिससे कटाह में पकता हुआ ईस का रस चलाया जाता है ।

गुरेरना—क्रि० म० [मं० गुरु = बड़ा + हेरना = ताकना] आँखें फाड़कर देखना । घूरना ।

यौ०—गुरेरा गुरेरी = एक दूसरे को क्रोध से देखना ।

गुरेरा(पु)—संज्ञा पुं० [हि० गुलेरा] दे० 'गुलेरा' । उ०—वेई गड़ि गाई परो जपटयो हार हिय न । आन्यो मोरि मतंग मनु भारि गुरेरनि गैत ।—बिहारी (शब्द०) ।

गुर्ग—संज्ञा पुं० [फार०] भेडिया ।

गुर्गशाशनाई—संज्ञा स्त्री० [फार०] कपटपूर्ण मित्रता । ऊपर से मित्रता भीतर से छल ।

गुर्गा—संज्ञा पुं० [हि० गुरगा] दे० 'गुरगा'।

गुर्ज—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुर्ज] गदा। सोटा। उ०—कोह कूकर गूकर पर कोई। कर में गुर्ज भयानक सोई।—(रघुनाथ शब्द०)।

यौ०—गुर्जदार = गदाधारी सैनिक।

गुर्ज—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुर्ज] कोट या शहरपनाह की दीवार का वह स्थान जो कुछ गोलाकार बना दिया जाता है। यहाँ पर घोडाओं के लिये विशेष भोट होती है जिसमें छिपे छिपे वे आक्रमणकारी शत्रु पर वार कर सकते हैं। गुर्जा। बुरज। उ०—कंचन कोट कंगूरे कलशा गोपुर गुर्ज दुआरा।—रघुराज (शब्द०)।

गुर्जना—क्रि० सं० [हि० गजना] १. गजना। गजन करना। २. डाटना फटकारना।

गुर्जबरदार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] गदाधारी सैनिक।

गुर्जमार—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुर्ज + हि० मार] एक प्रकार के मुसलमान फकीर जो लोहे का गुर्ज लिए रहते हैं।

विशेष—ये दूकानों पर माँगते फिरते हैं। यदि वे कहीं कुछ नहीं पाते हैं तो उसी गुर्ज से वे अपनी छाँख या और किसी वस्तु पर आघात करते हैं। इन्हें मुँडालिरे भी कहते हैं।

गुर्जर—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुजरात देश। २. गुजरात देश का निवासी। ३. एक जाति। गुजर।

गुर्जराट—संज्ञा पुं० [सं० गुर्जर + राष्ट्र] गुजरात देश।

गुर्जरो—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुजरात देश की स्त्री। २. भेरव राग की स्त्री।

विशेष—यह संपूर्ण जाति की रागिनी है। इसमें तीव्र मध्यम और शेष सब स्वर कोमल लगते हैं। यह रामकली और ललित को मिलाकर बनती है। इसके गाने का समय दिन में १० दंड से १६ दंड तक है। ३. गुजर जाति की स्त्री (कौ०)।

यौ०—गुर्जरी टोड़ी = संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

गुर्जी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुर्ज का प्रत्यय] छोटा गुर्ज।

गुर्द—संज्ञा पुं० [फ्रा०] गुर्दिस्तान का निवासी।

गुर्दा—संज्ञा पुं० [हि० गुरदा] दे० 'गुरदा'।

गुर्दिस्तान—संज्ञा पुं० [फ्रा०] फारस के उत्तर का एक प्रदेश जिसका कुछ भाग आजकल रूस राज्य के अंतर्गत पड़ता है। इसे कुदिस्तान भी कहते हैं।

गुर—संज्ञा स्त्री० [अनु० या हि० गुराना] गुराहिट।

गुरी^१—संज्ञा पुं० [हि० गुरी] वह रस्सी जिससे धुनिया धनुही का फरहा कसते हैं।

गुरी^२—संज्ञा पुं० [देश०] १. चीन। चुप्पी। सन्नाटा।

क्रि० प्र०—खींचना = सं० मारना। दम साधना।

गुरी^३—संज्ञा पुं० [अ० गुरह्] १. गुरुग्रह महीने की द्वितीया का चाँद। द्वितीया तिथि। २. तातील। नागा।

मुद्दा—गुरा करना = (१) तातील करना। छुट्टी करना। (२) लंघन करना। फाका करना। गुरा देना = (१) नागा करना।

(२) लंघन करना। फाका करना। गुरा बताना = (१) तातील का बाधा करना। (२) नागा करना। (३) लंघन करना। (४) टालटूल करना।

गुरी^४—संज्ञा पुं० [अनु०] ऐठन। मोड़। मरोड़।

क्रि० प्र०—देना = उमेठना। मरोड़ देना।

गुरादार—वि० [हि० गुरा + फ्रा० दार (प्रत्यय)] ऐठनदार। मरोड़दार।

गुराना—क्रि० प्र० [अनु०] क्रोधवशात् गले से भारं। आवाज निकालना। डराने के लिये धुर धुर की तरह गभीर शब्द करना। (जैसा, कुत्ते बिल्ली आदि करते हैं।) जैसे,—कुत्ता गुराकर चढ़ बैठा। २. क्रोध या अभिमान के कारण भारी और कर्कश स्वर से बोलना। जैसे,—तुम काम भी बिगाड़ते हो और कहने से गुराते हो।

गुराहिट—संज्ञा स्त्री० [हि० गुराना] गुराने की क्रिया।

गुरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] भुने हुए जी।

गुरावित्य—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य और बृहस्पति का एक राशि पर गमन। गुवंस्त।

विशेष—विवाह आदि शुभ कार्य इस योग में वर्जित है।

गुराणी—वि० स्त्री० [सं०] १. समर्था। गर्भवती। उ०—प्रियतमा पतिदेवता जेहि उमा रमा सिहाहि। गुराणी सुकुमारि सिय तियमणि समुक्ति सकुचाहि।—तुलसी (शब्द०)। २. बड़ी या श्रेष्ठ स्त्री (कौ०)। ३. गुरु की पत्नी (कौ०)।

गुरी^१—वि० स्त्री० [सं०] गर्भवती। गर्भिणी।

गुरी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बड़ी या श्रेष्ठ स्त्री। उ०—निगम आगम प्रगम गुरी तब गुण कथन उर्विधर करत जेहि सहस जीहा।—तुलसी (शब्द०)। २. गर्भिणी। अंतःस्रवा। ३. गुरुपत्नी (कौ०)।

गुलच—संज्ञा पुं० [सं० गुलच्छ] एक प्रकार का कंद।

गुलचा—संज्ञा पुं० [सं० गुच्छ] दे० 'गुच्छ'।

गुलदाज(डु)—संज्ञा पुं० [हि० गोलदाज] दे० 'गोलदाज'।

गुल^१—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. गुलाब का फूल।

यौ०—गुलकव। गुलरोमन।

२. फूल। पुष्प।

यौ०—गुलदान। गुलबस्ता। गुलकारी, आदि।

मुद्दा—गुल खिलना = (१) विचित्र घटना होना। अद्भुत बात होना। ऐसी बात होना जिसका अनुमान पहले से लोगों को न हो। मजेदार बात होना। कोई ऐसी घटना होना जिससे लोगों को कुतूहल हो। (२) बखेड़ा खड़ा होना। उपद्रव मचाना। जैसे,—हमने उसकी माँग करतूत उसके घर कह दी है, देखो कैसा गुल खिलता है। गुल खिलाना = (१) विचित्र घटना उपस्थित करना। ऐसी बात उपस्थित करना जिसका अनुमान पहले से लोगों को न हो। (२) बखेड़ा खड़ा करना। उपद्रव मचाना। गुल कतरना = (१) कागज या कपड़े आदि के बेल बूटे बनाना। (२) कोई विलक्षण या अनोखा काम करना। गुल खिलाना।

३. पशुओं के शरीर में फूल के आकार का भिन्न रंग का गोम भाग ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

४. फूल के आकार का वह गद्दा जो फूलों के हंसने आदि के समय पड़ता है ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

५. वह चिह्न जो अनुप या पशु के शरीर पर गरम की हुई धातु आदि के लागने से पड़ता है । दाग । छाप ।

मुहा० गुल क्षमता - अपने शरीर पर गरम धातु से दगजाना ।

क्रि० प्र०—दागना ।—देना ।

६. दीपक आदि में बत्ती का वह अंश जो बिलकुल जल जाता है ।

क्रि० प्र०—काटना ।—भाड़ना ।—पड़ना ।

यौ०—गुलगौर = चिराग का गुल काटने की कैंची ।

मुहा०—(चिराग) गुल करना = (चिराग) बुझाना या ठंडा करना । (चिराग) । गुल होना = (चिराग) बुझना ।

७. तमाकू का वह जला हुआ अंश जो चिलम पीने के बाद बच रहता है । जट्टा । ८. तूना के तले का वह अण्डा जो पड़ी के नीचे रहता है और जिरांगे नाल आदि लगाई जाती है । जूने का पान ।

क्रि० प्र०—लगाना ।—जड़ना ।

८. कारचोबी की चगी हुई फूल के आकार की बड़ी टिकुली जिसे कहीं कहीं स्त्रियाँ गुदरना के लिये कनपटी पर लगाती हैं ।
१०. फूलों की वह गोम बिंदी जो फूलों के हंसने के समय उनकी लाली दूर करने के लिये कनपटियों पर लगाते हैं ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

११. किसी चीज पर बना हुआ भिन्न रंग का कोई गोम निशान ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—बनना ।

१२. घाँस का डेला । १३. एक प्रकार का रंगीन या चमकता गाना । १४. जलना हुआ कोयला । अंगारा ।

मुहा०—गुल बंधना (१) आग का अच्छी तरह गुलन जाना ।
(२) पाग में कुछ धन हो जाना । कुछ पूँजी हो जाना ।

१५. कोयले या गोबर का बना हुआ छोटा गोला जिसे आग को अधिक देर तक रखने के लिये अंगोठी आदि में गल के नीचे गाड़ देते हैं । १६. मुंदगी स्त्री । नायिका ।

गुल^१ संज्ञा पुं० [फा०] १. हलवाई का भट्ठा । २. सेतों में बहुत दूर तक पानी ले जाने के लिये बना हुआ वह बरहा जो जमीन से कुछ ऊँचा होता है । ३. घाँस और कान के बीच का स्थान । कनपटी । उ०—गुल तामु गोली सो फुटी । कर की न बाग मऊ छुटी ।—गूदन (शब्द०) ।

गुल^२—संज्ञा पुं० [फा०] १. गुड । २. लिग या शिशन का अग्र भाग । ३. भगनासा [क्री०] ।

गुल^३—संज्ञा पुं० [फा० गुल] शोर । हल्ला ।

यौ०—गुलगाड़ा ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।

गुलअंदास—संज्ञा पुं० [फा०] फूल जैसा कोमल । मृदुल । पुष्पांगी । पुष्पांगना ।

गुलअकीक—संज्ञा पुं० [फा० गुल + अ० अकीक] एक प्रकार का फूलदार पौधा ।

विशेष—इसके बीसियों भेद पाए जाते हैं । यह प्रायः फाल्गुन, चैत या सावन भादों में लगाया जाता है ।

गुलअजायब—संज्ञा पुं० [फा० गुल + अ० अजायब < अजीब का बहु०] १. एक प्रकार का फूल । इस फूल का पौधा ।

गुल अनार—संज्ञा पुं० [फा०] अनार का फूल ।

गुल अब्बास—संज्ञा पुं० [फा० गुल + अ० अब्बास] अब्बास नाम का पौधा । जिसमें बरसात के दिनों में लाल या पीले रंग के फूल लगते हैं ।

गुल अब्बासी—संज्ञा पुं० [फा० गुल + अब्बास + ई (प्रत्य०)] हल्की रंगीली लिए हुए एक प्रकार का गुलना लान रंग ।

विशेष—यह ४ छँटाक गहाब के फूल, ३ छँटाक आम की गटाई और ८ मांसे नील के मिलाने से बनता है । इसमें यदि नील की मात्रा बढ़ाते जायें तो प्रमणः कशादिया, किरमिजी, प्रबोरी और सीमरी रंग बनता जाता है ।

गुल अशर्फी—संज्ञा पुं० [फा० गुल अशर्फी] एक प्रकार का पीले रंग का फूल ।

गुल आतशी—संज्ञा पुं० [फा०] गहरे लाल रंग का गुलाब ।

गुलउर—संज्ञा पुं० [हि० गुलौर] दे० 'गुलौर' ।

गुल औरंग—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का गेंदा ।

गुलकंद—संज्ञा पुं० [फा० गुलकंद] मिर्ची या चीनी में मिली हुई गुलाब के फूलों की पशुरियाँ जो धूप की गरमी से पकाई जाती हैं । इनका व्यवहार प्रायः दस्त बाफ लाने के लिये होता है ।

विशेष—सेवती के फूलों का जो गुलकंद बनता है उसकी तामीर ठीकी होती है । इसमें विशेषता यह है कि इसे चंद्रमा की चादनी में सिद्ध करते हैं ।

गुलकट—संज्ञा पुं० [फा० गुल + हि० काटना] शीशम की लकड़ी का बना हुआ छींगियों का एक प्रकार का टप्पा जिससे कपड़े पर बेल बूँटे छापे जाते हैं ।

गुलकदा—संज्ञा पुं० [फा० गुलकदह] १. फुलवारी । बगीचा । २. वह घर जहाँ अत्यधिक फूल हों ।

गुलकार—संज्ञा पुं० [फा०] किसी प्रकार के बेल बूँटे बनानेवाला कारीगर ।

गुलकारी—संज्ञा पुं० [फा०] १. किसी प्रकार के बेलबूँटे या फूल पत्ती इत्यादि बनाने, नराने या काढ़ने का काम । २. कोई ऐसा काम जिसमें बेल बूँटे आदि बन हों ।

गुलकेश—संज्ञा पुं० [फा० गुल + केश] १. मुर्गकेश का पौधा । कलगा । २. मुर्गकेश या कलगे का फूल । उ०—जो गुलकेश के फूल सराहैं । मैं वुरीन के जीन भवाहैं ।—गुमान (शब्द०) ।

गुलखन—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुलखन] १. भट्ठी । भाड़ । २. बूल्हा ।
गुलखैरू—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुल+खैरू] १. एक पौधा जिसमें नीले रंग के फूल लगते हैं । २. इस पौधे का फूल ।
गुलगचिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] 'गिलगिलिया' ।
गुलगपाड़ा—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुल+हि० गप्प] बहुत अधिक चित्लाहट । शोर । गुल । हल्ला ।
गुलगश—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] बाग की मीर ।
गुलगीर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] चिराग का गुन कतरने की कैंची ।
गुलगुल—वि० [हि० गुलगुल] नरम । मुलायम । कोमल ।
गुलगुला^१—वि० [हि० गुलगुला] कोमल । नरम । मुलायम ।
गुलगुला^२—संज्ञा पुं० [हि० गुल+गोला] १. एक प्रकार का पकवान ।

विशेष—यह लमीरी घाटे या मैदे के लड्डू के आकार के गोल टुकड़े बनाकर घी या तेल में पकाने से बनता है । यह प्रायः मीठा और कभी कभी नमकीन भी होता है ।

२. कनपटी । भ्रौंख और कान के बीच का वह स्थान जहाँ भ्रौंख के कुछ रोगों को रोकने के लिये गुल लगवाए जाते हैं ।

गुलगुला^३—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो प्रायः ऊसर जमीन में उगती है ।

गुलगुलाना^१—क्रि० भ० [हि० गुलगुल] १. किसी गूदेदार या उसी प्रकार की और किसी चीज को दबा या मलकर मुलायम करना । जैसे,—रस चूमने के लिये ग्राम गुलगुलाना । २. गुदगुदना ।

गुलगुलिया^१—संज्ञा पुं० [?] बंदर नवानेवाला । मदारी ।

गुलगुलिया^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पत्ती । गिलगिलिया ।

गुलगुली^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली ।

विशेष—यह हिमालय के झरनों में बहुत पाई जाती है और लगभग दो हाथ तक लंबी होती है । इसका मांस बहुत काँटदार होता है ।

गुलगुली^२—संज्ञा स्त्री० [हि० गुलगुलाना] दे० 'गुदगुदी' ।

गुलगुली^३—वि० [हि० गुलगुलाना] मुलायम । कोमल । उ०—
 झालरनदार झुकि झूमत बितान बिछे गहब गलीचा छर
 गुलगुली गिलमै ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ११७ ।

गुलगू—वि० [फ्रा०] गुलाबी रंग का । गुलाबी ।

गुलगूना—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुलगूनह] एक प्रकार का उबटन ।

विशेष—इसका व्यवहार स्त्रियाँ सोदर्यवृद्धि के लिये अपने चेहरे पर करती हैं ।

गुलगोथना—संज्ञा पुं० [हि० गुलगुल+तन] ऐसा नाटा मोटा आदमी जिसके गाल आदि अंग खूब फूले हों । वह जिसका शरीर खूब भरा और फूला हो ।

मुहा०—गुलगोथना सा = मोटा ताजा । फूले हुए गालवाला ।

गुलचाना^१—क्रि० स० [हि० गुलचा] गुलचा मारना ।

गुलचमन—संज्ञा पुं० [फ्रा०] फूलों का बाग ।

गुलचरम—संज्ञा पुं० [हि० गोधा+चलाना] गोला चलानेवाला । तोप दागनेवाला । तोपची ।

गुलचरम—वि० [फ्रा०] जिसकी छाँख में फूली हो ।

गुलचर्दानी—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुन+हि० चाँदनी] १. एक प्रकार का पौधा जिसमें फूल लगते हैं । २. इस पौधे का फूल जो रंगत में सफेद होता और प्रायः रात को खिलता है ।

गुलचा—संज्ञा पुं० [हि० गाल] हाथ की उँगलियों से या मुट्ठी बाँधकर धीरे से और प्रेमपूर्वक किया हुआ आघात ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।—पड़ना ।—मारना ।—लगाना ।

गुलचाना^२—क्रि० स० [हि० गुलचा+ना] गुलचा मारना या लगाना ।

गुलचियाना^१—क्रि० स० [हि० गुलचा] दे० 'गुलचाना' ।

गुलची—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. फूल चुननेवाला, माली । २. एक सदाबहार का फूल । ३. उक्त फूल का पेड़ ।

गुलची—संज्ञा स्त्री० [?] रंदि की तरह बढ़ियों का एक औजार जिससे लकड़ी में गलता बनाया जाता है ।

गुलचीन—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का वृक्ष ।

विशेष—यह कलम से लगाया जाता है और बारहों महीने फूलता है । इसका पेड़ बड़ा होता है और पत्ते बहुत कड़े तथा लंबे होते हैं ।

२. इस वृक्ष का फूल ।

विशेष—यह ऊपर से सफेद और भीतर की ओर कुछ पीले रंग का होता है और इसमें चार पंखुरियाँ होती हैं । कहते हैं, इस फूल को अधिक मूँघने से पीनस रोग हो जाता है ।

गुलचीनी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] फूल चुनना ।

गुलछर्रा—संज्ञा पुं० [हि० गोली+छर्रा] वह भोग विलास या चैन जो बहुत स्वच्छदतापूर्वक और अनुचित रीति से किया जाय ।

मुहा०—गुलछर्रा उड़ाना = निर्द्वंद्व रूप से अनुचित और बहुत भोग विलास करना ।

गुलजलील—संज्ञा पुं० [फ्रा०] प्रमदगर्ग का फूल जिससे रेशम रंगा जाता है और जो खुरासान से आता है ।

गुलजार^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० गुलजार] बाग । बाटिका ।

गुलजार^२—वि० हरा भरा । आनंद और शोभायुक्त । जो देखने में बहुत भला मामूँ हो । बहल पहल से भरा । जैसे,—इसके रहने से सारा महल्ला गुलजार रहता था ।

गुलफटी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोल+सं० फट = जमाव] १. तागे आदि की वह उलझन जो बैठकर गोली के आकार की हो जाती है । उलझन की गाँठ ।

मुहा०—गुलफटी पड़ना = जो में गाँठ पड़ना । मनोमालिन्ध्य होना । गुलफटी निकलना = मनोमालिन्ध्य दूर करना ।

२. सिकुड़न । शिकन ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—निकलना ।

गुलफडी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुलफटी] दे० 'गुलफटी' ।

गुलदास्ता—संज्ञा पुं० [दा०] गुल्ल।

गुलदास्ता—संज्ञा पुं० [दा०] १. वह कैंची जिससे चिराग का गुल काटते हैं। २. वह नोकरी जो चिराग का गुल काटती है। ३. वह कैंची जिससे पानी लोग बाग के पौधों को काटते या छाँटते हैं। बाग के पौधों का काटन छाँटनेवाला माली। ५. संगतराशों का वह भोजन जिसमें वे गन्धर्वों पर फूल पतिया बनाते हैं।

विशेष—इसका आकार नहरी का सा होता है और इसमें लकड़ी का दस्ता लगा रहता है।

गुलदा—संज्ञा पुं० [हि० गुल] मिट्टी की बनी हुई वह गोली जो गुलेले से छोड़ी जाती है।

गुलदुरा—संज्ञा पुं० [दा०] कलगा नाम के पौधे का फूल जो गहरे लाल रंग का होता है। मुमंकन। जटाधारी।

गुलदुम—संज्ञा स्त्री० [हि० गुल] उबाला हुआ चावल जो भान में अधिक गोला और गन्ना हो।

विशेष—यह प्रायः बच्चों और भेट के रोगियों को दिया जाता है।

गुलधी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुल + धी] पानी में ही पानी के बस्तुओं के गाड़ होकर स्थान स्थान पर जमने में बनी हुई गुठली या गोली।

गुलदास्ता—संज्ञा पुं० [दा० गुलदास्ता] १. एक भिन्न प्रकार से बाँगा हुआ कई प्रकार के गुँदर फूलों और पत्तियों का समूह जो सजावट या किसी को उपहार देने के काम में आता है। फूलों का गुच्छा। २. वह छोड़ा जिसका अगला बायाँ पैर गाँठ तक सफेद हो और दाहिने पैर का रंग पिछले दोनों पैरों के रंग के समान हो।

विशेष—ऐसा पोशा ऐसी नहीं समझा जाता।

गुलदावदी—संज्ञा स्त्री० [दा० गुल + दावदी] १. एक प्रकार का छोटा पौधा जिसमें लंबी कटावदार पत्तियों में भी उसके फूल की भाँति हलकी भोली गुलबु होती है।

विशेष—कानिफ अमलन में इसमें कई रंग के छोटे और बड़े फूल लगते हैं जो देखने में बहुत सुंदर होते हैं। वर्षा के पानी में यह पेड़ नष्ट हो जाता है इसलिये लोग इसे गमलों में लगाकर छाया में रखते हैं।

२. इस पौधे का फूल।

गुलदान—संज्ञा पुं० [दा०] गुलदास्ता रखने का पात्र।

विशेष—गुलदान प्रायः लंबोत्तम और लोनी मिट्टी, वाँच या इसी प्रकार के किसी और पदार्थ का बनाया जाता है। इसके ऊपर शोभा के लिये अच्छा पालिश करके रंग बिरंगे बेल बूटे बना देते हैं।

गुलदाना—संज्ञा पुं० [दा० गुलदान] बुंदिया नाम की मिठाई जिससे लड्डू भी बनते हैं।

गुलदार—संज्ञा पुं० [दा०] १. एक प्रकार का सफेद रंग का कस्तूर जिसपर लाल या काले रंग के छोटे छोटे कई चिह्न होते हैं। २. एक प्रकार का कसीया। ३. बीता।

गुलदार—संज्ञा पुं० जिसपर गोल फूल के आकार के कुछ चिह्न बने हों। फूलदार।

गुलदावदी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुलदावदी] दे० 'गुलदावदी'।

गुलदुपहरिया—संज्ञा पुं० [दा० गुल + हि० दुपहरिया] १. एक प्रकार का पौधा जो दो हाई हाथ ऊँचा होता है।

विशेष—इसकी एक सीधी डाल होती है और इसमें चारों ओर टहनियाँ नहीं निकलती। इसकी पत्तियाँ लंबी और कटावदार होती हैं और उनका रंग कालापन लिए हुए गहरा हरा होता है।

२. इस पौधे का फूल जो कटोरे के आकार का और गहरे लाल रंग का होता है।

विशेष—इसका घेरा एकहरे दल का होता है। यह फूल अधिक रूप लड़ने पर फूलता है। कुछ लोग भूल से सूरजमुखी को भी गुलदुपहरिया कहते हैं।

गुलदुम—संज्ञा [दा०] बुलबुल।

गुलनरगिस—संज्ञा स्त्री० [दा०] एक प्रकार की लता।

गुलनार—संज्ञा पुं० [दा०] १. अनार का फूल। २. एक प्रकार का रंग जो अनार के फूल का सा गहरा लाल होता है।

विशेष—यह रंग रंगने के लिये कपड़े को पहले हल्की में और तब शहाब में रंगते हैं।

३. एक प्रकार का अनार।

विशेष—इसमें फल नहीं लगते, केवल बड़े बड़े सुंदर फूल ही लगते हैं।

गुलपपड़ी—संज्ञा स्त्री० [दा० गुल + हि० पपड़ी] मोहन हलुवे की तरह की एक मिठाई जिसे पपड़ी भी कहते हैं।

गुलप्यादा—संज्ञा पुं० [दा० गुलप्याद] सदागुलाब। (इस गुलाब में महक कम होती है।)

गुलफागूस—संज्ञा पुं० [दा० गुलफागूस] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो शोभा के लिये लगाया जाता है।

गुलफाम—संज्ञा [दा० गुलफाम] जिसके शरीर का रंग फूल के समान हो। सुंदर। सुबसूरत।

गुलफिरकी—संज्ञा स्त्री० [दा० गुल + हि० फिरकी] एक प्रकार का बड़ा पौधा जिसमें गुलाबी रंग के फूल लगते हैं।

गुलफिरा—संज्ञा [दा० गुलफिरा] १. फूल बिभेरीवाला। २. मधुर बात कहनेवाला। सुवक्ता।

गुलफिरा—संज्ञा पुं० १. फूलझड़ी। २. गुलाब छिड़कने की शीशी।

गुलफिशानी—संज्ञा स्त्री० [दा० गुलफिशानी] १. फूल बरसाना। २. मधुर बात का कथन। लुग्बयानी।

गुलफुँदना—संज्ञा पुं० [हि० गुल + फुँदना] एक प्रकार की घास जो सेतो में उगती है।

गुलदावदी—संज्ञा स्त्री० [दा० गुल + सं० दावदी] १. एक प्रकार का पेड़।

विशेष—यह नर्मदा नदी के उद्गम के पास अमरकंटक के बग में होता है। यह हल्दी के पेड़ से मिलता जुलता है।

२. इस पौधे का फूल।

विशेष—यह रंगत में सफेद और बहुत सुगंधित होता है। जिस प्रांत में यह होता है उस प्रांत के लोग इसे पीसकर घाई हुई घावों पर लगाते हैं। कहते हैं, यह घाव के कई रोगों की अच्छी दवा है।

३. उड़ू की एक प्रसिद्ध कहानी [को०]।

विशेष—गुलककावली के संबंध में लोगों में कई तरह की दंत-कथाएँ प्रसिद्ध हैं।

गुलककसर—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल + कसर] नकस के खेल में एक प्रकार की जीत की धाजी जो एक खिलाड़ी के हाथ में दो बादशाह और एक एक्का या दो बेगमें और एक एक्का भा जाने से बनती है। (जुमारी)।

मुहा०—गुल फंसना = (किसी खिलाड़ी को) दो बादशाहों या बेगमों के बीच में एक एक्का मिलना।

गुलाबदन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का बहुमूल्य रेशमी कपड़ा जो प्रायः लहरियादार या भारीदार होता है।

विशेष—यह पहले केवल लाल या गुलाबी रंग का होता और काशी में बनता था, पर अब यह सब रंगों का और पंजाब के कुछ नगरों में भी बनने लगा है।

गुलबाजो—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुलबाजी] एक दूसरे के ऊपर फूल फेंकना। फूलों का खेल। पुष्पक्रीड़ा।

गुलबादला—संज्ञा पुं० [फ़ा०] ऊदल नाम का पेड़ जिसके रेशों से मोटे रस्से बनते हैं। टूटी।

गुलबूटा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल + हि० बूटा] (किसी चीज पर बनाया हुआ) बेलबूटा। नक्काशी।

गुलबेल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुल + हि० बेल] एक प्रकार की लता।

गुल मखमल—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलमखमल] १. एक प्रकार का पोधा जिगके बीजों से पहले पनीरी तैयार करके तब पोधे लगाए जाते हैं। २. इस पोधे का फूल जो देखने में मखमल की घुँडियों के समान जान पड़ता है।

विशेष—यह सफेद, लाल और पीला कई रंग का तथा बहुत मुलायम और चिकना होता है।

गुलमा^१—संज्ञा पुं० [?] ममालेदार कीमा भरी हुई बकरी की अंतड़ी। दुलमा। लंगूचा।

गुलमा^२—संज्ञा पुं० [सं० गुल्म] [स्त्री० गुलमी] वह गोल कड़ी सूजन जो चोट लगने से सिर या मथे पर होती है।

गुलमेंहदी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० गुल + हि० मेंहदी] १. एक प्रकार का पोधा जो कुप्रार में फूलता है। २. इस पोधे का फूल जो कई रंगों का होता है।

गुलमेख—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलमेख] वह कील जिसका सिरा फूल के आकार का गोल होता है। फुलिया।

गुलमोहर—संज्ञा पुं० [अ० गोल्डमोर] एक बड़ा फूलदार वृक्ष।

विशेष—इसमें गरमी के दिनों में फल आते हैं जो गुच्छों में लगते हैं और कई मास तक रहते हैं।

गुलरंग—वि० [फ़ा०] गुलाब के फूल जैसे रंग का। गुलाबी।

गुलकल—[फ़ा० गुलकल] वि० दे० 'गुलक'।

गुलरू—वि० [फ़ा०] फूल के समान आकृतिवाला। सुंदर। खूबसूरत।

गुलारेज^१—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलारेज] १. आतिशबाजी की एक प्रकार की फुलझड़ी।

विशेष—इससे गे कई तरह के बड़े बड़े फूल झड़ते हैं। यह शोरा, गंधक, कोयला, लोहचून और बारूद मिलाकर बनती है। २. एक कपड़ा।

गुलारेज^२—संज्ञा पुं० फूल बरसानेवाला।

गुललाला—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुललालाह] १. एक प्रकार का पोधा जो पोथे के पोथे के समान होता है। २. इस पोधे का फूल जो लाल रंग का, बहुत सुहावना और कोमल होता है। ३. 'गुललाला'।

गुलशकर—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गुलकंद।

गुलशकरी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. चीनी और गुलाब के फूल से बनी हुई मिठाई। २. गंगेरन।

गुलशान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] बाटिका। बाग। फुलवारी।

गुलशब्बो—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. लहसुन से मिलता जुलता एक प्रकार का छोटा पोधा जिसको रजनीगंधा, सुगंधराज भी कहते हैं। २. इस पोधे का फूल, जो सफेद रंग का और बहुत सुगंधित होता है। यह रात के समय फूलता है। ३. एक खेल जो चिराग बुझाकर खेला जाता है। इसमें लोग एक दूसरे को चणत लगाने हैं।

गुलसुम—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुल + हि० सुमन] सोनारों का, नक्काशी करने का, एक औजार जिससे वे फूल आदि बनाते हैं।

गुलसीसन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का फूल जो हल्के आसमानी रंग का होता है। यह फारस में बहुत होता है।

गुलहजारा—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुलहजारह] एक प्रकार का गुललाला।

गुलहथी—संज्ञा स्त्री० [हि० गुलहथी] दे० 'गुलहथी'।

गुलाब—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. एक भाड़ या कंटीला पोधा जिसमें बहुत सुंदर सुगंधित फूल लगते हैं।

विशेष—गुलाब के सफेदों भेद होते हैं पर मुख्य ३० जातियाँ मानी गई हैं। गुलाब प्रायः सर्वत्र १६ से लेकर ७० अक्षांश तक भूगोल के उत्तरार्ध में होता है। भारतवर्ष में यह पोधा बहुत दिनों से लगाया जाता है और कई स्थानों में जंगली भी पाया जाता है। कश्मीर और भूटान में पीले फूल के जंगली गुलाब बहुत मिलते हैं। अन्य अरबिया में गुलाब में चार पाँच ख़तराई हुई पंखड़ियों की एकहरी पंक्ति होती है पर बगीचों में सेवा और यत्नपूर्वक लगाए जाने से पंखड़ियों की संख्या में वृद्धि होती है पर केमरों की संख्या घट जाती है। कलम पैबंद आदि के द्वारा सफेदों प्रकार के फूलवाले गुलाब भिन्न भिन्न जातियों के मेल से उत्पन्न किए जाते हैं। गुलाब की कलम ही लगाई जाती है। इसके फूल कई रंगों के होते हैं, लाल (कई मेल के हलके गहरे) पीले, सफेद इत्यादि। सफेद फूल के

गुलाब को खेवरी कहते हैं। कहीं कहीं हरे और काले रंग के भी फूल होते हैं। लता की तरह खड़ेवाले गुलाब के फाड़ भी होते हैं जो बगीचों में दृष्टियों पर बढ़ाए जाते हैं। ऋतु के अनुसार गुलाब के दो भेद भार्गवण में माने जाते हैं। मदागुलाब और चैती। मदागुलाब प्रत्येक ऋतु में फूलता और चैती गुलाब केवल वसंत ऋतु में। चैती गुलाब में विशेष सुगंध होती है और वही इत्र और दवा के काम का सम्भवा जाता है। भार्गवण में जो चैती गुलाब होते हैं वे प्रायः बसरा या दमिष्क जाति के हैं। ऐसे गुलाब की खेती गाजीपुर में इत्र और गुलाबजल के लिये बहुत होती है। एक बीघे में प्रायः हजार बीघे माने हैं जो चैत में फूलते हैं। बड़े तहके उनके फूल तोड़ लिए जाते हैं और अचारों के पाम भज दिए जाते हैं। वे देग और भभके से उनका जल खींचते हैं। देग से एक पतली बरत की नली एक दूसरे बरतन में गई होती है जिसे भभका कहते हैं और जो पानी से भरी नाद में रखा रहता है। अन्तर पानी के साथ फूलों को देग में रख देते हैं जिसमें से सुगंधित भाप उठकर भभके के बरतन में सरदी से द्रव होकर टपकती है। यही टपकी हुई भाप गुलाबजल है। गुलाब का इत्र बनाने की सीधी युक्ति यह है कि गुलाबजल को एक छिछने बरतन में रखकर बरतन को गीली जमीन में कुछ गाड़कर रात भर खुले मैदान में पड़ा रहने दे। मधेरे सरदी से गुलाबजल के ऊपर इत्र की बहुत पतली मलाई भी पड़ी मिलेगी जिसे हाथ से काँधले। ऐसा कहा जाता है कि गुलाब का इत्र तूरजहाँ बेगम ने १६१२ ईसवी में अपने बियाह के अवसर पर निकाला था। भारतवर्ष में गुलाब अगली रूप में उगता है पर बगीचों में यह कितन दिनों से लगाया जाता है, इसका ठीक ठीक पता नहीं लगता। कुछ लोग 'शतापरा', 'पाटलि' आदि शब्दों को गुलाब का पर्याय मानते हैं। रशी उद्दीन नामक एक मुसलमान लेखक ने लिखा है कि चौदहवीं शताब्दी में गुजरात में सत्तर प्रकार के गुलाब लगाए जाते थे। बाबर ने भी गुलाब लगाने की बात लिखी है। जहाँगीर ने तो लिखा है कि हिंदुस्तान में सब प्रकार के गुलाब होते हैं। गुलाब का फूल कोमलता और गुंदरता के लिये प्रसिद्ध है। इसी से लोग छोटे बच्चों की उमरा गुलाब के फूल से देते हैं।

२. गुलाबजल।

मुहा० गुलाब छिड़कना—गुलाबजल छिड़कना। गुलाब छिड़काई की रसम करना।

गुलाब अफशाँ—संज्ञा पुं० [फा० गुलाबअफशाँ] गुलाबपाश।

गुलाब चरम—संज्ञा पुं० [फा०] रीर रंग की एक प्रकार की बिड़िया।

विशेष—इसकी खान वाली और गैर लाल होती है। यह मधुर स्वर में और प्रिय बानती है।

गुलाब छिड़काई—संज्ञा स्त्री० [फा० गुलाब+हि० छिड़कना] १. विवाह में एक रीति जिसमें बर पक्ष और कन्या पक्ष के लोग एक दूसरे पर गुलाबजल छिड़कते हैं और कन्या पक्ष व नाग वर पक्ष को कुछ भेंट देते हैं। २. वह द्रव्य जो उपर लिखी रसम में दिया जाय।

गुलाबजम—संज्ञा पुं० [?] आसाम की पहाड़ियों में होनेवाली एक प्रकार की झाड़ी।

विशेष—इसकी पत्तियों से एक प्रकार का भूरा रंग निकलता है और इसकी छाल के रंग में रस्सियाँ बनती हैं। इसे सोनाफूल भी कहते हैं।

गुलाबजल—संज्ञा पुं० [फा० गुलाब+गं० जल] गुलाब का भक।

गुलाबजामुन—संज्ञा पुं० [फा० गुलाब+हि० जामुन] १. एक प्रकार की मिठाई।

विशेष—इसे बचान के लिये पहले खोबे में मँदा या सिंघाड़े का आटा मिलते हैं और नब उगकी गोल या लंबोतरे टुकड़े करके भी में छानने और पीछे चाकनी में हबो देते हैं।

२. एक प्रकार का वृक्ष जो बगान और आसाम में अधिकता से होता है।

विशेष—यह देखने में बहुत सुंदर होता है और प्रायः बागों में शोभा के लिये लगाया जाता है। गरमी के अंत और बरसात के आरंभ में इसमें फल लगते हैं।

३. इस वृक्ष का फल।

विशेष—यह रंगत में नासपाती का सा और आकार में नीबू के बराबर कुछ चपटा होता है। इसके अंदर लाली रंग का गोच बीज होता है और ऊपर की ओर मोटे दल का गूदेदार सीठा झिलका सा होता है जिसमें से गुलाब की सी सुगंध आती है और जो खाने में बहुत स्वादिष्ट होता है।

गुलाबतालू—संज्ञा पुं० [फा० गुलाब+तालू] वह हाथी जिसका तालू गुलाबी रंग का हो। ऐसा हाथी बहुत अस्वाभाविक समझा जाता है।

गुलाबपाश—संज्ञा पुं० [फा०] भागों के आकार का एक प्रकार का लंबा पाश जिसके मुँह पर हजारों लगा रहता है और जिसमें गुलाबजल आदि भरकर शुभ अवसरों पर लोगों पर छिड़कते हैं।

गुलाबपाशी—संज्ञा स्त्री० [फा०] गुलाबजल छिड़कने की क्रिया।

गुलाबबाड़ी—संज्ञा स्त्री० [फा० गुलाब+हि० बाड़ी] वह आमोद या उत्तम जिसमें कोई स्थान गुलाब के फूलों से सजाया जाता है, गाना बजाना होता है और लोग गुलाबी कपड़े पहनते हैं। चैत के महीने में यह उत्सव होता है।

गुलाबौस—संज्ञा पुं० [हि० गुल+अव्वास] दे० 'गुल अव्वास' या 'अव्बास'।

गुलाबा—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का बरतन। उ०—बमचा, चमची, जाय, तवा, तदूर, गुलाबा। सूदन (शब्द०)।

गुलाबी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. गुलाब के रंग का। जैसे—गुलाबी गाल, गुलाबी कागज। २. गुलाब संबंधी। ३. गुलाब जन से बराया हुआ। जैसे—गुलाबी रेबड़ी। ४. थोड़ा या कम। हलका।

विशेष—इस अर्थ में गुलाबी शब्द का प्रयोग केवल 'जाड़ा' और 'नशा' अथवा इनके पर्यायवाची शब्दों के साथ पाया जाता है।

गुलाबी^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का रंग जो गुलाब की पत्तियों के रंग से मिलता जुलता है और शहाब और खटाई के मेल से बनाया जाता है।

गुलाबी^३—संज्ञा स्त्री० १. शराब पीने की प्याली। २. गुलाब की पकड़ियों से बनी हुई मिठाई। ३. एक प्रकार की मैना।

विशेष—यह मैना ऋतुभेद के अनुसार अपना रंग बदलती है। गर्मी के दिनों में यह पहाड़ों में बसी जाती है। यह मध्य एशिया और यूरोप में भी पाई जाती है और प्रायः बड़े बड़े झुंडों में रहती है। यह घोंसला नहीं बनाती बल्कि थोड़ी घास बिछाकर उसी पर रहती है और पत्थरों या कंकड़ों के नीचे ४-५ अंडे देती है।

गुलाम—संज्ञा पुं० [अ० गुलाम] १. मोल लिया हुआ दास। खरीदा हुआ नौकर।

मुहा०—(अनुष्य आदि को) गुलाम करना या बनाना = अपने वश में करना। पूरी तरह से अधिकार में करना। गुलाम का तिलाप = बहुत ही सुच्छ सेवक। सेवक का सेवक।

यौ०—गुलाम गर्दिश। गुलाम माल।

विशेष—कभी कभी बोलनेवाला (उत्तम पुरुष) भी नम्रता प्रकट करने के लिये इस शब्द का प्रयोग करता है। जैसे,—गुलाम (मैं) हाजिर है, क्या आज्ञा है।

२. साधारण सेवक। नौकर। ३. गंजीफे का एक रंग। ४. ताश में दहले से बड़ा और बेगम से छोटा एक पत्ता। इसपर दास के रूप में एक आदमी का चित्र बना रहता है।

गुलाम गर्दिश—संज्ञा स्त्री० [अ० गुलाम + फ़ा० गर्दिश] १. वह छोटी दीवार जो जानानखाने में अंदर की ओर सदर दरवाजे के ठीक सामने अथवा जानानखाने और दीवानखाने के बीच में परदे के लिये बनी हो।

विशेष—इस दीवार के रहने से स्त्रियाँ आँगन में घूम फिर सकती हैं और बाहर के लोगों की दृष्टि उनपर नहीं पड़ सकती।

२. कोठी या महल आदि के चारों ओर बना हुआ वह बरामदा जहाँ अरदली, चपरासी, दरवान और दूसरे नौकर चाकर रहते हैं।

गुलाम चोर—संज्ञा पुं० [अ० गुलाम + हि० चोर] ताश का एक प्रकार का खेल जो दो से सात आठ आदमियों तक में खेला जाता है।

विशेष—इसमें एक गुलाम या और कोई पत्ता गद्दी से अलग कर दिया जाता है; और तब सब खेलनेवालों में बराबर बराबर पत्ते बाँट दिए जाते हैं। हर एक खिलाड़ी अपने अपने पत्तों के जोड़ (जैसे,—दुक्की दुक्की, छक्का छक्का, दहना दहला) निकालकर अलग रख देता है और सब एक दूसरे से एक एक पत्ता लेते हुए इसी प्रकार का जोड़ मिलाकर निकालते हैं। अंत में जिसके पास अकेला गुलाम या निकासे हुए पत्ते का जोड़ बच रहता है, वही चोर और हारा हुआ समझा जाता है।

गुलामजादा—संज्ञा पुं० [अ० गुलाम + फ़ा० जादह्] १. दासी-पुत्र। २. विनय में बैठे के लिये प्रयुक्त।

गुलाम माल—संज्ञा पुं० [अ० गुलाम + माल] थोड़े धर्मों की पर बहुत दिनों तक चलनेवाली और सब तरह का काम देनेवाली चीज। जैसे,—कबल, लोई आदि।

गुलामो—संज्ञा स्त्री० [अ० गुलाम + हि० ई (प्रत्य०)] १. गुलाम का भाव। दासत्व। २. सेवा। नौकरी। ३. पराधीनता। परतंत्रता।

गुलाल—संज्ञा पुं० [फ़ा० गुललालह्] एक प्रकार की लाल बुकनी या चूर्ण जिसे हिंदू लोग होली के दिनों में एक दूसरे के चेहरों पर मलते हैं अथवा कुमकुमे आदि में भरकर फेकते और उड़ाते हैं। उ०—जिन नैनन में बसत है रसनिधि मोहन लाल। निनमें क्यों घालत अरी तैं भर मूठ गुलाल।—रसनिधि (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उड़ाना।—मलना।

विशेष—पहले गुलाब या देसू की पंखड़ियों में बंदन का बुरावा और केसर मिलाकर गुलाल बनाया जाता था, पर आजकल शिगरफ या गहाब में रंगा हुआ सिंघाड़े का आटा ही गुलाल कहलाता है।

गुलाला—संज्ञा पुं० [हि० गुललाला] दे० 'गुललाल'।

गुलिया—वि० [हि० गुल्ली] महुए के बीज की मिनी। गुनी से निकाला हुआ। जैसे,—गुलिया सेल।

गुलियाना—क्रि० स० [सं० गिल = निगलना] घोष या और कोई तरल पदार्थ बाँस के बाँगे में भरकर पशु को पिलाना। इसे 'ढरका देना' भी कहते हैं।

गुलियाना—क्रि० स० [हि० गोनियाना] दे० 'गोलियाना'।

गुलिस्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. वह स्थान जहाँ फूलों के बहुत से पीछे आदि लगे हों। बाग। उपवन। बाटिका। २. फारसी के प्रसिद्ध कवि शेख सादी शिराजी का बनाया हुआ नीति संबंधी एक प्रसिद्ध ग्रंथ।

गुली—संज्ञा स्त्री० [हि० गुल्ली] दे० 'गुल्ली'।

गुलुंछ—संज्ञा पुं० [सं० गुलुच्छ] गुच्छा [को०]।

गुलुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] गुच्छा [को०]।

गुलुफा—संज्ञा पुं० [दे० गुल्फ] दे० 'गुल्फ'।

गुल्—संज्ञा पुं० [देश०] १. नेपाल की तराई, बुंदेलखंड और बंगाल की कुछ चट्टानों पर तथा छोटी छोटी पहाड़ियों पर और दक्षिण भारत तथा बरमा के जंगलों में होनेवाला एक प्रकार का बड़ा पेड़।

विशेष—यह २५ से ४० हाथ तक ऊँचा होता है। इसमें टहनियों के सिरों पर गुच्छों में लंबी पत्तियाँ लगती हैं। जाड़े में इसका पतझड़ होता है और माघ फागुन में इसमें गंदकी रंग के छोटे फूल लगते हैं। इस वृक्ष की टहनियों, पत्तियों और कतीरा नाम के गोंद का उपयोग औषध में बहुत होता है और गरीब लोग इसके बीज भूनकर खाते हैं। कहीं कहीं लोग इसकी जड़ भी खाते हैं। इस वृक्ष की ऊपरी छाल मुलायम होती है और उसमें पत्तें निकलती हैं। जब यह वृक्ष दस बरस का पुराना हो जाता है तब इसके तने के चार चार हाथ संबे टुकड़े काट लेते हैं और उनके ऊपर की छाल निकाल लेते हैं। इसके हीर में से बहुत बढ़िया रेशा निकलता

है जिससे रस्से बनते हैं और एक प्रकार का कपड़ा भी बना जाता है। इसकी लकड़ी के कई तरह के खिलौने आदि बनते हैं। प्रायः प्रकाल में इसकी छोटी छोटी टहनियाँ पशुओं के चारे का काम देती हैं। कतीरा नाम का गोंद इसी वृक्ष से निकलता है।

२. एक प्रकार की मछली जो हाथ सवा हाथ लंबी होती है।

३. एक प्रकार की बटेर।

गुल्—संज्ञा पुं० [फा०] गला। गर्दन।

गुल्बलासी—संज्ञा स्त्री० [फा० गुल् + अ० बलास] गला छूटना। गुक्ति। छूटकारा।

गुल्बंद—स्त्री० पुं० [फा०] १. सलाई से या करघे पर बुनी हुई वह सूनी, ऊनी या रेशमी लंबी और प्रायः एक बालिष्ठ चौड़ी पट्टी जो सरदी से बचने के लिये सिर, गले या कानों पर लपेटी जाती है। २. स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार का जेवर जो गले से सटा रहता है।

गुल्ला—संज्ञा पुं० [फा० गुल्लह] १. गुलेस का गुल्ला। २. बंदूक की गोली। ३. दवा की गोली।

गुल्लेवा—संज्ञा पुं० [हि० गोल] बहुत एक पका फल। कोरवा।

गुल्ले—संज्ञा पुं० [हि०] एक प्रकार का छोटा पेड़।

विशेष—यह उत्तर भारत में अधिकता से होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और चमकदार होती है जिनपर खुवाई का काम बहुत अच्छा होता है। कहीं कहीं इसके बीजों की माला बनाई जाती है। इसे रंगबोल भी कहते हैं।

गुलेटन—संज्ञा पुं० [हि० गोल] कुरंड पत्थर का वह छोटा गोला जिससे मिकनीगर अपना मसाला रगड़ते हैं।

गुलेनार—संज्ञा पुं० [हि० गुलनार] दे० 'गुलनार'।

गुलेराना—संज्ञा पुं० [फा० गुल + अ० राना] १. गुंटर फूल। २. एक फूल जो भीतर की ओर लाल और बाहर की ओर पीला होता है।

गुलेल—संज्ञा स्त्री० [फा० गुल्ल] वह कमान या वनुष जिससे चिड़ियों और बंदरों आदि को मारने के लिये मिट्टी की गोमियाँ चलाई जाती हैं। उ०—(क) गुप्त गुलेल सोल्यो चारे। रिपु चिरई दिन लासक मारे।—हनुमान (शब्द०)। (ख) निलक बिदु को मानि निशाना। गूरा हनत गुलेल महाना।—रघुराज (शब्द०)।

गुलेल—संज्ञा पुं० [फा० गिलोय] दे० 'गुल्म'।

गुलेलची—संज्ञा पुं० [हि० गुलेल + ची (प्रत्य०)] गुलेल चलानेवाला। वह मनुष्य जो गुलेल चलाने में चतुर हो।

गुलेलबाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० गुलेल + बाजी] १. गुलेल चलाना। २. गुलेल से चिड़ियाँ आदि मारना।

गुलेला—संज्ञा पुं० [फा० गुल्ल] १. मिट्टी की बनाई हुई गोली जिसको गुलेल से फेरकर चिड़ियों का शिकार किया जाता है। २. गुलेल।

गुल्लेवा—संज्ञा पुं० [हि० गुल्लेवा] दे० 'गुल्लेवा'।

गुल्लोह—संज्ञा स्त्री० [फा० गिलोय] गुडूष। गुल्म।

गुल्लौर—संज्ञा पुं० [मं० गुल्ल = गुड़ + और (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ रस पकाने का भट्टा हो और जहाँ मुड़ बनाया जाता हो।

गुल्लौरा—संज्ञा पुं० [मं० गुल्ल + हि० और (प्रत्य०)] दे० 'गुल्लौर'।

गुल्ला—संज्ञा पुं० [हि०] एक प्रकार का ताड़।

विशेष—यह मुंदरवन में पानों के किनारे लता की तरह फैलता है तथा चटगाँव, बरमा आदि में पाया जाता है। इसके पुराने फल, जिसे गोमफल कहते हैं, बहुत बड़े बड़े होते हैं और समुद्र में बहने बहने बहुत दूर तक चले जाते हैं। पत्तों के डंठलों को एक में बाँधकर उनपर मुंदरवन के लट्टे बहाए जाते हैं। पत्ते छपर बनाने के काम में आते हैं और 'गोलपता' कहलाते हैं।

गुल्लू—संज्ञा पुं० [मं०] ऐंठी के ऊपर की गाँठ।

गुल्म—संज्ञा पुं० [ग०] १. ऐसा पोधा जो एक जड़ से कई होकर निकले और जिसमें कड़ी लकड़ी या डंठल न हो। जैसे,—ईल, जर आदि।

विशेष—प्रकंप्रकाश में गुल्म गण के अंतर्गत बरियारा, पाठा, तुलसी, काकजवा, चिरचिरा आदि पोधे लिए गए हैं।

२. सेना का एक समुदाय जिसमें ६ हाथी, ६ रथ, २७ घोड़े और ४५ पैदल होने हैं। ३. गेट का एक रोग जिसमें उसके भीतर एक गोला सा बंध जाता है।

विशेष—हृदय के नीचे में लेकर पेड़ तक के बीच कहीं पर यह गोना उत्पन्न हो सकता है। भावप्रकाश के अनुसार यह गोला अनियमित आहार विहार तथा वायु और पित्त के दूषित होने से होता है।

४. नमो की मूजन जो गाँठ के आकार की हो। ५. झाड़ी (को०)। ६. दुर्ग। किला (को०)। ७. खार्दबदी (को०)। ८. ग्राम का पाना (को०)। ९. नदी के किनारे या घाट पर सुरक्षा के लिये बनी हुई चौकी (को०)। १०. शिविर। सेनानिवेश (को०)।

गुल्मकेतु—संज्ञा पुं० [मं०] अमलवेनस (को०)।

गुल्मकेश—[मं०] भवरीले बालोवाला (को०)।

गुल्ममूल—संज्ञा पुं० [ग०] ताजी प्रदग्क (को०)।

गुल्मप—संज्ञा पुं० [मं०] एक गुल्म का नायक। गोल्मिक।

गुल्मचल्ली—संज्ञा स्त्री० [मं०] सोमनता (को०)।

गुल्मवात—संज्ञा पुं० [ग०] तिल्ली का एक रोग (को०)।

गुल्मी—वि० [ग० गुल्मिन] [स्त्री० गुल्मिनी] १. भ्रुरमुट के रूप में उत्पन्न होनेवाला। २. तिल्ली के रोग से पीड़ित (को०)।

गुल्मी—संज्ञा स्त्री० १. पेड़ों का भुंड। झाड़। २. बेर। ३. छोटी हलायची का पेड़। ४. तबू। सेमा। ५. प्राबले का पेड़ (को०)।

गुल्मोदर—संज्ञा पुं० [मं०] दे० 'गुल्मवात' (को०)।

गुल्म—संज्ञा पुं० [मं०] मिडाम। मोटापन (को०)।

गुल्मक—संज्ञा पुं० [हि० गोलक] वह संदूक या थैली जिसमें बिक्री द्वारा या और किसी प्रकार आई हुई गोजाना आभरनी रखी जाती है।

गुल्लरा—संज्ञा पुं० [हि० गुल्लर] दे० 'गुल्लर' ।

गुल्ला^१—संज्ञा पुं० [हि० गोला] १. मिट्टी की बनी हुई गोली जो गुलेल से फेंकी जाती है। २. एक बंगला मिठाई ।

विशेष—यह फटे दूध के छेने की गोल गोल पिड्डियों की शीरे में बुनने से बनती है। इसे रसगुल्ला भी कहते हैं ।

गुल्ला^२—संज्ञा पुं० [अ० गुल] शोर। हल्ला। ऊँचा शब्द। उ०—
भाये निशाचर साहनी साजि मरीच सुबाहु सुने मख गुल्ला।—
रघुराज (शब्द०) ।

यौ०—हल्ला गुल्ला = शोरगुल ।

गुल्ला^३—संज्ञा पुं० [हि० गुल्ली] १. ईख का कटा हुआ छोटा टुकड़ा। गंड़ेरी। गाँड़ा। २. ईख का एक पोर जिसमें से ऊपर का कठोर हिस्सा या चेंफ और गाँठ निकाल दिया गया हो।

गुल्ला^४—संज्ञा पुं० [हि० गुलेख] वह धनुष जिससे मिट्टी की गोली फेंकी जाती है। गुलेल। उ०—बूक उनहुँ ते होय जे बांधे बरछी गुल्ला।—गिरधर (शब्द०) ।

गुल्ला^५—संज्ञा पुं० [देश०] दरी कालीन बुनने के करधे में वह बाँस जिसमें बज के दोनों सिरे बंधे रहते हैं।

गुल्ला^६—संज्ञा पुं० [देश०] वह ताना जो रेशमी धोतियों के किनारे बुनने में अलग तनकर भाँज में लगाया जाता है।

गुल्ला^७—संज्ञा पुं० [हि० गुल्ली] रस्सी में बंधी हुई वह छोटी लकड़ी जो पानी सीचने की लोटी (सुटिया) में पड़ी रहती है और जिसके घंटकाव के कारण भरी हुई लोटी रस्सी के साथ खिच आती है।

गुल्ला^८—संज्ञा पुं० [देश०] एक पहाड़ी पेड़ जो बहुत ऊँचा होता है।

विशेष—इसके हीर की लकड़ी सुगंधित, हलकी और भूरे रंग की होती है तथा मजबूत होने के कारण इमारत के काम में आती है। नैनीताल में यह पेड़ बहुत होता है। इसे 'सराम' भी कहते हैं।

गुल्ला^९—संज्ञा पुं० [देश०] गोटा पट्टा बुननेवालों का एक डोरा जो मजबूत होता है और जिसके दोनों सिरों पर सरकंडे की लकड़ियाँ लगी होती हैं।

विशेष—यह डोरा ताना के बदले में पड़ा रहता है। इसका एक सिरा डेंकली में लगा रहता है और दूसरा सिरा पार्वंड़ी में बंधा होता है।

गुल्ला^{१०}—संज्ञा पुं० [हि० गुल्ली] रुई ओटने की चरखी के बीच में लगा हुआ लोहे का छड़।

विशेष—यह लगभग डेढ़ बालिशत लंबा होता है। पिड़ई और खूटों के बीच में ठोका रहता है। इससे पिड़ई या खूटे सरकने या हिलने नहीं पाते।

गुल्लाजा—संज्ञा पुं० [क्रा० गुल्लेजानाह्] एक प्रकार का लाल फूल। उ०—कत लपटयत मोगरे सोनजुही निस सेन। जेहि चंपकबरखी करे गुल्लाजा रंग नैन।—बिहारी (शब्द०) ।

विशेष—इसका पीछा पोस्ते के पीछे के समान होता है। फूल भी पोस्ते ही के समान पर लाल होता है।

गुल्लो—संज्ञा बी० [सं० गुलिका = गुठली] १. किसी फल की गुठली। किसी फल का बड़ा और संबोतरा बीज। २. महुए की गुठली। गुलेदे का बीज। गुल्लू। कोर्येदा। ३. किसी वस्तु का कोई संबोतरा छोटा टुकड़ा जिसका पेटा गोल हो। जैसे,—काठ की गुल्ली, सोने की गुल्ली, रुपयों की गुल्ली इत्यादि। उ०—हल के पीछे जो लोहे की तीखी गुल्ली रहती है उससे चरती खुदती है।—शिवप्रसाद (शब्द०) ।

मुह्रा०—गुल्ली बँचना = वीर्य का पुष्ट होना। युवावस्था आना। ४. काठ का चार छह अंगुल लंबा टुकड़ा जिसके दोनों छोर जो की तरह नुकीले होते हैं तथा पेटा मोटा और गोल होता है। इसे डंडे से मार मारकर लड़के एक प्रकार का खेल खेलते हैं। घंटो। घंटई। जैसे,—यह लड़का दिन भर गुल्ली डंडा खेलता है। ५. छत्ते में वह जगह जहाँ मधु होता है। ६. केवड़े का फूल। ७. मकई की बाल जिसके दाने निकाल लिए गए हों। गुल्लड़ी। ८. एक प्रकार की मैना। गंगा मैना। ९. ईख की गंड़ेरी। गाँड़ा। १०. छोटा गोल पासा। कोई पासा।

यौ०—गुल्लीबाला = पासा बनानेवाला।

११. सिकलीगरी का एक औजार। जिससे वे तबवार या किसी हथियार का मोरचा खुरचते हैं। १२. जिल्दसाजों का एक औजार जिससे रगड़कर वे जिल्द की सीमन बराबर करते हैं। १३. पगड़ी बुननेवालों का एक औजार जिसे बुनते समय पाग के दोनों ओर इसलिये लगाते हैं जिसमें पाग तनी रहे।

विशेष—कई और पेगोवालों के गुल्ली के आकार के औजार भी इसी नाम से प्रसिद्ध हैं।

गुल्लीडंडा—संज्ञा पुं० [हि० गुल्ली + डंडा] लड़कों का एक खेल जिसमें गुल्ली को डंडे से मारकर दूर फेंका जाता है।

क्रि० प्र०—गुल्ली डंडा खेलना = खेलतूट अथवा अनावश्यक कामों में समय नष्ट करना।

गुवा(१)—संज्ञा पुं० [सं० गुवाक] सुपारी। उ०—कोई जादूगर लोग सुपारी। कोई नरियर कोई गुवा छुहारी।—जायसी (शब्द०) ।

गुवाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुपारी। २. चिकनी सुपारी।

गुवार(१)—संज्ञा पुं० [सं० गोपाल, प्रा० गोवाल, पु० हि० गुवाल] दे० 'गवाल' ।

गुवारपाठा—संज्ञा पुं० [हि० ग्वारपाठा] दे० 'ग्वारपाठा' ।

गुवाल(१)—संज्ञा पुं० [सं० गोपाल, प्रा० गोवाल] दे० 'गवाल' ।

गुविं(१)—संज्ञा पुं० [सं० गोवेन्द, सं० प्रा० गोविन्द] दे० 'गोविंद' ।

गुसल—संज्ञा पुं० [अ० गुस्ल] दे० 'गुस्ल' ।

गुसलखाना(१)—संज्ञा पुं० [हि० गुस्लखाना] दे० 'गुस्लखाना' ।

उ०—घरे से गुसलखाने बीच ऐसे उमराव, ले चले मनाय महाराज शिवराज को।—सूर्य (शब्द०) ।

गुसाई—संज्ञा पुं० [हि० गोसाई] दे० 'गोसाई' या 'गोस्वामी' ।

गुसा(१)—संज्ञा पुं० [अ० गुस्ताह्] दे० 'गुस्ता'। उ०—सूरदास चरणन के बलि बलि कोन गुसा ते कृपा बिसारी।—सूर (शब्द०) ।

गुसोका—संज्ञा पुं० [हि० गुस्ता + ईला (प्रत्य०)] गुस्सेल । उ०—
जानि गैरमिसिल गुमीले गुसा धारि मनु कीन्हो ना मनाम न
बचन बोले नियरे ।—भूषण प्र०, पृ० १०२ ।

गुसुलखान—संज्ञा पुं० [हि० गुसुलखाना] दे० 'गुस्लखाना' । उ०—
भूपन भनत है गुसुलखान पे खुमान अवरग गाहिबी हथमाय
हरि लाई है ।—भूषण प्र०, पृ० ५६ ।

गुसेर्पा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गोमाई' या 'गोरामो' ।

गुसेल—वि० [हि० गुस्ता + ऐल (प्रत्य०)] दे० 'गुस्ल' ।

गुस्ताख—वि० [फा० गुस्ताख] घृष्ट । दीठ । प्रणामीन । आश्रित ।
बेप्रदब । बड़ी का संकोच न रखनेवाला ।

गुस्ताखाना—क्रि० वि० [फा० गुस्ताखानह] आश्रयतापूर्वक ।
बेप्रदबी से ।

गुस्ताखी—संज्ञा ली० [फा० गुस्ताखी] घृष्टता । डिटाई । आश्रयता ।
बेप्रदबी ।

गुस्ल—संज्ञा पुं० [फा० गुस्ल] स्नान ।

गो०—गुलखाना ।

गुस्लखाना—संज्ञा पुं० [फा० गुस्ल + फा० खानह] स्नानागार ।
महान ना घर ।

गुस्लसेहत—संज्ञा पुं० [फा०] बीमारी से ठीक होने के बाद किया
जानेवाला पहला स्नान ।

गुस्ता—संज्ञा पुं० [फा० गुस्ताह] [वि० गुस्तावर, गुस्सेल] क्रोध ।
क्रोध । रिस ।

क्रि० प्र०—आना ।—करना ।—होना ।—में आना ।

गुहा०—गुस्ता उतरना क्रोध शांत होना । (किसी पर)
गुस्ता उतारना (१) क्रोध में जो इच्छा हो उसे पूर्ण करना ।
क्रोध प्रकट करना । अपने क्रोध का फल चखाना । (२) एक
क ऊपर जो क्रोध हो उसे दूसरे पर प्रकट करना । जैसे,—
उससे तो जीलते नहीं, हमारे ऊपर गुस्ता उतारते हो । गुस्ता
चढ़ना—क्रोध का आवेश होना । रिस का गमना । गुस्ता
शूक देना—क्रोध को दूर कर देना । क्षमा करना । गर्द गुजरी
करना । (स्त्रियाँ) गुस्ता निकालना—दे० 'गुस्ता उतारना' ।
नाक पर गुस्ता होना—बहुत जल्दी क्रोध में आना । बात बात
पर क्रोध करना । क्रोध करने के लिये सदा तैयार रहना ।
गुस्ता पीना—क्रोध रोकना । भीतर ही भीतर क्रोध करके रह
जाना, प्रकट न करना । गुस्ता मारना—क्रोध रोकना । गुस्ते
से लाल होना—क्रोध से लमतमाना । क्रोध के आवेश में
थाना ।

गुस्ताना—क्रि० प्र० [हि० गुस्ता से नाम०] गुस्ता करना । क्रुद्ध
होना ।

गुस्तावर—वि० [हि० गुस्ता + फा० आवर (प्रत्य०)] गुस्सेल । गुस्ता
करनेवाला ।

गुस्सेल—वि० [फा० गुस्ता + हि० ऐल (प्रत्य०)] जिसे जल्दी क्रोध
प्राये । गुस्तावर । थोड़ी थोड़ी बात पर बिगड़नेवाला । जैसे,—
यह बड़ा गुस्सेल आदमी है, उससे मत बोली ।

गुह—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय । २. अश्व । घोड़ा । ३. विष्णु का
एक नाम । ४. निषाद जाति का एक नायक जो शृग्वेरपुर
में रहता था और राम का मित्र था । गुह जाति का व्यक्ति ।
५. सिंहपुच्छी लता । पिठवन । ६. शालपर्णी । सरिवन ।
७. रुफा । ८. हृदय । ९. माया । १०. मेढ़ा । ११. बुद्ध ।
१२. बंगाली कायस्थों की एक जाति ।

गुह—संज्ञा पुं० [सं० गुह्य अथवा गुः=मल, धिष्ठा] गुह । मैला ।

विशेष—गुहावरो आदि के लिये दे० 'गूह' ।

गुहका—संज्ञा पुं० [सं०] चोपायों का एक रोग जिसे खुरपका भी
कहते हैं ।

विशेष—इसमें उनके मुँह से लार बहती है, खुर में दाँत पड़ जाते
हैं और उनका शरीर गरम रहता है । चलने में भी वे लंग-
ड़ाते हैं ।

गुहना—क्रि० स० [सं० गुष्कन] १. गूँथना । एक में पिरोना ।
गूँथना । गाँथना । उ०—(क) शंभु ज्ञ मंजु गुहे गुन सो उर
डारत श्रीरे बड़ी दुति नारि की ।—शंभु (शब्द०) । (ख) पर
काजे कहा यहि गाँव के लोग गुहैं चरखान को चौसर हैं ।—
सुदरीसवस्थ (शब्द०) । २. सुई ताँगे से रड़ करके सी
देना ।

गुहराज—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रासाद या महल जो गुह (कार्ति-
केय) के आधार का बनता है । इसका विस्तार सोलह हाथ
का होता है ।—(बृहत्संहिता) ।

गुहराना—क्रि० स० [हि० गुहार] पुकारना । चिल्लाकर बुलाना ।
उ०—कहै रघुराज सो करिद तजि फंद सब कर अरविद लै
गोविंद गुहगयो है ।—रघुराज (शब्द०) ।

गुहवाना—क्रि० स० [हि० गुहना का प्रे० रूप] गुहने का काम
कराना । गुंथवाना ।

गुहपट्टी—संज्ञा ली० [सं०] अगहन सुदी छठ जो कार्तिकेय की जन्मतिथि
मानी जाती है ।

गुहांजनी—संज्ञा ली० [सं० गुहा + अञ्जन] आँग की पलक पर
होनेवाली फुडिया विलनी । चुरचुरी । अजनहारी ।

गुहा—संज्ञा ली० [सं०] १. गुफा । कंदरा । खाँह । माँद । उ०—कोल
बिसोकि भूप बड़ धीरा । आगि पैठ गिरि गुहा मेंभीरा ।—
तुलसी (शब्द०) । २. गुप्त स्थान । छिपने का स्थान (को०) ।
३. (ला०) हृदय । घंत करण (को०) । ४. बुद्धि (को०) । ५.
सिंहपुष्पो (को०) । ६. शालपर्णी (को०) ।

गुहाई—संज्ञा ली० [हि० गुहना] १. गुहने की क्रिया या भाव ।
२. गुहने की मजदूरी ।

गुहाचर—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म ।

गुहाचर—वि० गुहा में निवास करनेवाला (को०) ।

गुहाना—क्रि० स० [हि०] दे० 'गुहवाना' ।

गुहार—संज्ञा ली० [सं० गो + हार] रक्षा के लिये पुनार । दोहाई ।
वि० दे० 'गोहार' ।

गो०—पड़ना ।—भारना ।—लगना ।—लगाना ।

गुहारि^५—संज्ञा स्त्री० [हि० गुहार] दे० 'गुहार' । उ०—नीकी दई धनकनी फीकी परो गुहारि ।—बिहारी (शब्द०) ।

गुहारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गुहार' । उ०—बात कहत भई देवा गुहारी ।—जायसी (शब्द०) ।

गुहाला^१—संज्ञा पुं० [सं० गोशाला] गोशाला । गायों के रहने का स्थान ।

गुहाहित^१—वि० [सं०] हृदयस्थ । हृदय में स्थित [को०] ।

गुहाहित^२—संज्ञा पुं० परमात्मा [को०] ।

गुहिन—संज्ञा पुं० [सं०] जंगल । वन [को०] ।

गुहिल—संज्ञा पुं० [सं०] वन । संपत्ति [को०] ।

गुहेर—संज्ञा पुं० [सं०] १. अभिभावक । रक्षक । २. लोहार [को०] ।

गुहेरा—संज्ञा पुं० [सं० गोध, हि० गोह] गोह नाम का कीड़ा । गोध ।

गुहेरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गोधेरिका] गुहाजनी । बिलनी ।

गुह्य^१—वि० [सं०] १. गुप्त । छिपा हुआ । पोषीदा । २. गोपनीय । छिपाने योग्य । ३. गूढ़ । जिसका तात्पर्य सहज में न समझा जा सके ।

गुह्य^२—संज्ञा पुं० १. छल । कपट । धंभ । २. कछुआ । कच्छप । ३. गुदा, भर्ग, लिंग आदि गोपनीय अंग । ४. विष्णु । ५. शिव ।

गुह्यक—संज्ञा पुं० [सं०] वे यक्ष जो कुबेर के खजानों की रक्षा करते हैं । निधिरक्षक यक्ष ।

गूँ—गुहाकेश्वर ।

गुहाकेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर ।

गुहादीपक—संज्ञा पुं० [सं०] जुगुप्सु [को०] ।

गुहाद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] मलद्वार । गुदा [को०] ।

गुहानिर्घ्यन्द—संज्ञा पुं० [सं० गुहानिर्घ्यन्द] मूत्र [को०] ।

गुहपति—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर ।

गुहपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल [को०] ।

गुहबीज—संज्ञा पुं० [सं०] सूत्रण [को०] ।

गुहभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त वार्ता । गुप्त मंत्रणा [को०] ।

गुहभाषित—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त वार्ता । गुप्त मंत्रणा [को०] ।

गूँ—प्रस्थ० [फ्रा०] यह समस्त पदों के अंत में लगकर १. रंग, २. वंश, ३. भेद, वर्ग, आदि अर्थ प्रकट करता है । जैसे, मीलगूँ, गेदुमगूँ आदि ।

गूँग^५—गुं [फ्रा० गुंग] १. गूँगा । उ०—बहिरो सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चले सिर छत्र घराइ ।—सूर०, १।१ । २. न बोलनेवाला । चुप ।

गूँगा^१—वि० [फ्रा० गुंग = जो बोल न सके] [वि० स्त्री० गूँगी] जो बोल न सके । जिसके मुँह से स्पष्ट शब्द न निकले । जिसे वाणी न हो । मूक ।

गूँगा^२—संज्ञा पुं० वह मनुष्य या प्राणी जो बोल न सके ।

गुहा०—गूँगे का गुड़ होना = ऐसी बात होना जिसका अनुभव हो पर वर्णन न हो सके । ऐसी बात जो कहते न बने । उ०—

अमृत कहा अमृत गुन प्रगटे सो हम कहा बतावैं । सूरदास गूँगे के गुर ज्यों बूझति कहा बुझावैं ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—गूँगा मनुष्य गुड़ का स्वाद अनुभव तो करता है पर उसे प्रकट नहीं कर सकता ।

गूँगे का गुड़ खाना = गूँगे के द्वारा गुड़ का खाया जाना । उ०—
(क) नैनहि बुरहि मोति भी गूँगा । जस गुर खाय रहा है गूँगा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) ज्यों गूँगा गुर खाइके स्वाद न सके बखानि ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—बहुत लोगों ने विशेषकर उर्दू वालों ने 'गूँगे का गुड़ का मतलब 'गूँगे का दिया हुआ गुड़' समझा है और इसी अर्थ में इसका प्रयोग भी किया है । ऐसा प्रयोग अशुद्ध है, जैसा हिंदी कवियों के उदाहरणों से स्पष्ट है ।

गूँगे का सपना होना = दे० 'गूँगे का गुड़ होना' ।

गूँगी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गूँगा] १. स्त्रियों की जैंगली में पहनने की एक प्रकार की बिछिया जो आकार में गोस होती है । २. दोन्हा साँप । † ३. चुप्पी । मोन ।

कि० प्र०—साधना = चुप्पी साधना । चुप हो जाना ।

यौ०—गूँगी पहली = वह पहली जो मुँह से न कही जाय, इशारों में कही जाय ।

गूँगी^२—वि० स्त्री० [हि० 'गूँगा' का स्त्री०] गूँगापन वाली । जो बोल न सकती हो ।

गूँच^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्ज अथवा सं० गुञ्जा] गुंजा । घुंघची ।

गूँच^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली ।

गूँछ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बड़ी मछली । बूँछ ।

विशेष—यह छह फुट तक लंबी होती है और भारत की सब नदियों में पाई जाती है । इसका मुँह नीचे की ओर होता है । आकार भी इसका बहुत बड़ा होता है । यह प्रायः बहुत गहरे पानी में रहती है । इससे जल्दी नहीं फँसती ।

गूँज—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्ज] १. ओरों के गूँजने का शब्द । कलध्वनि । गुंजार । भिन्नभिन्नाहट । उ०—घपनी मीठी गूँज से (और) उसके रस को उमाड़ता है और तब उसपर रस लेने के लिये बैठता है ।—अयोध्या (शब्द०) । २. प्रतिध्वनि । व्यामध्वनि । देर तक बना रहनेवाला शब्द । ३. लट्टू में नीचे की ओर जड़ी हुई लोहे की वह कील जिसपर लट्टू घूमता है । ४. कान में पहनने की बालियों आदि में शोभा के लिये थोड़ी दूर तक लपेटा छोटा पतला तार ।

गूँजना—कि० प्र० [सं० गुञ्जन] १. ओरों या मस्त्रियों का भिन्न-भिन्नाना । ओरों का मधुर ध्वनि करना । गुंजारना । उ०—फूले बार बसंत बन बन में कहुँ मालती नवेली । तापे मदमत्ते से मधुकर गूँजत मधुरस रेली ।—हरिवंशद (शब्द०) । २. (किसी स्थान का) प्रतिध्वनित होना । शब्द से व्याप्त होना । जैसे,—बाजे के स्वर से सारा घर गूँज उठा ।

संयो० कि०—उठना ।—जाना ।

३. शब्द का खूब फैलना और देर तक बना रहना । ध्वनि

व्याप्त होना । प्रतिबन्धित होना । जैसे,—यहाँ आबाज खूब गूँजती है ।

गूँजनि^५—संज्ञा स्त्री० [सं० गूञ्ज, हि० गूँजन] दे० 'गूँज' । उ०—
गरजनि गूँजनि सुनि सुनि महा । दलवत हिय दुख कहिए
कहा ।—नंद० प्र०, पृ० १६७ ।

गूँट^५—संज्ञा स्त्री० [हि० घूँट] दे० 'घूँट' । उ०—कोई नोबरी गूँट
ज्यों पीजे प्यालो कालकूट केम ।—बांकी० प्र०, भा०
३, पृ० १२६ ।

गूँठ—संज्ञा पुं० [हि० गोंठा = छोटा, नाटा] पहाड़ी टट्ट । टाँगन ।

गूँडी^५—संज्ञा पुं० [सं० गूड] आत्मरक्षा का स्थान । गोपनीय
स्थान । उ०—देवलिये गूँडी कियो, चणो ययो सुप्रसन्न ।—रा०
क०, पृ० ३४७ ।

गूँण^५—संज्ञा स्त्री० [हि० गूण] दे० 'गूण' । उ०—लग हण साकर
कोरदे. संगन साकर गूँण ।—बांकी० प्र०, भा० २, पृ० ४० ।

गूँयन^५—संज्ञा पुं० [हि० गूँयना] गूँयने की क्रिया । ग्रंथन । उ०—
भकी जराऊ जोरि अमित गूँयननि सेवारी ।—नंद प्र०,
पृ० ३८९ ।

गूँयना^५—क्रि० स० [हि० गूँयना] दे० 'गूँयना' ।

गूँयना^५—क्रि० स० [हि०] दे० 'गूँयना' ।

गूँयना—क्रि० स० [हि० गूँयना] 'गूँयना' ।

गूँवा—संज्ञा पुं० [हि० गोंवा] दे० 'गोंवा' ।

गूँदी^५—संज्ञा स्त्री० [दे०] गंधेला नाम का पेड़ ।

विशेष—यह गिरगिट्टी की जाति का होता है और इसकी छाल
और पत्तियाँ औषध के काम में आती हैं ।

गूँदी^५—वि० [हि० गूँयना] गुही हुई । बनाई हुई । उ०—बूँद न
राखत प्रीति भद्र यह गूँदी गुपान के हाथ की बैनी ।—मति०
प्र०, पृ० २८८ ।

गूँधना^५—क्रि० स० [सं० गूध - क्रीड़ा] पानी में सानकर हाथों से
दबलाना या मलना । मड़ाना । मसलना । जैसे,—घाटा गूँधना ।

गूँधना^५—क्रि० स० [सं० गूधन या हि० गूँधना] १. गूँधना ।
पिरोना । जैसे,—माला गूँधना । २. कई तागों या बालों की
लटों को घुसा कर इस प्रकार एक दूसरे पर बढ़ाते हुए फँसाना
कि एक लड़ी सी बन जाय । बालों या तागों को लेकर इस
प्रकार बटना कि बराबर गुच्छे बनते जायें । जैसे,—बोटी
गूँधना ।

गू—संज्ञा पुं० [सं० गूः - मल, पास्ताना] दे० 'गूह' ।

गूगल—संज्ञा [सं० गुग्गुलु] दे० 'गुग्गुलु' ।

गूगुल—संज्ञा पुं० [सं० गुग्गुलु] दे० 'गुग्गुलु' ।

गूघट^५—संज्ञा पुं० [हि० घूँघट] दे० 'घूँघट' । उ०—नटनागर
निरवण से नरखी जितिहारो गूघट कोर ।—नट०, पृ० १२१ ।

गूघर^५—संज्ञा पुं० [हि० घूँघर] दे० 'घूँघर' । उ०—मिल बहुर
मूखी मुहर भर, बज पसर गूघर भिड़ज वर ।—रघु० क०,
पृ० २१६ ।

गूजर—संज्ञा पुं० [सं० गुर्जर] [स्त्री० गूजरी, गुजरिया] १. महीरों की
एक जाति । माला । २. सन्धियों का एक भेद ।

गूजरनी—संज्ञा स्त्री० [हि० गूजर] दे० 'गूजरी' । उ०—कुछ मील बढ़ने
पर अपनी भैंसों के रेवड़ को लिए मुस्लिम गूजर और
गूजरनियाँ मिलीं ।—किन्नर०, पृ० ६ ।

गूजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गुर्जरी] १. गूजर जाति की स्त्री । मालिन ।
२. पैर में पहनने का बेवर । उ०—सीतलन की करि डारिहू
कूजरी ऊजरी गूजरी गूजरी तेरी ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) ।
३. एक रागिनी ।

गूजी^५—संज्ञा पुं० [सं० गुजुवा का स्त्री०] एक प्रकार का छोटा काला
कोड़ा ।

गूफा—संज्ञा पुं० [सं० गुह्यक, प्रा० गुड्ढा] [स्त्री० गुफिया] १. बड़ी
चिराक । घाटे या मैदे का एक पकवान ।

विशेष—यह आकर में अर्धचंद्र होता है । इसके भीतर मीठा
तथा गरी, चिरीजी, किसमिस आदि भेजे भरे रहते हैं ।

२. गूदा । ३. फलों के भीतर का रेशा ।

गूटी^५—संज्ञा स्त्री० [दे०] लोचों का पेड़ लगाने की एक युक्ति ।

गूटी^५—संज्ञा स्त्री० [दे०] बीपायों का एक रोग ।

गूड^५—वि० [हि० गूड] दे० 'गूढ़' । उ०—लालु गुलालु आदि गुर
गूडा ।—प्राण०, भा० १, पृ० ६७ ।

गूडर^५—संज्ञा पुं० [हि० गोपड] गाँव का पड़ोस । उ०—हसती
घोड़ा गाँव गड गूडर, कनड़ा पाइक आगो ।—कबीर प्र०,
पृ० १८६ ।

गूडी^५—संज्ञा स्त्री० [सं० गुहा या गुह्य] उबार या बाजरे की बाल में
वह गूदा या प्याली जिसमें दाना गड़ा रहता है ।

गूद^५—वि० [सं० गूढ] १. गुप्त । छिपा हुआ ।

यौ०—गूडजत्र, गूडपाव = सपं ।

२. जिसमें बहुत सा अभिप्राय छिपा हो । अभिप्रायगर्भित ।
गंभीर । जैसे,—उसकी बातें अत्यंत गूड होती हैं । उ०—
कह मुनि बिहँसि गूड घुटु बानी । सुना तुम्हारि सकल गुण
खानी ।—तुलसी (शब्द०) । ३. जिसका आशय जल्दी न
समझ में आवे । अविश्वामय । कठिन । जटिल । जैसे, गूड
विषय ।

गूड^५—संज्ञा पुं० [सं० गूड] १. स्मृति में पाँच प्रकार की साक्षियों में
से एक साक्षी जिसे अर्थी ने प्रत्यर्थी का वचन सुना दिया हो ।
२. एक अलंकार जिसे सूक्ष्म भी कहते हैं । गूढोत्तर । गूढोक्ति ।
दे० 'सूक्ष्मालंकार' ।

विशेष—सूक्ष्म, पर्यायोक्ति और विवृतोक्ति नामक अलंकार सब
इसी के अंतर्गत आ सकते हैं ।

३. एकांत या निजंन स्थान (को०) । ४. रहस्य । भेद (को०) । ५.
गुप्तार्थ (को०) ।

गूडचर—संज्ञा पुं० [सं० गूडचर] भेदिया । गुप्तचर (को०) ।

गूडचारी^५—संज्ञा पुं० [सं० गूडचारिन्] गुप्तचर । भेदिया (को०) ।

गूडचारी^५—वि० भेद लेनेवाला । छिपकर टोह लेनेवाला (को०) ।

गूडज—संज्ञा पुं० [सं० गूडज] बारह प्रकार के पुत्रों में से एक । वह
पुत्र जिसे पति के घर रहते हुए भी पत्नी ने अपने किसी

गुप्त जार से पैदा किया हो और वह जार उसके पति का सवर्ण ही हो ।

गूड़जात—संज्ञा पुं० [सं० गूड़जात] दे० 'गूड़ज' ।

गूड़जीवी—संज्ञा पुं० [सं० गूड़जीविन्] १. वह जिसकी जीविका का पता न चलता हो । वह जिसके संबंध में यह पता न हो कि वह किस प्रकार अपना निर्वाह करता है । २. गुप्त रूप से खोरो डकैती आदि के द्वारा जीवन निर्वाह करनेवाला व्यक्ति ।

गूड़ता—संज्ञा स्त्री० [सं० गूड़ता] १. गुप्तता । छिपाव । पोखीदगी । २. अविश्वस्यता । गंभीरता । कठिनता ।

गूड़त्व—संज्ञा पुं० [सं० गूड़त्व] १. गूड़ता । छिपाव । पोखीदगी । २. अविश्वस्यता । गंभीरता । कठिनता ।

गूड़नोड—संज्ञा पुं० [सं० गूड़नोड] खंजन पक्षी ।

गूड़पत्र—संज्ञा पुं० [सं० गूड़पत्र] १. करील वृक्ष । २. भंकोट का पेड़ ।

गूड़पथ—संज्ञा पुं० [सं० गूड़पथ] १. छिपा हुआ मार्ग । २. पगडंडी । ३. मन । बुद्धि [को०] ।

गूड़पद—संज्ञा पुं० [सं० गूड़पद] सर्प । साँप ।

गूड़पा^५—संज्ञा पुं० [सं० गूड़पाद्] पुं० 'गूड़पाद' ।

गूड़पाद्—संज्ञा पुं० [सं० गूड़पाद्] साँप [को०] ।

गूड़पाद्—संज्ञा पुं० [सं० गूड़पाद्] दे० 'गूड़पद' ।

गूड़पुरुष—संज्ञा पुं० [सं० गूड़पुरुष] भेदिया । जामुस [को०] ।

गूड़पुष्प—संज्ञा पुं० [सं० गूड़पुष्प] १. पीपल, बड़, गूलर, पाकर इत्यादि वृक्ष । २. मोलसिरी । बकुल वृक्ष ।

गूड़फल—संज्ञा पुं० [सं० गूड़फल] बेर का पेड़ ।

गूड़भाषित—संज्ञा पुं० [सं० गूड़भाषित] गूड़ बात । ऐसी बात जो सबकी समझ में न आए [को०] ।

गूड़मंडप—संज्ञा पुं० [सं० गूड़मण्डप] किसी देवमंदिर के भीतर का बरामदा या दालान ।

गूड़मार्ग—संज्ञा पुं० [सं० गूड़मार्ग] सुरंग [को०] ।

गूड़मैथुन—संज्ञा पुं० [सं० गूड़मैथुन] काक । कोवा ।

गूड़व्यंग्य—संज्ञा स्त्री० [सं० गूड़व्यंग्य] काव्य में एक प्रकार की लक्षणा जिसमें व्यंग्य का अभिप्राय सर्वसाधारण को जल्दी समझ में नहीं आ सकता ।

गूड़ांग—संज्ञा पुं० [सं० गूड़ाङ्ग] कछुवा ।

गूड़ाङ्घ्रि—संज्ञा पुं० [सं० गूड़ाङ्घ्रि] सर्प । साँप ।

गूड़ा^१—संज्ञा पुं० [सं० गूड़ा] मोटी और लंबी लकड़ी जो नाव में कोटमरिया के ऊपर लगाई जाती है ।

विशेष—यह किशती की लंबाई के हिसाब से ढेड़ ढेड़ या दो दो हाथ की दूरी पर मजबूती के लिये लगाई जाती है ।

गूड़ा^२^५—संज्ञा स्त्री० [सं० गूड़ा] पहली । प्रहेलिका । उ०—गाढ़ा गूड़ा गीत गुण कहि का नवली बात ।—ढोला०, दू० ५६७ ।

गूड़ोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० गूड़ोक्ति] एक अलंकार जिसमें कोई गुप्त बात किसी दूसरे के ऊपर छोड़ किसी तीसरे के प्रति कही जाती है । जैसे—वृष भागदू पर बेट से आयो रसक बेट ।

यहाँ चरते हुए बैल के बहाने परकीया के नायक के प्रति बात कही गई है ।

गूड़ोत्तर—संज्ञा पुं० [सं० गूड़ोत्तर] वह काव्यालंकार जिसमें प्रश्न का उत्तर कोई गूड़ अभिप्राय या मतलब लिए हुए दिया जाता है । जैसे—ग्वालिन देहु बताइ हों मोहि कछु तुम देहु । बंसीवट की छांह में लाल जाय तुम सेहु ।—मतिराम (शब्द०) यहाँ उत्तर में लाल शब्द के द्वारा नायक से मिलने का संकेत है ।

गूण^५—संज्ञा स्त्री० [हि० गूण] दे० 'गूण' । उ०—ताँड नायक नाम निज गुण की गुण भराय ।—राम० धर्म०, पृ० ५३ ।

गूसा^५—वि० [सं० गूसा] दे० 'गुप्त' । उ०—यह मैं वचन कहों निज गूसा ।—कबीर सा०, पृ० २७ ।

गूथ—संज्ञा पुं० [सं०] मल । विष्टा [को०] ।

गूथना—क्रि० सं० [सं० गूथन] १. कई वस्तुओं को तागे आदि के द्वारा एक में बाँधना या फँसाना । कई चीजों को एक में बाँधना या फँसाना । कई चीजों को एक गुच्छे या लड़ी में नाथना । पिरोना । जैसे—माला गूथना । २. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु में तागे से घटकाना । टाँकना । जैसे,—झूलों पर स्थान स्थान पर मोती गूथे गए थे । ३. टाँके आदि के द्वारा दो वस्तुओं को एक में जोड़ना । टाँके से जोड़ मिलाना । ४. भट्ठी सिलाई करना । टाँका मारना । सीना । गाँथना ।

मुहा०—गूथगोथी = (१) भट्ठी और मोटी सिलाई । (२) किसी काम को फूहड़ ढंग से करना ।

गूथ^१—संज्ञा पुं० [सं० गुस, प्रा० गुस] गूदा । मज । उ०—साह विरह गा ताकर गूद मांस की खान ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २६६ ।

गूथ^२—संज्ञा स्त्री० [सं० गुत्त] १. गड्ढा । गर्त । २. गहरा चिह्न । निशान । दाग । जैसे,—उसके चेहरे पर भीतला की गूदे वीं ।

गूथ^३—संज्ञा पुं० [हि० गूथना] [स्त्री० गूथनी] चिपटा । फटा पुराना कपड़ा ।

यौ०—गूथडाहा या गूथडाई = गूदड़ी पहननेवाला साधु या फकीर ।

गूथर^५—संज्ञा पुं० [हि० गूथर] दे० 'गूदड़' । उ०—हय गयंद उतरि कहा गर्दभ चढ़ि धाऊँ । कंचनमणि खोलि डारि काँच गर बंधाऊँ । कुंकुम को तिलक भेटि काजर मुख लाऊँ । पाटंबर धंवर तजि गूथर पहिराऊँ ।—सूर (शब्द०) ।

गूथरी^५—संज्ञा स्त्री० [हि० गूथर] दे० 'गूदड़ी' । उ०—प्रेम भ्रूति बिवेक की फावड़ी, गूथरी खुसी प्रह आइ माला ।—पलटू०, भा० २, पृ० १० ।

गूदला^५—वि० [हि० गूदला] दे० 'गूदला' । उ०—गूदले व्योम ठँके गरद, रवि लुकके धूम्राँ खण ।—रा० रू०, पृ० १५५ ।

गूदा—संज्ञा पुं० [सं० गुस, प्रा० गुस] [स्त्री० गूवी] १. किसी फल का सार भाग जो छिलके के नीचे होता है । फल के भीतर का वह भाग जिसमें रस आदि रहता है । २. भेजा । मज ।

लोपड़ी का सार भाग । उ०—मोनित सो सानि गूदा खात
मनुष्या से एक एक प्रेत पियत बहोरि चोरि चोरि कै ।
—गुलमी (शब्द०) ।

मुहा०—मारते मारते गूदा निकालना = गहरी मार मारना ।
३. किसी चीज के भीतर का सार भाग । मींगी । गिरी । ४
किंगी वस्तु का सार भाग ।

मुहा०—बातों का गूदा निकालना = बान की खाल निकालना ।
बहुत खोद विनोद करना ।

गूदेवार—वि० [हि० गूदा + फा० दार] गूदायुक्त । जिसमें गूदा हो ।
जिसमें पर्याप्त गूदा हो । गदार ।

गूधना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गूधना' । उ०—बेहसि चमेसि प्रिय
गुधिए हार । गोधा चरचित ककू सिंगार । —मं० दरिया,
पृ० १७३ ।

गून'—संज्ञा स्त्री० [सं० गुण = रस्ती] १. रस्ती जिससे नाव लीचते
हैं । २. रीहा घास ।

गून'—संज्ञा पुं० [सं० गुण] दे० 'गुण' । उ०—जीवन याहि
कम नहि ऊन, धनि गुण विमय देखिष सब गून । —विद्यापति,
पृ० ३१५ ।

गूनसगई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष । रोड़ ।

विशेष—यह पूर्वी हिमालय और विशेषतः दारजिलिंग तथा
प्रासाम में पाया जाता है ।

गूना'—संज्ञा पुं० [फा० गूनहू = रंग] एक प्रकार का गुनहला रंग जो
सोने या पीतल से बनाया जाता है और मंदूकों, पीणों तथा
धातु की अन्य वस्तुओं पर चढ़ाया जाता है ।

गूना'—संज्ञा पुं० [हि० गुना] दे० 'गुना' । उ०—दह गुना दल
साहि सज्जि चतुरंग मजी उर । —पृ० रा०, २७ । २६ ।

गूनागून—संज्ञा पुं० [सं० गुण + अगुण] अच्छे बुरे गुण । गुण
और अगुण ।

गुण—वि० [हि० गुण] दे० 'गुण' । उ०—नाम नहीं श्री नाम सब
भय नहीं सब रूप । भद्रजो सब कुछ ब्रह्म है हरि परगट हरि
गुण । —सहजो०, पृ० ४६ ।

गूमट—संज्ञा पुं० [हि० गुम्मत] दे० 'गुम्मत' ।

गूमठ—संज्ञा पुं० [हि० गुम्मत] दे० 'गुम्मत' । उ०—गूमठ में जब
जाय लगी, मुगलके मजदूर में आवता है । —पलटू० पृ० ५१ ।

गूमदा—संज्ञा पुं० [सं० गुम्मा] वह मोल घोर कड़ी गूजन जो सिर या
माथे पर चोटा लगने से होती है ।

गूमना'—क्रि० सं० [देश०] १. गूधना । मीडना । घाटे की तरह
मीडना । २. कुचनना । रोदना ।

गूमा—संज्ञा पुं० [सं० गुम्मा, गुम्मा] एक छोटा पोधा ।

विशेष—इसकी गठ गठ पर गुच्छा सा होता है । इसी गुच्छे
पर दो पत्तों निकलने से और सफेद फूल भी लगने हैं । यह
घोषध के काम में आता है । इसे गूम और गूम भी कहते हैं ।

पर्या०—डोला । इ० एपुष्पी । कुंभा । कुंभयोनि ।

गूरण—संज्ञा पुं० [सं०] प्रयत्न । उद्योग [को०] ।

गूरा'—संज्ञा पुं० [हि० गुत्ता] गुत्ता । डेला ।

गूरु—संज्ञा पुं० [सं० गुरु] दे० 'गुरु' । उ०—सूरी मेलु हस्ति कर
पूरु । हौं नहि जानी जानै गूरु । —जायसी शं० (गुप्त),
पृ० २८४ ।

गूजर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गुर्जर' [को०] ।

गूरु—वि० [सं०] कृतज्ञ । आभारी [को०] ।

गूर्त—वि० [सं०] कृतज्ञ । कनोड़ा । कनावड़ा [को०] ।

गूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रणाम । २. सहमति [को०] ।

गूर्द—संज्ञा पुं० [सं०] कुदान । कूदने की क्रिया [को०] ।

गूलक—संज्ञा पुं० [हि० गूलर] दे० 'गूलर' । उ०—ग्राम और
जामुन के फल हैं, कुछ गूलक, कुछ गुल्म कच्चे । —भाराधना,
पृ० ७४ ।

गूलाभांग—संज्ञा स्त्री० [हि० फूल का अनु० गूल + हि० भांग]
हिमालय में होनेवाली एक प्रकार की भांग का मादा पेड़
जिसकी टहनियों से रेशे निकाले जाते हैं ।

गूलर'—संज्ञा पुं० [सं० उडुंबर ?] बट वगैरह पर्याप्त पीपल और बरगद
की जाति का एक बड़ा पेड़ जिसकी पेड़ी, डाल आदि से एक
प्रकार का दूध निकलता है ।

विशेष—इसके पत्ते महुवे के पत्ते के आकार के पर उससे छोटे
होते हैं । पेड़ी और डाल की छाल का रंग ऊपर कुछ सफेदी
लिए और भीतर ललाई लिए होता है । प्रत्येक पत्ते के और
पेड़ी के समान इसके सूक्ष्म फूल भी अंतर्मुख पर्याप्त एक कोश
के भीतर बंद रहते हैं । पुं० पुष्प और स्त्री० पुष्प के अलग अलग
कोश होते हैं । गर्भाधान कीड़ों की सहायता से होता है । पुं०
केसर की वृद्धि के साथ साथ एक प्रकार के कीड़ों की उत्पत्ति
होती है जो पुं० पराग को गर्भकेसर में ले जाते हैं । यह
नहीं जाना जाता कि ये कीड़े किस प्रकार पराग ले जाते हैं
पर यह निश्चय है कि ये प्रत्येक जगह हैं और उसी से गर्भाधान
होता है तथा कोश बढ़कर फल के रूप में होते हैं । यह
मांसल और मुलायम होता है । इसके ऊपर कड़ा छिलका
नहीं होता, बहुत महीन भिल्ली होती है । फल को तोड़ने से
उसके भीतर गर्भकेसर और महीन महीन बीज दिखाई
पड़ते हैं तथा भुनगे या कीड़े भी मिलते हैं । गूलर की छाया
बहुत भीतल मानी जाती है । वैद्यक में गूलर भीतल, घाब
को भरनेवाला, कफ, पित्त और अतीसार को दूर करनेवाला
माना है । इसकी छाल स्त्री गर्भ को हितकारी, दुग्धवर्धक
और वरुणाशक मानी जाती है । अंजीर आदि बट जाति
के और फलों के समान इसका फल भी रसक होता है ।

पर्या०—उडुंबर । असुमा । क्षीरो । लक्ष्मिका । कुष्ठनी ।
राजिका । फल्गुवाटिका । अजीजा । फल्गुनी । मलयु ।

मुहा०—गूलर का कीड़ा = एक ही स्थान पर पड़ा रहनेवाला ।
अनुभव प्राप्त करने के लिये घर या देश से बाहर न निकलने-
वाला । इधर उधर की कुछ खबर न रखनेवाला । रूपमंदूक ।
गूलर का फूल = वह जो कभी देखने में न आवे । दुर्लभ व्यक्ति
या वस्तु । गूलर का फूल होना = कभी देखने में न आना ।
दुर्लभ होना । गूलर का पेड़ फड़काना = गुप्त या दबी हवा

बात प्रकट कराना । मंदा फोड़वाना । भेद चुनवाना ।
गूजर फोड़कर जोष उड़ाना = गुप्त भेद प्रकट करना ।

गूजर^२—संज्ञा पुं० [देश] मेढक । बादुर ।

गूजरकबाब—संज्ञा पुं० [हि० गूजर + फ्रा० कबाब] एक प्रकार का कबाब ।

विशेष—यह उबले घीर पिसे हुए मांस के भीतर अदरक, पुदीना आदि भरकर भूनने से बनता है ।

गूला—संज्ञा पुं० [हि० गोला] हूरा । छोर । उ०—ठंडाई के चढ़ते हरे नशे में रामसिंह भाँजे खोल भूँच रहे थे कि जमींदार का सिपाही लट्टू का बंधा गूला जमीन पर दे मारकर रामसिंह के साधारण जमींदार को साथ लिए बोला ।—काले०, पृ० २२ ।

गूलू—संज्ञा स्त्री० [देश] एक वृक्ष का नाम जिसे पुंज के भी कहते हैं ।

विशेष—इससे एक प्रकार का सफेद गोंद निकलता है जिसे कतीला या कतीरा कहते हैं और जो पानी में नहीं घुलता । इस वृक्ष की छाल की रस्सियाँ बटी जाती हैं । जब यह वृक्ष दस वर्ष का हो जाता है तब इसे काट डालते हैं और बालियों को छाँटकर तने के छह छह फुट के टुकड़े कर डालते हैं । फिर छाल को उतारकर रस्सियाँ बटते हैं । पत्तियाँ और डालियाँ चारे और दवा के काम आती हैं । लकड़ी से खिलोने तथा सितार सारंगी आदि बाजे बनते हैं । कोई कोई जड़ों की तरकारी भी बनाते हैं या उन्हें गुड़ के साथ मिलाकर खाते हैं । यह उत्तरीय भारत, मध्य भारत, दक्षिण तथा बर्मा के सूखे जंगलों में होता है । पश्चिमी घाट के पहाड़ों पर यह बहुत मिलता है ।

गूबाक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गुवाक' ।

गूषणा—संज्ञा पुं० [सं०] मोर की पूँछ पर बना हुआ अर्धचंद्र चिह्न ।

गूह—संज्ञा पुं० [सं० गूः] गलीज । मल । मैला । बिछा । बोट ।

गूहा—गूह उठाना=(१) पालाना साफ करना । (२) तुच्छ से तुच्छ सेवा करना । बड़ी सेवा करना । गूह की तरह बचाना—घृणापूर्वक दूर रहना । जैसे—हम ऐसे आदर्शियों को गूह की तरह बचाते हैं । गूह की तरह छिपाना=निषा और लज्जा के भय से गुप्त रखना । गूह उछालना=कलंक फैलाना । निंदा होना । गूह उछालना=बदनामी कराना । गूह करना=गंदा और मैला करना । गूह का जोष=महा और विनोदा (वस्तु या व्यक्ति) । गूह का टोकरा=बदनामी का टोकरा । कलंक का मार । गूह खाना=बहुत अनुचित और अष्ट कार्य करना । गूह गोड़ते फिरना=अगम्या स्थियों से गमन करते फिरना । गूह बापना=पागलपन के काम करना । होश में न रहना । गूह में डेला फेंकना=बुरे भावों से छेड़छाड़ करना । (बच्चों और रोगियों का) गूह झूत करना=मलमूत्र साफ करना । सुँह में गूह बेना=बहुत धिक्कारना । किसी को छी छी कहना ।

गूहन—संज्ञा पुं० [सं०] छिपाना । छिपाव [को०] ।

गूहोजनी | संज्ञा स्त्री० [हि० गुहाजनी] दे० 'गुहाजनी' ।

३-३०

गूहाछीछी—संज्ञा स्त्री० [हि० गूह + छीछी] १. पशुजीव घीर गाली मरी कहा सुनी । बदनामी । २. अपवाद । कलंक ।

गूजन—संज्ञा पुं० [सं० गृञ्जन] १. गाजर । २. जलगम । ३. लाल सहस्र (को०) । ४. गीजा (को०) । ५. विषले बाण से मारे हुए जानवर का मांस (को०) ।

गूडिब, गूडीब—संज्ञा पुं० [सं० गृडिब, गृडीब] एक प्रकार का सियार [को०] ।

गूत्स^१—वि० [सं०] १. कुशल । दक्ष । प्रवीण । २. विवेकी । विचारक । ३. धूर्त । चालाक [को०] ।

गूत्स^२—संज्ञा पुं० कामदेव [को०] ।

गूद्ध^१—संज्ञा पुं० [सं० गृध्र] दे० 'गृध्र' । उ०—चुंचनि चुचै गृध्र मांस जंबुक मिलि भच्छै ।—हम्मीर०, पृ० ५८ ।

गूद्ध^२—वि० [सं०] १. चाहनेवाला । इच्छा करनेवाला । २. फिदा । आसक्त [को०] ।

गूधु^१—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव [को०] ।

गूधु^२—वि० विषयी । कामी [को०] ।

गूधु^३—वि० [सं०] जल । दुष्ट [को०] ।

गूधु^४—संज्ञा स्त्री० १. अपान वायु । २. समझ । बुद्धि [को०] ।

गृध्नु—वि० [सं०] १. लालची । लोभी । २. उत्सुक । इच्छुक [को०] ।

गृध्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. इच्छा । २. लोभ [को०] ।

गृध्य^२—वि० १. इच्छा के योग्य । चाहने योग्य । २. लोभनीय [को०] ।

गृथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इच्छा । २. लोभ [को०] ।

गृथ्या—वि० १. कामना योग्य । चाहने योग्य । २. लोभनीय [को०] ।

गृध्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिद्ध । गीध पक्षी । २. जटायु, संवाति आदि पौराणिक पक्षी ।

यौ०—गृध्रकूट । गृध्रगृह ।

गृध्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] राजगृह के निकट एक पर्वत का नाम ।

गृध्रराज—संज्ञा पुं० [सं०] जटायु [को०] ।

गृध्रव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] सेना की एक प्रकार की रचना या स्थिति जो गीध के आकार की होती थी । उ०—तब प्रद्युम्न तुरत प्रभु टेरा । गृध्रव्यूह विरचहु दल केरा ।—रघुराज (शब्द०) ।

गृध्रसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वातरोग ।

विशेष—यह पहले कूल्हे से उठता है और धीरे धीरे नीचे की उतरता हुआ दोनों पैरों को जकड़ लेता है । इसमें सुई चुभने की सी पीड़ा होती है, पैर काँपने लगने हैं और रोगी बहुत धीरे चलता है, तेज नहीं चल सकता ।

गृध्राण—वि० [सं०] १. गृध्र जैसा (लोभ में) । २. उत्कट भाव से चाहनेवाला [को०] ।

गृध्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गिद्धों की आदि माता जो कश्यप और ताम्रा की पुत्री थी [को०] ।

गृध्रो—संज्ञा स्त्री० [सं०] मादा गिद्ध [को०] ।

गृध्र—संज्ञा पुं० [सं०] घर । गृह [को०] ।

गृभित, गृभीत—पि० [सं०] १. पकड़ा हुआ। बंदी। गिरपता। २. गर्भयुक्त। गर्भाया हुआ (फल) [को०]।

गृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जो केवल एक बार ब्याटे हो। जवान गाय। २. वह स्त्री जिसको केवल एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ हो [को०]।

गृह—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० गृही] १. घर। मकान। निवासस्थान। आश्रम। २. कुटुंब। मानदान। वंश। ३. पत्नी। गृहिणी [को०]। ४. गृहस्थाश्रम [को०]। ५. मेघादि राशि [को०]।

ग्री०—गृहविज्ञान = परेसू जान। गरी संबंधी शास्त्रीय ज्ञान।

गृहयोग—संज्ञा पुं० [सं०] घर में किया जानेवाला उद्योग यथा कुटीर उद्योग।

गृहकन्या, गृहकुमारो—संज्ञा स्त्री० [सं०] धीकुमार। वृत्तकुमारिका। ग्वारपाठा।

गृहकपोत, गृहकपोतक—संज्ञा पुं० [सं०] पालतू कबूतर [को०]।

गृहकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. परेसू कामधंधा। २. भवननिर्माण [को०]।

गृहकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] गृह + कर्मन् १. परेसू कार्य। २. गृहस्थ के लिये विहित कार्य [को०]।

गृहकलह—संज्ञा पुं० [सं०] १. परेसू झगड़ा। आंतरिक राधपं।

गृहकारक—संज्ञा पुं० [सं०] भवननिर्माता। रथपति। राज [को०]।

गृहकारी—संज्ञा पुं० [सं०] गृहकारिन् १. भवन का निर्माता। २. एक प्रकार की बरत या भिड़ [को०]।

गृहकार्य, गृहकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] घर का काम धंधा।

गृहगोधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली। बिमलुइया।

गृहगोधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकिली। बिमलुइया।

गृहचेता—वि० [सं०] गृहचेतस् घर की चिंता करनेवाला [को०]।

गृहछिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] गृहछिद्र १. परिवार की गोपनीय बात। २. परिवार का कलंक। अपवाद [को०]।

गृहज—वि० [सं०] १. 'गृहजात' [को०]।

गृहजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. परिवार। कुटुंब। २. परिवार के सदस्य। कुटुंबी विशेषतया पत्नी [को०]।

गृहजात (दास)—संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जो घर में दासों से पैदा हुआ हो।

गृहजालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] टूल। कपट [को०]।

गृहज्ञानी—संज्ञा पुं० [सं०] गृहज्ञानिन् वह जिसका ज्ञान घर तक ही सीमित हो। वह जो घर में ही पांडित्य दिखला सकता हो। गजानी। गुरु [को०]।

गृहणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काँजी।

गृहपटो—संज्ञा स्त्री० [सं०] घर का अग्रभाग [को०]।

गृहत्याग—संज्ञा पुं० [सं०] घर का छोड़ना। गृहस्थाश्रम छोड़ना [को०]।

गृहत्यागी—वि० [सं०] घर छोड़कर चला जानेवाला। संन्यासी [को०]।

गृहदास—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गृहदासी] घर का नौकर [को०]।

गृहदाह—संज्ञा पुं० [सं०] घर में आग लगना [को०]।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

गृहदीप्ति—संज्ञा पुं० [सं०] घर की ज्योति प्रभात् सती साध्वी स्त्री [को०]।

गृहदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि से ब्रह्मा तक के घर के ४५ देव जो भिन्न भिन्न कार्यों के लिये हैं [को०]।

गृहदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गृहिणी। २. जरा नाम की राक्ष [को०]।

गृहदेहली—संज्ञा स्त्री० [सं०] घर का द्वार या चौखटा [को०]।

गृहद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] मेढशृंगी [को०]।

गृहमन—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा [को०]।

गृहनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] जगली कबूतर।

गृहनीड—संज्ञा पुं० [सं०] गृहनीड गोग पक्षी। गौरैया।

गृहप—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर का मालिक। २. घर का रक्षक चौकीदार। ३. कुत्ता। उ०—(क) गृहप गोध गोमाक कह लें। छोटित मूँड कपाली डोलें।—विश्राम (शब्द०)। (ख) गृहप शवकास्थि लै चपि बाबत सह प्रीति। निज तालु ननुज भलि मानत तोष असीति।—विश्राम (शब्द०)। अग्नि। आग।

गृहपति—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० गृहपत्नी] १. घर का मालिक। कुत्ता। २. अग्नि। ४. मेजमान। उ०—गुम नहीं हो अति तुम हो नित्य गृहपति मुदित मनहर।—अवलक, पृ० ८०।

गृहपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घर की मालकिन। गृहस्वामिनी [को०]।

गृहपशु—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

गृहपातक व्यंजन—संज्ञा पुं० [सं०] गृहपातकव्यंजन [को०] कौटिल्य अनुसार सामान्य गृहस्थ के रूप में रहनेवाले गुप्तचर जो लो के रहन सहन, आमदनी आदि की खबर रखते थे। सम्राट् के अधीन रहते थे।

गृहपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर का रक्षक। चौकीदार। पहलू २. कुत्ता। उ०—गृहपाल त प्रति निरादर खान पान पावत। तुलसी (शब्द०)।

गृहपालित—वि० [सं०] घर में पोषित या पाला हुआ [को०]।

गृहपिंडो—संज्ञा स्त्री० [सं०] गृहपिण्डो घर की नींव [को०]।

गृहपोतक—संज्ञा पुं० [सं०] किसी घर या गृह का स्थान। वह भू जिनमें कोई गृह निर्मित होता है। वह स्थान जो घर के में हो [को०]।

गृहपोषण—संज्ञा पुं० [सं०] घर का निर्वाह या पोषण [को०]।

गृहप्रबंध—संज्ञा पुं० [सं०] गृह का संभालन या व्यवस्था [को०]।

गृहप्रवेश—संज्ञा पुं० [सं०] नवनिर्मित घर में धार्मिक विधान। अथवा पूर्वक प्रवेश करना [को०]।

गृहबलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] घर में दी जानेवाली बलि, जो पशु लोकाधीन या दैवी प्राणियों विशेषतः परिवार के देवता को दी जाती है [को०]।

गृहबलिप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] बगुला। बक [को०]।

गृहबलिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] गृहबलिभुज १. कौआ। २. गोर [को०]।

गृहभंग—संज्ञा पुं० [सं०] गृहभङ्ग, १. घर से निकाला हुआ व्यक्ति।

घर का नाश । ३. घर की सैंध । ४. गृह या संस्था का विफल होना, गिर जाना या नष्ट होना [को०] ।

गृहभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] सभाकक्ष । बैठक [को०] ।

गृहभर्ता—संज्ञा पुं० [पुं० गृहभर्तृ] घर का स्वामी [को०] ।

गृहभूमि—संज्ञा स्त्री [सं०] वह भूमि जिसपर मकान बना हो या बननेवाला हो [को०] ।

गृहभेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर में झगड़ा होना । २. घर में संघ लगना [को०] ।

गृहभेदी—वि० [सं० गृहभेदिन्] [वि० स्त्री० गृहभेदिनी] १. घर में झगड़ा लगानेवाला । २. घर में संघ लगानेवाला [को०] ।

गृहभोज—संज्ञा पुं० [सं०] गृहप्रवेश के अवसर पर होनेवाला या किया जानेवाला भोज ।

गृहभोजी—वि० [सं० गृहभोजिन्] उसी घर में रहने या खानेवाला [को०] ।

गृहमंत्री—संज्ञा पुं० [सं० गृहमन्त्रिन्] राज्य प्रथवा देश का वह मंत्री जिसके ऊपर आंतरिक सुरक्षा तथा शासन का भार हो । (अंग्रेजों में मिनिस्टर) ।

गृहमणि—संज्ञा पुं० [सं०] दीपक । चिराग ।

गृहमाचिका—संज्ञा स्त्री [सं०] चमगादड़ [को०] ।

गृहमार्जनी—संज्ञा स्त्री [सं०] घर की नौकरानी । गृहदासी [को०] ।

गृहमुखी—संज्ञा पुं० [सं० गृहमुख + ई (प्रत्य०)] जो अपना घर छोड़कर बाहर (विदेश) न जाना चाहता हो । उ०—समुद्र-तट के अधिवासी साधारणतः मछुएँ, साहसी, नाविक तथा कुशल व्यापारी और अंतर्वर्ती देशों जैसे चीन आदि के लोग गृहमुखी होते हैं ।—भारत० नि०, पृ० १० ।

गृहमृग—संज्ञा पुं० [सं०] मृग ।

गृहमेध—संज्ञा पुं० [सं०] गृह की वंक्ति । मकानों का समूह [को०] ।

गृहमेध^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. गृहस्थ । २. पंचयज्ञ [को०] ।

गृहमेध^२—वि० १. गृहस्थाश्रमी । २. पंचयज्ञ करनेवाला [को०] ।

गृहमेधी—वि० [सं० गृहमेधिन्] १. गृहस्थाश्रमी । २. पंचयज्ञ करनेवाला [को०] ।

गृहमेधिनी—संज्ञा स्त्री [सं०] १. गृहस्थ की पत्नी । २. सत्यगुण की बुद्धि [को०] ।

गृहमोचिका—संज्ञा स्त्री [सं०] चमगादड़ [को०] ।

गृहयन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० गृहयन्त्र] वह ढंडा जिसपर उत्सवादि के समय झंडा फहराया जाता है [को०] ।

गृहयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गृहमेध' [को०] ।

गृहयात्रा—वि० [सं०] पकड़ने या धरने का इच्छुक [को०] ।

गृहयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध जो एक ही देश या राज्य के निवासियों में आपस में हो । अंतःकलह । गृह का कलह ।

गृहयन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० गृहयन्त्र] पारिवारिक कलह या झगड़ा [को०] ।

गृहलक्ष्मी—संज्ञा स्त्री [सं०] सुशीला पत्नी ।

गृहघाटिका, गृहघाटी—संज्ञा स्त्री [सं०] घर से सटा हुआ बाग या वाटिका [को०] ।

गृहदासी^१—संज्ञा पुं० [सं० गृहदासिन्] १. गृहस्थ । २. सदा घर में रहनेवाला । घर में घुसा रहनेवाला [को०] ।

गृहदासी^२—वि० १. गृही । घरवाला । २. घर में घुसा रहनेवाला । घरघुसुवा [को०] ।

गृहविच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] घर का बरबाद होना [को०] ।

गृहवित्त—संज्ञा पुं० [सं०] घर का मालिक [को०] ।

गृहव्रत—वि० [सं०] गृह या गृहस्थ आश्रम में स्थित [को०] ।

गृहशायी—संज्ञा पुं० [सं० गृहशायिन्] कबूतर [को०] ।

गृहशुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पालतू शुक । २. घर का कवि [को०] ।

गृहसंवेशक—संज्ञा पुं० [सं०] घर बनाने का धंधा करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

गृहसचिव—संज्ञा पुं० [सं० गृह + सचिव] दे० 'स्वराष्ट्र सचिव' ।

गृहसार—संज्ञा पुं० [सं०] संपत्ति । जायदाद [को०] ।

गृहस्था^१—संज्ञा पुं० [सं० गृहस्थ] दे० 'गृहस्थ' ।

गृहस्थ^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मचर्य के उपरांत विवाह करके दूसरे आश्रम में रहनेवाला व्यक्ति । ज्येष्ठाश्रमी । २. घरबारवाला । बाल बच्चोंवाला आदमी । ३. खाने पीने से खुश आदमी । वह मनुष्य जिसके यहाँ बेटी आदि होती हो । किसान ।

गृहस्थ^२—वि० [सं०] घर में रहनेवाला । गृहवासी [को०] ।

गृहस्थाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] चार आश्रमों में से दूसरा आश्रम जिसमें ब्रह्मचर्य अर्थात् विद्याध्ययन आदि के उपरांत लोग विवाह करके प्रवेश करते थे और घर का कामकाज देखते थे । जीवन की वह अवस्था जिसमें लोग स्त्री पुत्र आदि के साथ रहते और उनका पालन करते हैं ।

गृहस्थाश्रमी—वि० [सं० गृहस्थाश्रम + ई (प्रत्य०)] गृहस्थाश्रम में रहनेवाला [को०] ।

गृहस्थिन—संज्ञा स्त्री [सं० गृहस्थ + हि० इन (प्रत्य०)] गृहिणी । घर की मालकिन । उ०—लेखक ने शुरु में उसे बिलकुल माधुरी गृहस्थिन के रूप में उतारा है ।—सुनीता, पृ० १३ ।

गृहस्थी—संज्ञा स्त्री [सं० गृहस्थ + ई (प्रत्य०)] १. गृहस्थाश्रम । गृहस्थ का कर्तव्य । २. घर बार । गृह व्यवस्था । ३. कुटुंब । लड़के वाले । जैसे,—वे अपनी गृहस्थी लेने गए हैं ।

मुहा०—गृहस्थी संभालना = घर का कामकाज देखना । कुटुंब का पालन पोषण करना ।

४. घर का सामान । माल असबाब । जैसे,—इतनी गृहस्थी कीन ढोकर ले जाय । ५. बेटीबारी । कामकाज ।

गृहाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] झरोखा । गवाक्ष [को०] ।

गृहागत—वि० [सं०] घर आया हुआ (प्रतिश्रि) [को०] ।

गृहाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकान का मालिक । मकानदार । २. राजभवन का प्रधान अधिकारी ।

विशेष—शुक्नीति में कहा गया है कि वह राजभवनारी जिसका काम राजभवन की देखभाल करना होता था, गृहाधिपति कहलाता था ।

गृहापण—संज्ञा पुं० [सं०] हाट । बाजार [को०] ।

गृहाम्भ—संज्ञा पुं० [सं०] काजी [को०] ।

गृहाराम—संज्ञा पुं० [सं०] गृहवाटिका [को०] ।

गृहाश्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली [को०] ।

गृहाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] गृहस्थाश्रम [को०] ।

गृहासक्त—वि० [सं०] घर गृहस्थी में अधिक रुचि रखनेवाला [को०] ।

गृहजन—संज्ञा पुं० [सं०] घर के व्यक्ति । परिवार के लोग । उ०—
अश्रित चरण लोट गृहजन निज निज द्वार ।—घषरा,
पृ० ३५ ।

गृहणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घर की मालकिन । २. भार्या । स्त्री ।

गृही^१—संज्ञा पुं० [सं० गृहिन] [स्त्री० गृहिणी] गृहस्थ । गृहस्थाश्रमी ।

गृही^२—वि० गृहस्थ । गृहस्थाश्रमी । उ०—गृही लोग, हम अनिकेतन
की क्या जाने हम पीर ?—घपलक, पृ० ७२ ।

गृहीत—वि० [सं०] १. लिया हुआ । ग्रहण किया हुआ । २. पकड़ा
हुआ । ३. प्राप्त किया हुआ । ४. स्वीकृत । स्वीकार किया
हुआ । ५. संग्रह किया हुआ । एकत्र । ६. संजूर । वादा किया
हुआ । ७. समझा हुआ । जात [को०] ।

गृहीतगर्भा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री [को०] ।

गृहीतगर्भा^२—वि० गर्भवती [को०] ।

गृहीतानुवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] कोटिन्य के अनुसार देने के बाद कुछ
धीरे दे देना ।

गृहीतार्थ—वि० [सं०] जो अर्थ या तात्पर्य को समझता है । तात्पर्य
का दाता । अर्थ का ज्ञाता [को०] ।

गृहोद्यान—संज्ञा पुं० [सं०] गृहवाटिका [को०] ।

गृहोद्योग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गृहउद्योग' [को०] ।

गृहोपकरण—संज्ञा पुं० [सं०] घर का सामान, बरतन आदि [को०] ।

गृहोत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकली [को०] ।

गृह^१—वि० [सं०] १. गृह संबंधी । गृहस्थी से संबंध रखनेवाला ।
२. जिसको आकर्षित या प्रसन्न किया जाय [को०] । ३.
आश्रित [को०] । ४. पालनू [को०] । ५. घर में किया जानेवाला
(कार्य) [को०] । ६. ग्रहणीय [को०] । ७. पकड़ने योग्य [को०] ।

गृह^२—संज्ञा पुं० १. गुहा । २. पारिवारिक ऋतु । ३. पालनू पशु-
पक्षी । ४. घर के लोग । गृहजन । ५. गृहाग्नि [को०] ।

गृहक^१—वि० [सं०] १. पालनू । २. गृह संबंधी । गृहविषयक [को०] ।

गृहक^२—संज्ञा पुं० पालनू जानवर [को०] ।

गृहकर्म—संज्ञा पुं० [सं० गृहकर्मन्] गृहस्थ के लिये विहित कर्म,
संस्कारादि [को०] ।

गृहसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह श्रेष्ठिक पद्धति की पुस्तक जिसमें लिखे
हुए नियमों के अनुसार गृहस्थ लोग भुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह
आदि सब संस्कार और कार्य करते हैं । पाँच गृहसूत्र बहुत
प्रसिद्ध हैं—१. माण्डूकायन, २. कात्यायन, ३. सांख्यायन, ४.
मानव और ५. गोभिल ।

गृहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नगर से सटा हुआ गाँव । कस्बा [को०] ।

गेंगटा—संज्ञा पुं० [सं० कर्कट] केकड़ा ।

गेंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० गृष्टि, प्रा० गिट्टि, गेड्डि] बाराही कंद ।

गेड्डि^७—संज्ञा स्त्री० [सं० घट्टि, प्रा० गट्टि] दे० 'गट्टि' । उ०—

मुझे जुआल भीह युगल, अरे गेंडि पैल्लिजडं घर बिच
पपफुरिष ।—कीर्ति०, पृ० ६० ।

गेंडु^१—संज्ञा पुं० [सं० काण्ड] ऊँस के ऊपर का पत्ता । प्रगोरा ।

गेंडु^२—संज्ञा पुं० [देण] १. ऊँस की पत्तियों, सरसों की डंठलों
और भरहर की काँड़ियों से बना हुआ घेरा जिसमें नीचे ऊपर
भूसा देकर किसान घन्न रखते हैं ।

क्रि० प्र०—झालना ।—बेना ।

२. किसी प्रकार का घेरा ।

गेंडुना—क्रि० सं० [हि० गेंड] १. किसी खेत को पतली छोटी दीवार
से घेरना । खेतों को गेंडु से घेरकर हद बाँधना । २. घन्न
रखने के लिये गेंडु बनाना । ३. घेरना । गोंठना । ४. लकड़ी
के बड़े छोटे टुकड़े काटने के लिये उसके चारों ओर कुल्हाड़ी
से खेव लगाना ।

गेंडुली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] कुंडल । फेटा । रस्सी की ऐसी वस्तु
को वह स्थिति जिसमें एक दूसरे के अंदर कई मंडनाकार
घेरे हों । जैसे,—साँप गेंडुली मारकर बैठता है ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।—मारना ।

गेंडुहिया^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] गेंडेरियों की बोली में सब रंग मिले
हुए रोंए या ऊन ।

गेंडु^२—संज्ञा पुं० [सं० काण्ड] १. ईँस के ऊपर के पत्ते । प्रगोरा । २.
ईँस । गन्ना । ३. ईँस की बड़ी गेंडरी । ४. ईँस के कटे हुए
टुकड़े जो खेत में बोए जाते हैं । ५. पत्थर की निहाई जिस-
पर पीतल ताँबा लाल करके पीटते हैं । इसका व्यवहार प्रायः
मिर्जापुर में है । ६. दे० 'गेंडु' ।

गेंडु^३—संज्ञा पुं० [सं० गण्डक] दे० 'गेंडु' ।

गेंडु^४—संज्ञा पुं० [सं० गेण्डु] १. गेंद । कंदुक । २. गद्दा [को०] ।

गेंडुआ^१—संज्ञा पुं० [सं० गण्डुक = तकिया] तकिया । सिरहाना ।
उसीसा । उ०—(क) लोगनि भलो मनाइबो भलो होन की
भास । करत गगन को गेंडुआ सो सठ तुलसीबास । - तुलसी
(शब्द०) । (ख) अंग को कि भंगराय गेंडुआ की गलसुई किधी
कटि जेब ही उर को कि हाव है ।—केशव (शब्द०) । (ग)
चंपक दस कृति गेंडुये । मनहुँ रूप के रूपक उये ।—केशव
(शब्द०) ।

गेंडुआ^२—संज्ञा पुं० [सं० गेण्डु या गेण्डुक] बड़ा गेंद ।

गेंडुक—संज्ञा पुं० [सं० गेण्डुक] गेंद । कंदुक ।

गेंडुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] १. रस्सी का बना हुआ मेंढरा
जिसपर पड़ा रखते हैं । इंडुरी । बिडवा । उ०—प्रतिहि
करत तुम क्याम अचगरी । काहू की धीनत हो गेंडुरी काहू
की फोरत हो गगरी ।—मूर (शब्द०) । २. फेटा । कुंडली ।
३. तबले या बाएँ के नीचे की इंडुरी जिसमें बड़ी लगाकर
कसते हैं । ४. साँपों का कुंडलाकार होकर गोल बैठना ।

क्रि० प्र०—मारना ।—मारकर बैठना ।

गेंडुली—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] दे० 'गेंडुरी' ।

गेंडुवा^७—संज्ञा पुं० [हि० गडुवा] दे० 'गडुवा' । उ०—निरति के
गेंडुवा गंगाजल पानी ।—कबीर ब०, पृ० १० ।

गेंती—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का छोटा वृक्ष ।

विशेष—यह प्रवध में छोटी छोटी नदियों और मोतों के किनारे तथा नेपाल की तराई में अधिकता से पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ चार पाँच अंगुल लंबी और प्रायः इतनी ही चौड़ी होती हैं। गरमी के प्रारंभ में इसमें हरापन लिए हुए पीले रंग के छोटे छोटे फूलों के गुच्छे भी लगते हैं।

गेंती—संज्ञा स्त्री० [हि०] कुदाल ।

गेंद—संज्ञा पुं० [सं० गेन्दुक, कन्दुक] १. कपड़े, रबर या चमड़े का गोला जिससे लड़के खेलते हैं। कन्दुक। उ०—सागे खेलन गेंद कन्हाई। चढ़े बिटप शिशु मारिसि घाई—विश्राम (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उछालना।—खेलना।—फेंकना।—मारना।

गौं—गेंदघर। गेंदतड़ी। गेंदबल्ला।

२. कालिब जिसपर रखकर टोपी बनाते हैं। कसबूत। ३. रोशनी करने की एक वस्तु जिसमें तार की जालियों से बने हुए एक गोले के प्रंदर रोशनी जलती है।

गेंदई—वि० [हि० गेंदा] गेंदे के फूल के रंग का। पीले रंग का।

गेंदई—संज्ञा पुं० गेंदे के फूल के समान पीला रंग।

गेंदघर—संज्ञा पुं० [हि० गेंद + घर] १. वह स्थान जहाँ लोग क्रिकेट, टेनिस आदि खेल खेलते और प्रामोद प्रमोद करते हैं। क्लब घर। २. वह मकान जिसमें अंगरेज बिलियर्ड नामक खेल खेलते हैं। बिलियर्ड रूम।

गेंदतड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० गेंद + तड़ासड़] लड़कों का एक खेल जिसमें वे एक दूसरे को गेंद मारते हैं। जिसे गेंद लगना है, वह चोर होता है।

गेंदना(पुं)—संज्ञा पुं० [हि० गेंदा] गेंदा। एक प्रकार का फूल। उ०—फूल गेंदना एक नवल मेलत मृदु मुसुकाइ।—स० सप्तक०, पृ० ३५२।

गेंदबल्ला—संज्ञा पुं० [हि० गेंद + बल्ला] १. गेंद और उसे मारने की लकड़ी। २. वह खेल जिसमें लकड़ी की एक पट्टी से गेंद मारते हैं।

गेंदरा मारना—क्रि० प्र० [हि० गेंद] लंगर डाले हुए जहाज का हवा या लहर के कारण दधर उधर हो जाना।—(लश०)।

गेंदबाजी—संज्ञा पुं० [सं० गेएडुक] तकिया। उसीसा। सिरहाना। उ०—प्रेम क पसंगा दियो है बिछाय। सुरति के गेंदवा दिए ढरकाय।—कबीर (शब्द०)।

गेंदबा^३(पुं)—संज्ञा पुं० [हि० गेंद] दे० 'गेंद'। उ०—मोहिनि एक जो सुंदर शरीरा। फूल के गेंदवा खेलहि तीरा।—स० दरिया, पृ० ३।

गेंदा—संज्ञा पुं० [हि०] १. दो ढाई हाथ ऊँचा एक पौधा जिसमें पीले रंग के फूल लगते हैं।

विशेष—इसमें लंबी पतली पत्तियाँ सीके के दोनों ओर पत्तियों में लगती हैं। यह दो प्रकार का देखने में आता है, एक जंगली या टिरी जिसके फूल चार ही पाँच दल के होते हैं और बीच का केसर गुच्छ दिखाई पड़ता है और दूसरा हजारा जिसमें बहुत दल होते हैं। फूलों के रंगों में भी भिन्नता होती है,

कोई हलके पीले रंग के होते हैं, कोई नारंगी रंग के होते हैं। एक लाल रंग का गेंदा भी होता है जिसकी डंठलें कालापन लिए लाल होती हैं और फूल भी उसी मखमली रंग के लगने हैं। गेंदे की सुन्वाई हुई पखड़ियों को फिटकरी के साथ पानी में उबालने से गंधकी रंग बनता है।

२. एक प्रकार की आतिशबाजी जिसमें गेंदे के फूल की आकृति के गुल निकलते हैं। ३. सोने या चांदी का सुपारी के आकार का एक घुंघरूदार गहना जो जोशान या बाल में घुंघी के स्थान पर होता है और नीचे लटकता रहता है।

गेंदुक(पुं)—संज्ञा पुं० [सं० गेन्दुक] गेंद। कंदुक। उ०—सारी कंचुकि केसर टीको। करि सिगार मब फूनि ही को। कर राजत गेंदुकि नीलासी। छुटि दामिनि सो ईषद हमी।—मूर(शब्द०)।

गेंदुरा—संज्ञा पुं० [हि० गेंदुर] दे० 'गादुर'। उ०—कटहल लीची आम बूक गेंदुर से कपित। ग्राम्या, पृ० ६८।

गेंदुवा—संज्ञा पुं० [सं० गेएडुक] गेंदुआ। उसीसा। तकिया। गोल तकिया। उ०—गुलगुली गोल मखतूल की सी गेंदुआ गंध न गुड़ी जो मैं जऊ करत दिठाई सी।—देव (शब्द०)।

गेंदौड़िया—संज्ञा स्त्री० [दे०] वैश्यों की एक जाति।

गेंदौरा—संज्ञा पुं० [हि० गेंद + औरा (प्रत्य०)] एक मिठाई। चीनी की रोटी। खाड़ी की रोटी। दे० 'गिदौड़ा'।

विशेष—चीनी की चाबनी को गाढ़ा करते करते गुंधे हुए आटे की तरह कर डालते हैं और तब उसकी पाव या प्राध प्राध सेर की लोइयाँ (पेंडे) बनाकर कपड़े पर फेंका देते हैं और उन लोइयों पर दबाकर उँगलियों के चिन्ह बना देते हैं। ये लोइयाँ विवाह आदि उत्सवों पर बिरादरी में देने के रूप में बाँटी जाती हैं।

गेंन पुं संज्ञा पुं० [हि० गेंन] दे० 'गैन'। उ०—बजै उक्क डोरु उमक कटवकै। धके पह धुजं हके गेंन हकै।—पृ० रा०, १। ३६०।

गे(पुं)—क्रि० प्र० [हि० गा का बहु० व०] दे० 'गया'। उ०—भजि और भत छंढे गिनह ग राज विजपाल तहाँ।—पृ० रा०, १। ६५५।

गेआन(पुं)—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञान] दे० 'ज्ञान'। उ०—अनहद गरजे अमो रस भरे उपजे ब्रह्म गेआना।—रामानंद०, पृ० ३२।

गेगम—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक घारीदार या चारखाना कपड़ा। भूंगिया। सीकिया।

गेगला—संज्ञा पुं० [दे० ?] ममूर की जाति का एक प्रकार का जंगली पौधा।

विशेष—यह पंजाब से बंगाल तक ६००० फुट की ऊँचाई तक होता है। यह प्रायः प्राप ही प्राप होता है पर कभी कभी चारे के लिये बोया भी जाता है। इसके दाने काले रंग के होते हैं और प्रायः गेहूँ में मिले हुए देखे जाते हैं। गेहूँ के खेत में उत्पन्न होकर यह फसल को कुछ हानि भी पहुँचाता है।

गेगला^२—वि० [दे०] १. मूर्ख। जड़। बेवसूफ। मोढ़ू। २. बात अनसुनी कर जानेवाला। डीठ।

गेगलाना—क्रि० प्र० [हि० गेगला] बात अनसुनी करना । दिटाई करना । टालमटोल करना । बिलस्लापन करना । मूर्खता कर बैठना ।

गेगलापन—संज्ञा पुं० [हि० गेगला] १. मूर्खता । जड़ता । भ्रूणपन । २. धृष्टता । अनसुनी करने की देव या बान । दिटाई । टालमटोल । बिलस्लापन ।

गेगली—वि० स्त्री० [हि० गेगला] दे० 'गेगला' । उ०—हमारे अब वह दिन लद गए अब तुम्हारे दिन है । अब तुम खोजो खोजो दिल लोल के । अगर तुम गेगली हो ।—मैत्र कु०, पृ० २८ ।

गेजुनिया—संज्ञा पुं० [देश०] गुल दुपहरिया ।

गेटिस—संज्ञा पुं० [प्र० गेटर्स] १. कपड़े या चमड़े का बना हुआ एक आयरन जिमसे मुटने से लेकर एड़ी तक पैर ढँका रहता है । इसे सवार लोग अधिक काम में लाते हैं । २. मोजा आदि बांधने के लिये रबर या चमड़े का फीता ।

गेठा—संज्ञा पुं० [देश०] मोका नाम का वृक्ष जिसकी लकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम में आती है । वि० दे० 'मोका' ।

गेठना—क्रि० म० [म० गरठ चिह्न, हि० गंठा] १. लकीर से घेरना । मंडनाकार रेखा खींचना । २. परिक्रमा करना । चारों ओर घूमना ।

गेठली—संज्ञा स्त्री० [म० गरठली] दे० 'गेठली' ।

गेठी—संज्ञा स्त्री० [म० गरठ - चिह्न, हि० गंठा] १. लकड़ी का एक खेल ।

विशेष—इसमें पृथ्वी पर एक लकीर खींचकर कुछ दूर पर एक लकड़ी रख देते हैं । जो लकड़ा उस लकड़ी पर चोट लगाकर उसे लकीर के पास खींच देता है वह जीतता है ।

२. वह लकड़ी जो इस खेल में रखी जाती है ।

गेठुआ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गेठुक] दे० 'गेठुआ' । उ०—दुर्द्ध दिसि गेठुआ भी गलसुई । काबे पाट भरी धुनि रुई ।—जायसी ग्रं० (गुप्त०), पृ० ३१८ ।

गेठुली(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० गेठुली या गेठुरी] दे० 'गेठली' ।

गेठु(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] १. गोद का बच्चा । शिशु । २. छोटा बच्चा । नादान बालक । उ०—तुम मोहि कोन्ह हाल को गदी इत उत यह भ्रमाई ।—भीखा श०, पृ० ७४ ।

गेठुरा—संज्ञा पुं० [हि० गेठ] १. गोद का बच्चा । २. छोटा बालक ।

गेदा—संज्ञा पुं० [देश०] बिड़िया या वह बच्चा जिसे पर न निकले हो ।

गेनुर—संज्ञा पुं० [देश०] एक बारामासी घास ।

विशेष—यह पशुओं के चारे के काम आती है और सूखने पर छाजन के काम आती है । इसे गोनर या गूनर भी कहते हैं ।

गेवा—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताने की कंधी की तीनियाँ । (जुलाटे) ।

विशेष—इन तीलियों के बीच बीच में ताने के सूत बिरोए रहते हैं जिसमें वे एक दूसरे से सटकर उसझने न पावें । इनकी

संख्या ताने के सूत की संख्या के हिसाब से होती है । ये तीलियाँ लकड़ी की चिरी हुई पतली फट्टियों की होती हैं ।

गेय—वि० [सं०] गाने के योग्य । गाने के लायक । कीर्तन करने के योग्य ।

गेयकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्य जो गाया जा सके । गीतात्मक काव्य । उ०—गीति काव्य और गेय काव्य दोनों एक ही वस्तु नहीं हैं ।—पोद्दार ग्रंथि ग्रं०, पृ० १६७ ।

गेयपद—संज्ञा पुं० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार लाम्य के दस अंगों में से एक । वीणा या तानपूरा आदि यंत्र लेकर आसन पर बैठे हुए केवल गाना ।

गेरना(पु)—क्रि० सं० [सं० गिरण] १. गिराना । नीचे डालना । २. डालना । उड़ेलना । ३. गिराना । झपकाना । उ०—बारंबार जगावति आता लोचन खोलि पलक पुनि गेरत ।—सूर (शब्द०) । ३. डालना । आरोप करना । जैसे,—सुरमा गेरना (आँख में), अचार गेरना । ४. धारण करना । पहनना । उ०—भाल पै लाल गुलाल गुलाल सों गेरि गरी गजरा झलबेली ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ६० ।

गेरना(पु)—क्रि० सं० [हि० घेरना] परिक्रमा करना । चारों ओर फिरना । उ०—बीजो कलौ पाँतरे अमीरदौला गेर वेठो ।—बाँकी० गं०, भा० ३, पृ० १२६ ।

गेरवाँ—संज्ञा पुं० [सं० ग्रैवेयक, तुलनीय फ्रा० गेरवाँ] पशुओं के गेराँव । बंधन का वह अंग जो गले में लपेटा रहता है ।

गेरवाँ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रैवेय, तुलनीय फ्रा० गेरवाँ] गेराँव ।

गेरवाँ—संज्ञा पुं० [सं० ग्रैवेय, तुलनीय फ्रा० गेरवाँ] चौपायों के बंधन का वह अंग जो गले में लपेटा रहता है ।

गेरुआ—वि० [हि० गेरु + आ (प्रत्यय)] १. गेरु के रंग का । मटमैलापन लिए लाल रंग का । २. गेरु में रंगा हुआ । गेरिक । जोगिया । भगवा । उ०—चला कटक जोगिन्ह कर के गेरुआ सब भुसु । कोस बीस चारिहु दिसि जानी फूला टेमु ।—जायसी (शब्द०) ।

गेरुआ—संज्ञा पुं० १. गेरु के रंग का एक कीड़ा जो माघ के महीने में अधिक वर्षा से उत्पन्न होता है और अन्न के खेतों में लग जाता है जिससे अनाज के पेड़ पीले पड़ जाते हैं । २. गेरु के पीछे का एक रोग जिसके कारण वे कमजोर पड़ जाते हैं और अन्न नहीं पैदा कर सकते । इसे गेरुई और कुकुही भी कहते हैं ।

गेरुआबाना—संज्ञा पुं० [हि० गेरुआ + बाना] गेरुआ रंग की पोशाक । साधुओं का पहनावा ।

गेरुई—संज्ञा स्त्री० [हि० गेरु] चैत की फसल का एक रोग जो अनाज के पीछे की जड़ के पास लाल रंग के महीन महीन कीड़े उत्पन्न हो जाने के कारण होता है ।

विशेष—ये कीड़े फैल जाते हैं और पत्तों पर लाली छा जाती है । इससे दाने मारे जाते हैं । सबसे अधिक इसका असर गेरु की फसल पर होता है । जिस साल कुम्हार के पीछे जाड़े में वर्षा अधिक होती है उस साल यह रोग होता है ।

गेहू—संज्ञा स्त्री० [सं० गवेरुह] एक प्रकार की साल कड़ी मिट्टी जो खानों से निकलती है।

विशेष—यह दो रूपों में मिलती है—एक तो भुरभुरी होती है और कच्ची गेरू कहलाती है। दूसरी कड़ी होती है और पक्की गेरू कहलाती है। गेरू कई कामों में आती है। इससे सोने के गहनों पर रंग दिया जाता है। रंगरेज भी इसके मेल से कई प्रकार के रंग बनाते हैं। छीपी इसे छींट छापने के काम में लाते हैं। औषध में भी इसका व्यवहार होता है।

पर्या०—लालमिट्टी। गिरमाटी। गिरिमृत्। सुरंगघातु। गवेरुह। गैरिक। ताम्रवर्णक। कठिन।

गेला—संज्ञा पुं० [ग्रं० गेली] छापेखाने में बड़ी गेली।

गेली—संज्ञा स्त्री० [ग्रं०] छापेखाने में घातु या लकड़ी की एक छिछली कपती।

विशेष—इसपर टाइप रखकर पहले पहल वह कागज छापा जाता है जिसपर संशोधन होना रहता। इसके ऊपर पहले टाइप जमाकर रखे और रस्सी से कस दिए जाते हैं, फिर कागज छाप लिया जाता है।

गेलीप्रूफ—संज्ञा पुं० [ग्रं० गेली + प्रूफ] कंपोज किए हुए मेटर का वह प्रूफ जो पृष्ठ बांधने के पहले का होता है।

गेल्हा—संज्ञा पुं० [देश०] चमड़े का कुप्पा जिसमें तेली तेल रखते हैं।

गेवर—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़। दे० 'गंगवा'।

गेव्वा—संज्ञा पुं० [सं०] १. गानेवाला। गायक। २. अभिनेता [को०]।

गेसू—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. जुल्फ। झलक। २. पीठ पर लटकनेवाले लंबे बाल। ३. केश। बाल। उ०—जहर, जो गेसुओं की पत में मो पेच खाता हो। कहर उस वक्त कोई रमभुमाकर और डाता हो।—ठंडा, पृ० २३।

गेसूदराज—वि० [फ्रा०] जिसके बाल बहुत लंबे हों।

गेह—संज्ञा पुं० [सं० गृह] घर। मकान। निवासस्थान। उ०—करि दडवत चली ललितता जो गई राधिका गेह।—सूर (शब्द०)।

गेहनी—संज्ञा स्त्री० [हि० गेह या सं० गृहिणी] घरवासी। गृहिणी। भार्या। पत्नी। उ०—तुम रानी वसुदेव गेहनी हो गवारि ब्रजवासी। पट देहु मेरी लाड़ लडैतो वारी ऐसी हाँसी।—मूर (शब्द०)।

गेहपति—संज्ञा पुं० [हि० गेह + सं० पति] गृहस्वामी। घर का मालिक।

गेहरा—संज्ञा पुं० [सं० गेह + हि० रा (प्रत्य०)] दे० 'गेह'। उ०—भावसी न सोज और शून्य सी न गेहरा।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५६७।

विशेष—हिंदी का यह 'रा' प्रत्यय विशेषार्थ सूचक होता है।

गेहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घर की मालकिन। गृहस्वामिनी। २. घरनी। पत्नी [को०]।

गेही—संज्ञा पुं० [सं० गेहिन्] [स्त्री० गेहिनी] गृहस्थ। घरबारवाला। उ०—तो गेही कैसे सहे दुहिता प्रथम बिछोह।—शकुंतला, पृ० ७०।

गेहुँअन—संज्ञा पुं० [हि० गेहूँ] एक प्रकार का अत्यंत विषधर फनदार साँप जिसका रंग मटमैला होता है।

गेहुँआँ—वि० [हि० गेहूँ] गेहूँ के रंग का। बादामी।

गेहूँ—संज्ञा पुं० [सं० गोधूम या गोधुम] एक अनाज जिसकी फसल अगहन में बोई जाती और चैत में काटी जाती है।

विशेष—इसका पीधा डेढ़ या पीने दो हाथ ऊँचा होता है और इसमें कुश की तरह लंबी पतली पत्तियाँ पेड़ी से लगी हुई निकलती हैं। पेड़ी के बीच से सीधे ऊपर की ओर एक सीक निकलती है जिसमें बाल लगती हैं। इसी बाल में दाने गुंछे रहते हैं। गेहूँ की खेती अत्यंत प्राचीन काल से होती आई है। चीन में ईसा से २७०० वर्ष पूर्व गेहूँ बोया जाता था। मिस्र के एक ऐसे स्तूप में भी एक प्रकार का गेहूँ गड़ा पाया गया जो ईसा से ३३५६ वर्ष पूर्व का माना जाता है। जंगली गेहूँ अब तक कहीं नहीं पाया गया है। कुछ लोगों की राय है कि गेहूँ जवगोधी या खपली नामक गेहूँ से उत्पन्न करके उत्पन्न किया गया है। गेहूँ प्रधानतः दो जाति के होते हैं, एक दूँडवाले दूसरे बिना दूँड के। इन्हीं के अंतर्गत अनेक प्रकार के गेहूँ पाए जाते हैं, कोई कड़े, कोई नरम, कोई सफेद और कोई लाल। नरम या अच्छे गेहूँ उत्तरीय भारत में ही पाए जाते हैं। नर्मबा के दक्षिण में केवल कठिया गेहूँ मिलता है। संयुक्त-प्रदेश और बिहार में सफेद रंग का नरम गेहूँ बहुत होता है और पंजाब में लाल रंग का। गेहूँ के मुख्य मुख्य भेदों के नाम ये हैं—दूधिया (नरम और सफेद), जमाली (कड़ा भूरा), गगाजली, खेरी (लाल कड़ा), दाऊदी (उत्तम, नरम और श्वेत), मुँगेरी, मुँडिया (बिना दूँड का, नरम, सफेद), पिसी (बहुत नरम और सफेद), जललिया (कड़ा, सफेद, लसदार), सहरिया (नरम और सफेद), कठिया (कड़ा और लसदार), बंसी (कड़ा और लाल)। भारतवर्ष में जितने गेहूँ बोए जाते हैं वे अधिकांश दूँडदार हैं क्योंकि किसान कहते हैं कि बिना दूँड के गेहूँओं को चिड़ियाँ खा जाती हैं। दाऊदी गेहूँ सबसे उत्तम समझा जाता है। जललिया की सूजी अच्छी होती है। बंबई प्रांत में एक प्रकार का खपली गेहूँ भी होता है। खपली या जवगोधी नाम का बहुत मोटा गेहूँ सिंध से लेकर मैसूर तक होता है। इसमें विशेषता यह है कि यह खरीफ की फसल है और सब गेहूँ रबी की फसल के अंतर्गत हैं। यह खराब जमीन में भी हो सकता है और इसे उत्पन्न करने में उतना परिश्रम नहीं पड़ता। भारतवर्ष में गेहूँ के तीन प्रकार के पूर्ण बनाए जाते हैं, मैदा, आटा और सूजी। मैदा बहुत महीन पीसा जाता है और सूजी के बड़े बड़े रवे या कण होते हैं। नित्य के व्यवहार में रोटी बनाने के काम में आटा आता है। मैदा अधिकतर पूरी, मिठाई आदि बनाने के काम में आता है, सूजी का हलुवा अच्छा होता है।

पर्या०—गोधूम। बहुवृष। अरूप। स्लेच्छभोजन। यवन। निस्तुष। क्षीरो। रसाल। शुपन।

गेहेश्वर—वि० [सं०] वह जो घर में ही बहादुरी दिखाता हो। कायर [को०]।

गेछा^१—संज्ञा पु० [गं०] १. गृहकार्य । गृहप्रबंध । २. संपत्ति (को०) ।

गेछा^२—वि० १. घरेलू । गेह संबंधी । २. घर में ही रहनेवाला (को०) ।

गैची—संज्ञा स्त्री० [दि०] एक प्रकार की छोटी मछली । उ०—एक दो सेर गैची मछली निकाल लाएंगी ।—मेला०, पृ० १३ ।

गैटा^१—संज्ञा पु० [दि०] कुम्हाड़ी ।

गैडा—संज्ञा पु० [म० गण्य] भैंसे के आकार का एक बड़ा पशु जो नदी के किनारे के ऐसे बलवानों और कछारों में रहता है जहाँ जंगल होता है ।

विशेष—यह जंगली आड़ियों की जड़ों और नरम कोपलों को खाता है और प्रायः कीचड़ में पड़ा रहता है । यह जिस प्रकार डोलडोल में बढ़ा है उसी प्रकार बलवान भी होता है पर बिना छेड़ें किसी से बोलता नहीं । इसे काटनेवाले कुम्हड़न नहीं होते केवल दाढ़ें होती हैं । इसके पैरों में तीन तीन उँगलियाँ होती हैं । इसका चमड़ा बिना बाल का तथा अत्यंत मोटा और टोम होता है । इसकी नाक की हड्डी बड़ी मजबूत होती है और उसपर एक पैना मोग होता है जो चमड़े और बालों से दूर तक ढका रहता है । क्रुद्ध होने पर यह इसी में चोट करना है । इसके चमड़े की ढालें बनती हैं । इसके ध्वन पर के सींग का भारतवर्ष में अर्घा बनता है जो पितृतर्पण के लिये उत्तम माना जाता है । गंगासागर के पास गुदरवन में गेड़े बहुत मिलते हैं ।

गैली—संज्ञा स्त्री० [म० लुनिजिका अथवा गर्तकृन्] तभीन खोदने का एक औजार । कुदाल ।

गैव^१(पु०)—संज्ञा पु० [हि० गवय] दे० 'गवद' । उ०—चित्र मटायन गेद बहुरि उत्तरे न अयय पर ।—पृ० २१०, २५१, ३६ ।

गैव^२(पु०)—संज्ञा पु० [हि० गेद] दे० 'गेद' । उ०—मेले गेद परमपर भेले । बाल ब्रह्म मिल गिल सुल भले ।—ह० रासो०, पृ० २६ ।

गैदुवा(पु०)—संज्ञा पु० [हि० गेदा] दे० 'गेदा' । उ०—कंठ फूल बनगो, फोटा फूल फूल गादी, गैदुवा फूल । होम बैड है स्यामा स्याम गोमा को नहि पार ।—नद श०, पृ० ३७६ ।

गैन(पु०)—संज्ञा पु० [गं० गगन, प्रा० गगण, गयण] दे० 'गगन' । उ०—गैन गहर गभीर धुनि मुनि गसक भय गात ।—पृ० रा० ६ । ३१ ।

गैवर(पु०)—संज्ञा पु० [हि० गैवर] दे० 'गवर' । उ०—गै गैवर सपन मन लख धजा पुराह ।—कबीर श०, पृ० ५३ ।

गैज—संज्ञा पु० [प्र० गेज] अति क्रोध । भारी गुस्सा ।

गैजेट—संज्ञा पु० [अ०] दे० 'गैजेटियर' ।

गैजेटियर—संज्ञा पु० [प्र० गैजेटियर] वह पुस्तक जिगमे कड़ी का भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक वृत्त वर्णनक्रम से हो । भौगोलिक कोण । जैसे,—डिस्ट्रिक्ट गैजेटियर, इण्डिया गैजेटियर ।

गैजेटेड अफसर—संज्ञा पु० [प्र० गैजेटेड अफसर] वह सरकारी कर्मचारी जिसकी नियुक्ति की सूचना सरकारी गजट में प्रकाशित होती है । राजपत्रित कर्मचारी ।

विशेष—सरकारी गैजट में उन्हीं कर्मचारियों की नियुक्ति की

सूचना छपती है जिनका पद बड़ा और महत्व का समझा जाता है । इस प्रकार गवर्नर तक की नियुक्ति की सूचना गैजट में निकलती है । इनके वेतन का विशेष क्रम होता है । इनकी नियुक्ति लोकसेवा आयोग द्वारा होती है । सब इंस्पेक्टर, जमादार आदि छोटे कर्मचारियों की नियुक्ति की सूचना गैजट में नहीं निकलती ।

गैताल—संज्ञा पु० [दि०] १. निम्न श्रेणी का बैल । २. साधारण पशु । ३. बेकार चीज ।

गैताल^२—वि० १. नष्ट । बरबाद । २. टूटा फूटा । निकम्मा । बेकार । ३. समाप्त ।

गैनी—संज्ञा स्त्री० [दि०] एक पेड़ जो हिमालय के किनारे होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और अंदर से सुखं होती है । यह नवकाशी के लिये बहुत अच्छी होती है और इससे अनेक प्रकार के सामान बनते हैं । कुमाऊँ और नेपाल में इससे डोल और कटोरे भी बनाए जाते हैं ।

गैन^१(पु०)—संज्ञा पु० [मं० गगन] गैल । मार्ग । रास्ता । उ०—(क) प्रांत चलाने जिन इन्हें तिते घरे ये गैन । नेह मनोरथ रख रहे वे अचल हय गैन ।—रसनिधि (शब्द०) । (ख) तारायन शशि रत्न प्रति सूर होहि शशि गैन तदपि अंधेरो है मखी पीठ न देखे गैन ।—रहीम (शब्द०) ।

गैन^२(पु०)—संज्ञा पु० [मं० गगन, प्रा० गगण] गगन । आसमान । आकाश । उ०—प्रांछ बरे न हूँ सकं लगी सतर हूँ गैन । दीरघ होहि न नैकहं फारि निहारै गैन ।—बिहारी (शब्द०) ।

गैना^१—संज्ञा पु० [हि० गाय] [स्त्री० गैनी] छोटी जाति का बैल । नाटा बैल । उ०—गैना गैना लाल के हित में जानत नाह । नहे नह के बल में पुरवा जानत नाह ।—रसनिधि (शब्द०) ।

गैना^२(पु०)—संज्ञा पु० [हि० गंव] दे० 'गैन' । उ०—भगिय सब रीता जखन न गना बुलत बैना दीन तबै ।—प० रासो, पृ० १२६ ।

गैनारि(पु०)—संज्ञा पु० [हि० गैन + अरि = चक्र] सहस्रार । ग्रहांड । उ०—दे पदसंगा करे नमस्कार । चढ़ि सुमेरि देखै गैनारि ।—प्राण०, पृ० २८० ।

गैफल—संज्ञा पु० [?] जहाज के आगे की तरफ का एक छोटा सा पाल ।—(लश०) ।

गैफलकंजा—संज्ञा पु० [?] पाल को चढ़ाने उतारने की एक रस्सी ।—(लश०) ।

गैब—संज्ञा पु० [प्र० गैब] परोक्ष । वह जो सामने न हो । उ०—भया उजाना गैब का, दीडे देख पतंगा ।—दरिया० बानी, पृ० १३ ।

गैब^१—संज्ञा पु० [प्र० गैब] परोक्ष । वह जो सामने न हो । उ०—

गैब^२—वि० [प्र० गैब + फा० दा (प्रत्यय)] परोक्ष का जाननेवाला । गर्वदेश और सर्वकालज्ञ । ऐसी बातों का जाननेवाला जो प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा न जानी जा सके ।

गैबदा^१—वि० [प्र० गैब + फा० दा (प्रत्यय)] परोक्ष का जाननेवाला । गर्वदेश और सर्वकालज्ञ । ऐसी बातों का जाननेवाला जो प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा न जानी जा सके ।

गैबर^१—संज्ञा पु० [दि०] एक चिड़िया ।

विशेष—इसके डेने, छाती और पीठ सफेद, दुम काली तथा चौंच और पैर लाल होते हैं।

गैबर^१(५) —संज्ञा पुं० [हि० गैबर] दे० 'गैबर'। उ०—धीर सघन बन मझि हूँ, गुरु उर गैबर ठेलि।—नंद ग्रं०, पृ० १५५।

गैबाना(५)—वि० [अ० गैब] प्रत्यय। गुप्त। उ०—पाँच पत्तीस गहँ संग बासी ते तो हँहि गैबाना।—जग० बानी, पृ० ६७।

गैबी—वि० [अ० गैब + फ्रा० ई (प्रत्य०)] १. गुप्त। छिपा हुआ। २. अजनबी। अज्ञात। अविश्वस्य। उ०—(क) गैबी तो गलियाँ फिरे, अजगैबी कोइ एक। अजगैबी कोसों लखे, जाके हृदय विवेक।—कबीर (शब्द०)। (ख) गैबी जामें प्राय समाना नरियर में जस दूध भँके। जज्ञ भूमि सरजू उत्तर दिसि ए तोनों जहँ प्राइ नके।—देवस्वामी (शब्द०)।

गैयर(५)—संज्ञा पुं० [अ० गजवर] हाथी। गज। उ०—बहु नागन पर नौबत बाजे। तिनके गुरु गैयर गन गाजें।

गैया—संज्ञा स्त्री० [सं० गो] गाय। गऊ। उ०—धनि वह नृदावन की रेनु। नंदकुमार चगाई गैया मुखन बजाई बेनु।—सूर० (शब्द०)।

गैर^१—वि० [अ० गैर] १. अन्य। दूसरा। २. अजनबी। अपने कुटुंब या समाज से बाहर का (व्यक्ति)। पराया। जैसे,—(क) चीनी लोग गैर आदमी को अपने देश में नहीं आने देते थे। (ख) आप कोई गैर तो हैं नहीं, फिर आपसे क्यों बात छिपावें।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विरुद्ध अर्थवाची उपसर्ग के समान भी होता है। जिस विशेषण शब्द के पहले यह लगाया जाता है उसका अर्थ उलटा हो जाता है, जैसे,—गैरमुमकिन, गैर मुनासिब, गैरहाजिर।

गैर^२—संज्ञा स्त्री० [अ० गैर] प्रत्याचार। अनुचित बर्ताव। अपेक्ष। उ०—(क) मेरे कहे मेर कह, सिवा जी सों बैर करि गैर करि नैर निज नाहक उजारे तैं।—भूपण (शब्द०)। (ख) आवत हैं हम कछु दिन माहीं। जले गैर तिनकी तब नाहीं।—विश्राम (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

गैर^३—संज्ञा पुं० [हि० गैगर] दे० 'गैयर'।

गैर—संज्ञा स्त्री० [हि० गैल] दे० 'गैल'। उ०—अड़े गैर गैर माहि रोस रस अकने।—शिल्लर०, पृ० ३३१।

गैर^४—संज्ञा स्त्री० [हि० घैर] दे० 'घैर'।

गैर^५—वि० [सं०] [वि० स्त्री० गैरी] १. गिरि संबंधी। २. गिरि पर उत्पन्न (स्त्री०)।

गैरआबाद—वि० [अ० गैर + फ्रा० आबाद] जो न बसा हुआ हो। उजाड़। परती (भूमि)।

गैरइनसाफी—संज्ञा स्त्री० [अ० गैर + इंसाफ + फ्रा० ई (प्रत्य०)] अन्याय। बेइनसाफी। अन्याय।

गैरइलाका—संज्ञा पुं० [अ० गैर + इलाकह] १. दूसरे का इलाका। दूसरे का क्षेत्र। २. देश। मुल्क।

गैरखी—संज्ञा स्त्री० [हि० गर + रखी] हंसुली।—(सुनारों की बोली)।

गैरजरूरी—वि० [अ० गैर + जरूर + फ्रा० ई (प्रत्य०)] अनावश्यक।

गैरजिम्मेदार—वि० [अ० गैर + फ्रा० जिम्मेदार] अनुत्तरदायी। अपनी जिम्मेदारी न समझनेवाला।

गैरजिम्मेदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० गैर + फ्रा० जिम्मेदारी] अनुत्तरदायित्व। जिम्मेदारी न समझने का भाव।

गैरस्त—संज्ञा स्त्री० [अ० गैरस्त] लज्जा; शर्म। हया। उ०—इंदी बस गुन गैरस्त माई।—घट०, पृ० २८१।

यौ०—गैरस्तदार।

गैरतदार—वि० [फ्रा०] १. लज्जाशील। २. स्वाभिमानी।

गैरतमंद—वि० [फ्रा०] दे० 'गैरतदार'।

गैरमजरूआ—वि० [अ०] परती या बिना जोती बोई गई जमीन।

गैरमनकूला—वि० [अ० गैरमनकूला] जिसे एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर न ले जा सकें। स्थिर। अचल।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग जायदाद शब्द के साथ कानूनी कार्रवाइयों में विशेषकर होना है। जायदाद गैरमनकूला ऐसी संपत्ति को कहते हैं जो या तो भूमि हो या भूमि में बिल्कुल गढ़ी हुई हो, जैसे,—घर, भेत, पेड़ इत्यादि।

गैरमर्द—संज्ञा पुं० [अ० गैर + फ्रा० मर्द] १. अजनबी व्यक्ति। २. पति से भिन्न व्यक्ति।

गैरमामूलो—वि० [अ० गैरमामूलो] १. असाधारण। २. निश्चयनियम के विरुद्ध।

गैरमिसिल(५)—वि० [अ० गैर + फ्रा० मिसाल] अयोग्य या अनुचित (स्थान में)। उ०—भूपण कुमिम गैरमिसिल खरे किए को।—भूपण ग्रं०, पृ० २१।

गैरमुकम्मल—वि० [अ० गैर + मुकम्मल] जो पूर्ण न हो। अपूर्ण। अपूर्ण।

गैरमुनासिब—वि० [अ० गैरमुनासिब] अनुचित। अयोग्य।

गैरमुमकिन—वि० [अ० गैरमुमकिन] असंभव। न होने योग्य।

गैरमुल्की—वि० [अ० गैर + मुल्की + फ्रा० ई (प्रत्य०)] दूसरे देश का। विदेशी।

गैरमुस्तकिल—वि० [अ० गैरमुस्तकिल] जो हमेशा के लिये न हो। अस्थायी।

गैरमोरूसी—वि० [अ० गैरमोरूसी] वह जमीन या जायदाद जो पैतृक न हो या जिसपर मोरूसी हक न लागू होता हो।

गैररस्मी—वि० [अ० गैर + फ्रा० रस्मी] जो रस्म रिवाज के अनुसार न हो। अनौपचारिक।

गैरबसली—संज्ञा स्त्री० [अ० गैरबसली] कच्चे मकानों की छत छाने की वह क्रिया जिसमें बाँस की पतली कमाचियों को दड़ता-पूर्वक केवल बुन देते हैं और उन्हें रस्सियों से नहीं बाँधते।

गैरबसूल—वि० [अ० गैरबसूल] जो बसूल न किया गया हो। अप्राप्त।

गैरबाजिब—वि० [अ० गैरबाजिब] अयोग्य। अनुचित। बेजा।

गैरसरकारी—वि० [प्र० सर + का० सरकारी] जो सरकारी न हो। जो किसी सरकार या राज्य का (आदमी या नौकर) न हो। जिसका किसी सरकार या राज्य से संबंध न हो। जैसे,— गैर सरकारी सदस्य।

गैरसाल—वि० [प्र० सरसाल] १. प्रशुद्ध। दूषित। उ०— गैरसाल है बदल दे कहे विप्र मम नाहि।—प्रथ०, पृ० ४६। २. दुर्जन। ३. नाशनीक।

गैरहाजिर—वि० [प्र० गैरहाजिर + का० ई (प्रत्य०)] अनुपस्थित। जो मौजूद न हो।

गैरहाजिरी—संज्ञा स्त्री० [प्र० गैरहाजिरी] अनुपस्थिति। नामौजूदगी।

गैरिक^१—संज्ञा पुं० [गै०] १. गेरू।

यौ०—गैरिकाक्ष।

२. सोना।

गैरिक^२—वि० [वि० स्त्री० गैरिकी] १. जो पहाड़ से उत्पन्न हो। २. गेरू के रंग का (कौ०)।

गैरिकाक्ष—संज्ञा पुं० [गै०] जल महुआ।

गैरियत—संज्ञा स्त्री० [प्र० गैरियत] परगणन। गैरपन।

गैरी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] खरही। डीठ का ढेर। गेत से कटे हुए डंठलों का ढेर।

गैरी^२—संज्ञा स्त्री० [गै०] लागलिकी वृक्ष। विषलीगला।

गैरी^३—संज्ञा स्त्री० [गै० गल या प्र० गार] गड्ढा। वह गड्ढा जिसमें किसान खाद इकट्ठा करते हैं। कूड़ा, करकट, गोबर आदि फेंकने का गड्ढा।

गैरीयत—संज्ञा स्त्री० [प्र० गैरीयत] दे० 'गैरियत'।

गैरेय^१—संज्ञा पुं० [गै०] १. शिलाजतु। शिलाजीत। २. गेरू (कौ०)।

गैरेय^२—वि० १. गिरि से उत्पन्न। गिरि पर उत्पन्न। २. गिरि संबंधी। पहाड़ी (कौ०)।

गैल—संज्ञा स्त्री० [हि० गली] मार्ग। राह। रास्ता। गली। गुचा। उ०—(क) हो तुम प्रान हितू गिगरी कवि सेखर देह मिलावन यामैं। गैल में गोपद नीर भरयो सखि चौध को बंद परयो लखि सामैं।—सेखर (शब्द०)। (ख) मूसा कहे बिलार सों सुन रे ठीठ ठिठैल। हम निकसत हैं सैर को, तुम बैठत हो गैल।—गिरिधर (शब्द०)।

मुहा० किसी को गैल जाना = (१) किसी के साथ जाना। (२) किसी का अनुसरण करना। किसी को गैल करना = किसी को साथ कर देना। गैल बताना = दे० 'रास्ता बताना'। गैल खेना = साथ में लेना।

गैलाइ—संज्ञा पुं० [प्र० गैर + हि० लड़का] किसी स्त्री के पहले पति का लड़का जिसे लेकर वह दूसरे के यहाँ जाय।

गैलान—संज्ञा पुं० [प्र०] पानी, दूध आदि द्रव पदार्थ मापने का एक अंगरेजी मान जो तीन सैर का होता है।

गैलारी—संज्ञा पुं० [प्र०] १. नीचे ऊपर बैठने का सीढ़ीनुमा स्थान जैसे पिण्डरी और व्याख्यानलयों संसद, विधानसभाओं आदि में दर्शकों के लिये रहता है। २. सीढ़ीनुमा

दुकान जिसमें बिक्री की वस्तुएँ पंक्तियों में सजाकर रखी जाती है।

गैला(पु) —संज्ञा पुं० [हि० गैल] १. गाड़ी के पहिए की लीक। पहिए की लकीर। २. गाड़ी का मार्ग। वह चौड़ा रास्ता जिससे गाड़ी जा सके।

गैला पु—वि० [देश०] मूर्ख। गँवार। उ०—नातर गैला जंगत से, जिकि बकि मरे बलाय।—संतवाणी०, भा० १, पृ० १३३।

गैलागीर पु—संज्ञा पुं० [हि० गैल + का० गीर (प्रत्य०)] राहगीर। उ०—गैलागीर आता सो ढकोला नाषि जाता।—शिक्षर०, पृ० ८।

गैलारा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गैला'।

गैवर(पु) —संज्ञा पुं० [मं० गजवर] हाथी। गज। उ०—बिबिध भाँति के बाजन बाजे। हैवर गैवर गण बहु गाजे।—रघुराज (शब्द०)।

गैशबत्ती—संज्ञा स्त्री० [प्र० गैस + हि० बत्ती] गैस से जलनेवाली एक प्रकार की बड़ी लालटेन। उ०—मकभक गैशबत्ती की सी रोशनी होने लगी।—मैला०, पृ० ६८।

गैस—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. प्रकृति में वायु के समान एक अत्यंत प्रगोचर और सूक्ष्म द्रव्य जिसके भिन्न भिन्न रूपों के संयोग से जन, वायु आदि पदार्थ बनते हैं। वह द्रव्य जिसके अणु अत्यंत तरल या चंचल हों और जो अत्यंत प्रसरणशील हो।

विशेष—गैसों के अणु निरंतर गति में रहते हैं और वे एक सीध में चलकर एक दूसरे से टकराते हैं तथा जिस बरतन में गैस रहती है उसकी दीवारों पर दबाव डालते हैं। अधिक दबाव और गरमी से गैस द्रवीभूत हो सकती है, पर भिन्न भिन्न गैसों के लिये भिन्न भिन्न मात्रा के दबाव और गरमी की आवश्यकता होती है। गैस की बड़ी भागी विशेषता यह है कि यह जितना खाली स्थान पाती है उतने भर में फैलकर भरना चाहती है, अर्थात् उसका कोई परिमित तल या विस्तार नहीं होता। बोतल में यदि हम बोतल भर पानी ल डालेंगे तो पानी बोतल में कुछ दूर तक ही रहेगा। यदि उसी बोतल में गैस भरेंगे तो वह सारी बोतल में भर जायगी।

२. एक प्रकार की तीब्र और गंधयुक्त वायु जो कोयले की खानों आदि से निकलती है। ३. बहुत सी भिन्न भिन्न गैसों का ऐसा मिश्रण जिससे गरमी पैदा करने या रोशनी करने का काम लिया जाता है। ४. दे० 'गैशबत्ती'।

गैहगड़(पु) —वि० [हि० गहगड़] दे० 'गहगड़'। उ०—राग रंग गैहगड़ मच्यो री, नंदराइ द्यवार।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६०८।

गैहना पु—क्रि० सं० [हि० गाहना] दे० 'गहना'। उ०—आँचली गैहती बड़माडी छह आँल। हैसि मलनाइ नई भाजिय काँल।—बी० रामो, पृ० ५५।

गैहबर पु—वि० [हि० गहबर] दे० 'गह्वर'। उ०—स्थामा प्यारी आगे चलि आगे चलि, गैहबर बन भीतर जहाँ बोलत कोइल री।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३६०।

गोंडठा—संज्ञा पुं० [सं० गो + णिष्ठा] गोबर का सूखा हुआ चिपड़ा कंठा। उपला। गोहरा।

गोंड^१—संज्ञा पुं० [हि० गोंड + बेंड] गोंड का किनारा। गोंड का सिवान। गोंड के घास पास की भूमि।

गोंड^२—संज्ञा पुं० [हि० गोंड] दे० 'गोंड'।

गोंडिया^१—संज्ञा पुं०, स्त्री० [हि० गोंडिया] दे० 'गोंडिया'।

गोंडिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० गोंडिया] बेलों की जोड़ी।

गोंडियाल—संज्ञा पुं० [देश०] देशियों की एक जाति।

गोंच^१—संज्ञा पुं० [सं० गोगोचन्दना] जोंक।

गोंचना—क्रि० प्र० [देश०] १. कोंचना। बँसाना। २. मिट्टी या कागज पर अस्त व्यस्त रेखाएँ खींचना।

गोंछ—संज्ञा स्त्री० [हि० गलमोछ] गलमोछ। गलमोछा।

गोंजना^१—क्रि० सं० [हि०] दे० 'गोंजना'।

गोंजना^२—क्रि० सं० [हि० कोंचना] गड़ाते हुए दबाना। उ०—
गोख ने एक चौधन्नी अपने मोहरिर की मुट्ठी में गोंज दी।—
नई०, पृ० ६७।

गोंजना^३—क्रि० प्र० [हि० गोंचना] दे० 'गोंचना'।

गोंटा—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छोटा पेड़।

विशेष—यह उत्तर भारत में पेशावर से भूटान तक, दक्षिण भारत तथा जावा में होता है। बरसात में इसमें बहुत छोटे छोटे फूल और जाड़े में काले रंग के छोटे मीठे फल लगते हैं जो खाने में बहुत स्वादिष्ट होते हैं। इसकी लकड़ी कड़ी होती है।

गोंठ—संज्ञा स्त्री० [सं० गोण्ड] धोती की लपेट जो कमर पर रहती है। मुर्ती।

गोंठना^१—क्रि० सं० [सं० गोण्ड, प्रा० गोठु + ना (प्रत्य०)] १. चारों ओर लकीर से घेरना। जैसे,—चौका गोंठना, चर गोंठना (असाढ़ी पूर्णिमा को)। २. परिक्रमा करना। फेरा करना।

गोंठना^२—क्रि० सं० [सं० कुण्डल] किसी वस्तु की नोक या कोर को गुठला कर देना। २. पकवान बनाने में गोभे या पुवे की कोर को मोड़ मोड़कर उभड़ी हुई लड़ी के रूप में करना।

गोंठनी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोंठना] लोहे या पीतल का एक औजार जिससे गोभिया गोंठते हैं।

गोंठिल—वि० [हि० गोठिल] दे० 'गोठिल' उ०—कैसे नये नये तीर छूटे हैं भीत की गोठिल घात गई अब।—बेला, पृ० १०१।

गोंड^१—संज्ञा पुं० [सं० गोण्ड] १. एक जंगली जाति जो मध्यप्रदेश में पाई जाती है। गोंडवाना प्रदेश का नाम इसी जाति का निवासस्थान होने के कारण पड़ा। २. बंग और भुवनेश्वर के बीच का देश। ३. एक राग जो वर्षाकाल में गाया जाता है।

विशेष—कोई इसे मेघ राग का पुत्र और कोई धनाश्री मल्लार और बिलावल के मेल से बना एक संकर राग मानते हैं।

गोंड^२—संज्ञा पुं० [सं० गोण्ड] गायों के रहने का स्थान।

गोंड^३—संज्ञा पुं० [सं० गोण्ड] नाभि का लटकता हुआ मांस।

गोंड^४—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड] लंगर के ऊपर का भाग जो गोल होता है।

गोंड^५—संज्ञा पुं० [सं० (नाभि) कुण्ड] वह मनुष्य जिसकी नाभि निकली हो।

गोंडकिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोंड = राग + किरी] एक रागिनी जो गोंड राग का एक भेद मानी जाती है।

गोंडरा^१—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] [स्त्री० गोंडरी] १. वह कुंडलाकार गोल लकड़ी या लोहे की छड़ जो मोट के मुँह पर बंधी रहती है। लोहे का मँडरा जिसपर मोट का खरसा लटकता है। २. कोई गोल वस्तु जो कुंडल के आकार की हो। मँडरा। ३. लकीर का गोल धेरा।

क्रि० प्र०—खींचना।—डालना।

गोंडरी—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] १. कुंडल के आकार की कोई वस्तु। मँडरा। २. ईडूरी।

गोंडला—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] लकीर का गोल धेरा।

क्रि० प्र०—खींचना।—डालना।

विशेष—प्रायः भोजन आदि के समय इस प्रकार का धेरा, छूत-छात से बचने के लिये बनाया जाता है।

गोंडवाना—संज्ञा पुं० [हि० गोंड] मध्यप्रदेश का उत्तरी भाग जो गोंड जाति का आदि निवासस्थान माना जाता है।

गोंडवानी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोंडवाना] गोंडवाना प्रदेश की बोली।

गोंडा^१—संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की बड़ी लता जो देहरादून, अथवा गोरखपुर बुंदेलखंड, बंगाल और मध्यभारत के जंगलों में, विशेषतः जहाँ साल के वृक्ष हों, अधिकता से होती है।

विशेष—यह बहुत फैलती है और समय पर काटी न जाय तो जंगलों को बहुत हानि पहुँचाती है। इसकी पत्तियाँ बड़ी और चौड़ी होती हैं और चारे के काम आती हैं। इसकी डालियों से एक प्रकार का रेशा भी निकाला जाता है। इसकी टहनी के गिरे पर गुच्छों के फूल भी लगते हैं जो गरमी के दिनों में फूलते हैं।

गोंडा^२—संज्ञा पुं० [सं० गोण्ड] १. बाड़ा। घेरा हुआ स्थान। (विशेषकर चौपायों के लिये) रखने या बांधने का स्थान। उ०—
पिता गए गोवों के गोड़े। माता घर लड़के छाए हैं।—
आराधना, पृ० ७४। २. मोहल्ला। पुरा। गाँव। खेडा। बस्ती। ३. खेतों का उतना धेरा जितना एक किसान का हो और एक ही जगह पर हो। ४. बड़ी चौड़ी गड़क। ५. सहन। चौक आँगन। ६. वह न्योछावर जो लड़कीवाले के घर पर बारात के पहुँचने पर की जाती है। परछन।

मुहा०—गोंडा सौजना=बारात के पहुँचने पर कन्या के घरवालों का न्योछावर के रूप में कुछ द्रव्य बाँटना या लुटाना।

गोंडी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोड़े] दे० 'गोंडवानी'।

गोंड^३—संज्ञा पुं० [सं० कुण्ड या हि० गूदा] गूदेदार पेड़ों के तने से निकला हुआ चिपचिपा या लसदार पसेव जो सूखने पर कड़ा और चमकीला हो जाता है। वृक्षों का निर्यास। उ०—एक भंश वृक्षन को दीनों। गोंड होइ प्रकाश तिन कीनो।—सूर (शब्द०)।

यौ०—गोंदवानी = वह वस्तु जगमें गोंद भिगोकर रखा रहे।

गोंद^१—संज्ञा श्री० [सं० गुन्दा] एक प्रकार की घास जिससे गोदरी बनाई जाती है।

गोंद^२—संज्ञा श्री० [हि० गोंदा] दे० 'गोंदा'। उ०—गोंद कली मम बिकसी अतु बसत भी फाग।—जायसी (शब्द०)।

गोंदनी—संज्ञा श्री० [हि० गोंद] गोदरी का पेंद। दे० 'गोंदी'।

गोंदपंजीरी—संज्ञा श्री० [हि० गोंद + पंजीरी] गोद मिली हुई पंजीरी जिसे प्रमूना मियों को खिलाते हैं।

गोंदपटेर—संज्ञा श्री० [सं० गुन्दा + पर्या० पटेर] पानी में होनयानी एक प्रकार की वनस्पति।

विशेष—इसके पत्ते मोटे और पाय एक इंच चौड़े और चार पाँच फुट लंबे होते हैं। इसके पत्तों में से नए पत्ते निकलते हैं। इसमें ऊपर की ओर बाजरे की बाल के समान बाल भी लगती हैं जिनके ऊपर सीकें होती हैं। इन सीकों से चटाईया आदि बनती हैं। इसमें से यह कगली, मधुर, शीतल, रक्तपिरा नाथक और रजन या दूध, शुक्र, रज तथा मूत्र को शुद्ध करने वाली कही गई है।

गोंदपाग—संज्ञा पुं० [हि० गोंद + पाग] गोद और चीनी के मेल में बनी हुई एक प्रकार की मिठाई। पपड़ी। उ०—गेंठा, पाग, जलेबी, पेरा। गोदपाग, तिनगरी, गिंदौरा।—मूर (शब्द०)।

गोंदमखाना—संज्ञा पुं० [हि० गोंद + मखाना] भुना हुआ मखाना जिसमें थोड़ा मसाले के साथ गोद मिला होता है और जो प्रमूता मियों को दिया जाता है।

गोंदरा—संज्ञा पुं० [सं० गुन्दा एक घास] १. नरम घास या पमाल का बना हुआ एक खासन जिसपर किसान लोग साधारण और पर या घोषियों को चारा काटने के समय बैठते हैं। २. गोमय धाम।

गोंदरी—संज्ञा श्री० [सं० गुन्दा] एक प्रकार की घास जो पानी में उत्पन्न होती है और बहुत लंबी, बोगल और गरम होती है। २. इस घास की बनी हुई चटाई। ३. पमाल की बनी हुई चटाई।

गोंदसा—संज्ञा पुं० [सं० गुन्दा] १. बड़ा नागरमोथा जो जनावरों के किलारे उगता और प्रायः एक गज तक ठेका होता है। २. एक प्रकार की घास जिससे गोदरी बनाई जाती है।

गोंदा—संज्ञा पुं० [हि० गूँघना] १. भुने चने का बेसन जो पानी में गूँघना-भुसभुसी की गिनाया जाता है।

गुहा०—गोंदा दिखाना = (१) बुलबुली को लड़ाने के लिये उसे दिखाकर बीच में खारा फेंकना। (२) कोई ऐसी बात उपादिष्ट करना जिससे दो पक्ष परस्पर लड़ जायें। लड़ाई लगाना।

२. गारा। मिट्टी का ढगमा।

गोंदी—संज्ञा श्री० [सं० गोवन्दनी प्रियंगु] १. मौलसिरी की तरह का एक पेड़ जिसके पत्ते मोसली के पत्तों से कुछ लंबे होते हैं।

विशेष—फागुन चैत में इसमें लाल रंग के छोटे छोटे फूल लगते हैं। यह जंगली और मैदानों में होता है। बहुत से स्थानों में

लोग प्रियंगु शब्द से इसी का ग्रहण करते हैं और इसके फूल, फल, छाल आदि का औषध में प्रयोग करते हैं।

२. इंगुदी। हिगोट।

गुहा०—गोंदी का लदना = (१) बहुत अधिक फलना। फलों से गुच्छ जाना। (२) शरीर में शीतला के या किसी प्रकार के बहुत से दाने निकलना।

गोंदीला—वि० [हि० गोंद+ईला (प्रत्य०)] जिस (वृक्ष) में से गोद निकलता हो। जैसे,—बबूल, ढाक आदि।

गो—संज्ञा श्री० [सं०] १. गाय। गऊ। २. प्रकाशरश्मि। किरण। ३. वृष राशि। ४. ऋषभ नाम की औषधि। ५. इन्द्रिय। ६. योनि की शक्ति। वाणी। उ०—गोकुल की छवि कबि क्यों कहे। गो जब ली गोकुल नहि गहै।—घनानंद०, पृ० २६२। ७. सरस्वती। ८. आल। दृष्टि। देखने की शक्ति। ९. बिजली। १०. पृथ्वी। जमीन। ११. दिशा। १२. माता। जननी। १३. किसी धातु की बनी गोमूर्ति। १४. बकरी, भैंस, भेड़ी इत्यादि दूध देनेवाले पशु। १५. जीभ। जबान। जिह्वा। १६. ज्योतिष में नक्षत्रों की नौ वीधियों में से एक।

गो^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. बैल। २. नंदी नामक शिवगण। ३. घोड़ा। ४. सूर्य। ५. चंद्रमा। ६. बाण। तीर। ७. गवैया। गानेवाला। ८. प्रसंगक। ९. आकाश। १०. स्वर्ग। ११. जल। १२. वज्र। १३. शब्द। १४. नौ का अंक। १५. शरीर के रोम। १६. पशु (को०)। १७. हीरा (को०)। १८. गोमेध नामक यज्ञ (को०)।

गो^२—अर्थ० [फा०] यद्यपि। जैसे—गो ऐसी बात है, पर मैं कह तो नहीं सकता।

यौ०—गोकि = यद्यपि। गो।

गो—प्रत्य० [फा०] कहनेवाला। जैसे—काभूनगो, दरोहगो।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द योगिक के अंत में आता है।

गो^३(पुं०)—क्रि० अ० [हि० गा] दे० 'गया'। उ०—राव अमर गो अमरपुर।—भूषण सं०, पृ० ४६।

गोआर^१(पुं०)—वि० [हि० गेंवार] दे० 'गेंवार'। उ०—सखि हे बुझल काहू गोआर।—विद्यापति, पृ० ११७।

गोआर^२(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० गोपाल, प्रा० गोपाल] दे० 'गवाला'। उ०—मथुरा मरि गो कृष्ण गोआरा।—कबीर बी०, पृ० २०२।

गोआरि^१(पुं०)—संज्ञा श्री० [हि० गेंवार] गेंवारी। मूर्ख। उ०—दूती अए जनु जनमए नारि, बिनु भले भेनिहु गोआरि।—विद्यापति, पृ० १३६।

गोईजी—संज्ञा श्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जिसका मुँह और पूँछ दोनों एक ही तरह के होते हैं। इसपर झिलका नहीं होता।

गोईठा—संज्ञा पुं० [सं० गो + बिठा] इंधन के लिये सुखाया हुआ गोबर। उपला। कंडा। गोहरा।

गोईठौरा—संज्ञा पुं० [हि० गोईठा+घौरा (प्रत्य०)] उपले जमा करने या रखने का स्थान। कंठौरा।

गोईड—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ=ग्राम] १. गाँव की सीमा। गाँव का घेरा। २. गाँव के पास की जमीन। ३. आस पास का स्थान।

गोईडा—संज्ञा पुं० [हि० गोईड] दे० 'गोईड'।

गोईद^५—संज्ञा पुं० [सं० प्रा० गोविन्द] दे० 'गोविन्द'। उ०—हरि दर्शन परसे भया आनंद। नानक सब सखा गोईद।—प्राण०, पृ० २२५।

गोईदा—संज्ञा पुं० [फ्रा० गोईदह] वह मनुष्य जो छिपे छिपे किसी बात का भेद लेने के लिये किसी के द्वारा नियत हो। गुप्त भेदिता। गुप्तचर। गुप्त रूप से समाचार पहुँचानेवाला।

गोइ[†]—संज्ञा पुं० [हि० गोय] दे० 'गोय'।

गोइन—संज्ञा सं० [?] एक प्रकार का घृण। उ०—हिरन रोम लगना बन बसे। भीतर गोइन आँख और ससे।—जायसी (शब्द०)।

गोइनका—संज्ञा पुं० [श्या०] मारवाड़ी वैश्यों की एक जाति।

गोइयाँ—संज्ञा पुं० [हि० गोहिनगा] साथ में रहनेवाला। साथी। सहचर। उ०—रामलखन एक और भरत रिपुदवनलाल एक और भए। सरजुतीर सम सुखद भूमि थल गनि गनि गोइयाँ बाटि लए।—तुलसी (शब्द०)।

गोइयार—संज्ञा पुं० [श्या०] खाकी रंग का एक छोटा पक्षी।

गोइलवाला—संज्ञा पुं० [श्या०] वैश्यों की एक जाति।

गोई[†]—संज्ञा स्त्री० [हि० गोइयाँ] दे० 'गोइयाँ'। उ०—सुनि निरुच नैहर की गोई। गरे लागि पदमावत रोई।—जायसी (शब्द०)।

गोई[†]—वि० [हि० जोई] बेलों की जोड़ी। उ०—पतली पेंडुली मोटी रान। पूँछ होय भुँड मे तरियान। जाके होवे ऐसी गोई। बाको तक और सब कोई।—घाघ०, पृ० १०५।

गोऊ—वि० [हि० गोना + ऊ (प्रत्यय)] चुरानेवाला। छिपानेवाला। हरण करनेवाला। उ०—श्याम बनी अब जोरी नीकी सुनहु सखी मान तोऊ हैं। सूर श्याम जितने रंग काछत युवती जन मन के गोऊ हैं।—सूर (शब्द०)।

गोकंटक—संज्ञा पुं० [सं० गोकण्टक] १. गोकुर। गोलरू। २. गाय का खुर (को०)। ३. गाय के खुर का निशान (को०)। ४. वह मार्ग जो बैलों के चलने के कारण जाने लायक न रह गया हो (को०)।

गोकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु। उ०—मुनि वशिष्ठ हिय हृषित भयऊ। दोउ मिलि गोकन्या ढिग गयऊ।—विश्राम (शब्द०)।

गोकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। भानु। रवि। उ०—प्रणत गिरा गिरि ईश गवरि गोरी गिरिधारन। गोकर गायत्री सुगोघरन तिय गोहारन।—सूदन (शब्द०)।

गोकरन^५—संज्ञा पुं० [सं० गोकर्ण] दे० 'गोकर्ण'। उ०—गोकरन गइ ले जानिए जी।—कबीर रे०, पृ० ४४।

गोकर्ण^१—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं का एक शीव क्षेत्र जो मालावार में है। रावण, कुंभकरण आदि ने यहीं पर तप किया था।

२. इस स्थान में स्थापित शिवमूर्ति का नाम। ३. नीलगाय। ४. खच्चर। ५. [को० गोकर्ण] एक प्रकार का साँप जिसके कान होते हैं। ६. बालिष्ठ। यिस्ता। ७. काश्मीर देश के एक प्राचीन राजा का नाम। ८. शिव के एक गण का नाम। ९. धुंधकारी के माई का नाम जिससे भागवत सुनकर धुंधकारी तर गया था। १०. एक मुनि का नाम। ११. गाय का कान। १२. नृत्य में एक प्रकार का हस्तक। १३. एक प्रकार का बाण (को०)।

गोकर्ण^२—वि० [सं०] जिसके गऊ के से लगे कान हों।

गोकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता। मुरहरी। चुरनहार।

विशेष—इसकी पत्तियाँ बीकुषार की तरह चिकनी और मोटी होती हैं और इसमें छोटे मोठे फल लगते हैं।

गोकल^५—संज्ञा पुं० [सं० गोकुल] दे० 'गोकुल' उ०—ब्रह्म कहे सुर सकल सों, गोकल हरि भवतार।—पृ० रा०, २।८१।

गोकिराटा, गोकिराटिक—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका पक्षी (को०)।

गोकिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. हल। २. मूसल (को०)।

गोकील—संज्ञा पुं० [सं०] १. हल। २. मूसल।

गोकुंजर—संज्ञा पुं० [सं० गोकुंजर] १. खूब मोटा ताजा और बलिष्ठ बेल। साँड़। १. शिव जी का नदी गण।

गोकुंद—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो दक्षिण की नदियों में पाई जाती है।

गोकुल—संज्ञा पुं० [सं०] १. गौशों का भुँड। गौसमूह। २. गौशों के रहने की जगह गोशाला, खरिक् आदि। ३. एक प्राचीन गाँव।

विशेष—यह वर्तमान मथुरा से पूर्व दक्षिण की ओर प्रायः तीन कोस दूर जमुना के दूसरे पार था और इसे आजकल महाबन कहते हैं। श्रीकृष्णचंद्र ने अपनी बाल्यावस्था यहीं बिताई थी। आजकल जिस स्थान को गोकुल कहते हैं वह नवीन और इससे भिन्न है।

गोकुलनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

गोकुलपति—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

गोकुलराय^५—संज्ञा पुं० [सं० प्रा० गोकुल + हि० राय] नंद। उ०—गोकुलराय की पीरि रच्यो है हिडोरना।—नंद प्र०, पृ० ३७४।

गोकुलस्थ^१—वि० [सं०] १. गोकुलनिवासी। जो गोकुल ग्राम में रहता हो। २. गायों के समूह या बाड़े में स्थित (को०)।

गोकुलस्थ^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. वल्लभी गोस्वामियों का एक भेद। २. तैलंग ब्राह्मणों का एक भेद। पद्याकर कवि इसी वंश के थे।

गोकुलाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] नंद। उ०—प्रापु याके प्रभु गोकुलाधिपति कहावत हो।—दो सी० बावन०, भा० १, पृ० २५१।

गोकुलिक—वि० [सं०] १. कीचड़ में पंसी हुई गाय की सहायता न करनेवाला। २. ऐंचाताना। भेंगा (को०)।

गोकुलोद्भा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का नाम (को०)।

गोकुरो—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] गोवध । गोहत्या [की०] ।

गोकुल—संज्ञा पुं० [सं०] गोबर [की०] ।

गोकुल—संज्ञा पुं० [सं० गो + कुल] १. उतनी दूरी जहाँ तक गाय के बोलने का शब्द सुन पड़े । २. छोटा कोस । हनका कोस ।

गोस—संज्ञा पुं० [सं०] जोक नामक कीड़ा । उ०—कच्छप मकर वृश्चिक ईरग ग्राह गोस शिशुमार । बिछलत पछिलत उच्छलन धावत मृगशुनि धार ।—विश्राम (शब्द०) ।

गोशीर—संज्ञा पुं० [सं०] गाय का दूध [की०] ।

गोशुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोखरू नामक क्षुप या उसका फल । २. गाय का खुर [की०] ।

गोशुरक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गोशुर' [की०] ।

गोख—संज्ञा पुं० [हि० गोखा] दे० 'गोखा' । उ०—घटा घटारी बाहर मोखन, खज्जै खानन गोख भगोखन ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७०५ ।

गोखग—संज्ञा पुं० [सं० गो + खग] बलचर । पशु । जानवर । उ०—गोखग, खेखग, बारि खग, तीनों माह बिसेक । तुलसी पीये फिरि चलै, रहै फिरि सँग एक ।—तुलसी (शब्द०) ।

गोखरू—संज्ञा पुं० [सं० गोशुर] १. एक प्रकार का क्षुप ।

विशेष—इसमें बने के आकार के कड़े और कंटीले फल लगते हैं । ये फल ओषधि के काम से माने हैं और वैद्यक में इन्हे शीतल, मधुर, पुष्ट, रसायन, दीपन और काश, वायु, अग्नि और वृग्गुणात्मक कहा है । यह फल बड़ा और छोटा दो प्रकार का होता है । कहीं कहीं गरीब लोग इसके बीजों का आटा बनाकर खाते हैं ।

पर्या०—चिकटक । गोकटक । त्रिपुट । कटक फल । स्वातुकटक । शुरक । बनभृंगकटक । श्वबंष्टका । भक्षकटक । क्षुरग ।

२. गोखरू के फल के आकार के धातु के बने हुए गोल कंटीले टुकड़े ।

विशेष—ये प्रायः सरत हाथियों को पकड़ने के लिये उनके रास्ते में फैला दिए जाते हैं और जिनके पैरों में गड़ने के कारण हाथी चल नहीं सकते । शासना की गति रोकने के लिये भी पहले ऐसे ही कंठे बिछाए जाते थे ।

३. गोटे और बादने के तारों से सूँधकर बनाया हुआ एक प्रकार का गाज जो स्त्रियों और बालकों के कपड़ों में टाँका जाता है । ४. कड़े के आकार का एक प्रकार का आभूषण जो हाथों और पैरों में पहना जाता है । ५. तसवे, हथेली आदि में पड़ा हुआ वह घट्टा जो काँटा गड़ने के कारण होता है ।

गोखा^१—संज्ञा पुं० [सं० गोखल] दीवार में बना हुआ वह छोटा छेद जिसमें से बाहर की चीजें देखी जायें । गोखा । भरोखा । गोखा । उ०—आँक फिरी भँभरीन भरोखन गोखनहूँ खिनहूँ सुख सैन ।—देव (शब्द०) ।

गोखा^२—संज्ञा पुं० [हि० गोखाल] गाय या बैल का कच्चा चमड़ा ।

गोखा^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] नायून । नख [की०] ।

गोखी^४—संज्ञा स्त्री० [हि० गोख + ई (प्रत्य०)] गोखा । छोटा

गोखा । भरोखा । उ०—बावल बीणती गोखी बयठ ।—बी० रासो, पृ० ८४ ।

गोखुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. गो का पैर । २. गो के खुर का वह चिह्न जो उसके बनने से जमीन पर पड़ता है ।

गोखुरा—संज्ञा पुं० [हि० गो + खुरा] करत साँप ।

विशेष—इसका फन गो के खुर के समान होता है, इसी से इसका यह नाम पड़ा ।

गोखुरु—संज्ञा पुं० [हि० गोखरू] दे० 'गोखरू' ।

गोगन^५—संज्ञा पुं० [सं० गोगण] गोघृष । गायों का झुंड । उ०—मो फल सखिन सहित बन घन में । बल समेत डोलत गोगन में ।—नंद ग्रं०, पृ० २६३ ।

गोगा^६—संज्ञा पुं० [शब्द०] छोटा काँटा । मेल ।

गोगा^७—संज्ञा पुं० [सं० गोगाह] दे० 'गोगा' ।

गोगापीर—संज्ञा पुं० [हि० गोगा + फ्रा० पीर] एक पीर या देवता जिसकी पूजा अधिकतर साधारण श्रेणी के हिंदू और मुसलमान राजपूताना, पंजाब आदि में करते हैं ।

विशेष—गोगा के विषय में भिन्न भिन्न प्रकार की कथाएँ प्रसिद्ध हैं । कोई कहते हैं कि वह जाति का चौहान राजपूत था और बीकानेर की राजगढ़ तहसील के अंतर्गत ओड़ेरा में उत्पन्न हुआ था । माँ बाप से लूटकर वह जोगी हुआ और फिर मुसलमान हो गया । कहते हैं कि मुसलमान होते ही वह छोड़े और हथियारों समेत तोहर नामक स्थान में पृथ्वी में समा गया जहाँ उसकी समाधि अबतक बनी हुई है और भादों सुदी ८-९ को बड़ा मेला लगता है । दूर दूर से लोग आकर मनोती चढ़ाते हैं । कुछ लोग यह भी कहते हैं कि गोगा जब मुसलमान होकर अपनी स्त्री को भी मुसलमान करना चाहता था तब प्रतापसिंह नामक किसी राजा ने उसे पृथ्वी में चुनवा दिया । साँपो को दूर रखने के लिये गोगा की पूजा दूर दूर तक होती है ।

गोगृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह जवान गाय जिसे केवल एक ही बछड़ा हुआ हो [की०] ।

गोगृह—संज्ञा पुं० [सं०] गोशाला [की०] ।

गोग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० गोग्रन्थि] १. सूखा हुआ गाय का गोबर । २. गोशाला । ३. गोजिहिका [की०] ।

गोग्रास—संज्ञा पुं० [सं०] पके हुए घन का वह थोड़ा सा भाग जो भोजन, श्राद्धादिक के आरंभ में गो के लिये अलग रख दिया जाता है ।

गोधरी—संज्ञा स्त्री० [शब्द०] एक प्रकार की कपास जो मड़ोच और बरोदा में होती है ।

गोघात—संज्ञा पुं० [सं०] गोहत्या ।

गोघातक—संज्ञा पुं० [सं०] गोहिसक । बूचर । कसाई ।

गोघाती—संज्ञा पुं० [सं० गोघातिन्] गोघातक ।

गोघृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्षा । २. गाय का घी [की०] ।

गोघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. गो को मारनेवाला । गो का वध करने-वाला । २. अतिथि । मेहमान । पाहुना ।

विशेष—प्राचीन काल में किसी प्रतिषि के घाने पर गोहत्या करने की प्रथा थी, इसी से 'प्रतिषि' को 'गोघ्न' कहने लगे।

३. गाय के लिये हानिकर या विनाशक (को०)।

गोचंदन—संज्ञा पुं० [सं० गोचन्दन] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का चंदन।

गोचंदना—संज्ञा स्त्री० [सं० गोचन्दना] एक प्रकार की जहरीली जोंक।

विशेष—इसकी दुम कुछ मोटी और प्रायः दो भागों में बँटी सी मान्य होती है। सुश्रुत के अनुसार इसके काटने से कटा हुआ स्थान सूज जाता है, शरीर सुन्न हो जाता है और मनुष्य को के और मूर्च्छा होती है।

गोचना^१—क्रि० सं० [पू० हि० अगोचना] रोकना। छँकना। किसी वस्तु की गति रोकना।

गोचना^२—संज्ञा पुं० [हि० गो + चना] चना मिला हुआ गेहूँ।

गोचना^३—क्रि० सं० [देश०] किसी चीज को उछालकर फेंकना।

गोचनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गोचना'।

गोचर^१—वि० [सं०] १. जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो सके। २. गायों द्वारा चरा हुआ (को०)। ३. रहनेवाला। बिचरनेवाला (को०)। ४. पृथ्वी पर रहने या चलनेवाला (को०)। ५. गम्य। बोध्य (को०)।

गोचर^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह विषय जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो सके। वह बात जो इंद्रियों की सहायता से जानी जा सके। जैसे,—रूप, रस, गंध आदि। २. गोश्रों के चरने का स्थान। चरागाह। चरी। ३. देश। प्रांत। ४. ज्योतिष में किसी भग्न्य के प्रसिद्ध नाम की राशि के अनुसार गणित करके निकाले हुए ग्रह जो जन्मराशि के ग्रहों से कुछ भिन्न होते और स्थूल माने जाते हैं। ५. वासस्थान। निवासभूमि (को०)। ६. ज्ञानेन्द्रियों के संचार का क्षेत्र या विषय जैसे श्रवणगोचर, नयनगोचर। ७. क्षितिज (को०)।

गोचरभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं० गोचर + भूमि] वह भूमि जो गायों के चरने के लिये होती है। चरागाह।

गोचरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गो + चरा] १. मिक्षावृत्ति। २. हठयोग की पाँच मुद्राओं में से एक।

गोचर्म—संज्ञा पुं० [सं० गोचर्मन्] १. गी का चमड़ा जिसपर कुछ विशेष कर्म आदि करने के समय बैठते हैं। २. जमीन, खेत आदि की एक प्राचीन काल की नाप, जो २१०० हाथ लंबी और इतनी ही चौड़ी होती है। इसे चरस या चरसा भी कहते हैं।

गोचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गायों की तरह आहार के लिये घूमना (को०)।

गोचारक—संज्ञा पुं० [सं०] गाय चरानेवाला। ग्वाला (को०)।

गोचारण—संज्ञा पुं० [सं०] गाय चराना (को०)।

गोचारी—संज्ञा पुं० [सं० गोचारिन्] ग्वाला। गोचारक (को०)।

गोजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की मछली। २. हिमालय की स्त्री का नाम।

गोछ—संज्ञा पुं० [हि० गोछ] दे० 'गोछ'। उ०—मोछ गोछ शिर मुँडि विरूपी कीन्हैउ।—प्रकवरी, पृ० ३४४।

गोज^१—संज्ञा पुं० [फ़ा० गोज] अपानवायु। पाद।

क्रि० प्र०—करना।

गोज^२—वि० [सं०] १. धरती से उत्पन्न (चावल आदि)। २. दूध से बनाया गया (पदार्थ) (को०)।

गोज^३—संज्ञा पुं० १. दूध से बना हुआ एक पदार्थ। २. एक प्रकार के क्षत्रिय जो अभिषेक के अनधिकारी होते हैं (को०)।

गोजई—संज्ञा स्त्री० [हि० गोहूँ + जव] गोहूँ और जी मिला हुआ भन्न। जी और गेहूँ की मिलावट।

गोजर^१—संज्ञा पुं० [सं०] बूढ़ा बैल।

गोजर^२—संज्ञा पुं० [सं० लज्ज या हि० गुजगुजा] कनखलूरा नाम का कीड़ा। शतपदी। एक विशेषता कीड़ा जिसके बहुत से पाँव होते हैं।

गोजरा—संज्ञा पुं० [हि० गोहूँ + जव] जी मिला हुआ गेहूँ।

गोजल—संज्ञा पुं० [सं०] गोमूत्र (को०)।

गोजा^१—संज्ञा पुं० [सं० गवाजन] १. छोटे पीपों का नया कल्ला जो सीधा निकलता है। २. सेटुंड का कल्ला जिसे भीतर पोला करके गलका आदि होने पर उँगली में ओषधि के रूप में पहन लेते हैं।

गोजा^२—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० गोजी] वह लकड़ी जो चरबाहे अपने साथ पशुओं को हाँकने के लिये रखते हैं।

गोजागरिक—संज्ञा पुं० [सं० गोसजागरिकम्] १. आनंद। प्रसन्नता। पाचक। रसोदया (को०)।

गोजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोसमष्टि। गायों की जाति (को०)।

गोजाह—संज्ञा पुं० [हि० गोजा] दे० 'गोजा'—१. उ०—जंगल गया और दातोन के लिये नीम का एक गोजाह लेकर लौटा।—काले०, पृ० १०।

गोजाही^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गोजाह] नया कल्ला या कनखा।

गोजाही^२—संज्ञा स्त्री० [हि० गोजा] १. गोजी। लाठी। २. लाठी का पुट। लाठियों की मारपीट।

गोजिया—संज्ञा स्त्री० [सं० गोजिह्वा] गोभी या बनगोभी नाम की घास। वि० दे० 'गोभी'।

गोजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोभी या गरमगोभी नाम की घास जो ओषधि के काम आती है। दे० 'गोभी'।

विशेष—कुछ लोग भूल से गावजर्वा को भी गोजिह्वा कहते हैं।

गोजी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गवाजन] १. गो हाँकने की लकड़ी। २. बड़ी लाठी। लठ्ठ।

मुहा०—गोजी चलना = लाठियों से मारपीट होना।

३. एक प्रकार का खेल जिसमें पटे, बनेटी आदि की तरह लकड़ी भाँजते हैं।

क्रि० प्र०—खेलना।

गोजीव—वि० [सं० गो + जिव] जिसने इंद्रियों को जीत लिया हो। जितेंद्रिय।

गोजीव—संज्ञा पुं० [सं०] गोपाल । श्वाना [को०] ।

गोमनचट्टी—संज्ञा पुं० [हि०] स्त्रियों की माड़ी का वह भाग जो सिर पर रहता है । घंवर । पल्ला ।

गोभा—संज्ञा पुं० [सं० गृह्यक] [श्री० चम्पा० गोभिया, गुभिया]
१. गुभिया नामक पशुवान् जो मैदे में चूरमा या मेवा आदि भरकर बनता है । उ० (क) गोभा बहुपूरण पूरे । भरि भरि कपूर रस चूरे । सूर (शब्द०) । (ख) भए जीव विन नाउत गोभा । विष भइ पूरि काल भए गोभा ।—जायसी (शब्द०) । २. लकड़ी की कील जो काठ के सामान में सरस लगाकर ठोकी या धंसाई जाती है और जिसका बाहर निकला हुआ भाग आगे से काटकर लकड़ी की सतह के बराबर कर दिया जाता है । गुज्जा । बेंसकोला । ३. एक प्रकार की कंटीली घास । गुज्जा । ४. जेब । खीमा । खनीता ।

गोट^१—संज्ञा स्त्री० [गं० गोष्टी] १. वह पट्टी या फीता जिसे किसी कपड़े के किनारे मृबमृगती के लिये लगाते हैं । मगजी । २. किसी प्रकार का किनारा ।

क्रि० प्र०—बटाना ।—टांकना ।—लगाना ।

गोट^२—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ट] गाँव । खंडा । टोली ।

गोट^३—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्टी] १. मंडली । गोष्टी : २. वह रीर जो नगर के बाहर किसी बाग या उपवन आदि में हो और जिसमें खाने पीने, बिशेषण, कच्ची रमोई आदि, का प्रबंध हो ।

गोट^४—संज्ञा स्त्री० [हि० गोटी] दे० 'गोटी' ।

गोट^५—संज्ञा स्त्री० [मं० गुटिका] चौपड़ का मोहरा । नरद । गोटी ।

गोट^६—संज्ञा पुं० [हि० गोल] तोप का गोला । उ०—जिन्ह के गोट कोट पर जाही । जेहि ताकहि भूकहि तेहि नाही ।—जायसी (शब्द०) ।

गोटबस्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० गोटबस्ती] वह भूमि जिसपर गाँव बसा हो ।

गोटा^१—संज्ञा पुं० [हि० गोट] १. मुनहले या कपहले बादले का बुना हुआ पतला फीता जो प्रायः सुंदरता के लिये कपड़े के किनारे पर लगाया जाता है ।

यौ०—गोटा पट्टा ।

२. धनियाँ की माड़ी या मूनी हुई गिरी । ३. छोटे छोटे टुकड़ों में कतरी और एक में मिली हुई इलायची, गुपारी और खरबूजे तथा बादाम की गिरी । ४. सूखा हुआ मल । कंटी । मुद्दा । ५. गुटिका । उ०—मगल गोटा मुखि फले मरवट मुगदन जान ।—रज्जब०, पृ० १२ ।

गोटा^२—संज्ञा पुं० [मं० गुटिका] १. चौपड़ का मोहरा । गोट । गोटी । उ०—अलक गुप्तमति तेहि पर लोटा । हिय घर एक खेल दुइ गोटा ।—जायसी (शब्द०) । २. तोप का गोला । उ०—घो जो छुटहि बज कर गोटा । बिसरहि गुप्तति होइ सब रोटा ।—जायसी (शब्द०) । ३. जटा । अलक । गट ।

गोटिका(१)—संज्ञा स्त्री० [मं० गुटिका] दे० 'गुटिका' । उ०—सिद्ध गोटिका जा पहुँ नाही । कौन धातु पूँछहु तेहि पाही ।—जायसी पं० (गुप्त), पृ० ३२१ ।

गोटी—संज्ञा स्त्री० [मं० गुटिका] १. कंकड़, गेरू, पत्थर इत्यादि का छोटा गोल टुकड़ा जिससे लड़के अनेक प्रकार के खेल खेलते हैं । २. हाथीदाँत, हड्डी, लकड़ी इत्यादि का बना हुआ चौपड़ खेलन का मोहरा । नरद ।

विशेष—ये गोतियाँ गिनती में कुल १६ होती हैं जिनमें से ४ लाल, ८ हरे, ४ पीले और ४ काले रंग की रहती हैं ।

मुद्दा०—गोटी जमना या बैठना—खेल के आरंभ में पौ आदि दाँव पड़ने पर नई गोटी का चलने योग्य बनना । गोटी मरना=खेल के मध्य में पीछे से दूसरे खिलाड़ी की किसी नई गोटी के उस स्थान पर आ जाने के कारण पहलेवाली गोटी का अपने स्थान से हटाकर खेल से अलग कर दिया जाना । गोटी बैठना—एक ही घर में एक खिलाड़ी की दो गोटियों का एक साथ रखा जाना । इस दिशा में पीछे से आनेवाली गोटियों का मार्ग रुक जाता है और वह उस समय तक आगे नहीं बढ़ सकती जबतक कि दोनों गोटियाँ अलग अलग घरों में न चल जायें । इस प्रकार बैठी हुई गोटियाँ मारी भी नहीं जा सकती । गोटी मारना=खेल में किसी गोटी का चलने योग्य न रहना । किसी गोटी के खाने में विपक्षी की गोटी का आ जाना जिससे पहली गोटी खाने से हटा दी जाती है । गोटी मारना=खेल द्वारा किसी खाने से कोई गोटी हटाकर अपनी गोटी खाना । विपक्षी की गोटी को बेकाम करना । गोटी लाल होना=लाभ होना । प्राप्ति होना ।

३. एक खेल जो ६, १५, १८ या इससे अधिक गोटियों से भूमि पर एक दूसरी की काटती हुई आड़ी और सीधी रेखाएँ बनाकर खेला जाता है ।

यौ०—गोटिया चाल—दाँव पैच की चाल । कुटिल नीति ।

४. उपाय । युक्ति । तदबीर । लाभ का आयोजन । प्राप्ति का डोल । आमदनी की सूरत । जैसे,—वहाँ २००) की गोटी है, वे क्यों न जाएँगे ।

मुद्दा०—गोटी जमना या बैठना—युक्ति चलना । उपाय या युक्ति गफल होना । प्राप्ति का डोल होना । आमदनी की सूरत होना । गोटी बैठना या जमाना=युक्ति लगाना । तदबीर लड़ाना । जैसे—उन्होंने अपनी गोटी बैठा ली है, अब वहाँ किसी की दाल न गनेगी ।

गोट^३—संज्ञा स्त्री० [गं०] एक प्रकार की घटिया चिकनी गुपारी ।

गोठ^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठ] १. गोशाला । गोस्थान : उ०—जे अप मातु पिता सुत मारे । माइ गोठ महिसुरपुर जारे ।—तुलसी (शब्द०) । २. गोष्ठी आड । ३. सर सपाटा । वि० दे० 'गोट' ।

गोठणी(१)—संज्ञा स्त्री० [मं० गोष्ठ] गाँधी । साधिन । महेली । उ०—मारु म्हाँत्री गोठणी, सँ मारुँदा सर ।—ढोना०, पृ० ४३८ ।

गोठि(१)—संज्ञा स्त्री० [हि० गोठ] दे० 'गोठ' । उ०—जहाँ हुई गोठि भोजन नरिद । तहाँ हुने मकल सामंत बुंद ।—पृ० रा०, ६।१०६ ।

गोठिजाँ—वि० [मं० कुण्ठित] जिसकी आर खराब हो गई हो । कुंठित । कुंद ।

गोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० गज, गो] १. पैर। पावें। उ०—(क) गोड़ न मूड़ न प्राण प्रधारा। तामे मरमि रहा संसारा।—कबीर (शब्द०)। (ख) मकर महीषद सो मालि कै मतंगज को प्रस्यो गसि गाढ़ो गोड़े गयर चिकारयो है।—रघुराज (शब्द०)
मुहा०—गोड़ भरना=(१) पैर में महावर लगाना। (२) ब्याह की एक रसम जिसमें वर की माता या चाची उसे गोद में लेकर मंडप में बैठती है और नाइन उसके पैर में महावर लगाती है।

२. भूजों की एक जाति। ३. जहाज के संगर की फाल।
 —(लश०)।

गोड़—संज्ञा पुं० [हि० गोड़] दे० 'गोड़'। उ०—सइगाइया प्राया खुरसाण गोड़ चढ्या गजकेसरी कछवाह कहुं नीरवाण।
 —बी० रासो, पृ० १७।

गोड़इत—संज्ञा पुं० [हि० गोहन + ऐत (प्रत्य०)] १. गाँव में पहरा देनेवाला चौकीदार। २. वह हरकारा या कर्मचारी जो पुराने जमाने में एक गाँव की चिट्ठियाँ दूसरे गाँव में पहुँचाया करता था।

गोड़ई—संज्ञा स्त्री० [हि० गोड़ + ई (प्रत्य०)] करघे की वे लकड़ियाँ जो पाई करने में पाई के दोनों ओर खड़ी की जाती हैं।
 —(जोलाहे)।

गोड़गाव—संज्ञा पुं० [हि० गोड़ + गाव] वह छोटी रस्सी जिसे गिराव की तरह बनाकर और पिछ्छाड़ीवाली रस्सी के सिरों पर बाँधकर छोड़े के पिछले पैर में फँसा देते हैं।

गोड़धरावन—संज्ञा पुं० [हि० गोड़ + धरावना] १. पैर पुजाना। ३. अपनी महत्ता बढ़ाना। उ०—मिद्ध मिद्धई करे पशुता कारन जाई। गोड़धरावन हेतु महें उपदेस चलाई।—पलटू, पृ० ७४।

गोड़न—संज्ञा पुं० [ग०] वह क्रिया जिसके अनुसार ऐसी मिट्टी से भी नमक बना लिया जाता है जो नोनी न हो।

गोड़ना^१—क्रि० स० [हि० कोड़ना] मिट्टी की किसी भूमि को कुछ गहराई तक खोदकर उलट पुलट देना जिसमें वह पोली और भुरभुरी हो जाय। कोड़ना। जैसे,—खेत गोड़ना, अखाड़ा गोड़ना।

विशेष—जब पेड़ गोड़ना कहेंगे तब उससे तात्पर्य होगा पेड़ की जड़ की मिट्टी को जल देने के लिये खोदकर पोली और भुरभुरी करना। जैसे,—नाम जाको कामतर देत फल चारि, ताहि तुलसी विहाइ कै खूर रेंड गोड़िये।—तुलसी (शब्द०)।

गोड़ना^२—क्रि० [वि० स्त्री० गोड़नी] १. चोपट करनेवाला। नष्ट करनेवाला। २. गोड़नेवाला।

गोड़ली—संज्ञा स्त्री०, पुं० [सं० कर्णाटी] वह पुरुष या स्त्री जो संगीत, विशेषतः नृत्य, में बहुत प्रवीण हो।

गोड़वास—संज्ञा पुं० [हि० गोड़ = पैर + रस्सी] वह रस्सा जो पशुओं के पैर में फँसाकर खूँटे से बाँध दिया जाता है।

गोड़वाना—क्रि० प्र० [हि० गोड़ना का प्रे० रूप] गोड़ने का काम कराना।

गोड़बारी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोड़ + बारी (प्रत्य०)] पायताना। पैताना।

गोड़सँकरा—संज्ञा पुं० [हि० गोड़ + साकर] पैरों में पहनने का स्त्रियों का एक गहना।

गोड़सिहा^१—वि० [हि० गोड़ + सिहाना] ईर्ष्यालु। डाह करनेवाला। कुढ़नेवाला। जलनेवाला।

गोड़हरा^२—संज्ञा पुं० [हि० गोड़ + हरा (प्रत्य०)] पैर में पहनने का कोई जेवर, विशेषतः कड़ा।

गोड़गी^१—संज्ञा पुं० [हि० गोड़ + गी (प्रत्य०)] पायजामा।

गोड़गी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० गोड़ + गी (प्रत्य०)] सूता।

गोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० गोड़] पैर और जाँघ के बीच का जोड़। घुटना।

गोड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि० गोड़ = पैर] १. पलंग आदि का पाया। २. घोड़िया। उ०—चाँद सूर्य दोड़ गोड़ा कीन्हो मारु दीप किय ताना।—कबीर (शब्द०)। ३. वह रस्सी जो खेतों में पानी चलाने की दौरी से बँधी रहती है और जिसे पकड़कर पानी उलीचते हैं।

गोड़ा^२—संज्ञा पुं० [हि० गोड़ना] वाला। झालवाल।

क्रि० प्र०—बनाना।—मारना।—लगाना।

गोड़ाई—संज्ञा पुं० [हि० गोड़ना] १. गोड़ने की क्रिया। २. गोड़ने का भाव। ३. गोड़ने की मजदूरी।

गोड़ाना—क्रि० स० [हि० गोड़ना का प्रे० रूप] गोड़ने का काम दूसरे से कराना।

गोड़ापाही—संज्ञा स्त्री० [हि० गोड़ (= पाँव) + पाई (= ताने के सूत फैलाने का ढाँचा)] १. किसी मंडल में घूमने की क्रिया। पाई। मंडल देना। २. किसी स्थान पर बार बार आने की क्रिया। तानापाई।

गोड़ारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गोड़ाई] हरी घास जो अभी खोदकर लाई गई हो।

गोड़ारी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० गोड़ (= पैर) + आरी (प्रत्य०)] १. पलंग आदि का वह भाग जिधर पैर रहता है। पैताना। २. सूता।

गोड़ाली—संज्ञा स्त्री० [हि० गोड़र] गोड़र दूब।

गोड़िया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गोड़ (= पैर) का प्रत्य०] छोटा पैर। उ०—छोटी छोटी गोड़ियाँ भंगुरियाँ छबीली छोटी नल जोती मोती मानो कमल दलन पर।—तुलसी (शब्द०)।

गोड़िया^२—संज्ञा पुं० [हि० गोटी = युक्ति] युक्ति लगानेवाला। तरकीब सड़ानेवाला।

गोड़िया^३—संज्ञा पुं० [ग०] केवट। मल्लाह। उ०—गोड़िया पसारा जाल ऊटे एक बाझा हो।—धरम०, पृ० ३६।

गोड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गोटी] लाभ। फायदा। लाभ का आयोजन। प्राप्ति का डोल।

क्रि० प्र०—करना।

मुद्रा०—गोत्री बसना या लगाना = उद्योग में सफलता होना ।
फायदे के लिये जो चाल चली गई हो उसका सफल होना ।
लाम होना । गोत्री हाथ से जाना = कुछ हाथ न लगना । कुछ
लाम न होना ।

गोत्री—संज्ञा स्त्री० [हि० गोत्र] पैर । चरण ।

मुद्रा०—गोत्री बसना या लगाना = चरण पहना । किसी का किसी
स्थान पर प्राप्त होना ।

गोशुल्का—संज्ञा स्त्री० [सं० गोशुल्का] तरबूज [को०] ।

गोद्वैत—संज्ञा पुं० [हि० गोद्वैत] दे० 'गोद्वैत' । उ०—गोद्वैत और
मियाहियों की दोढ़धूप चलने लगी ।—आकाश०, पृ० १०८ ।

गोद(पु)—वि० [सं० गूढ, हि० गूढ़] दे० 'गूढ़' । उ०—ईशू सूरू हंसि
न बोलज्यो, राजनि उह भीतरी गोद ।—बी० रासो, पृ० ५१ ।

गोद्वै(पु)—क्रि० वि० [हि०] दे० 'गोद्वै' । उ०—पंचोली हरिकसन
बड़े पाग, गोद्वै इन्द्रभाष साधै गुण ।—रा० ६०, पृ० ३१६ ।

गोली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. टाट का दोहरा बोरा जिसमें अनाज
आदि भरा जाता है । घोल । २. एक पुरानी माप या तोल
जो गुप्तन के अनुसार दो सूप के बराबर होती थी । ३. भीना
कण्डा । ध्रुवना ।

गोत—संज्ञा पुं० [सं० गोत्र] १. कुल । वंश । खानदान । उ०—राम
भक्त वत्सान निज बानो । जाति गोत कुल नाम गनत नहि
रंक होइ के रानो ।—सूर (शब्द०) । २. समूह । जत्था ।
गरोह । उ०—(क) सुनि यह स्याम विरह भरे ।……
सखिन तब भुज गहि उठाए कहा बावरे होत । सूर प्रभु तुम
अतुर भोहन मिलो अपने गोत ।—सूर (शब्द०) । (ख) दिन
रैन मैं भावन के रचै गोत उद्योत मई नित जान्यो पर ।—
हरिसेवक (शब्द०) ।

गोतउच्चार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० गोत्र + उच्चार] दे० 'गोत्रोच्चार' ।
उ०—हुई नाउं होइ गोत उच्चार । करहि पदुमिनी मंगल-
चार ।—जायसी श्र० (गुप्त), पृ० ३१५ ।

गोतम—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोत्रप्रवर्तक एक ऋषि । २. एक मंत्रकार
ऋषि ।

गोतमक—संज्ञा पुं० [सं०] गोतम बुद्ध के अनुयायी । उ०—बुद्ध के
धर्मप्रचार के समय भारतवर्ष में ६२ विविध संप्रदाय थे
जिनमें मार्गदिक, गोतमक आदि मुख्य थे ।—आ० भा०,
पृ० १४० ।

गोतमपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जतानंद [को०] ।

गोतमस्तोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ ।

गोतमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोतम ऋषि की स्त्री अहिल्या का
एक नाम ।

गोतर(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गोत्र' । उ०—ऐसे ठीठ बिग बुकी
ताकि होइ तिहारी गोतर ।—बनारस, पृ० ३६० ।

गोता—संज्ञा पुं० [अ० गोतह्] जल आदि तरल पदार्थों में डूबने की
स्थिति । डूबती ।

मुद्रा०—गोता खाना = (१) जल आदि तरल पदार्थों में डूबना ।
डूबकी लगाना । उ०—यह जग जीव पाहू नहि पावै । बिन

सतगुर सब गोता खावे । (२) बोखे में घाना । फरेब में घाना ।
गोता देना = (१) डूबाना । (२) बोखा देना । गोता
मारना = (१) डूबकी लगाना । डूबना । (२) स्त्रीप्रसंग
करना (प्रणिष्ट) । (३) बीच में अनुपस्थित रहना । नागा
करना । गोता लगाना = दे० 'गोता मारना' ।

यौ०—गोताखोर । गोतामार ।

गोताखोर—संज्ञा पुं० [अ० गोताखोर] डूबकी लगानेवाला । डूबकी
मारनेवाला ।

विशेष—गोताखोर प्रायः कुएं या तालाब आदि में गोता लगाकर
उनमें से कोई गिरी हुई चीज लाते अथवा समुद्र आदि में गोता
लगाकर सीप, मोती आदि निकालते हैं ।

गोतामार—संज्ञा पुं० [हि० गोता + मार] दे० 'गोताखोर' ।

गोतिया—वि० [सं० गोत्र + इया (प्रत्य०)] [वि० स्त्री गोतिनी]
अपने गोत्र का । गोती ।

गोती—वि० [सं० गोत्रीय] अपने गोत्र का । जिसके साथ शौचाशौच
का संबंध हो । गोत्रीय । भाई बंधु । उ०—विष्णु आनन पर
दोरघ लोचन नासा मोती लटकत री । मानो सोम संग करि
लीनो जानि आपनो गोती री ।—सूर (शब्द०) ।

गोतीत—वि० [सं०] जो ज्ञानेन्द्रियों द्वारा न जाना जा सके । ज्ञानेन्द्रियों
द्वारा न जानने योग्य । अगोचर । उ०—भक्त हेतु नर बिग्रह
सुर वर गुन गोतीत ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) देव ब्रह्म
व्यापक अमल सकल पर धर्महित ज्ञान गोतीत गुन वृत्ति
हर्ता ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) अतुलित बल वीर्य विरक्ति
वरं । गुण ज्ञान गिरा गोतीत परं ।—विश्राम (शब्द०) ।

गोतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] गोशाला [को०] ।

गोतीर्थक—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त के अनुसार फोड़े आदि चीरने का
एक प्रकार जिसके अनुसार कई छेदोंवाले फोड़े चीरे जाते हैं ।

गोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. संतति । संतान । २. नाम । ३. क्षेत्र ।
वर्त्म । ४. राजा का छत्र । ५. समूह । जत्था । गरोह । ६.
वृद्धि । बढ़ती । ७. संपत्ति । धन । दौलत । ८. पहाड़ । ९.
बंधु । भाई । १०. एक प्रकार का जातिविभाग । ११. वंश ।
कुल । खानदान । १२. कुल या वंश की संज्ञा जो उसके किसी
मूल पुरुष के अनुसार होती है ।

विशेष—ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य द्विजातियों में उनके भिन्न
भिन्न गोत्रों की संज्ञा उनके मूल पुरुष या गुरु ऋषियों के
नामों के अनुसार है ।

गोत्रकर—संज्ञा पुं० [सं०] गोत्रप्रवर्तक ऋषि । उ०—ये सारे गोत्रकर
ऋषि गंगा के आसपासवाले प्रदेश में १५०० ई०पू० के
आसपास दासता और सामंतवादी युग में हुए थे ।—आ० भा०
६०, पृ० २० ।

गोत्रकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० गोत्रकर्तृ] गोत्रप्रवर्तक [को०] ।

गोत्रकार—संज्ञा पुं० [सं०] गोत्रप्रवर्तक [को०] ।

गोत्रकारी—संज्ञा पुं० [सं० गोत्रकारिन्] गोत्रप्रवर्तक [को०] ।

गोत्रज—वि० [सं०] एक ही गोत्र में उत्पन्न एक ही पूर्वज की संतान ।
एक ही वंशपरंपरा का ।

विशेष—धर्मशास्त्रों के अनुसार गोत्रज दो प्रकार के होते हैं—
गोत्रज सपिंड और गोत्रज समानोदक । सात पीढ़ी के धंवर
जिसके एक ही पूर्वज हों वे गोत्रज सपिंड और सात से ऊपर
चौदह पीढ़ियों तक जिनके पूर्वज एक हों वे गोत्रज समानोदक
कहलाते हैं ।

गोत्रपट—संज्ञा पुं० [सं०] वंशवृक्ष [को०] ।

गोत्रप्रवर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] गोत्र चलानेवाला । गोत्रकार । गोत्र का
मूल पुरुष [को०] ।

गोत्रभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों का भेदन करनेवाला इंद्र [को०] ।

गोत्रसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्वत की पुत्री । पार्वती । उ०—बंदत देव
अदेव सबै मुनि गोत्रसुता अरधंग धरी है ।—केशव (शब्द०) ।

गोत्रम्वलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी को गलत नाम से पुकारना ।
२. किसी का नाम लेने में गलती करना [को०] ।

गोत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गायों का समूह । २. पृथ्वी [को०] ।

गोत्री—वि० [सं० गोत्रिन्] समान गोत्रवाला । गोत्रज । गोत्रिया ।

गोत्रीय—वि० [सं०] गोत्रवाला । प्रमुक्त गोत्र का [को०] ।

गोत्रोच्चार—संज्ञा पुं० [सं०] १. विवाह के समय वर वधू के गोत्र
का दिया जानेवाला परिचय । २. (हास्य व्यंग्य में प्रयुक्त)
किसी के पूर्वजों तक को दी जानेवाली गालियाँ [को०] ।

गोथरा—वि० [अनु० या हिं० गोडल] मुंडी धारवाला । कुंद ।

गोथल—संज्ञा पुं० [सं० गोथल] खरिक । गायों के बांधने का स्थान ।
गोठ । उ०—गोकुल गोथल घोष ब्रज खरग कहत पुनि नाम ।
अनेकार्य०, पृ० २६ ।

गोदंती^१—वि० [सं० गोदन्त] कच्चा । सफेद ।

विशेष—इस अर्थ में यह विशेषण केवल हरताल के लिये आता है ।

गोदंती^२—वि० [सं० गोदन्त] एक प्रकार की मणि या बहुमूल्य पत्थर ।

गोदंढ^३—संज्ञा पुं० [?] गुबरेला । उ०—गोदंढा ज्यों भारग आगे
बोज बिलाए ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८७५ ।

गोद^१—संज्ञा पुं० [सं० गोड] १. वह स्थान जो वनस्थल के पास एक
या दोनों हाथों का घेरा बनाने से बनता है और जिसमें प्रायः
बालकों को लेते हैं । उत्संग । कोरा । ओली । उ०—व्यापक
ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद । सो अज प्रेम भगति बस
कौसल्या की गोद ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—लेना ।

मुहा०—गोद का = (१) छोटा बालक । बच्चा । (२) बहुत
समीप का । पास का । जैसे—गोद की चीज छोड़कर इतनी
दूर जाना ठीक नहीं । गोद बैठना = दत्तक बनना । गोद
लेना = दत्तक बनाना । गोद देना = अपने लड़के को दूसरे को
दत्तक बनाने के लिये देना ।

यौ०—गोदभरी = बाल बच्चोंवाली स्त्री । गोद में = पास में ।
अत्यंत समीप । जैसे, —गोद में लड़का शहर में बिठोरा ।

२. स्त्रियों की साड़ी का वह भाग जो झंवल के पास रहता
है । झंवल । उ०—झवरी कटुक बेर तजि भीठे भावि
गोद भर लाई । झूठे की कछु शंक न मानी अक्ष किए सत
भाई ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पसारना ।—भरना ।

मुहा०—गोद पसारकर चिनती करना या माँगना = अत्यंत
अधीरता से माँगना या प्रार्थना करना । उ०—इह कथा में
स्याम को माँगी गोद पसारि ।—नंद ग्रं०, पृ० १६४ । गोद
भरना = (१) विवाह आदि शुभ अवसरों पर अथवा किसी
के आने जाने के समय सौभाग्यवती स्त्री के झंचरे में नारियल
आदि पदार्थ देना जो शुभ समझा जाता है । (२) संतान
होना । औलाद होना ।

गोद^२—संज्ञा पुं० [सं०] मस्तिष्क । दिमाग [को०] ।

गोदगुदाखो—संज्ञा पुं० [देश०] गुत्त नाम का पेड़ ।

गोदनशी^१—वि० [हिं० गोद + शी० शी (प्रत्य०)] गोद लिया
हुआ । दत्तक ।

गोदनशीनी^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोद + शी० शीनी (प्रत्य०)] गोद
लेने का कार्य । गोद लिया जाना ।

गोदनहर^३—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोदनहारी] दे० 'गोदनहारी' ।

गोदनहरा—संज्ञा पुं० [हिं० गोदना + हारा (प्रत्य०)] टीका लगाने-
वाला । माता छापनेवाला ।

गोदनहारी^४—संज्ञा स्त्री० [हिं० गोदना + हारी (प्रत्य०)] कजड़ या
नट जाति की स्त्री जो गोदना गोदने का काम करती है ।

गोदना^१—क्रि० सं० [हिं० गोदना + गढ़ाना] १. किसी नुकीली
चीज को भीतर चुभाना । गड़ाना । २. किसी कार्य के लिये
बार बार जोर देना । कोई काम करने के लिये बार बार जोर
देना । कोई काम कराने के लिये पीछे पड़ना । ३. छेड़ छाड़
करना । चुभती या लगती हुई बात कहना । ताना देना । ४.
हाथी को झंकुस देना । † ५. गोड़ना । ६. भद्दी लिखाई
लिखना ।

गोदना^२—संज्ञा पुं० १. तिल के आकार का एक विशेष प्रकार का
काला चिह्न जो कजड़ या नट जाति की स्त्रियाँ लोगों के
शरीर में नील या कोयले के पानी में डूबी हुई सूइयों से पाश्च-
कर बनाती हैं । इसमें पहले दो एक रोज तक पीड़ा होती है
पर पीछे वह चिह्न स्थायी हो जाता है ।

विशेष—भारत में अनेक जाति की स्त्रियाँ गाल, ठोड़ी, कलाई
तथा अन्य अंगों पर सुंदरता के लिये इस प्रकार के चिह्न
बनवाती हैं । बिहार प्रांत की स्त्रियाँ तो अपने शरीर पर इस
क्रिया से बेल बूटों तक के चिह्न बनवाती हैं ।

क्रि० प्र०—गोदना ।—गोदना ।

२. वह सूई जिसकी सहायता से कीतला रोग से रक्षित रहने के
लिये बालकों को टीका लगाते हैं ।

क्रि० प्र०—लपाना ।

३. वह औजार जिससे श्वेत गोदते हैं ।

गोदनी^४—संज्ञा स्त्री [हिं० गोदना] १. वह सूई जिससे गोदना गोदा
जाता है । २. चुभाने, गड़ाने या गोदने की कोई चीज ।

गोदर^५—वि० [हिं० गदराना या गहर] १. गदराया हुआ । गहर ।
२. पूर्णतः यौवनप्राप्त । यौवन से परिपूर्ण ।

गोदा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोदावरी नदी । उ०—पंचवटी गोदाहि
प्रनाम करि । कुटी दाहिनी लाई ।—तुलसी (शब्द०) । २.
गायत्रीस्वरूपा महादेवी ।

गोदा^१—संज्ञा पुं० [हि०] कटवासी बांस ।

गोदा^२—संज्ञा पुं० [हि० गोदा] १. पेड़ों की नई शाखा । ताजी डाल ।

२. किसी पेड़ की लंबी और पतली टहनियाँ ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—भारना ।

गोदा^३—संज्ञा पुं० [हि० गोद] बड़, पीपल या पाकर के पत्ते के फल ।
गूलर, पिपरी इत्यादि ।

क्रि० प्र०—खाना ।—खुनना ।—बोवना ।

गोदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. गो को विविध संकल्प करके ब्राह्मण को दान करने की क्रिया ।

विशेष—इसका विधान माधारण दान, पुण्य, रोग, विवाह आदि संस्कार अथवा किसी प्रकार के प्रायश्चित्त के अवसर के लिये है ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—लेना ।

२. एक संस्कार जो विवाह से पहले ब्राह्मण को १६वें वर्ष, क्षत्रिय को २२वें वर्ष और वैश्य को २४वें वर्ष करना आवश्यक है । इसे केसांत या गोदानमंगल भी कहते हैं ।
उ०—पुनि भरदाय मुनिन गोदाना । मंगल मंहित वेद विधाना ।—रघुराज (शब्द०) ।

गोदाम—संज्ञा पुं० [सं० गोडाउन] वह बड़ा सुरक्षित स्थान जहाँ बहुत सा माल असेबाब रखा जाता हो ।

विशेष—साधारणतः बहुत बड़े बड़े व्यापारी अपना सारा माल दुकानों में न रख सकने के कारण एक बड़ा स्थान भी ले लेते हैं जिसमें उनका अधिकांश बोक माल पड़ा रहता है ।

गोदारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. जमीन खोदने की कुदाल । २. हल [को०] ।

गोदारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुदाल । २. हल [को०] ।

गोदावरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दक्षिण भारत की एक नदी जो नासिक के पास से निकलकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है ।
२. मदरास का एक जिला ।

गोदि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गोब] दे० 'गोद' । उ०—रब इन छल करि श्री ठाकुर जी को अपनी गोदि में लिए ।—दो सी बावम०, भा० १ पृ० १३६ ।

गोदी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] बड़ी नदी या समुद्र में वह घेरा हुआ स्थान जहाँ जहाज मरम्मत के लिये या तूफान आदि के उपद्रव से रक्षित रहने के लिये रखे जाते हैं । डाक ।—(लश०) ।

गौ०—गोदी मजदूर—जहाजों पर माल चढ़ाने उतारनेवाले मजदूर ।

गोदी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० गोब] दे० 'गोब' ।

गोदी^३—संज्ञा पुं० [हि०] एक प्रकार का बकूल ।

विशेष—यह बरार, पंजाब और अरब में होता है । यह नहरों के किनारे के बाँधों पर प्रायः लगया जाता है ।

गोदुह—संज्ञा पुं० [सं०] गाय दुहनेवाला । गवाना । उ०—बल्लभ गोदुह गोप पुनि कहि प्रभीर गोपाल ।—अनेकार्थ०, पृ० २६ ।

गोदुनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेंत की जाति का एक वृक्ष ।

विशेष—यह पूर्वीय बंगाल और आसाम आदि प्रदेशों में बहुत

होता है । इसकी चिकनी और चमकीली टहनियों से शीतल-पाटी बनाई जाती है जो दूर दूर भेंजी जाती है ।

गोदोह—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाय का दोहन । २. गाय का दूध । ३. गाय के दुहने का समय [को०] ।

गोदोहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाय के दुहने की क्रिया । गाय दुहा जाना । २. गाय के दोहन का काल या समय [को०] ।

गोदोहनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बर्तन जिसमें गाय का दूध दुहा जाना है । दोहनी [को०] ।

गोदूष—संज्ञा पुं० [सं०] गाय या बैल का मूत्र । गोमूत्र ।

गोध—संज्ञा स्त्री० [सं० गोधा] गोह नामक जंगली जानवर ।

गोधन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोघों का समूह । गोघों का झुंड । उ०—कमल भवन घनधाम मनीहर मथ गोघन की भूप ।—सूर (शब्द०) । २. गो रूढ़ी संपत्ति । उ०—गोवन, गजधन, राजधन और रतनधन खान । जब प्राये संतोपधन सब घन धूरि समान ।—तुलसी (शब्द०) । ३. एक प्रकार का तीर जिसका फल चौड़ा होना है ।

गोधन^२—संज्ञा पुं० [सं० गोवर्जन] गोवर्जन पर्यंत । उ०—अलि गोधन पूजा को उमझो ब्रज मोहि चढ़ी तप सोन तें ।—बेनी (शब्द०) ।

गोधन^३—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी ।

विशेष—यह पक्षी सारे एशिया, यूरोप और अफ्रीका में पाया जाता है । इसकी चौथ जाल, सिर भूरा और पैर हरे होते हैं । यह प्रायः जलाशयों के निकट रहता और ५ ले ६ तक घड़े देता है ।

गोधर—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत । पहाड़ ।

गोधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] पशुओं की भक्ति रामायण करना । रामायण में अपने पराए का कुछ विचार न रखना ।

गोर्षा^१—संज्ञा पुं० [सं० गोघन] गोघन । बैल । उ०—भूसर भालर भल्लही गोर्षा गायडियाह ।—बाकी० प्र०, भा० २, पृ० १५ ।

गोधा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोह नामक जंतु ।

गोधा^२—संज्ञा पुं० [सं० गोघन] गोघन । बैल । उ०—मेरे गाय गोधा अन्न । मेरे ऊँट घोड़ा धन ।—राम० धर्म०, पृ० १६६ ।

गोधापदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गोधापदी' [को०] ।

गोधापदी—संज्ञा [सं०] १. मूलवी नाम की घोषधि । २. हंसपदी नाम की लता ।

गोधावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गोधापदी' ।

गोधास्कंध—संज्ञा पुं० [सं० गोधास्कन्ध] एक प्रकार का बदबूदार खैर । विट् खदिर [को०] ।

गोधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. साधा । मनाट । २. गगर । घड़ियाल [को०] ।

गोधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छिन्नही । २. मादा घड़ियाल [को०] ।

गोधिकात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का जानवर जो नर साँप और गधा गोह के संयोग से उत्पन्न होता है । २. गोह के आकार का एक प्रकार का छोटा जानवर जो पेड़ के झोंड़े

में रहता है और जिसका शब्द बहुत कठोर होता है। ३. एक प्रकार का गिरगिट।

गोधी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोधूम] एक प्रकार का गेहूँ।

विशेष—यह दक्षिण भारत में अधिकता से होता है और इसकी भूसी जल्दी नहीं छूटती। इसमें विशेषता यह है कि यह खरीफ की फसल है और कहीं कहीं यह साल में दो बार भी बोया जाता है। यह बहुत ही साधारण भूमि में भी, जहाँ और गेहूँ नहीं हो सकता, उत्पन्न होता है। ऊपरी छिनका बहुत कड़ा होने के कारण इसकी फसल को पक्षी भी हानि नहीं पहुँचा सकते।

गोधुम—संज्ञा पुं० [सं०] गोधूम। गेहूँ [स्त्री०]।

गोधूम—संज्ञा पुं० [सं०] १. गेहूँ। २. नारंगी।

गोधूमक—संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ या गेहूँ नाम का साँप।

गोधूमचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ का घाटा [स्त्री०]।

गोधूमसार—संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ का सत्त [स्त्री०]।

गोधूलक^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० गोधूलि] दे० 'गोधूलि'। उ०—चटुपान रत्त तोरन समय, लगन गोधूलक संभवो।—पृ० रा०, १४। २२

गोधूलक^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० गोधूलि] दे० 'गोधूलि'। उ०—चैत सुकल पक्ष तीज, लगन गोधूलक रज्जिय।—पृ० रा०, १६। १४।

गोधूलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह समय जब जंगल से चरकर लौटती हुई गायों के छुरों से धूलि उड़ने के कारण धूलती छा जाय। संव्या का समय।

विशेष—(क) ऋतु के अनुसार गोधूलि के समय में कुछ अंतर भी माना जाता है। हेमन्त और शिशिर ऋतु में सूर्य का तेज बहुत मंद हो जाने और सित्तिज में लालिमा फैल जाने पर, वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में जब सूर्य आधा अस्त हो जाय, और वर्षा तथा शरत् काल में सूर्य के बिलकुल अस्त हो जाने पर गोधूलि होती है। (ख) फलित ज्योतिष के अनुसार गोधूलि का समय सब कार्यों के लिये बहुत शुभ होता है और उसपर नक्षत्र, तिथि, करण, लगन, वार, योग और जामिना आदि के दोष का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसके प्रतिरिक्त इस संबंध में अनेक विद्वानों के और भी कई मत हैं।

गोधूलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गोधूलि'।

गोधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] सवत्सा दुधारू गाय [स्त्री०]।

गोधेर—संज्ञा पुं० [सं०] १. रसक। २. अभिभावक [स्त्री०]।

गोध्र—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़। पर्वत।

गोनन्द—संज्ञा पुं० [सं० गोनन्द] १. कार्तिकेय के एक गण का नाम। २. अनेक पुराणों के अनुसार एक देश।

गोनन्दा—संज्ञा स्त्री० [सं० गोनन्दा] पावन्ती। दुर्गा [स्त्री०]।

गोनन्दी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोनन्दी] सारस की मादा। सारसी [स्त्री०]।

गोन^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गोणी] १. टाट, कंबल या चमड़े आदि की बनी हुई वह छुरजी जिसमें दो ओर अनाज आदि भरने का स्थान होता है और जो भरकर बैलों की पीठ पर रखी जाती

है। लदने पर इसका एक भाग बैल के एक तरफ और दूसरा दूसरी तरफ रहता है। उ०—भरी गोन गुड़ तजे तहाँ से सौंके भागै।—पन्न०, भा० १, पृ० १०७। २. साधारण बोरा। सास बोरा। ३. टाट का कोई धेना।—(लघ०)। ४. अनाज की तोल जो १६ मानो (२५६ सेर) की होती है।

गोन^२—संज्ञा स्त्री० [सं० गुण] मूँज आदि की बनी हुई वह रस्सी जिसे नाव खींचने के लिये मस्तूल में बाँधते हैं।

गोन^३—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की घास।

विशेष—यह घुसी की तरह की होती है और इसका साग बनता है।

गोन^(५)—संज्ञा पुं० [सं० गमन, प्रा० गमण,] दे० 'गमन'। उ०—करी सेन गोन मिलानं दवानं। बड़ी बेय बास सरिता कि जानं।—पृ० रा०, १२। १८०।

गोनरखा—संज्ञा पुं० [हि० गोन = रस्सी + रखना] नाव का वह मस्तूल जिसमें गोन बाँधकर उसे खींचते हैं।

गोनरा—संज्ञा पुं० [व० गुन्ना] उत्तरी भारत में होनेवाली एक प्रकार की लंबी घास। वि० दे० 'गोंदरा'।

विशेष—यह पशुओं के चारे के काम में आती है। इससे चट्टाई भी बनती है जो बहुत मुलायम और गरम होती है।

गोनर्द—संज्ञा पुं० [सं०] १. नागरमोया। २. सारस पक्षी। ३. एक प्राचीन देश जहाँ महर्षि पतंजलि का जन्म हुआ था। ४. महादेव।

गोनर्दीय—संज्ञा पुं० [सं०] महाभाष्यकार पतंजलि [स्त्री०]।

गोनस—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का साँप। २. वैकांत मणि।

गोनसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय का मुँह [स्त्री०]।

गोना^(५)—क्रि० सं० [सं० गोपन] छिपाना। छुपाना। गोपनीय करना। उ०—(क) मुकुलित कवच मन धनिक मोट हूँ संसुवन और निचोवति। सूरदास प्रभु तजी गर्व से भग प्रेम गति गोवति।—सूर (शब्द०)। (ख) ऐसिउ पीर बिहंसि तेई गोई। चोर नारि जिमि प्रगत न रोई।—तुलसी (शब्द०)।

गोना^(५)—संज्ञा पुं० [हि० गोना] हिरागमन। गोना।

गोनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैत। साँड़। २. भूमिपति। ३. पशुपालक। गोपालक [स्त्री०]।

गोनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] ग्वाला [स्त्री०]।

गोनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] घुड़। भेड़िया [स्त्री०]।

गोनास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गोनम' [स्त्री०]।

गोनासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोनासा। गाय या बैल का मुँह [स्त्री०]।

गोनिचा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० कोण, हि० कोना + द्या (प्रत्य०)] बड़ई, लोहार और राज आदि का एक औजार जिससे वे किसी दीवार या कोने की सिखाई जाँचते हैं। साधन।

विशेष—यह समकोण होता है और बिलकुल लकड़ी या लोहे का अथवा आधा लकड़ी का और आधा लोहे का बनता है।

गोनिचा^२—संज्ञा पुं० [हि० गोन = बोरा + द्या (प्रत्य०)] स्वयं अपनी पीठ पर या बैलों की पीठ पर लादकर बोरे होनेवाला।

गोनिया^३—संज्ञा पुं० [हि० गोन = रस्ती-इया (प्रत्य०)] रस्ती बाँधकर नाव खींचनेवाला ।

गोनिष्ठ—वि० [सं०] इन्द्रियान्तक । उ०—सहज समाधि ग्रहिण मन घासन गोनिष्ठन के दहत उपाद ।—राम०, धर्म०, पृ० ३४२ ।

गोनिष्यन्—संज्ञा पुं० [सं० गोनिष्यन्] गोपूत्र [को०] ।

गोनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गोनी] १. टाट का पैला । बोरा । २. पट्टा । सन । पाट ।

गोनो^२—संज्ञा स्त्री० [दे०] पकाए हुए कथे का वह गोला जो राख की राहायता से उगका जल सुखा लेने के बाद बनाया जाता है ।—(संबोली) ।

गोनी^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] एक प्रकार का साग जो चैती की फसल के साथ होता है ।

विशेष—इसमें चार से बारह तक गोके पूती से निकलते हैं जो भीतर से पोल होते हैं ।

गोप^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. गो की रक्षा करनेवाला । २. ग्वाला । अमीर । धनी । ३. गोशाला या गोष्ठ का अध्यक्ष या प्रबंध करनेवाला । ४. भयति । राजा । ५. रक्षा या उपकार करनेवाला । ६. एक गंधर्व का नाम । ७. मुर या बोल नाम की ओषधि । ८. गोवि का मुलिया या पटवारी जो गोवि के हिस्सों और लोगों के स्वत्व आदि का लेखा रक्खा था ।

गोप^२—संज्ञा पुं० [सं० गोष्प] गिकरी या जंजीर के आकार का गले में पहनने का एक प्रकार का आभूषण, जो पतले तारों को गूँथकर कुलावदार बनाया जाता है ।

गोप^३—संज्ञा पुं० [सं० गोप] छिपा हुआ । गुप्त । उ०—(क) छा छाया जग बुंद अलौपू । ओटई सो धानि रहा करि गोपू ।—जायसी (शब्द०) ।

गोपक—संज्ञा पुं० [सं०] [सं० गोपिका] १. गोप । २. अनेक गावों का स्वामी या आगश । ३. रक्षा करनेवाला । रक्षक । ४. छिपानेवाला [को०] ।

गोपकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोपवाला । गोपी । ग्वालिन [को०] ।

गोपचाप—संज्ञा पुं० [सं०] इन्द्रधनुष [को०] ।

गोपज—संज्ञा पुं० [सं०] गोप से उत्पन्न । गोप जाति का पुरुष । उ०—देते जित सकन ब्रज की गोपिका गोपजों के, जी मे होता उदय यह था क्यों नहीं प्रियम आए ।—प्रिय०, पृ० ५० ।

गोपजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोपी । २. राधिका [को०] ।

गोपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । २. विष्णु । ३. श्रीकृष्ण । ४. गूर्य । ५. राजा । पृथ्वीपति । ६. वृष । मोड़ । बैल । ७. ऋषभ नाम की ओषधि । ८. नौ उपनदों में से एक । ९. ग्वाल । गोपाल । आभीर । १०. वाचाल । मुनर ।

गोपथ—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद का एक ब्राह्मण ।

गोपद—संज्ञा पुं० [सं० गोपद] १. गोपों के रहने का स्थान । २. पृथ्वी पर पड़ा हुआ गाय के लुर का चिह्न । उ०—(क) सादर गुमिन्न जे नर करही । भव वाग्नि गोपद हव तरही ।—दुलसी (शब्द०) । (ख) रघुबर की सीला ललित,

मैं बंदों सिर नाय । जे गावत गोपद सरिस जन भवनिधि लोचि जाय ।—रघुराज (शब्द०) ।

गोपदजल—संज्ञा पुं० [सं०] गाय की लुर के गड्ढे में घातेवाला जल । उ०—गोपद जल बूझहि घटजोनी ।—मानस, २।२११ ।

गोपदल—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का पेड़ ।

गोपदी—वि० [सं० गो + पद + ई (प्रत्य०)] अथवा सं० गोष्पदी] गाय के लुर के समान, अत्यंत छोटा । उ०—खैरत दुशासन बसन बाढयो बेप्रमाण कीन्हों निज दासी को समुद्र दुख गोपदी ।—रघुराज (शब्द०) ।

गोपन—संज्ञा पुं० [सं०] १. छिपाव । दुराव । २. छिपाना । लुकाना । ३. रक्षा । ४. व्याकुलता । ५. दीप्ति । ६. तेजपरा नाम का मसाला । ७. निवा । अर्चना [को०] । ८. खतरा । आतंक [को०] । ९. दृढ़बहाहट । जल्दी [को०] । १०. ईर्ष्या [को०] । ११. घबड़ाहट । परेशानी [को०] ।

गोपना^१—क्रि० सं० [सं० गोपन] छिपाना । लुकाना ।

संयो० कि०—बेना ।—रक्का ।

गोपनीय—वि० [सं०] १. छिपाने योग्य । छिपाने लायक । गोप्य । २. रक्षणीय । रक्षा के योग्य ।

गोपभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] कुई की जड़ या भसींड [को०] ।

गोपयिता—वि० [सं० गोपयितृ] १. गोपनकर्ता । २. रक्षक [को०] ।

गोपराइ^१—वि० [सं० गोपराज] गोपेल । गोपों का स्वामी । उ०—राजत गोपराइ तहें नंद । नंद ग्रं०, पृ० २२४ ।

गोपराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] ग्वालियर प्रांत का प्राचीन नाम ।

गोपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्थानविशेष ।

विशेष—कहते हैं, यहाँ पाणिनि ने तपस्या की थी और शिव को प्रसन्न कर उनसे वर प्राप्त किया था ।

गोपशु—संज्ञा पुं० [सं०] गोमेध की गाय [को०] ।

गोपसुत—संज्ञा पुं० [सं०] गोपपुत्र । श्रीकृष्ण । उ०—गोपीनाथ गोविंद गोपसुत गुनी गीतप्रिय शिखरधर रसाल के ।—धनानंद, पृ० ३६५ ।

गोपांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० गोपाङ्गना] १. गोप जाति की स्त्री । २. अर्नतमूल नाम की ओषधि ।

गोपा^१—वि० [सं०] १. लुप्त करनेवाला । छिपानेवाला । २. नाशक ।

गोपा^२—संज्ञा स्त्री० १. गाय पालनेवाली, अहीरिन । ग्वालिन । २. श्यामा नाम की लता । ३. महात्मा बुद्ध की स्त्री का नाम । इसका दूसरा नाम यशोधरा भी है ।

गोपाबल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्वालियर का प्राचीन नाम । उ०—गोपाबल ऐसे गढ़, राजा रामसिंह लू से ।—केशव ग्रं०, पृ० १३२ । २. ग्वालियर के निकट का एक पहाड़ ।

गोपानसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] टेढ़ी शहतीर जो छप्पर को टेकने के काम आती है । बखची [को०] ।

गोपायक—वि० [सं०] रक्षक । रक्खावाला [को०] ।

गोपायन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोपन । रक्षण [को०] ।

गोपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. गो का पालन पोषण करनेवाला । २. अहीर । ग्वाला ।

विशेष—पराशर के मत से 'गोपाल' एक संकर जाति है जिसकी उत्पत्ति अत्रिय पिता और ब्रूहा माता से है। ब्राह्मणों के लिये इसका धन भोज्य कहा गया है।

३. श्रीकृष्ण। ४. राजा। ५. इंद्रियों का पालनेवाला, मन। एक छंद जिसका प्रत्येक चरण १५ मात्राओं का होता है और ८ और ७ पर घटि होती है। जैसे,— दया बेलि की ललित निकुंज। गुंजत सुख पक्षिण के पुंज। गुरु की हानि मिठाई माह। पापरचित भोजन की चाह। इसको 'गुंजगिनी' भी कहते हैं।

गोपालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्वाला। गोपाल। गहीर।

गोपालकक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार पश्चिमभारत का एक प्राचीन प्रदेश।

गोपालकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पीसा [को०]।

गोपालतापन—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् जिसकी टीका शंकराचार्य तथा कई विद्वानों ने की है।

गोपालतापनोय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गोपालतापन'।

गोपालवारक—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के एक आचार्य का नाम।

गोपालमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० गोपालमन्दिर] वल्लभ संप्रदाय के अनुयायियों का एक मंदिर।

गोपालि—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रवर। २. शंकर।

गोपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ग्वालिन। गहीरिन। २. सारिवा नाम की ओषधि। ग्वालिन नाम का कीड़ा। गिजाई। चिनोरी।

गोपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गो पालनेवाली। २. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

गोपाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक शुक्ल अष्टमी।

विशेष—इसी दिन श्रीकृष्ण ने गोचारण आरंभ किया था। इस दिन गोपूजन, गोघ्रास, गोप्रदक्षिणा, गोघों के पीछे चलना इत्यादि कर्म करने का काफी साहाय्य कहा गया है। इस दिन गायों को खिलाने और सजाने की भी रीति है।

गोपि—वि० [सं० गोप्य] गुप्त। गायब। उ०—(क) गई गोपि हूँ भक्ति आगिली काढ़े प्रगट पुरातम सास।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० १५३। (ख) दे० गोप्य। उ०—गोपि कहूँसो भगोपि कहा।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ६१७।

गोपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोप की स्त्री। गोपी। २. गहीरिन। ३. छिपानेवाली।

गोपित—वि० [सं०] छिपा हुआ। गुप्त। २. रक्षित।

गोपिनी—वि० स्त्री० [सं०] छिपानेवाली। उ०—गोपिनि भक्ति विलोपिनि ज्ञान की तैस विराग वै कोपिनि माई।—रघुराज (शब्द०)।

गोपिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्यामलता। २. तान्त्रिकों की एक नायिका।

गोपिया—संज्ञा स्त्री० [हि० गोपि] गोपना। डेलवाँस।

गोपित—वि० [सं०] १. छिपानेवाला। २. रक्षा करनेवाला [को०]।

गोपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ग्वालिनी। गोपपत्नी। २. वन की

गोपवातीय वे स्त्रियाँ या कन्याएँ जो श्रीकृष्ण के साथ प्रेम रखती थीं, और जिन्होंने उनके साथ बालक्रीड़ा तथा अन्य लीलाएँ की थीं। ३. सारिवा नाम की लता। ४. छिपानेवाली स्त्री।

गोपी कामोदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो कामोद और केदारी के योग से बनती है।

गोपीगीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध में गोपियों द्वारा की गई कृष्ण जी की स्तुति [को०]।

गोपीचंद—संज्ञा पुं० [सं० गोपी+हि० चंद] रंगपुर (बंगाल) के एक प्राचीन राजा जो भट्टहरि की बहुत मैनावती के पुत्र कहे जाते हैं।

विशेष—इन्होंने अपनी माता से उपदेश पाकर अपना राज्य छोड़ा और वैराग्य लिया था। कहा जाता है कि ये जलंधरनाथ के शिष्य हुए थे और त्यागी होने पर इन्होंने अपनी पत्नी पाटमदेवी से, महल में जाकर भिक्षा माँगी थी। इनके जीवन की घटनाओं के गीत बनाकर भाजकल के जोगी सारंगी पर गाया करते हैं।

गोपीचंदन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की पीली मिट्टी जिसका वैष्णव लोग तिलक लगाते हैं और जो द्वारिका के एक सरोवर से निकलती है।

विशेष—(क) कहते हैं, श्रीकृष्ण के स्वर्गवामी होने पर उनके विरह में अनेक गोपियों ने इसी सरोवर के किनारे अपने प्राण तजे थे, इसीलिये उसकी मिट्टी का बहुत साहाय्य कहा है। (ख) भाजकल बाजारों में गोपीचंदन के नाम से एक प्रकार की बनाई हुई पीली मिट्टी मिलती है जिसका व्यवहार प्रायः वैरागी करते हैं।

गोपीजन—संज्ञा पुं० [सं०] गोपियों का समूह। गोपियाँ [को०]।

गोपीजनवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण [को०]।

गोपीजननाथ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण [को०]।

गोपीत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खंजन पक्षी जिसका देखना अशुभ समझा जाता है।

गोपीता—संज्ञा स्त्री० [सं० गोपी] गोपकन्या। गोपी। (वच०)। उ०—उन्हें भौंहनि सरि केउ न जीता। अछरी छपी छपी गोपीता।—जायसी (शब्द०)।

गोपीथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह सरोवर जिसमें गोएँ जल पीती हों। २. एक प्राचीन तीर्थ। ३. रक्षण। रक्षा। ४. राजा।

गोपीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] गोपियों के स्वामी श्रीकृष्ण। उ०—इहि न होई गिरि को घरिबो हो सुनहु कुँवर गोपीनाथ। आपुन को तुम बड़े कहावत कापन लागे है दोउ हाथ।—सूर (शब्द०)।

गोपीयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० गोपी+यंत्र] सारंगी।—नाथ सिद्धों० पृ० २२।

गोपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १. गो की पूँछ। गो की दुम। २. एक प्रकार के बंदर जिनकी दुम गाय की दुम की तरह होती है। ३. एक प्रकार का गावदुमा हार। ४. एक प्रकार का बाजा जिसका व्यवहार प्राचीन काल में होता था।

गोपुटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी हलायची।

गोपुत्र - संज्ञा पुं० [सं०] मूर्ध के पुत्र, कर्ण ।

गोपुर - संज्ञा पुं० [सं०] १. नगर का द्वार । शहर का फाटक । उ० - ऐसे कहत गए घरने पुर सबहि बिलसण देख्यो । मणिपय महन फटिक गोपुर लखि कनक भूमि घररेख्यो । - मूर (शब्द०) । २. किले का फाटक । ३. फाटक । दरवाजा । ४. स्वर्ग । गोलोक । ५. सुश्रुत के अनुसार वैद्यक शास्त्र के प्रयोग एक प्राचीन ऋषि ।

गोपुरीष - संज्ञा पुं० [सं०] गोमय । गोबर [को०] ।

गोपेन्द्र - संज्ञा पुं० [सं० गोपेन्द्र] १. श्रीकृष्ण । २. गोपों में श्रेष्ठ, नंद ।

गोप्ता - वि० [सं० गोप्य] रक्षा करनेवाला । रक्षक ।

गोप्ता - संज्ञा पुं० विष्णु ।

गोप्ता - संज्ञा स्त्री० गंगा ।

गोप्य - वि० [सं०] १. रक्षणीय । २. गोपनीय [को०] ।

गोप्य - संज्ञा पुं० [सं०] १. नौकर । सेवक । २. दासीपुत्र [को०] ।

गोप्यक - संज्ञा पुं० [सं०] दास । नौकर [को०] ।

गोप्याधि - संज्ञा स्त्री० [सं०] वह धन जो घर में छिपाकर रखने के लिये गिरवी रखा जाय ।

गोप्रचार - संज्ञा पुं० [सं०] वरागाह [को०] ।

गोप्रवेश - संज्ञा पुं० [सं०] गोधों के चरकर लौट आने का समय । गोती । संगी ।

गोफ - संज्ञा पुं० [सं०] १. दाग । सेवक । २. दासीपुत्र । ३. गोपियों का गुप्त । ४. गेहन या गिरवी का वह प्रकार जिसमें रेहन रखी हुई चीज के प्रापक पर उसके स्वामी का ही प्राधिकार रहे और जिसके काम चीज रेहन रखी जाय, वह केवल मूल लेने का अधिकारी हो । दूग्धपक ।

गोफ - वि० १. गुप्त रखने योग्य । छिपाने लायक । २. रक्षा करने के योग्य । ३. छिपाया हुआ । गुप्त ।

गोफण - संज्ञा पुं० [हि० गोफ] दे० 'गोफन' ।

गोफण - संज्ञा स्त्री० [सं०] गुप्त के अनुसार फोड़े और जलम आदि बाधने का एक प्रकार का बंधन जिसका अहार टाँड़ी, नाक, घोट और कंधे आदि को बाधने के लिये होता है ।

गोफन - संज्ञा पुं० [सं० गोफण] श्वेत के घासघास पक्षियों को उड़ाने या मारने के लिये रस्सी के एक सिरे पर बुना हुआ छीके के आकार का एक जाल । डेलवम । फन्नी ।

विशेष - हमारे डेले, पत्थर, कंकड़ आदि भरकर रस्सी की सहायता से गिर के ऊपर चारों ओर घुमाते हैं और जिसमें से बड़े बेग से निकले हुए पत्थर, कंकड़ आदि की बहुत तेज चोट लगती है । पहले कभी कभी छोटी मोटी लड़ाइयों में भी शत्रुओं पर मिट्टी आदि में गोले नालने के लिये इसका व्यवहार होता था ।

गोफना - संज्ञा पुं० [सं० गोफण] दे० 'गोफन' ।

गोफा - संज्ञा पुं० [सं० गुम्फ] १. नया निकला हुआ मुँहबंघा पत्ता । जैसे, - किले, अर्द्ध, सूत्र आदि का गोफा । २. एक हाथ की उँगलियों को दूसरे हाथ की उँगलियों के अंतर में से जाकर गठना ।

क्रि० प्र० - जोड़ना ।

गोफा - संज्ञा स्त्री० [हि० गुफा] दे० 'गुफा' ।

गोबा - संज्ञा स्त्री० [हि० गोभ] घंसान । चुभान । छेदन । घेषन ।

गोबद्ध - संज्ञा पुं० [सं० गोबद्ध] गाय का बच्चा । बछड़ा ।

यौ० - गोबद्धपद = बछड़े के पैर रखने से बना हुआ गढ़ा ।

उ० - तिन की भवसागर भयो ऐसी । गोबद्धपद की पानी जैसी । - नंद० प्र०, पृ० २२६ ।

गोबना - क्रि० प्र० [हि० गोब] घंसाना । चुभाना । छेदना । गड़ाना । खोंसना ।

गोबर - संज्ञा पुं० [सं० गोमज] गाय का विष्ठा । गौ का मल ।

मुहा० - गोबर करना = (१) गौ बेल आदि का विष्ठा त्याग करना । (२) गौ बेल आदि के नीचे का गोबर हटाना । (३) गोबर आदि से कंठे पायना या इसी प्रकार का और कोई गंदा काम करना । गोबर खाना = प्रायश्चित्त करना । गोबर की चोंच होना = (१) भद्दा और बेडोल होना । (२) जड़ और मूर्ख होना । गोबर पायना = (१) हाथ से गोबर के कंठे बनाना अथवा इसी प्रकार का और कोई गंदा काम करना । (२) काम को बिगाड़ना । गोबर बीमना = ईदन के लिये मूला हुआ गोबर इकट्ठा करना ।

गोबरकढ़ा - वि० [गोबर + कढ़ा] [वि० स्त्री० गोबरकड़िन] १. चौपायों का गोबर इकट्ठा करके उसे नियत स्थान पर पहुँचानेवाला सेवक । २. गोबर साफ करके उपसे पापनेवाला ।

गोबरकढ़ाई, गोबरकढ़ी - संज्ञा स्त्री० [हि० गोबर + कढ़ाई] १. गोबर काढ़ने या साफ करने का काम । २. गोबर काढ़ने की मजदूरी ।

गोबरगणेश - वि० [हि० गोबर + गणेश] १. जो देखने में भला न मान्य हो । भद्दा । बदगूरत । २. मूर्ख । बेवकूफ । जो कुछ न कर सके ।

गोबरगणेश - वि० [हि० गोबर + सं० गणेश] दे० 'गोबरगणेश' ।

गोबरधन - संज्ञा पुं० [सं० गोबरधन] दे० 'गोबरधन' । उ० - बहुज्यो फिर गोबरधन सरी । - नंद० प्र० पृ० १६८ ।

यौ० - गोबरधनधारी = श्रीकृष्ण जी ।

गोबरहारा - संज्ञा पुं० [हि० गोबर + हारा (प्रत्य०)] गोबर उठाने या पापनेवाला नौकर ।

गोबराना - क्रि० प्र० [हि० गोबर + घाना (प्रत्य०)] गोबरी करना । गोमय से लीपना । २. कोई काम बिगाड़ना या नष्ट करना ।

गोबरिया - संज्ञा पुं० [हि० गोबर] बछनाग की जाति का एक पौधा ।

विशेष - यह हिमालय पर गढ़वाल से लेकर नेपाल तक होता है । इसकी जड़ विष है ।

गोबरी - संज्ञा स्त्री० [हि० गोबर + ई (प्रत्य०)] १. कुंडा । उपला । गोहरा । गोहरी । २. गोबर का लेपन । गोबर की सिपाई ।

क्रि० प्र० - करना । - करना ।

मुहा० - गोबरी करना - धन की राशि के चारों ओर गोबर का चिह्न डालना ।

गोबरी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] जहाज के पेंडे का छेद । —(लश०) ।

मुद्गा—गोबरी निकालना = जहाज के पेंडे में छेद करना ।

गोबरौला—संज्ञा पुं० [हि० गोबर + ऐला या ओला (प्रत्य०)] एक प्रकार का छोटा कीड़ा ।

विशेष—यह गोबर या इसी प्रकार की किसी दूसरी गंदी चीज में उत्पन्न होता और रहता है ।

गोबरीरा—संज्ञा पुं० [हि० गोबर + रा (प्रत्य०)] दे० 'गोबरैरा' ।

गोबरौला—संज्ञा पुं० [हि० गोबर + ओला (प्रत्य०)] दे० 'गोबरीरा' ।

गोबिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा बंस ।

विशेष—यह आसाम की पहाड़ियों में अधिकता से होता है । यह देखने में सुंदर होता है और इसकी छाया सघन होती है । इसकी पत्तियाँ पशुओं के चारे के काम आती हैं और लकड़ी से जंगली लोग तीर, कमान और टोकरे बनाते हैं । प्रकाल के समय गरीब लोग इसके बीजों का भात भी बनाकर खाते हैं ।

गोभी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोभी] दे० 'गोभी' ।

गोभ—संज्ञा पुं० [सं० गुम्भ या हि० गोफा] पोषों का एक रोग ।

विशेष—इसमें पोषों की जड़ों में नए कल्ले निकल आते हैं जिससे पोषे दुर्बल हो जाते हैं । कोई कोई इसे गोभी भी कहते हैं ।

गोभ—संज्ञा स्त्री० [हि० घोंघ या अनु०] किसी तेज नुकीले शस्त्र द्वारा चुमाव । धंसन ।

गोभना—क्रि० सं० [हि० गोभ] धंसाना । चुमाना । गड़ाना । छेदना ।

गोभा—संज्ञा पुं० [हि० गाभा] अंकुर । घास । उ०—पशु गुभाउ तै लुबधे लोभा । चलि गए चरत चरत बन गोभा ।—नंद० प्र०, पृ० २८७ ।

गोभिल—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेदीय गृह्यसूत्र के रचयिता एक प्रसिद्ध ऋषि ।

गोभी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोभिन्ना (= बनगोभी) या गुम्भ (= गुच्छा)] एक प्रकार की घास, जिसके पत्त लंबे, खरखरे, कटावदार और फूलगोभी के पत्तों के रंग के होते हैं । गोजिया । बगगोभी ।

विशेष—इसमें पीले रंग के चक्राकार फूल लगते हैं और पत्तों के बीच में एक बाल निकलती है । इसे पशु बड़े चाव से खाते हैं । वैद्यक में यह शीतल, कड़ई, हल्की, वातकारक और कफ, पित्त, खाँसी, रुधिरविकार, अरुचि, फोड़ा, ज्वर और सब प्रकार के विष का दोष दूर करनेवाली मानी गई है ।

गोभी^२—संज्ञा स्त्री० [प्र० कैबेज] एक प्रकार का शाक ।

विशेष—इसकी खेती इधर कुछ दिनों से भारत में अधिकता से होने लगी है । वनस्पति शास्त्र के ज्ञाता इसके क्षुप को राई या सरसों की जाति का मानते हैं । यह तीन प्रकार की होती है—फूल गोभी, गाँठगोभी (दे० 'गाँठगोभी') और पातगोभी या करमकला (दे० 'करमकला') । फूलगोभी को साधारणतः

गोभी ही कहते हैं । इसका डंठल, जो जमीन में गड़ा होता है, साधारण गन्ने के बराबर मोटा होता है और एक बालिष्ठ या इससे कुछ अधिक लंबा होता है । इसके ऊपर चारो ओर चौड़े मोटे और बड़े पत्ते होते हैं जिनके बीच में बहुत छोटे छोटे मुँहबंदे फूलों का गुथा हुमा समूह रहता है । खिले हुए फूलोंवाली गोभी खराब समझी जाती है । यह कार्तिक के अंत तक तैयार हो जाती है और जाड़े भर रहती है । इसके फूल की तरकारी बनती है और मुलायम पत्तों का साग बनाया जाता है । यह सुखाकर भी रखी जाती है और दूसरी ऋतुओं में काम आती है ।

३. पोषों का गोम नामक एक रोग ।

गोभुक्—संज्ञा पुं० [सं०] राजा [को०] ।

गोभुज—संज्ञा पुं० [सं० गोभुज] राजा ।

गोभृत—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत । पहाड़ ।

गोमंडल—संज्ञा पुं० [सं० गोमण्डल] १. पृथ्वीमंडल । २. गायों का समूह [को०] ।

गोमंडोर—संज्ञा पुं० [सं० गोमण्डोर] एक जलपक्षी [को०] ।

गोमंत—संज्ञा पुं० [सं० गोमन्त] १. सत्यादि के अंतर्गत एक पहाड़ी जहाँ गोमती देवी का स्थान है । यह सिद्धपीठ माना जाता है । २. कुत्ते पालने या बेचनेवाला ।

गोम—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. घोड़ों की एक भँवरी जो नाभि से ऊपर छाती की ओर रहती है । इसे लोग बहुत खराब समझते हैं । २. पृथ्वी । धरती ।—(डि०) ।

गोमकंट—संज्ञा सं० [?] गोमुख । एक वाद्यविशेष । उ०—घननंक सघन घंट । किलकंत गोमकंट ।—पृ० रा० ६१ । १८४१ ।

गोमत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] डाँस । कुकुरीछी [को०] ।

गोमगो—वि० [फ्रा०] १. गोपनीय । न कहने लायक । २. जो स्पष्ट न हो । अस्पष्ट [को०] ।

गोमठ—संज्ञा पुं० [सं० गो + मठ] गोशाला । उ०—गोरि गोमठ पुरिल मही, पएरहु बेवा एक ठाम नही ।—कीर्ति०, पृ० ४४ ।

गोमतीश्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बढ़िया गाय । श्रेष्ठ गाय [को०] ।

गोमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक नदी जो शाहजहाँपुर की एक भोल से निकलकर रोदपुर के पास गंगा में मिलती है । बाशिष्ठी । २. टिपरा (बंगाल) की एक छोटी नदी । ३. एक देवी जिनका प्रधान स्थान गोमंत पर्वत पर है । ४. एक वैदिक मंत्र । ५. ग्यारह मात्राओं का एक छंद । जैसे,—पुनबंधु पुत्र जे । राम व्याह कै तिते । फेरि घाम आइए । चित्त मोद दाइए ।

गोमतीशला—संज्ञा स्त्री [सं०] हिमालय की वह चट्टान जिसपर पट्टेचकर अर्जुन का शरीर गल गया था ।

गोमत्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की मछली ।

गोमथ—संज्ञा पुं० [सं०] गोपालक । ग्वाला [को०] ।

गोमय—संज्ञा पुं० [सं०] गो का गू । गोबर । उ०—गो गोमय चोको विचित्र चित्रे अति चावक ।—पृ० रा०, ६३।७० ।

गोमर—संज्ञा पुं० [हि० गो+मर (प्रत्य०)] गो मारनेवाला। वृक्ष। कसाई। गोहंसक। उ०—हा वल गिधु लखन मुखदाई। परी तात गोमर कर गाई।—विश्राम (शब्द०)।

गोमल—संज्ञा पुं० [सं०] गोबर।

गोमा—संज्ञा स्त्री० [देश०] गोमती नदी।

गोमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० गोमातृ] १. मातृतुल्य गोजाति। २. गोवंश की प्रादिमाता। ३. कश्यप की पत्नी जिमका नाम गुर्गभ या [को०]।

गोमाय—संज्ञा पुं० [सं० गोमायु] ३० 'गोमायु'। उ०—उचित होय सो करिय करत लाजहि नहि मरिये। बारन वृंद विदारन बलि गोमायन डरिये।—नंद० ग्रं०, पृ० २०६।

गोमायु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सियार। बीवड़। शृगाल। उ०—(क) बस्यो भाजि गोमायु जंतु ज्यों लै कहिरि की भाग। इतने रामचंद्र तहँ आए परम पुरुष बड़ा भाग।—सूर (शब्द०)। २. एक गंधर्व का नाम। ३. एक प्रकार का मेढक (को०)। ४. गाय की साल (को०)।

गोमी—संज्ञा पुं० [सं० गोमित्र] १. शृगाल। सियार। गीदड़। २. पुरबी।—(हि०)।

गोमीन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली (को०)।

गोमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. गो का मुँह।

मुहा०—गोमुख नाहर, गोमुख ब्याघ्र = वह मनुष्य जो देखने में बहुत ही सीधा पर वास्तव में बड़ा क्रूर और भयावारी हो। उ०—देखिहुं हनुमान गोमुख नाहरनि के न्याय।—तुलसी (शब्द०)।

२. बजाने का एक ढंल जिसका आकार गो के मुँह के समान होता है। उ०—गोमुख, किन्नरि, क्रीक, बीच विच मधुर उपगा।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८६। ३. नरसिंहा नाम का बाजा। उ०—एक पटह एक गोमुख एक आश्रम एक भालगी। एक अमृत कुंडली रबाब भाति सौ दुःखे।—सूर (शब्द०)।

४. गो के मुख के आकार की वह धैवी जिसमें माला रखकर जप करते हैं। गोमुखी। ५. नाक नामक जलजंतु। ६. योग का एक आसन। ७. एक प्रकार की मेष जो गो के मुँह के आकार की होती है। ८. टेढ़ा मेढा घर। ९. ऐन। १०. एक यज्ञ का नाम। ११. इन्द्र के पुत्र जयंत के शारथी का नाम।

गोमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊन आदि की बनी हुई एक प्रकार की धैवी जिसमें हाथ रखकर जप करते समय माला फेरते हैं। इसका आकार गाय के मुँह का सा होता है। इसे जपमाला या जलगुपनी भी कहते हैं।

विशेष—जप करते समय माला को सबको दृष्टि की ओट में रखने का विधान है; इसी लिये गोमुखी का व्यवहार होता है।

२. गो के मुँह के आकार का गोमती की का बड़ स्थान जहाँ से गंगा निकलती है। ३. राढ़ देश की एक नदी जिसे आजकल गोमुड़ कहते हैं। ४. पीडों की एक भयंरी जो उनके ऊपरी होठों पर होती है और जो अच्छी सम्झी जाती है।

गोमुद्गी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसपर बमड़ा मड़ा रहता था।

गोमूढ़—वि० [सं० गोमूढ] बैल के समान मूख [को०]।

गोमूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] गाय का मूत्र [को०]।

गोमूत्रक—संज्ञा संज्ञा [सं०] १. वैदूर्य मणि का एक मेद। २. गदायुद्ध का एक दौव [को०]।

गोमूत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसके अक्षरों को पढ़ने में उस क्रम से चलते हैं, जिस क्रम से बैलों के मूतने से बनी हुई रेखा जमीन पर गई रहती है।

विशेष—इस चित्रकाव्य के पढ़ने का क्रम यह है कि पहली पंक्ति का एक अक्षर पढ़कर फिर दूसरी पंक्ति का दूसरा, फिर पहली का तीसरा, फिर दूसरी का चौथा, फिर पहली का पाँचवाँ और दूसरी का छठा और फिर आगे इसी क्रम से पढ़ते चलते हैं। ऐसी कविता के पद बनाने में यह आवश्यक होता है कि उसके पहले और दूसरे (और आवश्यकता पड़ने पर तीसरे, चौथे और पाँचवें, छठे आदि) चरणों के दूसरे, चौथे, छठे, आठवें, दसवें, बारहवें, चौदहवें और सोलहवें (और यदि चरण अधिक लंबा हो तो समसंख्या पर पड़नेवाले सभी) अक्षर एक हों। इसे बरधामूतन भी कहते हैं।

२. एक प्रकार की घास जिसके बीज सुगंधित होते हैं और जो शीघ्र के काम में आती है। वैद्यक में इसे मधुर, वीर्यवर्धक और गोश्रो का दूध बढ़ानेवाली कहा है।

पर्या०—रक्ततृणा। क्षेत्रजा। कृष्णभूमिजा।

३. कीटव्य कथित संपंसारी नामक वृक्ष। ४. पीतमणि जिसका रंग लाली लिए पीला होता है (को०)। ५. शीतल चीनी (को०)।

गोमृग—संज्ञा पुं० [सं०] गवय। नीलगाय [को०]।

गोमेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोमेदक मणि। २. शीतल चीनी। कबाब चीनी।

गोमेदक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रतिष्ठ मणि जिसकी गणना नी रत्नों में होती है। उ०—हीरे के थे कुसुम फल थे लाल गोमेदको के।—प्रिय०, पृ० १३२।

विशेष—इसका रंग सुर्खी लिए हुए पीला होता है और यह हिमालय पर्वत तथा सिंधु नदी में पाई जाती है। जो दोष होरे में होते हैं वे ही इसमें भी होते हैं। सुश्रुत के मत से इस मणि से गदा जल बहुत साफ हो जाता है। यह राहु ग्रह की मणि मानी जाती है, इसीलिये इसे राहुग्रह या राहुस्तल भी कहते हैं।

पर्या०—राहुमणि। तमोमणि। स्वभीनव। लिंगस्कटिक।

२. काकोन नामक विष जो काला होता है। ३. पत्रक नामक साग। ४. अगाराग लेपन (को०)।

गोमेध—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध के ढंग का एक यज्ञ।

विशेष—इसमें भी से हवन किया जाता था। इसका अनुष्ठान कलियुग में वर्जित है। मनु के अनुसार ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त के लिये और गोभिल गृह्यसूत्र के अनुसार पुष्टि-कामना से इस यज्ञ का अनुष्ठान होता है। इसे गोसव यज्ञ भी कहते हैं।

गोमेधक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गोमेधक' । उ०—भर गया साँभ को साजबंद का नम बिनाल, धन पुष्पराग, गोमेधक, माणिक-मणि प्रवाल ।—हंस०, पृ० ६२ ।

गोयँद—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठ या हि० गाँव + मेड़] गाँव के आस पास की भूमि । वि० दे० गोईँड़ ।

गोयँद—संज्ञा पुं० [सं० गोविन्द] दे० 'गोविंद' । उ०—मनहर को गोयँद पूरे मन, जोईं कीरतसिध जसाबत ।—रा० रू०, पृ० १४२ ।

गोय—संज्ञा पुं० [फ्रा० या हि० गोल] गेंद । उ०—चहुँ दिस प्राय अलोपत भानू । अब इहे गोय इहे मैदानू ।—जायसी (शब्द०) ।

गोयझ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गोमेध' [को०] ।

गोयठा—संज्ञा पुं० [हि० गोइँठा] दे० 'गोईँठा' । उ०—पीछे गोयठों के गंधमय प्रबार ।—इत्यलम्, पृ० १६७ ।

गोया—क्रि० वि० [फ्रा०] मानो । जैसे,—घ्राप तो ऐसी बातें करते हैं, गोया आप वहाँ थे ही नहीं ।

विशेष—फारसी में यह शब्द 'बोलनेवाले या 'कहनेवाले' के अर्थ में भी आता है; पर हिंदी में इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः ही कही होता है । उ०—तुम मेरे पास होते हो गोया, जब कोई दूसरा नहीं होता ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४६२ ।

गोयान—संज्ञा पुं० [सं०] बैजगाड़ी । बहली [को०] ।

गोरंकु—संज्ञा पुं० [सं० गोरङ्कु] १. एक जनपक्षी । २. कैदी । ३. वस्त्रविहीन व्यक्ति । दिगबर साधु । ४. मंत्रों का पाठ करने-वाला [को०] ।

गोरंगी—वि० स्त्री० [सं० गोरङ्गी] गोर वस्त्रवाली । गोरी । उ०—कुँभ बर्षा गोरंगिया, खजर जेहा नेत ।—ढोला०, पृ० ४५७ ।

गोर—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] वह गड़ढा जिसमें घृत गरीर गाड़ा जाय । कब्र । उ०—फूलन सेज बिछावतें फिर गोर मुकामा ।—पलदू०, भा० ३, पृ० ९७ ।

गोर—संज्ञा पुं० [अ० गोर] [वि० गोरी] फारस देश के एक प्रांत का नाम । उ०—बहुरि गंज गुजरात बहादुर इति काबिल उत गोर लोयाऊँ ।—अकबरी०, पृ० २७ ।

गोर—वि० [सं० गोर] १. गोरा । उज्ज्वल वर्ण का । सफेद । उ०—जहँ जैसो तहँ तैसो साहब लाल गोर कहुँ स्याम ।—भीखा० श०, पृ० २ ।

गोरकन—वि० [फ्रा० गोर + कन] १. कब्र खोदनेवाला । २. बिज्जू । एक प्राणी जो मुर्खें खोदकर खा जाता है ।

गोरकनी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] कब्र खोदने का कार्य

गोरका—संज्ञा पुं० [देश०] भरयल नाम का वृक्ष जो दक्षिणी भारत में होता है ।

गोरक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्वाला । २. गोरक्षण । ४. नारंगी । ५. शिव [को०] ।

गोरक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गायों की रक्षा करनेवाला । गोपालक । २. ग्वाला [को०] ।

गोरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] गाय का चराना, पालना और रक्षना [को०] ।

गोरक्षजम्बू—संज्ञा पुं० [सं० गोरक्षजम्बू] १. गोधूम । २. गोरक्षतटुला [को०] ।

गोरक्षतटुला—संज्ञा स्त्री० [सं० गोरक्षतटुला] एक प्रकार की लता [को०] ।

गोरक्षतुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोरक्षतुंबी] दे० 'कुंभतुंबी' [को०] ।

गोरक्षदुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की भाड़ी [को०] ।

गोरक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोरक्षण । २. गाय को मारने से बचाना ।

गौ—गोरक्षा प्रांदोलन = गोपालन करने और गोवध को बंद कराने का प्रांदोलन ।

गोरक्षी—वि० [सं० गोरक्षिन्] गायों की रक्षा करनेवाला । गोरक्षक [को०] ।

गोरख—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गोरखनाथ' ।

गोरखअमली—संज्ञा स्त्री० [हि० गोरख + अमली] एक प्रकार का बहुत बड़ा पेड़ जो मध्य तथा दक्षिण भारत में अधिकता से होता है ।

विशेष—इसका तना बहुत मोटा होता है और इसकी डालियाँ दूर दूर तक फैलती हैं । यह वृक्ष बहुत दिनों तक जीवित भी रहता है । इसकी लकड़ी कमजोर होती है और उसमें जल्दी कीड़े लग जाते हैं । इसकी छाल बहुत मुलायम होती है और उसके रेशे से चटाइयाँ, रस्से और कहीं कहीं कपड़े भी बनाए जाते हैं । सावन भादों में यह पेड़ फूलता है और इसमें कमल के आकार के बड़े फूल लगते हैं । इसके फूलों में से पके हुए सतरे की सी सुगंध आती है । इसके हर एक लीके में सेमल की तरह के पाँच पाँच पत्ते होते हैं । अफीका के निवासी इसके पत्तों का चूर्ण बनाकर भोजन के साथ खाते हैं । उनके कथनानुसार इसके खाने से पसीना नहीं मान्द होता और गर्मी कम मान्द होती है । इसमें छोटी लोकी के आकार के फल लगते हैं जिनके बीज दवा के काम आते हैं । ये बीज कई प्रकार के ज्वरों के लिये बहुत उपयोगी होते हैं और इनका बहुत बड़ा व्यापार होता है । वैद्यक के अनुसार यह मधुर, शीतल और बाह, वमन, पित्त, अतिसार तथा ज्वर को दूर करनेवाली है । इसे कल्पवृक्ष भी कहते हैं । वि० दे० 'कल्पवृक्ष'— २ ।

गोरखअमली—संज्ञा स्त्री० [हि० गोरख + अमली] दे० 'गोरखअमली' ।

गोरखककड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोरख + ककड़ी] वह ककड़ी जिसमें फूट होता है । गोरखी ।

गोरखडिब्बी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोरख + डिब्बी] गरम या खनिज जल का कुंड या झोत ।

गोरखधंधा—संज्ञा पुं० [हि० गोरख + धंधा] १. कई तारों, कड़ियों या लकड़ी के टुकड़ों इत्यादि का समूह ।

विशेष—इनकी विशेष युक्ति से परस्पर जोड़ या अलग कर लेते हैं । इनके जोड़ने या अलग करने की क्रिया जटिल होती है । गोरखधंधे कई प्रकार के होते हैं । एक प्रकार का गोरखधंधा

गोरक्षपंथी साधु लिए रहते हैं जिसमें एक डंटे में बहुत सी कड़ियाँ जड़ी होती हैं।

२. कोई ऐसी चीज या काम जिसमें बहुत भगड़ा या उलभन हो।
३. भगड़ा। उलभन। पेश।

गोरक्षनाथ—संज्ञा पुं० [सं० गोरक्षनाथ] एक प्रसिद्ध अग्रभूत जो पंद्रहवीं शताब्दी में हुए थे।

विशेष—ये बहुत सिद्ध मान जाते हैं और इनका चलाया हुआ संप्रदाय अबतक जारी है। गोरक्षपुर इनका प्रधान निवासस्थान था और वहीं इन्होंने सिद्धि प्राप्ति की थी।

गोरक्षपंथ—संज्ञा पुं० [सं०] गोरक्षनाथ का चलाया हुआ संप्रदाय जिस नाथ संप्रदाय भी कहते हैं।

गोरक्षपंथी—वि० [हि० गोरक्ष + पंथी] गोरक्षनाथ का अनुगामी। गोरक्षनाथ के चलाए हुए संप्रदायवाला।

गोरक्षमुंडी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोरक्ष + मुण्डी] प्रगल्भ जाति की एक प्रकार की घास जिसमें उंगली के समान लंबे लंबे पत्ते होते हैं और धंड़ी के समान गोल और गुलाबी रंग के फूल लगते हैं।

विशेष—ये पूर्ण रक्त शोधन के लिये बहुत ही गुणकारी होते हैं। वैद्यक के अनुसार यह चरपरी, कसली, हलकी, बनकारक है तथा रक्तविकार के लोगों के लिये बहुत ही लाभदायक है। इसे खान्सी मूषी भी कहते हैं।

गोरखर—संज्ञा पुं० [फा० गोरखर] गंधे की जाति का एक जंगली पशु जो गंधे से बड़ा और थोड़े से छोटा होता है।

विशेष—यह पश्चिमी भारत तथा मध्य और पश्चिमी एशिया में पाया जाता है। इसकी ऊँचाई प्रायः तीन हाथ और लंबाई पाँच छह हाथ तक होती है। इसका पेट सफेद और बाकी शरीर हिरन के रंग का होता है। इसके कान बड़े और दुम पर भोंगे होते हैं। यह सदा चौकन्ना रहता है और बहुत तेज दौड़ता है। ये मैदानों में २५-३० का भुँड बनाकर रहते हैं और इनके भुँड का एक गन्दार भी होता है। ये प्रायः हरी घास और पानियाँ खाते हैं।

गोरखा—संज्ञा पुं० [हि० गोरख] १. नेपाल के अतर्गत एक प्रदेश।
२. इस देश का निवासी।

गोरखाखो—संज्ञा पुं० [हि० गोरखा] नेपाल के अतर्गत गोरखा नामक प्रदेश।

गोरखाखो—संज्ञा स्त्री० [हि०] नेपाली भाषा का एक नाम।

गोरखी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोरख + ई (प्रत्य०)] दे० 'गोरख ककड़ी'।

गोरखकरा—संज्ञा पुं० [हि०] गन्ध की जाति का एक जंगली पौधा जिसके पत्ते में कुम्हार की तरह चिन्ने और सबे होते हैं।

विशेष—अब यह पौधा बगीचों में शोभा के लिये भी लगाया जान लगा है। इसका रेशा बहुत अच्छा होता है और प्राचीन काल में उससे धनुष की डारी बनाई जाती थी। इसमें छोटे छोटे मीठे फल लगते हैं। इसका व्यवहार दवा में भी होता

है। वैद्यक के अनुसार यह कड़ुआ, गरम, भारी, दस्तावर और प्रमेह, कोष्ठ, त्रिदोष, रुधिरविकार तथा विषमज्वर को दूर करनेवाला है। इसे मूर्वा, मीर्वा या धनुर्गुण भी कहते हैं।

गोरज—संज्ञा पुं० [सं०] गो के खुरों से उड़ती हुई गर्द या धूल।

गोरज्या(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गिरिजा] दे० 'गोरी'। उ०—ज्यू ईश्वर संग गोरज्या।—बी० रासो, पृ० २७।

गोरटा—वि० पुं० [हि० गोरा] [वि० स्त्री० गोरटी] गोरे रंगवाला। गोरा। उ०—डगडु डगति साँ ठठकि चित चितई चली निहारि। निधे जान चित चोरटी वहै गोरटी नारि।—बिहारी (शब्द०)।

गोरडी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० गोर + डी (प्रत्य०)] गोरी। सुंदरी। उ०—बागह बरस की गोरही, कूँ समरथो उड़सिउ जग-नाथ।—बी० रासो, पृ० ३४।

गोरण—संज्ञा पुं० [सं०] अध्ववसाय। उद्योग [को०]।

गोरन—संज्ञा पुं० [हि०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी लाल रंग की और बहुत मजबूत होती है।

विशेष—इसकी लकड़ी किश्तियाँ बनाने और इमारत के काम में आती है और छाल से चमड़ा सिंकाया जाता है। यह वृक्ष मिथ तथा बंगाल में नदियों और समुद्र के किनारे की नम जमीन में अधिकता में होता है।

गोरपरस्त—वि० [फा०] १. कब्रपूजक। २. मुसलमानों का वह संप्रदाय जो महात्माओं की कब्रों का आदर करता है और उनपर चिराग जलाना तथा फूल चढ़ाता है।

गोरया—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान।

विशेष—यह अगहन के महीने में तैयार होता है और इसका चावल बहुत दिनों तक रख सकते हैं।

गोरख(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गोरी] गोरी। पावती। उ०—गोरल पूजत नवन किगोरी।—ब्रज० गं०, पृ० १६५।

गोरख—संज्ञा पुं० [सं०] जाफरान। केसर [को०]।

गोरखा—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का बीस।

विशेष—इसकी छोटी छोटी टहनियों से हुक्के के नैचे बनाए जाते हैं।

२. नर गोरेया।

गोरस—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूध। दुध। २. दधि। दही। ३. तक्र। मठा। छाछ। ४. इंदियों का सुख। उ०—गोरस चाहत फिरत हो गोरग चाहत नाहि।—बिहारी (शब्द०)।

गोरसर—संज्ञा पुं० [हि०] वह पतली कमाची जिसे बीस के पंखों की डंडी के आसपास देकर बंधन से जकड़ देते हैं।

गोरसा—संज्ञा पुं० [सं० गोरस] वह बच्चा जो गाय के दूध से पना हो।

गोरसो—संज्ञा स्त्री० [सं० गोरस + ई (प्रत्य०)] दूध गरम करने की अंगोठी। बोरसी।

गोरा—वि० [सं० गौर] सफेद और स्वच्छ वर्णवाला (यनुष्य)। जिसके शरीर का चमड़ा सफेद और साफ हो।

यौ०—गोरा भुका = सलाई लिए गोरा। गोरा चिट्ठा।

गोरा^२—संज्ञा पुं० गौर वर्णवाला व्यक्ति; विशेषतः युरोप, अमेरिका आदि देशों का निवासी। किरंगी।

गोरा^३—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार की कल जो नील के कार-खानों में बहो काटने के लिये रखा करती है। २. एक प्रकार का नील जो संबोतरा होता है।

गोराई^४—संज्ञा स्त्री० [हि० गोरा + ई या आई (प्रत्य०)] १. गोरापन। २. सुंदरता। सौंदर्य।

गोराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना [को०]।

गोराटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना [को०]।

गोराडू—संज्ञा पुं० [देश०] वह बालू मिली मिट्टी जिसमें कोदो बहुत उत्पन्न होता है।

विशेष—यह गुजरात में बहुत होती है।

गोराधार^५—क्रि० वि० [हि० गोरा + धार] मूसलाधार। उ०—
बर बर कँपति रहति आनंदधन बरसत गोराधारन।—चना-
नंद, पृ० ४६८।

गोरान—संज्ञा पुं० [अ० मंत्रप्रोष] चोरी नाम का वृक्ष जिसकी छाल से रंग निकाला और चमड़ा सिझाया जाता है।

गोराभूंग—संज्ञा पुं० [हि० गोरा + भूंग] एक प्रकार की जंगली भूंग जिसे दक्षिण में लोग प्रकाल के समय खाते हैं।

गोरि^६—संज्ञा स्त्री० [हि० गोरी] दे० 'गोरी'। उ०—प्रोलिनि
पुष्प पराग भरी रूप अनूपम गोरि।—नंद० प्र०, पृ० ३८३।

गोरि^७—संज्ञा पुं० [क्रा० गोर] दे० 'गोर'। उ०—गोरि गोमठ
पुरिल मँही, पण्डित देवा एक ठाम नहीं।—कीर्ति०, पृ० ४४।

गोरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गोराटिका' [को०]।

गोरिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गोरी'। उ०—गोरिया गरब करहु
जिनि, अपने गोरे गात।—संतवाणी०, भा० १, पृ० ११३।

गोरिल्ला—संज्ञा पुं० [अफ्रिका] चिपंजी की जाति का बहुत बड़े आकार का एक प्रकार का वनमानुस।

विशेष—इसके अंड अफ्रिका में पाए जाते हैं। इसके शरीर का चमड़ा काला, कान छोटे और हाथ बहुत लंबे होते हैं। इसकी ऊँचाई प्रायः साढ़े पाँच फुट होती है और इसके शरीर में बहुत बल होता है। यह फल आदि खाता और पेड़ों पर बड़े बड़े झोंपड़े बनाकर रहता है। इसकी आवाज साधारण भूँकने की सी होती है; पर यदि इसे छेड़ा या दिक किया जाय, तो यह बहुत जोर से चिल्लाने लगता है। इसके शरीर की बनावट मनुष्य से बहुत कुछ मिलती जुलती होती है।

गोरो^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गोरी] सुंदर और गौर वर्ण की स्त्री। रूपवती स्त्री। उ०—हेरितहि दीठि बिन्हसि हरि गोरी।—
विद्यापति०, पृ० २०६।

गोरी^२—वि० [क्रा० गोरी] गौर निवासी। गौर का बाशिंदा।

गोरी^३—संज्ञा पुं० गौर निवासी व्यक्ति। साहाबुद्दीन गोरी।

गोरीखर—संज्ञा पुं० [सं०] सालसा। उखावा।

गोरुस—संज्ञा पुं० [सं०] दो कोस की दूरी की एक माप [को०]।

गोरू—संज्ञा पुं० [सं० गो] १. सींगवाला पशु। गाय, बैल, भैंस

इत्यादि चोपाया। मवेशी। २. दो कोस का मान।—(हि०)।
३. गाय।

गोरूप—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

गोरोच—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

गोरोचन—संज्ञा पुं० [सं०] पीले रंग का एक प्रकार का सुगंधद्रव्य जो गौ के हृदय के पास पित्त में से निकलता है। उ०—(क) तिलक भाल पर परम अनोहर गोरोचन को दीनों।—सूर (शब्द०)। (ख) चुपरि उबटि अन्हवाई के नयन अजि रचि रचि तिलक गोरोचन को किमो है।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यह अष्टगंध के अंतर्गत है और बहुत पवित्र माना जाता है। कभी कभी यह लड़कों की घोंटी में भी पड़ता है और इसका तिलक लगाया जाता है। तांत्रिक इसे मंगलजनक, कांतिदायक, दरिद्रतानाशक और बर्षीकरण करनेवाला मानते हैं। वैद्यक में इसे शीतल, कटुप्रा और विष, उन्माद, गर्भस्त्राव, नेत्ररोग, कुमि, कुष्ठ और रक्तविकार को दूर करनेवाला माना गया है। कुछ लोगों का विश्वास है कि यह गौ के मूत्रक का पित्त है; अथवा गौ में इसे उत्पन्न करने के लिये उसको बहुत दिनों तक केवल आम की पत्तियाँ खिलाकर रखते हैं, जिससे उसको बहुत कष्ट होता है; पर ये बातें ठीक नहीं हैं।

गोरोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरोचन नामक सुगंधद्रव्य।

गोर्खा—संज्ञा पुं० [हि० गोरखा] दे० 'गोरखा'।

गोर्खाली—वि०, स्त्री० [हि० गोरखाली] दे० 'गोरखाली'।

गोर्द—संज्ञा पुं० [सं०] मस्तिष्क [को०]।

गोर्ध—संज्ञा पुं० [सं०] मस्तिष्क [को०]।

गोलंदाज—संज्ञा पुं० [क्रा० गोलंदाज] तोप में गोला रखकर चलानेवाला। तोप में बत्ती देनेवाला।

गोलंदाजी—संज्ञा स्त्री० [क्रा० गोलंदाजी] गोला चलाने का काम या विद्या।

गोलंवर—संज्ञा पुं० [हि० गोल + वर] १. गुंबद। गुंबद के आकार का कोई गोल ऊँचा उठा हुआ पदार्थ। ३. गोलाई। ४. कलवृत्त जिसपर रखकर टोपी सीते हैं। कालिब। ५. बगीचे में बना हुआ गोल चबूतरा या रविश।

गोलंमदाज^४—संज्ञा पुं० [क्रा० गोलंदाज] दे० 'गोलंदाज'। उ०—
गोलंमदाज तब करि सलाम। दागी सुतोप लखि तब ताम।—ह० रासो, पृ० १०८।

गोल^१—वि० [सं०] जिसका घेरा या परिधि वृत्ताकार हो। चक्र के आकार का। वृत्ताकार। जैसे,—पहिया, ग्रंथो, सिक्का इत्यादि। ऐसे घनात्मक आकार का जिसके पृष्ठ का प्रत्येक बिंदु उसके भीतर के मध्य बिंदु से समान अंतर पर हो। सर्ववतुल। गंडाकार। गेंद, नीबू, बेल आदि के आकार का।

गोल^२—गोल गोल = (१) स्थूल रूप से। मोटे हिसाब से। (२) अस्पष्ट रूप से। साफ साफ नहीं। जैसे,—यों ही गोल गोल समझाकर वह चला गया; साफ छुना नहीं। गोल बात = अस्पष्ट बात। ऐसी बात जिससे प्रर्थ का कुछ आभास मिले पर वह स्पष्ट न हो। गोलमगोल = दे० 'गोल गोल'। गोल

मटोल = (१) दे० 'गोल गोल' । (२) मोटा घीर दिगना । नाटा घीर मोटा । गुलगुलना । (३) ऊँचाई के हिसाब से जिसकी चौड़ाई बहुत अधिक हो । गोल मोल = दे० 'गोल गोल' ।

मुहा०—गोल होना = (१) चुप हो रहना । मोन हो जाना । (२) गायब होना । बिना जानकारी कराए चले देना ।

गोल^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंडलाकार क्षेत्र । वृत्त । २. गोलाकार पिंड । गोला । सर्ववर्तुल पिंड । बटक । ३. गोल यंत्र । ४. विश्वा का जारज पुत्र । ५. मुर नाम की ओषधि । ६. मदन नाम का वृक्ष । मेनफल का पेड़ । ७. एक देश का नाम जिसके अंतर्गत योरोप का बहुत सा भाग विशेषतः उत्तरी इटली और फ्रांस, बेल्जियम आदि थे ।

विशेष—यह गण्ड रोमन भाषा या लैटिन से हेमबंद के परिणाम पर्वण में आया है ।

८. मिट्टी का गोल पड़ा ।

गोल^३—संज्ञा पुं० [फ्रा० गोल । ग० गोल (= मंडल)] मंडल । भुंड । समूह ।

मुहा०—गोल बांधना = मंडली या भुंड बनाना ।

गोल^४—संज्ञा पुं० [म० गोल (योग)] गड़बड़ । गोलमाल । उपद्रव । खलबली । हलचल ।

यौ०—गोलमाल ।

मुहा०—गोल पारना या डालना = गड़बड़ मचाना । हलचल मचाना । ३०—ऊधो मुनत तिहारो बोल । त्यागो हरि कुशलात धन्य तुम घर घर पारधो गोल ।—सूर (शब्द०) ।

गोल^५—संज्ञा पुं० [म०] १. हाकी, फुटबाल आदि खेलों में वह स्थान जहाँ गेद पहुँचा देने से विरोधी पक्ष की जीत हो जाती है । २. उक्त प्रकार से होनेवाली जीत ।

क्रि० प्र०—करना ।—बनाना ।—मारना ।—होना ।

यौ०—गोलकीपर—गोल बचाने के लिये नियुक्त खिलाड़ी ।

गोलक—संज्ञा पुं० [ग०] १. गोलोक । २. गोलपिंड । ३. विश्वा का जारज पुत्र । ४. मिट्टी का बड़ा कुंडा । ५. फूलों का निकाला हुआ सार । द्रव । ६. घाँस का बेल । उ०—(क) प्रति उनीद घलसात कथगति गोलर चणल मियाँल कछु दोरे ।—सूर (शब्द०) । (ख) जोगबर्ह प्रभु सिय लखनहि कैसे । पलक बिलोचन गोलक जैसे ।—तुलसी (शब्द०) । ७. घाँस की गुत्तली । उ०—उनके हित उनही बने कोऊ कभी अनेक । फिरत काक गोलक भयो दुहें देह ज्यो एक ।—बिहारी (शब्द०) । ८. गुंबद । उ०—बिसुकरमा मनु मनि खंभ पै उबुगण को गोलक धरयो ।—गोपाल (शब्द०) । ९. वह संहक या पैली आदि जिसमें किसी विशेष कार्य के लिये थोड़ा थोड़ा धन संग्रह किया जाय । १०. वह धन जो किसी विशेष कार्य के लिये संग्रह करके रखा जाय । फंड । ११. वह संहक या पैली जिसमें बित्री, कर द्वारा या और किसी प्रकार से भाई हुई रोजाना आमदनी रखी जाती है । गल्ला । गुल्लक ।

गोलकलम—संज्ञा पुं० [हि० गोल + कलम] एक प्रकार की छेनी जो चाँदी के पत्तार पर की नक्काशी से पत्ती उभारने के काम में आती है ।

गोलकली—संज्ञा स्त्री० [हि० गोल + कली] एक प्रकार का ग्रंथ जो दक्षिण और मध्यप्रदेश में होता है ।

गोलगप्पा—संज्ञा पुं० [हि० गोल + गप्पा] ची में तली एक प्रकार की महीन और करारी फुलकी जिसे खटाई के रस में बुनकर खाते हैं ।

गोलड़ी—संज्ञा पुं० [सं० गोल (= जारज) ?] गुलाम । उ०—गाढभरिया गोलरी, गुनो सदन मुरंग ।—बाँकी घं०, भा० ३. पृ० २० ।

गोलपंजा—संज्ञा पुं० [हि० गोल + पंजा] बिना मुड़ी नोक का सूता । मुंडा सूता ।

गोलपत्ता—संज्ञा पुं० [हि० गोल + पत्ता] गुल्गा नामक ताड़ का पत्ता जो सुंदरबन में होता है । दे० 'गुल्गा' ।

गोलफल—संज्ञा पुं० [हि० गोल + फल] गुल्गा नामक ताड़ का फल जो सुंदरबन में होता है । दे० 'गुल्गा' ।

गोलमाल—संज्ञा पुं० [म० गोल (= योग)] गड़बड़ । अव्यवस्था । क्रि० प्र०—करना ।—डालना ।—मचाना ।

गोलमिर्च—संज्ञा स्त्री० [हि० गोल + म० मिर्च] काली मिर्च ।

गोलमूँहा—संज्ञा पुं० [हि० गोल + मुँहा] कसेरी की एक प्रकार की हथोड़ी जिसका अगला भाग बिलकुल गोल होता है और जिससे बरतन गहरा किया जाता है ।

गोलमेज कान्फरेन्स—संज्ञा स्त्री० [हि० गोल + मेज + फ्रां० कान-फ्रेन्स] दे० 'राउंड टेबुल कान्फरेन्स' ।

गोलमेथी—संज्ञा स्त्री [गोल + मेथी] मोमे की जाति का एक पेड़ ।

विशेष—यह उत्तरी भारत में कुमाऊँ से बरमा तक, तथा अफ्रीका और अमेरिका में होता है । इसके डंठलों से चटाईयाँ बनती हैं । इसे वेदुआ भी कहते हैं ।

गोलयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० गोलयन्त्र] वह यंत्र जिससे सूर्य, चंद्र, पृथिवी आदि की स्थिति, नक्षत्रों की गति और अयन परिवर्तन आदि जान जाते हैं ।

विशेष—प्राचीन काल में यह यंत्र प्रायः बाँस की तीलियों आदि से बनाया जाता था ।

गोलयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष में एक योग जो एक राशि में किसी के मत से छह और किसी के मत से सात ग्रहों के एकत्र होने से होता है ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इसका फल दुर्भिक्ष और राष्ट्र तथा राजाओं का नाश है ।

२. गड़बड़ । गोलमाल ।

गोलर—संज्ञा पुं० [सं०] कसेरू ।

गोलरा—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बहुत लंबा और सुंदर पेड़ जो हिमालय पर्वत पर तीन हजार फुट की ऊँचाई तक होता है ।

विशेष—इसकी छाल चिकनी और सफेद तथा हीर की लकड़ी चमकीली और बहुत कड़ी होती है । इसके पत्तों से चमड़ा सिझाया जाता है और लकड़ी से नावें, जहाज और खेती के औजार बनाए जाते हैं ।

गोलकट्ट—संज्ञा पुं० [हि० गोल + कट्ट] जहाज के मस्तूल के सिरे पर की एक गोल नकड़ी जिसपर से पाल की रस्सियाँ लींची जाती हैं । —(लक्ष०) ।

गोलबाल—संज्ञा पुं० [सं० गोपुत्रपाल] गायों के समूह का पालक । गोस्वामी । उ०—बुल्लाय जैतसिय गोलबाल । तुम भूमि पास नागरह चाल । —पृ० रा०, १।३८० ।

गोलविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष विद्या का वह धंग जिससे पृथ्वी की गोलाई, आकार, विस्तार, चाल, ऋतुपरिवर्तन आदि बातें जानी जायें । आकाश के गोले पिंडों का हाल चाल जानना भी इसी के अंतर्गत है ।

गोलांगुल—संज्ञा पुं० [सं० गोलाङ्गुल] दे० 'गोलांगूल' (को०) ।

गोलांगूळ—संज्ञा पुं० [सं० गोलाङ्गूळ] एक प्रकार का बंदर जिसकी पूँछ गौ की पूँछ के समान होती है ।

गोला^१—संज्ञा पुं० [हि० गोल] १. किसी पदार्थ का कुछ बड़ा गोल पिंड । जैसे,—लोहे का गोला, रस्सी का गोला, माँग का गोला ।

मुहा०—गोला उठाना = एक प्राचीन प्रथा जिसमें लोग अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिये जलता हुआ आग का गोला हाथ में उठा लिया करते थे, और यदि उनका हाथ न जलता था तो वे निर्दोष समझे जाते थे ।

२. लोहे का बड़ा गोल पिंड जिसमें बहुत सी छोटी छोटी गोलियाँ, मेखें आदि भरकर मुद्द में तोपों की सहायता से शत्रुओं पर फेंकते हैं । उ०—ठाहें महीषर शिखर कोटिन्ह विविध विधि गोला चले । —तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—चलाना । — छोड़ना । — फेंकना । — बरसाना ।

विशेष—तोपों के आधुनिक गोले केवल गोल ही नहीं बल्कि लंबे भी बनते हैं ।

३. एक प्रकार का रोग जिसमें थोड़ी थोड़ी देर पर पेट के अंदर नाभि से गले तक वायु का एक गोला आता जाता जान पड़ता है; और जिसमें रोगी को बहुत अधिक कष्ट होता है । वायुगोला । ४. लंबों के सिरों पर का कुछ चौड़ा गढ़ा हुआ भाग । ५. दीवार के ऊपर की लकीर जो शोभा के लिये बनाई जाती है । ६. भीतर से खोखला किया हुआ बेल का फल या उसी आकार का काठ आदि का बना हुआ और कोई पदार्थ जो सुँघनी, भूत या इसी प्रकार की और कोई बुकनी रखने के काम में आता है । ७. मिट्टी, काठ आदि का बना हुआ वह गोलाकार पिंड जिसके ऊपर रखकर पगड़ी बाँधते हैं । ८. जंगली कबूतर । ९. नारियल का वह भाग जो ऊपर की जटा छीलने के बाद बच रहता है । गरी का गोला । १०. वह बाजार या मंडी जहाँ अनाज या किराने की बहुत बड़ी बड़ी दुकानें हों । ११. घास का गट्टर । १२. लकड़ी का गोल पेटे का सीधा लंबा लट्ठा जो छाजन में लगाने तथा दूसरे कामों में आता है । काँड़ी । बल्ला । १३. रस्सी, सूत आदि की गोल लपेटी हुई पिंडी । १४. एक प्रकार का जंगली बाँस जो पोला नहीं होता और छड़ी या साठी बनाने के काम में आता है ।

मुहा०—गोला खाटी करना = लड़कों के हाथ पैर बाँधकर दोनों घुटनों के बीच में डंडा डालना ।

विशेष—यह डंडा मोलवी मकतबों में लड़कों को दिया करते हैं । १५. एक प्रकार का बेंत जो बंगाल और आसाम में होता है ।

विशेष—यह बहुत लंबा और मुलायम होता है तथा टोकरे आदि बनाने के काम में आता है ।

१६. गुलेज से चलाया जानेवाला गोला या बड़ी गोली । उ०—गोला लगे गिलोन गुठ, छुट न तो इसरार । —पृ० रा०, ६।१६० ।

गोला^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोदावरी नदी । २. सहेली । सखी । ३. मंडल । ४. किसी चीज की छोटी गोली । ५. दुर्गा ।

गोला—संज्ञा पुं० [सं० गोल जारज०] गुलाम । दास । उ०—गोला सुँ कीजे गुसट, ऊभी गिनका आण । —बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ३ ।

गोलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० गोला + लाई (प्रत्यय०)] गोल का भाव । गोलापन ।

गोलाकार—वि० [सं०] जिसका आकार गोल हो । गोल जलवाला ।

गोलाकृति^१—वि० [सं०] गोलाकार ।

गोलाकृति^२—संज्ञा स्त्री० [सं० गोल + आकृति] किसी वस्तु के गोल होने की स्थिति या भाव ।

गोलाधार—वि० [हि० गोला + धार] मूसलाधार । गोराधार ।

गोलाध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] भास्कराचार्य का एक ग्रंथ जिसमें भूगोल और खगोल का वर्णन है ।

गोलाबारी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोला + बारी] तोप से होने वाली गोलों की वर्षा । उ०—रात भर बिकट, तीक्ष्ण, भीषण गोलाबारी किले और बाहर पर की बुजों पर से हुई । —आसी०, पृ० ४०६ ।

गोलाबारूद—संज्ञा स्त्री० [गोला + फ्रा० बारूद] १. तोप के गोले और बारूद । २. मुद्दसामग्री ।

गोलार्ध—संज्ञा पुं० [सं० गोला + र्ध] या गोलार्ध] पृथ्वी का आधा भाग जो एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक उसे बीचोबीच काटने से बनता है ।

गोलास—संज्ञा पुं० [सं०] बुकुरमुत्ता । छत्रक (को०) ।

गोलासन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की तोप (को०) ।

गोलिंग—संज्ञा पुं० [सं० गोलिङ्ग] कौटिल्य कथित प्राचीन काल की एक प्रकार की गाड़ी ।

गोलियाना—क्रि० सं० [हि० गोल] १. किसी चीज को गोल आकार का करना या बनाना । किसी पिंड या तूदे से छोटी छोटी गोलियाँ बनाना । २. सम पक्ष के लोगों को एक करना । गोल बाँधना ।

गोली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गोला का स्त्री और अल्पा०] १. किसी चीज का छोटा गोलाकार पिंड । बटिका । बटिया । जैसे,—सूत

की गोली, अफीम की गोली, खेलने की गोली । २. घोष की बटिका । बटी ।

क्रि० प्र०—खाना ।—खिलाना ।—बेना ।

१. मिट्टी, काँच आदि का बना हुआ वह छोटा गोल पिंड जिसे बालक खेलते हैं ।

क्रि० प्र०—खेलना ।—मारना ।—लगाना ।

४. गोली का खेल । ५. पशुओं का एक रोग । ६. पीले या बंदारी रंग की गाय । ७. मक्क की गोली जो अफीम से तैयार की जाती है और जिसे तंबाकू की तरह पीते हैं । ८. सीसे आदि का बना हुआ वह गोल पिंड जो बंदूक में भरकर फायल करने या मारने के लिये चलाया जाता है ।

क्रि० प्र०—खलना ।—खलाना ।—छोड़ना ।—मारना ।—लगाना ।

मुहा०—गोली खाना=बंदूक की गोली का आघात सहना । गोली बखाना=किसी संकट या आपत्ति से घूर्ततापूर्वक अपना बचाव करना । विपत्ति के स्थान से या अवसर पर टल जाना । गोली मारते हैं=उपेक्षापूर्वक छोड़ देने हैं । तुच्छ समझकर ध्यान छोड़ देने हैं । मिलने न मिलने या होने न होने की परवा नहीं करते हैं । जैसे,—ऐसी नोकरी की हम गोली मारते हैं । गोली मारो=उपेक्षापूर्वक छोड़ दो । तुच्छ समझकर ध्यान छोड़ दो । मिलने न मिलने या होने न होने की परवा न करो । जाने दो । दूर हटाओ । जैसे,—अजी गोली मारो, ऐसे रोजगार में क्या रखा है ।

६. मिट्टी की गोल ठिनिया । छोटा घड़ा ।

गोली (पु०) —संज्ञा स्त्री० [हि० गोला] दासी । सेविका । उ०—छोट सी भंग सोहै सीगनि, टहल करनि वो गोली खू ।—नंद० प्र०, पृ० ३३७ ।

गोलीय वि० [सं०] १. गोल विषयक । २. खगोल भूगोल आदि में संबंधित [को०] ।

गोलियाँ—संज्ञा पुं० [सं०] मट्ठ का फल । गोदंदा ।

गोलोक—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु या कृष्ण का निवासस्थान ।

विशेष—यह पुराणानुसार ब्रह्मांड में सब लोकों में ऊपर माना जाता है । अनेक पुराणों में यह लोक बहुत ही मनोहर और रम्य बताया गया है । तंत्र के अनुसार वेदुंठ के दक्षिण ओर गोलोक है ।

२ स्वर्ग । ३. ब्रजभूमि ।

गोलोकवास संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्गवास । देहान्ति ।

गोलोकेश—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्णचंद्र ।

गोलोचन—संज्ञा पुं० [सं० गोरोचन] दे० 'गोरोचन' ।

गोलोमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या । २. मफेद दूब । ३. एक झाड़ी । कतूर । आभाहल्दी [को०] ।

गोलोभी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गोलोमिका' [को०] ।

गोलोवा—संज्ञा पुं० [हि० गोल] बड़ा बीरा । टोकरा । ताँचा ।

गोल्ड—संज्ञा पुं० [सं०] सोना । स्वर्ण ।

गोल्डन—वि० [सं० गोल्डेन] १. सोने का । २. सोने के रंग का । सुनहरा ।

गोल्फ—संज्ञा पुं० [सं० गोल्फ या गोक] एक प्रकार का अंगरेजी खेल जो बड़े घोर गेंदों से खेला जाता है ।

गोवर्द्ध (पु०)—संज्ञा पुं० [सं० गोविन्द] दे० 'गोविंद' । उ०—नाम गोवर्द्ध बयो नमो नंदराय नंद ।—बांकी० प्र०, भा० १, पृ० १२४ ।

गोवध—संज्ञा पुं० [सं०] गो को मारना । गो की हत्या । गोहिंसा ।

गो०—गोवधनिषेध, गोवधबंदी = गो की हत्या बंद करना ।

गोवना (पु०)—क्रि० सं० [सं० गोपन, प्रा० गोबण] दे० 'गोना' ।

उ०—गोवत गोवत गोह धरपो धन, खोवत खोवत तैं सब लोयो । संतवाणी, भा० २, पृ० १२४ ।

गोबर—संज्ञा पुं० [सं०] गोबर का घूर्ण [को०] ।

गोबरधन—संज्ञा पुं० [सं० गोवर्धन] दे० 'गोवर्द्धन' । उ०—गोबरधन आजानुमज, सीम सुजाव सगाह ।—रा० क०, पृ० १२३ ।

गोवर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्री बुंदावन का एक पर्वत जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि उसे एक बार वर्षा होने पर श्रीकृष्ण ने अपनी उँगली पर उठाया था ।

गो०—गोवर्द्धनधर, गोवर्द्धनधारण, गोवर्द्धनधारी = श्रीकृष्ण ।

२. मथुरा जिले के अंतर्गत एक प्राचीन नगर और तीर्थ ।

गोवर्धन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गोवर्द्धन' ।

गोबल—संज्ञा पुं० [सं० गोपाल, प्रा० गोबाल] ग्वाला । गोप ।

उ०—सुर नर मोह्य देवता जिमि गोबल माहि सोवह गोव्यंद ।—बी० रासो०, पृ० ७ ।

गोबलिया (पु०)—संज्ञा स्त्री० [हि० ग्वाला] ग्वालिन । उ०—और नाम रूप नहि गोवलिया, 'तुका' प्रभु माखन लाया ।—दक्खिनी०, पृ० १०४ ।

गोबाना (पु०)—क्रि० सं० [हि० गोबना का प्रे० रूप] छिपाने के लिये प्रेरित करना । छिपवाना । ढकवाना । उ०—ले माटी कलबूत बनाया । आब लाक आतिश गोवाया ।—प्राण०, पृ० ७४ ।

गोविंद—संज्ञा पुं० [सं० गोपेन्द्र या गोविन्द, प्रा० गोविह] १. श्रीकृष्ण २. वेदांतवेत्ता । तत्त्वज्ञ । ३. बृहस्पति । ४. शंकराचार्य के गुरु का नाम । ५. सिक्कों के दस गुरुओं में से एक । ६. परब्रह्म । ७. गोपाला या गोधों का अध्यक्ष ।

गोविंद्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं० गोविन्दवावशी] फागुन महीने के उजाले पक्ष का बारहवाँ दिन । फाल्गुन शुक्ल द्वादशी ।

गोविंदपद—संज्ञा पुं० [सं० गोविन्दपद] मोक्ष । निर्वाण ।

गोविंदपाद, गोविंदपादाचार्य—संज्ञा पुं० [सं० गोविन्दपाद, गोविन्दपादाचार्य] शंकराचार्य के गुरु [को०] ।

गोवि—संज्ञा पुं० [सं०] मंकीएँ राग का एक भेद ।

गोविसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] तड़का । भोर [को०] ।

गोबीथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा के मार्ग वह अंश जिसमें भाद्रपद, रेवती और अश्विनी तथा किसी किसी के मत से हस्त, चित्रा और स्वाती नक्षत्रों का समूह है ।

गोवैद्य—संज्ञा पुं० [सं०] नीम वृक्षीय । अजानी वैद्य [को०] ।
 गोव्याधि—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम ।
 गोव्रज—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोशाला । गोठ । २. गोसमूह । ३. गायों के चरने का स्थान । चरागाह ।
 गोव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो गोवृत्त्या के प्रायश्चित्त के लिये किया जाता है और जिसमें बराबर किसी गो के पीछे पीछे घूमना और केवल गाय का दूध पीकर रहना पड़ता है ।
 गोव्रद्धन^(५)—संज्ञा पुं० [सं० गोवृद्धन] दे० 'गोवृद्धन' । उ०—उत्पारि सत्य गोव्रद्धनह । निपू रखि बच्ची जेम कल ।—पृ० रा०, ६७।१३०४ ।
 गोश—संज्ञा पुं० [क्रा०] सुनने की दृष्टि । कान ।
 गोशकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] गोबर [को०] ।
 गोशगुजार—वि० [क्रा० गोशगुजार] १. कहा हुआ । २. प्राप्त ।
 गोशपेच—संज्ञा पुं० [क्रा०] कान में पहनने का जेवर ।
 गोशम—संज्ञा पुं० [हि० कोसम] दे० 'कोसम' ।
 गोशमायल—संज्ञा पुं० [क्रा०] पगड़ी में एक छोर लगा हुआ मोतियों की लड़ी का वह गुच्छा जो कान के पास लटकता रहता है ।
 गोशमाली—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. कान उमेठना । २. ताड़ना । कड़ी चेतावनी ।
 क्रि० प्र०—करना ।—देना ।
 गोशबारा—संज्ञा पुं० [क्रा०] १. खंजन नामक पेड़ का गोंद ।
 विशेष—यह मस्तगी का सा होता है और मस्तगी ही की जगह काम में आता है ।
 २. कान का बाला । कुंडल । ३. बड़ा मोती जो सीप में अकेला हो । ४. कलाबत् से बुना हुआ पगड़ी का आंचल । ५. तुरी । कलगी । सिरपेच । ६. जोड़ । मौजान । ७. वह संक्षिप्त लेखा जिसमें हर एक मद का आयव्यय अलग अलग दिखलाया गया हो । ८. रजिस्टर आदि में खानों के ऊपर का वह भाग जिसमें उन खानों का नाम लिखा रहता है ।
 गोशा—संज्ञा पुं० [क्रा० गोशाह] १. कोना । अंतराल । कोण । २. एकांत स्थान । जहाँ कोई न हो । तनहाई । ३. तरफ । दिशा । ओर । ४. कमान की दोनों नोकें । धनुष की कोटि । कमान का सिरा ।
 गोशानशीन—वि० [क्रा० गोशहन्शीन] एकांतवासी । घर गृहस्थी से विरक्त ।
 गोशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोश्रों के रहने का स्थान । गोष्ठ ।
 गोशि^(५)—संज्ञा पुं० [क्रा० गोश] दे० 'गोश' । उ०—गोशि बातिन हो कुशादा जो करे कुछ दिन अमल ।—तूरसी श०, पृ० ५ ।
 गोशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक पर्वत का नाम । २. उक्त पर्वत पर होनेवाला चंदन । ३. एक प्रकार का अन्न ।
 गोश्रृंग—संज्ञा पुं० [सं० गोश्रृङ्ग] १. एक पर्वत जिसका वर्णन रामायण और महाभारत में आया है । २. एक ऋषि का नाम । ३. बबूल का पेड़ ।
 गोश्रुत—संज्ञा पुं० [क्रा०] मांस । आमिष ।

गोशरा^(५)—संज्ञा पुं० [सं० गोशाला] गोशाला । पशुशाला । उ०—चंद बिन रेनि जैसे पुत्र बिन परिवार, दारा बिन ग्रह जैसे गऊ बिन गोशरा ।—अकबरी०, पृ० ५३ ।
 गोष्टि^(५)—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] साथी । संगी । मित्र । उ०—काहु न जीवै गोष्टि सो मेरा ।—कबीर सा०, पृ० ४२२ ।
 गोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोश्रों के रहने का स्थान । गोशाला । २. किसी जाति के पशुश्रों के रहने का स्थान । जैसे,—महिष गोष्ठ, अश्वगोष्ठ । ३. मनु के अनुसार एक प्रकार का श्राद्ध जो कई व्यक्ति एक साथ मिलकर करते हैं । ४. परामर्श । सलाह । ५. दल । मंडली । ६. अहीरों का गाँव [को०] ।
 गोष्ठपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रधान ग्वाला । ग्वालों का सरदार । २. गोष्ठ का स्वामी [को०] ।
 गोष्ठशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ कोई सभा हो । सभामवन ।
 गोष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बहुत से लोगों का समूह । सभा । मंडली । २. यातायात । बातचीत । ३. परामर्श । सलाह । ४. एक ही धंक का वह रूपक या नाटक जिसमें पाँच या सात स्त्रियाँ और नौ या दस पुरुष हों ।
 गोष्पद—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोश्रों के रहने का स्थान । गोष्ठ । २. गो के खुर के बराबर गढ़ा । उ०—पार किया मकरालय मैंने उसे एक गोष्पद सा मान ।—साकेत, पृ० ३८८ । ३. प्रभास क्षेत्र के अंतर्गत एक तीर्थ ।
 गोसंख्य—संज्ञा पुं० [सं० गोसङ्ख्य] गाय चरानेवाला ग्वाला [को०] ।
 गोस^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का झाड़ू जिसमें से गोंद निकलता है । २. प्रातःकाल से दो घड़ी पहले का समय । प्रभात । तड़का । ३. ग्री म ऋतु [को०] । ४. लोबान [को०] ।
 यौ०—गोसगृह = भीतरी कक्ष ।
 गोस^२—संज्ञा पुं० [क्रा० गोशा ?] हवा लगने के लिये चलते हुए जहाज का रख कुछ तिरछा करना । नाँच ।—(लश०) ।
 गोस^(५)—संज्ञा पुं० [हि० गुस्ता, गुसा] दे० 'गुस्ता' । उ०—बचन मेदि में कहीं गरज बसि दरदबंद प्रभु करी न गोसो ।—मोखा श०, पृ० २६ ।
 गोसई—संज्ञा स्त्री० [दे०] कपास के पौधों का एक रोग जिसमें उनका फूलना बंद हो जाता है ।
 गोसट^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० गोष्ठ] गोष्ठी । संग । साथ । उ०—भगतन सेटी गोसटे जो कीने सो लाभ ।—कबीर ग्रं०, पृ० २५० ।
 गोसठि^(५)—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] दे० 'गोष्ठ' । उ०—दई गऊ बाह्यान की आई । सो गोसठि में भान समाई ।—घट०, पृ० १३६ ।
 गोसट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] गवय । नीलगाय [को०] ।
 गोसमाल—संज्ञा पुं० [क्रा० गोशमायल] दे० 'गोशमायल' । उ०—दाहू नफस नाँव सो मारिये, गोसमाल दे पंद ।—दाहू०, पृ० २५५ ।
 गोसमाबल^(५)—संज्ञा पुं० [क्रा० गोशमाबल] दे० 'गोशमायल' । उ०—पाग ऊपर गोसमाबल रंग रंग रचि बनाय ।—सुर (शब्द०)

गोसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] गायों को चरने के लिये छोड़ने का समय।
घोर। तड़का [को०]।

गोसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] गोह [को०]।

गोसलखाना (पु०)—संज्ञा पुं० [हि० गुसलखाना] दे० 'गुसलखाना'।
हर्षा ले गयो चकते गुसल देन को गोसलखाने गयो दुख दीनो।
—भूषण प्र०, पृ० २०५।

गोसल—संज्ञा पुं० [हि० गुसल] दे० 'गुसल'। उ०—कर गोमल्ल
पवित्र होइ चिते रहमान—पृ० रा०, १।११४।

गोसब—संज्ञा पुं० [सं०] गोमेध यज्ञ।

विरोध—यह कल में वर्जित है।

गोसहस्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का एक हजार गायों का
सहादान [को०]।

गोसहस्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] कालिक घोर ज्येष्ठ की समावस्था [को०]।

गोसा (पु०)—संज्ञा पुं० [सं० गो] गोईठा। उपला। कंडा।

गोसा (पु०)—संज्ञा पुं० [फा० गोशह] १. कमान का सिरा। गोशा।
उ०—प्रथम यरी टंकार फेरि गोसा सवारि तेहि।—
हामीर०, पृ० ३४। २. कोना। अंतराल। कोण। उ०—गोम
गहि रसता दसन बसन कंषायी वाम।—स० समक,
पृ० ३७७।

गोसाई—संज्ञा पुं० [सं० गोस्वामी] १. गोश्यों का स्वामी या अधि-
कारी। २. स्वर्ग का मालिक, ईश्वर। ३. संन्यासियों का एक
संप्रदाय जिसमें दस भेद होते हैं और जिसे दशनाम भी कहते
हैं। गिरि, पुरी, भारती, सरस्वती आदि इसी के अंतर्गत हैं।
४. विरक्त साधु। अतीत। ५. वह जिसने इन्द्रियों को जीत
लिया हो। जितेंद्रिय। ६. मालिक। प्रभु। स्वामी।

गोसाई—वि० श्रेष्ठ। बड़ा।

गोसाउनि (पु०)—संज्ञा स्त्री० [सं० गोस्वामिनी] गोस्वामिनी। उ०—
नहज सुप्रसिद्ध दिग्गज गोसाउनि, अनुगति गति दुष्ट पाया।
—विद्यापति (शब्द०)।

गोसावनि (पु०)—संज्ञा स्त्री० [सं० गोस्वामिनी] स्वामिनी। उ०—दास
गोसावनि गहिअ धम्म गए धंध निमज्जिय।—कीर्ति०,
पृ० १६।

गोसानी—संज्ञा स्त्री० [फा० गोशह] वह हवा जो पाल उतार लेने
पर भी जहाज के चलने में बाधा डाले।—(लश०)।

गोसाबित्रो—संज्ञा स्त्री० [सं०] गायत्री [को०]।

गोसी—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र में चलनेवाली एक प्रकार की नाव
जिसमें २ से लेकर ७ तक मस्तूल होते हैं।

गोसीपरवान—संज्ञा पुं० [सं०] धातु की एक संबी छड़ जो जहाज
के मस्तूल में पाल के ऊपरी छोर को हटाने बढ़ाने के लिये
लगी होती है।—(लश०)।

गोसुत—संज्ञा पुं० [सं०] गो का बच्चा। बछड़ा। उ०—(क) गो
गोसुतन सों एगी भृगसुतन सों घोर तन नेकु न जोहनी।—
हरिदास (शब्द०)। (ख) गोसुत पहुँचे जाइ रहे बालक
अपन घर। गोसुत भर नर नारि मिली अति हित लाइ गर।—
सूर (शब्द०)।

गोसूक्त—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद का वह ग्रंथ जिसमें ब्रह्मांड की
रचना का गो के रूप में वर्णन किया गया है। गोदान के
समय इसका पाठ किया जाता है।

गोसैर्या—संज्ञा पुं० [सं० गोस्वामी, हि० गोसाई] प्रभु। नाथ।
मालिक।

गोस्तन—संज्ञा पुं० [म०] १. गाय का थन। २. कली आदि का गुच्छा।
३. चार लड़ी का मोती का हार। ४. एक प्रकार का दुर्ग।
गढ़ [को०]।

गोस्तना—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्राक्षा। दाख। मुनक्का।

गोस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'गोस्तना'।

गोस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] गोशाला। गाँठ [को०]।

गोस्वामी—संज्ञा पुं० [म०] १. वह जिसने इन्द्रियों को वश में कर
लिया हो। जितेंद्रिय। २. वैष्णव संप्रदाय में आचार्यों के
बंशधर या उनकी गद्दी के अधिकारी। ३. गायों को पालने-
वाला व्यक्ति। गोपालक [को०]।

गोस्ता—संज्ञा पुं० [हि० गुस्ता] दे० 'गुस्ता'। उ०—गोस्ता मत
होदए साहब!—मैरा०, पृ० ३५६।

गोह—संज्ञा स्त्री० [सं० गोधा] छिपकली की जाति का एक जंगली
जंतु जो आकार में गवले से कुछ बड़ा होता है।

विशेष—इसकी फुफकार में बहुत विष होता है। इसके काटने
पर पहले मांस गलने लगता है और तब सारे शरीर में विष
फैलने के कारण मनुष्य मर जाता है। इसका चमड़ा बहुत
मोटा और मजबूत होता है जिससे प्राचीन काल में लड़ाई के
समय उँगलियों की रक्षा करने के लिये दस्ताने बनते थे।
कभी कभी इसके चमड़े से खंजरी भी मढ़ा जाती है। इसका
मांस बहुत पुष्ट होता है और प्राचीन काल में खाया जाता था।
अब भी जंगली जातियाँ गोह का मांस खाता है। यह दीवार
में चपक जाती है और उसे बहुत कठिनता से छोड़ती है।
ऐसा प्रसिद्ध है कि पहले चोर इसकी कमर में रस्सी बाँधकर
इसे मकान के ऊपर फँक देते थे और जब यह वहाँ पहुँचकर
विषक जाती थी, तो वे उस रस्सी को सहायता से ऊपर चढ़
जाते थे। गोह दो प्रकार की होती है, एक चंदन गोह जो
छोटी होती है और दूसरी पटरा गोह जो बड़ी और चिपटी
होती है।

गोह—संज्ञा पुं० [म०] १. गेहूँ। घर। २. माँद। छिपने का स्थान
[को०]।

गोह—संज्ञा पुं० उदयपुर राजवंश के एक पूर्वपुरुष का नाम जो बाप्पा
रावल से पहले हुआ था।

गोहतीत (पु०)—वि० [सं० गोतीत] दे० 'गोतीत'। उ०—गुना गोहतीत
बना बास गीत।—घट०, पृ० ३८७।

गोहत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोवध।

यौ०—गोहत्या निवारण—गोवध बंद करना।

गोहन (पु०)—संज्ञा पुं० [सं० गोधन (=गोश्यों का समूह)] १. संग
रहनेवाला। साथी। उ०—सूरदास प्रभु मोहन गोहन की छवि
बाढ़ी मेढति दुख निरखि नैन नैन के दरद को।—सूर

(शब्द०) । २. संग । साथ । उ०—(क) घोराता सोने रथ साजा । भई बरात गोहन सब राजा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) भाजे कहीं चलोगे मोहन । पीछे भाइ गईं तुव गोहन ।—सूर (शब्द०) ।

यौ०—गोहनलघुभा = दूसरा पति करनेवाली स्त्री के साथ जाने-वाला पूर्वपति से उत्पन्न लड़का ।

गोहन^२—वि० [सं०] छिपनेवाला [को०] ।

गोहनियाँ^१—संज्ञा पुं० [हि गोहन + इया (प्रत्य०)] संगी । साथी ।

गोहर^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गोषा] बिसपोखरा नामक जंतु ।

गोहर^२—संज्ञा पुं० [हि० गोहर] दे० 'गोहर' । उ०—गोहरे मुराद का दस्तयाब होना भी आसान नहीं ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १५ ।

गोहरा—संज्ञा पुं० [सं० गो + ईल्ल या गोहल्ल या गोहल ?] [स्त्री० अल्पा० गोहरी] सुलाया हुआ गोबर जो जलाने के काम आता है । कंड़ा । उपला ।

गोहराना—क्रि० प्र० [हि० गोहार] पुकारना । बुलाना । आवाज देना । उ०—पारब्रह्म जेहि कह गोहराई । ताने सतगुरु भेद न पाई—घट०, पृ० २५४ ।

गोहरौर—संज्ञा पुं० [हि० गोहरा + और (प्रत्य०)] पाय कर रखे हुए कंठों का ढेर ।

गोहलोत—संज्ञा पुं० [गोह (नाम)] क्षत्रियों की एक जाति । वि० दे० 'गहलोत' । उ०—तोमर बैस पनवार सवाई । श्री गोहलोत आय सिर नाई ।—जायसी (शब्द०) ।

गोहसम—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष ।

गोहानी^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गौहड़' ।

गोहार—संज्ञा स्त्री० [सं० गो + हार (हरण)] १. पुकार । दुहाई । रक्षा या सहायता के लिये चिल्लाना । उ०—धार्ध धारि फिरि के गोहार हितकारी होत आई बीच मितत जपत राम नाम को ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—प्राचीन काल में जब किसी की गाय कोई छोड़ ले जाता था, तब वह उसकी रक्षा के लिये पुकार मचाता था ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचना ।—मचाना ।—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—गोहार मारना = सहायता के लिये पुकार मचाना । गोहार लड़ना = (१) सबको ललकार कर लड़ना । गँवारों का लाठियों से लड़ना । (२) एक आदमी का कई आदमियों से लड़ना ।

२. हल्ला गुल्ला । शोर । चिल्लाहट ।

क्रि० प्र०—मचना ।—मचाना ।—लगना ।—लगाना ।

३. वह भीड़ जो रक्षा के लिये किसी की पुकार सुनकर इकट्ठी हो गई हो ।

गोहारि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गोहार] दे० 'गोहार' ।

गोहारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गोहार] १. गोहार । २. वह घन जो कोई हानि पूरी करने के लिये हो ।—(लश०) । ३. वह घन

जो बंदरगाह में जहाज की आवश्यकता से अधिक रहने के कारण हरजाने के तौर पर दिया या लिया जाय ।—(लश०) ।

गोहिस—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] १. गोरक्षक । २. विष्णु [को०] ।

गोहिर—संज्ञा पुं० [सं०] ऐंडी [को०] ।

गोही^१—संज्ञा स्त्री० [सं० √ गृह्, या गृहन] १. दुराव । छिपाव । २. छिपी हुई बात । गुप्त वार्ता । उ०—अपनी बनिज दुरावत हो कत नाउं लियो इतनी ही । कहा दुरावति हो मो आगे सब जानत तुव गोही ।—सूर (शब्द०) । ३. महुए का बीज । ४. फलों का बीज गुठली ।

गोहुँअन—संज्ञा पुं० [हि० गोहुवन] दे० 'गोहुवन' ।

गोहुअन—संज्ञा पुं० [हि० गोहुवन] दे० 'गोहुवन' ।

गोहुवन—संज्ञा पुं० [हि० गेहूँ] एक प्रकार का विषधर माँष ।

गोहूँ—संज्ञा पुं० [सं० गोधूम] गेहूँ । उ०—गोहूँ शानि सु कहे अहारा । सौठी चाँवर अधिक पियारा ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १०३ ।

गोहेरा—संज्ञा पुं० [सं० गोषा] बिसखोपरा नामक विषैला जंतु ।

गौजिक, गौजिग—संज्ञा पुं० [सं० गोञ्जिक, गोञ्जिग] १. स्वर्ण-कार । २. जौहरी [को०] ।

गौ—संज्ञा स्त्री० [सं० गम्, प्रा० गँव] १. प्रयोजन सिद्ध होने का स्थान या अवसर । सुयोग । मौका । घात । दाँव । उ०—मनहुँ हँदु बिब मध्य, कंज मीन खंजन लखि, मधुप मकर, कीर आए तकि तकि निज गौहँ ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—ताकना ।—देखना ।

यौ०—गौ घात = उपयुक्त अवसर या स्थिति । मौका ।

२. प्रयोजन । मतलब । गरज । अर्थ । उ०—यह सक्ति मैं पहिले कहि राखी असित न अपने होहीं । मूर काटि जो माथो दीजे चलत आपनो गो हो ।—मूर (शब्द०) ।

यौ०—गौ का = (१) मतलब का । काम का । प्रयोजनीय (वस्तु) । जैसे,—बाजार जाते हो; कोई गो की चीज मिले तो लेते आना । (२) स्वार्थ । मतलबी । भुदगरज (व्यक्ति) । गौ का पार = केवल अपना मतलब गाँठने के लिये साथ में रहनेनाला । मतलबी । स्वार्थी ।

मुहा०—गौ गाँठना = अपना मतलब निकालना । स्वार्थ साधन करना । काम निकालना । गौ निकलना = काम निकलना । प्रयोजन सिद्ध होना । स्वार्थसाधन होना । उ०—अब तो गौ निकल गई; वे हमसे क्यों बोलेंगे । गौ निकालना = काम निकालना । प्रयोजन सिद्ध करना । स्वार्थ साधन करना । मतलब पूरा करना । गौ पड़ना = काम पड़ना । गरज होना । दरकार होना । आवश्यकता होना । जैसे,—हमें ऐसी ब्या गौ पड़ी है जो हम उनके यहाँ जायें । वि० दे० 'गव' ।

३. डब । चाल । डंग । उ०—कल कुंडली चीननी चार प्रति चलत मत गज गौ हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

गौच—संज्ञा पुं० [हि० गौच] दे० 'गौच' ।

गौट—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का छोटा वृक्ष ।

विशेष—यह उत्तर और पश्चिम भारत में अधिकता से होना है और इसकी लकड़ी पीलापन लिए बहुत कड़ी होती है।

गौटा^१—संज्ञा पुं० [हि० गांव + टा (प्रत्य०)] १. वह खंच जो किसी गांव में प्रजा के विशेष काम के लिये, परोपकार, धर्म आदि के विचार से जमींदार की ओर से किया जाय।

विशेष—प्रायः गुमास्तों को जमींदारों की ओर से इस प्रकार के खंच करने का अधिकार होता है; और कभी कभी खंच होने के बाद उसका कुछ धन प्रजा से भी वसूल किया जाता है।

२. छोटा गांव।

गौटा^२—संज्ञा पुं० [हि० गाँ + टा (प्रत्य०)] १. गो। अक्सर। घात। २. झलगाव रखना। ३. गुट बनाना।

गौटिया—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] गांव का प्रधान। गांव का मुखिया। उ०—भादो की गणेश चतुर्थी को गांव के पुराने गौटियों के यहाँ की परंपरा के अनुसार गणेश जी की मूर्ति स्थापित की जाती है।—शुक्ल अभि० प्र०, पृ० १३८।

गौटियाई—संज्ञा ली० [हि० गौटा] माफी गांव।

गौठिया—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] दे० 'गौटिया'। उ०—कलचुरिया काल में गढ़ाधीशों को दीवान बनवा ठाकुर कहा जाता था और ताल्लुकाधीशों को डाऊ तथा ग्रामप्रमुख गौठिया।—शुक्ल अभि० प्र०, पृ० २०१।

गौका^७—क्रि० वि० [हि० गौका] दे० 'गौड़े'। उ०—जोगिनु ने भृगुखाला कहिए, सोभा कही न जाइ, पहुँचे निकट जनकपुर गोड़े, जोति दई छुड़काई।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० १७६।

गौनि^७—संज्ञा पुं० [हि० गौन] दे० 'गौन' उ०—बैल उलटि नाइक कौ लाघो बस्तु माहि भरि गौनि अपार।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ५५२।

गौवा^७—संज्ञा पुं० [सं० गाम] दे० 'गाँव'। उ०—पहिलि ओठि के चली सगुरिया, गोवा के लोग कहै बड़ी फुहरी।—कबीर श०, पृ० २४।

गौहनि^७—संज्ञा पुं० [हि० गोहन] दे० 'गोहन-१'। उ०—मैं सासने पीव गौहनि आई।—कबीर प्र०, पृ० १६४।

गौह^७—वि० [हि० गांव + हा (प्रत्य०)] गांव संबंधी। गांव का। देहाती।

गौ^७—संज्ञा ली० [सं०] गाय। गैया। वि० दे० 'गो'।

गौ^७—क्रि० प्र० [हि० गा = गया] दे० 'गया'। उ०—एक बात गौ सिषल दोसर संक सदीव।—जायसी प्र०, (गुप्त), पृ० २१३।

गौख^७—संज्ञा ली० [सं० गवाक्ष] १. वह छोटी खिड़की जो दीवार या छत में हवा और रोशनी आने के लिये बनाई जाती है। झरोखा। २. वह दालान या दरवाजा जो प्रायः देहाती मकानों के दरवाजे पर बैठने आदि के लिये बना रहता है। चौपाल। उ०—बनी गोख बेजोख की मोख सो है। पनाकानु केकी पिकी हौ झरो है।—सूदन (शब्द०)।

गौखा^७—संज्ञा पुं० [सं० गवाक्ष] झरोखा। गोख।

गौखा^७—संज्ञा पुं० [हि० गौ = गाय + खा] गाय का चमड़ा।

गौखी^७—संज्ञा ली० [हि० गौखा] बूटा।

गौगा—संज्ञा पुं० [प्र० गौगाह] १. गोर। गुल गपाडा। हल्ला। २. अफवाह। जनश्रुति।

गौगाई—वि० [प्र० गौगाह + आ० ई (प्रत्य०)] गोर मचानेवाला। कोलाहल करनेवाला।

गौचरी—संज्ञा ली० [गौ + चरना] गाय चराने का कर जो जमींदार अपनी प्रजा से लेता है और जिसके बदले वह गायों को चरने के लिये कुछ भूमि छोड़ देता है।

गौड़—संज्ञा पुं० [सं० गौड] बंग देश का एक प्राचीन विभाग। जो किसी के मत से मध्य बंगाल से उड़ीसा की उत्तरी सीमा तक और किसी के मत से वर्तमान बर्दवान के आस पास था।

विशेष—कर्मपुराण और निग पुराण से जाना जाता है कि वर्तमान गौड़ा के आसपास का प्रदेश, जिसकी राजधानी आवस्ती थी, गौड़ प्रदेश कहलाता था। हितोपदेश में कौशाबी को भी इसी गौड़ प्रदेश के अंतर्गत लिखा है। दसवीं और ग्यारहवीं सदी के चेदि राजाओं के ताम्रपत्रों और शिलालेखों से पता लगता है कि वर्तमान गौड़वाना के पास का देश भी गौड़ ही कहलता था। राजतरंगिणी में 'पंचगौड़' शब्द आया है जिससे जान पड़ता है कि किसी समय पाँच गौड़ देश थे। स्कंदपुराण के सह्याद्रि खंड में से जिन जिन स्थानों के ब्राह्मणों को पंचगौड़ के अंतर्गत लिखा है, वे ऊपर के बतनाए हुए स्थानों से भिन्न हैं।

२. स्कंदपुराण के सह्याद्रि खंड के अनुसार ब्राह्मणों की एक कोटि जिसमें सारस्वत, गान्धकुब्ज, उत्कल, मैथिल और गौड़ संमिलित हैं। ३. ब्राह्मणों की एक जाति जो पश्चिमी उत्तरप्रदेश, बिस्नी के आसपास तथा राजपूताने में पाई जाती है। ४. गौड़ देश का निवासी। ५. ३६ प्रकार के राजपूतों में से एक जो उत्तर पश्चिम भारत में अधिकता से पाए जाते हैं।

विशेष—टाड साहब का मत है कि बंगाल (गौड़) के राजा इसी कोटि के राजपूत थे।

६. कायस्थों का एक भेद। ७. संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

विशेष—यह श्रीराग का पुत्र माना जाता है और इसके गाने का समय तीसरा पहर और संध्या है। इसके कान्हड़ा, गौड़, केदार गौड़, नारायण गौड़, रीति गौड़ आदि अनेक भेद हैं।

गौड़नट—संज्ञा पुं० [सं० गौड़नट] संगीत में गौड़ और नट के योग से बना हुआ एक संकर राग।

गौड़पाद—संज्ञा पुं० [सं० गौड़पाद] स्वामी शंकराचार्य के गुरु के कुछ जिन्होंने माद्रक्योपनिषद् पर कारिका लिखी थी और सायणकारिका का आध्य किया था।

गौड़पादाचार्य—संज्ञा पुं० [सं० गौड़पादाचार्य] दे० 'गौड़पाद'।

गौड़मल्लार—संज्ञा पुं० [सं० गौड़मल्लार] गौड़ और मल्लार के योग से बना हुआ एक संकर राग।

विशेष—यह प्रायः वर्षा ऋतु में रात के दूसरे पहर गाया जाता है। कुछ लोग इसे मल्लार राग की रागिनी भी मानते हैं।

गौडसारंग—संज्ञा पुं० [सं० गौड सारङ्ग] गौड और सारंग के योग से बना हुआ एक संकर राग।

विशेष—यह ग्रीष्म ऋतु में दोपहर से पहले गाया जाता है। इसमें ऋषभ वादी और मध्यम संवादी होता है और यह वीर तथा शांत रस के वर्णन के लिये अधिक उपयुक्त समझा जाता है।

गौडिक^१—वि० [सं०] १. गुड़ से संबंधित। २. गुड़ का [को०]।

गौडिक^२—संज्ञा पुं० १. ईख। २. एक प्रकार की गुड़ की शराब [को०]।

गौडिया^१—वि० [हि० गौड + इया (प्रत्य०)] १. गौड देश का। गौड देश संबंधी। २. गौड जातीय। गौड। उ०—मधुसूदन-दास गौडिया ब्राह्मण वृंदावन में रहते हैं।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० १८४।

गौ०—गौडिया संप्रदाय = चैतन्य महाप्रभु का चलाया हुआ वैष्णव संप्रदाय।

गौड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० गौडी] १. एक प्रकार की मदिरा जो गुड़ से बनती है। वैद्यक में इसे वात और पित्तनाशक, बल और वातिवर्द्धक, दीपन, पथ्य और रुचिकर कहा है। २. काव्य में एक प्रकार की रीति या वृत्ति जिसे परुषा भी कहते हैं। यह ओजगुणप्रकाशक मानी जाती है और इसमें टवर्ग, संयुक्त अक्षर अथवा समास अधिक आते हैं; जैसे,—(क) कटकटहि मकंद विकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) वक्र वक्र करि पुच्छ करि रष्ट ऋच्छ कपि गुच्छ। सुमट ठट्ट वन धट्ट सम मदहि रच्छन तुच्छ—(शब्द०)। ३. संपूर्ण जाति की एक रागिनी जो रात के पहले पहर में गाई जाती है।

विशेष—कुछ लोग इसे कल्याण राग का एक भेद मानते हैं। यह वीर और शृंगार रस के वर्णन के लिये बहुत उपयुक्त होती है।

गौड़ीय^१—वि० [सं० गौडीय] [वि० स्त्री० गौडीया] १. गौड देश से संबंधित। २. (साहित्यिक रचना) जिसमें गौड़ी वृत्ति प्रधान हो [को०]।

गौ०—गौडीया वृत्ति।

गौड़ीय^२—संज्ञा पुं० गौड देश का व्यक्ति [को०]।

गौडीय भाषा—संज्ञा पुं० [सं० गौडीय भाषा] बंगला भाषा [को०]।

गौडेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० गौडेश्वर] कृष्णचैतन्य स्वामी जिन्हें गौरांग महाप्रभु भी कहते हैं।

गौण—वि० [सं०] जो प्रधान या मुख्य न हो। २. सहायक। संचारी। ३. गुण संबंधी [को०]।

गौणचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० गौणचान्द्र] दो प्रकार के चांद्र मासों में से एक जो किसी मास की कृष्ण प्रतिपदा से उस मास की कृष्ण पूर्णिमा तक होता है। इसका मान प्रायः उत्तर में ही अधिक है।

गौणपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] साधारण पक्ष। किसी विषय का वह पक्ष जो अप्रधान या महत्वहीन हो [को०]।

गौणिक—वि० [सं०] १. जिससे वाच्य का गुण प्रकाशित हो।

गुणघोतक। २. सत्, रज, तम आदि गुणों से संबंध रखने-वाला। ३. गुणी। ४. एक प्रकार के बोरे या गीन से संबंध रखनेवाला [को०]।

गौणी^१—वि० स्त्री० [सं०] अप्रधान। साधारण। जो मुख्य न मानी जाय।

गौणी^२—संज्ञा स्त्री० अस्ती प्रकार की लक्षणाओं में से एक जिसमें केवल किसी वस्तु का गुण लेकर दूसरे में आरोपित किया जाता है। जैसे,—कल्पवृक्ष हैं अवधपति जगजाह्नव यशवंत। इस पद में कल्पवृक्ष के मुख्य गुण उदारता को अवधपति में आरोपित कर उसी के द्वारा उनका जगत में यशस्वी होना प्रकट किया गया है। यहाँ कल्पवृक्ष शब्द में गौणी लक्षणा है। साहित्यदर्पण के अनुसार 'साद्यथात् मता गौणी' अर्थात् सादृश्य संबंध ही प्रयोजक हो तो गौणी लक्षणा होती है।

गौणी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० गौणिक] ३० 'गौन'।

गौतम—संज्ञा पुं० [सं०] १. गौतम ऋषि के वंशज। २. न्याय शास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य और प्रणेता एक ऋषि।

विशेष—यह ईसा से प्रायः ६०० वर्ष पहले हुए थे।

३. रामायण, महाभारत और पुराणों आदि के अनुसार एक ऋषि।

विशेष—इन्होंने अपनी स्त्री ग्रहिल्या को इंद्र के साथ अनुचित संबंध करने के कारण शाप देकर पत्थर बना दिया था, जिसका उद्धार भगवान् रामचंद्र ने किया था।

४. बुद्धदेव का एक नाम। ५. सप्तषिंडल के ताराओं में से एक।

६. एक पर्वत का नाम।

विशेष—यह नासिक के पास है और इसमें से गोदावरी नदी निकलती है।

७. क्षत्रियों का एक भेद। ८. भूमिहारों का एक भेद। ९. एक ऋषि जिन्होंने स्मृति बनाई है। १०. गौतम ऋषि के पुत्र शतानंद [को०]। १०. कृपाचार्य [को०]। १२. एक विष [को०]।

गौतमतिय^५—संज्ञा स्त्री० [सं० गौतम + हि० तिय] गौतमपत्नी। ग्रहिल्या। उ०—गौतमतिय तारन चरन कमल आनि उर देखे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८४।

गौतमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गौतम ऋषि की स्त्री ग्रहिल्या। २. कृपाचार्य की स्त्री जो प्रसिद्ध तपस्विनी थी। ३. गोदावरी नदी जो गौतम नामक पर्वत से निकली है। ४. गौतम ऋषि की बनाई हुई स्मृति। ५. दुर्गा का एक नाम। ६. बुद्ध के उपदेश [को०]। ७. गौरीचन [को०]। ८. दुर्गा [को०]।

गौता^६—संज्ञा पुं० [हि० गौता] ३० 'गौता'। उ०—सुंदर भंदर पैस करि बिल मो गौता मारि।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६८७।

गौद—संज्ञा पुं० [हि० घौद] ३० 'घौद'।

गौदा—संज्ञा पुं० [हि० घौद] ३० 'घौद'।

गौदाना—संज्ञा पुं० [हि० गोदान] ३० 'गोदान'।

गौडुमा—वि० [हि० गो + दुम + आ (प्रत्य०)] गाय की पूँछ के आकार का। जो एक ओर अधिक मोटा हो और दूसरी ओर क्रमशः कम होता जाय। उतार चढ़ाव का। गावदुम।

गोषार, गोषेय, गोषेर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गोषिकात्मज' [को०] ।
गोषमीन—संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ का बेटा । गेहूँ का मैदान या क्षेत्र [को०] ।
गोन^१—संज्ञा पुं० [सं० गमन, प्रा० गमण, गवरण] दे० 'गमन' ।

गोन^२—संज्ञा पुं० [सं० गाउन] दे० 'गाउन' ।

गोन^३—संज्ञा स्त्री० [सं० गोलिक, प्रा० गोण] एक प्रकार का बोग ।

विशेष—इसको किसान स्वयं ही रस्मियों से बिनकर तैयार करते हैं ।

गोन^४—संज्ञा पुं० [सं० गोण] दे० 'गोण' । उ०—या प्रकार श्री गुसाईं जो साध भक्ति मार्ग के रक्षक हैं । यह गोन भाव है ।

—बो सो बावन०, भा० १, पृ० ११३ ।

गोनई—संज्ञा स्त्री० [सं० गायन] गान । संगीत ।

गोनर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] महाभाष्यकार पतंजलि [को०] ।

गोनहर—संज्ञा स्त्री० [हि० गोनहरी] दे० 'गोनहागी' ।

गोनहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोन (= गाना) + हरी (प्रत्यय)] दे० 'गोनहारी' ।

गोनहाई—वि० [हि० गोना + हाई (प्रत्यय)] जिसका गोना हाल में हुआ हो । जो गोना होने के बाद समुराल में पहले पहल खाई हो । उ०—एसी चतुराई थी कहीं ते खाई खुनाच हों तो देखि रीक रही गोनहाई तिय की ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

गोनहारा—संज्ञा स्त्री० [हि० गोना + हार (प्रत्यय)] वह स्त्री जो ल डुहिन के साथ उसके समुराल जाय ।

गोनहारिन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गोनहारी' ।

गोनहारी—संज्ञा स्त्री० [हि० गाना + हारी (= वाली)] एक प्रकार की गानेवाली स्त्रियाँ जो कई एक साथ मिलकर डोलक पर या शहनाई आदि पर गाती हैं । इनकी कोई विशेष जाति नहीं होती । प्रायः घर से निकली हुई छोटी जाति की स्त्रियाँ ही आकर इसमें सम्मिलित हो जाती हैं और गाने बजाने तथा कसब कमाने लगती हैं ।

गोना—देश० पुं० [सं० गमन] विवाह के बाद की एक रस्म जिसमें घर अपने समुराल जाता है और कुछ रीति रस्म पूरी करके बधू को अपने साथ ले आता है । द्विरागमन । मुक्तावा । उ०—तुलसी जिनकी भूर परसि अहल्या तरी गीतम सिचारे गृह गोनी सो लिबाइ कै ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—गोना देना = बधू को घर के साथ पहले पहल समुराल भेजना । गोना लाना = घर का अपने समुराल आकर बधू को अपने साथ ले आना ।

क्रि० प्र०—लेना ।—माँगना ।

विशेष—पूरब में 'गोने जाना' और 'गोने आना' आदि भी बोलते हैं ।

गोनि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गमन] दे० 'गमन' । उ०—मनु कोमल पग गोनि फुकरगन फूल पावड़े धारे ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४४६ ।

गोनिशो^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गोलिक] दे० 'गोन' । उ०—काहेक टट्टा काहेक पाखर काहेक भरी गोनिशो ।—कबीर श०, पृ० २२ ।

गोपिक—संज्ञा पुं० [सं०] गोपी का पुत्र । ग्वाले का पुत्र [को०] ।

गोपुच्छ—वि० [सं०] गाय की पूँछ के समान [को०] ।

गोपुच्छिक—वि० [सं०] गाय की पूँछ से संबंधित ।

गोप्तेय—संज्ञा पुं० [सं०] वैश्य स्त्री का पुत्र [को०] ।

गोमुख—संज्ञा पुं० [सं० गोमुख] दे० 'गोमुख' ।

गोमुखी—संज्ञा स्त्री० [हि० गोमुख + ई (प्रत्यय)] गौ के मुख के आकार की बनी हुई धोती जिसमें माला रखकर जप करते हैं । वि० दे० 'गोमुखी' ।

गोमेद—संज्ञा पुं० [सं० गोमेद] एक प्रकार का रत्न जो चार रंग का होता है—खैत, पीताम्ब, लाल और गहरा नीला । इसकी गणना उपरत्नों में होती है ।

गोमोदिक^१—संज्ञा पुं० [सं० गोमेदक] दे० 'गोमेद' । उ०—पदिपन्ना मानिक मंगवाए । गोमोदिक लीलागन ल्याए ।—प० रासो०, पृ० २२ ।

गोरंज—संज्ञा पुं० [सं० गौराङ्ग] गोरों का देश । विलायत ।

गोर^१—वि० [सं०] १. गिरे चमड़ेवाला । गिरा । २. पबेत । उज्ज्वल । सफेद ।

गौर^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल रंग । २. पीला रंग । ३. चंद्रमा । ४. धव नाम का पेड़ । ५. सोना । ६. याज्ञवल्क्य के अनुसार एक प्रकार का बहुत छोटा मान जो तीनने के काम आता और प्रायः तीन सरसों के बराबर होता है । ७. केसर । ८. एक प्रकार का घृण जिसके खुर बीच से फटे नहीं होते । ९. सफेद सरसों । १०. चैतन्य महाप्रभु का एक नाम । ११. एक पर्वत जो ब्रह्मांडपुराण के अनुसार कैनास के उत्तर में है । १२. एक प्रकार का भैंसा [को०] । १३. बृहस्पति ग्रह [को०] ।

गौर^३—संज्ञा पुं० [सं० गौड] दे० 'गौड' ।

गौर^४—संज्ञा पुं० [सं० गौर] १. सोचविचार । चिंतन । २. खयाल । ध्यान । उ०—सो दीसे सब दौर व्याप रहो मन माहि जो । सज्जन करिके गौर बाही को निज जानिए ।—रसनिधि (शब्द०) ।

यो०—गौर से = ध्यानपूर्वक । ध्यान देकर ।

गौर^५—संज्ञा स्त्री० [सं० गौरी] पार्वती । उ०—जनम हुके जगजीत री सुप्रसन संकर गौर ।—रा० ६०, पृ० २६ ।

गौरक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान [को०] ।

गौरक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] गायों की रक्षा । गोपालन [को०] ।

गौरप्रोब—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक देश जो कूर्मविभाग के मध्य में है ।

गौरचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० गौरचन्द्र] महाप्रभु चैतन्य देव [को०] ।

गौरतलब—वि० [सं० गौरतलब] गौर करने योग्य । विचारणीय ।

गौरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गौराई । गौरापन । २. सफेदी ।

गौरमदाहनि^१—संज्ञा पुं० [देश०] इन्द्रधनुष । उ०—घनु है यह गौर-मदाहनि नाही । शर जान बहे जलधार वृषा हों ।—रामचं०, पृ० ८८ ।

गौरव^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़प्पन । महत्त्व । २. गुष्टा । भारीपन ।

१. संमान । आदर । इज्जत । ४. उत्कर्ष । ५. अभ्युत्थान ।

६. छंदशास्त्र में गुरु होने का भाव या स्थिति (को०) ।

गौरव^२—वि० गुरु संबंधी (को०) ।

गौरवार्ण—वि० [सं०] गोरे रंग का । गोरा ।

गौरवशाली—वि० [सं० गौरवशालिन्] संमानपूर्ण । गौरवमय ।

गौरवा^३—संज्ञा पुं० [हि० गौरवा] चटक पत्ती । बिड़ा ।

गौरवा^४(पु)—वि० [सं० गौरव] गौरवयुक्त । गौरवमय । बड़ा ।

उ०—करे मेराव सोइ गौरवा ।—जायसी ग्रं०, पृ० १५८ ।

गौरवान्वित—वि० [सं०] संमानप्राप्त । गौरवयुक्त ।

गौरवासन—संज्ञा पुं० [सं०] गौरवपूर्ण पद । संमानित पद (को०) ।

गौरवास्पद—वि० [सं०] गौरवपूर्ण । संमानित । उ०—वीरपुरुष युद्धक्षेत्र से भागकर अपमानित एवं विताडित होने की अपेक्षा वहीं मर जाना अधिक गौरवास्पद समझते हैं ।—गौली, पृ० १४३ ।

गौरवित—वि० [सं०] गौरवान्वित । संमानपूर्ण (को०) ।

गौरशाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शालिधान्य ।

गौरशालि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शालिधान्य ।

गौरवशाली—वि० [सं० गौरवशालिन्] [वि० स्त्री० गौरवशालिनी] गौरवमय (को०) ।

गौरसुवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साग जो चित्रकूट के तर स्थानों में अधिकता से होता है ।

विशेष—इसके पत्ते छोटे और सुनहले होते हैं और हाथ में लेकर मनने से उनके बहुत से छोटे छोटे टुकड़े हो जाते हैं जिनमें से बहुत अच्छी गंध निकलती है । वैद्यक में यह शीतल और त्रिदोष उजर तथा श्वात को दूर करनेवाला माना गया है ।

गौरांग^१—संज्ञा पुं० [सं० गौराङ्ग] १. विष्णु । २. श्रीकृष्ण । ३. चैतन्य महाप्रभु ।

गौरांग^२—वि० गोरे रंग वाला (योरप का, विशेषतया भ्रंज) ।

गौरांगमहाप्रभु—संज्ञा पुं० [सं० गौराङ्ग महाप्रभु] चैतन्य महाप्रभु ।

२. (व्यंग्य में) भ्रंज ।

गौरांगी^१—वि० [सं० गौराङ्गी] १. गोरी । २. सुंदरी (को०) ।

गौरांगी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] भ्रंजरेज स्त्री । मेम ।

गौरा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० गौर का स्त्री०] १. गोरे रंग की स्त्री । २. पार्वती । गिरजा । ३. हन्दी । ४. एक रागिनी जिसे कुछ लोग श्री राग की स्त्री मानते हैं ।

गौरा^२—संज्ञा पुं० [सं० गोरोक्षन] गोरोचन नामक सुगंधित द्रव्य । उ०—रवि रवि राखे चंदन बीरा । पोते अंगर मेध श्री गोरा ।—जायसी (शब्द०) ।

गौराटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कीवा (को०) ।

गौरार्द्रक—संज्ञा पुं० [सं०] अफीम, संखिया, कनेर आदि स्यावर विष ।

गौरास्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बंदर (को०) ।

गौराहिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप (को०) ।

गौरि^१—संज्ञा पुं० [सं०] आगिरस ऋषि ।

गौरि^२—संज्ञा स्त्री० [सं० गोरी] दे० 'गोरी' ।

गौरि^३—संज्ञा पुं० [सं० गौर] दे० 'गौर' । उ०—फटे अली सौ रारि है जो कछु करनी गौरि ।—सुजान०, पृ० १७ ।

गौरिक^१—वि० [सं०] गोरा (को०) ।

गौरिक^२—संज्ञा पुं० सफेद सरसों (को०) ।

गौरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्वारी लड़की । गोरी (को०) ।

गौरिवर^१—संज्ञा पुं० [हि० गौरि + वर] महादेव । शंकर । उ०—शिव शिव हर शंकर गौरिवर गंगाधर हर हर कहत ।—द्वज० ग्रं०, पृ० ११६ ।

गौरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० गौर+इया (प्रत्य०)] १. काले रंग का एक प्रकार का जलपक्षी ।

विशेष—इसका सिर भूरा और गर्दन सफेद होती है । ऋतुभेदानुसार इसकी चोंच का रंग बदला करता है ।

२. मिट्टी का बना हुआ एक प्रकार का छोटा हुक्का । ३. एक प्रकार का मोटा कपड़ा ।

गौरिख—संज्ञा पुं० [सं०] १. सफेद सरसों । २. लोहवृणं । लोहे का चूरा (को०) ।

गौरिष्य^१—संज्ञा पुं० [सं० गोरीश] शिव । महादेव । उ०—कहुं ध्यान गौरिष्य को हृष्ट धारे ।—प० रासो, पृ० १७६ ।

गौरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोरे रंग की स्त्री । २. पार्वती । गिरजा ।

विशेष—इस अर्थ में गोरी शब्द के बाद पतिवाची शब्द लगाने से 'शिव' और पुत्रवाची शब्द लगाने से 'गणेश' या 'कार्तिकेय' अर्थ होता है ।

३. आठ वर्ष की कन्या । ४. हल्दी । ५. दाहहल्दी । ६. तुलसी । ७. गोरोचन । ८. सफेद दूब । ९. सफेद रंग की गाय । १०. मज्जी । ११. गंगा नदी । १२. चमेली । १३. सोन कबली । १४. प्रियंगु नाम का वृक्ष । १५. पृथिवी । १६. बुद्ध की एक शक्ति का नाम । १७. शरीर की एक नाड़ी । १८. एक बहुत प्राचीन नदी जो पूर्व काल में भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर थी और जिसका वर्णन वेदों और महाभारत में आया है । १९. गुड़ से बनी हुई शराब । गोड़ी । २०. वरुण की पत्नी (को०) । २१. वाणी (को०) । २२. एक प्रकार का राग जिसे गोरी राग कहते हैं । उ०—मुरली में गोरी धुनि ढोरी यनमानंद तैं, तेरे द्वार ठठवनि उठम घने ठनै ।—धनानंद, पृ० १२५ । २३. अनाहत चक्र की आठवीं मात्रा ।

गौरीकांत—संज्ञा पुं० [सं० गौरीकान्त] शिव (को०) ।

गौरीगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय (को०) ।

गौरीचंदन—संज्ञा पुं० [सं० गौरीचन्दन] लाल चंदन ।

गौरीज—संज्ञा पुं० [सं०] १. अभ्रक । २. कार्तिकेय । ६. गणेश ।

गौरीनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (को०) ।

गौरीपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] शिव जी की जलहरी जिसे जलधरी या अरघा भी कहते हैं ।

गौरीपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] प्रियंगु का वृक्ष ।

गौरीवंत—संज्ञा पुं० [हि० गौरी+वंत] एक प्रकार का वंत जिसे पक्का वंत कहते हैं ।

गौरीभर्ता—संज्ञा पुं० [सं० गौरी+भर्तृ] शिव (श्री०) ।

गौरीलक्षित—संज्ञा पुं० [सं०] हरताम ।

गौरीशर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

गौरीशंकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव । शिव । २. हिमालय पर्वत की सबसे ऊँची चोटी का नाम ।

गौरीश—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (श्री०) ।

गौरीशखर—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत की वह चोटी जिसपर पार्वती जी ने तपस्या की थी (श्री०) ।

गौरीसर—संज्ञा पुं० [?] हंसराज नाम की बूटी । संमलपत्ती ।

गौरीसन्धिक—संज्ञा पुं० [सं०] गुरुपत्नी से अनुचित संबंध रखनेवाला शिष्य (श्री०) ।

गौरुबटी—संज्ञा श्री० [सं०] करमवं या धमली नाम का झाड़ीदार पौधा । वि० दे० 'करमवं' ।

गौरैया—संज्ञा श्री० [हि० गौरिया] दे० 'गौरिया' ।

गौरुक्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] गाय बैलों के अच्छे बुरे लक्षणों को पहचाननेवाला (श्री०) ।

गौका—संज्ञा श्री० [सं०] गौरी । पार्वती । गिरजा ।

गौलिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुष्कक नामक वृक्ष । २. एक प्रकार का वृक्ष (श्री०) ।

गौलोचन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गौरोचन' । उ०—गौलोचन गो सीस मिरग भद नाभि ते जानौ ।—पलटू०, भा० १, पृ० ६६ ।

गौलिक—संज्ञा पुं० [सं०] ३० सिपाहियों का नायक या अफसर ।

गौल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरवत । २. शराब (श्री०) ।

गौविद—संज्ञा पुं० [सं० गोविन्द] दे० 'गोविन्द' । उ०—पेतरपाल को पूजे कीर्त । जो परिहरि गोविन्द मोन ।—पृ० रा०, ७।२६ ।

गौशक्तिक—वि० [सं०] श्री गायों को रखनेवाला (श्री०) ।

गौशाला—संज्ञा पुं० [सं० गोशाला] दे० 'गोशाला' ।

गौश्रंग—संज्ञा पुं० [सं० गोश्रङ्ग] एक प्रकार का सामान ।

गौष्ठीन—संज्ञा पुं० [सं०] पुरानी गोशाला का स्थान (श्री०) ।

गौस—संज्ञा पुं० [सं० गौस] १. बली से बड़ा पद रखनेवाला मुसलमान । २. मुसलमानों की उपाधि । उ०—गौस श्री कुतुब दिस फिकिर का करे ।—कबीर दे०, पृ० २१ ।

गौसम—संज्ञा पुं० [हि० गोसम] गोसम नाम का पेड़ ।

गौसहसिक—वि० [सं०] सहस्र गायें रखने या पालनेवाला (श्री०) ।

गौहन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गोहन' । उ०—देखि रूप धन छाया करही । पसु पक्षी सब गोहन फिरही ।—नंद० ब्रं०, पृ० १२० ।

गौहनि—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'गोहन' । उ०—गौहनि लागी धाद ।—कबीर दे०, पृ० १० ।

गौहर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. मोती । मुक्ता । २. जौहर ।

गौहरा—संज्ञा पुं० [हि० गौ+हरा] गायों के रहने का स्थान । गौड़ा ।

गौहरक—वि० [सं०] गुरुकों से संबंध रखनेवाला (श्री०) ।

ग्या—संज्ञा श्री० [सं०] पृथ्वी (श्री०) ।

ग्यांभिर—संज्ञा पुं० [सं०] कीकर की जाति का एक पेड़ जिसके पत्तों और लकड़ियों से पपड़िया खैर बनाया जाता है ।

ग्यान—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ज्ञान' । उ०—ग्यान ध्यान धारना धरि धरि समाधि देखे पै न देखे ।—घनानंद, पृ० ४३७ ।

ग्या—संज्ञा पुं० [हि० ग्या] दे० 'गया' । उ०—हेरा ग्या ऊँसर कन्हइ, कहिजइ एही बात ।—ढोला०, पृ० ६२६ ।

ग्याना—संज्ञा पुं० [सं० ज्ञान] दे० 'ज्ञान' ।

ग्याभन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ग्याभिन' । उ०—हे पिता, जब यह कुटी के निकट चरनेवाली ग्याभन हरिनी धेमकुशल से जने, तुम किसी के हाथों यह संगन समाचार मुझे कहला भेजना, मूल मत जाना ।—शकुंतला, पृ० ७४ ।

ग्यारमै—संज्ञा पुं० [सं० एकादश] ग्यारहवाँ । उ०—पंच दुष्ट धान परि सोम भोम । ग्यारमै राह खल करन होम ।—पृ० रा०, १।७०८ ।

ग्यारसा—संज्ञा श्री० [हि० ग्यारह] एकादशी तिथि ।

ग्यारह—वि० [सं० एकादश, प्रा० एगारस] दस और एक ।

ग्यारह—संज्ञा पुं० दस और एक की सूचक संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—११ ।

ग्यारहजोब—संज्ञा पुं० [हि० ग्यारह+जोब] ग्यारह भक्त । वे ये हैं—ध्रुव, प्रह्लाद, गणिका, शेषनाग, गज, नामदेव, वात्मीक, अजामील, शिव, गोपियाँ (या मीरा) और तुलसी । ग्यारहवाँ - वि० [हि० ग्यारह+वाँ (प्रत्यय)] [वि० श्री० ग्यारहवीं] ग्यारह की संख्यावाला । वह जो दस के बाद आए ।

ग्यारा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ग्यारह' । उ०—तिय बिपोग ऋषि तन तज्यो ग्यारा से चालीस ।—ह० रासो, पृ० २६ ।

ग्रंथ—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ] १. पुस्तक । किताब ।

ग्रंथ—ग्रंथकार । ग्रंथकर्ता । ग्रंथसाहब । ग्रंथसंधि, आदि ।

२. गाँठ देना या लगाना । ग्रंथन । ३. धन । ४. अनुष्टुप् छंद में रचित काव्य (श्री०) ।

ग्रंथकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थकर्तृ] पुस्तक बनाने या लिखनेवाला । ग्रंथ की रचना करनेवाला ।

ग्रंथकार—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थकार] दे० 'ग्रंथकर्ता' ।

ग्रंथकुटी, ग्रंथकूटी—संज्ञा श्री० [सं० ग्रन्थकुटी, ग्रन्थकूटी] पुस्तकालय (श्री०) ।

ग्रंथकृत—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थकृत] ग्रंथकार (श्री०) ।

ग्रंथचुम्बक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ+चुम्बक (= चुम्बनेवाला)] जो किसी विषय का पूर्ण विद्वान् न हो । जो ग्रंथों का केवल पाठ मात्र कर गया हो, उसके विषय को न समझा हो । अस्पृश । उ०—

साधारण योग्यतावाले ग्रंथचुंबकों की उसके सामने मुंह खोलने की हिम्मत नहीं पड़ती थी।—सौ भ्रजान एक सुजान (शब्द०)।

ग्रंथचुंबन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थ + चुम्बन] पुस्तक का पाठ मात्र। किताब को सरसरी तौर पर पढ़ना।

ग्रंथन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थन] दो चीजों को इस प्रकार जोड़ना कि गाँठ पड़ जाय। २. जोड़ना। ३. गूँथना।

ग्रंथमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थमाला] एक शृंखला या क्रम में प्रकाशित विविष्ट पुस्तकें [को०]।

ग्रंथलिपि—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थ + लिपि] एक प्रकार की लिपि जो दक्षिण में प्रचलित है।

विशेष—‘भारतीय प्राचीन लिपिमाला’ की सूचिका (पृ० ४३) में इसके संबंध में कहा गया है कि यह लिपि मद्रास के इहाते के उत्तरी और दक्षिणी मार्कट, सलेम, त्रिचनापल्ली, मदुरा और तिल्लेवेल्लि जिलों में मिलती है। ई० स० की सातवीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक इसके कई रूपांतर होते होते इससे वर्तमान ग्रंथलिपि बनी और उससे वर्तमान मलयालम और तुलु लिपियाँ निकलीं।

ग्रंथसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थसन्धि] ग्रंथ का विभाग। जैसे,—सर्ग, परिच्छेद, अध्याय, अंक, पर्व, आदि।

ग्रंथसाहब—संज्ञा पुं० [हि० ग्रन्थ + साहब] सिकखों की धर्मपुस्तक जिसमें सब गुरुग्रंथों के उपदेश एकत्र किए हुए हैं।

ग्रंथांतर—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थान्तर] अन्य ग्रंथ। भिन्न ग्रंथ [को०]।

ग्रंथागार—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थागार] वह स्थान जहाँ विविध विषयों की पुस्तकें एकत्र हों। पुस्तकालय [को०]।

ग्रंथालय—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थालय] पुस्तकालय।

ग्रंथावलि, ग्रंथावली—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थावलि, ग्रन्थावली] दे० ‘ग्रंथालय’ [को०]।

ग्रंथावलोकन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थावलोकन] ग्रंथ का अध्ययन। पुस्तक का पढ़ना [को०]।

ग्रंथि—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थि] १. गाँठ। २. बंधन। ३. मायाजाल। ४. ग्रंथिपर्ण नाम का वृक्ष। ५. एक प्रकार का रोग जो मूत्र बिगड़ जाने के कारण होता है और जिसमें गोल गाँठों की तरह सूजन हो जाती है। ये गाँठें प्रायः पक जाती हैं और चिरवाली पड़ती हैं। ६. आलू। ७. भद्रमोषा। ८. कुटिलता। ९. गुठली [को०]। १०. ईख, बाँस आदि की गाँठ [को०]। ११. शरीर के अंगों का जोड़ [को०]। १२. शरीर के अंदर की वे गाँठें जिनसे एक प्रकार के रस का स्राव होता है [को०]। १३. अटी [को०]। १४. गिरह [को०]।

ग्रंथिक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिक] १. विपरामूल। २. ग्रंथिपर्ण या गठिवन नामक वृक्ष। ३. गुग्गुलु। ४. करीर। ५. ज्योतिषी [को०]। ६. नकुल का भ्रजातवास के समय का नाम [को०]। ७. सहदेव का नाम [को०]।

ग्रंथिच्छेदक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिच्छेदक] जब काटनेवाला। गिरहकट [को०]।

ग्रंथित—वि० [सं० ग्रन्थित] १. गूँथा हुआ। २. गाँठ दिया हुआ। जिसमें गाँठ लगी हो। उ०—(क) जैसे कियो तुम्हारे प्रभु अलि तैसो भयो तत्काल। ग्रंथित सूत धरत तेहि श्रीवा जहाँ धरत बनमाल।—मूर (शब्द०)। (ख) मंगलमय दोउ अंग मनोहर ग्रंथित धनुरी पीत पिछोरी।—तुलसी (शब्द०)।

ग्रंथिदूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थिदूर्वा] गाजर दूब।

ग्रंथिपत्र—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिपत्र] चोरक नाम का गंधद्रव्य।

ग्रंथिपर्ण—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिपर्ण] गठिवन का पेड़।

ग्रंथिपर्णक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिपर्णक] एक प्रकार का सुगंधित पौधा [को०]।

ग्रंथिपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थिपर्णी] गाजर दूब।

ग्रंथिफल—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिफल] १. कैष का पेड़। २. मैनफल का पेड़।

ग्रंथिवंधन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिवन्धन] विवाह के समय वर और कन्या के कपड़ों के कोनों को परस्पर गाँठ देकर बाँधने की क्रिया। गंठबंधन।

ग्रंथिभेद—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिभेद] १. गिरहकट। गंठकटा। २. वह चोरी जो द्रव्य के साथ देधी गाँठ काटकर की जाय। गाँठ काटना। गिरहकटी।

ग्रंथिमान^१—वि० [सं० ग्रन्थिमान] बंधा हुआ। ग्रंथित [को०]।

ग्रंथिमान^२—संज्ञा पुं० एक वृक्ष [को०]।

ग्रंथिमूल—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिमूल] सलगम, गाजर, मूली आदि मूल जो गाँठों के रूप में जमीन के अंदर होते हैं।

ग्रंथिमूला—स्त्री० स्त्री० [सं० ग्रन्थिमूला] माला दूब।

ग्रंथिमोचक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिमोचक] गंठकटा। गिरहकट [को०]।

ग्रंथिल^१—वि० [सं० ग्रन्थिल] गाँठदार। गंठीला।

ग्रंथिल^२—संज्ञा पुं० १. करीर वृक्ष। २. विपरामूल। ३. अदरक। आदी। ४. कंठाय नामक कटीला वृक्ष जिसकी लकड़ी के प्राचीन काल में यज्ञपात्र बनते थे। इसकी पत्तियाँ छोटी और फल बेर के बराबर गोल होते हैं जो दवा के काम आते हैं। ५. चौराई का साग। ६. आलू। ७. चोरक नामक गंधद्रव्य।

ग्रंथिला—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रन्थिला] १. गाजर दूब। २. माला दूब। ३. भद्रमोषा।

ग्रंथिहर—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थिहर] मंत्री [को०]।

ग्रंथी^१—वि० [सं० ग्रन्थी] १. अनेक पुस्तकों का अध्ययता। २. पुस्तकीय ज्ञान से संपन्न। ३. अनेक ग्रंथ रखनेवाला [को०]।

ग्रंथी^२—संज्ञा पुं० १. ग्रंथकार। २. ग्रंथ का पाठ करनेवाला [को०]।

ग्रंथीक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्थीक] विपरामूल।

ग्रंधप(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्धर्ष] दे० ‘गंधर्व’। उ०—सुरगण ग्रंधप सुपह उहे वष तामु छुड़ाएँ।—रघु० क० पृ० ४८।

ग्रंधप(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० ग्रन्धर्व] दे० ‘गंधर्व’। उ०—तेतीस करोड़ देवता इन्द्रासी हजार ऋषी विद्याधर ग्रंधप, जक्ष आदि देस देस रा राजा बैठा है।—रघु० क०, पृ० २४२।

प्र'स'—संज्ञा पुं० [सं० प्रसि = कुटिलता] १. कुटिलता । झल कपट ।
उ०—सखी भी मथुरा में हैं हंस । वे अकूर ए उषी सजनी
जानत नीके प्रस ।—सूर (शब्द०) । २. वह जो झल कपट
करता हो । कुटिल । ३. दुष्ट । उपद्रवी ।

प्रसज'—वि० [सं० प्रसज] गरजता हुआ । उ०—हृलमिलग सेन
वे बाहू बीर । बरसें प्रसज गरजत बीर ।—पृ० रा०,
१।६५६ ।

प्रसजना—क्रि० प्र० [सं० प्रसज] प्रसज करना । गंभीर और जोर
का शब्द करना । उ०—करं सीस तुष्टं विष्टुष्टं बिहारं । करं
गल्ल प्रसजं पिसाचं बिहारं ।—पृ० रा०, १२।१०४ ।

प्रसज—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रसज । प्रसजने की क्रिया । २. एक जगह
नत्थी करना । ३. जमा का कार्य । गाढ़ा करना । प्रस-
रचना करना । लिखना (को०) ।

प्रसित'—वि० [सं०] १. एक जगह नत्थी किया हुआ या बाँधा हुआ ।
प्रसित । उ०—प्रसिधाय में उलझा है कल्पों का प्रसित जाल ।
—अपलक, पृ० ८७ । २. रचा हुआ । रचित । ३. कमबद्ध ।
श्रेणीबद्ध । वर्गीकृत । ४. जमा हुआ । गाढ़ा किया हुआ ।
५. आहत । क्षत । ६. प्रसिद्ध । ७. बजित । ८. गाँठ युक्त ।
गाँठवाला (को०) ।

प्रसित'—संज्ञा पुं० कठिन गाँठवाली गिस्टी (को०) ।

प्रस'—संज्ञा पुं० [सं० प्रस] १० 'प्रस' । उ०—मास सप्त प्रसमाल
मास प्रस नाम महाबल ।—रा० क०, पृ० २० ।

प्रस'—संज्ञा पुं० [सं० प्रस] १० 'प्रस' । उ०—गिरतनयापत सिल
प्रस गंजल सुख निस बासर सेवै ।—रघु० क०, पृ० २५ ।

प्रसमनी—वि० स्त्री० [सं० प्रसमनी] प्रसमनी । हामिला । उ०—
पुरसान बान झलमल परिय । प्रसमपात भय प्रसमनिय ।
—पृ० रा० १।७१६ ।

प्रसन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रसण । निगलना । २. पकड़ । ग्रहण ।
३. खाने के लिये पकड़ना । इस प्रकार चंगुन में फँसना
जिसमें छूटने न पावे । ४. प्राप्त । ५. एक असुर का नाम ।
६. ग्रहण । ७. दस प्रकार के ग्रहणों में से एक जिसमें चंद्र या
सूर्यमंडल पाद, अर्द्ध या त्रिपाद प्रस हो ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार ऐसे ग्रहण का फल घमंडी
राजाओं का घननाश और घमंडी देशों का पीड़ित
होना है ।

८. मूल । जबड़ा (को०) ।

प्रसना—क्रि० प्र० [सं० प्रसन] १. बुरी तरह पकड़ना । इस प्रकार
पकड़ना कि छूटने न पावे । उ०—टेढ़ जानि भंका सब काहू ।
बक चंद्रमा प्रसी न राहू ।—तुलसी (शब्द०) । २. सताना ।

प्रसपति—संज्ञा पुं० [सं०] एक सीधी पंक्ति में पत्थरों पर खोदी हुई
मनुष्यमुख की आकृतियाँ ।

विशेष—इसका व्यवहार प्राचीन काल में देवमंदिरों में शोभा
के लिये होता था ।

प्रसान—वि० [हि० प्रसना] ३० 'प्रस्त' । उ०—तिन मुख सोम मिल
चाहुवान । मानो कि रविषि बरिया प्रसान ।—पृ० रा०,
१।६६३ ।

प्रसित—वि० [सं० प्रस्त] ३० 'प्रस्त' ।

प्रसिष्णु'—वि० [सं०] निगलने का अभ्यस्त । २. प्रसनशील (को०) ।

प्रसिष्णु'—संज्ञा पुं० ब्रह्म (को०) ।

प्रस्त—वि० [सं०] १. पकड़ा हुआ । २. पीड़ित । ३. खाया हुआ ।
४. आधे उच्चारण किए हुए । अर्ध उच्चारित (शब्द) (को०) ।
५. ग्रहण युक्त (को०) ।

प्रस्ता—वि० [सं० प्रस्त] ग्राम करनेवाला । भक्षक (को०) ।

प्रस्तास्त—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण लगने पर सूर्य या चंद्रमा का बिना
मोक्ष हुए प्रस्त होना ।

प्रस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रगने की क्रिया । प्रमन (को०) ।

प्रस्तोदय—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा या सूर्य का उस अवस्था में उदय
होना जब उनपर ग्रहण लगा हो ।

प्रस्य—वि० [गं०] प्रसने योग्य । खा जाने योग्य (को०) ।

प्रह'—संज्ञा पुं० [गं०] १. वे तारे जिनकी गति, उदय और प्रस्त काल
आदि का पता ज्योतिषियों ने लगा लिया था ।

विशेष - (क) प्राचीन काल के ज्योतिषियों में इन ग्रहों की संख्या
के संबंध में कुछ मतभेद था । बराहमिहिर ने केवल सात
ग्रह माने हैं; यथा—सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र
और शनि । फलित ज्योतिष में इन सात ग्रहों के अतिरिक्त
राहु और केतु नामक दो और ग्रह माने जाते हैं और प्रत्येक
मांगलिक घटसरों पर इन ९ ग्रहों का विधिवत् पूजन होता
है । एक विद्वान् के मत से ग्रहों की संख्या दस है; पर यह
कहीं साम्य नहीं है । अधिकांश लोग फलित ज्योतिष के
अनुसार ग्रहों की संख्या नौ ही मानते हैं और इसी लिये ग्रह नौ
की संख्या का बोधक भी है । फलित ज्योतिष में प्रत्येक ग्रह
को कुछ विशिष्ट देशों, जातियों, जीवों और पदार्थों का स्वामी
माना है और उनका वर्गविभाग किया गया है । उनमें गुरु
और शुक्र को ब्राह्मण, मंगल और रवि को क्षत्रिय, बुध और
चंद्रमा को वैश्य और शनि, राहु तथा केतु को शूद्र कहा गया
है । मंगल और सूर्य का रंग लाल, चंद्रमा और शुक्र का रंग
सफेद, गुरु और बुध का रंग पीला और शनि, राहु और केतु
का रंग काला बतलाया गया है । इसके अतिरिक्त फलित
ज्योतिष में जो कुंडली बनाई जाती है, उसमें प्रत्येक ग्रह की
दूसरे ग्रहों पर एक विशेष रूप से 'दृष्टि' भी होती है । शुभ
ग्रह की दृष्टि का फल शुभ और अशुभ ग्रह की दृष्टि का फल
अशुभ होता है । यह दृष्टि चार प्रकार की होती है—पूर्ण,
त्रिपाद, अर्द्ध और एकपाद । पूर्ण दृष्टि का फल पूर्ण, त्रिपाद
का तीन चतुर्थांश, अर्द्ध का आधा और एकपाद का एक
चतुर्थांश होता है । इस दृष्टि के संबंध में फलित ज्योतिष के
ग्रंथों में कहा गया है कि प्रत्येक ग्रह अपने स्थान से तीसरे
और दसवें घरों के ग्रहों को एकपाद, पाँचवें और नवें घरों के
ग्रहों को अर्द्ध, चौथे और आठवें घरों के ग्रहों को त्रिपाद और

सातवें घर के ग्रहों को पूर्ण दृष्टि से देखता है। (ख) 'ग्रह' शब्द में पति या पतिवाची कोई दूसरा शब्द जोड़ देने से उसका अर्थ 'सूर्य' हो जाता है।

२. आकाशमंडल में वह तारा जो अपने सौर जगत् में सूर्य की परिक्रमा करे। एक निश्चित कक्षा पर किसी सूर्य की परिक्रमा करनेवाला तारा।

विशेष—हमारे सौर जगत् में सूर्य के क्रमानुसार अंतर पर बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, युरेनस और नेपच्यून ये आठ बड़े या प्रधान ग्रह हैं। सब एक नए ग्रह का पता चला है जिसे प्लूटो (कुबेर) कहते हैं। इनके अतिरिक्त, मंगल और बृहस्पति के मध्य में बहुत से छोटे छोटे ग्रह हैं जिनमें से अबतक ४६० से अधिक ग्रहों का होना प्रमाणित हो चुका है। ये सब ग्रह प्रायः एक ही समतल पर हैं और युरेनस तथा नेपच्यून के अतिरिक्त शेष सब ग्रह अपनी कक्षा पर सूर्य की परिक्रमा करते हैं। नेपच्यून और युरेनस का मार्ग कुछ भिन्न है। इन ग्रहों की गति भी अलग अलग है। किसी किसी बड़े ग्रह के साथ उपग्रह भी हैं जो उसी समतल पर अपनी कक्षा में अपने ग्रह की परिक्रमा करते हैं। जैसे,—हमारी इस पृथिवी के साथ चंद्रमा। इसी प्रकार नेपच्यून के साथ एक, मंगल के साथ दो, युरेनस और बृहस्पति के साथ चार चार और शनि के साथ आठ उपग्रह या चंद्रमा हैं। इनमें से कुछ उपग्रहों का मार्ग और उनकी गति भी साधारण से भिन्न है। प्रत्येक ग्रह सूर्य से कुछ निश्चित अंतर पर है। साधारणतः स्थूल रूप से, सूर्य के ग्रहों का आपेक्षिक अंतर जानने का एक बहुत सरल उपाय यह है—०, ३, ६, १२, २४, ४८, ९६, १९२ इनमें से प्रत्येक संख्या में चार जोड़ दें तो वही संख्या आपेक्षिक अंतर सूचित करनेवाली होगी—

४ ७ १० १६ २८ ४२ १०० १९६

बुध शुक्र पृथ्वी मंगल ० बृहस्पति शनि युरेनस अर्थात् यदि सूर्य और बुध का अंतर ४ मान लिया जाय, तो सूर्य से शुक्र का अंतर, लगभग ७, पृथ्वी का १०, मंगल का १६ और शेष ग्रहों का भी इसी प्रकार होगा। प्रत्येक ग्रह का सूर्य से ठीक अंतर, व्यास और परिक्रमाकाल नीचे लिखे कोष्ठक से विदित होगा।

ग्रह	सूर्य-परिक्रमा-काल (दिन)	सूर्य से अंतर (मील)	व्यास (मील)
बुध	८८	३६,००,०००	३०००
शुक्र	२२४	६७,००,०००	७०००
पृथिवी	३६५	९३,००,०००	८०००
मंगल	६८७	१४१,००,०००	४०००
बृहस्पति	४३३३	४८२,००,०००	८८०००
शनि	१०७५६	८८३,००,०००	७५०००
युरेनस	३०६८७	१७७,००,०००	३००००
नेपच्यून	६०१२७	२७८,५०,०००	३७०००

३. ग्री की संख्या। ४. ग्रहण करना। लेना। ५. अनुग्रह। कृपा। ६. चंद्रमा या सूर्य का ग्रहण। ७. वह पान जिससे यज्ञ में

देवताओं को हविष्य दिया जाता है। ८. राहु। ९. स्कंद, ककुनी आदि रोम जो बहुत ही छोटे बालकों को हो जाते हैं और जिन्हें लोग झूठ प्रेत आदि का उपद्रव समझते हैं। बालग्रह।

ग्रह^{२१}—वि० बुरी तरह तंग करनेवाला। दिक करनेवाला।

ग्रह^{२२}—संज्ञा पुं० [सं० गृह] दे० 'गृह'। उ०—डारी डर गुहजनन को कहूँ इकंत ग्रह पाइ। अति रुचि दोउन उर बड़ी अचरन अचर मिलाइ।—स० सतक, पृ० ३७६।

ग्रहक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो ग्रहण करनेवाला हो। ग्राहक। २. कैदी (कौ०)।

ग्रहकल्लोल—संज्ञा पुं० [सं०] राहु नामक ग्रह।

ग्रहकुंडलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रहकुण्डलिका] ग्रहों का परस्पर संबंध और उसके आधार पर कथित या लिखित भविष्यफल (कौ०)।

ग्रहकुष्माण्ड, ग्रहकूष्माण्ड—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहकुष्माण्ड ग्रहकूष्माण्ड] पुराणानुसार एक प्रकार की देवयोनि।

ग्रहगणित—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों के संबंध का गणित। गणित ज्योतिष (कौ०)।

ग्रहगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ग्रहदोष। २. ग्रहों की गति (कौ०)।

ग्रहगोचर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'गोचर'।

ग्रहग्रस्त—वि० [सं०] १. बुरे ग्रहों से ग्रस्त। २. प्रेतबाधा से प्रभावित (कौ०)।

ग्रहग्रहीत—वि० [सं० ग्रह+गृहीत] ग्रहपीडित। उ०—ग्रहग्रहीत पुनि बातबस तेहि पुनि बीछी मार।—मानस, २। १८०।

ग्रहग्रामणी—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य (कौ०)।

ग्रहचिंतक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहचिन्तक] ज्योतिषी।

ग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य, चंद्र या किसी दूसरे आकाशचारी पिंड की ज्योति का आवरण जो दृष्टि और उस पिंड के मध्य में किसी दूसरे आकाशचारी पिंड के आ जाने के कारण उसकी छाया पड़ने से होता है; अथवा उस पिंड और उसे ज्योति पहुँचानेवाले पिंड के मध्य में आ पड़नेवाले किसी अन्य पिंड की छाया पड़ने से होता है। जैसे,—चंद्र और (उसे ज्योति पहुँचानेवाले) सूर्य के मध्य में पृथिवी के आ जाने के कारण चंद्रग्रहण और सूर्य तथा पृथिवी के मध्य में चंद्रमा के आ जाने के कारण सूर्यग्रहण का होना।

विशेष—पुराणानुसार सूर्य या चंद्रग्रहण का मुख्य कारण राहु नामक राक्षस का उक्त पिंडों को ग्रसने या खाने के लिये दौड़ना है (देखो 'राहु')। इसीलिये इस देश में ग्रहण लगने के समय, सूर्य या चंद्रमा को इस विपत्ति से मुक्त कराने के अभिप्राय से लोग दान, पुण्य, ईश्वरप्रार्थना तथा अन्य अनेक प्रकार के उपाय करते हैं। ग्रहण लगने और छूटने के समय स्नान करने की प्रथा भी यहाँ है। पर प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों ने ग्रहण का मुख्य कारण उक्त छाया को ही माना है और किसी न किसी रूप में आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों के सिद्धांत के समान ही उसके कारण का निरूपण किया है। सूर्यग्रहण केवल अमावस्या के दिन और चंद्रग्रहण केवल

पूणिमा की रात को लगता है। सूर्य और चंद्रग्रहण एक वर्ष में कम से कम दो बार और अधिक से अधिक सात बार लगते हैं। पर साधारणतः एक वर्ष में तीन या चार ही ग्रहण लगते हैं और सात ग्रहण बहुत ही कम होते हैं। प्रायः एक समय में ग्रहण पृथ्वी के किसी विशिष्ट भाग में ही दिखाई पड़ता है, समस्त भूमंडल पर नहीं। ग्रहण में कभी तो सूर्य या चंद्र आदि का कुछ अंश ही आवृत होता है और कभी पूरा मंडल। जितने ग्रहण में पूरा मंडल आवृत हो जाय, उतने सर्वग्राम या खग्राम कहते हैं। फलित ज्योतिष में भिन्न भिन्न अवस्थाओं में ग्रहण लगने के भिन्न भिन्न फल आदि भी माने जाते हैं। अवस्था या स्थितिभेद से ग्रहण दस प्रकार के माने गए हैं—राज्य, अपमव्य, लेह, घमन, निरोध, अवमर्द, आरोह, आघात, मध्मतम और तमोत्य। इन्हीं प्रकार ग्रहण का मोक्ष भी दस प्रकार का माना गया है—हणभेद (दक्षिण और वाम दो प्रकार के), कुक्षिभेद (दक्षिण और वाम दो प्रकार के), वायुभेद (दक्षिण और वाम दो प्रकार के), मंचसूदन, जरण, मध्यविदारण और अंतविदारण। हिंदू ग्रहण लगने में कुछ पहर पूर्व और कुछ पहर उपरान्त उमड़ी छाया मानते हैं और छायाकाल में अन्न जन ग्रहण नहीं करते। सूर्य और चंद्रमा के प्रतिरिक्त दूसरे ग्रहों को भी ग्रहण लगता है, पर उसका इस पृथिवी के निवासियों से कोई संबंध नहीं है। बिना किसी आवरण के सूर्यग्रहण को नहीं देखना चाहिए क्योंकि इससे दृष्टिविकार होता है।

क्रि० प्र०—लगना।—घूटना।

२. पकड़ने, लेने या हस्तगत करने की क्रिया। २. स्वीकार। मंजूरी। ४. अर्थ। तात्पर्य। मतलब। ५. कथन। उल्लेख। (को०)। ६. धारण करना। पहनना (को०)। ७. अधिकार करना। मनसा ग्रहण करना (को०)। ८. ध्वनि ग्रहण (को०)। ९. हाथ (को०)। १०. ज्ञानेंद्रिय (को०)। ११. कैदी (को०)। १२. पाणिग्रहण। विवाह (को०)। १३. कैद करना (को०)। १४. कप। जरीद (को०)। १५. ध्वनन। धुनना (को०)। १६. प्राकर्षण (को०)। १७. सेवा (को०)। १८. प्रणसापूर्णा उल्लेख समादर (को०)। १९. संबोधन (को०)।

ग्रहणक—वि० [सं०] ग्रहण करनेवाला (को०)।

ग्रहणांत—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहणान्त] अन्तर्ग्रहण की समाप्ति (को०)।

ग्रहणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ग्रहणी'।

ग्रहणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुश्रुत के अनुसार उदर में पक्वाणय और घामाणय के बीच की एक नाड़ी जो अग्नि या पित्त का प्रधान आधार है। २. इस नाड़ी के द्रूषित होने से उत्पन्न एक प्रकार का रोग जिसमें छाया हुआ पदार्थ पचता नहीं और उमों का त्यों दस्त की राह से निगल जाता है। वि० दे० 'सग्रहणी'।

यौ०—ग्रहणीहर=लोग।

ग्रहणी^७—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रहण] ग्रहण करने की क्रिया। ग्रहण। उ०—ग्रहणी में सिबनेम ग्रहणी में ग्रहीस।—रा० ६०, पृ० ६७।

ग्रहणीय—वि० [सं०] ग्रहण करने योग्य। जो ग्रहण किया जा सके। ग्रहवशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोचर ग्रहों की स्थिति। २. ग्रहों की स्थिति के अनुसार किसी मनुष्य की भली बुरी अवस्था। ३. अभाग्य। कमवस्ती। दुरवस्था।

क्रि० प्र०—ग्रहना।—छाना।—बीतना।

ग्रहदाय—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों की स्थिति के आधार पर किसी जातक की आयु का निर्धारण (को०)।

ग्रहदायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] जन्म समय के ग्रहों की स्थिति के अनुसार किसी जातक की आयु। उच्च।

ग्रहदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रहों की दृष्टि। दे० 'ग्रह'—१ का विशेष (क)।

ग्रहदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] वह देवता जो किसी विशेष ग्रह का आप्रण्डान होता है (को०)।

ग्रहदाय—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहविशेष की अनुम या अरिष्टकारक दृष्टि (को०)।

ग्रहदुम—संज्ञा पुं० [सं०] काकड़ा सीमी।

ग्रहन पुं—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण] स्वीकार। अंगीकरण। उ०—जे बुद्धिमंत है, नेई ग्रहन करि सके।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५२०।

ग्रहनपानिग(पुं)—संज्ञा पुं० [सं० पाणिग्रहण] दे० 'पाणिग्रहण'। उ०—मुभ सोमम नरिद ग्रहनपानिग मंडि कर।—पृ० २१० १६७०।

ग्रहनायक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. शनि (को०)।

ग्रहनाश—संज्ञा पुं० [सं०] सनिवन नाम का पेड़।

ग्रहनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहनाश वृक्ष (को०)।

ग्रहनिका(पुं)—वि० [सं० ग्रहण] ग्रहणीय। ग्राह्य। उ०—द्वापरे पित्सि वशम्य। कलित्रुग गूढ ग्रहनिका।—पृ० २१०, २४४३०।

ग्रहनिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] गुरुस्कार और दंड (को०)।

ग्रहनेम—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश (दि०)।

ग्रहनेमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चंद्रमा के मार्ग का वह भाग जो मूल और मृगशिरा नक्षत्रों के बीच में पड़ता है। २. चंद्रमा। ३. आकाश (दि०)।

ग्रहपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. शनि। ३. आक का पेड़।

ग्रहपीडन—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहपीडन] ग्रहों की स्थिति से उत्पन्न होनेवाली पीडा (को०)।

ग्रहपीडा—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्रहपीडा] दे० 'ग्रहपीडन' (को०)।

ग्रहपुष—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

ग्रहभक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अविष्ठाता ग्रहों के अनुसार देशों प्रादि का विभाजन (को०)।

ग्रहभीर्तिजित्—संज्ञा पुं० [सं०] चीड़ नाम का मधुद्रव्य।

ग्रहभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों को दिया जानेवाला भोग (को०)।

ग्रहमंडल—संज्ञा पुं० [सं० ग्रहमण्डल] [संज्ञा स्त्री० ग्रहमंडली] ग्रहों का समूह (को०)।

ग्रहमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रहयुद्ध' (को०)।

ग्रहमेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वर और कन्या के ग्रहों के स्वामियों की

मित्रता या अनुकूलता, जिसका विचार विवाह के समय होता है ।

ग्रहमैत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ग्रहमित्र' ।

ग्रहयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष और पुराणों के अनुसार ग्रहों की उग्रता या कोप संबंधी दोषों को दूर करने के लिये एक प्रकार का पूजन या यज्ञ ।

ग्रहयाग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रहयज्ञ' [को०] ।

ग्रहयुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राशि के एक ही ग्रह पर दो ग्रहों का एकत्र होना ।

ग्रहयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यसिद्धांत के अनुसार बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि या मंगल में से किसी एक ग्रह का चंद्रमा के साथ अथवा उक्त ग्रहों में से किसी दो ग्रहों का एक साथ एक राशि के एक ग्रह पर इस प्रकार एकत्र होना कि उस ग्रह पर ग्रहण लगा हुआ जान पड़े । फलित ज्योतिष के अनुसार इसका फल भयंकर होता है ।

ग्रहयुद्धभ—संज्ञा पुं० [सं०] वह नक्षत्र जिसपर कोई दो ग्रह एक साथ एकत्र हों ।

ग्रहयोग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रहयुति' ।

ग्रहराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. चंद्रमा । ३. बृहस्पति ।

ग्रहवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों की गति के अनुसार प्रचलित वर्ष [को०] ।

ग्रहविचारी—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहविचारित्र्य ग्रहों पर विचार करने-वाला । ग्रहचिंतक [को०] ।

ग्रहविप्र—संज्ञा पुं० [सं०] बंगाल और दक्षिण में होनेवाले एक प्रकार के ब्राह्मण जो मुख्य विशिष्ट क्रियाओं से ग्रहों के शुभाशुभ फल बतलाते हैं ।

ग्रहवेध—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रह की स्थिति आदि का जानना ।

ग्रहशान्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रहशान्ति अशुभ ग्रहों की निवृत्ति के लिये जप, यज्ञ आदि करना [को०] ।

ग्रहशृंगाटक—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहशृङ्गाटक बृहत्संहिता के अनुसार ग्रहों का एक प्रकार का योग जिसके अवस्थानुसार शुभ और अशुभ फल होते हैं ।

ग्रहसंगम—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहसङ्गम अनेक ग्रहों का एकत्र होना [को०] ।

ग्रहसमागम—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के साथ मंगल, बुध आदि ग्रहों का योग ।

ग्रहसाल—वि० [सं०] ग्रह (= ग्राह) + सालना ग्रह को सालनेवाला या नाश करनेवाला । उ०—गोवर्धन श्री गदाधर, गजतारन ग्रहसाल ।—हरिया बा०, पृ० १६ ।

ग्रहस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] किसी राग में वह स्वर जिससे वह राग आरंभ होता है—(संगीत) ।

ग्रहा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ग्रह + आ (प्रत्य०) गृहिणी ।

ग्रहागम—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेतावेश । प्रेतवाधा [को०] ।

ग्रहाप्रेसर—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०] ।

ग्रहाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रहविप्र' ।

ग्रहाधार—संज्ञा पुं० [सं०] ध्रुव नक्षत्र । ध्रुवा ।

ग्रहाधीन—वि० [सं०] ग्रहों से प्रभावित । ग्रहों के अधीन [को०] ।

ग्रहाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

ग्रहामय—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथ्वी । मूर्च्छा । २. प्रेतवाधा । भूतावेश [को०] ।

ग्रहालुचन—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहालुचन शिकार पर झपटकर उसे धीरे फाड़ डालना ।

ग्रहावमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] १. राहु । २. ग्रहयुद्ध ।

ग्रहावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] जन्मपत्री [को०] ।

ग्रहाशी—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहाशित्र ग्रहनाश वृक्ष [को०] ।

ग्रहाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रहाधार' ।

ग्रहाङ्गय—संज्ञा पुं० [सं०] भूताङ्गुल नामक वृक्ष ।

ग्रहिल—वि० [सं०] १. ग्रहण करनेवाला । २. हठी । दुराग्रही । ३. प्रेतवाधित [को०] ।

ग्रहीत—वि० [सं०] ग्रहीत दे० 'ग्रहीत' ।

ग्रहीतव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रहण करने योग्य । ग्राह्य । २. लेने या उठेलने योग्य [को०] । ३. बोध्य । ज्ञेय । जानने, सीखने या समझने योग्य [को०] ।

ग्रहीता—वि० [सं०] ग्रहीतृ [वि०] स्त्री० ग्रहीत्री १. लेनेवाला । ग्रहण करनेवाला । उ०—दाता और ग्रहीता बौद्ध । बौद्धन सम दिगंत नहि कोऊ ।—रघुराज (शब्द०) । २. निरीक्षणकर्ता [को०] । ३. ऋणी । कर्ज लेनेवाला [को०] । ४. खरीदनेवाला । क्रेता [को०] । ५. पकड़नेवाला [को०] ।

ग्रहीस—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रह + ईश सूर्य । उ०—ग्रहीस दीर्घ ना परे । कुह सरीस धाइयो ।—सुजान०, पृ० ३१ ।

ग्रहेश—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

ग्रहोपराग—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों का ग्रहण ।

ग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञपात्र ।

ग्रांडील—वि० [सं०] ग्रेडियर, ग्रेडोल ऊँच कद का । बहुत बड़ा या ऊँचा । जैसे,—ग्रांडील हाथी, ग्रांडील जवान ।

ग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटी बस्ती । गाँव । २. मनुष्यों के रहने का स्थान । बस्ती । आबादी । जनपद । ३. समूह । ढेर । उ०—सिगरे राज समाज के कहे गोत्र गुण ग्राम । देश सुभाव प्रभाव ग्रह कुल बल विक्रम नाम ।—केशव (शब्द०) ।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द केवल यौगिक शब्दों के अंत में आता है । जैसे,—गुणग्राम ।

४. शिव । ५. जाति [को०] । ६. क्रम से सात स्वरों का समूह । सप्तक (संगीत) ।

विशेष—संगीत में सुभीते के लिये षड्ज, मध्यम और गांधार नामक तीन ग्राम निश्चित कर लिए गए हैं, जिन्हें क्रमशः नंदावर्त, सुमद्र और जीमूत भी कहते हैं और जिनके देवता एक क्रम से ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं । प्रत्येक ग्राम में

सात सात मूच्छंनार्ह होती हैं। सा (पञ्च) से प्रारंभ करके (सा रे ग म प ध नि) जो सात स्वर हों, उनके समूह को षड्ज ग्राम; म (मध्यम) से प्रारंभ करके (म प ध नि सा रे ग) जो सात स्वर हों, उनके समूह को मध्यम ग्राम और इसी प्रकार गा (गांधार) या प (पंचम) से प्रारंभ करके जो सात स्वर हों, उनके समूह को गांधार अथवा पंचम (वैसी व्यवस्था हो) ग्राम मानते हैं। इनमें से पहले दो ग्रामों का व्यवहार तो इसी लोक में मनुष्यों द्वारा होता है, पर तीसरे ग्राम का व्यवहार स्वर्गलोक में नारद करते हैं। वास्तव में तीसरा ग्राम होता भी बहुत ऊंचा है और उसके स्वर केवल गितार सारंगी, हारमोनियम आदि बाजों में ही निकल सकते हैं, मनुष्यों के गले से नहीं।

ग्राम—संज्ञा पुं० [घं०] एक ग्रंथेजी तोल।

ग्रामकंटक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामकण्टक] १. वह जो गाँव के लिये कष्ट का कारण हो। २. चुगलखोर (को०)।

ग्रामक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रामीण। २. आनंददायक समूह (को०)।

ग्रामकाम—वि० [सं०] १. ग्राम पर अधिकार करने का इच्छुक। २. ग्रामवास का इच्छुक (को०)।

ग्रामकायस्थ—संज्ञा पुं० [मं०] ग्राम का कायस्थ या नेत्तक (को०)।

ग्रामकुक्कुट—संज्ञा पुं० [मं०] पालतू मुरगा।

ग्रामकुमार—संज्ञा पुं० [मं०] [श्री० ग्रामकुमारी] ग्राम का सुंदर तरण। २. ग्राम का कुमार या बालक (को०)।

ग्रामकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. शूद्र। २. गाँव का मुखिया या चौधरी।

विशेष—कीर्तित्व के समय में इनके पीछे भी गुमचर रहते थे जो इनकी ईमानदारी की जाँच करते रहते थे।

ग्रामकूटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. शूद्र। २. गाँव का मुखिया या चौधरी (को०)।

ग्रामगृह—वि० [सं०] गाँव के बाहर होनेवाला। गाँव के बाहर का (को०)।

ग्रामगृहक—संज्ञा पुं० [मं०] ग्रामीण बढ़ई (को०)।

ग्रामगोय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साप।

ग्रामगोदुह—संज्ञा पुं० [मं०] ग्राम का ग्वाला (को०)।

ग्रामवास—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव को छूटना (को०)।

ग्रामघोषी—वि० [सं० ग्रामघोषिन्] १. जनसमूह या सेना में घोष या ध्वनि करनेवाला (जैसे दुर्दुमि)। २. इंद्र का विशेषण (को०)।

ग्रामधर—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव का निवासी (को०)।

ग्रामचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री संभोग। रति (को०)।

ग्रामचैत्य—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव का पवित्र पीपल वृक्ष (को०)।

ग्रामज, ग्रामजात—वि० [सं०] १. गाँव में उत्पन्न। ग्रामीण। २. कृषि या खेत में उपजा हुआ (को०)।

ग्रामजाल—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रामों का समूह या मंडल (को०)।

ग्रामटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा गाँव। कुछ घरों का पुरा। बस्ती। २. ग्रामटिका बनिजात नगर वह समय मास

जो।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३०। २. अभागा या दरिद्र गाँव (को०)।

ग्रामणो—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाँव, जाति या समूह का मालिक या मुखिया। २. प्रधान। अगुआ। ३. विष्णु। ४. यक्ष। ५. नाऊ। हज्जाम। ६. कामी पुरुष। ७. एक यक्ष (को०)।

ग्रामणो—संज्ञा स्त्री० १. वेश्या।

ग्रौ—ग्रामणीपुत्र = वेश्यापुत्र।

२. नील का पेड़।

ग्रामणीसव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का याग जो एक दिन में होता है।

ग्रामतत्त्व—संज्ञा पुं० [पुं०] ग्रामीण बढ़ई (को०)।

ग्रामदेव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रामदेवता'।

ग्रामदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी एक गाँव में पूजा जानेवाला देवता। २. गाँव की रक्षा करनेवाला देवता।

विशेष—भारत के प्रायः प्रत्येक गाँव में एक न एक ग्रामदेवता होता है।

ग्रामद्रोही—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामद्रोहिन्] ग्राम की मर्यादा या नियम का भंग करनेवाला। ग्रामकंटक।

विशेष—प्राचीन काल में ग्राम के प्रबंध और भगड़े आदि निबटाने का भार गाँव की पंचायत पर ही रहता था। जो लोग उक्त पंचायत के निर्णय के विरुद्ध काम करते या उसका नियम तोड़ते थे, वे ग्रामद्रोही कहलाते और दंड के भागी होते थे।

ग्रामधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रामीण परंपराएँ। गाँव की रीति-नीति। २. स्त्रीसंभोग। मैथुन (को०)।

ग्रामपंचायत—संज्ञा स्त्री० [ग्राम + हि० पंचायत] ग्रामीण व्यक्तियों की वह आधिकारिक व्यवस्था जो गाँव के भगड़ों का न्याय, गाँव में सफाई, स्वच्छता की व्यवस्था करने आदि का कार्य करती है।

ग्रामधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] कृषि की उपज। खेती की उपज (को०)।

ग्रामपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाँव का मालिक या स्वामी। २. गाँव की रक्षा करनेवाला सैनिक या सेना।

ग्रामपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम का मुखिया (को०)।

ग्रामप्रेष्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो गाँव के सब लोगों की सेवा करता हो। मनु के अनुसार ऐसे व्यक्ति को यज्ञ और श्राद्ध आदि कार्यों में संमिलित न करना चाहिए।

ग्रामभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत से लोगों की सेवा करनेवाला मनुष्य।

विशेष—ऐसा मनुष्य यदि ब्राह्मण हो तब भी ब्राह्मण हो जाता है।

ग्राममद्गुरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भगड़ा। टंटा। कलह। २. एक मछली का नाम। ३. एक पीषा (को०)।

ग्राममुख—संज्ञा पुं० [सं०] बाजार। हाट।

ग्राममृग—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

ग्रामयाजक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह ब्राह्मण जो ऊँच नीच सभी जाति के लोगों का पुरोहित हो।

विशेष—शतातपर के अनुसार ऐसा ब्राह्मण अपने धर्म और धर्म से पतित होता है और महामारत के अनुसार ऐसे ब्राह्मण को दान देने का कोई फल नहीं होता ।

२. पुजारी (को०) ।

ग्रामयाजी—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामयाजिन्] दे० 'ग्रामयाजक' (को०) ।

ग्रामयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] बलवा । दंगा (को०) ।

ग्रामर—संज्ञा पुं० [ग्रं०] व्याकरण ।

ग्रामरथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँव की गली (को०) ।

ग्रामवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्राम + वधू] गाँव की बहू । ग्रामीण स्त्री । ग्रामीण वधू । उ०—तोटी ग्रामवधू पनघट से । —आराधना, पृ० ३७ ।

ग्रामवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या । कसबी । रंडी । २. पालकी का साग ।

ग्रामवास—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव में निवास या वास करना (को०) ।

ग्रामपंड—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामपण्ड] क्लीब । नपुंसक (को०) ।

ग्रामसंकर—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामसङ्कर] गाँव की नाली (को०) ।

ग्रामसंघ—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामसङ्घ] ग्रामों का समूह या मंडल (को०) ।

ग्रामसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता । उ०—चित्रमृग श्रमर गवै गण बिलोकि बन, डील चटकोले ग्रामसिंह चले धाय कै । —धुरराज (शब्द०) ।

ग्रामस्थ—वि० [सं०] ग्रामवासी । ग्रामीण (को०) ।

ग्रामहट्टार—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम का मुखिया या चौधरी । ग्रामकूट ।

ग्रामहासक—संज्ञा पुं० [सं०] बहनोंई (को०) ।

ग्रामांत—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामान्त] गाँव की सीमा । २. गाँव से सटा हुआ भाग । सिवान (को०) ।

ग्रामांतर—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामान्तर] दूसरा गाँव (को०) ।

ग्रामांतिक—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामान्तिक] ग्राम का पड़ोस (को०) ।

ग्रामांतीय^१—वि० [सं० ग्रामान्तीय] ग्राम के पास स्थित (को०) ।

ग्रामांतीय^२—संज्ञा पुं० ग्राम के पासपड़ोस की भूमि (को०) ।

ग्रामाक्षपटलिक—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव के लोगों को जुभा खेलाने का प्रबंध करनेवाला व्यक्ति (को०) ।

ग्रामाचार—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव के रीतिरिवाज (को०) ।

ग्रामाधान—संज्ञा पुं० [सं०] आखेट । मृगया । शिकार ।

ग्रामाधिकृत, ग्रामाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] ग्राम का प्रधान । गाँव का मुखिया ।

ग्रामाधिपति—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम + अधिपति] ग्राम का प्रबंध करनेवाला एक अधिकारी । उ०—गाँव का प्रबंध ग्रामाधिपति गाँववालों की सलाह से करता था । —हिंदु० सभ्यता, पृ० १७३ ।

ग्रामाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रामप्रधान । गाँव का मुखिया ।

ग्रामानुग्राम^३—संज्ञा पुं० [सं० ग्रामानुग्राम] एक गाँव से दूसरे

गाँव । प्रति गाँव । उ०—ग्रामानुग्राम तोरन उत्तंग । बन बह्नु कट्टि विधि निधि पुरंग । —पृ० रा०, १ । ६०६ ।

ग्रामिक^१—वि० [सं०] १. गाँव संबंधी । गाँव का । २. देहाती । गँवार (को०) ।

ग्रामिक^२—संज्ञा पुं० १. वह मनुष्य जिसे गाँववाले अपनी रक्षा के लिये अपना मुखिया चुनें । २. ग्रामीण । ग्रामवासी (को०) ।

ग्रामिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पीछा (को०) ।

ग्रामी^१—वि० [सं० ग्रामिन्] १. देहाती । गँवार । २. गाँव का । ३. कामी । संपट । ३. संगीत विषयक (को०) ।

ग्रामी^२—संज्ञा पुं० १. ग्रामप्रधान । गाँव का मुखिया । ३. ग्रामनिवासी (को०) ।

ग्रामीण^१—वि० [सं०] १. देहाती । गँवार । २. ग्राम (संगीत) संबंधी (को०) । ३. ग्राम या गाँव संबंधी (को०) ।

ग्रामीण^२—संज्ञा पुं० १. मुरगा । २. कोप्रा । ३. सूअर । ४. कुत्ता । ५. ग्राम का वासी या निवासी (को०) ।

ग्रामीणा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का पेड़ । २. पालकी का साग ।

ग्रामीणा^२—संज्ञा स्त्री० गाँव की रहनेवाली स्त्री । ग्रामनिवासिनी (को०) ।

ग्रामीन^३—वि० [सं०] १. गाँव में उत्पन्न । २. गँवार (को०) ।

ग्रामीय^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ग्रामीया] गाँव का । गाँव से संबंधित (को०) ।

ग्रामीय^२—संज्ञा पुं० ग्रामवासी । देहाती (को०) ।

ग्रामेय^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० ग्रामेया] १. गाँव में उत्पन्न । २. देहाती । गँवार (को०) ।

ग्रामेय^२—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रामवासी (को०) ।

ग्रामेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । रंडी (को०) ।

ग्रामेरुह—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन का एक प्रकार या भेद (को०) ।

ग्रामेश, ग्रामेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रामाधिपति' (को०) ।

ग्रामोद्योग—संज्ञा पुं० [सं० ग्राम + उद्योग] गाँव के धंधे । ग्रामीण उद्योग ।

ग्रामोफोन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जिसमें गीत आदि भरे और इच्छानुसार समय समय पर सुने जा सकते हैं ।

विशेष—इस बाजे में कुछ त्रिशिष्ट द्रव्यों से बने एक प्रकार के के गोल तवे पर, जिसे चूड़ी कहते हैं, और जिस पर गोल रेखाएँ रहती हैं, सूई लगे हुए एक यंत्र की सहायता से सब प्रकार के बोले हुए वाक्य या गाए हुए गीत आदि एक विशेष रूप से प्रकट हो जाते हैं और उन प्रकट वाक्यों या गीतों को जब इच्छा हो, ध्वनि उत्पन्न करनेवाले एक दूसरे यंत्र की सहायता से सुन सकते हैं ।

ग्राम्य^२—वि० [सं०] १. गाँव से संबंध रखनेवाला । ग्रामीण । २. बेवकूफ । ३. मूढ़ । ३. प्राकृत । असली ।

ग्राम्य^३—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का रतिबंध । २. काव्य का एक दोष । वह काव्य जिसमें गँवार शब्दों की अधिकता हो अथवा जिसमें गँवार विषयों का वर्णन हो, इस दोष से दूषित समझा

जाता है । ३. अश्लील शब्द या वाक्य । ४. मैथुन । स्त्री-प्रसंग । ५. मैथुन राशि । ६. गधा, घोड़ा, खच्चर, बैल आदि पशु जो पाले जाते और गाँवों में रहते हैं ।

प्रास्यकंद—संज्ञा पुं० [सं० प्रास्यकंद] म्यनकंद (को०) ।

प्रास्यकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूटमाइ (को०) ।

प्रास्यकर्म—संज्ञा पुं० [सं० प्रास्यकर्म] २ ग्रामवालों का गण । २. स्वीसंयोग । मैथुन (को०) ।

प्रास्यकुंकुम—संज्ञा पुं० [सं० प्रास्यकुंकुम] कुसुंभ ।

प्रास्यवेवता—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्रामदेवता' ।

प्रास्यदोष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ग्राम्य' (को०) ।

प्रास्यधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. मैथुन । स्त्रीप्रसंग । २. ग्रामीण का कर्तव्य (को०) ।

प्रास्यधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] गाँव की फसल । खेती । उपज (को०) ।

प्रास्यपशु—संज्ञा पुं० [सं०] पालतू जानवर (को०) ।

प्रास्यबुद्धि—वि० [सं०] मूढ़ । भूलं (को०) ।

प्रास्यमृग—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता (को०) ।

प्रास्यबल्लभ—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता । रंडी (को०) ।

प्रास्यबादी—संज्ञा पुं० [सं० प्रास्यबादिन्] ग्राम के बाद या झगड़ों आदि का निर्णय करनेवाला व्यक्ति (को०) ।

प्रास्यमुख—संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन । स्त्रीप्रसंग (को०) ।

प्रास्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का पेड़ । २. तुलगी ।

प्रास्यारव—संज्ञा पुं० [सं०] गधा (को०) ।

प्रास—संज्ञा पुं० [सं० प्रासन्] १. पत्थर । मोटा । बिनोरी । ३. पर्वत । पहाड़ । ४. बादल (को०) ।

प्रास^१—वि० १. कठोर । २. ठोस (को०) ।

प्रासन्तु—संज्ञा पुं० [सं०] मोनह ऋत्विजों में से तेरहवाँ ऋत्विज जिसे अच्छावाक् भी कहते हैं ।

प्रासह—संज्ञा पुं० [सं० प्रासन्] पत्थर की कील ।

प्रासहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] गश में एक ऋत्विक् जिसके हाथ में अभिषेक का पत्थर रहता है ।

प्रासायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रवर का नाम ।

प्रास—संज्ञा पुं० [सं०] १. उतना भोजन जितना एक बार मुँह में चला जाय । गमसा । कौर । निवाला । २. पकड़ने की क्रिया । पकड़ । गिरफ्त । ३. सूर्य या चंद्रमा में ग्रहण लगना । जैसे,—खप्रास, गवंप्रास । ४. संगीत का एक भेद । उ०—प्रास्यो भौति तान गावत बाँकी रीतिन सुरप्रास प्रास गहि चोख चटक सो ।—घनानंद, पृ० ४२५ । ५. आहार निगलने का कार्य (को०) । ६. आहार (को०) । ७. प्रस्पष्ट उच्चारण (को०) ।

प्रासक—वि० [सं०] १. पकड़नेवाला । ३. निगलनेवाला । ३. छिपाने या दबानेवाला ।

प्रासकट—संज्ञा पुं० [सं०] घास काटनेवाला । घसियारा ।

प्रासकारी—वि० [सं० प्रासकारिन्] घसनेवाला । निगलनेवाला (को०) ।

प्रासना—क्रि० सं० [सं० प्रास] १. पकड़ना । धरना । निगलना । उ०—प्रासत चित्त गयंद को बिरह प्राह जब प्राय । हरि

प्यारे मन कमल ले नेही देत छुड़ाय ।—रसनिधि (शब्द०) ।

२. कष्ट देना । सताना ।

प्रासप्रमाण—संज्ञा पुं० [सं०] घास या कौर का आकार (को०) ।

प्रासशाल्य—संज्ञा पुं० [सं०] गले में किसी बाह्य वस्तु का घटक जाना (को०) ।

प्रासाञ्छादन—संज्ञा पुं० [सं०] खाना कपड़ा । भोजनवस्त्र (को०) ।

प्राह^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. मगर । बड़ियाल । २. ग्रहण । उपराग । ३. पकड़ना । लेना । ग्रहण करना । ४. ज्ञान । ५. ग्रहण करनेवाला । ग्राहक । ६. ग्राह्य (को०) । ७. कैदी (को०) । ८. समझ । बोध (को०) । ९. प्राप्ति (को०) । १०. चयन (को०) । ११. निश्चय (को०) । १२. रोग (को०) । १३. बड़ा मत्स्य (को०) । १४. कार्यारंभ (को०) । १५. लकड़ा । पक्षाघात (को०) । १७. हत्या । मुठिया (तलवार आदि का) ।

प्राह^२—वि० १. ग्रहण करनेवाला । लेनेवाला । २. पकड़नेवाला (को०) ।

प्राहक^१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ग्राहिका] १. ग्रहण करनेवाला । २. मोल लेनेवाला । खरीदनेवाला । खरीददार । ३. लेने या पाने की इच्छा रखनेवाला । चाहनेवाला । ४. वह श्रोषधि जिसके सेवन से पतला वस्तु घाना बंद हो जाय और बँधा पालाना होने लगे । ५. बाज पक्षी । ६. एक प्रकार का साग जिसे चोपतिया कहते हैं । ७. शरीर में प्रविष्ट विष को चिकित्सा द्वारा दूर करनेवाला वैद्य । विष वैद्य । ८. लोगों को कैद करनेवाला व्यक्ति । पुलिस अधिकारी (को०) ।

प्राहक^२—वि० [वि० स्त्री० ग्राहिका] १. ग्रहण करनेवाला । २. मल रोकनेवाला । बंदी करनेवाला । ४. समझनेवाला (को०) ।

ग्राहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिबली का तीसरा बल ।

ग्राहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्भाग्य (को०) ।

ग्राही^१—संज्ञा पुं० [सं० ग्राहिन] १. वह जो ग्रहण करे । स्वीकार करनेवाला । जैसे,—दानग्राही । २. मल को रोकनेवाला पदार्थ । कब्ज करनेवाली चीज । ३. कैय । कपित्थ ।

ग्राही^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्राह या बड़ियाल की मादा (को०) ।

ग्राहुक—वि० [सं०] ग्राहक । ग्रहण करनेवाला (को०) ।

ग्राह्य—वि० [सं०] १. लेने योग्य । २. स्वीकार करने योग्य । मानने-लायक । ३. जानने योग्य । समझने योग्य । ३. कैद करने योग्य (को०) । ५. माय्य । स्वीकृत (को०) ।

ग्रिव^१—संज्ञा स्त्री० [हि० घोवा] उ०—भेल बनावे सोभा बड़ि सुंदरि सेनी गूँथि ग्रिव नावे ।—सं० दरिया, पृ० १०४ ।

ग्रोक^१—वि० [सं०] यूनान देश का । यूनान देश संबंधी ।

ग्रोक^२—संज्ञा स्त्री० ग्रीस या यूनान देश की भाषा ।

ग्रोक^३—संज्ञा पुं० ग्रीस या यूनान देश का निवासी ।

ग्रोखम^१—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीष्म] दे० 'ग्रीष्म' ।

ग्रोज—संज्ञा पुं० [सं० ग्रीष्म या ग्रीस] १. पशुओं की चर्बी । २. गाढ़ा किया हुआ तेल मिश्रित कोई पदार्थ जो कागज चिपकाने, जिल्द बंदी करने, रबर आदि जोड़ने, कल पुजों आदि की चमकता रखने के काम में इस्तेमाल किया जाता है ।

ग्रोव^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ग्रोव' । उ०—कर चरन ग्यास भूज ग्रीव ठोरि मुरि चलत सटक सों ।—घनानंद, पृ० ४२५ ।

श्रीवत्^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'श्रीवा' । उ०—पदंग मोर पण्बरह मोर श्रीवत् गज गहिय ।—पृ० रा०, ६१।१७६० ।

श्रीवाकुश—संज्ञा पुं० [सं० श्रीवाकुश] अंकुश की तरह गर्दनवाला । ऊँट [को०] ।

श्रीवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिर और घड़ को जोड़नेवाला अंग । गर्दन ।

विशेष—समस्त होने पर इस शब्द का रूप श्रीव हो जाता है । जैसे,—हयश्रीव, सुश्रीव ।

श्रीवाघंटा—संज्ञा पुं० [सं० श्रीवाघंटा] बैल, गाय आदि के गले में बजनेवाली घंटी [को०] ।

श्रीवालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'श्रीवा' [को०] ।

श्रीवी^१—संज्ञा पुं० [सं० श्रीविन्] १. वह जिसकी गर्दन लंबी हो । २. ऊँट ।

श्रीवी^२—वि० १. लंबी गर्दनवाला । २. सुंदर गर्दनवाला [को०] ।

श्रीषम^१—संज्ञा स्त्री० [सं० श्रीषम] दे० 'श्रीष्म' । उ०—ऋतु श्रीषम की आज्ञा सु दिस । तिहि अति प्रताप जाज्वलित किन —हम्मीर रा०, पृ० १६ ।

श्रीष्म—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गरमी की ऋतु ।

विशेष—कुछ लोग बैसाख और जेठ तथा कुछ लोग जेठ और अषाढ मास को श्रीष्म ऋतु मानते हैं । संक्रांति के हिसाब से वृष और मिथुन की संक्रांति भर श्रीष्म ऋतु मानी जाती है ।

पर्याय—उष्णक । ऊष्ण । ऊष्मागम । निहास । तप । धर्म । तापन, आदि ।

२. उष्ण । गरम ।

श्रीष्मकाल—संज्ञा पुं० [सं०] गरमी का मौसम [को०] ।

श्रीष्मकालीन—वि० [सं०] श्रीष्मकाल का । श्रीष्म ऋतु से संबंधित [को०] ।

श्रीष्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नेवारी का फूल [को०] ।

श्रीष्मप्रान्य—संज्ञा पुं० [सं०] गरमी में उत्पन्न होनेवाला अनाज [को०] ।

श्रीष्मप्रधान—वि० [सं० श्रीष्म+प्रधान] अधिक गरमीवाला । जहाँ अधिक गरमी पड़ती हो । जैसे, श्रीष्मप्रधान देश ।

श्रीष्मभवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नेवारी का फूल ।

श्रीष्मसुंदरक—संज्ञा पुं० [सं० श्रीष्मसुंदरक] एक प्रकार का शाक [को०] ।

श्रीष्महास—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुढ़िया का सूत । २. छोटे बारीक बीज जो हवा में गरमी के दिनों में उड़ते रहते हैं [को०] ।

श्रीष्मो—संज्ञा स्त्री० [सं० श्रीष्मन्] नेवारी का फूल [को०] ।

श्रीष्मोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नेवारी का फूल [को०] ।

श्रीस—संज्ञा पुं० [सं०] यूनान नामक देश जो योरप के पूरब-दक्षिण में है ।

श्रुप—संज्ञा पुं० [सं०] झुंड । समूह । गरोह ।

श्रेट प्राइमर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छापे का अक्षर जिसका जो १६ प्वाइंट का होता है और आकार प्रकार ऐसा होता है — 'श्रेट प्राइमर' ।

श्रेट बिटन—संज्ञा पुं० [सं० श्रेट बिटन] इंग्लैंड और स्कॉटलैंड देश ।

श्रेटब्रिटेन—संज्ञा पुं० [सं०] इंग्लैंड, वेल्स और स्कॉटलैंड द्वीपसमूह ।

श्रेन—संज्ञा पुं० [सं०] एक अंगरेजी तौल जो एक जी के बराबर होती है ।

श्रेनाइट—संज्ञा पुं० [सं०] एक तरह का आग्नेय पत्थर जो बहुत कड़ा होता है ।

विशेष—यह हमारे भूरे अथवा पीले रंग का और कई प्रकार का होता है । कोई कोई श्रेनाइट संगमरमर की भाँति मकेद भी होता है । इसे काटने में बहुत अधिक श्रम पड़ता है और आधाण इमारतों में इसका बहुत कम व्यवहार होता है । पुल की कोठियाँ बनाने अथवा ऐसे स्थानों में जहाँ बहुत अधिक मजबूती की आवश्यकता हो, इसका उपयोग किया जाता है । गरमी पाकर यह और परधरों की अपेक्षा जल्दी सड़क जाता है । इसपर पालिश बहुत अच्छी होती है पर आँध्र बड़े और खुरदरे होने के कारण न तो इसकी मूर्तियाँ बन सकती हैं और न इसपर खुदाई का महीन काम हो सकता है । इसमें अबरक का भी बहुत कुछ अंश मिला रहता है । इसे सफाया भी कहते हैं ।

श्रेह^१—संज्ञा पुं० [सं० श्रेह अथवा गेह] दे० 'गेह' या 'गृह' ।

श्रेहि^७—संज्ञा पुं० [हि० श्रेहिन्] दे० 'शिरही' । उ० ऐसी रक्षाक श्रेहि जो धरि है ।—कबीर सा०, पृ० २२३ ।

श्रेही^७—वि० [हि० श्रेह + ई (प्रत्यय)] १. गृही । मंगारी । २. मायावस्त । उ०—जाका गुरु श्रेही भवै, चेला सेही होद ।—कबीर सा०, पृ० १५ ।

श्रेजुएट—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोई उपाधिपरीक्षा पास किया हुआ विद्वान् । २. स्नातक । उ०—आखी फूटे भरा न पेट । क्यों सलि मज्जन नहि श्रेजुएट ।—मारतेंदु अं०, भा० २, पृ० ८१० ।

श्रेम—संज्ञा पुं० [सं० श्रेम] एक अंगरेजी तौल जो १५ अंस में कुछ अधिक होती है ।

श्रेव, श्रेवेय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० श्रेवी, श्रेवेयी] दे० 'श्रेवेयक' [को०] ।

श्रेवेयक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गले में पहनने का गहना । जैसे, - हार, माला, हैकल, हुमेल आदि । २. हाथों की हैकल । ३. जैनियों के एक प्रकार के देवता जो लोकपुरुष की गर्दन पर स्थित माने गए हैं । इनकी संख्या नौ है ।

श्रेवेयक^२—वि० गला संबंधी [को०] ।

श्रेष्म वि० [सं०] श्रीष्म से संबंधित [को०] ।

श्रेष्मक—वि० [सं०] जो गरमी में बोया जाय ।

श्रेष्मिक वि० [सं०] [वि० स्त्री० श्रेष्मिका] श्रीष्म से संबंधित [को०] ।

श्लपन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. विश्राम । थकान को दूर करना । २. गुरझाना । कुंभजाना । कुम्हलाना [को०] ।

श्लपन^२—वि० थकनेवाला [को०] ।

श्लपित वि० [सं०] १. थकित । कर्नात । २. चलाया हुआ । काटा हुआ । जैसे, गर्दन ।

श्लस्त—वि० [सं०] १. भक्षित । २. चीरा फाड़ा हुआ [को०] ।

श्लह—संज्ञा पुं० [पुं०] १. वह जो पासा खेलता हो । २. पासा । बाजी । जैसे,—प्राणम्लह समर । ३. जुआ खेलना । घूतफाड़ा । ४.

प्रज्ञ। पीसा। ५. प्रज्ञापेदिका। ६. प्रज्ञ की आय या प्राप्ति।
७. जुषा खिलानेवाला व्यक्ति (को०)।

ग्लानि^१—वि० [म०] १. उग्र प्रदि गेगों से पीड़ित। बीमार रोगी।
२. बका हुआ। ३. बमजोर।

ग्लानि^२—संज्ञा स्त्री० १. दीनता। २. ग्लान। श्राति (को०)। ३. बीमारी। गेग (को०)।

ग्लानि—संज्ञा स्त्री० [म०] [वि० ग्लेष] १. शारीरिक या मानसिक शिथिलता। अनुत्साह। मेद। प्रक्षमता। २. मन की एक वृत्ति जिसमें धन किसी की बुराई या दोष आदि को देखकर अनुत्साह, प्ररुचि और धिक्कता उत्पन्न होती है। पश्चात्ताप। ३. साहित्य में व्योमत्स्य रग का एक स्थायी भाव।

विशेष—साहित्यदर्पण के अनुसार यह व्यभिचारी भाव के अंतर्गत है। रति, परिश्रम, मनस्साध और भ्रम, व्यास आदि उत्पन्न दुर्बलता ही ग्लानि है। इसमें शरीर कांपने लगता है, शक्ति घट जाती है और किसी कार्य के करने का उत्साह नहीं होता।

४. पतन। ह्रास। उ०—जब जब धर्म की ग्लानि होती है और धर्म का प्रचुराण होता है, तब युग युग में वह अवतार लेता है।—हिंदू० सभ्यता, पृ० १८८।

ग्लानी(पु०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ग्लानि'। उ०—धर्म ग्लानी भई जब ही जब, तब तब तुम बपु धारणो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १६२।

ग्लास—संज्ञा पु० [अ०] १. शीशा। २. दे० 'गिलास'।

ग्लास्तु—वि० [म०] श्रात। बका हुआ (को०)।

ग्लूकोज—संज्ञा पु० [अ० ग्लूकोज] १. फलों की चीनी। २. अम्ल की चीनी। जो रासायनिक रीति से तैयार की जाती है। उ०—बच्चों को ग्लूकोज पिलाने का प्रयत्न करके विफल होकर.....सिर झुकाए थी।—जिप्सी, पृ० ५११।

ग्लेशियर—संज्ञा पु० [अ०] हिमखंड। हिमशिला जो गतिशील होती है। यह धीरे धीरे चलकर नीचे उतरता जाता है और फिर किसी नदी में मिल जाता है। उ०—अजयपथों से जा जाकर पहाड़ों पर के गरीबों और ग्लेशियरों में पाइलों के तपस्या स्थल और नए तीर्थों का आविष्कार करना भी आसान नहीं है।—किन्नर०, पृ० ६३।

ग्लो—संज्ञा पु० [ग०] १. चट्टान। २. कपूर। ३. गुच्छी (को०)।

ग्लोता—दे० [म० ग्लोट] श्रात। बका हुआ (को०)।

ग्लोता—संज्ञा पु० [म० गुण्ड] १. घरा। घुना। २. किसी मालन के चारों ओर का बाड़ा। ३. नहारदीवारी के अंदर घिरा हुआ स्थान। उ०—ग्लोता गिन घागण जिनि माटी।—गोरख०, पृ० २३६।

ग्लोड—संज्ञा पु० [हि० ग्लोड] दे० 'ग्लोड'। उ०—धवल नूँ राजे धणी बंगी दीन ग्लोड।—बाँसी० अं०, भा० १, पृ० ४३।

ग्लोड—संज्ञा पु० [हि० ग्लोड] उ०—ग्लोड माँहि आनंद उपनी।—कबीर अं०, पृ० १३७।

ग्लोड—संज्ञा पु० [सं० ग्लोड, हि० ग्लोड, ग्लोड] दे० 'ग्लोड'। उ०—सिल विकट पास सुवेण दे, तिरसूल ग्लोड तेणरे।—रघु० क०, पृ० २२४।

ग्लोड—संज्ञा स्त्री० [सं० ग्लोड] एक वार्षिक पौधा जिसकी फलियों की तरकारी और बीजों की दाल होती है। कीरी। बुरखी। विशेष—इसकी कई जातियाँ होती हैं। इसकी पत्तियों की खाद्य बहुत अच्छी होती है और उन्हें चोपाए बहुत चाव से खाते हैं। कही कही इसे अदरक के पौधों पर छाया करने के लिये भी लगाते हैं। यह वर्षा के प्रारंभ में बोई जाती है और जाड़े के मध्य में तैयार हो जाती है। इसमें पीले रंग के एक प्रकार के लंबे फूल भी लगते हैं। वैद्यक में इसके फली को बादी, मधुर, भारी, दम्लावर, पित्तनाशक, दीपक और कफकारक माना है और पत्तों को रतोषी दूर करनेवाला और पित्तनाशक कहा है।

ग्लोड—संज्ञा स्त्री० [अं० ग्लोड] एक प्रकार का बढ़िया रंगीन रेशमी कपड़ा।

ग्लोड—संज्ञा स्त्री० [अं० ग्लोड] दे० 'ग्लोड'।

ग्लोड—संज्ञा पु० [सं० कुमारी+ग्लोड] चीकुमार।

ग्लोड—संज्ञा स्त्री० [हि० ग्लोड+कली] ग्लोड नामक पौधे की फली जिसकी तरकारी बनती है। वि० दे० 'ग्लोड'।

ग्लोड—संज्ञा स्त्री० [हि० ग्लोड] दे० 'ग्लोड'। उ०—पूछति पाहुनि ग्लोड हा हा हो मेरी आली, कहा नाउं, को है चित बित्त को चोर।—नंद० अं०, पृ० ३४२।

ग्लोड—संज्ञा पु० [हि० ग्लोड+इया (प्रत्य०)] दे० 'ग्लोड'। उ०—ग्लोड की भंगु घरे ग्लोडि मे आवे।—छोत०, पृ० ५४।

ग्लोड—संज्ञा स्त्री० [हि० ग्लोड+इल (प्रत्य०)] दे० 'ग्लोड'।

ग्लोड—संज्ञा स्त्री० [हि० ग्लोड] १. ग्लोड की स्त्री। ग्लोड। २. गोपी।

ग्लोड—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ग्लोड'। उ०—केनी फूल निमोना बिड़सा रूप रतालू ग्लोड जी।—रघुनाथ (शब्द०)।

ग्लोड—संज्ञा स्त्री० [हि० ग्लोड] १. ग्लोड की स्त्री। २. गोपी।

ग्लोड—संज्ञा पु० [सं० गो+पाल, प्रा० गोपाल] १. ग्लोड। २. एक छंद का नाम जिसे सार और शानु भी कहते हैं। इसके प्रत्येक चरण में दो अक्षर होते हैं, जिनमें से पहला गुरु और दूसरा लघु होता है। जैसे—ग्लोड। धार। कृण। सार।

ग्लोडककरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ग्लोड+ककरी] जंगली चिचड़ा जिसके बीज, जड़ और पत्तियाँ आदि घोषध के काम में आती हैं। इसमें छोटे छोटे फल भी लगते हैं जो पकने पर गहरे लाल रंग के हो जाते हैं।

ग्लोडककरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ग्लोड+ककरी] दे० 'ग्लोडककरी'।

ग्यालवाक्मि—संज्ञा पुं० [हि० ग्याल + वाक्मि] मालकंगनी की जाति का एक छोटा पेड़ या झुप ।

विशेष—यह प्रकगानिस्तान, पंजाब और उत्तर भारत में चार हजार फुट की ऊँचाई तक होता है। इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी और लाल या भूरे रंग की होती हैं। इसकी लकड़ी मृदायम होती है और उसपर (छापेखाने में) छापने के लिये चित्र आदि खोदे जाते हैं।

ग्यालवाक्मि—संज्ञा पुं० [हि० ग्याल + वाक्मि] १. अहीरों के लड़के । २. कृष्ण के संगी साथी (की०) ।

ग्यालवा—संज्ञा पुं० [सं० गोपालक, प्रा० गोपालक] दे० 'ग्यान' ।

ग्यालिन^१—संज्ञा स्त्री० [हि० ग्याल + इन (प्रत्य०)] ग्याले की स्त्री । ग्याल जाति की स्त्री ।

ग्यालिन^२—संज्ञा स्त्री० [हि० ग्याल] ग्यार । खुरपी । कौरी ।

ग्यालिन^३—संज्ञा स्त्री० [सं० गोपालिका] तीन बार अंगुल लंबा एक बरसाती कीड़ा जिसे घिनोरी या गिजाई भी कहते हैं ।

ग्याली—संज्ञा स्त्री० [हि० ग्याला] ग्याले की स्त्री ।

ग्वैठना^१—क्रि० सं० [सं० गुण्ठन, हि० गुमेठना] मोड़ना । ऐठना । घुमाना या टेढ़ा करना । उ०—सोहे हूँ चाखी न तें केती घाई सोह । एहो नथें बैठी किए ऐठी ग्वैठी मोह ।—बिहारी (शब्द०) ।

ग्वैठा^१—संज्ञा पुं० [हि० गौंठठा] दे० 'गोइंठा' ।

ग्वैठा^२—वि० [हि० ऐंठा का अनु०] [वि० लो० ग्वैठी] ऐंठा हुआ । टेढ़ा । मेढ़ा ।

ग्वैड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि० गाँव + इड़ा] गाँव के आसपास की भूमि । उ०—(क) घर घर ते पकरान बनाये । निकसि गाँव के ग्वैड़े प्राये ।—सूर (शब्द०) (ख) यद्यपि तेज रोहल बर लगी न पलकी बार । तउ ग्वैड़ो पर को भयो पैड़ो कोस हजार ।—बिहारी (शब्द०) ।

ग्वैड़े^१—क्रि० वि० [हि० ग्वैड़ा] निरुद्ध । पाम । कीच । उ०—ग्वैड़े आय टेग है, नेह सो नियत है, बातें भरि पावत है भाव भरि खारई ।—घनानंद, पृ० २०४ ।

ग्वैर्याँ^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गोइंयाँ] दे० 'गोइंया' ।

घ

घ—हिंदी बर्णमाला के व्यंजनों में से कवर्ग का चौथा व्यंजन जिसका उच्चारण जिह्वामूल या कंठ से होता है। यह स्पर्श वर्ण है। इसमें घोष, नाद, संवार और महाप्राण प्रयत्न होते हैं।

घंघर^१—संज्ञा पुं० [अनु० घुनघुन + रघ] दे० 'घुंघरू' । उ०—किकिन सु पाइ घंघर सु गज राज निसॉन सबद प्रति ।—पृ० रा०, २५।२७६ ।

घंट^१—संज्ञा पुं० [सं० घण्ट] १. शिव का एक नाम । २. एक प्रकार का व्यंजन । घटनी (की०) ।

घंट^२—संज्ञा पुं० [सं० घट] १. घड़ा । २. घृतक की क्रिया में वह जलपात्र जो पीपल में बाँधा जाता है ।

घंट^३—संज्ञा पुं० [सं० घण्टा] दे० 'घंटा' । उ०—घंट घटि धुनि बरनि न जाहीं । सगे करहि पाइक फहराहीं ।—मानस, १।३०२ ।

औ०—घंटघड़ियाल ।

घंटक—संज्ञा पुं० [सं० घण्टक] एक क्षुप जिसका मूल कफनाशक है । घंटाकर्ण (की०) ।

घंटा—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० घण्टा] १. धातु का एक बाजा जो केवल ध्वनि उत्पन्न करने के लिये होता है, राग बजाने के लिये नहीं ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है। एक तो ओंघे बरतन के आकार का जिसमें एक संगर लटकता रहता है और जो संगर के हिलने से बजता है। दूसरा जिसे घड़ियाल कहते हैं घाली की तरह गोल होता है और मुँगरी से ठोंककर बजाया जाता है ।

क्रि० प्र०—बजाना ।

मुहा०—घंटे मोरछन से उठाना = अत्यंत बृद्ध के शव को बाजे गाजे के साथ श्मशान पर ले जाना ।

२. वह घड़ियाल जो समय की सूचना देने के लिये बजाया जाता है । ३. घंटा बजने का शब्द । घंटे की ध्वनि । जैसे—घंटा सुनते ही सब लोग चल पड़े ।

क्रि० प्र०—होना ।

४. दिन रात का चौबीसवाँ भाग । साठ मिनट या ढाई घड़ी का समय । ५. लिगेट्रिय—(बाजा) । ६. ठेंगा ।

मुहा०—घंटा दिखाना = किसी माँगने या चाहनेवाले को कोई वस्तु न देना । किसी माँगी या चाही हुई वस्तु का अभाव बताना । जैसे,—रुपया माँगने जायोगे तो वह घंटा दिखा देगा । घंटा हिनाना = व्यर्थ का काम करना । भ्रम मारना । सिर पटकना । हाथ मनना । जैसे,—तुम समय पर तो यहाँ पहुँचे नहीं; अब घंटा हिलायो ।

घंटाक—संज्ञा पुं० [सं० घण्टाक] दे० 'घंटक' ।

घंटाकरण—संज्ञा पुं० [सं० घण्टाकर्ण] एक धाम का पीषा जिसके पत्ते घीए या अरई की तरह के होते हैं ।

घंटाकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव के एक उपासक का नाम जो कान में डमलिये घंटा बाँधे रहता था कि जब कहीं राम या विष्णु का नाम लिया जाय, तब वह अपना सिर हिला दे और घंटे के शब्द के कारण वह नाम न सुने । २. एक पीषा । घंटक । घंटाकरण ।

घंटाघर—संज्ञा पुं० [हि० घंटा + घर] वह ऊँचा धीरहर जिसपर एक

ऐसी बड़ी धमपड़ी लगी हो जो चारों ओर से दूर तक दिखाई देती हो और जिसका घंटा दूर तक गूनाई देता हो ।

पंटासाह—वि० [सं० परासाह] पंटा संज्ञानाला । पंटासाहक ।
धाटिक [बो०] ।

घंटागाढ़ - 'श्री पू० [सं० घण्टागाढ़] १ घण्टे की घन्टि, २. तुलसी के एक मन्त्री का नाम [को०] ।

घंटापथ - इसका अर्थ है घण्टाघर का पथ । १. घंटा मन्दिर जो १० मनुष्य की उँची है । नगर की मुख्य सड़क । राजमार्ग । २. भारत के विमानचालीन मद्रास राज्य पर मल्लिनाथ की टीका का नाम है ।

चंदापाटलि १०० [म० घण्टापाटलि] मुद्रक वृक्ष (को०) ।

पश्चात् संघट्ट । भावरा । मोक्ष । सुष्पक । काष्ठपाटलि ।

घंटाघोज १०० { १५ घण्टाबीज } जमानमोट का पोषा और
उपहार की न [को०] ।

घंटा राश १० घण्टा राश १ गटे की धर्म २ गन का
 घोडा १ गण १० गण १०

घटारवा -- १७० [मं. घटारवा] मनई । जमापुष्पका , ३ ।

घंटावादक १। [१० घण्टावादक] देख 'घंटा गड' ।

घंटाशब्द - राजा पु० [५० घण्टाशब्द] १. घटे की ध्वनि । २. कांस्य ।
काँसा (कं०) ।

घंटास्थान - गंगा ५० [मं० घण्टास्थान] दे० 'गंटास्थ' ।

घण्टिक १०० (१०० घण्टिक) नक । गगर । घण्टिकान (को०) ।

घटिका' नाम का [म० घटिका] १. बहुत छोटा पत्र । २. घटी ।
घटी । खन्नी । ३. घुंघरू ।

यौ०—अग्रपंडितः । सुग्रपंडितः ।

चरितकृ. ॥ १० ॥ [५०] पाणिनीयः । श्रुतिः । नवे गते जो रहते मं
नमः । नवे गते । पाणिनीयः । उ० - श्रुतिः । नवे गते जो रहते मं
नमः । नवे गते । पाणिनीयः । उ० - श्रुतिः । नवे गते जो रहते मं

घंटो - पहा कीचड़ में पशुका। पतल या फूल की लड़ी लोटिया ।

चटो - मही खाँ [मो घाटा या प्रणिका] १. बहुत छोटा गटा ।

विशेष—यह शोध अमृतन के आकार का होता है और जिसका अकार लंबा होता जाता है। पट्टी का नाम भी विशेष है। लोग प्रायः पूजा के समय पट्टी बजाते हैं। अब यह जो भी सुलभ तथा लोगों को सामान्य करने के लिये भी पट्टी बजाते जाते हैं।

२. 'प्रती' बजान का शब्द ।

कि० प्र०--होना ।

३. पुष्पक कोशकी । ४. गले की नाव का वह भाग जो अग्रिम
उभरा हुआ है। गले की हड्डी को वह गुच्छा जो अग्रिम
जोती रही है। ५. गले के मध्य भाग का वह छोटी पिछी
जो अग्रिम का वह गुच्छा होती है। (दीक्षा)।

मुद्दा० घटी उठाना या बैठाना = गले की घटी को मूजन को धाकर मिटाना ।

घंटों'—वि० [स० प्रसिद्ध] १. जिसमें घटियाँ लगी हों। २. घंटे की भाँति बजनेवाला।

घंटी —महा पुं० शिव का एक नाम [को०] ।

घंटोल—सब खाना [देता] एक घास जो चारे के काम में आती है और जमीन पर दूर तक फैलती है। गंध इसे बहुत खाते हैं। यह पंजाब के मुजफ्फरगढ़, मंग्रादि स्थानों में बहुत होती है।

घटु - यज्ञ पुं० [सं० घट्] १. ताप । प्रकाश । ज्योति । २. हाथी की सजावट में उसकी छाती पर बाँधी जानेवाली धूलूँदार पट्टा । ३. गजघंटा [को०] ।

घट्ट- सधा पुं० [सं० घएट्ट] मधुमक्खी (को०) ।

घड़ो—सजा आ० [हि० घंटो] घाटी । गले का कीमा । उ०—घड़ी
तले बंकतालि बनाई । घट तले कछु ह्याद न पाई ।—प्राण०,
पृ० ७५ ।

घंगोला—सभा पृ० [२५०] कुमुद । कोई ।

घघरा—संज्ञा पुं० [हि० घाघरा] दे० 'घघरा'। उ०—स्त्रियों का पहिरावा मोढ़ना, घंघरा या छोटेपन में सुथना है।—भारतेन्दु ग्र०, भा० ३, पृ० ६।

घँघराघोरा—सङ्गा पु० [हि० घघरा + घोर] छुमाछूत के विचार का प्रभाव । अष्टाचार । घात मेल ।

घघरी—संज्ञा स्त्री० [हि० घाघरा] दे० घघरी' । उ०—घघरी लाल
जरकसी सारी सोधे भीनी खोली पू ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २,
पृ० ४४६ ।

घघोरना—क्रि० स० [हि० घन + घोरना] दे० 'घँघोलना' ।

घंघोलना—क्र० स० [हि० घन + घोलना] १. हिलाकर घोलना ।
पानी को हिलाकर उसमें कुछ मिलाना ।

संयो० कि० - - देना ।

२. पानी को हिलाकर मैला करना ।

मयो० क्रि०— डालना ।

पेंटियारा— संज्ञा पुं० [हि० घांटी] पशुओं के गले का एक रोग जिसमें उनका गले में कटि से पड़ जाते हैं और वे चारा नहीं निगल सकते ।

घसना—क्रि० स० [हि० घिसना] दे० 'घिसना' ।

घड़लिया(५)†--सब लो० [हि० पैला] छोटा घड़ा । गागर । उ०—
काब माटी के घड़लिया भरि लै पनिहार ।—घरम०, पृ० ८ ।

घइली—संज्ञा स्त्री० [हि० घंला] गगरी । छोटा घड़ा ।

धई (पु)¹ -- संज्ञा स्त्री० [सं० गम्भीर] १. गभीर भेंवर। पानी का
 षवकर। उ०—घ्राये सदा सुधारि गोसाईं जन ते बिगिर गई
 है। यके बचन पैरत सनेह सरि परे मानो घोर धई है।—
 तुलसी (शब्द०)। २. धूनी। टेक। ३. वह दगार जो
 जोलाहो के तूर में १२ अंगुल गहरी और इतनी ही चौड़ी और
 गज भर लंबी खुदी होती है।

घई पुं० - वि० जिसकी याह न लग सके। प्रत्यंत गंभीर। बहुत गहरा। षयाह। उ०—प्रीति प्रतीति रीति शोभा सरि याहत जहँ तहँ घई।—तुलसी (शब्द०)।

घडरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] फलों का गुच्छा। घोर। घवरि। उ०—
घोनइ रही केरन्ह की घडरी।—जायसी पं० (गुप्त),
पृ० ३४।

घघरबेल—संज्ञा स्त्री० [हि० सुघराखा + बेल] एक प्रकार की लता।
बंदाल।

घघरा—संज्ञा पुं० [हि० घन + घेरा] [स्त्री० घघरी] स्त्रियों का एक
चुननदार पहनावा जो कटि से लेकर पैर तक का शरीर
ढाकने के लिये होता है। लहंगा।

घघरो—संज्ञा स्त्री० [हि० घघरा] छोटा लहंगा।

घचाघच—संज्ञा स्त्री० [अनु०] नरम चीज में किसी भारदार या
नुकीली वस्तु के चुभने या धँसने का शब्द।

घट^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. घड़ा। जलपात्र। कलसा। २. पिंड।
शरीर। उ०—बा घट के सो दूक के दीजै नदी बहाय। नेह
भरेहू पै जिन्हें दोरि रुखाई जाय।—रसनिधि (शब्द०)।
३. मन। हृदय। जैसे,—घंतरायामी घट घट बासी। ४. कुंभक
प्राणायाम (को०)। ५. कुंभ राशि। ६. एक तोल। २० द्रोण
की तोल। ७. हाथी का कुंभ। ८. किनारा। ९. नौ प्रकार
के द्रव्यों में से एक जिसे तुला भी कहते हैं। वि० दे० 'तुला-
परीक्षा'।

मुहा०—घट में बसना या बैठना = (१) हृदय में स्थापित होना।
मन में बसना। ध्यान पर चढ़ा रहना। जैसे—जिसके घट में
राम बसते हैं, वही कुछ देता है। (२) किसी बात का मन में
बैठना। हृदयंगम होना।

घट^२—संज्ञा पुं० [हि० घटा] मेघ। बादल। घटा। उ०—सहनाइ
नफेरिय नेक बजं। सु मनो घट भद्व मास गजं।—पु० रा०,
२४। १८२।

घट^३—वि० [हि० घटना] घटा हुआ। कम। थोड़ा। छोटा। मध्यम।
उ०—घट बढ़ रकम बनाइ के सिसुता करो तगीर।—
रसनिधि (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'बढ़' के साथ ही अधिकतर होता
है। अकेले इसका क्रियावत् प्रयोग 'घटकर' ही होता है।
जैसे,—वह कपड़ा इससे कुछ घटकर है।

घटकंचुकी—संज्ञा स्त्री० [सं० घटकचुकी] तानिकों की एक रीति।

विशेष—इसमें भैरवी चक्र में संमिलित स्त्रियों की कंचुकियाँ
लेकर एक घड़े में भर दी जाती हैं। फिर एक एक पुरुष
बारी बारी से एक एक कंचुकी निकालता है। जिस पुरुष
के हाथ में जिस स्त्री की कंचुकी (चोली) आती है, उसी के
साथ वह संभोग कर सकता है।

घटक^१—वि० [सं०] १. दो पक्षों में बातचीत करानेवाला। बीच
में पड़नेवाला। मध्यस्थ। २. मिलानेवाला। योजक।

घटक^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. विवाह संबंध तय करानेवाला व्यक्ति।
बरेलिया। २. दलाल। ३. काम पूरा करनेवाला। चतुर
व्यक्ति। ४. वंशपरंपरा बतलानेवाला। चारण। ५. वह
सामग्री जिसके मेल से कोई पदार्थ बना हो। अवयवभूत
वस्तु। उपादान वस्तु। ६. बिना फूल सगे फल देनेवाला वृक्ष।
जैसे, गुजर। ७. घड़ा।

घटकना^१—क्रि० सं० [अनु० घटक] १. उदरस्थ करना। २. दे०
'घटकना'।

घटकरन^१—संज्ञा पुं० [सं० घटकरण] दे० 'घटकरण'। उ०—जयति
दसकंठ घटकरन बारिदनाद कदन कारन कालनेमि हुंता।—
तुलसी (शब्द०)।

घटकफैट—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का ताल।

घटकफर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] कुंभकर्ण।

घटकफर—संज्ञा पुं० [सं०] विक्रम की सभा के नवरत्नों में एक कवि
का नाम।

विशेष—इनका नाम कालिदास के साथ विक्रमादित्य की सभा
के नवरत्नों में आता है। इनका बनाया नीतिसार नामक एक
ग्रंथ मिलता है जिसे 'घटकफर काव्य' भी कहते हैं। इनका
छोटा सा काव्य यमक अलंकार से परिपूर्ण है। 'यदि कोई
इससे सुंदर यमकालंकारयुक्त कविता करे तो मैं फूटे घड़े के
टुकड़े से उसका जल भरूँगा' इस प्रतिज्ञा के कारण इनका
नाम घटकफर या घटखपर पड़ा है।

घटका—संज्ञा पुं० [सं० घटक (= शरीर)] अथवा अनु० घर्घर्
शब्द] मरने के पहले की वह अवस्था जिसमें साँस रुक
रुककर धरधराहट के साथ निकलती है। कफ छेकने की
अवस्था। घर्घा।

क्रि० प्र०—घटका लगना = मरते समय कफ छेकना।

घटकार—संज्ञा पुं० [सं०] कुम्हार।

घटग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] जल भरनेवाला व्यक्ति। पनहारा [को०]।

घटज—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि। उ०—कुसमउ देखि सनेहु
संभारा। बढ़त बिधि जिमि घटज निवारा।—मानस,
२। २९६।

घटजोनी^१—संज्ञा पुं० [सं० घटयोनि] दे० 'घटयोनि'। उ०—
बालमीकि नारद घटजोनी निज निज मुखनि कही निज
होनी।—मानस, १। ३।

घटती—संज्ञा स्त्री० [हि० घटना] १. कमी। कसर। न्यूनता।
अवनति। 'बढ़ती' का उलटा।

मुहा०—घटती का पहरा = अवनति के दिन। बुरा जमाना।

२. हीनता। अप्रतिष्ठा। उ०—घटती होइ जाहि ते अपनी ताकी
कीजै त्याग।—सूर (शब्द०)।

घटदासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नायक और नायिका का सम्मिलन
करा देनेवाली दासी। २. कुटनी।

घटन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० घटनीय, घटित] १. गढ़ा जाना।
रूप या आकार देना। २. होना। उपस्थित होना। ३.
मिलाना। जोड़ना। ४. प्रयास। गति। प्रयत्न। ५. कलह।
विरोध।

घटना^१—क्रि० प्र० [सं० घटन] १. उपस्थित होना। बाँके होना।
होना। जैसे,—वहाँ ऐसी घटना घटी कि सब लोग आश्चर्य में
आ गए। २. लगना। सटीक बैठना। आरोप होना। मेल में
होना। मेल मिल जाना। जैसे,—यह कहावत उनपर ठीक
घटती है। उ०—अब जो तात दुरावों तोहीं। चारण बोध

मटइ प्रति मोहौ।—तुलसी (शब्द०)। ३. उपयोग में आना। काम आना। उ०—साभ कहा मानुष तन पाए। काम बचन मन सपनेहु कबहुँक घटत न काज पगाए।—तुलसी (शब्द०)।

घटना^२—क्रि० प्र० [हि० कटना] कम होना। छोटा होना। क्षीण होना। जैसे,—झूँ का पानी घट रहा है। उ०—श्रवण घटहु पुनि रग घटहु, घटो सरल बल देह। इमे घटे घटिहै कहा, जो न घटे होर नेह।—तुलसी (शब्द०)।

घटना^३—क्रि० स० [सं० घटन] १. बनाना। रचना। २. पूरा करना। उ०—सखा मोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटव काज मैं मोरें।—मानस, ४। ६।

घटना^४—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोई बात जो हो जाय। वाक्या। हादसा। वारदात। जैसे,—यही ग़मी बड़ी घटना कभी नहीं हुई थी। उ०—अब घटना सुपट, सुघट विघटन विकट, भूमि पाताल जल गगन गंगा।—तुलसी (शब्द०)।

घटना^५—घटनाक्रम। घटनाचक्र - घटनाओं की परंपरा या उनका सिलसिला। घटनाबली - घटनाओं का समूह। घटनास्थल - वह स्थान जहाँ घटना घटित हुई हो।

२. योजना। ३. समूहीकरण। ४. गजघटा। गजघृष।

घटनाई^१ - संज्ञा स्त्री० [हि० घडनाई] दे० 'घडनाई'।

घटपल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तु विद्या (इमारत) में वह खंभा जिसका मिरा पड़े और पल्लव के आकार का बना हो।

घटपर्यसन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रायश्चित्त न करने और जाति में सम्मिलित न होनेवाले पतित व्यक्ति का प्रेतकर्म जो उसकी जीवतावस्था में ही उसके परिजनों द्वारा संपन्न होता है [स्त्री०]।

घटबद्ध^१—संज्ञा स्त्री० [हि० घटना + बद्धना] १. कमीबेसी। न्यूनाधिकता। २. नृत्य की एक क्रिया।

घटबद्ध^२—वि० कमबेश। आश्रित से अधिक या कम।

घट्टयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य मुनि।

घटभेदनक—संज्ञा पुं० [सं०] बर्तन बनाने का एक उपकरण [स्त्री०]।

घटशशि—संज्ञा पुं० [सं०] एक द्रोण का मान जो लगभग सोलह सेर का होता है।

घटवाई^१—संज्ञा पुं० [हि० घाट + बाई] १. घाटवाला। घाट का कर लेनेवाला। २. िना कर लिए या तलाशी लिए न जाने देनेवाला। रोकनेवाला। उ०—आवन जान न पावत कोऊ तुम मग मे घनवाई। सूरधाम हमको विरमावन लोभत बहिनी मारि।—सूर (शब्द०)।

घटवाई^२—संज्ञा स्त्री० वह कर या महसूल जो घाट का अधिकारी यात्रियों से घाट पर उतरने बढ़ने के बदले लेता है।

घटवाई^३—संज्ञा स्त्री० [हि० घटवाना] कम करवाई। कम करवाने की क्रिया या पारिश्रमिक।

घटबादन—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में मिट्टी के घड़े को श्रोत्र करके बजाने की क्रिया।

घटवाना—क्रि० स० [हि० घटाना का प्रे० रूप] घटाने का काम कराना। कम करना।

घटवार—संज्ञा पुं० [हि० घाट + वार या वाला] १. घाट का महसूल लेनेवाला। उ०—ये घटवार घाट घट रोकें बोले वार बहाव।—तुलसी श०, पृ० ३०८। २. मल्लाह। केवट। ३. घाट पर बैठकर दान लेनेवाला ब्राह्मण। घाटिया। ४. घाट का देवता।

घटवारिया—संज्ञा पुं० [हि० घाट + वाला] दे० 'घटवालिया'।

घटवाल—संज्ञा पुं० [हि० घाट + वाल] दे० 'घटवार'।

घटवालिया—संज्ञा पुं० [हि० घाट + वाला] तीर्थस्थानों में नदी या सरोवर के घाट पर बैठकर दान लेनेवाला पंडा। तीर्थपंडा। घाटिया।

घटबाह—संज्ञा पुं० [हि० घाट + बाह (प्रत्य०)] घाट का ठकेदार। घाट का कर वसूल करनेवाला।

घटबाही—संज्ञा पुं० स्त्री० [हि० घाट + बाही] दे० 'घटवाई'।

घटसंभव—संज्ञा पुं० [सं० घटसंभव] अगस्त्य मुनि।

घटस्थापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी मंगल कार्य या पूजन आदि के समय, विशेषतः नवरात्र में, घड़े में जल भरकर रखना जो कल्याणकारक समझा जाता है। २. नवरात्र का आरंभ, या पहला दिन जिसमें घट की स्थापना होती है।

घटहा^१—संज्ञा पुं० [हि० घाट + हा (प्रत्य०)] १. घाट का ठकेदार। २. वह नाव जो इस पार से उस पार जाती हो।

घटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मेघों का बना समूह। उभड़े हुए बादलों का ढेर। मघमाला। कादंबिनी। उ०—त्यो पदमाकर बारहि बार सुबार बगारि घटा करती है।—पद्माकर प्र०, पृ० १५८।

क्रि० प्र०—उठना।—उबटना।—उमड़ना।—घिरना।—छाना।—झूमना।

२. समूह। भुंड। उ०—रजनीचर मत गयंद घटा बिघटे भृगराज के साज लरे। अर्पट भट कोटि मही पटक गरजे रघुबीर की सोह करे।—तुलसी (शब्द०)। ३. चेष्टा। प्रयत्न। प्रयास [स्त्री०]। ४. सैनिक कार्य के लिये एकत्र हाथियों का भुंड [स्त्री०]। ५. सभा। गोष्ठी [स्त्री०]।

घटाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० घटना + ई (प्रत्य०)] १. हीनता। अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। उ०—धूप मन आई यह निपट घटाई होत अति सरसाई नहीं जानै घटो प्रीति है।—प्रिया (शब्द०)। २. घटाने की क्रिया।

घटाकाश—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश का उतना भाग जितना एक घड़े के अंदर आ जाय। घड़े के अंदर की खाली जगह। उ०—देह की संयोग पाइ जीव ऐमो नाम भयो, घट के संयोग घटाकाश ज्यो कहायो है।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ६०८।

घटाम—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तुस्तंभ का अष्टम भाग। वास्तु विद्या में खंभे के नौ विभागों में से आठवाँ विभाग।—वृहत्, पृ० २३०।

घटाटोप—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादलों की घटा जो चारों ओर से घरे हो। २. गाड़ी या बहली को ढक लेनेवाला ओहार। पालनी या पीनस का ओहार। किसी वस्तु को पूर्णतः ढक लेनेवाला कपड़ा। ३. बादलों की भाँति चारों ओर से घेर लेनेवाला दल वा समूह। उ०—घटाटोप करि बहु बिधि

पेरी । मुझहि निसान बजावहि मेरी ।—मानस ६।३८ ।
४. घाड़बर ।

घटना—क्रि० स० [हि० घटना] १. कम करना । क्षीण करना ।
२. बाकी निकालना । काटना । जैसे,—सौ रुपये में से पचास घटा दो । ३. अप्रतिष्ठा करना । बेकदरी करना । जैसे,—तुमने आप अपने को घटाया है ।

घटाव—संज्ञा पुं० [हि० घटना] १. कम होने का भाव । न्यूनता ।
कमी । २. घटनति । तनजुली ।

घौं—घटाव बढ़ाव = कमी वेशी । न्यूनता धीर वृद्धि ।
३. नदी की बाढ़ की कमी । 'बढ़ाव' का उलटा ।

मुहा०—घटाव पर होना = बाढ़ का कम होना ।

घटावना—क्रि० स० [हि० घटाव + ना] दे० 'घटना' ।

घटिघम—संज्ञा पुं० [सं० घटिघम] कुंभकार । कुम्हार [को०] ।

घटि—वि० [हि०] दे० 'घट' ।

घटि—क्रि० वि० घटकर ।

घटि—संज्ञा स्त्री० घटी । कमी ।

घटिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. घंटा पूरा होने पर बड़ियाल बजानेवाला
व्यक्ति । घंटा बजानेवाला सिपाही । घड़ियाली । २. बड़नई
के सहारे जलाशय या नदी को पार करानेवाला । ३. नितंब ।

घटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घटी यंत्र । टाइमपीस । घड़ी । २.
एक घड़ी का समय । २४ मिनट का समय । ३. छोटा घड़ा ।
गगरी । ४. एक प्रकार का जल का घड़ा जिससे दिन की
घड़ियों का ज्ञान होता था (को०) । ५. घटना । जानु (को०) ।

घौं—घटिकायंत्र । घटिकावधान । घटिकागतक । घटिकास्थान ।

घटिकायंत्र—संज्ञा पुं० [सं० घटिकायंत्र] दे० 'घटीयंत्र' ।

घटिकावधान—संज्ञा पुं० [सं०] एक घड़ी में कई काम करनेवाला
व्यक्ति ।

घटिकाशतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक घड़ी में सौ श्लोक बनानेवाला
कवि । २. एक घड़ी में एक साथ सौ काम करनेवाला व्यक्ति ।

विशेष—बहुत से लोग ऐसी साधना करते हैं कि वे एक साथ
शतरंज खेलते जाते, पद्य बनाते जाते तथा गणित करते
जाते हैं और इस प्रकार एक घंटे के भीतर सब काम पूरा
उतार देते हैं ।

घटिकास्थान—संज्ञा पुं० [सं०] यात्रियों के ठहरने का स्थान ।
पथिकशाला । षट्टी । सराय ।

घटिघट—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०] ।

घटित—वि० [सं०] १. बना हुआ । रचा हुआ । रचित । निर्मित ।
२. जो हुआ हो । जो एक बार हो गया हो (को०) ।

घटिताई—संज्ञा स्त्री० [हि० घटना] कमी । न्यूनता । त्रुटि ।

घटिया—वि० [हि० घट + टिया (प्रत्यय)] १. जो अच्छे मोल का न
हो । कम मोल का । खराब । सस्ता । 'बढ़िया' का उलटा ।
२. घम । तुच्छ । नीच । जैसे,—बहू बढ़ा घटिया आदमी है ।

घटियारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जिसे खरी भी
कहते हैं । यह पंजाब में होती है और इसमें बदरक की सी
महक होती है ।

घटिहा—वि० [हि० घात + हा (प्रत्यय)] १. घात लगानेवाला ।
घात पाकर अपना स्वार्थ साधनेवाला । २. चालाक ।
मक्कार । ३. धोखेबाज । बेईमान । ४. व्यभिचारी । लंपट ।
५. दुष्ट । दुःखदायी । खल । उ०—कह गिरधर कविराय
सुनो हो निर्दय पतिहा । नेक रहन दे मोहि चोंच मूदे रट्ट
घटिहा ।—गिरधर (शब्द०) ।

घटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. २४ मिनट का समय । घड़ी । ग्रहंत ।
२. समयसूचक यंत्र । टाइमपीस । क्लाक । ३. छोटा घड़ा ।
कलसी । गगरी । ४. रंहट की घरिया । ५. प्राचीन काल में
समय जानने के काम में आनेवाला एक विशेष जलपात्र ।

घौं—घटीकार = कुम्हार । घटीग्रह, घटीग्रह = पानी भरनेवाला
व्यक्ति ।

घटी—संज्ञा स्त्री० [हि० घटना] १. कमी । न्यूनता । २. हानि ।
क्षति । नुकसान । घाटा ।

मुहा०—घटी घाना या पड़ना = व्यवसाय में हानि होना ।

घटी—संज्ञा पुं० [सं० घटिन्] १. कुंभराशि । २. शिव ।

घटीघट—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

घटीयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० घटीयंत्र] १. समयसूचक यंत्र । घड़ी । २.
संग्रहणी रोग का एक भेद जो असाध्य माना जाता है । ३.
रंहट जिससे कुंए से पानी निकाला जाता है । ४. दिन का
समय जानने का जलपात्र (को०) ।

घट्टका—संज्ञा पुं० [सं० घटोत्कच] भीमसेन का घटोत्कच नामक
पुत्र जो हिंडिबा राक्षसी से पैदा हुआ था । उ०—कहत नाह
सिर बचन घट्टका । सुनिये नाथ क्षमा करि चूका ।—सबल
(शब्द०) ।

घटेरुआ—संज्ञा पुं० [हि० घाटी + सं० रुज] पशुओं का एक प्रकार
का रोग जिसमें उनका गला फूट जाता है ।

घटोत्कच—संज्ञा पुं० [सं०] हिंडिबा राक्षसी से उत्पन्न भीमसेन का
पुत्र जिसे महाभारत युद्ध में कर्ण ने मारा था ।

घटोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] अग्रतय मुनि ।

घटोर—संज्ञा पुं० [सं० घटोदर] मेढ़ा । मेप ।—(डि०) ।

घट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. घाट । चुंगी या महसूल लेने का स्थान ।
३. क्षुब्ध करना । क्षोभण ।

घट्ट—संज्ञा पुं० [सं० घट] शरीर । उ०—उत्तर आज स उत्तरव
सोय पड़ेसी घट्ट । मोहागिर धर प्रांगणइ दोहागिर रह घट्ट ।
—ढोला०, दू० २६० ।

घट्ट—संज्ञा पुं० [हि० घाट] घाटी । तलहटी । उ०—प्रति आगेंद
उमाहियउ बहइ ज पूगल बट्ट । श्रीजड पुहरि उलोघियउ
आडबलारउ घट्ट ।—ढोला०, दू० ४२४ ।

घट्ट—संज्ञा पुं० [सं० घट = घड़ा] घड़ा । कुंभ । उ०—सहसं गो
मंगाइ सबच्छिय, देइ द्रव्य ले अश्ली प्रच्छिय । सहसं घट्ट शिव
ऊपर कीनी, तीन उपास नेम तब लीनी ।—पृ० रा०, १।४०२ ।

घट्टकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चुंगी की चौकी [को०] ।

घट्टजीवी—संज्ञा पुं० [सं० घट्टजीविन्] १. घाट के महसूल से जीविको-

पार्जन करनेवाला व्यक्ति । २. वैश्या स्त्री में रजक से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति [को०] ।

घटन—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिमाला इलाना । चलाना । २. संघटन । संयोजन [को०] ।

घट्टना—संज्ञा पुं० [सं०] १. झिलाना । झुलाना । चलाना । २. रगड़ना । घोटना । मलना । ४. जीविका । वृत्ति [को०] ।

घट्टा^१—संज्ञा पुं० [हि० घट्टा] १. घाटा । घटी । कमी । टोटा । २. दरार । छेद । जैसे—सिर पर ऐसी लाठी पड़ी कि घट्टा खुल गया ।

मुहा०—घट्टा खुलना—दरार हो जाना । फट जाना ।

घट्टा^२—संज्ञा पुं० [सं० घट्ट, प्रा० घट्ट] दे० 'घट्टा' । उ०—घनु कीचत घट्टा पड़े हुज काके हाथ ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० १, पृ० १०५ ।

घट्टा^३—संज्ञा स्त्री० [सं० घटा] दे० 'घटा' । उ०—प्रलय काल के अनु घन घट्टा ।—मानस, ६, ८६ ।

घट्टित^४—संज्ञा पुं० [सं०] मुख्य में पैर चलाने का एक प्रकार जिसमें ऐंड़ी की जमीन पर दबाकर पंजा नीचे ऊपर हिलाते हैं ।

घट्टित^५—वि० [सं०] १. हिलाया झुलाया हुआ । २. निमित्त । ३. रगड़कर चिकनाया हुआ । ४. दबाया हुआ [को०] ।

घट्टी^६—संज्ञा स्त्री० [हि० घट्टना] घटी । कमी ।

घट्ट—स्त्री० पुं० [सं० घट्टन] संघटन । जमावडा ।

घट्टा—संज्ञा पुं० [सं० घट्टक, प्रा० घट्ट] शरीर पर वह उभड़ा हुआ चिह्न जो किसी वस्तु की रगड़ लगने लगते पड़ जाता है । जैसे,—तलवार की गूठ पकड़ते पकड़ते उसकी उँगलियों में घट्टे पड़ गए हैं ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

मुहा०—घट्टा पड़ना = अभ्यास होना । मशक होना ।

घट्टा^७—संज्ञा स्त्री० [सं० घट्ट या घट] १. दल । समूह । सेना । २. दे० 'घटा' । उ०—प्राज घरा दस ऊनम्यउ काली घट्ट सलराई । उवा घड देमी ओलेंवा कर कर लाबी बाह ।—ढोला०, पृ० २०१ ।

घट्टघट्ट—संज्ञा पुं० [घट्ट] वादन गजने, गाड़ी चलने आदि का शब्द ।

घट्टघट्टाना^१—क्रि० प्र० [घट्ट] गजगड या घट्टघट्ट शब्द करना । वादन गजने या गड्ढा गाड़ी चलने का शब्द होना । गड्ढा-डाना । जैसे—गाद ! घट्टघट्ट रहे है ।

घट्टघट्टाना^२—क्रि० ग० [घट्ट] गिरी वस्तु को चलाना या खींचना जिसमें घट्टघट्ट शब्द हो । जैसे,—वह गाड़ी घट्टघट्टाता था पंचता ।

घट्टघट्टाहट—संज्ञा स्त्री० [घट्ट] घट्टघट्ट । १. घट्टघट्ट शब्द होने का भाव । २. वादन या गाड़ी चलने का शब्द ।

घट्टत—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घट्टत' ।

घट्टन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घट्टन' ।

घट्टनई—संज्ञा स्त्री० [हि० घड़ा + नैया] दे० 'घड़नैल' ।

घट्टना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'गठना' । उ०—पागरी घड़ीयों के भीघट लोह ।—वीसल० रास, पृ० ६४ ।

घट्टनाई^३—संज्ञा स्त्री० [हि० घड़ा + नैया] दे० 'घड़नैल' । उ०—सुरहुर पुर की बहुरी फिरे । चढ़ि घट्टनाई सरिता तिरै ।—मर्ध०, पृ० ४३ ।

घट्टनैल—संज्ञा पुं० [हि० घड़ा + नैया (= नाव)] बांस में घड़े बाँधकर बनाया हुआ ढोचा जिससे छोटी छोटी नदियाँ पार करते हैं ।

घट्टा^४—संज्ञा पुं० [सं० घट अथवा सं० घट + क (प्रत्य०)] मिट्टी का बना हुआ गमरा । जलपात्र । बड़ी गमरी । कलसा । घैला । कुंभ । ठिल्ला ।

मुहा०—घड़ों पानी पड़ जाना = पयंत लज्जित होना । लज्जा के मारे गड़ जाना । जैसे,—जब मैंने मुँह पर यह बात कही, तो उसपर घड़ों पानी पड़ गया ।

घट्टा^५—वि० [हि० घना] अधिक । उ०—अवर जनम धारे घट्टा हो नरेस ।—बी० रासो, पृ० ६५ ।

घट्टा^६—संज्ञा पुं० [सं० घट्ट] सेना । उ०—तुरक घट्टा नव तेरही तेरह सास कबंध ।—रा० रू०, पृ० ७० ।

घट्टाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'गट्टाई' ।

घट्टाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'गठाना' । उ०—लड़की के लिये दो एक चीज चाँदी की घट्टाना जरूरी है ।—पिजरे०, पृ० १०५ ।

घट्टामोड़^७—वि० [हि० घड़ा (= सेना) + मोड़ना] शूरवीर ।—पराक्रमी (हि०) ।

घड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० घटिका] १. मिट्टी का बरतन जिसमें रखकर सोनार लोग सोना चाँदी गलाने हैं । २. मिट्टी का छोटा प्याला । ३. बाहुद का छत्ता । ४. बच्चादानी । गर्भाशय । ५. मिट्टी की नाँद जिसमें लोहार लोहा गलाते हैं । ६. रहँट में लगी हुई छोटी छोटी ठिलियाँ जिनमें पानी भरकर प्राता है ।

घड़ियाल^१—संज्ञा पुं० [सं० घटिकालि, प्रा० घड़ियालि = घंटों का समूह] वह घंटा जो पूजा में या गमय की सूचना के लिये बजाया जाता है ।

विशेष—दिल्ली में इस शब्द को स्त्रीलिंग बोलते हैं ।

घड़ियाल^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा और हिंसक जलजंतु । बाह ।

विशेष—घड़ियाल प्राठ दम हाथ लंबा और गोह या छिपकली के आकार का होता है । इसकी पीठ पर का चमड़ा काला और कड़ा होता है । इसकी ठोर का ऊपरी भाग सोंटे के आकार का होता है जिसे तूँबी या मटुक कहते हैं ।

घड़ियाली^३—संज्ञा पुं० [हि० घड़ियाल] १. समय की सूचना के लिये घंटा बजानेवाला । २. घंटा बजानेवाला ।

घड़ियाली^४—संज्ञा स्त्री० [हि० घड़ियाल] एक प्रकार का घंटा जो पूजन के समय देवालय आदि में बजाया जाता है । विजयघंटा ।

घड़ियाली^५—संज्ञा पुं० [हि० घड़ा] छोटा घड़ा ।

घड़ी^१—संज्ञा [सं० घटी] १. काल का एक मान । दिन रात का ३२वीं भाग । २४ मिनट का समय । वि० दे० मुहा० 'घड़ी कूकना' ।

मुहा०—घड़ी घड़ी = बार बार । थोड़ी थोड़ी देर पर । घड़ी

तोला, घड़ी माशा = कभी कुछ, कभी कुछ। एक क्षण में एक बात, दूसरे क्षण में दूसरी बात। अस्थिर बात या व्यवहार। जैसे,—उनकी बात का क्या ठिकाना, घड़ी तोला, घड़ी माशा। घड़ी गिनना = (१) किसी बात का बड़ी उत्सुकता के साथ आसरा देखना। अत्यंत उत्कण्ठित होकर प्रतीक्षा करना। (२) मृत्यु का आसरा देखना। मरने के निकट होना। घड़ी में घड़ियाल है = (१) जिंदगी का कोई ठिकाना नहीं। न जाने कब काल आए। (२) क्षण भर में न जाने क्या से क्या हो जाता है। दशा पलटते देर नहीं लगती।

विशेष—बहुत बुद्धि आदमी के मरने पर उसे लोग घंटा बजाते हुए श्मशान पर ले जाते हैं, इसी से यह मुहावरा बना है।

घड़ी बेना = मुहूर्त बतलाना। सायत बतलाना। उ०—भरें गो चने गंग गति लेई। तेहि दिन कहाँ घड़ी को देई।—जायसी (शब्द०)। घड़ी भर = थोड़ी देर। थोड़ा समय। जैसे,—घड़ी भर ठहरो, हम आए। घड़ी सायत पर होता = मरने के निकट होना।

२. समय। काल। उ०—जिस घड़ी जो होना होता है, वह हो ही जाता है। ३. अवसर। उपयुक्त समय। जैसे,—जब घड़ी आएगी तब काम होते देर न लगेगी। ४. समयसूचक यंत्र। जैसे,—क्लाक, टाइम पीस, वाच आदि।

यौ०—घड़ीसाज। धर्मघड़ी। घूपघड़ी।

मुहा०—घड़ी कूकना = घड़ी की ताली ऐटना जिससे कमानी कस जाय और झटके से पुर्जे चलने लगें। घड़ी में चाभी देना।

विशेष—प्राचीन काल में समय के विभाग जानने के लिये भिन्न भिन्न युक्तियाँ काम में लाते थे। कहीं किसी पटल पर बने वृत्त की परिधि के विभाग करके और उसके केंद्र पर एक मंकु या सूई खड़ी कर के उसकी (घूप में पड़ी हुई) छाया के द्वारा समय का पता लगाते थे। कहीं नौद में पानी भरकर उसपर एक तेरता हुआ कटोरा रखते थे। कटोरे की पेंदी में महीन छेद होता था जिससे क्रम क्रम से पानी आकर कटोरा भरता था। जब नियत बिह्न पर पानी आ जाता था, तब कटोरा दूब जाता था। इस नौद को घर्मघड़ी कहते थे। घटी या घड़ी नाम इसी नौद का सूचक है। भारतवर्ष में इसका व्यवहार अधिक होता था।

घड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० घट] घड़ा का स्त्रीलिंग और अल्पायंक रूप। छोटा घड़ा।

घड़ीदिआ—संज्ञा पुं० [हि० घड़ी + दीआ = दीपक] वह घड़ा जो घर के किसी प्राणी के मरने पर घर में रखा जाता है और १०-१२ दिनों तक रहता है। घड़े के पेंदे में बहुत छोटा छेद कर दिया जाता है जिसमें से होकर बूँद बूँद पानी टपकता है और मूँह पर एक दीपक जलाकर रख दिया जाता है। इसे घंट भी कहते हैं।

क्रि० प्र०—बाधना।

घड़ीसाज—संज्ञा पुं० [हि० घड़ी + साज] घड़ी की मरम्मत करनेवाला।

१-२७

घड़ीसाजी—संज्ञा स्त्री० [हि० घड़ी + साज] घड़ी की मरम्मत का कार्य या व्यवसाय।

घड़वा^१—संज्ञा पुं० [सं० कर्मण्यल अथवा हि० गेरना + उवा (प्रत्य०) = गेरवा] दे० 'गड़वा'। उ०—कच्ची माटी के घड़वा हो रस बूँद न सान।—संतवाणी०, भा० २, पृ० ३८।

घड़ैला^१—संज्ञा पुं० [हि० घड़ा + ऐला (प्रत्य०)] दे० 'घड़ोला'। उ०—एक मिट्टी के घड़ा घड़ैला एक कोहरा सानो।—कबीर भा०, पृ० ६२।

घड़ोला—संज्ञा पुं० [हि० घड़ा + ओला (प्रत्य०)] छोटा घड़ा। भंभर।

घड़ौची—संज्ञा स्त्री० [हि० घड़ा + चौची (प्रत्य०)] पानी से भरा घड़ा रखने की तिपाई या ऊँची जगह। लटकन। पलहंडा।

घड़ना^१—क्रि० सं० [सं० घटन] दे० 'गड़ना'। उ०—मोद बिनोद मरी पृष्ठ मूरति का विरंचि या बाट बड़ी।—धनानंद, पृ० ४६४।

घण^१—संज्ञा पुं० [सं० घन] दे० 'घन'। उ०—जब ही बरसद घण घणउ तबही कहइ प्रियाव।—ढोला०, दू० २७।

घण^२—वि० दे० 'घन'। उ०—दादुर मोर टबक घण बीजलड़ी तरवारि।—ढोला०, दू० ४८।

घणकठा^१—संज्ञा पुं० [देश०] ढिगल के अनुसार एकलवैया नामक छंद का एक भेद। उ०—दूसरे एकल वैया गीत को घणकठा भी कहते हैं।—रघु०, पृ० ११६।

घणा—वि० [सं० घन] दे० 'घना'। उ०—तिण पइ थोड़ा अति घणा बेच्या लाख लवंत।—ढोला०, दू० ८३।

घणीघर^१—संज्ञा पुं० [हि० घन + घर] हथोड़ा धारण करनेवाला। लोहार। उ०—घणीघर मारे तित ताल ज्यों कहै लोहारू।—प्राण०, पृ० २८५।

घणैरी^१—वि० [हि०] दे० 'घनेरी'। उ०—बसत घणैरी बरतन ओछा कहो गुह क्या कीजै।—रामानंद०, पृ० १४।

घना^१—संज्ञा पुं० [हि० घात] १. घात। २. ढंग।

घतरा^१—संज्ञा पुं० [देश०] प्रभात काल। तड़का। भोरहरी।

घतिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० घात] दाँव। घात। उ०—घन के घरही बिरहीजन के रिपु बोनि उठे अपनी घतिया।—गंग०, पृ० ६६।

घतिया^२—वि० [हि० घात + हया (प्रत्य०)] घात करनेवाला। घोला देनेवाला।

घतियाना—क्रि० सं० [हि० घात + हयाना (प्रत्य०)] १. अपनी घात या दाँव में लाना। मतलब पर चढ़ाना। २. चुनाना। छिपाना।

घन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। उ०—बरषा ऋतु घाई हरि न मिले माई। गगन गरजि घन दइ बामिनी दिखाई।—सूर० १०। ३३१७। २. लोहारों का बड़ा हथोड़ा जिससे वे गरम लोहा पीटते हैं। उ०—चोट अनेक परे घन की सिर लोह बधे कछु पावक नाही।—सुंदर०, भा० २, पृ० ६००।

क्रि० प्र०—चनाना।

यौ०—घन की चोट = बड़ा भारी आघात।

३. लोहा । (दि०) । ४. मुक्त । (दि०) । ५. समूह । कुंड ।
१. कपूर । उ०—न जब धरत हरि हिय धरे नाजुक कमला
बाल । मजत मार भयभीत हूँ घन चंदन बन मास ।—
विहारी (शब्द०) । ७. घंटा । घड़ियाल । ८. वह गुणनफल
जो किसी एक को उमी अंक से दो बार गुणा करने से लब्ध
हो । जैसे,— $3 \times 3 \times 3 = 27$ अर्थात् २७ तीन का घन
है ।—(गणित) । ९. लंबाई, चौड़ाई और मोटाई (ऊँचाई
या गहराई) तीनों का विस्तार । उ०—घन छड़ घन विस्तार
धुनि घन जेहि गहत लोहार । घन संबुद्ध घन सघन घन घनरवि
नंदकुमार ।—नंददास (शब्द०) । १०. एक सुगंधित घास ।
११. घन्नक । घन्नक । १२. कफ । छँसार । १३. नृत्य का
एक भेद । १४. चातु का, ढालकर बनाया हुआ बाजा जो प्रायः
ताल देने के काम आता है । जैसे,—झाँझ, मंजीरा, करताल
इत्यादि । १५. वेदमंत्रों के पाठ की एक विधि । १६. खचा ।
छाल । १७. शरीर । उ०—कंप छुट्यो घन स्वेद बद्धो तनु
रोम उट्यो अंखियाँ भरि आई ।—मल्लिराम (शब्द०) ।

घन^२—वि० १. घना । गन्धिन ।

मुहा०—घन का = बहुत घना । जैसे,—घन के बाल, घन का
जंगल ।

२. जिसके अणु परस्पर मूब मिले हों । गठा हुआ । ठोस । ३.
ढढ़ । मजबूत । भारी । ४. बहुत अधिक । प्रचुर । ज्यादा ।
५. शुभ । भाग्यशाली (को०) । ६. विस्तृत (को०) ।

घनक^(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० घन] १. गड़गड़ाहट । २. चोट । प्रहार ।
घनकना^१—क्रि० प्र० [हि० घनक] गरजना । तेज आवाज करना ।
गड़गड़ाना । घहरना ।

घनकना^२—क्रि० स० चोट करना । प्रहार करना ।

घनकफ—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षापिल । करका । झोला (को०) ।

घनकारा^(५)—वि० [हि० घनक] गर्जन करनेवाला । ऊँची आवाज
करनेवाला ।

घनकाल—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु । बरसात का मौसम ।

घनकोदंड—संज्ञा पुं० [सं० घनकोदण्ड] दंडधनुष । मदाइन । उ०—
कुटिल कच भ्रुव तिलक रेखा शीघ्र शिखी शिखंड । मदन बन
मनो शर संधाने देखि घनकोदंड ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—मेघ और धनुषवाची शब्दों के संयोग से जो शब्द
बनेंगे, उनका यही अर्थ होगा ।

घनक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं० घन + क्षेत्र] लंबाई चौड़ाई और गहराई
का विस्तार ।

घनगरज—संज्ञा स्त्री० [हि० घन + गर्जन] १. बादल के गरजने की
ध्वनि । २. एक प्रकार की तोप । ३. एक प्रकार की खुभी
जो असाढ़ या वर्षारंभ में उत्पन्न होती है ।

विशेष—सोच ऐसा मानने है कि जब बादल गरजते हैं, तब
इसके बीच जो शूँष के अंदर रहते हैं, भूमि फोड़कर गाँठ के
रूप में निकल पड़ते हैं । इसकी तरकारी बनाई जाती है ।
अवध में इसे मुईफोड़ और पंजाब में ढिगरी कहते हैं ।

घनगर्जित—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघगर्जन । बादलों का गरजना । २.
कड़कड़ाती प्रचंड ध्वनि या गरज [को०] ।

घनगोलक—संज्ञा पुं० [सं०] सोने और चाँदी का मिश्रण [को०] ।

घनघटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बादलों का जमघट । गहरी काली घटा ।

घनघन—संज्ञा स्त्री० [अनु०] घंटे की घन् घन् की ध्वनि । उ०—रथ
का घर्घर । घंटों की घनघन ।—अपरा, पृ० २११ ।

घनघनाना^१—क्रि० प्र० [अनु०] घन् घन् शब्द होना । घंटे की सी
ध्वनि निकलना । उ० घघघनात घंटा चट्टु घोरा ।—
जायसी (शब्द०) ।

घनघनाना^२—क्रि० स० [अनु०] घन घन शब्द करना ।

घनघनाहट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] घन घन शब्द निकलने का भाव ।
घन् घन् की ध्वनि ।

घनघोर^१—संज्ञा पुं० [सं० घन + घोर] १. घनघनाहट । भीषण
ध्वनि । उ०—संख शब्द घोर, घनघोर घने घंटन की, झालर
की भुरमुट, झंझन की झनकार ।—गोपाल (शब्द०) । २.
बादल की गरज ।

घनघोर^२—वि० १. बहुत घना । गहरा । उ०—अंधकार उद्गीरण
करता अंधकार घनघोर अपार ।—अपरा, पृ० १५४ ।
२. जिसे देख और सुनकर जी दहल जाय । जिसका दर्शन
और श्रवण भयानक हो । भीषण । भयावना । जैसे,—घनघोर
शब्द, घनघोर युद्ध ।

यौ०—घनघोर घटा = बड़ी गहरी काली घटा । बादलों का घना
समूह ।

घनचक्कर^१—वि० [हि० घन + चक्र] १. मूर्ख । बेवकूफ । मूढ़ ।
२. निठला । आवागमद ।

घनचक्कर^२—संज्ञा पुं० [हि० घन + चक्र] १. वह व्यक्ति जिसकी
बुद्धि सदैव चंचल रहे । चंचल बुद्धि का प्रादमी । २. वह जो
व्यर्थ इधर उधर फिरा करे । ३. एक प्रकार की आतिशबाजी ।
चकरी । चरखी । ४. सूर्यमुखी का फूल । ५. गदिश । चक्कर ।
६. फेरफार । जंजाल ।

मुहा०—घनचक्कर में आना या पड़ना = फेर में फँसना । संकट
में पड़ना । उ०—मैं बड़े घनचक्कर में पड़ गया पर इसकी क्या
बिंता ।—श्यामा०, पृ० १११

घनजंघाल—संज्ञा पुं० [सं० घनजम्बाल] घना दलदल [को०] ।

घनज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत् । बिजली [को०] ।

घनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घना होने का भाव । घनापन । २.
ठोसपन । ३. लंबाई, चौड़ाई और मोटाई का भाव । ४.
ढढ़ता । मजबूती ।

घनताल—संज्ञा पुं० [सं०] १. चातक पक्षी । पपीहा । २. करताल ।

घनतोख—संज्ञा पुं० [सं०] चातक । पपीहा ।

घनत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. घना होने का भाव । घनापन । सघनता ।
२. लंबाई, चौड़ाई और मोटाई तीनों का भाव । ३. अणुओं
का परस्पर मिलान । गठाव । ठोसपन ।

घनद्वार—वि० [सं० घन + द्वार (प्रत्य०)] घना । गुंजान ।

घनहुम—संज्ञा पु० [सं०] विकटक का क्षप । जवासा । २. गोखरु [को०] ।

घनधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] ध्रुवके आदि के भीतर का रस । वसा । लसीका [को०] ।

घनध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बादलों की गरज । २. गंभीर और मंद आवाज ।

घननाद—संज्ञा पु० [सं०] १. बादलों की गरज । २. रावण का पुन, मेघनाद । उ०—निसिचर कीस लराई बरनिसि बिबिध प्रकार । कुंभकरन घननाद कर बल पौरुष संधार ।—मानस, ७ । ६७ ।

घननाभि—संज्ञा पु० [सं०] बादलों का मुख्य अवयव । भूम [को०] ।

घनपटल—संज्ञा पु० [सं०] घन = पटल + आवरण] मेघाढंबर । बादलों का समूह या आवरण । उ०—जया गगन घनपटल निहारी । भीषेड भानु कर्हिहि कुबिचारी ।—मानस १ । ११७ ।

घनपति—संज्ञा पु० [सं०] इंद्र, जो मेघों के अधिपति कहे जाते हैं ।

घनपत्र—संज्ञा पु० [सं०] पुनर्नवा । गदहपूरना [को०] ।

घनपद्—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'घनमूल' [को०] ।

घनपदवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेघों का मार्ग । आकाश [को०] ।

घनपार्श्व—संज्ञा पु० [सं०] घनपार्श्व [सं०] मयूर । मोर [को०] ।

घनप्रिय—संज्ञा पु० [सं०] १. मोर । मयूर । २. एक घास जिसकी पत्तियाँ डटल की ओर पतली और ऊपर की ओर चौड़ी होती हैं । यह पहाड़ों पर मिलती है और औषध के काम में आती है । मोरशिला ।

घनफल—संज्ञा पु० [सं०] १. लंबाई, चौड़ाई और मोटाई (गहराई या ऊँचाई) तीनों का गुणनफल । २. वह गुणनफल जो किसी संख्या को उसी संख्या से दो बार गुणा करने से प्राप्त हो । दे० 'घन' । ३. दे० 'घनद्रुम' ।

घनबहेड़ा—संज्ञा पु० [हि० घन + बहेड़ा] समलतास ।

घनबान^७—संज्ञा पु० [हि० घन + बाण] एक प्रकार का बाण । उ०—चले चंदबान, घनबान और कुहुकबान चलत कमान धूम भासमान छवै रहो ।—भूषण (शब्द०) ।

घनबास^७—संज्ञा पु० [सं० घन + हि० बास (= निवास)] आकाश । उ०—अंबर पुस्कर नभ विथत अंतरिच्छ घनबास ।—नंद० ग्रं०, पृ० १० ।

घनबेल^७—वि० [हि० घन + बेल] जिसमें बेलबूटे बने हों । बेलबूटे-दार । उ०—कहुँ कहुँ कुचन पर दरकी अँगिया घनबेल ।—सूर (शब्द०) ।

घनबेली—संज्ञा स्त्री० [सं० घन + हि० बेल] एक प्रकार का बेल । उ०—बहुत फूल फूली घनबेली । केवड़ा चपा कुंद चमेली ।—जायसी (शब्द०) ।

घनबोध—वि० [सं० घन + बोध] १. अत्यंत ज्ञानवान् । परम ज्ञानी । २. जिसको ज्ञान सकना अत्यंत दुरूह हो । उ०—कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध । सिव बिरचि जेहि सेवहि तासो कवन विरोध ।—मानस, ६ । ४७ ।

घनमान—संज्ञा पु० [सं०] किसी पदार्थ की लंबाई, चौड़ाई और मोटाई का संमिलित माप [को०] ।

घनमूल—संज्ञा पु० [सं०] गणित में किसी घन (राशि) का मूल अंक । जैसे,—२७ का घनमूल ३ होगा, क्योंकि ३ का घन २७ है ।

घनरश्मि—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'घननाद' ।

घनरस—संज्ञा पु० [सं०] १. जल । पानी । २. कपूर । ३. हाथी का एक रोग जिसमें उसका खून बिगड़ जाता है, पैर के नाखून गलने लगते हैं और पाँव सँकड़ने लगता है । इस रोग को हाथियों का कोढ़ समझना चाहिए । ४. घना या गाढ़ा रस [को०] । ५. मोरट नाम का पीषा जिसका रस गाढ़ा होता है [को०] । ६. पीलुपर्णी ।

घनरूपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जमाई हुई शंकरा । मिसरी [को०] ।

घनवर—संज्ञा पु० [सं०] मुखाकृति । चेहरा [को०] ।

घनवर्ग—संज्ञा पु० [सं०] गणित में घन का वर्ग [को०] ।

घनवर्त्म—संज्ञा पु० [सं०] आकाश । अंतरिक्ष [को०] ।

घनवर्धन—संज्ञा पु० [सं०] वातुओं को पीटकर बढ़ाने की क्रिया ।

घनवल्किता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत् । बिजली [को०] ।

घनवल्की—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपृतस्रवा नामक लता । २. बिजली । क्षणप्रभा । विद्युत् [को०] ।

घनवास—संज्ञा पु० [सं०] कुम्भांड । कौहड़ा [को०] ।

घनवाह—संज्ञा पु० [सं०] वायु । पवन ।

घनवाहन—संज्ञा पु० [सं०] १. इंद्र, जिसका वाहन मेघ है । २. शिव, जिसका वाहन घन की तरह खेत है ।

घनवाही—संज्ञा स्त्री० [हि० घन + वाही (प्रत्यय)] १. लोहे को घन से कूटने का काम । २. वह गड़ड़ा या स्थान जहाँ घन चलानेवाला खड़ा होता है ।

घनवीथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बादलों का मार्ग । आकाश [को०] ।

घनश्याम^१—वि० [सं०] बादलों के समान काला ।

घनश्याम^२—संज्ञा पु० [सं०] १. काला वादन । २. श्रीकृष्ण । ३. रामचंद्र जी । उ०—शोक की घाग लगी परिपूरन आइ गए घनश्याम बिहाने ।—केशव (शब्द०) ।

घनश्रेयो—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेघमाला [को०] ।

घनसमै^७—संज्ञा पु० [सं० घनसमय] वर्षाश्रुतु । बरसात । उ०—घनसमै मानहु धुमरि करि घनपटल गलगाजहीं ।—भूषण ग्रं०, पृ० १२ ।

घनसाँवरो^७—वि० [हि०] मेघ की तरह काला । उ०—कमलनयन घनसाँवरो बपु बाहु बिसाल ।—छीत०, पृ० ४ ।

घनसाँवल^७—वि० [हि०] दे० 'घनसाँवरो' । उ०—श्री रघुपति जटुपति घनसाँवल फुनि जन सरन परे ।—छीत०, पृ० १२ ।

घनसार—संज्ञा पु० [सं०] १. जल । पानी । २. कपूर । उ०—गारि राख्यो चंदन बगारि राख्यो घनसार ।—मतिराम (शब्द०) । ३. महा मेघ । घना बादल । ४. पारद । पारा [को०] । ५. चंदन [को०] ।

घनसारी—वि० स्त्री० [सं० घनसार] बादल के समान (काली) ।
उ०—घनसारी कागी बरनी राजत प्यारी भपकारी ।—
भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४५७ ।

घनस्याम—वि० संज्ञा पुं० [सं० घनस्याम] दे० 'घनस्याम' ।

घनस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] मेघगर्जन [को०] ।

घनहर—संज्ञा पुं० [सं० घन+हर, प्रा० घणहर, घणपर] मेघ ।
बादल । उ०—घनहर गरजें बजें नगारा ।—कवीर रा०,
पृ० ५७ ।

घनहरा—संज्ञा पुं० [हिं० घन+हारा (प्रत्य०)] घानवाला ।
एक घान घन भुनानेवाला । दाना भुनाने के लिये भड़भूजे के
पास जानेवाला ।

घनहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक हाथ लंबा, एक हाथ चौड़ा और
एक हाथ गहरा या मोटा पिंड वा क्षेत्र । २. घन आदि नापने
का एक मान जो एक हाथ लंबा, एक हाथ चौड़ा, और एक
हाथ गहरा होता है । स्तरी । स्तरिका ।

घनांजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० घनाञ्जनी] दुर्गा [को०] ।

घनांत—संज्ञा पुं० [सं० घनान्त] १. वर्षा का समाप्तिकाल । २. शरद
ऋतु । ३. वेद मन्त्रों के 'घन' नामक विकृति पाठ के कर्ता ।

घौ—घनांत पाठो = दे वेदपाठो जो घनपाठ नामक अष्टविकृतिगो
के पाठ में निष्ठांत हों ।

घनाधिकार—संज्ञा पुं० [सं० घनाधिकार] गहरा घंघेरा । निबिड़ अधिकार ।

घनाङ्ग—संज्ञा स्त्री० [प्रा० घणा] स्त्री । उ०—तिहारी घना नें मैया
बदनि बदी ईं तुमैं दुंगी गरे की दुलरी ओर कमरि की
सगड़ी ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ६१५ ।

घना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रत्नजटा । २. माषपर्णी । ३. एक प्रकार
का वाद्य ।

घना—संज्ञा पुं० [सं० घन] पेड़ों का समूह । जंगल ।

घना—वि० [सं० घन] [स्त्री० घनी] १. जिगके अवयव या अंग
पास पास सटे हों । पास पास स्थित । सघन । गम्भिर ।
गुंजान । जैसे—घना जंगल, घने बाल, घनी बुनावट । २.
घनिष्ठ । नजदीकी । निकट का । जैसे, हमारा उनका बहुत
घना संबंध है । ३. बहुत अधिक । ज्यादा । उ०—उत्ती रुखाई
है घनी, खोरो मुख पे नेह ।—रसनिधि (शब्द०) । ४. गाढ़ा ।
प्रगाढ़ । उ०—अति कठआ खट्टा घना रे वाका रस है भाई ।
—धरम०, पृ० ५ ।

विशेष—संख्या की अधिकता सूचित करने के लिये इस शब्द के
बहुवचन रूप 'घने' का प्रयोग होता है । वि० दे० 'घने' ।

घनाकर, घनागम—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु । बरसात ।

घनाक्षरी—संज्ञा पुं० [सं०] दंडक या मनहर छंद जिसे गाधारण लोग
कवित्त कहते हैं ।

विशेष—यह छंद ध्रुपद राग में गाया जा सकता है । १६-१५ के
विश्राम से प्रत्येक चरण में ३१ अक्षर होते हैं । अंत में प्रायः गुरु
वर्ण होता है । शेष के लिये लघु गुरु का कोई नियम नहीं है ।

घनाघन—संज्ञा पुं० [सं०] १. इद्र । २. मस्त हाथी । ३. बरसनेवाला
बादल । उ०—गगन घंगन घनाघन तैं सघन तम सेनापति
नैकहू न नेम मटकत हैं ।—कवित्त०, पृ० ६३ ।

घनात्मक—वि० [सं०] १. जिसकी लंबाई, चौड़ाई और मोटाई,
(ऊंचाई वा गहराई) बराबर हो । २. जो लंबाई, चौड़ाई
और मोटाई को गुणा करने से निकला हो (आयतन
के लिये) ।

घनात्यय—संज्ञा पुं० [सं०] शरद ऋतु [को०] ।

घनानंद—संज्ञा पुं० [सं० घनानन्द] १. गद्य काव्य का एक भेद ।
२. हिंदी के एक प्रसिद्ध कवि का नाम जिनको आनन्दघन भी
कहते हैं ।

घनामय—संज्ञा पुं० [सं०] खजूर [को०] ।

घनामल—संज्ञा पुं० [सं०] वज्रपा का साग । वास्तुक शाक [को०] ।

घनालो—संज्ञा स्त्री० [सं० घन+अपलो] मेघपत्ति । बादलों का
समूह । उ०—करने लगी मैं अनुकरण स्वप्नपूरों से चंचला थी
जमकी, घनाली घहराई थी ।—साकेत, पृ० २७४ ।

घनाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश [को०] ।

घनिष्ठ—वि० [सं०] १. गाढ़ा घना । बहुत अधिक । २. सबसे अधिक
घना । सबसे अधिक निकट । अत्यंत निकट । पास का ।
निकटस्थ । नजदीकी । जैसे, घनिष्ठ संबंध ।

घनिष्ठता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घनिष्ठ होने की स्थिति या भाव ।
२. गाढ़ा मैत्री । घनी दोस्ती ।

घनीभवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जमकर गाढ़ा होना । २. ठोस
बनना । ३. केंद्रीभूत होना [को०] ।

घनीभाव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'घनीभवन' ।

घनीभूत—वि० [सं०] अत्यंत गाढ़ । प्रगाढ़ । सघन । केंद्रीभूत ।
उ०—घनीभूत हो उठ पवन, फिर श्वासों की गति होती
रुद्ध । कामायनी, पृ० १७ ।

घने—वि० [सं० घन] १. बहुत । अनेक ।—(संख्या में) । उ०—
बापुरो विभीषण गुकारि बार बार काछो बानर बड़ी बलाइ
घने घर घालिहैं ।—तुलसी (शब्द०) । २. सघन ।

घनेतर—वि० [सं०] १. जो ठोस न हो । मृदु । २. तरल [को०] ।

घनेरा—संज्ञा पुं० [हिं० घना+एरा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० घनेरी]
बहुत अधिक । अतिशय । उ०—(क) कोपि कपिन दुरधट गढ़
घेरा । नगर कोलाहल भयो घनेरा ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) मुनु मुनि बरनी कबिन घनेरी ।—मानस, १ । १२४ ।

विशेष—मंख्या की अधिकता सूचित करने के लिये इस शब्द के
बहुवचन रूप 'घनेरे' का प्रयोग होता है । दे० 'घनेरे' ।

घनेरे—वि० [हिं० घने] १. बहुत । अधिक । अग्रणीत ।—(संख्या
में) । उ०—(क) बन प्रदेश मुनि बास घनेरे । जनु पुर नगर
गाउँ मन खेरे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) निपट बसेरे प्रध
ओगुन घनेरे नर नारिक अनेरे जगदंब बेरी बेरे हैं ।—तुलसी
(शब्द०) । २. सघन ।

घनी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घना' । उ०—हाट बाट हाटक
पिघलि चल्थो घी सो घनी, कनक कराही लंक तलफतताय
सो ।—तुलसी (शब्द०) ।

घनोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] मुखाकृति । मुखड़ा । चेहरा । [को०] ।

घनोद्धि—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम [को०] ।

धनोदय—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाकाल । वर्षा ऋतु का प्रारंभ [को०] ।

धनोपलब्ध—संज्ञा पुं० [सं०] झोला । करका । पत्थर । बिनीरी ।

धनोष्णी—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'घडोची' । उ०—देहली नाच कर, दहलीज के उधर, धनोष्णी पर सुघर घड़े रखे बरन ।—आराधना, पृ० ७८ ।

धमई—संज्ञा स्त्री० [हि० धडा + नाच] मिट्टी के घड़ों और लकड़ी के लट्ठों को जोड़कर बनाया हुआ वेड़ा जिससे छोटी छोटी नदियाँ पार करते हैं । धरनई । धरनैली ।

धमचिआना^१—क्रि० प्र० [हि० धपची] १. चक्कर में आना । २. धबराना ।

धमचिआना^२—क्रि० प्र० १. किसी को चक्कर में डालना । २. धबराहट पैदा करना ।

धपची—संज्ञा स्त्री० [हि० धन + पंच] किसी वस्तु को पकड़कर धर रखने के लिये दोनों हाथों के पंजों की गठन । दोनों हाथों की मजबूत पकड़ । उ०—कितना ही उसने मुझको छुड़ाया झिड़क झिड़क । पर मैं तो धपची बाँध के उसको चिमट गया ।—नजीर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—बाँधना ।

मुहा०—धपची बाँधकर पानी में कूदना=दोनों छुटनों को छाती से सटाकर और उन्हें दोनों हाथों के धरे में कसकर पानी में कूदना ।

धपला—संज्ञा पुं० [अनु०] १. दो परस्पर भिन्न वस्तुओं की ऐसी मिलावट जिसमें एक से दूसरे को अलग करना कठिन हो । २. गड़बड़ । गोलमाल ।

क्रि० प्र०—करना ।—डालना ।—पड़ना ।

धौ०—धपलेबाज = धपला या गड़बड़ी करनेवाला । धपलेबाजो = धपला या गोलमाल करना ।

धपुआ^१—वि० [हि० भकुआ] मूर्ख । जड़ । नासमर्थ । उल्लू । भकुआ ।

धपूचंद—संज्ञा पुं० [हि० धप्पू + चंद] मूर्ख । जड़ । नासमर्थ ।

धपोका^१—वि० [हि०] १० धपुआ ।

धपोकानंदन—संज्ञा पुं० [हि० धपुआ + नंदन] मूर्ख । जड़ । नासमर्थ ।

धप्पू^१—वि० [हि०] १० 'धपुआ' ।

धबड़ाना—क्रि० प्र० [हि०] १० 'धबराना' ।

धबड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'धबराहट' ।

धबर^१—संज्ञा स्त्री० [हि० गहबर] १० 'धबराहट' । उ०—सबर राख कुसमै समै, कासूँ धबर करीस । खिण खिण ले जगची खबर जबर सगत जगदीस ।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० ६१ ।

धबराटा^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] १० 'धबराहट' उ०—एक अजीब किस्म की बहुशत और धबराट पैदा करती है ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० १५५ ।

धबराना^१—क्रि० प्र० [सं० गह्वर > हि० गहवर या हि० गड़बड़ाना] १. व्याकुल होना । अधीर या अशांत होना । चंचल होना ।

भय या आशंक से घातुर होना । उद्विग्न होना । जैसे,—(क) उसकी बीमारी का हाल सुन सब धबरा गए । (ख) सेना को घाते देख नगरवाले धबराकर भागने लगे । २. सकपकाना । भौचक्का होना । किकर्तव्यविमूढ़ होना । ऐसी अवस्था में होना जिसमें यह न सूझ पड़े कि क्या कहें या क्या करें । हृषकावक्का होना । सितपिटाना । जैसे,—वकील की जिरह से गवाह धबरा गया । ३. हड़बड़ाना । उतावली में होना । जल्दी मचाना । घातुर होना । जैसे,—धबराओ मत, थोड़ी देर में चलते हैं । ३. जी न लगना । उचाट होना । ऊबना । जैसे,—यहाँ अकेले बैठे बैठे जो धबराता है ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

धबराना^२—क्रि० प्र० १. व्याकुल करना । अधीर करना । शांति भंग करना । जैसे,—तुमने तो आकर मुझे धबरा दिया । २. भौचक्का करना । ऐसी अवस्था में डालना जिससे कर्तव्य न सूझ पड़े । ३. जल्दी में डालना । हड़बड़ी में डालना । जैसे,—उसको धबराओ मत, धीरे धीरे काम करने दो । ४. हैरान करना । नाकों दम करना । ५. उचाट करना ।

धबराहट—संज्ञा स्त्री० [हि० धबराना] १. व्याकुलता । अधीरता । उद्विग्नता । अशांति । २. किकर्तव्यविमूढ़ता । ऐसी अवस्था जिसमें क्या कहना या करना चाहिए, यह न सूझ पड़े । ३. हड़बड़ी । उतावली ।

धमकना^१—क्रि० प्र० [अनु०] धम् की ध्वनि करना । धमकना । उ०—घूँघर धमंकि पाइन बिसाल । द्रुतंत जननि अनु भग्न बाल ।—पृ० रा०, ६, ४६ ।

धमंका^१—संज्ञा पुं० [अनु०] १. घूँसा । मृष्टिकाप्रहार ।

क्रि० प्र०—जड़ना ।—बैना ।—पड़ना ।

२. वह प्रहार या चोट जिसके पड़ने से 'धम्' शब्द हो ।

धमंड—संज्ञा पुं० [सं० गवं ?] १. अभिमान । गरूर । गेली । अहंकार । गर्व ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।

मुहा०—धमंड पर आना या होना = अभिमान करना । इतराना ।

धमंड निकलना = धमंड दूर होना । गर्व चूर्ण होना । धमंड टूटना = मान ध्वस्त होना । गर्व चूर्ण होना ।

२. बल । वीरता । जोर । अग्रेसर । सहारा । आसरा । जैसे,—तुम किसके धमंड पर इतना कूदते हो ? उ०—जामु धमंड बदति नहिं काहुहि कहा दूरावति मांसों ।—सूर (शब्द०) ।

धमंडना^१—क्रि० प्र० [हि०] १० 'धुमड़ना' । उ०—धन धमंड नभ गर्जत घोरा । प्रिया हीन डरपत मन मोरा ।—मानस, ४, १४ ।

धमंडिन—वि० स्त्री० [हि० धमंड + इन (प्रत्य०)] १० 'धमंडी' ।

धमंडी—वि० [हि० धमंड] [वि० स्त्री० धमंडिन] अहंकारी । अभिमानी । मगरूर । गेलीबाज ।

धम^१—संज्ञा पुं० [सं० धर्म, हि० धाम] धूप । धाम ।

विशेष—समस्त शब्दों में ही इसके प्रयोग मिलते हैं, जैसे—धमधमा, धमधैयाँ आदि ।

धम^१—संज्ञा पुं० [धनु०] वह शब्द जो कोमल तन पर कड़ा घाघात लगने से होता है। जैसे,—पीठ पर धम से मुक्का लगा।

धमक—संज्ञा स्त्री० [धनु०] धम् धम् की घाघात। गर्जन। गंभीर ध्वनि।

धमकना^१—क्रि० प्र० [धनु० धम्] धम् धम् या धीर किसी प्रकार का गंभीर शब्द होना। घहराना। गरजना उ०—मुकवि बुधदि घनघटा बाधि धमकत पावस घन।—व्यास (शब्द०)।

धमकना^२—क्रि० स० १. धम् से घूँसा मारना। मुट्टिका प्रहार करना। २. धम् धम् की घाघात करना।

धमका^१—संज्ञा पुं० [धनु०] प्रहार का शब्द। चोट की घाघात। गया या घूँसा पड़ने का शब्द। घाघात की ध्वनि। उ०—(क) घाइन के धमके उठे, दियो डमरु हर डार। नचे जटा फटकारि कै, भुज पसारि ततकार।—लाल (शब्द०)। (ख) घाइन धमके मचे घनेरे। बलसरपोस गिरे बहुतेरे।—सूदन (शब्द०)।

धमका^२—संज्ञा पुं० [हि० धाम] ऊमस। धमसा।

धमकाना^३—क्रि० स० [हि० धमकना] १. धम् धम् की ध्वनि उत्पन्न करना। २. बजाना।

धमखोरा^४—वि० [हि० धाम + क्रा० खोर (रखानेवाला)] धाम खानेवाला। जो धूप में रह सके।

धमधमा^५—संज्ञा पुं० [हि० धाम] १. धूप। २. दिन का वह समय जिसमें धूप हो।

धमधमाना^६—क्रि० स० [हि० धाम] धाम लेना। धूप से शरीर गर्म करना। किसी व्यक्ति या वस्तु को धूप की गरमी से प्रभावित करना।

धमधमाना^७—क्रि० प्र० [धनु०] धम धम शब्द करना। गंभीर शब्द करना।

धमधमाना^८—क्रि० स० १. प्रहार करना। भारी घाघात लगाना। २. घूँसा मारना।

धमछैया^९—संज्ञा स्त्री० [हि० धाम + छाँह] कुछ कुछ धाम और छाया प्रयुक्त वह जगह जहाँ कुछ धामछाँह हो। उ०—कहा गई कांह ! तुम्हारी गैया ? हाय ! कहीं जमुना की कूल कुंजन की धमछैया।—पूरुष० पृ० २८०।

धमर—संज्ञा पुं० [धनु०] नगाड़े डोल आदि का भारी शब्द। गंभीर ध्वनि। उ०—मावन खात पराए धर को। नित प्रति सहस मयानी मयिए मेघ शब्द दधि माट धमर को।—सूर (शब्द०)।

धमरा—संज्ञा पुं० [सं० भृङ्गराज] भृङ्गराज नाम की वृद्धी। भंगरा। भंगरेया।

धमरील—संज्ञा स्त्री० [धनु० धम् धम्] १. हल्ला गुल्ला। ऊधम। २. गड़बड़। घोटाला।

धमस—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धमसा'।

धमसा—संज्ञा पुं० [हि० धाम] १. वह गरमी जो अधिक धूप और हवा रुकने के कारण होती है। धूप की गरमी। ऊमस २. घनापन। सघनता। आधिक्य।

धमसान—संज्ञा पुं० [धनु० धम + सान (प्रत्यय०)] भयंकर युद्ध। धोर रख। गहरी लड़ाई। उ०—(क) हरि को आयुध प्रवर्ति धरैहीं ठानि धोर धमसान।—रघुराज (शब्द०)। (ख) सान धरें फरसाल लिये धमसान करै।—सूदन (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—धमसान का = धोर। भयंकर। जैसे,—धमसान की लड़ाई।

धमाका—संज्ञा पुं० [धनु० धम्] 'धम्' का शब्द। भारी घाघात का शब्द।

धमाधम^१—संज्ञा स्त्री० [धनु० धम्] १. धम् धम् की ध्वनि। २. धूमधाम। बहल पहल। ३. भारी घाघात का शब्द।

धमाधम^२—क्रि० वि० धम् धम् शब्द के साथ। भारी घाघात के शब्द के साथ। जैसे,—उसने धमाधम चार घूँसे जमा दिए।

धमाधमो—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. दे० 'धमाधम'। २. मारपीट।

धमाना^३—क्रि० प्र० [हि० धाम] १. धाम लेना। सरदी हटाने के लिये धूप में बैठना। २. धूप खाना। धूप ऊपर पड़ने देना। ३. फल आदि का धाम लगकर पीला होना।

धमाना^४—क्रि० स० धूप दिखाना। किसी चीज को सुखाने के लिये धाम में रखना।

धमायला^५—वि० [हि० धमाना] धाम की गरमी से पका हुआ। धाम के प्रभाव से युक्त। (प्रायः फल के लिये प्रयुक्त)

धमासान—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धमसान'।

धमाहा—संज्ञा पुं० [हि० धाम] वह बैल जो धूप में काम करने से जल्दी हाँपने लगे। वह बैल जो धूप न सह सके।

धमोला—वि० [हि० धाम] धाम छाया हुआ। धाम या धूप लगने से मुरझाया हुआ।

धमूह—संज्ञा स्त्री० [श्लो०] एक प्रकार की घास।

विशेष—प्रायः करील आदि की भाड़ियों के नीचे यह बहुत होती है। इसका स्वाद कुछ कड़वापन लिये नमकीन होता है। इसके नरम कल्लों की चोपाए खाते हैं। यह घास मथुरा, आगरा, फीरोजपुर, भंग आदि स्थानों में होती है।

धमोही—संज्ञा स्त्री० [श्लो०] कटंगी बाँस का एक प्रकार का रोग जिसके पीटा होने से उस बाँस में नए कल्ले नहीं निकलने पाते। इस बाँस की जड़ों में बहुत से पतले और घने छंक्र निकलते हैं जो बाँस की बाड़ और नए कल्लों की उत्पत्ति रोक देते हैं। उ०—अब ही ते मन संसय होई। वेनु मूल सुत भएहु धमोई।—मानस, ६।१०।

धमोया—संज्ञा स्त्री० [श्लो०] एक छोटा पौधा जो गोभी की तरह का होता है।

विशेष—इसके पत्ते कटावदार तथा काँटों से भरे होते हैं। पत्तों के पीछे तथा कटाव की नोकों पर काँटे होते हैं। इसमें केवल एक डंठल ऊपर की ओर जाता है, इधर उधर टहनियाँ नहीं फैलतीं। फूल पीले और प्याले के आकार के होते हैं। फूलों के झड़ जाने पर कंटीले बीजकोष रह जाते हैं। इसके

ठंठलों और पत्तों से एक प्रकार का पीला रस निकसता है जो घाँस के रोगों में उपकारी माना जाता है। यह पीठा उजाड़ स्थानों में आपसे आप बहुत उगता है।

पर्या०—स्वर्णक्षीरी। सत्यानाशी। मड़मड़।

घमौरी—संज्ञा बी० [हि० घाम] दे० 'ग्रन्हीरी'।

घयलवा(७)।—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'धैला'। उ०—मरल घयलवा हरकि गए, घन ठाड़ी पछितात।—कबीर ज०, पृ० ६२।

घर—संज्ञा पु० [सं० गृह प्रा० हर < घर] [वि० घराऊ, घरू, घरेलू] १. मनुष्यों के रहने का स्थान जो दीवार आदि से घेरकर बनाया जाता है। निवासस्थान। आवास। मकान।

यौ०—घरकत्ती। घरघालन। घरघुसना। घरजमाई। घरजोत। घरदासी। घरद्वार। घरफोरी। घरबसा। घरबसी। घरबार। घरबैसी।

मुहा०—अपना घर समझना = आराम की जगह समझना। संकोच का स्थान न समझना ऐसा स्थान समझना जहाँ घर का सा व्यवहार हो। जैसे,—इसे आप अपना घर समझिए, जो जबरत हो, माँग लीजिए। घर आबाव होना = दे० 'घर बसना'। घर उठना = घर बनना। घर उजड़ना = (१) परिवार की दशा बिगड़ना। कुल की सृष्टि नष्ट होना। घर पर तबाही आना। घर की संपत्ति नष्ट होना। (२) परिवार पर विपत्ति आना। घर के प्राणियों का तितर बितर होना या मर जाना। घर करना = (१) बसना। रहना। निवास करना। घर बनाना। जैसे,—उन्होंने अब जंगल में अपना घर किया है। (२) किसी वस्तु का जमने या ठहरने के लिये जगह बनाना। समाने या घँटने के लिये स्थान निकालना। जैसे,—पैर ने जूते में अभी घर नहीं किया है; इसी से जूता कसा मालूम होता है। (३) किसी वस्तु का जमने या ठहरने के लिये गड़वा करना। घुसना। घँसना। बिल बनाना। छेद करना। जैसे,—(क) फोड़े पर जो पट्टी रखी है, वह चार दिन में घर करके सब मवाद निकाल देगी। (ख) कीड़े काठ में घर करते हैं। (४) घर का प्रबंध करना। घर सँभालना। किरायत से चलना। जैसे,—अब तुम बड़े हुए, घर करना सीखो। (स्त्री का) घर करना = पत्नी भाव से किसी के घर में रहना। खसम करना। आँख में घर करना = (१) इतना पसंद आना कि उसका ध्यान सदा बना रहे। जँचना। (२) प्रिय होना। प्रेमपात्र होना। चित्त, मन या हृदय में घर करना = इतना पसंद आना कि उसका ध्यान सदा बना रहे। जँचना। अत्यंत प्रिय होना। प्रेमपात्र होना। दीक्षा घर करना = दीपक बुझाना। घर का = (१) निज का। अपना। जैसे,—घर का मकान, घर का पैसा, घर का बगीचा। (२) आपस का। पराए का नहीं। संबंधियों या आत्मीय जनों के बीच का। जैसे,—(क) घर का मामला, घर की बात, घर का वास्ता। (ख) उनका हमारा तो घर का मामला है। (३) अपने परिवार या कुटुंब का प्राणी। संबंधी। भाई बंधु। सुहृद्। उ०—सीन बुलाए वेरह आए, नए गाँव की रीत। बाहरबासे

खा गए घर के गावें गीत।—लोकोक्ति। (४) पति। स्वामी। मर्तार। उ०—घर के हमारे परदेस को सिघारे यातें दया करि बूझी हम रीति राह्वारे की।—कविब (शब्द०)। घर का अच्छा = समृद्ध कुल का। अच्छे खानदान का। खाने पीने से खुश। घर का आबमी = अपने कुटुंब का प्राणी। भाई बंधु। इष्ट मित्र। जैसे आप तो घर के आदमी हैं; आपसे छिगना क्या? घर का आंगन हो जाना = (१) घर खँहर हो जाना। घर उजड़ जाना। घर पर तबाही आना। (२) स्त्री को बच्चा होना। घर में संतान उत्पन्न होना। घर का उजाला = (१) कुलदीपक। कुल की सृष्टि करनेवाला। कुल की कीर्ति बढ़ानेवाला। भाग्यवान्। (२) वह जिसे देखकर घर के सब प्राणी प्रफुल्लित हों। अत्यंत प्रिय। लाडला। बहुत प्यारा। (३) बहुत सुंदर। रूपवान्। घर का चिराग = दे० 'घर का उजाला'। घर का चिराग गुल होना = (१) घर का सर्वनाश हो जाना। (२) इकलौते पुत्र का मर जाना। जैसे—उनके घर का चिराग ही गुल हो गया।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५८०। घरवा या घराना करना = घर उजाड़ना। घर सत्यानाश करना। घर का बोझ उठाना या सँभालना = घर का प्रबंध करना। गृहस्थी का कामकाज देखना। घर का भेदिया या भेदी = घर का सब भेद जाननेवाला। ऐसा निकटस्थ मनुष्य जो सब रहस्य जानता हो। जैसे—घर का (भेदी) भेदिया लंका दाह। घर का भोला = अपने परिवार में सबसे मूर्ख। बिल्कुल सीधा सादा। जैसे—वह ऐसा ही तो घर का भोला है जो इतने में ही तुम्हें दे देगा। घर का काट खाना या काटने बीडना = घर में रहना अच्छा न लगना। घर में जी न लगना। घर उजाड़ और भयानक लगना। घर में उदासी खाना।

विशेष—जब घर का कोई प्राणी कहीं चला जाता है या मर जाता है, तब ऐसा बोलते हैं।

घर का न घाट का = (१) जिसके रहने का कोई निश्चित स्थान न हो। (२) निकम्मा। बेकाम। घर का हिसाब = (१) अपने लेन देन का लेखा। निज का लेखा। (२) अपने इच्छानुसार किया हुआ हिसाब। मनमाना लेखा। घर का रास्ता = सीधा या सहज काम। जैसे—इस काम को घर का रास्ता न समझना। घर का मर्द, शेर, बीर या बहादुर = अपने ही घर में बल दिखाने या बढ़ बढ़कर बोलनेवाला। परोक्ष में श्रेष्ठी बघारनेवाला और मुकाबिले के लिये सामने न आनेवाला। घर (घरहिं या घर ही) के बाढ़े = घर ही में बढ़ बढ़कर बात करनेवाला। बाहर कुछ पुरुषार्थ न दिखानेवाला। पीठ पीछे श्रेष्ठी बघारनेवाला। सामने न आनेवाला। उ०—(क) मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहिं के बाढ़े।—तुलसी (शब्द०)। (ख) भालिनि हैं घर ही की बाढ़ी। निसि अरु दिन प्रति देखति हों, अपने ही आंगन ढाढ़ी।—सूर०, १०।७७४। घर का नाम उखालना या बुझना = कुल को कलंकित करना। अपने अष्ट और निकट आचरण से अपने परिवार की प्रतिष्ठा खोना। घर की = घरवासी। गृहिणी। स्त्री। घर की बात = (१) कुल के

संबंध रखनेवाली बात । (२) आपस की बात । भारतीय जनो के बीच की बात । घर की पूँजी = अपने पाम की संपत्ति । मिज का घन । घर की तरह बैठना = आगम से बैठना । खूब फैलकर बैठना । बैठने में किसी प्रकार का संकोच न करना । घर की तरह बैठो = निमट कर बैठो । ऐसा बैठो कि धीरों के लिये भी बैठने की जगह रहे । घर की तरह रहना = आराम से रहना । अपना घर समझकर रहना । घर की सेती = अपनी ही वस्तु । अपने यहाँ होने या मिलने वाली चीज । जैसे—इसके लिये क्या बात है । यह तो घर की सेती है, जितनी कहिए उतनी भेज दें । घर की मुर्गी माग बराबर = घर की प्रच्छी वस्तु की भी इज्जत नहीं होती है । घर के घर = (१) भीतर ही भीतर । गुप्त रीति से । बिना धीर लोगों को सूचना दिए । जैसे—तुमने तो घर के घर सीधा कर लिया, हमें बतलाया तक नहीं । (२) बहुत से घर । जैसे—हूँ में घर के घर साफ हो गए । घर के घर रहना = किसी व्यवसाय में न हानि उठाना न लाभ । बराबर रहना । जैसे,—इस सोदे में हम घर के घर रहे । घर से घर बंद होना = बहुत से घरों का उजड़ जाना । बहुत से घरों के रहनेवालों का घर जाना या कहीं चला जाना । घर खोज मिटा = जिसके घर का चिह्न तक न रह जाय । जिसका कुल लय हो जाय । नष्ट । निगोडा—(स्त्रि०) । घर खोज मिटे = घर बरबाद हो । सत्यानाश हो ।—(स्त्रियों का अभिशाप या गाली) । घर खोना = घर सत्यानाश करना । घर उजाड़ना । घर की संपत्ति नष्ट करना । उ०—चूकते ही चूकते तो सब गया । चूककर खोना न अब घर चाहिए ।—चुभते०, पृ० ३८ । घर गई = घर उजड़ी । निगोडी ।—(स्त्रियों का अभिशाप या गाली) । घर घर = हर एक घर में । सबके यहाँ । जैसे,—घर घर यही हानि है । घर घर के हो जाना - तितर बितर हो जाना । दूर उधर हो जाना । भारे भारे फिरना । बेठिकाने हो जाना । उ०—तेरे भारे यातुधान भए घर घर के ।—तुनसी (शब्द०) । घर चलना—(१) घर बिगड़ना । घर उजड़ना । परिवार की बुरी दशा होना । (२) कुल में कलंक लगना । उ०—कहे ही बिना घर केते घले जू ।—देव (शब्द०) । घर घाट = (१) रंग ढंग । चाल ढाल । गति धीर अवस्था । जैसे,—पहले उनका घर घाट देख लो, तब कुछ करो । (२) ढंग । ढब । प्रकृति । जैसे,—वह धीर ही घर घाट का घादमी है । (३) ठीक ठिकाना । घर द्वार । स्थिति । जैसे,—घर घाट देखकर संबंध किया जाता है । घर घाट मालूम होना = रंग ढंग मालूम होना । सारी अवस्था विवक्षित होना । कोई बात छिपी न रहना । घर घालना—(१) घर बिगड़ना । परिवार में अशान्ति या दुःख फैलाना । परिवार को हानि पहुँचाना । जैसे,—इस जूए ने जाने कितने घर घाले हैं । (२) कुल को दूषित करना । कुल की मर्यादा भंग करना । कुल में कलंक लगाना । जैसे,—इस कुटनी ने न जाने कितने घर घाले हैं । (३) लोगों को मोहित करके वश में करना । प्रेम से व्यथित करना । जैसे,—अमी इसे सयानी तो होने दो, न जाने कितने घर घालेगी ।—(बाजारू) ।

घरघुसना = घर में घुसा रहनेवाला । हर घड़ी प्रंतःपुर में पड़ा रहनेवाला । सदा स्त्रियों के बीच में बैठा रहनेवाला । बाहर निकलकर काम नाज न करनेवाला । घर चढ़कर लड़ने आना = लड़ाई करने के लिये किसी के घर पर जाना । घर चलना = गृहस्थी का निर्वाह होना । घर का खर्च बच चलना । घर चलाना = गृहस्थी का निर्वाह करना । घर डुबोना = (१) घर की संपत्ति नष्ट करना । घर तबाह करना । (२) कुल में कलंक लगाना । घर डूबना—(१) घर तबाह होना । (२) कुल में कलंक लगना । घर जमना = गृहस्थी ठीक होना । घर का समान इकट्ठा होना । घर जाना - घर का बिगड़ना । कुल का नाश होना । घरत जुगु = गृहस्थी का प्रबंध । घर भँकनी = एक घर से दूसरे घर घूमनेवाली । अपने घर न बैठनेवाली । घर तक पहुँचना = माँ बहन की गाली देना । बाप दादों तक चढ़ जाना । बाप दादे बखानना । घर घाम में छवाना = (१) कष्ट देना । (२) धमकी देना । घर तक पहुँचाना = (१) समाप्ति तक पहुँचाना । ठिकाने तक ले जाना । संपूर्ण करना । पूरा उतारना । जैसे,—जिस काम को उठाओ, उसे घर तक पहुँचाओ । (२) बुद्धि ठिकाने ले आना । बात को ठीक ठीक समझा देना । कायल करना । जैसे,—भूँडे को घर तक पहुँचा दिया । घर दामाद खेना = दामाद को अपने घर रखना । घर देखना = किसी के घर कुछ माँगने जाना । जैसे, यहाँ कुछ न मिलेगा, दूसरा घर देखो । घर देखना, देख लेना, या पाना = रास्ता देख लेना । परच जाना । दर्ग निकाल लेना जैसे,—(क) तुम और किसी से तो कुछ माँगते नहीं; सीधा हमारा घर देख पाया है । (ख) बुढ़िया के मरने का सोच नहीं, यम के घर देख लेने का सोच है । किसी के घर पड़ना = किसी के घर में परती भाव से जाना । (किसी वस्तु का) घर पड़ना = घर में आना । प्राप्त होना । मिलना । मिलना । जैसे,—यह चीज क्या भाव घर पड़ी ? घर पर गंगा आना = बिना परिश्रम के कार्य पूरा हो जाना । उ०—घालसी घर गंगा घाई मिटि गई गर्मी भई सियराई ।—कबीर सा०, पृ० ५४५ । घर पीछे = एक एक घर में । एक एक घर से । जैसे,—घर पीछे एक रुपया बसूल करो । घर फटना = (१) मकान की दीवार आदि में दरार पड़ना । (२) घर में बच्चा उत्पन्न होना । (३) छाती फटना । बुरा लगना । असह्य होना । न माना । जैसे,—लेने को तो रुपया ले लिया, अब देते हुए क्यों घर फटता है ? (४) घर में बिगाड़ होना । घरफूँक तमाशा या मावना = घर का सत्यानाश करनेवाली बात । ऐसी बात जिसमें घर की संपत्ति नष्ट हो । घर पर तबाही लानेवाली चाल ढाल । घर फूँक तमाशा देखना = घर की संपत्ति नष्ट करने । आना मनोरंजन करना । अपनी हानि करके मौज उड़ना । जैसे,—रोजोशब यही चरचे, यही कहकहे, यही बहबहे घर फूँक तमाशा देखा ।—फिसाना०, भा० २, पृ० ६ । घर फोड़ना = घर में विषह उत्पन्न करना । परिवार में झगड़ा लगाना । परिवार में उपद्रव खड़ा करना । घर बंद होना = (१) घर में ताला लगना । (२) घर में

प्राणी न रह जाया। घर का कोई मालिक न रहना। घर के प्राणियों का तितर बितर होना। (३) किसी घर से कोई संबंध न रह जाना। घर बिगाड़ना = (१) घर उजाड़ना। घर की समृद्धि नष्ट करना। घर तबाह करना। परिवार की हानि करना। (२) घर में फूट फैलाना। घर में भगड़ा खड़ा करना। घर के प्राणियों में परस्पर लड़ाई कराना। (३) कुलवत्सी को बहकाना। घर की बहू बेटो को बुरे मार्ग पर ले जाना। घर बनना = (१) मकान तैयार होना। (२) घर की आर्थिक स्थिति अच्छी होना। घर संपन्न होना। घर भरा पूरा होना। घर बनाना = (१) मकान तैयार करना। (२) निवासस्थान करना। जमकर रहना। बसना। (३) घर भरना। घर को जनघान्य से पूर्ण करना। घर की आर्थिक दशा सुधारना। अपना लाभ करना। जैसे,—नौकरों पर कोई आखि रखनेवाला नहीं है, वे अपना घर बना रहे हैं। घर बरबाद होना = घर बिगड़ना। घर की समृद्धि नष्ट होना। परिवार की दशा बिगड़ना। घर बसना = (१) घर आबाद होना। घर में प्राणियों का होना। (२) घर की दशा सुधारना। घर में जनघान्य होना। (३) घर में स्त्री या बहू आना। ब्याह होना। (४) दुलहा दुलहिन का समागम होना। घर बसाना = (१) घर आबाद करना। घर में नए प्राणी लाना। (२) घर की दशा सुधारना। घर को जनघान्य से पूरित करना। (३) घर में स्त्री या बहू लाना। विवाह करना। घर बेचिराम हो जाना = नामलेवा न रह जाना। एकलौते बेटे का मर जाना। घर बैठना = (१) घर में बैठना। एकांत सेवन करना। (२) काम घर न जाना। काम छोड़ना। नौकरी छोड़ना। जैसे,—(क) वह चार दिन कोई काम करता है, फिर घर बैठ रहता है। (ख) तुमसे काम नहीं होता, तुम घर बैठो। (३) कोई काम न मिलना। बेकार रहना। बेरोजगार रहना। जीविका न रहना। जैसे,—आजकल वह घर बैठ है; उसे कोई काम दिलाओ। अधिक वर्षा से मकान का गिरना। जैसे—लगतार बारह बंटे पानी बरसने से कई घर बैठ गए। (किसी स्त्री का किसी पुरुष के) घर बैठना = किसी के घर पत्नी भाव से चली जाना। किसी को ससम बनाना। घर बंटे रोटी = बिना मेहलत की रोटी। बिना परिश्रम की जीविका। घर बंटे = (१) बिना कुछ काम किए। बिना हाथ पैर डुलाए। बिना परिश्रम। जैसे,—घर बंटे १०० रुपया महीना मिलता है, कम है? (२) बिना कहीं गए आए। बिना कुछ देखे आले। बिना बाहर जाकर सब बातों का पता लगाए। बिना देश काल की अवस्था जाने। जैसे,—घर बंटे बातें करते हो, बाहर जाकर देखो तो जान पड़े। (३) बिना कहीं गए आए। एक ही स्थान पर रहते हुए। बिना यात्रा आदि का कष्ट उठाए। जैसे,—इस पुस्तक को पढ़ो और घर बैठे देश देशांतरों का वृत्तांत जानो। घर बंटे की नौकरी = बिना परिश्रम की

नौकरी। घर बंटे बैर होना = मंत्र के बल से अपने पास किसी वस्तु या व्यक्ति को बुला लेना। मोहन करना। मूठ चलाना। घर भर = घर के सब प्राणी। सारा परिवार। जैसे,—घर भर वहीं आया है। घर भरना = (१) घर को जनघान्य से पूर्ण करना। घर में जन इकट्ठा करना। अपना लाभ करना। माल अपने घर में रखना। (२) (अकर्मक प्रयोग) घाटा पूरा होना। हानि की पूर्ति होना। (३) घर का प्राणियों से भरना। घर में मेहमानों और कुटुंबवालों का इकट्ठा होना। घर में = स्त्री। जोर। घरवाली। जैसे,—उनके घर में बीमार हैं।—(बोल०)। घर भाँप भाँप करना = घर का सूनापन बसना। सूनेपन के कारण घर का डरावना लगना। कुछ घर में आना = अपना लाभ होना। प्राप्ति होना। जैसे,—उनकी नौकरी जाने से घर में क्या घा जायगा। (किसी स्त्री को) घर में डालना = रख लेना। रखेली बनाना। जोर बनाना। (किसी स्त्री का) घर में पड़ना = किसी के घर पत्नी भाव से जाना। किसी की घरवानी होना। घर सिर पर उठा लेना = बहुत अधिक धोर करना। ऊधम मचाना। घर से = (१) पास से। पत्ने से। जैसे—तुम्हारे घर से क्या गया। (२) पति। स्वामी। (३) स्त्री। पत्नी।—(बोल०)। घर से पाँच निकालना = घर उधर बहुत घूमना। सासन में न रहना। स्वेच्छाचार करना। मर्यादा के बाहर चलना। जैसे,—तुमने बहुत घर से पाँच निकाले हैं; मैं अभी जाकर कहता हूँ। घर से बाहर पाँच निकालना = वित्त से बाहर काम करना। सम्राई से अधिक खर्च करना। घर से देना = (१) अपने पास से देना। अपनी गाँठ से देना। जैसे—जब वह तुम्हारा रुपया देता ही नहीं है, तब क्या मैं तुम्हें अपने घर से दूँगा? (२) अपना रुपया खोना। स्वयं हानि उठाना। जैसे—तुम इनकी जमानत न करो, नहीं तो घर से देना होगा। घर सेना = (१) घर में पड़े रहना। बाहर न निकलना। (२) बेकार बैठे रहना। उधर उधर काम बंधे के लिये न जाना। घर होना = (१) गृहस्थी चलना। निबाह होना। घर का काम चलना। जैसे,—ऐसे करतबों से कहीं घर होता है? (२) घर के प्राणियों में मेलजोल होना। घर में सुख शांति होना। स्त्री पुरुष में बनना।

२. जन्मस्थान। जन्मभूमि। स्वदेश। ३. घराना। कुल। वंश। खानदान। जैसे,—किसी अच्छे या बड़े घर लड़की ब्याहेंगे। वह अच्छे घर का लड़का है। उ०—जो घर बर कुल होय धनूपा। करिय विवाह सुता धनुरूपा।—तुलसी (शब्द०)। ४. कार्यालय। कारखाना। आफिस। दफ्तर। जैसे,—डाकघर, तारघर, पुतलीघर, रेलघर, बंकघर इत्यादि। ५. कोठरी। कमरा। जैसे,—ऊपर के खंड में केवल चार घर हैं। ६. प्राणी लड़ी खिची हुई रेखाओं से घिरा स्थान। कोठा। खाना। जैसे,—कुंडली या यंत्र का घर। ७. शतरंज आदि का चौकोर खाना। कोठा।

मुहा०—घर बंद होना = गोटी लतरंज के मुहरे आदि बलने का रास्ता न रहना ।

घ. कोई वस्तु रखने का डिब्बा या थोंगा । कोन । खाना । केस । जैसे,—बशमं का घर, तलवार का घर । ६. पट्टी आदि से घिरा हुआ स्थान । खाना । कोठा । जैसे,—खालमारी के घर, संभूक के घर । १०. ग्रहों की राशि । ११. किसी वस्तु के घटने या समाने का स्थान । छोटा गढ़वा । जैसे,—पानी ने स्थान स्थान पर घर कर लिया है ।

क्रि० प्र०—करना ।

१२. किसी वस्तु (नगीना आदि) को जमाने या बैठाने का स्थान । जैसे,—नगीने का घर । १३. छेब । बिल । सूराल । जैसे,—छलनी के घर । बटन के घर ।

मुहा०—घर बरना = छेद मूँदना । बिल बंद करना ।

१४. राग का स्थान । मुकाम । स्वर । जैसे,—यह चिड़िया कई घर बोलती है ।

मुहा०—घर में कहना = ठीक ठीक स्वर गाय के साथ गाना । घर से कहना = (१) ठीक ठीक स्वर के साथ गाना । (२) चिड़ियों का अच्छी बोली बोलना । कोकिल आदि का मधुर स्वर से बोलना ।

१५. उत्पत्ति स्थान । मूल कारण । उत्पन्न करनेवाला । जैसे,—(क) रोग का घर कासी । (ख) बीरा रोग का घर है । १६. गृहस्थी । घरबार । जैसे,—घर देखकर चलो । १७. घर का बसबाब । गृहस्थी का सामान । जैसे,—वह अपना हथर उधर भूमता है; मैं घर लिए बैठी रहती हूँ ।—(स्त्रि०) । १८. भग या गुर्विष्य ।—(बाजार) ।

क्रि० प्र०—चिरना ।—फटना ।

१९. चोट मारने का स्थान । बार करने का स्थान या अवसर ।

मुहा०—घर खाली छोड़ना या देना = बार न करना । बार चूक जाना ।

२०. खाल का गोलक या गढ़वा । २१. बीलटा । फेम । जैसे,—तखीर का घर । २२. वह स्थान जहाँ कोई वस्तु बहुतायत से हो । भांडार । खजाना । जैसे,—काशीर मेवों का घर है । २३. दीव । पेंच । युक्ति । जैसे,—वह कुपती के सब घर जानता है । २४. केले, मूँज या बांस का समूह जो एकत्र घने होकर उगते हैं ।

घौ०—घर घाट = दीव पेंच ।

घरहवा—वि० [हि० घर + ऐया (प्रत्य०)] दे० 'घरेया' ।

घरऊँ—वि० [हि० घर] दे० 'घराऊँ' या 'घरूँ' । उ०—इस प्रांत के निवासियों को घरऊँ बातचीत ।—प्रेमचन्द, भा० २, पृ० ४६ ।

घरगिरस्ती—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घरगृहस्थी' । उ०—मैं तो घर-गिरस्ती के बोध में हूँ ।—सुनीता, पृ० २५ ।

घरगृहस्थ—संज्ञा पुं० [हि० घर + सं० गृहस्थ] परिवार के साथ रहनेवाला व्यक्ति जो गृहस्थी के निर्वाह के लिये अनोपाजन करता है ।

घरगृहस्थी—संज्ञा स्त्री० [हि० घर + गृहस्थी] परिवार के सभी सदस्य तथा उनके उपभोग की सभी वस्तुएँ ।

घर घराना^१—क्रि० प्र० [अनुध्व०] घरं घरं शब्द करना । कफ के कारण गले से साँस लेते समय शब्द निकलना ।

घर घराना^२—संज्ञा पुं० [हि० घर + घराना] कुल परिवार । वंश । जैसे,—ग्रंथा बाँटे गीरनी घर घराने खाय ।

घरघराहट—संज्ञा स्त्री० [अनुध्व० घरं घरं] १. घरं घरं शब्द निकलने का भाव । २. कफ के कारण गले से साँस लेते समय निकला हुमा शब्द ।

घरघल्ला^३—वि० [हि० घर + घालना] दे० 'घरघाल' । उ०—घरघल्ल बँसुरिया कों कोऊ हटके । बैठी रहन न देति घरी घर गौहन घरी है निपट के ।—घनानंद, पृ० ४८८ ।

घरघाल—वि० [हि० घर + घालना] घर बिगाड़नेवाला । कुल की सृष्टि नष्ट करनेवाला । परिवार की बुरी दशा करनेवाला । कुल में कलंक लगानेवाला । उ०—घरघाल बालक कलहप्रिय कहियत परम परमारथी ।—तुलसी (शब्द०) ।

घरघालक—वि० [हि०] दे० 'घरघाल' । उ०—(क) पर घरघालक लाज न भोरा । बाँक कि जान प्रसव के पीरा ।—मानस, १। ६७ । (ख) छीझत क्यों हे भूखो बालक । जनपालक ऐसे घरघालक । नंद० प्र०, पृ० २३८ ।

घरघालणी^४—वि० [हि० घरघालन] घर उजाड़नेवाली । घर का नाश करनेवाली । उ०—वणी बुरी घरघालणी पातर सूँ हैं पाम ।—बाँकी प्र०, भा० २, पृ० ५ ।

घरघालन—वि० [हि० घर + घालन] [वि० स्त्री० घरघालनी] घर बिगाड़नेवाला । परिवार में दुःख या भ्रष्टाति फैलानेवाला । परिवार की दशा बिगाड़नेवाला । कुल में कलंक लगानेवाला । उ०—ये बड़े नैन दिखाय दे नेक तू ए घरघालनी घूँबट-वाली ।—(शब्द०) ।

घरघुस, घरघुसड़, घरघुसा, घरघुस्तू—वि० [हि० घर + घुसना] दे० 'घर' शब्द के अंतर्गत । मुहा० 'घरघुसना' । उ०—अब भी मैं अपने घरघुस्तू स्वभाव के कारण उन्हें छुट्टी नहीं दे पाती ।—जिप्सी, पृ० ७४ ।

घरघिसा—संज्ञा पुं० [हि० घर + चीतर] एक प्रकार का साँप जो प्रायः मनुष्यों के घर में ही रहा करता है ।

घरजँवाई—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घरजमाई' ।

घरजमाई—संज्ञा पुं० [हि० घर + मा० जमाता, हि० जँवाई, जमाई] ससुराल में स्थायी रूप से रहनेवाला दामाद । घरदामाद ।

घरजाया—संज्ञा पुं० [हि० घर + जाया = उत्पन्न] [स्त्री० घरजाई] दास । भूताम । उ०—(क) राखे रीति प्रापनी जो होइ सोई कीबै पल, तुलसी तिहारो घरजायउ है घर को ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) हों राधा की राधा मेरी । कीरति की घरजाई बेरी ।—घनानंद, पृ० २७८ ।

घरटिया^५—संज्ञा स्त्री० [सं० घरटिका] चक्की । जाँता । उ०—पुजोनी घर री घरटिया जग पीस द लाय ।—राम० चर्म०, पृ० ५३ ।

धरती(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० धरट्टिका, प्रा० धरट्टिया] दे० 'धरट्टिका' ।
उ०—धरटी उड़या अल ज्यों के पीसा कह पीस ।—राम०
धर्म०, ६४ ।

धरट्ट, धरट्टक—संज्ञा पुं० [सं०] चक्की । जाता ।

धरट्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चक्की । जाता [स्त्री०] ।

धरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह स्त्री जिसके पास गृह या घर हो ।
२. दे० 'धरनी' ।

धरदारी—संज्ञा स्त्री० [हि० धर + दार० दारी] घर का काम काज ।
गृहस्थी की व्यवस्था ।

धरदासी—संज्ञा स्त्री० [हि० धर + दासी] गृहिणी । भार्या । पत्नी ।

धरद्वार—संज्ञा पुं० [हि० धर + सं० द्वार] १. रहने का स्थान ।
ठौर । ठिकाना । जैसे,—बिना इनका घर द्वार जाने हम इनके
विषय में क्या कह सकते हैं । २. गृहस्थी । घर का आयोजन ।
जैसे,—जब वह बाहर जाता है, तब उसे घर द्वार की कुछ भी
सुब नहीं रहती । ३. निज की सारी संपत्ति । जैसे,—हम
अपना घरद्वार बेचकर तुम्हारा रुपया चुका देंगे ।

धरद्वारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धरद्वार + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार
का कर जो पहले घर पीछे लिया जाता था ।

धरद्वारी^२—संज्ञा पुं० दे० 'धरबारी' ।

धरन—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की पहाड़ी भेड़ जिसे जुबली भी
कहते हैं ।

धरनई^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धनई' ।

धरनाल—संज्ञा स्त्री० [हि० धड़ा + नाली] एक प्रकार की पुरानी
तोप । रहकला ।

धरनाब^१—संज्ञा पुं० [सं० धरनी + बाब (प्रत्य०)] गृहिणीत्व ।
परनीपन । धरनीपन ।

धरनाब^२—संज्ञा स्त्री० [हि० धड़ा + नाब] दे० 'धनई' । उ०—
नहि नाबक धरनाब, नहि मलाह नहि तूभरा ।—नट०, पृ०
१४८ ।

धरनि(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धरनी' । उ०—देखि विवस ब्रह्मानु
धरनि यौ हंसति हंसति तहँ आई ।—नंद० प्र०, पृ० ३८४ ।

धरनी—संज्ञा स्त्री० [सं० गृहिणी, प्रा० धरणी] धरवाली । भार्या ।
गृहिणी । उ०—(क) गौतम की धरनी ज्यों तरनी तरंगी
मेरी प्रभु सों निषाद हूँ के बाब न बढ़ाहूँ ।—तुलसी
(शब्द०) । (ख) तरनिहु मुनि धरनी होई आई ।—तुलसी
(शब्द०) । (ग) बिन धरनी घर भूत का डेरा ।—
(कहा०) ।

धरनैली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धरनई + एली (प्रत्य०)] दे० 'धनई' ।

धरपत्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० धर + पत्ती = भाग] वह चंदा जो घर
पीछे लगाया जाय । बेहरी ।

धरपरना—संज्ञा पुं० [सं० धर + परना (= बनाना)] कच्ची मिट्टी का
गोल पिंडा जिसपर ठंडे धरिया बनाते हैं ।

धरपोई^१—वि० [हि० धर + पोना] धर की पकाई हुई । उ०—
तुम प्रबहीं जेई धरपोई ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १२३ ।

धरप्रांतर—संज्ञा पुं० [हि० धर + सं० प्रांतर] १. घर और पड़ोस ।

२. घर का पड़ोस । उ०—पार हुए धरप्रांतर अंतर में निरव-
मान ।—अर्चना, पृ० ८० ।

धरफूँकना^१—वि० [हि० धर + फूँकना] धर फूँकनेवाला । धर
बर्बाद करनेवाला ।

धरफोड़ना—वि० [हि० धर + फोड़ना] धर में ढगड़ा लगाने-
वाला । धर के प्राणियों में बिगाड़ करानेवाला ।

धरफोरना^१, धरफोरना—वि० [हि०] [वि० स्त्री० धरफोरनी] दे०
'धरफोड़ना' ।

धरफोरी(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० धर + फोड़ना] परिवार में कलह
फैलानेवाली । धर के प्राणियों में बिगाड़ करानेवाली । उ०—
(क) धरयो मोर धरफोरी नाऊँ ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) पुनि अस कबहुँ कहमि धरफोरी । तब धरि जीभ
कड़ावों तोरी ।—मानस, २ १४ ।

धरबंदो—संज्ञा स्त्री० [हि० धर + बंदो] चित्रकला में पहले छोटे छोटे
चिह्नों से स्थान धरकर अलग अलग पदार्थों को अंकित करने
के लिये स्थान नियत करना ।

धरबसा—संज्ञा पुं० [हि० धर + बसना] [स्त्री० धरबसी] उपपत्ति ।
धार । उ०—ए हो धरबसे ! आजु कोन धर बसे हो ।
—चनानंद (शब्द०) ।

धरबसी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धर + बसना] रखेली स्त्री । उपपत्नी ।
सुरेतिन । उ०—तेरे बाले धर जात धरी भौ न धर जात तू तौ
धरबसी उर बसी उरबसी सी ।—गंग प्र०, पृ० ४७ ।

धरबसी^२—वि० स्त्री० १. धर बसानेवाली । धर की समृद्धि करने-
वाली । भाग्यवती । २. (ध्वंग्य) धर उजाड़नेवाली । सत्यानाश
करनेवाली । उ०—ललित लाल निहारि महिर मन बिचारि
हारि दे धरबसी लकुट बेगि कर ते ।—तुलसी (शब्द०) ।

धरबार—संज्ञा पुं० [हि० धर + बार = सं० द्वार] [वि० धरबारी]
१. रहने का स्थान । ठौर ठिकाना । २. धर का जंजाल ।
गृहस्थी । जैसे,—वह धरबार छोड़कर साधु हो गया । ३. निज
की सारी संपत्ति । जैसे,—धरबार बेचकर हमारा रुपया दो ।

धरबारी—संज्ञा पुं० [हि० धर + बार] बाल बच्चोंवाला । गृहस्थ ।
कुटुंबी । उ०—अब तो श्याम भये धरबारी ।—सूर
(शब्द०) ।

धरबैसी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धर + बैठना] 'धरबसी' ।

धरमा^१—संज्ञा पुं० [सं० धर्म] १. धाम । धूप । २. स्वेद । उ०—
कहवत नाम पेमे भये भोर । पुनक कंप तनु धरमहि नोर ।—
विद्यापति, पृ० ६३३ ।

धरमकरा^१—संज्ञा पुं० [सं० धर्मकर] सूर्य ।

धरयार(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धरियार' । उ०—धरी बजी
धरयार सुन बजिक कहत बजाइ । बहुरि न पैहै यह धरी हरि
धरनन चित लाइ ।—स० सप्तक, पृ० १७४ ।

धरर धरर—संज्ञा पुं० [अनु०] वह शब्द जो किसी कड़ी वस्तु को दूसरी
कड़ी वस्तु पर रगड़ने से होता है । घिसने का शब्द ।

धररना^१—क्रि० प्र० [अनु० धरर धरर] धरर धरर ध्वनि होना ।

धररना^२—क्रि० प्र० १. रगड़ना । घिसना । घंसना ।

२. धरर धरर ध्वनि पैदा करना ।

घरवाट—संज्ञा स्त्री० [घनु०] गर्जना । ध्वनि । उ०—घमरप लीचा उग्रसे घण हूँ घरवाट ।—बांकी० प्र०, भा० १. पृ० १६ ।

घरवा—संज्ञा पुं० [हि० घर + वा (प्रत्य०)] १. छोटा मोटा घर । कुटी । उ०—जो घरवा मे बोले आई । काहि नाम तोहि कहहु बुझाई ।—कबीर सा०, पृ० ३६७६ । २. घरीदा ।

घरवात(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि० घर + वात (प्रत्य०)] प्रथवा सं० वस्तु > हि० वात] घर की संपत्ति । घर का सामान । गृहस्थी । उ०—कृष्ण गात लसात जो रोटिन को घरवात घरे खुरपी खगिया ।—तुलसी (शब्द०) ।

घरवाला—संज्ञा पुं० [हि० घर + वाला (प्रत्य०)] [स्त्री० घरवाली] १. घर का मालिक । २. पति । स्वामी ।

घरवाली—संज्ञा स्त्री० [हि० घर + वाली (प्रत्य०)] गृहिणी । भार्या । पत्नी ।

घरवाही—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घरवा' ।

घरवैया—संज्ञा पुं० [हि० घरवा] घराती । घर के लोग । उ०—यस गाँव का ओर कोई नहीं था । जो मे घरवैया मे ।—नई०, पृ० ५१ ।

घरसा—संज्ञा पुं० [सं० वर्ष] रगड़ा । उ०—जोग न लोग जुगाइन के सँग, भोग न रोगन के घरसा में ।—मतिराम (शब्द०) ।

घरह(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि० घर + ह (प्रत्य०)] घरवाली । घरनी । पत्नी । उ०—सविन भोट सलपह घरह कुलह दुति दग देखि ।—पृ० रा०, १४ । ३३ ।

घरहराना—क्रि० सं० [घनु०] दे० 'घहराना' । उ०—घरहराह प्रति बरसा करई ।—नंद प्र०, पृ० १६२ ।

घरहराना—क्रि० प्र० [सं० गहर] गहबर होना । व्याकुल होना । उ०—यो कहि कुँवरि शीव जब गोई । घरहराह तब गहबरी रोई ।—नंद प्र०, पृ० १४१ ।

घरहराना—क्रि० प्र० [हि० घरघराना] गर्जन करना । कड़कना । उ०—तबतड़ाहि तड़ि बज से परे । घरहराहि घन ऊधम करे ।—नंद प्र०, पृ० ३०७ ।

घरहाई(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि० घर + सं० घाती > हि० पाई] १. घर घालनेवाली । घर मे विगोष करानेवाली स्त्री । इधर का उधर लगानेवाली । चुगुलखोर स्त्री । २. वह स्त्री जो किसी के घर की बुराई सबसे कहती फिरे । अपकीर्ति फैलानेवाली । निंदा फैलानेवाली । लांछन लगानेवाली । बबाव करनेवाली । उ०—(क) घरहाई बबाव न जो करती तो भलो श्री बुरो पहिचानती मैं ।—हनुमान कवि (शब्द०) । (ख) घरहाइन की पैर हूँ लाज न सगी बचाय । घरी हरी चित लै गयो लोचन चार नचाय ।—भृ० सत० (शब्द०) । (ग) घरहाइन घरची चली आतुर चाइन सैन । तदपि सनेह सने लगे ललकि दा क नैन ।—भृ० सत० (शब्द०) ।

घरहाई(पुं०)—वि० बदनामी फैलानेवाली । कलंक की बात चारों ओर कहनेवाली । बबाइन । चुगुलखोर । उ०—ये घरहाईं लुगाईं सबे निम सीम नेवाज हमें दहती हैं । प्राण पियारे तिहारे लिये सिगरे बज को हँसिबो सहती हैं ।—नेवाज (शब्द०) ।

घरीब—संज्ञा पुं० [हि० घर + औब (प्रत्य०)] घर का सा संबंध । वनिष्ठता । परस्पर मेलजोल का भाव ।

घरा(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि० घड़ा] दे० 'घड़ा' । उ०—पगी प्रेम नंदलास के भरन आपु जन जाइ । घरी घरी घर के तरे घरनि देति डरकाइ ।—मति० प्र०, पृ० ४४५ ।

घराऊ—वि० [हि० घर + आउ (प्रत्य०)] १. घर का । घर से संबंध रखनेवाला । गृहस्थी संबंधी । जैसे,—घराऊ भगड़ा । २. आपस का । निज का । घर के प्राणियों या इष्ट मित्रों के बीच का ।

घराड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० घर] १. दे० 'ठीह' । २. दे० 'गढ़ारी' ।

घरासी—संज्ञा पुं० [हि० घर + घासी (प्रत्य०)] विवाह मे कन्या की ओर के लोग । कन्या पक्ष के लोग । उ०—एक ओर सब बैठ बराती । एक ओर सब लगे घराती ।—रघुराज (शब्द०) ।

घराना—संज्ञा पुं० [हि० घर + आना (प्रत्य०)] खानदान । वंश । कुल । जैसे,—वह अच्छे घराने का आदमी है, उस घराने की शायकी प्रसिद्ध है ।

घरारी—संज्ञा स्त्री० [हि० घररना (= घिसना)] रगड़ खाकर घिसने के कारण बनी लकीर, चिह्न या निशान ।

घरिआरा—संज्ञा पुं० [हि० घड़ियाल] दे० 'घड़ियाल' ।

घरिआरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घड़ियाली' ।

घरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घरनी । पत्नी ।

घरियक(पुं०)—क्रि० वि० [हि० घड़ी + एक] घड़ी भर । थोड़े समय तक । कुछ देर तक ।

घरिया(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घड़िया' । उ०—यह संसार रहट की घरिया ।—कबीर सा०, पृ० ५८८ ।

घरियाना—क्रि० सं० [हि० घरी (= तह)] घरी लगाना । कपड़े को तह लगाकर लपेटना ।

घरियार(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घड़ियाल' । उ०—तहाँ घरनि घरियार बजावे ।—कबीर सा०, पृ० १५४८ ।

घरियारी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घड़ियाली' । उ०—मनसिज घरियारी घरी गजर बजावे बाल ।—राम० धर्म०, पृ० २४८ ।

घरी—संज्ञा स्त्री० [हि० घड़ी] समय । काल । घड़ी । उ०—(क) मानहू मीचु घरी गनि लेई ।—मानस, २ । ४० । (ख) घन्य है वह घरी जिसमें इस आनंद की छूट हुई ।—ध्यामा०, पृ० १०६ ।

घरी—संज्ञा स्त्री० [हि० घर (= कोठा, खाना)] तह । परत । लपेट । उ०—राली घरी बनाय, हूँ आवों दृपदार ली । तब लीजो पट धाय, जो चाहो सो दीजियो ।—(शब्द०) ।

घरी(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घड़िया' । उ०—लागी घरी रहट के सीचहि अमृत बेस ।—जायसी प्र०, पृ० १३ ।

घरीक(पुं०)—क्रि० वि० [हि० घड़ी + एक] कुछ देर । एक घड़ी भर । थोड़ी देर । उ०—(क) जल को गए लक्खन हैं सरिका, परिली पिय छाँह घरीक हूँ ठाढे ।—तुलसी प्र०, पृ० १६४ । (ख) बिरह दहन लागी दहन घर न घरीक पिराति । रहत घड़ी सी ती भई बूझति श्री उतराति ।—भृ० सत० (शब्द०) ।

घरुआ^१—संज्ञा पुं० [हि० घर + उवा (प्रत्य०)] १. घर का अन्धका प्रबंध। गृहस्थी का ठीक ठीक निर्वाह। गृहस्थी का बंधा सख्त बन्ध। २. वह व्यक्ति जो गृहस्थी का प्रबंध समझ बूझ से करे। घरमाहार।

घरुआ^२—संज्ञा पुं० [हि० घर] छोटा घर। उ०—बलुआ के घरमा में बसते फुनरत देह अपने।—कबीर ग्रं०, पृ० २७६।

घरुआदारी—संज्ञा पुं० [हि० घर + दार (प्रत्य०)] [श्री० घरुआदारिन] घर या गृहस्थी का उत्तम प्रबंध करनेवाला। वह मनुष्य जो समझ बूझकर गृहस्थी का सख्त चलावे।

घरुआदारी—संज्ञा श्री० [हि० घर + दारी] घर का उत्तम प्रबंध करने का भाव। गृहस्थी का निर्वाह।

घरुवा—संज्ञा पुं० वि० [हि० घर] १. दे० 'घरुआ'। २. 'घरू'।

घरू—वि० [हि० घर + ऊ (प्रत्य०)] जिसका संबंध घर गृहस्थी से हो। घर का। घराऊ। उ०—सब समाचार लिखि पत्र से एक घरू मनुष्य पठायो।—बो सो बावन०, भा० १. पृ० १४८।

घरेला—वि० [हि० घर + एला (प्रत्य०)] दे० 'घरेलू'।

घरेलू—वि० [हि० घर + लू (प्रत्य०)] १. जो घर में आदमियों के पास रहे। पालतू। पालू।—(पशुओं के लिये)। जैसे,—घरेलू कुत्ता। २. घर का। निज का। घरू। खानगी। ३. घर का बना हुआ।

घरेया^१—वि० [हि० घर + ऐया (प्रत्य०)] घर का। अपने कुटुंब का। प्रत्यंत घनिष्ठ संबंधी।

घरेया^२—संज्ञा पुं० १. घर का आदमी। घर का प्राणी। निकटस्थ संबंधी। उ०—द्रोपदी विचारे रघुराज आज जाति लाज, सब हैं घरेया पे न टेर के सुनेया हैं।—रघुराज (शब्द०)। २. दे० 'घराती'।

घरो^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घड़ा'। उ०—बिगतर मन संन्यास लेत जल नावत धाम घरो सो।—तुलसी (शब्द०)।

घरौदा—संज्ञा पुं० [हि० घर + ओदा (प्रत्य०)] १. कागज, मिट्टी, घूल आदि का बना हुआ छोटा घर जिसे छोटे बच्चे खेलने के लिये बनाते हैं। २. छोटा मोटा घर।

घरौधा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घरौदा'। उ०—(क) पवि को पहार कियो ख्याल ही कृपाल राम बापुरो विभीषण घरौधा हुतो बाल को।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०१। (ख) अब हम दोनों जरा जरा से बच्चे नहीं हैं कि कागज का घरौधा बनावें।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

घरौना—संज्ञा पुं० [हि० घर + ओना (प्रत्य०)] १. घर। मकान। निवासस्थान। उ०—तजि के घरौना काहू रखन की छाया। तरे सोये ह्वैं हैं ओना द्वै बिछौना करि पात के।—हनुमान (शब्द०)। २. मिट्टी, घूल आदि का बना हुआ छोटा घर जिसे बच्चे खेलने के लिये बनाते हैं। घरौदा।

घर्घर—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का एक बाजा जिससे ताल दिया जाता था। २. गाड़ी आदि के चलने का गंभीर शब्द। घरघराहट। उ०—रथ का घर्घर घंटों की घनघन।—अणिमा,

पृ० ३६। २. घरघर शब्द। ३. हास। घट्टहास। हंसी। ४. सूली की आग। तुषाग्नि। ५. उलूक। ६. परदा। ७. द्वार। ८. पर्वत का दर्रा। ९. लकड़ी आदि के चटकने की आवाज। १०. मथानी के चलाने का शब्द। ११. मथानी। ११. घाघरा नदी।

घर्घरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर्घर ध्वनि। २. घाघरा नदी (श्री०)।

घर्घरा—संज्ञा श्री० [सं०] १. क्षुद्रघंटिका। करधनी। २. घोड़े के गले में पहनाई जानेवाली छोटी घंटी। ३. गंगा। ४. घुघरू। ५. एक प्रकार की प्राचीन काल की वीणा (श्री०)।

घर्घरिका—संज्ञा पुं० [सं०] १. आभूषणों में प्रयुक्त घुघरू। क्षुद्रघंटिका। मूपुर। २. एक प्रकार का बाजा। ३. लावा (श्री०)।

घर्घरित—संज्ञा पुं० [सं०] सूअर के घुरघुराने की ध्वनि (श्री०)

घर्घरी—संज्ञा श्री० [सं०] दे० 'घर्घरा'।

घर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. घाम। धूप। सूर्यातिथ। २. एक प्रकार का यज्ञपात्र। ३. ग्रीष्म काल। ४. स्वेद। पसीना।

यौ—घर्मचक्षिका, घर्मविचक्षिका = ग्रहोरी। घमोरी। घर्मजल, घर्मतोष = प्रस्वेद। पसीना। घर्मदीधिति, घर्मद्युति, घर्मरश्मि = सूर्य। घर्मविदु। घर्माशु। घर्माशु। घर्माशु = पसीने से तर। घर्मोदक = पसीना।

घर्मविदु—संज्ञा पुं० [सं० घर्मविदु] पसीना।

घर्मस्वेद—वि० [सं०] ताप के कारण जिसके शरीर से पसीना निकल रहा हो।

घर्मांत—संज्ञा पुं० [सं० घर्मान्त] ग्रीष्म ऋतु का अंत। वर्षा का आरंभ।

घर्माशु—संज्ञा पुं० [सं० घर्माशु] स्वेद। पसीना।

घर्माशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य। उ०—जयति घर्माशु संदध संपाति नव पक्ष लोचन, दिव्य देह दाता।—तुलसी (शब्द०)।

घर्मास्त—वि० [सं०] धूप से तप्त। स्वेदयुक्त। पसीने से लथपथ। उ०—घर्मास्त विरक्त पार्श्वदणन से खींच नयन।—अपरा, पृ० ६२।

घर्मा—संज्ञा पुं० [अनुध्व० घरर घरर (= घिसने या रगड़ने का शब्द)] १. एक प्रकार का अजन जो अफीम, फिटकिरी, घो, कपूर, हड़, जली बत्ती, इलायची, नीम की पत्ती इत्यादि को एक में घिसकर बनाया जाता है। यह अंजन आँख आने पर लगाया जाता है। २. गले की घरघराहट जो कफ के कारण होती है।

मुहा०—घर्मा चलना = मरते समय कफ छेकने के कारण साँस का घरघराहट के साथ रुक रुककर निकलना। घुघरू बोलना। घटका लगना। घर्मा लगना = दे० 'घर्मा चलना'।

३. कूँए आदि की मिट्टी अथवा जल को व्यक्तियों द्वारा बैल की तरह खींचने का काम।

घरौटा—संज्ञा पुं० [अनुध्व० घरं + आटा (प्रत्य०)] घरं घरं का शब्द। वह शब्द जो गहरी नींद में साँस लेते समय नाक से निकलता है।

मुहा०—घरौटा मारना = (१) गहरी नींद में नाक से घरं घरं शब्द निकलना। जैसे,—वह घरौटा मारकर सो रहा है।

(२) चर्या नीव में सोना । चर्या लेना = दे० 'चर्या
भारना' ।

चर्या — संज्ञा पुं० [हि० चर + चर्या (प्रत्य०)] छपर छाने का
का काम करनेवाला । छपरबंद ।

चर्या — संज्ञा पुं० [सं०] १. रगड़ । घर्षण । २. पीसना । चूण करना ।
[को०] ।

चर्याक — वि० [सं०] १. रगड़नेवाला । पीसनेवाला । मोजने, चमकाने
या पालिश करनेवाला [को०] ।

चर्याण — संज्ञा पुं० [सं०] १. रगड़ । घिसा । २. पेण । चूर्णीकरण ।

चर्याणो — संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिद्रा । हलदी ।

चर्यात — वि० [सं०] [वि० स्त्री० घर्षिता] १. घिसा, घिसा अथवा रगड़ा
हुआ । २. अच्छी तरह साफ किया हुआ । मज्जा हुआ [को०] ।

चर्याना — क्रि० प्र० [हि० घालना] १. छूटकर गिर पड़ना । फँका
जाना । २. हथियार का चल जाना । चढ़े हुए तीर या भरी
हुई गोली का छूट पड़ना । जैसे,—तीर चल गया । उ०—इक
घोर बानन की जु अचली धरि चलिन तुरतहि पलो ।—पद्या-
कर प्र०, पृ० १३ । ३. मारपीट हो जाना । जैसे—भाज
बाजार में उन दोनों से चल गई ।

चर्या० क्रि० — जाना ।—पड़ना ।

चलाचल — संज्ञा स्त्री० [हि० चलना] १. मारपीट । आघात प्रति-
घात । उ०—नैनन ही की चलाचल के घने घायल को कसु तेल
नहीं फिर ।—पद्याकर प्र०, पृ० १५६ । २. डालना ।
फँकना । उ०—लाल गुलाल चलाचल में ढग ठोकर दै गई
रूप अगवा ।—पद्याकर प्र०, पृ० २०६ ।

चलाचली — संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चलाचल' । उ०—बर बान तीर
तुपक तोपन की गई जु चलाचली ।—पद्याकर प्र०, पृ० १७ ।

चलुआ — संज्ञा पुं० [हि० चल या सं० लघुक > लघुआ] वह अधिक
वस्तु जो खरीदार को उचित तोज के अतिरिक्त दी जाय ।
बेसीना । घाल ।

चवचु — संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चोद', 'चोद' ।

चवरि — संज्ञा स्त्री० [सं० गह्वर] फलों या पतियों का गुच्छा ।
घोंरा । उ०—बिरसे कनकमय रंभ लंभ अचंभ अरु मणिपात
सू । तिमि चवरि पनि कणि पोहि लोहित सुमन मंजु ललात
सू ।—विश्राम (शब्द०) । (ल) हेम बौर मरकत चवरि
लसत पाटमय डोरि ।—तुलसी (शब्द०) ।

चवहा — वि० [हि० चव + हा (प्रत्य०)] चोटीला । घायल ।
उ०—पागल घोर चवहा कुत्ते की तरह वह ओकने लगा ।—
नई०, पृ० ५८ ।

चवाहिला — वि० [हि०] दे० 'चवहा' ।

चवैल — वि० [हि०] दे० 'चवहा' । उ०—तब नकली बम हो चाहे
असली हाथ से छुट जाने पर कुछ न कुछ चवैल तो जरूर
करेगा ।—मैला०, पृ० २६५ ।

चसकना — क्रि० प्र० [हि०] दे० 'लिसकना' ।

चसखुवा — संज्ञा पुं० [हि० घास खोदना] १. घसियारा । वह व्यक्ति
जो घास काटने का काम करे । घास खोदनेवाला । २. घनाड़ी
या भूख व्यक्ति ।

चसस — संज्ञा पुं० [?] बकरा । भ्राज । (डि०) ।

चसन — संज्ञा पुं० [चर्षण] रगड़ । उ०—छरा हू उतारि चरे पायर
चसन ते ।—नट०, पृ० ७३ ।

चसना — क्रि० प्र० [सं० चर्षण] रगड़ना । घिसना । उ०—
भूँह धोवति ऐड़ी चसति हँसति अनंगवति तीर । घसति न
हँदीवर नयनि कालिंदी के नीर ।—बिहारी (शब्द०) ।

चसना — क्रि० प्र० [सं० चसन] खाना । भक्षण करना ।—(डि०)

चसिटना — क्रि० प्र० [सं० घर्षित + ना (प्रत्य०)] किसी वस्तु का
इस प्रकार खिचना कि वह भूमि से रगड़ खानी हुई एक
स्थान से दूसरे स्थान पर जाय ।

चसियारा — संज्ञा पुं० [हि० घास + चारा (प्रत्य०)] [स्त्री० घसियारी
या घसियारिन] घास बेचनेवाला । घास छीलकर खानेवाला ।

चसियारिन — संज्ञा स्त्री० [हि० घसियारा] घास बेचनेवाली स्त्री ।
उ०—क्या रानी क्या दीन घसियारिनी ।—प्रेमघन०
भा०, २, पृ० ३३५ ।

चसियारी — संज्ञा स्त्री० [हि० घसियारा] घास बेचनेवाली स्त्री ।

चसीट — संज्ञा स्त्री० [हि० घसीटना] १. जल्दी जल्दी लिखने का भाव ।
२. जल्दी का लिखा हुआ लेख । ३. घसीटने का भाव । ४.
वह मोटा फीता या इसी प्रकार की घोर कोई पट्टी जिसकी
सहायता से हवा में उड़ते हुए पालों को मस्तूल आदि से
बांधते हैं ।—(लश०) ।

घसीटना — क्रि० प्र० [सं० घृष्ट, प्रा० घस्ट + ना (प्रत्य०)] १. किसी
वस्तु को इस प्रकार खिचना कि वह भूमि से रगड़ खानी हुई
एक स्थान से दूसरे स्थान को जाय । कड़ोना । उ०—सुनि
रिपुहन लखि नख सिख खोटी । लगे घसीटन धरि धरि
भोटी ।—तुलसी (शब्द०) ।

घो०—घसीटाघसीटी = खींचातानी । खींचतान । खींचालाची ।
२. जल्दी जल्दी लिखना । जल्दी जल्दी लिखकर चलता करना ।
जैसे,—चार प्रश्न घसीट दो । ३. किसी मामले में डालना ।
किसी काम में जबरदस्ती शामिल करना । जैसे,—तुम्हारे
जो जी में आए करो, अपने साथ लोगों को क्यों घसीटते हो ।
४. खींचकर ले जाना । इच्छा के विरुद्ध ले घाना । उ०—
राजभवन से अपने डेरे में घसीट लाए ।—प्रेमघन०, भा० २,
पृ० ४३८ ।

घस्मर — वि० [सं०] १. पेटू । भसक । २. विव्वंसक । विनाशक [को०] ।

घस्त्र — वि० [सं०] क्षतिकारक । हानिकर । घातक [को०] ।

घस्त्र — संज्ञा पुं० [सं०] १. दिन । दिवस । २. सूर्य । ३. गर्मी । ४.
शिव । ५. कुंकुम [को०] ।

घस्सा — संज्ञा पुं० [सं० घृष्ट] दे० 'घिस्सा' ।

घहघह — संज्ञा पुं० [सं० घर्षर] घंहर घहर की ध्वनि । उ०—
गहगह सुगौरिय गंग घहघह सु घमड़ि तरंग ।—प० रासो,
पृ० ८० ।

घहनाना — क्रि० प्र० [अनुध्व०] वातुल्ल पर आघात लगने से
शब्द होना । घंटे आदि की ध्वनि निकलना । चहुराना ।

उ०—शेलन की झलकार मची तहँ घन घंटा घहाने । नवत नाग भासे मग जाते दिगदंती सङ्घाने ।—रघुराज (शब्द०) ।

घहाना^२—क्रि० स० घंटा आदि बजाना । बजाकर ध्वनि उत्पन्न करना ।

घहरना—क्रि० प्र० [घनु०] गरजने का सा शब्द करना । गंभीर ध्वनि निकालना । घोर शब्द करना । उ०—जहँ के तहँ समाय रहे अस वेद नगारा घहरत है ।—देवदामी (शब्द०) ।

घहराना—क्रि० प्र० [घनु०] १. गरजने का सा शब्द करना । गंभीर शब्द करना । गरजना । बिगड़ाना । उ०—(क) बीसा सगे घहरान । शंस लगे हहरान । छन लगे बहरान । केतु लगे फहरान ।—गोपाल (शब्द०) । (ख) हय हिहिनात भागे जात घहरात गज, भारी भीर ठेलि पेलि रौखि लौखि डारहीं ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७४ । २. घिरना । फँसना । छाना । उ०—(क) चारिहू ओर ते पौन झकोर झकोरन घोर घटा घहरानी ।—पद्माकर (शब्द०) । (ख) घंवर में पावन होम धूम घहराये ।—साकेत, पृ० २१७ ।

घहरानि^१—संज्ञा स्त्री [हि० घहराना] १. गंभीर ध्वनि । तुमुल शब्द । गरज । उ०—सुनत घहरानि ब्रज लोग चकित भए ।—सूर (राधा०), २०६० । २. घहराने की क्रिया या भाव ।

घहरारा^१—संज्ञा पुं० [हि० घहराना] घोर शब्द । गंभीर ध्वनि । गरज । उ०—एक ओर जलद के माने घहरारे मंजु एक ओर नाकन के नदत नगारे हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

घहरारा^२—वि० गरजनेवाला । घोर शब्द करनेवाला ।

घहरारी^१—संज्ञा स्त्री [हि० घहराना] गंभीर ध्वनि । घोर शब्द । गरज । उ०—पुर ते छवि मारी कढ़ी सवारी भे घहरारी नाकन की ।—रघुराज (शब्द०) ।

घाटिक—संज्ञा पुं० [सं० घाटिका] १. स्तुतिपाठक । २. घंटा बजाने-वाला । ३. धतूरा [को०] ।

घाँ^१—संज्ञा स्त्री [सं० ल या हि० घाट (= ओर)] १. दिशा । दिक् । २. ओर । तरफ । उ०—सूर तबहि हम सों जो कहती तेरी घाँ हँ लरती ।—सूर (शब्द०) ।

घाँघरा—संज्ञा पुं० [देशी घाघर; अथवा सं० घर्घर (= झुझड़िका)] [स्त्री० अल्पा० घाँघरी] १. वह चुननदार और घेरदार पहनावा जो स्त्रियाँ कमर में पहनती हैं और जो पैर तक लटकता रहता है । लहंगा । २. लोबिया । बोड़ा । बजरबटू ।

घाँघरी—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० घाँघरा । उ०—इसी रीति घाँघरी घरी घरी कसकर ।—ब्रह्मघन०, भा० २, पृ० १६ ।

घाँघरो^१—संज्ञा पुं० [देश०] दे० ‘घाँघरा’ । उ०—घाँघरो भीन सों सारी मिहिन सों पीन नितंबनि भार उठै खिचि ।—भिलारी ग्रं०, भा० २, पृ० १०६ ।

घाँघर्रा—संज्ञा पुं० [अप० घंघल] अगड़ा । बखेड़ा । कपट । उ०—याह निहालह, दिन गिणह, मारु भासालुण्य । परदेसे घाँघल थका बिबल न जाणह मुख ।—डोला०, पृ० १७ ।

घाँची^१—संज्ञा पुं० [देशी अचिय; गुज घाँची या हि० घाण + ची] तेरी ।—(डि०) ।

घाँधी^१—संज्ञा स्त्री [सं० घण्टिका] १. गले के घंवर की घंटी । कोमा । लसरी ।

मुहा०—घाँटी बँठाना = गले की घंटी की सुजन को दबाकर मिटाना ।

विशेष—यह रोग बच्चों को बहुत होता है । दे० ‘कीवा’ ।

२. गला । ढीठे,—उतरा घाँटी, हुमा माँटी ।

घाँटो—संज्ञा पुं० [हि० घट] एक प्रकार का चसता गाना जो चैत के महीने में गाया जाता है ।

घाँह^१—संज्ञा पुं० [हि० घाँ] तरफ । ओर । उ०—छकीं पछेह उछाह मत तनक तकी यहि घाँह । दै छतिया छद छोन हव गई छुवावत छाँह ।—भृ० सत० (शब्द०) ।

घाँही^१—संज्ञा पुं० [देश०] दे० ‘घाँह’ ।

घा^१—संज्ञा स्त्री [सं० ल अथवा हि० घाट (= ओर)] ओर । तरफ । ढीठे,—चहूँघा ।

घाह^१—संज्ञा पुं० [सं० घात, प्रा० वाह] दे० ‘घाव’ । उ०—बीर न धरति घरी देखे बिनु मरी जाति ऐसी कछु करी दियो बाहिन में नोन है ।—गंग ग्रं०, पृ० ५३ ।

घाहो^१—क्रि० स० [वज०] दे० ‘घाना’ ।

घाहल^१—वि० [हि० घाह] दे० ‘घायल’ । उ०—प्रथम नगरि नूपुर रही जुरत सुरत रन गोल । घाहल हँ सोभा बड़त कुच भर अघर कपोल ।—स० सप्तक, पृ० ३०३ ।

घाई^१—संज्ञा स्त्री [हि० घाँ या घा] ओर । तरफ । अलंग । उ०—(क) प्यारी लजाय रही मुख फेरि दियो हँसि हेरि सखीन की घाई ।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०) । (ख) हँसि कुंठ हे मुकुंद सहेँ बन बागन में करे चहुँ घाई कीर कोकिला बवाई है ।—दीनदयाल (शब्द०) । २. दो वस्तुओं के बीच का स्थान । संधि । उ०—चुरियानहु में चपि बूर भयो दबि छंव पछेलिन घाई कहूँ ।—हरिसेवक (शब्द०) । ३. बार । दफा । ४. पानी में पड़नेवाला अँवर । गिरदाब ।

घाई^२—संज्ञा स्त्री [सं० गभस्ति (= उँगली)] १. दो उँगलियों के बीच की संधि । अँगूठे और उँगली के मध्य का कोण । घंटी । २. पेड़ी और डाल के बीच का कोना ।

घाई^३—संज्ञा स्त्री [हि० घाव] १. चोट । आघात । मार । प्रहार । वार । उ०—जदपि गदा की बड़ी बड़ाई । पै कछु और चक्र की घाई ।—साल (शब्द०) । २. पटेबाजी की विशेष चोट । ढीठे,—दो की घाई, चार की घाई । ३. थोखा । चालबाजी । उ०—बई घोर अँध्यार में घोर घाई । कभू सामुहें दाहिने बाय घाई ।—सूदन (शब्द०) ।

मुहा०—घाईयाँ बताना = भाँसा देना । टालटूल करना ।

घाई^४—वि० [सं० घात्रिन] दे० ‘घाती’ । उ०—संशय सावज शरिर महें संगहि खेल जुझार । ऐसा घाई बापुरा जीवहि मारे झार ।—कबीर ग्रं०, पृ० ८८ ।

घाई^५—संज्ञा स्त्री [हि० गाही] पाँच वस्तुओं का समूह । पंचकरी । गाही ।

घाडा—संज्ञा पुं० [सं० घात, प्रा० घाय] १. दे० 'घाव' । २. प्रहार ।
घोट । उ०—परेउ निसानहि घाउ राउ भवधहि चले । सुरगन
वरधहि सुमन सगुन पावहि भने ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६१ ।

घाऊषप—वि० [हि० घाऊ + षप या घष] १. चुपचाप माल हजम
करनेवाला । गुप्त रूप से दूसरे का धन खानेवाला । उ०—
कौड़ी नामे देनवा बगुवा घाऊषपा । संतवाणी०, पृ० १५४ ।
२. चुपचाप अपना मतलब निकालनेवाला । जिसकी चाल
जल्दी न खुले । जिसका भेद कोई न पावे । चुप्पा ।

घाएँ—संज्ञा स्त्री० [सं० घात या घात] १. घोर । तरफ । २.
प्रवसर । बाय । दफा ।

घाएँ—क्रि० वि० घोर से । तरफ से ।

घाग—संज्ञा पुं० [हि०] १. चतुर । काइयाँ । खुराट । उ०—अपने
मिलनेवालों में से एक कोई बड़े पड़े लिखे पुराने पुराने घाग बड़े
घाग यह खटराग नाए ।—ठेठ०, पृ० २ । २. दे० 'घाव' ।

घागरी—संज्ञा स्त्री० [हि० घागरी] दे० 'घड़ा' । उ०—हस्त विनोद
देत करताली । चित सो घागरी राखिला ।—दक्खिनी०,
पृ० ३३ ।

घागही—संज्ञा स्त्री० [देश०] सनई । पटसन ।

घाघ—संज्ञा पुं० [हि०] १. गोंडे के रहनेवाले एक बड़े चतुर और
अनुभवही व्यक्ति का नाम जिनकी कही हुई बहुत सी कहावतें
उत्तरीय भारत में प्रसिद्ध हैं । खेती बारी, ऋतुकाल तथा नग्न
मुहूर्त आदि के संबंध में इनकी विलक्षण उक्तियाँ किसान तथा
सर्वसाधारण लोग बहुत कहा करते हैं । जैसे,—मुए चाम से
चाम कटावे, सफ़री भुईयाँ सोवे, कहे घाघ ये तीनों भकुआ,
उड़िर जाय प्रो रोये । २. अत्यंत चतुर मनुष्य । अनुभव ।
गहरा चालाक । खुराट । सयाना । ३. इंद्रजाली । जाहूगर ।
बाजीगर । उ०—जैगो तुम कहत उठायो एक गिरिवर ऐसे
कोटि कपिन के बालक उठावही । काटे जो कहत तीस, काटत
घनेरे घाघ, भगर के खेले कहा मट पद पावहीं ।—केशव
(शब्द०) ।

घाघ—संज्ञा पुं० [हि० घुग्घू] उल्लू की जाति का एक पक्षी जो
चील के बराबर होता है । घाघम ।

घाघर—संज्ञा पुं० [हि० घाघरा] लहंगा । घाघरा । उ०—
चम्म चमंतद घाघरद उलट्यउ जाण गयंद । मारु चाली
मंदिरे भीगं बादल चद ।—दोहा०, दू० ५३७ ।

घाघरा—संज्ञा पुं० [सं० घघर (= लघुघटिका)] [स्त्री० घघरा०
घाघरी] वह चुननदार और घेददार पहनावा जिसे स्त्रियाँ कमर
में पहनती हैं और जिससे कमर से लेकर एंडी तक का अंग
ढका रहता है । लहंगा ।

घौ—घाघरा पलटन = घोरतों का दल या झुंड ।—(बोल०) ।

घाघरा—संज्ञा पुं० [सं० घघर (= उल्लू)] एक प्रकार का कबूतर ।

घाघरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक पोषे का नाम ।

घाघरा—संज्ञा स्त्री० [सं० घघर] सरजू नदी का नाम ।

घाघरा पलटन—संज्ञा स्त्री० [हि० घाघरा + सं० पलटन] स्काटलैंड
देश के पहाड़ी गोरों की सेना जिनका पहनावा कमर से घुटने
तक बँहने की तरह का होता है ।

घाघस—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घाघ' ।

घाघस—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बड़िया घोर बड़ी
मुरगी ।

घाघी—संज्ञा स्त्री० [सं० घघर] मछली फँसाने का बड़ा जाल ।

घाट—संज्ञा पुं० [सं० घट] १. नदी, सरोवर या घोर किसी अलाशय
का वह स्थान जहाँ लोग पानी भरते या नहाते घाटें हैं ।
नदी, झील आदि का वह किनारा जिसपर पानी तक उतरने
के लिये सीढ़ियाँ आदि बनी हों ।

मुहा०—घाट घाट का पानी पीना = (१) चारों ओर देश-
देशांतर में घूमकर अनुभव प्राप्त करना । अनेक स्थानों में
या अनेक प्रकार के व्यापारों में रहकर जानकारी होना ।
(२) इधर उधर मारे मारे फिरना ।

२. नदी या जलाशय के किनारे का वह स्थान जहाँ घोड़ी कपड़े
घाते हैं । जैसे,—घोड़ी का कुत्ता न घर का न घाट का ।

३. नदी या जलाशय के किनारे का वह स्थान जहाँ नाव पर
चढ़कर या पानी में हलकर लोग पार उतरते हैं ।

मुहा०—घाट भरना = राह छेकना । जबरदस्ती करने के लिये
रास्ते में खड़े होना । उ०—घाट घरघो तुम यहै जानि कै
करत ठगन के छंद ।—सूर (शब्द०) । घाट मारना = नदी
की उत्तराई न देना । नाव या पुल का महसूल बिना दिए
चले जाना । घाट लगना = नदी के किनारे बहुत से आदिमियों
का पार उतरने के लिये इकट्ठा होना । नाव का घाट
लगना = नाव का किनारे पर पहुँचना । (किसी का)
किसी घाट लगना = कहीं ठिकाना पाना । कहीं आश्रय
पाना । घाट नहाना = किसी के मरने पर उदकक्रिया
करना ।

४. तंग पहाड़ी रास्ता । चढ़ाव उतार का पहाड़ी मार्ग । उ०—

(क) घाट छोड़ि कस भीघट रेंगहु कैसे लगिहु पारा हो ।—

कबीर (शब्द०) । (ख) है आगे परबत की बाटें । विषम पहार

अगम सुठि घाटें ।—जायसी (शब्द०) । ५. पहाड़ । पर्वत ।

६. घोर । तरफ । दिशा । ७. रंगदंग । चालढाल ।

ढील । ढब । तीर तरीका । भेद । मर्म । उ०—जो करनी

अंतर बसै, निकसै मुँह की बाट । बोलत ही पहिचानिए,

चोर साहु को घाट ।—कबीर (शब्द०) । ८. तलवार की

घार जिसमें उतार चढ़ाव होता है । तलवार की बाड़ का

ऊपरी भाग । ९. अँगिया का गला । १०. जी की गिरी ।

११. मोठ और वाजरे की खिचड़ी । उ०—उस जाट की

स्त्री ने गरम घाट उसके सामने रख दी ।—राज०, इति०

पृ० ६०२ । १२. दुलहिन का लहंगा । १३. ठाट बाट ।

उ०—प्राण गए ते रहै न कोऊ सकल देखतें घाट बिलावे ।

—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६०१ । १४. गठन । आकृति ।

रूपरेखा । उ०—मृगनयणी मृगपति मुखी मृगमव तिलक

निलाट । मृगरिपु कटि सुंदर बणी मारु भइहु घाट ।—

दोहा०, दू० ४६६ ।

घाट—संज्ञा स्त्री० [सं० घात या हि० घट (= कम)] १. बोझ ।
झल । कपट । उ०—जान बंधु विरोध कीन्हों । घाट भई

भव मोहि सों।—कबीर सा०, पृ० ५१। २. छोटपन।
बुराई। कुकर्म।

घाट^४—वि० [हि० घट] कम। बोजा। उ०—निसदिन तोलै पूर
घाट अब सुपनेहु नाही।—पलटू०, पृ० ३६।

घाट^५—संज्ञा पु० [सं०] [खी० घाटी, घाटिका] १. गरदन का पिछला
भाग। २. नाव आदि पर चढ़ने या उतरने का स्थान। ३.
कलश। घट (खी०)।

घाटफतान—संज्ञा पु० [हि० घाट + फ० फैपटेन] बंदरगाह का
प्रधान अध्यक्ष या अधिकारी।

घाटना^६—क्रि० सं० [हि० घटा या सं० घट (= मिलाया, एकमेक
करना)] घाट देना। घटा की तरह फैला देना। उ०—घाटी
भवनि प्रकाश सर, डाटी दुज्जन जाल। काटी दस दसकंध
के, मुंड घाज विकराल।—स० समक, पृ० ३६७।

घाटबंदो—संज्ञा खी० [हि० घाट + बंदी] १. नाव या जहाज खोलने
की मनाही। किसी खोलने या चलाने को मुमानियत। २.
घाट बंधने या रुकने का भाव या क्रिया।

घाटबाज—संज्ञा पु० [हि० घाट + बाज (प्रत्य०)] घाट पर बैठने-
वाला ब्राह्मण जो स्नान करनेवालों से दान लेता है।
घाटिया। गंगापुत्र।

घाटा^७—संज्ञा पु० [हि० घटना] घटी। हानि। नुकसान। जैसे,—
इस व्यवसाय में उन्हें बड़ा घाटा आया।

क्रि० प्र०—घाना।—पड़ना।—होना।—उठना।—देना।—
सहना।—बंठना।—खाना।

मुहा०—घाटा उठाना = हानि सहना। नुकसान में पड़ना।
घाटा भरना—(१) नुकसान भरना। अपने पत्ते से रुपया
देना। (२) नुकसान पूरा करना। हानि की कसर निकालना।
कमी पूरी करना।

घाटा^८—संज्ञा खी० [सं० घट्ट] घाटी। उ०—साद करे किम
सुदुर है, पुलि पुलि थक्के पाँव। सयणे घाटा बउलिया बहिर
जु ह्रभा बाव।—ढोला०, दू०, ३८५।

घाटा^९—संज्ञा खी० [सं०] १. पड़ा। २. गरदन के पीछे का हिस्सा।
३. नाव आदि से उतरने के लिये किनारे का स्थान [खी०]।

घाटारोह^{१०}—संज्ञा पु० [हि० घाट + सं० अवरोध] घाट का रोकना।
घाट से किसी को उतरने न देना। उ०—(क) च्यारि दरा
घाटी जिती कीने घाटारोह।—ह० रासो, पृ० १३०।
(ख) हथवासदु बोरहु तरनि कीजै घाटारोह।—तुलसी
(शब्द०)।

घाटि^{११}—संज्ञा पु० [हि० घटना] कम। न्यून। उ०—भुगते
बिन न घाटि हूँ जाही। कब भुगते यह मो मन माही।—
नंद ग्रं०, पृ० ३१८।

घाटि^{१२}—संज्ञा खी० [सं० घात, हि० घट (= कम)] नीच कर्म। पाप।
बुराई। उ०—रावन घाटि रबी जग माहीं।—तुलसी
(शब्द०)।

घाटि^{१३}—क्रि० वि० किसी की तुलना में कम। घटकर।

घाटिका—संज्ञा खी० [सं०] गरदन का पिछला भाग। गरदन और
रोंध का संधिभाग।

घाटिया—संज्ञा पु० [सं० घाट + इया (प्रत्य०)] तीर्थस्थानों के घाटों
पर बैठकर स्नान करनेवालों से दक्षिणा लेनेवाला ब्राह्मण।
गंगापुत्र।

घाटी^१—संज्ञा खी० [हि० घाट] १. पर्वतों के बीच की भूमि। पहाड़ों
के बीच का मैदान। पर्वतों के बीच का संकरा मार्ग। दर्रा।
उ०—है भागे परबत की पाटी। विषम पहाड़ भगम सुठि
घाटी।—जायसी (शब्द०)। २. पहाड़ की ढाल। चढ़ाव
उतार का पहाड़ी मार्ग। उ०—चलूँ चलूँ सब कोई कहै
पहुँचै विरसा कोय। एक कनक एक कामिनी, दुर्गम घाटी
दोय।—कबीर (शब्द०)। ३. महसूली वस्तुओं को ले जाने
का आज्ञापत्र। रास्ते का कर या महसूल चुकाने का
स्वीकारपत्र।

घाटी^२—संज्ञा खी० [सं०] गले का पिछला भाग।

घाटी^३—वि० [हि० घाटि] कम। न्यून। उ०—कंचन चाहि
अधिक कए कएलहु काबहु तहु भेल घाटी।—विद्यापति,
पृ० ३६७।

घाटी^४—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'घाटा'।

घाटी^५—संज्ञा पु० [हि० घट] एक प्रकार का गीत जो बैत बैसास
में गाया जाता है। घाँटी।

घाटी^६—वि० [हि० घटना] दरिद्र।—(दि०)।

घात^१—संज्ञा पु० [सं०] [वि० घाती] १. प्रहार। चोट। मार।
धक्का। जरब। उ०—(क) चुके न घात मार मूठ मेरी।—
तुलसी (शब्द०)। (ख) कपीश कूयो बात घात बारिधि
हिलोरि कै।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—चलना।—होना।

मुहा०—घात चलाना = मारण, मोहन आदि प्रयोग करना।
मूठ चलाना। जादू टोना करना।
२. वध। हत्या।

यौ०—गोघात। नरघात। विषवासघात।

३. ग्रहित। बुराई। उ०—हित की कही न, कही घंत समय घात
की।—प्रताप (शब्द०)। ४. (गणित में) गुणनफल। ५.
(ज्योतिष में) प्रवेश। संक्रांति।

यौ०—घाततिथि। घातवार।

६. बाण। तीर। हथु।

घात^२—संज्ञा खी० [सं०] १. अभिप्राय सिद्ध करने का उपयुक्त स्थान
और अवसर। कोई कार्य करने के लिये अनुकूल स्थिति।
दाँव। सुयोग। उ०—घाप अपनी घात निरखत खेल जम्प्यो
बनाइ।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—तकना।

मुहा०—घात पर चढ़ना = किसी की ऐसी स्थिति होना जिससे
दूसरे का मतलब सिद्ध हो। अभिप्राय साधन के अनुकूल होना।
दाँव पर चढ़ना। वश में आना। हथ्ये चढ़ना। घात में

घाना = १० 'घात पर बढ़ना'। घात में घाना = किसी को ऐसी स्थिति में पाना जिससे कोई अर्थ सिद्ध हो। वहां में पाना। घात लगना = सुयोग मिलना। किसी कार्य के लिये अनुकूल स्थिति होना। उ०—हमरिउ लागी घात तब हमहें देव कलंक।—विभ्राम (शब्द०)। घात लगाना = धवसर हाथ में लेना। युक्ति भिड़ाना। तबदीर करना। काम निकालने का ढर्रा निकालना। उ०—कल के राति घघाने नही दिन ही में लला पुनि घात लगाई।—मतिराम (शब्द०)।

२. किसी पर आक्रमण करने या किसी के विरुद्ध और कोई कार्य करने के लिये अनुकूल अवसर की खोज। किसी कार्य सिद्धि के लिये उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा। ताक। जैसे,—शेर या बिल्लो का शिकार की घात में रहना।

मुहा०—घात में फिरना = ताक में घूमना। घनिष्ट साधने के लिये अनुकूल अवसर ढूँढते फिरना। उ०—उससे बचे रहना; वह यत्न दिनों से तुम्हारी घात में फिर रहा है। घात में बैठना = आक्रमण करने या मारने के लिये छिपकर बैठना। किसी के विरुद्ध कोई कार्य करने के लिये गुप्त रूप से तैयार रहना। उ०—विश्वकूट अचल अहेरी बैठो घात मानी पातक के बात पोर सावज संधारिहैं।—तुलसी (शब्द०)। घात में रहना = किसी के विरुद्ध कोई कार्य करने के लिये अनुकूल अवसर ढूँढते रहना। ताक में रहना। घात में होना = किसी के विरुद्ध कार्य करने की ताक में होना। घात लगाना = किसी कार्य के लिये अनुकूल अवसर ढूँढना। मीका ताकना। जैसे,—वह बहुत देर से घात लगाए बैठा है।

३. दौवपेच। चाल। छल। चालबाजी। कपट युक्ति। उ०—गोसी कहति श्याम है कैसे ऐसी मिलई घातें।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—(किसी के बल पर) घात करना = किसी के उकसाने या भरोसे पर चाल करना। बहलाना। उ०—ताकें बल करि मो मो घाती। रहितै गोय कहाँ किहि भाँती।—नंद० प्र०, पृ० ३०७। घात बनाना = (१) चाल सिखाना। (२) चालबाजी करना। रास्ता बताना। बहलाना।

४. रंग ढंग। तोर तरीका। ढब। धज।

घातक^१—वि० [सं०] १. घात करनेवाला। २. मार डालनेवाला। हत्यारा। हिंसक। ३. हानिकार।

घातक^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. घात करनेवाला व्यक्ति। २. जल्लाद। बधिर। ३. फलित ज्योतिष में वह योग जिसका फल किसी की मृत्यु हो। ४. शत्रु। दुश्मन।

घातकी - संज्ञा पुं० [सं० घातक] १० 'घातक'।

घातकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [गं०] शास्त्रधर संहिता में वर्णित एक प्रकार का मूत्ररोग [को०]।

घातचंद्र - संज्ञा पुं० [सं० घातचन्द्र] अशुभ राशि का चंद्रमा। अशुभ राशि पर स्थित चंद्रमा [को०]।

घाततिथि - संज्ञा स्त्री० [सं०] अशुभ तिथि [को०]।

घातन^१—वि० [सं०] बध करनेवाला। कल करनेवाला [को०]।

घातन^२—संज्ञा पुं० १. घात। प्रहार। २. बध। कल। ३. बलिदान। पशुबलि करना [को०]।

घातनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] अशुभ फल देनेवाले नक्षत्र [को०]।

घातवर्त्तना—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोहल मुनि के मत से नृत्य में एक प्रकार की वर्त्तना।

घातवार—संज्ञा पुं० [सं०] घातक दिन। अशुभ दिन [को०]।

घातस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] बधस्थान। बूचड़खाना [को०]।

घाता—संज्ञा पुं० [हि० घात या घाल] वह थोड़ी सी चीज जो सौदा खरीदने के बाद ऊपर से ली या दी जाती है। घाल। घलुभा।

घाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आघात। बध। २. पत्तियों को जाल में फँसाना या मारना। ३. चिड़िया फँसाने का जाल [को०]।

घातिक—संज्ञा पुं० [गं० घातक] १० 'घातक'।

घातिनी—वि० स्त्री० [सं०] १. मारनेवाली। बध करनेवाली। २. नाश करनेवाली।

घाती—संज्ञा पुं० [सं० घात + घा (प्रत्यय)] १० 'घाती'। यौ०—बालघातिनी = छोटे शिशुओं को मारनेवाली। उ०—बड़ी विकराल बालघातिनी न जात कहि, बाहु बल बालक छबीले छोटे छरेगी।—तुलसी (शब्द०)।

घातिया—संज्ञा पुं० [सं० घात + घा (प्रत्यय)] १० 'घाती'।

घाती^१—वि० [सं० घातिन्] [वि० स्त्री० घातिनी] १. बध करनेवाला। मारनेवाला। घातक। संहारक। उ०—हम जड़ जीव जीव गए घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती।—तुलसी (शब्द०)।

२. नाश करनेवाला।

घाती^२—वि० पुं० [हि० घात = (धोखा, छल)] १. छली। विश्वास-घाती। २. घात में रहनेवाला।

घातुक—वि० [सं०] १. हिंसक। नाशकारी। २. क्रूर। निष्ठुर। अनिष्टकारी।

घात्य—वि० [सं०] मारे जाने के योग्य। बध्य [को०]।

घान^१—संज्ञा पुं० [सं० घन (= समूह)] १. उतनी वस्तु जितनी एक बार डालकर कोलू में पेरी जाय। जैसे,—पहले घान का तेल अच्छा नहीं होता। २. उतनी वस्तु जितनी एक बार चक्की में डालकर पीसी जाय। ३. उतनी वस्तु जितनी एक बार में पकाई या झूनी जाय। जैसे,—दो घान पूरियाँ निकालकर अलग रख दो।

मुहा०—घान उतरना = (१) कोलू में एक बार डाली हुई वस्तु से तेल या रस आदि निकलना। (२) कड़ाही में से पकवान का निकलना। घान उतारना = कोलू में से तेल, रस आदि या कड़ाही में से पकवान निकालना। घान डालना = (१) कोलू में पेरने या कड़ाई में एक बार में तलने के लिये कोई वस्तु डालना। (२) किसी काम में हाथ लगाना। घान पड़ना = कोलू में पेरने या कड़ाही में पकाने के लिये वस्तु का डाला जाना। घान पड़ जाना = किसी काम में हाथ लग जाना। किसी कार्य का आरंभ हो जाना। घान लगना = घान का कार्य आरंभ होना।

घान^२—संज्ञा पुं० [हि० घना = बड़ा हथौड़ा] १. प्रहार। चोट। आघात। उ०—मंद मंद उर पे घनंद ही के घासुन की,

बरसैं सुबूँहें मुकतान ही के दाने सी। कहुँ पचाकर प्रपंची पचवानन न, कानन की मान पै परी त्यों घोर घाने सी।—पचाकर (शब्द०)। २. हथौड़ा।

धाना^१—क्रि० सं० [सं घान, प्रा० घाय + ना (प्रत्य०)] मारना। संहार करना। नाश करना। उ०—बाग तोरि खाइ, बल आपनो जनाइ ताको एक पूतघाइ तब सिधु पार जाइहीं।—हनुमान (शब्द०)।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग ब्रजभाषा में घायबो, पैबो आदि रूपों में ही मिलता है।

धाना^२—क्रि० सं० [हि० गहना (= पकड़ना)] पकड़ना।

धाना^३—संज्ञा पुं० [हि० घना] संहार। युद्ध। संघर्ष। उ०—मिले फौज दोऊ उमै मेघ मानी। तहाँ खान जादी करे घोर घानी।—सुजान०, पृ० २१।

धाना^४—वि० [हि०] दे० 'घना'। उ०—जाय बाप सुखदीहीं घाना। निश्चय बचन कबीर क माना।—कबीर बी०, पृ० २१२।

धानि^५—संज्ञा स्त्री० [सं घ्राण] सुगंध। उ०—तुम घर कील सो उपना निहुपुर पसरी धानि।—वित्रा० पृ० १३८।

धानी—संज्ञा स्त्री० [हि० धान] १. उतनी वस्तु जितनी एक बार में चक्की में डालकर पीसी या कोल्हू में डालकर पेरी जा सके। वि० दे० 'घान'। उ०—(क) समर तैलिक यंत्र तिल तमोचर निकर, पेरि डारे सुभट घालि घानी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुकृत सुमन तिल मोद बास विधि जनन यंत्र भरि घानी।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—उतरना।—उतारना।—डालना।—पड़ना।

मुहा०—धानी करना = पेरना।

२. डेर। समूह।

धानी की सबारी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मालखंभ की एक कसरत जिसमें एक हाथ में मोगरा पकड़कर मलखंभ के चारों ओर घानी या कोल्हू के बेल के समान चक्कर देते हैं।

घापट—संज्ञा पुं० [हि० घात] छल। धोखा। घपला। उ०—घापट साहेब घापट कीहेन।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४३।

घामा—संज्ञा पुं० [सं घर्म, प्रा० घम्म] धूप। सूर्यातिथ। उ०—घाम घरीक निवारिये कलित ललित अलिपुंज। जमुना तीर तमाल तरु निखलि मालती कुंज।—बिहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—चढ़ना।—निकलना।—लगना।—होना।

मुहा०—घाम खाना = (१) गरमी के लिये धूप में रहना। (२) ऐसे स्थान पर रहना जहाँ धूप या सूर्य की गरमी का प्रभाव पड़े। घाम लगना = लू लगना। घर घाम में खाना = आफत में डालना। विपत्ति में डालना। घर में घाम घाना = बड़ी कठिनाई का सामना होना। बड़ी मुसीबत होना। जैसे,—इस काम को करना सहज नहीं है, घर में घाम घा जायगा।

घामड़—वि० [हि० घाम + ड (प्रत्य०)] १. घाम या धूप से व्याकुल (चौपाया)। धूप लग जाने के कारण हर समय हाँफनेवाला (चौपाया)। २. जिसके होश ठिकाने न हों। नासमझ। मूर्ख। जड़। गावबी। बोधा। ३. घालसी। अहसी।

घामनिधि^६—संज्ञा पुं० [सं घाम, प्रा० घम्म, हि० घाम + निधि] सूर्य।

घाय^७—संज्ञा पुं० [सं घात, प्रा० घाय] [वि० घायल] घाव। जखम। उ०—जिनके घाय अघाय युवक जन भरत उसासैं।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १८०।

घायक—वि० [सं घातक] १. विनाशक। मारनेवाला। उ०—दुर्जन दल घायक श्री रघुनायक सुखदायक त्रिभुवन शासन।—केशव (शब्द०)। २. घायल करनेवाला। जिससे घाव हो जाय।

घायल^८—वि० [हि० घाय + ल (प्रत्य०)] जिसको घाव लगा हो। चोट खाया हुआ। चुटेल। जखमी। घाहत।

घायली^९—संज्ञा पुं० कनकौए के एक रंग का नाम।

घार^{१०}—संज्ञा पुं० [सं] छिड़कना। तर करने की क्रिया। घाड़ करना। सिंचन [को०]।

घारा^{११}—संज्ञा स्त्री० [सं गर्त्त] पानी के बहाव से कटकर बना हुआ मार्ग या गड्ढा।

घारो^{१२}—संज्ञा स्त्री० [हि० छरिक] घास फूस से छाया हुआ वह मकान जहाँ चौपाए बांधे जाते हैं। खरका।

घाला^{१३}—संज्ञा पुं० [हि० घालना] सीदे की उतनी वस्तु जितनी गाहक को तेल या गिनती के ऊपर दी जाय। धनुआ।

मुहा०—घाल न गिनना = पसंगे बराबर भी न समझना। तुच्छ समझना। हेच समझना। उ०—(क) रघुबीर बान गवित विभीषण घाल नहि ता कहैं गनै।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चढ़हि कुँवर मन करै उछाह। भागे घाल गनै नहि काहू।—जायसी (शब्द०)।

घाला^{१४}—संज्ञा पुं० [सं घाल, या प्रा० घल्त (= फेंकना)] घाघात। प्रहार।

घालक—वि०, संज्ञा पुं० [हि० घालना] [स्त्री० घालिका] १. मारनेवाला। उ०—जौ प्रभु भेष धरै नहि बालक कैसैं होहि पूतना घालक।—सूर० १०।११०४। २. नाश करनेवाला। उ०—बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक।—मानस ६।५०।

घालकता^{१५}—संज्ञा स्त्री० [हि० घालक + ता (प्रत्य०)] मारने का काम। विनाश करने की क्रिया। उ०—अति कोमल के सब बालकता। बहु दुष्कर राक्षस घालकता।—केशव (शब्द०)।

घालना^{१६}—क्रि० सं० [सं घटन, प्रा० घडन या घलन] १. किसी वस्तु के भीतर या ऊपर रखना। डालना। रखना। उ०—(क) को अस हाथ सिंह मुख घालै। को यह बात पिता सों बालै।—जायसी (शब्द०)। (ख) सो भुजबल राख्यो उर घाली। जीतेहु सहसबाहु बलि बाली।—तुलसी (शब्द०)। (ग) स्यंदन घालि तुरत गृह आना।—तुलसी (शब्द०)। २. फेंकना। चलाना। छोड़ना। उ०—(क) गिन नैनन बसत हैं रसनिधि मोहनलाल। तिनमें क्यों घालत अरी तैं भरि मूठ गुलाल।—रसनिधि (शब्द०)। (ख) पहिल घाव घाली तुम आछे। हिये हीस रहि जेहे पाछे।—लाल (शब्द०)। ३. कर डालना। उ०—केहि के बल घानेसि बन जोसा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—पूर्वो हिंदी (शांतिक) में 'पालना' क्रिया का प्रयोग 'पालना' के समान संयो० कि० के रूप में भी होता है। जैसे, 'कह पालेसि'।

४. बिगाड़ना। नाश करना। जैसे,—घर धानना। उ०—चित्र-केतु कर घर इन धाला।—तुलसी (शब्द०)। ५. मार डालना। बध करना। ६. दे० 'नाखना', 'नखना'।

पाखनेक—संज्ञा पुं० [हि० पालना + नेक] कई भिन्न प्रकार की वस्तुओं की एक साथ मिलावट। गड़बड़। २. मेन जोन। घनिष्ठता।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—बढ़ाना।

पाखिका—वि०, संज्ञा स्त्री० [हि० पाखक] नष्ट करनेवाली। विनाश करनेवाली।

पाखिनी—संज्ञा स्त्री० [हि० पालना] नाश करनेवाली। मार डालनेवाली।

पाख—संज्ञा पुं० [सं० पात, प्रा० पाघ, पाघ] शरीर पर का वह स्थान जो कट या चिर गया हो। क्षत। जखम। चोट। २. घाघात। प्रहार।

मुहा०—पाख खाना = जखमी होना। घायल होना। पाख पर नमक या नोन छिड़कना = दुःख के समय और दुःख देना। शोक पर और शोक उत्पन्न करना। पाख देना = दुःख पहुंचाना। शोक में डालना। पाख पूजना या भरना = पाख का अच्छा होना।

पाखपत्ता—संज्ञा पुं० [हि० पाख + पत्ता] औपधि कार्य में प्रयुक्त होनेवाली एक प्रकार की लता।

विशेष—इसके पत्ते पान के आकार के, प्रायः एक बालिशत लंबे और ८-१० अंगुल चौड़े होते हैं और नीचे की ओर कुल सफेदी लिए होते हैं। यह घावों पर जनको मुखाने और फोड़ों पर उनको बहाने के लिये बाँधा जाता है। ऐसा प्रसिद्ध है कि यदि यह सीधा बाँधा जाय तो कच्चा फोड़ा पककर फूट जाता है; और यदि उल्टा बाँधा जाय तो बढ़ता हुआ फोड़ा सूख जाता है। मानव में इसे 'तबिसर' कहते हैं।

पाखरी—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पाव'। उ०—(क) फोली गाल न छाड़ि रे सब पावर काढ़ि रे।—दादू० बानी, पृ० ६०६। (ख) देह को कृपा लगे देह ही को पावरी।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५८५।

पाखरी—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़ जो बहुत ऊँचा और मुंदर होता है।

विशेष—इसकी छाल चिकनी और सफेद होती है और तीर की लकड़ी बहुत चमकीली तथा दृढ़ होती है। यह पेंड हिमालय पर ३००० फुट की ऊँचाई पर होता है। इसकी लकड़ी ताव, जहाज तथा खेती के सामान बनाने के काम में आती है। इसकी पत्तियों से चमड़ा सिझाया और कमाया जाता है।

पावरिया—संज्ञा पुं० [हि० पाव + रिया (वाला) हि० पावर + रिया (प्रत्यय०)] घावों की चिकित्सा करनेवाला। सतिया। जरहि। उ०—तब पाखो ले लाठी कर में। पटुच्यो पावरिया के घर में। ताहि कह्यो फोहा अस दीजे। पाव पाव को तुरत धरीवे।—निष्कल (शब्द०)।

घावेस—संज्ञा पुं० [हि० घाव + सं० ईश] घाघात करनेवाला। बध करनेवाला। मारनेवाला। उ०—गुणरा गहर गुरहरा गामीं घण नामा मुररा घावेस।—रघु० ६०, पृ० १४८।

घास—संज्ञा पुं० [सं०] १. आहार। खाद्यपदार्थ। २. चारा। तृण। यौ०—घासकुंद, घासस्थान = चरागाह। घासकूट = पुमाल की गाँज। तृणस्तूप।

घास—संज्ञा स्त्री० [सं० घासि] १. पृथ्वी पर उगनेवाले छोटे छोटे उद्भिद् जिन्हें चौपाए चरते हैं। तृण। चारा।

क्रि० प्र०—काटना। चरना।—छीलना।

यौ०—घास पात = (१) तृण और वनस्पति। (२) खर पतवार। कूड़ा करकट। घास फूस = (१) कूड़ा करकट। खर पतवार। (२) वेकाम चीज।

मुहा०—घास काटना या खोदना = (१) तुच्छ काम करना। छोटा और सहज काम करना। (२) व्यर्थ काम करना। निरर्थक प्रयत्न करना। उ०—तुम सों प्रेमकथा को कहिबो मनो काटिबो घास।—सूर (शब्द०)। (३) किसी काम को बेपरवाही से जल्दी जल्दी करना। घास खाना = पशु बनना। पशु के समान हो जाना। घास छीलना = (१) खुरप से घास को जड़ के पास से काटना। (२) दे० 'घास काटना'।

२. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। ३. कागज पत्ती आदि के महीन कटे हुए टुकड़े जो ताजिए या और किसी वस्तु पर सजावट के लिये चिपकाए जाते हैं।

घासलेट—संज्ञा पुं० [सं० गैस लाइट] १. मिट्टी का तेल। २. अप्राप्त वस्तु।

घासलेटी—वि० [हि० घासलेट + ई (प्रत्यय०)] निकट। अशनील। गंदा।

यौ०—घासलेटी साहित्य।

घासि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अग्नि। २. घास (स्त्री०)।

घासी—संज्ञा स्त्री० [सं० घासि] घास। चारा। तृण उ०—चारितु चरति करम कुकरम कर भरत जीवगन घासी।—तुलसी (शब्द०)।

घाह—संज्ञा पुं० [सं० नभस्ति (उंगली)] उंगलियों के बीच की मंघि। गाला। घाई। उ०—धारे बान, कूल धनु, भूषण जलचर, भँवर सुभग सब घाहैं।—तुलसी (शब्द०)।

घाह—संज्ञा पुं० [हि० घा (= ओर)] दिशा। ओर।

घिघेच—संज्ञा पुं० [हि० घीचना] लींचतान। उ०—गा घिघेच यह जीउ हमारा। बंद तोहार बंद मो डारा।—इंद्रा०, पृ० ८६।

घिघ्या—संज्ञा पुं० [सं० घृत, प्रा० घिघ्र] दे० 'घी'।

घिघ्याङ्गा—संज्ञा पुं० [सं० घृतभाण्ड या हि० घी + हंडा] घी रखने का मिट्टी का बरतन। घृतपात्र। अघृतवान।

घिघ्या—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घिया'।

घिघी—संज्ञा पुं० [सं० घृत] दे० 'घी'।

घिघी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'घिघी'। उ०—जिस समय मुझसे कोई धमका कर पूछता है उस समय डर के मारे मेरी घिघी बंध जाती है।—धीनिवास ग्रं०, पृ० ६५।

चिम्बी—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. साँस लेने में वह रुकावट जो रोते रोते पड़ने लगती है। हिचकी। सुबकी। २. डर के मारे मुँह से स्पष्ट शब्द न निकलना। बोलने में वह रुकावट जो भय के मारे पड़ती है।

मुद्दा—चिम्बी बँधना = (१) रोते रोते साँस का रुक रुककर निकलना और स्पष्ट शब्द मुँह से बाहर न होना। हिचकी बँधना। (२) डर के मारे मुँह से साफ बोली न निकलना।

चिघियाना—क्रि० प्र० [हि० चिम्बी] १. रो रोकर बिन्ती करना। करुण स्वर से प्रार्थना करना। गिड़गिड़ाना। उ०—एक प्राध्वर कैसे भी मगर चिघिया पुतिया कर वेदाग निकल गए।—मान०, भा० ५, पृ० १५८। २. चित्तलाना।

चिचपिच—संज्ञा स्त्री० [धनु० या सं० घृष्ट पिष्ट] १. स्थान की संकीर्णता। जगह की तंगी। संकरापन। २. थोड़े स्थान में बहुत से व्यक्तियों या वस्तुओं का समूह। ३. किसी काम को करने के समय प्राणा पीछा करना।

चिचपिच—वि० जो साफ न हो। अस्पष्ट। जैसे,—बड़ी चिचपिच लिखावट है, साफ पढ़ी नहीं जाती।

चिचपिचाना—क्रि० प्र० [हि० चिचपिच] इधर उधर करना। प्राणापीछा करना। हिचकिचाना।

चिन—संज्ञा स्त्री० [सं० घृणा अथवा घृणि (= अग्रिष)] [क्रि० चिनाना। वि० चिनोना] १. चित्त की वह खिन्नता जो किसी बुरी या कुत्सित वस्तु को देख या सुन कर उत्पन्न होती है। अरुचि। नफरत। घृणा। २. किसी गंदी चीज को देख सुन कर जो मचलाने की सी अवस्था। जो बिगड़ना।

क्रि० प्र०—चाना।—लगना।

मुद्दा—चिन जाना = घृणा करना। नफरत करना।

चिनाना—क्रि० प्र० [हि० चिन से नासिक घातु] घृणा करना। नफरत करना। उ०—ज्ञान गहीरिन सो रुचि माने अहीरिन सों घनश्याम चिनाने।—रसकुसुमाकर (शब्द०)।

चिनावना—वि० [हि० चिन+आवना (प्रत्य०)] [स्त्री० चिनावनी] जिसे देखकर चिन लगे। घृणित। बुरा। गंदा। चिनोना।

चिनौची—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चिहौची'।

चिनौना—वि० [हि० चिन+आना < आवना (प्रत्य०)] दे० 'चिनावना'। उ०—जो सुनने में आनंद लाने के स्थान पर अत्यंत विरुद्ध और चिनोने वरंच कभी कभी भयावने भी प्रतीत होते हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६२।

चिनौरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिन] ग्वालिन नाम का कीड़ा।

चिम्बी—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. दे० 'चिरनी'। २. दे० 'गिन्नी'।

चिया—संज्ञा पुं० [सं० घृत, प्रा० घिय] दे० 'घी'।

चियरा—संज्ञा पुं० [हि० घिय+रा (प्रत्य०)] दे० 'घी'। उ०—असुवनि जल सों अधिक जगति जोति परेखनि होत मनी चियरा।—वनानंद, पृ० ४१८।

चिया—संज्ञा पुं० [हि० घिय] घृत। घी। उ०—चाँद सुरुज दोऊ बने अहीरा, धोर दहिया चिया काढ़ा हो।—कबीर सा० सं०, पृ० ५०।

चिया—संज्ञा पुं० [हि० घी] १. एक प्रकार की बेल जिसके फलों की तरकारी होती है।

विशेष—इसके पत्ते कुम्हड़े की तरह के गोल गोल और फूल सफेद रंग के होते हैं। चिया दो प्रकार का होता है—एक लंबे फल का और दूसरा गोल फल का, जिसे कद्दू कहते हैं। इसकी एक जाति कद्दू भी होती है जिसे तितलीकी कहते हैं। चिया बहुत मलायम होता है तथा गुण में शीतल और रोगी के लिये पथ्य माना जाता है। इसके बीज का तेल (कद्दू का तेल) सिर का दर्द दूर करने के लिये लगाया जाता है। इसे लौकी या लौभा भी कहते हैं।

२. चियातोरी। नेनुर्भा।

चियाकश—संज्ञा पुं० [हि० चिया+क्रा० कश] चौकी के आकार की एक वस्तु जिसमें उभड़े हुए छेद चिया, कद्दू, पेठे आदि को बारीक छीलने के लिये बने रहते हैं। कद्दूकश।

चियासरोई—संज्ञा स्त्री० [हि० चिया+सरोई] दे० 'चियातोरी'।

चियातोई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चियातोरी'।

चियातोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिया+तोरी] एक प्रकार की बेल जिसके लंबे लंबे फलों की तरकारी होती है।

विशेष—इसके पत्ते गोल और फूल पीले रंग के होते हैं। फल लंबाई में ८—१० अंगुल और मोटाई में दो आँखें अंगुल होते हैं। पूरब में इसे नेनुर्भा कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं। एक साधारण, जिसके फल लंबे और बड़े होते हैं; और दूसरा सतपुतिया जो घोंद में फलती और छोटे फलोंवाली होती है।

चियापत्थरा—संज्ञा पुं० [घृतप्रस्तर] एक प्रकार का मलायम और पिचलने वाला पत्थर। उ०—चिया पत्थर (एस्टीटाइट) से मुहरे और मूर्तियाँ बनाते थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ११६।

चिरत—संज्ञा पुं० [सं० घृत] दे० 'घृत'। उ०—(क) घेरत अति चिरत चभोरे। ले खडि सरम बोरे।—सूर०, १०।१८३। (ख) साह की बातें सुणैं त्यों त्यों उमग प्रकासै। चिरत का कुभ सीचै होम ज्यों उजातै।—ग० रू०, पृ० ११६।

चिरन—संज्ञा पुं० [हि० घेरना] गने से ऐंड़ी तक का संवा चोंगा। उ०—उनके शरीर पर चिरन क्या सिर की टोपी के लिये ही कपड़ा नहीं था।—फूल०, पृ० ८१।

चिरनई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चरनई'।

चिरना—क्रि० प्र० [सं० ग्रहण] १. किसी चारों ओर फैली हुई वस्तु के बीच में पड़ना। किसी वस्तु से चारों ओर व्याप्त होना। सब ओर से छँका जाना। आवृत होना। आवेष्टित होना। घेरे में आना। जैसे,—वह चारों ओर शत्रुओं से घिर गया। २. चारों ओर छाना। चारों ओर इकट्ठा होना। जैसे,—घटा चिरना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग घटा और बादल के ही साथ प्राप्त होता है।

चिरनाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चरनई'।

चिरनी—संज्ञा स्त्री० [सं० घूर्णन] १. गराड़ी। चरखी। २. चक्कर। केरा।

मुहा०—धिरनी लाना = चक्कर लगाना । चांगे घोर फिरना ।
१. रस्सी बटने की चरखी । ४. दे० 'गिन्नी' । ५. एक जलपक्षी जो
जल के ऊपर फड़फड़ाता रहता है और मछली देखते ही बट से
टूट पड़ता है । कौड़ियाला । किलकिना । ६. लोटन कबूतर ।

धिराना—क्रि० स० [हि० घेरना] १. किसी से घेरने का काम
कराना । २. एक जगह इकट्ठा कराना ।

धिराई—संज्ञा स्त्री० [हि० घेरना] १. घेरने की क्रिया या भाव । २.
पशुओं को चराने का काम । ३. पशुओं को चराने की
उज्जरत या मजदूरी ।

धिराईय—संज्ञा पुं० [सं० धार, हि० क्षार, सरायेंद] मूत्र की दुर्गंध ।

धिराव—संज्ञा पुं० [हि० घेरना] १. घेरने या घिरने की क्रिया या
भाव । २. घेरा । ३. किसी मिल आदि पर सार्वजनिक या
सरकारी अधिकार या नियंत्रण करने के लिये छोटे कर्म-
चारियों और मजदूर वर्ग द्वारा घेरा डालने का आंदोलन ।
घेराव ।

धिरावदार—वि० [हि० धिराव + फ० दार] घेरेवाला । घेरादार ।

धिरित^①—संज्ञा पुं० [सं० घृत] घृत । घी । उ०—अपने हाथ
देव नहुवावा । कलम सहम इह धिरित भरावा ।—जायसी
(शब्द०) ।

धिरिनपरेवा^१—संज्ञा पुं० [हि० धिरनी (= चक्कर) + परेवा] १.
गिरहबाज कबूतर । २. कौड़ियाला पक्षी जो मछली के लिये
पानी के ऊपर सँडराता रहता है । उ०—(क) कहें वह और
कैवल रस लेवा । आइ परे होइ धिरिन परेवा ।—जायसी
(शब्द०) । (ख) धिरिनपरेवा गीउ उठावा । चहे बोल
तमबूर सुनावा ।—जायसी (शब्द०) ।

धिरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धिरना] १. मनुष्यों का घेरा जो शिकार
को घेरने के लिये बनाया जाय ।

मुहा०—धिरिया में धिरना = असमजस या कठिनता में पड़ना ।
ऐसी अवस्था में पड़ना जिससे निस्तार कठिन हो । † २. दे०
'धरिया' ।

धिरौची—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धौची' ।

धिरौना^१—संज्ञा पुं० [शब्द] कूड़ा जमा करने का घेरेदार बड़ा पात्र ।
उ०—कूड़े डालने के निमित्त जो ऊँचे ऊँचे बर्तन (धिरौने)
मिलते हैं, वे उस स्थान के लोगों की स्वच्छता तथा मोदय-
प्रियता के चेतक हैं ।—आर्य० भा०, पृ० ४४ ।

धिरौरा^१—संज्ञा पुं० [शब्द] घूस का बिल । उ०—माछी कहै अपने घर
माछरू मुझो कहै अपने घर ऐसे । कोने घुसी कहै घूस धिरौरा,
बिलारि औ व्याल बिले मूह वैसो ।—केशव (शब्द०) ।

धिराना^१—क्रि० स० [अनु० घर] रगड़ना । घिसना ।

धिरत^①—संज्ञा पुं० [सं० घृत] दे० 'घृत' । उ०—पर का चितं रेत में
डारे छाछ डूँढ़ता डोले ।—कबीर० श०, भा० ४, पृ० २४ ।

धिरौना^१—क्रि० स० [अनु० धिर धिर] १. घसीटना (पू० हि०) ।
२. धिघिमाना । गिड़गिड़ाना (बु० देल०) ।

धिरि^१—संज्ञा स्त्री० [शब्द] १. एक प्रकार की घास । २. दे० 'धिरनी' ।
३. दे० 'गिन्नी' ।

धिलवा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धलुवा' । उ०—मैंने फिर देखा
नौकर ने उसकी भोली में अन्न दिया, और धिलवे में सूखे
गालों पर दिया, एक पूरा चाँटा ।—मानव०, पृ० ६४ ।

धिव^१—संज्ञा पुं० [सं० घृत] दे० 'घी' ।

धिवहा^१—वि० [हि० धिव + हा (प्रत्य०)] १. घी का बना हुआ ।
२. घी से संबंधित ।

धिसकना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'क्षमकना' ।

धिसधिस—संज्ञा स्त्री० [हि० धिसना] १. वह देर जो मुस्ती के
कारण हो । कार्य में शिथिलता । अनुचित विलंब । अतत्परता
जैसे,—इसी तुम्हारी धिसधिस में बारह बज गए । २. कोई
बात स्थिर करने में व्यर्थ का विलंब । अनिश्चय । गड़बड़ी ।

धिसटना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'घसिटना' ।

धिसना^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धिसना] १. रगड़ । २. घिसने के कारण
हानेवाली कमी या छीज ।

धिसना^१ क्रि० स० [सं० घर्षण, प्रा० घसण] १. एक वस्तु को
दूसरी वस्तु पर रक्कर खूब दबाते हुए इधर उधर फिराना ।
रगड़ना । जैसे,—इसको पत्थर पर घिस दो, तो चिकना
तो जायगा ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

मुहा०—धिस धिस कर चलना = बहुत दिनों तक खूब काम में
लाया जाना और चलना ।

२. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु पर इस प्रकार रगड़ना कि उसका
कुछ अंश छूटकर अलग हो जाय । जैसे,—चंदन धिसना ।

मुहा०—धिस लगाने को नहीं = घिसकर तिलक या अंजन
लगाने भर को भी नहीं । लेणमान नहीं ।

३. संभोग करना (बाजारू) ।

धिसना^१—क्रि० प्र० रगड़ खाकर कम होना या छीजना । जैसे—
जूते की एंडी चलते चलते धिस गई ।

संयो० क्रि०—जाना ।—उठना ।

धिसधिस^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. दे० 'धिस धिस' । २. सट्टा बट्टा ।
मेल जोल ।

धिसवाना—क्रि० म० [हि० धिसना का प्रे० रूप] धिसने का काम
कराना । रगड़वाना ।

धिसा—वि० [हि० धिसना] १. धिसा हुआ । रगड़ा हुआ । २.
पुराना । जीर्ण ।

धिसाई—संज्ञा स्त्री० [हि० धिसना] १. धिसने की क्रिया । २. धिसने
की मजदूरी । ३. धिसने का भाव ।

धिसाना—क्रि० म० [हि० धिसना का प्रे० रूप] रगड़ना ।

धिसाव—संज्ञा स्त्री० [हि० धिसना] १. रगड़ । धिसन । २. कमी ।
छीजन ।

धिसावट—संज्ञा स्त्री० [हि० धिसना] १. रगड़ । धिसना । २. धिसने
की मजदूरी । धिसाई ।

धिसिआना^१, धिसियाना—क्रि० स० [सं० घर्षण] घसीटना ।

धिसिरधिसिर—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धिसधिस' ।

चिसोहरा—वि० [हि० चिस + ओहर (प्रत्य०)] जमीन को स्पष्ट करनेवाला (वस्त्र)। उ०—वह इतना लंबा और चिसोहर है।—ब्रह्मधन०, भा० २, पृ० २६८।

चिरटपिस्ट—संज्ञा पु० [सं० घृष्ट पिष्ट] १. गहरा मेल जोल। प्रगाढ़ मिश्रता। गहरी घनिष्ठता। २. अनुचित संबंध। अपवित्र संबंध।

चिस्समचिस्सा—संज्ञा पु० [हि० चिसना] १. गहरा धक्का। खूब भीड़ भाड़। २. लड़कों का एक खेल जिसमें एक अपनी डोरी या नख को दूसरे की नख या डोरी में फँसाकर भटका देता या रगड़ता है जिसमें दूसरे की डोरी कट जाय।

चिस्सा—संज्ञा पु० [हि० चिसना] रगड़ा। जैसे,—चिस्सा लगते ही कनकोष्ठा कट गया।

क्रि० प्र०—पड़ना।—बैठना।—लगना।

२. धक्का। ठोकर। ३. वह आघात जो पहलवान अपनी कुहनी और कलाई के बीच की हड्डी की रगड़ से देते हैं। कुंवा। रद्दा। ४. लड़कों का एक खेल जिसमें एक अपनी नख या डोरी की रगड़ से दूसरे की नख या डोरी को काटने का यत्न करता है।

धीचः—संज्ञा स्त्री० [हि० धीचना या सं० धीच] गरदन। धीवा। उ०—धीच में मोचन नीचाहि सुझत मोह को कीच फँस्यो है।—ठाकुर०, पृ० १२।

धीचना—क्रि० सं० [सं० कर्ण, हि० धीचना] धीचना। ऐंचना।

धीचाधीची—संज्ञा स्त्री० [हि० धीचना] दे० 'खींचतान'। उ०—एक हाड दुइ कुत्ता लागे धीचाधीची करते।—सं० दरिया, पृ० १३४।

धी—संज्ञा पु० [पु० घृत, प्रा० धीघ्र] दूध का चिकना सार जिसमें से जल का अंश तपाकर निकाल दिया गया हो। तपाया हुआ मक्खन। घृत।

मुहा०—धी कड़कड़ाना=साफ और सोंधा करने के लिये धी को तपाना। धी का कुप्पा लुढ़काना या लुढ़काना=(१) किसी बहुत बड़े धनी का मर जाना। किसी बड़े आदमी की मृत्यु होना। (२) भारी हानि होना। बहुत नुकसान होना। धी के कुप्पे से जा खगना=किसी ऐसे स्थान तक पहुँच जाना जहाँ खूब प्राप्ति हो। किसी ऐसे धनी तक पहुँच होना जहाँ खूब माल मिले। धी के चिराग जनाना=दे० 'धी के दीए जलाना'। उ०—यह कहो कि आज ठाकुर साहब धी के चिराग जलाएँगे। फिसाना०, भा० ३, पृ० १६६। धी का डोरा=धी की धार जो दाल आदि में डालते समय बँध जाती है। धी का डोरा डालना=किसी के भोजन में तपाया हुआ धी डालना। धी के जलना=दे० 'धी के दीए जलना'। धी के बीए जलना=(१) कामना पूरी होना। मनोरथ सफल होना। (२) आनंद मंगल होना। उत्सव होना। (३) सुख सौभाग्य की दशा होना। धन धान्य की पूर्णता होना। समृद्धि होना। ऐश्वर्य होना। धी के बिए जलाना=(१) आनंद मंगल मनाना। उत्सव मनाना। २. सुख संपत्ति का भोग करना। बड़े सुख चैन से रहना। धी के बिए (दीप) भरना=(१) आनंद

मंगल मनाना। उत्सव मनाना। उ०—भूप गहे ऋषिराज के पाय कह्यो अब दीप भरो सब धी के।—हनुमान (शब्द०)। (२) सुख संपत्ति का भोग करना। बड़े सुख चैन से रहना। धी खिचड़ी=खूब मिना जुला। धी खिचड़ी होना=खूब मिल जुल जाना। अभिन्न हृदय होना। (किसी की) पाँचों उँगलियाँ धी में होना=खूब आराम चैन का मौका मिलना। सुख भोग का अवसर मिलना। खूब लाभ होना। धी गुड़ बना=अच्छी खातिर करना। उ०—आगत का स्वागत समुचित है, पर क्या घाँसू लेकर? प्रिय होते तो से लेती उसको मैं धी गुड़ देकर।—साकेत पृ० २८२।

धीउ, धीऊ—संज्ञा पु० [सं० घृत] दे० 'धी'।

धीकुआर—संज्ञा पु० [सं० घृतकुमारी] एक प्रसिद्ध क्षुप जो खारी रेतीली जमीन पर अथवा नदियों के किनारे अधिकता से होता है।

विशेष—इसके पत्ते ३-४ अंगुल चौड़े, हाथ डेढ़ हाथ लंबे, दोनों किनारों पर अनीदार, बहुत मोटे और गूदेदार होते हैं जिनके अंदर हरे रंग का और लसीला गूदा होता है। यह गूदा बहुत पुष्टिकारक समझा जाता है और कई रोगों में व्यवहृत होता है। एलुमा इसी के रस से बनाया जाता है। वैद्यक में यह शीतल, कड़ुआ, कफनाशक और पित्त, खाँसी, विष, श्वास तथा कुष्ठ आदि को दूर करनेवाला माना गया है। पत्तों के बीच से एक मोटा डंडा या मूसला निकलता है जो मधुर और कृमि तथा पित्तनाशक कहा गया है। इसी डंडे में लाल फूल निकलता है जो भारी होता है और बात, पित्त तथा कृमि का नाशक बतलाया गया है।

धीकुवारी—संज्ञा पु० [सं० घृतकुमारी] ग्वारपाठा। गोंडपट्टा।

धीपक—वि० [सं० घृतपक्व] धी में पका हुआ धी से निर्मित। उ०—धीपक जलपक जेत गने। कटुआ बटुआ ते सब गने। चित्रा०, पृ० १०३।

धीख—संज्ञा पु० [सं० घृत] दे० 'धी' उ०—दूध के बीच में धीख जैसे, ऐसे फूल के बीच में बास है जी—कबीर० दे०, पृ० ३७।

धीस—संज्ञा पु० [प्रा०] एक बड़ा चूहा। घूस। उ०—बैठि सिध घट पान लगवहि धीस गत्योरे लावै।—कबीर ग्रं०, पृ० २०७।

धीसना—क्रि० सं० [हि० घिसना] १. रगड़ना। २. घसीटना।

धीसा—संज्ञा पु० [हि० घिसना] घिसने या रगड़ने की क्रिया। रगड़। माँजा। उ०—घरिका लाइ करे तन धीसू। नियर न होइ करे इबलीसू।—जायसी (शब्द०)।

धुंघटा, धुंघट्ट—संज्ञा पु० [हि० घूँघट] दे० 'घूँघट'। उ०—(क) इक कउन पलटि इक करन लंत। धुंघट्ट बदल सज्जा सुभंत।—पृ० रा० १४। २८। (ख) जब नानक मुख ते बोला। तब कीसे ने धुंघट खोला।—प्राण०, पृ० ११६।

धुंठ—संज्ञा पु० [सं० घुण्ट] गुल्फ। टखना [को०]।

धुंटाक—संज्ञा पु० [सं० घुण्टक] [स्त्री० घुंटिका] दे० 'घुंटा'।

घुटाना—क्रि० स० [हि० घोटना का प्रे० रूप] घोटने का काम कराना ।

घुटाका—संज्ञा पु० [देश०] दे० 'घोटाना' ।

घुटो—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'घुटो' ।

घुटुका—संज्ञा पु० [हि० घुटका] घुटनों के बल चलने की क्रिया ।

घुटुकन—क्रि० वि० [हि०] घुटनों के बल । उ०—घुटुकन चलत अजिर यह बिहरत मुख मंडित नवनीत ।—सूर० १०।६७ ।

घुटुका—संज्ञा पु० [देश०] दे० 'घुटाना' ।

घुटुवा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'घुटाना' ।

घुटे घुटाए—क्रि० [हि० घुटना] दे० 'घुटा' । उ०—पाँच छः आदमी एक बबूतरे पर हातरंज खेलते नजर आए मगर वह सब भी घुटे घुटाए जब तो फकीर को ताजुब हुआ ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १४५ ।

घुटमघुट—क्रि० [हि० घुटना] घुटा हुआ । मुँडित । जिसके सिर के बाल मूढ़ लिए गए हों । उ०—ब्रह्मचारी हो क्योंकि बटु ही । गृहस्थ हो जूना रूप से संन्यासी ही क्योंकि घुटमघुट ही ।—भारतेंदु प्र०, भा० ३, पृ० ८५३ ।

घुट्टा—संज्ञा पु० [देश०] दे० 'घोटा' ।

घुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० घूँट] वह दवा जो छोटे बच्चों को पाचन के लिये पिलाई जाती है ।

क्रि० प्र०—देना ।—पिलाना ।

मुहा०—घुट्टी में पड़ना = स्वभाव के अंतर्गत होना । जैसे,—भूट बोलना तो इनकी घुट्टी में पड़ा है । उ०—बेवफाई तो तुम लोगों की घुट्टी में पड़ी है ।—सीर०, पृ० ४४ ।

घुड़—संज्ञा पु० [हि० घोड़ा] घोड़ा का लघु रूप जो योगिक बन्दों के आरंभ में प्रयुक्त होता है । जैसे,—घुड़बड़ा, घुड़सान आदि ।

घुड़कना—क्रि० स० [सं० घुर] किसी पर क्रुद्ध होकर उसे डराने के लिये जोर से कोई बात कहना । कड़ककर बोलना । डाँटना । जैसे,—जो लड़के घुड़कने से नहीं मानते, वे मार को भी कुछ नहीं समझते ।

घुड़की—संज्ञा स्त्री० [हि० घुड़कना] १. वह बात जो कोष में आकर डराने के लिये जोर से कही जाय । डाँट । डपट । फटकार । २. घुड़कने की क्रिया ।

यौ०—बदरघुड़की = भूट मूठ डर दिखाना ।

घुड़चढ़ा—संज्ञा पु० [हि० घोड़ा + चढ़ना] १. सवार । अश्वारोही । २. एक प्रकार का स्वाँग जिसमें एक मनुष्य अपने पेट के सामने घोड़े के मुँह का घोर पीछे दुम आदि का आकार बनाकर जोड़ता है, जिससे वह देखने में घोड़े पर सवार जान पड़ता है । गाजी मियाँ की सवारी की नकल दिखाकर भीख माँगने के लिये प्रायः बफाली ऐसा स्वाँग बनाते हैं । इसे लिल्ली घोड़ी भी कहते हैं ।

घुड़चढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा + चढ़ना] १. विवाह की एक रीति जिसमें दूल्हा घोड़े पर चढ़कर दुल्हिन के घर जाता है । २. देहती रंडी या तवायफ जो प्रायः घोड़ों पर चढ़कर

एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती है । निरुद्ध श्रेणी की गानेवाली बेध्या । ३. एक प्रकार की छोटी तोप जो घोड़े पर रखकर चलाई जाती है । ४. दे० 'घोड़ाचोली' ।

घुड़दौड़^१—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा + दौड़] १. घोड़ों की दौड़ । २. एक प्रकार का खेल जिसमें कई एक मनुष्य एक स्थान से अपने अपने घोड़े दौड़ाते हैं । जिसका घोड़ा सबसे आगे निकलकर निश्चित स्थान पर पहले पहुँच जाय, उसकी जीत समझी जाती है । ३. घोड़े दौड़ाने का स्थान या सड़क । ४. एक प्रकार की नाव जिसका अगला भाग घोड़े के मुँह के आकार का बना होता है । इसके बीच में बैठने के लिये बंगला रहता है । ५. अश्वारोही सेना की परेड या कवायद ।

घुड़दौड़^२—क्रि० वि० [हि० घोड़ा + दौड़] बड़ी तेजी से । अति-शीघ्रता से । जैसे—(क) आज घुड़दौड़ कहाँ चले जा रहे हो ? (ख) घुड़दौड़ मत चलो; नहीं तो ठोकर लगेगी ।

घुड़दौरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घुड़दौड़' ।

घुड़दौरी^२—क्रि० वि० [हि०] दे० 'घुड़दौड़' ।

घुड़ना—क्रि० प्र० [हि० घुड़ + ना] भिड़ना । टटना । उ०—जुड़े पड़े लड़े मुड़े घुड़े अनेक जंग में ।—रा० क०, पृ० ९० ।

घुड़नाल—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा + नाल] एक प्रकार की तोप जो घोड़ों पर चलती है ।

घुड़बहल—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा + बहल] [स्त्री० घुड़बहली] वह रथ जिसमें घोड़े जुते हों ।

घुड़मक्खी—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा + मक्खी] एक प्रकार की भूरे रंग की मक्खी जो घोड़ों को काटती है ।

घुड़मुह^१—संज्ञा पु० [हि० घोड़ा + मुँह] १. एक कल्पित मनुष्य जाति जिसका सारा धड़ मनुष्य का सा और मुँह घोड़े का सा माना जाता है । २. वह मनुष्य जिसका मुँह लंबा और बेकंगा हो । लंबे मुँहवाला मनुष्य ।

घुड़मुह^२—क्रि० जिसका मुँह घोड़े की तरह लंबा हो ।

घुड़रोज, **घुड़रोझा**—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'घोड़रोज' ।

घुड़ला—संज्ञा पु० [हि० घोड़ा + ला (प्रत्यय)] १. मिट्टी या किसी धातु या मिटाई का बना हुआ घोड़े के आकार का खिलौना । २. छोटा घोड़ा । ३. कोई छोटी रस्सी या पतली जंजीर जिससे जहाजवाले अनेक काम लेते हैं और जिसे अंगरेजी में लैन यार्ड कहते हैं ।

घुड़सवार—संज्ञा पु० [हि० घोड़ा + सवार] अश्वारोही । घोड़सवार ।

घुड़सार^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घुड़साल' । उ०—सो ये दोऊ जने अपनी स्त्री लरिका ल के ना घुड़सार में घाई रहे ।—दो सो बावन०, पृ० २४० ।

घुड़साल—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा + साला] घोड़ों के बाँधने का स्थान । अस्तबल । पैड़ा । उ०—घोड़ा घुड़साल बृष बैला । छुटे रथ बाज सब खेला ।—संत तुरसी०, पृ० ५७ ।

घुड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० घोटिका, हि० घोड़ी का अल्पा०] १. छोटी घोड़ी । २. दे० 'घोड़िया' ।

शुद्धि—संज्ञा पुं० [हिं० शुद्ध + इत्ता (प्रत्य०)] छोटा चोड़ा ।
उ०—साब सहित एक शुद्धिला लेयो, गैया बूध भतीली जू ।
सुंदर सों एक हाथी लेयो हथनी संग भमोली जू ।—नंद०
प्रं०, पृ० ३३७ ।

शुद्धकना—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'शुद्धकना' ।

शुण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धुन' ।

यौ०—धुणलिपि = दे० 'धुणाक्षर' ।

धुणाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी कृति या रचना जो अनजान में उसी प्रकार हो जाय, जिस प्रकार धुनों के खाते खाते लकड़ी में अक्षर की तरह के बहुत से चिह्न या लकीरें बन जाती हैं ।

यौ०—धुणाक्षर न्याय = अकस्मात् किसी अनभीष्ट एवं अज्ञात कार्य का बिना प्रयत्न के हो जाना । उ०—यदि वह धुणाक्षर न्याय से किसी प्रकार अपने कर्तव्य कार्य को.....—
प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७६ ।

विशेष—इस न्याय या उक्ति का प्रयोग ऐसे स्थलों पर करते हैं जहाँ किसी के द्वारा ऐसा आकस्मिक कार्य हो जाता है जो उसे ज्ञात या अभीष्ट न रहा हो ।

धुन—संज्ञा पुं० [सं० धुण] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो अनाज, पीछे और लकड़ी आदि में लगता है ।

विशेष—इस कीड़े की कई जातियाँ होती हैं । लकड़ी का धुन अनाज के धुन से भिन्न होता है । जिस लकड़ी या अनाज में यह लगता है, उसे अंदर ही अंदर खाते खाते खोखला कर डालता है । इस कीड़े के भी रेशम के कीड़े के समान कई रूपांतर होते हैं । यह भी पहले गंडेदार लंबे ढोले के रूप में रहता है ।

मुहा०—धुन खगना = (१) धुन का अनाज या लकड़ी को खाना । (२) अंदर ही अंदर किसी वस्तु का क्षीण होना । धीरे धीरे अप्रत्यक्ष रूप में किसी वस्तु का हास होना । अंदर ही अंदर छोड़ना या नष्ट होना । जैसे,—शरीर में धुन लगना । रोजगार में धुन लगना । जवानी में धुन लगना । उ०—कीट मनोरथ दाह शरीरा । जेहि न लाग धुन को अस धीरा ।—मानस, ७।७१ । धुन भड़ना = धुन की खाई हुई लकड़ी का चूर गिरना ।

धुनधुना—संज्ञा पुं० [धनु०] लकड़ी, पीतल इत्यादि का बना हुआ एक छोटा सा खिलौना, जिसे लड़के हाथ में लेकर बजाया करते हैं । इसका आकार गोल या लंबोत्तरा गोल होता है । इसमें एक ओर एक दस्ता लगा होता है, जिसे हाथ में पकड़ते हैं । झुनझुना ।

धुनना—क्रि० सं० [हिं० धुन] १. धुन के द्वारा लकड़ी आदि का खाया जाना । धुन के खाने से खोखला और कमजोर हो जाना । जैसे,—लकड़ी धुनना, अनाज धुनना । २. किसी दोष के कारण किसी चीज का अंदर ही अंदर छोड़ना । जैसे,—शरीर धुनना । उ०—(क) दाह सरीर, कीट पहिले सुख, सुमिरि सुमिरि बासर निसि धुनिप ।—तुलसी प्रं०,

पृ० ४४३ । (ख) मोहन को बेनु सुनै धुनै सीस मन ही मन मैं । धुपे भीरी सोच गुनै गहि बूई सोक है ।—घनानंद, पृ० २०७ ।

संयो० क्रि०—जाना ।

धुना—वि० [हिं० धुनना] १. धुना हुआ । जिसमें धुन लगा हो । २. छोड़ा हुआ ।

धुनाक्षरन्याय—संज्ञा पुं० [सं० धुणाक्षर न्याय] दे० 'धुणाक्षर न्याय' । उ०—कहत कठिन समुभूत कठिन साधत कठिन विवेक । होइ धुनाक्षर न्याय जो पुनि प्रव्यूह अनेक ।—तुलसी प्रं०, पृ० १०५ ।

धुभा—वि० [धनु० धुनधुनाना] [वि० क्षी० घुञ्चो] जो अपने क्रोध द्वेष आदि भावों को मन ही में रखे और चुपचाप उनके अनुसार कार्य करे । मन ही मन बुरा माननेवाला । चुप्पा ।

धुञ्ची—वि० क्षी० [हिं० घुञ्चा] अपने मन का भाव गुप्त रखनेवाला । चुप्पी (क्षी) ।

धुञ्ची—संज्ञा क्षी० चुप्पी । मौन ।

क्रि० प्र०—साधना ।

धुप—वि० [सं० शूष या धनु०] गहरा (अंधेरा) । निविड़ (अंधकार)

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'अंधेरा' शब्द ही के साथ होता है । जैसे,—अंधेरा धुप ।

धुमंड—संज्ञा क्षी० [हिं० धुमड़ना] दे० 'धुमड़' । उ०—अबिर गुलाल की धुमंड बजनिधि छए हो हो होरी कहत हंसत देत तारी हैं ।—ब्रज०, प्रं०, पृ० ३० ।

धुमंतू—वि० [हिं० धूमना] बराबर ऊपर उधर धूमनेवाला । उ०—जाड़ों को नीचे बिताकर अब यह धुमंतू महिषपाल हिमांचल की ऊपरी चारागाहों की ओर जा रहे थे ।—किन्नर०, पृ० ३० ।

धुमंडना—क्रि० प्र० [हिं० धुमड़ना] दे० 'धुमड़ना' । उ०—निर्भे हँ कुरम तृपति पाछें चल्थो धुमंड ।—सुजान०, पृ० २६ ।

धुमधुं—संज्ञा क्षी० [हिं०] दे० 'धुमड़' ।

धुमकड़—वि० [हिं० धूमना + अकड़ (प्रत्य०)] बहुत धूमनेवाला ।

धुमची—संज्ञा क्षी० [सं० घुञ्चा] दे० 'धुञ्चो' ।

धुमटा—संज्ञा पुं० [फ्रा० घुं बट] दे० 'धुमटी' । उ०—धुमट पर एक के ऊपर दूसरी तीन छतरियाँ और हमिका है ।—शुक्ल० अभि० प्रं०, पृ० १८२ ।

धुमटा—संज्ञा पुं० [हिं० धूमना + टा (प्रत्य०)] सिर का चक्कर जिस में आँख के सामने अंधेरा सा जान पड़ता है और आदमी खड़ा नहीं रह सकता ।

क्रि० प्र०—जाना ।

धुमड़—संज्ञा क्षी० [हिं० धुमड़ना] १. बरसनेवाले बादलों की धेरधार । २. छाँटा । घिराव । इकट्ठा होना ।

धुमड़नि—संज्ञा क्षी० [हिं० धुमड़ना] दे० 'धुमड़' । उ०—घन

पुष्टिक—संज्ञा पु० [सं० पुष्टिक] [जी० पुष्टिका] कंठा को० ।

पुष्टि—वि० [हि० घोटना] घोंटा हुआ । चिकना । उ०—पट्टिय
घुंति मेन तिमिर कज्जल छवि छीनिय । मुग्ध जुग गोस
बनुष बदन राका रुचि भोनिय ।—पृ० रा०, १४।७४ ।

पुष्ट—संज्ञा पु० [सं० पुष्ट] भ्रमर । भोरा को० ।

पुष्टी—संज्ञा स्त्री० [मं० पुष्टि] १. कपड़े की सिली हुई मटर के आकार
की छोटी गोली जिसे भ्रमरके या कुरते आदि का पल्ला बंद
करने के लिये टाँकते हैं । कपड़े का गोल बटन । गोपक ।

मुहा०—पुंछी लगाना = (१) पुंछी टाँकना । (२) पुंछी से
तुकमे से भ्रमरके आदि का पल्ला मटकाना । जो की पुंछी
खोजना = हृदय की गाँठ खोलना । चित्त से दुर्भाव या द्वेष
निकासना । बिल की पुंछी खोलना (पु०) = दे० 'जो की पुंछी
खोलना' । उ०—प्राण पपीही दे आनंद घन दिल की पुंछी
खोल ।—घनानंद, पृ० ४२१ ।

२. हाथ या पैर में पहनने के कड़े के दोनों छोरों पर की गाँठ
जो कई आकार की बनाई जाती है । ३. बाजू, जोशान, आदि
गहनों में लगी हुई पातु की गोल गाँठ जिसे सूत के धरे में
झालकर गहनों को कसते हैं । यह पुंछी प्रायः लटकती रहती
है । ४. एक प्रकार की घास । ५. धान का अकुर जो खेत
कटने पर जड़ से फूटकर निकलता है । दोहला ।

पुंछीदार—वि० [हि० पुंछी + फा० दार] जिसमें पुंछी लगी हो ।

पुंछोदार—संज्ञा पु० एक प्रकार की सिलाई जिसमें एक टाँके के बाद
दूसरा टाँका फंदा डाल कर लगाते जाते हैं ।

पुंसा—संज्ञा पु० [देश०] वह लकड़ी जिसके सहारे से जाठ उठाकर
कोल्हू में झालते हैं ।

पुंछियाँ—संज्ञा स्त्री० [देश०] अरई नाम की तरकारी ।

पुंघची—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'पुंघची' ।

पुंघची—संज्ञा स्त्री० [सं० गुञ्जा, प्रा० गुंजा] १. एक प्रकार की
भोटी बेल जो प्रायः जंगलों में बड़ी बड़ी आड़ियों के ऊपर फैली
हुई पाई जाती है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ इमली की पत्तियों की सी और खाने में
कुछ मीठी होती हैं और फूल सेम के फूलों के समान होते हैं ।
फूलों के झड़ जाने पर मटर की तरह की फलियाँ गुच्छों में
लगती हैं, जो जाड़े में सूखकर फट जाती हैं और जिनके अंदर
के लाल लाल बीज दिखाई पड़ते हैं । ये ही बीज पुंघची या
गुंजा के नाम से प्रसिद्ध हैं । इनका सारा अंग लाल होता है,
केवल मुख पर छोटा सा काला धोटा रहता है जो बहुत सुंदर
लगता है । सफेद रंग की पुंघची भी होती है, जिसके मुँह पर
काला दाग नहीं होता । मुलेठी या जेठी मधु इसी पुंघची की
जड़ है । वैद्यक में पुंघची कड़ई, बलकारक, केश और त्वचा
को हितकारी तथा घण, कृष्ण, गंज इत्यादि को दूर करनेवाली
मानी जाती है । जड़ और पत्ते विपनाशक कहे जाते हैं । सफेद
पुंघची वशीकरण की सामग्री मानी जाती है ।

२. इस लता का बीज । उ०—कंचन पुंघची आनि तुला एके में
तोले ।—पलदू, पृ० ७१ ।

पर्या०—रक्तिका । गुंजिका । कृष्णला । काकिनी । कशा ।

कनीची । काकशिची । कांची । सोम्या । शिखंडी । अरणा ।
कांबोजी । काकशिची । घटकी ।

पुंघनी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] भ्रिगोकर घी या तेल में तला हुआ चना,
मटर या और कोई पन्ना । घुघरी ।

मुहा०—पुंघनियाँ या पुंघनी मुँह में रखकर बैठना = चुपचाप
बैठना । मौन होकर रहना ।

पुंघर—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'पुंघर' उ०—ताही पुंघर मत गत
भ्रमर भ्रमरत ऐसो । बनी है छवि बिसाल प्रेम जाल गोलक
जैसो ।—नंद प्र०, पृ० ३६६ ।

पुंघरारे—वि० [हि० घुमरना + धारे] पुंघराले । पुंघरवाले ।
उ०—मृगमद मलय झलक पुंघरारे । उन मोहन मन हरे
हमारे ।—सूर (शब्द०) ।

पुंघराले—वि० [हि० घुमरना + बाले] [वि० स्त्री० पुंघराली]
धूमे हुए (बाल) । टेढ़े और बल जाए हुए (बाल) ।
छल्लेदार । पुंघरवाले । कुंचित ।

पुंघरू—संज्ञा पु० [अनु० घुन् घुन् + मं० रब या रु] १. किसी धातु
की बनी हुई गोल और पोली गुरिया जिसके अंदर 'घन घन'
बजने के लिये कंकड़ भर देते हैं । चौरासी । मंजीर ।

मुहा०—पुंघरू सा लवना = शरीर में बहुत अधिक कुंसियाँ,
चेचक या छाले आदि निकलना ।

२. ऐसी गुरियों का बना हुआ पैर का गहना जो बच्चे या नाचने-
वाले पहनते हैं ।

मुहा०—पुंघरू बांधना = (१) नाचने में चेला करना । (२)
नाचने के लिये तैयार होना ।

३. गले का वह घुर घुर शब्द जो मरते समय कफ छेकने के कारण
निकलता है । घटका । घटुका ।

मुहा०—पुंघरू खोलना = घरी लगना । घटका लगना । मरते
समय कफ छेकना ।

४. वह कोश जिसके अंदर चने का दाना रहता है । बूट के ऊपर
की खोज । ५. सनई का फल जिसके अंदर बीज रहते हैं ।

विशेष—मुखने पर ये सनई के फल बजते हैं जिसके कारण लड़के
इन्हें खेल के लिये पाँव में बाँधते हैं । संस्कृत एवं प्राकृतिक
गाथाओं में भी इसके प्रयोग मिलते हैं; यथा—'शाणफल बज्जुन
पयसा' । पृ० रा०, १ ।

पुंघरूदार—वि० [हि० पुंघरू + फा० दार] जिसमें पुंघरू लगे हों ।

पुंघरूबंद—संज्ञा स्त्री० [हि० पुंघरू + सं० बन्ध, फा० बंद] वह
वेश्या जो नाचने गाने का काम करती हो ।

पुंघरू मोतिया—संज्ञा पु० [हि० पुंघरू + मोतिया] एक प्रकार का
मोतिया बेला ।

पुंघुवारे—वि० [हि०] [वि० स्त्री० पुंघुवारी] दे० 'पुंघराले' ।

उ०—पुंघुवारी लट लटके मुख ऊपर ।—तुलसी (शब्द०) ।

पुंघ—संज्ञा पु० [देश०] एक जंगली पेड़ जिसे बोट भी कहते हैं । इसकी
छाल और फलियों से चमड़ा सिझाया जाता है ।

पुंघना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'घुटना' ।

पुंघा—संज्ञा पु० [देश०] दे० 'घुंघा' ।

पुंघियाँ—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'पुंघियाँ' ।

बुझना—क्रि० स० [हि० ब्रूना] दे० 'बूरना' ।

बुझसा—संज्ञा ली० [ब्रू०] दे० 'बूस' ।

बुझुआ, बुझुआ—संज्ञा पुं० [हि० ब्रूआ] दे० 'बूआ' ।

बुझी—संज्ञा ली० [ब्रू०] १. तिकोना लपेटा हुआ कंबल आदि जिसे किसान या गड़ेरिए घूष, पानी और शीत से बचने के लिये सिर पर डालते हैं। चोधी। झड़पा। २. कपोत जाति की एक चिड़िया जिसका रंग खूब पक्षी हँट की तरह का होता है। इसकी बोली कबूतर से भिन्न होती है। हुटक। पेंड़की। पंड़क। फास्ता ।

बुझू—संज्ञा पुं० [सं० ब्रूक] १. उल्लू नाम की चिड़िया। उलुक। २. मिट्टी का एक खिलोना जो फूँकने से बजता है ।

बुझुआ—संज्ञा पुं० [हि० बुझू + आ (प्रत्य०)] दे० 'बुझू' ।

बुझुआना—क्रि० प्र० [हि० बुझू] १. उल्लू पक्षी का बोलना। २. बिल्ली का गुराँना। ३. उल्लू की तरह बोलना। ४. बिल्ली की तरह गुराँना ।

बुझनी—संज्ञा ली० [ब्रू०] दे० 'बुझनी'। उ०—बाँटें बुझनी चना मिठाई जब गृह भावें।—प्रेमचन्द०, भा० १, पृ० २६ ।

बुझुरारे—वि० [हि०] दे० 'बुझुराले'। उ०—फिर बुझुरारे बार फिर वही बड़ी भाँखें, फिर मोठी मुसकिराहट।—ठेठ०, पृ० २६ ।

बुझुरी—संज्ञा ली० [हि०] १. दे० 'बुझूरु'। २. दे० 'बुझनी' ।

बुझुआना—क्रि० प्र० [हि० ब्रूआ] दे० 'बुझुआना' ।

बुझुआर(उ)—वि० [हि०] दे० 'बुझुराले'। उ०—बिधुरे सुपरे चीकने बने बने बुझुआर। रसिकन कौं जंजीर से बाला तेरे बार।—भक्तवरी०, पृ० ५१ ।

बुझू—संज्ञा पुं० [हि०] उल्लू। बुझू। उ०—बीस उठा बुझू डालों में लोगों ने पट दिए द्वार पर।—ग्राम्या, पृ० ६७ ।

बुटकना—क्रि० स० [हि० बूट+करना] १. बूट बूट करके पी जाना। पी जाना। पान करना। उ०—वर्षासिंधुर सिंधु रसे बुटकें।—गोपाल (शब्द०)। २. निबल जाना।

बुटकी—संज्ञा ली० [हि० बुटकना] गले की वह नली जिसके द्वारा खाना पानी आदि पेट में जाते हैं। बुटकने की नली।

बुटन—संज्ञा ली० [हि० बुटना] १. दम बुटने की सी स्थिति या भाव। २. मन में घबराहट होने की स्थिति।

बुटना^१—संज्ञा पुं० [सं० बुट्टक] पाँव के मध्य का भाग या जोड़। जाँघ के नीचे और टाँग के ऊपर का जोड़। टाँग और जाँघ के बीच की गाँठ। जैसे,—मारूँ बुटना फूटे भाँख।—(कहावत) ।

मुहा०—बुटना टेकना = (१) बुटनों के बल बैठना। (२) पराजित होना। पराजय होने से लज्जित होना। बुटनों चलना = बैपाँ बैपाँ चलना। बुटनों के बल चलना = दे० 'बुटनों चलना'। बुटनों में सिर बेना = (१) सिर नीचा किए बितित या उदास होना। (२) लज्जित होना। सिर नीचा करना। बुटनों से लगाकर बैठना = हुर घड़ी पास रहना। बुटनों से लगाकर बैठना = पास बैठाए रखना। दूर न जाने देना।

बिरोध—इस मुहावरे का प्रयोग प्रायः माता पिता बच्चों के लिये करते हैं।

बुटना^२—क्रि० प्र० [हि० बूटना या चोरटना] १. साँस का भीतर ही दब जाना, बाहर न निकलना। रुकना। फँसना। जैसे,—वहाँ तो इतना धूँसा है कि दम बुटता है।

मुहा०—बुट बुटकर मरना = दम तोड़ते हुए साँस से मरना।

उ०—बुट बुट के मर जाऊँ यह मरजी मेरे सियाद की है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १०६ ।

२. उलझकर कड़ा पड़ जाना। फँसना। उ०—हठ न हठीली कर सकें, वहि पावस ऋतु पाव। मान गाँठ बुटि जाय त्यों मान गाँठ छुटि जाय।—बिहारी (शब्द०) ।

बुटना^३—क्रि० प्र० [हि० बोटना] १. बोट जाना। पीसा जाना। जैसे,—वहाँ रोज माँग घुटा करती है।

मुहा०—बुटा हुआ = छँटा हुआ। चालाकी में मँजा हुआ। मारी चालाक।

२. रगड़ लाकर चिकना होना। रगड़ से चिकना और चमकीला होना। जैसे,—तुम्हारी पट्टी बुट गई कि अभी नहीं। ३. घनिष्ठता होना। मेलजोल होना। जैसे,—दोनों में आजकल खूब बुटती है। ४. मिल जुलकर बात होना। ५. किसी कार्य का इसलिये बार बार होना जिसमें उसका खूब अभ्यास हो जाय। ६. (सर के) बालों का पूरी तौर से मूँड़ा जाना।

बुटना^४—क्रि० स० [अनु०; तुल० पं० बुटना] जोर से पकड़ना या कसना। उ०—फिरहि दुप्री सन फेर घुटै कै। सातहु फेर गाँठि सो एकै।—जायसी (शब्द०) ।

बुटनी—संज्ञा ली० [हि० बुटना] दे० 'बुटना' ।

बुटना—संज्ञा पुं० [हि० बुटना] १. बुटनों तक का पायजामा। २. पतली मोहरी का पायजामा (पंजाबी) ।

बुटरबुटर—संज्ञा पुं० [अनु०] घरं घरं। हँधे हुए गले की आवाज। उ०—बुटर बुटर जब करने लाग। चेतनता सब तन का भागा।—सहजो०, पृ० ३२ ।

बुटरनि(उ)—क्रि० वि० [हि० बुटना] बुटनों के बल। उ०—केचित् खन गऊ मुख लाहीं। बुटरनि परहि भकल कछु नाहीं।—सुंदर द०, भा० १, पृ० ६१ ।

बुटरूँ^१—संज्ञा पुं० [सं० बुट+हि० रू] पाँव के मध्य भाग का जोड़। बुटना।

बुटवाना—क्रि० स० [हि० घोटना का प्रेर० रूप] १. घोटने का काम कराना। २. बाल मुँडाना।

घुटा—वि० [हि० घुटना] १. मुड़ित। जैसे—घुटा सिर। २. चतुर। चालाक। जैसे,—घुटा आदमी।

घुटाई—संज्ञा ली० [हि० घुटना] १. घोटने या रगड़ने का भाव या क्रिया। २. रगड़कर चिकना और चमकीला बनाने का भाव या क्रिया। जैसे,—इस कपड़े पर खूब घुटाई हुई है। ३. रगड़कर चिकना और चमकीला करने की मजदूरी।

घुमड़नि मधि बाय सुदेस । बिनु गुन सोभित भयो सुदेस ।—
मद० प्र०, पृ० २१० ।

घुमड़ना—क्रि० प्र० [हि० घूम+घटना] १. बादलों का घूम घूम-
कर इकट्ठा होना । घने मेघों का छाना । बादलों का इधर
उधर घने होकर जमना । उ०—(क) घुमड़ि घुमड़ि घटा घन
की घनेरी धबै गरज गई ती केर गरजन लागी री ।—पषाकर
(शब्द०) । (ख) उमड़ि घुमड़ि घन बरसन लागे ।—गीत ।
२. इकट्ठा होना । छा जाना । उ०—देव सला गए सोवत ते
मुख माहि मत्ता मुखमा घुमड़ी सी ।—देव । (शब्द०) ।

घुमड़ाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'घुमड़ना' । उ०—कहीं भूके
आगि वै धूँवाँ घुमड़ाया ।—सूदन (शब्द०) ।

घुमड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० घूमना] १. किसी कंठ पर स्थिर रहकर
चारों ओर फिरने की क्रिया । कुम्हार के चाक की तरह घूमने
की क्रिया ।

क्रि० प्र०—लगाना ।—लेना ।

२. वह चक्कर जो इस प्रकार घूमने से लोगों के सिर में
झाता है ।

क्रि० प्र०—झाना ।

३. सिर में चक्कर घाने का रोग जिसमें घ्रात के सामने धँसेरा सा
जान पड़ता है । ४. किसी वस्तु के चारों ओर घेरा लगाने की
क्रिया । परिक्रमा । ५. पशुओं का एक रोग । घुमनी ।

घुमना—वि० [हि० घूमना] [स्त्री० घुमनी] इधर उधर बहुत
फिरनेवाला । घूमनेवाला । घुमकड़ ।

घुमनी—वि० स्त्री० [हि० घूमना] जो इधर उधर घूमती फिरे ।
जैसे,—मेलाघुमनी, घरघुमनी ।

घुमनी—संज्ञा स्त्री० [हि० घूमना] १. पशुओं का एक रोग जिसमें
उनके पेट में पीड़ा होती है और वे इधर उधर चक्कर लगाकर
गिर जाते हैं । इसे 'घुमड़ी' भी कहते हैं । २. दे० 'घुमड़ी' ।

घुमरना—क्रि० प्र० [प्रतु० घम घम] १. घोर शब्द करना ।
ऊँचे शब्द से बजना । वि० दे० 'घुरना' । उ०—(क) घुर नर
नारिन की मुख दीन्ही जो जैसी कल सोइ लखी । सूर धन्य
जदुबंस उजागर धन्य धन्य धुनि घुमरि रही ।—सूर०, १० ।
३०८० । (ख) भारे मल्ल एक नहि उबरे । पटकत घरनि
खवन रुप घुमरे ।—सूर०, १० । ३१०६ ।

घुमरना—क्रि० प्र० [हि० घुमड़ना] १. दे० 'घुमड़ना' । उ०—
काम कोथ की लहर उठतु है मोह पवन झकझोरी । लोभ
मोरे हिरदे घुमरतु है सागर वाट न पारी ।—धरम०, पृ०
४३ । २. दे० 'घूमना' ।

घुमराई—संज्ञा स्त्री० [हि० घुमराना] इधर उधर घूमने की स्थिति ।
उ०—दग भरि आए री, मैं कही री कलुक तेरी प्रीति की
रीति, आना कानी मे मई घुमराई में गए दिन ।—नंद० प्र०,
पृ० ३५६ ।

घुमराना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'घुमरना' । उ०—गरजि घुमरात
मद मार गंडनि सबत पवन तैं वेग तिहि समय चीन्हों ।—
सूर०, १० । ३०५५ ।

घुमरी—संज्ञा स्त्री० [हि० घूम] १. दे० 'घुमड़ी' । उ०—घर
आगिन मोहि नाहि सुहावे, बैठत ही घुमरी सी भावै ।—भारतेंदु
प्र०, भा० २, पृ० ३७३ । २. पानी का भँवर । ३. घुमनी
नाम का रोग जो चौपायों को होता है ।

घुम्री—संज्ञा पुं० [हि० घूमना या देश०] पंजाब में जमीन की एक
नाप जो दो बीघों के बराबर होती है । उ०—घाठ बस भँसे
हैं, दस बारह घुम्री जमीन है ।—पिजरे०, पृ० ६१ ।

घुमाऊँ—वि० [हि० घूमना] १. घुमानेवाला । २. घूमनेवाला ।
घुमंतू ।

घुमाऊँ—संज्ञा पुं० रास्ते का मोड़ । घुमाव ।

घुमाना—क्रि० प्र० [घूमना] १. चक्कर देना । चारों ओर
फिराना । २. इधर उधर टहलाना । सैर कराना । ३. किसी
ओर प्रवृत्त करना । किसी विषय की ओर लगाना । जैसे,—
उनका क्या, जिधर घुमाओ, उधर घूम जायेंगे । ४. ऐंठना ।
मरोड़ना । जैसे,—कल घुमाना ।

घुमाना—क्रि० प्र० [हि० घूम (=नींब)] शयन करना । सोना ।

घुमारा—वि० [हि० घूम + आरा (प्रत्य०)] १. घूमनेवाला ।
२. घूमता हुआ ।

घुमारा—वि० [हि० घूम (=नींब)] १. उनींबा । २. मत्त ।
मतवाला । ३. धेरेदार ।

घुमाव—संज्ञा पुं० [हि० घूम + आव (प्रत्य०)] १. घूमने या घुमाने
का भाव । २. फेर । चक्कर ।

घौं—घुमावदार । घुमावफिराव ।

मुहा०—घुमावफिराव की बात = पेचीली बात । हेरफेर की
बात । अस्पष्ट एवं चक्करदार बात ।

३. उतनी भूमि जितनी एक जोड़ी बैल से एक दिन में जोती जाय ।
४. रास्ते का मोड़ । ५. दे० 'घुम्री' ।

घुमावदार—वि० [हि० घुमाव + दार] जिसमें कुछ घुमाव फिराव
हो । चक्करदार ।

घुमेर—संज्ञा पुं० [हि० घूम (= निहा) + एर (प्रत्य०)] स्त्री० घुमेरी]
फेर । चक्कर । बेसुधी । उ०—निसिधोस घुमेरनि औरि
परयो अभिलाष महोदधि हेरि हिरे ।—घनानंद, पृ० १३८ ।

घुम्परना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'घुमरना' । उ०—निहरि बनहि
घुम्परहि निसाना । निज पराई कछु सुनिय न काना ।—
तुलसी (शब्द०) ।

घूर—संज्ञा पुं० [हि०] 'घूर' का समस्त रूप । जैसे,—घूरबिन, घूर-
बिनियाँ, आदि ।

घूरकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'घुड़कना' । उ०—बृद्ध बाध सम
सबहि गुरेत घूरकत सबहिन ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६ ।

घूरका—संज्ञा पुं० [हि० घुरघुराना] चौपायों की एक बीमारी ।

घुरघुर—संज्ञा पुं० [घनु०] घुरघुर शब्द जो बिल्ली, सूअर आदि के
गले से तथा कफ छेकने के कारण मनुष्य के गले से भी सँस
लेते समय निकलता है ।

घुरघुरा—संज्ञा पुं० [हि० घुर घुर से घनु०] भींगुर नाम का कीड़ा ।
२. गले का एक रोग । कंठमाला ।

धुरधुराना—क्रि० प्र० [धनु० धुरधुर] गले से धुर धुर शब्द निकालना ।

धुरधुराहट—संज्ञा स्त्री० [हि० धुरधुराना] धुरधुर शब्द निकालने का भाव ।

धुरधा—संज्ञा पुं० [हि० धूरना = धूमना] कपास ओटने की चरबी । (धलमोड़ा) ।

धुरड़ा—संज्ञा पुं० [हि० धुड़ (= घोड़ा)] नील गाय । उ०—धुरड़ा है, रीख है, कमी बाध भी होता है, चीता बहुत है ।—फूलो०, पृ० १४ ।

धुरधोजी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुरड़' ।

धुरण—संज्ञा पुं० [सं०] धुर धुर की ध्वनि [को०] ।

धुरना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धुलना' ।

धुरना^२—क्रि० प्र० [सं० धुर] शब्द करना । बजना । उ०—(क) अवधपुर आए बसरथ राइ । राम लखन अछ भरत सनुवन सोभित चारी भाइ । धुरत निसान भुवंग शंस धुनि भेरि फाँक सहनाइ । उमगे लोग नगर के निरखत अतिसुख सबहिनि पाइ ।—सूर०, ६।२६ । (ख) डंकन के शोर चहुँ ओर महा घोर धुरे मानो घनघोर घोरि उठे भुव ओर तें ।—सूदन (शब्द०) ।

धुरना^३—क्रि० प्र० [हि० धुलना (= मिलना)] मेटना । घालिगन करना । मिलना । उ०—(क) जाइ धुरि गई जसुमति मैया । इत हँसि दौरि धुरघो बल भैया ।—नंद० प्र०, पृ० २८३ । (ख) खीले दग धुरि धुरि हँसि मुरि जात ।—नागरी (शब्द०) ।

धुरबिनी—वि०, संज्ञा पुं० [हि० धूर + बीनना] धूरे पर से दाना इत्यादि चुननेवाला । गली कूचों में से टूटी फूटी चीजों के टुकड़े आदि एकत्र करनेवाला ।

धुरबिनिया—संज्ञा स्त्री० [हि० धूर + बीनना] १. धूरे पर से दाना इत्यादि बीन बीनकर एकत्र करने का काम । २. गली कूचों में से टूटी फूटी चीजों के टुकड़े चुन चुनकर एकत्र करने का काम । उ०—राम गरीबिनिया हैं राज देत जन जानि । तुलसी मन परिहरत नहि धुरबिनिया की बानि ।—तुलसी प्र०, पृ० ८८ ।

धुरसाल^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुड़सार' । उ०—सुंदर घर ताजी बंधे तुरकिन की धुरसाल ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ७३७ ।

धुरहुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० धुर + हर (प्रत्य०)] १. जंगल में पशुओं के चलने से बना हुआ तंग रास्ते का सा निशान । २. वह तंग रास्ता जिसपर केवल एक ही मनुष्य चल सके । पगडंडी ।

धुराना—क्रि० प्र० [हि० धुरना] चारों ओर छा जाना । घर जाना ।

धुरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धुर धुर की आवाज । खरौटा [को०] ।

धुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूअर का मुँह या धूषन [को०] ।

धुरहरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुरहुरी' ।

धुरधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. धुर धुर की ध्वनि । २. धूकर या श्वान की आवाज । २. नीलर । यमकीट [को०] ।

धुरधरक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० धुरधुरिका] कल कल ध्वनि या गड़गड़ाहट की ध्वनि [को०] ।

धुर्मित—क्रि० वि० [सं० धूर्मित] धूमता हुआ । चक्कर खाता हुआ । उ०—धुनि उठि तेहि मारेहु हनुमंता । धुर्मित भूतल परघो तुरंता ।—तुलसी (शब्द०) ।

धुरीना—क्रि० प्र० [हि० धूर धनु०] दे० 'धुरीना' ।

धुरेवा—संज्ञा पुं० [देश०] जानवरों का एक रोग ।

विशेष—यह रोग एक पशु से उड़कर दूसरे में जा व्यापता है और कठिनाई से दूर होता है । इसकी उत्पत्ति एक प्रकार के जहर से होती है जो पशुओं के खरि में पैदा हो जाता है । इसमें पशुओं का गला सूज जाता है और ज्वर बड़े जोर से बढ़ता है ।

धुलंच—संज्ञा पुं० [सं० धुलञ्च] एक प्रकार का तृणधान्य । कसेई । गवेष्टुक [को०] ।

धुलधुलारव—संज्ञा पुं० [सं०] गुदर गूँ शब्द करनेवाला एक प्रकार का कबूतर [को०] ।

धुलना—क्रि० प्र० [सं० धूर्णन, प्रा० धुलन] १. पानी, दूध आदि पतली चीजों में खूब हिल मिल जाना । किसी द्रव पदार्थ में मिश्रित हो जाना । हल होना । जैसे,—पीनी को अभी हिलाओ जिसमें पानी में धुल जाय ।

संयो० क्रि०—जाना ।

यो०—धुलना मिलना ।

मुहा०—धुल धुलकर बातें करना=खूब मिल धुलकर बातें करना । अभिमत हृदय होकर बातें करना । बड़ी धनिष्ठता के साथ बातें करना । उ०—अबासी से ओर उनसे धुल धुल के बातें होने लगीं ।—किसाना०, भा० ३, पृ० २८ । धुल मिलकर=खूब मेलजोल के साथ । मजूर या श्रमियों धुलना=प्रेमपूर्वक भाँख से भाँख मिलना । कलम का धुल जाना=कलम का स्याही में रहते रहते नरम हो जाना जिससे वह खूब चले ।

२. जल आदि के संयोग से किसी पदार्थ के अणुओं का अलग अलग होना । द्रवित होना । गलना । ३. पककर पिलपिला होना । नरम होना । जैसे,—खूब धुले धुले आम लाना । ४. रोग आदि से शरीर का क्षीण होना । दुबल होना ।

मुहा०—धुला हुआ=बुझा । बुझा । धुल धुलकर काँटा होना=बहुत दुबला हो जाना । इतना दुबला हो जाना कि शरीर की हड्डियाँ दिखाई दें । धुल धुलकर मरना=बहुत दिनों तक कष्ट भोगकर मरना ।

५. दाँव का हाथ से निकल जाना या जाता रहना । (जुधारी) ।

६. (समय) बीतना । व्यतीत होना । गुजरना । जैसे,—जरा से काम में महीनों धुल गए ।

धुलवाना^१—क्रि० प्र० [हि० धुलाना का प्रे० रूप] १. गलवाना । द्रवित कराना । २. भाँख में सुरमा लगवाना ।

धुलवाना^२—क्रि० प्र० [हि० धुलाना का प्रे० रूप] किसी द्रव पदार्थ में मिश्रित कराना । हल कराना ।

धुलाना—क्रि० प्र० [हि० धुलना] १. गलाना । पिघलाना । द्रवित करना । २. शरीर दुबल करना । शरीर क्षीण करना ।

१. मुँह में रखकर धीरे धीरे लसाना । चुभाना । ४. पकाकर पिलपिला करना । गरमी या दाब पहुँचाकर नरम करना । ५. (सुरमा या काजल) लगाना । सारना । ६. (समय) बिताना । व्यतीत करना । गुजारना । जैसे,—इस सुनार को मत दो, यह बरसों घुसा देगा । ७. दाब पहुँचाकर या रगड़ के द्वारा एकदिल करना । जैसे,—पान घुसाना ।

घुसावट—संज्ञा स्त्री० [हि० घुसना] घुसने का भाव या क्रिया ।

घुसा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घुसा' । उ०—ज्यों सेमर सूखा साखि गुलाना । टोंट देत पुनि घुसा उड़ाना ।—घट०, पृ० ३०२ ।

घुषित—वि० [सं०] जिसकी घोषणा की गई हो । घोषित । ध्वनित । कथित [को०] ।

घुष्ट—वि० [सं०] दे० 'घुषित' ।

घुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] गाड़ी । शकट [को०] ।

घुसड़ना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'घुसना' ।

घुसना—क्रि० प्र० [सं०] कुञ्ज (= आश्रित्य करना, घेरना) अथवा अर्थात् अथवा अयुक्तमूलक देशः] १. कुञ्ज वेगपूर्वक अथवा दूसरे की इच्छा का विरोध करते हुए अंदर जाना । अंदर पैठना । प्रवेश करना ।

संयो० क्रि०—घाना ।—जाना ।—पड़ना ।—बैठना ।

घौ०—घुसपंठ । घुसपैठिया ।

मुहा०—घुसकर बैठना = (१) छिप रहना । सामने न आना ।

(२) पास पास बैठना । सटकर बैठना ।

२. बँधना । चुभना । गड़ना । ३. किसी काम में दखल देना । अनधिकार चर्चा या कार्य करना । जैसे,—तुम क्यों हर एक काम में घुस पड़ते हो । ४. अनोनिवेश करना । किसी विषय की ओर खूब ध्यान लगाना । ५. दूर हो जाना । जाता रहना । जैसे,—एक प्यपड़ लगावेंगे; सारी बदमाशी घुस जायगी ।

घुसपैठ—संज्ञा स्त्री० [हि० घुसना + पैठना] १. पहुँच । गति । प्रवेश । रूसई २. बखल । हस्तक्षेप ।

घुसपैठिया—संज्ञा पुं० [हि० घुसपैठ + इया (प्रत्य०)] वह व्यक्ति जो बिना नागरिकता प्राप्त किए बाहु राष्ट्र में चोरी छिपे रहता हो और वहाँ की सबर अपने राज्य को देता हो । भेदिया । (अ० ईन्द्रधर) :

घुसवाना—क्रि० सं० [हि० घुसना का प्रे० रूप] घुसाने का काम कराना ।

घुसाना—क्रि० सं० [हि० घुसना] १. भीतर घुसेड़ना । अंदर पैठाना ।

२. चुभाना । बँसाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

घुसख—संज्ञा पुं० [सं०] कुंज । केशर । जाफरान [को०] ।

घुसेड़ना—क्रि० सं० [हि० घुस + ण्ड (स्वा० प्रत्य०)] १. घुसाना । पैठाना । २. बँसाना । चुभाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

घुँघची—संज्ञा स्त्री० [सं० घुञ्जा] दे० 'घुँघची' ।

घूँघट—संज्ञा पुं० [सं० घुष्ट] १. लियों की साड़ी या चादर के किनारे का वह भाग जिसे वे सज्जावका या परदे के लिये सिर पर से नीचे बढ़ाकर मुँह पर डाले रहती हैं । बल का वह भाग जिससे कुलवधू का मुँह ढँका रहता है । उ०—

भावत ना छिन गीन को बँडिबो घूँघट कौन को साज कहाँ की ।—ठाकुर०, पृ० ६ ।

क्रि० प्र०—खोलना ।—घालना ।—ढालना ।

मुहा०—घूँघट उठाना = (१) घूँघट को ऊपर की ओर खसकाना जिससे मुँह खुल जाय । (२) परदा दूर करना । (३) नई आई हुई वधू का सबके सामने मुँह खोलना । घूँघट उलटना = दे० 'घूँघट उठाना' । घूँघट करना = (१) घूँघट ढालना । (२) लज्जा करना । शर्म करना । (३) घोड़े का पीछे की ओर गरदन मोड़ना । (सवार) । घूँघट काढ़ना = घूँघट ढालना । मुँह को घूँघट से ढकना । घूँघट खाना = लड़ाई के मैदान से मुँह मोड़ना । सेना का युद्धस्थल से पीछे की ओर भागना । लड़ाई में सेना का पीछे हिलाना । घूँघट निकालना = दे० 'घूँघट काढ़ना' । घूँघट मारना = दे० 'घूँघट काढ़ना' ।

२. परदे की वह दीवार जो बाहरी दरवाजे के सामने इसलिये रहती है, जिसमें चौक या आँगन बाहर से दिखाई न पड़े । गुनामगदिस । छोट । ३. घोड़े की आँखों पर की पट्टी । बंधेरी ।

घूँघर—संज्ञा पुं० [हि० घुमरना] बालों में पड़े हुए छल्ले या मरोड़ । उ०—कुंडल मंडित गंड सुदेस । मनिमय मुकट सु घूँघर केस ।—नंद शं०, पृ० २६७ ।

घौ०—घूँघरवाले ।

घूँघरवारे—वि० [हि०] दे० 'घूँघरवाले' । उ०—मनिगन कँठला कंठ मडि केहरि नख सोहत । घूँघरवारे बिहुर रचिर बानी मन मोहत ।—पृ० रा०, १।७।७ ।

घूँघरवाले—वि० [हि० घूँघर] टेढ़े छल्लेदार या कुंचित (केश) । अकरीले (बाल) ।

घूँघरा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बाजा ।

घूँघरी—संज्ञा स्त्री० [अनु० घुन + घुर] नूपुर । नेउर । घुंघरू । उ०—(क) पद पथ की शुभ घूँघरी, मणि नील हाटक सों जरी ।—केशव (शब्द०) । (ख) बिछिया अनौट बाँके घूँघरी, जराय जरी, जेहरि छबीली सुद्र घंटिका की जालिका ।—केशव (शब्द०) ।

घूँघरू—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घुंघरू' । उ०—गोविंददास घूँघरू बाधि के श्री नवनीत प्रिय जी आगे नृत्य करें ।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० २८६ ।

घूँघुट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घूँघट' । उ०—पेखि परोसी काँ पिया घूँघुट में मुसिनयाह ।—मति० प्र०, पृ० ४४४ ।

घूँचा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घूँसा' ।

घूँट—संज्ञा पुं० [अनु० घुट घुट—गले के नीचे पानी आदि उतरने का शब्द] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ का उतना अंश जितना एक बार में गले के नीचे उतारा जाय । घुसकी । जैसे,—ऊपर से हो घूँट पानी पी लो ।

मुहा०—घूँट फेंकना = किसी पीने की वस्तु का बहुत थोड़ा सा अंश पीने के पहले पृथ्वी पर गिराना, जिसमें नजर न लगे या किसी देवी देवता का अंश निकल जाय । घूँट लेना = घूँट करके पीना । बहुत थोड़ा थोड़ा करके पीना । जैसे,—

घूँट मत लो, एक साँस में सब दबा पी जाओ। घूँट घूँटकर मारना = तंग करके मारना। दुःख पहुँचा पहुँचाकर मारना।

घूँट^२—संज्ञा पुं० [सं० घुट] पहाड़ी टट्टुओं की एक जाति जिसे गूँठ या गुंठा भी कहते हैं।

घूँट^३—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार का पेड़ या झाड़ जो बंगाल को छोड़कर भारतवर्ष के बहुत से स्थानों में होता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ चार पाँच अंगुल लंबी, गहरे हरे रंग की और नीचे की ओर कुछ रोएँदार होती हैं। यह बैसाख जेठ में फूलती है और जाड़े में फलती है। इसके फल खाए नहीं जाते, पर उनकी गुठलियाँ खाने के काम में आती हैं। पत्तियाँ चारे के काम में आती हैं। छाल और सूखे फल चमड़ा रंगने के काम में आते हैं।

घूँटक—संज्ञा पुं० [हि० घूँट + एक] एक घूँट। उ०—तुलसी बातक माँगनी एक सबै धन दानि। देत जो भू भाजन भरत लेत जो घूँटक पानि।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०६।

घूँटना^१—क्रि० सं० [हि० घूँट] पानी या और किसी द्रव पदार्थ को गले के नीचे उतारना। पीना। उ०—तजि और उपाय अनेक सबी भव तो हमको बिष घूँटनो है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३४।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।

घूँटना^२(५)—क्रि० सं० [हि०] दे० 'घोंटना'। उ०—पवन कसो बहुषो सबनु ताहीं कह्यो। कंठ मानो किहूँ भान घूँट्यो।—सुजान०, पृ० १६।

घूँटा^१—संज्ञा सं० [सं० घुटक, हि० घुटना] टाँग और जाँघ के बीच का जोड़। घुटना। उ०—मुहु पक्षारि मुहहृष भिजे सीस सजल कर छावाह। मोर उचै घूँटेनु तँ नारि सरोवर न्हाह।—बिहारी (शब्द०)।

घूँटी—संज्ञा स्त्री० [हि० घूँट] एक शीघ्र जो स्वास्थ्यकर और पाचक होने के कारण छोटे बच्चों को नित्य पिलाई जाती है।

मुहा०—जनम घूँटी=वह घूँटी जो बच्चे को उसका पेट साफ करने के लिये जन्म के दूसरे ही दिन दी जाती है। जबतक यह घूँटी पिलाकर बच्चे का पेट साफ नहीं कर लिया जाता, तबतक उसे माता का दूध नहीं पिलाया जाता।

घूँठन(५)—क्रि० वि० [हि० घुटना] घुटने के बल। उ०—रज रंजित अंजित नयन घूँठन डोलत भूमि। लेत बलैया मात लसि भरि कपोल मुख चूमि।—पृ० रा०, १। ७१८।

घूँस—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घूस'। उ०—जाकी भास रही मंझिर में होकर घूँस बरी सो घर में।—सहजो०, पृ० २४।

घूँसा—संज्ञा पुं० [हि० घिस्सा या अनु०] १. बेंबी हुई मुट्ठी जो मारने के लिये उठाई जाय। मुक्का। डक। धमाका। जैसे—घूँसा तानना। २. बेंबी हुई मुट्ठी का प्रहार। उ०—बिटपों से भट मार, शत्रु का तोड़ दिया घूँसों से बल।—साकेत, पृ० ३८६।

क्रि० प्र०—खाना।—बलाना।—झड़ना।—तानना।—मारना।—लगाना।

यौ०—घूँसेबाज। घूँसेबाजी=घूँसों की लड़ाई। मुष्टियुद्ध। (धं० वाक्चिन्म)।

मुहा०—घूँसों का क्या उधार? = मार का बदला मार से लेने में क्या देर! मारपीट का बदला तुरंत ले।

घूँसेबाज—वि० [हि० घूँसा+बाज] १. घूँसा मारनेवाला। २. घूँसेबाजी का खेल खेलनेवाला। (धं० वाक्चिन्म)।

घूँसा—संज्ञा पुं० [दे०] १. काँस, मूँज या सरकंडे आदि का रुई की तरह का फूँव जो लंबे सीकों में लगता है। २. पानी के किनारे मिट्टी में रहनेवाला एक कीड़ा जिसे बुलबुल आदि पक्षी खाते हैं। रेवा। ३. दरवाजे में ऊपर या नीचे का वह छेद जिसमें किवाड़े की चूल घटकाई जाती है।

घूँक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री घुकी] घुघू। उल्लू पक्षी। कव्या। उ०—कोक कोकनद सोकहत दुख कुबलय कुलटानि। तारा शोषधि दीप ससि घूँक चोर तम हानि।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १३५।

घूँकनाविनो—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा [स्त्री]।

घूँका—संज्ञा पुं० [हि० घूँसा] बाँस, बेंत, रहटे या मूँज इत्यादि का बना हुआ तंग मुँह का बर्तन या डलिया। घुक्का।

घूँकारि—संज्ञा पुं० [सं०] उल्लू का शत्रु कोष्ठा [स्त्री]।

घूँगासा—संज्ञा पुं० [दे०] ऊँचा बुज। गरमज।

घूँघ^१—संज्ञा स्त्री० [हि० घोघो या का० लोह] लोहे या पीतल की बनी टोपी जो सड़ाई में सिर को चोट से बचाने के लिये पहनी जाती है। उ०—अरुन रंग भ्रानन छवि सीने। माये घूँघ लोह की बीने।—लाल कवि (शब्द०)।

घूँघ^२—संज्ञा पुं० [सं० घूँक] उल्लू।

घूँघर(५)—संज्ञा पुं० [हि० घूँघ + हि० र (प्रत्यय)] दे० 'घुघूर'। उ०—घूँघर जुल्लू बैठ एक ठाऊँ।—घट०, पृ० ३४१।

घूँघरा(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घुघूर'। उ०—सुरति निरति का पहर घूँघरा साहिब में मिलि जाऊँ।—राम० बर्म०, पृ० ४४।

घूँघसा—संज्ञा पुं० [दे०] किले के भीतर जाने का मार्ग (राज०)।

घूँघो—संज्ञा स्त्री० [दे०] १. धैली। २. जेब। धीसा। ३. घुघी। पंहुक। पेड़ुकी। फास्ता।

घूँघुआ(५)—संज्ञा पुं० [दे०] दे० 'घुघूर'। उ०—बोलि घूँघुआ साव दीविय महमती सुर उपकस्थी।—पृ० रा०, १५। ६।

घूँघू—संज्ञा पुं० [सं० घूँक, हि० घुघू] दे० 'घुघूर'।

घूँटना^१—क्रि० सं० [हि० घुटना] साँस रोकना या दबाना। जैसे,—गला घूटना।

घूँठना^१—क्रि० वि० [दे०] दे० 'घूँठन'।

घूँछा^१—संज्ञा पुं० [हि० घूँछा] दे० 'घूँछा'। उ०—दिन बारह वर्षों में घूँछे के भी सुने गए हैं फिरते।—साकेत, पृ० ३०७।

घूँनसा—संज्ञा स्त्री० [दे०] ब्याह की पगड़ी में लटकनेवाला झण्डा।

घूँना^१—वि० [दे०] १. चतुर। अनुभवी। खुरीट। २. दे० 'घुन्ना'।

घूँम—संज्ञा स्त्री० [हि० घूमना] १. घूमने का भाव। घुमाव। फेर। चक्कर। २. वह स्थान जहाँ से किसी ओर मुड़ना पड़े। मोड़। २. निद्रा। उ०—प्रिय फिरो, फिरो हा! फिरो फिरो! न इस मोह की घूम से धिरो।—साकेत, पृ० ३१२।

धूमचमारा—वि० [हि० घूमना] १. बड़े धेरे का। धेरदार। जैसे,—

भूमधुमरा नहूँगा । २. उनीदा । ३. पुखित । मत्त । उ०—
(क) रस के माते भूमधुमारे लसचोहि टग हैं कजरारे ।—
मज० मर्याद, पृ० २२ । (ख) कृष्ण रसासव पान भलस कछु
भूमधुमारे ।—नंद०, प्र०, पृ० ३ ।

भूमधुमाव—वि० [हि० भूमता] चक्करदार ।

भूमधुमीया—वि० [हि० भूम+धुमाव] चक्क । टेढ़ा । चक्करदार ।
उ०—सबक भूमधुमीया थी ।—किन्नर०, पृ० ४८ ।

भूमना—कि० प्र० [सं० भूयन्] १. चारों ओर फिरना । चक्कर
खाना । एक ही धुरी पर चारों ओर भ्रमण करना । २. सैर
करना । टहलना । ३. देशांतर में भ्रमण करना । सफर
करना । ४. एक वृत्त की परिधि में गमन करना । काबा
काटना । मँडराना । ५. किसी ओर को मुड़ना । जैसे,—
वहाँ से वह रास्ता पश्चिम को घूम गया है । ६. वापस
आना या जाना । लौटना ।

संयो० क्रि०—खाना ।—पढ़ना ।

मुहा०—भूम जाना = मायाब हो जाना । चंपत होना । रफूचकर
होना । भूम पढ़ना = (१) सहसा कुछ हो जाना । बिगड़
जठना । जैसे,— मैं तो उन्हें सबझाने गया था, वे उसटे मेरे ही
ऊपर भूम पड़े । (२) चिपरीत हो जाना । अपने अनुकूल
न रहना ।

+ ७. उमलता होना । मतवाला होना । उ०—बिहोसि बुलाय
बिलोकि उत शीड़ तिया रस घूमि । घुलकि पसीजति पूत कों
पिय भूमो मुख घूमि ।—बिहारी (शब्द०) ।

भूमनि०—संज्ञा स्त्री० [हि० भूमना] घूमने का भाव या स्थिति ।
उ०—कच लट गहि बदनन की भूमनि । नख नाराचन पायल
भूमनि ।—नंद०, प्र०, पृ० ३२२ ।

भूमनी—संज्ञा स्त्री० [हि० भूमना] सिर का चक्कर । घुमटा ।

भूमर०, भूमरा०—वि० [हि० भूमना] १. मत्त । मतवाला ।
उ०—रूप मतवारी घन धानेद सुजाने प्यारी भूमरे कटाखि
भूम करे कोन पै धिर ।—घनानंद, पृ० ४१ । २. हिलने
वाला । भूमनेवाला । उ०—बहुरि अनेक घगाध जु सरबर ।
रस भूमरे भूमरे तरबर ।—नंद०, प्र०, पृ० २८५ ।

भूर—संज्ञा पुं० [सं० भूट, हि० भूरा] १. वह जगह जहाँ कड़ा करकट
फेंका जाय । करकट कड़ा, कतवार झाड़ि फेंकने या एकत्र करने
का स्थान । २. कुड़े का ढेर । ३. किसी पोली चीज में उसको
भारी करने के लिये भरा हुआ बानू और सुहागा आदि ।
—(सोनार) ।

भूरघार—संज्ञा स्त्री० [हि० भूरता] दे० भूराघारी ।

भूरन०—वि० [सं० भूरण] घूर्णित । मत्त । उ०—कृष्ण रसासव
भनिस पान तें भूरन भूरनकाय खरे ।—घनानंद, पृ० ३६२ ।

भूरनि०—संज्ञा स्त्री० [सं० भूरण] घूरना । देखने की क्रिया । उ०—
चुपनि चुडावनि चाटनि भूमनि । नहि कहि परति प्रेम की
भूरनि ।—नंद०, प्र०, पृ० २६६ ।

भूरना—कि० प्र० [सं० भूरण (= इधर उधर फिराना)] १. बार बार
प्रांख गड़ाकर बुरे भाव से देखना । बुरी नीयत से एक टक
देखना । जैसे,—जी घूरना । २. क्रोधपूर्वक एकटक देखना ।

कुपित दष्टि से ताकना । प्रांख निकालना । ३. घूमना ।
टहलना । (बिहार) ।

भूरा—संज्ञा पुं० [सं० भूट, हि० भूरा] १. कुड़े करकट का ढेर । २.
वह स्थान जहाँ कड़ा करकट फेंका जाता हो । कतवारखाना ।
उ०—मल से उपजा मल लिपटा मतिमलीन तू भूरा है ।—
भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ५५५ ।

भूराघारी—संज्ञा स्त्री० [हि० भूरता + घारता (अनु०)] घूरने की
क्रिया । उ०—तुम अपने मुल्क की तरफ से लड़ने आए हो या
भूराघारी करने आए हो ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ११३ ।

भूर्या—संज्ञा पुं० [सं०] घूमना । फिरना । चक्कर खाना । हिलना
हुलना [को०] ।

भूर्य—वि० [सं०] १. घूमता हुआ । चक्कर खाता हुआ । २. घ्रात ।
मत्त [को०] ।

यौ०—भूर्यवास = चक्करदार हवा । बवंडर । भूर्यवर्त = चक्कर
उ०—शत भूर्यवर्त तरंग मंग उठते पहाड़ ।—अनामिका,
पृ० १५३ ।

भूर्यान—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० भूर्यना] १. घूमना । चक्कर खाना ।
२. भ्रमण । घुमाना [को०] ।

भूर्यि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'भूर्यन' [को०] ।

भूर्यित—वि० [सं०] १. घूमता हुआ । चक्कराता हुआ । २. भ्रमित ।
उ०—कई युगों से संतत, बिचलित, मेरा नैशाकास ।
दिशाभूल, उद्विग्न, तमोमय भूर्यित, व्यथित, निरास ।—
अपलक, पृ० ३८ ।

यौ०—भूर्यित जल = भावतं । भँवर । भूर्यित वायु = बवंडर ।

भूर्य०—वि० [सं० भूर्य] दे० 'भूर्य' । उ०—बावनी मल घूर्ने कोचन
बिहरत बन सधुपाए ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० २५७ ।

भूमिल—वि० [सं० भूर्य, हि० भूम + इल (प्रत्य०)] घूमता हुआ ।
घूमित । उ०—भीड़ से शतमोह भूमिल ।—अर्चना, पृ० ७३ ।

भूस—संज्ञा स्त्री० [सं० गुहाशय (गुहा + शय) (= गूहा)] गूहे के कमरे
का एक बड़ा जंतु जो प्रायः पुष्पी के अंदर बड़े बड़े बिल
खोदकर रहता है । एक प्रकार का बड़ा गूहा । घूस । घुँस ।

भूस—संज्ञा स्त्री० [सं० गुहाशय (गुहा + शय) (= गुहा अतिशय
से दिया हुआ धन)] वह द्रव्य जो किसी को अपने अनुकूल कोई
कार्य कराने के लिये अनुचित रूप से दिया जाय । रिश्वत ।
उत्कोच । लाँच । जैसे—वह भूस देकर अपना काम निकासता
है । उ०—कहूँ करनेस अब भूस खात साज नहीं रोजा धी
निमाज अंत काम नहीं आवेगे ।—मकबरी०, पृ० ३३ ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।—सेना ।

यौ०—भूसखोर । भूसघास । भूस पचकड़ = रिश्वत ।

भूसखोर—वि० [हि० भूस + खोर] भूस लेनेवाला । रिश्वती ।

भूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० भूषित] १. धिन । नफरत । २.
नीयत रस का स्थायी भाव । ३. दया । कल्याण । तरस ।

भूषालु—वि० [सं०] दयालु । कल्याणवाला [को०] ।

भूषावास—संज्ञा पुं० [सं०] कुष्माण्ड । कोहड़ा ।

भूषास्पव—वि० [सं०] धृष्ट करने योग्य [को०] ।

घृणि^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश की किरण । २. गर्मी । धूप । ज्वाला । ३. तरंग । लहर । ४. जल । ५. क्रोध । कोप । ६. सूर्य [को०] ।

घृणि^२—वि० [सं०] १. बमकीला । २. अप्रिय [को०] ।

घृणिनिधि^१—संज्ञा पुं० [सं०] तरणि । सूर्य [को०] ।

घृणिनिधि^२—संज्ञा स्त्री० गंगा नदी [को०] ।

घृणित—वि० [सं०] १. घृणा करने योग्य । २. जिसे देखकर या सुनकर घृणा पैदा हो । ३. तिरस्कृत । निन्दित ।

घृणी—वि० [सं० घृणिन्] १. घृणा करनेवाला । २. कपालु । दयालु । ३. प्रकाशमान् । दीप्त [को०] ।

घृण्य—वि० [सं०] दे० 'घृणित' ।

घृत^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. घी । तपाया हुआ मक्खन । २. मक्खन [को०] । ३. जल । ४. तेजस । शक्ति [को०] ।

यी०—घृतकरंज, घृतपर्ण, घृतपूर्णक = एक प्रकार का करंज वृक्ष ।

घृतकेश, घृतदीधिति, घृतप्रलोक, घृतप्रयस, घृतप्रसत्त = अग्नि ।

घृत^२—वि० [सं०] १. आर्द्र किया हुआ । सिंचित । तर । २. घोतित । आलोकित [को०] ।

घृतकुमारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धीकुवार । गुप्तरपाठा । गोंडपट्टा ।

घृतकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घी की कृत्रिम छोटी नदी । २. घी की धारा [को०] ।

घृतकेरा—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । वह जिसको दृष्टि स्निग्ध और सहानुभूतियुक्त हो [को०] ।

घृतधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घी की धारा । २. पश्चिम देश की एक नदी । ३. पुराणानुसार कुश द्वीप की एक नदी ।

घृतप—संज्ञा पुं० [सं०] १. आश्रय नाम के पितृगण । २. वह जो घृत पीए । घी पीनेवाला [को०] ।

घृतपूर—संज्ञा पुं० [सं०] धेवर नामक पकवान । वि० दे० 'धेवर' ।

घृतप्रमेह—संज्ञा पुं० [सं०] प्रमेह रोग का एक प्रकार जिसमें मूत्र घी के समान गाढा और चिकना होता है ।

घृतमंड—संज्ञा पुं० [सं० घृत + मण्ड] घी का मैल जो मक्खन तपाने से निकलता है [को०] ।

घृतमंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० घृतमण्ड] काकमाची । मकोय [को०] ।

घृतयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] घी की आहुति देते समय पढ़ा जानेवाला मंत्र [को०] ।

घृतयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।

घृतलेखनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काठ की बनी हुई घी निकालने की कलछी [को०] ।

घृतक्षत्—वि० [सं०] प्रतिशय चिकण । बहुत चिकना [को०] ।

घृतक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] धेवर नामक मिठाई [को०] ।

घृतहेतु—संज्ञा पुं० [सं०] घी का कारण या मूल । मक्खन [को०] ।

घृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकमाची । मकोय [को०] ।

घृताक्त—वि० [सं०] घी से तर । घी चुपड़ा हुआ [को०] ।

घृताक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्वर्ग की एक अप्सरा । २. वह कछुली जिससे यज्ञों में घी अग्नि में डाला जाता है । श्रुवा । ३. कुशनाम नामक एक प्राचीन राजा की रानी का नाम । ४. गायत्रीस्वरूपा देवी [को०] ।

यी०—घृताक्षीगर्भसंभवा = बड़ी हलायची ।

घृताक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. घृतयुक्त अन्न । २. प्रज्वलित अग्नि [को०] ।

घृताक्षि—संज्ञा पुं० [सं०] प्रज्वलित अग्नि [को०] ।

घृताहवन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०] ।

घृताहुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] हवन के समय अग्नि में घी डालने की क्रिया । घी की आहुति ।

घृताह—संज्ञा पुं० [सं०] सरल नाम का एक वृक्ष [को०] ।

घृतो—वि० [सं० घृतिन्] घी से युक्त । घी से तर । घृताक्त [को०] ।

घृतेली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा । घी का कीड़ा । तेलपायिक । तेलबट्टा [को०] ।

घृतोदक—संज्ञा पुं० [सं० घृतोदक] घी रखने का कुप्पा [को०] ।

घृतोद—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणों में वर्णित सात महासागरों में से एक । घृतसमुद्र ।

घृतो—वि० [सं० घृतिन्] दयालु ।

घृष्ट—वि० [सं०] घिसा या रगड़ा हुआ [को०] ।

घृष्टि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वर्षण । रगड़ । २. विष्णुकांता । अपराजिता । ३. होड़ । स्पर्धा [को०] ।

घृष्टि^२—संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा स्त्री० घृष्टी] शूकर । सूअर [को०] ।

घृष्टिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृश्निपर्णी । पिठमन [को०] ।

घृष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] १. शूकर । सूअर । २. वर्षण [को०] ।

घँघा—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का भोजन जो चने की बहरी को चावलों में मिलाकर पकाने से बनता है । २. गले का एक रोग । वेधा ।

घँघा—संज्ञा पुं० [देश०] ३. 'वेधा' ।

घँटी—संज्ञा पुं० [हि० घाँटी] गला । गरदन ।

घँटा—संज्ञा पुं० [अनु० घँघे] [स्त्री० घँटी] सूअर का बच्चा ।

घँटी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] चने की फली जिसके अंदर बीज रूप से चना होता है । २. चने की फली के आकार की कोई वस्तु । ३. एक पसी ।

घँटी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० घाँटी वा सं० कृकाटिका] गले और कंधे का जोड़ ।

घँटुला—संज्ञा पुं० [हि० घँटा] [स्त्री० घँटुलिया] सूअर का छोटा बच्चा ।

घँड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० घी + हंडी] मिट्टी का पात्र जिसमें घी रखा जाता है । घिवहंड ।

वेधा—संज्ञा पुं० [देश०] १. गले की नली जिससे भोजन या पानी पेट में जाता है । २. गले का एक रोग जिसमें गले में सूजन होकर बतोड़ा सा निकल आता है ।

विशेष—यह रोग गोरखपुर, बस्ती आदि जिलों के निवासियों को बहुधा हुआ करता है।

पेड़ोची—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'घनोंची'।

पेसला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का महा जूता जिसका पंजा चपटा और मुड़ा हुआ होता है। इसे महाराष्ट्र या दक्षिणी अधिक पहनते हैं।

पेसला—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'पेसल'।

पेसोची—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घनोंची'।

पेपना—क्रि० सं० [हि० घोपना] १ हाथ पैर से रोंदकर मिलाना। एक में लयपथ करना। २. लुरचना। छीलना। ३. स्त्री-प्रसंग करना।—(बाजारू)।

पेर—संज्ञा पुं० [हि० घेरना] १. चारों ओर का फैलाव। घेरा। परिधि। २. घेरने की क्रिया या भाव।

पौ—घेरघार। घेरघार।

घेरघार—संज्ञा स्त्री० [हि० घेरना] १. चारों ओर से घेरने या छा जाने की क्रिया। जैसे,—बादलों की घेरघार देखने से जान पड़ता है कि पानी बरसेगा। उ०—सब ओर सन्नाटा इस पर बादलों की घेरघार, पसारने पर हाथ भी नहीं सूझता।—टेक, पृ० ३२। २. चारों ओर का फैलाव। विस्तार। ३. किसी कार्य के लिये किसी के पास बार बार उपस्थित होने का कार्य। किसी के पास जाकर बार बार अनुरोध या विनय करने का कार्य। लुप्तमव। विनती। जैसे,—बिना घेरघार किए आवश्यक जगह नहीं मिलती।

घेरघार—वि० [हि० घेर + घा० घार] बड़े घेरवाना। बड़े घेरे का। चौड़ा। जैसे,—घेरघार पायजामा।

घेरना—क्रि० सं० [सं० ग्रहण] १. चारों ओर से हो जाना। चारों ओर से छेकना। सब ओर से घाबड़ करके मंडल या सीमा के अंदर लाना। बाँधना। जैसे,—(क) इस स्थान को टट्टियों से घेर दो। (ख) दुर्ग को खाई चारों ओर से घेरे है। (ग) इतना अंश लकीर से घेर दो। २. चारों ओर से रोकना। आर्कात करना। छेकना। घसना। उ०—(क) घरम सनेह उभय मति घेरी। मह गति साँप छुछुंदरि केरी।—मानस, २।५५। (ख) गैयन घेरि सखा सब साए।—मूर (शब्द०)। (ग) बाल बिह्वल वियोग की घेरी।—पद्माकर (शब्द०)। ३. गाय आदि चौपायों की चरवाई करना। चराने का काम अपने ऊपर लेना। चराना। ४. किसी स्थान को अपने अधिकार में रखना। स्थान छेकना या फँसाए रखना। ५. सेना का शत्रु के किसी नगर या दुर्ग के चारों ओर आक्रमण के लिये स्थित होना। चारों ओर से अधिकार करने के लिये छेकना। ६. किसी कार्य के लिये किसी के पास बार बार जाकर अनुरोध या विनय करना। लुप्तमद करना। जैसे,—हमको क्यों घेरते हो; हम इस मामले में कुछ भी नहीं कर सकते।

पौ—घेरना चराना।

घेरा—संज्ञा पुं० [हि० घेरना] १. चारों ओर की सीमा। किसी तल

के सब ओर के बाहरी किनारे। संबाई चौड़ाई आदि का सारा विस्तार या फैलाव। परिधि। जैसे,—(क) वह बगीचा दो मील के घेरे में है। (ख) उस घेरे के अंदर मत जाओ। (ग) इस ग्रंथरखे का घेरा बहुत कम है। २. चारों ओर की सीमा की माप का जोड़। परिधि का मान। जैसे,—इस बगीचे का घेरा दो मील है। ३. वह वस्तु जो किसी स्थान के चारों ओर हो (जैसे दीवार आदि)। वह जो किसी जगह को चारों ओर से घेरे हो। ४. घिरा हुआ। स्थान। हाता। मंडल। जैसे,—उस घेरे के अंदर मत जाना। ५. किसी लंबे और घन पदार्थ की चौड़ाई और मोटाई का विस्तार। पेटा। जैसे,—इस धरन का घेरा ५० इंच है। ६. सेना का किसी दुर्ग या गढ़ को चारों ओर से छेकने का काम। चारों ओर से आक्रमण। मुहासरा।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।

घेराई—संज्ञा स्त्री० [हि० √घेर + घाई (प्रत्य०)] दे० 'घिराई'।

घेराबंदी—संज्ञा स्त्री० [हि० घेरा + फा बंदी] किसी के चारों ओर घेरा डालने की स्थिति या भाव।

घेराव—संज्ञा पुं० [हि० घेर + घाव (प्रत्य०)] दे० 'घिराव'।

घेरुआ—संज्ञा पुं० [हि० घेरना] वह छोटा गड्ढा जो नाली आदि में पानी रोकने के लिये बनाया जाता है। किर्री।

घेरेदार—वि० [हि०] चारों ओर से घिरा हुआ। घेरदार। उ०—इनके समाज में परधर के घेरेदार कुछ मकान भी संभवतः बनाए जाते थे।—प्रा० भा० प०, पृ० ६६।

घेलुआ—संज्ञा पुं० [हि० घाल] दे० 'घेलौना'।

घेलौना—संज्ञा पुं० [हि० घाल] थोड़े मूल्य की वस्तुओं की बिक्री में उतनी वस्तु जिनकी सोदे के ऊपर भी जाती है। वह अधिक वस्तु जो ग्राहक को उचित तोल के प्रतिरिक्त दी जाय। घाल। घलुआ।

घेवर—संज्ञा पुं० [सं० घृतपूर, या घृतवर, प्रा० घयवर या हि०, घी+पूर] एक प्रकार की मिठाई जो पतले घुले हुए मैदे, घी और चीनी से बनाई जाती है और बड़ी टिकिया या खजले के आकार की और सूरामदार होती है। उ०—(क) सु ते बर घेवर पैसल लागि। लखै चख फेरि गई उर आगि।—पृ० रा०, ६३।७४। (ख) घेवर अति घिरत चमोरे। सै खाइ सरस बोरे।—मूर०, १०।१६३।

घेवरना(पु)—क्रि० सं० [सं० घृतवर] लगाना। पोतना। लेप करना। उ०—(क) मंदुर सीस चढ़ाएँ चंदन घेवरें देह।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ४६४। (ख) हिमा देखि सो चंदन घेवरा मिलि कै लिखा बिछोव।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५५।

घेसी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का देवदार जो हिमालय में होता है। इसकी लकड़ी भूरे रंग की होती है। बरबर।

घेंचना(पु)—क्रि० सं० [सं० कर्षण, प्रा० खंचण] दे० 'घींचना'। उ०—उनहूँ के घेंच मारि जम बाना।—द० सागर, पृ० ४७।

घेंटा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घेंटुना'।

घँसाहर^५—संज्ञा स्त्री० [देश० ?] फीज । सेना । लसकर ।—(हि०) ।

घैया^१—संज्ञा पुं० [हिं० घी या सं० घात घबवा देश०] १. गाय के बदन से निकली हुई दूध की धार जो मुँह लगाकर पी जाय । उ०—
भाई छाक धवार भई हैं नैसुक घैया पिएउ सबेरे ।—सूर०
१०।४६३ । २. ताजे घोर बिना मये हुए दूध के ऊपर
उतराते हुए मक्खन को काछकर इकट्ठा करने की क्रिया ।
उ०—(क) कजरी घोरी सेंदुरी घुमरी मेरी गैया । दुहि ल्याऊँ
मैं तुरत ही तू करि दे घैया ।—सूर०, १०।७२५ । २. किसी
पेड़ या लकड़ी आदि को काटने प्रयत्न उसमें से रस आदि
निकालने के लिये शल्य से पहुँचाया हुआ आघात ।

घैया^२^५—संज्ञा स्त्री० [हिं० घाई या घा] घोर । तरफ । दिशा ।
उ०—सोहर घोर मनोहर बोहर माचि रह्यौ चहुँ घैया ।—
रघुराज (शब्द०) ।

घैरा^५—संज्ञा पुं० [देश०] १. विदामय चर्चा । बदनामी । अपयश ।
(गुप्त) उपहास । उ०—बलत घैर पर पर तऊ घरी न पर
ठहराइ ।—बिहारी (शब्द०) । २. चुगली । गुप्त शिकायत ।
उ०—तोहि न रूसनो योग बलाय ल्यो घैर किये मत काहू के
लागहि ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

घैरो^१—वि० [हिं० घैर] बदनामी करनेवाला । उ०—है री बहु
बैरी घैरी उचरयो विगोवनि पै ओछो जरि गयो गोवै महा
भेद बात को ।—चतानंद, पृ० ६२ ।

घैरा^५, घैरो^५—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घैर' ।

घैला^१—संज्ञा सं० [सं० घट] [स्त्री० घल्पा० घंली] घड़ा । कलसा ।
गगरा ।

घैह्ला^१—वि० [हिं० घाब, घायल या घात] जिसको घाब लगा हो ।
जहमी । घायल ।

घैह्ला^१—वि० [हिं० घाब] घायल । जहमी । चुटीला ।

घोंघ—संज्ञा पुं० [सं० घोड़घ] घोघ का अंतर या अवकाश (स्त्री०) ।

घोंटा, घोंटी—संज्ञा स्त्री० [सं० घोएटा, घोएटी] १. उन्नाव का बूत ।
२. कर्कश । बदरी वृक्ष या फल । ३. सुपारी का वृक्ष (स्त्री०) ।

घोंगा^५—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घोंघा' । उ०—हमरे राम नाम
बस्तू है खलक लेन चहे घोंगा ।—गुलाल, पृ० २७ ।

घोंघा—संज्ञा स्त्री [देश०] एक प्रकार का पक्षी ।

घोंघची^५—संज्ञा स्त्री० [सं० गुच्छा या देश०] दे० 'घुँघची' ।

घोंघा^१—संज्ञा पुं० [अनुकरणरूपक देश०] [स्त्री० घोंघी] १. शंख की
तरह का एक कीड़ा जो प्रायः नदियों, तालाबों तथा अन्य
जलाशयों में पाया जाता है ।

विशेष—इसकी बनावट घुमावदार होती है, पर इसका मुँह
गोल होता है, जो खुल सकता और बंद हो सकता है । इसके
ऊपर का अस्थिकोश शंख से बहुत पतला होता है । वैद्यक में
घोंघे का मांस मधुर और पित्तनाशक माना जाता है । घोंघे
का झूना भी बनता है ।

घोंघो—शब्द । शब्दक । शब्दक ।

२. गेहूँ की बाल में बहु मोस या कोथली जिसमें दाना रहता है ।

घोंघा^१—वि० १. जिसमें कुछ सार न हो । सारहीन । २. मूर्ख । जड़ ।
बेवकूफ । गावदी ।

घोंघा^१—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घोंघा' । उ०—हंस चुगै ना घोंघी,
सिंह चरे न घास ।—पलटू, पृ० १७७ । †२. दे 'घुँघ' ।

घोंघा^५—संज्ञा पुं० [देश० या हिं० घोंघा + घा (स्वा० प्रत्य०)] एक
प्रकार का बैल । घोंघा ।

घोंघा^५—संज्ञा सं० [हिं० गुच्छा] १. गोद । गुच्छा । घोंघी । स्तम्भक ।
२. वह बैल जिसके सींग मुड़कर कान से जा लगे हों ।

घोंघी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोंघा] वह गाय जिसके सींग कानों की ओर
मुड़े हों ।

घोंघुआ^१—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घोंघुआ' ।

घोंघू^१—वि० [देश०] मूर्ख । बदार्थ ।

घोंट—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक जंगली वृक्ष जो बहुत बड़ा होता है ।
इसकी लकड़ी मजबूत होती है और किसानों के घोड़ार
बनाने के काम में आती है । २. घुँट नामक वृक्ष ।

घोंटना^१—क्रि० प्र० [हिं० घुँट पूर्वी हिं० घोंट] १. घुँट घुँट करके
पीना । पानी या और किसी द्रव पदार्थ को थोड़ा थोड़ा करके
गले के नीचे उतारना । पीना । उ०—नाम पियाला घोंटि के
कछु घोर न मोहि चही —चण० बानी०, पृ० ६ । २. किसी
दूसरे का वस्तु लेकर न लौटाना । हजम करना । पचाना ।

घोंटना^२—क्रि० प्र० [सं० घुट] १. (गला) इस प्रकार दबाना कि
दम रुक जाय । (गला) मरोड़ना । जैसे—घोर ने लड़के का
गला घोंट दिया । २. दे० 'घोटना' ।

घोंटा^१—संज्ञा पुं० [सं० घोएटा] १. सुपारी । उ०—घोंटा कमुक
गुवाक पुनि पूग सुपारी आहि ।—अनेकार्थ०, पृ० १०१ । २.
दे० 'घोंटा' ।

घोंटी^१^५—संज्ञा पुं० [हिं० घुँट] [स्त्री० घोंटी] दे० 'घुँट' । उ०—
(क) बिजया जीव मिलाई के निमल घोंटा लेई ।—भीला०
श०, पृ० ६६ । (ख) नारी घोंटी प्रमल की प्रमली सब
संसार ।—मल्लक०, पृ० ६६ ।

घोंटी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० घुँट] दे० 'घुँटी' ।

घोंटी^१—वि० [हिं० घोंटना] १. घोटनेवाला । जैसे,—गलाघोंटी, दम-
घोंटी । २. रटनेवाला । रटू ।

घोंपना—क्रि० प्र० [अनु० घप्] १. भोंकना । घंसाना । चुभाना ।
गड़ाना । २. बुरी तरह सीना । गाँठना ।

घोंरि^५—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोंर] दे० 'घोंद' । उ०—कनकवता
मानहुँ फली मरकत मनि की घोंरि ।—स० सप्तक, पृ० २६६ ।

घोंसना^५—क्रि० प्र० [देश०] दे० 'कोसना' । उ०—अनेक जनों
को तो घोंस घोंसकर आपने मार ही डाला ।—प्रेमघन०,
भा० २, पृ० ८० ।

घोंसला—संज्ञा पुं० [देश० अथवा सं० कुमालय] वृक्ष, पुरानी
दीवार के मोखे आदि पर खर, पत्ते, घास फूस और तिनके
आदि से बना हुआ वह स्थान जिसमें पक्षी रहते हैं । चिड़ियों
के रहने और घोंडे देने का स्थान । नीड़ । खोता ।

घोंस प्र०—बनाना ।—रखना ।—खाना ।

घोंसुआ—संज्ञा पुं० [हिं० घोंसना] घोंसना । खोता । उ०—बड़े न बड़ी सबील हू कील घोंसुआ मांस ।—बिहारी (शब्द०) ।

घोका—संज्ञा पुं० [सं० घोष] शब्द । ध्वनि । उ०—बड़े घोका बाबा । बड़ी दोष बाबा ।—ग० रू०, पृ० १६२ ।

घोखना—क्रि० स० [सं० घृष्] चारणा के लिये बार बार पड़ना । स्पर्श रखने के लिये बार बार उच्चारण करना । पाठ की बार बार आवृत्ति करना । रटना । घोटना ।

घोखवाना—क्रि० स० [हिं० घोखना का प्रे० रूप] बार बार कह-लाना । याद कराना । रटवाना ।

घोखाना—क्रि० स० [हिं० घोखना] दे० 'घोखवाना' ।

घोखू—वि० [हिं० घोखना] बार बार पाठ याद करनेवाला । रटू । उ०—परीक्षा का फल प्रगट होते होते उसके अधिकांश रटू और घोखू मित्र उससे मौलों पीछे छूट जाते ।—शराबी, पृ० ३७ ।

घोगर—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ । वि० दे० 'खरपत' ।

घोघा—संज्ञा पुं० [देश०] बटेर फँसाने का जाल ।

घोघटा—संज्ञा पुं० [सं० अवगुण्डन] दे० 'घूँघट' । उ०—खने खने घोघट विघट समाज । खने खने अब हकागलि लाज ।—विद्यापति, पृ० ६ ।

घोघा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो खने की फसल की हानि पहुँचाता है । यह कीड़ा सरदी से पैदा होता और खने की घेंटियों के अंदर घुसकर दाने खा जाता है, जिससे खाली घेंटी ही घेंटी रह जाती है ।

घोषी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'घुघी' । उ०—पोला सबके पगन सीस घोषी के छतरी ।—प्रेमचन्द, भा० १, पृ० ४८ ।

घेघिला—संज्ञा संज्ञा [देश०] एक प्रकार की चिड़िया ।

घोट—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़ा । अश्व । २. (लाक्षणिक) घोड़े के सङ्गान अर्थात् युवक । युवा पुरुष । उ०—उत्तर आज स उत्तर ऊपड़िया सी कांठ । काय रहेसई पोयली काय कुवाँग घोट ।—ढोला०, दू० २६६ ।

घोट—संज्ञा पुं० [हिं० घोटना] घोटने की क्रिया या भाव ।

घोटक—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा । अश्व ।

घी० - घोटकमुल्ल = दे० 'गड़मुह' ।

घोटफारि—स्त्री० पुं० [सं०] घोड़े का शत्रु । भैंसा । महिष [को०] ।

घोटवा—संज्ञा पुं० [हिं० घोट + वा (प्रत्य०)] युवक । उ०—उज्जल दंता घोटवा करहई चढ़ियउ जाहि ।—ढोला०, दू० १३६ ।

घोटना—क्रि० स० [सं० घृष्/घट = आवर्तन या प्रतिघात करना] १. किसी वस्तु को दूसरी वस्तु पर इसलिये बार बार रगड़ना कि वह दूसरी वस्तु चिकनी और चमकीली हो जाय । जैसे,—कपड़ा घोटना, तस्ती घोटना, दीवार घोटना । कागज घोटना । २. किसी वस्तु को बट्टे या और दूसरी वस्तु से इसलिये बार बार रगड़ना कि वह बहुत बारीक पिस जाय । रगड़ना । जैसे—भाँग घोटना, गुरमा घोटना ।

विशेष—घिसने और घोटने में यह अंतर है कि घिसने का प्रभाव, जो वस्तु ऊपर रखकर फिराई जाती है, उसपर बाँधित होता है ।

जैसे—चंदन घिसना; पर घोटने का प्रभाव आघार (जैसे,—कपड़ा, कागज आदि) या उसपर रखी हुई किसी वस्तु (जैसे, तिल पर रखी हुई बादाम, भाँग आदि) पर बाँधित होता है । जैसे,—कपड़ा घोटना, भाँग घोटना । घिसने का प्रभाव केवल आघार पर रखी हुई वस्तु ही पर बाँधित होता है । जैसे,—भाँग घिसना, घाटा घिसना । रगड़ने और घोटने में भी वही अंतर है, जो घिसने और घोटने में है ।

संयो० क्रि०—डालना :—देना ।

३. किसी पात्र में रखकर कई वस्तुओं को बट्टे आदि से रगड़कर परस्पर मिलाना । हल करना । ४. कोई कार्य, विशेषतः लिखने पढ़ने का कार्य, इसलिये बार बार करना कि उसका अभ्यास हो जाय । अभ्यास करना । मरक करना । जैसे,—सबक घोटना, पट्टी या तस्ती घोटना । ५. डाँटना । फटकारना । बहुत बिगड़ना । जैसे,—अफसर ने बुलाकर उन्हें खूब घोटा । ६. छुरा या उस्तरा फेरकर शरीर के बाल दूर करना । मूड़ना । ७. (गला) इस प्रकार दबाना कि साँस रुक जाय । (गला) मरोड़ना ।

मुहा०—गला घोटना :—दे० 'गला' में मुहा० ।

घोटना—संज्ञा पुं० १. घोटने का औजार । वह वस्तु जिससे कुछ घोटा जाय । जैसे—भाँगघोटना । उ०—काया कुंडी करे पवन का घोटना ।—गणदू०, पृ० ६४ । २. रँगरेजाँ का लकड़ी का वह कुंदा जो जमीन में कुछ गड़ा रहता है और जिसपर रखकर रंगे कपड़े घोटे जाते हैं ।

घोटनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोटना] वह छोटी वस्तु जिसमें या जिससे कोई वस्तु घोटी जाय ।

घोटवाना—क्रि० स० [हिं० घोटना का प्रे० रूप] १. रगड़वाना । घाँटकर चिकना कराना । २. पालिश कराना । ३. कुंडी कराना । ४. सिंग या दाढ़ी आदि के बाल बनवा डालना ।

घोटा—संज्ञा पुं० [हिं० घोटना] १. वह वस्तु जिससे घोटने का काम किया जाय । २. रँगरेजों का एक औजार जिसे वे रंगे हुए कपड़ों पर चमक लाने के लिये रगड़ते हैं । डुवाली । मोहरा । ३. घुटा हुआ चमकीला कपड़ा । ४. भाँग घोटने का सोंटा या बंडा । ५. भाँग का वह चोंगा जिससे घोड़ों, बैलों आदि पशुओं को नमक, तेल या और कोई घोषघ पिलाई जाती है । ६. नव जड़ियों का एक औजार जिससे वे डाँक को चमकीला बनाते हैं । **विशेष**—इस औजार में बाँस की नली में लाख देकर गोरा पत्थर का एक टुकड़ा चिपकाया रहता है । इसी से डाँक को रगड़कर चमकदार करते हैं ।

७. रगड़ा । घुटाई । घोटने का काम । ८. क्षीर । हजामत ।

क्रि० प्र०—फिरवाना ।

घोटार्ई—संज्ञा स्त्री० [हिं० घोटाना+आई (प्रत्य०)] १. घोटने का भाव । १. घोटने की क्रिया । ३. घोटने की मजदूरी ।

घोटाघोवा—संज्ञा पुं० [देश०] रेवदचीनी की जाति का एक पेड़ । कनकुटकी । रेवाचीनी । सीरा ।

विशेष—यह वृक्ष खासिया की पहाड़ियों, पूरबी बंगाल तथा

लंका आदि में विशेष होता है। इसमें से एक प्रकार की राल निकलती है, जो रेंगाई तथा दबा के काम में आती है।

घोटाखा—संज्ञा पुं० [देश०] घपला। गड़बड़। गोलमाल।

घौं—गड़बड़ घोटाखा।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—पड़ना।

मुहा०—घोटाखे में पड़ना = निश्चित या ठीक न होना। अस्थिर रहना।

घोटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़ी [क्रि०]।

घोटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'घोटिका'।

घोटो—संज्ञा स्त्री० [हि० घूट] दे० 'घुट्टी'। उ०—यह कंठी माला पहना देना और यह बीड़ा जन्म घोटी में पिना देना।—भारतेंदु प्र०, भा० ३, पृ० ५६६।

घौं—जन्म घोटी।

घोटा—संज्ञा पुं० [हि० घोटना] १. वह जो घोटे। घोटनेवाला। २. घोटने का औजार। घोटा।

घोटू—संज्ञा पुं० [हि० घुटना] पैर की गठि। घुटना।

घोठ—संज्ञा पुं० [सं० गोष्ठ] गोठ। गोष्ठ।

घोड़—संज्ञा पुं० [सं० घोटक] घोड़ा।

घौं—घोड़चढ़ा। घोड़दोड़ आदि।

घोड़चढ़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घुड़चढ़ा'।

घोड़दोड़—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घुड़दोड़'।

घोड़बच—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा + बच] बच नाम की ओषधि की एक किस्म जो घोड़ों को ही दी जाती है।

घोड़मुहा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घुड़मुहा'।

घोड़राई—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा + राई] वह राई जिसके दाने कुछ बड़े बड़े होते हैं। यह मसाले के साथ घोड़ों को खिलाई जाती है।

घोड़रासन—संज्ञा पुं० [हि० घोड़ा + रासन] एक प्रकार का रासन या रास्ना। वि० दे० 'रास्ना'।

घोड़रोज—संज्ञा पुं० [हि० घोड़ा + रोज] एक प्रकार का रोज या नीलगाय।

विशेष—यह घोड़े की आँति बहुत तेज भागता है। कहीं कहीं लोग इसे पालतू बनाकर गाड़ियों में भी जोतते हैं। इसको घोड़रोछ, घोड़रोछ भी कहते हैं।

घोड़सा—संज्ञा पुं० [हि० घोड़ + सा (प्रत्य०)] घोड़ा। उ०—ज्ञान को घोड़ला सून्य में दीरिया, सुरति है सब्द सारा।—सं० दीरिया, पृ० ७६।

घोड़सन—संज्ञा पुं० [हि० घोड़ा + सन] एक प्रकार का सन।

घोड़सारा—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा + साला] घोड़ा बाँधने का स्थान। अस्तबल। पंखा।

घोड़साखा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घोड़सार'।

घोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० घोटक, प्रा० घोड़ा] [स्त्री० घोड़ी] १. चार पैरों वाला एक प्रसिद्ध और बड़ा पशु। अश्व। बाजि। तुरंग।

विशेष—इसके पैरों में पंजे नहीं होते, गोलाकार घुम (टाप) होते हैं। यह उसी जाति का पशु है, जिस जाति का गधहा

है, पर गधहे से यह मजबूत, बड़ा और तेज होता है। इसके कान भी गधहे के कानों से छोटे और सखे होते हैं। इसकी गरदन पर लंबे लंबे बाल होते हैं और पूँछ नीचे से ऊपर तक बहुत लंबे लंबे बालों से ढकी होती है। टापों के ऊपर और घुटनों के नीचे एक प्रकार के घट्टे या गठि होती हैं। घोड़े बहुत रंगों के होते हैं जिनमें से कुछ के नाम ये हैं—लाल, सुरंग, कुम्भेत, सव्वा, भुशकी, नुकरा, गर्रा, बादामी, चीनी, गुलदार, भबलक इत्यादि। बहुत प्राचीन काल से मनुष्य घोड़े से सवारी का काम लेते आ रहे हैं, जिसका कारण उसकी मजबूती और तेज चाल है। पोइया, दुलकी, सरपट, कदम, रहवाल, लंगूरी आदि इसकी कई चालें प्रसिद्ध हैं। घोड़े की बोली को हिनहिनाना कहते हैं। जिसमें घोड़ों की पहचान, चाल, लक्षण आदि का वर्णन होता है, उस विद्या को शालिहोत्र कहते हैं। शालिहोत्र ग्रंथों में घोड़ों के कई प्रकार से कई भेद किए गए हैं। जैसे,—देशभेद से उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ और नीच; जातिभेद से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, तथा गुणभेद से सात्विक, राजसी और तामसी। इनकी समस्या का अनुमान इनके दाँतों से किया जाता है। इससे दाँतों की गिनती और रंग आदि के अनुसार भी घोड़ों के आठ भेद माने गए हैं—कालिका, हरिणी, शुक्ला, काचा, मलिका, शंख, मुशलक और चलता। प्राचीन भारतवासियों को जिन जिन देशों के घोड़ों का ज्ञान था, उनके अनुसार उन्होंने उत्तम, मध्यम आदि भेद किए हैं। जैसे,—ताजिक, तुषार और खुरासान के घोड़ों को उत्तम; गोजिकाण केकाण और प्रोढ़ाहार के घोड़ों को मध्यम, गांधार, साध्यवास और सिंधुद्वार के घोड़ों को कनिष्ठ कहा है। आजकल अरब, स्पेन, पर्सिया, नारफाक आदि के घोड़े बहुत अच्छी जाति के गिने जाते हैं। नेपाल और बरमा के टांगन भी प्रसिद्ध हैं। भारतवर्ष में कच्छ, काठियावाड़ और (पाकिस्तान में) सिंध के घोड़े उत्तम गिने जाते हैं। शालिहोत्र में रंग, नाप और भँवरी आदि के अनुसार घोड़े स्वामियों के लिये शुभ या अशुभ फल देनेवाले समझे जाते हैं। जैसे,—जिसके चारों पैर और दोनों घाँवों सफेद हों, कान और पूँछ छोटी हो, उसे चक्रवाक कहते हैं। यह बहुत प्रशुभ और मंगलदायक समझा जाता है। इसी प्रकार अस्तिक, कल्याणपंचक, गजदंत, उष्ट्रदंत आदि बहुत से भेद किए गए हैं। गरदन पर अयास के नीचे या पीठ पर जो भौरी (घुमे हुए रोएँ) होती है, उसे साँपिन कहते हैं। उसका मुँह यदि घोड़े के मुँह की ओर हो, तो वह बहुत अशुभ मानी जाती है। भोरियों के भी कई नाम हैं। जैसे,—भुजबल (जो अगले पैरों के ऊपर होती है), छत्रभंग (जो पीठ या रीढ़ के पास होती है और बहुत अशुभ मानी जाती है), गंगापाट (तंग के नीचे) आदि। घोड़ों के शुभाशुभ लक्षण फारसवाले भी मानते हैं; इससे हिंदुस्तान में घोड़े से संबंध रखनेवाले जो शब्द प्रचलित हैं, उनमें से बहुत से फारसी के भी हैं। जैसे,—स्याहताऊ, गावकोहान आदि।

पर्या०—घोटक। तुरंग। अश्व। बाजी। बाह। तुरंगम। गंधर्व।

हय । सैषय । हरि । बीती । जवन । मालिहोत्र । प्रकीर्णव । वातायन । चामरी । मयवय । राजस्कंध । विमानक । बहि । बधिका । उच्चैःधवा । आगु । अरय । पतय । नर । सुपर्णसु ।

मुहा०—घोड़ा उठाना=घोड़े को तेज दौड़ाना । **घोड़ा उलायना=**किसी नए घोड़े पर पहले पहल सवार होना । **घोड़ा कसना=**घोड़े पर सवारी के लिये जीन या चारजामा कसना । **घोड़ा खोलना=**(१) घोड़े का साज या चारजामा उतारना । (२) घोड़े को बंधनमुक्त करना । (३) घोड़ा छुराना या छीनना । जैसे,—चोर घोड़ा खोल ले गए । **घोड़ा छोड़ना=**(१) किसी ओर घोड़ा दौड़ाना । किसी के पीछे घोड़ा दौड़ाना । (२) घोड़े को घोड़ी से जोड़ा खाने के लिये छोड़ना । घोड़े का घोड़ी से समागम करना । (३) घोड़े को उसके इच्छानुसार चलने देना । (४) दिग्विजय के लिये अश्वमेध का घोड़ा छोड़ना कि वह जहाँ चाहे वहाँ जाय । (५) घोड़े का साज या चारजामा उतारना । दे० 'घोड़ा खोलना' । (६) मजाक करना । कोई ऐसी भोड़ी बात कहना जिससे लोग हँसें ।

विशेष—भोड़ों के खेल तमाशों में अभिनेता शुरू शुरू में अपने काल्पनिक घोड़े की हार्यपशक प्रशस्ति करते हुए अपना अपना परिचय देते हैं । इसी से इस अर्थ में यह मुहावरा बोलचाल में प्रचलित है ।

घोड़ा डालना=किसी ओर वेग से घोड़ा बढ़ाना । जैसे,—उमने हिरन के पीछे घोड़ा डाला । **घोड़ा देना=**घोड़ी को घोड़े से जोड़ा खिलाना । **घोड़ा निकालना=**(१) घोड़े को सिखलाकर सवारी के योग्य बनाना । (२) घोड़े को आगे बढ़ा ले जाना । **घोड़े पर चढ़े आना=**किसी स्थान पर पहुँचकर वहाँ से लौटने के लिये जल्दी मचाना । **घोड़ा पलाना=**घोड़े पर काठी या जीन कसना । **घोड़ा फेंकना=**वेग से घोड़ा दौड़ाना । **घोड़ा कैरना=**(१) घोड़े को सिखाकर सवारी के योग्य बनाना । (२) घोड़े को दौड़ने का अभ्यास कराने के लिये एक वृत्त में घुमाना । कावा देना । **घोड़ा बेचकर सोना=**खूब निश्चित होकर सोना । गहरी नींद में सोना । **घोड़ा भर जाना=**चलते चलते घोड़े का दम भर जाना । घोड़े का थक जाना । **घोड़ा मारना=**घोड़े को तेज दौड़ाने के लिये मारना । घोड़े को मार मारकर खूब तेज बढ़ाना ।

२. घोड़े के मुख के आकार का वह पेंच या खटका जिसके दबाने से बंदूक में रंजक लगती है और गोली चलती है । उ०—तोड़ा सुलगत चढ़े रहें घोड़ा बंदूकन । भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५२४ ।

क्रि० प्र०—बढ़ाना ।—दबाना ।

१. घोड़े के मुख के आकार का टोटा जो मार सँभालने के लिये छज्जे के नीचे दीवार में लगाया जाता है । यह काठ का भी होता है और पत्थर का भी । ४. शतरंज का एक मोहरा जो डाई घर चलता है । ५. कसरत के लिये लकड़ी का एक मोटा कुंदा जो चार पायों पर ठहरा होता है और जिसे लड़के धोड़कर लाधते हैं । ६. कपड़े आदि टाँगने की खूँटी ।

घोड़ा करंज—संज्ञा पुं० [सं० घृतकरंज] एक प्रकार का करंज जो

चर्मरोग और बवासीर तथा विष को दूर करनेवाला माना जाता है ।

घोड़ागाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा + गाड़ी] १. वह गाड़ी जो घोड़े द्वारा चलाई जाती है । २. वह गाड़ी जो डाक के पैले ऐसी जगह पहुँचाती है, जहाँ रेल इत्यादि नहीं गई रहती । बहुधा इस गाड़ी में घोड़े ही जाते जाते हैं । डाकगाड़ी । मेल कार्ट ।

घोड़ाचोली—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा + चोला (= शरीर)] वैद्यक की एक प्रसिद्ध औषधि जो अनुपान के भेद से बहुत से रोगों पर दी जाती है ।

घोड़ानस—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा + नस] वह मोटी नस जो पैर में एड़ी से ऊपर की ओर गई होती है ।

विशेष—कहते हैं, यह नस कट जाने पर भ्राममी या पशु मर जाता है क्योंकि शरीर का प्रायः सारा रक्त इसी के मार्ग से निकल जाता है ।

घोड़ानोम—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा + नीम] बकाइन वृक्ष ।

घोड़ापलास—संज्ञा पुं० [दश०] मालखंभ की एक कसरत ।

विशेष—इसमें एक हाथ मालखंभ पर उलटा एँठकर सामने रखते हैं और दूसरे से मोगरे को पकड़ते हैं । जिघर का हाथ मोगरे पर होता है, उसी ओर का पाँव मालखंभ पर फँककर सवारी बाँधते हैं और दोनों हाथ निकाले हुए ताल ठोकते हैं । इसमें मुँह फूटने का खतरा रहता है ।

घोड़ाबच—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा + बच] छुरासानी बच जो सफेद होती है और जिसमें बड़ी उग्र गंध होती है ।

घोड़ाबाँस—संज्ञा पुं० [हि० घोड़ा + बाँस] एक प्रकार का बाँस जो पूर्वी बंगाल और आसाम में बहुत होता है ।

घोड़ाबेल—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा + बेल] एक लिपटनेवाली लता जिसकी जड़े गंटीली होती हैं ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ एक बालिश के सीकों में लगती हैं और पतझड़ में झड़ जाती हैं । चैत, बैसाख में यह बेल घनी मंजरी के रूप में फूलती है । यह बेल बूंदेलखंड तथा उत्तरीय भारत के कई भागों में मिलती है । बिलाईकंद इसी की जड़ है । इसे मुराल और सरवाला भी कहते हैं ।

घोड़िया—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ी + हया (प्रत्य०)] १. छोटी घोड़ी । २. दीवार में गड़ी हुई खूँटी जिससे कपड़े लटकाए जाते हैं । ३. छोटा घोड़ा । ४. जुलाहों का एक औजार । वि० दे० 'घोड़ी' ।

घोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० घोड़ा] घोड़े की मादा । २. पायों पर खड़ी काठ की लंबी पटरी जो पानी के घड़े रखने, गोटे पट्टे की बुनाई में तार कसने, सेवई पूरने, सेव बनाने आदि बहुत से कामों में आती है । पाटा । ३. दूर दूर रखे हुए दो जोड़े बाँसों के बीच में बंधी हुई डोरी या फलगनी जिसपर घोड़ी कपड़े सुखाते हैं । ४. विवाह की वह रीति जिसमें दूल्हा घोड़ी पर चढ़कर दुलहिन के घर जाता है ।

मुहा०—घोड़ी चढ़ना=दूल्हे का बारात के साथ दुलहिन के घर जाना ।

५. वे गीत जो विवाह में वरपक्ष की ओर से गाए जाते हैं ।

६. खेल में वह लड़का जिसकी पीठ पर दूसरे लड़के सवार

होते हैं। ७. जुलाहों का एक छोटा बिसमें बोहरे पायों के बीच में एक डंडा लगा रहता है।

बिशेष—कपड़ा बुनते बुनते जब बहुत थोड़ा रह जाता है, तब वह झुकने लगता है। उसी को ऊँचा करने के लिये यह काम में लाया जाता है। ८. हाथीदाँत आदि का वह छोटा संबोतरा टुकड़ा जो तंबूरे, सारंगी, सितार आदि में तूँबे के ऊपर लगा हुआ होता है और जिस पर ते होते हुए उसके तार टिके रहते हैं। जवारी।

घोण^१—संज्ञा पुं० [देश०] बहुत प्राचीन काल का एक राजा जिसमें तार लगे रहते थे। जन्हीं तारों को छेदने से यह बजता था।

घोण^२—संज्ञा स्त्री० [सं० घोणा] नासिका। नाक। —(हिं०)।

घोणस—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप [को०]।

घोणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नासिका। नाक। २. घोड़े या सूअर का धूँवन। ३. उल्लू पक्षी की चोंच। ४. एक पोधा [को०]।

घोणी—संज्ञा पुं० [सं० घोरिण] शूकर। सूअर [को०]।

घोनस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'घोणस'।

घोमसा—संज्ञा संज्ञा [देश०] एक प्रकार की घास।

घोर^१—वि० [सं०] भयंकर। भयानक। डरावना। विकराल। २. सघन। घना। दुर्गम। जैसे—घोर वन। ३. कठिन। कड़ा। जैसे—घोर गर्जन, घोर शब्द। ४. गहरा। गाढ़। जैसे—घोर निद्रा। ५. बुरा। घटित बुरा। जैसे—घोर कर्म, घोर पाप। ६. बहुत अधिक। बहुत ज्यादा। बहुत भारी। उ०—ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती है।—भूषण (शब्द०)।

घोर^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव का एक नाम। २. विष [को०]। ३. भय। डर [को०]। ४. पूज्य भाव [को०]। ५. जाफरान [को०]। ६. स्कंद के पारिवदगण की उपाधि। उ०—स्कंद के पारिवदगण घोर कहे गए हैं।—प्रा० भा० पृ० ५०, पृ० १०८।

घोर^३—संज्ञा स्त्री० [सं० घुर] शब्द। गर्जन। ध्वनि। आवाज। उ०—(क) कहि काकी मन रहत श्रवण सुनि सरस मधुर मुरली की घोर।—सूर (शब्द०)। (ख) घिर कर तेरे चारों ओर, करते हैं घन क्या ही घोर।—साकेत, पृ० २५५।

घोर^४—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा] दे० 'घोड़ा'। उ० (क) घोर मोर घोर पानी पिये बड़े मोर।—(कहा०)। (ख) हस्ति घोर और कापर सर्बाहि दीन्ह नव साज।—जायसी ग्रं०, पृ० १४६।

घोर^५—संज्ञा पुं० [फा० गोर] कन्न। समाधि। उ०—परपो हुसेन सुपाच सुनि चितिय चित्त इमान। सजो घोर हुस्सेन सय करों प्रवस अपान।—पृ० रा०, ६।२०८।

घोर^६—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घोल'।

घोर^७—क्रि० वि० अत्यंत। बहुत। जैसे—घोर निर्दय।

घोरघुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. कांस्य। काँसा। २. पीतल [को०]।

घोरघोरसर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

घोरदंष्ट्र—वि० [सं०] जिसके दाँतों को देखकर भय उत्पन्न हो। भयावने दाँतवाला [को०]।

घोरदर्शन^१—वि० [सं०] विकराल। भयानक [को०]।

घोरदर्शन^२—संज्ञा १. उल्लू। उल्लूक। २. चीते की जाति का एक मांसाहारी पशु [को०]।

घोरना^१—क्रि० सं० [हिं० घोलना] दे० 'घोलना'। उ०—(क) जो गिरिपति मसि घोरि उदधि में, लै सुरत बधि हाथ। मयकृत बोध लिखे बसुधा भरि तऊ नहीं मिति नाथ।—सूर०, १।१११। (क) ठाकुर कहत देखो याके राखिबे के हेत नीम कर भेषज सु घोरि पीजियतु है।—ठाकुर०, पृ० ३६।

घोरना^२—क्रि० प्र० भारी शब्द करना। गरजना। उ०—फिर फिर सुंदर गीवा मोरत। देखन रथ पाछे जो घोरत।—शकुंतला, पृ० ७।

घोरपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'घोरपुष्प'।

घोररास, घोररासी—संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल। गीदड़ [को०]।

घोररूप—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

घोरवास, घोरवासी—संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल। गीदड़ [को०]।

घोरसार^१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'घुड़सार'। उ०—हाथी हथिसार जरे घोरे घोरसार ही।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७७।

घोरा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्रवण, चित्रा, बनिष्ठा और मतनिषा नक्षत्रों में बुध की गति। २. रात्रि। रात [को०]।

घोरा^२—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ा] १. घोड़ा। उ०—जहि लख्ख घोरा ममंगा हजारी।—कीर्ति०, पृ० ३८। २. खूँटा। ३. टोड़ा।

घोराकार, घोराकृति—वि० [सं०] भयानक। डरावना [को०]।

घोरारा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गन्ना।

घोरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'घोरिया'।

घोरिला^१—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़ी] १. मिट्टी का बना हुआ लड़कों के खेलने का घोड़ा। उ०—जो प्रभु समर सुरासुर बावत खगपति पीठ सवारा। तेहि घोरिला चढ़ाइ नृप रानी करवाई संचारा।—रघुराज (शब्द०)। २. वह खूँटा जिसका मुँह घोड़े के आकार का होता है। उ०—फूलन के विविध हार घोरिलनि उरमत उदार बिच बिच मणि श्यामहार उपमा शुक्र भाषी।—केवश (शब्द०)।

घोरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. दे० 'अघोरी'। २. दे० 'घोड़ी'। ३. दे० 'अघोरी'।

घोल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. मया हुआ दही जिसमें पानी न डाला गया हो। तक्र। २. लस्सी। ३. घोलकर बनाई हुई वस्तु [को०]।

घोल^२—संज्ञा पुं० [हिं० घोड़] घोड़ा। उ०—काहुँ कापल काहुँ घोल, काहुँ संबल देल घोल।—कीर्ति०, पृ० २४।

घोलदही—संज्ञा पुं० [हिं० घोलना + दही] मट्ठा।

घोलना—क्रि० सं० [हिं० घुलना] पानी या और किसी द्रव पदार्थ में किसी वस्तु को हिलाकर मिलाना। किसी वस्तु को इस प्रकार पानी आदि में डालकर हिलाना कि उसके कण पृथक् पृथक् होकर पानी में फैल जायें। हल करना। जैसे,—चीनी घोलना, शरबत घोलना।

संयो०—क्रि०—डालना।—देना।

मुहा०—घोल पीना = (१) शरबत की तरह पी जाना। (२) सहज में मार डालना। सहज में नष्ट कर देना। (३) कुछ न समझना। गृण समझना। घोलकर पी जाना = (१) सहज में मार डालना। देखते देखते नाश कर डालना। (२) कुछ न धिनना। (३) किसी विषय में पूर्णतः निष्णात होना। पारंगत होना।

घोलमघोल^७—संज्ञा पुं० [हि० घोल] घालमेल। घोटाला। उ०—हाहा हूहू मैं मुझे करि करि घालमघोल।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३१६।

घोला—संज्ञा पुं० [हि० घोलना] २. वह जो घोलकर बना हो। जैसे,—घोली हुई अफीम।

मुहा०—घोले में डालना = (१) खटाई में डालना। रोक रखना। फंसा रखना। उलझन में डाल रखना। किसी काम में बहुत बेर लगाना। (२) किसी काम में टालमटोल करना। बोले में पड़ना = बसेड़े में पड़ना। उलझन में फंसना। ऐसे काम में फंसना जो जल्दी न निपटे।

२. नाली जिसके द्वारा खेत सींचने के लिये पानी ले जाते हैं। बरहा।

घोलुचा^१—वि० [हि० घोलना + उचा (प्रत्य०)] घोना हुआ। जो घोलकर बना हुआ हो।

घोलुचा^२—संज्ञा पुं० १. घोली हुई पतली दवा। अकं। २. रसा। शोरबा। ३. पानी में घोली हुई अफीम।

मुहा०—घोलुचा पीना = कड़ई वस्तु (दवा आदि) पीना। घोलुचा घोलना = किसी कार्य में बहुत देर करना।

घोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. आभीरपत्नी। ग्रहीरों की बस्ती। उ०—बकी जो गई घोष में छल करि यमुदा की गति दीनी।—सूर०, १।१२२। २. ग्रहीर। ३. बंगाली कायस्थों का एक भेद। ४. गोशाला। उ०—(क) प्राजु कठैया बहुत बच्यो री। खेलत रह्यो घोष के बाहर बोट प्रायो शिशु रूप रच्यो री।—सूर (शब्द०)। ५. तट। किनारा। ६. ईशान कोण का एक देश। ७. शब्द। आवाज। नाद। उ०—होन लग्यो बजगलिन में हरिहारन को घोष।—पद्याकर ग्रं०, पृ० ६६। ८. गरजने का शब्द। ९. ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक। १०. शब्दों के उच्चारण में ११ बाह्य प्रयत्नों में से एक। इस प्रयत्न से ये वर्ण बोले जाते हैं—ग, घ, ज, झ, ङ, ढ, द, ध, ब, भ, ड, ङ, ण, न, म, य, र, ल, व, श्रौर ह। ११. शिव। १२. जनश्रुति। अफवाह (को०)। १३. कुटी। ओपड़ी (को०)। १४. कांस्य। कांसा (को०)।

घोषक^१—संज्ञा पुं० [सं०] घोषणा या मुनादी करनेवाला (को०)।

घोषक^२—वि० घोष करनेवाला (को०)।

घोषकुमारी—संज्ञा स्त्री० [सं० घोष + कुमारी] गोपबालिका। गोपिका। उ०—प्रातः समे हरि को जस गावत उठि घर घर सब घोषकुमारी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६०६।

घोषण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'घोषणा' (को०)।

घोषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उच्च स्वर से किसी बात की सूचना। २. राजाशा आदि का प्रचार। मुनादी। हुम्मी।

घोषणापत्र—वह पत्र जिसमें सर्वसाधारण के सूचनायें राजाशा आदि लिखी हो। सूचनापत्र। विज्ञप्ति।

३. गर्जन। ध्वनि। शब्द। आवाज।

घोषयित्तु—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोकिल। २. बाह्याण। ३. घोषणा या मुनादी करनेवाला। ४. प्रारण (को०)।

घोषलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कड़ई तोरई।

घोषवत्—संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्द जिसमें घोष प्रयत्नवाले अक्षर अधिक हों।

घोषवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] वीणा।

घोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सीफ। २. कर्कटशृंगी (को०)।

घोषाल—संज्ञा पुं० [सं० घोष] बंगाली बाह्याणों की एक जाति।

घोसना^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घोषणा'।

घोसना^२—क्रि० सं० [सं० घोषणा] घोषित करना। उच्चारित करना।

घोसिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० घोष+इनि (प्रत्य०)] ग्वालिन। गोपी। उ०—दिन दिन अगे सखि ऐसिन होय। वह घोसिनि घोरक मूले।—विद्यापति, पृ० २६५।

घोसी—संज्ञा पुं० [सं० घोष] ग्रहीर। ग्वाला। दूध बेचनेवाला।

विशेष—जो ग्रहीर मुसलमान होते हैं, वे घोसी कहलाते हैं।

घोंटना^१—क्रि० सं० [देश०] दे० 'घूटना'। उ०—बी ली घोंटि रह्यो घट भीतर सुख ली सोवै सुंदरदास।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० १५३।

घोंटु^१—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'घुटना'। उ०—घोंटुन लीं भई कीच रपटि रपटि सगरे परे।—नंद ग्रं०, पृ० १२४।

घोंर, घौरा—संज्ञा पुं० [हि० घवरि] दे० 'घोद'।

घोव—संज्ञा पुं० [श्ल०] फलों का गुच्छा। गोद। जैसे,—केले का घोद।

घौर—संज्ञा पुं० [हि० घवर] दे० 'घोद'। उ०—एक एक घौर में हजार केले फले हैं।—मैला०, पृ० ७३।

घौरना^१—क्रि० सं० [हि० घोर] दे० 'घोरना'। उ०—अमी रस मैं रस घोरत काह।—ह० रासो, पृ० ५४।

घौरा^१—संज्ञा [हि०] पुं० दे० 'घोर'।

घोरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घोद'। उ०—लागि सुहाई हरफारघोरी। उने रही केरा के घोरी।—जायसी ग्रं०, पृ० १३।

घोहा^१—संज्ञा पुं० [हि० घाव+हा (प्रत्य०)] घुटेला आम या कोई फल। वह फल जिसको कुछ चोट लग चुकी हो।

घोहा^२—वि० जिसे घाव लगा हो। घुटीला। घायल।

घन—वि० [सं०] नष्ट करनेवाला। नाश करनेवाला।

विशेष—योगिक शब्दों के अंत में इसका प्रयोग होता है; जैसे,—वातघन, विषघन, पुण्यघन आदि।

घ्यूँट^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'घूँट'।

घ्राण—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० घ्रेष] १. नाक। उ०—अत्र त्वक वक्षु घ्राण रसना रस को ज्ञान।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५८८।

यौ०—घ्राणेंद्रिय ।

२. सूँघने की शक्ति या क्रिया । ३. गंध । सुगंध ।

घ्राणक—संज्ञा पुं० [घ्रा०] जितना तेलहन जितना एक बार में घेरने के लिये कोलहू में डाला जाय । घानी ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग संवत् १००२ के एक शिलालेख में आया है जिसमें लिखा है कि 'हर घ्राणक पीछे नारायणदेव आदि ने एक एक पत्नी तेल मंदिर के लिये दिया' । इस शब्द की व्युत्पत्ति का संस्कृत में पता नहीं लगता, यद्यपि 'घानी' या 'घान' शब्द अबतक इसी अर्थ में बोला जाता है ।

घ्राणचक्षु—वि० [सं० घ्राणचक्षुस्] १. सूँघकर किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करनेवाला (पशु) । २. अंधा [को०] ।

घ्राणतर्पण^१—वि० [सं०] १. घ्राणेंद्रिय को तृप्ति देनेवाला । २. सुगंधित । सुगंधयुक्त [को०] ।

घ्राणतर्पण^१—संज्ञा पुं० [सं०] कुचबू । सीरम । सुगंध [को०] ।

घ्राणपाक—संज्ञा पुं० [सं०] नाक में होनेवाला एक रोग [को०] ।

घ्राणपुटक—संज्ञा पुं० [सं०] नाक के छिद्र । नासारंध्र [को०] ।

घ्राणेंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० घ्राणेन्द्रिय] नासिका । नाक [को०] ।

घ्रात—वि० [सं०] सूँघा हुआ [को०] ।

घ्रातव्य—वि० [सं०] सूँघने योग्य । जिसे सूँघा जा सके [को०] ।

घ्राता—वि० [सं० घ्रातृ] सूँघनेवाला [को०] ।

घ्राति—संज्ञा संज्ञा [सं० घ्राण] १. सूँघने की क्रिया । २. सीरम । सुगंध । ३. नाक । नासिका [को०] ।

घ्राति^२—संज्ञा स्त्री० [सं० घ्राण] सुगंध । उ०—सोरह दला कमल बिगसाई । मधुकर घ्राति रहा लपटाई ।—सं० हरिमा, पृ० ६ ।

घ्रेय—वि० [सं०] सूँघने योग्य [को०] ।

ङ

ङ—व्यंजन वर्ण का पाँचवाँ और कवर्ग का अंतिम अक्षर । यह स्पर्श वर्ण है, और इसका उच्चारण स्थान कंठ और नासिका है । इसमें संवार, नाब, घोष और अल्पप्राण नामक प्रयत्न लगते हैं ।

ङ—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूँघने की शक्ति । २. गंध । सुगंध । ३. शिव का एक नाम । भैरव । ४. इंद्रियों का विषय । इंद्रिय-विषय [को०] । ५. इच्छा । आकांक्षा । स्पृहा [को०] ।

च

च—संस्कृत या हिंदी वर्णमाला का २२वाँ अक्षर और छठा व्यंजन जिसका उच्चारण स्थान तालु है । यह स्पर्श वर्ण है और इसके उच्चारण में श्वास, विवार, घोष और अल्पप्राण प्रयत्न लगते हैं ।

चंक^१—वि० [सं० चक] १. पूरा पूरा । समूचा । सारा । समस्त । २. एक उत्सव जो उत्तर भारत तथा मध्यप्रदेश आदि में फसल कटने पर होता है ।

चंका^२—क्रि० वि० [हि० चौका या चहुँचा] चारों ओर से । सब तरफ से । उ०—चक्रवती चकवा चतुरंगिनी चारिउ चापि लई दिसि चंका ।—भूषण ग्रं०, पृ० ६६ ।

चंकुण—संज्ञा पुं० [सं० चङ्कुण] १. रथ । यान । २. वृक्ष [को०] ।

चंकुर—संज्ञा पुं० [सं० चङ्कुर] १. रथ । यान । २. वृक्ष । पेड़ ।

चंक्रम—संज्ञा पुं० [सं० चङ्क्रम] टहलने का स्थान । उ०—बाहर चंक्रम पर मिश्रुणियों का छोटा सा समूह प्रवारण के लिये अपनी ओर से प्रतिनिधि भेजने का चुनाव कर रहा था ।—हरा०, पृ० १७ ।

चंक्रमण—संज्ञा पुं० [सं० चङ्क्रमण] १. धीरे धीरे हथर से उभर घूमना । टहलना । २. बार बार घूमना । बहुत घूमना । ३. गंध गति से या टेढ़े मेढ़े जाना [को०] । ४. उछलना । कूदना । फाड़ना [को०] ।

चंक्रमा—संज्ञा स्त्री० [सं० चङ्क्रमा] १. हथर उभर जाना । २. घूमना । टहलना [को०] ।

चंक्रमित—वि० [सं० चङ्क्रमित] बार बार घूमा या चक्कर खाया हुआ [को०] ।

चंक्रायण—संज्ञा पुं० [सं० चङ्क्रायण] एक प्रवर का नाम ।

चंग^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. ढफ के आकार का एक छोटा बाजा जिसे लावनीवाले बजाया करते हैं । लावनीबाजों का बाजा । उ०—बजत मृदंग उपंग चंग मिलि भजनन जति तति जास । —भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४७४ ।

यौ०—चंगनबाज = चंग बजानेवाला व्यक्ति ।

२. सितारियों की परिभाषा में सितार का चढ़ा हुआ सुर ।

चंग^२—संज्ञा पुं० [?] गंजीके के आठ रंगों में से एक रंग ।

चंग^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार का तिब्बती जो । २. एक प्रकार की जो की शराब जो भूटान में बनती है ।

चंग^४—संज्ञा स्त्री० [देश०] पतंग । गुडड़ी । उ०—रहे राखि सेवा पर भालू । चढ़ी चंगु जनु खैचि खेलारू ।—मुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—चंग चढ़ना या उमहना = बड़ी चढ़ी बात होना । खूब-जोर होना । उ०—त्यों पद्माकर दीजै मिलाय क्यों चंग चवाइन की उमही है—पद्माकर (शब्द०) । चंग पर चढ़ाना =

(१) इधर उधर की बातें कहकर किसी को अपने अनुकूल करना। किसी को अभिप्रायसाधन के अनुकूल करना। (२) आसमान पर बढ़ा देना। मिजाज बढ़ा देना।

चंग^१—वि० [सं० चङ्ग] १. दक्ष। कुशल। २. स्वस्थ। तंदुरुस्त। ३. सुंदर। शोभायुक्त। रम्य। मनोहर। उ०—लही ललित। बग लोचन चंग। कही कही कान्ह जुहे तुम संग।—पृ० रा०, २।३५७।

चंगबाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चंग + बाई] एक प्रकार का वात रोग जिसमें हाथ पैर जकड़ जाते हैं।

चंगला—संज्ञा स्त्री० [सं० चङ्गला] एक रागिनी जो मेघ राग की पुत्रवधू कही जाती है।

चंगा—वि० [सं० चङ्ग] [वि० स्त्री० चंगो] १. स्वस्थ। तंदुरुस्त। नीरोग। जैसे—इस दवा से तुम दो दिन में चंगे हो जाओगे।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. अच्छा। भला। सुंदर। उ०—भले पू भले नंदलाल, बैठ भली चरन जावक पाग जिनहि रंगी। सूर प्रभु देखि अंग अंग बानिक कुशल में रही रीति वह नारि चंगी।—सूर (शब्द०)। ३. निर्मल। शुद्ध। जैसे—मन चंगा तो कठौती में गंगा। उ०—कथा माहि एक सुना प्रसंगा। राम नाम नौका चित चंगा।—पट०, पृ० २२६।

चंगिम^(५)—वि० [सं० चङ्ग] सुंदर। उ०—तुम मुख चंगिम अधिक चपल भेल कतिखन धरब लुकाइ।—विद्यापति, पृ० २१८।

चंगु^(५)—संज्ञा पुं० [हि० चो (= चार) + अंगुल] १. अंगुल। पंजा। उ०—चरण चंगु गत चातकहि नेम प्रेम की पीर। तुलसी परबस हाड़ पर परिहै पुहुमी नीर।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०७।

यौ०—चंगुगत।

२. पकड़। वश। अधिकार।

चंगुल—संज्ञा पुं० [हि० चो (= चार) + अंगुल या फा० चंगल] १. चिड़ियों या पशुओं का टेढ़ा पंजा जिससे वे कोई वस्तु पकड़ते या शिकार मारते हैं। उ०—(क) फिरत न बारहि बार प्रचारयो। चपरि चोंच चंगुल हय हति रष खंड खंड करि डारयो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) चीते के चंगुल में फँस के करसायल घायल है निबहे।—देव (शब्द०)। २. हाथ के पंजों की वह स्थिति जो उँगलियों को बिना हथेली से लगाए किसी वस्तु को पकड़ने, उठाने या लेने के समय होती है। बकोटा। जैसे—चंगुल भर आँटा साईं को।

मुहा०—चंगुल में फँसना = पंजे में फँसना। वश या पकड़ में आना। काबू में होना।

चंच^१—संज्ञा पुं० [सं० चञ्च] १. पाँच अंगुल की एक नाप। २. डलिया। चंगेरी (को०)।

चंच^२(५)—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चु] दे० 'चंचु'।

चंचत्क—वि० [सं० चञ्चत्क] १. उछलनेवाला। कूदनेवाला। २. गमनशील। चलनेवाला। ३. कपिनेवाला। हिलनेवाला [को०]।

चंचत्पुट—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चत्पुट] संगीत में एक ताल जिसमें पहले दो गुरु, तब एक लघु, फिर एक प्लुत मात्रा होती है। डिकल के अतिरिक्त यह चतुष्कल और षष्ठकल भी होता है।

चंचनाना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'चुनचुनाना'।

चंचनाना^२—क्रि० प्र० [अनु०] १. झगड़ना। लड़ना। २. चुन-चुनाना। बकना। ३. उत्तेजित होना। आवेश में आना। ४. मटर की फली का सूखकर बिसरना। ५. ज्यादा धींच से दरार पड़ना। जैसे,—नरिया या लालटेन का शीशा। चंचनाना।

चंचरा—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चरा] एक बरगुत्ता। दे० 'चंचरी-४'।

चंचरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चरी] १. झमरी। भँवरी। २. चाँचरि। होली में गाने का एक गीत। ३. हरिप्रिया छंद। इसी को मिथारीदास अपने पिता में 'चंचरी' कहते हैं। इसके प्रत्येक पद में १२+१२+१२+१० के बिराम से ४६ मात्राएँ होती हैं। अंत में एक गुरु होता है। जैसे,—सूरज गुन विसि सजाय, अंत गुरु चरण ध्याय, चित है हरि प्रियाहि, कृष्ण कृष्ण गावो। ४. एक बरगुत्ता का नाम जिसके प्रत्येक चरण में २ स ज ज भ र (SIS IIS ISI ISI SIH SIS) होते हैं। इसे 'चंचरा,' 'चंचली' और 'विबुधप्रिया' भी कहते हैं। जैसे,—री सजै जु भरी हरी नित बाणि तू। श्री सदा महमान संत समाज में जग माहि तू। भूलि के जु बिसारि रामहि ध्यान को गुण गाइहे। चंपक सम ना हरी जन चंचरी मन आईहे। ५. एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक पद में २६ मात्राएँ होती हैं। जैसे,—सेतु सीतहि शोभना दरसाइ पंचवटी गए। पाँय लागि अगस्त्य के पुनि अत्रि पै ते विदा भए। चित्रकूट विलोकि के के तबही प्रयाग विलोकियो। भरद्वाज बसै जहाँ जिनते न पावन है वियो।

चंचरी^२—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चरिन्] भौरा [को०]।

चंचरीक—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चरीक] [स्त्री० चंचरीकी] भ्रमर। भौरा। उ०—तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा।—तुलसी (शब्द०)।

चंचरीकावली—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चरीकावली] १. भौरों की पंक्ति। २. तेरह अक्षरों के एक बरगुत्ता का नाम जिसके प्रत्येक चरण में यगण, अगण, दो रगण और एक गुरु होता है (ISS SSS SIS SIS S)। जैसे,—यमी रे। रागे छाँड़ी यहै ईश मावै। न भूलो माधो को विश्व ही जो चलावै। लखौ या पुष्पी को बाटिका चंपकी ज्यो। इसी रागे त्यागै चंचरीकावली ज्यों।

चंचल^१—वि० [सं० चञ्चल] [वि० स्त्री० चंचला] १. चलायमान। अस्थिर। हिलता डोलता। एक स्थिति में न रहनेवाला। २. अधीर। अव्यवस्थित। एकाग्र न रहनेवाला। अस्थिरप्रज्ञ। जैसे,—चंचलबुद्धि, चंचलचित्त। ३. उद्विग्न। घबराया हुआ। ४. नटखट। चुलबुला। जैसे,—चंचल बालक। उ०—देखी बनबारी चंचल भारी। तदपि तपोधन मानी।—केशव (शब्द०)।

चंचल^२—संज्ञा पुं० १. हवा। वायु। २. रसिक। कामुक। ३. घोड़ा। उ०—अतरे मुकन कर्मध आपड़ियो चंचल सहित निजर लल चडियो।—रा० क०, पृ० ३३५। ४. [स्त्री० चंचला] व्यभिचारी (को०)।

चंचलता—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चलता] १. अस्थिरता । चपलता ।
१. नटसटी । करारत ।

चंचलताई^④—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चलता + हि० ई (प्रत्य०)]
२० 'चंचलता' ।

चंचला—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चला] १. लक्ष्मी । २. बिजली । ३. पिप्पली । ४. एक वर्षावृत्त जिसके प्रत्येक चरण में १६ अक्षर होते हैं (र ज र ज र ल—SIS ISI SIS ISI SIS) । इसका दूसरा नाम चित्र भी है । जैसे,—री चरा जुरो लसो कहीं गयो हूँ बिहाय । कुंज बीच मोहि तीय ग्वाल बाँसुरी बजाय । देखि गोपिका कहीं परी जु हृदि पुष्प माल । चंचला सखी गई बिलाय प्राजु नंदलाल ।

चंचलाई^④—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चल + हि० लाई (प्रत्य०)]
चपलता । चंचलता । अस्थिरता । चुलबुलाहट ।

चंचलाख्य—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चलाख्य] एक सुगंधित पदार्थ [को०] ।

चंचलाविशय उक्ति^④—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चलाविशयोक्ति] २० 'प्रतिशयोक्ति' । उ०—बरनन हेतु प्रसक्ति से उपजत है जहाँ काज । चंचलाविशय उक्ति तहँ बरनत है कबिराज ।—मति
श्रं०, पृ० ३८८ ।

चंचलास्य—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चलास्य] एक सुगंधित द्रव्य ।

चंचलाहट—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चल + हि० आहट (प्रत्य०)]
२० 'चंचलता' ।

चंचली—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चली] चंचरी नामक वर्षावृत्त । वि० ३०
'चंचरी—४' ।

चंचा—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चा] १. घास फूस या बेत आदि का पुतला जिसे खेतों में पशियों आदि को डराने के लिये गाड़ते हैं । २. बेत की बनी हुई कोई चीज जैसे चटाई आदि [को०] । ३. निकम्मा या सारहीन व्यक्ति [को०] ।

चौ०—चञ्चापुरुष (१) घास फूस या बेत आदि का पुतला जो खेतों में जानवरों आदि को डराने रोकने के लिये रख दिया जाता है । (२) निःसार व्यक्ति । तुच्छ व्यक्ति ।

चंचु^१—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चु] १. एक प्रकार का साग । चेंच ।

विशेष—यह बरसात में उत्पन्न होता है और इसमें पीले पीले फूल और छोटी छोटी फलियाँ लगती हैं । यह कई तरह का होता है । वैद्यक में यह शीतल, सारक, पिच्छिल और बलकारक माना जाता है ।

२. रेंड का पेड़ । ३. घृण । हिरन ।

चंचु^२—वि० १. स्यात । प्रसिद्ध । यशस्वी । २. दक्ष । कुशल ।
जैसे,—अक्षरचंचु [को०] ।

चंचु^३—संज्ञा स्त्री० चिड़ियों की चोंच ।

चंचुका—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चुका] चोंच ।

चंचुपत्र—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चुपत्र] चोंच का साग ।

चंचुपुट—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चुपुट] चोंच । डोर ।

चंचुपुटी—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चुपुटी] २० 'चंचुपुट' । उ०—एथो

कुंदर वन स्याति की माई । चातक चंचुपुटी न समाई ।—
नंद० श्रं०, पृ० १२८ ।

चंचुप्रवेश—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चुप्रवेश] किसी विषय का थोड़ा ज्ञान ।
साधारण या अल्पज्ञान [को०] ।

चंचुप्रहार—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चुप्रहार] चोंच से प्रहार करना ।
चोंच से मारना [को०] ।

चंचुभृत्—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चुभृत्] पक्षी ।

चंचुमान्—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चुमान्] पक्षी ।

चंचुर^१—वि० [सं० चञ्चुर] दक्ष । निपुण ।

चंचुर^२—संज्ञा पुं० चोंच का साग ।

चंचुल—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चुल] हरिवंश के अनुसार विश्वामित्र के
एक पुत्र का नाम ।

चंचुसूची—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चुसूची] हंस की जाति की एक चिड़िया ।
एक प्रकार का बत्ताख । कारंडव पक्षी ।

चंचू—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चू] चोंच [को०] ।

चंचूर्यमाण—वि० [सं० चञ्चूर्यमाण] [वि० स्त्री० चंचूर्यमाण] अभद्रता-
पूर्वक संकेत या ह्मारा करनेवाला [को०] ।

चंड—वि० [सं० चण्ड] १. चालाक । होशियार । सयाना । २. धूर्त ।
छेटा हुआ । चालबाज ।

चंड^१—वि० [सं० चण्ड] [वि० स्त्री० चंडा] १. तेज । तीक्ष्ण । उग्र ।
प्रसर । प्रबल । घोर । २. बलवान् । दुर्दमनीय । ३. कठोर
कठिन । बिकट । ४. उग्र स्वभाव का । उदत । क्रोधी ।
गुस्सावर । ५. जिसके लिए के अभद्रता का चमड़ा कटा हो
[को०] । ६. उष्ण । तप्त । जैसे,—चंडांगु [को०] । ७. तेज ।
स्फूर्तिमान [को०] ।

चंड^२—संज्ञा पुं० १. ताप । गरमी । २. एक यमवृत्त । ३. एक दैत्य
जिसे दुर्गा ने मारा था । ४. कात्तिकेय । ५. एक शिवगण । ६.
एक भैरव । ७. इमली का पेड़ । ८. विष्णु का एक पारिवर्त ।
९. राम की सेना का एक बंदर । १०. सम्राट् पृथ्वीराज का
एक सामंत जिसे साधारण लोग 'चोड़ा' कहते थे । इसका
नाम चामुंड राय था । ११. पुराणों के अनुसार कुबेर के आठ
पुत्रों में से एक ।

विशेष—यह शिवपूजन के लिये सूँघकर फूल लाया था, और
इसी पर पिता के शाप से जन्मांतर में कंस का भाई हुआ था
और कृष्ण के हाथ से मारा गया था ।

१२. शिव [को०] । १३. क्रोध । आवेश [को०] ।

चंडकर—संज्ञा पुं० [सं० चण्डकर] तीक्ष्ण किरणवाला—सूर्य । उ०—
जयति धय बासकपि केलि कीतुक उदित चंडकर मंडल प्रास-
कर्ता ।—तुलसी श्रं०, पृ० ४६६ ।

चंडकौशिक—संज्ञा पुं० [सं० चण्डकौशिक] १. एक मुनि का नाम ।
२. एक नाटक जिसमें विश्वामित्र और हरिश्चंद्र की कथा
है । ३. जैन पुराणानुसार एक विषधर साँप ।

विशेष—इसने महावीर स्वामी के दर्शन कर इसना आदि छोड़
दिया था और बिल में मुँह डाले पड़ा रहता था । यहाँ तक

कि जब उसे चींटियों ने घेरा, तब भी उसने उनके दबने के डर से करवट तक न बढ़ती।

चंडवा—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डवा] १. उपता। प्रबलता। चोरता।
२. बल। प्रताप। उ०—तुलसी लखन राम रावन विबुध विधि चक्रपाणि चंडीपति चंडता सिंहात है।—तुलसी (शब्द०)।

चंडतुंडक—संज्ञा पुं० [सं० चण्डतुण्डक] गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

चंडत्व—संज्ञा पुं० [सं० चण्डत्व] उपता। प्रबलता।

चंडवीधिति—संज्ञा पुं० [सं० चण्डवीधिति] सूर्य।

चंडनायिका—संज्ञा स्त्री [सं० चण्डनायिका] १. दुर्गा। २. तांत्रिकों की अष्टनायिकाओं में से एक जो दुर्गा की सखी मानी जाती है।

चंडभानु—संज्ञा पुं० [सं० चण्डभानु] दे० 'चंडकर' [को०]।

चंडभार्गव—संज्ञा पुं० [सं० चण्डभार्गव] ज्यवनवंशी एक ऋषि।

विशेष—यह महाराज जनमेजय के सपर्यय के होता थे।

चंडमुंड—संज्ञा पुं० [सं० चण्डमुण्ड] दो राक्षसों के नाम जो देवी के हाथों से मारे गए थे।

चंडमुंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डमुण्डा] चामुंडा देवी।

चंडमुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डमुण्डी] महास्थान स्थित तांत्रिकों की एक देवी।

चंडरश्मि—संज्ञा पुं० [सं० चण्डरश्मि] सूर्य [को०]।

चंडरसा—संज्ञा पुं० [सं० चण्डरसा] एक वरुणवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक यगण होता है। इसी को चौबंसा, शशिवदना और पादांकुलक भी कहते हैं। जैसे,—नय धरु एका. न धनेका। गहु पन साखो, शशिवदना सो।

चंडरुद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डरुद्रिका] तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार की सिद्धि जो अष्ट नायिकाओं के पूजन से प्राप्त होती है।

चंडरूपा—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डरूपा] एक देवी [को०]।

चंडवान—वि० [सं० चण्डवान] [वि० स्त्री० चंडवती] १. उग्र। २. उग्र। प्रखर [को०]।

चंडवती—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डवती] १. दुर्गा। २. अष्ट नायिकाओं में से एक।

चंडघात—संज्ञा पुं० [सं० चण्डघात] तेज चलनेवाली हवा जिसके भीष में कभी कभी पानी भी बरसता हो [को०]।

चंडविक्रम—वि० [सं० चण्डविक्रम] बहुत अधिक शक्तिवाला। प्रचंड शक्तिवाला [को०]।

चंडवृत्ति—वि० [सं० चण्डवृत्ति] १. विद्रोह करनेवाला। विद्रोही। २. जिद्दी। हठी [को०]।

चंडवृष्टिप्रपात—संज्ञा पुं० [सं० चण्डवृष्टिप्रपात] एक दंडक वृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण (॥॥) और सात रगण (॥॥॥) होते हैं। जैसे,—न नर गिरि धरे झूलि कै राख जो चंडवृष्टि प्रपाताकुले गोकुले।

चंडशक्ति—वि० [सं० चण्डशक्ति] दे० 'चंडविक्रम' [को०]।

चंडशक्ति—संज्ञा पुं० बलि की सेना के एक दानव का नाम [को०]।

चंडरील—वि० [सं० चण्डरील] कामी [को०]।

चंडांशु—संज्ञा पुं० [सं० चण्डांशु] तीक्ष्ण किरणवाला सूर्य। उ०—मरे घतर के प्रमल बिराजत कनक पराता। चार चंद्र चंडांशु अकारहि बार विविध भवदाता।—रघुराज (शब्द०)।

चंडा—वि० स्त्री० [सं० चण्डा] उग्र स्वभाव की। कर्कशा। दे० 'चंड'।

चंडा—संज्ञा स्त्री० १. अष्टनायिकाओं में से एक। दुर्गा। २. चोर नामक गंधद्रव्य। ३. केवाच। कौछ। ४. सफेद दूब। ५. सोफ। ६. सोवा। ७. एक प्राचीन नदी का नाम।

चंडाई—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डाई] १. उतावलापन। २. नीघ्रता। ३. उपद्रव। प्रत्याचार [को०]।

चंडात—संज्ञा पुं० [सं० चण्डात] १. एक सुगंधित घास या पौधा। २. सुगंधयुक्त करवीर [को०]।

चंडासक—संज्ञा पुं० [सं० चण्डासक] १. स्त्रियों की चोली या कुरता। २. लहंगा। साया [को०]।

चंडाल—संज्ञा पुं० [सं० चण्डाल] [स्त्री० चंडालिन, चंडालिनी] १. चंडाल। स्वपच। डोम। वि० दे० 'चंडाल'। २. एक वर्ण-संकर जाति जिसकी उत्पत्ति बृह पितृ और ब्राह्मणी से मानी जाती है [को०]। ३. इस जाति का व्यक्ति [को०]।

चंडाल—वि० नीच कर्म करनेवाला। क्रूर कर्म करनेवाला [को०]।

चंडालकंद—संज्ञा पुं० [सं० चण्डालकंद] एक कंद।

विशेष—यह कफ-पित्त-नाशक, रक्तशोधक और विषघ्न माना जाता है। पत्तियों की संख्या के हिसाब से इसके पाँच भेद माने गए हैं।

चंडालता—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डालता] १. चंडाल होने का भाव। २. नीचता। अवमता।

चंडालत्व—संज्ञा पुं० [सं० चण्डालत्व] दे० 'चंडालता'।

चंडालपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० चण्डालपक्षिन्] काक। कौवा। उ०—सठ स्वपक्ष तब हृदय बिसाल। सपदि होहि पक्षी चंडाला।—मानस, ७।१।२।

चंडालबाह—संज्ञा पुं० [हि० चंडाल + बाल] वह कड़ा और मोटा बाल जो किसी के माथे पर निकल आता है और बहुत अशुभ माना जाता है।

चंडालवल्लकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डालवल्लकी] दे० 'चंडाल-वीणा'।

चंडालवीणा—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डालवीणा] एक प्रकार का तंबूरा या चिकारा।

चंडालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डालिका] १. दुर्गा। २. चंडाल-वीणा। ३. एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ प्रादि दवा के काम में आती हैं।

चंडालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डालिनी] १. चंडाल वर्ण की स्त्री। २. दुष्टा स्त्री। पापिनी स्त्री। ३. एक प्रकार का बोझा जो

वृषित माना जाता है। जिस बोहे के आदि में जगण पड़े, उसको चंडालिनी बोहा कहते हैं। जैसे,—जहाँ विषम चरमनि परे, कहूँ जगण जो भान। बखानना, चंडालिनी, बोहा पुन की खान।

विशेष—प्रथम और तृतीय चरण के आदि के एक ही शब्द में जगण पड़े तो वृषित है। यदि आदि के शब्द में जगण पूरा न हो और दूसरे शब्द से अक्षर लेना पड़े, तो उसमें दोष नहीं है। पर यदि यह भी बचाया जा सके, तो और भी उत्तम है।

चंडावल—संज्ञा पुं० [सं० चण्ड + आवलि] १. सेना के पीछे का भाग। पीछे रहनेवाले सिपाही। 'हरावल' का उलटा। चंडावल। २. बोर योद्धा। बहादुर सिपाही। ३. संतरी। पहरेदार। चौकीदार।

चंडाह—संज्ञा पुं० [देश०] गाढे की तरह का एक मोटा कपड़ा।

चंडि—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डि] दे० 'चंडिका' [को०]।

चंडिआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का देशी लोहा।

चंडिक—वि० [सं० चण्डिक] १. कर्कश स्वरवाला। २. जिसके लिए के अग्रभाग का चमड़ा कटा हो [को०]।

चंडिकघंट—संज्ञा पुं० [सं० चण्डिकघण्ट] शिव। महादेव।

चंडिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डिका] १. दुर्गा। २. लडाकी स्त्री। कर्कशा स्त्री। ३. गायत्री देवी।

चंडिका^२—वि० स्त्री० लडाकी। कर्कशा।

चंडिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डिमन्] १. आवेश। उग्रता। तीक्ष्णता। क्रोध। २. उग्रता। गर्मी। ताप [को०]।

चंडिल—संज्ञा पुं० [सं० चण्डिल] १. रुद्र। २. बभ्रुआ का साग। ३. हज्जाम। नाई [को०]।

चंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डो] १. दुर्गा का वह रूप जो उन्होंने महिषासुर के वध के लिये धारण किया था और जिसकी कथा मार्कंडेय पुराण में लिखी है। दुर्गा। २. कर्कशा और उग्र स्त्री। ३. तेरह अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसमें दो सगण और एक गुरु होता है। जैसे,—न नमु सिगरि नर। आयु तु अल्पा। निसि दिन भजत विलासिनी तल्पा। कुबुध कुजन अथ अघन खंडी। भजहु भजहु जनपालिनी चंडी।

चंडोकुसुम—संज्ञा पुं० [सं० चण्डोकुसुम] साल कनेर।

चंडीपति—संज्ञा पुं० [सं० चण्डोपति] शिव। महादेव।

चंडीश—संज्ञा पुं० [सं० चण्डोश] शिव।

चंडीश्वर—संज्ञा पुं० [सं० चण्डोश्वर] शिव। महादेव [को०]।

चंडीसुर—संज्ञा पुं० [सं० चण्डोश्वर] एक तीर्थ का नाम।

चंडु—संज्ञा पुं० [सं० चण्डु] १. चूहा। २. एक प्रकार का छोटा बंदर।

चंडू—संज्ञा पुं० [सं० चण्ड (= तीक्ष्ण) ?] अफीम का किस्म जिसका घुमा नसे के लिये एक नली के द्वारा पीते हैं।

कि० प्र०—पीना।

विशेष—पीनी लोग चंडू बहुत पीते थे। अफगानिस्तान से

चंडू बनकर हिंदुस्तान में आता है। वहाँ चंडू बनाने के लिये अफीम को सरल करके कई बार ताव दे देकर छानते हैं।

चंडूखाना—संज्ञा पुं० [हि० चंडू + खाना] वह घर या स्थान जहाँ लोग इकट्ठे होकर चंडू पीते हैं।

मुहा०—चंडूखाने की गप = मतवालों की झूठी बकवाद। बिल-कुल झूठी बात।

चंडूबाज—संज्ञा पुं० [हि० चंडू + बाज (प्रत्य०)] चंडू पीने-वाला। चंडू पीने का व्यसनी।

चंडूल—संज्ञा पुं० [देश०] १. खाकी रंग की एक छोटी चिट्ठिया।

विशेष—यह पेड़ों और झाड़ियों में बहुत सुंदर घोंसला बनाती है और बहुत अच्छा बोलती है।

मुहा०—पुराना चंडूल = बेडोल, भद्दा या बेवकूफ आदमी।—(बाजारू)।

चंडेरवर—संज्ञा पुं० [सं० चण्डेश्वर] रक्तवर्ण शरीरधारी शिव का एक रूप।

चंडोघा—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डोघा] दुर्गा की एक शक्ति [को०]।

चंडोदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डोदरी] एक राक्षसी जिसे रावण ने सीता को समझाने के लिये नियत किया था।

चंडोल—संज्ञा पुं० [सं० चण्ड + दोल] १. प्रकार की पालकी जो हाथी के होदे या अंबारी के आकार की होती है और जिसे चार आदमी उठाते हैं। २. मिट्टी का एक खिलौना जिसे चौपड़ा भी कहते हैं। उ०—तीन एक चंडोल में, रेवास गाह कबीर।—कबीर मं०, पृ० १२१।

चंडोला—संज्ञा पुं० [हि० चंडोल] पालकी। मियाना। सड़कड़िया। **कि० प्र०**—चढ़ना = किसी कन्या का विवाह के बाद पालकी पर ससुराल जाना।

चंडोली—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्डोली] मेघराग की एक रागिनी। उ०—बोरा घर गज अथ केवारा। चंडोली घर नित उजियारा।—माधवानल०, पृ० १६४।

चंडोली^२—संज्ञा स्त्री० [हि० चंडोल का स्त्री०] पालकी।

चंद^१—संज्ञा पुं० [सं० चण्ड] १. दे० 'चंद्र'। २. एक राग। **कि० प्र०**—चंदक। उ०—रामसरी खुमरी लागी रट धूया माछा चंद धरू।—बेलि०, दू० २४६। ३. हिंदी के एक प्राचीन कवि।

विशेष—ये दिल्ली के अंतिम हिंदू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की सभा में थे। इनका बनाया हुआ पृथ्वीराज रासो बहुत बड़ा काव्य है। ये लाहौर के रहनेवाले थे।

चंद^२—संज्ञा पुं० [सं० चण्ड] १. चंद्रमा। २. कपूर [को०]।

चंद^३—वि० [क्रा०] १. थोड़े से। कुछ। जैसे,—अभी उन्हें आए चंद रोज हुए हैं। २. कई एक। कुछ। जैसे,—चंद आदमी वहाँ बैठे हैं।

यौ०—चंद दर चंद = कुछ न कुछ। उ०—हर काम के आगाज में चंद दर चंद नुस्स नुमायी होते हैं।—श्रीनिवास प्र०, पृ० ३२। **चंदरोजा** = अस्थायी। थोड़े दिनों का। उ०—यह झूठी कलाई की हुई मनोहर हमारत चंद रोजा नुमाइश के लिये...।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० १६८।

चंदन—संज्ञा पुं० [सं० चन्दन] १. चंदमा । २. चांदनी । ३. एक प्रकार की छोटी चमकीली मछली । चांद मछली । ४. माथे पर पहनने का एक प्रदंडाकार गहना ।

विशेष—इसके बीच में नग और किनारे पर मोती जड़े रहते हैं । सिर में यह तीन जगह से बंधा रहता है ।

५. नथ में पान के आकार की बनावट जिसमें उसी आकार का नग या हीरा बैठाया रहता है और किनारे पर छोटे छोटे मोती जड़े रहते हैं ।

चंदनपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० चन्दनपुष्प] १. लीग । २. दे० 'चंद्रकला' ।

चंदनचूड़—संज्ञा पुं० [सं० चन्दनचूड़] शिव [को०] ।

चंदनचूर—संज्ञा पुं० [सं० चन्दनचूर] शिव ।

चंदनचर—संज्ञा पुं० [सं० चन्दनचर] ध्रुपद राग का एक भाग [को०] ।

चंदन—संज्ञा पुं० [सं० चन्दन] १. एक पेड़ जिसके हीर की लकड़ी बहुत सुगंधित होती है और जो दक्षिण भारत के मैसूर, कुर्ग, हैदराबाद, कर्नाटक, नीलगिरि, पश्चिमी घाट आदि स्थानों में बहुत होता है । उत्तर भारत में भी कहीं कहीं यह पेड़ लगाया जाता है । चंदन की लकड़ी औषध तथा इत्र, तेल आदि बनाने के काम में आती है । हिंदू लोग इसे घिसकर इसका तिलक लगाते हैं और देवपूजन आदि में इसका व्यवहार करते हैं ।

विशेष—चंदन की कई जातियाँ होती हैं जिनमें से मलयागिरि या श्रीखंड (सफेद चंदन) ही असली चंदन समझा जाता है और सबसे सुगंधित होता है । इसका पेड़ २०, ३० फुट ऊँचा और सवाबहार होता है । पत्तियाँ इसकी डेढ़ इंच लंबी और बेल की पत्तियों के आकार की होती हैं । फूल पत्तियों से अलग निकली हुई टहनियों में तीन तीन चार चार के गुच्छों में लगते हैं । यह पेड़ प्रायः सूखे स्थानों में ही होता है । इसके हीर की लकड़ी कुछ मटमैलापन लिए सफेद होती है जिसमें से बड़ी सुंदर महक निकलती है । यह महक, एक प्रकार के तेल की होती है जो लकड़ी के अंदर होता है । जब में यह तेल सबसे अधिक होता है, इससे तेल या इत्र खींचने के लिये इसकी जड़ की बड़ी माँग रहती है । चंदन की लकड़ी से बीखटे, नक्काशीदार संदूक आदि बहुत से सामान बनते हैं जिनमें सुगंध के कारण घुन नहीं लगता । हिंदू लोग इसकी लकड़ी को पत्थर पर पानी के साथ घिसकर तिलक लगाते हैं । इसका बुरादा धूप के समान सुगंध के लिये जलाया जाता है । चीन, बर्मा आदि देशों के मंदिरों में चंदन के बुरादे की धूप बहुत जलती है । चंदन का पेड़ वास्तव में उस जाति के पेड़ों में है, जो दूसरे पौधों के रस से अपना पोषण करते हैं (जेटे, —बाँदा, कुदुरपुता आदि) । इसी से यह घास, पौधों और छोटी छोटी झाड़ियों के बीच में अधिक उगता है । कौन कौन पौधे इसके आहार के लिये अधिक उपयुक्त होते हैं, इसका ठीक ठीक पता न चलने से इसे लगाने में कभी कभी उतनी सफलता नहीं होती । यों ही अच्छी उपजाऊ जमीन में लगा देने से पेड़ बढ़ता तो ज़रा है, पर उसकी लकड़ी में उतनी सुगंध नहीं होती ।

सरकारी जंगल विभाग के एक अनुमयी अफसर की राय है कि चंदन के पेड़ के नीचे खूब घास पात उगने देना चाहिए, उसे काटना न चाहिए । घास पात के जंगल के बीच में बीच पड़ने से जो बीघा उगेगा और बढ़ेगा, उसकी लकड़ी में अच्छी सुगंध होगी । श्रीखंड या असली चंदन के सिवा और बहुत से पेड़ हैं जिनकी लकड़ी चंदन कहलाती है । अजीवार (अफीका) से भी एक प्रकार का श्वेत चंदन आता है, जो मलयागिरि के समान व्यवहृत होता है । हमारे यहाँ रंग के अनुसार चंदन के कुछ भेद किए गए हैं । जैसे,—श्वेत चंदन, पीत चंदन, रक्त चंदन इत्यादि । श्वेत चंदन और पीत चंदन एक ही पेड़ से निकलते हैं । रक्त चंदन का पेड़ भिन्न होता है । उसकी लकड़ी कड़ी होती है और उसमें महक भी वैसी नहीं होती । निधंतुरत्नाकर आदि वैद्यक के ग्रंथों में चंदन के दो भेद किए गए हैं—एक वेष्ट, दूसरा सुकटि । मलयागिरि के अंतर्गत कुछ पर्वत हैं जो वेष्ट कहलाते हैं । अतः उन पर्वतों पर होनेवाले चंदन का भी उल्लेख है जिसे कैरातक भी कहते हैं । संभव है, यह किरात देश (आसाम और भूटान) से आता रहा हो । चंदन के विषय में अनेक प्रकार के प्रवाद लोगों में प्रचलित हैं । ऐसा कहा जाता है कि चंदन के पेड़ में बड़े बड़े साँप लिपटे रहते हैं । चंदन अपनी सुगंध के लिये बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है । अरब-वाले पहले भारतवर्ष, लंका आदि से चंदन पश्चिम के देशों में ले जाते थे । भारतवर्ष में यद्यपि दक्षिण ही की ओर चंदन विशेष होता है, तथापि उसके इत्र और तेल के कारखाने कलौज ही में हैं । पहले लखनऊ और जौनपुर में भी कारखाने थे । तेल निकालने के लिये चंदन को खूब महीन कूटते हैं । फिर इस बुकनी को दो दिन तक पानी में भिगोकर उसे भभके पर चढ़ाते हैं । भाप होकर जो पानी टपकता है, उसके ऊपर तेल तैरने लगता है । इसी तेल को काछकर रख लेते हैं । एक मन चंदन में से २ से ३ सेर तक तेल निकलता है । अच्छे चंदन का तेल मलयागिरि कहलाता है और घटिया तेल का कठिया या जहाजी । चंदन औषध के काम में भी बहुत आता है । क्षत या घाव इससे बहुत जल्दी सूखते हैं । वैद्यक में चंदन शीतल और कड़ुआ तथा दाह, पित्त, ज्वर, छिदि, मोह, तृषा आदि को दूर करनेवाला माना जाता है ।

पर्याय—श्रीखंड । चंद्रकांत । गोशीर्ष । भोगिवल्लभ । मद्रसार । मलयज । गंधसार । भद्रश्री । एकांग । पटरी । वरुण । मद्राश्रय । सेव्य । रोहिण । ग्राम्य । सर्पेष्ट । पीतसार । महर्ष । मलयोद्भव । गंधराज । सुगंध । सर्पावास । शीतल । शीतगंध । तैलपणिक । चंद्रद्युति । सितहिम, इत्यादि ।

२. चंदन की लकड़ी । चंदन की लकड़ी या टुकड़ा ।

क्रि० प्र०—घिसना ।—रगड़ना ।

मुहा०—चंदन उतारना = पानी के साथ चंदन की लकड़ी को घिसना जिससे उसका अंश पानी में घुल जाय ।

३. वह लेप जो पानी के साथ चंदन को घिसने से बने । जिसे हुए चंदन का लेप ।

मुहा०—चंदन बढ़ाना = धिसे हुए चंदन को शरीर में लगाना ।

४. गंधपसार । पसरन । ५. राम की सेना का एक बंदर । ६. छप्पय छंब के तेरहवें भेद का नाम । ७. एक प्रकार का बड़ा तोता ।

विशेष—यह उत्तरीय भारत, मध्य भारत, हिमालय की तराई और काँगड़े आदि में पाया जाता है ।

चंदनगिरि—संज्ञा पुं० [सं० चन्दनगिरि] मलयाचल पर्वत ।

चंदनगोपा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्दनगोपा] अनंतमूल नामक लता [को०] ।

चंदनगोह—संज्ञा पुं० [हिं० चंदन + गोह] एक प्रकार की गोह जो बहुत छोटी होती है ।

चंदनधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्दनधेनु] वह गाय जो पुत्र द्वारा सीमाग्यवती भूत माता के उद्देश्य से चंदन से अंकित करके दी जाती है ।

विशेष—यह दान वृषोत्सर्ग के स्थान में होता है; क्योंकि पिता की उपस्थिति में पुत्र को वृषोत्सर्ग का अधिकार नहीं होता ।

चंदनपुष्प—संज्ञा पुं० [सं० चन्दनपुष्प] १. चंदन का फूल । २. लौंग । लवंग ।

चंदनबाधना—संज्ञा पुं० [हिं० चंदन + बाधना = बाधन] चंदन बिरवा । उ०—साधू चंदन बाधना, (जाके) एक राम की भास ।—दरिया० बानी, पृ० ३३ ।

चंदनयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्दनयात्रा] अक्षयतृतीया । वैशाख सुदी तीज । मल्ल तीज ।

चंदनवती^१—वि० स्त्री० [सं० चन्दनवती] चंदन से युक्त ।

चंदनवती^२—संज्ञा स्त्री० केरल देश की भूमि ।

चंदनशारिवा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्दनशारिवा] एक प्रकार की शारिवा जिसमें चंदन की सी सुगंध होती है ।

चंदनसार—संज्ञा पुं० [सं० चन्दनसार] १. वज्रसार । नीसादर । २. घिसा हुआ चंदन ।

चंदनहार—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र + हिं० हार] गले में पहनने की एक प्रकार की माला जो कई तरह की होती है । वि० दे० 'चंद्रहार' ।

चंदना^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्दना] चंदनशारिवा ।

चंदना^२—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमस] चंद्रमा ।

चंदना^३—क्रि० स० [सं० चन्दन] चंदन का लेपन करना । शरीर में चंदन पोतना ।

चंदनादि—संज्ञा पुं० [सं० चन्दनादि] चंदन, खस, कपूर, बकुची, इलायची आदि पित्तनाशक दवाओं का वर्ग ।

चंदनादि तैल—संज्ञा पुं० [सं० चन्दनादि तैल] लाल चंदन के योग से बनेवाला आयुर्वेद में एक प्रसिद्ध तैल ।

विशेष—यह तैल शरीर के अनेक रोगों पर चसता है और शरीर में नई कांति लानेवाला माना जाता है । रक्त चंदन, अमर, देवदारु, पपकाठ, इलायची, केसर, कपूर, कस्तूरी, जाय-फल, शीतल जीनी, दाखचीनी, नागकेसर इत्यादि को पानी के

साथ पीसकर तैल में पकाते हैं और पानी के जख जाने पर तैल छान लेते हैं ।

चंदनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्दनी] एक नदी का नाम जिसका उल्लेख रामायण में है ।

चंदनी^२—संज्ञा स्त्री० [हिं० चंदनी] दे० 'चंदनी' । उ०—चमकते सनाहं उपमा सु चंडी । मनो चंदनी रैन प्रतिव्यंभ मंडी ।—पृ० रा०, २४।१०६ ।

चंदनी^३—वि० [सं० चन्दनिन्] चंदन से संबंधित (को०) ।

चंदनी^४—संज्ञा पुं० शिव (को०) ।

चंदनीया—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रनीया] गोरोचन ।

चंदपखान—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रपाखण] दे० 'चंद्रकांत' । उ०—चंद की चंदनी के परसे मनो चंदपखान पहार बसे खे ।—मति० ग्रं०, पृ० ३४४ ।

चंदबान—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रबाण] एक प्रकार का बाण । उ०—बले चंदबान, धनबान और कुहकबान ।—ध्रुवण (शब्द०) ।

विशेष—इस बाण के सिरे पर लोहे की अर्धचंद्राकार गांसी या फल लगा रहता है । इस बाण को उस समय काम में लाते हैं, जब किसी का सिर काटना होता है ।

चंदबि—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र + हिं० वि०] मोरचंद्रिका । उ०—मोरनि नव तन चंदबि धारे । देखि देखि द्य होत दुखारे ।—नंद० ग्रं०, पृ० १६४ ।

चंदसिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रसी] एक प्रकार का बड़ा गहना जो हाथी के मस्तक पर पहनाया जाता है ।

चंदौ—वि० [क्रा०] १. इतना । २. बहुत । अधिक ।

चंदा^१—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र या चन्दा] चंद्रमा । उ०—ज्यों चकोर चंदा को निरखे इत उत दृष्टि न जाहि । सूर ग्याम बिन छिन छिन युग सभ क्यों करि रैन बिहौहि ।—सूर (शब्द०) ।

यौ०—चंदामामा = लड़कों को बहलाने का एक पद । जैसे,—'चंदा मामा दौड़ि आ । दूध भरी कटोरिया' इत्यादि ।

चंदा^२—संज्ञा पुं० [फा० चंड (= कई एक)] १. वह थोड़ा थोड़ा धन जो कई एक आदमियों से उनके इच्छानुसार किसी कार्य के लिये लिया जाय । बेहरी । उगाहो । बरार । २. किसी सामयिक पत्र या पुस्तक आदि का वार्षिक या मासिक मूल्य । ३. वह धन जो किसी समा, सोसाइटी आदि को उसके सदस्यों या सहायकों द्वारा नियत समय पर दिया जाता है ।

चंदावत—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र] क्षत्रियों की एक जाति या शाखा ।

चंदावती—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रावती] श्री राग की सहचरी एक रागिनी ।

चंदावख—संज्ञा पुं० [फा०] सेना के पीछे रक्षाबंध चलनेवाले सैनिक । चंदावल ।

चंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रिका] दे० 'चंद्रिका' ।

चंदिनि, चंदिनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्र] चंदनी । चंद्रिका । उ०—चैत चतुरदसी चंदिनि अमल उदित निसिराजु । उड़न अवलि जसी दस दिसि समगत आनंद आधु ।—दुसरी (शब्द०) ।

चंद्रिनि, चंद्रिनी—वि० चांदनी। उजेली। उ०—सिंहहि सुहाय न भवष बभावा। चोरहि चंद्रिनि रात न भावा।—तुलसी (शब्द०)।

चंद्रिर—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रिर] १. चंद्रमा। उ०—(क) रम्यो विभवकर्मा सो मंदिर। परम प्रकाशित मानहु चंद्रिर।—रघुराज (शब्द०)। (ख) हम कलश कल कोट कंगूरे।—कहु मंदिर चंद्रिर सम करे।—रघुराज (शब्द०) २. हाथी। ३. कपूर [को०]।

चंद्रिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रिर] चांदनी। ज्योत्स्ना। उ०—भारविया चंद्रिरा सी, कोन है कर भय जो भवभार मुझपर हासती।—अग्नि०, पृ० २५।

चंदे—अव्य [क्रा०] कुछ दिन। थोड़ा समय।

चंदेरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चंदेरी] दे० 'चंदेरी'।

चंदेरीपति—संज्ञा पुं० [हि० चंदेरी+पति] दे० 'चंदेरीपति'।

चंदेल—संज्ञा पुं० [सं० चन्देल] क्षत्रियों की एक शाखा जो किसी समय कालिंजर और महोबे में राज्य करती थी। परमहिंदेव या राजा परमाल इसी वंश के थे, जिनके सामंत बाल्हा और ऊबल प्रसिद्ध हैं। संस्कृत लेखों में यह वंश चंद्रात्रेय के नाम से प्रसिद्ध है।

विशेष—चंदेलों की उत्पत्ति के विषय में यह कथा प्रसिद्ध है कि काशी के राजा इंद्रजित् के पुरोहित हेमराज की कन्या हेमवती बड़ी सुंदरी थी। वह एक कुंड में स्नान कर रही थी। इसी बीच में चंद्रदेव ने उसपर आसक्त होकर उसे आलिंगन किया। हेमवती ने जब बहुत कोप प्रकट किया, तब चंद्रदेव ने कहा 'मुझसे तुम्हें जो पुत्र होगा, वह बड़ा प्रतापी राजा होगा और उसका राजवंश चलेगा'। जब उसे कुमारी अवस्था ही में गर्भ रह गया, तब चंद्रमा के आदेशानुसार उसने अपने पुत्र को ले जाकर खजुराहो के राजा को दिया। राजा ने उसका नाम चंद्रवर्मा रखा। कहते हैं कि चंद्रमा ने राजा के लिये एक पारस पत्थर दिया था। पुत्र बड़ा प्रतापी हुआ। उसने महोबा नगर बसाया और कालिंजर का किला बनवाया। खजुराहो के शिलालेखों में लिखा है कि मरीचि के पुत्र अत्रि को चंद्रात्रेय नाम का एक पुत्र था। उसी के नाम पर यह चंद्रात्रेय नाम का वंश चला। सन् ६०० ईसवी से लेकर १५५५ तक इस वंश का प्रबल राज्य बुंदेलखंड और मध्य भारत में रहा। परमहिंदेव के समय से इस वंश का प्रताप घटने लगा।

चंदोख—संज्ञा पुं० [क्रा० चंदावल] दे० 'चंदावल'। उ०—तुंगतन अकंपन देख बड़ तोलगा, दस बदन मुसाहिब किया चंदोखरा।—रघु० क०, पृ० १८५।

चंदोवा—संज्ञा पुं० [हि० चंदवा] दे० 'चंदवा'। उ०—पाँच भंडे धातु के होई। सोरह हाथ चंदोवा सोई।—कबीर सा०, पृ० ८८४।

चंद्र—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र] १. चंद्रमा।

विशेष—समास में इस शब्द का प्रयोग बहुत अधिक होता है।

जैसे,—मुखचंद्र, चंद्रमुखी। कहीं कहीं यह श्रेष्ठ का अर्थ भी देता है। जैसे,—पुरुषचंद्र। वि० दे० 'चंद्रमा'।

२. संख्या सूचित करने की काव्यशैली में एक की संख्या। ३. मोर की पूँछ की चंद्रिका। उ०—मदन मोर के चंद्र की झलकनि निदग्नि तन जोति।—तुलसी (शब्द०)। ४. कपूर। ५. जल। ६. सोना। स्वर्ण। ७. रोचनी नाम का पौधा। ८. पौराणिक भूगोल के १८ उपद्वीपों में से एक। ९. वह बिंदी जो सानुनासिक वरुण के ऊपर लगाई जाती है। १०. लाल रंग का मोती। ११. विंगम में टगण का दसवाँ भेद (॥ ५ ॥)। जैसे—पुर्लीघर। १२. हीरा। १३. युगधारा नक्षत्र। १४. कोई आनंददायक वस्तु। हर्षकारक वस्तु। आल्हादजनक वस्तु। १५. नेपाल का एक पर्वत। १६. चंद्रमागा में गिरनेवाली एक नदी। १७. अर्ध विसर्ग का चिह्न (को०)। १८. लाल या रक्तवर्ण मोती (को०)। १९. सुंदर वस्तु (को०)।

चंद्र—वि० १. आह्लादजनक। आनंददायक। २. सुंदर। रमणीय। **चंद्रक**—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रक] १. चंद्रमा। २. चंद्रमा के ऐसा मंडल या घेरा। ३. चंद्रिका। चांदनी। ४. मोर की पूँछ की चंद्रिका। ५. नहें। नायून। ६. एक प्रकार की मछली। ७. कपूर। उ०—करि उपचार यकी वही बलि उताल नैवतब। चंद्रक चंदन चंद तें ज्वान जगी बीचंद।—शृं० सत० (शब्द०)। ८. मालकोश राग का एक पुत्र (संगीत)। ९. सफेद मिर्च। १०. सहिजन।

चंद्रकन्यका—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रकन्यका] एला। इलायची। उ०—चंद्रकन्यका, निफुटी, त्रिपुटी पुलकनि बोली।—नंद० ग्रं०, पृ० १४६।

चंद्रकर—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकर] चंद्रिका। चांदनी। ज्योत्स्ना। चंद्रमा की किरण [को०]।

चंद्रकला—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रकला] १. चंद्रमंडल का सोलहवाँ अंश। वि० दे० 'कला'। २. चंद्रमा की किरण या ज्योति। उ०—अनि द्वेज की चंद्रकला अबला सो लला की सजीवन मूरि भई है।—सेवक (शब्द०)। ३. एक वर्णवृत्त जो आठ सगण और एक गुरु का होता है। इसका दूसरा नाम सुंदरी भी है। यह एक प्रकार का सवैया है। जैसे,—सब सों गहि पाणि मिले रघुनदन भेंटि कियो सब को बड़ भागी। ४. माथे पर पहनने का एक गहना। ५. छोटा ढोल। ६. एक प्रकार की मछली जिसे ब्या भो कहते हैं। ७. एक प्रकार की बेंगला मिठाई। ८. एक प्रकार का सातताला ताल।

विशेष—इसमें तीन गुरु और तीन प्लुत के बाद एक लघु होता है। इसका बोल यह है—तक्किट किट तक्किट किट चिक तां तां तं धिम धिम तां तां तं धिम धिक तां तां तं धिम धा।

९. नसाघात का चिह्न। नखप्रत (को०)।

चंद्रकवान्—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकवत्] मयूर। मोर।

चंद्रकलाघर—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकलाघर] महादेव।

चंद्रकांत—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकान्त] १. प्राचीन ग्रंथों के अनुसार एक मणि या रत्न।

विशेष—इसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह चंद्रमा के सामने करने से पसीजता है और इससे बूँद बूँद पानी टपकता है।

यौ०—चंद्रकांत मणि।

२. एक राग जो हिबोल राग का पुत्र माना जाता है। ३. चंदन।

४. कुमुद। कमल। ५. लक्ष्मण के पुत्र चंद्रकेतु की राजधानी का नाम।

चंद्रकांता—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रकान्ता] १. चंद्रमा का स्त्री। २. रात्रि। रात। ३. मल्लभूमि की एक नगरी जहाँ लक्ष्मण के पुत्र चंद्रकेतु राज्य करते थे। ४. पंद्रह अक्षरों की एक वर्णवृत्त।

चंद्रकांति—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रकान्ति] १. चाँदी। २. चाँदनी (को०)।

चंद्रकाम—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकाम] वह पीड़ा जो किसी पुरुष को उस समय होती है, जब कोई स्त्री उसे बलीभूत करने के लिये मंत्र तंत्र आदि का प्रयोग करती है।

चंद्रकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रकिन्] वह जिसे चंद्रक हो। मोर। मयूर।

चंद्रकुमार—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकुमार] १. चंद्रमा का पुत्र—बुध। २. बौद्धों के एक जातक का नाम।

चंद्रकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रकुल्या] काश्मीर की एक नदी का प्राचीन नाम।

चंद्रकूट—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकूट] कामरूप प्रदेश का एक पर्वत जिसका बहुत कुछ माहात्म्य कालिका पुराण में लिखा है।

चंद्रकूप—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकूप] काशी का एक प्रसिद्ध कुम्भा जो तीर्थ स्थान माना जाता है।

चंद्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकेतु] लक्ष्मण के एक पुत्र का नाम जिन्हें भरत के कहने से राम ने उत्तर का चंद्रकांत नामक प्रदेश दिया था।

चंद्रकीड—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रकीड] संगीत का एक ताल (को०)।

चंद्रक्षय—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रक्षय] अभावस्था।

चंद्रगिरि—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रगिरि] नेपाल का एक पर्वत।

विशेष—यह काठमांडू के पास है और इसकी ऊँचाई ८५०० फुट है।

चंद्रगुप्त—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रगुप्त] १. चित्रगुप्त जो यम की सभा में रहते हैं। २. मगध देश का प्रथम मौर्यवंशी राजा।

विशेष—इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी और इसने बलस्र के यूनानी (यवन) राजा सील्यूकस पर विजय प्राप्त करके उसकी कन्या ब्याही थी। कोटिल्य चाणक्य की सहायता से महानंद तथा और नंदवंशियों को मारकर इसने मगध का राजसिंहासन प्राप्त किया था, जिसकी कथा विष्णु, ब्रह्मा, स्कंद, भागवत आदि पुराणों में मिलती है। इसी कथा को लेकर संस्कृत का प्रसिद्ध नाटक मुद्राराक्षस बना है। चंद्रगुप्त बड़ा प्रतापी राजा था। इसने पंजाब आदि स्थानों से यवनों (यूनानियों) को निकाल दिया था। यह ईसा से ३२१ वर्ष पूर्व मगध के राजसिंहासन पर बैठा और २४ वर्ष तक राज्य करता रहा।

३. गुप्त वंश का एक बड़ा प्रतापी राजा।

१-४१

विशेष—इसे विक्रम या विक्रमादित्य भी कहते थे। इसका विवाह लिच्छवी राज की कन्या कुमारी देवी से हुआ था। शिलालेखों से जाना जाता है कि इस राजा ने सन् ३१८ के लगभग समस्त उत्तरी भारत पर साम्राज्य स्थापित किया था। लोगों का अनुमान है कि इसी प्रथम चंद्रगुप्त ने गुप्त संवत् चलाया था।

४. गुप्त वंश का एक दूसरा राजा।

विशेष—यह प्रथम चंद्रगुप्त के पुत्र समुद्रगुप्त का पुत्र था। इसे विक्रमांक और देवराज भी कहते थे। इसने अपनी विवाह नेपाल के राजा की कन्या ध्रुवदेवी के साथ किया था। इसने दिग्विजय करके बहुत से देशों में अपनी कीर्ति स्थापित की थी। शिलालेखों से पता लगता है कि इसने ईसवी सन् ४०० से ४१३ तक राज्य किया था।

चंद्रगृह—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रगृह] कर्क राशि।

विशेष—चंद्र या उसके किसी पर्यायवाची शब्द में गृह या उसके किसी पर्यायवाची शब्द के लगने से 'कर्क राशि' अर्थ होता है।

चंद्रगोल—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रगोल] चंद्रमंडल। चंद्रलोक।

चंद्रगोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रगोलिका] चंद्रिका। चाँदनी।

चंद्रग्रहण—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रग्रहण] चंद्रमा का ग्रहण वि०। दे० 'ग्रहण'।

चंद्रघंटा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रघण्टा] नी दुर्गाओं में से एक (को०)।

चंद्रचंचल—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रचञ्चल] खरसा मछली।

चंद्रचंचला—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रचञ्चला] दे० 'चंद्रचंचल' (को०)।

चंद्रचित्र—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रचित्र] एक देश का नाम जिसका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण में है।

चंद्रचूड़—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रचूड] मस्तक पर चंद्रमा को धारण करनेवाले—शिव। महादेव।

चंद्रचूड़ामणि—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रचूडामणि] फलित ज्योतिष में ग्रहों का एक योग। जब नवम स्थान का स्वामी केन्द्रस्थ हो तब यह योग होता है। उ०—केंद्रो है नवमं कर स्वामी योग चंद्रचूड़ामणि। शुभ द्विज भक्त सकल गुण सागर दाता हूर शिरोमणि (शब्द०)।

चंद्रज—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रज] बुध, जो चंद्रमा के पुत्र माने जाते हैं।

चंद्रजनक—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र + जनक] समुद्र। सागर।

चंद्रजोत—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्र + ज्योति] १. चंद्रमा का प्रकाश। २. महताबी नाम की आतिशबाजी। उ०—भारत सरस्वती आती है, सफेद चंद्रजोत छोड़ी जाय।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०१।

चंद्रताल—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रताल] एक प्रकार का बारहताला ताल जिसे परम भी कहते हैं।

चंद्रदारा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रदारा] २७ नक्षत्र जो पुराणानुसार दश की कन्याएँ हैं और चंद्रमा को ब्याही हैं।

चंद्रदेव—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र + देव] १. चंद्रमा। २. महाभारत में कौरवों की ओर से लड़नेवाले एक योद्धा का नाम (को०)।

चंद्रघुषि—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रघुषि] १. चंद्रमा का प्रकाश या किरण। २. चंदन।

चंद्रद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र+द्वीप] १८ पौराणिक द्वीपों में एक द्वीप का नाम [को०]।

चंद्रपंचांग—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रपञ्चाङ्ग] वह पंचांग जो चांद्र तिथि मास के आधार पर निर्मित होता है [को०]।

चंद्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रपर्णी] प्रसारित होती सता।

चंद्रपाद—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रपाद] चंद्रमा की किरणें [को०]।

चंद्रपाषाण—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रपाषाण] वह पत्थर जिसमें से चंद्र-किरणों का स्पर्श होने से जल की बूंदें टपकने लगती हैं। चंद्रकांत।

चंद्रपुत्र—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रपुत्र] चंद्रमा का पुत्र—बुध [को०]।

चंद्रपुली—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्र+हि० पूर] एक प्रकार की बंगला मिठाई जो गरी से बनाई जाती है।

चंद्रपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रपुष्पा] १. चांदनी। २. बकुची। ३. सफेद भटकटैया।

चंद्रप्रभ—वि० [सं० चन्द्रप्रभ] चंद्रमा के समान ज्योतिवाला। कांतिकान्।

चंद्रप्रभ—संज्ञा पुं० १. जैनों के आठवें तीर्थंकर। इनके पिता का नाम महासेन और माता का नाम लक्ष्मणा था। २. तक्षशिला के राजा एक बोधिसत्त्व जो बड़े दानी थे।

विशेष—एक बार ब्राह्मण ने आकर इनसे इनका मस्तक मांगा। इन्होंने बहुत धन देकर उसे संतुष्ट करना चाहा; पर जब उसने न माना, तब इन्होंने अपने मस्तक पर से राजमुकुट उतारकर उसके मागे रखा। तब ब्राह्मण इन्हें एकांत में ले गया और वहाँ जाकर उसने इनका सिर काट लिया।

चंद्रप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रप्रभा] १. चंद्रमा की ज्योति। चांदनी। चंद्रिका। २. बकुची नाम की ओषधि। ३. कवूर। ४. वैद्यक की एक प्रसिद्ध गुटिका जो अर्श, अगंदर आदि रोगों पर दी जाती है।

चंद्रप्रासाद—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र+प्रासाद] छत पर स्थित वह कमरा जिसमें बैठकर लोग चांदनी का आनंद लेते हैं [को०]।

चंद्रबंधु—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रबन्धु] १. चंद्रमा का भाई। शंख (क्योंकि चंद्रमा के साथ वह भी समुद्र से निकला था)। २. कुमुद।

चंद्रबधूती—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रबधू (= इन्द्रबधू)] वीरबहूती। उ०—नाथ लट् भए लालन लू ललि भामिनि भाल की बंदन बूटी। चोप सों चारु सुधारस लोभ बिधी बिधु मै मनो चंद्रबधूती।—नाथ (शब्द०)।

चंद्रबाण—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रबाण] अर्धचंद्र बाण जो सिर काटने के लिये छोड़ा जाता था।

विशेष—इसका फल अर्धचंद्राकार बनता था, जिसमें गले में पूरा बैठ जाय।

चंद्रबाला—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रबाला] १. चंद्रमा की स्त्री। २. चंद्रमा की किरण। ३. बड़ी हलायची।

चंद्रबाहु—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रबाहु] एक असुर का नाम।

चंद्रबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रबिंदु] अर्ध अनुस्वार की बिंदी। अर्ध-

चंद्राकार चिह्नयुक्त बिंदु जो सामानासिक वर्णों के ऊपर लगता है। जैसे,—‘गाव’ में ‘गा’ के ऊपर।

चंद्रबिंब—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रबिम्ब] संपूर्ण जाति का एक राग जो बिन के पहले पहर में गाया और हिंडोल राग का पुत्र माना जाता है।

चंद्रबोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र+बो० बोड़ा] एक प्रकार का भजगर।

चंद्रभवन—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रभवन] एक रागिनी का नाम।

चंद्रभस्म—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रभस्म] कपूर।

चंद्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रभा] १. चंद्रमा का प्रकाश। २. सफेद भटकटैया।

चंद्रभाग—संज्ञा पुं० [चन्द्रभाग] १. चंद्रमा की कला। २. सोलह की संख्या। ३. हिमालय के अंतर्गत एक पर्वत या शिखर का नाम जिससे चंद्रभागा या चनाब निकली है। ऐसी कथा है कि किसी समय ब्रह्मा ने इसी पर्वत पर बैठकर देवताओं और पितरों के निमित्त चंद्रमा के भाग किए थे।

चंद्रभागा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रभागा] पंजाब की चनाब नाम की नदी जो हिमालय के चंद्रभाग नामक खंड से निकलकर सिंधु नदी में मिलती है। वि० दे० ‘चनाब’। उ०—शुभ कुच्छेत, अयोध्या, मिथिला, प्राग, त्रिवेनी ग्हाए। पुनि बातहु औरहु चंद्रभागा, गंग व्यास ग्रहवाए।—सूर (शब्द०)।

विशेष—कालिका पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा के आदेश से चंद्रभाग पर्वत से शीता नाम की नदी उत्पन्न हुई। यह नदी चंद्रमा को डूबाती हुई एक सरोवर में गिरी। चंद्रमा के प्रभाव से इसका जल अमृतमय हो गया। इसी जल से चंद्रभागा नाम की कन्या उत्पन्न हुई जिसे समुद्र ने व्याहा। चंद्रमा ने अपनी गदा की नोक से पहाड़ में दरार कर बिया जिससे होकर चंद्रभागा नदी बह निकली।

चंद्रभाट—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र+हि० भाट] एक प्रकार के भिक्षुक साधु।

विशेष—ये शिव और काली के उपासक होते हैं और अपने साथ गाय, बैल, बकरी और बंदर आदि लेकर चलते हैं। ये प्रायः गृहस्थ होते हैं और खेतीबारी करते हैं।

चंद्रभानु—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रभानु] श्रीकृष्ण की पटरानी सत्यभामा के १० पुत्रों में से सातवें पुत्र का नाम। उ०—भानु स्वभाव तथा अभिमान्। बृहद्भानु स्वरभानु प्रभान्। चंद्रभानु श्रीरवि प्रतिमान्। भानुमान सह बस भतिमान्।—गोपाल (शब्द०)।

चंद्रभाल—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रभाल] मस्तक पर चंद्रमा को धारण करनेवाले, शिव। महादेव।

चंद्रभास—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रभास] तलवार [को०]।

चंद्रभूति—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रभूति] चांदी।

चंद्रभूषण—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रभूषण] महादेव। उ०—सित पाख बाकति चंद्रिका जनु चंद्रभूषण भालहीं।—तुलसी (शब्द०)।

चंद्रमंडल—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमण्डल] १. चंद्रमा का बिंब। २. चंद्रमा का घेरा या मंडल [को०]।

चंद्रमण—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमणि] ३० ‘चंद्रमणि’। उ०—मोल मगाई चंद्रमण दहण सुयंभण दाह। दाह हिये लालच दहण, जतन न यंभण जाह।—बांकी० घं०, भा० १, पृ० ५८।

चंद्रमणि—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रमणि] १. चंद्रकोट मणि । उ०—
(क) चौकी हेम चंद्रमणि लागी हीरा रतन जराय लखी ।
भुवन चतुर्दश की सुंदरता राखे के मुख मनहि रखी ।—सूर
(शब्द०) । (ख) केटी सोमकला करो, करो सुधा को दान ।
नहीं चंद्रमणि जो द्रवै, यह तेलिया पखान ।—दीनदयाल
(शब्द०) । २. उत्पलाना छंद का एक नाम ।

चंद्रमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रमल्लिका] एक प्रकार की चमेली
[को०] ।

चंद्रमल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रमल्ली] दे० 'चंद्रमल्लिका' । उ०—
चंद्रमल्ली पुंज की नव कुंज बिहुरत आय ।—वनानंद०,
पृ० ३०१ ।

चंद्रमस्—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रमस्] चंद्रमा ।

चंद्रमह—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रमह] कुत्ता [को०] ।

चंद्रमा—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रमस्] आकाश में चमकनेवाला एक
उपग्रह जो महीने में एक बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है
और सूर्य से प्रकाश पाकर चमकता है ।

विशेष—यह उपग्रह पृथ्वी के सब से निकट है; अर्थात् यह
पृथ्वी से २३८८०० मील की दूरी पर है । इसका व्यास
२१६२ मील है और इसका परिमाण पृथ्वी का $\frac{1}{4}$ है ।
इसका गुरुत्व पृथ्वी के गुरुत्व का $\frac{2}{3}$ वां भाग है । इसे पृथ्वी
के बाएँ ओर घूमने में २७ दिन, ७ घंटे, ४३ मिनट और
११ $\frac{1}{2}$ सेकेंड लगते हैं, पर व्यवहार में जो महीना आता है,
वह २९ दिन, १२ घंटे, ४४ मिनट २.७ सेकेंड का होता
है । चंद्रमा के परिक्रमण की गति में सूर्य की क्रिया से बहुत
कुछ अंतर पड़ता रहता है । चंद्रमा अपने अक्ष पर महीने में
एक बार के हिसाब से घूमता है; इससे सदा प्रायः उसका
एक ही पार्श्व पृथ्वी की ओर रहता है । इसी विलक्षणता
को देखकर कुछ लोगों को यह भ्रम हुआ था कि यह अक्ष पर
घूमता ही नहीं है । चंद्रमंडल में बहुत से बब्बे दिखाई देते
हैं जिन्हें पुराणानुसार जनसाधारण कलंक आदि कहते हैं ।
पर एक अच्छी दूरबीन के द्वारा देखने से ये बब्बे गायब
हो जाते हैं और इनके स्थान पर पर्वत, घाटी, गली,
ज्वालामुखी पर्वतों से विबर आदि अनेक पदार्थ दिखाई
पड़ते हैं । चंद्रमा का अधिकांश तल पृथ्वी के ज्वालामुखी
पर्वतों से पूर्ण किसी प्रदेश का सा है । चंद्रमा में वायुमंडल
नहीं जान पड़ता और न बादल या जल ही के कोई चिह्न
दिखाई पड़ते हैं । चंद्रमा में गरमी बहुत थोड़ी दिखाई पड़ती
है । प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों के मत से भी चंद्रमा
एक ग्रह है, जो सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है ।
मास्कराचार्य के मत से चंद्रमा जलमय है । उसमें निज का
कोई तेज नहीं है । उसका जितना भाग सूर्य के सामने पड़ता
है, उतना दिखाई पड़ता है—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार
घूप में घड़ा रखने से उसका एक पार्श्व चमकता है और
दूसरा पार्श्व उसी की छाया से अप्रकाशित रहता है । जिस
दिन चंद्रमा के नीचे के भाग पर अर्थात् उस भाग पर जो

हम लोगों की ओर रहता है, सूर्य का प्रकाश बिलकुल नहीं
पड़ता, उस दिन अमावस्या होती है । ऐसा तभी होता है,
जब सूर्य और चंद्र एक राशिस्थ अर्थात् समसूत्र में होते
हैं । चंद्रमा बहुत शीघ्र सूर्य की सीध से पूर्व की ओर हट
जाता है और उसकी एक एक कला क्रमशः प्रकाशित होने
लगती है । चंद्रमा सूर्य की सीध (समसूत्र पात) से जितना
ही अधिक हटता जायगा, उसका उतना ही अधिक भाग
प्रकाशित होता जायगा । द्वितीया के दिन चंद्रमा के पश्चिमांश
पर सूर्य का जितना प्रकाश पड़ता है, उतना भाग प्रकाशित
दिखाई पड़ता है । सूर्य सिद्धांत के मतानुसार जब चंद्रमा
सूर्य की सीध से ९ राशि पर चला जाता है तब उसका समस्त
आधा भाग प्रकाशित हो जाता है और हमें पूर्णिमा का पूरा
चंद्रमा दिखाई पड़ता है । पूर्णिमा के अनंतर ज्यों ज्यों चंद्रमा
बढ़ता जाता है, त्यों त्यों सूर्य की सीध से उसका अंतर कम
होता जाता है; अर्थात् वह सूर्य की सीध की ओर आता
जाता है और प्रकाशित भाग क्रमशः अधिकार में पड़ता
जाता है । अनुपात के मतानुसार प्रकाशित और अप्रकाशित
भागों के इस ह्रास और वृद्धि का हिसाब जाना जा सकता
है । यही मत आर्यभट्ट, श्रीपति, जानराज, लल्ल, ब्रह्मपुत्र,
आदि सभी पुराने ज्योतिषियों का है । चंद्रमा में जो बब्बे
दिखाई पड़ते हैं, उनके विषय में सूर्यसिद्धांत, सिद्धांतशिरोमणि,
बृहत्संहिता इत्यादि में कुछ नहीं लिखा है । हरिवंश में लिखा
है कि ये बब्बे पृथ्वी की छाया हैं । कवि लोगों ने चकोर
और कुमुद को चंद्रमा पर अनुरक्त वर्णन किया है । पुराणा-
नुसार चंद्रमा समुद्रमंथन के समय निकले हुए चौबह रत्नों
में से है और देवताओं में गिना जाता है । जब एक असुर
देवताओं की वंक्ति में चुपचाप बैठकर अवृत्त पी गया, तब
चंद्रमा ने यह वृत्तांत विष्णु से कह दिया । विष्णु ने उस
असुर के दो खंड कर दिए जो राहु और केतु हुए । उसी
पुराने वैर के कारण राहु ग्रहण के समय चंद्रमा को ग्रसा
करता है । चंद्रमा के बब्बे के विषय में भी भिन्न भिन्न
कथाएँ प्रसिद्ध हैं । कुछ लोग कहते हैं कि दक्ष प्रजापति के
आप से चंद्रमा को राज्यक्षमा रोग हुआ; उसी की शांति
के लिये वे अपनी गोद में एक हिरन लिए रहते हैं । किसी
किसी के मत से चंद्रमा ने अपनी गुरुपत्नी के साथ गमन
किया था; इसी कारण आपवश उनके शरीर पर काला दाग
पड़ गया है । कहीं कहीं यह भी लिखा है कि जब इंद्र ने
ग्रहत्या का सतीत्व भंग किया था, तब चंद्रमा ने इंद्र को
सहायता दी थी । गीतम ऋषि ने क्रोधवश उन्हें अपने कमंडल
और मृगवर्म से मारा, जिसका दाग उनके शरीर पर
पड़ गया ।

रूस और अमेरिका चंद्रमा संबंधी अभियान और अनुसंधान में
लगे हैं । १९५९ के ४ अक्टूबर के दिन रूप ने एक स्वयंचालित
अंतरिक्षी स्टेशन चंद्रमा की ओर छोड़ा जिसने चंद्रमा के
अदृश्य भाग के फोटो ४० मिनट तक लिये । अमेरिका भी
यह काम कर चुका है । दोनों के मानवहीन अंतरिक्ष यान
अंततः गति से चंद्रतल पर अवतरण कर चुके हैं । मानव

को वही उतारने की चेष्टा में दोनों देश लगे हैं। यह हो जाने पर अनेक नवीन तथ्यों का पता लगेगा।

पर्या०—हिमांशु । इषु । कुसुमोपम । विष्णु । सुधांशु । शुभांशु । शोचनीय । निशाङ्गति । अज । जैवातुक । सोम । रत्नी । अमृत । कलाविधि । द्विजराज । ज्ञानधर । नक्षत्रराज । जपाकर । बोधाकर । निशानाय । शर्वरीश । एलांक । शीत-रश्मि । सारस । इवेतबाहन । नक्षत्रनेमि । उज्ज्वल । सुधाभूति । तिथिप्रणी । धर्मति । चरित । चित्राचोर । पक्षधर । रोहि-णीश । अत्रिनेत्रज । पत्रज । सिधुजन्मा । दशास्य । तारापीड । निशामणि । अमृताक्षन । दाक्षायणीपति । लक्ष्मीसहज । सुधाकर । सुधाधार । शीतमानु तमोहर । तुषारकिरण । हरि । हिमद्युति । द्विजपति । विश्वस्था । अमृतबोधित । हरिणांक । रोहिणीपति । सिधुनंदन । तमोनुद् । एणतिलक । कुमुदेश । क्षीरोदनंन । कांत । कलाबान् । यामिनीपति । सिधु । सुधाविधि । तुंगो । पक्षजन्मा । समुदनवनीत । पीयूष-महा । शीतमरीचि । त्रिनेत्रपुडामणि । सुवर्ण । परिजा । तुंगीपति । पर्वधि । क्लेबु । जयंत । तपस । लवमस । विकस । वराहाजी । इवेतबाजी । अमृतम् । कौमुदीपति । कुमुदिनीपति । वक्षजापति । कलामृत । साराभूत् । चणभूत् । छरयाभूत् । निशारत्न । निशाकर । रजनीकर । जपाकर । अमृत । इवेतद्युति । साराक्षन । अमृताक्षन ।

चंद्रमात्रा—संज्ञा पु० [सं० चंद्रमात्रा] संगीत में ताली के १४ भेदों में से एक ।

चंद्रमात्रालाट—संज्ञा पु० [सं० चंद्रमा + ललाट] वह जिसके माथे पर चंद्रमा हो—शिव । महादेव ।

चंद्रमाललाम—संज्ञा पु० [सं० चंद्रमा + ललाम (= तिलक, मस्तक पर का चिह्न)] महादेव । शंकर । शिव । उ०—तहां दसरथ के समथ नाथ तुलसी के चपरि बढ़ायो बाप चंद्रमाललाम की ।—तुलसी (शब्द०) ।

चंद्रमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० चंद्रमाला] १. २८ मात्राओं का एक छंद । उ०—वृषहि महाभट गुणि धति रिम करि प्रगणित सायक मारपो—(शब्द०) । २. एक प्रकार का हार । चंद्रहार ।

चंद्रमास—संज्ञा पु० [सं० चान्द्रमास या चन्द्रमास] दे० 'चांद्रमास' ।

चंद्रमुख—वि० [सं० चन्द्रमुख] [स्त्री० चंद्रमुखी] चंद्रमा की तरह सुंदर मुखवाला [स्त्री०] ।

चंद्रमौलि—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रमौलि] मस्तक पर चंद्रमा को धारण करनेवाले—शिव । महादेव । उ०—तजिहउं तुरत देह तेहि हेतु । उर धरि चंद्रमौलि वृषकेतु ।—तुलसी (शब्द०) ।

चंद्ररत्न—संज्ञा पु० [सं० चन्द्ररत्न] मोती [स्त्री०] ।

चंद्ररेखा, चंद्रलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्ररेखा, चन्द्रलेखा] १. चंद्रमा की कला । २. चंद्रमा की किरण । ३. द्वितीया का चंद्रमा । ४. बह्वी । ५. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में मरम यय (SSS, SIS, SSS, ISS, ISS) होता है । उ०—मैं री मैया यही सैहों चंद्रलेखा खिलोना ।—(शब्द०) ।

चंद्ररेणु—संज्ञा पु० [सं० चन्द्ररेणु] शब्दचोर । काव्यचोर [स्त्री०] ।

चंद्रलल्लम—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रलल्लम] शिव । महादेव [स्त्री०] ।

चंद्रलोक—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रलोक] चंद्रमा का लोक । उ०—चंद्रलोक दीन्हों शशि की तब फगुभा में हरि प्राप । सब नक्षत्र को राजा कीन्हों शशिमंडल में छाप ।—सूर (शब्द०) ।

चंद्रवंश—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रवंश] क्षत्रियों के दो घादि और प्रधान कुलों में से एक जो पुरुषा से प्रारंभ हुआ था ।

चंद्रवंशी—वि० [सं० चन्द्रवंशिन्] चंद्रवंश का । जो क्षत्रियों के चंद्रवंश में उत्पन्न हुआ हो ।

चंद्रवदन—वि० [सं० चन्द्रवदन] [स्त्री० स्त्री० चन्द्रवदनी] दे० 'चंद्रमुख' [स्त्री०] ।

चंद्रवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रवधू] बीरबहूटी । उ०—द्युतिवंतन को विपदा बहु कीन्ही । धरनी कह चंद्रवधू धरि दीन्ही ।—रामच०, पु० ८८ ।

विशेष—जान पड़ता है, चंद्रवधू को किसी कवि ने 'चंद्रवधू' समझकर ही इस शब्द का इस अर्थ में प्रयोग किया है ।

चंद्रवर्म—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रवर्म] एक वरुणवृत्त का नाम, जिससे प्रत्येक चरण में रगण, नगण, भगण और सगण (SIS, IIS, SII, IIS) होते हैं । जैसे—रे नभा शिव ललाट शशि समा । जानि त्यागहु धतू हिय तमा ।

चंद्रवल्लरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रवल्लरी] सोमलता ।

चंद्रवल्लो—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रवल्लो] १. सोमलता । २. माधवी लता । ३. प्रसारिणी । पसरन ।

चंद्रवा—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रातप] चंदवा । चंदोवा । उ०—माहि रहे चंद्रवा तरुं मिसि फण सहसेई सहसफणि ।—बेलि०, सू० १६० ।

चंद्रवार—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रवार] सोमवार ।

चंद्रवाला—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रवाला] बड़ी इलायची ।

चंद्रविदु—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रविदु] दे० 'चंद्रविन्दु' ।

चंद्रविहंगम—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रविहंगम] एक प्रकार का पक्षी [स्त्री०] ।

चंद्रवेष—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रवेष] शिव । महादेव । उ०—जहें चंद्रवेष करिके वनिता को ह्वां रह ।—लल्लु (शब्द०) ।

चंद्रव्रत—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रव्रत] दे० 'चांद्रायण' ।

चंद्रशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रशाला] १. चांदनी । चंद्रिका ।

२. धुर ऊपर की कोठरी । सबसे ऊपर का बैंगला । घटारी ।

उ०—(क) चंद्रशाला, केलिशाला, पानशाला, पाकशाला, गजशाला हम की जड़ी मनी ।—रघुराज (शब्द०) । (ख)

चौक चंद्रशाला छबिमाला । रजत कनक की बनी दिवाला ।—रघुराज (शब्द०) । (ग) चढ़ी उत्तंग चंद्रशाला मे लखी

अयोध्या नगरी ।—रघुराज (शब्द०) ।

चंद्रशालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रशालिका] दे० 'चंद्रशाला' [स्त्री०] ।

चंद्रशिला—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रशिला] चंद्रकांत मणि [स्त्री०] ।

चंद्रशुक्ल—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रशुक्ल] जंबुद्वीप के एक उपद्वीप का नाम [स्त्री०] ।

चंद्रशूर—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रशूर] हालां या हालिम नाम का पीधा ।

चंसुर ।

चंद्रमंग—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रमङ्ग] द्वितीया के चंद्रमा के दोनों नुकीले छोर ।

चंद्रशेखर—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रशेखर] १. वह जिसका शिरोभूषण चंद्रमा है । शिव । महादेव । २. एक पर्वत का नाम ।

विशेष—इस नाम का एक पर्वत धराकान ब्रह्मदेश (बर्मा) में है । ३. एक पुराणप्रसिद्ध नगर का नाम । ४. संगीत में श्रष्टतालों में से एक । एक प्रकार का साततालना ताल जिसका बीज इस प्रकार है । भे भे । तक बी तक दिधि तक दिगिदां । योगा । गिड़ियों ।

चंद्रसंज्ञ—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रसंज्ञ] कपूर (की०) ।

चंद्रसंभव—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रसंभव] बुध (ग्रह) (की०) ।

चंद्रसंभवा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रसंभवा] छोटी इलायची (की०) ।

चंद्रसा—संज्ञा पुं० [देश०] गंधाबिरोजा ।

चंद्रसरोवर—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रसरोवर] ब्रज का एक तीर्थस्थान जो गोवर्द्धन गिरि के समीप है ।

चंद्रसेखर—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रशेखर] दे० 'चंद्रशेखर' । उ०—
हरयो बिषं को ध्यान चंद्रसेखर नहि ध्यायो ।—ब्रज० प्र०, पृ० १०६ ।

चंद्रसौध—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र + सौध] दे० 'चंद्रशाला' । उ०—
मैंने चंद्रसौध में आपके शयन का प्रबंध करने के लिये कह दिया है ।—चंद्र०, पृ० १८५ ।

चंद्रस्तुत—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रस्तुत] बुध (ग्रह) (की०) ।

चंद्रहार—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रहार] गले में पहनने का एक गहना या माला । नीलसा हार ।

विशेष—इसमें चंद्रचंद्राकार क्रमशः छोटे बड़े घनेक मनके होते हैं । बीच में पूर्णचंद्र के आकार का गोल पान होता है । यह हार सोने का बनता है और प्रायः जड़ाऊ होता है ।

चंद्रहास—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रहास] १. खड्ग । तलवार । २. रावण की तलवार का नाम । उ०—चंद्रहास हर मम परिताप ।
रघुपति विरह प्रनल संजात ।—तुलसी (शब्द०) । ३. चाँदी ।

चंद्रहासा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रहासा] सोमलता ।

चंद्रांक—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्राङ्क] आधुपण विशेष ।

चंद्रांकित—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्राङ्कित] महादेव । शिव ।

चंद्रांशु—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रांशु] १. चंद्रमा की किरण । २. विष्णु का एक नाम (की०) ।

चंद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रा] १. छोटी इलायची । २. वितान । चंदवा । चंदोवा । ३. गुड़ची । गुच ।

चंद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्र] मरने के समय की वह अवस्था जब टकटकी बंध जाती है, गला कफ से रंध जाता है और बोला नहीं जाता । जैसे,—उधर बाप को चंद्रा लग रही थी, हृषर बेटे का ग्याह हो रहा था ।

क्रि० प्र०—लगना ।

चंद्रागति घात—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रागतिघात] घृदंग की एक बाप । उ०—ताल धरे बनिता घृदंग चंद्रागतिघात बधै बोरी ।
—(शब्द०) ।

चंद्रातप—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रातप] १. चाँदनी । चंद्रिका । २. चंदवा । वितान ।

चंद्रात्मज—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रात्मज] चंद्रमा का पुत्र । बुध (की०) ।

चंद्रानन—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रानन] कार्तिकेय (की०) ।

चंद्रानन—वि० [वि० स्त्री० चन्द्रानना] चंद्रमा के समान मुखवाला (की०) ।

चंद्रापीड—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रापीड] १. शिव । महादेव । २. काश्मीर का एक राजा ।

विशेष—इसका दूसरा नाम वज्रादित्य था । यह प्रतापादित्य का ज्येष्ठ पुत्र था और उसकी मृत्यु के उपरांत ६०४ शकाब्द में सिंहासन पर बैठा था । यह अत्यंत उदार और बर्मात्मा था ।

चंद्रायण—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रायण] दे० 'चंद्रायण' ।

चंद्रायतन—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रायतन] चंद्रशाला ।

चंद्रायन—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रायण] एक प्रकार के छंद का नाम । जैसे,—आरुह गयव दरबार कहिय परिमाल सी । चाइल हति बिन चुककलह लिय माल सी ।—प० रासो, पृ० ४७ ।

चंद्रारि—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रारि] राहु । उ०—चंद रहा चंद्रारि भभारा । मुकुत मिलेउ कोमुदी पसारा ।—इंद्रा०, पृ० १६४ ।

चंद्रार्क—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रार्क] १. चंद्रमा और सूर्य । चाँदी, ताँबे आदि के मिश्रण से बनी हुई एक धातु (की०) ।

चंद्रार्ध—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रार्ध] चंद्रमा का आधा भाग । अर्धचंद्र (की०) ।

चंद्रार्द्धचूडामणि—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रार्द्धचूडामणि] महादेव । शिव ।

चंद्रालोक—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रालोक] १. चंद्रमा का प्रकाश । २. जयदेव नामक कवि रचित अलंकार का एक संस्कृत ग्रंथ ।

विशेष—अधिकांश लोगों का मत है कि चंद्रालोककार जयदेव, गीतगोविंदकार जयदेव से भिन्न हैं ।

चंद्रावती—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रावती] दे० 'चंद्रावर्ता' ।

चंद्रावर्ता—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रावर्ता] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक पद में ४ नगण पर १ सगण होता है और ८ + ७ पर विराम । विराम न होने से 'मणिकला' (मणिगुण शरत्) वृत्त होता है । इसका दूसरा नाम 'मणिगुण निकर' है । जैसे,—नचह सुखद यशुमति सुत सहिता । लहह जनम इह सखि सुख प्रमिता ।

चंद्रावली—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रावली] कृष्ण पर अनुरक्त एक गोपी का नाम जो चंद्रभानु की कन्या थी ।

चंद्रिकांबुज—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रिका + अम्बुज] श्वेतकुमुद (की०) ।

चंद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रिका] १. चंद्रमा का प्रकाश । चाँदनी । ज्योत्स्ना । कोमुदी । २. मोर की पूँछ पर का वह अर्द्ध-चंद्राकार चिह्न जो सुनहले मंडल से घिरा होता है । मोर की पूँछ के पर का गोल चिह्न या आँख । उ०—सोभित सुमन मयूर चंद्रिका नील नलिन तनु स्याम ।—सूर (शब्द०) । ३. बड़ी इलायची । ४. छोटी इलायची । ५. चाँदा नाम की

मछली। ९. चंद्रभागा नदी। ७. कर्णकोटा। कनफोड़ा बास। ८. पृथ्वी या चमेरी। ९. सफेद फूल की मटकटैया। १०. मेढी। ११. चंद्रगूर। चनसुर। १२. एक देवी। १३. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में न न त त ग (III, III, SSI SSI, S) और ७+६ पर यति होती है। जैसे,—न नित तगि कहें धान को धाव रे। भजहु हर घरी राम को बावरे। १४. वासपुष्पा। १५. संस्कृत व्याकरण का एक ग्रंथ। १६. माथे पर का एक भूषण। बेंदी। बेंदा। उ०—यहि भाँति नाचत गोपिका सब भक्ति हूँ भुक्ति भुक्ति रही। कहि माल पायल चंद्रिका क्षमि परी नकबेसर कही।—विश्राम (शब्द०)। १७. स्त्रियों का एक प्रकार का मुकुट या शिरोभूषण जिसे प्राचीन काल की रानियाँ धारण करती थीं। चंद्रकला।

चंद्रिकातप—संज्ञा पुं० [सं० चंद्रिकातप] चाँदनी की उज्ज्वलता। चाँदनी। उ०—चार चंद्रिकातप से पुलकित निखिल चरातल।—ग्राम्या, पृ० ६८।

चंद्रिकाद्राव—संज्ञा पुं० [सं० चंद्रिकाद्राव] चंद्रकांत मणि [को०]।

चंद्रिकापायी—संज्ञा पुं० [सं० चंद्रिकापायिन्] चकोर [को०]।

चंद्रिकाभिसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चंद्रिकाभिसारिका] शुक्लाभिसारिका नायिका।

चंद्रिकोत्सव—संज्ञा पुं० [सं० चंद्रिकोत्सव] शरद पूर्णमासी का उत्सव। शरदोत्सव।

चंद्रिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० चंद्रिमा] चाँदनी [को०]।

चंद्रिल—संज्ञा पुं० [सं० चंद्रिल] १. शिव। महादेव। २. नाई [को०]।

चंद्री—वि० [सं० चंद्रिन्] १. चंद्र की तरह आल्लासक। उ०—चित्ररेष बाला विचित्र चंद्री चंदानन।—पृ० रा०, २५। १०६। २. सुनहला। सुवर्ण (सोने) वाला [को०]। ३. बुध [को०]।

चंद्रोद्ग—संज्ञा स्त्री० [सं० चंद्रोद्ग] कुमुदनी [को०]।

चंद्रोदय—संज्ञा पुं० [सं० चंद्रोदय] १. चंद्रमा का उदय। २. वैद्यक में एक रस जो गंधक, पारे और सोने को अस्म करके बनाया जाता है। मरणासन्न मनुष्य को देने से उसकी बेहोशी थोड़ी देर के लिये दूर हो जाती है। इसे पुष्टई की तरह भी लोग खाते हैं।

३. चंदवा। चंदोवा। चितान।

चंद्रोपराग—संज्ञा पुं० [सं० चंद्रोपराग] चंद्रग्रहण।

चंद्रोपल—संज्ञा पुं० [सं० चंद्रोपल] चंद्रकांतमणि।

चंद्रौल—संज्ञा स्त्री० [सं० चंद्र] राजपूतों की एक जाति या शाखा।

चंप—संज्ञा पुं० [सं० चम्पक] १. चंपा। २. कचनार। कोविदार वृक्ष।

चंपई—वि० [हि० चंपा] चंपा के फूल के रंग का। पीले रंग का।

चंपक—संज्ञा पुं० [सं० चम्पक] १. चंपा। २. चंपा केला। ३. सांख्य में एक सिद्धि जिसे रम्यक भी कहते हैं। वि० दे० 'रम्यक'। ४. संपूर्ण जाति का एक राग जिसके गाने का समय तीसरा पहर है। यह दीपक राग का पुत्र माना जाता है।

चंपकमाळा—संज्ञा स्त्री० [सं० चम्पकमाळा] १. चंपा के फूलों की

माळा। २. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक पद में भगण, मगण, सगण और एक गुरु (SI SSS IIS S) होता है। जैसे,—भूमि सगी काहू कर नाहीं। कृष्ण सगा सौचो जग माहीं।

चंपकरंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० चम्पक रंभा] चंपा केला [को०]।

चंपकली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चंपाकली'। उ०—गल में कटवा, कंठा हँसनी, उर में हुँमन, कल चंपकली।—ग्राम्या, पृ० ४०।

चंपकारध्व—संज्ञा पुं० [सं० चम्पकारध्व] एक पुराना तीर्थ। धाधुनिक चंपारन [को०]।

चंपकालु—संज्ञा पुं० [सं० चम्पकालु] जाक या रोटी फल का पेड़।

चंपकावती—संज्ञा स्त्री० [सं० चम्पकावती] चंपापुरी [को०]।

चंपकुंद—संज्ञा पुं० [सं० चम्पकुंद] एक प्रकार की मछली [को०]।

चंपकोश—संज्ञा पुं० [सं० चम्पकोश] कटहन [को०]।

चंपत—वि० [सं०] चलता। गायब। अस्तित्व।

चिं० प्र०—चनना।—होना।

चंपा^१—संज्ञा पुं० [सं० चम्पक] १. मञ्जोले कद का एक पेड़।

विशेष—इसमें हलके पीले रंग के फूल लगते हैं। इन फूलों में बड़ी तीव्र सुगंध होती है। चंपा दो प्रकार का होता है। एक साधारण चंपा, दूसरा कटहनिया चंपा। कटहनिया चंपा के फूल की महक पके कटहन से मिलती हुई होती है। ऐसा प्रसिद्ध है कि चंपा के फूल पर भीरे नहीं बैठते। जंगलों में चंपे के जो पेड़ होते हैं, वे बहुत ऊँचे और बड़े होते हैं। इसकी लकड़ी पीली, चमकीली और मुलायम, पर बहुत मजबूत होती है और नाव, टेबुल, फुरसी आदि बनाने और इमारत के काम में आती है। हिमालय की तराई, नेपाल, बंगाल, आसाम तथा दक्षिण भारत के जंगलों में यह अधिकता से पाया जाता है। चित्रकूट में इसकी लकड़ी की माँलाएँ बनती हैं।

२. चंपा का फूल। उ०—अलि प्रवरंगजेव चंपा सिवराज है।

—भूषण प्र०, पृ० १०१। ३. एक प्रकार का मीठा केला जो बंगाल में होता है। ४. घोड़े की एक जाति। ५. एक प्रकार का कुसियार या रेशम का कीड़ा जिसके रेशम का व्यवहार पहले आसाम में बहुत होता था। ६. एक प्रकार का बहुत बड़ा सदाबहार पेड़।

विशेष—यह वृक्ष दक्षिण भारत में अधिकता से पाया जाता है। इसकी लकड़ी कुछ पीनापन लिए बहुत मजबूत होती है और इमारत के काम के अतिरिक्त गाड़ी, पालकी, नाव आदि बनाने के काम में भी आती है। इसे 'सुल्ताना चंपा' भी कहते हैं।

चंपा^२—संज्ञा स्त्री० [सं० चम्पा] एक पुत्री जो प्राचीन काल में अंग देश की राजधानी थी। यह वर्तमान भागलपुर के आस पास कहीं रही होगी। कर्ण यहीं का राजा था।

चंपाकली—संज्ञा स्त्री० [हि० चंपा + कली] गले में पहनने का स्त्रियों का एक गहना जिसमें चंपा की कली के आकार के सोने के बाने रेशम के ताने में गुंथे रहते हैं। उ०—चंपक की कली

बनी चंपाकली भारी फूलन के हार कंठ सोहत चिकारी ।—
भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४४० ।

चंपानेर—संज्ञा पुं० [हि० चंपा + नगर] एक पुराना नगर ।

विशेष—इस नगर के खंडहर अबतक बंबई के पंचमहाल जिले के अंतर्गत है । इसकी १५वीं शताब्दी के अंतिम भाग तक यह एक राजपूत सरदार के अधिकार में था । पर सन् १४८२ में अहमदाबाद के बादशाह महमूद ने राजपूतों के आक्रमण से तंग आकर इसे ले लिया और इसके पास ही महमदाबाद चंपानेर बसाया । इस नगर को हुमायूँ ने सन् १५३३ में उजाड़ दिया । सन् १८०३ तक इसमें ४००-५०० आदमियों की बस्ती थी । पर अब दो चार घर रह गए हैं ।

चंपापुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चम्पापुरी] बंगदेश के राजा की राजधानी । कर्णपुरी । उ०—भाषेट जाइ फंदनि पकरि दुरद प्रानि चंपापुरिय ।—पृ० रा०, २६।६ ।

चंपारण्य—संज्ञा पुं० [सं० चम्पारण्य] प्राचीन काल का एक जंगल जो कदाचित् उस स्थान पर रहा हो, जिसे आजकल चंपारन कहते हैं ।

चंपारन—संज्ञा पुं० [सं० चम्पारण्य] बिहार प्रांत का एक प्रदेश या जिला ।

चंपालु—संज्ञा पुं० [सं० चम्पालु] दे० 'चंपकालु' [को०] ।

चंपावती—संज्ञा स्त्री० [सं० चम्पावती] दे० 'चंपापुरी' [को०] ।

चंपू—संज्ञा पुं० [सं० चम्पू] गद्यपद्यमय काव्य । वह काव्यग्रंथ जिसमें गद्य के बीच बीच में पद्य भी हो । जैसे, नलचंपू ।

चंपेल—संज्ञा पुं० [सं० चम्पा + हि० तेल] जमेली का तेल । उ०—बाँधउ बड़ी छाहड़ी, नीक नागरवेल । डमि सँभालूँ करहला, चोपड़ि सु चंपेल ।—ढोला०, पृ० ३२० ।

चंबक—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चुंबक' । उ०—सुई होहि चेतन्य यथा चंबक के संग ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ५६ ।

चंबल^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मज्वती] १. एक नदी जो विन्ध्य पर्वत से निकलकर इटावे से १२ कोस पर जमुना में जा मिली है । २. नहरों या नालों के किनारे पर लगी हुई लकड़ी जिससे सिंचाई के लिये पानी ऊपर चढ़ाते हैं ।

चंबल^२—संज्ञा पुं० पानी की बाढ़ ।

मुहा०—चंबल लगना = खूब पानी बढ़ना । जलमय होना ।

चंबल^३—संज्ञा पुं० [फ्रा० चुंबल] १. मीख माँगने का कटोरा या लप्पर । २. बिलम का सरपोष ।

चंबली—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० चुंबल] एक प्रकार का छोटा प्याला ।

चंबी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कागज या मोमजामे का एक तिकोना टुकड़ा जो कपड़ों पर रंग छापते समय उन स्थानों पर रखा जाता है, जहाँ रंग चढ़ाना मंजूर नहीं होता । पट्टी । कतरनी ।

चंबू—संज्ञा पुं० [?] १. एक प्रकार का धान जो पहाड़ों में बिना सींचे हुई जमीन पर चेत में होता है । २. ताँवे, पीतल या और किसी धातु का छोटे मुँह का सुराहीनुमा बरतन जिससे हिंदू देवमूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं । ३. एक प्रकार का लोटा जो

विशेषकर धोइछा में बनता है । इसका फूल बहुत उत्तम होता है ।

चँसुर—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्रशूर] हासों या हासिम नाम का पीषा ।

विशेष—यह पीषा लगभग दो फुट ऊँचा होता है । इसके पत्ते पतले और फटावदार गुलदावरी के पत्तों के से होते हैं । पत्तों का लोग साग खाते हैं । पीषे के बीज को भी चँसुर कहते हैं ।

चँगना—संज्ञा पुं० [हि० चंगा या फ्रा० तंग] तंग करना । कसना । खींचना । उ०—राम रंग ही सों रंगरेजवा मेरी अँगिया रंग दे रे । त्रिगुण करम तागन से बीनी, रोम रोम भीमरि अति भीनी, बड़े सुकृत रतनन से कीनी, लसक होई तो चंगि दे रे ।—देव स्वामी (शब्द०) ।

चँगेर, चँगोरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चङ्गेरिक] १. बाँस की पट्टियों की बनी हुई छिछली डलिया । पाली के आकार की बाँस की चौड़ी टोकरी । २. फूल रखने की डलिया । डगरी । उ०—रघुनाथ काल्हि भेजे मेवा भाँति भाँतिन के फूलन के हार सों चँगेर सोने की भरी ।—रघुनाथ (शब्द०) । ३. चमड़े का जलपात्र । मशक । पखाल । ४. रस्सी में बाँधकर लटकाई हुई टोकरी जिसमें बच्चों को सुलाकर पालना भुलाते हैं । बहुत छोटे बच्चों का वह झूला जिसे बच्चा जनमने पर फूफ़ी आदि संबंधी स्त्रियाँ बच्चे की माँ को भेंट करती हैं । उ०—रघुकुल की सब सुभग सुवासिनि शीसन लिए चँगोरी । विविध भाँति की जटित जवाहिर दीपावली घनेरी ।—रघुराज (शब्द०) । ५. चाँदी का एक जालीदार पात्र जो प्रायः प्याले के आकार का होता है । यह भी फूल रखने के काम में आता है ।

चँगोरा—संज्ञा पुं० [हि० चँगोरी] बड़ी चँगेर । टोकरा ।

चँगोला—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक घास जो पुराने खेड़े या गिरे हुए मकानों के खंडहरों में उत्पन्न होती है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ गोल गोल होती हैं और खाने में कुछ कनकनाती हैं । इसमें कुछ कालापन लिए लाल रंग के घंटी के आकार के फूल लगते हैं । बीज गोल गोल होते हैं और हकीमी चिकित्सा में ये खुब्बाजी के नाम से प्रसिद्ध हैं । यह घास फारस के शीराज, मजंदरान आदि प्रदेशों में बहुत होती है ।

चँगोली—संज्ञा स्त्री० [हि० चँगोरी] दे० 'चँगेर' या 'चँगोरी' ।

चँचरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. माझियों की भाषा में परस्पर के ऊपर से होकर बहनेवाला पानी । २. एक चिड़िया जो भारत में स्थिर रूप से रहती है । यह छोटा घोंसला बनाती है जो जमीन पर घास आदि के नीचे छिपा रहता है । यह प्रायः तीन घंटे देती है । ३. वह घन्न जो दाना पीटने पर भी बाल में लगा रहे । गूरी । कोसी । करही । झूठरी । (ज्वार, मूँग आदि के लिये) ।

चँचोरना—क्रि० सं० [अनु०] दाँतों से दबा दबाकर चूसना । जैसे, हड्डी चँचोरना । दे० 'चचोड़ना' । उ०—या माया के कारने, हरि सों बैठा तोरि । माया करक कदीम है, केता गया चँचोरि ।—कबीर (शब्द०) ।

चँदाई—संज्ञा स्त्री० [सं० चण्ड (= तेज)] १. शीघ्रता । जल्दी ।

फुरती। चटपटी। उतावली। उ०—(क) देखतू जाह कहा जेवन कियो जसुमति रोहिनी गुरत पठाई। मैं अलूवाए देति पुहुम को तुम नीतर भति करी चँडाई।—सूर (शब्द०)। (ख) कहा भयो जो हम पै छाई कुल की रीति गमाई। हमहूँ को बिचि को डर मारी अजहँ जाहु चँडाई।—सूर (शब्द०)। २. प्रबलता। जबरदस्ती। अधम अत्याचार। उ०—करत चँडाई फिरत ही नागर नंदकिशोर।—(शब्द०)।

चँदनीठा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का लहंगा। उ०—चँदनीता जो खर दुख मारी। बाँसपूर झिलमिल की सारी।—जायसी (शब्द०)।

चँवर—संज्ञा पु० [सं० चन्द्र] दे० 'चंद्र'। उ०—सेत पियर मन जोत बिलोके धीर चँवर सम त्रास न रोके।—इंद्रा०, पृ० ३७।

चँवराना—कि० सं० [सं० चन्द्र (दिक्काना)] १. छुटसाना। बहकाना। बहलाना। २. जान बूझकर कोई बात पूछना। जान बूझकर झनझान बनना।

चँवड़ा—वि० [हि० चाँद (= खोपड़ी)] जिसकी चाँद के बाल झड़ गए हों। गंजा। खट्वाट।

चँवड़ा—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रक या चन्द्रातप] १. एक प्रकार का छोटा मंडप जो राजाओं के सिंहासन या गद्दी के ऊपर चाँदी या सोने की चार चौबों के सहारे ताना जाता है। चँदोवा। २. चंदरछत। ३. चितान। उ०—ऊपर राता चँवड़ा छावा। श्री भुईं सुरंग बिछाव बिछावा।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—इसकी लंबाई चौड़ाई दो ढाई गज से अधिक नहीं होती और यह प्रायः मलमल, रेशम आदि का होता है, जिसपर कारचोब का काम बना रहता है। इसके बीच में प्रायः गोल काम रहता है।

चँदवा—संज्ञा पु० [सं० चन्द्रक] १. गोल आकार की चकती। गोल थिंगली या पैवंद। जैसे, टोपी का चँदवा। २. [जी० चंदिया] तालाब के अंदर का गहरा गड्ढा जिसमें मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। ३. मोर की पूँछ पर का अर्धचंद्राकार चिह्न जो सुनहले मंडल के बीच में होता है। मोरपंख की चंद्रिका। उ०—(क) मोरन के चँदवा बाये बने राजत रुचिर सुदेसरी। बदन कमल ऊपर अलिनन मनो धूँवरवारे केसरी।—सूर (शब्द०)। (ख) सोहत हैं चँदवा सिर मोर के जैसिय सुंदर पाग कसी हैं।—रसखान (शब्द०)। ४. एक प्रकार की मछली।

चँदवार—संज्ञा पु० [हि० चंदवार] दे० 'चंदवार'। उ०—जेठ मास बरसात में पगवारे चँदवार।—कबीर मं०, पृ० ५६३।

चँदिया—संज्ञा जी० [हि० चाँद + दया (प्रत्यय)] १. खोपड़ी। सिर का मध्य भाग।

मुहा०—चँदिया पर बाल न छोड़ना = (१) सिर के बाल तक न छोड़ना। सब कुछ ले लेना। सर्वस्व हरण कर लेना। (२) सिर पर सूते लगाते लगाते बाल उड़ा देना। खूब सूते उड़ाना। चँदिया से चरे सरक = सिर के ऊपर से अलग जाकर लड़ा हो। पास से हट जा। चँदिया भूँड़ना = (१) सिर भूँड़ना। हजायत बनाना। (२) लूटकर लाना। मोबा देकर किसी का धन आदि ले लेना। (३) सिर पर

खूब सूते लगाना। चँदिया खाना = (१) बकवाद से संन करना। सिर खाना। सिर में दंड़ पैदा करना। (२) सब कुछ हरण करके दरिद्र बना देना। चँदिया खुजाना = (१) सिर खुजलाना। (२) मार या सूते खाने को जी चाहना। मार खाने का काम करना।

२. छोटी सी रोटी। बचे हुए आटे की टिकिया। पिछली रोटी।

३. किसी ताल में वह स्थान जहाँ सबसे अधिक गहराई हो। जैसे,—इस साल तो ऐसी कम वर्षा हुई कि तालों की चँदिया भी सूख गई। ४. चाँदी की टिकिया।

चँदेरी—संज्ञा जी० [सं० चेदि या हि० चन्देल] एक प्राचीन नगर। उ०—राव चँदेरी को भूपाल। जाको सेवत सब भूपाल।—सूर (शब्द०)।

विशेष—यह ग्वालियर राज्य के नरवार जिले में है। आज कल की बस्ती में ४, ५ कोस पर पुरानी इमारतों के खंडहर हैं। पहले यह नगर बहुत समृद्ध दशा में था; पर अब कुछ उजड़ गया है। यहाँ की पगड़ी प्रसिद्ध है। चँदेरी में कपड़े (सूती और रेशमी) अब भी बहुत अच्छे बुने जाते हैं। यहाँ एक पुराना किला है जो जमीन से २३० फुट की ऊँचाई पर है। इसका फाटक 'यूनी दरवाजा' के नाम से प्रसिद्ध है; क्योंकि पहले यहाँ अपराधी किले की दीवार पर से डकेले जाते थे। रामायण, महाभारत और बौद्ध ग्रंथों के देखने से पता लगता है कि प्राचीन काल में इसके आस-पास का प्रदेश चेदि, कलचुरी या हैहय वंश के अधिकार में था और चेदि देश कहलाता था। जब चंदेलों का प्रताप चमका, तब उनके राजा यशोवर्मा (संवत् ६८२ से १०१२ तक) ने कलचुरि लोगों के हाथ से कालिंजर का किला तथा आसपास का प्रदेश ले लिया। इसी से कोई कोई चंदेरी शब्द की व्युत्पत्ति 'चंदेल' से बतलाते हैं। अलबरूनी ने चंदेरी का उल्लेख किया है। सन् १२५१ ईसवी में गयासुद्दीन बलबन ने चंदेरी पर अधिकार किया था। सन् १४३८ में यह नगर मालवा के बादशाह महमूद खिलजी के अधिकार में गया। सन् १५२० में चित्तूर के राणा सांगा ने इसे जीतकर मेदिनीराव को दे दिया। मेदिनीराव से इस नगर को बाबर ने लिया। सन् १५८६ के उपरांत बहुत दिनों तक यह नगर बुंदेलो के अधिकार में रहा और फिर अंत में सन् १८११ में यह ग्वालियर राज्य के अधिकार में आया।

चँदेरीपति—संज्ञा पु० [हि० चँदेरी + सं० पति] चंदेरी का राजा। शिशुपाल।

चँदोआ—संज्ञा पु० [हि० चंदवा] दे० 'चंदवा'। उ०—संसार ताप से बचाने के निमित्त यक्ति के मंडप का चंदोआ रखा हुआ है।—अक्तभा० (श्री०), पृ० ३८२।

चँदोया—संज्ञा पु० [हि० चंदवा] दे० 'चंदवा'।

चँदोवा—संज्ञा पु० [हि० चंदवा] दे० 'चंदवा'।

चँपना—कि० प्र० [सं० चप्] १. बोझ से दबना। दबना। २. लज्जा से दबना। लज्जित होना। ३. उपकार से दबना। एहसान से दबना।

चैपौनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चैपना] बुलाहों के करने की मंजरी में एक पतली लकड़ी जो दूसरी मंज को ढबाने के लिये लगी रहती है।

चैबेलि—संज्ञा स्त्री० [हि० चमेली] दे० 'चमेली'। उ०—कोइ चैबेलि नागेसरि बरना।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४७।

चैबेलिया—वि० [हि० चमेली] दे० 'चमेलिया'।

चैबेली—संज्ञा स्त्री० [हि० चमेली] दे० 'चमेली'।

चैभारा—संज्ञा पुं० [हि० चमार] दे० 'चमार'। उ०—जा तन सू मुजे कछु नहि प्यार, असते के नहि हिंदु बेध चैभार।—दक्खिनो०, पृ० १०१।

चैवर—संज्ञा पुं० [सं० चामर] [स्त्री० अत्या० चैवरी] १. सुरा गाय की पूँछ के बालों का गुच्छा जो काठ, सोने, चाँदी आदि की डोड़ी में लगा रहता है।

विशेष—यह राजाओं या देवमूर्तियों के सिर पर, पीछे या बगल से डुलाया जाता है, जिससे मक्खियाँ आदि न बैठने पावें। कभी कभी यह खस का भी बनता है। मोर की पूँछ का जो चैवर बनता है, उसे मोरछल कहते हैं। चैवर प्रायः तिब्बती और भोटिया ले आते हैं।

चैवरी—संज्ञा स्त्री० = वह गाय जिसकी पूँछ के बाल से चैवर बनाया जाता है।

२. घोड़ों और हाथियों के सिर पर लगाने की कलगी। उ०—तैसे चैवर बनाए प्री घाले गल अंघ। बंधे सेत गजगाह तहें जो देखे सो कंप।—जायसी (शब्द०)।

चैवरठार—संज्ञा पुं० [हि० चैवर + ठारना] चैवर डोलानेवाला सेवक। उ०—चैवरठार दुइ चैवर डोलावहि।—जायसी (शब्द०)।

चैवरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चैवर] लकड़ी के बेंट या डोड़ी में लगा हुआ घोड़े की पूँछ के बालों का गुच्छा जिससे घोड़े के ऊपर की मक्खियाँ उड़ाई जाती हैं।

चैहकारा—संज्ञा स्त्री० [हि० चहकार] दे० 'चहकार'। उ०—चातक की चैहकार और किलकार से कूजित।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११।

चै—संज्ञा पुं० [सं०] १. कच्छप। कछुआ। २. चंद्रमा। ३. चोर। ४. दुर्जन। ५. शिव (को०)। ६. चर्वण। मक्षण (को०)।

चै—वि० १. निर्बीज। २. बुरा। अशुभ। ३. शुद्ध (को०)।

चै—अव्य० [सं०] और (को०)।

चइ—संज्ञा स्त्री० [धनु०] महावतों की बोली का एक शब्द जिसका व्यवहार हाथी को घुमाने के लिये किया जाता है।

चइसा—संज्ञा पुं० [सं० चैत्र] दे० 'चैत्र'।

चइना—संज्ञा पुं० [हि० चैन] दे० 'चैन'।

चई—संज्ञा स्त्री० [सं० चव्य] पिपरामूल की जाति का और लता की तरह का एक प्रकार का पेड़। वि० दे० 'चाव'।

विशेष—यह दक्षिण भारत तथा अन्य स्थानों में नदियों और

३-४४

बलाशयों के किनारे होता है। इसकी जड़ जल्दी नष्ट नहीं होती; और यदि वृक्ष काट भी लिया जाय, तो उसमें फिर पत्ते निकल आते हैं। इसके पत्तों का आकार पान का सा होता है। इसकी जड़ तथा लकड़ी दवा के काम में आती है।

चैकना—संज्ञा पुं० [हि० चैकना] दे० 'चैकना'।

चैकना—संज्ञा पुं० [हि० चैकना] दे० 'चैकना'। उ०—हरि हरि हार चैकना पद राधा। अथ माधव कर गिर रह्य आधा।—विद्यापति, पृ० ५५०।

चैहान—संज्ञा पुं० [हि० चौहान] दे० 'चौहान'।

चैका—संज्ञा पुं० [हि० चोक] दे० 'चोक'।

चैकी—संज्ञा स्त्री० [हि० चोकी] दे० 'चोकी'।

चैगुन—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्गुण] 'चौगुन'। उ०—चाँद बदनी धनि चकौर नयनी। दिवसे दिवसे भेलि चैगुन मलिन।—विद्यापति०, पृ० १८५।

चैतरा—संज्ञा पुं० [हि० चौतरा] दे० 'चौतरा'।

चैथा—वि० [हि० चौथा] दे० 'चौथा'।

चैदसा—संज्ञा स्त्री० [हि० चौदस] दे० 'चौदस'।

चैदहा—वि० [हि० चौदह] दे० 'चौदह'।

चैपाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चौपाई] दे० 'चौपाई'।

चैपाल—संज्ञा स्त्री० [हि० चौपाल] दे० 'चौपाल'।

चैर—संज्ञा पुं० [हि० चैर]। मोरछल। उ०—चरि धरि सुंदर वेध चले हरपित हिये। चउर चीर उपहार हार मनगण लिये।—तुलसी (शब्द०)।

चैरा—संज्ञा पुं० [हि० चौरा] दे० 'चौरा'।

चैरासो—संज्ञा पुं० [हि० चौरासो] दे० 'चौरासो'। उ०—चरित्र चउरासो हू आलबू, बिलबिलती काँई मेल्ले जाई।—बी० रासो, पृ० ४७।

चैरास्या—संज्ञा पुं० [हि०] चारों ओर बैठनेवाले मुसाहिब। जागीरदार। उ०—चार नगरी राजा भोज नरेस। चउरास्या जे कै बसइ प्रसेस।—बी० रासो, पृ० ६।

चैहट्ट—संज्ञा पुं० [हि० चौ + हाट] चौहट्ट। चौराहा। उ०—चउहट्ट हाट सुबट्ट चौथी चाक पुर बहुविधि बना।—मानस, ६।२।

चैहान—संज्ञा पुं० [हि० चौहान] दे० 'चौहान'।

चक—संज्ञा पुं० [सं० चक्र, प्रा० चक्क] १. चकई नाम का खिलौना। उ०—इत आवत दे जात दिखाई ज्यों भँवरा चक डोर। उत्तें सूत न टारत कतहें मोसों मानत कोर।—सूर (शब्द०)। २. चक्रवाक पक्षी। चकवा। उ०—संपति चकई मरत चक, मुनि प्रायसु खेलवार। तेहि निसि आश्रम पीजरा, राखे भा भिनसार।—तुलसी (शब्द०)। ३. चक्र नामक अस्त्र। ४. चक्का। पहिया। ५. जमीन का बड़ा टुकड़ा। भूमि का एक भाग। पट्टी।

चौ—चक्रवर्ती।

मुहा०—चक काटना = धूमि का विमान करना । जमीन की हड बंधना ।

६. छोटा गाँव । डेड़ा । पट्टी । पुरवा । ७ करवे की बैसर के कुलवासे से लटकती हुई रस्सियों से बँधा हुआ बँडा जिसके दोनों छोरों पर से चकबोर नीचे की ओर जाती है ।—(जुलाहे) ८. किसी बात की निरंतर अधिकता । तार ।

मुहा०—चक बंधना = बराबर बढ़ता जाना । एक पर एक अधिक होता जाना । तार बंधना । जैसे,—यहाँ आकर काम करो; देखो रूपों का चक बंध जाता है ।

९. अधिकार । दखल ।

मुहा०—चक जमना = रंग जमना । अधिकार होना ।

१०. सोने का एक गहना जिसका आकार गोल और उभारदार होता है । इसका चलन पंजाब में है । चौक ।

चक^१—वि० भरपूर । अधिक । ज्यादा । उ०—(क) उन्होंने चक माल मारा है । (ख) उनकी चक छनी है ।—(भंगड़) ।

चक^२—वि० [सं०] चकपकाया हुआ । भ्रांत । भौचक्का । उ०—चक चकित चित्त चरबीन चुमि चकचकाइ बंदी रहत ।—पद्माकर (शब्द०) ।

चक^३—संज्ञा पुं० [सं०] १. साधु । २. लाल ।

चकई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चकवा] मादा चकवा । मादा सुरसाब । वि० दे० 'चकवा' । उ०—(क) सीते सिल दाहक भई कैसे । चकई सरह चंद निलि जैसे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) संपति चकई भरत चक मुनि धायसु खेलवार ।—तुलसी (शब्द०) ।

चकई^२—संज्ञा स्त्री० [सं० चक] धिरनी या गढ़ारी के आकार का एक छोटा गोल झिलोना जिसके धेरे में डोरी जपटी रहती है । इसी डोरी के सहारे लड़के इसे फिराते या नचाते हैं । उ०—(क) भौंरा चकई लाल पाट को लेबुभा माँगु खेलोना ।—सूर (शब्द०) । (ख) इततें उत उततें इतै छिन न कहें ठहराति । जक न परति चकई नई, फिरि आवति फिरि जाति ।—बिहारी (शब्द०) ।

चकई^३—वि० गोल बनावट का । जैसे,—चकई आडू । चकई छाती ।

चकचकाना—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. पानी, खून, रस या और किसी द्रव पदार्थ का सूक्ष्म कणों के रूप में किसी वस्तु के बंदर से निकलना । रस रसकर ऊपर आना । जैसे,—जहाँ जहाँ बेंत लगा है, खून चकचका आया है । २. भीग जाना । उ०—बल धकित चित्त चरबीन चुमि चकचकाइ चंडिय रहत ।—पद्माकर प्र०, पृ० २३० ।

चकचकी—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] करताल नाम का बाजा ।

चकचाना^१—क्रि० प्र० [प्रनु०] चोषियाना । चकाचौष लगना । उ०—तो पक्ष चमक चकचाने चंद्रचूड़ चष चितवत एकटक जंक बंध गई है ।—चरण (शब्द०) ।

चकचाखा^१—संज्ञा पुं० [सं० चक + हि० चाल] चक्कर । भ्रमण । फेरा । उ०—माया मत चकचास करि चंचल कीए जीब । माया माते मद पिया दादु बिसरा पीव ।—दादु (शब्द०) ।

चकचाखा^२—संज्ञा पुं० [प्रनु०] चकाचौष । उ०—मोडुल के चष से चकचाव गो चोर लों चौकि ध्यान बिसासी ।—(शब्द०) ।

चकचून—वि० [सं० चक + चूरण] चूर किया हुआ । पिटा हुआ । चकना-चूर । उ०—पान, सुपारी खैर कहें मिले करे चकचून । तब लगी रंग न राचें जब लनि होय न चून ।—जायसी (शब्द०) ।

चकचूर^१—वि० [हि० चक + चूर] दे० 'चकचून' । उ०—तिनको निरखे दिन चारि गये छिन में चकचूर हूँ धूर समाये ।—दीन० प्र० पृ० १४६ ।

चकचूर^२—संज्ञा पुं० [हि०] मस्त । बेसुद । उ०—द्रव्य और अधिकार के नशे में ऐसा चकचूर हुआ कि लोक परलोक की कुछ खबर नहीं रही ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० २६१ ।

चकचूरना—क्रि० सं० [हि० चक + चूरन] टुकड़े टुकड़े कर डालना । चकनाचूर करना ।

चकचूरा—वि० [हि० चकचूर] दे० 'चकचून' उ०—अगम पंच सू पग न डिगावे होय जाय चकचूरा ।—चरण० बानी, पृ० ८६ ।

चकचूहट^१—क्रि० प्र० [हि० चकचकाना] चिता । सोच । चुकचुकी । उ०—नइहर अहै पियारा, चकचूहट जिय होइ ।—इंद्रा०, पृ० ५७ ।

चकचौहट^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चकचूहट] दे० 'चकचूहट' । उ०—जागत के चकचौहट लागा । जस पंती कर तें उड़ आगा ।—हिंदी प्रेम०, पृ० २५८ ।

चकचोड़^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चकचोष' । उ०—फगुवा ताहि मोहि चकचोड़ी यह रसरीति ठई ।—घनानंद, पृ० ४७४ ।

चकचोह^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चकचोषी' ।

चकचोषी—संज्ञा स्त्री० [हि० चकचोहा] हँसी मजाक । चुहल ।

चकचौध^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चकाचौध] दे० 'चकाचौष' ।

चकचौध^२—वि० चकित । विस्मित । उ०—कोउ जु रहे चकचौष खचिर पीतांबर छवि पर । नंद० प्र०, पृ० २७८ ।

चकचौधना^१—क्रि० प्र० [हि० चक + चौधना] आँख का अत्यंत अधिक प्रकाश के सामने ठहर न सकना । अत्यंत प्रखर प्रकाश के सामने दृष्टि स्थिर न रहना । आँख तिलमिलाना । चकाचौष होना ।

चकचौधना^२—क्रि० सं० आँख में चमक उत्पन्न करना । आँखों में तिलमिलाहट पैदा करना । चकाचौषी उत्पन्न करना । उ०—(क) अक्ष घुंघ खबर ते गिरि पर मानी परत वज्र के तीर । चमकि चमकि चपला चकचौधति श्याम कहत मन धीर ।—सूर (शब्द०) । (ख) चकचौधति सी चितवै चित में चित सोवत हूँ महें जागत है ।—केशव (शब्द०) ।

चकचौधा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चकाचौष' । उ०—गरजि बुलावति तोहि चंचला चमकत राह दिखाई । धीरन के चकचौधा लावत तेरी करत सहाई ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० १११ ।

चकचौधी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चकाचौष] दे० 'चकाचौष' ।

चकचौह^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] चकाचोष ।

चकचौबंद—वि० [हि० चक + प्रा० चोबंद] दे० 'चकाचौबंद' ।

चकचौहना—क्रि० प्र० [देश०] चाह से देखना । साक्षात् लगाए टक

बाँधकर देसना । उ०—जनु चातक सुख बूँद सेवाती । राजा चकचौहत तेहि भाँती ।—जायसी (शब्द०) ।

चकड़बा—संज्ञा पु० [हि० चकरबा] दे० 'चकरबा' ।

चकडोर—संज्ञा स्त्री० [हि० चकई + डोर] १. चकई की डोरी । चकई नामक खिलौने में लपेटा हुआ सूत । उ०—(क) खेलत प्रवध लोरि गोली भँवरा चकडोरि, मूरति मधुर बसे तुलसी के हियरे ।—मुलसी (शब्द०) । (ख) दे मैया भँवरा चकडोरी । जाइ लेहु धारे पर राखो काँह्ल मोल से राखै कोरी ।—सूर (शब्द०) । २. जुलाहों के करघे में वह डोरी जो चक या नचनी में लगी हुई नीचे सटकती है और जिसमें बेसर बँधी रहती है ।

चकडोल—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रदोल] पुराने ढंग की एक पालकी ।

चकट—संज्ञा पु० [हि० चकत्ता] दाँत की पकड़ । चकोटा ।

मुहा०—चकट मारना = दाँत से मांस आदि मोच लेना । चकोटा मारना । दाँतों से काट खाना ।

चकटा—संज्ञा पु० [तु० चगताई] दे० 'चकत्ता' ।

चकताई^१—संज्ञा पु० [तु० चगताई] दे० 'चकत्ता' ।

चकती—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रवत् ?] १. किसी चद्दर के रूप की वस्तु का छोटा गोल टुकड़ा । चमड़े, कपड़े आदि में से काटा हुआ गोल या चौकोर छोटा टुकड़ा । पट्टी । गोल या चौकोर घञ्जी । जैसे,—इस पुराने कपड़े में से एक चकती निकाल लो । २. किसी कपड़े, चमड़े, बरतन आदि के फटे या फूटे हुए स्थान पर दूसरे कपड़े, चमड़े या धातु (चद्दर) इत्यादि का टँका या लगा हुआ टुकड़ा । किसी वस्तु के फटे दूटे स्थान को बंद करने या मूँदने के लिये लगी हुई पट्टी या घञ्जी । बिगली ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—बादल में चकती लगाना = भ्रमहोनी बात करने का प्रयत्न करना । असंभव कार्य करने का आयोजन करना । बहुत बड़ी चढ़ी बातें कहना । ३. दुबे भेड़े की गोल और चौड़ी दुम ।

चकत्ता^१—संज्ञा पु० [सं० चक्र + वत्त] १. शरीर के ऊपर बना गोल बाग । चमड़े पर पड़ा हुआ घन्वा या दाग ।

विशेष—रक्तविकार के कारण चमड़े के ऊपर लाल, नीले या काले चकत्ते पड़ जाते हैं ।

२. लुजलाने आदि के कारण चमड़े के ऊपर थोड़े से धेरे के बीच पड़ी हुई चिपटी और बराबर सूजन जो उमड़ी हुई चकती की तरह दिखाई देती है । दबोरा । ३. दाँतों से काटने का चिह्न । दाँत घुमने का निशान ।

क्रि० प्र०—खाना ।

मुहा०—चकत्ता भरना = दाँतों से काटना । दाँतों से मांस निकाल लेना । चकत्ता मारना = दाँतों से काटना ।

चकत्ता^२—संज्ञा पु० [तु० चगताई] १. मोगल या तातार अमीर चपत्ताई खाँ जिसके बंध में बाबर, अकबर आदि भारतवर्ष के मुगल बादशाह थे । उ०—मोटी भई चंडी बिनु मोटी

के चंवाच सौस, लोटी भई संपति चकत्ता के घराने की ।—सूषण (शब्द०) । २. चगताई बंध का पुरुष । उ०—भिवतहि कुल चकत्ता की निरखि कीनी सरजा सुरेस ज्यों दुषित बजरज को ।—सूषण (शब्द०) ।

चकदार—संज्ञा पु० [हि० चक + दार (प्रत्य०)] वह जो दूसरे की जमीन पर कृषि बनवावे और जमीन का लगान दे ।

चकन^१—संज्ञा पु० [सं० चक] गुलबानी नाम का फूल । उ०—कमल गुलाब चकन की सीना । हीत प्रफुल्लित नव तिय नैना ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ४१ ।

चकना^१—क्रि० प्र० [सं० चक (= आत)] १. चकित होना । भोचक्का होना । चकपकाना । विस्मित होना । उ०—(क) चित्त चितेरी रही चकि सी जकि एक तें हूँ गड्ड हूँ तस्वीर सी ।—बेनीग्रवीन (शब्द०) । (ख) जदुबंसी धनि धनि मुख कहहीं । हरि की सीति देखि चकि रहहीं ।—रघुराज (शब्द०) । २. चौकना । आशंकायुक्त होना । उ०—(क) चित्र लिये मल को कर मैं । जवन अकेली हूँ भरमैं । संग सखीनहु सों चकि कै । यो समता मिलवै तकि कै ।—गुमान (शब्द०) । (ख) फुलत फुल गुलाबन के चटकाहटि चौकि चकी चपला सी ।—पद्माकर (शब्द०) । (ग) उचकी लची चौकी चकी मुख फेरि तरें बड़ी छँलियाँ चितई ।—बेनी (शब्द०) ।

चकनाचूर—वि० [हि० चक = चरपूर + चूर] १. जिसके टूट फूटकर बहुत से छोटे छोटे टुकड़े हो गए हों । चूरचूर । खंड खंड । ब्रूणित । उ०—साहब का घर चूर है जैसे लंबी खपूर । चढ़ तो चाखै प्रेम रस गिरे तो चकनाचूर ।—कबीर (शब्द०) । २. बहुत चका हुआ । अम से शिथिल । अत्यंत आत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

चकपक—वि० [सं० चक (= आत)] भोचक्का । चकित । हक्का बक्का । स्तंभित ।

चकपकाना—क्रि० प्र० [सं० चक (= आत)] १. आश्चर्य से इधर उधर ताकना । विस्मित होकर चारों ओर देखना । भोचक्का होना । उ०—कुँभर को देखते ही बधाई बधाई का चारों ओर से शोर मच गया । कुँभर बहुत चकपकाया कि यह मामला क्या है ?—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८०८ । २. आशंका से इधर उधर ताकना । चौकना ।

चकफेर—संज्ञा पु० [सं० चक + हि० फेर] चक्कर । फेरी । उ०—धारी भट्ट हिय हूँ लटू लाय रह्यो चकफेर । बजनिधि मन की ले गयो नेक न लागी बेर ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ३६ ।

चकफेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चक, हि० चक + फेरी] किसी वृत्त या मंडल के चारों ओर फिरने की क्रिया । परिक्रमा । भँवरी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

चकबंदी—संज्ञा स्त्री० [हि० चक + क्रा० बंदी] सूमि के कई छोटे छोटे भागों को एक में संमिलित करने की क्रिया । जमीन की हफबंदी ।

चकबैंट—संज्ञा स्त्री० [हि० चक + बाँटना] सूमि के बड़े खंड को कई हिस्सों में बाँटना ।

चक्रवर्त्त^१—संज्ञा पुं० [क्रा०] जमीन की हदबंदी। किशतवार।

चक्रवर्त्त^२—संज्ञा पुं० काश्मीरी ब्राह्मणों का एक मेह।

चक्रवाक—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाक] एक पक्षी। उ०—उरज मठौना
चक्रवाकन के छोना कैयों मदन सिलौना ये सलोना प्राण।—
पञ्चतन्त्र, पृ० २५

चक्रमाक—संज्ञा पुं० [तु० चक्रमाक] एक प्रकार का कड़ा पत्थर
जिसपर चोट पड़ने से बहुत जल्दी भाग निकलती है।

विशेष—पहले यह बंदूकों पर लगाया जाता था और इसी के
द्वारा भाग निकालकर बंदूक छोड़ी जाती थी। दियासलाई
निकलने के पहले इसी पर सूत रखकर और एक लोहे से चोट
देकर भाग भाड़ते थे।

चक्रमकना—क्रि० प्र० [हि० चक्रपकाना] प्रचंडित होना। उ०—
अधमूल कर्म सुँवर कान्हू के। निरखि गोप सब अति
चक्रमके।—नंद० प्र०, पृ० ३१०।

चक्रमा^१—संज्ञा पुं० [सं० चक्र (= भ्रांत)] १. भुलावा। धोखा।
उ०—कल तो तुमने उसको गहरा चक्रमा दिया।

मुद्दा—चक्रमा जाना = धोखा खाना। भुलावे में आना।
चक्रमा देना = धोखा देना। भुलवाना। भ्रांत करना।

२. हानि। नुकसान।

क्रि० प्र०—उठाना।—देना।

३. लड़कों के एक खेल का नाम।

चक्रमा^२—संज्ञा पुं० [देश०] बबून नामक बंदर की एक जाति।

चक्रमाक—संज्ञा पुं० [तु० चक्रमाक] दे० 'चक्रमक'।

चक्रमाकी^१—वि० [तु० चक्रमाक] चक्रमक का। जिसमें चक्रमक
लगा हो।

चक्रमाकी^२—संज्ञा स्त्री० बंदूक।—(लश०)।

चक्र(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] १. चक्रवाक पक्षी। चक्रवा। २.
३० 'चक्र'।

चौ०—चक्रमकर = धोखा। भुलावा। भ्रामा।—(लश०)।

चक्रवा—संज्ञा पुं० [सं० चक्रव्यूह] १. चक्रवर्त्त। फेर। कठिन स्थिति।
ऐसी अवस्था जिसमें यह न सूझे कि क्या करना चाहिए।
असमंजस। २. भगड़ा। बखेड़ा। टंटा।

क्रि० प्र०—में पड़ना।

चक्रसी—संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत बड़ा पेड़ जो पूरबी बंगाल,
आसाम और चटगांव में होता है।

विशेष—इसके हीर की चमकीली और मजबूत लकड़ी भेज,
कुरसी आदि सामान बनाने के काम में आती है। इसकी छाल
से चमड़ा सिझाया जाता है।

चक्रा^१—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] पानी का भँवर।

चक्रा^२—वि० [वि० स्त्री० चौड़ी] चौड़ा। विस्तृत। उ०—सी योजन
विस्तार कनकपुरि चकरी योजन बीस।—मूर (शब्द०)।

चक्राई—संज्ञा स्त्री० [हि० चक्रा (= चौड़ा)] चौड़ाई। उ०—
योजन चार की है चक्राई, योजन चार लग गंध उड़ाई।—
कबीर सा०, पृ० ४६१।

चकराना^१—क्रि० प्र० [सं० चक्र] १. (सिर का) चक्कर खाना।
(सिर) घूमना। जैसे,—देखते ही मेरा सिर चकराने लगा।
२. भ्रांत होना। चकित होना। भूलना। जैसे,—वहाँ जाते
ही तुम्हारी बुद्धि चकरा जायगी। ३. प्राश्चर्य से इधर उधर
ताकना। चक्काना। चकित होना। हैरान होना। घबराना।

चकराना^२—क्रि० प्र० प्राश्चर्य में डालना। चकित करना। हैरान
करना।

चकराना^३—क्रि० प्र० [क्रा० चाकर] चाकर या सेवक होना।

चकरानी—संज्ञा स्त्री० [क्रा० चाकर] दासी। सेवकनी। टहलुई।

चकरिया^१—संज्ञा पुं० [क्रा० चकरी + हा (प्रत्य०)] चाकरी करने-
वाला। नीकर। सेवक। टहलुवा।

चकरिया^२—वि० नीकरी चाकरी करनेवाला।

चकरिहा—संज्ञा पुं० [फा० चाकर] दे० 'चकरिया'।

चकरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्री] १. चक्की। २. चक्की का पाट।

उ०—जंतु के घन हेरनि ललच कोदहत के मन दीरा
हो। दुह चकरी जिन दरन पसारहु तब पैहो ठिक ठीरा
हो।—कबीर (शब्द०)। ३. चकई नाम का लड़कों का
खिलौना। उ०—(क) बोलि लिये सब सखा सग के खेलत
स्याम नंद की पीरी। तैसेह हरि तैसेह सब बालक कर भौरा
चकरीन की जोरी।—सूर (शब्द०)। (ख) चकरी लौं
सकरी गलिन छिन आवति छिन जाति। परी प्रेम के फंद में
बधू बितावति राति।—पद्माकर प्र०, पृ० १६६।

चकरी^२—वि० चक्की के समान इधर उधर घूमनेवाला। भ्रमिष्ठ।
अस्थिर। चंचल। उ०—हमारे हरि हारिल की लकरी। मन
कम बचन नंद नंदन उर यह दुह करि पकरी। जागत सोवत
स्वप्न दिवस निकि 'कान्हू कान्हू' जकरी। सुनत द्विये लागत
हमें ऐसी ज्यों कइई कैंकरी। सु तो व्याधि हमकों ले आए
देखी सुनी न करो। यह तो मूर तिन्हें ले सौंपी जिनके मन
चकरी।—सूर (शब्द०)।

चकरी^३—वि० स्त्री० [हि० चकरा] चौड़ी। दे० 'चकरा'।

चकरीगिरह—संज्ञा स्त्री० [जहाजी] बड़े में लगी हुई रस्सी की गाँठ
जो उसे रोके रखती है।—(लश०)।

चकल—संज्ञा पुं० [हि० चक्रा] १. किसी पीछे की एक स्थान से
दूसरे स्थान पर लगाने के लिये मिट्टी समेत उखाड़ने की
क्रिया। २. मिट्टी की वह पिंडो जो पीछे की दूसरी जगह लगाने
के लिये उखाड़ते समय जड़ के आस पास लगी रहती है।

क्रि० प्र०—उठाना।

चकलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चकला] चौड़ाई।

चकला^१—संज्ञा पुं० [सं० चक्र, हि० चक्र + ला (प्रत्य०)] १. पत्थर
या कठ का गोल पाटा जिसपर रोटी बेनी जाती है। चौका।
२. चक्की। ३. देश का एक विभाग जिसमें कई गाँव या
नगर होते हैं। इलाका। जिला।

चौ०—चकलेदार।—चकलाबंदी।

४. व्यभिचारिणी स्त्रियों का ग्रंथ। रंडियों के रहने का घर या
मुद्दसा। कसबोखाना।

चकवा^२—वि० [ली० चकली] चौड़ा ।

चकवाना^१—क्रि० सं० [हि० चकल] किसी पीसे को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगाने के लिये मिट्टी समेत उखाड़ना ।
चकल उठाना ।

चकवाना^२—क्रि० सं० [हि० चकला] चौड़ा करना ।

चकली^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चक, हि० चाक] २. घिरनी । गड़ारी ।
२. छोटा चकला या चौका जिसपर चंदन घिसते हैं ।
होरसा ।

चकली^२—वि० स्त्री० चौड़ी ।

चकलेदार—संज्ञा पुं० [देश०] किसी प्रदेश का शासक या कर संग्रह करनेवाला । किसी सूबे का हाकिम या मालगुजारी वसूल करनेवाला ।

विशेष—अवध में नवाब की धोर से जो कर्मचारी मालगुजारी वसूल करने के लिये नियुक्त होते थे, वे चकलेदार कहलाते थे ।

चकवैद^१—संज्ञा पुं० [सं० चक्रमर्द] एक हाथ से डेढ़ दो हाथ तक ऊंचा एक पीसा । पमार । पवाड़ ।

विशेष—इसकी पतियाँ डठल की धोर नुकीली धोर सिर की धोर गोलाई लिए हुए चौड़ी होती हैं । पीले रंग के छोटे छोटे फूलों के झड़ जाने पर इसमें पतली लंबी फलियाँ लगती हैं । फलियों के अंदर उरद के दाने के ऐसे बीज होते हैं जो दाने में बहुत कड़ुए होते हैं । इसकी पत्ती, जड़, छाल, बीज सब औषध के काम में आते हैं । वैद्यक में यह पित्त वात नाशक, हृदय को हितकारी तथा श्वास, कुष्ठ, दाद, खुजली आदि को दूर करनेवाला माना जाता है ।

चकवैद^२—संज्ञा पुं० [सं० चक (=चाक) + गड़] कुम्हारों का वह बरतन जो पानी से भरा हुआ चाक के पास रखा रहता है । पानी हाथ में लगाकर चाक पर चढ़े हुए बरतन के लोंदे को चिकना करते हैं ।

चकवा^१—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाक] [स्त्री० चकई] एक पक्षी जो जाड़े में नदियों और बड़े जलाशयों के किनारे दिखाई देता है और बसास तक रहता है । उ०—चकवा चकई दो जने, इन मत मारो कोय । ये मारे करतार के, रैन बिछोहा होय (शब्द०) ।

विशेष—अधिक गरमी पड़ते ही यह भारतवर्ष से चला जाता है । यह दक्षिण को छोड़ और सारे भारतवर्ष में पाया जाता है । यह पक्षी प्रायः झुंड में रहता है । यह हंस की जाति का पक्षी है । इसकी लंबाई हाथ भर तक होती है । इसके शरीर पर कई भिन्न भिन्न रंगों का मेल बिछाई देता है । पीठ और छाती का रंग पीला तथा पीछे की धोर का खैरा होता है । किसी के बीच बीच में काली और साल चारियाँ भी होती हैं । पूँछ का रंग कुछ हरापन लिए होता है । कहीं कहीं इन रंगों में भेद होता है । डेनों पर कई रंगों का गहरा मेल बिछाई देता है । यह अपने जोड़े से बहुत प्रेम रखता है । बहुत काल से इस देश में ऐसा प्रसिद्ध है कि पत्र के समय यह अपने जोड़े से भ्रमण रहता है । कवियों

ने इसके रात्रिकाल के इस वियोग पर अनेक उक्तियाँ बोधी हैं । इस पक्षी को सुरक्षा भी कहते हैं ।

चकवा^२—संज्ञा पुं० [सं० चक] १. हाथ से कुछ बढ़ाई हुई पाटे की लोई । २. जुलाहों की चरखी तथा नटाई में लगी हुई बाँस की छड़ी ।

चकवा^३—संज्ञा पुं० [देश०] एक बहुत ऊंचा पेड़ जो मध्य प्रदेश, दक्षिण भारत तथा बटगाँव की धोर बहुत मिलता है ।

विशेष—इसके हीर की जकड़ी बहुत मजबूत धोर छाल कुछ स्याही लिए सफेद या भूरी होती है । इसके पत्ते चमड़ा सिक्काने के काम में आते हैं ।

चकवाना^१—क्रि० प्र० [देश०] चकपकाना । हिरान होना । चकित होना । उ०—मुखचंद की देखि प्रभा दिन में चकवा चकई चकवाने रहैं ।—देव (शब्द०) ।

चकवार, चकवारि—संज्ञा पुं० [?] कछुआ । कच्छप ।

चकवाह^१—संज्ञा पुं० [हि० चकवा] दे० 'चकवा' ।

चकवी—संज्ञा स्त्री० [हि० चकवा का स्त्री०] दे० 'चकई', 'चकवा' ।

चकवै^१—संज्ञा पुं० [हि० चकवै] दे० 'चकवै' ।

चकसेनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] काकजंघा ।

चकहा^१—संज्ञा पुं० [सं० चक] पहिया । चक्का । उ०—महा उत्तंग मनि जोतिन के संग आनि कैयो रंग चकहा महत रवि रच के ।—भूषण (शब्द०) ।

चकही—संज्ञा स्त्री० [हि० चकई] दे० 'चकई' । उ०—गई कंबला सरवर पास । चकही जान्यो चंद्र प्रकासा ।—माधवानल०, पृ० १६८ ।

चकौड़—संज्ञा पुं० [हि०] चकैया भाँड़ । चिपटा भाँड़ ।

चका^१—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] १. पहिया । चक्का । चाक । उ०—बदन बहल कुंडल चका मोह जुवा हय नैन । केरत चित मैदान में बहलवान वह नैन ।—रसनिधि (शब्द०) । २. परवाह । प्रतीक्षा । उ०—पहिले धके पाँच सौ पड़िया, मुगलां प्राण चका से मुड़िया ।—राज रू०, पृ० २२७ ।

चका^२—संज्ञा पुं० [हि० चकवा] [स्त्री० चकी] चक्रवाक । चकवा । उ०—नैकु निमेष न लायत नैन चकी चितवै तिय देव तिया सो ।—मतिराम (शब्द०) ।

चकाकेवल—संज्ञा स्त्री० [हि० चक या चका+केवल] काले रंग की मिट्टी जो सूखने पर चटक जाती और पानी पड़ने से लसदार होती है । यह कठिनता से जोती जाती है ।

चकाचक^१—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] तलवार आदि के लगातार शरीर पर पड़ने का शब्द ।

चकाचक^२—वि० १. तर । तराबोर । लथपथ । दूबा हुआ । जैसे,—
भी में चकाचक । २. पूर्ण सुंदर । दिव्य । उ०—इस तरह मेरे चितरे हृदय की, बाह्य प्रकृति बनी चकाचक चित्र थी ।—पल्लव, पृ० ८ ।

चकाचक^३—क्रि० वि० [सं० चक (=चूम होना)] खूब । भरपूर । अघाकर । पेट भर के । जैसे,—भाज उनकी चकाचक छनी है ।

चक्राचक्र—क्रि० वि० [हि० चक्राचक्र] दे० 'चक्राचक्र' । उ०—
बड़ेउ कमठ कहे बाहू कराहू । चक्राचक्र भा घाघक हाहू ।
—ईशा०, पृ० १८ ।

चक्राचौष—संज्ञा स्त्री० [हि० चक्र + चोष (= सं० चक्षु) या चमक
अथवा सं० चक् (= चमकना) + चो (= चारों ओर) + प्रथ]
अत्यंत अधिक चमक या प्रकाश के सामने आँखों की भ्रष्टता ।
अत्यंत प्रखर प्रकाश के कारण दृष्टि की अस्थिरता । कड़ी रोशनी
के सामने नजर का न ठहरना । तिलमिलाहट । तिलमिली ।

क्रि० प्र०—लगना ।—होना ।

चक्राचौषी—संज्ञा स्त्री० [हि० चक्राचौष] 'चक्राचौष' ।

चक्राचरी—संज्ञा पुं० [हि०] एक प्रकार के पेड़ का नाम ।

चक्राना—क्रि० प्र० [सं० चक्र + (आंत)] चक्रपकाना । चक्रराना ।
अचभं से ठिठक जाना । हैरान होना । घबराना । उ०—(क)
रही कहीं चक्रमाइ चित चल पिय सादर देख । लोहा कंचन
होत तहँ पारस परस बिसेस ।—रसनिधि (शब्द०) । (ख)
दुराधर्ष, हर्षी बोक युद्ध ठाने । लखे राजसी बानरी से
चक्राने ।—रघुराज (शब्द०) । (ग) बूत दबकाने चित्रगुप्त ह
चक्राने श्री, चक्राने जमजाल पापपुंज लुंज त्वे गए ।—पद्माकर
प्र०, पृ० २५६ ।

चक्रावृ—संज्ञा पुं० [सं० चक्रव्यूह] प्राचीन काल में युद्ध के समय
किसी व्यक्ति या वस्तु की रक्षा के लिये उसके चारों ओर एक
के पीछे एक कई मंडलाकार पंक्तियों में सैनिकों की स्थिति ।
चक्रव्यूह ।

चक्रावृह—संज्ञा पुं० [सं० चक्रव्यूह] दे० 'चक्रव्यूह' । उ०—का
बसाइ जी गुरु भस बूझा । चक्रावृह अभिमनु जो बूझा ।—
जायसी प्र० (गुप्त), पृ० ३२० ।

चक्रोष—इसकी रचना ऐसी चक्रकरदार होती थी कि इसके मंदर
मार्ग पाना बड़ा कठिन होता था । यह एक प्रकार की
भूलभूलैया थी । वि० दे० 'चक्रव्यूह' ।

मुहा०—चक्रावृ में पड़ना या फँसना = फेर में पड़ना । चक्रकर में
पड़ना । ऐसी स्थिति में होना जिसमें कर्तव्य न सूझ पड़े ।

चक्रार—संज्ञा पुं० (सं०) १. वर्णमाला में छठा व्यंजन वर्ण । २. दुःख
या सहायभूतिसूचक शब्द । जैसे,—बह वहीं लड़ा सब देखता
था पर उसके मुँह से चक्रार तक न निकला ।

चक्रावृक्ष—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटे के अगले पैर में गामचे की हड्डी का
उभार ।

चक्रि—वि० [सं० चक्रित] दे० 'चक्रित' । उ०—जाहि निरखि वज्र-
वासी गन चक्रि गये मूढ बनि ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ६१ ।

चक्रित—वि० [सं०] १. चक्राकाया हुआ । विस्मित । आश्चर्यान्वित ।
दंग । हक्का बक्का । भौचक्का । भ्रांत । २. हैरान । घबराय
हुआ । उ०—(क) अजित रूप हूँ शील घरो हरि जलनिधि
मथिने काज । सुर भव असुर चक्रित गए देखे किए भक्त के
काज ।—सूर (शब्द०) (ख) लखिमान बीख उमाकृत वेषा ।
चक्रित भए भ्रम हृदय विशेषा ।—तुलसी (शब्द०) । (ग)
जाने बुध विद्या हित पंडित चक्रित चित जाने लोभी लालची

धरनि घन घाम के ।—तुलसी (शब्द०) । ३. चौकन्ना ।
संशंकित । डरा हुआ । ४. डरपोक । कायर ।

चक्रित—संज्ञा पुं० १. विस्मय । २. आश्चंका । व्यर्थ भय । ३.
कायरता ।

चक्रितवंत—वि० [सं० चक्रित + वत् (प्रत्य०)] आश्चर्ययुक्त ।
विस्मित । भ्रांत । उ०—अब प्रति चक्रितवंत मन मेरो ।
आयो हौं निगुंन उपदेसन मयों सगुन को बेरो ।—सूर
(शब्द०) ।

चक्रिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में गणों
का क्रम इस प्रकार होता है—SII IIS SSS SSI III S ।
जैसे,—भो सुमति ! न गोविंदा जानो निषट नरा । देखति
जिन गोपि ग्वाल के जो गिरिहि धरा ।

चक्रिताई—संज्ञा स्त्री० [हि० चक्रित] चक्रित होने की अवस्था ।
विस्मय । अचंभा ।

चक्रिया—संज्ञा स्त्री० [चक्रिका] चक्की ।

चक्रुंदा—संज्ञा पुं० [सं० चक्रमर्द] चक्रबैड़ । पमाड़ । दे० 'चक्रबैड़' ।

चक्रुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र] छोटी हाँडी ।

चक्रुला—संज्ञा पुं० [देश०] बिड़िया का बच्चा । चेंदुवा । उ०—
भंडन के मनो मंडल मध्य तें द्वे निकसे चक्रुला चक्रवा के ।—
गंग (शब्द०) ।

चक्रुलिया—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रकुल्या] एक प्रकार का पोधा या
झाड़ी ।

चक्रुषना—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चक्राचौष' । उ०—कूषत माँह
चक्रुषत जीऊ । केहि के कंठ लगे बिन पीऊ ।—हिंदी प्रेम०,
पृ० २७६ ।

चक्रुत—वि० [सं० चक्रित] दे० 'चक्रित' । उ०—राजत बंसी मधुर
धुनि मन मोहन की ध्यान । सुनत चक्रित चक्रुत रही अद्भुत
प्रति ही तान ।—ब्रज० प्र०, पृ० ३७ ।

चक्रेठ—संज्ञा पुं० [सं० चक्र + यष्टि] बाँस या लकड़ी का एक नोकदार
ढंढा जिससे कुम्हार अपना चाक घुमाते हैं । कुलालढंढा ।

चक्रेड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रमण्डिका, प्रा० चक्रमंडिका] चक्रवैड ।

चक्रेवा—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाक, हि० चक्रवा] चक्रवा । उ०—
कुचजुग चकेव चरइ गंगाधारे—विद्यापति०, पृ० १८ ।

चक्रोट—संज्ञा पुं० [हि० चक्रोटना] चक्रोटने की क्रिया या भाव ।

चक्रोटना—क्रि० सं० [हि० चक्रोटनी] चुटकी से मांस नोचना ।
चक्रोटनी काटना । उ०—चंचल चपेट थोट चरन चक्रोटि चाहि
हहरानी फोज महरानी जातुधान की ।—तुलसी (शब्द०) ।

चक्रोतरा—संज्ञा पुं० [सं० चक्रपोला] एक प्रकार का बड़ा जैबीरी
नीबू । बड़ा नीबू । महा नीबू । सदाफल । सुगंधा । मातुसंग ।
मधुकर्कटी ।

चक्रोष—इसका स्वाद खट्टापन लिए मीठा होता है । इसकी फाँकों
का रंग हलका सुनहला होता है । यह फल जाड़े के दिनों में
मिलता है ।

चकोरा—संज्ञा पुं० [हि० चकोरा] एक रोग जिसमें बुटने के नीचे छोटी छोटी कुंसियाँ निकलती हैं और बढ़ती चली जाती हैं।

चकोर—संज्ञा पुं० [सं०] [बी० चकोरी] १. एक प्रकार का बड़ा पहाड़ी तीतर जो नेपाल, नैनीताल आदि स्थानों तथा पंजाब और अफगानिस्तान के पहाड़ी जंगलों में बहुत मिलता है। उ०—नयन रात निसि मारग जाये। चख चकोर जानहुँ ससि लागे।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—इसके ऊपर का एक रंग काला होता है, जिसपर सफेद सफेद चित्तियाँ होती हैं। पेट का रंग कुछ सफेदी लिए होता है। चोंच और आँखें इसकी बहुत लाल होती हैं। यह पक्षी मुँहों में रहता है और बैसाख जेठ में बारह बारह घंटे देता है। भारतवर्ष में बहुत काल से प्रसिद्ध है कि यह चंद्रमा का बड़ा भारी प्रेमी है और उसकी ओर एकटक देखा करता है; यहाँ तक कि यह प्राण की चिनगारियों को चंद्रमा की किरणों समझकर खा जाता है। कवि लोगों ने इस प्रेम का उल्लेख अपनी उक्तियों में बराबर किया है। लोग इसे पिंजरे में पालते भी हैं।

२. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सात अक्षर, एक गुरु और एक लघु होता है। यह यद्यपि में एक प्रकार का सवैया है। जैसे,—भासत ग्वाल सखीगन में हरि राजत तारन में जिमि चंद।

चकोरी—संज्ञा बी० [सं०] मादा चकोर। सरब ससिहि जनु चितव चकोरी।—तुलसी (शब्द०)।

चकोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाह] प्रवाह में घूमता हुआ पानी। भँवर।

चकौड़—संज्ञा पुं० [हि० चकवैड] दे० 'चकवैड'।

चकौध—संज्ञा बी० [हि०] दे० 'चकाचौध'। उ०—सेस सीस मनि चमक चकौधन तनिकहु नहि सकुचाही।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

चकौटा—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का लगान जो बीघे के हिसाब से नहीं होता। २. वह पशु जो ऋण के बन्धे में दिया जाय। इसे 'मुलबन' भी कहते हैं।

चक्क—संज्ञा पुं० [सं०] पीड़ा। दर्द।

चक्क—संज्ञा पुं० [सं० चक] १. चक्रवाक। चकवा। उ०—हंस मानसर तजयो चक्क चक्की न मिले अति।—इतिहास, पृ० २०४।

शौ०—चक्क चक्कि। चक्क चक्की।

२. कुम्हार का चाक। ३. बिशा। प्रांत। उ०—(क) पेज प्रतिपाल भूमिहार को हमाल चहुँ चक्क को अमाल भयो दंडक जहान को।—सूषण (शब्द०)। (ख) सूषण अनत वह चहुँ चक्क चाहि कियो पातसाहि चक ताकि छाती माहि खेवा है।—सूषण (शब्द०)। (ग) आन फिरत चहुँ चक्क चाक-चक्कन गड़ चुकहि।—पद्माकर पं०, पृ० ८।

चक्कर—संज्ञा पुं० [सं० चक] १. पहिए के आकार की कोई (विशेषतः घूमनेवाली) बड़ी गोल वस्तु। मंडलाकार पटल। चाक। जैसे,—उस मशीन में एक बड़ा चक्कर है जो बराबर

घूमता रहता है। २. गोल या मंडलाकार घेरा। वृत्ताकार परिधि। मंडल। ३. मंडलाकार मार्ग। गोल सड़क या रास्ता। घुमाव का रास्ता। जैसे,—उस बगीचे में जो चक्कर है, उसके किनारे किनारे बड़ी सुंदर घास लगी है। ४. मंडलाकार गति। चक्राकार या उसके समान गति अथवा चाल परिक्रमण। फेरा। ५. पहिए के ऐसा भ्रमण। अक्ष पर घूमना।

मुहा०—चक्कर काटना = वृत्ताकार परिधि में घूमना। परिक्रमा करना। मंडराना। चक्कर खाना = (१). पहिए की तरह घूमना। अक्ष पर घूमना। (२) घुमाव फिराव के साथ जाना। सीधे न जाकर टेढ़े मेढ़े जाना। जैसे,—(क) उतना चक्कर कोन खाय, इसी बगीचे से निकल चलो। (ख) यह रास्ता बहुत चक्कर खाकर गया है। (३) मटकना। भ्रांत होना। हैरान होना। जैसे,—घंटों से चक्कर खा रहे हैं, यह सवाल नहीं आता है। चक्कर देना = (१) मंडल बांधकर घूमना। परिक्रमा करना। मंडराना। (२) दे० 'चक्कर खाना'। चक्कर पड़ना = जाने के लिये सीधा न पड़ना। घुमाव या फेर पड़ना। जैसे,—उधर से क्यों जाते हो, बड़ा चक्कर पड़ेगा। चक्कर बांधना = मंडलाकार मार्ग बनाना। वृत्त बनाते हुए घूमना। चक्कर मारना = (१) पहिए की तरह अक्ष पर घूमना। (२) वृत्ताकार परिधि में घूमना। परिक्रमा करना। (३) चारों ओर घूमना। इधर उधर फिरना। जैसे,—दिन भर तो चक्कर मारते ही रहते हो, थोड़ा बैठ जाओ। चक्कर में आना = चकित होना। भ्रांत होना। हैरान होना। दंग रह जाना। जैसे,—सब लोग उनकी अद्भुत वीरता देख चक्कर में आ गए। चक्कर में डालना = (१) चकित करना। हैरान करना। (२) कठिनता या असमंजस में डालना। फेर में डालना। ऐसी स्थिति में करना जिससे यह न सूझ पड़े कि क्या करना चाहिए। हैरान करना। चक्कर में पड़ना = (१) असमंजस में पड़ना। दुबधा में पड़ना। कठिन स्थिति में पड़ना। (२) हैरान होना। माया खपाना। चक्कर लगाना = (१) परिक्रमा करना। मंडराना। (२) चारों ओर घूमना। इधर उधर फिरना। फेरा लगाना। घाना जाना। घूमना फिरना। जैसे,—(क) हम बड़ी दूर का चक्कर लगाकर आ रहे हैं। (ख) तुम इनके यहाँ नित्य एक चक्कर लगा जाया करो।

६. घुमाव। पेंच। जटिलता। दुरुहता। फेर फार। जैसे,—यह बड़े चक्कर का सवाल है।

मुहा०—किसी के चक्कर में आना या पड़ना = किसी के धोखे में आना या पड़ना। गुलावे में घाना।

७. सिर घूमना। घुमरी। घुमटा। वेहोशी। मुर्छा।

क्रि० प्र०—घाना।

८. पानी का भँवर। जंजाल। ९. चक नामक अस्त्र।

मुहा०—चक्कर पड़ना = वज्रपात होना। विपत्ति आना। (स्त्रियाँ)।

१०. कुत्ती का एक पेंच जिसमें अपने दोनों हाथ पेट में घुसे हुए विपक्षी के दोनों मोड़ों पर रखकर उसकी पीठ अपने

सामने कर बैठे हैं और फिर टांग मारकर उसे चित्त कर बैठे हैं।

चक्रद्वार—वि० [हि० चक्र + फा० द्वार] मोड़, घुमाव या उलझन-बाधा।

चक्रद्वी—संज्ञा स्त्री० [हि० चक्र] दे० 'चक्र'। उ०—सु नव्यई सुरंग छाप बाज साज उठुही। मनो कि होरि चक्रद्वी सुहृद्य इष्टि नव्यहीं।—पृ० रा०, २१।५३।

चक्रद्वार—वि० [सं०] गोल। बतुल [को०]।

चक्रद्वार—वि० [सं० चक्रवर्ती] चक्रवर्ती (राजा)। सार्वभौम (राजा)। उ०—समुद्र चक्रवर्त कोसलराऊ। भुवन चारि बस प्रगट प्रभाऊ।—मानस, २।६८।

चक्रवर्त—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवर्ती] चक्रवर्ती राजा।

चक्रवा—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाक] चक्रवा। चक्रवाक। उ०—रघुवर कीरति सज्जननि सीतल खलनि सु ताति। ज्यो चकोर चप चक्रवनि तुलसी चंदिनि राति।—तुलसी (शब्द०)।

चक्रवै—वि० [सं० चक्रवर्ती, प्रा० चक्रवर्ती, चक्रवर्त] चक्रवर्ती (राजा)। आसमुद्रांत पृथ्वी का राजा। उ०—(क) नव सप्त धंत मेवातपति, इक छत्त महि चक्रवै।—पृ० रा०, ३।२६। (ख) नहि तनु सम्हारहि, छवि निहारहि निमिष रिपु जन रन जए। चक्रवै लोचन राम रूप सुराज तुलसी भोगी भए।—तुलसी श्रं०, पृ० ५८।

चक्रस—संज्ञा पुं० [फा० चक्रस] तुलबुल, बाज आदि पक्षियों के बैठने का झुंड।

चक्रा—संज्ञा पुं० [सं० चक्र, प्रा० चक्र] १. पहिया। चाका। २. पहिए के आकार की कोई गोल वस्तु। ३. बड़ा चिपटा टुकड़ा। बड़ा कतरा। जैसे,—मिट्टी का चक्रा, लसी का चक्रा। ४. जमा हुआ कतरा। धंधरी। झंठी। चक्रा। जैसे,—चक्रा रही। ५. ईंटों या पत्थरों का ढेर जो माप या गिनती के लिये क्रम से लगाया गया हो।

क्रि० प्र०—बाधना।

चक्की—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रिका, प्रा० चक्की] नीचे ऊपर रखे हुए पत्थर के दो गोल और भारी पहियों का बना हुआ यंत्र जिसमें घाटा पीसा जाता है या दाना दसा जाता है। घाटा पीसने या दाल इलने का यंत्र। जाता।

यौ०—पनचक्की।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।

यौ०—चक्की का पाट = चक्की का एक पत्थर। चक्की की मानी = (१) चक्की के नीचे के पाट के बीच में गड़ी हुई वह खूँटी जिसपर ऊपर का पाट घूमता है। (२) घुब। घुबतारा।

मुहा०—चक्की सूना = (१) चक्की में हाथ लगाना। चक्की चलाना आरंभ करना। चक्की चलाना। (२) अपना चरखा शुरू करना। अपना वृत्तार्थ आरंभ करना। अपनी कथा छेड़ना। आपबीली सुनाना। चक्की पीसना = (१) चक्की में

डालकर गेहूँ आदि पीसना। चक्की चलाना। (२) कड़ा परिश्रम करना। बड़ा कष्ट उठाना। चक्की रहाना = चक्की को टाँकी से खोद खोदकर खुरदरा करना जिसमें दाना अच्छी तरह पिसे। चक्की कूटना।

चक्की—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रिका] १. पैर के घुटने की गोल हड्डी। २. ऊँटों के शरीर पर का गोल घट्टा। ④। ३. बिजली। वज्र।

चक्की—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र] दे० 'चक्र'। उ०—हंस मानसर तज्यो चक्र चक्की न मिले प्रति।—प्रकवरी०, पृ० ११८।

चक्कीघर—संज्ञा पुं० [हि० चक्की + घर] १. पनचक्की। २. घाटा पीसने का स्थान। ३. कल। उ०—इसी चक्कीघर में काम करो, तो पाँच छह घाने रोज मिलें।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ५६६।

चक्कीरहा—संज्ञा पुं० [हि० चक्की + रहाना] वह व्यक्ति जो चक्की को टाँकी से कूटकर खुरदरी करता है।

चक्की—संज्ञा पुं० [हि० चाकू] दे० 'चाकू'।

चक्कीर—संज्ञा पुं० [सं० चक्की] दे० 'चक्की'। उ०—चल्यो सु वारिधि नंद। चक्कीर आनंदकंद। धनपति दीन पठाय। सिय परसमणि सुखपाय।—प० रासो, पृ० २५।

चक्की—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] प्रा० चक्की, राज० चक्की] दे० 'चक्र'। उ०—खंजर नेन विसाल गय चाही लागइ चक्की। एकरा साटइ मारवी, देह एराकी लक्ख।—डोला०, दू० ४५८।

चक्कीना—क्रि० सं० [हि० चक्कीना] दे० 'चक्कीना'। उ०—मुसकाकर छोड़ चले मेरी मधुशाला तुम? प्रिय, अब क्या चक्कीगे धोरो की हाला तुम?—कवासि, पृ० ३१।

चक्की—संज्ञा स्त्री० [हि० चक्कीना] १. स्वाद के लिये चरपरी खाने की चीज। चाट। २. बटेरों की चुगाई।

चक्की—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेईमानी। वंचना। छल कपट [को०]।

चक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहिया। चाका। २. कुम्हार का चाक। ३. चक्की। जाँटा। ४. तेल पेरने का कोलू। ५. पहिए के आकार की कोई गोल वस्तु। ६. लोहे के एक अक्ष का नाम जो पहिए के आकार का होता है।

विशेष—इसकी परिधि की धार बड़ी तीक्ष्ण होती है। शुक्रनीति के अनुसार चक्र तीन प्रकार का होता है—उत्तम, मध्यम और अधम। जिसमें आठ धार (धारे) हों वह उत्तम, जिसमें छह हों वह मध्यम, जिसमें चार हों वह अधम है। इसके प्रतिरिक्त तोल का भी हिसाब है। विस्तारभेद से १६ धनुष का चक्र उत्तम माना गया है। प्राचीन काल में यह युद्ध के अवसर पर नचाकर फेंका जाता था। यह विष्णु भगवान् का विशेष अस्त्र माना जाना था। आजकल भी गुरु गोविंदसिंह के अनुयायी सिख अपने सिर के बालों में एक प्रकार का चक्र लपेटे रहते हैं।

मुहा०—चक्र गिरना या पड़ना = वज्रपात होना। विपत्ति आना। चक्र चलाना = जाल रचना। पट्टयंत्र कराना।

७. पानी का भँवर । ८. वातचक्र । बवंडर । ९. समूह । समुदाय । मंडली । १०. हल । कुंड । सेना । ११. एक प्रकार का व्यूह या सेना की स्थिति । १२. 'चक्रव्यूह' । १३. ग्रामों या नगरों का समूह । मंडल । प्रदेश । राज्य । १४. एक समुद्र से दूसरे समुद्र तक फैला हुआ प्रदेश । आसमुद्रांत भूमि ।

यौ०—चक्रवर्ती ।

१४. चक्रवाक पक्षी । चक्रवा । १५. तगर का फूल । गुलचाँदनी । १६. योग के अनुसार मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर आदि शरीरस्थ छह पथ । १७. मंडलाकार घेरा । वृत्त । जैसे,—राशिचक्र । १८. रेखाओं से घिरे हुए गोल या चौखूँटे स्थान जिनमें घंक, प्रक्षर, शब्द आदि लिखे हों । जैसे,—कुंडलीचक्र ।

विशेष—तंत्र में मंत्रों के उच्चारण तथा शुभाशुभ विचार के लिये अनेक प्रकार के चक्रों का व्यवहार होता है । जैसे,—प्रकटम चक्र, प्रकथ चक्र, कुलाल चक्र, आदि । रुद्रयामल आदि तंत्र ग्रंथों में महाचक्र, राजचक्र, दिव्यचक्र आदि अनेक चक्रों का उल्लेख है । मंत्र के उच्चारण के लिये जो चक्र बनाए जाते हैं, उन्हें यंत्र कहते हैं ।

१९. हाथ की हथेली या पैर के तलवे में धूसी हुई महीन महीन रेखाओं का चिह्न जिनसे सामुद्रिक में अनेक प्रकार के शुभाशुभ फल निकाले जाते हैं । २०. घेरा । भ्रमण । घुमाव । चक्कर । जैसे,—कालचक्र के प्रभाव से सब बातें बदला करती हैं । २१. दिशा । प्रांत । उ०—कहूँ पचाकर चहों तो चहूँ चक्रन को चीरि डालों पल में पलैया पैज पन हों ।—पचाकर (शब्द०) । २२. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक भ्रमण, तीन नगण और फिर लघु, गुरु होते हैं । जैसे—भीमनि लगत न कतहुँ ठिकनवा । राम विमुख रहि मुख मिल कहवा । २३. धोखा । भुलावा । जाल । फरेब ।

यौ०—चक्रधर = बाजीगर ।

२४. चक्रव्यूह । २५. सैनिकों द्वारा राइफल या बंदूक से एक साथ गोली चलाना । बाड़ । राउंड । २६. एक विशेष पद (को०) ।

चक्रक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. नव्य न्याय में एक तर्क । २. एक प्रकार का सर्प । ३. युद्ध की एक रीति (को०) ।

चक्रक^२—वि० १. पहिए जैसा । २. गोल या बसुंसाकार (को०) ।

चक्रकारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नली नामक गंधद्रव्य । २. हाथ का नाखून ।

चक्रकल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रपट्टी लता । पिठवन ।

चक्रक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] घटना के बार बार होने का क्रम (को०) ।

चक्रगंडु—संज्ञा पुं० [सं० चक्रगण्डु] गोल तकिया (को०) ।

चक्रगज—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रवंह ।

चक्रगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिधि या गोलाई में गमन करना (को०) ।

चक्रगर्त—संज्ञा पुं० [सं०] दे 'चक्रतीर्थ' (को०) ।

चक्रगुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष ।

चक्रगोसा—संज्ञा पुं० [सं० चक्रगोष्ठ] १. रथ का रक्षक । २. राज्यरक्षक । ३. सेनापति (को०) ।

चक्रगोसा—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेनापति । २. राज्यरक्षक । ३. वह कर्मचारी या योद्धा जो रथ, चक्र आदि की रक्षा करे ।

चक्रग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] परिखा । लाई (को०) ।

चक्रग्रहणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्ग की रक्षा के निमित्त बनाया हुआ प्राचीर । २. लाई (को०) ।

चक्रचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. ठेली । २. कुम्हार । ३. गाड़ीवान । ४. बाजीगर (को०) ।

चक्रचारी—संज्ञा पुं० [सं० चक्रचारिन्] रथ (को०) ।

चक्रजीवक—संज्ञा पुं० [सं०] कुम्हार ।

चक्रजीवी—संज्ञा पुं० [सं० चक्रजीविन्] दे० 'चक्रजीवक' (को०) ।

चक्रत^७—वि० [सं० चक्रित] दे० 'चक्रित' । उ०—सो नारायणदास धीर सगरी सभा वा भेद को समुझे नाहीं । ताते चक्रत हूँ रहे ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १०० ।

चक्रताल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का चौताला ताल जिसमें तीन लघु (लघु की एक मात्रा) और एक गुरु (गुरु की दो मात्राएँ) होती है । इसका बोल यह है—ताहं । धिमि धिमि । तकितां । विधिगन यों । २. एक प्रकार का चौदह ताला ताल जिसमें क्रम से चार द्रुत (द्रुत की प्राची मात्रा), एक लघु (लघु की एक मात्रा), एक द्रुत (द्रुत की प्राची मात्रा), और एक लघु (लघु की प्राची मात्रा) होती है । इसका बोल यह है—जग० जग० नक० धै० ताथे । धरि० कुकु० धिमि० बांथे । दां० दां० धिधिकिट । धिधि० गन बा ।

चक्रतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. दक्षिण में वह तीर्थ स्थान जहाँ ऋष्यभूक पर्वतों के बीच तुंगभद्रा नदी घूमकर बहती है । उ०—चक्रतीर्थ महें परम प्रकासी । बसें सुवसनं प्रभु छवि रासी ।—रघुराज (शब्द०) । २. नैमिषारण्य का एक कुंड ।

विशेष—महामारत तथा पुराणों में अनेक चक्रतीर्थों का उल्लेख है । काशी, कामरूप, नर्मदा, धीक्षेत्र, सेतुबंध रामेश्वर आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध तीर्थों में एक एक चक्रतीर्थ का वर्णन है । स्कंदपुराण में प्रभास क्षेत्र के अंतर्गत चक्रतीर्थ का बड़ा माहात्म्य लिखा है । उसमें लिखा है कि एक बार विष्णु ने बहुत से असुरों का संहार किया जिससे उनका चक्र रक्त से रंग उठा । उसे धोने के लिये विष्णु ने तीर्थों का आह्वान किया । इसपर कई कोटि तीर्थ वहाँ आ उपस्थित हुए और विष्णु की आज्ञा से वहीं स्थित हो गए ।

चक्रतुंड—संज्ञा पुं० [सं० चक्रतुण्ड] एक प्रकार की मछली जिसका मुँह गोल होता है ।

चक्रदंड—संज्ञा पुं० [सं० चक्रदण्ड] एक प्रकार की कसरत जिसमें जमीन पर दंड करके ऋत दोनों पैर समेट लेते हैं और फिर दाहिने पैर को दाहिनी ओर और बाएँ को बाईं ओर चक्कर देते हुए पेट के पास लाते हैं ।

चक्रदंतो—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रदन्तो] १. दंतौवृक्ष । २. जमालगोटा ।

चक्रदंष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] सूअर ।

चक्रधर^१—वि० [सं०] जो चक्र धारण करे ।

चक्रधर^२—संज्ञा पुं० १. वह जो चक्र धारण करे । २. विष्णु भगवान् ।

१. श्रीकृष्ण । ४. बाबीगर । ऐंद्रजालिक । ५. कई धारों या नगरों का अधिपति । ६. सर्प । साँप । ७. बाँव का पुरोहित । ८. मठ राग से मिलता जुलता बाजब बाति का एक राग जो बाजब स्वर से आरंभ होता है और जिसमें पंचम स्वर नहीं लगता । यह संध्या समय गाया जाता है ।

चक्रधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चक्र की परिधि (को०) ।

चक्रधारी—संज्ञा पुं० [सं० चक्रधारिन्] दे० 'चक्रधर' ।

चक्रनक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्रनक्ष नामक घोषधि । बघनहीं ।

चक्रनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंडकी नदी ।

चक्रनाभि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहिए का वह स्थान जिसमें घुरा घूमता है । पहिए के बीच का स्थान (को०) ।

चक्रनाम—संज्ञा पुं० [सं० चक्रनामन्] १. माक्षिक धातु । सोना-मक्ली । २. चक्रवा पक्षी ।

चक्रनायक—संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्रनक्ष नाम की घोषधि ।

चक्रनेमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहिए का घेरा (को०) ।

चक्रपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाड़ी की लीक । २. गाड़ी चलने का मार्ग ।

चक्रपट्टा—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रवर्त्त (को०) ।

चक्रपरिचयाच—संज्ञा पुं० [सं०] आरम्भ या प्रसन्नता का चेह (को०) ।

चक्रपथी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन ।

चक्रपाणि—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में चक्र धारण करनेवाले, विष्णु ।

चक्रपाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाड़ी । रथ । २. हाथी ।

चक्रपादक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चक्रपाद' (को०) ।

चक्रपाणि(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० चक्रपाणि] दे० 'चक्रपाणि' । उ०—
कई पद्माकर पवित्र पल पालिबे कीं छोरे चक्रपाणि के चरित्रन
कों चाहिए ।—पद्माकर पं०, पृ० २१३ ।

चक्रपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी प्रदेश का शासक । सूबेदार ।
चकलेदार । २. वह जो चक्र धारण करे । ३. वृत्त । गोलाई ।
४. बुद्ध राग का एक भेद । ५. सेनापति (को०) । ६. व्यूहस्थलक
(को०) । ७. क्षितिज (को०) ।

चक्रपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्रिकों की एक पूजाविधि ।

चक्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] एक ग्रन्थ जिसमें गोल कल लगा रहता है ।

चक्रवर्त्त—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवर्त्त] एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसमें एक
चक्र या पहिए के चित्र के भीतर पद्य के अक्षर बैठाने जाते हैं ।

चक्रवर्त्तु—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवर्त्तु] सूर्य ।

चक्रवाधव—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवाधव] सूर्य ।

विशेष—सूर्य के प्रकाश में चक्रवा चक्रई एक साथ रहते हैं ।

चक्रवाह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चक्रवाल' (को०) ।

चक्रवाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंडल । घेरा । २. समूह । पुंज । ३.
क्षितिज । ४. दे० 'चक्रवाल' । ५. चक्रवा पक्षी (को०)

चक्रवाहधि—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता (को०) ।

चक्रवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो चक्र धारण करे । २. विष्णु ।

चक्रमेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात । रात्रि ।

विशेष—रात में चक्रवा चक्रई का जोड़ा अलग हो जाता है ।

चक्रभोग—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में ग्रह की वह गति जिसके

अनुसार वह एक स्थान से चलकर फिर उसी स्थान पर आता
होता है । इसे परिवर्त्त भी कहते हैं ।

चक्रभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] सान । सराव (को०) ।

चक्रभ्रमर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य ।

चक्रभ्रमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चक्रभ्रम' (को०) ।

चक्रभ्रमि—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्रभ्रान्ति] चक्र की गति । चक्र का
घूमना (को०) ।

चक्रमंडल—संज्ञा पुं० [सं० चक्रमण्डल] एक प्रकार का नृत्य जिसमें
नाचनेवाला चक्र की तरह घूमता है ।

विशेष—इस प्रकार के नृत्य में शरीर के प्रायः सब अंगों का
संचालन होता है ।

चक्रमंडली—संज्ञा पुं० [सं० चक्रमण्डलिन] प्रबगर साँप ।

चक्रमण(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० चक्रमण] दे० 'चक्रमण' । उ०—
'कैसोदास' कुसल कुलालचक्र चक्रमण चातुरी चित्त के चार
धातुरी चलत भाजि ।—कैशव पं०, पृ० ११८ ।

चक्रमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रवर्त्त ।

चक्रमर्दक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चक्रमर्द' (को०) ।

चक्रमीमांसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वैष्णवों की चक्र मुद्रा धारण
करने की विधि । २. विजयेंद्र स्वामी रचित एक ग्रंथ जिसमें
चक्र-मुद्रा-धारण की विधि आदि लिखी है ।

चक्रमुख—संज्ञा पुं० [सं०] सुभर ।

चक्रमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चक्र आदि विष्णु के आयुधों के
चिह्न जो वैष्णव अपने बाहु तथा शरीर अंगों पर आपते हैं ।

विशेष—चक्र मुद्रा दो प्रकार की होती है, तप्त मुद्रा और शीतल
मुद्रा । जो चिह्न आग में तपे हुए चक्र आदि के ठप्पों से
शरीर पर दागे जाते हैं, उन्हें तप्त मुद्रा कहते हैं । जो चंदन
आदि से शरीर पर आपे जाते हैं, उन्हें शीतल मुद्रा कहते
हैं । तप्त मुद्रा का प्रचार रामानुज संप्रदाय के वैष्णवों में
विशेष है । तप्त मुद्रा हारका में ली जाती है । जैसे,—मूँके
मूँके, कंठ बनमाला मुद्राचक्र दिए । सब कोउ कहत गुलाम
इयाम को सुनत सिरात हिए ।—सूर (शब्द०) ।

२. तंत्रिकों की एक अंगमुद्रा जो पूजन के समय की जाती है ।
इसमें दोनों हाथों को सामने खूब फैलाकर मिलाते और
अंगूठे को कनिष्ठा उँगली पर रखते हैं ।

चक्रमेदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि (को०) ।

चक्रयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० चक्रयन्त्र] ज्योतिष का एक यंत्र ।

चक्रयान—संज्ञा पुं० [सं०] पहिए से चलनेवाला यान । वह सवारी
या गाड़ी जिसमें पहिए हों (को०) ।

चक्ररथ—संज्ञा पुं० [सं०] सुभर (को०) ।

चक्ररिष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बक । बगला ।

चक्ररक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुरुच । गुरुची ।

चक्रक्षिप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में राशिचक्र का कलात्मक
भाग अर्थात् २१,६०० भागों में से एक भाग ।

चक्रवत्(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवर्त्त] दे० 'चक्रवर्त्त' । उ०—माड़ी
कमधे मिसलता चक्रवत् देखतु चाम ।—राज क०, पृ० २६५ ।

चक्रवर्ती—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवर्ती] चक्रवर्ती। राजा। उ०—बार काय मिसलत बार, चक्रवर्तिय बन विचार। दिस मस्सब पति बैस, सत भलस चक्र पंडवैस।—राज क०, पृ० ३०।

चक्रवर्ती—वि० [सं० चक्रवर्तिन्] चक्रवर्ती। उ०—बूढी बीरम घर चक्रवर्ती बार सार मुह लई बरसी।—राज क०, पृ० १४

चक्रवर्तिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी दल या समूह की अध्यक्षी। २. बनी नामक गंधद्रव्य। पानड़ी। ३. भलक्तक। आलता (को०)। ४. जटामासी (को०)।

चक्रवर्ती—वि० [सं० चक्रवर्तिन्] [स्त्री० चक्रवर्तिनी] आसमुद्रांत भूमि पर राज्य करनेवाला। सार्वभौम।

चक्रवर्ती—संज्ञा पुं० १. एक चक्र का व्यवहार। एक समुद्र से लेकर दूसरे समुद्र तक की पृथ्वी का राजा। आसमुद्रांत भूमि का राजा। उ०—चक्रवर्ति के सकल तोरे। देखत क्या लागि प्रति मोरे।—तुलसी (शब्द०)। २. किसी दल का अध्यक्ष। समूह का नायक। ३. वास्तुक नामक शाक। कपुष्पा।

चक्रवाक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चक्रवाकी] चक्रवा पक्षी।

यौ०—चक्रवाकबंधु = सूर्य।

चक्रवाट—संज्ञा पुं० [सं०] १. हृद। सीमा। २. चिरागदान। ३. कार्य में लीन होना (को०)।

चक्रवाट—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'चक्रवाल'।

चक्रवात—संज्ञा पुं० [सं०] वेग से चकर खाती हुई वायु। वातचक्र। बवंडर। उ०—चृणावर्त विपरीत महासल सो रुप राय पढायो। चक्रवात ह्वै सकल घोष मैं रज बुंधर ह्वै छायो।—सूर (शब्द०)।

चक्रवान्—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौराणिक पर्वत का नाम जो भीमे समुद्र के बीच स्थित माना गया है।

विशेष—यहाँ विष्णु भगवान् ने हयग्रीव और पंचजन नामक दैत्यों को मारकर चक्र और शंख को प्रायुध प्राप्त किए थे।

चक्रवाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक पुराणप्रसिद्ध पर्वत जो भूमंडल के चारो ओर स्थित प्रकाश और अंधकार (दिन रात) का विभाग करनेवाला माना गया है। लोकालोक पर्वत। २. मंडल। घेरा। ३. ३० 'चक्रवाल'।

चक्रविरहित—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्र] ३० 'चक्रवर्ति'।

चक्रवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक भगण, तीन नगण और अंत में सप्त गुरु होते हैं।

चक्रवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का सूद या व्याज जिसमें उत्तरोत्तर व्याज पर भी व्याज लगता जाता है। सूद दर सूद।

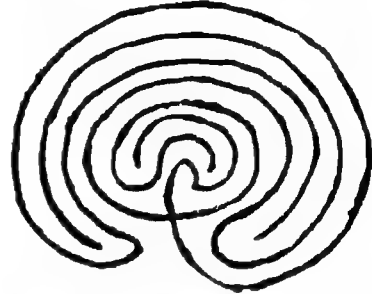
विशेष—मनु ने इसे अत्यंत निंदनीय ठहराया है।

२. गाड़ी आदि का भाड़ा।

चक्रवै—संज्ञा पुं० [सं० चक्रवर्ती, हि० चक्रवै] ३० 'चक्रवै'। उ०—वास पलटू कहै सत सोह चक्रवै भया अद्वैत जब भर्ष मागी।—पलटू, भा० २, पृ० २६।

चक्रव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के युद्ध समय में किसी व्यक्ति या वस्तु की रक्षा के लिये उसके चारो ओर कई बेरों में सेना की घुंघराकाह स्थिति।

विशेष—इसकी रचना इतनी चकरदार होती थी कि इसके भीतर प्रवेश करना अत्यंत कठिन होता था। महाभारत में द्रोणाचार्य ने यह व्यूह रचा था जिसमें अभिमन्यु मारे गए थे। इसका आकार इस प्रकार माना जाता है।



चक्रशाल्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सफेद बुंधुनी। २. काकतुंडी।

चक्रश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मञ्जशृंगी। मेढासींगी।

चक्रसंज्ञ—स्त्री० पुं० [सं०] १. बंध घातु। रीगा। २. चक्रवा पक्षी।

चक्रसंवर—संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

चक्रसाहच्य—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रवाक। चक्रवा (को०)।

चक्रस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० चक्रस्वामिन्] ३० 'चक्रहस्त' (को०)।

चक्रहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु (को०)।

चक्रांक—संज्ञा पुं० [सं० चक्राङ्क] चक्र का चिह्न जो वैष्णव अपने बाहु आदि पर बगवाते हैं।

यौ०—चक्रांकपुष्प = (१) मोर। मयूर। (२) मोरपंख। मयूरपंख।

चक्रांकित—वि० [सं० चक्राङ्कित] जिसने चक्र का चिह्न दगवाया हो। जिसने चक्र का छाप लिया हो।

चक्रांकित—संज्ञा पुं० वैष्णवों का एक संप्रदायभेद। इस संप्रदाय के लोग चक्र का चिह्न दगवाते हैं।

चक्रांकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्राङ्की] चक्रवाकी। चक्रई (को०)।

चक्रांग—संज्ञा पुं० [सं० चक्राङ्ग] १. चक्रवा। २. रथ या गाड़ी। ३. हंस। ४. कुटकी नाम की ओषधि। ५. एक प्रकार का शाक। हिलमोचिका।

चक्रांगा—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्राङ्गा] १. काकड़ासिंगी। २. सुदर्शन लता।

चक्रांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्राङ्गी] १. कुटकी। २. हसिनी। मादा-हंस। ३. एक प्रकार का शाक। हुलहुल। हुरहुर। हिल-मोचिका। ४. मंजीठ। ५. काकड़ासिंगी। वृषपर्णी। मूसाकरनी।

चक्रांत—संज्ञा पुं० [सं०] किसी अनुचित कार्य या किसी के अनिष्ट-साधन के लिये कई मनुष्यों की गुप्त अभिसंधि।

चक्रांतर—संज्ञा पुं० [सं० चक्रान्तर] एक बुद्ध का नाम।

चक्रांश—संज्ञा पुं० [सं०] राशिचक्र का ३६०वाँ अंश।

चक्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागरमोषा। २. काकड़ासिंगी।

चक्राकार—वि० [सं०] पहिए के आकार का। मंडलाकार। गोल।

चक्राकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हंसिनी। मादा हंस। २. चक्रवाकी। चक्रई।

चक्राकृति—वि० [सं०] १० 'चक्राकार' [को०] ।

चक्राड—संज्ञा पुं० [सं०] १. मढारी । साँप पकड़नेवाला । २. साँप का बिष भाड़नेवाला । ३. घूर्त । घोड़ेबाज । ४. सोने का एक सिक्का । दीनार ।

चक्राध—संज्ञा पुं० [सं०] एक कोरव योद्धा का नाम ।

चक्राधिवासी—संज्ञा पुं० [सं० चक्राधिवासिन्] नारंगी ।

चक्रानुकम्प—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चक्रकम्प' [को०] ।

चक्रायुध—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

चक्रार—संज्ञा पुं० [सं०] पहिए की परिधि और धुरी को मिलानेवाली धराएँ [को०] ।

चक्रावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोलाई में होनेवाली गति । २. भाँधी [को०] ।

चक्रावल—संज्ञा पुं० [सं० चक्रावलि] घोड़ों का एक रोग जिसमें उनके पैरों में आव हो जाता है । इससे कभी कभी वे लंगड़े भी हो जाते हैं ।

चक्रारम्प—संज्ञा पुं० [सं० चक्रारम्पन्] वह यंत्र जिससे पत्थर दूर तक फेंका जाता था [को०] ।

चक्राह्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. चक्रवा पक्षी । चक्रवाक । २. चक्रवर्द्ध ।

चक्राह्वय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चक्राह्व' [को०] ।

चक्रि—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ता [को०] ।

चक्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] चक्र धारण करनेवाला ।

चक्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घुटने पर की गोल हड्डी । चक्की । २. भुँड । समूह [को०] । ३. सेना [को०] । ४. दुरभिसंधि [को०] ।

चक्रित (पु)—वि० [सं० चक्रित] दे० 'चक्रित' । उ०—चक्रुं दिसि चितै चक्रित ऋषि भयऊ ।—ह० रासो, पृ० २७ ।

चक्रिय—वि० [सं०] १. रथ पर जानेवाला । २. सफर करनेवाला । यात्रा करनेवाला [को०] ।

चक्री—संज्ञा पुं० [सं० चक्रिन्] [स्त्री० चक्रिणी] १. वह जो चक्र धारण करे । २. विष्णु । ३. साम्राजालिक । गाँव का पंडित या पुरोहित । ४. चक्रवाक । चक्रवा । ५. कुलाल । कुम्हार । ६. सर्प । उ०—मिलि चक्रिन चंदन वात वहै प्रति मोहत न्यायन ही मति को ।—राम चं०, पृ० ८१ । ७. सूचक । गोइदा । जासूस । मुसबिर । दूत । चर । ८. सेली । ९. बकरा । १०. चक्रवर्ती । ११. चक्रमर्द । चक्रवर्द्ध । १२. तिनिका वृक्ष । १३. व्याघ्रनख नाम का गंधद्रव्य । बघनही । १४. काक । कोष्ठा । १५. गदहा । गधा । १६. वह जो रथ पर चढ़ा हो । रथ का सवार । १७. चंद्रशेखर के मत से पायाई खंड का २२वाँ भेद जिसमें ६ गुरु और ४५ लघु होते हैं । १८. एक वर्णसंस्कार जाति जिसका उल्लेख श्रीमन्नस के 'जातिविवेक' में है । १९. सभा । उ०—चक्री विद्याल रघुवर विताल ।—रघु० ह०, पृ० २४३ । २०. शिव [को०] । २१. मंडल का अधिपति [को०] । २२. ऐंद्रजालिक । बाजीगर [को०] । २३. पद्ययंत्र करनेवाला [को०] । २४. वंचक [को०] ।

चक्री—वि० १. चक्रयुक्त । चक्रवाला । २. चक्रधर । चक्रवारी । ३. रथारूढ़ । ४. गोल । गोलाईवाला । ५. सूचक [को०] ।

चक्रेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चक्रवर्ती । २. तान्त्रिकों के चक्र का अधिष्ठाता । ३. चक्र या मंडल का अधिपति [को०] । ४. विष्णु [को०] ।

चक्रेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों की महाविद्याओं में से एक ।

चक्र—संज्ञा पुं० [सं०] नकली या बनावटी मित्र [को०] ।

चक्रगु—संज्ञा पुं० [सं०] १. गजक । चाट । मद्य के ऊपर खाने की वस्तु । २. कृपादृष्टि । अनुग्रह । ३. कथन । ४. बखाना [को०] ।

चक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. बृहस्पति । २. उपाध्याय ।

चक्रा—संज्ञा—पुं० [सं० चक्रस्] १. बृहस्पति । २. आचार्य । ३. गुरु । स्पष्टता । ४. दर्शन । दृष्टि । नेत्र । ५. चक्षु [को०] ।

चक्षुः—संज्ञा पुं० [सं०] चक्षुस् का समासगत रूप [को०] ।

चक्षुःपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. दृष्टिपथ । २. क्षितिज [को०] ।

चक्षुःपीडा—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्षुःपीडा] आँख में होनेवाली पीडा [को०] ।

चक्षुःराग—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की ललाई [को०] ।

चक्षुःश्रवण—संज्ञा पुं० [सं० चक्षुःश्रवस्] वह जीव जो आँख ही से सुने । साँप । सर्प ।

चक्षुः—संज्ञा पुं० [सं० चक्षुस्] १. दृग्नेन्द्रिय । आँख ।

मुहान—चक्षु चार होना = दे० 'आँखें चार होना' । उ०—कोई कुरंगलोचनी किसी नवयुवक से चक्षु चार होते ही ।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ११६ ।

२. विष्णुपुराण में वर्णित अजमीठ वंशी एक राजा जिसके पिता का नाम पुरुजानु और पुत्र का नाम हर्यश्च था । ३. एक नदी का नाम जिसे आजकल भाक्सस या जैहूँ कहते हैं ।

विशेष—वेदों में इसी का नाम वंक्षुनद है । विष्णुपुराण में लिखा है कि गंगा जब ब्रह्मलोक से गिरी, तब चार नदियों के रूप में चार ओर प्रवाहित हुई । जो नदी केतुमाल पर्वत के बीच से होती हुई पश्चिम सागर में जाकर मिली, उसका नाम चक्षुस् हुआ ।

४. देखने की शक्ति [को०] । ५. प्रकाश या रोशनी [को०] । ६. कांति । तेज [को०] ।

चक्षुर—संज्ञा पुं० [सं०] 'चक्षुस्' का समासगत रूप [को०] ।

चक्षुरपेत—संज्ञा पुं० [सं०] शंघा [को०] ।

चक्षुरिन्द्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० चक्षुरिन्द्रिय] देखने की इन्द्रिय । आँख ।

चक्षुर्गोचर—वि० [सं०] दृष्टिगोचर [को०] ।

चक्षुर्दर्शनावरण—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र में वह कर्म जिसके उदय होने से चक्षु द्वारा सामान्य बोध की लब्धि का विघात हो ।

चक्षुर्धान—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणप्रतिष्ठा के समय मूर्ति के नेत्रों में ध्वजन आदि देना या रंग भरना [को०] ।

चक्षुर्निरोध—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पट्टी । वह पट्टी जो आँख पर लगाई जाय [को०] ।

चक्षुर्वच—संज्ञा पुं० [सं० चक्षुर्वच] आँख डकवा [को०] ।

चक्षुर्वहस—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रजशृंगी [को०] ।

चक्षुर्वच—वि० [सं०] दृष्टिवर्धक [को०] ।

चक्षुर्वच—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का मल । कीचड़ [को०] ।

चक्षुर्वचनिका—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार शाकट्टीप की एक नदी ।

चक्षुर्वचन्य—वि० [सं०] नेत्र रोगवाला [को०] ।

चक्षुर्वहन—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रजशृंगी । मेढासींगी ।

चक्षुर्विषय—संज्ञा पुं० [सं०] १. दृष्टिक्षेत्र । स्थिति । दृश्यता । २. दृष्टि का विषय । कोई दृश्य पदार्थ । ३. क्षितिज [को०] ।

चक्षुर्वहन्—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्रकार का सर्प जिसे देखते ही जीव जंतुओं की आँखें फूट जाती हैं ।

चक्षुर्वह—वि० [सं० चक्षुर्वहन्] जिसके देखने मात्र से आँख फूट जाय [को०] ।

चक्षुष्—संज्ञा पुं० [सं०] 'चक्षुस्' का समासगत रूप ।

चक्षुष्कर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] सप । सर्प [को०] ।

चक्षुष्पति—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

चक्षुष्मान्—वि० [सं० चक्षुष्मन्] १. आँखोंवाला । २. सुंदर आँखोंवाला [को०] ।

चक्षुष्य^१—वि० [सं०] १. जो नेत्रों को हितकारी हो (बोधधि आदि) । २. सुंदर । प्रियदर्शन । ३. नेत्रों से उत्पन्न । नेत्र संबंधी ।

चक्षुष्य^२—संज्ञा पुं० १. केतकी । केवड़ा । २. शोभांजन । सहजन का पेड़ । ३. भ्रंजन । सुरमा । ४. क्षपरिया । तूतिया ।

चक्षुष्या—संज्ञा स्त्री [सं०] १. बनकुलवी । चाकसू । २. मेढासींगी । भ्रजशृंगी । ३. सुंदरी स्त्री [को०] ।

चक्षुस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. आँख । २. आक्सस या जेहूँ नदी जो मध्य एशिया में है ।

चक्षु^१—संज्ञा पुं० [सं० चक्षुस्] आँख । उ०—मन समुद्र भयो सूर को, सीप भये चक्ष लाल ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ७३ ।

मुद्रां—चक्ष से मसि चुराना(उ) = दे० 'आँख का काजल चुराना' ।

उ०—अस बड़ चोर कहत नहि आवै । चोरि के चखन ते मसिहि चुरावै ।—नंद० ग्रं०, पृ० २४६ ।

चक्ष^२—संज्ञा पुं० [प्रा० वा अनु०] [वि० चक्षिया] ऋगड़ा । तकरार । कलह । टंटा ।

यौ०—चक्ष चक्ष = तकरार । बकबक । ऋककक । कहासुनी ।

चक्षचौध^१—संज्ञा स्त्री [हि० चक्षचौध] दे० 'चक्षचौध' ।

चखना—क्रि० सं० [सं० चष] स्वाद लेना । स्वाद लेने के लिये मुँह में रखना । स्वाद या मजा लेते हुए खाना । उ०—साहब का घर दूर है जैसे लंब खज़ूर । चढ़े तो चाखे प्रेम रस गिरे तो चकनाचूर (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—खाना ।—लेना ।

चखा^१—वि० [हि० चखना] १. चखनेवाला । स्वाद लेनेवाला । २. प्रेमी ।

चखाना—संज्ञा स्त्री [प्रा० चख (= ऋगड़ा)] लाँगडोट । विरोध । बैर ।

क्रि० प्र०—चखना ।—होना ।

चखाना—क्रि० सं० [हि० 'चखना' का प्रे० रूप] खिलाना । स्वाद दिलाना ।

चखि^१—संज्ञा स्त्री [हि० चख (= आँख)] दे० 'चख' । उ०—हूँ चकति चखि सुर-नर-मुनिवर दुई दिसि नेह किए बरन । नंद० ग्रं०, पृ० ३७२ ।

चखिया—वि० [प्रा० चख (= ऋगड़ा)] ऋगड़ा। तकरार करनेवाला । ऋककक करनेवाला ।

चखु^१—संज्ञा पुं० [सं० चक्षु] दे० 'चक्षु' । उ०—सखिन कहा हो पान पियारी । मारेहु चखु सर गिरा भिखारी ।—इंद्रा०, पृ० ६२ ।

चखैया—संज्ञा पुं० [हि० चख + ऐषा (प्रत्य०)] चखनेवाला । स्वाद लेनेवाला । वस्तु का स्वाद लेते हुए खानेवाला । उ०—चरखी चखैया चट चाव सच्चे ।—प० रासो, पृ० ८२ ।

चखोड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि० चख + छोड़] मस्तक पर काजल की लंबी रेखा जो बच्चों को नजर से बचाने के लिये लगाई जाती है । दिठोना । झिठोना । उ०—(क) लट लटकनि सिर चाव चखोड़ा सुठि जोभा सोहै शिशु भाग ।—सूर (शब्द०) । (ख) अजन दोउ दग भरि सीनी । भुव चाव चखोड़ा कीनी ।—सूर (शब्द०) ।

चखोड़ा^२—संज्ञा पुं० [हि० चखोड़ा] दे० 'चखोड़ा' ।

चखोती—संज्ञा स्त्री [हि० चखना] चटपटा खाना । तीक्ष्ण स्वाद का भोजन ।

चगड़—वि० [देश०] चालाक । चतुर ।

चगताई—संज्ञा पुं० [तु० चघताई] मध्य एशिया के निवासी तुर्कों का एक प्रसिद्ध वंश जो चगताई खाँ से चला था । बाबर, अकबर, आदि भारत के मोगल बादशाह इसी वंश के थे ।

चगताई खाँ—संज्ञा पुं० [तु० चघताई खाँ] प्रसिद्ध मोगल विजेता चंगेज खाँ का एक पुत्र जो अत्यंत न्यायशील और धार्मिक था । विशेष—चंगेज खाँ ने १२२७ ई० में इसे बलख बदख्शा, काशगर आदि प्रदेशों का राज्य दिया था । सन् १२४१ में इसकी मृत्यु हुई । बाबर इसी के वंश में था ।

चगत्ता^१—संज्ञा पुं० [हि० चकत्ता] दे० 'चकत्ता' ।

चगथा^१—संज्ञा पुं० [हि० चकत्ता = मोगल] दे० 'चकत्ता' । उ०—हलकार भई सलकार हुवे । चगथा मुख तेज सरेज चुवे ।—रा० रू०, पृ० १९६ ।

चगर—संज्ञा पुं० [देश०] १. घोड़ों की एक जाति । २. एक प्रकार की चिड़िया ।

चगुनी—संज्ञा स्त्री [देश०] एक प्रकार की मछली जो संयुक्त प्रांत, बंगाल और बिहार की नदियों में पाई जाती है । यह १८ इंच लंबी होती है ।

चघड़—वि० [देश०] चतुर । चगड़ । धूर्त । चालाक । उ०—चघड़ों की चालों को मिथ्या और तिरस्करणीय प्रमाणित कर जनसाधारण के भ्रम को मिटाएँ ।—प्रेमचन०, भाग २, पृ० २६२ ।

चकर—संज्ञा स्त्री० [दे०] वह जमीन जो बहुत दिन तक परती रहकर एक बार ही बोई जाती हो।

चाकरा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का पेड़।

चाचा—संज्ञा पुं० [सं० तात] [स्त्री० चची] बाप का भाई। पितृव्य।

मुहा०—चचा बनाना = यथोचित वंद देना। खूब बबला लेना। दुस्वस्व करना। चचा बनाकर छोड़ना = खूब बबला लेकर छोड़ना।

चौ०—चचाबाब = चचा से पैदा। चचेरा।

चचिया—वि० [हि० चचा > चच + हया (प्रत्य०)] चाचा के बराबर का संबंध रखनेवाला।

चौ०—चचिया ससुर = पति या पत्नी का चाचा। चचिया सास = पति या पत्नी की चाची।

चचीडा—संज्ञा पुं० [सं० चिचिएड] १. तोरई की तरह की एक बेल जिसमें हाथ हाथ भर लंबे और दो डार्ड अंगुल मोटे साँप की तरह के फल लगते हैं। इन फलों की तरकारी होती है। इसे कहीं कहीं परवल भी कहते हैं।

विशेष—चचीडा बरसात के प्रारंभ में बोया जाता है और माघों कुम्भार में फलता है। इसमें सफेद रंग के पतले लंबे फूल लगते हैं। इसे चढ़ाने के लिये टट्टियाँ लगानी पड़ती हैं। इसकी कुछ जातियाँ बहुत कड़ई होने के कारण खाई नहीं जाती। वैद्यक में यह वात-पित्त-नाशक, बलकारक, पथ्य और शोथ रोग को दूर करनेवाला माना जाता है।

२. अपामार्ग। चिचड़ा।

चाकी संज्ञा स्त्री० [हि० चचा] चाचा की स्त्री।

चचड़ा—संज्ञा पुं० [सं० चिचिएड] दे० 'चचीडा'।

चचेरा—वि० [हि० चचा + एरा (प्रत्य०)] चचा से उत्पन्न। चचाबाद। जैसे,—चचेरा भाई। चचेरी बहिन।

चाकोड़ना—क्रि० सं० [अनु० या दे०] दाँत से लीच लीच या दबा दबाकर रस या सार चूसना। दबा दबाकर चूसना। जैसे,—फुटा हड्डी चकोड़ रहा है।

चाकोड़नाला—क्रि० सं० [हि० चकोड़ना का प्रे० रूप] चकोड़ने का काम कराना। चकोड़ने देना। दबा दबाकर चूसने देना।

चकर—संज्ञा पुं० [सं० चत्वर] चौराहा। चतुष्पथ। उ०—चक्कर सीपल रंग गति विधि बंधन रिन बाह।—पृ० रा० २५।३६६।

चचरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चारी] १. एक तुल्य। २. एक गीत। उ०—सुखंत सध्यं बिधुरं अनेक भाँति बाहई। मनो कि वंद उच्चरीय बालकं उछाहई। पृ० रा०, १२।३४१।

चचल—वि० [सं० चचल] चंचल। गतिशील। उ०—छुट्ट पट्ट बान छुट्ट पट्ट चचल। बलिराय जग्य मान मग्य चिरे मग्य प्रचल।—पृ० रा०, २।२२१।

चकर—संज्ञा पुं० [सं० चर्चारी] चंचर।

चुचा—संज्ञा पुं० [हि० चाचा या चचा] पिता का भाई। पितृव्य।

चची—संज्ञा स्त्री० [हि० चचा का स्त्री] दे० 'चाची'। उ०—उहूँ की चची या घरनी की चची।—प्रेमचन०, भा० २। पृ० १४४।

चच्छु—संज्ञा पुं० [सं० चक्षु] दे० 'चक्षु'। उ०—उठी बंक मुच्छ लगी जाय चच्छ।—ह० रासो, पृ० १३५।

चच्छु—संज्ञा पुं० [सं० चक्षु] दे० 'चक्षु'। उ०—चच्छु पुच्छु नाहिन प्रभु तुच्छ रूप रह सागि। मोरपच्छ घर पच्छ घरि ब्रजनिधि में अनुरावि।—ब्रज० सं०, पृ० १०।

चछु—संज्ञा पुं० [सं० चक्षु] नेत्र। चक्षु। उ०—निमिषं जुग जोजनयं विसर्षं। चित चंचल नारि चछं सुरषं।—पृ० रा०, १२।३६।

चछी—वि० [हि० चछ + ई (प्रत्य०)] नेत्रवाला। चक्षुष्मान्। सहसास। उ०—आगे सु चक्षु लिन्नी गुविंद आगे सु बक्ष कर चछी हँद।—पृ० रा०, १।६२३।

चट—क्रि० वि० [सं० चटल (= चंचल)] जल्दी से। झट। तुरंत। फौरन। शीघ्र।

चौ०—चटपट। चट से = जल्दी से। शीघ्र।

मुहा०—चट भँगनी पट ब्याह = कोई काम तत्काल हो जाना। उ०—पहले डोरे डाले, फिर पैगाम भेजा। चलिए चट भँगनी और पट ब्याह हो गया।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १७९।

चट—संज्ञा पुं० [सं० चित्त, हि० चित्ति (= दाग)] १. दाग। धब्बा। २. गरमी के घाव या जकम का दाग। घाव का चकत्ता। ३. कसक। दोष। ऐब।

चट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. वह शब्द जो कड़ी वस्तु के टूटने पर होता है जैसे,—लकड़ी चट से टूट गई।

चौ०—चटचट।

विशेष—चट, पट आदि इस प्रकार के और शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग भी 'से' के साथ ही क्रि० वि० के समान होता है। अतः इसके लिंग का विचार व्यर्थ है। यौ० 'चटचट' शब्द को स्त्री० मानेंगे।

२. वह शब्द जो उँगलियों को मोड़कर दबाने से होता है। उँगली फूटने का शब्द। उ०—तुव जस कीतल पीन परसि चटकी गुलाब की कलियाँ। प्रति सुख पाइ असीस देत सोइ करि अंगुरिन चट अलियाँ।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

चट—संज्ञा पुं० [हि० चाटना] चाट पोंछकर सफा कर देना।

क्रि० प्र०—करना।—कर जाना = (१) अच्छी तरह झाँकना। बाकी न छोड़ना। (२) निगल जाना।

चट—वि० [हि० चाटना] १. चाट पोंछकर साया हुआ।

मुहा०—चट कर जाना = (१) सब झाँकना। (२) पचा जाना। हजम कर लेना। दूसरे की वस्तु लेकर न देना।

२. चाटनेवाला। जैसे,—पतलचट या पतरचट, लेंचट।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग समस्त शब्दों के अंत में होता है।

चटका—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चटका] १. गीरा पक्षी। गीरवा। गीरेया। चिड़ा।

चौ०—चटकाली = गीरों की पंक्ति। गीरों का कुंड।

२. पिपरामूल।

चटक^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चट् (—चुंवर)] चटकीलापन । चमक-
वमक । कांति । उ०—(क) मुकुट चटक धव भ्रुकुटि मटक
देखो, कुंडल की चटक सों चटक परी छागि मपटि ।—सूर
(शब्द०) । (ख) जो चाहि चटक न चटै मैलो होय न मिस ।
रख राजस न छुवाइए नेह चीकने चित्त ।—बिहारी (शब्द०) ।

(ग) केसरि चटक कौल मैखें लेखियति है ।—जनार्दन०, पृ० ५८ ।
यौ०—चटक मटक ।

चटक^२—वि० चटकीला । चमकीला । जोख । उ०—ऐसो माई एक
कोख को हूत । जैसे बसल कुसुंभ रंग मिलि कै नेकु चटक
पुनि चेत ।—सूर (शब्द०) ।

चटक^३—संज्ञा स्त्री० [चटुच (—चंचल)] तेजी । फुरती । जीघ्रता ।

चटक^४—क्रि० वि० चटपट । तेजी से । जीघ्रता से । तुरंत । उ०—
धरि जल कलस कंथ धरि पाखे चल्यो चटक जय मीता ।—
रघुराज (शब्द०) ।

चटक^५—वि० फुरतीबा । तेज । धावत्पटीन ।

चटक^६—वि० [अनुच्चाट] चटपटा । चटकारा । चरपरा । तीक्ष्ण स्वाद का ।
नमक, मिर्च, लट्ठाई आदि से तेज किया हुआ । मजेदार ।

चटक^७—संज्ञा पुं० [चट] छपे हुए कपड़ों को साफ करके बाने की
रीति ।

विशेष—मेढ़ी की मेगनी धीर पानी में कपड़ों को कई बार सीध
साँदकर सुखाते हैं ।

चटकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चटक + ई (प्रत्य०)] तेजी । फुरती ।

चटकका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मादा चटक (की०) ।

चटकदार—वि० [हि० चटक + दार (प्रत्य०)] चटकीला ।
मड़कीला । चमकीला ।

चटकना^१—संज्ञा पुं० [अनुच्चाट] १० 'चटकना' । उ०—इतना कह
सुखीला के गाल पर एक चटकन जड़ी कि वह रोने लगी ।—
श्यामा०, पृ० ५४ ।

चटकना—क्रि० प्र० [अनु० चट] १. 'चट' शब्द करके टूटना या
फूटना । बिना किसी प्रबल बाहरी आघात के फटना या
फूटना । हलकी आवाज के साथ टूटना । तड़कना । कड़कना ।
जैसे,—घाँच से चिमनी चटकना, हाँड़ी चटकना । उ०—
चटके न पाटी पाँव धरिए पलंग ऐसे हे हरि हरा के मेरी
जेहर न चटकै ।—ठाकुर०, पृ० २४ ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. कोयले, गेंडीली लकड़ी आदि का जलते समय चटचट
करना । ३. चिड़चिड़ाता । बिगड़ना । ऊँझलाना । कोष से
बोलना । झुलाना । जैसे,—चटककर बोलना । ४ धुप या
बुली हुवा में पड़ी रहने के कारण लकड़ी या धीर किसी
वस्तु में दरज पड़ना । स्थान स्थान पर फटना । ५. मोड़कर
बवाने पर उँगलियों का चटचट शब्द करना । उँगली
फूटना । ६. कलियों का फूटना या बिलना । प्रस्फुटित
होना । उ०—सुब जस सीतल पौन परसि चटकी गुलाब
की कलियाँ । प्रति सुख पाइ मसीस देत सोइ, करि जेगुरि

चट कलियाँ ।—हरिचंद्र (शब्द०) । ७. धनबन होना ।
चटकना । जैसे,—जब दोनों में धावकल चटक गई है ।

विशेष—इस अर्थ में इस क्रिया का प्रयोग 'चटकना' की तरह
स्त्री० ही में होता है; क्योंकि इसका कर्ता 'बात' लुप्त है ।

चटकना^२—संज्ञा पुं० [अनु० चट] चपत । तमाचा । चप्पड़ ।

क्रि० प्र०—देना ।—मारना ।—लगाना ।

चटकनी—संज्ञा स्त्री० [अनु० चट] किबाड़ों को बंद रखने या धड़ाने
के लिये लगी हुई छड़ । सिटकिनी । धगरी ।

चटक मटका—संज्ञा स्त्री० [हि० चटक + मटका] बनाव सिंगार ।
वेषविन्यास धीर हावभाव । माज नसारा । ठसक । चमक
वमक । जैसे,—चटक मटक से चसना ।

चटकला मटकला^१—संज्ञा पुं० [हि० चटक + ला (प्रत्य०)] मटक का
(प्रत्य०)] १० 'चटक मटक' । उ०—चटकला मटकला मोही न
सुझाई बन कह हीवबद हाव न लाई ।—वी० रासो, पृ० ५७ ।

चटकवाही^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चटक + वाही (प्रत्य०)] जीघ्रता ।
जल्दी । फुरती ।

चटका^१—संज्ञा पुं० [हि० चट] फुरती । जल्दी । जीघ्रता ।

चटका^२—क्रि० वि० फुरती से । जल्दी से । जीघ्रता से । उ०—प्रभु
हों बड़ी बेर को ठाढ़ो । धीर पतित तुम जैसे तारे तिनही में
लिखि पाढ़ो । जुग जुग यहि विरद बलि आयो टेरि कहत हों
या ते । मरियत लाज पाँच पतितन में होय कहाँ चटका से ।
के प्रभु हार मानि के बैठु के करो विरद सही । सूर पति से जो
भूठ कहतु है देखी खोजि बही ।—सूर (शब्द०) ।

यौ०—चटका चटकी = बात की बात में । धानन फानन । तत्काल ।

चटका^३—संज्ञा पुं० [देस०] चने का वह हरा डोढ़ जिसमें अन्धी
तरह डाने न पड़े हों । पपटा ।

चटका^४—संज्ञा पुं० [सं० चित्र, हि० चित्ती, चट्टा] दाग । धब्बा ।
चकला ।

चटका^५—संज्ञा पुं० [हि० चाट] १. चरपरा स्वाद । चटकारा । २.
चसका ।

चटका^६—संज्ञा पुं० [हि० चटकना] १. चटकने की क्रिया या भाव ।
२. उच्चाटन की क्रिया या भाव । ३. तमाचा । चप्पड़ । ४.
धनबन । मनमुटाव । ५. बिगड़ना । क्रुद्ध होना ।

यौ०—चटका चटकी = लड़ाई झगड़ा । कहा बुनी । तकरार ।

चटका^७—संज्ञा स्त्री० [अनुच्चाट] १० 'चुटकी' । उ०—दीड़े ऊँकर चटका
देती छित जिम बाबल छाया ।—रघु० ८०, पृ० १६ ।

क्रि० प्र०—देना = चुटकी बजाना ।

चटकाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चटक + आई (प्रत्य०)] चटकीलापन ।
चमक । कांति । उ०—तेल फुलेल चमक चटकाई । टेढ़ी पाग
छोर धीरमाई ।—चट०, पृ० १०० ।

चटकाना—क्रि० सं० [अनु० चट] १. ऐसा करना जिसमें कोई
वस्तु चटक जाय । तोड़ना । २. उँगलियों को सींचकर या
मोड़ते हुए दबाकर चट चट शब्द निकालना । उँगलियाँ
फोड़ना । ३. एक वस्तु पर किसी दूसरी चीमड़ वस्तु को बार-
बार टकराना जिससे चट चट शब्द निकले । जैसे,—गेंव
चटकाना । छुतियाँ चटकाना ।

मुहा०—चूतियाँ चटकाना = (१) फटा हुआ या चट्टी ज़ूता पहनकर इधर उधर घूमना जिससे तला बार बार ऐड़ी से लगकर चट चट शब्द करे। जूता घसीटते हुए फिरना। (२) बुरी दशा में इधर उधर पैदल फिरना। मारा मारा फिरना। जैसे,—घरने पास का सब लोकर अब वह गली गली चूतियाँ चटकाता फिरता है।

४. उचाटना। मलज करना। दूर करना। छोड़ना। ५. चिढ़ाना। कुपित करना। जैसे,—तुमने उसे नाहक चटका दिया, नहीं तो कुछ और बातें होतीं।

चटकामुख—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक ग्रन्थ जिसका उल्लेख महाभारत में है।

चटकारा—वि० [हि० चटकारा] दे० 'चटकारा'।

चटकारा^१—वि० [सं० चटल] १. चटकीला। चमकीला। २. चंचल। चपल। तेज। उ०—घटपटात घमसात पलक पट भूँदत कबहूँ करत उधारे। मनहुँ मुदित मरकत मणि धौगन खेलत संजरीट चटकारे।—सूर (शब्द०)।

चटकारा^२—वि० [अनु० चट] बहु शब्द जो किसी स्वादिष्ट वस्तु को खाते समय तालू पर जीभ लगने से निकलता है। स्वाद से जीभ चटकाने का शब्द।

मुहा०—चटकारे का = चरपरा। मजेदार। तीक्ष्ण स्वाद का। जैसे,—चटकारे का सालन। चटकारे का भुरता। चटकारे भरना = खूब जीभ से चाट चाटकर स्वाद लेना। छोठ-चाटना।

चटकारो—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चुटकी।

चटकासी—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक + प्राप्ति] १. गोरों की पंक्ति। गौरैया नाम की चिड़ियों का झुंड। २. चिड़ियों की पंक्ति या समूह। उ०—नम लाली बाली मिसा चटकाली धुनि कीन्त। रति पाली घाली अनत घाए बनमाली न।—बिहारी २०, दो० ११५।

चटकाशिरा—संज्ञा पुं० [चटकाशिरा] पिपरामूल।

चटकाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० चटकना] १. चटकने या फूटने का शब्द। २. चटकने या तड़कने का भाव। ३. कलियों के खिलने का प्रफुट शब्द। कलियों के प्रफुटित होने का भाव। उ०—फूलति कली गुलाब की, चटकाहट चहुँ ओर।—बिहारी २०, दो० ८४।

चटकिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] माया चटक [को०]।

चटकी—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक] बुलबुल की तरह की एक चिड़िया जो ८ या १० अंगुल लंबी होती है।

विशेष—यह पंजाब और राजपूताना को छोड़ सारे भारतवर्ष में होती है। यह गरमी के दिनों में हिमालय की ओर चली जाती है और वहीं चट्टानों के नीचे या पेड़ों पर घड़े देती है।

चटकीला—वि० [हि० चटक + ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० चटकीली] १. जिसका रंग फीका न हो। खुलता। शोख। मड़कीला। जैसे,—चटकीला रंग। उ०—चटकीलो पट लपटानो कटि बशीबट यमुना के तट, नागर नट।—सूर (शब्द०)। २. चमकीला। चमकदार। धामायुक्त। उ०—चटकी बोई बोवती, चटकीली मुख जोति। फिरति रसोई के बगर जगर

मगर बुति होति।—बिहारी (शब्द०) १. जिसका स्वाद फीका न हो। जिसका स्वाद नमक, खटाई, मिर्च प्रादि के द्वारा तीक्ष्ण हो। चरपरा। चटपटा। मजेदार।

चटकीलापन—संज्ञा पुं० [हि० चटकीला + पन (प्रत्य०)] १. चमक दमक। धामा। शोखी। २. चरपरापन।

चटकीरा—संज्ञा पुं० [अनु०] एक खिलोना।

चटकक^१—क्रि० वि० [हि० चटक] दे० 'चटक'। उ०—बानव सब गय दोरि करे इक बंध कटककं। हम देवानुर छुड चढ़े देवता चटककं।—पू० रा०, २। १३०।

चटककड़ा^१—संज्ञा पुं० [अनु० चट चट] पशु को छड़ी से भारने या ताड़ने का चट चट शब्द। उ०—लांछी काब चटककड़ा गय संभावइ जाल। डोलउ भजे न बाहुइइ प्रीतम भो मन साक्षि।—डोला०, दू० ४१०।

चटकका^१—संज्ञा पुं० [हि० चटका] दे० 'चटका'। उ०—ताजन माइ चटाक चटकका सनमुख नेजा भाँजी।—सं० दरिया, पु० १०७।

चटखना^१—क्रि० सं० [हि० चटकना] दे० 'चटकना'।

चटखना^२—संज्ञा पुं० दे० 'चटकना'।

चटखनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चटकनी] दे० 'चटकनी'।

चटखार—संज्ञा पुं० [हि० चट] चाटने का शब्द। उ०—हम के जो कण उनकी जीभ पर बैठ जाते थे उन्हें चटखार भरे शब्द के साथ निगल जाते थे।—जिप्सी, पु० २३८।

चटखारा—संज्ञा पुं० [हि० चट] स्वादिष्ट वस्तु खाते समय मुँह से घानेवाली धावाज।

मुहा०—चटखारे भरना = मजे लेकर खाना। खाने के बाद घोट चाटना।

चटखौता—संज्ञा पुं० [हि० चरखा] भालुघो का चरखा कातने का खेल।—(कलबर)।

क्रि० प्र०—कातना।

चट चट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. चटकने का शब्द। टूटने का शब्द। २. जलती लकड़ियों का चटचट शब्द। ३. वह शब्द जो उँगलियों को खींचने या मोड़कर दबाने से निकलता है। उँगली फूटने का शब्द।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—चट चट बलैया लेना = किसी प्रिय व्यक्ति (विशेषतः बच्चे) की विपत्ति या बाधा दूर करने या मंगल के लिये उँगलियाँ चटकाकर प्रार्थना करना।

विशेष—स्त्रियाँ किसी शत्रु का नाश मनाती हुई हाथों की उँगलियाँ चटकाती हैं। जब बच्चों को नजर लगती है तब प्रायः ऐसा करती हैं जिसका अभिप्राय यह होता है कि नजर लगानेवाले का नाश हो जाय।

चटचटा^१—संज्ञा पुं० [अनु०] चट चट का शब्द।

क्रि० प्र०—उठना।

चटचटा^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ग्रन्थों की टकराहट से होनेवाला शब्द। २. लकड़ी आदि के जलने से होनेवाला शब्द।

चटचटाना—क्रि० प्र० [सं० चट (=भेदन)] १. चटचट करते हुए

हटना या फूटना। उ०—गर्भ बचन प्रभु सुनत तुरत ही तनु विस्तारयो। हाय हाय करि उरग बारही बार पुकारयो। शरम शरम अब भरत हों मैं नहि जान्यो तोहि। चटचटात धन फूटहीं राखु राखु प्रभु मोहि।—सूर (शब्द०)

२. गँठीली लकड़ी, कोयले आदि का चटचट शब्द करते हुए चलना। १. तेल या गोंद जैसी चीजों के सगने पर सुख चलने की स्थिति में छूने से होनेवाली हलकी ध्वनि।

चटचटावन—संज्ञा पुं० [चं०] जलती हुई लकड़ी या आग का चटचट शब्द करते हुए चलना [को०]।

चटचेटक—संज्ञा पुं० [चं० चेटक] टोना। जाड़। उ०—मोहन बसीकरन चटचेटक, मंत्र जंत्र सब जानै हो। तातें भले भले सब तुमको भले भले करि मानै हो।—ब्रज०, पृ० ६०।

चटन—संज्ञा पुं० [चं०] १. चटकना। फटना। २. बरार पड़ना। ३. छोटे छोटे टुकड़े में फटना [को०]।

चटनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चाटना] १. चाटने की चीज। वह गीली वस्तु जिसे एक उँगली से थोड़ा थोड़ा उठाकर जीभ पर रख सकें। भबलेह। २. वह गीली चरपरी वस्तु जो पुनीना, हरा धनिया, मिर्च, लटार्ई, आदि को एक साथ पीसने से बनती है और भोजन का स्वाद तीक्ष्ण करने के लिये थोड़ी थोड़ी लाई जाती है।

मुहा०—चटनी करना—(१) बहुत महीन पीसना। (२) पीस डालना। चूर चूर कर देना। (३) मार डालना। (४) ला जाना। चटनी की तरह चाटना या चाट जाना = खतम कर देना। सरलता से समाप्त करना। चटनी बनाना = दे० 'चटनी करना'। चटनी समझना = आसान समझना। चटनी होना = (१) खूब पिस जाना। (२) चट हो जाना। चटपट ला लिया जाना। लाने भर को न होना। (३) चुक जाना। खतम हो जाना। उड़ जाना।

३. काठ आदि का चार पाँच अंगुल का मुख्यतः रंगीन और चमकदार एक खिलौना जिसे छोटे बच्चे मुँह में डालकर चाटते या चूसते हैं।

चटपट—क्रि० वि० [अनु०] शीघ्र। जल्दी। तुरंत। अटपट। तत्क्षण। तत्काल। फौरन। उ०—एकै जीव जीवत है उमर अंदाज भर एकै जीव होतै हिंसु होत चटपट हैं।—ठाकुर०, पृ० १३।

मुहा०—चटपट की गिरह = वह फंदा जिसे खींच लेने से चट से गाँठ पड़ जाय। सकरमुट्टी।—(लश०)। चटपट होना = चटपट मर जाना। थोड़ी ही देर में समाप्त हो जाना। बात की बात में मर जाना।

चटपटा—वि० [हि० चाट] [स्त्री० चटपटी] चरपरा। तीक्ष्ण स्वाद का। मजेदार।

चटपटाना—क्रि० प्र० [हि० चटपट] जल्दी करना। हड़बड़ी मचाना।

चटपटि—क्रि० वि० [हि० चटपटी] दे० 'चटपटी'। उ०—कोउ चटपटि सों उर लपटी कोउ कर बर लपटी। कोउ गल लपटी कहति भले भले काहुर कपटी।—नंद० बं०, पृ० १६।

चटपटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चटपट] [वि० चटपटिया] १. आतुरता। हड़बड़ी। उतावली। शीघ्रता। उ०—तब रंचक तुम हिय में धार। बहुस्यो गए चटपटी लाइ।—नंद० बं०, पृ० २७१।

क्रि० प्र०—पड़ना।—मचाना।—होना।

२. चबराहट। व्यग्रता। आकुलता। १. वह बेचैनी जो किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिये हो। उत्सुकता। आकुलता। छटपटी। उ०—(क) देखे बिना चटपटी लागति कछु भूँड़ पड़ि पर ज्यों।—सूर (शब्द०)। (ख) नैननि चटपटी मेरे तब तँ लगी रहति कहाँ प्राण व्यारे निर्धन को बन।—सूर (शब्द०)।

चटपटी—वि० स्त्री० [हि० चटपटा] दे० 'चटपटा'।

चटपटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चटपटा] चटपटी चीज। जैसे,—कबाब आदि।

चटपटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चटपटी] आकुलता। बेचैनी। छटपटी। उ०—हृहरि हिरन हारियब, हेरि कातरख रटिय। अथ नास भय मोह विरह लगी चटपटिय।—पृ० १०, ६।१००।

चटर—संज्ञा पुं० [अनु०] किसी चीमड़ वस्तु के किसी कड़ी वस्तु पर बार बार पड़ने का शब्द। चटपट शब्द।

मुहा०—चटर करना = मस्तूल आदि को घुमाना या फेरना। चक्कर देना।—(लश०)।

यौ०—चटरचटर = चट चट की आवाज। चटरपटर = चटपट की ध्वनि।

चटरजी—संज्ञा पुं० [बं०] बंग देश के ब्राह्मणों की एक जाति। चट्टोपाध्याय।

चटरो—संज्ञा स्त्री० [देरा०] बेसारी नाम का कुशान्य। जतरी। चिपटिया।

चटवाना—क्रि० स० [हि० चाटना का प्रे० रूप] १. चाटने का काम कराना। चाटने में प्रवृत्त करना। चटाना। २. छुरी, तलवार आदि पर सान रखवाना। सान पर चढ़वाना।

चटरावाला—संज्ञा स्त्री० [प्रा० चट = बिछारों + सं० वाला] बच्चों के पढ़ने का स्थान। छोटी पाठशाला।

चटसार—संज्ञा स्त्री० [हि० चटशाला] बच्चों के पढ़ने का स्थान। पाठशाला। उ०—अब समझी हम बात तुम्हारी पढ़े एक चटसार।—सूर (शब्द०)।

चटसाँझ—संज्ञा स्त्री० [हि० चटशाला] दे० 'चटशाला'। उ०—तिनके संग चटसाँझ पठायो। राम नाम सों तिन चित लायो।—सूर (शब्द०)।

चटा—संज्ञा स्त्री० [प्रा० चट (बिछारों)] चट्टा। बेला। बिछारों। उ०—मनो मार चटसार सुठार चटा से पढ़हीं।—नंद० बं०, पृ० २०३।

चटाई—संज्ञा स्त्री० [सं० कट (= चटाई)] वह बिछावन जो पास फूस,

लौक साह के पत्तों, बोह की पत्तों कट्टियों आदि का बनवा है। एण का आसना। सावरी।

पटाई—संज्ञा स्त्री० [हि० पाटना] पाटने की क्रिया।

पटाक—संज्ञा [पनु०] लकड़ी आदि के टूटने, चटकने या चपत के पड़ने आदि का शब्द। जैसे,—पटाक से छड़ी टूटना, पटाक से उँगली फूटना। पटाक से चपत लगाना इत्यादि।
उ०—महा भुजवंश ई भंडकटाह चपेट के चोट पटाक दे कोरी।—मुनसी (शब्द०)।

विशेष—चट, चट आदि अन्य अनुकरण शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० पर के समान होता है, अतः इसके लिंग का विचार व्यर्थ है।

यौ०—पटाक पटाक = चटाक या चटपट शब्द के साथ।

पटाक—संज्ञा पुं० [हि० चट्टा] चकता। दाग। चम्बा। विशेषतः शरीर पर का। जैसे,—कुष्ठ आदि का।

पटाकर—संज्ञा पुं० [हि० चट्टा] एक पेड़ जिसका फल चट्टा होता है।
विशेष—यह मध्य भारत के सागर आदि स्थानों में विशेष होता है।

पटाका—संज्ञा पुं० [पनु०] १. लकड़ी का छीर किसी कड़ी वस्तु के जोर से टूटने का शब्द।

क्रि० प्र०—होना।

यौ०—पटाके का = बहुत तेज। उग्र। प्रचंड। जैसे,—पटाके की धूप। पटाके की प्यास।

विशेष—इसका प्रयोग गरमी तथा उसके कारण लगी हुई प्यास आदि की अधिकता ही के लिये प्रायः करते हैं।

२. चप्पड़। तमाचा।

मुहा०—पटाका जड़ना या लगाना = चप्पड़ मारना।

पटाख—संज्ञा पुं० [हि० पटाक] दे० 'पटाक'।

यौ०—पटाख पटाख = दे० 'पटाक पटाक'।

पटाचट—संज्ञा स्त्री० [पनु०] किसी वस्तु के टूटने में चट चट शब्द।

पटाना—क्रि० सं० [हि० पाटना का प्रे० रूप] १. पाटने का काम कराना। जीभ लगाकर किसी वस्तु का थोड़ा थोड़ा धंसा मुँह में डालने देना। २. थोड़ा थोड़ा किसी दूसरे के मुँह में डालना। खिलाना। जैसे,—पल पटाना। ३. कुछ घूस देना। रिश्वत देना। जैसे,—उन्होंने कुछ पटाया होगा, तब नौकरी मिली है। ४. छुरी तलवार आदि पर सान रखवाना। सान पर चढ़वाना।

पटापटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चटपट] १. शीघ्रता। जल्दी। फुरती। २. किसी संक्रामक रोग के कारण बहुत से मनुष्यों की जल्दी जल्दी मृत्यु।

क्रि० प्र०—होना।

पटारा—संज्ञा पुं० [दे०] बिता बनानेवाला। उ०—चिरगट फारि पटारा से गयो तरी तगरी छूटी।—कबीर बं०, पृ० २७७।

पटावन—संज्ञा पुं० [हि० पटाना] बच्चे को पहले पहल अन्न पटाने का संस्कार। अन्नप्राशन।

चटिक—क्रि० वि० [हि० चट] उसी समय तत्क्षण। तत्काल।
उ०—सुनत रूप आशित चतुरानन। चले चटिक प्रियव्रत जेहि कानन।—रघुराज (शब्द०)।

चटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पिपराभूल। पिप्पलीभूल। २. माया चटक या गौरैया (को०)।

यौ०—चटिकाशिरस = पिप्पलीभूल।

चटियल—वि० [दे०] अनादृत। खुला हुआ। जिसमें पैर पीछे न हों। निचाट (मैदान)।

चटिहाट—वि० [दे०] जड़। भूल। उजड़।

चटिया—संज्ञा पुं० [हि० चटी + ह्या (प्रत्य०)] १. शिष्य। विद्यार्थी।
उ०—लासन छोहरी संग मानहु चटिया होना।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४६।

चटी—वि० [सं० चटक ?] चटसार। पाठशाला। उ०—मुनिहुँद जहाँ जिहि वेद पठी, शुक्र सारस हंस चकोर चटी।—(शब्द०)।

चटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चपटा या चटचट] एक प्रकार की छुरी, जो ऐंड़ी की ओर खुली होती है। चट्टी।

चटोचरि—संज्ञा पुं० [दे०] पेच विशेष। एक प्रकार का पेच।

चटु—संज्ञा पुं० [सं०] १. चाटु। प्रिय वाक्य। खुशामद। चापलूसी। २. स्तियों का एक आसन। ३. उबर। पेट। ४. चिल्लाहट। चीत्कार (को०)।

चटुक—संज्ञा पुं० [सं०] काठ का बरतन। कठौता (को०)।

चटुकार—वि० [सं० चटु] खुशामद करनेवाला (को०)।

चटुल—वि० [सं०] १. चंचल। चपल। चालाक। २. सुंदर। प्रिय-दर्शन। मनोहर। उ०—छठि छ राग रस रागिनी हरि होरी है। ताला तान बंधान ग्रहो हरि होरी है। चटुल चाब रतिनाथ के हरि होरी है। सीसत होइ ओधान ग्रहो हरि होरी है।—सूर (शब्द०)। (ख) मंजुल महारि मयूर चटुल चातक चकोर गन।—सूषण (शब्द०)। (ग) मोती लटकन को नवल नट नाचै नयन निरत बर नानि की चटुल चटसार में।—देव (शब्द०)। (घ) उसके नैनों की पलकें, तक्षणतर केतकी के दल के सरसा दीर्घ किंचित् चटुल और किंचित् सालस बोधायमान थी।—श्यामा०, पृ० २६।

चटुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली।

चटुलास—वि० [सं०] खुशामदपसंद। जो अपनी खुशामद कराना पसंद करता हो (को०)।

चटुलित—वि० [सं०] १. हिलाया हुआ। २. सजाया हुआ (को०)।

चटुलोल, चटुलोल—वि० [सं०] १. चंचल। चपल। २. सुंदर। सौंदर्यवाली। ३. मृदुभाषी (को०)।

चटोर—वि० [हि० चटोरा] दे० 'चटोरा'।

चटोरपन—संज्ञा पुं० [हि० चटोर + पन (प्रत्य०)] दे० 'चटोरपन'।

चटोरा—वि० [हि० पाट + ओरा (प्रत्य०)] १. जिसे अच्छी चीजें खाने का व्यसन हो। जिसे स्वाद का व्यसन हो। स्वादिष्ट वस्तु खाने का लालची। स्वादलोलुप। जैसे,—चटोरा आदमी। चटोरी खान। २. लोलुप। लोभी। उ०—

अधर डोर बंसी सुनिल छवि जल बसुधा बाल । रूप चटोरा
मीन ध्व झाड़ फँसल ततंकाश ।—भुवारक (शब्द०) ।

चटोरापन—संज्ञा पुं० [हि० चटोरा + पन (प्रत्य०)] अन्धी अन्धी
बीजे खाने का व्यसन । स्वादोलुपता ।

चट्टा^१—वि० [हि० चाटना] १. चाट पोंछकर खाया हुआ । २.
समाप्त । नष्ट । गायब । उ०—दया चट्ट हो गई, धर्म बँसि गयो
धरणि में—(शब्द०) ।

चट्टा^२—संज्ञा पुं० [सं० चेटक (= दास) या प्रा० चट = शिष्य या
अनुकरणात्मक चट्टा बट्टा का अंश] । चेलु शिष्य ।

चट्टा^३—संज्ञा पुं० [सं० कट (= चटाई)] बीस को चटाई ।

चट्टा^४—संज्ञा पुं० [देश०] चटियल मैदान । खुला मैदान । ऐसा मैदान
जिसमें पेड़ आदि न हो ।

चट्टा^५—संज्ञा पुं० [हि० चकत्ता] शरीर पर कुष्ठ आदि के कारण
निकला हुआ चकत्ता । दाग ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—पड़ना ।

चट्टान—संज्ञा स्त्री० [हि० चट्टा] पहाड़ी भूमि के अंतर्गत पत्थर का
चिपटा बड़ा टुकड़ा । विस्तृत शिलापटल । शिलाखंड ।

चट्टाचट्टा—संज्ञा पुं० [हि० चट्टा (= चाटने का खिलौना)
(+ चट्टा =) अनुकरणात्मक समानभित्त उच्चारणात्मक
द्विवक्ति] १. छोटे बच्चों के खेलने के लिये काठ के खिलौनों
का समूह जिसमें चट्टा मुनमुने और गोले इत्यादि रहते हैं ।
२. गोले और गोलियाँ जिन्हें बाजीगर एक पैली में से निकाल-
कर लोगों को तमाशा दिखाते हैं ।

मुहा०—एक ही पैली के चट्टे बट्टे = एक ही गुट के मनुष्य । एक
ही स्वभाव और रुचि के लोग । एक ही मेल के आदमी । एक
ही विचार के लोग । चट्टे बट्टे लड़ाना = इधर की उधर
लगाकर लड़ाई करना । चुटकुला छोड़ना । ऐसी बात कहना
जिसमें कुछ लोग आपस में लड़ जायें । जैसे,—तुम्हें बहुत चट्टे
बट्टे लड़ाना आता है ।

चट्टी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. टिकान । पड़ाव । मंजिल । उ०—
सो कहु भागे द्वीप लसाई । तहँ एक चट्टी परम सुहाई ।—
रघुराज (शब्द०) ।

२. कर्वाखाबाद के जिले में पैर में पहनने का एक गहना ।

चट्टी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० चपटा या अनु० चटचट] ऐंड़ी की धोर
खुला हुआ सूता । स्तिपर । चटी ।

चट्टी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० चाटा (= चपल)] हानि । घाटा । टोटा ।
नुकसान । तावान ।

मुहा०—चट्टी भरना = हानि पूरी करना ।

२. दंड । जुरमाना ।

मुहा०—चट्टी भरना = दंड लगाना ।

चट्टी^४—वि० [हि० चाट] स्वादोलुप । चटोरा ।

चट्टी^५—संज्ञा पुं० [हि० चट्टान या अनु० चट] पत्थर का बड़ा खरल ।

चट्टी^६—संज्ञा पुं० [हि० चाटना] १. काठ का एक खिलौना जिसे
लड़के मुँह में डालकर चाटते हैं ।

चट्टी^७—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की दूध जिसे बुरैया भी कहते हैं ।

चट्टी^८—संज्ञा [अनु०] सूखी लकड़ी आदि के फटने का शब्द ।

विशेष—चट पट आदि शब्दों के समान इसका प्रयोग भी 'छे'

विशक्ति के साथ ही कि० वि० वर्त होता है, अतः इसके लिंग
का विचार व्यर्थ है ।

चट्टकपूजा—संज्ञा स्त्री० [हि० चरसपूजा] १० 'चरसपूजा' ।

चट्टचट्ट—संज्ञा पुं० [अनु०] सूखी लकड़ी के टूटने या जलने का शब्द ।

चट्टचट्ट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] टेंटे । बक बक । निरर्थक प्रलाप ।

मुहा०—चट्टचट्ट चट्टचट्ट करना = बकवाद करना ।

चट्टस—संज्ञा पुं० [हि० चरस] १० 'चरस' । उ०—अलक डोरि
तिल चट्टस वो निरमल चिबुक निवाँण । सींचे नित माली
समर प्रेम बाग पहुँचाण ।—बाँकी० पं०, भा० ३, पृ० १६ ।

चट्टसी—संज्ञा पुं० [हि० चरस] चरस पीनेवाले लोग । चरसी ।

चट्टाक^१—संज्ञा पुं० [अनु०] किसी वस्तु के टूटने का या फूटने या
फटने से होनेवाला शब्द ।

चट्टाक^२—वि० [आनु०] अग्न । अजित । उ०—रस का परिपाक
हो गया । चट्टा आप चट्टाक हो गया ।—साकेत, पृ० ३५६ ।

चट्टाना^१—क्रि० सं० [हि० चट्टाना] १० 'चट्टाना' । उ०—वरि
मानए नमन बरुआ मँथा चट्टाबए गाइक पुहुआ ।—कीर्ति०,
पृ० ४४ ।

चट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० चरण ?] वह लात जो उछलकर मारी जाय ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—मारना ।—लगाना ।

चट्टा^१—संज्ञा पुं० [देश०] जाँघ की जड़ । जंघे का ऊपरी भाग ।

चट्टा^२—वि० [सं० चट] गावदी । मूर्ख ।

चट्टी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक प्रकार का लंगोट । २. बच्चों
की जाँघिया ।

चट्टना^१—क्रि० प्र० [हि० चट्टना] १० 'चट्टना' । उ०—बिन
मग्न सके पंखी न चट्ट ।—ह० रासो,

चट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० चट्टना] लड़कों का वह खेल जिसमें एक
लड़का दूसरे की पीठ पर चढ़कर चलता है । इसमें जो लड़का
हारता है, उसी की पीठ पर सवारी की जाती है ।

क्रि० प्र०—चट्टना ।

मुहा०—चट्टी गाँठना = सवार होना । सवारी करना । चट्टी
बैना = (१) हारकर पीठ पर चढाना । (२) गुदामेथुन
कराना ।

२. कछा । कछोटो ।

चट्टउतर—संज्ञा स्त्री० [चट्टना + उतरना] चट्टना उतरना । आवा-
जाही । आना जाना । उ०—अनुषों की चट्ट उतर किनु
तुपमें तूफान उठा कब पाई ?—हिम०, पृ० ७७ ।

चट्टत—संज्ञा स्त्री० [हि० चट्टना] किसी देवता की चढ़ाई हुई वस्तु ।
देवता की मेट ।

चट्टता—वि० [हि० चट्टना] १. निकलता और ऊपर आता हुआ ।
बराबर ऊपर की ओर आता हुआ । जैसे,—चट्टता चाँद ।
२. आरंभ होता और बढ़ता हुआ । प्रयसर होता हुआ ।
जैसे,—चट्टती जवानी, चट्टती बैस ।

चट्टती—संज्ञा स्त्री० [हि० चट्टना] १. १० 'चट्टती' । २. अभ्युदय ।
उन्नति । उ०—पूँजी पाई साच दिनोदिन होती चट्टती ।
सतगुरु के परताप मई है, बोलत चट्टती ।—पलटू०, भा० १,
पृ० ३६ ।

बी०—चढ़ती कला = उभरता या निखरता हुआ सौंदर्य । उ०—
धीर उस मुई बेसवा की इस जमाने में ऐसी चढ़ती कला थी
धीर रती बुलब को कहती थी वहीं यह करते थे । —सर०,
पृ० १४ ।

चढ़ना (७)—संज्ञा बी० [हि० चढ़ना] चढ़ने की क्रिया या भाव ।

चढ़नाधार—संज्ञा पु० [हि० चढ़ना+आ० धार (प्रत्य०)] वह अनुप्य
जिसे व्यापारी गाड़ी, नाव आदि पर माल के साथ रक्षा के
लिये जेजते हैं । —(वश०) ।

चढ़ना—क्रि० घ० [सं० उचलन, प्रा० उचलन, चढ़न] नीचे से ऊपर
को जाना । ऊँचे स्थान पर जाना । 'उतरना' का उलटा ।
जैसे,—सीढ़ी पर चढ़ना ।

संज्ञो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—दुरख या बर्द का चढ़ना = सूर्य या चंद्रमा का उदय हो
कर जलित के ऊपर जाना । दिन चढ़ना = (१) दिन का
प्रकाश फैलना । (२) दिन या काल व्यतीत होना । जैसे,—
बार बड़ी दिन चढ़ा । वि० दे० 'दिन' ।

२. ऊपर उठना । उठना । उ०—गगन चढ़े रज पवन प्रसंगा ।
तुलसी (शब्द०) । ३. नीचे तक लटकती हुई किसी वस्तु
का सिकुड़ या खिसककर ऊपर की ओर हो जाना । ऊपर की
ओर सिकटना । जैसे,—आस्तीन चढ़ना, बाही चढ़ना, पायजामा
चढ़ना, पायें चढ़ना, मोहरी चढ़ना । ४. एक वस्तु के ऊपर
दूसरी वस्तु का सटना । भावरण के रूप में लगना । ऊपर से
टँकना । मढ़ा जाना । जैसे,—किताब पर जिल्द या कागज
चढ़ना, छाते पर कपड़ा चढ़ना, तकिए पर खोल या गिलाफ
चढ़ना, गोट चढ़ना । ५. उन्नति करना । बढ़ना ।

मुहा०—बढ़ बढ़कर या बढ़ बढ़कर होना = श्रेष्ठ होना । अधिक
महत्व का होना । बढ़ा बढ़ा या बढ़ा बढ़ा होना = श्रेष्ठ
होना । अधिक बढ़ा या अश्रेष्ठ होना । अधिक होना । विशेष
होना । बढ़ बनना = अनोरथ सफल होना । सुयोग मिलना ।
साम का अवसर हाथ आना । जैसे,—उनकी भाजकल खूब
बढ़ बनी है । बढ़ बजना = बात बनना । पी बारह होना ।
खूब चलती होना । उ०—घघर रस मुरली लूटि करावति ।
प्रापुन बार बार लै अंचवति जहाँ तहाँ डरकावति । प्रापु
महा चढ़ि बाजी बाकी जोई कोई करे बिराई । करि सिंहासन
बैठि अघर सिर छत्र धरे वह गावै । —सूर (शब्द०) ।

६. (नदी या पानी का) बाढ़ पर जाना । बढ़ना । जैसे,—
(क) बरसात के कारण नदी खूब चढ़ी थी । (ख) आज
तीन हाथ पानी चढ़ा । ७. आक्रमण करना । धावा करना ।
चढ़ाई करना । किसी शत्रु से लड़ने के लिये दल बल सहित
जाना ।

क्रि० प्र०—जाना । —जाना । —बढ़ना ।

८. बहुत से लोगों का दल बांधकर किसी काम के लिये जाना ।
साज बाज के साथ चलना । बाजे बाजे के साथ कहीं जाना ।
उ०—आपके साथ मैं सारे इंद्रलोक को समेट कुँवर उदयमान
को ग्याहने चढ़ूँगा । —इंशाअल्ला (शब्द०) । ९. महंगा
होना । भाव का बढ़ना । जैसे,—भाज कल भी बहुत बढ़

गया है । १०. स्वर का तीव्र होना । सुर ऊँचा होना ।
आवाज तेज होना । ११. नदी या प्रवाह में उस ओर को
चलना, जिस ओर से प्रवाह आता हो । धारा का बहाव के
बिपक्ष चलना । १२. ढोल, सितार आदि की धोरी या तार का
कस जाना । तनना । जैसे,—ढोल चढ़ना, ताशा चढ़ना ।

मुहा०—नस चढ़ना = नस का अपने स्थान से हट जाने के कारण
तन जाना ।

१३. किसी देवता, महात्मा आदि को भेंट दिया जाना । देवापित
होना । जैसे, माला फूल चढ़ना । बलि चढ़ना । बकरा चढ़ना ।
उ०—बात यह चित से कभी उतरे नहीं । हैं उतरते फूल
चढ़ने के लिये । —चुभते०, पृ० ११ । १४. सवारी पर बैठना ।
सवारी करना । सवार होना । जैसे,—घोड़े पर चढ़ना । गाड़ी
पर चढ़ना ।

संज्ञो० क्रि०—जाना । —बैठना ।

१५. किसी निर्दिष्ट कालविभाग जैसे,—वर्ष, मास, नक्षत्र आदि,
का आरंभ होना । जैसे,—प्रसाढ़ चढ़ना, महीना चढ़ना, वशा
चढ़ना । उ०—(क) चढ़ा प्रसाढ़ दुंद बन गाजा । —जायसी
(शब्द०) । (ख) चढ़ति दसा यह उतरति जाति निदान ।
कहुँ न कबहुँ करकस भौह कमान । —तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—बार, तिथि या उससे छोटे कालविभाग के लिये 'चढ़ना'
का प्रयोग नहीं होता ।

१६. किसी के ऊपर श्रृंखला होना । कर्ज होना । पावना होना ।
जैसे,—(क) व्याज चढ़ना । (ख) इधर कई महोनों के बीच
में उसपर सैकड़ों रुपये महाजनो के चढ़ गए । १७. किसी
पुस्तक, बही या कागज आदि पर लिखा जाना । टँकना ।
दर्ज होना । (यह प्रयोग ऐसी रकम, वस्तु या नाम के लिये
होता है जिसका लेखा रखना होता है ।) जैसे,—(क) ५ रुपए
भाज आए हैं, वे बही पर चढ़े कि नहीं ? (ख) रजिस्टर पर
लड़के का नाम चढ़ गया । १८. किसी वस्तु का बुरा और
उद्देगजनक प्रभाव होना । बुरा असर होना । आवेश होना ।
जैसे,—क्रोध चढ़ना, नशा चढ़ना, ज्वर चढ़ना ।

मुहा०—पाप या हत्या चढ़ना = पाप या हत्या के प्रभाव से बुद्धि
का ठिकाने न रहना ।

१९. एकने या भाँच खाने के लिये बूल्हे पर रखा जाना । जैसे,—
दाल चढ़ना, भात चढ़ना, हांडो चढ़ना, कढ़ाह चढ़ना । २०.
लेप होना । लगाया जाना । पोता जाना । जैसे,—(धंग पर)
दवा चढ़ना, वारनिस चढ़ना, रोगन चढ़ना, रंग चढ़ना ।

मुहा०—रंग चढ़ना = रंग का किसी वस्तु पर जाना । रंग का
खिसना । वि० दे० 'रंग' । उ०—सूरदास खल कारी कामरि
चढ़त न दूजो रंग । —सूर (शब्द०) । २१. किसी मामले को
लेकर प्रदालत तक जाना । कचहरी तक मामला ले जाना ।
जैसे,—बार आदमी जो कह दें, वही मान लो; कचहरी चढ़ने
क्यों जाते हो ?

चढ़पट (७)—क्रि० वि० [हि० चटपट] शीघ्र । जल्दी । वि० दे०
'चटपट' । उ०—सोमेस सुपन बिरांत रन चढ़पट भट भट्ट

लुटिहि । इय ध्युत बल पिण्वत नरह भुजति मार धनक
फुटहि । —पृ० रा०, १३ । १४१ ।

चढ़वाना—क्रि० सं० [हि० चढ़ाना का प्रे० रूप] चढ़ाने का काम कराना ।

चढ़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चढ़ना] १. चढ़ने की क्रिया या भाव ।
२. ऊँचाई की ओर से जानेवाली भूमि । वह स्थान जो आगे की ओर बराबर ऊँचा होता गया हो और जिसपर चलने में पैर कुछ उठाकर रखने के कारण अधिक परिश्रम पड़े । जैसे,—आगे दो कोस की चढ़ाई पड़ती है । ३. अनु से चढ़ने के लिये दलबल के सहित प्रस्थान । यात्रा । आक्रमण ।

क्रि० प्र०—करना । —होना ।

४. किसी देवता की पूजा का आयोजन । ५. किसी देवता को पूजा या भेंट चढ़ाने की क्रिया । चढ़ावा । कढ़ाही । उ०—सुर नंद सो कहत जसोदा दिन आए प्रब करहु चढ़ाई ।—सुर (शब्द०) ।

चढ़ावा—संज्ञा पुं० [हि० चढ़ाव] दे० 'चढ़ाव' ।

चढ़ावतरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चढ़ना + उतरना] बार बार चढ़ने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—चढ़ा उतरी सगाना = बार बार चढ़ना उतरना ।

चढ़ाऊपरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चढ़ना + ऊपर] एक दूसरे के आगे होने या बढ़ने का प्रयत्न । लॉग डाट । होड़ ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—चढ़ा ऊपरी लगाना = एक दूसरे के आगे होने या बढ़ने का प्रयत्न करना । होड़ाहोड़ी करना ।

चढ़ाचढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० चढ़ाचढ़ी] दे० 'चढ़ाचढ़ी' । उ०—
ज्यों कुछ त्यों ही नितंब चढ़े कुछ त्यों ही नितंब त्यों चातुरई
सी । जानी न ऐसी चढ़ाचढ़ी में किहि धौं कटि बीच ही
लूटि लई सी ।—पद्माकर प्र० पृ० ८३ ।

चढ़ाचढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० चढ़ना] एक दूसरे से बढ़ जाने का प्रयत्न । होड़ाहोड़ी । लागडाट । खींचतान । उ०—देखतै बनी है दुहुँ दल की चढ़ाचढ़ी में राम दग हूँ पै नेकु लाली जो चढ़े लगी ।—पद्माकर (शब्द०) ।

चढ़ान—संज्ञा स्त्री० [हि० चढ़ना] दे० 'चढ़ानी' ।

यौ०—सीधी चढ़ान = वह चढ़ाई जिसमें मुकाब या तिरछापन न हो ।

चढ़ाना—क्रि० सं० [हि० चढ़ना का प्रे० रूप] १. नीचे से ऊपर से जाना । ऊँचाई पर पहुँचाना । जैसे,—यह चारपाई ऊपर चढ़ा दो ।

क्रि० प्र०—देना । —लेना ।

२. बढ़ने का काम कराना । बढ़ने में प्रवृत्त करना । जैसे,—उसे व्यर्थ पेड़ पर क्यों चढ़ाते हो, गिर पड़ेगा ।

क्रि० प्र०—देना ।

३. नीचे तक लटकती हुई किसी वस्तु को सिकोड़ या खिसकाकर

ऊपर की ओर से जाना । ऊपर की ओर समेटना । जैसे,—
आस्तीन चढ़ाना, मोहरी चढ़ाना, धोती चढ़ाना ।

क्रि० प्र०—देना । —लेना ।

४. आक्रमण कराना । घावा कराना । चढ़ाई कराना । दूसरे को आक्रमण में प्रवृत्त करना ।

मुहा०—चढ़ा लाना = आक्रमण या चढ़ाई के लिये किसी को दल बल सहित साथ लाना । जैसे,—वह नादिरशाह को दिल्ली पर चढ़ा जाया ।

५. महंगा करना । भाव बढ़ाना । ६. स्वर तीव्र करना । सुर ऊँचा करना । आवाज तेज करना । ७. ठोल सितार आदि की डोरी को कसना या तानना । ८. किसी देवता या महारत्ना आदि को भेंट देना । देवापित करना । नजर रखना । जैसे,—
फूस चढ़ाना, मिठाई चढ़ाना । ९. सवारी पर बैठाना । सवार कराना । जैसे,—चोड़े पर चढ़ाना, गाड़ी पर चढ़ाना । १०. चटपट पी जाना । गले से उतार जाना । जैसे,—वह आज एक सोटा भाँग चढ़ा गया ।

विशेष—चिह्ना के व्यवहार में इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग नहीं होता । इसमें पीनेवाले पर अधिक पी जाने आदि का आरोप अंग या विनोद के अन्वय पर ही होता है ।

११. किसी के माथे ऋण निकालना । किसी को देनदार ठहराना । जैसे,—उसके ऊपर क्यों इतना कर्जा चढ़ाते जाते हो ? १२. किसी पुस्तक, बही, कागज आदि पर लिखना । टांकना । दर्ज करना । (यह प्रयोग किसी ऐसी रकम, वस्तु या नाम के लिये होता है, जिसका लेखा रखना होता है) ।

जैसे,—इन व्ययों को भी बही पर चढ़ा लो । १३. पकने या घबिच जाने के लिये बूल्हे पर रखना । जैसे,—दाल चढ़ाना, हाँड़ी चढ़ाना । १४. लेप करना । लगाना । पोतना ।

जैसे,—माथे पर चंदन चढ़ाना, दवा चढ़ाना, कपड़े पर रंग चढ़ाना । १५. एक वस्तु के ऊपर दूसरी वस्तु सटाना । मढ़ना । ऊपर से लगाना । आवरण रूप में लगाना । ऊपर से टांकना । जैसे,—जिल्द चढ़ाना, किताब पर कागज चढ़ाना,

छाते पर कपड़ा चढ़ाना, खोल या गिलाफ चढ़ाना, गोट चढ़ाना । १६. सितार, सारंगी, वज्र आदि में तार या डोरी कसकर बाधना । जैसे,—रोदा चढ़ाना ।

मुहा०—अनुष चढ़ाना = अनुष की कोटि पर पतंचिका चढ़ाना । अनुष की डोरी को तानकर छोर पर बाधना या अटकाना ।

वि० दे० 'अनुष' ।

चढ़ानी—संज्ञा स्त्री० [हि० चढ़ना] ऊँचाई की ओर से जानेवाली सतह । वह स्थान जो आगे की ओर बराबर ऊँचा होता गया हो, और जिसपर चलने में अधिक परिश्रम पड़े । जैसे,—आगे उस पहाड़ की बड़ी कड़ी चढ़ानी है ।

चढ़ाव—संज्ञा पुं० [हि० चढ़ना] १. चढ़ने का भाव ।

यौ०—चढ़ाव उतार = ऊँचा नीचा स्थान । ऐसा स्थान जहाँ बार बार चढ़ना और फिर उतरना पड़ता हो ।

२. बढ़ने का भाव । उत्तरोत्तर अधिक होने का भाव । वृद्धि । बाढ़ । जैसे,—पानी का चढ़ाव, नदी का चढ़ाव ।

यौ०—चढ़ाव उतार = एक सिरे पर छोटा और दूसरे सिरे की ओर कमजोर पतला होते जाने का भाव। गायदुग्ध प्राकृति। जैसे,—इस छड़ी का चढ़ाव उतार देखो।

१. वह गहना जो बूल्हे के घर की ओर से दुलहिन को विवाह के दिन पहनाया जाता है। ४. विवाह के दिन दुलहिन को बूल्हा के यहाँ से धाए हुए गहने पहनाने की रीति। उ०—अब मैं नवनव जहाँ कुमारी। करिहो चढ़न चढ़ाव तयारी।—रघुराज (शब्द०) ५. दरी के करघे का वह बाँस जो बुनने-वाले के पास रहता है। ६. वह दिया जिधर से नदी या पानी की धारा भाई हो। बहाव का उलटा। जैसे,—चढ़ाव पर नाव ले जाने में बड़ी मेहनत पड़ती है।

चढ़ावनी०—वि० [हि० चढ़ना] चढ़ानेवाली। पहुँचानेवाली। ले जाने-वाली। उ०—प्रेम की चढ़ावनी बड़ावनी विरति ज्ञान, अंत में चढ़ावनी श्री रामराजधानी में।—राम० जर्म०, पृ० २६०।

चढ़ावा—संज्ञा पुं० [हि० चढ़ना] १. वह गहना जो बूल्हे की ओर से दुलहिन को विवाह के दिन पहनाया जाता है। उ०—इसके कुछ दिनों पीछे रमानाथ के साथ देवबाला का ब्याह ठीक हो गया, चढ़ावा भी चढ़ गया।—ठेठ० पृ० १६। २. वह सामग्री जो किसी देवता को चढ़ाई जाय। पुजाया। ३. टोटके की वह सामग्री जो बीमारी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिये किसी चौराहे या गाँव के किनारे रख दी जाती है। ४. बड़ावा। दम। उत्साह।

मुद्दा०—चढ़ाना बढ़ाना देना = जी बढ़ाना। उत्साह बढ़ाना। उसकाना। उत्तेजित करना।

चढ़ैत—संज्ञा पुं० [हि० चढ़ता + ऐत (प्रत्य०)] चढ़नेवाला। सवार होनेवाला।

चढ़ैता—संज्ञा पुं० [हि० चढ़ना + ऐता (प्रत्य०)] दूसरों का थोड़ा फेरनेवाला। चाबुक सवार।

चढ़ैया०—वि० [हि० चढ़ना + ऐसा (प्रत्य०)] चढ़ने या चढ़ानेवाला।

चढ़ीझा—संज्ञा पुं० [हि० चढ़ीझा] दे० 'चढ़ावा'।

चढ़ीबा—वि० [हि० चढ़ना] १. उठी हुई ऐंड़ी का झूठा। झड़ी ऐंड़ी का झूठा। २. चढ़ाना। ३. दे० 'चढ़ावा'—१।

चण्—संज्ञा पुं० [सं० चना] चना [को०]।

चण्—वि० प्रसिद्ध। ब्याप्त। जैसे,—अक्षरचण्।

विशेष—समास में प्रतिम पद के रूप में ही इसका प्रयोग मिलता है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार चण्य = चण् प्रत्यय है। इसका प्रयोग 'निष्ठात' या विद्या अथवा विषय में पारंगत या विख्यात अर्थ में होता है।

चण्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चना। २. एक मोत्रकार ऋषि।

चण्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीसी [को०]।

चण्यकात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] चाणक्य।

चण्डस—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक रोग का नाम। २. झुग गोखुर [को०]।

चण्यपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] हबती नाम का पौधा जिसकी पत्तियाँ चने की पत्तियों के समान होती हैं।

चण्यिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घास जिसके खाने से गाय को दूध अधिक होता है।

विशेष—यह घास घोषण के काम में भी आती है और दूध तथा बलकारक समझी जाती है।

चणिया—संज्ञा पुं० [गुज० चणियो] एक छोटा सहंगा या पाचरा।

चतरंग—संज्ञा पुं० [हि० चतुरंग] दे० 'चतुरंग'।

चतरा—वि० [हि० चतुर] दे० 'चतुर'।

चतर(उ०)†—संज्ञा पुं० [सं० छत्र, हि० छतर] छत्र।

चतरना—क्रि० प्र० [हि० छतराना] छितरना। बिखरना।

चतराना—क्रि० स० छितराना।

चतरभंग—संज्ञा पुं० [सं० छत्रभङ्ग] बैलों का एक दोष, जिसमें उनके बिल्ले का मांस एक ओर लटक जाता है।

विशेष—जिस बैल में यह दोष हो, उसका रखना या पालना हानिकारक और अशुभ समझा जाता है।

चतरभागा—वि० [हि० चतरभग] (वह बैल) जिसे चतरभंग का रोग हो।

चतरोई—संज्ञा स्त्री० [देश०] पाँच छह हाथ ऊँची एक प्रकार की झाड़ी।

विशेष—यह हिमालय में हजारों से नैपाल तक ६००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। इसकी छात्र सफेद रंग की होती है और फागुन चैत में इसमें पीले रंग के छोटे फूल लगते हैं। इसकी लकड़ी के रस से एक प्रकार की रसीत बनाते हैं।

चतस्र—संज्ञा पुं० [सं० चतस्रः] चार।

विशेष—संस्कृत में यह शब्द 'चोर' वाचक चतसृ के स्त्री लिंग रूप के प्रथमा बहुवचन का अवशेष है।

चतुःपंच—वि० [सं० चतुःपञ्च] चार या पाँच [को०]।

चतुःपंचाश—वि० [सं०] चौवनवाँ।

चतुःपंचाशत्—संज्ञा पुं० [सं०] चौवन की संख्या।

चतुःपाद, चतुःपाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो चार चरणों से युक्त हो। २. न्याय में अभियोगों की जाँच पड़ताल की एक कार्यविधि जिसमें चार प्रकार की प्रक्रियाएँ हों अर्थात् तर्क, पक्षसमर्थन, प्रत्युक्ति और निराय। ३. अनुबोध जिसके ग्रहण, धारण, प्रयोग और प्रतिकार ये चार चरण हैं।

यौ०—चतुःपादसंपत्ति = दे० 'चतुष्पद' ३।—माधव०, पृ० ५६।

चतुःशाफ—वि० [सं०] चार लुरोंवाला [को०]।

चतुःशाख—वि० [सं०] चार शाखाओंवाला [को०]।

चतुःशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह मकान जिसमें चार बड़े बड़े कमरे हों। २. चोपाल। बैठक। दीवानखाना।

चतुःषष्ठ—वि० [सं०] चौसठवाँ।

चतुःषष्ठी—वि०, संज्ञा स्त्री० [सं०] चौसठ की संख्या या अंक।

चतुःष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चतुष्टोम' [को०]।

चतुःसंप्रदाय—संज्ञा पुं० [सं० चतुःसम्प्रदाय] वैष्णवों के चार प्रधान संप्रदाय—श्री. माध्व. रुद्र और सनक।

चतुःसन—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा के चार पुत्र—सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार जो विष्णु के अवतार माने जाते हैं [को०]।

चतुःसप्तत्—वि० [सं०] चौहत्तरवाँ।

चतुःसप्तति—वि०, संज्ञा स्त्री० [सं०] चौहत्तर की संख्या या अंक।

चतुःसम—संज्ञा पु० [सं०] १० 'चतुस्सम' [को०] ।

चतुःसीमा—संज्ञा शेष० [सं०] चारो ओर की सीमा । ह्रस्व [को०] ।

चतुःशु—वि० [सं० चतुश्चय] चारो ओर स्थित रहनेवाला । उ०—
चतुर्वान चतुःशु वावदिसा ६ । हिन्दवान वर भान विधि ।—गुन
रूप सहज लक्ष्मी सु नर सहज वीर बंधी सु सिधि । पु०
रा०, २१।१५६ ।

चतुरंग—^१ संज्ञा पु० [सं० चतुरङ्ग] १. वह गाना जिसमें चार
प्रकार (जैसे, साधारण गाना, सरगम, तराना, और तबले,
मृदंग, सितार आदि) के बोल गठे हों । उ०—ग सा रे रे म
म प प नि नि स स नि स रे स नि च प प च म म नि च प
च प म ग रे । तनन तनन तुम दिर दिर तूम दिर तारे बानी ।
सोरठ चतुरंग सप्त सुरन से । या तिरकिट धुम किट या तिर
किट धुम किट या तिर किट धुम किट या । २. एक प्रकार
का रंगीन या चलता माना । ३. चतुरंगिणी सेना का प्रधान
अधिकारी । ४. सेना के चार भंग हाथी, घोड़ा, रथ और
पैदल । ५. चतुरंगिणी सेना ।

चतुरंग^२—वि० १. चार भंगोंवाली । चतुरंगिणी (सेना) । उ०—
प्रातः चली चतुरंग चतुःवरनी सो न केनाव कैसहुँ जाई ।—केनाव
(शब्द०) । २. चार भंगोंवाला ।

चतुरंग^३—संज्ञा पु० [सं० चतुर + अङ्ग] दूत । चर । उ०—वर
प्रभवत सु दीह आइ चतुरंग सपत्नी । ममक महल रुप बोल
बंधि कण्ठ कर लिनी ।—पु० रा०, २६।१४ ।

चतुरंग^४—संज्ञा पु० [सं० चतुरङ्ग ग] शतरंज का खेल ।

विशेष—इस खेल के उत्पत्तिस्थान के विषय में लोगों के भिन्न
भिन्न मत हैं । कोई इसे चीन देश से निकला हुआ बतलाते
हैं, कोई मिस्र से और कोई यूनान से । पर अधिकतर
लोगों का मत है, और ठीक भी है, कि यह खेल भारतवर्ष
से निकला है । यही से यह खेल फारस में गया; फारस से
अरब में और अरब से यूरोपीय देशों में पहुँचा । फारसी में
इसे चतरंग भी कहते हैं । पर अरबवाले इसे शतरंज,
शतरंज आदि कहने लगे । फारस में ऐसा प्रवाद है कि यह
खेल नौशेरवाँ के समय में हिंदुस्तान से फारस में गया और
इसका निकालनेवाला दाहिर का बेटा कोई सस्सा नामक
था । ये दोनों नाम किसी भारतीय नाम के अपभ्रंश हैं ।
इसके निकाले जाने का कारण फारसी पुस्तकों में यह लिखा
है कि भारत का कोई युद्धप्रिय राजा, जो नौशेरवाँ का
समकालीन था, किसी रोग से अशक्त हो गया । उसी का
जी बहलाने के लिये सस्सा नामक एक व्यक्ति ने चतुरंग का
खेल निकाला । यह प्रवाद इस भारतीय प्रवाद से मिलता जुलता
है कि यह खेल मंदोदरी ने अपने पति को बहुत युद्धासक्त
देखकर निकाला था । इसमें तो कोई संदेह नहीं कि भारतवर्ष
में इस खेल का प्रचार नौशेरवाँ से बहुत पहले था । चतुरंग
पर संस्कृत में अनेक ग्रंथ हैं, जिनमें से चतुरंगकेरली, चतुरंग-
क्रीडन, चतुरंगप्रकाश और चतुरंगविनोद नामक चार ग्रंथ
मिलते हैं । प्रायः सात सौ वर्ष हुए त्रिभंगपाचार्य नामक एक
दक्षिणी विद्वान् इस विद्या में बहुत निपुण थे । उनके अनेक

उपदेश इस कीड़ा के संबंध में हैं । इस खेल में चार रंगों का
व्यवहार होता था—हाथी, घोड़ा, नौका, और बट्टे (पैदल) ।
छठी शताब्दी में जब यह खेल फारस में पहुँचा और वहाँ से
अरब गया, तब इसमें ऊँट और बज्जीर आदि बढ़ाए गए
और खेलने की क्रिया में भी फेरफार हुआ । तिथितत्त्व नामक
ग्रंथ में वेदव्यास जी ने युधिष्ठिर को इस खेल का जो
विवरण बताया है, वह इस प्रकार है,—चार आदमी यह
खेल खेलते थे । इसका चित्रपट (बिंसात) ६४ घरों का
होता था जिसके चारो ओर खेलनेवाले बैठते थे । पूर्व और
पश्चिम बैठनेवाले एक दल में और उत्तर दक्षिण बैठनेवाले
दूसरे दल में होते थे । प्रत्येक खिलाड़ी के पास एक राजा,
एक हाथी, एक घोड़ा, एक नाव और चार बट्टे या पैदल
होते थे । पूर्व की ओर की गोठियाँ लाल, पश्चिम की पीली,
दक्षिण की हरी और उत्तर की कासी होती थीं । चलने
की रीति प्रायः आज ही कल के ऐसी थी । राजा चारों
ओर एक वर चल सकता था । बट्टे या पैदल यों तो केवल
एक वर सीधे जा सकते थे, पर दूसरी गोटी मारने के समय
एक वर आगे तिरछे भी जा सकते थे । हाथी चारों ओर
(तिरछे नहीं) चल सकता था । घोड़ा तीन वर तिरछे
जाता था । नौका दो वर तिरछे जा सकती थी । मोहरे
आदि बनाने का क्रम प्रायः वैसा ही था, वैसा आजकल है ।
हार जीत भी कई प्रकार की होती थी । जैसे,—सिंहासन,
चतुराजी, तृपाकृष्ट, षट्पद, काककाष्ठ, वृहत्तीका इत्यादि ।

चतुरंगिक—संज्ञा पु० [सं० चतुरङ्गिक] एक प्रकार का घोड़ा जिसके
माथे पर चार भौरी होती हैं [को०] ।

चतुरंगिणी^१—वि० स्त्री० [सं० चतुरङ्गिणी] चार भंगोंवाली (विशेषतः
सेना) ।

चतुरंगिणी^२—संज्ञा स्त्री० वह सेना जिसमें हाथी, घोड़े, रथ और
पैदल, ये चारो भंग हों ।

चतुरंगिनी^३—वि०, संज्ञा स्त्री० [सं० चतुरङ्गिणी] दे० 'चतुरंगिणी' ।

चतुरंगी^४—वि० [सं० चतुरङ्गिन्] १. जिसकी गति चारो ओर
हो । २. चतुर । उ०—चित्रनहारे चित्रि तूँ रे चतुरंगी नाह ।
का बहुमान सु किशि कवि मन मनुष्य हरि लाह ।—पु०
रा०, १।७६६ ।

चतुरंगुल^१—संज्ञा पु० [सं० चतुरङ्गुल] प्रमलतास ।

चतुरंगुल^२—वि० चार अंगुल लंबा या चौड़ा [को०] ।

चतुरंगुला—संज्ञा स्त्री [पु० चतुरङ्गुला] शीतली लता ।

चतुरंत^१—वि० [सं० चतुरन्त] चोतरफा किनारेवाला [को०] ।

चतुरंत^२—संज्ञा पु०, स्त्री० पृथिवी ।

चतुरंता—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुरन्ता] पृथिवी [को०] ।

चतुर^१—वि० पु० [सं०] [वि० स्त्री० चतुरा] १. टेढ़ी चाल चलनेवाला ।
वक्रगामी । २. फुरतीला । तेज । जिसे घालस्य न हो । ३.
प्रवीण । होशियार । निपुण । उ०—कवि न होउं नहि
चतुर प्रवीण । सकल कला सब विद्या हीनू । ४. धूर्त ।
चालाक । ५. सुंदर [को०] ।

चतुर^२—संज्ञा पु० १. शृंगार रस में नायक का एक भेद । वह नायक

जो अपनी चतुरी है प्रेमिका है संयोग का साधन करे। इसके दो भेद हैं—क्रियाचतुर और वचनचतुर। २. वह स्थान जहाँ हाथी रहते हैं। हाथीखाना। ३. नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा। ४. वक्त्र गति। टेढ़ी चाल (को०)। ५. धूर्तता। प्रवीणता। होशियारी (को०)। ६. गोल तकिया (को०)।

चतुरार्द्ध—संज्ञा स्त्री० [हि० चतुरार्द्ध] चतुरता। चतुरार्द्ध।

क्रि० प्र०—करना।—विज्ञाना।—सौजन्य।

मुहा०—चतुरार्द्ध खोलना=चालाकी करना। चोखा देना। उ०—

जाहू चले गुन प्रगट सूर प्रभु कहाँ चतुरार्द्ध खोलत है—सूर (शब्द०)। चतुरार्द्ध तोलना=चालाकी करना। उ०—बहु-
नायकी भाजु में जानी कहा चतुरार्द्ध तोलत हैं।—सूर(शब्द०)।

चतुरक—संज्ञा पुं० [सं०] चतुर।

चतुरकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ताल जिसमें दो गुरु, दो प्लुत और इनके बाद एक गुरु होता है। यह ३२ धराओं का होता है और इसका व्यवहार शृंगार रस में होता है।

चतुरजाति—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्जातिक] सं० 'चतुर्जातिक'।

चतुरस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर + ता (प्रत्य०)] चतुर का आब। चतुरार्द्ध। प्रवीणता। होशियारी।

चतुरथी—वि० [सं० चतुर्थ] दे० 'चतुर्थ'। उ०—आकाश चतुरथी तप्त बनाया।—प्राण०, पृ० ३६।

चतुरनीक—संज्ञा पुं० [सं०] चतुरानन। ब्रह्मा।

चतुरपना—संज्ञा पुं० [हि० चतुर + पन] चतुरार्द्ध। चतुरता।

चतुरबीज—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्बीज] दे० 'चतुर्बीज'।

चतुरभुज—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्भुज] दे० 'चतुर्भुज'।

चतुरमास—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्मास] दे० 'चतुर्मास'।

चतुरमुख—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्मुख] दे० 'चतुर्मुख'।

चतुरम्ब—संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेत, हमली, जँबीरी और कागजी, नीबू, इन चार खटाइयों का समूह।—(वैद्यक)।

चतुरशीति—वि० [सं०] चौरासी।

चतुरवर—वि० चतुर लोगों में श्रेष्ठ। उ०—कोइक दिन गुरु राम के पढ़ी तु विद्या अप्य। अवधु विद्या चतुरवर सीख लई पट लिप्य।—पृ० २०, १।७२६।

चतुरश्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मसंतान नामक केतु। २. ज्योतिष में चौथी या आठवीं राशि। ३. दे० 'चतुरस्र' (को०)।

चतुरश्र—वि० जिसके चार कोने हों। चौकोर।

चतुरसमा—संज्ञा पुं० [सं० चतुस्सम] दे० 'चतुस्सम'। उ०—मंगलमय निज निज भवन लोगन रचे बनाय। बीबी सीबी चतुरसम चौहें चार पुराय।—तुलसी (शब्द०)।

चतुरस्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तिताला ताल जिसमें क्रम से एक गुरु (गुरु की दो मात्राएँ), एक लघु (लघु की एक मात्रा), एक प्लुत (प्लुत की तीन मात्राएँ) होता है। इसका बोल यह है—वरिकुक्कु बाँ बाँ धिगवाँ। बिधि बिधि बिधि गन यों यों डे। २. नृत्य में एक प्रकार का हस्तक। ३. चतुर्भुज सेन (को०)। ४. ज्योतिष में चौथी या आठवीं राशि (को०)। ५. ब्रह्मसंतान नामक केतु (को०)।

चतुरस्र—वि० १. चतुर्कोण (माण्डिक्य की एक विशेषता)। २. सर्वांगीण (को०)।

यौ०—चतुरस्र पांडित्य = सर्वतोमुखी ज्ञान या विद्वत्ता।

चतुरह—संज्ञा पुं० [सं० चतुरहन्] १. वह याग जो चार दिनों में हो। २. चार दिन का समय या काल (को०)।

चतुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नृत्य में धीरे धीरे झोंह कंपाने की क्रिया।

चतुरा—संज्ञा पुं० [हि० चतुर] [स्त्री० चतुरी] १. चतुर। प्रवीण। २. धूर्त। चालाक।

चतुरार्द्ध—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर + आर्द्ध (प्रत्य०)] १. होशियारी। निपुणता। दक्षता। २. धूर्तता। चालाकी।

चतुरात्मा—संज्ञा पुं० [सं० चतुरात्मन्] १. ईश्वर। २. विष्णु।

चतुरानन—संज्ञा पुं० [सं०] चार मुखवाले। ब्रह्मा।

यौ०—चतुरानन का अल = ब्रह्माल।

चतुरापना—संज्ञा पुं० [हि० चतुरापन (प्रत्य०)] चतुरार्द्ध। होशियारी। उ०—फिर बात चले चतुरापन की चित चाब चढ़पी सुधि चार दर्ई।—रघुनाथ (शब्द०)।

चतुरात्म—संज्ञा पुं० [सं० चतुरात्म] दे० 'चतुरात्म'।

चतुराश्रम—संज्ञा पुं० [चतुर + आश्रम] जीवन के चारों आश्रम—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास।

चतुरिन्द्रिय—संज्ञा पुं० [सं० चतुर + इन्द्रिय] चार इंद्रियोंवाले जीव। विशेष—प्राचीन काल के भारतवासी मक्खी, भौरे, साँप आदि की श्रवणेंद्रिय नहीं मानते थे; इसी से उन्हें चतुरिन्द्रिय कहते थे।—(वैद्यक)।

चतुराशी—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुराशीति] दे० 'चौरासी'। उ०—चतुराशी के दुःख नहीं कछु बरने जाही।—सुंदर भं०, भा० १, पृ० ८।

चतुरासीत—वि० [सं० चतुराशीति] दे० 'चौरासी'। उ०—कला बहुतर करि कुसल प्रति निवद्ध जिय जानि। हेत आदि जानन निपुन चतुरासीत विग्यान।—पृ० २०, १।७३८।

चतुरी—संज्ञा [देश०] पुराने ढंग की एक प्रकार की पतली नाव जो प्रायः एक ही लकड़ी में खोदकर या और किसी प्रकार से बनाई जाती है।

चतुरपण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार सोंठ, मिर्च, पीपर और पिपरामूल, इन चार गरम पदार्थों का समूह।

चतुर—वि० [सं० चतुः, चतुर्] चार।

चतुर—संज्ञा पुं० चार की संख्या।

विशेष—हिंदी में इसका प्रयोग केवल समस्त पदों ही में होता है। जैसे,—चतुरंगिणी, चतुरानन।

चतुर्गति—संज्ञा पुं० [सं०] १. कछुआ। २. विष्णु। ३. ईश्वर।

चतुर्गव—संज्ञा पुं० [सं०] चार बैलों द्वारा जोती जानेवाली गाड़ी (को०)।

चतुर्गुण—वि० [सं०] १. चोगुना। २. चार गुणोंवाला।

चतुर्जातक—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार इलायची (फल), चारबीनी (खाल), तेजपत्ता (पत्ता), और नागकेसर (फूल) इन चार पदार्थों का समूह।

चतुर्थीवत्—वि० [सं०] चौरागवेर्वा ।

चतुर्थीवसि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौरागवे की संख्या ।

चतुर्थीवसि^२—वि० चौरागवे ।

चतुर्थी^१—वि० [सं०] चार की संख्या पर का । चौथा । जैसे,—चतुर्थ परिच्छेद ।

चतुर्थी^२—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तिताला ताल ।

चतुर्थीक—संज्ञा पुं० [सं०] वह बुलार जो हर चौथे दिन आए । चौथिया बुलार ।

चतुर्थीकाल—संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्र के अनुसार वह काल जिसमें भोजन करने का विधान है । दोपहर या उसके लगभग का समय । भोजन का समय ।

चतुर्थीभक्त—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'चतुर्थी काल' ।

चतुर्थीभाज—वि० [सं०] वह जो प्रजा के उत्पन्न किए हुए भूल भावि में से कर स्वरूप एक चौथाई अंश ले ले । राजा ।

विशेष—मनु के मत से कोई विशेष आवश्यकता या आपत्ति आ पड़ने के समय, केवल प्रजा के हितकर कामों में ही लगाने के लिये, राजा को अपनी प्रजा से उसकी उपज का एक चौथाई तक अंश लेने का अधिकार है ।

चतुर्थीश—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्थ + अंश] १. किसी चीज के चार-भागों में से एक । चौथाई । २. चार अंशों में से एक अंश का अधिकारी । एक चौथाई का मालिक ।

चतुर्थीशी—वि० [सं० चतुर्थ + अंशिन] चौथा भाग पानेवाला [को०] ।

चतुर्थीश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] सत्यास ।

चतुर्थीकर्म—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्थीकर्मन्] १० 'चतुर्थी' ।

चतुर्थीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक का एक परिमाण जो चार कण के बराबर होता है । पल ।

चतुर्थी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी पक्ष की चौथी तिथि । चौथ ।

विशेष—(क) इस तिथि की रात, और किसी किसी के मत से रात के पहले पहर में अध्ययन करना शास्त्रों में निषिद्ध बताया गया है । (ख) भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को चंद्रमा के वर्णन करने का निषेध है । कहते हैं, उस दिन चंद्रमा के वर्णन करने से किसी प्रकार का मिथ्या कलंक या अपवाद आदि लगता है ।

२. वह विशिष्ट कर्म जो विवाह के चौथे दिन होता है और जिससे पहले वरवधू का संयोग नहीं हो सकता । गंगा प्रभृति नदियों और ग्रामदेवता आदि का पूजन इसी के अंतर्गत है । ३. एक रसम जिसमें किसी प्रेयस्कर्म करनेवाले के यहाँ धृत्य से चौथे दिन बिरादरी के लोग एकत्र होते हैं । चौथा । ४. एक तांत्रिक मुद्रा । ५. संस्कृत में व्याकरण में संप्रदान में लगनेवाली विभक्ति [को०] ।

चतुर्थी^२—संज्ञा पुं० तत्पुरुष समास का नेद जिसमें संप्रदान की विभक्ति लुप्त रहती है [को०] ।

चतुर्थी क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १० 'चतुर्थी'—३ [को०] ।

चतुर्थी तत्पुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'चतुर्थी' ।

चतुर्थीविद्या^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौथा वेद । अथर्ववेद । उ०—किंतु हमारी विशिष्ट दृष्टि में चतुर्थी विद्या अर्थात् अथर्ववेद की कम महत्वपूर्ण नहीं है ।—सं० दरिया, पृ० ५५ ।

चतुर्दश^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर । २. कार्तिकेय की सेना । ३. एक राजस का नाम ।

चतुर्दश^२—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत हाथी, जिसके चार दाँत हैं ।

चतुर्दश^३—संज्ञा पुं० [सं०] चौबह ।

चतुर्दश^४—वि० १० 'चतुर्दश' । उ०—धूरिहि ते यह तन भयो, धूरिहि सों ब्रह्मांड । लोक चतुर्दश धूरि के सत दीप नवखंड ।—नंद० ग्रं०, पृ० १७६ ।

चतुर्दशपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंबेजी की एक विशेष प्रकार की कविता, जिसमें चौबह चरण होते हैं । उक्त भाषा में इसे सानेद कहते हैं ।

चतुर्दशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पक्ष की चौदहवीं तिथि । चौदस ।

चतुर्दिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] चारो दिशाएँ ।

चतुर्दिक^२—क्रि० वि० चारो ओर ।

चतुर्दिश^१—संज्ञा पुं० [सं०] चारो दिशाएँ ।

चतुर्दिश^२—क्रि० वि० चारो ओर ।

चतुर्वीक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार डंडों का हिडोला या पालना ।

२. वह सवारी जिसे चार आदमी कंधों पर उठावें । जैसे,—पालकी, मालकी, आदि ।

३. चंडोल नाम की सवारी ।

चतुर्दल^१—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्दल] जिसमें चार दल या चार पंजुरिया हों । उ०—शिव प्रथम चक्र आचार जानि । तहाँ अक्षर चारि चतुर्दलानि ।—सुंदर० ग्रं०, भाग १, पृ० ४५ ।

चतुर्द्वार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह घर जिसमें चारो ओर दरवाजे हों ।

२. चार दरवाजेवाला घर [को०] ।

चतुर्धा^१—अव्य० [सं०] चार तरह से । चार प्रकार से । उ०—भी कृष्ण भगवान् का लोक एक होकर भी लीला नेद से चतुर्धा प्रकाशित होता है ।—पोद्दार अभिनय, पृ० ६१७ ।

चतुर्धाम^१—संज्ञा पुं० [सं०] चारो धाम । चार मुख्य तीर्थ । वि० १० 'धाम' ।

चतुर्धाहु^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. निब । महादेव । २. विष्णु ।

चतुर्धाहु^२—वि० चार मुजाओंवाला [को०] ।

चतुर्धिस^१—वि० [सं० चतुर्धिस] चौबीस । उ०—चतुर्धिस अघ्याय यह कोउ चतुर सुनिहै जु । जै दिन बीतै मनसुने, तिन की चिर बुनिहै जु ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०७ ।


चतुर्बीज^१—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'चतुर्बीज' [को०] ।

चतुर्भद्र^१—संज्ञा पुं० [सं०] अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों का समुच्चय ।

चतुर्भद्र^२—वि० [सं०] [स्त्री० चतुर्भद्रा] चार मुजाओंवाला । जिसमें चार मुजाएँ हों ।

चतुर्भाष^१—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०] ।

चतुर्भुज—संज्ञा पुं० १. विष्णु । २. वह लेख जिसमें चार मुजार्हें और

चार कोण हों । जैसे, 

बी०—सब चतुर्भुज = चार मुजार्हों वाला वह लेख जिसमें चार समकोण हों और जिसकी चारो मुजार्हें समान हों ।

जैसे,— 

चतुर्भुजा—संज्ञा बी० [सं०] १. एक विशिष्ट देवी । २. गायत्री रूप-धारिणी महाशक्ति ।

चतुर्भुजी—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्भुज + ई (प्रत्यय)] १. एक वैष्णव संप्रदाय जिसके आचार व्यवहार आदि रामानंदियों से मिलते जुलते होते हैं ।

विशेष—मोग कहते हैं, इस संप्रदाय के प्रवर्तक किसी साधु ने एक बार बार मुजार्हें बारण की थीं, इसी से उसके संप्रदाय का नाम चतुर्भुजी पड़ा ।

२. इस संप्रदाय का अनुयायी ।

चतुर्भुजी—वि० चार मुजार्होंवाला । जैसे,—चतुर्भुजी मूर्ति ।

चतुर्मास—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्मास] बरसात के चार महीने । अथाह, सावन, भादों और कुषार का बीमास ।

चतुर्मुल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का चौताला ताल जिसमें कम से एक लघु (लघु की एक मात्रा), एक गुरु (गुरु की दो मात्राएँ), एक लघु (लघु की एक मात्रा) और एक प्लुत (प्लुत की तीन) मात्रा होती है । इसका बोल यह है—ताह । तकि तकि ताहः तकि तकि । तकि तकि दिभि गन बोहे । २. पुरुष में एक प्रकार की वेष्टा । ३. विष्णु ।

चतुर्मुख^२—वि० [बी० चतुर्मुखी] जिसके चार मुख हों । चार मुंहवाला ।

चतुर्मुख^३—क्रि० वि० चारों ओर ।

चतुर्मुखि—संज्ञा पुं० [सं०] विराट्, सूनात्मा, अष्टाकृत और तुरीय इन चारों अवस्थाओं में रहनेवाला, ईश्वर ।

चतुर्मेध—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने चार बलिदान किए हों । चारों के नाम ये हैं—अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध तथा पितृमेध [बी०] ।

चतुर्गुण—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'चतुर्गुणी' [बी०] ।

चतुर्गुणी—संज्ञा बी० [सं०] चारों गुणों का समय । उत्तना समय जितने में चारों गुण एक बार बीत जायें । ४३२०००० वर्ष का समय । चौत्रुगी । चौकड़ी ।

चतुर्बन्ध—संज्ञा पुं० [सं०] चार मुँहवाले, ब्रह्मा ।

चतुर्बर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] अर्थ, धर्म काम और मोक्ष ।

चतुर्बर्ग्य—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और बूढ़ ।

चतुर्बाही—संज्ञा पुं० [सं०] चार ओझों की गाड़ी । चौकड़ी ।

चतुर्बिध^१—वि० [सं०] चार रूपोंवाला । चोतरफा [बी०] ।

चतुर्बिध^२—क्रि० वि० चार रूपों में [बी०] ।

चतुर्बिरा^१—संज्ञा पुं० [सं०] एक दिव में होनेवाला एक प्रकार का याग ।

चतुर्बिरा^२—वि० चौबीसवाँ ।

चतुर्बिराति—संज्ञा बी० [सं०] चौबीस ।

चतुर्बिध—वि० [सं०] चारो वेदों का माता [बी०] ।

चतुर्बिधा^१—संज्ञा बी० [सं०] चारो वेदों की विधा ।

चतुर्बिधा^२—चारो वेद जाननेवाला ।

चतुर्बीज—संज्ञा पुं० [सं० चतुर् + बीज] काला जीरा, अजवाइन, मेथी और हालिम इन चार प्रकार के दानों या बीजों का समूह । —(वैद्यक) ।

चतुर्बीर—संज्ञा पुं० [सं०] चार दिनों में होनेवाला एक प्रकार का सोम याग ।

चतुर्वेद^१—संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर । ईश्वर । २. चारो वेद ।

चतुर्वेद^२—वि० चारों वेद जाननेवाला ।

चतुर्वेदी—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्वेदिन्] १. चारो वेदों का जाननेवाला पुरुष । २. ब्राह्मणों की एक जाति ।

चतुर्व्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार अनुज्यों अथवा पदायों का समूह । जैसे,—(क) राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न । (ख) कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध । (ग) संसार, संसार का हेतु, मोक्ष और मोक्ष का उपाय । २. विष्णु ।

विशेष—विष्णुसहस्रनाम के माध्यकार के अनुसार विष्णु के शरीरपुरुष, अंबपुरुष, वेदपुरुष और महापुरुष ये चार रूप हैं । और पुराणों के अनुसार ब्रह्मा ने सृष्टि के कार्यों के लिये बालु-देव, संकषण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चार रूपों में अवतार लिया था; इसलिये उन्हें चतुर्व्यूह कहते हैं ।

३. योग शास्त्र । ४. चिकित्सा शास्त्र ।

चतुर्हाय्य, चतुर्हायन—वि० [सं०] १. चार वर्षों का । २. चार बरसों में पैदा हुआ [बी०] ।

चतुर्होता—संज्ञा पुं० [सं०] चतुर्होतृ । वेद में वर्णित चारो होम करने-वाला व्यक्ति [बी०] ।

चतुर्होत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर । २. विष्णु ।

चतुर्ल—संज्ञा पुं० [सं०] स्थापन करनेवाला । स्थापक ।

चतुरशक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चक्र जिसके अनुसार तांत्रिक लोग वर्षों के शुभ या अशुभ होने का विचार करते हैं ।

चतुरचत्वारिंश—वि० [सं०] चौदावीसवाँ ।

चतुरचत्वारिंशत्—संज्ञा बी० [सं०] चौदावीस की संख्या ।

चतुरचरण^१—वि० [सं०] १. चार पैरोंवाला । २. चार विभागों या भागोंवाला [बी०] ।

चतुरचरण^२—संज्ञा पुं० जानवर [बी०] ।

चतुश्चंद्र—संज्ञा पुं० [सं० चतुश्चंद्र] १. वह जिसके चार सींग हों । २. पुराणों के अनुसार कुम्भीय के एक वर्षवर्षत का नाम ।

चतुष्क—१. वि० [सं०] जिसके चार संघ या पार्श्व हों । चौपट ।

चतुष्क^१—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का घर । २. एक प्रकार की झड़ी या झंझ ।

चतुष्कर, **चतुष्करी**—संज्ञा पुं० [सं०] वह यंत्र जिसके चारो पैरों के आगे च भाग हाथी के पैर के समान हों । पंजेवाले जानवर ।

चतुष्कर्ण—वि० [सं०] १. (वात) जिसे दो आदमी जानते हों । २. (वात) जो गुप्त न हो (को०) ।

चतुष्कर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की धनुषी एक मातृका का नाम ।

चतुष्कल—वि० [सं०] चार कलाओंवाला । जिसमें चार भाग हैं । जैसे,—छंदःशास्त्र में चतुष्कल गण, संगीत में चतुष्कल ताल ।

चतुष्काष्ठ—अव्य० [सं०] चारो ओर से । चारो तरफ से (को०) ।

चतुष्की—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुष्करिणी का एक भेद । २. ससहरी । ३. चौकी ।

चतुष्कोण—१. [सं०] चार कोणवाला । चौकोर । चौकोना ।

चतुष्कोण^२—वि० संज्ञा पुं० वह जिसमें चार कोण हों ।

चतुष्टय—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार की संख्या । २. चार चीजों का समूह । जैसे,—अन्तःकरण चतुष्टय । ३. जन्मकुंडली में चंद्र, लग्न और लग्न से सातवां तथा दसवां स्थान ।

चतुष्टोम—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार स्तोमवाला एक यज्ञ । २. अश्व-मेध यज्ञ का एक भंग । ३. वायु ।

चतुष्पंचाश—वि० [सं० चतुष्पञ्चाश] जीवनवा ।

चतुष्पंचाशत्—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुष्पञ्चाशत्] जीवन की संख्या या भंग ।

चतुष्पत्नी—संज्ञा पुं० [सं०] सुसना नाम का साव । वि० दे० 'चतुष्पत्नी' ।

चतुष्पथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. चौराहा । चौमुहानी । २. ब्राह्मण ।

चतुष्पथरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

चतुष्पद^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार पैरोंवाला जीव या पशु । चौपाया ।

यौ०—चतुष्पदवैकृत ।

२. ज्योतिष में एक प्रकार का करण । फलित ज्योतिष के अनुसार इस करण में जन्म लेनेवाला दुराचारी, दुर्बल और निर्धन होता है । ३. वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक इन चारों का समूह ।

चतुष्पद^२—वि० चार पदोंवाला । जिसमें अथवा जिसके चार पद हों ।

चतुष्पदवैकृत—संज्ञा पुं० [सं०] एक जाति के चौपायों का दूसरी जाति के चौपायों से गमन करना, उनको स्तनपान कराना अथवा इसी प्रकार का छोड़ कोई नियमविरुद्ध कार्य करना ।

विशेष—फलित ज्योतिष में इस प्रकार की क्रिया को अशुभ और अशंसक माना है; और ऐसा करनेवाले पशुओं के त्याग का विधान किया गया है ।

चतुष्पदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौपैय छंद, जिसका प्रत्येक चरण ३० मात्राओं का होता है जैसे,—ये प्रगट कृपाला, दीन दयाला, कीलक्या हितकारी । हृषित मृत्युहारी, युनिमनहारी, अदभुत कप निहारी ।—तुलसी ।

चतुष्पदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चौपाई छंद जिसके प्रत्येक चरण में १५ मात्राएं और अंत में छंद छंद होते हैं । जैसे,—राम

रमाप्रति तुम सज देव । सम दिशि देखो यह पथ देव । २. चार पद का गीत ।

चतुष्पत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटी अमलोनी । २. सुसना नामक साव जो पानी के किनारे होता है और जिसमें चार चार पत्तियां होती हैं ।

चतुष्पाटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी ।

चतुष्पाठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्याधियों के पढ़ने का स्थान । पाठशाला ।

चतुष्पाणि^१—वि० [सं०] जिसके चार हाथ हों । चार हाथोंवाला ।

चतुष्पाणि^२—संज्ञा पुं० विष्णु ।

चतुष्पाद—वि० [सं०] दे० 'चतुष्पद' (को०) ।

चतुष्पार्श्व—वि० [सं०] चोतरफा । चौपहला । (को०) ।

चतुष्पक्ष—वि० [सं०] जिसमें चार फल या पहल हों । चौपहला ।

चतुष्फला—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवला नामक औषधि ।

चतुस्तन^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] चार स्तनोंवाली, गाय ।

चतुस्तन^२—वि० चार स्तनोंवाली (को०) ।

चतुस्तना^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चतुस्तन' (को०) ।

चतुस्तना^२—वि० दे० 'चतुस्तन' (को०) ।

चतुस्तनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चतुस्तना' (को०) ।

चतुस्तनी^२—वि० दे० 'चतुस्तना' (को०) ।

चतुस्ताल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चौताला ताल जिसमें तीन द्रुत और एक लघु होता है । इसका बोल यह है—
(१) धा० धरि० त्रिभि० धरि० धा० अथवा (२) धा० त्रिभि० गण धो ई ।

चतुस्त्रिंश—वि० [सं०] चौतीसवा ।

चतुस्संप्रदाय—संज्ञा पुं० [सं० चतुस्सम्प्रदाय] वैष्णवों के चार संप्रदाय श्री, माध्व, रूद्र और सनक ।

चतुस्त्रिंशत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौतीस की संख्या या भंग ।

चतुस्सन—संज्ञा पुं० [सं०] १. सनक, सनत्कुमार, सनंदन और सनातन ये चारो ऋषि । २. विष्णु ।

चतुस्सम—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक औषध जिसमें लौंग जीरा, अजवाइन और हड़ सम भाग होते हैं । यह पाचक, भेदक और आमशूलनाशक होती है । २. एक गंधद्रव्य जिसमें २ भाग कस्तूरी, ४ भाग चंदन, ३ भाग कुंकुम और ३ भाग कपूर का पड़ता है ।

चतुस्सीमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चौहद्दी (को०) ।

चतुस्सूत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यासदेव कृत वेदांत के पहले चार सूत्र जो बहुत कठिन हैं और जिनपर भाष्यकारों का बहुत कुछ मतभेद है । चतुः सूत्रों पर भाषाचार्य शंकर का भाष्य सर्वप्रसिद्ध है । ये चारों सूत्र पढ़ने के लिये लोग प्रायः बहुत अधिक परिश्रम करते हैं ।

चतुरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] चार रात्रियों में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ ।

चतुर्ना^१—वि० च० [हि० चेताना] चेतानवी देना । चतुर्

करना । चना । उ०—जो उस दल चरु रस-वीर, उपरि है वन करे चनीना ।—कुंवर प्र०, भा० २, पृ० ८६२ ।

चरु०—संज्ञा पुं० [सं० चरु] दे० 'चरु' । उ०—सुकी सरिस सुक उज्जरपो, भरपो नारि सरि चरु । समय सजोगिय संगरे, मन मे मंडित हित ।—पृ० रा०, १४१२ ।

चरु०—संज्ञा पुं० [सं० चरु] दे० 'चरु' या 'चार' ।

चौ०—चरमास = चार महीना । चौरमास । उ०—दुख चर मास बाधियो बिलगी, भोग्यई सो लिखत भवेस ।—बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० १०५ ।

चरुगुल०—संज्ञा पुं० [सं० चरुगुल] राम के सबसे छोटे भाई । चरुगुल । उ०—प्रथम बरसंत कहो याहो सो, भरत चरुगुल भाई । वरसत सीता और कोसल्या, सिया लखमन सहार्द ।—चट०, पृ० १६६ ।

चरु०—वि० [सं० चरु] दे० 'चरु' । उ०—पुनो होइ राज सुराज बिचारी । इक रूप सारं विषं चरुनारी ।—पृ० रा०, २१२३४ ।

चरुवरा०—सं० पुं० [सं० चरुवरा] दे० 'चरुवरा' । उ०—चरुवरा लोक सीला बरनन करे । रचा वैराट जग बिष बनावा ।—पुरसी क०, पृ० १५ ।

चरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. चौरमास । २. वह स्थान जहाँ मिल मिल देवों से लोग आकर रहें । ३. होम के लिये साफ किया हुआ स्थान । ४. चार रवों का समूह (चौ०) ।

चौ०—चरुवरा = चौराहे का बुल ।

चरुवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] काविकेय को एक मातृका का नाम ।

चरुवारी—वि० [सं०] चालीसवाँ ।

चरुवारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चालीस की संख्या या शंक ।

चरुवरा—संज्ञा पुं० [सं०] १. होमकुंड । २. कुल नाम की वास । ३. गर्भ । ४. वेदी । चरुवरा ।

चरुवरा—संज्ञा पुं० [हि० चरु] दे० 'चार' ।

चरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपूर २. चंद्रमा । ३. हाथी । ४. साँप ।

चरु—संज्ञा स्त्री० [क्रा० चरु] १. चार । २. किसी पातु का संज्ञा चौड़ा चौकीर पदार ।

क्रि० प्र०—काटना ।—जड़ना ।—जड़ना ।

३. नदी आदि के तेज बहाव में पानी का वह बहता हुआ बंध जिसका ऊपरी भाग कुछ विशेष अवस्थाओं में बिलकुल समतल या चार के समान हो जाता है ।

विशेष—इस प्रकार की चार में जरा भी लहर नहीं उठती और यह चार बहुत ही भयानक समझी जाती है । यदि नाव या मनुष्य किसी प्रकार इस चार में पड़ जाय, तो वो उसका निकलना बहुत कठिन हो जाता है ।

मुहा०—चर पड़ना = नदी के बहते हुए पानी के कुछ धंध का एकत्र समतल हो जाना ।

विशेष—दे० 'चार' ।

४. एक प्रकार की तोप । उ०—गुरवा चर गंज गुबारे । लिए जगाव तीर कस मारे ।—हम्मीर०, पृ० ३० ।

विशेष—इसमें बहुत सी गोलीयाँ लपका लोहे के टुकड़े एक साथ होय में भरकर बसाते थे और यह चर कहलाती थी ।

चनक०—संज्ञा पुं० [सं० चनक] चना । उ०—जानस है चारो फल चार ही चनक की ।—तुलसी (शब्द०) ।

चनक—संज्ञा स्त्री० [हि० चनकना] चनकने का भाव या स्थिति ।

चनक—वि० [सं० चन] १. क्षणिक । २. झुलना और बंद होना । उ०—चनक भूँद लग भूग सब चकें । मदन गुपाल केलि रस छकें ।—घनानंद, पृ० २८६ ।

चनकन—संज्ञा पुं० [दे०] शलगम ।

चनकट०—संज्ञा स्त्री० [दे०] कपड़ । उ०—तहें हने एकन को जु मुठिका हनी एकन चनकट ।—पद्माकर प्र०, पृ० १४६ ।

चनकना—क्रि० प्र० [प्रनु०] दे० 'चनकना' । उ०—बिरह भाँच नहि सहि सकी सखी भई बेताब । कनक गई सीसी गयो छिरकत छनकि गुलाब ।—भू० सत० (शब्द०) ।

चनकामल—संज्ञा पुं० [सं० चनकामल] दे० 'चनकामल' ।

चनकना—क्रि० प्र० [हि० चनकना] लफा होना । चिढ़ना । चिटकना । उ०—श्री हरिदास के स्वामी श्यामा कुंजबिहारी सो प्यारी जब तू बोलत चनक चनक ।—हरिदास (शब्द०) ।

चनचन—संज्ञा पुं० [प्रनु०] एक कौड़ा जो तमाखू की फसल को हानि पहुँचाता है । यह तमाखू के पत्तों की नसों में छेब कर देता है जिससे पत्ते सूख जाते हैं । इसे चनकना भी कहते हैं ।

चनचनाना—क्रि० प्र० [हि०] १. चिढ़ना । लफा होना । कुद होना । २. कलह करना । कोष प्रकट करना ।

चनन०—संज्ञा पुं० [सं० चनन] चंदन । संदल । उ०—प्रोठकी चनन केवरिया जोहौं नाट । उड़ौ सोनबिरैया पींजर हाथ ।—रहीम (शब्द०) ।

चनवर०—संज्ञा पुं० [दे०] कीर । मास ।

चनसित—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ । महान् ।

विशेष—वैदिक काल में संग्राम के लिये नाम के पहले इस शब्द को लगाकर बाह्यणों को संबोधित करते थे ।

चना—संज्ञा पुं० [सं० चनक] चैती फसल का एक प्रधान अन्न जिसका पोषा हाथ बेड़ हाथ तक ऊँचा होता है ।

विशेष—इसकी छोटी कोमल पत्तियाँ कुछ लटाई और लार लिए होती हैं और खाने में बहुत स्वादिष्ट होती हैं । इस अन्न के दाने प्रायः गोल होते हैं और इसके ऊपर का छिलका उतार देने पर अंदर से दो बालें निकलती हैं, जो और बालों की तरह उबालकर खाई जाती हैं । यह अनेक प्रकार से खाने के काम आता है । ताजा चना लोग कच्चा भी खाते हैं; और सूखा चना भाड़ में सूतकर खाया जाता है । इससे कई तरह की मिठाईयाँ और खाने की नमकीन चीजें बनती हैं । यह बहुत बलवर्धक और पुष्टिदायक समझा जाता है, पर कुछ गुल्पाक होता है । भारत में यह चोड़ों और दूसरे चौपायों को बलिष्ठ करने के लिये दिया जाता है । वैद्यक में इसे मधुर, रूखा और मेह, कृमि तथा रक्तपित्त नाशक, शीतल, रजि तथा वनकारक माना गया है । इसे दूध, खीरे और रहिया भी कहते हैं ।

पर्या०—हरिर्नभ । चरु । सुगंध । कुम्हलचुक् । बालमोक्ष ।
राजिमक्ष । कंठुकी ।

घौ०—बना बबेना = बूझा सूझा मोहन ।

मुहा०—बने का चारा मरना = इतना दुर्बल होना कि बहुत जरा
सी चोट से मर जाय । नाकों बने बबबाना = बहुत रंग करना ।
बहुत विक या हिरान करना । नाकों बने बबाना = बहुत
हिरान होना । लोहे का बना = अत्यंत कठिन काम । दुष्कर
कार्य । विकट कार्य । लोहे का बना बबाना = अत्यंत कठिन
कार्य करना ।

बनासार—संज्ञा पु० [हि० बना + सार] बने के बंठलों और पतियों
आदि को जलाकर निकाला हुआ सार ।

बनाब—संज्ञा स्त्री० [सं० चन्द्रभागा] पंजाब की पाँच नदियों में से एक ।

विशेष—यह लहाब के पर्वतों से निकलकर सिंध में मिलती है ।
यह प्रायः ६०० मील लंबी है ।

बनार—संज्ञा पु० [फ्रा० बनार] एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़
जो उत्तर भारत, विशेषतः काश्मीर में बहुत अधिकता से
होता है ।

विशेष—इसके पत्ते पंजे के आकार के होते हैं और जाड़े में
बिलकुल झड़ जाते हैं । इसकी लकड़ी पीलापन लिए सफेद
रंग की और बहुत मजबूत होती है । यह बहुत देर में जलती
है और मेज कुर्सियाँ आदि बनाने के काम आती है ।

बनियारी—संज्ञा स्त्री० [?] एक जलपक्षी जो समर झील के
निकट और बरसा में अधिकता से पाया जाता है ।

विशेष—इसके पर बहुत सुंदर होते हैं और नेमों की टोपियों
में लगाने तथा गुल्लबंद बनाने के काम में आते हैं । इसे
'हरगोला' भी कहते हैं ।

बनुअरी—संज्ञा स्त्री० [हि० बनारी] दे० 'बनोरी' ।

बनेठ—संज्ञा पु० [हि० बना + एठ (प्रत्य०)] १. एक प्रकार की घास ।

विशेष—इसकी पत्ती बने की पत्ती से मिलती जुलती होती है ।
यह बहुधा पशुओं की भोजन में काम आती है ।

२. इस घास से बनी हुई भोजन जो प्रायः पशुओं को दी
जाती है ।

बनोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० बाँब] वह भेड़ जिसके सारे शरीर के रोएँ
सफेद हों । —(गढ़ेरिया) ।

बन्ना ①—संज्ञा पु० [सं० बरण] दे० 'बरण' । उ०—डिगे बंन
ब्रह्मंड दिगपाल हस्ती । बरा बन्न भारं तु लाजे मनुली ।
पृ० रा०, २।१८४ ।

बन्ना ②—संज्ञा पु० [सं० बन्दन, प्रा० बंदन] दे० 'बंदन' । उ०—
बन्ना केसर बरब किया उच्छव मछरीका । —रा० २०,
पृ० ३५८ ।

बन्ना ③—संज्ञा पु० [सं० बन्नक] दे० 'बाँद' उ०—बन्नी रात का
बन्ना पड़ मेरी म्हाड़ पो । बिजली तेरी दाद साँद करत बात ।
—दक्खिनी०, पृ० ३८६ ।

बन्नी ④—संज्ञा स्त्री० [हि० बनिनी या बाँबनी] दे० 'बाँबनी' ।
उ०—बन्नी रात का बन्ना पड़ मेरी म्हाड़ी पो । —दक्खिनी०
पृ० ३८६ ।

बन्हारिन—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की जंगली चिरिया ।

बप—संज्ञा स्त्री० [दे०] बोली हुई वस्तु । जैसे,—बूने का बप ।

बपकन—संज्ञा स्त्री० [हि० बपकना] १. एक प्रकार का अंग ।
अंगरखा । २. लोहे या पीतल का एक साज जिसे किवाड़,
संझुक आदि में इसलिये लगाते हैं, जिसमें बंद संझुक या किवाड़,
के पत्ते अटके रहें और अटके आदि से जुल न सकें । इसी
के कोड़े में ताला लगाया जाता है । ३. एक छोटी कील जो
हल की हरिष में आगे की ओर लगी होती है ।

बपकना—क्रि० प्र० [हि० बपकना] दे० 'बपकना' ।

बपका—संज्ञा पु० [हि० बपकना] एक प्रकार का कीड़ा ।

बपकाना—क्रि० प्र० [हि० बपकाना] दे० 'बपकाना' ।

बपकलारा—संज्ञा स्त्री० [तु०] १. तलवार का युद्ध । २. अंग । ३.
लड़ाई झगड़ा । ४. स्थान की कमी । ५. भीड़ । ६. बिकत ।
अवचन । कठिनाई (को०) ।

बपकुलिश—संज्ञा स्त्री० [तु०] १. कठिन स्थिति । अवचन । फेर ।
कठिनाई । अंकट । अंडस ।

क्रि० प्र०—में पड़ना ।

२. कसामसी । बहुत झीझड़ा । अंडस ।

बपट—संज्ञा पु० [सं० या अनु०] १. बपत । तमाचा । २. दे०
बपेट (को०) ।

बपटना—क्रि० प्र० [हि० बपटना] दे० 'बपकना' या 'बिमटना' ।

बपटा—क्रि० [हि० बपटा] दे० 'बपटा' ।

बपटा गाँजा—संज्ञा पु० [हि० बपटा + गाँजा] दबाया हुआ गाँजा ।
बालूकर गाँजा ।

बपटाना—क्रि० प्र० [हि० बपटना का प्रे० रूप] दे० 'बपकाना'
या 'बिमटाना' ।

बपटी—क्रि० स्त्री० [हि० बपटी] दे० 'बपटी' ।

बपटी—संज्ञा स्त्री० [हि० बपटा] १. एक प्रकार की किलनी जो
बीपाये को लगती है । २. ताली । बपोड़ी । ३. योनि । भग ।

मुहा०—बपटी खेलना = दो स्त्रियों का परस्पर योनि मिलाकर
रगड़ना । बपटी लगाना = दे० 'बपटी खेलना' ।

बपड़कनातिया—क्रि० [हि० बपरकनातिया] दे० 'बपरकनातिया' ।

बपड़गट्ट—क्रि० [हि० बपट + गट्ट] प्राप्त का मारा ।

बपड़गट्ट—क्रि० युत्थमयुत्था ।

बपड़बपड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. वह शब्द जो कुराँ के मुँह से
जाते या पानी पीते समय निकलता है ।

क्रि० प्र०—करना । —होना ।

बपड़ा—संज्ञा पु० [हि० बपटा] १. साफ की हुई लाख का पत्तर ।
साफ की हुई काम में लाने योग्य लाख । २. लाल रंग का
एक कीड़ा या फतिगा जो प्रायः पालानों तथा सीढ़ लिए हुए
गंदे स्थानों में होता है । २. कोई पिटी हुई या बिपटी वस्तु ।
पत्तर ।

बपड़ा लेना—क्रि० प्र० [हि० बपड़ा] मस्तूल के जोड़ पर रस्सी
बाँधना । —(लख०) ।

अपघ्नी—संज्ञा स्त्री० [हि० अपघ्नी] १. तलती। पटिया। २. १० 'अपघ्नी'।

अपघ्न—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० अपघ्न] १. तमाचा या पण्ड को सिर या गाल पर मारा जाय।

विशेष—कुछ लोग अपघ्न केवल उसी पण्ड को कहते हैं, जो सिर पर लगे।

क्रि० प्र०—जमाना।—जमाना।—बैठना।—मारना।—जमाना।
उ०—बैठती घान घान से तो क्यों। बात बैठी अगर अपघ्न बैठे।—पुनते०, पृ० ५२।

मुहा०—अपघ्न काटना या घरना=अपघ्न मारना।

घी०—अपघ्नगाह=लोपड़ा। गुदी।

२. अपघ्न। हानि। नुकसान। जैसे, बैठे बैठाए चार अपघ्न का अपघ्न बैठ गया।

क्रि० प्र०—पड़ना।—बैठना।

अपघ्नियाना—क्रि० सं० [हि० अपघ्न] अपघ्न लगाना। उ०—पांच हिंदुओं के सबारों ने मुझे पकड़ लिया और तुरक तुरक करके लगे अपघ्नियाने।—भारतेन्दु प्र०, भा० १, पृ० ५२५।

अपघ्नस्त—संज्ञा पुं० [फ्रा०] वह छोड़ा जिसका घगला दाहिना पैर सकेर हो।

अपघ्नक—संज्ञा स्त्री० [हि० अपघ्नी] १० 'अपघ्नी'। उ०—कूले तले स्थल है कीनी। गोड़े ऊपर अपघ्नक दीनी।—प्राण०, पृ० २४।

अपघ्ना—क्रि० प्र० [सं० अपघ्न (= कूटना, कुचलना)] १. दबना। दाब में पड़ना। कुचल जाना। उ०—अपघ्न कंचला की बमक होरा दमक हिराय। हाँसी हिमकर जोति की होति हास तिय पाय।—राम० चर्म०, पृ० २४२। २. लज्जा से गड़ जाना। लज्जित होना। सिर नीचा करना। शरमाना। झपटना। झप जाना। चौपट होना। नष्ट होना।

अपघ्नी—संज्ञा स्त्री० [हि० अपघ्नी] १. छिछला कटोरा। कटोरी।

मुहा०—अपघ्नी भर पानी में डूब मरना=लज्जा के मारे किसी को मुँह न दिखाना।

२. एक प्रकार का कमंडल जो दरियाई तारियल का होता है।

३. वह लकड़ी जिसमें गेदरिए ताना बाँधकर कंबल की पट्टियाँ बुनते हैं। ४. हाँड़ी का बरकन।

मुहा०—अपघ्नी घाटना=बहुत छोड़ा घंश पाकर रह जाना।

५. घुटने की हड्डी। अपघ्नी।

अपघ्ननी—संज्ञा स्त्री० [हि० अपघ्नी] लोहारों का एक औजार जिससे बालू पीटकर फैलाया जाता है।

अपघ्ननातिया—वि० [हि० अपघ्ननाती] १० 'अपघ्ननाती'।

अपघ्ननाती—वि० [हि० अपघ्न + तु० कनात + हि० ई (प्रत्य०)]
कुसामद करनेवाला।

अपघ्नगट्ट—वि० [हि० अपघ्न + गट्ट] १. सत्यानाशी। चौपटा।

२. धाकत का मारा। घमामा। ३. गुल्बमगुल्ब। एक में उसला हुआ।

अपघ्ना—क्रि० सं० [धनु० अपघ्न] १. किसी मीली या चिप-चिपी वस्तु को दूसरी वस्तु पर फैलाकर लगाना। वि० १० 'अपघ्ना'। उ०—ऊधो जाके माथे भागु। धबलन योव सिक्कावन आए बेरिहि अपघ्न सोहागु।—सूर (शब्द०)। २. परस्पर मिलाना। सानना। शोतप्रोत करना। उ०—विषय चित्त होउ है माया। दोउ अपघ्न ज्यों तइवर छाया। सूर (शब्द०)। † ३. भाग जाना। खिसक जाना।

अपघ्ना—क्रि० सं० [सं० अपघ्न] तेजी करना। जल्दी करना। उ०—सरल बक्रांत पंचग्रह अपघ्न न चितवत काहु। तुलसी सूखे सूर ससि समय बिडंबत राहु।—तुलसी (शब्द०)।

अपघ्नी—संज्ञा स्त्री० [श्रा०] मुजरा। गाना।—(वेण्याघों की बोली)।

अपघ्नी—संज्ञा पुं० [हि० अपघ्नी] १० 'अपघ्नी'।

अपघ्नी—वि० कोई बात कहकर या कोई काम करके उससे इनकार करनेवाला। मुकर जानेवाला। झूठा।

अपघ्नी—अव्य० [हि० अपघ्न] हठात्। मान न मान। स्वाहमस्वाह। जैसे हो तैसे। उ०—देखा भाला तोपची अपघ्नी सैयद होय।

अपघ्नी—क्रि० सं० [श्रा०] झूठा बनाना। झुठलाना।

अपघ्नी—क्रि० सं० [हि०] बहकाना। उ०—चोरी करि अपघ्नवत सीहैन काहे को इतनी फाँफट फाँकत।—बनारस, पृ० ३३६।

अपघ्नी—संज्ञा स्त्री० [हि० अपघ्नी] १. पीतल प्रादि बाजुओं की एक छोटी पट्टी जिसे पेटी या परतले में लगाकर सिपाही, चौकीदार, घरदली आदि पहनते हैं और जिसपर उनके मालिक, कार्यालय प्रादि के नाम खुदे रहते हैं। बिल्ला। बैज। २. मुलम्मा करने की कलम। ३. मालखंम की एक कसरत जो दुबगली के समान होती है। दुबगली में पीठ पर से बेंत आता है और इसमें छाती पर से आता है। ४. बड़इयों के धारे के दाँतों का दाहिने ओर बाएँ झुकाव।

विशेष—बड़ई धारे के कुछ दाँतों को दाहिनी ओर और कुछ को बाईं ओर मोड़ा मोड़ देते हैं, जिसमें धारे के पत्ते की मोटाई से चिराब के दरज की मोटाई कुछ अधिक हो और लकड़ी धारे को पकड़ने न पावे।

५. कुरतों के मोड़े पर की चौड़ी बज्जी।

अपघ्नी—संज्ञा पुं० [फ्रा० अप (= बायाँ) + रास्त (= दाहिना)] वह नौकर जो अपघ्नी पहने हो और मालिक के साथ रहे। सिपाही। प्यादा। मिरदहा। घरदली।

अपघ्नी—क्रि० वि० [सं० अपघ्न] फुरती से। चपलता से। तेजी से। जोर से। सहसा। एकबारगी। उ०—(क) जीवन से जागो प्राणि अपघ्नी चोगुनी लागि तुलसी बिलोकि मेघ बले मुँह मोरि कै।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तहाँ दशरथ के समर्थ नाथ तुलसी को अपघ्नी चढ़ायो आप चंद्रमा सलाम को।—तुलसी (शब्द०)। (ग) राम बहुत सिध आपहि अपघ्नी चढ़ावन।—तुलसी (शब्द०)। (घ) अपघ्नी बलेउ हय सुदुकि नृप हाँकि न होइ निबाहु।—तुलसी (शब्द०)। (च) कियो छुड़ावन विविध उपाई। अपघ्नी गहो तुलसी बरियाई।—रघुराज (शब्द०)।

चपटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चपटा] एक कहेल या चास जिसमें चपटी चपटी फलियाँ लगती हैं। सेसारी। चपटैया।

चपटैया—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की चास जिसे दूरी भी कहते हैं।

चपल—वि० [सं०] १. कुछ काल तक एक स्थिति में न रहनेवाला। बहुत हिलने डोलनेवाला। चंचल। तेज। फुरतीला। चुलचुला। उ०—(क) योजना करत चपल चित इस उत अक्सर पाय।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जस अपजस देखति नहीं देखति सावर पाव। कहा करी आलस धरे, चपल नैन सलबात।—विहारी (शब्द०)। २. बहुत काल तक न रहनेवाला। क्षणिक। ३. उतावला। हड़बड़ी मचानेवाला। अल्दबाज। ४. अभिप्रायसाधन में उद्यत। अक्सर न झुकनेवाला। आलाक। धृष्ट। उ०—मधुप तुम्ह कान्हू ही की कही क्यों न कही है? यह बातकही चपल बेरी की निपट चरेरी और ही है।—तुलसी (शब्द०)।

चपल^१—संज्ञा पुं० १. पारा। पारख। २. मछली। मत्स्य। ३. आतक। पपीहा। ४. एक प्रकार का पत्थर। ५. और नामक सुगंधद्रव्य। ६. राई। ७. एक प्रकार का वृक्ष।

चौ—चपलगत=तेज आल। चपलचित=चंचल चित। चपलस्पर्धा=तीव्र स्पर्धा।

चपलक—वि० [सं०] १. अस्थिर। चंचल। २. बिना सोचे समझे कार्य करनेवाला। अविचारी। जन-गण-मन की चंचलता के ये चपलक अभिव्यंजन आए। मेरे आंगन संजन आए।—कवासि, पृ० ८८।

चपलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चंचलता। तेजी। जल्दी। उतावली। २. धृष्टता। ठिठाई। उ०—चूक चपलता मेरिये तू बड़ी बड़ाई। बंदि छोर बिरदावली निगमागम गाई।—तुलसी (शब्द०)।

चपलत्व—संज्ञा पुं० [सं०] चपलता। चंचलता।

चपलफाँटा—संज्ञा पुं० [सं० चपल + हि० फटा = मजी] जहाज के फर्श के तख्तों के बीच की जाली जगह में खड़े बैठाने हुए तख्ते या पच्चड़, जिनसे मस्तूल आदि फँसे रहते हैं।

चपलस—संज्ञा पुं० [दे०] एक अँबा पेड़।

विशेष—इसके भीतर की लकड़ी पीनापन लिए दूरी और बहुत ही मजबूत होती है। इससे सजावट के सामान, चाय के संदूक, नाव के तख्ते आदि बनते हैं। यह ज्यों ज्यों पुरानी होती है, त्यों त्यों कड़ी और मजबूत होती जाती है।

चपला^१—वि० स्त्री० [सं०] चंचला। फुरतीली। तेज।

चपला^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्ष्मी। २. बिजली। चंचला। ३. आर्या छंद का एक भेद।

विशेष—जिस आर्या छंद के प्रथम गण के अंत में गुरु हो, दूसरा गण जगण हो, तीसरा गण हो गुरु का हो, चौथा गण जगण हो, पाँचवें गण का आदि गुरु हो, छठा गण जगण हो, सातवाँ जगण न हो, अंत में गुरु हो, उसे चपला कहते हैं। परंतु केदारमठ और गंगादास का मत है कि जिस आर्या में

दूसरा और चौथा गण जगण हो वही चपला है। जैसे,—
राधा जयी सप्रेमा, सुभक्ति पैही सुभक्तिह पैहीं। इसके तीन भेद हैं। (क) मुखचपला। (ख) जघनचपला। (ग) महाचपला।

४. पुं० अली स्त्री। ५. पिप्पली। पीपल। ६. जीम। जिह्वा। ७. बिजया। भांग। ८. मदिरा। ९. प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव जो ४८ हाथ लंबी, २४ हाथ चौड़ी और २४ हाथ ऊँची होती थी और केवल नदियों में चलती थी।

चपला^३—संज्ञा स्त्री० [हि० चप्पड़] जहाज में लोहे या लकड़ी की पट्टी जो पतवार के दोनों ओर उसकी रोक के लिये लगी रहती है।—(अश्व०)।

चपलाई^४—संज्ञा स्त्री० [सं० चपल] चपलता। उ०—रही बिलोकि विचारि बार छवि परमिति पार न पाई री। मंजुल तारन की चपलाई चितु अतुरानन करव री।—सूर (शब्द०)।

चपलान—संज्ञा पुं० [हि० चप्पड़] जहाज की गलही के अगल बगल के फुँड़े जो उनके सम्हालने के लिये लगाए जाते हैं।—(लश०)।

चपलाना^१—क्रि० प्र० [सं० चपल] चलना। हिलना। डोलना।

चपलाना^२—क्रि० प्र० चलाना। हिलाना। डोलाना।

चपली—संज्ञा स्त्री० [हि० चपटा] छूती। चट्टी।

चपलाना^३—क्रि० प्र० [हि० चपला प्रे० रूप] चापने या दाबने का कार्य कराना। दबवाना।

चपाक—क्रि० वि० [अनु०] १. अचानक। २. चटपट। भटपट। तुरंत।

चपाकि^४—क्रि० वि० [हि० चपाक] दे० 'चपाक'। उ०—करत करत धंघ कछुव न जाने धंघ, आवत निकट दिन आगिली चपाकि दे।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४१२।

चपाट—संज्ञा पुं० [हि० चपाट] वह जूता जिसकी ऐंठी उठी न हो। चपीर जूता।

चपाती—संज्ञा स्त्री० [सं० चपटी] वह पतली रोटी जो हाथ से बेलकर बड़ाई जाती है। रोटी।

मुहा०—चपाती सा पेट = वह पेट जो बहुत निकला हुआ न हो। कुपोदर।

चपातीसुमा—वि० [हि० चपाती + क्रा० सुम + हि० प्रा (प्रत्य०)] रोटी के से सुमवाला (चोड़ा)।

चपाना—वि० [हि० चपना] १. एक रस्सी के सूत को दूसरी रस्सी के सूत के साथ बुनकर जोड़ना या फँसाना। रस्सी जोड़ना। २. दबाने का काम कराना। दबवाना। ३. लज्जा से दबाना। लज्जित करना। झिपाना। शर्मिदा करना।

चपेकना—क्रि० प्र० [हि० चिपकाना] दे० 'चिपकाना'।

चपेट—संज्ञा स्त्री० [हि० चपाना (= दबाना)] १. रगड़ के साथ वह दबाव जो किसी भारी वस्तु के वेगपूर्वक चलने से पड़े। झोंका। रगड़ा। धक्का। आघात। चिस्सा। उ०—चारिहु चरन की चपेट चपिट चापे चिपटियो उचकि चारि आंगुल धपुलुषो।—तुलसी (शब्द०)। २. आपड़। अप्पड़।

अवाना—क्रि० सं० [सं० अवर्ण] १. दोहों से कुचलना । जुवालना ।

मुहा०—अवा अवाकर धातें करना = स्वर बना बनाकर एक एक शब्द बोरे बोरे बोलना । मठार मठारकर धातें करना । अवे को अवाना = एक ही काम को बार बार करना । किए हुए काम को फिर फिर करना । पिष्टपेषण करना । उ०—बरस पचासक लो विषय ही में वास कियो तऊ ना उदास अवे अवे को अवाइए ।—प्रिया० (शब्द०) ।

२. दाँत से काटना । दरदराना ।

अवारार—संज्ञा पुं० [हि० औवारार] घर के ऊपर का बेंगला । औवारार । उ०—उज्ज्वल अखंड खंड सातएँ महल महामंडल अवारो चंद मंडल की चोट ही ।—देव (शब्द०) ।

अवाव④—संज्ञा पुं० [हि० अवाव] दे० 'अवाव' ।

अवीणा④—संज्ञा पुं० [हि० अवेना] दे० 'अवेना' । उ०—मूठे मुख को मुख कहैं मानत है मन मोद । सलक अवीणा काल का कुछ मुख में कुछ गोद ।—कवीर प्र०, पृ० ७१ ।

अवूतरा—संज्ञा पुं० [सं० अवतार, हि० औतरा] १. बैठने के लिये चोरस बनाई हुई ऊँची जगह । औतरा । † २. कोतवाली । बड़ा खाना ।

अवेना—संज्ञा पुं० [हि० अवाना] अवाकर खाने के लिये बना हुआ अनाज । अर्बण । भूजा ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

अवेनी—संज्ञा स्त्री० [हि० अवाना] १. तली दाल और मिठाई आदि जो बरातियों को जलपान के लिये दी जाती है । २. जलपान का सामान । ३. जलपान का मूल्य । ४. रुखा सूखा खाना ।

अवेरा④—संज्ञा पुं० [सं० अवर्ण, हि० अवेरा], अण्ड । आपड़ । चोटा । उ०—सिर पर काल बस्तु निसु बासर मारत तुरत अवेरा ।—भीखा० श०, पृ० ४ ।

अवेल—वि० [सं० अवर्ण, प्रा० अवर्ण] चारो ओर । चतुर्दिक् । उ०—कपोल लोल हलते । अवेल खुंड भलते ।—पृ० रा०, १७ । ६२ ।

अवेनी④—संज्ञा पुं० [सं० अवर्ण] दे० 'अवेनी' । उ०—सबै अवेनी रकाल का पलट उन्हें नकाल । तीन लोक से जुदा है उन संतन की चाल ।—पलटू०, भाग १, पृ० १३ ।

अवेनी—संज्ञा स्त्री० [हि० अवेनी] दे० 'अवेनी' । उ०—अना अवेनी गंगजल जो पुरवै करतार । काशी कबहुँ न छाड़िए विषवनाथ दरवार ।

अववा—संज्ञा पुं० [सं० अवर्ण, हि० औवा] दे० 'औवा' ।

अव्यू—वि० [हि० अवाना] बहुत अवानेवाला । बहुत खानेवाला ।

अवम—संज्ञा [अनु०] गोता मारने से तालों या नदियों के पानी से होनेवाली ध्वनि । उ०—आयो चिड़ियाएँ मछलियों पर निशाना साध, अवम से घुस पानी में से शिकार से चलीं ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २० ।

विशेष—इसका प्रयोग क्रि० वि० रूप में 'से' के साथ ही मिलता है अतः लिग गीण हो जाता है ।

अवमा—संज्ञा पुं० [देश०] १. डुबकी । डुबकी । गोता । २. एक

जलपानी जो गोताखोर होता है । उ०—कीड़ेनी, अमा इत्यादि (बारि बिहंग) ।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० २० ।

अव्यू—वि० [हि० अव्यू] दे० 'अव्यू' ।

अवमो—संज्ञा पुं० [हि० अवमना] दूसरे का दिया हुआ गोता । डुबकी । डुबकी ।

क्रि० प्र०—देना ।

अवमक—संज्ञा [अनु०] पानी में किसी वस्तु के अम की ध्वनि करते हुए डुबने का शब्द ।

विशेष—'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० वत् आता है ।

अवमक—संज्ञा स्त्री० [देश०] काटने या डंक मारने की क्रिया ।

अवमकना—क्रि० सं० [अनु०] १. अवा अवाकर खाना । २. तृप्तिपूर्वक खाना । ३. अधिक खाना ।

संयो० क्रि०—खाना ।—खाना ।

अवमका—संज्ञा स्त्री० [हि० अवमक] दे० 'अवमक' उ०—वायु वात रूप त्वचा में प्राप्त होने से त्वचा काली कर्कश हो जाय और उसमें अवमका चले तथा तन जाय ।—माधव०, पृ० १३५ ।

अवमचा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अवमचा' । उ०—विषवा सहुभा-इन ने बड़े उत्साह से अवमचा खुदवाया था ।—नई०, पृ० ३ ।

अवमक अवमक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. वह शब्द जो किसी वस्तु को छाने समय मुँह के हिलने आदि से होता है । २. कुत्ते, बिल्ली आदि के जीभ से पानी पीने का शब्द ।

अमना—क्रि० प्र० [सं० अवर्ण, हि० अवाना] खाना खाना ।

अमना—क्रि० प्र० [हि० अमना] कुचल जाना । कुचला जाना । रौंदा जाना । दरेरा खाना । उ०—रहपो डीठु बारसु गहैं ससहरि वयो न सुख । मुरपो न मनु मुरवानु अमि, मी बूरनु अपि बूस ।—बिहारी (शब्द०) ।

अमाना—क्रि० [हि० अमना का प्रे० रूप] खिलाना । भोजन कराना ।

अमोका—संज्ञा पुं० [देश०] बेवकूफ । मूर्ख । गावदी ।

यौ०—अमोकनंदन = अत्यंत मूर्ख । निहायत बेवकूफ ।

अमोकना—सि० [हि० अमोका] १. डुबाना । गोता देना । २. भिगोना । तर करना ।

अमोरना—क्रि० सं० [हि० अमोका] १. डुबाना । गोता देना । २. आप्लावित करना । तर करना । भिगोना । उ०—(क) धेवर अति धिरत अमोरे । लै खीड़ उपर तर बोरे ।—सूर (शब्द०) । (ख) भीठे अति कोमल हैं नीके । ताते तुरत अमोरे धी के ।—सूर (शब्द०) ।

अमक④—संज्ञा पुं० [हि० अमक] दे० 'अमक' ।

अमकना④—क्रि० प्र० [हि० अमकना] दे० 'अमकना' । उ०—बहु कृपान तरवारि अमकहि जनु दहदिसिद मिनी दमकहि ।—मानस, ६।८६ ।

अमइया—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अमार' । उ०—हमसे दीन दयाल न तुमसे, अरन सरन रैदास अमइया ।—दे० बानी, पृ० ६८ ।

चमक—संज्ञा स्त्री० [सं० चमस्कृ या चमृ०] १. प्रकाश । ज्योति । रोशनी । जैसे,—आग या सूर्य की चमक बिजली की चमक । २. काँति । दीप्ति । आभा । झलक । दमक । जैसे,—सोने की चमक । कपड़े की चमक ।

चौ०—चमक दमक । दमक चाँदनी ।

मुहा०—चमक देना या मारना = चमकना । झलकना । चमक लाना = चमक उत्पन्न करना । झलकाना ।

१. कमर आदि का वह दर्द जो थोटा लगने या एकबारगी अधिक बल पड़ने के कारण होता है । लचक । चिक । झटका । जैसे,—उसकी कमर में चमक पड़ा है ।

क्रि० प्र०—घाना ।—पड़ना ।

४. बढ़ना । उ०—रात को जाड़ा यद्यपि चमक चला था ।—प्रेमघन० भा० २ । ५. चौक । भड़क । उ०—जह तूँ डोला तावियत कालनयारा तीव्र । चमक मरेसी मारवी, देख खिवता बीज ।—डोला०, पृ० १५० ।

चमक चाँदनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चमक + चाँदनी] बनी ठनी रहनेवाली दुपचरित्रा स्त्री ।

चमक दमक—संज्ञा स्त्री० [हि० चमक + दमक चमृ०] १. दीप्ति । आभा । झलक । तड़क भड़क । २. ठाट बाट । सक दक ।—जैसे,—दरबार की चमक दमक देखकर लोग दंग हो गए ।

चमकदार—वि० [हि० चमक + फ्रा० दार] जिसमें चमक हो । चमकीला । भड़कीला ।

चमकना—क्रि० प्र० [हि० चमक से नामिक घातु] १. प्रकाश या ज्योति से युक्त दिग्गद् देना । प्रकाशित होना । देदीप्यमान होना । प्रभास्य होना । जगमगाना । जैसे,—सूर्य का चमकना, आग का चमकना ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

२. काँति या आभा से युक्त होना । झलकना । भड़कीला होना । दमकना । जैसे,—सोने चाँदी का चमकना । कपड़े का चमकना । ३. शीतिलाभ करना । प्रसिद्ध होना । समुद्रिलाभ करना । श्रीगंग होना । उन्नति करना । जैसे,—देखो, बहूँ जाते ही वे कैद चमक गए । ४. वृद्धि प्राप्त करवा । बढ़ती पर होना । बढ़ना । जैसे,—प्राजकल उनकी बकालत खूब चमकी है ।

मुहा०—किसी की चमकना = किसी की धोड़ुडि होना । किसी की बढ़नी और जीति होना ।

५. चीवना । भड़कना । खंचल होना (छोड़े आदि के लिये) । उ०—चमक चमक हाँगी सिसक मसक झपट लपटानि । जेहि रति सो गते मुकत मोर मुकति प्रति हानि ।—बिहारी (शब्द०) । ६. दुरती से बचक जाना । झट से निकल जाना । उ०—सखा साथ के चमकि गए सब गह्यो श्याम कर बाह । धीरन जाति जान मैं सोनी तुम कहैं जाहु पराह ।—मूर (शब्द०) । ७. एकबारगी दर्द हो उठना । हिलने डोलने में किसी अंग की स्थिति में विपर्यय या गड़बड़ होने से उस अंग में सहसा तनाव लिए हुए पीड़ा उत्पन्न होना । जैसे,—बोझ उठाने में उसकी कमर चमक गई है । ८. मटकना । उंगलियाँ

आदि हिलाकर भाव बताना । (जैसा स्त्रियाँ प्रायः करती हैं) । ९. मटककर कोप प्रकट करना । १०. लड़ाई ठनना । झगड़ा होना । उ०—प्राजकल उन दोनों के बीच खूब चमक रही है । ११. कमर में चिक घाना । अधिक बल पड़ने या थोटा पहुँचने के कारण कमर में दर्द उठना । झटका लगना । लचक घाना । जैसे,—बोझ इतना भारी था कि उसे उठाने में कमर चमक गई ।

क्रि० प्र०—जाना ।

चमकनी—वि० स्त्री० [हि० चमकना] १. चमक जानेवाली । जल्दी चिढ़ या मदक जानेवाली । २. हाव भाव करनेवाली ।

चमकवाना—क्रि० स० [हि० चमकना का प्रे० रूप] चमकाने का काम कराना ।

चमका (उ०)—संज्ञा स्त्री० [सं० चमस्कार] चमक । प्रकाश ।

चमकाना—क्रि० स० [हि० चमकना] १. चमकीला करना । चमक लाना । दीप्तिमान करना । काँति लाना । घोषना । झलकाना । २. उज्ज्वल करना । निर्मल करवा । साफ करना । झट करना । ३. मड़काना । चौकाना । ४. बिड़ाना । खिझाना । ५. छोड़े को खंचलता के साथ बढ़ाना । ६. भाव बताने के लिये अंगुली आदि हिलाना । मटकाना । जैसे, उंगली चमकाना । **चमकार**—संज्ञा स्त्री० [हि० चमक + आर (प्रत्य०)] चमक । काँचा । उ०—जब आगे दूँ याद देखकर जगमग जोती । बिन दामिनि चमकार सीप बिन उपजे मोती ।—सहजो०, पृ० ५१ ।

चमकारा (उ०^१)—संज्ञा पु० [हि० चमक + आरा (प्रत्य०)] चकाचौध करनेवाला प्रकाश । चमक ।

चमकारा (उ०^२)—वि० चमकदार । चमकीला । उ०—शब्द करीगर रूप चमकारा । शशि अनेक ताहीं जनु डारा ।—कबीर सा०, पृ० १०४ ।

चमकारी (उ०^३)—संज्ञा स्त्री० [हि० चमकार] १. चमक । प्रकाश । उ०—अधरबिब दसनन की शोभा दुति दामिनि चमकारी ।—सूर (शब्द०) । २. बनाव । तड़क भड़क । उ०—अंग अंग तोरे चमकारी कैसे कहौं तोहि मैं नारी ।—कबीर सा०, पृ० ७८ ।

चमकारी—वि० चमकीली ।

चमको—संज्ञा स्त्री० [हि० चमक] कारचौबी में रुपहले या सुनहले या तारों के छोटे छोटे गोल या चौकोर चिपटे टुकड़े जो जयोन भरने के काम आते हैं । सितारे । तारे ।

चमकीला—वि० [हि० चमक + ईला (प्रत्य०)] १. जिसमें चमक हो । चमकनेवाला । चमकदार । ओपदार । २. मड़कदार । भड़कीला । शानदार ।

चमकील—संज्ञा स्त्री० [हि० चमक + ओवल (प्रत्य०)] १. चमकाने की क्रिया । २. मटकाने की क्रिया ।

चमकक—संज्ञा स्त्री० [हि० चमक] दे० 'चमक' । उ०—चोदिस चमकक चमक होइ खगग तरंगे ।—कीर्ति०, दे० १०२ ।

चमककना—क्रि० प्र० दे० 'चमकना' । उ०—(क) तरवारि चमकक विज्युभला ।—कीर्ति०, पृ० ११० ।

चमकौ—संज्ञा स्त्री० [हि० चमकना] १. चमकने मटकनेवाली स्त्री । चंचल और निर्लज्ज स्त्री । १. कुलटा स्त्री । व्यभिचारिणी स्त्री । ३. जल्दी चिढ़ जानेवाली स्त्री । झल्लानेवाली स्त्री । भगड़ावू स्त्री ।

चमगादड़—संज्ञा पुं० [सं० चर्मचटका, पुं० चर्मचिचड़ी, हि० चर्मगिदड़ी] एक उड़नेवाला बड़ा जंतु जिसके चारों पैर परदार होते हैं ।

विशेष—यह जमीन पर अपने पैरों से चल फिर नहीं सकता, या तो हवा में उड़ता रहता है या किसी पेड़ की डाल में चिपटा रहता है । दिन के प्रकाश में यह बाहर नहीं निकलता, किसी झंझरे स्थान में पैर ऊपर और सिर नीचे करके सोचा लटका रहता है । इनके मुँह के ऊँच पुराने संडहरों यादि में लटके हुए पाए जाते हैं । इस जंतु के कान बड़े बड़े होते हैं और उनमें घाहट पाने की बड़ी शक्ति होती है । यद्यपि यह जंतु हवा में बहुत ऊपर तक उड़ता है, पर इसमें बिड़ियों के लक्षण नहीं हैं । इसकी बनावट घूहे की सी होती है, इसे कान होते हैं और यह झंडा नहीं देता, बल्का देता है । अपने पर बहुत लंबे होते हैं और उनके छोरों के पास से पतली हड्डियाँ की तीलियाँ निकली होती हैं, जिनके बीच में झिल्ली मढ़ी होती है । यही झिल्ली पर का काम देती है । तीलियों के सहारे से यह जंतु झिल्ली को छाते की तरह फैलाता और बंद करता है ; यह प्रायः कीड़े मकोड़े और फल खाता है । चमगादड़ अनेक प्रकार के होते हैं । कुछ तो छोटे छोटे होते हैं और कुछ इतने बड़े होते हैं कि परो को दोनों ओर फैलाकर नापने से वे गज डेढ़ गज ठहरते हैं ।

चमचम^१—संज्ञा स्त्री० [द्व्य०] एक प्रकार की बंगला मिठाई जो दूध फाड़कर उसके छेने से बनाई जाती है ।

चमचम^२—क्रि० वि० [हि० चमाचम] दे० 'चमाचम' ।

चमचमाना^१—क्रि० प्र० [हि० चमक] चमकना । प्रकाशमान होना । दीप्तिमान होना । झलकना । दमकना । उ०—बादर घुमड़ि घुमड़ि आए ब्रज पर बरसत कारे धूम घटा अति ही जल । चपला प्रति चमचमाति ब्रज जन सब दरदरात टेरत शिशु पिता मात ब्रज गलबल ।—मूर (शब्द०) ।

चमचमाना^२—क्रि० स० चमकाना । झलकाना । चमक लाना । दमक लाना ।

चमचा—संज्ञा पुं० [फ्रा० मि० सं० चमस] [स्त्री० चमची] १. डाँड़ी लगी हुई एक प्रकार की छोटी कटोरी या पात्र जिससे दूध, चाय आदि चढ़ा उठाकर पीते हैं । एक प्रकार की छोटी कलछी । चम्मच । डोई । कफचा । † २. चिमटा । ३. नाथ में डाँड़ का चौड़ा अग्रभाग । हाथा । हलसा । पैगई । बैठा । ४. कोयला निकालने का एक प्रकार का फावड़ा । डूंगा । ५. जहाज के दरजों में झलकतरा डालने की चौबदार कमछी ।—(लश०) ।

चमचिचड़—वि० [हि० चाम + चिचड़ी] चिचड़ी या किलनी की तरह चिपटनेवाला । पिंड या पीछा न छोड़नेवाला ।

चमचिचोरी—वि० [हि० चाम + चिचोरी] दे० 'चमचिचड़' ।

चमची—संज्ञा स्त्री० [हि० चमना] १. छोटा चम्मच । २. पाचमनी ।

३. छोटा चिमटा । ४. घुला हुआ चूना तथा कत्था निकालने और पान पर फैलाने की चिपटे और चौड़े मुँह की सलाई ।

चमचाना^३—क्रि० प्र० [हि० चमचमाना] दे० 'चमकना' । उ०—पलक की चमचची, उठे वीर नचची ।—हम्मीर रा०, पृ० १३६ ।

चमजुई—संज्ञा स्त्री० [सं० चमयुका] १. एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो पशुओं और कभी कभी मनुष्यों के शरीर पर उत्पन्न हो जाता है । एक प्रकार की बहुत छोटी किलनी । चिचड़ी । २. चिचड़ी की तरह चिमटनेवाली वस्तु या व्यक्ति । उ०—जगमगी जोन्ह ज्वाल जालन सों जारती न जमजोई जामिनि जुगत सम हूँ जाती क्यों ?—देव (शब्द) ।

चमजोई—संज्ञा स्त्री० [हि० चमजुई] दे० 'चमजुई' ।

चमटना—क्रि० स० [हि० चिमटना] दे० 'चिमटना' ।

चमटा—संज्ञा पुं० [हि० चिमटा] दे० 'चिमटा' ।

चमड़ा—संज्ञा पुं० [सं० चर्म + अण० डा (स्वा० प्रत्य०)] १. प्राणियों के सारे शरीर का वह ऊपरी आवरण जिसके कारण मांस, नम्र आदि दिखाई नहीं देती । चर्म । त्वचा । जिल्द ।

विशेष—चमड़े के दो विभाग होते हैं, एक भीतरी और दूसरा ऊपरी । भीतरी ऐसे तंतु पात्र के रूप में होता है जिसके अंदर रक्त, मज्जा आदि रहते और संचारित होते हैं । इसमें छोटी छोटी गुलियाँ होती हैं । स्वेदधारक गुलियाँ एक नली के रूप में होती हैं जिनका ऊपरी मुँह बाहरी चमड़े के ऊपर तक गया रहता है और निचला भाग कई फेरों में घूमी हुई गुलभट्टी के रूप में होता है । इसका अंश न पिघलकर अलग होता है और न छिलके के रूप में छूटता है । बाहरी चमड़ा या तो समय समय पर झिल्ली के रूप में छूटता या पिघलकर अलग होता है । यह वास्तव में चिपटे कोशों से बनी हुई सूखी कड़ी झिल्ली है जो झड़ती है और जिसके नाबून, पंजे, खुर, बाल आदि बनते हैं ।

मुहा०—चमड़ा उधेड़ना या खींचना = (१) चमड़े को शरीर से अलग करना । (२) बहुत मार मारना । विशेष—दे० 'खाल खींचना' । २. प्राणियों के मृत शरीर पर से उनारा हुधा चर्म जिससे छूते, बेग आदि बहुत सी चीजें बनती हैं । खाल । चरसा ।

विशेष—काम में लाने के पहले चमड़ा सिझाकर नरम किया जाता है । सिझाने का क्रिया एक प्रकार की रासायनिक क्रिया है, जिसमें टनीन, फिटकी, कमीम आदि द्रव्यों के संयोग से चर्मस्थित द्रव्यों में परिवर्तन होता है । भारतवर्ष में चमड़े को सिझाने के लिये उसे बबूल, बटेड़े, कत्थे, बसूत, आदि की छाल के काढ़े में डुबाते हैं । पशुमद से चमड़ों के भिन्न भिन्न नाम होते हैं । जैसे,—बरदी (बैल का), भँसोरी (भँस का), गोखा (गाय का), किरकिल, कीमुखन (गदहे या घोड़े का दानेदार), मुरदरी (मनी लाश का), सावर, हुलानी इत्यादि ।

मुहा०—चमड़ा सिझाना = चमड़े को बबूल की छाल, सज्जी, नमक आदि के पानी में डालकर मुलायम करना ।

३. खाल । छिलका ।

चमड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० चमड़ा] चर्म। त्वचा। जान।

मुहा०—१० 'चमड़ा' और 'जान'।

चमत्करण—संज्ञा पुं० [सं०] चमत्कार करने या होने की क्रिया।

चमत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] वि० चमत्कारी, चमत्कृत] १. आश्चर्य। विस्मय। २. आश्चर्य का विषय। वह जिसे देखकर चित्त में विस्मयमुक्त आह्लाद उत्पन्न हो। अद्भुत व्यापार। विचित्र घटना। असाधारण और अलौकिक बात। करामात। ३. अमूर्तपन। विचित्रता। विलक्षणता। जैसे,—इस कविता में कोई चमत्कार नहीं है। ४. इमर। ५. अपामार्ग। चिचड़ा

चमत्कारक—वि० [सं०] चमत्कार उत्पन्न करनेवाला। आश्चर्यजनक। विलक्षण। अमूर्त।

चमत्कारिक—वि० [सं०] १. चमत्कार संबंधी। २. चमत्कार पैदा कर देनेवाला। जोका देनेवाला। ३. विचित्र या असंगत प्रतीत होनेवाला (को०)।

चमत्कारित—वि० [सं०] चमत्कृत। विस्मित (को०)।

चमत्कारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमत्कृत करने का भाव या शक्ति। चमत्कारपन (को०)।

चमत्कारवाद—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह मत जो बाह्य सौंदर्य अर्थात् अलंकारादि को कविता के लिये आवश्यक मानता है। काव्य में चमत्कार का समर्थन करनेवाला वाद या सिद्धांत। उ०—अलंकारों की प्रधानता देने पर किस तरह के चमत्कार-वाद का जन्म होता है, उसकी मिसालें, उन्होंने रीतिकासीन कवियों से दी हैं।—आचार्य०, पृ० १२।

चमत्कारी—वि० [सं०] चमत्कारित। [वि० स्त्री० चमत्कारिणी] जिसमें चमत्कार हो। जिसमें कुछ विलक्षणता हो। अद्भुत। २. चमत्कार विज्ञानेवाला। अद्भुत दृश्य उपस्थित करनेवाला। विलक्षण बातें करनेवाला। करामाती।

चमत्कृत—वि० [सं०] आश्चर्यित। विस्मित।

चमत्कृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्चर्य। विस्मय।

चमरदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चर्म+दृष्टि] देखो 'चर्मदृष्टि'। उ०—सुंदर सतगुरु ब्रह्मा, पर सिध की चमरदृष्टि। सूधी। और न देखई, देखै दर्पन पूष्ट।—संतबानी०, पृ० १०७।

चमन—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. हरी बयारी। २. फुलबारी। घर के अंदर का छोटा बगीचा। ३. गुलजार बस्ती। रौनकवार शहर।

चमर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चमरा] १. सुरा गाय। २. सुरा गाय की पूँछ का बना चेंबर। चामर। ३. एक दैत्य का नाम।

चमर—वि० [हि० चमार] चमार से संबंधित। तुच्छ। हीन।

विशेष—यह यौगिक शब्दों का पूर्व पद होता है। जैसे, चमरपन, चमरटोला आदि।

चमरक—संज्ञा पुं० [सं०] मधुमक्खी (को०)।

चमरख—संज्ञा स्त्री० [हि० चामर+ख] मूँब या चमड़े की बनी हुई चकती जो चरखे के घागे की ओर छोटी पिढ़ई के पास पास की खूंटियों में लगी रहती है और जिसमें से होकर

तकला या टेकुभा घूमता है। चरखे की गुड़ियों में लगाने की चकती। उ०—(क) एक टका के चरखा बनावल ठेवुर्बाहि टेकुभा चमरख लावल।—कबीर (शब्द०)। (ख) और कुबड़ी कमर हो गई सिर हो गया दगला। मुँह सूख के चमरख हुआ तन हो गया तकला।—नजीर (शब्द०)।

चमरख—वि० स्त्री० दुबली पतली (स्त्री)। जैसे,—वह तो सूखकर चमरख हो गई है।

चमरखा—संज्ञा पुं० [सं०] चर्मकशा] एक सुगंधित जड़ जो उबटन आदि में पड़ती है।

चमरगाय—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमर+हि० गाय] सुरा गाय। हिमालय पर्वत के प्रदेशों की वह गाय जिसकी पूँछ का चेंबर बनता है। चेंबरी गाय। उ०—सब फसल छोई में मिल गई, सैकड़ों भेड़ें और बीसों चमरगाय मर गई और छतें उड़ गई।—बो दुनिया, पृ० ७५।

चमरगिद्ध—संज्ञा पुं० [चर्म>हि० चमर+गोष] एक बड़ा गिद्ध। नौचकर मांस खानेवाला गोष।

चमरचलाक—वि० [हि० चमार+फ्रा० चालाक] निम्न कोटि की चालाकी करनेवाला। गहित युक्ति लगानेवाला।

चमरजुलाहा—संज्ञा पुं० [हि० चमार+जुलाहा] कपड़ा बुननेवाला हिंदू। हिंदू जुलाहा। कोरी।

चमरदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [हि० चमर+सं० दृष्टि] देखो 'चर्मदृष्टि'। उ०—चमरदृष्टि की कुलफी दीनो, चौरासी भरमावे हो।—कबीर श०, भा० २, पृ० ५।

चमरटोला—संज्ञा पुं० [हि० चमार+टोला] चमारों का मुहल्ला या निवास।

चमरटोली—संज्ञा स्त्री० [हि० चमार+टोली] १. चमारों की बस्ती। २. चमारों का झुंड।

चमरपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १. चेंबर। २. लोमड़ी। ३. गिलहरी (को०)।

चमरपुच्छ—वि० चेंबर की तरह पूँछवाला (पशु)। जिसकी पूँछ चेंबर के काम आवे (को०)।

चमरबकुलिया—संज्ञा स्त्री० [हि० चमरबगली] देखो 'चमरबगली'।

चमरबगली—संज्ञा स्त्री० [हि० चमार+बगला] बगले की जाति की काले रंग की एक चिड़िया।

चमरबैल—संज्ञा पुं० [सं०] चमर+हि० बैल] याक नाम का एक पहाड़ी बैल जिसके कंधों पर बड़े बड़े बाल होते हैं। उ०—चमरबैल, सिर हिला हिलाकर भूसा रोदकर ला रहे थे।—बो दुनिया, पृ० ७२।

चमररग—संज्ञा स्त्री० [हि० चमार+रग] निम्न प्रकृति। तुच्छ प्रकृति। निम्नता। तुच्छता।

चमररग—वि० निम्न या तुच्छ स्वभाववाला। नीच।

चमरशिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमार+शिक्षा] चोड़ों की कलंगी। उ०—जबहि रास डोली में कौनो। तानि देह भगली इन जीनो। चलत कनीली लई दबाई। चमरशिक्षा है हलन न पाई।—सकलपु० (शब्द०)।

चमरस—संज्ञा पुं० [हि० चाम] वह घाव जो चमड़े या जूते की रगड़ से हो जाय ।

चमराखारी—संज्ञा पुं० [हि० चमार + खारी] खारी नमक ।

चमराबस—संज्ञा स्त्री० [हि० चमार] चमड़ा या मोट आदि बनाने की मजदूरी जो जमींदार या कास्तकार की ओर से चमारों को मिलती है ।

चमरिक—संज्ञा पुं० [सं०] कचनार का पेड़ ।

चमरिया सेम—संज्ञा स्त्री० [हि० चमार + सेम] सेम का एक भेद ।

चमरो—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुरा गाय । २. जेबरी । ३. मंजरी ।

चमरू—संज्ञा पुं० [देश०] चमड़ा । जाल । चरसा । —(सज्ज०) ।

चमरेशियन—संज्ञा पुं० [हि० चमार] चमरपन । नीचपन । उ०—यह तो आपकी जबान है, उसे किरंटा, चमरेशियन, गाली जो बाहे कहें लेकिन रंग को छोड़कर वह जंगरेजों से किसी बात में कम नहीं ।—गबन, पृ० ११० ।

चमरोर—संज्ञा पुं० [देश०] एक बड़ा पेड़ जिसकी छाया बहुत घनी होती है ।

चमरोट—संज्ञा पुं० [हि० चमार + ओट (प्रत्य०)] लेत, फसल आदि का वह भाग जो धाँव में चमारों को उनके काम के बदले में मिलता है ।

चमरोटियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चमरोटी' ।

चमरोटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चमार > चमर + ओटी (प्रत्य०)] चमारों की बस्ती ।

चमरोघा—संज्ञा पुं० [हि० चमर + ओघा (प्रत्य०)] दे० 'चमोघा' ।

चमला—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्पा० चमली] मीस माँगने का ठोकरा । मिठापात्र ।

चमस—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० चमसी] १. सोमपान करने का चम्मच के आकार का एक यज्ञपात्र जो पलाश आदि की लकड़ी का बनता था । २. कलछा । चम्मच । ३. पापड़ । ४. मोदक । लड्डू । ५. उर्द का घाटा । घुमस । ६. एक ऋषि का नाम । ७. नौ योगीश्वरों में से एक ।

चमसा^१—संज्ञा पुं० [सं० चमस] चमचा । चम्मच । यज्ञपात्र ।

चमसा^२—संज्ञा पुं० [हि० चोमासा] दे० 'चोमासा' ।

चमसि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रोटी या लिट्टी [को०] ।

चमसी^१—स्त्री० [सं०] १. चम्मच के आकार का लकड़ी का एक यज्ञपात्र । २. उर्द, मूँग, मसूर आदि की पीठी ।

चमसी^२—वि० [सं० चमसिन्] सोमरस से पूर्ण चमस पाने का अधिकारी [को०] ।

चमसोद्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभासक्षेत्र के पास का एक तीर्थ ।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि सरस्वती नदी यहीं प्रचरय हुई है । यहाँ पर स्नान करने का बड़ा फल लिखा है ।

चमाइन^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] चमार की स्त्री । चमारिन ।

चमाइन^२—वि० निम्न प्रकृतिवाली (स्त्री) ।

चमाऊ^१—संज्ञा पुं० [सं० चामर] चमर । चामर । जेवर । उ०—हाड़ा रामठोर, कछवाहे, गौर और रहे, घटस चकता को चमाऊ धरि डरि के ।—भूषण (सन्द०) ।

चमाऊ^२—संज्ञा पुं० [हि० चमोवा] दे० 'चमोवा' ।

चमाक^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चमक] दे० 'चमक' ।

चमाकना^१—क्रि० प्र० [हि० चमकना] दे० 'चमकना' ।

चमाचम—क्रि० वि० [हि० चमकना की प्रभु० द्विवक्ति] उज्ज्वल कांति के सहित । झलक के साथ । जैसे,—देखो बरतन कैसे चमाचम चमक रहे हैं ।

चमार^१—संज्ञा पुं० [सं० चर्मकार] [स्त्री० चमारिन, चमारी] एक नीच जाति जो चमड़े का काम बनाती है । २. उक्त जाति का व्यक्ति । ३. तुच्छ व्यक्ति । निम्न प्रकृतिवाला व्यक्ति ।

चौ०—चमार चौबस—(१) चमारों का उत्सव । (२) वह धूम-धाम जो छोटे और दरिद्र लोग इतराकर करते हैं । चार दिन का जलसा ।

चमार^२—वि० निम्न प्रकृतिवाला । तुच्छ ।

चमारनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चमार + नी (प्रत्य०)] दे० 'चमारी' ।

चमारिनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चमार + निन (प्रत्य०)] दे० 'चमारी' ।

चमारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चमार + ई (प्रत्य०)] १. चमार जाति की स्त्री । चमार की स्त्री । २. चमार का काम । ३. चमारी की प्रकृतिवाली स्त्री । ४. कमल का वह फूल जिसमें कमलगट्टे के जीरे सराब हो जाते हैं ।

चमारी^२—वि० १. चमार संबंधी । २. चमारों जैसा । चमारों की तरह का ।

चमालसि^१—वि० [हि० चौवालीस] दे० 'चौवालीस' । उ०—वर्ष बदीत भये कलिकाल के छँसे चमालसि चार हजार ।—सुंदर० प्र० (जी०), भा० १, पृ० १२६ ।

चमियारो—संज्ञा स्त्री० [देश०] पप काठ ।

चमोकर—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक खान जिससे सोना निकलता था । इसी से सोने को चमोकर कहते हैं ।

चमोर^१—संज्ञा पुं० [सं० चामोकर, प्रा० चामोघर] दे० 'चामोकर' । उ०—मोताहल रहती नहीं, हैबर हरि चमीर । जेहलिया जाती जुग, बाते रहसो वीर ।—बौकी० प्र०, भा० ३, पृ० ८ ।

चमुंड^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चामुण्ड] दे० 'चामुंड' । उ०—जै चमुंड जै चंड-मुंड-भंडासुर-संहिनि । जै सुरक्त जै रक्तबीज विह्वल बिह्विनि ।—भूषण प्र०, पृ० ३ ।

चमुंडा^१—वि० [देश०] दुष्ट । पाजी ।

चमुव^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चमू] दे० 'चमू' । उ०—विजहर चमुव न धावन पाइय । आल्हन बेर लोन्ह तहँ जाइय ।—प० रासो, पृ० १३८ ।

चमू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेना । फौज । २. नियत संख्या की सेना जिसमें ७२६ हाथी, ७२६ रथ, २१८७ सवार और ६३४५ पैदल होते थे ।

चौ०—चमूनाथ, चमूनायक, चमूप, चमूपति = सेनानायक । सेनापति ।

चमूकन—संज्ञा पुं० [हि० चमोकन] एक प्रकार की किलनी जो चौपायों के शरीर में चिपटी रहती है ।

चमूचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिपाही । २. सेनापति ।

चमूक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का घृण । बालवार पूँछवाला घृण ।

चमूहर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

चमेठी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पालकी के कहारों की एक प्रकार की बोली ।

विशेष—सवारी लेकर जब कहार खेतों में चमते हैं और रास्ते में घरघर, गेहूँ, तीसी आदि की खूंटियाँ पड़ती हैं, तो उनसे बचने के लिये घगला कहार 'चमेठी' 'चमेठी' कहकर पिछले कहारों को सावधान करता है ।

चमेलिया—वि० [हि०] चमेली के रंग का । सोनजर्द ।

चमेली—संज्ञा स्त्री० [सं० चम्पकवेलि (यद्यपि चम्पक के निचंद में 'चमेली' शब्द आया है, तथापि वह संस्कृत नहीं प्रतीत होता)] १. झाड़ी या लता जो अपने सुगंधित फूलों के लिये प्रसिद्ध है ।

विशेष—इसमें लंबी पतली टहनियाँ निकलती हैं, जिनके दोनों ओर पतली सीको मे लगी हुई छोटी छोटी पत्तियाँ होती हैं । चमेली दो प्रकार की होती है । एक साधारण चमेली जिसमें सफेद रंग के फूल लगते हैं और दूसरी जर्द चमेली जिसमें पीले रंग के फूल लगते हैं । फूलों की महक बड़ी मीठी होती है । चमेली के फूलों से तेल बासा जाता है जो चमेली का तेल कहलाता है ।

चौ०—चमेली का जाल = एक तरह का कसीदा ।

२. मस्लाहों की बोली में पानी की बह धपड़ जो ऊँची लहर उठने के कारण दोनों ओर लगती है और जिसके कारण प्रायः नावें डूब जाती हैं ।

चमोई—संज्ञा [देश०] एक पेड़ जिसकी छाल से नेपाली कागज बनाया जाता है ।

विशेष—इसे, घनकोटा, सतपूरा, सतबरसा इत्यादि भी कहते हैं । यह पेड़ सिक्किम से भूटान तक होता है ।

चमोकर्ना—संज्ञा पुं० [हि० चमोकना] एक प्रकार की बड़ी किलनी या किलना ।

चमोकर्ना—क्रि० सं० [हि०] १. किलनी का चमड़े से चिपट जाना । २. किलनी की तरह चिमटना । ३. चुटकी से चमड़ा पकड़कर खींचना या तानना जिससे पीड़ा की अनुभूति होती है ।

चमोटा—संज्ञा पुं० [हि० चाम+छोटा (प्रत्य०)] पाँच छह शंगुल का मोटे चमड़े का टुकड़ा जिसपर नाई छुरे को उसकी चार तेज करने के लिये बार बार रगड़ते हैं ।

चमोटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चाम+छोटा (प्रत्य०)] १. चाबुक । कोड़ा । उ०—(क) माखनचोर री में पायो । मैं जु कही सखी होतु कहा है भाजन लगत भुझायो । जो चाही तो जान क्यों वैहै बहूत दिननु है खायो । बार बार हौं तूँका लागी मेरी बात न आयो । नोई नेत की करौं चमोटी घूँघट में डरवायो । बिहंसति निकसि रही दो दंतियाँ तब सै कंठ लगायो । मेरे लाल को मारि सकै को रोहनि गहि हलरायो । सूरदास प्रभु बालक सीला बिमल बिमल यश गायो ।—सूर (चन्द०) । (ख) छोटी परे उचटें सिर चोटी चमोटी लगे मनो काम गुरु

की ।—(चन्द०) । २. पतली छड़ी । कमची । बेंत । उ०—चमोटी लगे छमाछम । बिद्या भावै भ्रमाभ्रम ।—(पाठशाला के लड़के) । ३. वह चमड़ा जिसे कैदियों की बेड़ियों में लोहे की रगड़ से बचने के लिये लगाते हैं । ४. चमड़े का वह टुकड़ा जिसपर नाई छुरे को चार घिसते हैं । ५. चमड़े का चार पाँच हाथ लंबा तस्मा जो खराद या सान में लपेटा रहता है और जिस खींचने से खराद या सान का चक्कर घूमता है ।

चमोवा—संज्ञा पुं० [हि० चमोवा] दे० 'चमोवा' ।

चमोवा—संज्ञा पुं० [हि० चाम+छोवा (प्रत्य०)] वह भद्दा जूता जिसका तला चमड़े से सिया गया हो । चमरोषा ।

चम्मच—संज्ञा पुं० [फ़ा० तुल० सं० चमस्] एक प्रकार की हुलकी कलखी जिससे दूध, चाय तथा और भी खाने पीने की चीजें चलाते और निकालते हैं ।

चम्म चम्म—क्रि० वि० [हि० चमचम या चमाचम] तेज या तीखी चमक सहित । झलाझल चमक के साथ ।

चम्मड़(^५)—संज्ञा पुं० [हि० चमड़ा] १. चमड़ा । २. शरीर (लाश०) । उ०—चम्मड़ दई बलाइ बिरह दी किसे ह्राह गया ।—घनानंद, पृ० ३४० ।

चम्मल—संज्ञा पुं० [हि० चमला] दे० 'चमला' ।

चम्मोरानी—संज्ञा पुं० [म्] लड़कों का एक खेल जिसे 'सात समुंदर' भी कहते हैं ।

चमित्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] चम्मच में रखा हुआ घन या खाने की वस्तु ।

चम्रोथ—वि० [सं०] चम्मच में रखा हुआ ।

चय—संज्ञा पुं० [सं०] १. समूह । ढेर । राशि । २. घुस्स । टीला । ढूह । ३. गड़ । किला । ४. किसी किले या शहर के चारों ओर रक्षा के लिये बनाई हुई दीवार । घुस । कोट । चहार-दीवारी । प्राकार । ५. बुनियाद जिसके ऊपर दीवार बनाई जाती है । नींव । ६. बबूतरा । ७. चौकी । ऊँचा आसन । ८. कफ, वात या पित्त की विशेष अवस्था । ९. यज्ञ के लिये अग्नि आदि का एक विशेष संस्कार । चपन । १०. दुर्ग का द्वार या फाटक (को०) । ११. तिपाई (को०) । १२. लकड़ी का ढेर (को०) । १३. आवरण (को०) । १४. त्रिदोषों में से वात, पित्त या कफ किसी एक का उभर जाना (को०) ।

चयक—वि० [सं०] चयन करनेवाला (का०) ।

चयन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. हकट्टा करने का कार्य । संग्रह । संचय । २. चुनने का कार्य । चुनाई । ३. यज्ञ के लिये अग्नि का संस्कार । ४. क्रम से लगाने की क्रिया । चुनने की क्रिया । ५. क्रम से रखना या लगाना (को०) ।

चौ०—चयनशील = संग्रह करनेवाला या चुननेवाला ।

चयन^२(^५)—संज्ञा पुं० [हि० चैन] दे० 'चैन' ।

चयनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चुनी हुई रचनाओं का संग्रह । वह संग्रह जिसमें कविता, कहानी, लेखादि, चुनकर रखे गए हों । २. चयन करनेवाली स्त्री (को०) ।

चयनीय—वि० [सं०] चयन करने योग्य ।

चयित—वि० [सं०] चुना हुआ [क्री०] ।

चरेद—संज्ञा पुं० [फा० चरिद] चरनेवाले पशु ।

चर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा की ओर से नियुक्त किया हुआ वह मनुष्य जिसका काम प्रकाश या गुप्त रूप से अपने तथा पराए राज्यों की भीतरी दशा का पता लगाना हो । गूढ़ पुरुष । उ०—पठए अबध चतुर चर चारी ।—तुलसी (शब्द०) । २. किसी विशेष कार्य के लिये कहीं भेजा हुआ आदमी । दूत । कासिब । ३. वह जो चले । जैसे,—घनुचर, खेचर, निशिचर । ४. ज्योतिष में वेदांतर जिसकी सहायता दिनमान निकालने में ली जाती है । ५. खंजन पक्षी । ६. कोड़ी । कपदिका । ७. मंगल । भीम । ८. पाँव से खेला जानेवाला एक प्रकार का लूभा । ९. नवियों के किनारे या संगमस्थान पर की वह गीली धूमि जो नदी के साथ बहकर आई हुई मिट्टी के जमने से बनती है । १०. दण्डल । कीचड़ । ११. नवियों के बीच में बाखू का बना हुआ ढाण्ड ।

चर^२—संज्ञा पुं० [हि०] १. छिछला पानी ।—(लश०) । २. नदी का तट ।—(लश०) । ३. नाव या जहाज में एक मुड़े घर्षात् घाड़ी लगी हुई लकड़ी के बाहुर की ओर निकले हुए भाग से दूसरे मुड़े के बीच का स्थान ।—(लश०) ।

चर^३—वि० [सं०] १. आपसे आप चलनेवाला । जंगम । जैसे,—चर जीव, चराचर । २. एक स्थान पर न ठहरनेवाला । अस्थिर । जैसे,—चर राशि । चर नक्षत्र । ३. खानेवाला । आहार करनेवाला ।

चर^४—संज्ञा [अनु०] कागज, कपड़े आदि के फटने का शब्द ।

विशेष—खट, पट, आदि शब्दों के समान इसका प्रयोग भी से' विभक्ति के साथ ही क्रि०वि० वत् होता है अतः इसका लिगविचार व्यर्थ है ।

चरघन्नी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चार घाना] दे० 'घरन्नी' । उ०—दो घन्नी और चरघन्नी भुजाने में भी एक एक पैसा भुजाना लगता है ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० ३, पृ० ६४६ ।

चरई^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] पत्थर पर ईंट आदि का बना हुआ वह गहरा गड्ढा जिसमें जानवरों को चारा या पानी दिया जाता है ।

चरई^२—संज्ञा स्त्री० [सं० चरिका] तार को वह खूँटी जिसमें जुलाहे तार आदि बाँधते हैं ।

चरक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूत । कासिब । चर । २. गुप्तचर । भेदिया । जासूस । ३. वैद्यक के एक प्रधान आचार्य जो शेषनाग के अवतार माने जाते हैं, और जिनका रचा हुआ 'चरकसंहिता' वैद्यक का सर्वमान्य ग्रंथ है । इसके उपदेशक अत्रिपुत्र पुनर्वसु, ग्रंथकर्ता अग्निवेश और प्रतिस्कारक चरक हैं । ४. मुसाफिर । बटोही । पथिक । ५. दे० 'चटक' ६. चरकसंहिता नाम का ग्रंथ । ७. बीदों का एक संप्रदाय । ८. मिश्रमंगा । मिश्रक ।

चरक^२—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की मछली । उ०—मारे चरक चान्ह पर हासी । जल तजि कहाँ जाहि जलवासी ।—जायसी (शब्द०) ।

चरक^३—संज्ञा पुं० [सं० चक्र] कुण्ड का दाग । सफेद दाग । फूल ।

चरक^४—संज्ञा पुं० [अनु०] फटना । दरकना ।

चरकटा—संज्ञा पुं० [हि० चारा + काटना] १. ऊँट या हाथी के लिये चारा काटकर लानेवाला आदमी । २. तुच्छ मनुष्य । छोटे वित्त का आदमी ।

चरकना^१—क्रि० वि० [अनु०] चिटकना । फटना ।

चरकसंहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] चरक मुनि का बनाया हुआ वैद्यक संबंधी सर्वमान्य एवं अतिप्राचीन उपलब्ध संस्कृत ग्रंथ ।

चरका^१—संज्ञा पुं० [फा० चरकह] १. हलका पाव । जस्म ।

क्रि० प्र०—खाना ।—बेना ।—लगाना । उ०—गबरू जवान के मशतरे हुस्त का मैं भी चरका खाए हुए हूँ ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २६ ।

२. बरस पातु से दागने का चिह्न । ३. हानि नुकसान । धक्का । क्रि० प्र०—बेना ।

४. बोझ ।

क्रि० प्र०—खाना ।—बेना ।—पढ़ाना ।

चरका^२—संज्ञा पुं० [शे०] गड्ढा नामक अन्न का एक भेद ।

चरका^३—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार समय का कुछ विशेष अंश जिसका काम दिनमान स्थिर करने में पड़ता है । २. वह समय जो किसी ग्रह को एक अंश से दूसरे अंश पर जाने में लगता है ।

चरकीन—संज्ञा पुं० [हि० चिरकीन] मल । पाखाना । वि० दे० 'चिरकीन' । उ०—चुगली उगली चीज है, चुगली है चरकीन । काग हुँवै के कूयरो हण रे रस आधीन ।—बाँकी०, ग्रं०, भाग २, पृ० ५४ ।

चरकका^१—संज्ञा पुं० [फा० चरकह] धाब । चोट । उ०—जैसे न बीर सारंग तं, भोरा नाम अभंग भर । भुगवै कीन को भुगि हैं, करों चरकका पगवर ।—पृ० रा०, १२ । १२४ ।

चरख—संज्ञा पुं० [फा० चख] १. पहिए के आकार का प्रयुक्त इसी प्रकार का और कोई घूमनेवाला गोल चक्कर । चाक ।

विशेष—इस प्रकार की चक्कर की सहायता से कुएँ से पानी खींचा जाता है, प्रतिशबाजी छोड़ी जाती है तथा इसी प्रकार के और बहुत से काम होते हैं ।

२. खराब ।

यौ०—चरखका ।

क्रि० प्र०—चढ़ना । चढ़ाना ।

३. लकड़ी का एक ढाँचा जिसमें चार अंगुल की दूरी पर दो छोटी चरखियाँ लगी रहती हैं और जिनके बीच में रेणम या कलवत्त लपेटा जाता है । ४. सूत कातने का चरखा । ५. कुम्हार का चाक । ६. गोफन । डेलबाँस । ७. वह गाड़ी जिसपर तोप चढ़ी रहती है । उ०—चरखिनु आकरखें सदजन बरसे परदल चरखें भसे भसे ।—सूदन (शब्द०) ।

चरख^२—संज्ञा पुं० [फा० चरग] तेंदुए की जाति का लकड़बग्घा नाम का जानवर । बाज की जाति की एक शिकारी चिड़िया ।

चरखकरा—वि० [फ्रा० चरख] १. चरख की डोरी या पट्टा धींचनेवाला । २. चरख चालानेवाला ।

चरखड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० चरख] एक प्रकार का दरवाजा ।

चरखपूजा—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० चरख + सं० पूजा] एक प्रकार की पूजा जो चैत की संक्रांति को होती है ।

विशेष—इसका आयोजन ७ या ८ दिन पहले होता है । यह पूजा शिव को प्रसन्न करने के लिये की जाती है । इसमें भक्त शिव नाचे बजाते और नाचते हुए भक्ति में रमते हैं । यहाँ तक कि कोई कोई अपनी जीभ छेदते हैं, कोई लोह के काँटे पर खड़े हैं और कोई अपनी पीठ को चरखी से नाचकर चारों ओर घूमते हैं । जिस खंभे पर इस चरखे को लगाकर चारों ओर घूमते हैं, उसे चरख कहते हैं । ये सब क्रियाएँ एक प्रकार के संन्यासी करते हैं । ग्रंथेजी शासन-काल में ये क्रियाएँ बहुत संश्लिष्ट हो गईं । बृहद्भक्त पुराण नामक ग्रंथ में इस पूजा का विधान और फल लिखा हुआ है । ऐसी कथा है कि चैत की संक्रांति को बाण नामक एक शीश राजा ने भक्ति के भावसे अपने शरीर का रक्त चढ़ाकर शिव को प्रसन्न किया था ।

चरखा—संज्ञा पुं० [फ्रा० चरख] १. पहिए के आकार का घबघा इसी प्रकार का कोई और घूमनेवाला गोल चक्कर । चरख । २. लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का यंत्र जिसकी सहायता से ऊन, कपास या रेशम आदि को कातकर सूत बनाते हैं । रहट ।

विशेष—इसमें एक ओर बड़ा गोल चक्कर होता है, जिसे चरखी कहते हैं और जिसमें एक ओर एक दस्ता लगा रहता है । दूसरी ओर लोहे का एक बड़ा सूया होता है, जिसे तकुम्रा या तकला कहते हैं । जब चरखी घुमाई जाती है तब एक पतली रस्ती को सहायता से, जिसे मासा कहते हैं, तकुम्रा घूमने लगता है । उसी तकुम्रे के घूमने से उसके सिरे पर लगे हुए ऊन या कपास आदि का कतकर सूत बनता जाता है ।

क्रि० प्र०—कातना ।—चलाना ।

१. कुएँ से पानी निकालने का रहट । ४ ऊँचा का रस निकालने के लिये बनी हुई लोहे की कल । ५- एक प्रकार का बेलन जिससे पीटिए तार खींचते हैं । ६. सूत लपेटने की गराड़ी । चरखी । रील । ७. गराड़ी । घिरनी । ८. बड़ा या बेडोस पहिया । ९. रेशम खोलने का 'उड़ा' नाम का औजार । १०. गाड़ी का वह ढाँचा जिसमें जोतकर नया घोड़ा निकालते हैं । खड़खड़िया । ११. वह स्त्री या पुरुष जिसके सब अंग बुढ़ापे के कारण बहुत शिथिल हो गए हों । १२. भाँड़े बसेड़े या भँझट का काम ।

क्रि० प्र०—निकलना ।

१३. कुपती का एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब जोड़ (विपक्षी) नीचे होता है ।

विशेष—इसमें जोड़ की दाहिनी ओर बैठकर अपनी बाईं टाँग जोड़ भी दाहिनी टाँग में भीतर से डालकर निकालते हैं और अपनी दाहिनी टाँग जोड़ की गर्दन में डालकर दोनों पैर मिलाकर बंध करते हैं जिससे जोड़ चित्त हो जाता है ।

चरखाना—संज्ञा पुं० [हि० चरखाना] दे० 'चरखाना' ।

चरखी—संज्ञा स्त्री० [हि० चरखा का स्त्री (प्रत्यय०)] १. पहिए की तरह घूमनेवाली कोई वस्तु । २. छोटा चरखा । ३. कपास धोतने की चरखी । बेलनी । घोटनी । ४. सूत लपेटने की फिरकी । ५. धनुष के आकार का लकड़ी का एक यंत्र जिसमें एक खूँटी लगी रहती है और जिसकी सहायता से मोटी रस्सियाँ बनाई जाती हैं । ६. कुएँ आदि से पानी खींचने की गराड़ी । घिरनी । ७. पतली कमनियों से बना हुआ जुलाहों का एक औजार जिसकी सहायता से कई सूत एक में लपेटे जाते हैं । ८. कुम्हार का चाक । ९. एक प्रकार की आतिथबाजी जो छूटने के समय खूब धूमती है ।

चरखे का गलखोड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] कुपती का एक पेंच ।

विशेष—जब विपक्षी उससे उखाड़ से फेंकना चाहता है, तब उसकी पीठ पर से चरखे के समान करवट लेकर अपनी टाँग उसकी गर्दन पर चढ़ाते हैं और उसका एक हाथ और एक पाँव गलखोड़े से बाँधकर उसे गिरा देते हैं । इसी को चरखे का गलखोड़ा कहते हैं ।

चरगा—संज्ञा पुं० [फ्रा० चरण] १. बाज की जाति की एक शिकारी चिड़िया । चरख । उ०—चरण चंगुल चालकहि नेम श्रेष्ठ की पीर । तुलसी परबस हाडपर परिहैं पुहुमी नीर ।—तुलसी (शब्द०) । २. लड़कबग्घा नामक जंतु जो कुत्तों का शिकार करता है ।

चरगजी—संज्ञा स्त्री० [हि० चार + गज + ई (प्रत्यय०)] कफन । अर्थी का कपड़ा । शव ढाँकने का कपड़ा । उ०—चरगजी चरगजी मंगाया, चढ़ा काठ की घोड़ी । चारों कोने प्राण लगाया, फूँक दियो जस होरी ।—संतबाणी०, भाग २, पृ० ४ ।

चरगल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का शिकारी पक्षी । चरण । उ०—मृगमद मृगवन स्वान नखानहु । ग्राम स्वान बहु गढ़ महँ ग्रामहु । चुरर बाज बहु कुही कुहेला । चरगल गरवा सोकर भेला ।—प० रा०, पृ० १८ ।

चरगृह, चरगोह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चरराशि' ।

चरचना—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चन] १. देह में चंदन आदि लगाना । उ०—चरचति पवन अंग हरन प्रति ताप पीर के ।—व्यास । (शब्द०) २. लेपना । पोतना । ३. भीषना । अनुमान करना । समझ लेना । उ०—चरचहि चेष्टा परखहि नारी निपट नाहि प्रीति तहँ वारी ।—(शब्द०) । ४. पहचानना । उ०—बेला चरचन गुण गुन गावा । खोजत पूछि परम रस पावा ।—जायसी (शब्द०) ।

चरचना—क्रि० सं० [सं० चर्चन] पूजन करना । उ०—तबहि नंद जू कहौ श्याम सो हमरे सुरपति पूजा । मोहन गिरि पै बाहि चरचिहँ याही है मुखपूजा ।—सूदन (शब्द०) ।

चरचर—संज्ञा स्त्री० [धनु०] चरचराने की ध्वनि या स्थिति ।

चरचरा—संज्ञा पुं० [धनु०] साँकी रंग की एक चिड़िया जिसकी

जिसकी छाती सफ़ेद होती है और जिसके शरीर के ऊपरी भाग पर चारबानेदार धारियाँ होती हैं।

विशेष—यह प्रायः ६ से १० अंगुल तक लंबी होती है और समस्त भारत में पाई जाती है। इसका अंश देने का कोई निश्चित समय नहीं है। इसके मुनिया (लाल, हरा, तेलिया आदि) और सिपाड़ा आदि अनेक भेद हैं।

चरचरा^१—वि० [हि० चिचिचड़ा] दे० 'चिचिचड़ा'।

चरचराटा—संज्ञा पुं० [देश०] रोबदार। दबदार। उ०—नाना-प्रब तो सब तरफ़ अंग्रेजों का चरचराटा है।—भासी०, पृ० ४७।

चरचराना^१—क्रि० प्र० [अनु०] १. चर चर शब्द के साथ दूटना या जलना। उ०—गगड़ गगड़ान्मो खंम फाटयो चरचराय के निकस्यो नर नाहर को रूप प्रति भयानो है।—(शब्द०)।

२. बाव आदि का कुश्की से तनना और दई करना। चरना।

चरचराना^२—क्रि० स० चर चर शब्द के साथ (लकड़ी आदि) तोड़ना।

चरचराहट—संज्ञा स्त्री० [हि० चरचराना + हट (प्रत्य०)] १. चरचराना का भाव। २. चर चर शब्द के साथ किसी चीज के टूटने या फटने का शब्द।

चरचरी^५—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] दे० 'चर्चरी' या 'चौचर'।

चरचा—संज्ञा स्त्री० [हि० चर्चा] दे० 'चर्चा'। उ०—(क) हरिजन हरि चरचा जो करे। दासी सुत जो हिरदै चरे।—सूर (शब्द०)। (ख) निज लोक बिसरे लोकपति घर की न चरचा चालहीं।—तुलसी (शब्द०)। (ग) पुरवासियों के प्यारे राम के अभिषेक की उस चरचा ने प्रत्येक पुरवासी को हवित किया।—लक्ष्मण (शब्द०)।

चरचारी^५—वि० [हि० चरचा] १. चरचा चलानेवाला। २. निंदक। शिकायत करनेवाला। उ०—हैं हारी समुझाई के चरचारीहि डरे न। लगे लगीहैं नैन ये नित चित करत अचैन।—भृं० सत० (शब्द०)।

चरचित^५—वि० [सं० चचित] दे० 'चचित'।

चरचित्त^५—वि० [सं० चलचित्त] दे० 'चलचित्त'।

चरज—संज्ञा पुं० [फ़ा० चरज] चरज नाम का पक्षी। उ०—हारिल चरज आप बेंद परे। बनकुकरी जलकुकरी चरे।—जायसी (शब्द०)।

चरजना^५—क्रि० प्र० [सं० चर्जन] १. बहुकावा या मुलावा देना। बहाली देना। उ०—चंचला चमाकै चहुँ ओरन ते बाय मरी, चरज गई ती फेर चरजन लागी री।—पद्माकर (शब्द०)। २. अनुमान करना। अंदाज लगाना। उ०—अरज गरज सुनि चरजि चित महँ हरज मरज बरकाई।—रघुराज (शब्द०)।

चरट—संज्ञा पुं० [सं०] संजन पक्षी।

चरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पग। पैर। पाँव। कदम।

चौ०—चरणपादुका। चरणपीठ। चरणचवन=चरण छुना।

चरणसेवा=बड़ों की सेवा शुद्धा।

मुहा०—चरण छुना=दंडवत या प्रणाम आदि करना। बड़े का अभिवादन करना। चरण सेना=पैर रखना। उ०—जेहि

गिरि चरण देह हनुमंता।—तुलसी (शब्द०)। चरण पड़ना=धागमन होना। कदम जाना। जैसे—जहाँ जहाँ चरण पड़े संतन के तहँ तहँ बंटाचार।—(शब्द०)। चरण सेना=पैर पड़ना। पैर छुकर प्रणाम करना।

२. बड़ों का सानिध्य। बड़ों की समीपता। बड़ों का संग। उ०—खाल सखा कर जोरि कहत है हमहि श्याम तुम जनि बिसरायहु। जहाँ जहाँ तुम देह चरत हो तहाँ तहाँ जनि चरण छुड़ायहु।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—में आना।—में रखना।—में रहना।—छूटना।—छोड़ना।

३. किसी छंद, बलोक या पद्य आदि का एक पद। वस।

चौ०—चरणगुप्त।

४. किसी पदार्थ का चतुर्भाज। किसी चीज का चौथाई भाग। जैसे,—नक्षत्र का चरण, युग का चरण आदि। ५. मूल। जड़। ६. गोत्र। ७. क्रम। ८. आचार। ९. विचरण करने का स्थान। घूमने की जगह। १०. सूर्य आदि की किरण। ११. अनुष्ठान। १२. गमन। जाना। १३. भक्षण। चरने का काम। १४. नदी का वह भाग जो तटवर्ती पर्वत, गुफा आदि तक चला गया हो (को०)। १५. वेद की कोई शाखा (को०)। १६. संभा। स्तंभ (को०)। १७. किसी संप्रदाय का बिहित कर्म (को०)। १८. आचार। सहारा (को०)।

चरणकमल—संज्ञा पुं० [सं०] कमलवत् चरण। कमल के समान पैर।

चरणकरणानुयोग—संज्ञा पुं० [सं०] जैन साहित्य में वे प्रबंध आदि जिसमें किसी के चरित्र पर बहुत ही सूक्ष्म रूप से विचार या व्याख्या की गई हो।

चरणगत—वि० [सं०] १. चरणों पर गिरा हुआ। २. प्राप्त। प्रचीन।

चरणगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चित्रकाव्य जिसके कई भेद होते हैं। इसमें कोष्ठक बनाकर अक्षर भरे जाते हैं, जिनके पढ़ने के क्रम भिन्न होते हैं। जैसे, (१)—

ई	जी	सं	त	कि	रा	र	ली
इ	त	गी	ले	ये	म	स	न
झ	मी	सं	त	अ	का	व	दी

इंद्रजीत संगीत ले किये राम रस लीन। सुद गीत संगीत ले भये काम बस लीन।—(शब्द०)। (२)—

रा	का	रा	ज
म	स	मा	स
रा	धा	मी	त
सा	ल	सी	मु

बो००—राकाराच चराकारा मासमास समासमा । राबा भीत तमीधारा साल सीस सुसील सा (शब्द०) ।

चरणचार—संज्ञा पुं० [सं० चरण + चार] गमन । गति । चलना ।
उ०—कितने वन उपवन उद्यान कुसुम कसि सजे निरुपमिते,
सहज मार चरणचार से लजे ।—अनामिका, पृ० १४१ ।

चरणप्रथि—संज्ञा स्त्री० [सं० चरणप्रथि] पैरों के नीचे की तरफ की गाँठ (को०) ।

चरणचिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैरों के तलुए की रेखा । पाँव की लकीरें । २. कीचड़, धूल या बालू आदि पर पड़ा हुआ पैर का निशान । ३. पत्थर आदि पर बनाया हुआ चरण के आकार का चिह्न जिसका पूजन होता है ।

चरणसल—संज्ञा पुं० [सं०] पैर का तलुआ ।

चरणदास—संज्ञा पुं० [हि०] दिल्ली के रहनेवाले एक महात्मा साधु का नाम जो जाति के दूसरे बनिए थे ।

विशेष—इनका जन्म सं० १७६० वि० में और क़रीबत सं० १८३८ वि० में हुआ था । इनके बनाए कई ग्रंथ हैं जिनमें से स्वरोदय बहुत ही प्रसिद्ध है । इन्होंने अपना एक पुण्य संप्रदाय चलाया था । इस संप्रदाय के साधु अबतक पाए जाते हैं और चरणदासी साधु कहलाते हैं ।

चरणदासी—वि० [हि० चरणदास + ई (प्रत्य०)] महात्मा चरणदास के संप्रदाय का । चरणदास का अनुयायी ।

चरणदासी—संज्ञा स्त्री० [सं० चरण + दासी] १. स्त्री । पत्नी । २. ज़ूत । पनही ।

चरणप—संज्ञा पुं० [सं०] बूझ । पावप (को०) ।

चरणपर्व—संज्ञा पुं० [सं० चरणपर्व] दे० 'चरणपर्वण' (को०) ।

चरणपर्वण—संज्ञा पुं० [सं०] गुल्फ । पैड़ी ।

चरणपादुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लड़ाई । पाँवड़ी । २. पत्थर आदि पर बना हुआ चरण के आकार का चिह्न जिसका पूजन होता है । चरणचिह्न ।

चरणपीठ—संज्ञा पुं० [सं०] चरणपादुका । पाँवड़ी । लड़ाई ।

चरणयग, चरणयुगल—संज्ञा पुं० [सं०] दोनों चरण या पैर (को०) ।

चरणरज—संज्ञा पुं० [सं०] पाँव की धूल ।

चरणलग्न—वि० [सं०] दे० 'चरणगत' ।

चरणव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] वेद की शाखाओं का विभाग करनेवाला एक ग्रंथ (को०) ।

चरणशरण—संज्ञा स्त्री० [सं०] चरण का आश्रय । अधीनता ।
उ०—मरा हूँ हजार मरण, पाई तब चरण शरण ।—
भारतना, पृ० ६ ।

चरणशुश्रूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चरणसेवा' ।

चरणसेवक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो पाँव दबाए या सेवा करे ।
२. शूच्य । नौकर (को०) ।

चरणसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं० चरण + सेवा] पैर दबाना । बड़ों की सेवा ।

चरणसेवी—संज्ञा पुं० [सं० चरणसेवि] १. सेवक । नौकर । २. चरणों में रहनेवाला (को०) ।

चरणा—संज्ञा पुं० [हि० चरण] काछा । वि० दे० 'चरना' ।
क्रि० प्र०—काछना ।

चरणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों की योगि का एक रोग । इस रोग में मैथुन के समय स्त्री का रज बहुत जल्दी स्थलित हो जाता है ।

चरणान्त—संज्ञा पुं० [सं०] अक्षपाव । गीतम ।

चरणान्द्रि—संज्ञा पुं० [सं०] पुनार नामक स्थान जो काछी और मिर्जापुर के बीच है ।

विशेष—यहाँ एक छोटा सा पहाड़ है, जिसकी एक शिला पर बुद्धदेव का चरणचिह्न है । आजकल यह शिला एक भस्मजिह्व में रखी हुई है और मुसलमान उसपर के चिह्न को 'कदम-रसूल' बतलाते हैं ।

चरणगत—संज्ञा स्त्री० [सं०] पैरों पर गिरना (को०) ।

चरणानुग—वि० [सं०] १. किसी बड़े के साथ या उसकी शिक्षा पर चलनेवाला । अनुगामी । २. चरणगत ।

चरणामृत—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पानी जिसमें किसी महात्मा या बड़े के चरण छोए गए हों । पादोदक ।

मुहा०—चरणामृत लेना = किसी महात्मा या बड़े का चरण छोकर पीना ।

२. एक में मिला हुआ दूध, दही, घी, शक्कर और बाह्य जिसमें किसी देवमूर्ति को स्नान कराया गया हो ।

विशेष—हिंदू लोग बड़े पूज्य भाव से चरणामृत पीते हैं । चरणामृत बहुत थोड़ी मात्रा में पीने का विधान है ।

क्रि० प्र०—लेना ।

मुहा०—चरणामृत लेना = बहुत ही थोड़ी मात्रा में कोई तरल पदार्थ पीना । चरणामृत पीना = पंचामृत लेना । चरणामृत माथे या सिर लगाना = किसी के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिये उसके पादोदक को माथे पर रखना । चरणामृत को प्रणाम करना ।

चरणायुध—संज्ञा पुं० [सं०] मुरगा । प्ररुणशिला ।

चरणारविंद—संज्ञा पुं० [सं०] कमल के समान चरण । चरणकमल ।

चरणार्द्ध—वि० [सं०] १. चरण या चतुर्थांश का आधा । किसी चीज का आठवाँ भाग । २. किसी पंक्त या छंद के पद का आधा भाग ।

चरणारुद्धन—संज्ञा पुं० [सं० चरणारुद्धन] पैरों से रौंदना । कुचलना (को०) ।

चरणि—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य ।

चरणोदक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चरणामृत' ।

चरणोपधान—संज्ञा पुं० [सं०] पाँव रखने का स्थान । पाँवदान (को०) ।

चरण्य—वि० [सं०] चरणशील । चलनेवाला । गतिशील (को०) ।

चरस—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़ा पत्ती जिसका शिकार किया जाता है । वि० दे० 'चीनी मोर' ।

चरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चलने का भाव । २. पुण्यी ।

चरसिरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] मिर्जापुर के जिले में पैदा होनेवाली एक प्रकार की कपास जो मामूली होती है ।

चरसी—संज्ञा पुं० [हिं० चरना (= जाना)] वह जो बत न हो । बत के दिन उपवास न करनेवाला ।

चौ०—चरती चरती ।

चरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] चलने का भाव ।

चरथ^१—वि० [सं०] चलनेवाला । जंगम ।

चरथ^२—संज्ञा पुं० १. वह जो चलनेवाला या गतिशील हो । २. गति । चलनशीलता । ३. जीवन । ४. मार्ग [शब्द०] ।

चरदास—संज्ञा स्त्री० [देश०] मथुरा जिले में होनेवाली एक प्रकार की कपास जो कुछ बटिया होती है ।

चरद्वय—संज्ञा पुं० [सं०] वह संपत्ति जिसका स्थानांतर किया जा सके । चल संपत्ति [को०] ।

चरनग^१—संज्ञा पुं० [सं० चरण + गज] पैर ।

चरन^२—संज्ञा पुं० [सं० चरण] दे० 'चरण' । बूक परी सेवन नहि पाए, चरन सरोज पुनीत । —पोद्दार ग्रंथि० पृ०, पृ० २३७ ।

विशेष—'चरन' के योगिक आदि के लिये देखो 'चरण' के योगिक ।

चरनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण और चनिष्ठा आदि कई नक्षत्र जिनकी संख्या भिन्न प्राचायों के मत से असंगत है ।

चरनचरा—संज्ञा पुं० [सं० चरण + चर] पैदल सिपाही ।

चरनदासी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चरण + दासी] जूता । पनही । —(साधु) ।

चरन धरन—संज्ञा पुं० [सं० चरण + हिं० धरना] खड़ाऊँ ।

चरनपीठ^१—संज्ञा पुं० [सं० चरणपीठ] दे० 'चरणपीठ' । उ०—
(क) तुलसी प्रभु निज चरनपीठ मिस भरत प्रान रखवारी ।—
तुलसी (शब्द०) । (ख) सिंहासन सुभग राम चरनपीठ धरत । चालत सब राज काज आयसु अनुसरत ।—तुलसी (शब्द०) ।

चरनवरदार^१—संज्ञा पुं० [सं० चरण + फ्रा० बरदार] बड़े आचमियों का जूता उठाने और रखनेवाला नौकर ।

चरनवस्त्र^१—संज्ञा पुं० [सं० चरण + वस्त्र] पाँव के वस्त्र । उ०—जो जहाँ ली श्रीगुसाईं जी नारायणदास के घर विराजे तहाँ ली नारायणदास नित्य नौतन सामग्री, धोती, उपरेना, बागा, सिज्या, वस्त्र, चरनवस्त्र सब नए नरवाई करते ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११२ ।

चरना^१—क्रि० स० [सं० चर (= चलना) मि० फ्रा० चरान] पशुओं का खेतों या मैदानों में घूम घूमकर घास चारा आदि खाना ।

मुहा०—घरघ का चरने जाना = दे० 'घरघ' के मुहावरे ।

चरना^२—क्रि० घ० [सं० चर (= चलना)] घूमना फिरता । विचरना । उ०—जेहि ते विपरीत क्रिया करिये । दुख से सुख मानि सुखी करिये ।—तुलसी (शब्द०) ।

चरना^३—संज्ञा पुं० [सं० चरण (= पैर)] काछा । उ०—इस बात के

सुनते ही राजा ने चरना काछकर उस देव को ललकारा ।—
कल्लू (शब्द०) ।

चरना^४—संज्ञा पुं० [देश०] सुनारों का एक औजार जिससे नक्काशी करने में सीधी लकीर या लंबा चिह्न बनाया जाता है ।

चरनायुध^१—संज्ञा पुं० [सं० चरणायुध] दे० 'चरणायुध' । उ०—
परे न पहर चरनायुध करें न सोर पसरे न प्राची धीर कर
दिनकर को ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

चरनि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चर (= गगन)] चाल । गति । उ०—ससत
कर प्रतिबिंब मनि आगन घुटुननि चरनि ।—तुलसी (शब्द०) ।

चरनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरना] १. पशुओं के चरने का स्थान । चरी । चरगाह । २. वह नाद जिसमें पशुओं को खाने के लिये चारा दिया जाता है । ३. चोतरे के आकार का बना हुआ वह लंबा स्थान जिसपर पशुओं को चारा दिया जाता है । ४. पशुओं का आहार, घास, चारा आदि । उ०—कमल बदन कुम्हिलात सबन के गोवन छड़ी तृन की चरनी ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—कहीं कहीं चरही शब्द भी इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

चरन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं० चार + घाना] दे० 'चवन्नी' ।

चरपट—संज्ञा पुं० [सं० चपट] १. चपत । तमाचा । चप्पड़ । २. किसी की वस्तु उठाकर भाग जानेवाला । चार्ड । उचक्का । उ०—(क) जो लौं जीवे तो लौं हरि भजि रे मन और हात सब बादि । जोस चारि के हला भला तूँ कहा लेइगो लादि । बनमद जोबनमद राजमद भूत्यो नगर विवादि । कहि हरिदास लोभ चरपट यों काहे की लगे फिरादि ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) । (ख) चरपट चोर गाँठि छोरा मिले रहहि तेहि नाच । जो तेहि हाट सजग रहइ गाँठि ताकरि गढ़ बाँच ।—जायसी (शब्द०) । ३. एक प्रकार का छंद । चपट । उ०—तोमर उनइस चरपट साता । हरियक आठ भुजंगप्रयाता ।—विश्राम (शब्द०) ।

चरपनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] देश्या का माना । मुजर । (देश्याओं और सपदाइयों की परिभाषा) ।

चरपर—वि० [हिं० चरपरा] दे० 'चरपरा' ।

चरपरा^१—वि० [घनु०] स्वाद में तीक्ष्ण । झालदार । तीता । उ०—(क) खंडहि, कीन्ह आबि चरपरा । लोग इलाची सो खंडबरा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) मीठे चरपरे उज्ज्वल कीरा । होस होइ तो त्याऊ घोरा ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—नमक, मिर्च, लटाई आदि के संयोग से यह स्वाद उत्पन्न होता है ।

चरपरा^२—वि० [सं० चपल अथवा हिं० घनु०] चुस्त । तेज । फुरतीला ।

चरपराना—क्रि० घ० [हिं० चरपर] घाव का चराना । घाव में खुशकी के कारण तनाव लिए हुए पीड़ा होना ।

चरपराहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० चरपरा + आहट (प्रत्य०)] १. स्वाद की तीक्ष्णता । झाल । २. घाव आदि की जलन । ३. द्वेष । डाह । ईर्ष्या ।

चरपरी—वि० स्त्री० [घनु०] दे० 'चटपटी' । उ०—चरपरी बोली हास प्रकाश के बचन साथ के ।—सहजो०, पृ० १८ ।

चरफरा—वि० [हि०] दे० 'चरफरा'।

चरफराना—क्रि० प्र० [धनु०] तड़फड़ाना। तड़पना। उ०—
चरफराहि मग चलहि न जोरे। बन धुग मनहु प्रानि रष
जोरे।—तुलसी (शब्द०)।

चरब—वि० [फ्रा० चर्ब] १. तेज। तीखा। उ०—समर सरब से
चरब शस्त्र सत परब सरिस चरि।—गोपाल (शब्द०)।
२. चरबीदार। चिकना। स्निग्ध।

चौ०—चरबजबानी = (१) बहुत अधिक धीर जल्दी जल्दी
बोलना। (२) चिकनी चुपड़ी बातें करना। खुशामद करना।

चरबदस्त—वि० [हि० चरब + फ्रा० दस्त] १. कुशल चालक। २.
कारीगर (कौ०)।

चरबजबान—वि० [हि० चरब + फ्रा० जबान] १. बहुभाषी। २.
वाक्ता। ३. वापलूस। ४. बिना सोचे समझे बोलनेवाला।

चरबन—संज्ञा पुं० [सं० चर्बण] मुत्ता हुआ धन। चबैना। दाना।

चरबजुबानी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० चरबजुबानी] १. वापलूसी। वाक्ता-
लता। उ०—चरबजुबानी हाय हाय। सोखबपानी हाय
हाय।—भारतेंदु प्र०, भाग २, पृ० ६७८।

चरबाक—वि० [फ्रा० चर्ब (= तेज)] १. चतुर। चालाक। होशियार।
२. शोल। निभय। निडर। चंचल। उ०—राखे हैं सुर मदन
ये ऐसे ही चरबाक। पेनी ओहल की दरी अब नैनन की
बाँक।—रसनिधि (शब्द०)।

मुहा०—चरबाक बोझ = (१) जिसकी दृष्टि चंचल हो। चंचल
नेत्रवाला। (२) डीठ। निडर। शोल।

चरबा—संज्ञा पुं० [फ्रा० चरबह] प्रतिमूर्ति। नकल। साका।

मुहा०—चरबा उतारना = (१) साका खींचना। नक्शा उता-
रना। चित्र खींचना। (२) किसी की नकल करना।

चरबाई—वि० [हि०] दे० 'चरबाक'। उ०—सूधी राधे कुँवर।
ग्याम है प्रति चरबाई।—नंद० प्र०, पृ० १६५।

चरबाक—वि० [हि० चरबाक] दे० 'चरबाक'।

चरबाना—क्रि० प्र० [सं० चर्ब] ढोल पर चमड़ा मढ़ाना।

चरबी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] सफेद या कुछ पीले रंग का एक चिकना
गाढ़ा पदार्थ जो प्राणियों के शरीर में और बहुत से पौधों और
पशुओं में भी पाया जाता है। मेद। वषा। पीह।

विशेष—वेद्यक के अनुसार यह शरीर की सात धातुओं में से एक
है और मांस से बनता है। अस्थि इसी का परिवर्तित और
परिवर्धित रूप है। पाश्चात्य रासायनिकों के अनुसार सब
प्रकार की चरबियाँ गंध और स्वादरहित होती हैं और पानी
में घुल नहीं सकतीं। बहुत से पशुओं और वनस्पतियों की
चरबियाँ प्रायः दो या अधिक प्रकार की चरबियों के मेल से
बनी होती हैं। इसका व्यवहार औषध के रूप में खाने, मरहम
आदि बनाने, साबुन और मोमबत्तियाँ तैयार करने, हजिनों
या कलों में तेल की जगह देने और इसी प्रकार के दूसरे कामों
में होता है। शरीर के बाहर निकाली हुई चरबी गरमी में
पिघलती और सरसी में जम जाती है।

मुहा०—चरबी चढ़ना = मोटा होना। चरबी खाना = (१)
(किसी मनुष्य या पशु आदि का) बहुत मोटा हो जाना।
शरीर में मेद बढ़ जाना।

विशेष—ऐसी प्रवृत्ति में केवल शरीर की मोटाई बढ़ती है,
उसमें बल नहीं बढ़ता।

(२) मवाश होना। गर्व के कारण किसी को कुछ न समझना।
आँखों में चरबी खाना = दे० 'घाँस' के मुहावरे।

चरभ—संज्ञा पुं० [सं०] चर राशि। चरगृह।

चरभवन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में चर राशि।

चरभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ पशु चरते हैं। चरागाह।

चरम—वि० [सं०] अंतिम। हृद दर्जे का। सबसे बड़ा हुआ। छोटी
का। पराकाष्ठा।

चरम—संज्ञा पुं० १. पश्चिम।

यौ०—चरमगिरि = अस्तावल। उ०—रुचिरतर निज कनक-
किरणों को तपन, चरमगिरि को खींचता था कृष्ण सा।—
रंजि०, पृ० ६६।

२. अंत।

यौ०—चरमकाल = अंतकाल। मृत्यु का समय।

चरम—संज्ञा पुं० [सं० चर्मन्] दे० 'चर्म'।

यौ०—चरमदृष्टि = दे० 'चर्मदृष्टि'।

चरमर—संज्ञा पुं० [धनु०] किसी से तनी हुई या चोमड़ वस्तु (जैसे,
पूता, चारपाई) के दबने या मुड़ने का शब्द। जैसे,—उनका
पूता खूब चरमर बोलता है।

चरमरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चास जिसे तकड़ी भी
कहते हैं। वि० दे० 'तकड़ी'।

चरमरा—वि० [हि० चरमराना धनु०] चरमर शब्द करनेवाला।
जिससे चरमर शब्द निकले। जैसे,—चरमरा पूता।

चरमराना—क्रि० प्र० [धनु०] चरमर शब्द होना। जैसे,—पूते का
चरमराना।

चरमराना—क्रि० प्र० किसी चीज में से चरमर शब्द उत्पन्न करना।

चरमचली—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मचली] चंबल नदी।

चरमवयस्—वि० [सं० चरमवयस्] वृद्ध (कौ०)।

चरमराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मेष, कर्क, तुला और मकर राशि।

चरमाचल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चरमगिरि' (कौ०)।

चरमाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चरमगिरि' (कौ०)।

चरमू—संज्ञा पुं० [हि० चर्म] चर्म। त्वचा। उ०—चरमू सपरस
मिलि गयो सुधि बुधि रखी न कीह।—सुंदर० प्र०, भा० १
पृ० १८०।

चरमूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह मूर्ति जो एक ही जगह स्थापित न
रहे, बल्कि आवश्यकतानुसार अन्य स्थान पर भी लाई जा
सके (कौ०)।

चरमोत्कर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत उन्नति। सर्वोपरि विकास।
उ०—शाहजहाँ के शासन काल में मुगल साम्राज्य अपने
चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुका था।—हि० भा० प्र०, पृ० ७।

चरस्य^७—संज्ञा पुं० [सं० चरस्य] ढाल। उ०—सहासही चरस्य है, झड़ाझड़ी सड़गारा। गले बलाबली बले करे बली गरज्जरा।
—रघु० क०, पु० ६१।

चरसीता—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की काष्ठीयवृक्ष। उ०—जब बिराहता चित्रक सीता। चोक चोब चोनी चरसीता।—सूदन (शब्द०)।

चरसीक—वि० [हि० चरसीक] दे० 'चरसीक'।

चरवा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़िया और मुलायम चारा।
शब्दन।

विशेष—यह खेत या खेत की जमीन में बारहो मास अधिकता से उत्पन्न होता है। बैल और घोड़े इसे बड़े चाव से खाते हैं। कहीं कहीं यह गायों और भैंसों को उनका दूध बढ़ाने के लिये भी दिया जाता है।

चरवा^७—संज्ञा पुं० [देश०] एक बर्तन का नाम। तबिये या पीतल का एक पात्र। उ०—शिव्य एक सूमि की ताम्र विकारा ताके पात्र कहावहि। पुनि चरवा चरई तथी तुपला भारी सोटा गावहि।—सुंदर०, प्र०, भा० १, पु० ७४।

चरवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चरना] १. चराने का काम। २. चराने की मजदूरी।

चरवाना—वि० स० [हि० चराना का प्रे० रूप] चराने का काम कराना।

चरवाही^१—संज्ञा पुं० [हि० चरना + वाह (प्रत्य०)] दे० 'चरवाहा'।

चरवाहा—संज्ञा पुं० [हि० चरना + वाहा (= वाहक)] गाय भैंस आदि चरानेवाला। पशुओं को चराई पर ले जानेवाला। वह जो पशु चरावे। चौपायों का रक्षक।

चरवाही^२—संज्ञा स्त्री० [हि० चर + वाही (प्रत्य०)] पशु चराने का काम। २. वह धन या वेतन जो पशु चराने के बदले में दिया जाय। चराने की मजदूरी।

चरवाही^३^७—संज्ञा स्त्री० [हि० चरना + वाही] इधर उधर फिरना। आचारा की तरह घूमना। उ०—मुरत निहानी गात तकि सकुचत नहि समुहात। चरवाही जानो करो बेपरवाही बात।
—स० सप्तक, पु० २६४।

चरसी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] कहारों का एक सांकेतिक शब्द। इसमें आगेवाला कहार पीछेवाले कहार को इस बात की सूचना देता है कि रास्ते में गाड़ी एका आदि है।

चरवेया^१—वि० [हि० चरना + र्वया (प्रत्य०)] १. चरनेवाला। २. चरानेवाला।

चरव्य—वि० [सं०] चर बनाने योग्य।

चरस^१—संज्ञा पुं० [सं० चरस] १. भैंस या बैल आदि के चमड़े से बना हुआ पैना। २. चमड़े का बना हुआ वह बहुत बड़ा डोल जिससे प्रायः खेत सींचने के लिये पानी निकाला जाता है। चरसा। तरसा। पुर। मोट। उ०—चिबुक रूप, रसरी अलक, तिल मु चरस छग बैल। बारी बैस गुलाब की, सींचत मनमथ छैल।—(शब्द०)।

विशेष—इसमें पानी बहुत अधिक आता है और उसे सींचने के लिये प्रायः एक या दो बैल लगते हैं।

३. सूमि नापने का एक परिमाण जो किसी किसी के मत से २१०० हाथ का होता है। गोचर्म। ४. गंजि के पेड़ से निकला हुआ एक प्रकार का गोंद या चप जो देखने में प्रायः मोम की तरह का और हरे भयवा कुछ पीले रंग का होता है और जिसे लोग गंजि या तंबाकू की तरह पीते हैं। नले में यह प्रायः गंजि के समान ही होता है।

विशेष—यह चप गंजि के बंठलों और पत्तियों आदि से उत्तर-पश्चिम हिमालय में नेपाल, कुमाऊँ, काश्मीर से अफगानिस्तान और तुर्किस्तान तक बराबर अधिकता से निकलता है, और इन्हीं प्रदेशों का चरस सबसे अच्छा समझा जाता है। बंगाल, मध्यप्रदेश आदि देशों में और योरोप में भी, यह बहुत ही छोड़ी मात्रा में निकलता है। गंजि के पेड़ यदि बहुत पास पास हों तो उनमें से चरस भी बहुत ही कम निकलता है। कुछ लोगों का मत है कि चरस का चप केवल नर पौधों से निकलता है। गर्मी के दिनों में गंजि के फूलने से पहले ही इसका संग्रह होता है। यह गंजि के बंठलों को हावन बस्ते में कूटकर या अधिक मात्रा में निकलने के समय उस पर से खरोचकर हकट्टा किया जाता है। कहीं कहीं चमड़े का पायजामा पहनकर भी गंजि के खेतों में खूब चपकर लगाते हैं जिससे यह चप उसी चमड़े में लग जाता है, पीछे उसे खरोचकर उस रूप में ले आते हैं जिसमें वह बाजारों में बिकता है। ताजा चरस मोम की तरह मुलायम और चमकीले हरे रंग का होता है पर कुछ दिनों बाद वह बहुत कड़ा और मटमैले रंग का हो जाता है। कभी कभी व्यापारी इसमें तीसी के तेल और गंजि की पत्तियों के चूर्ण की मिलावट भी देते हैं। इसे पीते ही तुरंत नशा होता है और प्रायः बहुत लाल हो जाती है। यह गंजि और माँग की अपेक्षा बहुत अधिक हानिकारक होता है और इसके अधिक व्यवहार से मस्तिष्क में विकार आ जाता है। पहले चरस मध्यएशिया से चमड़े के थैलों या छोटे छोटे चरसों में भरकर आता था। इसी से उसका नाम चरस पड़ गया।

चरस^२—संज्ञा पुं० [फ़ा० चरस] आसाम प्रांत में अधिकता से होने-वाला एक प्रकार का पक्षी जिसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है। इसे वन मोर या चीनी मोर भी कहते हैं।

चरसा^१—संज्ञा पुं० [हि० चरस] १. भैंस बैल आदि का चमड़ा। २. चमड़े का बना हुआ बड़ा पैना। ३. चरस। मोट। पुर। ४. सूमि का एक परिमाण। गोचर्म। वि० दे० 'चरस'।

चरसा^२—संज्ञा पुं० [हि० चरस] चरस पक्षी।

चरसिया—संज्ञा पुं० [हि० चरस + इया (प्रत्य०)] दे० 'चरसी'।

चरसी—संज्ञा पुं० [हि० चरस + ई (प्रत्य०)] १. वह जो चरस की सहायता से कुएँ से पानी निकलता हो। चरस द्वारा खेत सींचनेवाला। २. वह जो चरस पीता हो। चरस का नशा करनेवाला। जैसे,—चरसी यार किसके? दम लगाया जिसके।—कहावत।

चरह^७—वि० [हि० चरना] चरनेवाला। उ०—भाब के

चरि करहुन करहुन, निबिया छोनि छोनि जाई।—कबीर
पं०, पृ० १४८।

चरहा—वि० [हि० चरना + हा (प्रत्य०)] चारा युक्त। चारेवाला
(सेत या मैदान)।

चरही—संज्ञा स्त्री० [हि० चरना + ही (प्रत्य०)] दे० 'चरनी'।

चराई—संज्ञा स्त्री० [हि० चरना] १. चरने का काम। चरने की
क्रिया। २. चराने का काम। चराने की मजदूरी।

चराई—संज्ञा स्त्री० [हि० चरना] वह स्थान जहाँ पशु चरते हैं।
चरागाह। चरनी।

चराक^१—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की चिड़िया।

चराक^२—संज्ञा पुं० [हि० चिराग] रोगनी। बीपक। उ०—जैसे
को बाँदी की हाँसनी प्रादि अच्छे अच्छे गहूँ पटनाय रात
को चराकों से भिड़काते हैं।—राम० घमं०, पृ० २८६।

चराकी—संज्ञा पुं० [हि० चराक (= चिराग)] रोगनी करना। प्रकाश
करना। उ०—शेष नाम सेवा करे चंद्र पूरे चराकी। लेखण
बाके हाथ है कछु काढ़त बाकी।—राम० घमं०, पृ० ४६।

चरागा—संज्ञा पुं० [हि० चिराग] दे० 'चिराग'।

चरागान—संज्ञा पुं० [क्रा० चरागा का बहु०] दीपोत्सव [को०]।

चरागाह—संज्ञा पुं० [क्रा०] वह मैदान या भूमि जहाँ पशु चरते हों।
पशुओं के चरने का स्थान। चरनी। चरी।

चराचर—वि० [सं०] १. चर और अचर। जड़ और चेतन। स्थावर
और जंगम। उ०—त्रिभुवन हार सिंगार अगवती सलिल
चराचर जाके ऐत। सूरजवास विधाता के तप प्रकट भई
संतन सुखदेन।—सूर (शब्द०)। २. जगत्। संसार। ३.
कोड़ी।

चराचरगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २. परमेश्वर।

चरान^१—संज्ञा पुं० [हि० चरना] चौपायों के चरने की भूमि।

चरान^२—संज्ञा स्त्री० चरने की क्रिया या भाव।

चरान^३—संज्ञा पुं० [हि० चर (= बलदल)] समुद्र के किनारे का वह
बलदल जिसमें से नमक निकाला जाता है।

चराना—क्रि० सं० [हि० चरना] १. पशुओं को चारा लिलाने के
लिये खेतों या मैदानों में ले जाना। जैसे,—गाय, भैंस चराना।
२. किसी को धोखा देना। बातों में बहलाना। भ्रम बनाना।
जैसे,—हम तुम्हारे सरीखे सैकड़ों को रोज चराया करते हैं।

चराव—संज्ञा पुं० [सं० चर] पशुओं के चरने का स्थान। चरनी।
चरागाह।

चरावना^१—क्रि० सं० [हि० चराना] दे० 'चराना'।

चरावर^१—संज्ञा स्त्री० [दे०] व्यर्थ की बात। बकवाद। उ०—
फागुन में एक प्रेम को राज है काहे बेकाज करो हों चरावर।
—(शब्द०)।

चरावर^२—संज्ञा पुं० [हि० चरना] चरागाह। उ०—शादी गभी में
रियासत से लकड़ियाँ मिलती है, सरकारी चरावर में लोगों
की गड़एँ चरती हैं; और भी कितनी बातें हैं।—काया०
पृ० १६२।

चरिंद—संज्ञा पुं० [क्रा०] दे० 'चरिदा' [को०]।

चौ०—चरिंद परिंद = पशुपक्षी।

चरिदा—संज्ञा [क्रा० चरिंदह] चरनेवाला जीव। जैसे,—गाय, भैंस,
बैल आदि पशु। हेवान।

चरि—संज्ञा सं० [सं०] पशु।

चरिचना^१—क्रि० सं० [हि० चरचना] दे० 'चरचना'। उ०—मिलि
नारि सबनि अचरिज करि, जल छोए उज्जल करपी।
सावंड धूप दीपह चरिच, सित मन सिद्धी आचरपी।—पृ०
रा०, १।५८१।

चरित^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. रहन सहन। आचरण। २. काम।
करनी। करतूत। कृत्य। जैसे,—ग्रन्थी आप उनके चरित
नहीं जानते। ३. किसी के जीवन की विशेष घटनाओं या
कार्यों आदि का वर्णन। जीवनचरित। जीवनी। उ०—
लघुमति मोरि चरित अवगाहा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—किसी किसी के मत से चरित दो प्रकार का होता है—
एक अनुभव, दूसरा लीला। पर यह भेद सर्वसंमत नहीं है।

चरित^२—वि० १. गया हुआ। गत। २. किया हुआ। आचरित।
३. प्राप्त। ४. जाना हुआ। ज्ञात [को०]।

चरितकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चरितलेखक' [को०]।

चरितनायक—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रधान पुरुष जिसके चरित्र का
आधार लेकर कोई पुस्तक लिखी जाय।

चरितलेखक—संज्ञा पुं० [सं०] किसी की जीवनसंबंधी घटनाएँ या
जीवनी लिखनेवाला लेखक [को०]।

चरितवान्—वि० [सं०] दे० 'चरित्रवान्'।

चरितव्य—वि० [सं०] आचरण करने योग्य। करने योग्य।

चरितार्थ—वि० [सं०] १. जिसके उद्देश्य या अभिप्राय की सिद्धि हो
चुकी हो। कृतकृत्य। कृताव्यं। २. जो ठीक ठीक बटे। जो
पूरा उतरे। जैसे,—आपवाली कहावत यहीं चरितार्थ
होती है।

चरितार्थी—वि० [सं० चरितार्थिन्] सफलता की इच्छा रखनेवाला
[को०]।

चरितार—संज्ञा पुं० [सं० चरित्र] धूर्तता की चाल। मिस। बहाना।
नखरेबाजी। नकल। जैसे,—यह सब स्त्रियों के चरितार हैं।

क्रि० प्र०—करना।—खेलना।—दिलाना।

चरित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वभाव। २. वह जो किया जाय।
कार्य। ३. करनी। करतूत। ४. चरित। वि० दे० 'चरित'।

चौ०—चरित्रचित्रण = चरित्रवर्णन।

५. व्यवहार। आचार [को०]।

चरित्रण—संज्ञा पुं० [सं०] चरित्रवर्णन। चरित्रकथन। उ०—
ज्योतिर्विज्ञान एक ऐसा विषय है कि प्रायः अपरिचितों का
चरित्रण उसकी ग्रहस्थिति की गहराई देखकर किया जा
सकता है।—शुक्ल अग्नि० प्र० (जीवनी), पृ० ६७।

चरित्रनायक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चरितनायक'।

चरित्रबंधक—संज्ञा पुं० [सं० चरित्रबंधक] किसी निजाने की
प्रतिज्ञा। वि० दे० 'चरित्रबंधकृत' [को०]।

चरित्र-वचक-कृत—संज्ञा पुं० [सं० चरित्रवचककृत] १. वह वन जो किसी के पास किसी शर्त पर गिरवी रखा जाय। २. उक्त प्रणाली [वि०]।

चरित्रवान्—वि० [सं०] [वि० जी० चरित्रवती] अच्छे चरित्रवाला। उत्तम आचरणवाला। अच्छे बाल चलनवाला। सबाचारी।

चरित्रांकन—संज्ञा पुं० [सं० चरित्र + अंकन] चरित्र का पूरा विवरण देना। चरित्र का निरूपण या विवेचन। व्याख्या सहित चरित्र प्रस्तुत करना।

चरित्रा—संज्ञा जी० [सं०] हमली का पेड़।

चरिय—संज्ञा पुं० [सं० चर] चर्या। आचरण। उ०—युमान चांग यहाँ चरियाल को उद्धृत करते हैं जो कहते हैं कि बीजाश्रम में पूर्ण चरिय नहीं है।—संपूर्ण। अमि० प्र०, पृ० ३६४।

चरिष्यु—वि० [सं०] चलनेवाला। जंगम।

चरी—संज्ञा जी० [सं० चर या हि० चारा] १. वह जमीन जो किसानों को अपने पशुओं के चारे के लिये जमींदार से बिना लगान मिलती है। २. वह प्रथा या नियम जिसके अनुसार किसान ऐसी जमीन जमींदार से लेता है। ३. वह बेल या मीदान जो इस प्रथा के अनुसार चारे के लिये छोड़ दिया गया हो। ४. छोटी पवार के हरे पेड़ जो चारे के काम आते हैं। कड़वी।

चरी—संज्ञा जी० [सं० चर (= वृत्त)] १. संदेश ले जानेवाली वृत्ति। २. मजदूरनी। दासी। नौकरानी।

चरीद—संज्ञा पुं० [फ्रा० चरिय या हि० चरना] वह जानवर जो चरने के लिये निकला हो।—(शिकारी)।

चरु—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चरव्य] १. हवन या यज्ञ की आहुति के लिये पकाया हुआ अन्न। हव्यान्न। हविष्यान्न। उ०—होड़ी हाटक घटित चरु राधे स्वाद सुनाज।—तुलसी (शब्द०)। २. वह पात्र जिसमें उक्त अन्न पकाया जाय। ३. मिट्टी के कसोरे में पकाया हुआ चार मुट्ठी चावल। ४. बिना माँड़ पसाया हुआ आत। वह आत जिसमें माँड़ मौजूद हो। ५. पशुओं के चरने की जमीन। ६. वह महसूल जो ऐसी जमीन पर लगाया जाय। ७. यज्ञ। ८. बादल। मेघ।

चरुआ—संज्ञा पुं० [सं० चरु] [जी० प्रत्या० चरुई] मिट्टी के चौड़े मुँह का बरतन, आसकर वह बरतन जिसमें प्रसूता स्त्री के लिये कुछ औषध मिला हुआ जल पकाया जाता है।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

चरुई—संज्ञा जी० [हि० चरुआ] छोटा चरुआ। उ०—चरुई के आत बूल्हि ने लाया दालि जो हँसी ठठाई।—सं० दरिया, पृ० ११८।

चरुका—संज्ञा जी० [सं०] एक प्रकार का धान। चरक।

चरुखला—संज्ञा पुं० [हि० चरला] सूत कातने का चरला। उ०—जो चरला जरि जाय बढ़िया ना मरे। मैं कातों सूत हजार चरुखला ना जरे।—कबीर (शब्द०)।

चरुवेली—संज्ञा पुं० [सं० चरुवेलिन्] शिव।

चरुपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र जिसमें हविष्यान्न रखा या पकाया जाय।

चरुपाण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पकवान। एक प्रकार का पुषा जिसमें चित्र से बने रहते हैं।

चरुस्थाली—संज्ञा जी० [सं०] वह पात्र जिसमें हविष्यान्न रखा या पकाया जाय। चरुपात्र।

चरुपुत्र—संज्ञा पुं० [सं० चरु] दे० 'चर'।

चरु—संज्ञा जी० [हि० चरी] दे० 'चरी'।

चरेर—वि० [हि० चरेरा] दे० 'चरेरा'।

चरेरा—वि० [चरचर से अनु०] [वि० जी० चरेरी] १. कड़ा घोर सुरदुरा। २. कंकण। कला। उ०—मधुप तुम कान्हू ही की कही क्यों न कही है। यह बातकही चपल बेरी को निपट चरेरिए रही है।—तुलसी (शब्द०)।

चरेरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो हिमालय की तराई और पूर्वी बंगाल में अधिकता से होता है।

चिरोच—इसके होर की लकड़ी कुछ लमाई लिए हुए सफेद रंग की घोर बहुत मजबूत होती है। यह प्रायः इमारत के काम में आती है और इसके फलों से एक प्रकार का तेल भी निकलता है।

चरेली—संज्ञा पुं० [हि० चरना] चिड़िया। पक्षी।

चरेली—संज्ञा जी० [हि० चरना ?] ब्राह्मी बूटी।

चरैया—संज्ञा पुं० [हि० चरना] १. चरानेवाला। २. चरनेवाला।

चरैया—संज्ञा जी० [हि० चिरैया] दे० 'चिड़िया'।

चरैला—संज्ञा पुं० [हि० चार + ऐला (= चूल्हे का सँह)] एक प्रकार का चूल्हा जिसपर एक साथ चार चीजें पकाई जा सकती हैं।

चरैला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जाल जिससे मीन या तासाव के किनारे रहनेवाले पक्षी पकड़े जाते हैं।

चरोखरा—संज्ञा जी० [हि० चारा + खर] पशुओं के चरने की जगह। चरी।

चरोतर—संज्ञा पुं० [सं० चिरोत्तर] वह भूमि जो किसी अनुष्य को उसके जीवन भर के लिये दी गई हो।

चरोवा—संज्ञा पुं० [हि० चरना] १. पशुओं के चरने का स्थान। २. चरी।

चर्क—संज्ञा पुं० [देश०] जहाज का मार्ग। रुस।—(लक्ष०)।

चर्कति—संज्ञा जी० [सं०] १. चर्चा। २. स्तुति। ३. महिमा [को०]।

चर्खी—संज्ञा पुं० [सं० चर्क] चक्र। उ०—यक यक अर्जुन सिफत तीरी कमान भर चलावें चल के अंदर जते पर।—दक्खिनी०, पृ० १५७।

चर्ख—संज्ञा पुं० [फ्रा० चर्ख] १. चक्र। चक्कर। २. कुम्हार का चाक। ३. छाकाब। ४. खराद।

चौ—चर्खक = खराद की डोरी लीचनेवाला घादमी।

५. लिची हुई कमान। ६. डेलदास। गोफन। ७. चरली। चरला।

चौ—चर्खजन = चरला कातनेवाला।

६, एक प्रकार का बाज। १०. पहिया। चक्र। ११. रहट। कुँए से पानी निकालने का गरी। १२. दामन का घेरा। १३. चारों ओर घूमना। फिरना। १४. कुर्त का गला [को०]।

चर्खक—संज्ञा पुं० [फ्रा० चर्खक] १. खराद की डोरी या पट्टा लीचनेवाला। २. खराद चलानेवाला।

चर्खा—संज्ञा पुं० [हि० चरखा] १० 'चरखा' ।

चर्खी—संज्ञा स्त्री० [हि० चरखी] ३० 'चरखी' ।

चर्च—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह मंदिर जिसमें ईसाई प्रार्थना करते हैं । गिरजा । २. ईसाई धर्म का कोई संप्रदाय ।

विशेष—ईसाई धर्म में अनेक संप्रदाय हैं और प्रत्येक संप्रदाय के चर्च या प्रार्थनामंदिर भिन्न भिन्न होते हैं । जो ईसाई जिस संप्रदाय का होता है, वह उसी संप्रदाय के चर्च में जाता और फलतः उसी चर्च का अनुयायी कहलाता है ।

चर्च—संज्ञा पुं० [सं०] विचार । ध्यान । चिंतन [चि०] ।

चर्चक—संज्ञा पुं० [सं०] चर्चा करनेवाला ।

चर्चन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चर्चा । २. लेपन ।

चर्चर—वि० [सं०] गमनशील । चलनेवाला ।

चर्चरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चर्चरी । २. नाटक में वह गान जो किसी एक विषय की समाप्ति और जबनिकापात होने पर और किसी दूसरे विषय के आरंभ होने और जबनिका उठने से पहले होता रहता है । इस बीच में पात्र तैयार होते रहते हैं और वक्ताओं के मनोरंजन के लिये यह गान होता है ।

विशेष—(क) कालिदास के विक्रमोर्वशी नाटक में अनेक चर्चरिकाएँ हैं । (ख) आधुनिक नाटकों में केवल किसी अंक की समाप्ति पर ही पात्रों को तैयार होने का समय मिलता है । गर्भांक या दृश्य की समाप्ति पर दूसरा अंक आरंभ होने से पहले जो गान होता है वह भी चर्चरिका ही है ।

चर्चरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का गाना जो वसंत में गाया जाता है । फाग । चाँवर । २. होली की धूमधाम । होली का उत्सव । होली का हुल्लड़ । ३. एक वृणुवृत्त जिसमें रगण, भगण, दो भगण, भगण और तब फिर रगण (र, स, ज, भ, म, र) होता है । जैसे,—बैन ये सुनिके चली मिथिलेशजा हुरबाय के । हाँकि पट्टे रथे सुरभापगा ठिग जायके । ४. करतलध्वनि । ताली बजाने का शब्द । ५. ताल के मुख्य ६० भेदों में से एक । ६. चर्चरिका । ७. प्राचीन काल का एक प्रकार का ढोल या बाजा जो चमके से मड़ा हुआ होता था । ८. आनंद प्रमोद । क्रीडा । ९. गाना बजाना । नाचना कूबना । आनंद की धूम ।

चर्चरीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. महाकाल भैरव । २. साग । भाषी । ३. केशविन्यास । बाल सँवारने की क्रिया ।

चर्चस्—संज्ञा पुं० [सं०] कुवेर की ती निधियों में से एक ।

चर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जिज्ञा । दर्शन । बयान । उ०—(क) हरिजन हरि चरचा जो करे । दासी सुत सी हिरद धरे ।—सूर (शब्द०) । (ख) निज लोक बिसरे लोक पति घर की न चरचा बालही ।—तुलसी (शब्द०) । २. वार्तालाप । बातचीत । ३. किंवदंती । अफवाह । उ०—पुरवासियों के प्यारे राम के अभिषेक की उस चर्चा ने प्रत्येक पुरवासी को हवित किया ।—लक्ष्मण (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—उठना ।—करना ।—चलना ।—छिड़ना ।—होना ।

४. लेपन । पोतना । ५. गायत्रीरूपा महादेवी । ६. दुर्गा ।

चर्चि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आहुति । २. विचारणा [चि०] ।

चर्चिक—वि० [सं०] वेद आदि जाननेवाला ।

चर्चिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चर्चा । जिज्ञा । २. दुर्गा । ३. एक प्रकार का सेम ।

चर्चिष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंदन आदि का लेपन । २. लेपन की वस्तु । अंगराग [चि०] ।

चर्चित—वि० [सं०] १. लगा या लगाया हुआ । पोता हुआ । लेपित । जैसे,—चंदन चर्चित नील कलेवर पीतवसन वनमाली ।—(शब्द०) । २. जिसकी चर्चा हो । ३. विचारित [चि०] । ४. (वेदपाठ) इति जुड़ा हुआ [चि०] ।

चर्चित—संज्ञा पुं० लेपन ।

चर्णारविंद—संज्ञा पुं० [सं० चरणारविन्द] ३० 'चरणारविंद' । उ०—उनको चर्णारविंद धरो तुम जायी । दर्शन करत जलन मिट जायी ।—कबीर सा०, पृ० १५१० ।

चर्ने—संज्ञा पुं० [सं० चरण] ३० 'चरण' । उ०—चर्णी पील तर चर्न बहुबान राय ।—प० रासो, पृ० ८४ ।

चर्नार—संज्ञा पुं० [हि० चुनार] ३० 'चरणारि' या 'चुनार' ।

चर्पट—संज्ञा पुं० [सं०] १. चपत । चपड़ । २. हाथ की जुली हुई हथेली । ३. चेतावनी [ला०] ।

चर्पट—वि० विपुल । अधिक ।

चर्पटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आदों सुदी छठ ।

चर्पटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रोटी या चपाती ।

चर्परा—वि० [हि० चरपरा] ३० 'चरपरा' ।

चर्पण—संज्ञा पुं० [सं० चर्वण] ३० 'चर्वण' ।

चर्वजबानो—वि० [क्रा० चरबजबानी] ३० 'चरबजबानी' । उ०—आप ज्यादा चर्वजबानी न करे, मैं आपके कोल फैल से बखूबी वाकिफ हूँ ।—मीनिवास ग्रं०, पृ० १२२ ।

चर्वन—संज्ञा पुं० [सं० चर्वण] चबना । घन के दाने । उ०—ऐसी विधि फंद पसारा । कछु बाहरि चर्वन डारा ।—सुंदर० ग्रं० भा० १, पृ० १३१ ।

चर्वना—वि० [सं० चर्वण] ३० 'चबना' । उ०—इक बहू पोष सम करत घोष । पीरान प्रगट इक बचन मोष । दाढ़ाय इक चर्वत फुनिद । इक धरत ध्यान जानिक मुनिद ।—पृ० रा०, ६।४४ ।

चर्वित—वि० [सं० चर्वित] ३० 'चर्वित' ।

चर्वी—संज्ञा स्त्री० [हि० चरबी] ३० 'चरबी' ।

चर्वट—संज्ञा पुं० [सं०] ककड़ी ।

चर्वटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चर्वरी गीत । २. चर्चा । ३. आनंद । क्रीडा । ४. आनंदध्वनि ।

चर्म—संज्ञा पुं० [सं० चर्मन्] १. चमड़ा ।

यौ०—चर्मकार ।

२. ढाल । सिपर ।

चर्मकरंड—संज्ञा पुं० [सं० चर्मकरण्ड] कीटिल्य ग्रंथशाला में कथित चमड़े का बड़ा कुप्पा जिसके सहारे नबी के पार उतरा जाय ।

चर्मकरण—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े की वस्तु बनाने का कार्य [को०] ।

चर्मकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक सुगंधद्रव्य । २. मांसरोहिणी लता । रोहिणी ।

चर्मकशा, चर्मकषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का सुगंधद्रव्य । चमरखा । २. मांसरोहिणी नाम की लता । ३. एक प्रकार का गृहद्रु जिसे सातला कहते हैं ।

चर्मकार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चर्मकारी] चमड़े का काम करनेवाली जाति । चमार ।

विशेष—मनु के अनुसार निषाद पुरुष और वैदेही स्त्री के गर्भ से इस जाति की उत्पत्ति है । पराशर ने तोवर और चांडाली से चर्मकार की उत्पत्ति मानी है ।

पर्याय—चमार । कारावर । पादुकृत् । चर्मकृत् । चर्मक । कुबट । पादुकाकार ।

चर्मकारक—संज्ञा पुं० [सं०] चर्मकार [को०] ।

चर्मकारी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मकार्य; अथवा चर्मकार + हिं० ई (प्रत्य०)] चर्मकार का काम [को०] ।

चर्मकारी^२—संज्ञा पुं० [सं० चर्मकारिन्] दे० 'चर्मकार' ।

चर्मकार्य—संज्ञा पुं० [सं०] चर्मकार का काम । चमड़े के जूते, जीन आदि की सिलाई का काम ।

चर्मकील—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बवासीर । २. एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर में एक प्रकार का नुकीला मसा निकल आता है और जिसमें कभी कभी बहुत पीड़ा होती है । न्यच्छ ।

चर्मकूप—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर छिद्र । रोमछिद्र । उ०—जो स्वरजहरी उत्पन्न हो रही है वह उसके चर्मकूपों को भेदकर उसके रक्त में प्रविष्ट हो रक्त को उर्रास कर रही है ।
—बैशाखी० पृ० ११७ । २. चमड़े का कुपा [को०] ।

चर्मकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चर्मकार' [को०] ।

चर्मघाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक [को०] ।

चर्ममोव—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम ।

चर्मचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० चर्मचक्षुः] साधारण चक्षु । ज्ञानचक्षु का उलटा ।

चर्मचटका, चर्मचटो—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़ ।

चर्मचित्रक—संज्ञा पुं० [पुं०] श्वेत कुष्ठ । कोढ़ का रोग ।

चर्मचेल—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़ा उलटकर बनाया गया पहनावा या ओढ़ना [को०] ।

चर्मज^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोमा । रोम । २. लहू । खून ।

चर्मज^२—वि० चमड़े से उत्पन्न होनेवाला ।

चर्मणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मक्खी [को०] ।

चर्मण्य^१—वि० [सं०] चमड़े का बना हुआ [को०] ।

चर्मण्य^२—संज्ञा पुं० चमड़े का काम [को०] ।

चर्मरावरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चंबल नदी ।

विशेष—यह शिव्याचल पर्वत से निकलकर इटावे के पास यमुना

में मिलती है । इसका दूसरा नाम शिवनद भी है ।

२. केले का पेड़ ।

चर्मतरंग—संज्ञा पुं० [सं० चर्मतरङ्ग] चमड़े पर पड़ी हुई शिकन । झुर्री ।

चर्मसिल—वि० [सं०] कुंसियोंवाला (शरीर) [को०] ।

चर्मदंड—संज्ञा पुं० [सं० चर्मदण्ड] चमड़े का बना हुआ कोड़ा या चाबुक ।

चर्मदल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोढ़ ।

विशेष—इसमें किसी स्थान पर बहुत सी कुंसियाँ हो जाती हैं और तब वहाँ का चमड़ा फट जाता है । इसमें बहुत पीड़ा होती है और दूषित स्थान किसी प्रकार सूखा नहीं जा सकता ।

चर्मदूषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाद का रोग ।

चर्मदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] साधारण दृष्टि । भाँस । ज्ञानदृष्टि का उलटा ।

चर्मदेहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मशक के डंग का एक प्रकार का बाजा जो प्राचीन काल में मुँह से फूँककर बजाया जाता था ।

चर्मद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] मोजपत्र का पेड़ ।

चर्मनालिका, धर्मनासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े का बना हुआ कोड़ा या चाबुक ।

चर्मपट्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमोटी । [को०]

चर्मपत्रा, चर्मपत्री—संज्ञा [सं०] चमगादड़ ।

चर्मपादुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जूता ।

चर्मपीडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मपीडिका] एक प्रकार की शीतला (रोग) जिसमें रोगी का गला बंद हो जाता है ।

चर्मपुट, चर्मपुटक—संज्ञा पुं० [सं०] तेल, घी आदि रखने का चमड़े का बना हुआ कुप्पा ।

चर्मप्रभेदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़ा काटने का औजार । सुतारी ।

चर्मप्रसेवक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चर्मप्रसेविका] दे० 'चर्मपुट' [को०] ।

चर्मबंध—संज्ञा पुं० [सं० चर्मबन्ध] चाबुक ।

चर्ममंडल—संज्ञा पुं० [सं० चर्ममण्डल] एक प्राचीन देश का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है ।

चर्ममय—वि० [सं०] चर्मयुक्त । चमड़े का बना हुआ [को०] ।

चर्ममसूरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मसूरिका रोग का एक भेद ।

विशेष—इसमें रोगी के शरीर में छोटी छोटी कुंसियाँ या छाले निकल आते हैं, कंठ रुक जाता है और अरुचि, तंद्रा प्रलाप तथा विकलता होती है ।

चर्ममुंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्ममुण्डा] दुर्गा ।

चर्ममुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तंत्र में एक प्रकार की मुद्रा जिसमें बायाँ हाथ फँलाकर उँगली सिकोड़ लेते हैं ।

२. चमड़े का सिक्का [को०] ।

चर्मयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़े का कोड़ा या चाबुक ।

चर्मरंग—संज्ञा पुं० [सं० चर्मरङ्ग] पौराणिक भूगोल के अनुसार एक देश जो कूर्मसंड के पश्चिमोत्तर में है ।

चर्मरंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मरङ्गा] एक प्रकार की लता जिसे आभूषणों की ओर चमकवत्स्वी भी कहते हैं।
चर्मरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसका फल बहुत विषैला होता है। इसकी गणना स्थावर विषों में की गई है।
चर्मरु—संज्ञा पुं० [सं०] चमार [को०]।
चर्मरु—संज्ञा पुं० [सं०] चमार।
चर्मरुंश—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता था।
चर्मरुसन—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।
चर्मराद्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे वाद्य जिनपर चमड़ा मड़ा होता है, जैसे, ढोल, नगाड़ा आदि [को०]।
चर्मवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का पेड़।
चर्मव्यवसायी—संज्ञा पुं० [सं० चर्मव्यवसायिन्] वह व्यक्ति जो चमड़े का व्यापार करे [को०]।
चर्मसंभवा—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्मसम्भवा] रजायबी।
चर्मसार—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में शरीर के अंतर्गत चमड़े के छंदर रहनेवाला वह रस जो खाए हुए पदार्थों से बनता है।
चर्मस—संज्ञा पुं० [सं० चर्मस] सुषुप्त के अनुसार एक प्रकार का उपपद्य जिसका व्यवहार प्राचीन काल में भीर फाड़ प्रादि में होता था।
चर्माम्बु—संज्ञा पुं० [सं० चर्माम्बु] चमड़े में का रस। चमड़े के अंदर होनेवाला रस जो खाए हुए पदार्थों से बनता है। चर्मसार। लसीका।
चर्मरक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] कोई रोग का भेद।
चर्मनक्ष्त्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक नदी का नाम।
चर्मनुरंजन—संज्ञा पुं० [सं० चर्मनुरंजन] बदन रंगने के लिये प्रयुक्त सिंदूर की तरह का एक द्रव्य [को०]।
चर्मर—संज्ञा पुं० [सं०] चर्मकार। चमार।
चर्मरक—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'चर्मनुरंजन' [को०]।
चर्मवकर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े का काम [को०]।
चर्मवकर्ता—संज्ञा पुं० [चर्मवकर्तु] १० 'चर्मकार' [को०]।
चर्मवकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० चर्मवकर्तु] १० 'चर्मकार' [को०]।
चर्मिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो ढाल हाथ में लेकर सड़े। हाथ में ढाल लेकर लड़नेवाला मोढ़ा।
चर्मिक—वि० ढालवाला या जिसके हाथ में ढाल हो।
चर्मि—संज्ञा पुं० [सं० चर्मिन्] १. चर्म धारण करनेवाला सैनिक। २. भोजपत्र का वृक्ष। ३. कैला। ४. ३० 'चर्मिक'।
चर्मि—वि० १. ढालवाला। २. चमड़ेवाला या चमड़े का।
चर्म्य—वि० [सं०] १. जो करने योग्य हो। २. जिसका करना आवश्यक हो। कर्तव्य।
चर्म्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह जो किया जाय। आचरण। जैसे,—व्रतचर्म्य, विनयचर्म्य आदि। २. आचार। आल चमन। ३. कामकाज। ४. वृत्ति। जीविका। ५. सेवा। ६. विहित कार्य

का अनुष्ठान और निषिद्ध का त्याग। ७. खाने की क्रिया का भाव। भक्षण। ८. चमने की क्रिया का भाव। चमन।
चर्म्यपरीषत्—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्थान पर न रहना, बल्कि निरंतरतापूर्वक चारों ओर विचरना। (जैन धर्म)।
चर्म—संज्ञा [अनु०] कोई चीज फाड़ने से उत्पन्न ध्वनि। जैसे, कागज कपड़ा, चमड़ा आदि।
विशेष—इसका कि० वि० रूप में व्यवहार होता है अतः चिन्तन-निरंजन अनावश्यक है।
मुह्रा—चर्म चर्म फाड़ना = चर्म चर्म की आवाज पैदा करते हुए फाड़ते जाना।
चर्मना—कि० प्र० [अनु०] १. लकड़ी आदि का टूटने या लकड़के के समय चर चर शब्द करना। २. शरीर के छोड़ा छिल जाने या घाव पर जमी हुई पपड़ी आदि के उखड़ जाने के कारण जुजली या सुरसुरी मिली हुई हलकी पीड़ा होना। ३. लुश्की और छलाई के कारण (जैसा प्रायः जाड़े में होता है) किसी धंय में तबाह और हलकी पीड़ा होना। जैसे,—बहुत दिनों से तेल नहीं लगाया, इससे बदन चर्मना है। ४. किसी बात की बेगपूरुं इच्छा होना। किसी बात की आवश्यकता से अधिक और बेमौके चाह होना। जैसे,—बोको चर्मना, मुहुंभत चर्मना।
चर्मि—संज्ञा स्त्री० [हि० चर्मि] लयती हुई व्यंगपूर्ण बात। चुटीली बात।
कि० प्र०—छोड़ना।—बोलना।—सुनना।
चर्मण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चर्म्य] १. किसी चीज को मुँह में रखकर दाँतों से बराबर तोड़ने की क्रिया। चबाना। २. वह वस्तु जो चबाई जाय। ३. मृत्ता हुआ दावा आदि जो चबाकर खाया जाता है। चबेना। बहुरी। दाना। ४. आस्वादन [को०]। ५. रसास्वादन [को०]।
चर्मण—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चर्मण करना। २. चर्मण करनेवाला दाँत। ३. आस्वादन। ४. रसास्वादन [को०]।
चर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चप्पड़। चाँटा। आपड़। २. चबाने का कार्य या स्थिति [को०]।
चर्चित—वि० [सं०] १. चबाया हुआ। दाँतों से कुचला हुआ। २. आस्वादित [को०]। ३. रसास्वादित [को०]।
चर्चितचर्मण—संज्ञा पुं० [सं०] जो हो चुका हो, उसे फिर से करना। किसी किए हुए काम या कही हुई बात को फिर से करना या कहना। पिटपेचण।
चर्चितपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वालदान। पीकदान [को०]।
चर्चि—संज्ञा पुं० [प्र०] गाजर की तरह एक अंडेजी तरकारी जो कुम्हार कालिक में नगरियों में बोई जाती है।
चर्म्य—वि० [सं०] १. चबाने योग्य। २. जो चबाकर खाया जाय।
चर्म्य—संज्ञा पुं० आहार। भोजन। साध [को०]।
चर्मणि—संज्ञा पुं० [सं०] अनुष्य। आदमी।
चर्मणि—संज्ञा स्त्री० कुलटा स्त्री। बंधकी।
चर्मणि—वि० १. निरीक्षक। पर्यवेक्षक। २. गमनशील। गतिशील। फुर्तीला। सक्रिय [को०]।

चर्वणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मनुष्य जाति। मानव जाति। २. कुलटा स्त्री (को०)।

चर्व—संज्ञा पुं० [हि० चरत्] २० 'चरत्'।

चढ़ाना—संज्ञा पुं० [हि० चढ़ाना] २० 'चढ़ाना'। उ०—
तुलसी माला बहुत चढ़ावे हरजी के गुण न निगुंण गावे।—
दक्खिनी०, पृ० ६७।

चलंत—वि० [हि० चलना] १. चलनेवाला। १२. चलता हुआ।

चलता—वि० [हि० चलना] १. चलता हुआ। २. चलनेवाला।

चलवारी—संज्ञा स्त्री० [हि० चलना + दरो] पीसला। प्याऊ। पीसरा।

चल^१—वि० [सं०] १. चल। अस्थिर। चलायमान। उ०—
सम में दुलदाहिनी भई री साज चलन सम में चल पसन दगा
दर्द।—इतिहास, पृ० ४००। २. हिलने डलनेवाला। ३. एक
स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने योग्य।

चौ०—चलवल। चल संपत्ति। चलधन। चलचित्र।

३. जंगम। गतिशील (को०)। ४. घबराया हुआ। (को०)। ५.
क्षणिक। क्षणस्थायी (को०)।

चल^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. पारा। २. दोहा छंद का एक भेद जिसमें
११ गुरु और २६ लघु मात्राएं होती हैं। जैसे,—जन्म सिंधु
पुनि बंधु बिष दिन मलीन सकलंक। सिय मुख समता पाव
किनि चंद्र बापुरो रंक।—तुलसी (शब्द०)। ३. शिव।
महादेव। ४. विष्णु। ५. कपन। कापना। ६. दोष। ऐव।
नुक्स। ७. झूल। झुक। ८. घोला। छल। कपट। ९. नृत्य में
एक प्रकार की चेष्टा जिसमें हाथ के इशारे से किसी को बुलाया
जाता है। १०. नृत्य में झोक, चिता, परिश्रम या उत्कंठा
दिखलाने के लिये कुछ गहरी सांस लेना। ११. वायु (को०)।
१२. काक। कोप्रा (को०)।

चल^३—संज्ञा स्त्री० [हि० चाल] चाल। गइबड़। भागना। उ०—
सम बेध ताके तहाँ सरजा सिवा के बाँके, बीर जाने हाँके देत,
मीर जाने चल तें।—सूषण ग्रं०, पृ० ३०८।

चलक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. माल। धन। २. वह राशि जिसके कई
मान या मूल्य हों। ३. चलक राशि का प्रतीक। चिह्न (को०)।

चलक^२—संज्ञा पुं० [हि० चलक] २० 'चमक'। उ०—नासा सुक तुंड
वारों ओठन पै बिब वारों ओठिन की माल वारों दंतन चलक
पै।—मोहन०, पृ० १४।

चलकना—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. चमकना। उ०—नर नारिन के
मुख कमखन की शोभा दूनी चलकि उठी।—देवस्वामी
(शब्द०)। २. २० 'चिलकना'।

चलकर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथ्वी से ग्रहों का स्वामाविक अंतर।
२. वह जिसके कान सदा हिलते रहें। ३. हाथी।

चलकर्न—संज्ञा पुं० [सं० चलकर्य] हाथी। उ०—मत्त महाउठ हाथ
में, मंद चलनि चलकर्न।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १४३।

चलका—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की साधारण नाव।

चलकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष या पुण्डित तारा जो पश्चिम
दिशा में उदय होता है।

चिरोच—इसमें दक्षिण की ओर उठी हुई एक चोटी भी होती है।
उदय होने के उपरांत यह क्रमशः उत्तर की ओर बढ़ता और
पीछे आकाश में किसी स्थान में अस्त हो जाता है। कभी
कभी यह उत्तरी ध्रुव, सप्तर्षि मंडल या मभिजित् नक्षत्र तक
भी पहुँच जाता है। कश्मिर के अनुसार किसी के मत से इसके
उदय होने के दस महीने और किसी के मत से अठारह महीने
बाद देश में दुमिल और कई प्रकार का अनिष्ट होता है।

चलचंचु—संज्ञा पुं० [सं० चलचञ्चु] चकोर।

चलचलाव—संज्ञा पुं० [हि० चलना] १. प्रस्थान। यात्रा। चलाचली।
२. महाप्रस्थान। मृत्यु। मीत।

चलचा—संज्ञा पुं० [दे०] डाक। पलास।

चलचल—वि० [सं०] चल बिचल। चंचल। अस्थिर। उ०—
होन न वेहुं कहै चलचाल सुराखों हिए पै मिलाय के मालहि।
—(शब्द०)।

चलचिचि—वि० [सं०] चंचल चित्तवाला। अनिश्चय पूर्ण मनवाला।

चलचलिय—[सं० चल + चलित] चंचल। अस्थिर। उ०—
बहै बचक चलचलिय सेस चलचलिय सहससिर।—रघु० क०,
पृ० ४२।

चलचूक—संज्ञा स्त्री० [सं० चल (= चंचल) + हि० चूक = (झूल)]
धोला। छल। कपट। उ०—जो चलचूक गने कछु या महीं ती
यह न्याउ अनंग के भागे।—गुमान (शब्द०)।

चलचित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. गतिशील चित्र। २. चलता फिरता
दिखनेवाला चित्र। उ०—श्यामा श्याम के अगणित लीला-
विलास स्वामी जी के नेत्रों के भागे किसी अनंत चलचित्र के
बबलते द्रव्यों की भाँति निरंतर आते चले जाते हैं।—पोद्दार
प्रसि० ग्रं०, पृ० १८८। २. सिनेमा।

चलछा—संज्ञा पुं० [हि० चलना] मार्ग। रास्ता। राह। उ०—
करहा वामन रूप करि, चिहँ चलछे पग पूरि।—ढोला, पृ०
४६७।

चलता^१—वि० [हि० चलना] [वि० स्त्री० चलती] १. चलता हुआ।
गमव करता हुआ। गतिवान्। जैसे,—चलती गाड़ी।

चौ०—चलता खाता = बैंक का वह खाता जिसका हिसाब हमेशा
बालू रहता है, जब चाहे उसमें रुपया जमा किया जा सकता
है और निकाला जा सकता है। चलता छप्पर = छाता
(फकीरों की भाषा)। चलता पुरमा = व्यवहारकुशल।
चालाक। पुस्त। व्यवहारतत्पर। चलता लेखा = २० 'चलता-
खाता'। चलता समय = जीवन का अंतिम समय। जीवन्त।
चलता सर्ग = २० 'चलता समय'।

मुहा०—चलता करना = (१) हटाना। भगाना। भेजना।
जैसे,—(क) अब इन्हें क्यों बैठाए हो? चलता करो। (ख)
इस काण्ड को भाव चलता करो। (२) किसी प्रकार
मिपटाना। ऋग्ना दूर करना। जैसे,—किसी प्रकार इस
नामके को चलता करो। चलती गाड़ी में रोड़ा घटकाना =
होते हुए कार्य में बाधा डालना। चलता बनना = चल देना।
प्रस्थान करना। उ०—तुम तो यहाँ से चलते बने, पकड़े गए

हम । चलता होना = चल देना । प्रस्थान करना । चलता फिरता मजदूर घाना = चलता बनना ।

२. जिसका क्रमबद्ध न हुआ । जो बराबर जारी हो ।

मुहा०—चलता लेखा या खाता = वह हिसाब जिसके संबंध का लेनदेन बराबर होता रहे और जिसकी बाकी न गिराई गई हो ।

३. जिसका चलन अधिक हो । जिसका रवाज बहुत हो । प्रचलित । उ०—यह चलती चीज है, दुकान पर रख लो ।

यौ०—चलता गाना = वह गाना जो शुद्ध राग रागिणियों के अंतर्गत न हो, पर जिसका प्रचार सर्वसाधारण में हो । जैसे,—दादरा, लावनी इत्यादि ।

४. काम करने योग्य । जो प्राप्त न हुआ हो । जैसे, चलता बैल । ५. व्यवहार में तत्पर । व्यवहारपटु । चालाक । चुस्त ।

चलसा^२—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का सदाबहार पेड़ जिसकी लकड़ी चिकनी, बहुत मजबूत और अंदर से लाल होती है ।

विशेष—यह बंगाल, मद्रास और मध्यभारत में बहुत अधिकता से उत्पन्न होता है । इसकी लकड़ी प्रायः इमारत में काम आती है और पानी में जल्दी नहीं सड़ती । इसके पुराने पत्तों से हाथीदाँत गाक किया जाता है । इसमें बैल के आकार का बड़ा फल लगता है जो कच्चा भी खाया जाता है और जिसकी तरकारी भी बनती है । फल में रेशा बहुत अधिक होता है इसलिये उसे कच्चा या तरकारी बनने पर चूस चूस कर खाते हैं ।

२. रास्ते में वह स्थान जहाँ फिसलन और कीचड़ बहुत अधिक हो । (कहारों की परि०) । ३. कवच । क्लिप्त ।

चलता^३—संज्ञा ली० [सं०] चल होने का भाव । चंचलता प्रस्थिरता ।

चलती—संज्ञा ली० [हि० चलना] मान मर्यादा । प्रभाव । अधिकार ।

• जैसे,—भाजकल उस दरबार में उनकी बड़ी चलती है ।

चलतू—वि० [हि० चलना] १. दे० 'चलता' । २. (भूमि) जो जोती बोई जाती हो । आबाद ।

चलत्पूरिमा—संज्ञा ली० [सं०] चंद्रक नामक मछली [को०] ।

चलत्तरवाज—वि० [हि० चरितर + प्रा० वाज] चाखवाज । चरितर या चरित्रवाली । बूती । नखरा करनेवाली । नकल करनेवाली । उ०—लाडो-हमको यह बातें जरा नहीं भाती हैं । बन्नो—धरी चल चलत्तरवाज ! हमसे उड़ती है ।—सैर०, भा० १, पृ० २७ ।

चलदंग—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे भोगा कहते हैं ।

चलदल—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का वृक्ष । उ०—चलदल पत्र पताक-पट दामिनि कच्छप माथ । भूत दीप दीपक शिखा त्यों मन वृत्ति प्रनाथ ।—(शब्द०) ।

यौ०—चलदलदल = पीपल का पत्ता । उ०—घिर नहीं तरंग बुदबुद तड़ित अग्निशिखा पन्नग सरित त्योंही घन जीवन तन अघिर चलदलदल कैसी चरित ।—ब्रज० भा०, पृ० ११८ ।

चलद्विष—संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल [को०] ।

चलन^१—संज्ञा पुं० [हि० चलना] १. चलने का भाव । गति । चाल ।

यौ०—चलनहार ।

२. रिवाज । रस्म । व्यवहार । रीति ।

मुहा०—चलन से चलना = अपने पद या मर्यादा आदि के अनुकूल काम करना । उचित रीति से व्यवहार करना ।

३. किसी चीज का व्यवहार, उपयोग या प्रचार । जैसे,—(क) भाजकल ऐसी टोपी का बहुत चलन है । (ख) बादशाही जमाने के रूपों का चलन अब उठ गया ।

क्रि० प्र०—उठना ।—चलना ।—होना ।

यौ०—चलनसार ।

चलन^२—संज्ञा ली० [सं०] ज्योतिष में एक क्रांतिपात गति अथवा विपुल की उस समय की गति, जब दिन और रात बराबर होते हैं ।

यौ०—चलनकलन ।

चलन^३—संज्ञा पुं० [सं०] १. गति । अमण । २. कौपना । कंपन । ३. हिरन । ४. चरण । पैर । उ०—चरन चलन गतिबंत पुनि अघ्रिपाद पद पाइ ।—अनेकार्य०, पृ० ३२ । ५. नृत्य में एक प्रकार की चेष्टा ।

चलनक—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों के पहनने का छोटा साया [को०] ।

चलनकलन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक प्रकार का गणित ।

विशेष—इसके द्वारा पृथ्वी की गति के अनुसार दिन रात के घटने बढ़ने का हिसाब लगाया जाता है ।

चलनदरी—संज्ञा ली० [हि० चलन + दर; जलदरी] वह स्थान जहाँ रास्ता चलनेवालों की पुण्यार्थ जल पिलाया जाता हो । पोखरा ।

चलन समीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] गणित की एक क्रिया । वि० दे० 'समीकरण' ।

चलनसार—वि० [हि० चलन + सार (प्रत्य०)] १. जिसका उपयोग या व्यवहार प्रचलित हो । जैसे,—चलनसार सिक्का । २. जो अधिक दिनों तक काम में लाया जा सके । जो बहुत दिनों तक चले । टिकाऊ । जैसे,—चलनसार कपड़ा ।

चलनसारी—संज्ञा ली० [हि० चलनसार + ई (प्रत्य०)] १. प्रचलित या चालू उपयोग या व्यवहार । २. बहुत दिनों तक टिकाऊ होने की स्थिति । दीर्घकालिक उपयोगिता ।

चलनहारा—वि० [हि० चलना + हार (प्रत्य०)] जो अभी चल रहा हो । २. जो चलने को तैयार हो । ३. दे० 'चलनसार' ।

चलना^४—क्रि० प्र० [सं० चलन] १. एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना । गमन करना । प्रस्थान करना ।

विशेष—यद्यपि 'जाना' और 'चलना' दोनों क्रियाएँ कभी कभी समान अर्थ में प्रयुक्त होती हैं, तथापि दोनों के भावों में कुछ अंतर है । 'जाना' क्रिया में स्थान की ओर विशेष लक्ष्य रहता है; पर 'चलना' में गति की ओर विशेष लक्ष्य रहता है । जैसे,—चलती गाड़ी पर सवार होना ठीक वहीं है । चलना क्रिया से भूतकाल में भी क्रिया की समाप्ति अर्थात् किसी स्थान पर पहुँचने का बोध नहीं होगा । जैसे,—बहु दिल्ली चला । पर 'जाना' से भूतकाल में पहुँचने का बोध हो सकता है । जैसे,—'बहु गाँव में गया' । वक्ता अपने साथ प्रस्थान करने के संबंध

में जब किसी से प्रण या अनुरोध करेगा, तब वह 'चलना' क्रिया का प्रयोग करेगा, 'जाना' का नहीं। जैसे,—(क) तुम मेरे साथ चलोगे ? (ख) अब यहाँ से चलो।

२. गति में होना। हिलना डोलना। हरकत करना। जैसे,—नाड़ी चलना, कल चलना, पुरजा चलना, घड़ी चलना।

संयो० क्रि०—जाना।—पढ़ना।

मुहा०—किसी का चलना=किसी का काम चलना। गुजर होना। निर्वाह होना। जैसे,—इतने में हमारा नहीं चल सकता। पेट चलना=(१) दस्त आना। (२) निर्वाह होना। गुजर होना। जैसे,—इतने में पेट कैसे चलेगा ? मन चलना या बिल चलना=इच्छा होना। लालसा होना। किसी वस्तु के लिये चिरा चंचल होना। प्राप्ति की इच्छा होना। जैसे,—(क) जिस किसी की चीज हुई, उसी पर तुम्हारा मन चल जाता है। (ख) उसका मन पराई स्त्री पर कभी नहीं चलता। मुँह चलना=(१) खाते समय मुँह का हिलना। खाया जाना। प्रसण होना। जैसे,—जब देखो, तब उसका मुँह चलता रहता है। (२) मुँह से बकवाद या अनुचित शब्द निकालना। जैसे,—तुम्हारा मुँह बहुत चलता है, तुमसे चुप नहीं रहा जाता। (३) कै होना। बमन होना। जैसे,—उसका मुँह चल रहा है, कोई चीज पेट में ठहरती नहीं। मुँह पेट चलना=कै दस्त होना। हाथ चलना=(१) मारने के लिये हाथ उठाना। (२) मारना। जैसे,—उसके ऊपर जब देखो तब तुम्हारा हाथ चलता है। चल बचना=मर जाना। अपने चलते=अरसक। यथाशक्ति। उ०—(क) अपने चलत न धाजु लयि अनमल काहु क कीन्ह।—तुलसी (शब्द०)। (ख) अपने चलते तो हम ऐसा कभी न होने देंगे। इसके चलते=इस बात के होते हुए। इसके कारण।

३. कार्यनिर्वाह में समर्थ होना। निभना। जैसे,—यह लड़का इस दरजे में चल जायगा।

मुहा०—चल निकलना=किसी कार्य में उन्नति करना। किसी विषय में क्रमशः आगे बढ़ना। जैसे,—उन्हें काम सीखते थोड़े ही दिन हुए; पर वे चल निकले हैं।

४. प्रवाहित होना। बहना। जैसे,—सोरी चलना, हुवा चलना। ५. वृद्धि पर होना। बाढ़ पर होना। जैसे,—अब यह पौषा भी चला। ६. किसी कार्य में अग्रसर होना। किसी कार्य का आगे बढ़ना। किसी युक्ति का काम में आना। जैसे,—सब उपाय करके तो तुम हार गए; अब कोई और तरीका चलो। ७. आरंभ होना। छिड़ना। जैसे,—बात चलना, जिक्र चलना, चर्चा चलना। ८. जारी रहना। क्रम या परंपरा का निर्वाह होना। जैसे,—(क) बंध चलना, नाम चलना। (ख) जब तक रामचरितमानस रहेगा, तब तक तुलसीदास जी का नाम चला जायगा। ९. खाने पीने की वस्तु का परोसा जाना। खाने के लिये रखा जाना। जैसे,—इसके बाद अब मिठाई चलेगी। १०. बराबर काम देना। टिकना। ठहरना। खटाना। जैसे,—यह सूता कुछ भी न चला। ११. व्यवहार में आना। सेन देन के काम में आना। जैसे,—यह रुपया वहाँ नहीं चलेगा। १२.

प्रचलित होना। प्रचार पाना। जारी होना। रवाज पाना। जैसे,—रीति चलना, चाल चलना। (ख) कुछ दिनों तक गोल टोपी खूब चली, पर अब उसकी चाल उठती जाती है। उ०—रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाइ बह बचन न आई।—तुलसी (शब्द०)। १३. प्रयुक्त होना। व्यवहृत होना। काम में लाया जाना। जैसे,—तलवार चलना, काबड़ा चलना। १४. अच्छी तरह काम देना। उपयोग या व्यवहार में अनुकूल होना। जैसे,—कलम चलती नहीं। १५. तीर गोली आदि का छूटना। १६. लड़ाई भगड़ा होना। विरोध होना। झगुता होना। जैसे,—आवकस उन दोनों में खूब चल रही है। १७. किसी व्यवसाय की वृद्धि होना। किसी व्यापार का बढ़ना। काम चमकना। जैसे,—(क) यह दूकान खूब चली। (ख) कुछ दिनों तक लाख का काम खूब चला था।

मुहा०—चल निकलना=किसी काम का ठर पर आना। किसी कार्य का निर्वाह होने लगना। किसी कार्य में सफलता होना। जैसे,—अब तो तुम्हारा रोजगार चल निकला।

१८. पढ़ा जाना। बाँचा जाना। उचरना। जैसे,—यह लिखावट तो हमसे नहीं चलती। १९. कृतकार्य होना। सफल होना। प्रभाव करना। कारगर होना। उपाय लगना। बल चलना। जैसे,—(क) यहाँ तुम्हारी एक भी न चलेगी। (ख) उस पर जाहू टोना कुछ नहीं चल सकता।

मुहा०—किसी की चलना=(किसी का) उपाय लगना। बल चलना। प्रयत्न सफल होना। उ०—भंग निरखि धनंग लज्जित सके नहि ठहराय। एक की कहा चले शत शत कोटि रहत लषाय।—सूर (शब्द०)।

२०. आचरण करना। व्यवहार करना। जैसे,—बड़ों के आशा-नुसार चलने से कभी धोखा नहीं होता। २१. गले के नीचे उतरना। निगला जाना। खाया जाना। जैसे,—अब बिना घी के एक कीर नहीं चलता। २२. धान में छे कपड़ा उतारते समय कपड़े का बीच में मोटा सूत आदि पड़ जाने के कारण सीधा न फटना, कुछ इधर उधर हो जाना (बजाब)। २३. बासी होना। सड़ना। जैसे,—सालन चल गया। दाल चल गई। २४. भटना। पूरा पड़ना।—जैसे, राखन पाँच दिन और चलेगा।

चलना^३—क्रि० स० शतरंज या चौसर आदि खेलों में किसी मोहरे या गोटी आदि को अपने स्थान से बढ़ाना या हटाना, अथवा ताश या गंजीके आदि खेलों में किसी पत्ते को खेल के कामों के लिये सब खेलनेवालों के सामने फेंकना। जैसे,—हाथी चलना, बजीर चलना, बहला चलना, एकका चलना आदि।

चलना^३—संज्ञा पुं० [हि० चलनी] बड़ी चलनी या छलनी। २. चलनी की तरह का लोहे का एक बड़ा कलखुला या डोई जिससे खँडसार में उबलते हुए रस के ऊपर का फेन, मैल आदि साफ करते हैं। ३. हलवाइयों का एक औजार जो छेददार डोई के समान होता है और जिससे शीरा या चाशनी इत्यादि साफ की जाती है। छलना।

चलनार(५)†—वि० [हि० चलना + आर (प्रत्य०)] चलनहार।

उ०—कहे तुका सबहि चलनार । एक राम बिन नहीं बा
सार । रक्खनी०, पु० १०४ ।

चलनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चलन] दे० 'चलन' ।

चलनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्त्रियों के पहनने का चाघरा या
सावा । २. रेशमी झालर ।

चलनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० चलनी, हि०] दे० 'छलनी' ।

चलनी^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. साधारण कोटि की स्त्रियों के पहनने
का एक प्रकार का छोटा साया । २. हाथी बाँधने का रस्सा
[की०] ।

चलनौस—संज्ञा पुं० [हि० चलना + सौस (प्रत्य०)] वह पदार्थ
जो चलने से छलनी में रह जाय । बोरकर । चालन ।

चलनौसना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चलनौस' ।

चलपत^१—संज्ञा पुं० [सं० चलपन (= चल पन्नवाला अर्थात्
पीपल)] दे० 'चलपन' ।

चलपत^२—वि० पीपल के पत्ते की तरह चल । अत्यंत चल ।
उ०—डोसत मन चलपत बयत ऊमठ साहू साज । साहाउ
बीसू माधियत, भाद कियत सुमराज ।—डोला०, दृ० ४४७ ।

चलपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का पत्र ।

चलपूँजी—संज्ञा स्त्री० [हि० चल + पूँजी] वह पूँजी जिससे एक
मनुष्य केवल एक बार उत्पादन कर सकता है ।

चलवाँक^१—वि० [हि०] दे० 'चरवाँक' ।

चलवाँक^२—वि० [हि० चलना + वाँक] तेज चलनेवाला ।
बीघगायी ।

चलविचल—वि० [हि०] दे० 'चलविचल' ।

चलमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिलीय मत से वह मित्र (राजा) जो
सदा साथ न दे सके । वि० दे० 'अनर्थ सिद्धि' ।

चलमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० चल + मुद्रा] जो मुद्रा चलन में हो ।
वह मुद्रा जिसका चलन पूरे देश में समान रूप से हो ।

चलबंद^१—संज्ञा पुं० [सं० चल + बंद] पैदल सिपाही । प्यादा ।

चलवाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चलना] चलने का कार्य या स्थिति ।

चलवाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० चलना] १. चलने का काम या
स्थिति । २. चलने की मजदूरी ।

चलवाना—वि० सं० [हि० चलना का प्रे० रूप] १. चलने का
कार्य दूसरे से कराना । २. चलने का काम कराना ।

चलविचल^१—वि० [सं० चल + विचल] १. जो अपने स्थान से हट
गया हो । जो ठीक जगह से हटकर उधर हो गया हो । उसका
पुलड़ा । अंतर्बंद । बेठिकाने । जैसे,—(क) इतने ऊपर से
कूबते हो, कोई हट्टी चलविचल हो जायगी, तो रह जाओगे ।
(ख) उसका सब काम चलविचल हो गया । २. जिसके क्रम
या नियम का उल्लंघन हुआ हो । अव्यवस्थित ।

चलविचल^२—संज्ञा स्त्री० किसी नियम या क्रम का उल्लंघन ।
नियमपालन में त्रुटि । व्यतिक्रम । उ०—जहाँ जरा सी चल-
विचल हुई, कि सब काम बिगड़ जायगा ।

चिरोब—इस शब्द को कहीं कहीं पुं० भी बोलते हैं ।

चलवैया^१—वि० [हि० चलना] चलनेवाला ।

चलवैया^२—वि० [हि० चलना] चलनेवाला ।

चलसंपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० चलसम्पत्ति] वह संपत्ति जिसका स्थाना-
ंतर हो सके । वह संपत्ति जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर
ले जाई जा सके ।

चला^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिजली । दामिनी । २. पृथ्वी । भूमि ।
३. लक्ष्मी । ४. पिप्पली । पीपल । ५. शिलारस नाम का रस
द्रव्य ।

चला^२—संज्ञा पुं० [हि० चल या चलना] १. व्यवहार । प्रचार ।
रिवाज । चाल । रीति रस्म । दस्तूर । २. अधिकार । प्रभुत्व ।
स्वामित्व । उ०—भभी तो ऐसा नहीं हो सकता; जब तुम्हारा
चला हो, तब तुम जो चाहे सो करना ।

चलाऊ—वि० [हि० चल + आऊ (प्रत्य०)] १. जो बहुत दिन
तक चले । चिरस्थायी । मजबूत । टिकाऊ । २. बहुत चलने
फिरने या घूमनेवाला ।

चलाँका—वि० [फ्रा० चालाक] दे० 'चालाक' ।

चलाँकी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० चालाकी] दे० 'चालाकी' ।

चलाऊ—वि० [हि० चल + आऊ (प्रत्य०)] १. चिरस्थायी ।
टिकाऊ । २. चलने फिरने या घूमनेवाला । ३. चलने को
तैयार ।

चलाका^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चला (= बिजली)] बिजली । विद्युत् ।
तड़ित् । उ०—मुँदर कसौटी बीच ललित लकीर जमि मेघ
में चलाका जैसे सीमा प्रेम जाल की ।—(शब्द०) ।

चलाचल^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चलना] १. चलाचली । २. गति ।
चाल । उ०—उपदेव विराट भिरे बल सों । पुरई धुवि चाप
चलाचल सों ।—गोपाल (शब्द०) ।

चलाचल^२—वि० [सं०] चल । चल । उ०—बैनिन की गति
गूढ़ चलाचल केशवदास अकाश चढ़ी ।—केशव (शब्द०) ।

चलाचली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चलना] १. चलने के समय की
चबराहट, धूम या तैयारी । चलने की हड़बड़ा । रबारबी ।
२. बहुत से लोगों का प्रस्थान । बहुत से लोगों का किसी एक
स्थान से चलना । उ०—हय चले, हाथी चले संग छाँड़ि साथी
चले, ऐसी चलाचली में अचल हाड़ा हूँ रह्यो ।—भूषण
(शब्द०) । ३. चलने की तैयारी या समय । ४. महाप्रस्थान
की तैयारी या समय । अंतिम समय ।

क्रि० प्र०—लगना ।—होना ।

चलाचली^२—वि० जो चलने के लिये तैयार हो । चलनेवाला । उ०—
बिरहु बिपत्ति दिन परत हो तजे सुखन सब अंग । रहि अब
लों अब दुख भय चलाचली जिय संग ।—बिहारी (शब्द०) ।

चलातंक—संज्ञा पुं० [सं० चलातङ्क] एक प्रकार का बाँसरो,ग,
जिसमें हाथ पाँव आदि अंग कापने लगते हैं । कपवाई ।
राखा ।

चलान—संज्ञा स्त्री० [हि० चलना] १. भेजे जाने या चलने की
क्रिया । २. भेजने या चलाने की क्रिया । ३. किसी अपराधी
का पकड़ा जाकर न्याय के लिये ग्यायालय में भेजा जाना ।

जैसे,—कल संघा की वह पकड़ा गया; और घाव उसकी चलान हो गई। ४. माल घसबाव घाव का एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जाना। जैसे,—घाव वहाँ से वस बोरी की चलान हो गई है, घाठ दिन में माल आपको वहाँ मिल जायगा। ५. एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा या धाया हुआ माल। जैसे,—हाल में एक नई चलान आई है, उसमें आपके काम की बहुत सी चीजें हैं।

क्रि० प्र०—घाना।—भेजना।—भेजाना।

१. वह कागज जिसमें किसी की सूचना के लिये भेजी हुई चीजों की सूची या विवरण आदि हो रहता।

विशेष—(क) इस प्रकार की चलान प्रायः सरकारी खजानों या तहसीलों आदि से दूसरे व्यक्तियों में भेजे जानेवाले रूप के साथ भेजी जाती है (ख) वह चलान कुंजी आदि के संबंध में माल के लिये राहदारी के परवाने का भी काम देती है।

क्रि० प्र०—वेना।—भेजना।—बिजाना, आदि।

विशेष—(क) उर्दूवाली में इस शब्द को 'बाखान' बना दिया है। (ख) पश्चिम में यह शब्द प्रायः पुलिंग मात्रा जाता है।

चलानदार—संज्ञा पु० [हि० चलान + दार (प्रत्य०)] वह मनुष्य जो माल की चलान के साथ उसकी रक्षा के लिये जाता है।

चलाना—क्रि० स० [हि० चलना] १. किसी को चलने में लगाना। चलने के लिये प्रेरित करना। जैसे,—गाड़ी, घोड़ा, नाव या रेल आदि चलाना। २. गति देना। हिलाना डुबाना। हलकत देना। जैसे,—बरखा चलाना। (कलछी आदि से) बाध भात चलाना, घड़ी चलाना।

मुहा० (किसी) की चलाना = प्रसंगवश किसी का जिक्र करना। किसी के बारे में कुछ कहना। जैसे,—हम और किसी की नहीं चलाते, अपने बारे में ही कह सकते हैं। पेट चलाना = (१) दस्त लाना। जैसे,—यह दवा एकदम पेट चला देगी। (२) निर्वह करना। गुजर करना। मन या दिल चलाना = इच्छा करना। लालसा करना। जैसे,—वह बीज तुम्हें मिलने की नहीं; क्यों व्यर्थ मन चलाते हो। सँह चलाना = खाना। भक्षण करना। जैसे,—तुम खाली क्यों बैठे हो, धीरे धीरे मुँह चलाते चलो। सँह पेट चलाना = कै दस्त लाना। हाथ चलाना = मारने के लिये हाथ उठाना। पीटना।

३. कार्यनिर्वाह में समर्थ करना। निभाना। जैसे,—हय इन्हें भी जैसे जैसे अपने साथ चला ले जायेंगे। ४. प्रवाहित करना। बहाना। जैसे,—मोरी चलाना, हवा चलाना। ५. बुद्धि करना। उन्नति करना। ६. किसी कार्य को अग्रसर करना। किसी काम को जारी या पूरा करना। जैसे,—(क) हमने यह काम चला दिया है। (ख) काम चलाने जर को इतना बहुत है। ७. प्रारंभ करना। छेड़ना। जैसे,—बात चलाना। जिक्र चलाना। ८. बराबर बनाए रखना। जारी रखना। जैसे,—बंश चलाना, नाम चलाना, कारखाना चलाना। ९. जाने पीने की वस्तु परोचना। खाने की चीज धाने रखना।

१०. बराबर काम में लाना। टिकाना। जैसे,—वह कोट अभी आप तीन बरस और चलावेंगे। ११. व्यवहार में लाना। लेन देन के काम में लाना। जैसे,—इन्होंने यह छोटा रुपया भी चला दिया। १२. प्रचलित करना। प्रचार करना। जैसे,—(क) रीति चलाना, धर्म चलाना। (ख) आप तो यह एक नई रीति चलाते हैं। (ग) मुहम्मद साहब ने मुसलमानी धर्म चलाया था। १३. व्यवहृत करना। प्रयुक्त करना। जैसे,—तलवार चलाना, लाठी चलाना, कलम चलाना, हाथ पैर चलाना। १४. तीर, गोली आदि छोड़ना। किसी वस्तु को किसी धोर लक्ष्य करके वेग के साथ फेंकना। जैसे,—ढेला या गुलेला चलाना। १५. किसी वस्तु से प्रहार करना। किसी चीज से मारना। जैसे,—हाथ चलाना। डंडा चलाना। १६. किसी व्यवसाय या व्यापार की वृद्धि करना। काम चमकाना। जैसे,—जब सब खोल द्वार बंद, तब उन्होंने कारखाना चलाकर दिखा दिया। १७. आचरण कराना। व्यवहार कराना। १८. बान में से कपड़ा उतारते समय उसे सीधा न फाड़कर असावधानी आदि के कारण टूटा या तिरछा फाड़ना। (बजाव)।

चलानी^१—संज्ञा स्त्री० [चलान] खरीद तथा बिक्री के लिये माल बाहर भेजने तथा लाने का कार्य।

चलानी^२—वि० हि० चलान संबंधी। चलानवाला। उ०—ऊँह तुम चाँदी चलानी ची हो।—मैसा०, पृ० १५।

चलायमान—वि० [सं०] १. चलनेवाला। जो चलता हो। २. चंचल। ३. विचलित।

चलावा^१—संज्ञा पु० [हि० चलना] १. चलने का भाव। यात्रा। प्रयाण। पयान। रवानगी। उ०—तपावत चला मिल दीन्हा। बेग चलाव चहूँ दिशि कीन्हा।—जायसी (शब्द०)। २. दे० 'चलावा'।

चलावक^१—वि० [हि०] चलानेवाला। उ०—राज माहँइ ईलि परिहई। राज चलावकें और परधान। ईण सुँ विरोध नहुँ बोलिजह।—बीसल० रास०, पृ० ५३।

चलावनहार^१—वि० [हि० चलावना + हार (प्रत्य०)] प्रवर्तक। चलावनहारा^१—वि० [हि० चलावन—हारा (प्रत्य०)] चलानेवाला। प्रवर्तक। उ०—श्री गुसाईं जी आप पुष्टिमार्ग के चलावनहारे हैं।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० ११२।

चलावना^१—क्रि० स० [हि०] दे० 'चलाना'।

चलावा—संज्ञा पु० [हि० चलना] १. रीति। रस्म। रवाज।

क्रि० प्र०—चलना।

२. द्विरागमन। गौना। मुकलावा। ३. एक प्रकार का उतारा जो प्रायः गाँवों में भयंकर बीमारी पड़ने के समय किया जाता है।

विशेष—इसे लोग बाजा बजाते हुए अपने गाँव की सीमा के बाहर ले जाकर किसी दूसरे गाँव की सीमा पर रख आते हैं और समझते हैं कि बीमारी इस गाँव से निकलकर उस गाँव में चली गई।

४. चक्र की समझनावाला । मुझे की समझाने से जाना । उ०—
बड़े ठाटवाट बुझान से चक्रावा हुआ ।—सुंदर० ग्रं०,
भा० १, पृ० १४२ ।

चक्रार्थ—वि० [सं०] प्रचलनवाला । हमेशा चलनेवाला ।

चक्र०—१. चक्रार्थपत्र=चलपत्र । २. चक्रार्थमुद्रा=वह मुद्रा
जिसका व्यवहार निरंतर होता है ।

चक्रासन—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के मत से एक प्रकार का दोष जो
सामयिक व्रत में आसन बदलने के कारण होता है ।

चक्रि—संज्ञा पुं० [सं०] १. घावरण । २. ग्रंथरत्ना ।

चक्रित^१—वि० [सं०] १. घुमिचर । चलायमान । २. चलता हुआ ।

चक्रि०—चलितचक्र । चलचक्रित ।

चक्रित^२—संज्ञा पुं० मूल्य में एक प्रकार की चेष्टा जिसमें छोड़ी की गति
से क्रोध या क्रोध प्रकट होता है ।

चक्रितग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्र में वह ग्रह जिसके फल का
कुछ क्षण भोगा जा चुका हो और कुछ भोगने को बाकी रह
गया हो ।

चक्रित^३—संज्ञा पुं० [सं०] चरित] दे० 'चरित' या 'चरित्र' ।
उ०—आगे चले चक्रित धनंता । पंचि गुणों का किया सवंता ।
—प्राण०, पृ० ४२ ।

चक्रित^४—वि० [सं०] अपनी ही शक्ति से चलनेवाला ।

चक्रिण्यु—वि० [सं०] चलने का हस्त्युक्त । चलने को उद्यत [क्रो०] ।

चक्रु—संज्ञा पुं० [सं०] पूरे मुँह में भरा हुआ पानी । मुँह भर पानी
[क्रो०] ।

चक्रु^१—संज्ञा पुं० [सं०] चुल्लू में लिया हुआ जल [क्रो०] ।

चक्रु^२—वि० चुल्लू भर (पानी) [क्रो०] ।

चक्रैया^१—वि० [हि० चलना] चलनेवाला ।

चक्रैया^२—वि० [हि० चालना] चालनेवाला ।

चक्रौना—संज्ञा पुं० [हि० चलना] १. वह कलछा या लकड़ी का
डंढा जिससे दूध, पानी या और कोई द्रव्य पदार्थ हिलाया
जाता है । २. वह लकड़ी का टुकड़ा जिससे चरखा चलाया
जाता है ।

चक्रौवा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चलावा' ।

चक्राना^१—क्रि० प्र० [हि० चलना] दे० 'चलना' । उ०—चक्र
लोक चले, मसीता महले । क्रोडो सकायी, उठी साह
धायी ।—रा० क०, पृ० ३२ ।

चक्रबा^१—संज्ञा पुं० [हि० चिल्ला] दे० 'चेल्ला' ।

चक्रा^१—संज्ञा पुं० [हि० चिल्ला (= अनुष की बोरी)] प्रत्यंचा ।
रोदा । उ०—सुनतहि जोधार पुर भोगइद तूटे, कवाच चले
ते सायद से छूटे ।—रघु० क०, पृ० २३६ ।

चक्रौनी—संज्ञा जी० [देश०] तकले पर लपेटा हुआ सूत या ऊन धादि ।
कुकड़ी ।

चलहवा—संज्ञा पुं० [हि०] चेल्ला ।

चक्रवेद^१—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रवेद] उ०—चक्रवेद ग्रंथ हरी किति
भाषी । चिन्त धर्म साधर्म संसार साक्षी ।—पृ० रा०, १, ६ ।

चक्रकी^१—संज्ञा जी० [हि० चौकी] दे० 'चौकी' ।

चक्रद्वी^१—संज्ञा जी० [सं०] चक्रद्वीप] चौसठ । यहाँ योगिनियों से
तात्पर्य है जिनकी संख्या चौसठ कही जाती है । उ०—चक्रद्वी
चिकारे फिकारे फिकोर । गम गिद गड्ड पलं पूषि चड्ड ।—
पृ० रा०, ७ । १२४ ।

चक्रद्वी^२—क्रि० वि० [देश०] प्रगट में । उ०—भिके सचेत बगाला
मारप, चक्रद्वी खेत करे चित खोज ।—रघु० क०, पृ० १२ ।

चक्रद्वी^३—वि० संज्ञा पुं० [हि० चौदह] चौदह । उ०—कल चक्रद्वी
चक्रद्वी तणी दुय तुक मिले मोहरा तामही । कल त्रितिय
पोडस बले दसकल चतुरथी तुक में बही ।—रघु० क०,
पृ० ६६ ।

चक्रद्वी^४—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रद्वीप] दे० 'चक्रद्वीप' । उ०—कोइक
दिन गुर राम पे पढी सु विद्या अप्य । चक्रद्वी विद्या चतुरवर
लई सीख पट लिप्य ।—पृ० रा०, १ । ७२६ ।

चक्रदा—वि० [हि० चौदह] दे० 'चौदह' । उ०—चक्रदा ही सब
लोक नौछावरि ग्रह पर करी । फाग मनोखी लोक और न
परके सम धरौ ।—ग्रज० ग्रं०, पृ० ३२ ।

चक्रन्नी—संज्ञा जी० [हि० चौ (चार) + आना + ई (प्रत्यय)]
चार आने मूल्य का चाँदी या निकल का सिक्का ।

चक्रना^१—क्रि० प्र० [सं०] चक्रवर्त्तन] घूना । टपकना ।

चक्रना^२—[सं०] कहना । बोलना । उ०—जै जै सबद बंदिन चक्रहि,
मागध पुन पवित्र भति । अनघन प्रवाह बहु पुहवि परि,
वरणी जेम पुरंद गति ।—पृ० रा०, १ । ४७२ ।

चक्रपैया—संज्ञा जी० [हि०] दे० 'चौपैया' ।

चक्रर^१—संज्ञा पुं० [हि० चक्र] दे० 'चक्र' ।

चक्रर^२—संज्ञा जी० [हि० चौदह, जोहड़] जलकुंड । उ०—ऊसर
खेत के कुसा भंगाए, चक्रर चक्रर के पानी ।—कबीर ज०,
भा० २, पृ० ४३ ।

चक्ररना^१—क्रि० प्र० [सं०] चक्र, हि० चक्र] तेजी या वेग से
बढ़ाना । उ०—आवहि सावज बात जब मारहु लौह पचारि ।
चक्रर जो आगे हूँ चले छाड़हु सोनहा आरि ।—चित्रा०,
पृ० २४ ।

चक्ररा—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रल] लोबिया ।

चक्ररार^१—क्रि० वि० [देश०] चक्रुदिक् । चारो ओर उ०—गुर लज्ज
ऊवर भर सज्जि रहि है पण्णर चक्ररार हय । पृ० रा० २४ ।
१०४ ।

चक्रर^२—संज्ञा पुं० [सं०] [वि०] चक्ररार्थ] च से अ तक के अक्षरों का
समूह । इन अक्षरों का उच्चारण तालु से होता है ।

चक्रल—संज्ञा पुं० [सं०] लोबिया ।

चक्रा^२—संज्ञा जी० [हि० चौपाई] चारों ओर से चलनेवाली
हवा । एक साथ सब दिशाओं से बहनेवाली वायु । उ०—
नागि दवारि पहार टही टहकी कपि लंक यथा लरलौकी ।
चाह चक्रा चक्र ओर चली ऊपटी सपटें सो तपीचर लौकी ।—
तुलसी (शब्द०) ।

चवाई—वि० [हि० चवाव] [वि० ली० चवाईन] १. बदनामी की चर्चा फैलानेवाला। कलंकसूचक प्रवाद फैलानेवाला। दूसरों की बुराई करनेवाला। निन्दक। उ०—(क) मैं तबनी तुम तबन तन चुगल चवाई गाँव। मुरली से न बजाइयो कबहुँ हमारे गाँव।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) चौबेद चार चवाईन के चहुँ ओर मचें बिरचें करि हाँसी (शब्द०)। (ग) चार चवाईन से दुरबीनन भाओ न आज तमाओ लखात है।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। २. झूठी बात करनेवाला। व्यर्थे इधर की उधर लगानेवाला। झुगलखोर। उ०—सुनहु कान्हू बलभद्र चवाई जनमत ही को धूँत। सूरश्याम मोहि गोधन की सौँ हों माता तू पूत।—सूर (शब्द०)।

चवाव—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चवाव'।

चवाव (५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चवाव'। उ०—(क) डारि दियो गुद लोगनि को डर गाँव चवाव मैं नाँव बराए।—मति० प्र०, पृ० ४२१। (ख) गोकुल की गैल मैं गोपाल खाल गोधन मैं गोरज लपेटे लेखे ऐसी गति कीनी है। चौंकि चौंकि चतुर चवावन चलावत हैं, रहो चुपचाप चोय चित्त मति कीनी है।—नट०, पृ० ६५।

चवाली (५)—वि० [देश०] हीन। खराब। निकम्मा। उ०—कवल बदन काया करि कंचन चेतनि करी जपमाली। अनेक जनम लां पातिग छूटै जपंत गोरख चवाली।—गोरख०, पृ० १०१।

चवाली (१)—वि०, संज्ञा पुं० [हि० चौवालीस] दे० 'चौवालीस'। उ०—इकतीस चवाली रात्रि मानि। सब घुटिय साठि दिन राति जानि।—ह० रासो, पृ० ३१।

चवालीस—संज्ञा पुं० [हि० चौवालीस] दे० 'चौवालीस'।

चवाव—संज्ञा पुं० [हि० चौवाई] १. चारों ओर फैलनेवाली चर्चा। प्रवाद। झफवाह। २. चारों ओर फैली हुई बदनामी। निंदा की चर्चा। किसी की बुराई की चर्चा। उ०—(क) नैनन तें यह भई बड़ाई। घर घर यह चवाव चलावत हमसों भेंट न माई।—सूर (शब्द०)। (ख) ये चरहाई लोगाई सबै, निसि घोस निवाज हमें दहती है। बातें चवाव भरी सुनि कै रिस लागति पै चुप हूँ रहती है।—निवाज (शब्द०)। (ग) ज्यों ज्यों चवाव चले चहुँ ओर धरे चित्त चाव ये त्योंहि रयों बोले—(शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—चलना।—चलाना।

३. पीठ पीछे की निंदा। झुगलखोरी।

चवि—संज्ञा ली० [सं०] दे० 'चविका'।

चविक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़ [को०]।

चविका—संज्ञा ली० [सं०] अव्यय नाम की श्लोषधि। वि० दे० 'चव'।

चवैया—संज्ञा पुं० [हि० चवाई] दे० 'चवाई'।

चव्य-चव्यका—संज्ञा पुं० [सं०] एक श्लोषधि। वि० दे० 'चव'।

चव्यजा—संज्ञा ली० [सं०] गजपीपल।

चव्या—संज्ञा ली० [सं०] दे० 'चव्य'।

चशक—संज्ञा ली० [हि० चसका] वह भोजन जो साहूबों के यहाँ से किसी विशेष अवसर पर दावचियों को मिलता है।

चशम—संज्ञा ली० [फ़ा० चश्म] दे० 'चश्म'।

विशेष—चशम के यौ० आदि के लिये देखो 'चश्म'।

चशमा—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्मह] दे० 'चश्मा'।

चश्म—संज्ञा ली० [फ़ा०] नेत्र। आँख। लोचन। नयन।

यौ०—चश्मदीद। चश्मनुमाई। चश्मपोशी। आदि।

मुहा०—चश्म बब दूर = दुरी नजर दूर हो। दुरी नजर न लगे।

विशेष—इस वाक्य का व्यवहार किसी चीज की प्रशंसा करते समय उसे नजर लगने से बचाने के अभिप्राय से किया जाता है।

चश्मक—संज्ञा ली० [फ़ा० चश्म] १. मनमोटाव। वैमनस्य। ईर्ष्या। द्वेष। २. चश्मा। ऐनक। ३. आँख का इशारा।

चश्मजन—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्मजन] वह जो आँख से इशारा करता है [को०]।

चश्मजदन—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्मजदन] १. क्षण। निमेष। लमहा। २. पलक झपकना [को०]।

चश्मदीद—वि० [फ़ा०] जो आँखों से देखा हुआ हो।

यौ०—चश्मदीद गवाह = वह साक्षी जो अपनी आँखों से देखी घटना कहे। वह गवाह जो चश्मदीद माजरा बयान करे।

चश्मनुमाई—संज्ञा ली० [फ़ा०] धूरकर किसी के मन में भय उत्पन्न करना। धमकी या धुड़की। आँख दिखाना।

चश्मपोशी—संज्ञा ली० [फ़ा०] आँख चुराना। सामने न होना। कतराना।

चश्मा—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्मह] १. कमानी में जड़ा हुआ लोहे या पारदर्शी पत्थर के तालों का जोड़ा, जो आँखों पर उनका बोझ दूर करने, दृष्टि बढ़ाने अथवा धूप, चमक या गर्म आदि से उनकी रक्षा करने और उन्हें ठंडा रखने के अभिप्राय से लगाया जाता है। ऐनक।

विशेष—चश्मों के ताल हरे, लाल, नीले, सफेद, और कई रंग के होते हैं। दूर की चीजें देखने के लिये नतोवर और पास की चीजें देखने के लिये उन्नतोदर तालों का चश्मा लगाया जाता है।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—लगाना।—लगना।

मुहा०—चश्मा लगना = आँखों में चश्मा लगाने की आवश्यकता होना। जैसे, जब तो उनकी आँखें कमजोर हो गई हैं; चश्मा लगता है।

२. पानी का सोता। झोत।

यौ०—चश्म-ए-खिज, चश्म-ए-हैबी = प्रभु का कुंड या सोता। चश्म-ए-सार = जहाँपर बहुत से चश्मे हों।

३. छोटी नदी। छोटा दरिया। ४. कोई जलाशय। ५. सुई का छेद।

चष (५)—संज्ञा पुं० [सं० चष] नेत्र। आँख।

यौ०—चषबोल।

चपक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मद्य पीने का पात्र । बहु बरतन जिसमें मद्य पीते हैं । प्याला । उ०—(क) प्राण ये मन रसिक ललिता थी लोचन चपक पिवति मकरं मुख रासि अंतर सपी ।—सूर (शब्द०) । (ख) दंढनील मणि महा चपक या सोम रहित उलटा सटका ।—कामायनी, पृ० २४ । २. मधु । सहच । ३. एक विशेष प्रकार की मबिरा ।

चपकोल—संज्ञा पुं० [हि० चप + कोल (= वस्त्र)] झाल की पलक । झाल का परदा । उ०—चलिगो कुंकुम गात तें दलिगो नयो निचोल । दुरे दुरायो क्यों सुरत मुरत पुरत चपकोल ।—भू० सत० (शब्द०) ।

चपरा—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन । भक्षण । २. चप करना । क्षय करना । हनन करना ।

चपसि—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन । भक्षण । २. चप । हनन । ३. पतन । क्षय । ह्रास (शब्द०) ।

चपाव—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ के यूप में लगी हुई पशु बांधने की गराही ।

चषि—संज्ञा पुं० [सं० चषु] चषु । नेत्र । उ०—प्रति उंच उतंग कुरंग कुरं । चरि चषि गिलंब उडंड पुरं ।—पृ० रा०, १२ । ३५ ।

चस—संज्ञा स्त्री० [देश०] किसी किनारदार कपड़े के ऊपर या नीचे की ओर बनी हुई कलाबल या किसी दूसरे रंग के रेशम या सूत की पतली लकीर या धारी ।

चसक—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. हलका दर्द । कसक । २. गोटे या मतलस आदि की पतली गोठ जो संजाफ या मगजी के धाने लगाई जाती है ।

चसक—संज्ञा पुं० [सं० चपक] दे० 'चपक' ।

चसकना—क्रि० प्र० [हि० चसक] हलकी पीड़ा होना । मीठा बर्ण होना । टीसना ।

चसका—संज्ञा पुं० [सं० चषण] १. किसी वस्तु (विशेषतः खाने पीने की वस्तु) या किसी काम में एक या अनेक बार मिला हुआ आनंद, जो प्रायः उस चीज के पुनः पाने या उस काम के पुनः करने की इच्छा उत्पन्न करता है । शौक । चाट । २. इस प्रकार पड़ी हुई आदत । लत । जैसे,—उसे मद्य पीने का चसका लग गया है ।

क्रि० प्र०—खानना ।—पढ़ना । लगना ।

चसकी—वि० [हि० चसका] चाववाला । चाह या चसकावाला । उ०—भाव के कुछ नेह के जल में, प्रेम रंग दह बोर । चसकी पास लगाह के रे, खूब रंगी झकझोर ।—संतवाणी० भा० २, पृ० २ ।

चसना—क्रि० प्र० [सं० चषण] १. प्राण त्यागना । मरना । २. फंदे में फँसकर किसी मनुष्य का कुछ देना, विशेषतः किसी गाहक का माल खरीदना ।—(दलाल) । ३. चखना । स्वाद लेना । चाटना । उ०—गिरि मदि गहिर गुभझ वलहि, नीर समीप न संचरहि । सोमस सुतन आवेट डर, इम बडाल उस सह चसहि ।—पृ० रा०, ६ । १०१ ।

चसना—क्रि० प्र० [हि० चासनी] दो चीजों का एक में सटना ।

लगना । चिपकना । उ०—ज्यों तामी सर एक नाल नव कनक कमल विवि रहे चसी री ।—सूर (शब्द०) ।

चसम—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्म] दे० 'चश्म' ।

चसम—संज्ञा पुं० [देश०] रेशम में तागों में से निकला हुआ निकम्मा धंश । रेशम का खुज्जा ।

चसमा—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्मह] दे० 'चश्मा' ।

चस्का—संज्ञा पुं० [हि० चसका] दे० 'चसका' ।

चरपा—वि० [फ़ा०] चिपकाया हुआ । सटाया हुआ । सेई आदि से लगाया हुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

चस्म—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्म] दे० 'चश्म' । उ०—हूर बिना सरोद सब बाजै चस्म बिना सब दरसे ।—मज़क० बानी, पृ० ४ ।

चस्मा—संज्ञा पुं० [फ़ा० चश्मह] दे० 'चश्मा' उ०—दिए ललाट लगाए चस्मा घुरकत हुरदम ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १४ ।

चस्सी—संज्ञा पुं० [देश०] हथेली और तलवों की खुजली ।

चह—संज्ञा पुं० [सं० चय] १. नदी के किनारे कच्चे घाटों पर लकड़ियाँ गाड़कर और घासफूस तथा बालू आदि से पाटकर बनाया हुआ चबूतरा, जिसपर से होकर मनुष्य और पशु आदि नावों पर चढ़ते हैं । पाट । २. बाँस या तख्ते बिछाकर आरपार धाने जाने के लिये बनाया हुआ अस्थायी पुल ।

क्रि० प्र०—बांधना ।

चह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चाह] गड्ढा । गर्त ।

चौ०—चहचक्का ।

चहक—संज्ञा स्त्री० [हि० चहकना] 'चहकना' का भाव । लगातार होनेवाला पक्षियों का मधुर शब्द । चिड़ियों का चहचह शब्द ।

चहक—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'चहला' ।

चहकना—क्रि० प्र० [अनु०] १. पक्षियों का आनंदित होकर मधुर शब्द करना । चहचहाना । २. उमंग या प्रसन्नता से अधिक बोलना ।—(बाजारू) ।

चहकना—क्रि० प्र० [हि० चहका] जलाना । धाग लगाना । उ०—सीरी समीर सरीर दहे, चहके चपला चस ले करि ऊकै ।—घनानंद, पृ० २७ । २. दे० 'चमकना' ।

चहका—संज्ञा पुं० [सं० चय] हंट या पथर का फर्श ।

चहका—संज्ञा पुं० [देश०] १. जलती हुई लकड़ी लुपाठी । लूका ।

मुहा०—चहका देना या लगाना = लूका लगाना । धाग लगाना । जलाना ।—(स्त्रियों की गाली) ।

२. बनेठी । ३. होली के अवसर पर गाया जानेवाला एक प्रकार का गाना ।

चहका—संज्ञा पुं० [हि० चहना] कीचड़ । चहला ।

चहकार—संज्ञा स्त्री० [हि० चहक] दे० 'चहक' ।

चहकारना—क्रि० प्र० [हि० चहकार] दे० 'चहकना' ।

चहकारा—वि० [हि० चहकना] कलरव करनेवाला । चहकनेवाला ।

चहकारा—संज्ञा पुं० [हि० चहकार] चहक ।

बहल^१—संज्ञा पुं० [हि० बहलना] १. 'बहलना' का भाव । बहल । २. हँसी विलगी । ठट्ठा । चुहलबाजी

क्रि० प्र०—मचना । मचावा ।

बहल^२—वि० [वि० बी० बहलही] १. जिसमें बहल बहल शब्द हो । उत्साह शब्दयुक्त । उ०—बहलही चुहल चहकित असीन की । —रसज्ञान (शब्द०) । २. आनंद और उमंग उत्पन्न करनेवाला । बहुत मनोहर । उ०—बहलही चहल चहल बाबू चंदन की चंदक चुनीन चौक चौकनि चढ़ी है आब । —पद्माकर प्र०, पृ० १२५ । ३. ताजा । हाल का ।

बहलना—क्रि० प्र० [प्रनु०] पक्षियों का बहल बहल शब्द करना । बहलना । चहकारना ।

बहलहाट—संज्ञा बी० [हि० बहलहाना + हाट (प्रत्य०)] दे० 'बहलहाट' ।

बहलहाट—संज्ञा बी० [हि० बहलहाना + हाट (प्रत्य०)] बहलहाने का भाव या स्थिति ।

बहलता—संज्ञा पुं० [प्रनु०] कीचड़ । पंक ।

बहलता—वि० [प्रा० बहल (मध्यगम ह) > बहल + ता (प्रत्य०)] ऊँचे चढ़ना । उ०—बीज न देख बहलियाँ भी परदेस गयाँह । आपण लीय भुवकड़ा, गलि लामी सहरीह । —डोला०, पृ० १५२ ।

बहलता—संज्ञा पुं० [हि० बहलता या बहेता] दे० 'बहेता' ।

बहलना—क्रि० स० [हि० बहलना] बहलना । बहलना । रोदना । मुहा०—बहलकर खाना = बहुत मच्छी तरह खाना । कसकर खाना । उ०—लुभई पोह पोह धी भेई । पाछे बहल खाई सो जेई । —जायसी (शब्द०) ।

बहलना—क्रि० स० [हि० बहलना] १. बहलना । पसंद करना । २. देखना । उ०—जब हंसि हनवर हरि तन चह्यो । हरि तब सब हलवर सो कह्यो । —नंद प्र०, पृ० २६६ ।

बहलना—संज्ञा बी० [हि० बहलना] दे० 'बहल' ।

बहलचा—[हि० बहलचा] दे० 'बहलचा' । उ०—बापी बापी रूप तड़ाग तै भरे बहलचा लाय । प० रा० । पृ० ५५ ।

बहलचा—संज्ञा पुं० [प्रा० बहल = (कुछा) + बहल] १. पानी (विशेषतः गंदा या नल आदि का) भर रखने का छोटा गड्ढा या होज । २. धन गाड़ने या खिपा रखने का छोटा तहखाना ।

विशेष—कुछ लोग इसे 'बीबच्चा' भी कहते हैं ।

बहलचा—संज्ञा पुं० [हि० बहलचा] दे० 'बहलचा' । उ०—जनु रंक पाए दब, नल नलन नीर बहलचा । —पृ० रा०, २० । १३८ ।

बहल—संज्ञा बी० [हि० बहल] १. आनंद की धूम । आनंदोत्सव । रौनक । उ०—हरख भए नंद करत बधाई दान देत कहा कहीं महर की । पंच शब्द ध्वनि बाजत नाचत गावत मंगलचार बहर की । —सूर (शब्द०) । २. जोर का शब्द । जोर गुल । हल्ला । उ०—मयति दधि जसुमति मचानी धुनि रही घर महरि । श्रवण सुनि न महरि बातें जहाँ तहँ गई बहरि । —सूर (शब्द०) । ३. उपद्रव । उत्पात । उ०—सुत को बरजि राखी महरि । जमुन तट हरि देख

ठाके बरजि भावें बहरि । सूर श्यामहि नेक बरजी करत है अति बहरि । —सूर (शब्द०) ।

बहल^२—वि० १. बढ़िया । उत्तम । २. चुलबुला । तेज । उ०—गूढ़ गिरिगिरि गुलगुल से गुलाब रंग बहर बगर चटकीले हैं बालक के । —सूदन (शब्द०) ।

बहल^३—संज्ञा पुं० [हि० चौहट] चौक । बाजार । चरवर । उ०—इह देही का गरब न करना माटी में मिल जासी । यो संसार बहर की बाजी साँझ पड़्या उठि जासी । —सूदर प्र०, भा० १, पृ० ६१ ।

बहलना^१—क्रि० प्र० [हि० बहल] आनंदित होना । प्रसन्न होना । उ०—आनंद मरी जसोवा उमगि मंग न समाति आनंदित भई गोपी गावती बहरि के । —सूर (शब्द०) ।

बहलना^२—क्रि० स० [?] निंदा करना । उ०—गह बढ़िया संतोष गज, घर पड़ ज्योतू चौक । बढ़िया ज्योतू बहरजे, लालच गरबम लोक । —बीकी० प्र०, भा० ३, पृ० ५६ ।

बहलना^३—क्रि० प्र० [हि०] १. दे० 'बहलना' । २. दे० 'चरना' ।

बहलना^४—क्रि० प्र० [हि०] दरकना । फटना । तड़कना । चटकना ।

बहलम—वि० [प्रा० बहलम] दे० 'बहलम' ।

बहल^५—संज्ञा बी० [प्रनु०] १. कीचड़ । कीच । कदम । उ०—बहलही बहल चहल बाबू चंदन की चंदक चुनीन चौक चौकनि चढ़ी है आब । —पद्माकर प्र०, पृ० १२५ । २. कीचड़ मिली हुई कड़ी चिकनी मिट्टी की जमीन जिसमें बिना हल चलाए जोताई होती है ।

बहल^६—संज्ञा बी० [हि० बहलना] आनंद की धूम । आनंदोत्सव । रौनक ।

यौ०—बहल पहल ।

बहल^७—वि० [प्रा० बहल] चालीस । जैसे,—बहल्लुम में बहल । उ०—कहे हैं बाजसरत ता बहल माल परियाँ कूँ ही समज बेलाह का हाल । —दक्खिनी०, पृ० १७६ ।

बहलकदमी—संज्ञा बी० [हि० बहल + प्र० कदम + हि० ई (प्रत्य०)] बीरे बीरे टहलना, घूमना या चलना ।

बहलना^८—क्रि० स० [हि० बहलना] १. दे० 'बहलना' ।

मुहा०—बहलकर खाना = दे० 'बहलकर खाना' ।

† २. किसी वस्तु को पैरों से दबाना । रोदना ।

बहलपहल—संज्ञा बी० [प्रनु०] १. किसी स्थान पर बहुत से लोगों के आने जाने की धूम । घमासान । २. बहुत से लोगों के आने जाने के कारण किसी स्थान पर होनेवाली रौनक । आनंदोत्सव । आनंद की धूम ।

क्रि० प्र०—मचना । होना ।

बहल^९—संज्ञा पुं० [सं० बहल] कीचड़ । पंक । उ०—(क) चंदन के बहल में परी परी पंकज की पैलरी नरमी में । —(शब्द०) । (ख) हक भीजे, चहलें पटे, बूड़े, बहल हजार । —बिहारी २०, दो० ४६१ ।

बहल^{१०}—संज्ञा बी० [दश०] कुएँ से पानी खींचने की चरखी । गराड़ी । घिरनी ।

बहल्लुम—संज्ञा पुं० [प्रा० बहल्लुम] दे० 'बहल्लुम' ।

चहा—संज्ञा स्त्री० [हि० चाह] चाह । इच्छा । मनोरथ । कामना ।
सं०—मीरन के जनबाड़े कहा घर बाड़े कहा नहि होत चहा
है ।—सूचण प्र०, पृ० ६३ ।

चहार—वि०, संज्ञा पुं० [फ्रा०] चार । चार की संख्या ।

चौ०—बहारगोश = चौकोना । चहारबंद = चौगुना । चहार-
बंद = चौदह । चौदह की संख्या । चहारवारी = मुसलमानों
का सुन्नी नामक संप्रदाय जो मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी
चार खलीफों में विश्वास रहता है जिनके नाम अबूबकर
(६३२-३४ ई०), उमर (६३४-४४ ई०), उसमान
(६४४-४५ ई०) और अली (६५५-६६ ई०) हैं ।

चहारदीवारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] किसी स्थान के चारो ओर की
दीवार । प्राचीर । कोट । परिसरा । परकोटा ।

चहारमा—वि० [फ्रा० चहारम] दे० 'चहारम' । उ०—चहारम
जस कतें सकरात जब होय । जबान बंद होयगा सब ओ प्रकल
होय ।—दक्खिनी०, पृ० ११४ ।

चहारम—वि० [फ्रा०] चौथा । चतुर्थ ।

चहारम—संज्ञा पुं० किसी वस्तु के चार भागों में से एक भाग ।
चतुर्थांश । चौथाई भाग ।

चहीला—संज्ञा पुं० [देश०] मार्ग । रास्ता उ०—दिये चहीले
आलतां प्रार गाल एक दोय । लाहरी लोटी हुबै, बवल न
लोटी होय ।—बोकी० प्र०, भा० १, पृ० ४२ ।

चहुँ—वि० [हि० चार] चार । चारो । उ०—चहुँ का संगी
चहुँ संगि हेतु ।—प्राण०, पृ० ६० ।

विशेष—यह शब्द योगिक के पहले आता है । जैसे, चहुँपा,
चहुँचक (चारो ओर) आदि ।

चहुँक—संज्ञा स्त्री० [हि० चौक] दे० 'चहुँक' ।

चहुँकन—क्रि० प्र० [हि० चौकना] दे० 'चहुँकना' ।

चहुँखा—वि० [हि० चहुँ + खी (घर)] चारों ओर । चतुर्दिक् ।
उ०—अब सुनहु बंस तिनके अपार यह । भइय सृष्टि चहुँखा
(चहुँघा) निवार ।—ह० रासो, पृ० ५ ।

चहुँटना—क्रि० स० [हि०] चोट पहुँचाना । चपेटना ।

चहुँपान—संज्ञा पुं० [हि० चौहान] दे० 'चौहान' । उ०—दक्खिन
दिसि रनयभगढ़, तहें हमीर चहुँपान ।—हम्मीर०, पृ० १ ।

चहुरा—वि० पुं० [हि०] १. 'चौघरा' । २. 'चौहरा' ।

चहुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चहु] एक पात्र या मान ।

चहुवान—संज्ञा पुं० [हि० चौहान] दे० 'चौहान' ।

चहुँ—वि० [सं० चतुर, हि० चौ] दे० 'चहुँ' ।

चहुँटना—क्रि० प्र० [हि० चिमटना] सटना । लगना । मिलना ।
उ०—ढोरी लागी भय मिटा, मन पाया विश्राम । चित्त
चहुँटा राम सों, याही केवल धाम ।—कबीर (शब्द०) ।

चहेटना—क्रि० स० [देश०] १. किसी चीज को दबाकर उसका रस
या सार भाग निकालना । गारना । निचोड़ना । उ०—चंद
चहेटि समेटि सुधारस कीन्हों सबे सिय के अघरान को । २.
दे० 'चपेटना' ।

चहेता—वि० [हि० चाहना + एता (प्रत्यय)] [वि० स्त्री० चहेती]
जिसके साथ प्रेम किया जाय । जिसे चाहा जाय । प्यारा ।

चहेती—वि० स्त्री० [हि० चहेता] जिसे चाहा जाय । प्यारी । जैसे,—
चहेती स्त्री ।

चहेला—संज्ञा स्त्री० [हि० चहला] १. चहला । कीचड़ । २. वह
भूमि जहाँ कीचड़ बहुत हो । दलदली भूमि ।

चहोरना—क्रि० स० [हि०] दे० 'चहोरना' ।

चहोड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चहोरा' ।

चहोरना—क्रि० प्र० [देश०] १. घान या अन्य किसी वृक्ष के पीछे
को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाना । रोपना ।
ढैठाना । २. सहेजना । संभालना । बेख भालकर सुरक्षित
करना । उ०—वाटी कूटी माछरी छींके धरी चहोरि ।
कोई एक भोगुन मन बसा दह में परी बहोरि ।—कबीर
(शब्द०) ।

चहोरना—क्रि० स० दे० 'चहोरना' ।

चहोरा—संज्ञा पुं० [हि० चहोरना] जड़हन घान जिसे रोपुवा घान
भी कहते हैं ।

चांग—संज्ञा पुं० [सं० चाङ्ग] १. दाँतों की सफेदी या सुंवरता । २.
चांगेरी या अमलोनी नामक साग [को०] ।

चांगेरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चाङ्गेरिका] एक वनौषधि जो वात-
पित्त-नाशक होती है [को०] ।

चांगेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चाङ्गेरी] अमलोनी जिसका साग होता
है । खट्टी लोनी ।

चांचल्य—संज्ञा पुं० [सं० चाञ्चल्य] चंचलता । चपलता ।

चांड—संज्ञा पुं० [सं० चाण्ड] १. तेजी । वेग । प्रचंडता [को०]

चांडाल—संज्ञा पुं० [सं० चाण्डाल] [स्त्री० चांडाली, चांडालिन]
१. अत्यंत नीच जाति । डोम । श्वपच ।

विशेष—मनु के अनुसार चांडाल शुद्ध पिता और ब्राह्मणी माता
से उत्पन्न हैं और अत्यंत नीच माने गए हैं । उनकी बस्ती ग्राम
के बाहर होनी चाहिए, भीतर नहीं । इनके लिये सोने चाँदी
आदि के बरतनों का व्यवहार निषिद्ध है । ये सूटे बरतनों में
भोजन कर सकते हैं । चाँदी सोने के बरतनों को छोड़ और
किसी बरतन में यदि चांडाल भोजन कर ले, तो वह किसी
प्रकार शुद्ध नहीं हो सकता । कुत्ते, गदहे आदि पालना, मुरदे
का कफन आदि लेना, तथा इधर उधर फिरना इनका व्यवसाय
ठहुराया गया है । यज्ञ और किसी धर्मानुष्ठान के समय इनके
दर्शन का निषेध है । इन्हें अपने हाथ से भिक्षा तक न देनी
चाहिए, सेवकों के हाथ से दिलवानी चाहिए । रात्रि के समय
इन्हें बस्ती में नहीं निकलना चाहिए । प्राचीन काल में
अपराधियों का वध इन्हीं के द्वारा कराया जाता था । लावा-
रिस्तों की दाह आदि किया भी वही करते थे ।

पर्या०—श्वपच । प्लव । मातंग । विवाकीति । जनगम ।
निषाद । श्रपाक । अंतेवासी । पुष्कस । निष्क ।

२. कुकर्मा, दुष्ट, दुरात्मा, क्रूर या निष्ठुर मनुष्य । पतित मनुष्य ।

चांडालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चाण्डालिका] १. दे० 'चांडालिका' ।
२. दुर्गा का एक नाम [को०] ।

चांडालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चाण्डालिनी] तंत्रसाधना की एक देवी [को०] ।

चांडाली—संज्ञा स्त्री० [सं० चाण्डाली] १. चांडाल जाति की स्त्री ।
वह स्त्री जो चांडाल जाति की हो । २. चांडाल की स्त्री [को०] ।

चांदनिक—वि० [सं० चान्दनिक] [वि० स्त्री० चांदनिकी] १. चंदन का बना हुआ । २. चंदन संबंधी । ३. चंदन से बासा हुआ ।
४. चंदन में होने, रहने या पाया जानेवाला [को०] ।

चांद्र—वि० [सं० चान्द्र] [वि० स्त्री० चान्द्री] चंद्रमा संबंधी ।
जैसे,—चांद्रमास । चांद्रवत्सर ।

चांद्र—संज्ञा पुं० १. चांद्रायण व्रत । २. चंद्रकांत मणि । ३. भद्ररत्न ।
४. मृगशिरा नक्षत्र । ५. लिग पुराण के अनुसार प्लक्ष द्वीप का एक पर्वत ।

चांद्रक—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रक] सोंठ ।

चांद्रपुर—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रपुर] बृहत्संहिता के अनुसार एक नगर जिसमें एक प्रसिद्ध शिवमूर्ति के होने का उल्लेख है ।

चांद्रभागा—संज्ञा स्त्री० [सं० चान्द्रभागा] दे० 'चंद्रभागा' [को०] ।

चांद्रमस—वि० [सं० चान्द्रमस] चंद्रमा संबंधी ।

चांद्रमस—संज्ञा पुं० १. मृगशिरा नक्षत्र । २. चांद्र वर्ष [को०] ।

चांद्रमसायन—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रमसायन] बुध ग्रह ।

चांद्रमसायनि—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रमसायनि] दे० 'चांद्रमसायन' [को०] ।

चांद्रमसी—वि० स्त्री० [सं० चान्द्रमसी] चंद्रमा की । चंद्रमा संबंधी [को०] ।

चांद्रमसी—संज्ञा स्त्री० बृहस्पति की पत्नी [को०] ।

चांद्रमाण—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रमाण] काल का वह परिमाण जो चंद्रमा की गति के अनुसार निर्धारित किया गया हो ।

चांद्रमास—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रमास] वह मास जो चंद्रमा की गति के अनुसार हो । उतना काल जितना चंद्रमा का पृथ्वी की एक परिक्रमा करने में लगता है ।

विशेष—चांद्रमास दो प्रकार का होता है । एक गौण, दूसरा मुख्य । कृष्ण प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक का काल गौण या पूर्णिमांत और शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक का काल मुख्य या अमांत चांद्रमास कहलाता है ।

चांद्रवत्सर—संज्ञा पुं० [पुं० चान्द्रवत्सर] वह वर्ष जो चंद्रमा की गति के अनुसार हो ।

चांद्रवर्ष—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रवर्ष] दे० 'चांद्रवत्सर' [को०] ।

चांद्रव्रतिक—वि० [सं० चान्द्रव्रतिक] जो चांद्रायण व्रत करे ।

चांद्रव्रतिक—संज्ञा पुं० राजा ।

चांद्राख्य—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्राख्य] भद्ररत्न [को०] ।

चांद्रायण—संज्ञा पुं० [सं० चान्द्रायण] [वि० चान्द्रायणिक] १. महीने भर का एक कठिन व्रत जिसमें चंद्रमा के घटने बढ़ने के अनुसार बाह्य घटाना बढ़ाना पड़ता है ।

विशेष—वितासरा के अनुसार इस व्रत का करनेवाला शुक्ल प्रतिपदा के दिन त्रिकालस्नान करके केवल एक ग्रास मोर के भंडे के बराबर का खाकर रहे । द्वितीया को दो ग्रास खाय । इसी प्रकार क्रमशः एक एक ग्रास नित्य बढ़ाता हुआ पूर्णिमा के दिन पंद्रह ग्रास खाय । फिर कृष्णप्रतिपदा को चौदह ग्रास खाय । द्वितीया को तेरह, इसी प्रकार क्रमशः एक एक ग्रास नित्य घटाता हुआ कृष्ण चतुर्दशी के दिन एक ग्रास खाय और अमावस्या के दिन कुछ न खाय, उपवास करे । इस व्रत में ग्रासों की संख्या आरंभ और अंत में कम तथा बीच में अधिक होती है, इसी से इसे यवमध्य चांद्रायण कहते हैं । इसी व्रत को यदि कृष्ण प्रतिपदा से पूर्वोक्त क्रम से (अर्थात् प्रतिपदा को चौदह ग्रास, द्वितीया को तेरह इत्यादि) आरंभ करे और पूर्णिमा को पूरे पंद्रह ग्रास खाकर समाप्त करे तो वह पिपिलिका तनुमध्य चांद्रायण भी होगा । कल्पतरु के मत से एक यतिचांद्रायण होता है, जिसमें एक महीने तक नित्य तीन तीन ग्रास खाकर रहना पड़ता है । सुभीते के लिये चांद्रायण व्रत का एक और विधान भी है । इसमें महीने भर के सब ग्रासों को जोड़कर तीस से भाग देने से जितने ग्रास आते हैं, उतने ग्रास नित्य खाकर महीने भर रहना पड़ता है । महीने भर के ग्रासों की संख्या २२५ होती है, जिसमें तीस का भाग देने से ७१ ग्रास होते हैं । पल प्रमाण का एक ग्रास लेने से पाव भर के लगभग अन्न होता है अतः इतना ही हविष्यान्न नित्य खाकर रहना पड़ता है । मनु, पराशर, बौद्धायन, इत्यादि सब स्मृतियों में इस व्रत का उल्लेख है । गौतम के मत से इस व्रत के करनेवाले को चंद्रलोक की प्राप्ति होती है । स्मृतियों में पापों और अपराधों के प्रायश्चित्त के लिये भी इस व्रत का विधान है ।

२. एक मानिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ११ और १० के विराम से २१ मात्राएं होती हैं पहले विराम पर जगण और दूसरे पर रणण होना चाहिए । जैसे,—हरि हर कृपानिधान परम पद दीजिए । प्रभु जू दयानिकेत, शरण रख लीजिए ।

चांद्रायणिक—वि० [सं० चान्द्रायणिक] [वि० स्त्री० चांद्रायणिकी] चांद्रायण व्रत करनेवाला [को०] ।

चांद्रि—संज्ञा पुं० [सं० चांद्रि] बुधग्रह [को०] ।

चांद्री—संज्ञा स्त्री० [सं० चान्द्री] १. चंद्रमा की स्त्री । २. चांदनी । ज्योत्स्ना । ३. सफेद भटकटैया ।

चांद्री—वि० चंद्रमा संबंधी ।

चांपिला—संज्ञा स्त्री० [सं० चाम्पिला] चंपा नदी (सभ्यता, आधुनिक बंबल) [को०] ।

चांपेय—संज्ञा पुं० [सं० चाम्पेय] १. चपक । २. नागकेसर । ३. किजल्क । ४. सोना । सुवर्ण । ५. धतूरा [को०] ।

चांपेयक—संज्ञा पुं० [सं० चाम्पेयक] किजल्क । केसर [को०] ।

चांस—संज्ञा पुं० [घं०] धवसर । मोका । उ०—रानी साहब चंडा को आपके मुकाबले में रुपए में एक घाना चांस भी नहीं है ।
—गोदान पु० १२६ ।

बाँसलर—संज्ञा पुं० [सं०] विषयविद्यालय का वह प्रधान अधिकारी जिसके बाद बाइस बाँसलर होता है।

बाँसिया—३० [हि० बाँई] दे० 'बाँई'।

बाँई—वि० [सं० बाँचुर (= दक्ष) या देश० बाँई (= नेपाल की एक जंगली जाति जो डाका डालती है।)] १. ठग। उचक्का। २. होमियार। छली। चालाक।

बाँई—संज्ञा पुं० वह जो बाँईपन करता है। बाँई का कार्य करने वाला व्यक्ति।

बाँई—संज्ञा स्त्री० [देश०] सिर में होनेवाली एक प्रकार की कुँसियाँ जिनसे बाल झड़ जाते हैं।

बाँई—वि० जिसके बाल झड़ गए हों। गंजा।

बाँईचूई—संज्ञा स्त्री० [देश०] सिर में होनेवाली एक प्रकार की कुँसियाँ जिनके कारण बाल गिर जाते हैं।

बाँक—संज्ञा पुं० [हि० बाँ (= चार) + बँक = चिह्न] १. काठ की वह चापी जिसपर घसर या चिह्न खुदे होते हैं और जिससे खलियान में घन्न की राशि पर ठप्पा लगाते हैं। २. खलियान में घन्न की राशि पर डाला हुआ चिह्न। ३. टोटके के लिये शरीर के किसी पीड़ित स्थान के चारों ओर खोचा हुआ घेरा। गोंठ।

बाँकना—क्रि० सं० [हि० बाँक] १. खलियान में घनाज की राशि पर मिट्टी, राख या ठप्पे से छापा लगाना जिससे यदि घनाज निकाला जाय, तो मालूम हो जाय। उ०—तुलसी तिलोक की समृद्धि सीज संपदा सकेल बाँकि राखी राशि जाग्रह जहान गो।—तुलसी (शब्द०)। २. सीमा बाँधने के लिये किसी वस्तु को रेखा या चिह्न खींचकर चारों ओर से घेरना। हृद खींचना। हृद बाँधना। उ०—सकल भुवन शोभा अनु बाँकी।—तुलसी (शब्द०)। ३. पहचान के लिये किसी वस्तु पर चिह्न डालना।

बाँका—संज्ञा पुं० [हि० बाँक] दे० 'बाँक'। २. दे० 'बकका'।

बाँगज—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'बाँगड़ा'।

बाँगड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] तिब्बत देश का एक प्रकार का बकरा।

बाँगला—वि० [हि० बाँगा] १. स्वस्थ। तंदुरुस्त। हृष्टपुष्ट। २. चतुर। चालाक।

बाँगला—संज्ञा पुं० बोझों का एक रंग।

बाँच—संज्ञा स्त्री० [हि० बाँच, अन्य रूप, बाँच, बाँच चुँच] दे० 'बाँचु' उ०—बाबहिया तू चोर थारी बाँच कराविसूँ। राति ज दीन्हों लोर भई जाएयउ प्री आवियउ।—डोला०, पृ० ३०।

बाँचर—संज्ञा पुं० [देश०] सालपान नाम का क्षुप। वि० दे० 'सालपान'।

बाँचर, बाँचरि—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] बसंत ऋतु में गाया जानेवाला एक राग। चर्चरी राग जिसके अंतर्गत, होली, फाग, सेद इत्यादि माने जाते हैं। उ०—तुलसीदास बाँचरि मियु, कहे राम गुणधाम।—तुलसी (शब्द०)।

बाँचर बाँचरि—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. वह जमीन जो एक वर्ष तक

या कई वर्षों तक बिना जोती बोई छोड़ दी जाय। पंरती छोटी हुई जमीन। २. एक प्रकार की मटियारी भूमि।

बाँचर, बाँचरि—संज्ञा पुं० [देश०] १. टट्टी या परदा जो किबाड़ के बदले काम में जाया जाय।

बाँचिया—संज्ञा पुं० [हि० बाँई ?] १. एक प्रकार की छोटी जाति जो बाँईगिरी, चोरी, लूट मार का काम करती है। २. दे० 'बाँई'। ३. चोर। ४. डाकू।

बाँचियागलखत, बाँचियाजहाज—संज्ञा पुं० [हि० बाँई ?] बाकुषों का जहाज जो समुद्र में सोदागरों के जहाजों को लूटता है।

बाँचियागिरी—संज्ञा स्त्री० [हि० बाँचिया + फा० गिरी] बाँईपन, चोरी, डाका आदि का मथा।

बाँचा—संज्ञा पुं० [हि० बाँचिया] दे० 'बाँचिया'।

बाँचु—संज्ञा पुं० [देश०] बाँच। उ०—बकासुर रचि रूप माया रह्यो छल करि भाइ। बाँचु पकरि पुढी लगाई हक अकास समाइ।—सूर (शब्द०)।

बाँट—संज्ञा पुं० [हि० बाँटा] हवा में उड़ता हुआ जलकण का प्रवाह जो तूफान माने पर समुद्र में उड़ता है।—(लश०)।

मुहा०—बाँट मारना = जहाज के बाहरी किनारों के तख्ते पर या पाल पर पानी छिड़कना।

विशेष—यह पानी इसलिये छिड़का जाता है जिसमें तख्ते घुप की गरमी से न चिटकें या पाल कुछ भारी हो जाय।

बाँटा—संज्ञा पुं० [हि० चिमटना] [स्त्री० बाँटी] चूँटा। चिउँटा।

उ०—(क) नेरे दूर फूल जस काँटा। दूर जो नेरे जस गुह बाँटा।—जायसी (शब्द०) (ख) अदल कहीं प्रथमे जस होई। बाँटा चलत न दुखने कोई।—जायसी (शब्द०)।

बाँटा—संज्ञा पुं० [अनु० बाट या सं० जट (= तोड़ना)] बप्पड़। तमाचा। चपत।

क्रि० प्र०—जड़ना।—देना।—मारना।—लगाना।

बाँटी—संज्ञा स्त्री० [हि० बाँटा] १. पीटी। उ०—कीहेसि लाबा, एदुर बाँटी।—जायसी (शब्द०)। २. वह कर जो पहले कारीगरों पर लगाया जाता था। ३. तबले की संजाफदार मगजी जिसपर तबला बजाते समय तजेनी उँगली पड़ती है। ४. तबले का वह शब्द जो इस स्थान पर तजेनी उँगली का आघात पड़ने से होता है।

बाँई—वि० [सं० बाँई] १. प्रबल। बलवान्। उ०—दान कृपान बुद्धि बल बाँई।—साल (शब्द०)। २. उग्र। उद्धत। शीख। उ०—धीर धरदु फल पावहुगे। अपने ही पिय के मुख बाँडे कबहुँ तो बस पावहुगे।—सूर (शब्द०)। ३. बड़ा चढ़ा। श्रेष्ठ। ४. प्रचाया हुआ। अफरा हुआ। तुम। उ०—ऊषो तुम्हरी बात हमि जिमि रोगी हित मीढ़। जो जेबत है सेर भर सो किमि होय बाँई।—विभ्राम (शब्द०)। ५. चतुर। चालाक।

बाँई—संज्ञा स्त्री० [सं० बाँई (= प्रबल)] १. भार संभालने का संभा। टेक। धुरी।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

२. किसी ऐसी बात की आवश्यकता जिसके बिना कोई काम तुरंत बिगड़ता हो। तात्कालिक आवश्यकता। किसी अभाव की पूर्ति के निमित्त आकुलता। भारी जरूरत। गहरी बाह। भारी सालसा। उ०—तुम्हें जब रुपए की चाँड़ लगती है, तब हमारे पास आते हो।

क्रि० प्र०—लगना।

मुहा०—चाँड़ सरना=इच्छा पूरी होना। काम पूरा होना। सालसा पूरी होना। उ०—तोरे धनुष चाँड़ नहिं सरई। ओबत हमहि कुँवर को बरई।—तुलसी (शब्द०)। चाँड़ सराना=इच्छा पूरी करना। सालसा मिटाना। उ०—पुरुष भँवर दिन चारि आपने अपनो चाँड़ सरायो।—सूर (शब्द०)।

३. दबाव। संकट। उ०—तुम जब गहरी चाँड़ लगाओगे तभी रुपया निकलेगा। ४. प्रबल इच्छा। गहरी बाह। छटपटी। वि० दे० 'चाँड़'। ५. प्रबलता। अधिकता। बढ़ती। उ०—भोज बली रतनेस भए मतिराम सदा यक्ष चाँड़न हो में।—मतिराम (शब्द०)।

चाँड़ना—क्रि० सं० [?] खोदना। खोदकर गिराना। खोदकर गहरा करना। २. उखाड़ना। उजाड़ना। उ०—प्रविशि बाटिका चाँड़न लागे। पुरचुराते रखवारे भागे।—विश्राम (शब्द०)।

चाँड़िला—वि० [सं० अण्ड] [वि० लो० चाँड़िली] १. प्रचंड। प्रबल। उग्र। उद्धत। नटखट। शोल। उ०—नंद सुत लाड़िले प्रेम के चाँड़िले सोहु दै कहत है नारि भागे।—सूर (शब्द०) २. बहुत अधिक। बहुत ज्यादा। उ०—मोती नग हीरन गहीरन बनत हार चीरन चुनत चिते चोप चित चाँड़िली।—देव (शब्द०)।

चाँड़ू—वि० [सं० चाटुक (= लुप्तामदी), प्रा० चाटू] चाहवाला। चाहनेवाला। उ०—मान करत रिस मानै चाटू।—जायसी ग्रं०, पृ० १३३।

चाँड़ू—संज्ञा पुं० [हि० चाँड़] दे० 'चंद्र'।

चाँड़ा—संज्ञा पुं० [हि० संधि] जहाज की बनावट में वह स्थान जहाँ दो तख्ते आकर मिलते हैं।

चाँद^१—संज्ञा पुं० [सं० चन्द्र] १. चंद्रमा।

क्रि० प्र०—निकलना।

मुहा०—चाँद का कुंडल या मंडल बैठना=बहुत हलकी बदली पर प्रकाश पड़ने के कारण चंद्रमा के चारों ओर एक वृत्त या घेरा सा बन जाना। चाँद का खेत करना=चंद्रोदय का प्रकाश क्षितिज पर दिखाई पड़ना। चंद्रमा के निकलने के पहले उसकी आभा का फैलना। चाँद का टुकड़ा होना=अत्यंत सुंदर होना। चाँद चढ़ना=चंद्रमा का ऊपर आना। चाँद दीखे=शुक्ल द्वितीया के पीछे। जैसे,—चाँद दीखे आना, तुम्हारा हिसाब चुकता हो जायगा। चाँद पर धूकना=किसी महात्मा पर कलंक लगाना, जिसके कारण स्वयं अपमानित होना पड़े।

विशेष—ऊपर की ओर धूकने से अपने ही मुँह पर धूक पड़ता है, इसी से यह मुहावरा बना है।

चाँद पर धूल डालना=किसी निषीध पर कलंक लगाना। किसी

साधु या महात्मा पर दोषारोपण करना। चाँद सा सुलझा होना=अत्यंत सुंदर मुख होना। किधर चाँद निकला है=आज कैसे दिखाई पड़े? क्या अनहोनी बात हुई जो आप दिखाई पड़े?

विशेष—जब कोई मनुष्य बहुत दिनों पर दिखाई पड़ता है, तब उसके प्रति इस मुहावरे का प्रयोग किया जाता है।

२. चांद्रमास। महीना। उ०—एक चाँद के चंद्रं तुम्हें धावना रास। यह लिखि सुगुर सवार को भेजो दखिनिन पास।—सूदन (शब्द०)।

क्रि० प्र०—चढ़ना।

३. द्वितीया के चंद्रमा के आकार का एक आभूषण। ४. ढाल के ऊपर की ओल फुलिया। ढाल के ऊपर जड़ा हुआ गोस फूलदार काँटा। चाँदमारी का वह काला दाग जिसपर निम्नाना लगाया जाता है। ६. टीन आदि चमकीली धातुओं का वह गोस टुकड़ा जो लंप की बिमनी के पीछे प्रकाश बढ़ाने के लिये लगा रहता है। कमरखी। ७. घोड़े के सिर की एक भौरी का नाम। ८. एक प्रकार का गोदना जो स्त्रियों की कलाई के ऊपर गोदा जाता है। ९. भालू की गरदन में नीचे की ओर सफेद बालों का एक घेरा।—(कलंबर)।

चाँद^२—संज्ञा ली० १. खोपड़ी का मध्य भाग। खोपड़ी का सबसे ऊँचा भाग। २. खोपड़ी।

मुहा०—चाँद गंभी करना या चाँद पर बाल न छोड़ना=(१) सिर पर इतने सूते लगाना कि बाल झड़ जायें। सिर पर खूब सूते लगाना। (२) खूब मूँड़ना। सर्वस्व हरण करना। सब कुछ ले लेना।

चाँदतारा—संज्ञा ली० [हि० चाँद+तारा] १. एक प्रकार की बारीक मलमल जिसपर चाँद और तारों के आकार की बूटियाँ होती हैं। २. एक प्रकार की पतंग या कनकोवा जिसमें रंगीन कागज के चाँद और तारे बिपके होते हैं।

चाँदना—संज्ञा पुं० [हि० चाँद] १. प्रकाश। उजाला। २. चाँदनी।

चाँदनी—संज्ञा ली० [हि० चाँद] १. चंद्रमा का प्रकाश। चंद्रमा का उजाला। चंद्रिका। ज्योत्स्ना। कीमुदी।

यौ०—चाँदनी का खेत=चंद्रमा का चारों ओर फैला हुआ प्रकाश। चाँदनी रात=वह रात जिसमें चंद्रमा का प्रकाश हो। उजाली रात। शुक्ल पक्ष की रात्रि।

मुहा०—चाँदनी खिलना या छिटकना=चंद्रमा के स्वच्छ प्रकाश का खूब फैलना। शुभ्र ज्योत्स्ना का फैलना। चाँदनी मारना=(१) चाँदनी का बुरा प्रभाव पड़ने के कारण घाव या जखम का अच्छा न होना। (कुछ लोगों में यह प्रवाद प्रचलित है कि घाव पर चाँदनी पड़ने से वह जल्दी अच्छा नहीं होता।) (२) चाँदनी पड़ने के कारण घोंड़ों को एक प्रकार का आकस्मिक रोग हो जाना, जिससे उनका शरीर ऐंठने लगता है और वे तड़प तड़पकर मर जाते हैं। कहते हैं, यह रोग किसी पुरानी चोट के कारण होता है। चार दिन की चाँदनी है=थोड़े दिन रहनेवाला सुख या आनंद है। क्षणिक सयुधि है।

२. बिछाने की बड़ी सफेद चट्ट। सफेद फर्श। ३. ऊपर तानने का सफेद कपड़ा। छतगीर। ४. गुलचाँदनी। तगर।

चाँदमारी—संज्ञा स्त्री० [हि० चाँद + मारना] बंगूक का निशाना लगाने का अभ्यास। दीवार या कपड़े पर बने हुए चिह्नों को लक्ष्य करके गोली चलाने का अभ्यास।

चाँदला—सं० [हि० चाँद] १. (हूज के चंद्रमा के समान) टेढ़ा। बक। कुटिल। २. दे० 'चंदला'।

चाँदनी बस्त्र—संज्ञा पुं० [हि० चाँदनी + सं० बस्त्र] सफेद बारीक मलमल। उ०—राधे निरलसि चाँदनी पहिरी चाँदनीबस्त्र। बदन-चंद्रिका-चाँदनी चतुरानन की अस्त्र।—ब्रज० प्र०, पृ० १८।

चाँदवाला—संज्ञा पुं० [हि० चाँद + वाला] कान में पहनने का एक प्रकार का बाला जो घर्षचंद्राकार होता है।

चाँद सूरज—संज्ञा पुं० [हि० चाँद + सूरज] एक प्रकार का गहना जिसे स्त्रियाँ ओटी में घुँवकर पहनती हैं।

चाँदा—संज्ञा पुं० [हि० चाँद] १. वह लक्ष्य स्थान जहाँ दूरबीन लगाई जाती है। २. पैमाइश या भूमि की माप में वह विशेष स्थान जिसकी दूरी को लेकर हवबंदी की जाती है। ३. छप्पर का पाला। ४. एक लकड़ी का पट्टा जिसपर अभ्यास के लिये निशान बने रहते हैं। ५. उपायमिति में प्रयुक्त होने-वाला एक उपकरण जो चंद्रमा की आकृति का होता है और कोण बनाने या नापने के काम आता है।

चाँदी—संज्ञा स्त्री० [हि० चाँद] १. एक सफेद चमकीली धातु जो बहुत नरम होती है। इसके सिक्के, आभूषण और बरतन इत्यादि बनते हैं।

विशेष—यह खानों में कभी शुद्ध रूप में कभी दूसरे खनिज पदार्थों में गंधक, तंखिया, सुरमे आदि के साथ मिली हुई पाई जाती है। इसका गुरुत्व सोने के गुरुत्व का आधा होता है। इसका अम्लभार बड़ी कठिनता से बनता है। चाँदी के अम्लसार को नोमादर के पानी में घोलकर सुखाने से ऐसा रासायनिक पदार्थ तैयार होता है, जो हलकी रंगड़ से भी बहुत जोर से भड़कता है। वैद्य लोग इसे भस्म करके रसोषण बनाते हैं। ज़मीन लोग भी इसका बरक रोगियों को देते हैं। चाँदी का तार बहुत अच्छा खिंचता है जिससे कारवोबी के अनेक प्रकार के काम बनते हैं। चाँदी से कई एक ऐसे धार बनाए जाते हैं, जिनपर प्रकाश का प्रभाव बड़ा विलक्षण पड़ता है। इसी से उनका प्रयोग फोटोग्राफी में होता है।

पर्या०—रीप्य। रजत। चासोकर।

यौ०—चाँदी का जूता = वह धन जो किसी को अपने अनुकूल या वश में करने को दिया जाता है। जैसे,—घूस, इनाम आदि।

चाँदी का पहरा = सुख सपृष्टि का समय। सौभाग्य की वशा। वनधान्य की पूर्णता की अवस्था।

मुहा०—चाँदी कर डालना या देना = जला कर राख कर डालना जैसे,—तुम तो तमाकू को चाँदी कर डालते हो, तब दूसरे को देते हो। चाँदी काटना = (१) खूब रुपया पैदा करना।

खूब माल मारना। (२) स्त्री से प्रथम समागम करना। चुंवर स्त्री से प्रथम समागम करना।

२. धन की प्राय। आधिक लाभ। उ०—भाजकल तो उनकी चाँदी है। ३. खोपड़ी का मध्य भाग। जाँद। चेंबिया।

मुहा०—चाँदी खुलवाना = चाँद के ऊपर बाल मुड़ाना।

४. एक प्रकार की मछली जो दो या तीन इंच लंबी होती है।

चाँप—संज्ञा पुं० [सं० चाप] दे० 'चाप'।

चाँप—संज्ञा स्त्री० [हि० चपना] १. चंप या दब जाने का भाव। दबाव। २. रेल पेल। धक्का। उ०—कोई काहू न सन्धारे होत चाप तस चाप। धरति चापु कहै कपि संग चापु कहै कपि।—जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।

२. बंदूक का वह पुरजा जिसके द्वार कुंदे से नली जुड़ी रहती है। ३. पैर की ग्राहट। पैर जमीन पर पड़ने का शब्द। नि० दे० 'चाप'।

चाँप—संज्ञा स्त्री० [सं० चाप] सोने की वे कीलें जिन्हें लोग अंगले दाँतों पर जड़वाते हैं।

चाँप—संज्ञा पुं० [हि० चंपा] चंपा का फूल। उ०—कोई परा भँवर होय बाम कीन जनु चाँप। कोइ पतंग ना दीपक कोइ अधजर तन काँप।—जायसी (शब्द०)।

चाँपना—क्रि० सं० [सं० चपन (= मँड़ना)] १. दबाना। मोड़ना। उ०—बड़ भागी अंगद हनुमाना। चाँपत चरणकमल बिबि नाना।—तुलसी (शब्द०)। २. जहाज का पानी निकालने के लिये पंप का पेंच चलाना।—(लश०)।

चाँपर—नि० [सं० चपल] दे० 'चपल'। उ०—तागो तेसी तोड़ बँचन कोई बाँधे नही। चापर चल्यो चहोड़ सरहट हक में मीरिया।—राम० धर्म०, पृ० ७१।

चाँपाकल—संज्ञा स्त्री० [हि० चाँपना + कल] वह कल या मशीन जिससे हाथ से दबाकर पानी निकालते हैं।

चाँयँचाँयँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] व्यर्थ की बकवाद। बकबक।
क्रि० प्र०—करना। मजाना।

चाँयँचाँयँ—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'चाँयँ चाँयँ'।

चाँवर—संज्ञा स्त्री० [सं० चामर] दे० 'चेंवर'। उ०—चित चाँवर हेत हरि बार दीपक ज्ञान हरि जोति बिचारे।—दादू०, पृ० ६६८।

चाँवर—संज्ञा पुं० [हि० चावल] [स्त्री० चाँवरी] दे० 'चावल'। उ०—(क) सो एक दिन वह बाई अपने घर में बैठी चाँवर चीनत हती।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० ३१७। (ख) चिल चाँवरी बनासे मेवा दियो कुँवर की गोद।—सूर० १०। ७०४।

चा—संज्ञा स्त्री० [चीनी० चा] दे० 'चाय'।

चाइ—संज्ञा पुं० [सं० प्रा० चाय,] शरीर। देह। उ०—सा पंजर दिय राज बर। सस्त्र लगे नहि चाइ।—पृ० रा० २५। ५२५।

चाइ—संज्ञा पुं० [हि० चाय]। उमंग। उ०—किय हाससु चित-

चाक लमि बजि पाइल तुक पाइ । पुनि सुनि सुनि बह मधुर
पुनि क्यों न लालु ललचाइ ।—बिहारी २०, दो० २१२ ।

चाक^१—संज्ञा पुं० [हि० चाक] दे० 'चाक' ।

चाउरी—संज्ञा पुं० [हि० चावल] दे० 'चावल' ।

चाऊ^१—संज्ञा पुं० [हि० चाक] दे० 'चाक' ।

चाऊ^२—संज्ञा पुं० [देश०] ऊँट या बकरे का बाल ।—(पहाड़ी) ।

चाक—संज्ञा पुं० [सं० चक, प्रा० चक] १. पहिए की तरह का बहु
गोल (मंडलाकार) पत्थर जो एक कील पर घूमता है और
जिसपर मिट्टी का लोटा रसकर कुम्हार बरतन बनाते हैं ।
कुलालचक्र ।

विशेष—इसके किनारे पर एक जगह उभरे के बराबर एक छोटा
सा गड्ढा होता है जिसे कुम्हार 'चिती' कहते हैं । इसी चिती
में डंडा घटकाकर चाक घुमाते हैं ।

२. गाड़ी या रथ का पहिया । उ०—विचित्र कता के लगे पताके
छुबे जे रविरथ चाके ।—रघुराज (शब्द०) । ३. चरली
जिसपर कुएँ से पानी खींचने की रस्सी रहती है । गराड़ी ।
घिरनी । ४. मिट्टी की बहु गोल धरिया जिसमें मिली जमाते
हैं । ५. बापा जिससे खलियान की राशि पर छापा लगाते हैं ।
वि० दे० 'चाकना' । ६. सान जिसपर छुरी, कटार आदि की
धार तेज की जाती है । ७. डेंकली के पिछले छोर पर बोक
के लिये रखी हुई मिट्टी की पिंडी । ८. मिट्टी का बहु बरतन
जिससे ऊल का रस कड़ाह में पकने के लिये डाला जाता है ।
९. मंडलाकार चिह्न की रेखा । गोंडला ।

चाक^२—संज्ञा पुं० [प्रा०] १. दरार । चीर ।

मुहा०—चाक करना या देना = चीरना । काटना । चाक होना =
चीरा जाना । काड़ा जाना ।

२. आस्तीन का खुला हुआ मोहरा ।

यौ०—चाके गरेबां = गरेबान का खुला हुआ भाग ।

चाक^३—वि० [तु० चाक] १. दृढ़ । मजबूत । पुष्ट । २. हृष्ट पुष्ट ।
तंदुरुस्त ।

यौ०—चाक चौबंद = (१) हृष्ट पुष्ट । तगड़ा । (२) चुस्त ।
बालाक । फुरतीला । तत्पर ।

चाक^४—संज्ञा पुं० [प्रा०] खरिया मिट्टी । दुदी ।

यौ०—चाक प्रिटिंग = एक प्रकार की सफेद रंग की छपाई जो
प्रायः पुस्तकों के टायटिल पेज (आवरणपत्र) आदि पर
होती है । इसकी स्याही खरिया के योग से बनती है ।

चाकचक—वि० [तु० चाक + प्रनु० चक] चारों ओर से सुरक्षित ।
दृढ़ । मजबूत । उ०—चाकचक बमूके अचाकचक चहूँ ओर
चाक सी फिरत चाक चंपति के लाल की ।—सूषण (शब्द०) ।

चाकचक्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमक दमक । चमकमाहट ।
उज्ज्वलता । २. शोभा । सुंदरता ।

चाकचक्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चाकचक्य' [को०] ।

चाकचिह्न—देश० स्त्री० [सं०] बनतिक्ता या श्वेतबुद्धा नाम का एक
विशेष पीवा [को०] ।

चाकटी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कड़ा जो हाथ में पहना
जाता है ।

चाकदिल—संज्ञा पुं० [प्रा०] एक प्रकार का बुलबुल ।

चाकना—क्रि० सं० [हि० चाक] १. सीमा बांधने के लिये किसी
वस्तु को रेखा या चिह्न खींचकर चारों ओर से घेरना । हब
खींचना । उ०—सकल भुवन शोभा अनु चाकी ।—तुलसी
(शब्द०) २. खलियान में घनाज की राशि पर मिट्टी या
रस से छापा लगाना जिसमें यदि घनाज निकाला जाय, तो
मालूम हो जाय । उ०—तुलसी तिलोक की समृद्धि सौंख्य संपदा
सकेलि चाकि राखी राशि जांगद जहान मो ।—तुलसी
(शब्द०) । ३. पहचान के लिये किसी वस्तु पर चिह्न
डालना ।

चाकर—संज्ञा पुं० [प्रा०] [स्त्री० चाकरानी] दास । भृत्य । सेवक ।
नौकर ।

चाकरनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चाकर + नी (प्रत्य०)] दे० 'चाकरानी' ।

चाकरानी—संज्ञा स्त्री० [हि० चाकर + आनी (प्रत्य०)] नौकरानी ।
दासी । लोड़ी ।

चाकरी—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] सेवा । नौकरी । टहल । बिदमत ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—चाकरी बजाना = सेवा करना । बिदमत करना ।

चाकला—वि० [हि० चकला] दे० 'चकला' ।

चाकलेट—संज्ञा पुं० [प्रा०] १. ककाओ के बीज को पीसकर तैयार
किया गया पदार्थ । २. इस पदार्थ के योग से बनी मिठाई या
मधुर पेय पदार्थ । एक विशेष विदेशी मिठाई । ३. सुंदर लड़का
जिसके साथ प्रकृतिविरुद्ध संभोग किया जाय । लौंडा ।

चाकसू—संज्ञा पुं० [सं० चकुष्या] १. बनकुलथी का पीवा । २.
बनकुलथी का बीज ।

विशेष—ये बीज बहुत छोटे और काले काले होते हैं । बीज के
रूप में ये पीसकर घोल में डाले जाते हैं ।

३. निर्मली का बुल या बीज ।

चाका—संज्ञा पुं० [हि० चाक] १. दे० 'चाक' । २. पहिया ।

चाकि^१—संज्ञा पुं० [हि० चाक] दे० 'चाक' । उ०—कबीर हरि
रस यों पिया बाकी रही न चाकि । पाका कलस कुंमार का
बहुरि न चढ़ई चाकि ।—कबीर वं०, पृ० १६ ।

चाकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चाक] घाटा पीसने का यंत्र । चक्की ।

चाकी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० चक] १. बिजली । बज्र ।

क्रि० प्र०—गिरना ।—पड़ना ।

२. पटे की एक चोट जो सिर पर की जाती है ।

चाकू—संज्ञा पुं० [तु० चाकू] कलम, फल तथा छोटी मोटी चीजों
को काटने, छीलने आदि का औजार । छुरी ।

चाक—वि० [सं०] [वि० बी० चाकी] १. चक्र संबंधी । २. चक्र की प्राकृतिवाला । ३. जिसमें पहिए लगे हों (गाड़ी) । ४. चक्र द्वारा किया जानेवाला (युद्ध) [को०] ।

चाक्रायण—संज्ञा पु० [सं०] चक्र नामक ऋषि के वंशधर जिनका उल्लेख छांदोग्य उपनिषद् में है ।

चाक्रिक—संज्ञा पु० [सं०] १. दूतगो की स्तुति मानेवाला । चारण । भाट ।

चिरोष—याज्ञवल्क्य स्मृति में चाक्रिक के अन्नभोजन का नियम है ।

२. तेली । ३. गाड़ीवान । ४. कुम्हार । ५. अनुचर । सहचर ।

चाक्रिक—वि० [वि० बी० चाक्रिकी] १. चक्रकार । २. चक्र संबंधी । ३. किसी चक्र या मंडली से संबंध रखनेवाला ।

चाक्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक फूल का नाम ।

चाक्रिण—संज्ञा पु० [सं०] तेली या कुम्हार का सहका [को०] ।

चाक्रेय—वि० [सं०] चक्र संबंधी [को०] ।

चाक्षुष—वि० [सं०] १. चक्षु संबंधी । २. आँख से देखने का । जिसका बोध नेत्र से हो । चक्षुर्ग्राह्य ।

चाक्षुष—संज्ञा पु० १. न्याय में प्रत्यक्ष प्रमाण का एक भेद । ऐसा प्रत्यक्ष जिसका बोध नेत्रों द्वारा हो । २. छठे मनु का नाम ।

चिरोष—भागवत के मत से ये बिम्बकर्मा के पुत्र थे । इनकी माता का नाम प्राकृति और स्त्री का नाम नटला था । पुत्र कृत्स्न, प्रपृत, यमान्, सत्यवान्, धृत, अग्निष्टोम, अतिरात्र, प्रचुम्न, शिवि और उल्लुक इनके पुत्र थे । जिस मन्वन्तर के ये स्वामी थे, उसके इंद्र का नाम मंध्रदुम था । मत्स्यपुराण में पुत्रों के नामों में कुछ भेद है । मार्कंडेय पुराण में चाक्षुष मनु की बड़ी लंबी चौड़ी कथा आई है । उसमें लिखा है कि अनमित्र नामक राजा को उनकी रानी भद्रा से एक पुत्र उत्पन्न हुआ । एक दिन रानी उस पुत्र को लेकर बहुत प्यार कर रही थी । इतने में पुत्र एकबारगी हँस पड़ा । जब रानी ने कारण पूछा, तब पुत्र ने कहा—'मुझे खाने के लिये एक बिल्ली ताक में बँधी है । मैं तुम्हारी गोद में ८-९-दिन से अधिक नहीं रहने पाऊँगा, इसी से तुम्हारा मिथ्या प्रेम देखकर मुझे हँसी आई । रानी यह सुनकर बहुत दुखी हुई । उसी दिन विक्रांत नामक राजा की रानी को भी एक पुत्र हुआ था । भद्रा कौशल से अपने पुत्र को विक्रांत की रानी की चारपाई पर रख आई और उसका पुत्र लाकर आप पालने लगी । विक्रांत राजा ने उस पुत्र का नाम आनंद रखा । जब आनंद का उपनयन होने लगा, तब आचार्य ने उसे उपदेश दिया—'पहले अपनी माता की पूजा करो' । आनंद ने कहा—'मेरी माता तो यहाँ है नहीं; अतः जिसने मेरा पालन किया है, उसी की पूजा करता हूँ' । पूछने पर आनंद ने सब व्यवस्था कह सुनाई । पीछे राजा और रानी को डारस बँधाकर वे स्वयं तपस्या करने लगे । आनंद की तपस्या से संतुष्ट होकर ब्रह्मा ने उसे मनु बना दिया और उसका नाम चाक्षुष रखा ।

३. स्वार्थभुव मनु के पुत्र का नाम । ४. चौबहवें मन्वन्तर के एक देव गण का नाम ।

चाक्षुषयज्ञ—संज्ञा पु० [सं०] कुंदर दृष्टों को देखकर तृप्त होने की क्रिया का भाव । नाटक आदि देखना [को०] ।

चाख—संज्ञा पु० [सं० चाख] ३० 'चाध' ।

चाखनहार—वि० [हि० चाखना + हार (प्रत्य०)] १. खसनेवाला । खानेवाला । २. रस लेनेवाला । उ०—दारिद्र्य दाख लेहि रस, विरसहि धौव महार । हरिभर तन सुवटा कर जो अस चाखन-हार ।—जायसी श्रं० (गुप्त), पृ० ३४६ ।

चाखना—क्रि० सं० [हि० खसना] ३० 'खसना' ।

चाखुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास जो खेतों की निराई करके निकाली गई हो ।

चाखुरा—संज्ञा स्त्री० [हि० खेचुर] गिलहरी ।

चाचपुट—संज्ञा पु० [सं०] तात के ६० मुख्य भेदों में से एक । इसमें एक गुद, एक लघु और एक लघु स्वर होता है ।

चाचर—संज्ञा पु० [देशी चड (शिक्षा), तुलनीय हि० टाटर] मस्तक । उ०—भवतारां छात नमो भवधेसर सक्तोवाला प्रातसर्ग चरणौ नहीं नमायो चाचर नर वे भवरी चरण नमैं ।—रघु० क०, पृ० २५१ ।

चाचर, चाचरि—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] १. होली में गाया जाने-वाला एक प्रकार का गीत । चर्चरी राग जिसके अंतर्गत होली, फाग, लेद आदि माने जाते हैं । उ०—तुलसिदास चाचरि मिस कहै राम गुन घाम ।—तुलसी (शब्द०) । २. होली में होनेवाले खेल तमाशे । होली का स्वांग और हल्लाड़ । होली की बमार । हर्वक्रीड़ा । उ०—(क) श्रुति, पुराण बुध सम्मत चाचरि चरित मुरारि ।—तुलसी । (ख) तैसी ये बसंत पाँचें बाय सों चाचरि माचै, रंग राचै कीच माचै केसर के नीर की ।—देव (शब्द०) । ३. उपद्रव । दंगा । हलचल । हल्ला गुल्ला । ४. युद्धक्षेत्र ।

क्रि० प्र०—मचना ।—मचाना ।

चाचरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चर्चरी] योग की एक मुद्रा । उ०—महदाकाश चाचरी मुद्रा शक्ती जाना ।—कबीर (शब्द०) ।

चाचा—संज्ञा पु० [सं० तात] [स्त्री० चाची] काका । पितृव्य । बाप का भाई । वि० ३० 'चाचा' ।

चाची—संज्ञा स्त्री० [हि० चाचा] चाचा की स्त्री । काकी ।

चाट—संज्ञा स्त्री० [हि० चाटना] १. चटपटी चीजों के खाने या चाटने की प्रबल इच्छा । स्वाद लेने की इच्छा । मजे की चाह । २. एक बार किसी वस्तु का आनंद लेकर फिर उसी का आनंद लेने की चाह । चसका । शौक । लालसा ।

क्रि० प्र०—लगना ।

३. प्रबल इच्छा । कड़ी चाह । लोलुपता । जैसे,—तुम्हें तो बस रुपए की चाट लगी है ।

क्रि० प्र०—लगना ।—होना ।

४. लत । आदत । वान । टेव । घत । ५. मिर्च, खटाई, नमक आदि डालकर बनाई हुई चरपरे स्वाद की वस्तु । चरपरी और नमकीन खाने की चीजें । गजक । जैसे, सेव, दही बड़ा, दालमोट इत्यादि । ऐसी चीजें कराब पीने के पीछे ऊपर से भी खाई जाती हैं । जैसे,—चाट की दुकान ।

चाट^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. विश्वासघाती चोर। वह जो किसी का विश्वासपात्र बनकर उसका धन हरण करे। ठग।

विशेष—स्पृष्टियों में ऐसे व्यक्ति का संबन्धितान है।

२. उचक्का। चाई। उ०—चाट, उचाट सी चटक सी चुटकी भ्रुकुटीन जम्हाति प्रमेठी।—देव (शब्द०)।

चाटक^१—वि० [हि० चटक] दे० 'चटक'। उ०—लोकचार चाटक बिन चारी।—चरनी०, पृ० ४४।

चाट की टेंगाही—संज्ञा स्त्री० [देश०] कुश्ती का एक पंच जो उस समय काम में लाया जाता है जब प्रतिपक्षी (जोड़) पहलवान के पेट के नीचे घुस आता है और अपना बायां हाथ उसकी कमर पर लेता है।

विशेष—इसमें पहलवान अपने बाएँ हाथ से प्रतिपक्षी का बायां हाथ (जो पहलवान की कमर पर होता है) दबाते हुए उसकी दाहिनी कलाई को पकड़ता है और अपना दाहिना हाथ और पैर बढ़ाकर बाईं जाँघ और पिछली पर घक्का मारकर उसे गिराता है।

चाटना—क्रि० सं० [पनु० चट चट (= जीभ चबने का शब्द)] १. खाने या स्वाद लेने के लिये किसी वस्तु को जीभ से उठाना। किसी पतली या गाढ़ी चीज को जीभ से पोंछकर मुँह में लेना। जीभ लगाकर खाना। जैसे,—गहूँ चाटना, अमलेह चाटना।

संयो० क्रि०—जाना।—लेना।—ढालना।

२. पोंछकर खा लेना। चट कर जाना। जैसे,—इतना हलुभा था, सब चाट गए।

मुहा०—चाट पोंछकर खाना=सब खा जाना। कुछ भी न छोड़ना।

३. (प्यार आदि से) किसी वस्तु पर जीभ फेरना। जैसे,—गाय अपने बछड़े को चाट रही है।

थौ०—बुझना चाटना=प्यार करना।

४. कीड़ों का किसी वस्तु को खा जाना। जैसे,—जितना कागज था, सब दोमक चाट गए। ५. धन संपत्ति बेच डालना। ६. खुशामद करना।

चाटपुट—संज्ञा पुं० [सं०] तबले का एक ताल। दे० 'चाचपुट'।

चाटनि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चाटना] चाटने का कार्य। उ०—चुषनि, चुषावनि, चाटनि चूमनि। नहि कहि परति प्रेम की घूरनि।—नद० प्र०, पृ० २६६।

चाटा—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्पा० चाटी] वह बरतन जिसमें कोल्हू का पेरा हुआ रस इकट्ठा होता है। नाँद।

चाटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मिट्टी की मटकी जिसका दस खूब मोटा हो।

चाटु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोठी बात। प्रिय बात। उ०—धनमानेंद जीवन प्रान सुजान तिहारिये बातनि जीजिये पू। नित नीके रही तुम चाटु कहाय असीस हमारियो लीजिये पू।—रसखान०, पृ० ५६। २. झूठी प्रशंसा या विलय से मरी हुई ऐसी बात जो केवल दूसरे को प्रसन्न या अनुकूल करने के लिये कही जाय। खुशामद। चापलूसी।

चाटुक—संज्ञा पुं० [सं०] मोठी बात [स्त्री०]।

चाटुकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. खुशामद करनेवाला। झूठी प्रशंसा करनेवाला। चापलूस। खुशामदी। २. बृहत्संहिता के अनुसार सोने के तार में पिरोए मोतियों की वह माला जिसके बीच में एक तरलक मणि हो।

चाटुकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चाटुकार+हि० ई (प्रत्य०)] झूठी प्रशंसा या खुशामद करने का काम। चापलूसी।

चाटुता—संज्ञा स्त्री० [सं० चाटु+ता (प्रत्य०)] दे० 'चाटुकारी'।

चाटुपटु—संज्ञा पुं० [सं०] मंड। भाँड़।

चाटुबटु, चाटुबटु—संज्ञा पुं० [सं०] विदूषक। जोकर। भाँड़ [स्त्री०]।

चाटुखोज—वि० [सं०] १. चाटुकार। कुशल चाटुकार। २. खूब-सूरती से हिलनेवाला [स्त्री०]।

चाटुकि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाटुकारिता। चापलूसी। उ०—क्या क्रूरता ही पुरुषार्थ का परिचय है? ऐसी चाटुकि भावी शासक को अच्छा नहीं बनाती।—प्रजात०, पृ० २४।

चाटुखोज—वि० [सं०] दे० 'चाटखोज' [स्त्री०]।

चाठ—संज्ञा पुं० [देश०] साध वस्तु। वि० दे० 'चाट' उ०—परनिष्ठा आदु पहर चाट विष री चाट। क्यों नह तुम प्राणी करे पंच रतन रो पाठ।—बाँकी प्र०, भाग ३, पृ० २५।

चाठा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चाटा'। उ०—ल्योकी लेज पवन का ढोंह मन मटका ज बनाया। सत की पाटि सुरति का चाठा सहजि नीर मुकलाया।—कबीर प्र०, पृ० १६१।

चाड़^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चाड़ सं० चण्ड (=प्रबल)] गहरी चाह। आव। प्रेम। वि० दे० 'चाड़'। उ०—(क) हित पुनीत सब स्वारयहि अरि अशुद्ध बिन चाड़। निज मुख मानिक सम दसन भूमि परे ते हाड़।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कुच गिरि चड़ि अति शक्ति हूँ चलो दोठि मुख चाड़। फिरि न टरी परिये रही परी चिबुक के गाड़।—बिहारी (शब्द०)। (ग) काहे को काहू को दीजै उराहनी आवे इहाँ हम आपनी चाड़े।—(शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।

चाड़^२—वि० [सं० चाटु, प्रा० चाड] चुगलखोर। उ०—साहू दुकानों चोरटा, साहूब कानों चाड़। लागे बित मत हर लिए, बे जोभा का फाड़।—बाँकी प्र०, भा० २, पृ० ५०।

चाड़िला—वि० [हि० चाड़िला] दे० 'चाड़िला'।

चाड़ो—संज्ञा स्त्री० [सं० चाटु] पीठ पीछे की निंदा। चुगली।

क्रि० प्र०—खाना।

चाड़^३—वि० [सं० चण्ड, हि० चाड़ (=तेज)] तेज प्रखर। अधिक। उ०—मान न कर थोरा कर लाहू। मान करत रिस माने चाड़।—जायसी प्र०, (गुप्त) पृ० ३२६।

चाड़^४—संज्ञा स्त्री० [हि० चाड़] १. इच्छा। २. प्रेम। ममता।

चाड़^५—संज्ञा स्त्री० [हि० चढ़ना] चढ़ाई।

चाड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि० चाड़] [स्त्री० चाड़ी] १. प्रेमपात्र। प्यारा। प्रिय। उ०—अम्य अम्य मत्तन के चाड़े।—सूर

(शब्द०) । २. चाहनेवाला । प्रेमी । आसक्त ।
उ०—(क) तुम हम पर रिस करति हो हम हैं तुव चाहे ।
निहुर भई ही साझिली कब के हम ठाढ़े ।—सूर (शब्द०)
(ख) दिन जोरी जोरी धति कोरी देखइ ही जु श्याम भए
चाढ़े ।—सूर (शब्द०) ।

चाणक्य—संज्ञा पुं० [सं० चाणक्य] १. ईर्ष्या । २. घृतता । चाल ।
दगाबाजी । होखियारी । उ०—आगे चाणुन के तड़ाके लगाए
हैं ।—सुन्दर ग्रं०, पृ० ५६ ।

चाणक्य—संज्ञा पुं० [सं०] चाणक्य ऋषि के वंश में उत्पन्न एक मुनि
जिनके रचे हुए अनेक नीति ग्रंथ प्रचलित हैं । ये पाटलिपुत्र के
सम्राट् चंद्रगुप्त के मंत्री थे और कीटिल्य नाम से भी प्रसिद्ध
हैं । मुद्राराक्षस के अनुसार इनका असली नाम विष्णुगुप्त था ।

विशेष—विष्णुपुराण, भागवत आदि पुराणों तथा कथासरित्सागर
आदि संस्कृत ग्रंथों में तो चाणक्य का नाम आया ही है,
बौद्ध ग्रंथों में भी इनकी कथा बराबर मिलती है । बुद्धोप
की बनाई हुई विनयपिटक की टीका तथा महानाम स्थविर-
रचित महावंश की टीका में चाणक्य का वृत्तांत दिया हुआ है ।
चाणक्य तक्षशिला (एक नगर जो रावलपिंडी के पास था)
के निवासी थे । इनके जीवन की घटनाओं का विशेष संबंध
मौर्य चंद्रगुप्त की राज्यप्राप्ति से है । ये उस समय के एक प्रसिद्ध
विद्वान् थे, इसमें कोई संदेह नहीं । चंद्रगुप्त के साथ इनकी मैत्री
की कथा इस प्रकार है । पाटलिपुत्र के राजा नंद या महानंद के
यहाँ कोई यज्ञ था । उसमें ये भी गए और भोजन के समय एक
प्रधान आसन पर जा बैठे । महाराज नंद ने इनका काला रंग
देख इन्हें आसन पर से उठवा दिया । इसपर क्रुद्ध होकर
इन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि जबतक मैं नंदों का नाश न कर
लूँगा तबतक अपनी शिक्षा न बाँधूँगा । उन्होंने दिनों राजकुमार
चंद्रगुप्त राज्य से निकाले गए थे । चंद्रगुप्त ने चाणक्य से मिल
किया और दोनों आर्क्षियों ने मिलकर म्लेच्छ राजा परंतक
की सेना लेकर पटने पर बढ़ाई की और नंदों को युद्ध में परास्त
करके मार डाला । नंदों के नाश के संबंध में कई प्रकार की
कथाएँ हैं । कही लिखा है कि चाणक्य ने शकटार के यहाँ
निर्मल्य भेजा जिसे छूते ही महानंद और उनके पुत्र मर गए ।
कहीं विषकन्या भेजने की कथा लिखी है । मुद्राराक्षस नाटक
के देखने से जाना जाता है कि नंदों का नाश करने पर भी
महानंद के मंत्री राक्षस के कौशल और नीति के कारण
चंद्रगुप्त को मगध का सिंहासन प्राप्त करने में बड़ी बड़ी कठिना-
इयाँ पड़ी । अंत में चाणक्य ने अपने नीतिबल से राक्षस को
प्रसन्न किया और चंद्रगुप्त को मंत्री बनाया । बौद्ध ग्रंथों में भी
इसी प्रकार की कथा है, केवल महानंद के स्थान पर अनंद
है (दे० 'चंद्रगुप्त') । चाणक्य के शिष्य कामंदक ने अपने
'नीतिसार' नामक ग्रंथ में लिखा है कि विष्णुगुप्त चाणक्य ने
अपने बुद्धिबल से अर्थशास्त्र रूपी महोदधि को मथकर नीतिशास्त्र
रूपी अमृत निकाला । चाणक्य का 'अर्थशास्त्र' संस्कृत में
राजनीति विषय पर एक विलक्षण ग्रंथ है । इनके नीति के
श्लोक तो घर घर प्रचलित हैं । पीछे से लोगों ने इनके नीति
ग्रंथों से घटा बढ़ाकर बुद्धचाणक्य, लघुचाणक्य, बोधिचाणक्य

आदि कई नीतिग्रंथ संकलित कर लिए । चाणक्य सब विषयों
के पंडित थे । 'विष्णुगुप्त सिद्धांत' नामक इनका एक ज्योतिष
का ग्रंथ भी मिलता है । कहते हैं, आयुर्वेद पर भी इनका
लिखा वैद्यजीवन नाम का एक ग्रंथ है । न्याय भाष्यकार
वात्स्यायन और चाणक्य को कोई कोई एक ही मानते हैं, पर
यह भ्रम है जिसका मूल हेमचंद्र का यह श्लोक है—वात्स्यायनो
मत्सनागः, कीटिल्यश्चणकान्मजः । दामिलः पक्षिलस्वामी
विष्णुगुप्तोऽङ्गुलश्च सः ।

चाणान्ध—वि० [सं० अण्ड, हि० चाँड़=तेज + अक्ष] तेज
निगाहवाला ।

चाणूर—संज्ञा पुं० [सं०] कंस का एक मल्ल जिसे धनुषयज्ञ के समय
श्रीकृष्ण ने मारा था ।

चाणूरमर्दन, चाणूरसूदन—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण [को०] ।

चातक—संज्ञा पुं० [सं०] [ली० चातकी] एक पक्षी जो वर्षाकाल में
बहुत बोलता है । पपीहा । वि० दे० 'पपीहा' ।

विशेष—इस पक्षी के विषय में प्रसिद्ध है कि यह नदी, तड़ाग
आदि का संचित जल नहीं पीता, केवल बरसता हुआ पानी
पीता है । कुछ लोग यहाँ तक कहते हैं कि यह केवल स्वाती
नक्षत्र की बूंदों ही से अपनी प्यास बुझाता है । इसी से यह
मेघ की ओर देखता रहता है और उससे जल की याचना
करता है । इस प्रवाद को कवि लोग अपनी कविता में बहुत
लाए हैं । तुलसीदास जी ने तो अपनी सतसई में इसी चातक
को लेकर न जाने कितनी सुंदर सुंदर उक्तियाँ कही हैं ।

पर्या०—स्तोकक । सारंग । मेघजीवन । लोकक ।

यौ०—चातकानंदवर्धन = (१) मेघ । बाबल । (२) वर्षाकाल ।

चातकनी—संज्ञा ली० [सं० चातक + हि० नी (प्रत्य०)] चातकी ।
पपीहरी । उ०—मैं न चाहती तब वह हार, करे, जननि ! मेरा
भृंगार । पर मैं ही चातकनी बनकर तुझे पुकारूँ बारंबार ।
—पल्लव, पृ० १०१ ।

चातकानंदन—संज्ञा पुं० [सं० चातकानन्दन] १. वर्षाकाल । २. मेघ ।

चातकी—संज्ञा ली० [सं०] मादा पपीहा । माता चातक ।

चातद—संज्ञा पुं० [हि० चादर] १. मछली पकड़ने का बड़ा जाल ।
२. षट्पत्र । साजिश ।

चातुर^१—वि० [सं० चातुर या चतुर] दे० 'चातुर' या 'चतुर' ।

चातुरंत—वि० [सं० चातुरन्त] चारो तरफ से चार समुद्रों से
निर्धारित होनेवाली (भूमि की सीमा) उ०—मीर्य चातुरंत
राज्य की नीति और संगठन ।—भा० ६० रु०, पृ० ६३७ ।

चातुर^२—वि० [सं०] १. नेत्रगोचर । २. चतुर । ३. सुशामदी ।
चापलूस ।

चातुर^३—संज्ञा पुं० १. गोल तकिया या मसनद । २. चार पहियों की
गाड़ी ।

चातुरर्द्ध—संज्ञा ली० [सं० चातुर + हि० र्द्ध (प्रत्य०), अथवा सं०
चातुरो, हि० चतुरार्द्ध] दे० 'चतुरार्द्ध' । उ०—ज्यों कुछ स्थों
ही नितंब चढ़े कछु त्यों ही नितंब स्थों चातुरर्द्ध सी ।—पद्माकर
ग्रं०, पृ० ८३ ।

चातुरक^१—वि० [सं०] दे० 'चातुर' [को०] ।

चातुरक^२—संज्ञा पु० दे० 'चातुर' [को०] ।

चातुरक्ष—संज्ञा पु० [सं०] १. चार पासों का खेल । २. छोटा गोल तफिया [को०] ।

चातुरसा—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुरसा] दे० 'चतुरसा' ।

चातुरमास^७—संज्ञा पु० [सं० चातुर्मास्य] दे० 'बरसात' । 'चातुर्मास्य' । उ०—नटनागर वृष्ट्यलता लिपटी, लखि कै सुधि का नहि लार्वाहो ? सखि चातुरमास में चातुर हूँ करि, चातुर का नहि भावहिगे ।—नट०, पृ० ७७ ।

चातुराश्रमिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० चातुराश्रमिकी] चार आश्रमों से किसी एक में रहनेवाला [को०] ।

चातुराश्रमी—वि० [सं० चातुराश्रमिन्] [वि० स्त्री० चातुराश्रमिणी] दे० 'चातुराश्रमिक' [को०] ।

चातुराश्रम्य—संज्ञा पु० [सं०] ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम ।

चातुरिक—संज्ञा पु० [सं०] सारथी । रथवान ।

चातुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चतुरता । चतुराई । व्यवहारदक्षता । २. चालाकी । धूर्तता ।

चातुरीक—संज्ञा पु० [सं०] १. कलहंस । हंस । २. कारण्ड [को०] ।

चातुर्जात, चातुर्जातिक—संज्ञा पु० [सं०] १. भावप्रकाश के अनुसार चार गुणों द्वय—नागकेसर, इलायची, तेजपात और दालचीनी । २. गुजरात के प्राचीन राजाओं के प्रधान कर्मचारी की उपाधि । प्रशासक ।

चातुर्थक, चातुर्थिक^१—संज्ञा पु० [सं०] [वि० स्त्री० चातुर्थिकी] चौथे दिन आनेवाला ज्वर । चौथिया बुखार ।

चातुर्थक, चातुर्थिक^२—वि० चौथे दिन होनेवाला ।

चातुर्दश—संज्ञा पु० [सं०] १. राक्षस । २. वह जो चतुर्दशी को उत्पन्न हो ।

चातुर्दशिक—वि० [सं०] चतुर्दशी की तिथि से विद्या आरंभ करनेवाला [को०] ।

चातुर्भद्र, चातुर्भद्रक—संज्ञा पु० [सं०] १. चार पदार्थ—अर्य, धर्म, काम और मोक्ष । २. वैद्यक के अनुसार ये चार औषधियाँ—नागरमोषा, पीपल (पिप्पली), अतीस और काकड़ासिगी । कोई कोई चक्रदत्ता के अनुसार इन चार चीजों को लेते हैं—जायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिगी और पीपल ।

चातुर्भद्रावलेह—संज्ञा पु० [सं०] वैद्यक का एक प्रसिद्ध अवलेह जो जायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिगी और पीपल को एक साथ पीसकर बाहुद मिलाने से बनता है । चौहद्दी ।

विशेष—यह अवलेह श्वास, कास, अतीसार और ज्वर में उपकारी होता है और बच्चों को बहुत दिया जाता है ।

चातुर्भद्राजिक—संज्ञा पु० [सं०] १. विष्णु भगवान् । २. बुद्ध का एक नाम ।

चातुर्मास—वि० [सं०] चार महीनों में होनेवाला । चार महीने का ।

चातुर्मासिक—वि० [सं०] चार महीने में होनेवाला । (यज्ञ, कर्म आदि) ।

चातुर्मासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पौर्णमासी ।

चातुर्मास्य—संज्ञा पु० [सं०] १. चार महीने में होनेवाला एक वैदिक यज्ञ ।

विशेष—कात्यायन श्रौतसूत्र अध्याय ८ में इस यज्ञ का पूरा विधान लिखा है । सूत्र के अनुसार फाल्गुनी पौर्णमासी से इस यज्ञ का आरंभ होना चाहिए, पर भाष्य और पद्धति में लिखा है कि इसका आरंभ फाल्गुन, चैत्र या वैशाख की पूर्णिमा से हो सकता है । इस यज्ञ के चार पर्व हैं—वैश्वदेव, बरहस्पति, शक्रमेघ और सुनाशीरीय ।

२. चार महीने का एक पौराणिक व्रत जो वर्षा काल में होता है ।

विशेष—बराह के मत से अषाढ़ शुक्ल द्वादशी या पूर्णिमा से इस व्रत का आरंभ करके कार्तिक शुक्ल द्वादशी या पूर्णिमा को इसका उद्यापन करना चाहिए । मत्स्य पुराण में इस व्रत के अनेक विधान और फल लिखे हैं । जैसे,—गुह्य त्याग करने से स्वर मधुर होता है, मद्य मांस त्याग करने से योगसिद्धि होती है, बटलोई में पका भोजन त्यागने से संतान की वृद्धि होती है, इत्यादि, इत्यादि । यह विष्णु भगवान् का व्रत है, अतः 'नमो-नारायण' मंत्र के जप का भी विधान है । सनत्कुमार के मत से इसका आरंभ अषाढ़ शुक्ल एकादशी, पूर्णिमा या कर्क की संक्रांति से होना चाहिए । इन चार महीनों में काठक गृह्यसूत्र के मत से यात्रियों को एक ही स्थान पर जमकर रहना चाहिए । इस नियम का पालन बौद्ध भिक्षु (यति) करते हैं ।

चातुर्य—संज्ञा पु० [सं०] चतुराई । निपुणता । दक्षता ।

चातुर्वर्ण्य—संज्ञा पु० [सं०] १. चारों वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । २. चारों वर्णों का अनुष्ठेय धर्म । जैसे,—ब्राह्मण का धर्म यजन, याजन, दान, अद्यापन, अध्ययन और प्रतिग्रह; क्षत्रिय का धर्म बाहुबल से प्रजापालन इत्यादि ।

चातुर्विध^१—वि० [सं०] चारों का ज्ञाता [को०] ।

चातुर्विध^२—संज्ञा पु० चारों वेद [को०] ।

चातुर्विध्य—वि० [सं०] चार विधि या प्रकार का [को०] ।

चातुर्होत्र—संज्ञा पु० [सं०] [वि० चातुर्होत्रिय] वह यज्ञ जो चार होताओं द्वारा संपन्न हो ।

चातुर्गि^७—संज्ञा पु० [सं० चातक] दे० 'चातक' । उ०—उक्कंभी शिर हृष्यद्वा, चाहंती रस लुब्ध । ऊंको चदि चातुर्गि जिउं भागि निहालइ मुख ।—ढोला०, दृ० १६ ।

चातुक^७—संज्ञा पु० [सं० चातक] दे० 'चातक' । उ०—पिया पिया चातुक प्रिय कहहीं । बिरहिनि लाग मदन दुख जरहीं ।—कबीर सा०, पृ० २४६ ।

चातुग^७ चातुगा^७—संज्ञा पु० [सं० चातक] दे० 'चातक' । उ०—(क) मन चित चातुग ज्यू रटें, पिव पिव सातो प्यास । दाह बरसन कारने पुरवहु मेरी भास ।—बाहु०, पृ० ५५ । (ख) एक अभिमानी चातुगा विचरत जग माहि ।—रे० बानी, पृ० ६ ।

चाप—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निमन्त्रन यंत्र का एक अवयव ।

विशेष—यह बारह अंगुल की छेर की लकड़ी होती है जिसके अगले छोर में लोहे की एक कील लगी होती है और पीछे की ओर छेद होता है ।

चापक^५—संज्ञा पुं० [सं० चातक] दे० 'चातक' । उ०—मनो चापक मोर आनद बने ।—हम्मीर०, पृ० १४४ ।

चापिक^५—संज्ञा पुं० [सं० चातक] दे० 'चातक' ।

चापिग—संज्ञा पुं० [सं० चातक] दे० 'चातक' । उ०—देह गेह नहि धुबि सरीरा । निसदिन चितवत चापिग मीरा ।—दादू०, पृ० ४६२ ।

चात्वाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. हवनकुंड । २. उत्तर वेदी । ३. दम । डाम । कुण । ४. गढ़वा ।

चादर—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] १. कपड़े का लंबा चौड़ा टुकड़ा जो ओढ़ने के काम में आता है । हलका ओढ़ना । चौड़ा दुपट्टा । पिछोरी ।

घो०—चादर छिपौवल = लड़कों का एक खेल जिसमें वे किसी लड़के के ऊपर चादर डाल देते हैं और दूसरी गोल के लड़कों से उसका नाम पूछते हैं । जो ठीक नाम बता देता है वह चादर से उसके लड़के को ली बनाकर ले जाता है ।

मुहा०—चादर उतारना = बेपदे करना । इज्जत उतारना । अपमानित करना । मर्दादा बिगाड़ना ।

विशेष—स्त्रियों के संबंध में इस मुहावरे को उरी अर्थ में बोलते हैं, जिस अर्थ में पुरुषों के लिये 'पगड़ी उतारना' बोलते हैं ।

चादर ओढ़ना या डालना = किसी विधवा को रख लेना ।

चादर रहना या लाज की चादर रहना = इज्जत रहना ।

कुल की मर्दादा रहना । प्रतिष्ठा का बना रहना । उ०—

लाल बिनु कैसे लाज चादर रहेगी आब कादर करत

चाप चादर नए नए ।—श्रीपति (शब्द०) । चादर से

बाहुर पर फैलाना = (१) अपनी हृद से बाहुर जाना ।

(२) अपने वित्त से अधिक खर्च आदि करना । चादर हिलाना = मुँह में शत्रुओं से घिरे हुए सिपाही का मुँह रोकने या आत्मसमर्पण करने के लिये कपड़ा हिलाना । मुँह रोकने का झंझा दिखाना ।

२. किसी धातु का बड़ा चौखूँटा पत्तर । चदर । ३. पानी की चौड़ी धार जो कुछ ऊपर से गिरती हो । ४. बड़ी हुई नदी या और किसी वेग से बहते हुए प्रवाह में स्थान स्थान पर पानी का वह फैलाव जो बिलकुल बराबर होता है, अर्थात् जिसमें भँवर या हिलारा नहीं होता । ५. फूलों की राशि जो किसी देवता या पूज्य स्थान पर चढ़ाई जाती है । जैसे,—मजार पर चादर चढ़ाना । ६. खेमा । तंबू । शिविर । उ०—दक्खिन की ओर तेरे चादर की चाह सुनि, चाहि माजो चाँदबीबी चौकि भाजै चक्कड़े ।—गंग०, पृ० १०३ ।

चादरा—संज्ञा पुं० [हि० चादर] मरदाना चादर । बड़ी चादर ।

चादरी—संज्ञा पुं० [हि० चादर] एक प्रकार का हथियार । उ०—तोष, बाण, चादरि हथनालि, जंबूर बंबूक । तमचा कमान, सेस इन नै त्यागो ।—ह० रासो, पृ० १५९ ।

चान^५—संज्ञा पुं० [चाँद] दे० 'चाँद' । उ०—आध बदन तन्हि देखल मोर । चान अँकुरि चलल चकोर ।—विद्यापति, पृ० ५६४ ।

चानक^५—^५—क्रि० वि० [हि० अचानक] अचानक । सहसा । अकस्मात् । उ०—हरिनी जनु चानक जाल परी जनु सोन चिरी अबहीं पकरी ।—गुमान (शब्द०) ।

चानक^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] गहरी चाह । प्रेम । चाव । उ०—पूरति अनुप एक आय के अचानक में चानक लगाय अजों हिय को हरति है । दोन० प्र०, पृ० १० ।

चानण^५—संज्ञा पुं० [हि० चाँदना] दे० 'चाँदना' । उ०—कवन खंड बोले सो होय । नानक गुस्सुख चानण लोय ।—प्राण०, पृ० ५ ।

चानणी—संज्ञा पुं० [हि० चाँदनी] चाँदनी अर्थात् शुक्ल पल । उ०—भइभड़िया सादूल रा, बीस विखम्भो बार । चेत इग्यारस चानणी असुरा सुणी पुकार ।—रा० क०, पृ० २४१ ।

चानन—संज्ञा पुं० [सं० चन्दन] दे० 'चन्दन' । उ०—चानन भरम सेवाल हम सजनी पूछत सकल मन काम ।—विद्यापति, पृ० ४६६ ।

चनायल—वि० [हि० चान] चाँदना या प्रकाश । उ०—मोअकार हुमा चनायल । तदुँ तीन देव उपायल ।—प्राण०, पृ० १ ।

चानस^५—संज्ञा पुं० [सं० चान्स] ताश का एक खेल । २. दे० 'चांस' ।

चाप^५—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुष । कमान । २. गणित में आधा वृत्तक्षेत्र ।

विशेष—सूयसिद्धात में महादिक के चाप निकालने की क्रिया की हुई है ।

३. वृत्त की पार्श्व का कोई भाग । ४. धनुराशि ।

चाप^५—संज्ञा स्त्री० [हि० चपना] १. दबाव ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

२. पैर की माहट । पैर जमीन पर पड़ने का शब्द । जैसे,—इतने में किसी के पैर का चाप सुनाई दी ।

चापक—संज्ञा पुं० [सं० चाप + क] धनुष । उ०—लखिन बतिस बहुतर कला बाल बेस पूरन सगुन । कीड़त गिलोल अब लाल कर (तब) मार जानि चापक सुमन ।—पृ० रा० १।७२७ ।

चापजरीबी—संज्ञा स्त्री० [हि० चाप + जरीबी] किसी जमीन की सीधो नाप । लंबाई की नाप ।

चापट^५—संज्ञा स्त्री० [हि० चिपटना] दाने की वह सूसी जो घाटा पीसने पर निकलती है । चोकर ।

चापट^२—वि० [हि० चापड़] दे० 'चापड़' ।

चापड़^५—वि० [सं० चिपिट, हि० चिपटा, चपटा] १. जो दबकर चिपटा हो गया हो । जा कुचले जाने के कारण जमीन के बराबर हो गया हो । २. बराबर । समकल । हमवार । ३. मटियामेट । चोपट । उजाड़ । जैसे,—ऐसी बाढ़ आई कि कई गाँव चापड़ हो गए ।

चापड़^२—संज्ञा स्त्री० [हि० चापट] चोकर । सूसी ।

चापदंड—संज्ञा पुं० [सं० चापदण्ड] वह डंडा जिससे कोई बस्तु आगे की ओर बेली जाय ।

चापना—क्रि० सं० [सं० चाप (= धनुष)] दबाना । मीड़ना । उ०—चापत चरण लखन उर लाए । समय सप्रेम परम सनुपाए ।—सुलसी । (शब्द०) ।

चापर—वि० [हि० चापड़] दे० 'चापड़' ।

चापल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंचलता । जोखी । २. अस्थिरता । ३. शोष (को०) ।

चापल^२—वि० [हि० चपल] चंचल ।

चापलता—संज्ञा स्त्री० [हि० चापल + ता (प्रत्य०)] चंचलता । डिलाई । उ०—लघुपति चापलता कवि छमहूँ । —तुलसी (शब्द०) ।

चापलूस—वि० [फ्रा०] लल्लो चप्पो करनेवाला । जुचामबी । चाटुकार ।

चापलूसी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] वह झूठी प्रशंसा जो केवल दूसरे को प्रसन्न और अनुकूल रखने के लिये की जाय ।

चापल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'चापल' (को०) ।

चापी—संज्ञा पुं० [सं० चापिन] १. वह जो बनुष धारण करे । बनुधर । २. शिष । ३. अनुराशि ।

चाप्—संज्ञा पुं० [देश०] हिमालय के आसपास के प्रदेशों की एक प्रकार की छोटी बकरी जिसके बाल बहुत सँवे और मुलायम होते हैं ।

विशेष—इसके बालों के कंबल आदि बनते हैं ।

चाफंद—संज्ञा पुं० [हि० चौ (= चार) + फंद] मछली पकड़ने का एक प्रकार का जाल ।

चाब^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चव्य] १. गजपिप्पली की जाति का एक पौधा जिसकी लकड़ी और जड़ औषध के काम में आती है ।

विशेष—एशिया के दक्षिण और विशेषतः भारत में यह पौधा या तो नदियों के किनारे आपस आप उगता है या लकड़ी और जड़ के लिये बोया जाता है । इसकी जड़ में बहुत दिनों तक पनपने की शक्ति रहती है और पौधे को काट लेने पर उसमें से फिर नया पौधा निकलता है । इसमें काली मिर्च के समान छोटे फल लगते हैं जो पहले हरे रहते हैं और पकने पर लाल हो जाते हैं । यदि कच्चे फल तोड़कर सुखा लिए जायें, तो उनका रंग काला हो जाता है । ये फल भी औषध के काम में आते हैं और 'चव' कहलाते हैं । कुछ लोग मूल से इसी के फल को 'गजपिप्पली' कहते हैं; पर 'गजपिप्पली' इससे भिन्न है । बंगाल में इसकी लकड़ी और जड़ से कपड़े आदि रंगने के लिये एक प्रकार का पीला रंग निकाला जाता है । डाक्टरों के मत से 'चव' के फल के गुण बहुत से धंधों में काली मिर्च के समान ही हैं । वैद्यक में चाब को गरम, चरपरी, हलकी, रोचक, जठराग्नि प्रदीपक और कृमि, श्वास, मूल और मूत्र आदि को दूर करनेवाली तथा विशेषतः गुदा के रोगों को दूर करनेवाली माना है ।

पर्या०—चबिका । चव्य । चबी । रत्नावली । तेजोवती । कोला । नाकुली । कोखवली । कुटिल । सतक । ककर ।

२. इस पौधे का फल । ३. चार की संख्या ।—(डि०) । ४. कपड़ा ।—(डि०) ।

चाब^२—संज्ञा पुं० [सं० चव (= एक प्रकार का बीस)] एक प्रकार का बीस ।

चाब^३—संज्ञा स्त्री० [हि० चाबना] १. वे चौखूटे दाँत जिनसे भोजन कुचलकर खाया जाता है । २. डाढ़ । दाढ़ । चौबड़ ।

३. बच्चे के जन्मोत्सव की एक रीति जिसमें संबंध की स्त्रियाँ गाती बजाती और खिलौने कपड़े आदि लेकर आती हैं ।

चाबक—संज्ञा पुं० [फ्रा०] कोड़ा । दे० 'चाबुक' । उ०—चड़ि चोड़ों लीयउ चाबकउ ।—बी० रासो, पृ० ५८ ।

चाबन—संज्ञा पुं० [सं० चर्वण] चबेना । घाना । उ०—मूँड पलोसि कमर बँधि पोयी । हमको चाबन उनकी रोटी ।—कबीर ग्रं० पृ० २१९ ।

चाबना^१—क्रि० सं० [सं० चर्वण, प्रा० चव्वण] १. दाँतों से कुचल कुचलकर खाना । चबाना । जैसे,—चने चबाना । उ०—चाबत पान बली अमकि पुतनिका मदमान ।—सुकवि (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—खाना ।—बालना ।—लेना ।

२. खूब भोजन करना । खाना ।

चाबना^२—क्रि० सं० [सं० चर्वण] रसास्वादन करना (ला०) (जैसे, रसचर्वणा) । उ०—चारपों वेद चाबति, पढ़ति छमो दरसन, नव रस निरूपति, वट रस खाति है ।—गंग०, पृ० १ ।

चाबसा^१—अव्य० [हि० चाबस] शाबास । वाह वाह ।

चाबी—संज्ञा स्त्री० [हि० चाप (= दबाव) या पुर्त० चेब] १. कुंजी । ताली ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—चाबी देना = (१) कुंजी ऍठकर ताला बंद करना । (२) कुंजी के द्वारा किसी कल की कमानी को ऍठकर कसना जिसमें भटके के कारण उसके सब पुरजे फिर ज्यों के स्थों चलने लगें । जैसे,—घड़ी में चाबी देना । चाबी भरना = दे० 'चाबी देना' । २. कोई ऐसा पच्चड़ जिसे दो जुड़ी हुई वस्तुओं की संधि में ठोक देने से जोड़ टूट हो जाय ।

क्रि० प्र०—भरना ।

मुहा०—चाबी भरना = वह युक्ति करना जिसके द्वारा किसी व्यक्ति से अपने इच्छानुसार काम कराया जा सके ।

चाबुक^१—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. कोड़ा । हंटर । सौटा ।

क्रि० प्र०—झड़ना ।—देना ।—फटकारना ।—मारना ।—लगाना ।

मौ०—चाबुकसवार ।

२. कोई ऐसी बात जिससे किसी कार्य के करने की उत्तेजना उत्पन्न हो । जैसे,—तुम्हारी व्यंग्यभरी बात ही उसके लिये चाबुक हो गई ।

चाबुक^२—वि० तेज । तीव्र । फुर्तीला ।

चाबुक^३—संज्ञा पुं० [तु० चाबुक] प्याला ।

चाबुकजन—वि० [फ्रा० चाबुकजन] कोड़ा मारनेवाला ।

चाबुकजनी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० चाबुकजनी] कोड़ा मारना ।

चाबुकदस्त—वि० [फ्रा०] कुशल । दक्ष ।

चाबुकदस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] कुशलता । दक्षता (को०) ।

चाबुकसवार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] [संज्ञा चाबुकसवारी] घोड़े को विविध प्रकार की चालें सिखानेवाला । घोड़े की चाल दुरुस्त करनेवाला । घोड़े को निकालनेवाला ।

चाबुकसवारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] चाबुक सवार का काम या पेशा ।

चाम—संज्ञा स्त्री० [हि० चाब] दे० 'चाब' ।

चामना—क्रि० सं० [हि० चाबना] खाना । भक्षण करना । उ०—

मुपचाप चटपट चाम चूँकर चले भी भाते । —प्रेमचन०,
भा २, पृ० ८३ ।

मुहा०—चाम चामना = (१) अनेक प्रकार के स्वादिष्ट और
पीठिक पदार्थ खाना । बढ़िया बढ़िया चीजें खाना । (२) फीज
करना । सुख से रहना ।

चामा—संज्ञा पुं० [हि० चामना] बीजों का एक रोग जिसमें उनकी
बीज पर छटि से उमड़ भाते हैं और उनसे कुछ खाते
नहीं बनता ।

चामी—संज्ञा स्त्री० [हि० चाबी] दे० 'चाबी' ।

चाम—संज्ञा पुं० [सं० चम] चमड़ा । खाल । चमड़ी ।

चौ०—चाम के चाम—चमड़े के सिक्के ।

वि०—ऐसा प्रसिद्ध है कि निजाम नामक एक मिस्ती ने हुमायूँ
को हूँने से बचाया था और इसके बदले में आधे दिन की
बादशाही पाई थी । उसी आधे दिन की बादशाहत में उसने
चमड़े के सिक्के चलाए थे ।

मुहा०—चाम के चाम चलाना=अपनी जबरदस्ती के अरोसे कोई
काम करना । अन्याय करना । धंघेर करना । उ०—(क)
ऊँको अब कुछ कहत न आवै । सिर पै सोति हमारे कुबजा
चाम के दाम चलावै ।—सूर (शब्द०) । (ख) बतियान
सुनाय के सोतिन की छतियान में सार सलाय ले री । सपने
हूँ न कीजय मान अए अपने जोबना बलाय ले री । परमेस
रूप तरंगन सों अंग अंगन रूप दलाय ले री । दिन चारिक
सू पिय प्यारे के प्यार सों चाम के दाम चलाय ले री ।—
परमेश (शब्द०) ।

चाम^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] हल की नोक से चिरी हुई भूमि की रेखा ।
उ०—एक दो चाम रावल ने खीचकर निकाली, वहाँ मोती
पैदा हो गए ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ८१ ।

चामचोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चाम + चोरी] गुप्त रूप से पर-स्त्री-
गमन ।

चामड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० चमड़ी] दे० 'चमड़ी' ।

चामर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चौर । चेंवर । चोरी । २. मोरछन । ३.
एक वर्षावृत्त जिसके प्रत्येक चरण में रगण, जगण, रगण,
जगण और रगण होते हैं । जैसे,—रोज रोज राधिका सखीन
संग आइ के । खेल रास कान्हू संग चित्त हयं लाइ के । बाँसुरी
समान बोल गान ग्वाल गाइ के । कृष्ण ही रिभावही सु चामर
बुलाई के ।

चामरगाह—संज्ञा पुं० [सं०] वह सेवक जो चेंवर डलाने का कार्य
करता है [को०] ।

चामरगाहिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चामरगाह' [को०] ।

चामरगाही—संज्ञा पुं० [सं० चामरगाहिन] दे० 'चामरगाह' [को०] ।

चामरपुष्प, चामरपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] १. काँस । २. सुगंधी
का पेड़ । ३. केतकी । ४. आम ।

चामरपाली—संज्ञा पुं० [हि० चामर + पाल] तुर्क । उ०—भाए
चले रिणु भाँजिया, चौड़े चामरपाल ।—रा० ६०, पृ० २७४ ।

चामरपुष्पक—देश० पुं० [सं०] दे० 'चामरपुष्प' [को०] ।

चामरव्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० चामर + व्यंजन] चेंवर [को०] ।

चामरिक—संज्ञा पुं० [सं०] चेंवर डलानेवाला ।

चामरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुरा गाथ ।

चामरी^२—संज्ञा पुं० [सं० चामरिन] घोड़ा [को०] ।

चामिला—संज्ञा स्त्री० [हि० चमल] दे० 'चमल' । उ०—चामिल
तेरे बालों धाये ।—लाल (शब्द०) ।

चामीकर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोना । स्वर्ण । उ०—चार चामीकर
बंद चपला चमक बोली, केसरि चटक कोन लेखे लेखित
है ।—चनानंद, पृ० ५८ । २. खूँरा ।

चामीकर^२—वि० १. स्वर्णमय । सुनहरा । २. स्वर्ण संबंधी ।

चामीकराचल, चामीकराद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत [को०] ।

चामुंडराज—संज्ञा पुं० [सं० चामुण्डराज] गुजरात का एक राजा
जो चापोरकठ वंशीय सामंत राजा का भ्राजा था । इसकी मृत्यु
१०२५ ईसवी में हुई थी ।

चामुंडराय—संज्ञा पुं० [सं० चामुण्ड + प्रा० राय] महाराज प्रबि-
राज का एक सामंत जो 'बयाणा' के राजा दाहुर का पुत्र
और दाहिमा क्षत्रिय था ।

चामुंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० चामुण्डा] एक देवी का नाम जिन्होंने
शुंभ, निशुंभ के चंड मुंड नामक दो सेनापति दैत्यों का बध
किया था ।

पर्या०—चविका । चर्ममुंडा । माजीरकर्णिका । कर्णमोहो ।
महागंधा, भंरवी । कापालिनी ।

चाम्य—संज्ञा पुं० [सं०] खाल पदार्थ [को०] ।

चाय^१—संज्ञा स्त्री० [चीनी० चा] एक पौधा या झाड़ जो प्रायः दो
से चार हाथ तक ऊँचा होता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ १०-१२ अंगुल लम्बी, ३-४ अंगुल चौड़ी
और दोनों सिरों पर नुकीली होती हैं । इसमें सफ़ेद रंग के
चार पाँच दलों के फूल लगते हैं जिनके झड़ जाने पर एक, दो,
या तीन बीजों से भरे फल लगते हैं । यह पौधा कई प्रकार
का होता है । इसकी सुगंधित और सुखाई हुई पत्तियों को
उबालकर पीने की चाल अब प्रायः संसार भर में फैल गई है ।
चाय पीने का प्रचार सबसे पहले चीन देश में हुआ । वहाँ से
क्रमशः जापान, बरमा, श्याम, आदि देशों में हुआ । चीन देश
में कही कहीं यह कहानी प्रचलित है कि धर्म नामक कोई
ब्राह्मण चीन देश में धर्मोपदेश करने गया । वहाँ वह एक
दिन चलते चलते थककर एक स्थान पर सो गया । जागने पर
उसे बहुत सुस्ती मालूम हुई । इसपर क्रोध होकर वह अपनी
भी के बाल नोच नोचकर फेंकने लगा । जहाँ जहाँ उसने
बाल फेंके, वहाँ वहाँ कुछ पौधे उग आए जिनकी
पत्तियों को खाने से वह आध्यात्मिक ध्यान में मग्न
हो गया । वे ही पौधे चाय के नाम से प्रसिद्ध हुए ।
चीन में पहले धोषध के रूप में इसका व्यवहार आते बहुत
प्राचीन काल से हो रहा हो पर इस प्रकार उबालकर पीने
की चाल वहाँ ईसा की सातवीं या आठवीं शताब्दी के पहले
नहीं थी । भारतवर्ष में आसाम तथा मनीपुर आदि प्रदेशों
में यह पौधा जंगली होता है । नागा की पहाड़ियों पर भी
इसके जंगल पाए गए हैं । पर इसके पीने की प्रथा का प्रचार

भारतवर्ष में नहीं था। चीन से बाय रेंवा रेंगाकर सबसे ईस्ट इंडिया कंपनी यूरोप को भेजने लगी तभी से इसकी ओर ध्यान आकषित हुआ और भारत में उसके लगाने का भी उद्योग आरंभ हुआ। पहले पहल यहाँ आलाबार् के किनारे पर चीन से बीज रेंगाकर बाय उत्पन्न करने की चेष्टा अंग्रेजों द्वारा की गई क्योंकि तब तक यह नहीं ज्ञात था कि यह बीजा भारतवर्ष में भी जंगली होता है। पर यह बाय उस बाय से भिन्न थी जो आसाम में होती है। सुवाई बाय की पत्तियाँ सबसे बड़ी होती हैं। नागा बाय की पत्तियाँ पतली और छोटी होती हैं। बाय की पत्तियाँ यों ही सुझाकर नहीं भी जाती हैं। वे अनेक प्रक्रियाओं से सुगंधित और प्रस्तुत की जाती हैं। बाय के अनेक प्रकार के जो नाम आजकल प्रचलित हैं, उनमें से अधिकतर सुपमेद के सूचक नहीं हैं, केवल प्रक्रिया के भेद से या पत्तियों की अवस्था के भेद से रखे गए हैं। साधारणतः बाय के दो भेद प्रसिद्ध हैं—काली बाय और हरी बाय। यद्यपि चीन में कहीं कहीं पत्तियों में यह भेद देखा जाता है; जैसे—कियाङ्सू पर्वत की हरी बाय जिसे सुंगमी कहते हैं और कानटन (कैंटन) की चटिया काली बाय, पर अधिकतर यह भेद भी अब प्रक्रिया पर निर्भर है। काली बायों में पीको, बोहिया कांगो, सूचंग बहुत प्रसिद्ध हैं और हरी बायों में से डांके, हैसन, बारूद आदि। काली बायों में से पीको सबसे स्वादिष्ट और उत्तम होती है और हरी बायों में से बारूद बाय सबसे बढ़िया मानी जाती है। नारंगी पीको में बहुत अच्छी सुगंध होती है। ये दोनों प्रकार की बाय पहली चुनाई की होती हैं, जब कि पत्तियाँ बिलकुल नए कल्लों के रूप में रहती हैं। बाय बीजों से उत्पन्न की जाती है।

२. बाय उबाला हुआ पानी। बाय का काढ़ा। ३. दूध तथा चीनी मिश्रित बाय का काढ़ा या पानी।

क्रि० प्र०—पीना।—बनाना।—लेना।

यौ०—बायपानी = जलपान।

बाय^५—संज्ञा पु० [हि० बाय] दे० 'बाय'।

बाय^५—संज्ञा पु० [सं० बाय] समूह। उ०—सुपन सुफन दिल्ली कथा, कही चंदबरदाय। अब आगे करि उज्जरी पिच्य अंकुर गुन बाय।—पु० रा०, ३। ५८।

बाय^५—संज्ञा पु० [देशज] पुत्र। उ०—नाबाबत बाब आसफन कविराय सांभ के काम साहल के बाय।—रा० क०, पु० १५१।

बायक^५—संज्ञा पु० [हि० बाय] चाहनेवाला। प्रेमी। उ०—जय यदुकुल उरु हनु सत बकोर बायक चतुर।—रघुराज (शब्द०)।

बायक^५—संज्ञा पु० [सं०] चुननेवाला। चयन करनेवाला।

बायदान—संज्ञा पु० [हि० बाय + दान + बान] वह वस्तु जिसमें बाय बनाई जाती है या बनाकर रखी जाती है।

बायदानी—संज्ञा स्त्री० [हि० बाय + दानी] दे० 'बायदान'।

बायचीकी—संज्ञा स्त्री० [हि० बाय + चीकी] चीकी। उ०—तिम्बती ढंग की बायचीकी और बैठने की गद्दी के साथ मेज, कुर्सी, पलंग और आलमारी भी है।—किसर०, पु० १५।

बायल—वि० [हि० बायक] १. चाहने योग्य। २. चाह बारी। उ०—बाय मरीं बायल बपल टग जोरती।—हम्मीर०, पु० २।

चार^५—वि० [सं० चत्वारः, > प्रा० चत्वारो] १. जो गिनती में दो और दो हो। तीन से एक-अधिक जैसे, चार प्राण्यी।

यौ०—चार साल = सबसे या मुदंग के एक साल का नाम। चोताला। चार पाँच = (१) इधर उधर की बात। हीला-हवाला। (२) हुज्जत। तकरार। चार मजज = हकीमी में चार वस्तुओं के बीजों की गिरी बीरा, ककड़ी, कद्दू और खरबूजा।

मुद्दा०—चार आँखें करना = आँखें मिलाना। देखा देखी करना। सामने घाना। साक्षात्कार करना। मिलना। जैसे,—अब वह हमारे सामने चार आँखें नहीं करता। चार आँखें होना = नजर से नजर मिलना। देखा देखी होना। साक्षात्कार होना। चार पाँच लगना = (१) चीगुनी प्रतिष्ठा होना। (२) चीगुनी जोमा होना। सौंदर्य बढ़ना (जी०)। चार के कंधे पर चढ़ना या चलना = मर जाना। मशान को जाना। चार पगड़ी करना = जहाज का संगर डालना। चार पाँच करना = (१) हीला हवाला करना। इधर उधर करना। बातें बनाना। (२) हुज्जत करना। तकरार करना। चार पाँच लाना = दो० 'चार पाँच करना'। चारो फूटना = चारों आँखें फूटना (दो हिये की दो उपर की)। अंधा होना। उ०—आखो गात अकारण गारथो। करी न प्रीति कमल लोचन सों जम्ब जुवा ज्यों हारथो। निसि दिन बिषय विलासनि विलसत फूटि गई तब चारथो।—सूर (शब्द०)। चारो खाने चित्त गिरना या पड़ना = ऐसा चित्त गिरना जिससे हाथ पाँव फँस जायें। हाथ पाँव फँसाए पीठ के बल गिरना। किसी दारुण संवाद को पाकर स्तब्ध होना। अकस्मात् कोई प्रतिकूल बात सुनकर रुका रह जाना। बेसुब होना। सकपका उठना।

२. कई एक। बहुत से। जैसे,—चार प्रादमी जो कहें उसे मानों।

३. थोड़ा बहुत। कुछ। जैसे,—चार आँखें गिराना।

यौ०—चार तार = चार पान कपड़े या गहने। कुछ कपड़ा जत्ता और जेवर। चार दिन = चारों दिन। कुछ दिन। जैसे,—चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी पाल। चार पेसे = कुछ बन। कुछ रुपया पैसा। जैसे,—जब चार पेसे पास रहेंगे तब लोग हाँ जी हाँ जी करेंगे।

चार^५—संज्ञा पु० चार की संख्या। चार का अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४।

चार^५—संज्ञा पु० [सं०] [वि० चारित, चारो] १. गति। चाल। गमन। २. बंधन। कारागार। ३. गुप्त दूत। चर। जासूस। ४. दास। सेवक। उ०—लोभी असु चह चार गुमानी। नम बुहि दूध चहल ये प्रानी।—मानस, ३। ७१। ५. चिरोजी का पेड़। पियार। अचार। ६. कृत्रिम बिष। जैसे,—मछली फँसाने की कँटिया में लगा चारा, बिड़ियों को बेहोश करने की गोली आदि। ७. आचार। रीति। रस्म। जैसे,—आहचार, डारचार। उ०—(क) केरे पान फिरा सब कोई। लाग्यो आहचार सब होई।—जायसी (शब्द०)।

(ब) यह मौखिक श्लोकाचारि रात्रि चार सब कीन्हा ।—बायसी (शब्द०) । (ग) औरहु चार करावहु मुनिवर वशि सुरत सुत देखे ।—रघुराज (शब्द०) । (घ) अर्ध रात्रि जो सकल चार करि धाय जाहु जनबासे ।—रघुराज (शब्द०) ।

चार आहुना—संज्ञा पुं० [फ्रा०] एक प्रकार का कवच या बकतर जिसमें जोड़े की चार पटरियाँ होती हैं; एक छाती पर एक पीठ पर और दो दोनों बगल में (भुजा के नीचे) ।

चारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाय जैसे चरानेवाला । चरवाहा । २. चलानेवाला । संचारक । ३. गति । चाल । ४. विरोधी का पेड़ । पियाल । ५. कारागार । ६. गुप्तचर । जासूस । ७. सहचर । साथी । ८. भगवारीही । सवार । ९. घूमनेवाला ब्राह्मण छात्र या ब्रह्मचारी । १०. मनुष्य । ११. चरक निर्मित ग्रंथ या सिद्धांत ।

चारक—वि० चार एक । जोड़े । ज०—यह संपदा दिवस चारक की सोच समझ मन माहीं । सूर सुनत उठि जली राखिका, दै दूती पलबाहीं ।—संतवाणी०, भा० २, पृ० ६१ ।

चारक—संज्ञा पुं० [सं०] वह कैद जिसमें न्यायाधीन विचारकाल में किसी को रहे । हवालात ।

चारकर्म—संज्ञा पुं० [सं० चारकर्मन्] जासूसी । गुप्तचर का काम [को०] ।

चारकाने—संज्ञा पुं० [हि० चार + काना = जाना] चौसर या पासे का एक दाँव ।

विशेष—यह उस समय होता है जब नई बाजी के तीनों पासे इस प्रकार पड़ते हैं कि एक पासे में तो दो चित्ती और बाकी दोनों पासों में एक एक चित्ती ऊपर की ओर दिखाई पड़ती है ।

चारखाना—संज्ञा पुं० [फ्रा० चार खानह्] एक प्रकार का कपड़ा जिसमें रंगीन धारियों के द्वारा चौखूटे घर बने रहते हैं ।

चारचन्द्र—वि० [सं० चारचन्द्र] सुंदर गति या चालवाला [को०] ।

चारचंद—वि० [सं० चार + फ्रा० चंद] चौगुना ।

चारमारग—संज्ञा पुं० [सं० चार + मार्ग] व्यवहार आदि में धूर्तता ।

क्रि० प्र०—चूमना । लेना = भेद का पता लगाना । रहस्य की बात जान लेना ।

चारचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० चारचक्षु] वह जो दूतों ही के द्वारा सब बातों की जानकारी प्राप्त करे । राजा ।

चारचख—वि० [सं०] दे० 'चारचक्षु' ।

चारचरम—वि० [फ्रा०] १. निर्लज्ज । २. नमकहराम । ३. भसीजन्यवाला ।

चारज—संज्ञा पुं० [प्र० चार्ज] १. कार्यभार । काम की जिम्मेदारी । चार्ज ।

मुहा०—चारज देना = किसी काम को छोड़ते समय उसका भार अपने स्थान पर आए हुए मनुष्य को सहेजकर देना । चारज लेना = किसी कार्य के भार को उससे भलग होनेवाले मनुष्य से सहेजकर लेना ।

२. सुपुर्दगी । निगरानी । संरक्षा का भार ।

चारखामा—संज्ञा पुं० [फ्रा० चारखामह्] चमड़े या कपड़े का बना हुआ वह भासन जिसे घोड़े की पीठ पर कसकर सवारी करते हैं । जीन । पलान । काठी । गद्दी ।

चारटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पंचचारिणी वृक्ष । भूम्यामलकी ।

चारटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नली नामक मंत्रद्रव्य ।

चारटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चारटा' [को०] ।

चारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वंश की कीर्ति मानेवाला । भाट । बंदोजन । २. राजस्थान की एक जाति ।

विशेष—सहास्रसंज्ञ में लिखा है कि जिस प्रकार वैतालिकों की उत्पत्ति वैश्य और शूद्रा से है, उसी प्रकार चारणों की भी है; पर चारणों का वृषलत्व कम है । इनका व्यवसाय राजाओं और ब्राह्मणों का गुण वर्णन करना तथा गाना बजाना है । चारण लोग अपनी उत्पत्ति के संबंध में अनेक भ्रमोक्तिके कणार्पण करते हैं ।

३. भ्रमणकारी ।

चारणविद्या, चारणवैद्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रयवैद्य का ग्रंथ ।

चारताल—संज्ञा पुं० [हि० चारताल] दे० 'चौताला' ।

चारतूल—संज्ञा पुं० [सं०] चंदर [को०] ।

चारदा—संज्ञा पुं० [हि० चार + दा (प्रत्य०)] १. चौपाया । २. (कुम्हारों की बोर्सा में) गदहा ।

चार दिन—संज्ञा पुं० [सं० चार + दिन] जोड़े दिन ।

यौ०—चार दिन की चाँदनी = चंदरोजा चमक दमक ।

चारबिहारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० चारबिहारी] १. वह दीवार जो किसी स्थान की रक्षा के लिये उसके चारों ओर बनाई जाय । घेरा । हाता । २. शहरपनाह । प्राचीर । कोट ।

चारधाम—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के चार तीर्थों का सामूहिक नाम । इनका नाम इस तरह है—१. जगन्नाथपुरी, २. बदरिकाश्रम, रामेश्वरम्, ४. द्वारका ।

चारन—संज्ञा पुं० [हि० चारण] दे० 'चारण' ।

चारना—क्रि० सं० [सं० चारण] चराना । उ०—(क) जो चारत मुरली धुनि कीन्हा । गोपी जन के मन हर लीन्हा ।—गोपाल (शब्द०) । (ख) जहाँ गो चारत नित गोपाला । संग लिये ग्वालन की माला ।

चार नाचार—क्रि० वि० [फ्रा०] विवश होकर । लाचार होकर । मजबूरम् ।

चारपय—संज्ञा पुं० [सं०] १. चौमुहानी । २. राजमार्ग [को०] ।

चारपाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चार + पाया] छोटा पलंग । छाट । लटिया । मंजी । माचा ।

मुहा०—चारपाई पर पड़ना = (१) चारपाई पर लेटना । (२) बीमार होना । अस्वस्थ होना । रोगग्रस्त होना । चारपाई धरना, पकड़ना या लेना = (१) इतना बीमार होना कि चारपाई से उठ न सके । अत्यंत रुग्ण होना । (२) चारपाई पर लेटना । सोना । जैसे,—तुम खाते ही चारपाई पकड़ते हो । चारपाई में कान निकलना = चारपाई का टेढ़ा होना ।

चारपाई में कब पड़ना । चारपाई से (किसी की) पीठ लगना = बीमारी के कारण चारपाई से उठ न सकना । (किसी का) चारपाई से लगना = ३० 'चारपाई से पीठ लगना' ।

चारपाया—संज्ञा पुं० [क्रा०] चौपाया । चार पाँववाला पशु । जानवर ।
चारप्रचार—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तचर छोड़ना । बुनियाद पुलिस पीछे लगना (को०) ।

चारबाक—संज्ञा पुं० [सं० चार्वाक] ३० 'चार्वाक' । उ०—जैन बोध ग्रन्थ साकल्य सेना । चारबाक चतुरंग विद्युत् ।—कबीर प्र०, पृ० २४० ।

चारपाल—संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तचर । जासूस (को०) ।

चारपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'चारपाल' (को०) ।

चारबंद—संज्ञा पुं० [क्रा०] बंध । अवयव । धर्मों में बाँट या जोड़ ।

चारबाग—संज्ञा पुं० [क्रा०] १. चौखूँटा बगीचा । २. वह चौखूँटा जाल या कमाल जो भिन्न भिन्न रंगों के द्वारा चार बराबर खानों में बँटा होता है ।

चारबालिश—संज्ञा पुं० [क्रा०] एक प्रकार का गोल तकिया ।

चारभट—संज्ञा पुं० [सं०] वीर सैनिक (को०) ।

चारभटो—संज्ञा पुं० [सं०] साहस (को०) ।

चारमानु—वि० [सं० चार + मानु] सुंदर गौर वर्ण वाली । अनेक सूर्यों के समान प्रोषवाली । उ०—चारमानु कामिन उजियारी । मानसरोवर है वह नारी ।—कबीर सा०, पृ० ७१ ।

चारमज्ज—संज्ञा पुं० [क्रा० चार + मज्ज] १. अक्षरोट । २. मिट्टी की गोली जिसे बच्चे खेलते हैं । ३. सरजूजा, कीरा, ककड़ी तथा कटू का बीज ।

चारमेख—संज्ञा स्त्री० [हि० चार + फ्रा० मेख] एक प्रकार का दंड जिसका मध्यकाल में प्रचलन था । इसमें अपराधी को लिटाकर उसके हाथ तथा पैर चार लूटों में बाँध दिए जाते थे ।

चारयारी—संज्ञा स्त्री० [हि० चार + फ्रा० यारी] १. चार मित्रों की मंडली । २. मुसलमानों में सुन्नी संप्रदाय की एक मंडली जो अबूबक, उमर, उसमान और अली इन्हीं चारों को खलीफा मानती है । ३. चाँदी का एक चौकोर सिक्का जिसपर मुहम्मद साहब के चार मित्रों या खलीफों के नाम अथवा कलमा लिखा रहता है । चारयारी का रुपया ।

विशेष—यह सिक्का एकबार तथा जहाँगीर के समय में बना था । इस सिक्के या रुपए के बराबर चावल लीकर उन लोगों को खिलाते हैं जिनपर कोई वस्तु चुराने का संदेह होता है, और कह देते हैं कि जो चोर होगा उसके मुँह से खून निकलने लगेगा । इस धमकी में आकर कभी कभी चुरानेवाले चीजों को फेंक या रख जाते हैं ।

चारवा—संज्ञा पुं० [हि० चार + पाँव] चौपाया । पशु । जानवर ।

चारवात—संज्ञा स्त्री० [सं०] हि० चार + वात] चौवाँई । चक्रवात । उ०—घाती जग की छवि स्वर्ण प्रात, स्वप्नों की नभ सी रजत रात । भरती दल बिजि को चारवात, तुरमें बन बन की कुरबि साँस ।—भार्या, पृ० १०४ ।

चारवायु—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रीष्म की गरम हवा । सु ।

चारसं०—वि० [हि०] चार । चारों । उ०—लिपंत रूप नारस । बसंत वेद चारसं । अरुण तेज उग्यं । मरकट देव मग्यं ।—पृ० रा०, २ । १७६ ।

चारा^१—संज्ञा पुं० [हि० चारना] १. पशुओं के खाने की घास, पत्ती, बंडल आदि । २. बिड़ियों, मछलियों या घोर जीवों के खाने की वस्तु । ३. घाटा या घोर कोई वस्तु जिसे कटिया में बधाकर मछली फँसाते हैं ।

चारा^२—संज्ञा पुं० [क्रा०] उपाय । इलाज । तदबीर ।

चाराजोई—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] दूसरे से पहुँची हुई या पहुँचनेवाली क्षान्ति के प्रतिकार या बचाव का उपाय । नासिख । फरियाद । जैसे,—अपमान से चाराजोई करना ।

चारायण—संज्ञा पुं० [सं०] कामशास्त्र के एक आचार्य जिनके मत का उत्प्रेक्ष वात्स्यायन ने किया है ।

चारासाज—वि० [क्रा० चार + साज] विपत्ति के समय का परोपकारी । आपत्ति काल में सहायक बननेवाला । उ०—य कहीं की बोस्ती है कि बने हैं दोस्त नासेह । कोई चारासाज होता कोई गमगुसार होता ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४६५ ।

चारि^३—वि० [हि०] ३० 'चार' ।

चारिक—वि० [हि० चार + एक] १. चार । दो चार । कुछ । किंचित् । थोड़ी । उ०—काहू के कहे सुनैते बाही घोर चाहें ताही घोर एक टक चरी चारिक बहुत है ।—शिल्लर०, पृ० ३२६ ।

२. कुछ समय या दिनों का ।

चारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दासी । २. यात्रा । भ्रमण (को०) ।

चारिटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'चारटी' (को०) ।

चारिणी^१—वि० स्त्री० [सं०] आचरण करनेवाली । चलनेवाली ।

चारिणी^२—संज्ञा स्त्री० करणी वृक्ष ।

चारित^३—वि० [सं०] १. जो चलाया गया हो । चलाया हुआ । २. भ्रमके द्वारा लींचा हुआ । उतारा हुआ (भ्रं०) ।

चारित^४—संज्ञा पुं० [हि० चार] पशुओं के चरने का चारा । चरनि वेनु चारितु चरत प्रजा सुवच्छ पेन्हाइ । हाथ कछु नहिं लागिहै किये मोठ की याइ ।—तुलसी (शब्द०) ।

चारित^५—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो चलाया जाय । चलाया जानेवाला । चारा । उ०—चारितु चारित करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी ।—तुलसी (शब्द०) ।

चारितार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] चरितार्थ होने की अवस्था या भाव (को०) ।

चारित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुलक्रमागत आचार । २. आत्मचलन । व्यवहार । स्वभाव । ३. संन्यास (जैन) ।

यौ०—चारित्र धर्म=संन्यास धर्म ।

४. मस्तुगणों में से एक ।

चारित्रविनय—संज्ञा पुं० [सं०] चरित्र द्वारा नम्र या विनीत भाव प्रदर्शन । शिष्टाचार । नम्रता ।

चारित्रमार्गशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चरित्र की खोज । चरित्र का अनुसरण । (जैन) ।

विशेष—चारित्र्य तीन प्रकार का है—(क) सामयिक, (ख) वैशेषिकापनीय, (ग) परिहारविमुक्ति, (घ) सुख स्वर्ग, (ङ) आचारम्यास । इनके विपरीत संयम और असंयम है ।

चारित्र्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की समाधि ।

चारित्र्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दयनी ।

चारित्रिक—वि० [सं०] १. चरित्र संबंधी । २. उत्तम चरित्रवाला । [को०] ।

चारित्र्यी—वि० [सं० चारित्रिन्] १. उत्तम चरित्रवाला । सवाचारी [को०] ।

चारित्र्य—संज्ञा पुं० [सं०] चरित्र ।

चारिचाच—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकड़ासिंगी ।

चारी—वि० [सं० चारिन्] [वि० स्त्री० चारिणी] १. चलनेवाला । जैसे,—आकाशचारी । २. आचरण करनेवाला । व्यवहार करनेवाला । जैसे, स्वेच्छाचारी ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग हिंदी में प्रायः समास में ही होता है ।

चारी—संज्ञा पुं० १. पदाति सैन्य । पैदल सिपाही । २. संचारी मास ।

चारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नृत्य का एक अंग ।

विशेष—भृंगार आदि रसों का उद्दीपन करनेवाली मधुर गति को चारी कहते हैं । किसी किसी के मत से एक या दो पैरों से नाचने का ही नाम चारी है । चारी के दो भेद हैं—एक भूचारी, दूसरा आकाशचारी । भूचारी २६ प्रकार की होती है । यथा—समनसा, तूपुरबिद्धा, तिर्यङ्मुखी, सरला, कातरा, कुबीरा, विमिश्रित, रसचक्रिका, पांचिरैतिका, तलदलनी, गज-हस्तिका, परावृत्तला, वास्तुविज्ञा, अर्द्धमंडला, स्तम्भोद्भनका, हरिणप्राप्तिका, चाखरेविका, तमोद्भुता, संचारिता, स्फुरिका, क्षिप्तजंघा, संघटिता, मदानसा, उत्कुचिता, प्रतिस्विकुचिता, और अपकुचिता । मतांतर से भूचारी १६ प्रकार की होती है—समपादस्थिता, विद्धा, शकवदिका, बिकाषा, ताडिता, आनन्दा, एडका, क्रीडिता, उर्वरता, हंदिता, जनिता, स्पंदिता, स्पंदितावती, समतन्वी, समोत्सारितघटिता और उच्छ्वंदिता । आकाशचारी १६ प्रकार की होती है—विप्रेक्षा, प्रचरी, अघ्नित-विज्ञा, भ्रमरी, पुरुषोपा, सूचिका, अपसेपा, जंघावती, विद्धा, हरिणप्लुता, उर्वजघादीलिता, जंघा, जंघनिका, विद्युत्क्रांता, भ्रमरिका और दंष्ट्रपार्श्व । मतांतर से—विभ्रांता, अतिक्रांता, अपक्रांता, पार्श्वक्रांतिका, उर्ध्वजानु, दोलोद्भुता, पावोद्भुता, तूपुरपादिका, भुजंगभासिका, क्षिप्ता, आविद्धा, ताला, सूचिका, विद्युत्क्रांता, भ्रमरिका और दंष्ट्रपादा ।

चारु—वि० [सं०] [वि० स्त्री० चारुणी] सुंदर मनोहर ।

चारु—संज्ञा पुं० [सं०] १. बृहस्पति । २. रुक्मिणी से उत्पन्न कृष्ण के एक पुत्र । ३. कुंकुम । केसर ।

चारु—संज्ञा पुं० [सं०] सरपत के बीच जो दवा के काम में आते हैं । वैद्यक में ये बीच मधुर, रुखे, रक्तपिच्छनात्मक, पीतव, दृढ, कड़ेसे और वात उत्पन्न करनेवाले माने जाते हैं ।

चारुकेरारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागरमोषा । २. तरुणी पुष्प । सेवती का फूल ।

चारुगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम ।

चारुगुच्छा—संज्ञा पुं० [सं० चारु + हि० गुच्छा] भंगूर ।

चारुगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम ।

चारुधोष—वि० [सं०] सुंदर नाकवाला [को०] ।

चारुधित्र—संज्ञा पुं० [सं०] घृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

चारुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदरता । मनोहरता । सुहावनापन ।

चारुत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चारुता' [को०] ।

चारुदर्शन—वि० [सं०] देखने में सुंदर लगनेवाला [को०] ।

चारुदेष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. रुक्मिणी से उत्पन्न कृष्ण के एक पुत्र जिन्होंने निकुंभ आदि दैत्यों के साथ युद्ध किया था (हरिवंश) । २. गंधर्व के एक पुत्र का नाम ।

चारुधामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चारुधारा' [को०] ।

चारुधारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की पत्नी शची ।

चारुधिष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] ग्यारहवें मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक ।

चारुनालक—संज्ञा पुं० [सं०] कोकनद । रक्त कमल ।

चारुनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] हरिण ।

चारुनेत्र—वि० सुंदर नेत्रवाला ।

चारुपद्—संज्ञा पुं० [सं०] प्रसारणी । पसरन । गंधपसार ।

चारुपुट—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के ६० मुख्य भेदों में से एक ।

चारुफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] भंगूर या दास की एक बेल । प्राप्तासता ।

चारुबाहु—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम ।

चारुभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम ।

चारुमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुक्मिणी से उत्पन्न कृष्ण की एक पुत्री (हरिवंश) ।

चारुमश—संज्ञा पुं० [सं० चारुमशस्] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम (महाभारत अनुशासन पर्व) ।

चारुरावा—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्राणी । शची ।

चारुलोचन—वि० [सं०] [वि० स्त्री० चारुलोचना] सुंदर नेत्रवाला [को०] ।

चारुलोचन—संज्ञा पुं० हिरण [को०] ।

चारुवक्त्र—वि० [सं०] सुंदर । सुंदर चेहरेवाला [को०] ।

चारुवर्धना—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदर स्त्री । सुंदरी [को०] ।

चारुविंद—संज्ञा पुं० [सं० चारुविन्द] श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम (हरिवंश) ।

चारुवेश—संज्ञा पुं० [सं०] रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र (हरिवंश) ।

चारुप्रता—वि० [सं०] यहीने भर व्रत करनेवाली [को०] ।

चारुरिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रत्न [को०] ।

- चारशील—वि० [सं०] अच्छे स्वभाववाला [को०] ।
- चारुभवा^१—संज्ञा पु० [सं० चारुभवात्] शक्तिशाली के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र ।
- चारुभवा^२—वि० सुन्दर कानवाला ।
- चारुसार—संज्ञा पु० [सं०] स्वयं । सोना [को०] ।
- चारुहासिनी^१—वि० स्त्री० [सं०] सुन्दर हँसनेवाली । मनोहर मुसकानवाली ।
- चारुहासिनी^२—संज्ञा स्त्री० १. मनोहर मुसकानवाली स्त्री । २. बैताली नामक छंद का एक भेद ।
- चारुहासी—वि० [सं० चारुहासिन्] [वि० स्त्री० चारुहासिनी] सुन्दर हँसनेवाला ।
- चारुक्षय—संज्ञा पु० [सं०] भूपाल । राजा [को०] ।
- चारुखो—संज्ञा पु० [देश०] गुठली ।
- चार्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की सड़क जो ब्रह्म हाथ चौड़ी होती थी ।
- चार्या^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] चर्चा । उ०—अच्छर बारि पंडित पढ़ि भूले करे चार्चा सोई ।—जग० श०, पृ० ५४ ।
- चार्यिक—वि० [सं०] कुशल या वक्ष (वेदपाठी) । वेदपाठ में कुशल [को०] ।
- चार्यिक्य—संज्ञा पु० [सं०] १. अंगराम । २. अंगराम लेपन [को०] ।
- चार्य—संज्ञा पु० [सं०] १. किसी काम का मार । कार्यभार । जैसे,—(क) उन्होंने ३ तारीख को आफिस का चार्ज ले लिया । (ख) लार्ड रीडिंग ने २ तारीख को बंबई में, जहाज पर, नए वामसराय को चार्ज दिया ।
- क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।
२. संरक्षण । सुपुर्दगी । देखरेख । अधिकार । जैसे,—सरकारी अस्पताल सिविल सर्जन के चार्ज में है । ३. प्रमियोग । आरोप । इलजाम । जैसे,—मासूम नहीं अदालत ने उनपर क्या चार्ज लगाया है ।
- यौ०—चार्यशील ।
- क्रि० प्र०—लगाना ।—लगाना । देना ।—लेना ।
४. दाम । मूल्य । जैसे,—(क) आपके प्रेस में छपाई का चार्ज अन्य प्रेसों की अपेक्षा अधिक है । (ख) इतना चार्ज मत कीजिए ।
- क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—पढ़ना ।
५. किराया । भाड़ा । जैसे,—अगर आप डाकगाड़ी से जायेंगे तो आपको उधोड़ा चार्ज देना पड़ेगा ।
- क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।
६. हमला । आक्रमण । जैसे, लाठी चार्ज ।
- चार्यशील—संज्ञा पु० [सं०] अभियोगपत्र । कई जुर्म । उ०—जमींदारों से इच्छानुसार रपोटें लेते रहे । चार्जशील तैयार करते रहे ।—काले०, पृ० ७० ।
- चार्टर^१—संज्ञा पु० [सं०] १. वह जेज जिसमें किसी सरकार की ओर से किसी को कोई स्वत्व या अधिकार देने की बात लिखी रहती है । सवब । अधिकारपत्र । जैसे,—चार्टर ऐक्ट । २.

किसी बात पर जहाज की किराए पर लेना या देना । जैसे,—चीनी व्यापारियों ने माल सादने के लिये हाल में दो जापानी जहाज चार्टर किए हैं ।

चार्टर^२—वि० [सं० चार्टर्ड] जो राजा की सनद से स्थापित हुमा हो । जैसे,—महारानी के लेटर्स पेटेंट्स से स्थापित होने के कारण कलकत्ता, मद्रास, बंबई और इलाहाबाद के हाइकोर्ट चार्टर्ड हाइकोर्ट कहाते हैं ।

चार्म^१—संज्ञा पु० [सं०] [वि० चार्मिग] आकर्षण [को०] ।

चार्म^२—वि० [सं०] [वि० स्त्री० चार्मी] १. चर्म संबंधी । २. चमड़े का । ३. चमड़े में मढ़ा हुमा । जैसे, रथ आदि । ४. डाल-वाला । डालयुक्त [को०] ।

चार्मिण^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० चार्मिणी] चमड़े से ढंका हुमा [को०] ।

चार्मिण^२—संज्ञा पु० १. बालों का समूह । २. डालों का समूह [को०] ।

चार्मिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० चार्मिकी] चमड़े का बना हुमा [को०] ।

चार्मिण्य—संज्ञा [सं०] डालचारियों का समूह [को०] ।

चार्थ—संज्ञा पु० [सं०] १. शास्त्र वेद्य द्वारा सवर्ण स्त्री से उत्पन्न एक वर्गसंकर जाति (मनु) । २. दूतकार्य । दौत्य [को०] । ३. जासूसी । भेद लेने का कार्य [को०] ।

चार्थी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित एक प्रकार का मार्ग या पथ जो एक दंड या दो दंड चौड़ा होता था ।

चार्थिक—संज्ञा पु० [सं०] १. एक अनीश्वरवादी और नास्तिक तार्किक ।

पर्या०—बार्हस्पत्य । नास्तिक । लोकायतिक ।

विशेष—ये नास्तिक मत के प्रवर्तक बृहस्पति के शिष्य माने जाते हैं । बृहस्पति और चार्थिक कब हुए इसका कुछ भी पता नहीं है । बृहस्पति को चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में अर्थशास्त्र का एक प्रधान आचार्य माना है । सर्वदर्शनसंग्रह में इसका मत दिया हुमा मिलता है । पद्मपुराण में लिखा है कि असुरों को बहकाने के लिये बृहस्पति ने वेदविषय मत प्रकट किया था । नास्तिक मत के संबंध में विष्णुपुराण में लिखा है कि जब अर्धबल से दैत्य बहुत प्रबल हुए तब देवताओं ने विष्णु के यहाँ पुकार की । विष्णु ने अपने शरीर से मायामोह नामक एक पुरुष उत्पन्न किया जिसने नर्मदा तट पर दिगंबर रूप में जाकर तप करते हुए असुरों को बहकाकर अर्ममार्ग से भ्रष्ट किया । मायामोह ने असुरों को जो उपदेश किया वह सर्वदर्शनसंग्रह में दिए हुए चार्थिक मत के श्लोकों से बिलकुल मिलता है । जैसे,—मायामोह ने कहा है कि यदि यज्ञ में मारा हुमा पशु स्वर्ग जाता है तो यज्ञमान अपने पिता को क्यों नहीं मार डालता इत्यादि । विष्णुपुराण में त्रिपुरविनाश के प्रसंग में भी शिवप्रेरित एक दिगंबर मुनि द्वारा असुरों के इसी प्रकार बहकाए जाने की कथा लिखी है जिसका लक्ष्य जैनों पर जान पड़ता है । वाल्मीकि रामायण अयोध्या कांड में महर्षि जाबलि ने रामचंद्र को बनवास छोड़ अयोध्या लौट जाने के लिये जो उपदेश दिया है वह भी चार्थिक के मत से बिलकुल मिलता है । इन सब बातों से सिद्ध होता है कि नास्तिक मत बहुत

आधीन है। इसका अविर्भाव उसी समय से सम्भवा चाहिए जब वैदिक कर्मकाण्डों की अधिकता लोगों को कुछ खटकने लगी थी। पार्श्व ईश्वर और परलोक नहीं मानते। परलोक न मानने के कारण ही इनके दर्शन को शोकायत भी कहते हैं। सर्वदर्शनसंग्रह में पार्श्व के मत से सुख ही इस जीवन का प्रधान लक्ष्य है। संसार में दुःख भी है, यह समझकर जो सुख वहीं भोगना चाहते, वे मूर्ख हैं। मछली में कटि होते हैं तो क्या इससे कोई मछली ही न खाए? चोपाए खेत पर जायेंगे, इस ढर से क्या कोई खेत ही न बोवे? इत्यादि। पार्श्व आत्मा को पृथक् कोई पदार्थ नहीं मानते। उनके मत से जिस प्रकार गुड़ संतुल आदि के संयोग से मद्य में मादकता उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार सूतों के संयोगविशेष से चेतनता उत्पन्न हो जाती है। इनके विश्लेषण या विनाश से 'मै' अर्थात् चेतनता का भी नाश हो जाता है। इस चेतन शरीर के नाम के पीछे फिर पुनरागमन आदि नहीं होता। ईश्वर, परलोक आदि विषय अनुमान के आधार पर हैं। पर पार्श्व प्रत्यक्ष को छोड़कर अनुमान को प्रमाण में नहीं लेते। उनका तर्क है कि अनुमान व्याप्तिज्ञान का आधारित है। जो ज्ञान हमें बाहरी इन्द्रियों के द्वारा होता है उसे भूत और भाविष्य तक बढ़ाकर ले जाने का नाम व्याप्तिज्ञान है, जो असंभव है। मन में यह ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, यह कोई प्रमाण नहीं क्योंकि मन अपने अनुभव के लिये इन्द्रियों का ही आधारित है। यदि कहो कि अनुमान के द्वारा व्याप्तिज्ञान होता है तो इतरेतराश्रय दोष आता है, क्योंकि व्याप्तिज्ञान को लेकर ही तो अनुमान को सिद्ध किया चाहते हो। पार्श्व का मत सर्वदर्शनसंग्रह, सर्वदर्शनशिरोमणि और बृहस्पतिसूत्र में देखना चाहिए। नैषध के १७ वें सर्ग में भी इस मत का विस्तृत उल्लेख है।

श्री०—पार्श्व दर्शन—पार्श्व निमित्त दर्शन ग्रन्थ। पार्श्व मत = पार्श्व का सिद्धांत या दर्शन।

२. एक राजस जो कीरवों के मारे जाने पर ब्राह्मण वेश में पुषिष्ठिर की राजसभा में जाकर उनको राज्य के लोभ से भाई बंधुओं को मारने के लिये धिक्कारने लगा। इसपर सभास्थित ब्राह्मण लोग हुंकार छोड़कर बोड़े और उन्होंने छपवेशधारी राजस को मार डाला।

पार्श्व—संज्ञा श्री० [सं०] १. बुद्धि। २. चाँदनी। ज्योत्स्ना। ३. दीप्ति। धामा। ४. सुंदर स्त्री। ५. कुबेर की पत्नी। ६. दाह हलदी।

पार्श्व^१—संज्ञा श्री० [हि० चलना, सं० चार] १. गति। गमन। चलने की क्रिया। जैसे—इस गाड़ी की चाल बहुत धीमी है। २. चलने का ढंग। चलने का ढब। गमन प्रकार। जैसे,—यह घोड़ा बहुत अच्छी चाल चलता है। उ०—रहिमन सूधी चाल से प्यावा होत बजीर। फरजी मीर न हूँ सके, टेके की तासीर।—रहीम (शब्द०)। ३. आचरण। चलन। बर्ताव। व्यवहार। जैसे,—(१) अपनी इसी बुरी चाल से तुम कहीं नहीं टिकने पाते। (२) अपने सुत की चाल न देखत उलटी तू हम पै रिस कावति।—सुर (शब्द०)।

यौ०—चालचलन। चालढाल।

मुहा०—चाल सुधारना=आचरण ठीक करना।

४. आकार प्रकार। ढब। बनावट। आकृति। गढ़न। जैसे,—इस चाल का लोटा हमारे यहाँ नहीं बनता। ५. चलन। रीति। रवाज। रस्म। प्रथा। परिपाटी। जैसे,—हमारे यहाँ इसकी चाल नहीं है। ६. गमन का मुहूर्त। चलने की सायत। चाला। उ०—पोथी काढ़ि गवन दिन देखै कौन दिवस है चाल।—जायसी (शब्द०)। ७. कार्य करने की युक्ति। कृतकार्य होने का उपाय। ढंग। तदबीर। ढब। जैसे,—किसी चाल से यहाँ से निकल चलो। ८. धोखा देने की युक्ति। चालाकी। कपट। छल। धूर्तता। उ०—जोग कथा पठई ब्रज को सब सो सठ चेरी की चान चमाकी।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—चालबाजी।

मुहा०—चाल चलना (अकर्मक) = धोखा देने की युक्ति का कृतकार्य होना। धूर्तता से कार्य सिद्ध होना। जैसे,—यहाँ तुम्हारी चाल नहीं चलेगी। चाल चलना (सकर्मक) = धोखा देने का आयोजन करना चालाकी करना। धूर्तता करना। जैसे,—हमसे चाल चलते हो, बवा! चाल में आना = बोझ में पड़ना। धोखा खाना। प्रतारित होना।

६. ढंग। प्रकार। विधि। तरह। जैसे,—मैंने उसे कई चाल से सम्झाया पर उसकी समझ में न आया। १०. शतरंज। चौसर, ताश आदि के खेल में गोटी को एक घर से दूसरे घर में ले जाने अथवा पते या पासे को दाँव पर डालने की क्रिया। जैसे,—देखते रहो, मैं एक ही चाल में मात करता हूँ।

क्रि० प्र०—चलना।

११. हलचल। घूम। आंदोलन। उ०—सातह पताल काल सबद कराल राम भेदे सात ताल चाल परी सात सात में।—तुलसी (शब्द०)। १२. आहत। हिलने डोलने का शब्द। खटका। उ०—देखो सब वृक्ष निश्चल हो गए, घुग और पक्षियों की कुछ भी चाल नहीं मिलती।—(शब्द०)।

मुहा०—चाल मिलना = हिलने डोलने का शब्द सुनाई देना। आहत मिलना।

†१३. वह मकान जिसमें बहुत से किराएदार रहते हों। किराए का बड़ा मकान (बंबई)।

पार्श्व^२—संज्ञा पु० [सं०] १. घर का छप्पर या छत। छाजन। २. स्वर्णभूट पक्षी। ३. चलना। गतिशील होना (को०)। ४. नोलकंड (को०)।

पार्श्वक^१—वि० [सं०] १. चानेवाला। संचालक।

चालक^२—संज्ञा पु० १. यह हाथी जो शंकुश न माने। नटखट हाथी। २. जल्य में भाव बताने या मुंदरंता लाने के लिये हाथ चलाने की क्रिया।

चालक^३—संज्ञा पु० [हि० चाल (= धूर्तता)] चाल चलनेवाला। धूर्त। छल। उ०—घरघाल, चालक, कलहप्रिय कहियत परम परमारपी।—तुलसी (शब्द०)।

चालकुंड—संज्ञा पुं० [सं० चालकुण्ड] बिलका नाम की भील जो उड़ीसा में है।

चालचलन—संज्ञा पुं० [हि० चाल + चलन] पाचरख । व्यवहार । चरित । शीघ्र । जैसे,—उसका चालचलन अच्छा नहीं है।

चालहाल—संज्ञा स्त्री० [हि० चाल + हाल] १. पाचरख । व्यवहार । २. ठंढ । शीघ्र तरीका ।

चालण^१—संज्ञा पुं० [सं० चालन] २० 'चलन'।

यौ०—चालणहार=चलनेवाला । उ०—छठ सातम दिन घावीयो । निहचर घीलंगि चालणहार ।—बीसल० रास, पृ० ४६।

चालणी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चालनी या चालनी] २० 'चालनी' । उ०—बाँका ठहरें बार जो, मिल चालणी मझार ।—बाँकी० पं०, भा० १, पृ० ४६।

चालन^१—संज्ञा पुं० [सं०] चलाने की क्रिया । परिचालन । २. चलने की क्रिया । गति । गमन । ३. चलनी । छलनी । ४. चालने की क्रिया (को०) ।

चालन^२—संज्ञा पुं० [हि० चालना] भूसी या चोकर जो घाटा चलने के पीछे रह जाता है । चलनोस ।

चालनहार^१—संज्ञा पुं० [हि० चालन+हार (प्रत्य०)] चलानेवाला । ले जानेवाला ।

चालनहार^२—संज्ञा पुं० [हि० चलना] चलनेवाला । उ०—तो दिसि उत्तर चालनहार के मारग केतोइ फेर परें किन । बा उजयीनि के छाछे घटा परसे बिन तू चलियो कितहू जिन ।—लक्ष्मण सिंह (शब्द०) ।

चालना^१—संज्ञा पुं० [सं० चालन] १. चलाना । परिचालित करना । २. एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना । ३. बिदा करा ले घाना (बहू आदि) । ४. हिलाना । डोलाना । इधर उधर फेरना । उ०—चालत न भुजबल्ली विलोकनि विरह बस भइ जानकी ।—तुलसी (शब्द०) । ५. कार्यनिर्वाह करना । भुगताना । उ०—चालत सब राज काज आयसु अनुसरत ।—तुलसी (शब्द०) । ६. बात उठाना । प्रसंग छेड़ना । उ०—बनमाली दिसि सेन के ग्वाली चाली बात ।—(शब्द०) । ७. घाटे को चलनी में रखकर इधर उधर हिलाना जिसमें महीन घाटा नीचे गिर जाय और भूसी या चोकर चलनी में रह जाय । छानना ।

चालना^२—क्रि० प्र० [सं० चालन] १. चलना । गति में होना । एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना ।

यौ०—चालनहार=चलनेवाला ।

२. बिदा होकर घाना । चाला होना (नवबहू का) । उ०—पाकह न बीरयो चलि आए हमे पीहर तें नीके कै न जानी सासु ननव जेठानी है ।—शिवराम (शब्द०) ।

चालना^३—संज्ञा पुं० [सं० चालन] बड़ी चलनी ।

चालनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चलनी । छलनी । उ०—चालनी कहे सुई छे कि तेरी पेंदी में छेद ।—मैला०, पृ० ७० ।

चालनीय—वि० [सं०] जो चलाया या हिलाया जा सके (को०) ।

चालबाज—वि० [हि० चाल + बाज] घूर्त । छली ।

चालबाजी—संज्ञा स्त्री० [हि० चालबाज] चालाकी । छल । बोहेबाजी । घूर्तता ।

चाला^१—संज्ञा पुं० [हि० चाल] १. प्रस्थाव । कूच । रवानगी । २. नई बहू का पहले पहल मायके से ससुराल या ससुराल से मायके जाना । ३. यात्रा का मुहूर्त । प्रस्थाव के लिये शुभ दिन । चलने की छायाव । जैसे,—यात्रा पुरब का चाला नहीं है ।

मुहा०—चाला देखना=यात्रा का मुहूर्त विचारना । चाला निकालना=मुहूर्त विधित करना ।

चाला^२—संज्ञा पुं० [हि० चालना=छानना] १. एक प्रकार का कृत्त जो किसी व्यक्ति के मर जाने पर उसकी बोझी आदि की क्रिया की समाप्ति पर रात के समय किया जाता है ।

विशेष—इसमें एक चलनी में राख या बालू डालकर उसे छाबते हैं; और जमीन पर गिरी हुई राख या बालू में बननेवाली आकृतियों से इस बात का अनुमान करते हैं कि मृत व्यक्ति मगले जन्म में किस योनि में जायगा । यह कृत्य प्रायः घर की कोई बड़ी बूढ़ी स्त्री एकांत में करती है, और उस समय किसी को, विशेषतः बालकों को, वहाँ नहीं आने देती ।

चालाक—वि० [फ्रा०] १. चतुर । व्यवहारकुशल । दक्ष । २. घूर्त । चालबाज ।

चालाकी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. चतुराई । व्यवहारकुशलता । दक्षता । पटुता । २. घूर्तता । चालबाजी ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—चालाकी खेलना=चालाकी करना ।

३. युक्ति । कौशल ।

चालान—संज्ञा पुं० [हि० चलना] १. भेजे हुए माल की किहुरिस्त । बीजक । इनवायस (व्यापारी) । २. भेजा हुआ माल या रुपया अथवा उसका व्योरेवार हिसाब ।

यौ०—चालानवार । चालानबही ।

३. रक्कना । चले जाने या माल आदि ले जाने का आज्ञापत्र । ४. मुजरिमों का विचार के लिये मजालत में भेजा जाना । अपराधियों का सिपाहियों के पहरे में पाने या न्यायालय की ओर प्रस्थान ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

चालानदार—संज्ञा पुं० [हि० चालान + फ्रा० दार] १. वह व्यक्ति जो भेजे हुए माल के साथ जाता है और जिसकी जिम्मेदारी पर माल भेजा जाता है । चढ़नदार । जमादार । २. जिसके जिम्मे या जिसके पास चालान का कागज हो ।

चालानबही—संज्ञा स्त्री० [हि० चालान + बही] १. वह बही जिसमें बाहर से आनेवाले या बाहर जानेवाले माल का व्योरा लिखा जाता है ।

चालिया—[हि० चाल + इया (प्रत्य०)] चालबाज । घूर्त । छली । बोहेबाज ।

चालिसा—वि० [हि० चालीस] २० 'चालीस' ।

बासी^१—वि० [हि० बास] १. बालिया। बूत। बालबाध। २. मंचल। नवसद। सरिर। उ०—जन्म को बासी एरी जन्मसुत है क्यासी बाजु काली की फनाली है नचल बनमाली है।—पद्माकर प्र०, पृ० २३१।

बासी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० बास] १. बास। रस्म रिवाज। २. चलने का तरीका। बाल।

बासी^३—संज्ञा पुं० [हि० चलना] व्यक्तियों का वह दल जो अपने दल से हटा दिया गया हो।

बासीस^१—वि० [सं० चत्वारिंशत्, प्रा० चत्तालीस, बालीस] जो गिनती में बीस और बीस हो। तीस से इस अधिक। जैसे,—बालीस दिन।

बासीस^२—संज्ञा पुं० बीस और बीस की संख्या। बीस और बीस का अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—४०।

बासीसवाँ^१—वि० [हि० बालीस] जिसका स्थान उनतालीसवें के आगे हो। जिसके पीछे उनतालीस और हों। जो क्रम में उनतालीस वस्तुओं के आगे पड़ता हो। जैसे, बालीसवाँ प्रकरण।

बासीसवाँ^२—संज्ञा पुं० [हि० बालीस] मुसलमानों में श्रुतक कर्म करने में बालीसवें दिन का कृत्य। बहुलुप।

बासीससरा^१—वि० [हि० बालीस + सरा] १. विबुद्ध। शुद्ध (धी)। २. प्रज्ञ। मूर्ख (व्यक्ति)।

बासीसा—संज्ञा पुं० [हि० बालीस] [स्त्री० बालीसी] १. बालीस वस्तुओं का समूह। जैसे, बालीसा बूरन (जिसमें बालीस चीजें पड़ती हैं)। २. बालीस दिन का समय। बिल्ला। ३. बालीस वर्ष का समय।

क्रि० प्र०—लगना = (१) बालीस वर्ष का होना। (२) पढ़ने आदि के लिये चरमे की आवश्यकता पड़ना।

४. बालीस पक्षों का अर्थ वा काव्य। जैसे, हनुमानबालीसा। ५. इ० 'बालीसवाँ'।

बालुक्य—संज्ञा [सं०] सं० दक्षिण का एक अत्यंत प्रबल और प्रतापी राजवंश जिसने शक संवत् ४११ से लेकर ईसा की १२वीं शताब्दी तक राज्य किया।

विशेष—विल्हण के विक्रमांकचरित में लिखा है कि बालुक्य वंश का आदिपुरुष ब्रह्मा के चुलुक (चुल्लू) से उत्पन्न हुआ था। पर बालुक्य नाम का यह कारण केवल कविकल्पित ही है। कई तात्पर्यों में लिखा पाया गया है कि बालुक्य चंद्रवंशी थे और पहले अयोध्या में राज्य करते थे। विजयादित्य नाम के एक राजा ने दक्षिण पर बढ़ाई की और वह वहीं त्रिलोचन पल्लव के हाथ से मारा गया। उसकी गर्भवती रानी ने अपने कुलपुरोहित विष्णुमट्ट सोमयाजी के साथ मुडिबेमु नामक स्थान में आश्रय ग्रहण किया। वहीं उसे विष्णुवर्धन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने गंग और कावेर राजाओं को परास्त करके दक्षिण में अपना राज्य जमाया। विष्णुवर्धन का पुत्र पुलिकेशी (प्रथम) हुआ जिसने पल्लवों से वातापी नगरी (आजकल की बामापी) को जीतकर उसे अपनी राजधानी

बनाया। पुलिकेशी (प्रथम) शक ४११ में सिंहासन पर बैठा। पुलिकेशी (प्रथम) का पुत्र कीर्तिवर्मा हुआ। कीर्तिवर्मा के पुत्र छोटे थे इससे कीर्तिवर्मा की मृत्यु के उपरांत उसके छोटे भाई मंगलीश गद्दी पर बैठे। पर जब कीर्तिवर्मा का जेठा लड़का सत्याश्रय बड़ा हुआ तब मंगलीश ने राज्य उसके हवाले कर दिया। वह पुलिकेशी द्वितीय के नाम से शक ५३१ में सिंहासन पर बैठा और उसने मालवा, गुजरात, महाराष्ट्र, कोंकण, कांची, आदि को अपने राज्य में मिलाया। यह बड़ा प्रतापी राजा हुआ। समस्त उत्तरीय भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करनेवाले कन्नौज के महाराज हर्षवर्धन तक ने दक्षिण पर बढ़ाई करके इस राजा से हार खाई। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इस राजा का वर्णन किया है। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि फारस के बादशाह खुसरो (दूसरा) से इसका व्यवहार था, तरह तरह की मेंट लेकर दूत आते जाते थे। पुलिकेशी के उपरांत चंद्रादित्य, आदित्यवर्मा, विक्रमादित्य क्रम से राजा हुए। शक ६०१ में विजयादित्य गद्दी पर बैठा। यह भी प्रतापी राजा हुआ और शक ६१८ तक सिंहासन पर रहा। शक ६७८ में इस वंश का प्रताप मंद पड़ गया, बहुत से प्रदेश राज्य से निकल गए। अंत में विक्रमादित्य (चतुर्थ) के पुत्र तैल (द्वितीय) ने फिर राज्य का उद्धार किया और बालुक्य वंश का प्रताप चमकाया। इस राजा ने प्रबल राष्ट्रकूटराज का दमन किया। शक ८११ में महामतापी त्रिभुवनमल्ल विक्रमादित्य (छठा) के नाम से राजासिंहासन पर बैठा और इसने बालुक्य विक्रमवर्ष नाम का संवत् चलाया। इस राजा के समय के अनेक तात्पर्य मिलते हैं। विल्हण कवि ने इसी राजा को लक्ष्य करके विक्रमांकदेवचरित नामक काव्य लिखा है। इस राजा के उपरांत थोड़े दिनों तक तो बालुक्य वंश का प्रताप झलक रहा पर पीछे घटने लगा। शक ११११ तक बीर सोमेश्वर ने किसी प्रकार राज्य बचाया, पर अंत में मैसूर के हयबाल वंश के प्रबल होने पर वह बीरे बीरे हाथ से निकलने लगा। इस वंश की एक शाखा गुजरात में और एक शाखा दक्षिण के पूर्वी प्रांत में भी राज्य करती थी।

वाक्य—वि० [सं०] इ० 'बालनीय' [स्त्री०]।

चाल्ह^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] चेलुवा मछली। उ०—बात कहत भइ देस गुहारी। केवटहि चाल्ह समुंद मई मारी।—जायसी (शब्द०)।

चाल्ह^२—संज्ञा पुं० [देश०] इ० 'चाल्ह'। उ०—तत खन चाल्ह एक देखावा। जनु घौलागिरि परबत आवा।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २२७।

चाल्ह^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] नाव में वह स्थान जो नहरिया के पास ही बांस की फट्टियों से पटा रहता है और जहाँ खेनेवाले मल्लाह बैठते हैं।

चाँचाँ—संज्ञा पुं० [अनुध्व०] इ० 'चाँचे चाँचे'।

चाब^१—संज्ञा पुं० [हि० बाहु] १. प्रबल दृष्टि। अभिलाषा। लालसा। शरमान। उ०—(क) चिनकेतु पुष्पीपतिराव। सुतहित जयो

ताबु हिय बाब ।—सूर (शब्द०) । (ब) बही दीप वह
वेला, सुनत उठा तस बाब ।—जायसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—उठना ।—करना ।—होना ।

मुहा०—बाब निकालना = तालसा पूरी करना ।

२. प्रेम । अनुराग । बाह । उ०—ज्यों ज्यों बबल बसै बहूँ और
भरे चित बाब पे त्यों ही त्यों बोले—(शब्द०) । १. बोक ।
उत्कंठा । उ०—चोप घटी कि मिटी चित बाब, कि बालस
नीद, कि बेपरवाही ।—(शब्द०) । ४. जाड़ प्यार । दुलार ।
नखरा ।

यौ०—बाबचोचला = नाजनसरा । बाबभाव = प्रेमभाव ।

५. उमंग । उत्साह । आनंद । उ०—यहि विधि जासु प्रभाव, श्री
बसरय महिपाल मरिण । और सबे चित बाब, सुत बिनु तपित
रहत हिय ।—रघुराज (शब्द०) ।

बाब^२—संज्ञा पुं० [सं० बब] एक प्रकार का बाँस । वि० दे० 'बाब' ।

बाबड़ा—संज्ञा पुं० [बाबण] बाबण । खत्रियों का एक वर्ग ।

बाबड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] पथिकों के उतरने का स्थान । बट्टी ।
पड़ाव । जैसे, बाबड़ी बाजार ।

बाबण—संज्ञा पुं० [देश०] गुजरात का एक प्रसिद्ध और प्राचीन राज-
पूत वंश जिसने कई शताब्दियों तक गुजरात में राज्य किया ।
इस वंश की राजधानी अनहलवाड़ा थी ।

विशेष—जिस समय महमूद गजनवी ने सोमनाथ पर आक्रमण
किया था उस समय सोमनाथ बाबण राजा के अधिकार में
था । इस वंश की उत्पत्ति का ठीक पता नहीं है । कोई कोई
बाबड़ों को विदेश से आया बतलाते हैं पर अधिकांश लोग इन्हें
विस्तृत प्रमार वंश की शाखा मानते हैं । इनके सबसे प्राचीन
पूर्वज का नाम बछराज मिलता है । बछराज दीव या दीउ
नामक स्थान में राज्य करते थे । बछराज के पुत्र वेणीराज
के समय जब दीउ टापू का अधिकांश समुद्रमग्न हो गया तब
उनकी रानी वहाँ से चंद्र नामक स्थान में भागी जहाँ उसके
गर्भ से बनराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । यह पुत्र बड़ा प्रतापी
हुआ और जाकुओं का बड़ा भारी हल हकठठा करके इधर
उधर लूट मार करने लगा । अंत में अनहल नामक चरबाहे ने
पट्टन नगर के खंडहरों में प्रमारों का बहुत सा संचित धन
उसे दिखा दिया । इसी धन के बल से उसने उसी स्थान पर
संवत् ८०२ में अनहलवाड़ा नामक नगर बसाया ।

बाबरा—संज्ञा पुं० [हि० बाबल] दे० 'बाबल' ।

बाबरि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० बाबल] बाबल । उ०—रतन मिले
तिल बावरि कीनी । भरि भरि गोद सबनि को दीनी ।—
नंद० प्र०, पृ० २४१ ।

बाबल—संज्ञा पुं० [सं० तपुल अथवा सुहारी] १. एक प्रसिद्ध अन्न ।
धान के बीज की गुठली । तंडुल ।

मुहा०—बाबल बबबाना = जिन जिन पर किसी वस्तु के बुराने
का संदेह हो उन्हें बारबारी रुपया भर बाबल यह कहकर
बबबाना कि जो खोर होगा उसके मुँह से धूकने पर खून
निकलेगा । यह वास्तव में एक प्रकार की धमकी है जिससे
डरकर कभी कभी खोर बीजे फेंक देते हैं ।

२. रीखा बाबल । जात । ३. छोटे छोटे बीज के दाने जो किसी
प्रकार खाने के काम में आते हैं । जैसे, लटवीरा के बाबल,
जवाहर के बाबल, इत्यादि । ४. एक रसी का आठवाँ भाग
या उसके बराबर की तील ।

मुहा०—बाबल भर = रसी के आठवें भाग के बराबर ।

बाबा^१—वि० [हि० बाहना] प्रसिद्ध । उ०—मेख महाबल
मारिबी बीके एकलु चोट । जवन अमायो आंखता जो बाबी
नवकोट ।—रा० क०, पृ० २६३ ।

बाशानी—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. चीनी, मिली या गुड़ का रस जो
धाँच पर बड़ाकर गाढ़ा और मधु के समान लसीला किया
गया हो । बीरा ।

मुहा०—बाशानी में पागना = मीठा करने के लिये बाशानी में
हुआना ।

२. किसी वस्तु में थोड़े से मीठे धाँच की मिलावट । जैसे,—तमाकू
में खमीरे की बाशानी ।

क्रि० प्र०—देना ।

३. बसका । मजा । जैसे,—अब उसे इसकी बाशानी मिल गई
है । ४. नमूने का सोना जो सुनार को गहने बनाने के लिये
सोना देनेवाला ग्राहक अपने पास रखता है और जिससे वह
बने हुए गहने के सोने का मिलावट करता है ।

विशेष—अब किसी सोनार को बहुत सा सोना जेवर बनाने के
लिये दिया जाता है तब बनानेवाला उसमें का थोड़ा सा
(लगभग १ भागा) सोना निकालकर अपने पास रख लेता
है और जब सोनार जेवर बनाकर लाता है तब वह उस जेवर
के सोने को कसौटी पर कसकर अपने पास के नमूने से मिलाता
है । यदि जेवर का सोना नमूने से न मिला तो समझा जाता
है कि सुनार ने सोना बदल लिया या उसमें कुछ मिला दिया ।

बाशानीगिर—संज्ञा पुं० [क्रा०] बादशाहों या नवाबों का वह कर्मचारी
जो भोज्य पदार्थ का निरीक्षण बखरकर करता था ।

बाब^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीलकंठ पक्षी । उ०—बारा बाबु बाब
दिसि लेई । मनहु सकल मंगल कहि देई ।—मानस, ११०३ ।
२. बाहा पक्षी ।

बाब^२—संज्ञा पुं० [सं० √बल्] भाँस । नेत्र । उ०—अचरज
देखि बाब लागै न निमेष कहूँ ।—प्रिया (शब्द०) ।

बास^१—संज्ञा स्त्री० [देश० बासा] १. जोत । बाह । २. दे० 'बस' ।

बास^२—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] किसी बीज की जाँच के लिये उसमें से
निकाला हुआ भाग । बाशानी । उ०—बसकी बास लगायके,
खूब रंगी भकमोरा ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ८३

बासना—क्रि० प्र० [हि० बास] जोतना ।

बासनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० बाशनी] दे० 'बाशनी' ।

बासा—संज्ञा पुं० [देश०] १. उड़ीसा की एक जाति जो किसानों पर
निर्वाह करती है । २. हलवाहा । हल जोतनेवाला । ३.
किसान । बेतिहर ।

बासू^१—वि० [हि०] दे० 'बुस्त' । उ०—बहि सुंदरि बहरणा, बासू

कुछ स बवार । मनुहरि कटि तर नेकला, पय कीकर
अनुकार ।—टीका०, पृ० ४८१ ।

बाह^१—संज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा (आशंस विपर्यय) बाह हि० बाहि ।
अथवा सं० वरसाह, प्रा० उच्छाह अथवा सं० $\sqrt{\text{बल}} > \text{बाह}$,
बाह] १. इच्छा । अभिलाषा । २. प्रेम । अनुराग । प्रीति ।
३. पूछ । आदर । कदर । जैसे,—अच्छे आदमी की सब जगह
बाह है । उ०—जाकी यहाँ बाहना है ताकी वहाँ बाहना है,
जाकी यहाँ बाह ना है ताकी वहाँ बाह ना ।—पोद्दार अभि०
प्र०, पृ० ५७२ । ४. मीग । जरूरत । आवश्यकता ।

बाह^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. खबर । समाचार । २. गुप्त भेद ।
मर्म । उ०—(क) राव रंक जेह लग सब जाती । सब की
बाह लेति दिन राती ।—जायसी (शब्द०) । (ख) पुर घर
घर आनंद महा मुनि बाह सोहाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

बाह^३—संज्ञा स्त्री० [हि० बाय] दे० 'बाय' ।

बाह^४—संज्ञा स्त्री० [हि० बाव] दे० 'बाव' ।

बाह^५—संज्ञा पुं० [फ्रा०] कुर्सी ।

बाहकन—कुर्सी खोदनेवाला ।

बाहक—संज्ञा स्त्री० [हि० बाहना] १. बाहनेवाला । कामना
करनेवाला । उ०—जस बाहक गहक गहक ही । ह० रासी,
पृ० ४६ । २. प्रेम करनेवाला ।

बाहस—संज्ञा स्त्री० [हि० बाह + त (प्रत्य०)] बाह । प्रेम ।

बाहस^२—वि० इच्छित । उ०—पदमावति बाहस ऋतु पाई ।—जायसी
प्र० (गुप्त), पृ० १४६ ।

बाहना^१—क्रि० सं० [हि० बाह] १. इच्छा करना । अभिलाषा
करना । २. प्रेम करना । स्नेह करना । प्यार करना । ३.
लेने या पाने की इच्छा प्रकट करना । मीगना । जैसे,—
हम तुमसे कपया पैसा कुछ नहीं बाहते । ४. प्रयत्न करना ।
जोर करना । कोशिश करना । जैसे,—उसने बहुत बाहा
कि हाथ छुड़ाकर निकल जाय पर एक न चली । ५. बाह से
देखना । ताकना । निहारना । उ०—पुनि रूपवंत बखानी
काहा । आवत जगत सबै मुख बाहा ।—जायसी (शब्द०) ।
६. ठूँढ़ना । खोजना । तलाश करना ।

बाहना^२—संज्ञा स्त्री० [हि० बाहना] बाह । जरूरत । उ०—गाल
कवि वे ही परसिद्ध सिद्ध जो हैं जग, वे ही परसिद्ध ताकी यहाँ
है सराहना । जाकी यहाँ बाहना है ताकी वहाँ बाहना है,
जाकी यहाँ बाह ना है ताकी वहाँ बाह ना ।—गाल (शब्द०) ।

बाहना^३—संज्ञा पुं० [हि० बाहना] दे० 'बाहना' ।

बाहना^४—वि० [हि० बाह + त (प्रत्य०)] बाह से युक्त । बाहने-
वाला । उ०—बरति बाह उप्पर उत्तंड अन्वित मुत्ताहल । ससि
उप्पर ससि किरनि, धीर सुखे गुन बाहल ।—पृ० रा०,
१६ । १५१ ।

बाहा^१—संज्ञा पुं० [बाध] जल के निकट रहनेवाला बगले की तरह
का एक पक्षी जिसका सारा शरीर गुलबार और पीठ सुनहरी
होती है । उ०—उड़ आबानी, हिरहरी, बया, बाहा कुगते
कदम, कुनि, तुन ।—ग्राम्या०, पृ० ३८ ।

• विशेष—यह जल अथवा कीचड़ के कीड़े मकोड़े खाता है । इसका
लोग मांस के लिये बिकार करते हैं । वह पक्षी कई प्रकार
का होता है ।

बाह^२—संज्ञा स्त्री० [सं०, हि० बाह] खबर । उ०—को सिंहल
पहुँचावे बाहा ।—जायसी० प्र०, पृ० १५६ ।

बाह^३—संज्ञा स्त्री० [सं०, हि० बाह] खबर । उ०—को सिंहल
पहुँचावे बाहा ।—जायसी० प्र०, पृ० १५६ ।

बाहि^१—अव्य० [सं० लैव (= झोर जी), बंग० बेये, बाहते] प्रपेक्षाकृत
(अधिक) । बनिस्बत । से (बढ़कर) । उ०—(क) ससि
चौदस जो दई संवारा । ताह बाहि रूप उजियारा ।—जायसी
(शब्द०) । (ख) मेरुहि बाहि अधिक वे कारे । मयो असूक्त
देखि अंधियारे ।—जायसी (शब्द०) । (ग) जीव बाहि सो
अधिक पियारी । मगी जीउ देउ बनिहारी ।—जायसी
(शब्द०) । (घ) कुलिसह बाहि कठोर प्रति कोमल कुसुमहि
बाहि ।—तुलसी (शब्द०) ।

बाहि^२—संज्ञा स्त्री० [हि० बाह] दे० 'बाह' । उ०—सुत को
सुनो पुरान यों, लोगनि कह्यो निहोरि । बाहि बाहि कुत नाह
मुख मुसिक्यानी मुख मोरि ।—मति० प्र०, पृ० ४४४ ।

बाहि^३—अव्य० [हि० बाहिए] दे० 'बाहिए' । उ०—पुरुषहि
बाहिम ऊँच हिम्राऊ । दिन दिन ऊँचे राखे पाऊ ।—जायसी
प्र० (गुप्त), पृ० २३० ।

बाहिए—अव्य० [हि० बाहना] उचित है । उपयुक्त है । मुनासिब
है । जैसे,—लड़कों को बाहिए कि अपने माँ बाप का कहना
मानें ।

विशेष—यह शब्द 'विधि' सूचित करने के लिये संयो० क्रि० की
अति क्रियाओं में भी लगता है; जैसे, करना बाहिए, आना
बाहिए, तुम्हें कभी ऐसा नहीं करना बाहिए, इत्यादि ।

बाही^१—वि० स्त्री० [हि० बाह] बाही हुई । जो बाही जाय ।
चहेती । प्यारी ।

बाही^२—वि० [फ्रा० चाह (= कुँवाँ)] (वह भूमि) जो कुँवे से
सींची जाय ।

बाही^३—अव्य० [हि० बाहि] दे० 'बाहि' । उ०—अरि बस
देउ जिभावत जाही । मरनु नौक तेहि जीवन बाही ।—
मानस, २ । २१ ।

बाहु^१—अव्य० [हि० बाहिए] दे० 'बाहिए' । उ०—कैधो बोल
देखए देहे जनु काहु । कैधो बोल भोझा धानि बाहु ।—
विद्यापति, पृ० ३६६ ।

बाहुवान^१—संज्ञा पुं० [हि० बाहवान] दे० 'बाहुवान' । उ०—श्रीकंठ
भट्ट गय अरि सुधान । बीसलदे भेटयो बाहुवान ।—पृ० रा०,
१ । ४४२ ।

बाहे—अव्य० [हि० बाहना] १. जी चाहे । इच्छा हो । मन में
चाहे । जैसे,—(क) तुम जहाँ चाहे वहाँ जाओ, मुझसे
मतलब । (ख) इनमें से चाहे जिसको लो । २. यदि
जी चाहे तो । जैसा जी चाहे । या तो । उ०—बाहे
वह लो चाहे यह । ३. होना चाहता हो । होने-

बाला हो। जैसे,—चाहे जो हो, हम वहाँ अवश्य जायेंगे।
चिकारा—संज्ञा पुं० [हि० चिकारा] दे० 'चिकारा'।

चिगट—संज्ञा पुं० [सं० चिङ्गट] [ली० घट्टा चिगटी] एक प्रकार की मछली। भिगवा। भिगा।

चिशेष—यह मछली केकड़े की जाति के अंतर्गत है। दे० 'भिगा'।

चिगाड़—संज्ञा पुं० [सं० चिङ्गाड़] झींगा मछली (को०)।

चिगाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० चिङ्गाड़ा] झींगा मछली।

चिगना—संज्ञा पुं० [देश०] १. किसी पक्षी, विशेषतः मुर्गी का छोटा बच्चा। २. किसी जानवर का बच्चा। ३. बच्चा। छोटा बालक।

चिगारो—संज्ञा ली० [हि० चिनगारो] दे० 'चिनगारो'।

चिघाड़—संज्ञा ली० [सं० चीरकार धयवा घनु०] १. चीख मारने का शब्द। चिल्लाहट। २. किसी जंतु का घोर शब्द। ३. हाथी की बोली। चिघाड़।

चि० प्र०—मारना।

चिघाड़ना—चि० घ० [सं० चीरकार] १. चीखना। चिल्लाना। २. हाथी का चिल्लाना। ३. गरजना।

चिचन्न(पु)—संज्ञा ली० [सं० चिञ्चिनी] इमली का पेड़। उ०—कहूँ बाहिनी नूब चिचन्न चपी। मनो लाल मानिक पीरोज चपी।—पृ० रा०, २। ४७०।

चिचा—संज्ञा ली० [सं० चिञ्चा] १. इमली। २. इमली का फल या बीज। चिचो। ३. गुंजा (को०)।

चिचाटक—संज्ञा पुं० [सं० चिञ्चाटक] चेंच साग।

चिचाम्ल—संज्ञा पुं० [सं० चिञ्चाश्ल] १. चूका या चूक नाम का साग। २. एक प्रकार का फेनक जो इमली से बनता था (को०)।

चिचिनी—संज्ञा ली० [सं० चिञ्चिनी, या सं० तित्तिङ्गी] १. इमली का पेड़। २. इमली का फल। उ०—तेरी महिमा तैं चले चिचिनी-चियाँ रे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४७१।

चिची—संज्ञा ली० [सं० चिञ्ची] गुंजा। घुंघची।

चिचोटक—संज्ञा पुं० [सं० चिञ्चोटक] चेंच साग।

चिजा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० चिरञ्जीवी] [ली० चिजी] लड़का। पुत्र। बेटा। उ०—गिरत गम्भ को है गरम्भ चिजी चिजा हर।—सूषण (शब्द०)।

चिजी(पु)†—संज्ञा ली० [हि० चिजा] लड़की। कन्या।

चिङ—संज्ञा पुं० [सं० चिण्डी] नृत्य का एक भेद। नाच का एक भेद। नाच का एक ढंग। उ०—उलथा टेंकी घालम सहिड। पद पलटि हरमयो निशंक चिङ।—केशव (शब्द०)।

चिगुला—संज्ञा पुं० [हि० चिगुला] दे० 'चिगुला'।

चिचिका—संज्ञा ली० [सं० चिञ्चिका] गुंजा। घुंघची (को०)।

चिचिङ—संज्ञा पुं० [सं० चिञ्चिङ] परवल (को०)।

चित(पु)—संज्ञा ली० [सं० चित्ता] चितना। चित्ता। ध्यान। याद।

सोच। चिक्क। उ०—सो करिष चचारी चित हमारी जागिष भगति न पूजा।—मानस, १। १८६।

चितक^१—वि० [सं० चित्तक] १. चितन करनेवाला। ध्यान रखने-वाला। उ०—(क) जे रघुबीर चरन चितक तिन्हकी गति प्रकट सिखाई। अविरल भमल भ्रमप भगति छद् तुलसिदास सब पाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६४। (ख) सिय पद चितक जे जग माहीं। साधु सिद्धि पार्वाह सक नाहीं।—रामायणभेष (शब्द०)। २. सोचनेवाला। विचार करनेवाला। ध्यान करनेवाला।

चौ०—शुभचितक। हितचितक = सेरहाह।

चिशेष—इस शब्द का प्रयोग समास में अधिक होता है।

चितक^२—संज्ञा पुं० मनन या चितन करनेवाला व्यक्ति। दार्शनिक। विचारक।

चितन—संज्ञा पुं० [सं० चिन्तन] [वि० चितनीय, चितित, चिथ] ध्यान। बार बार स्मरण। किसी बात को बार बार मन में लाने की क्रिया। उ०—कीरघुबीर चरन चितन सजि नाहीं ठौर कहै।—तुलसी (शब्द०)।

२. विचार। विवेचन। गौर।

चौ०—चितनशील = विचारक।

चितना(पु)^१—चि० सं० [सं० चिन्तन] १. चितन करना। ध्यान करना। स्मरण करना। उ०—सनक शंकर ध्यान व्यावस निगम धवरन वरन। शेष शारद ऋषि सुनारव संत चितन चरन।—सूर (शब्द०)। २. सोचना। समझना। गौर करना। विचारना।

चितना^२—संज्ञा ली० [सं० चिन्तना] १. ध्यान। स्मरण। भावना। २. चित्ता। सोच। ३. गंभीर विचार। मनन। चितन (को०)।

चितनीय—वि० [सं० चिन्तनीय] १. चितन करने योग्य। ध्यान करने योग्य। भावनीय। २. चित्ता करने योग्य। जिसकी चिक्क उचित हो। ३. विचार करने योग्य। सोचने समझने योग्य। विचारणीय।

चितवन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० चिन्तन] दे० 'चितन'।

चिता—संज्ञा ली० [सं० चिन्ता] १. ध्यान। भावना। २. वह भावना जो किसी प्राप्त दुःख या दुःख की प्राप्ति का आदि है। सोच। चिक्क। खटका। उ०—चिता ज्वाल शरीर बन, दावा लगि लगि जाय। प्रगट धुर्व नहि देखिए, उर अंतर धुंधुषाय।—गिरधर (शब्द०)।

चि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—चितालगना = चित्ता का बराबर बना रहना। जैसे,—मुझे दिन रात इसी की चित्ता लगी रहती है। कुछ चित्ता नहीं = कुछ परवाह नहीं। कोई खटके की बात नहीं।

चिशेष—साहित्य में चित्ता कथण रस का अभिव्यक्ति भाव माना जाता है, अतः वियोग की वस वशाओं में से चित्ता दूसरी वशा मानी गई है।

३. मनन। चितन। गंभीर विचार।

चौ०—चित्ताधार = विचार की चित्ता।

चिन्ताकुल—वि० [सं० चिन्ताकुल] चिन्ता से व्युत्पन्न ।

चिन्तापर—वि० [सं० चिन्तापर] चिन्तामग्न । चिन्तन में रत । उ०—
हैं झूँक रहे नीरव नभ पर, अनिमेष, अटल, कुछ चिन्तापर ।
—पल्लव, पृ० ८ ।

चिन्तातुर—वि० [सं० चिन्तातुर] चिन्ता से बबरारा हुआ ।

चिन्तामग्न—वि० [सं० चिन्तामग्न] गहरे विचार में लीन (धी०) ।

चिन्तामणि—संज्ञा पु० [सं० चिन्तामणि] १. कल्पित रत्न जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि उससे जो अभिलाषा की जाय वह पूर्ण कर देता है । उ०—रामचरित चिन्तामणि चाक । संत सुमत तिय सुभग सिगाक ।—तुलसी (शब्द०) । २. ब्रह्मा । ३. परमेश्वर । ४. एक बुद्ध का नाम । ५. चोड़े के गले की एक शुभ माला । ६. वह चोड़ा जिसके कंठ में उक्त माला हो । ७. स्कन्दपुराण (गणपतिखण्ड) के अनुसार एक गणेश जिन्होंने कपिल के यहाँ जन्म लेकर महाबाहु नामक दैत्य से उस चिन्तामणि का उद्धार किया था जिसे उसने कपिल से छीन लिया था । ८. यात्रा का एक योग । ९. वैद्यक में एक योग जो पारा, गंधक, अभ्रक और जयपाल के योग से बनता है । १०. सरस्वती देवी का मंत्र जिसे लोग बालक की जीम पर बिछा देने के लिये लिखते हैं ।

चिन्तामणि—संज्ञा पु० [सं० चिन्तामणि] दे० 'चिन्तामणि' ।

चिन्तावेध—संज्ञा पु० [सं० चिन्तावेध] सलाह करने का घर या स्थान । मंत्रालयगृह । गोष्ठीगृह ।

चिन्ति—संज्ञा पु० [सं० चिन्ति] १. एक देश । २. इस देश का निवासी ।

चिन्तिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चिन्तिनी] हमली ।

चिन्तित—वि० [सं० चिन्तित] जिसे चिन्ता हो । चिन्तायुक्त । फिक्कमंद ।

चिन्तित—संज्ञा स्त्री० [सं० चिन्तित] 'चिन्ता' (धी०) ।

चिन्तिषा—संज्ञा स्त्री० [सं० चिन्तिषा] दे० चिन्तित (धी०) ।

चिन्त्य—वि० [सं० चिन्त्य] भावनीय । विचारणीय । विचार करने योग्य ।

चिन्दी—संज्ञा स्त्री० [देश०] टुकड़ा ।

मुहा०—चिन्दी चिन्दी करना=किसी वस्तु को ऐसा तोड़ना कि उसके छोटे छोटे टुकड़े हो जायें । चिन्दी की चिन्दी निकालना = अत्यंत सुख भूख निकालना । कुतर्क करना ।

चिन्दी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिन्दी] दे० 'चिन्दी' । उ०—फटी चिन्तियाँ पहने, सूखे भिखारी, फकत जानते हैं तेरी इतजारी ।—हिम० त०, पृ० ४८ ।

चिन्पा—संज्ञा पु० [देश०] एक गहरे काले रंग का कीड़ा जो ज्वार, बाजरे, अरहर और तमाखू को खा डालता है ।

चिन्पाजी—संज्ञा पु० [सं० चिन्पाजी] अफ्रीका का एक वनमानुस जिसकी भावना मनुष्य से बहुत कुछ मिलती जुलती है ।

चिरोष—इसका सिर ऊपर से चिपटा, माथा दबा हुआ, मुँह बहुत चौड़ा, कान बड़े और उभरे हुए, नाक चिपटी तथा

बारीक के बाल काले और मोटे होते हैं । इसके सिर, कंधे और पीठ पर बाल बने और पेट तथा छाती पर कम होते हैं । इसका मुख बिना रोएँ का और रंग गहरा ऊँचा होता है । दोनों ओर के गुलमुखे काले होते हैं । इसका कब भी मनुष्य के बराबर होता है । चिपाजी झुंड में रहते हैं ।

चिँचौं—संज्ञा पु० [सं० चिँचा (= हमली)] हमली का बीज । उ०—तेरी महिमा ते चले चिचिनी चिँचाँ रे ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—चिँचाँ लो=छोटी । बहुत छोटी । जैसे,—चिँचाँ ली माँ ।

चिँचैटा—संज्ञा पु० [हि० चिमटा] एक कीड़ा जो मीठे के पास बहुत जाता है और जिस बीज को चिमटता है उसे जल्दी छोड़ता नहीं । चींटा ।

मुहा०—गुड़ चिँचैटा होना=एक दुसरे से गुँथ जाना । चिमट जाना । गुलमगुल्य होना । चिँचैटे के पर निकलना=ऐसा काम करना जिससे मृत्यु हो । मरने पर होना ।

चिँचैटो को जब पर निकलते हैं तब वे हवा में उड़ते हैं और गिर पड़कर मर जाते हैं ।

चिँचैटिया रँगान—संज्ञा स्त्री० [हि० चिँचैटा + रँगना] १. बहुत धीमी चाल । बहुत सुस्त चाल । अत्यंत मंद गमन । होले होले चलना । २. सिर के बालों की बड़ी बारीक कटाई जिसमें चिँचैटी रँगती हुई देख पड़े । (नाई) ।

चिँचैटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिमटना] एक बहुत छोटा कीड़ा जो मीठे के पास बहुत जाता है और अपने मुँह से काटता और चिमटता है । चींटी । पिपीलिका ।

विशेष—चिँचैटियों के मुँह के दोनों किनारों पर दो निकली हुई नोकें होती हैं, जिनसे वे काटती या चिमटती हैं । इनकी जीभ एक नली के रूप में होती है जिससे वे रसीली चीजें चूसती हैं । चिँचैटी की अनेक जातियाँ होती हैं । मधुमक्खियों के समान चींटियों में भी नर, मादा के प्रतिरिक्त स्त्रीत्व होते हैं जो केवल कार्य करते हैं, संतानोत्पत्ति नहीं करते । चिँचैटियाँ झुंड में रहती हैं । इनके झुंड में व्यवस्था और नियम का अद्भुत पालन होता है । समुदाय के लिये भोजन संग्रहित करके रखना, स्थान को रक्षित बनाना आदि कार्य बड़ी तत्परता के साथ किए जाते हैं । इनका भ्रम और अभ्यवसाय प्रसिद्ध है ।

मुहा०—चिँचैटी की चाल=बहुत सुस्त चाल । मंद गति ।

चिँगना—संज्ञा पु० [देश०] बच्चा । उ०—अपने सुत के मूँड़न करावे छूरा लगन न पावे । अजया के चिँगना घर भारे तनिको दया न आवे ।—कबीर श०, भाग० २, पृ० ४१ ।

चिँगुरना—वि० भ० [अनुकरणमूलक देश० अथवा हि० चंग] १. बहुत देर तक एक स्थिति में रहने के कारण किसी अंग का जल्दी न फैलना । नसों का इस प्रकार संकुचित होना कि हाथ पैर जल्दी फैलाते न बने । २. सिक्कना । पूरे फैलाव में बंध पड़ने से कमी आना । जैसे,—कपड़े, काबज आदि का चिगुरना ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

चिँगुरा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का बगुला ।

चिँगुरा—संज्ञा पु० [हि० चिँगुरना] बहुत देर तक एक स्थिति

में रहने के कारण किसी धंग का ऐसा संकोच कि वह फैलाने से बन्दी न फैले ।

क्रि० प्र०—चरना । —पकड़ना । —लगना ।

चिँगुला—संज्ञा पु० [देश०] १. बच्चा । बालक । २. किसी पक्षी का छोटा बच्चा ।

चिँहार^१—संज्ञा पु० [हि० चिन्हार] दे० 'चिन्हार' । उ०—
भी चिहार प्रीतम को लीवै । जो सिसवै सो कारण कीवै ।—
इंद्रा०, पृ० ५१ ।

चिउड़ा—संज्ञा पु० [सं० चिबिट, प्रा० चिबिड़] एक प्रकार का चर्वण जो हरे, भिगोए या उबाले हुए धान को कूटने से बनता है । चिड़वा । चूरा ।

चिउरा^१—संज्ञा पु० [हि० चिउड़ा] दे० 'चिउड़ा' । उ०—दधि चिउरा उपहार अपारा । भरि भरि कावरि चले कहारा ।—
मानस, १।३०५ ।

चिउरा^२—संज्ञा पु० [हि० चावल, चाउर] दे० 'चावल' । उ०—
चिउरा निधि दई सुदामहि जद्यपि बाल मिलाई ।—तुलसी
(शब्द०) । २. चिउली ।

चिउली^१—संज्ञा पु० [देश०] १. महुए की जाति का एक जंगली पेड़ जो हिमालय के आसपास सूटान तक होता है ।

चिउष—इसका पतझड़ होता है । इसमें से एक प्रकार का तेल निकलता है जो मक्खन की तरह जम जाता है । इस तेल के जमे हुए कतरों को चिउरा या चिउली का पानी या फुलवा भी कहते हैं । नेपाल आदि में इसे भी में मिलाते हैं ।

२. एक प्रकार का रंगीन देशी कपड़ा ।

पर्या०—चिउरा । फुलबारा । चार चूरी ।

चिउली^२—संज्ञा स्त्री० [सं० चिपिट, प्रा० चिबिड, चिबिल] चिकनी सुपारी ।

चिक—संज्ञा स्त्री० [तु० चिक] १. बाँस या सरकंडे की तीलियों का बना हुआ झंझरीदार परदा । चिलमन । २. पशुओं को मारकर उनका मांस बेचनेवाला । दूधर । बकर कसाई (दूधरों की दुकान पर चिक टेंगी रहती है इसी से यह शब्द बना है) । उ०—जाट जुलाह जुरे धरजी मरजी पैं चड़े चिक चोर चमारे ।—(शब्द०) ।

चिक^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] कमर का वह दंड जो एकबारगी अधिक बल पड़ने के कारण होता है । चमक । चिलक । झटका । लचक ।

चिक^३—संज्ञा स्त्री० [सं० चिक] किसी बंक या महाजन के नाम वह कागज जिसमें अपने खाते से रुपया देने का आदेश रहता है । हुंडी ।

चिकट^१—वि० [सं० चिकित्स चिकण (भेद नि०)] १. चिकना और मेल से गंदा । जिस पर मेल जमा हो । मैला कुचैला । २. लसीला । चिपचिपा ।

चिकट^२—संज्ञा पु० [देश०] १. एक प्रकार का रेखमी या टसर का कपड़ा । २. वे कपड़े जिन्हें आई अपनी बहिन को उस समय देता है जब बहिन की संतान का विवाह होता है ।

चिकटना—क्रि० घ० [हि० चिकट वा चिककड से नामिक धातु] जमी हुई मेल के कारण चिपचिपा होना ।

चिकटा—वि० [हि० चिकट] दे० 'चिकट' । उ०—गुरु गुरु अंतर जानी आई । गुरु चिकटा गुरु चोख जनाई । —तुलसी सा०, पृ० ३११ ।

चिकड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पेड़ जो हिमालय पर ८,००० फुट की ऊँचाई तक मिलता है ।

चिरोष—इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और पीलापन लिए होती है । अमृतसर में इसकी कंधियाँ बहुत अच्छी बनती हैं । कठीत आदि बनाने के काम में भी यह लकड़ी आती है । इसके पत्तों की जाय बनती है । फूलों में भीठी सुगंध होती है ।

चिकन^१—वि० [सं० चिकन] दे० 'चिकना' ।

यौ०—चिकनसुहाँ=(१) असमूह बननेवाला । चिकनी चुपड़ी बात करनेवाला । (२) अच्छी सुरतवाला ।

चिकन^२—संज्ञा पु० [क्रा०] एक प्रकार का महीन सूती कपड़ा जिसपर उमड़े हुए बेल या बूटे बने रहते हैं । कसीदा काढ़ा हुआ कपड़ा । सूजनकारी का कपड़ा ।

यौ०—चिकनकारी । चिकनगर ।

चिकनई—संज्ञा स्त्री० [हि० चिकनई] दे० 'चिकनाई' । उ०—पत बचाती है उसी की चिकनई । गाल का तिल क्यों न हो बेतेल ही । —चोखे०, पृ० ७२ ।

चिकनकारी—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] चिकन बनाने का काम ।

चिकनगर, चिकनदोज—संज्ञा पु० [फा० चिकनगर, चिकनदोज] चिकन काढ़नेवाला । चिकन का काम करनेवाला ।

चिकना—वि० [सं० चिकण] [वि० स्त्री० चिकनी] १. जो छूने में कुरबरा न हो । जो ऊबड़ खाबड़ न हो । जिसपर उँवली फेरने से कहीं उमाड़ आदि न मानूम हो । जो साफ और बराबर हो । जैसे,—चिकनी चौकी, चिकनी मेज । २. जिसपर सरकने में कुछ रुकावट न जान पड़े । जैसे,—यहाँ की मिट्टी बड़ी चिकनी है, पैर फिसल जायगा ।

मुहा०—चिकना देख फिसल पड़ना—केवल सौख्य या वन देखकर रीक जाना । वन या रूप पर लुभा जाना ।

३. जिसमें रुखाई न हो । जिसमें तेल आदि का गीलापन हो । जिसमें तेल लधा हो । स्निग्ध । तेलिया । तलीस ।

मुहा०—चिकना घड़ा=(१) वह जिसपर अच्छी बातों का कुछ असर न पड़े । मोछा । निर्लज्ज । बेहया । (२) जिसके पेट में कोई बात न पड़े । सुद्रु स्वभाव का । चिकने घड़ पर पानी पड़ना = किसी पर अच्छी बात का प्रभाव न पड़ना ।

४. साफ सुचरा । संवारा हुआ । जैसे,—तुम्हारा चिकना मुँह देखकर कोई रुपया नहीं दिए देता ।

मुहा०—चिकना चुपड़ा=बना ठना । छेल चिकनियाँ । संवार सिंगार किए हुए । चिकनी चुपड़ी=दे० 'चिकनी चुपड़ी बातें' । चिकनी चुपड़ी बातें=मीठी बातें जो किसी को प्रसन्न करने, बहकाने या थोछा देने के लिये कही जायें । बनाबटी स्नेह से भरी बातें । कृत्रिम मधुर भाषण । जैसे,—उनकी चिकनी चुपड़ी बातों में मत माना । चिकना सुँह=सुँह और संवारी हुआ चेहरा । चिकने सुँह का ठग=ऐसा धूर्त जो देखने में धीर

बातचीत से मलामानुष जान पड़ता हो। चिक। ५. चिकनी चुपड़ी बातें कहनेवाला। केवल दूसरों को प्रसन्न करने के लिये भीठी बातें कहनेवाला। सप्यो चप्यो करनेवाला। चाटुकार। खुशामची। ६. स्नेही। अनुरागी। प्रेमी। उ०—
ये गर कहे विषय रस, चिकने राम खनेह। तुलसी ते प्रिय
राम को कानन बसहि कि गेह।—तुलसी ग्रं०, पु० १०८।

चिकना^१—संज्ञा पु० तेल, घी, चरबी आदि चिकने पदार्थ। जैसे, इस में चिकना कम देना।

चिकनाई—संज्ञा स्त्री [हि० चिकना + ई (प्रत्य०)] १. चिकना होने का भाव। चिकनापन। चिकनाहट। २. स्निग्धता। सरसता। ३. घी, तेल, चरबी आदि चिकने पदार्थ।

चिकनाना^१—क्रि० स० [हि० चिकना + ना (प्रत्य०)] १. चिकना करना। झुरझुरा न रहने देना। बराबर करके साफ करना। २. क्वा न रहने देना। तैलौस करना। स्निग्ध करना। ३. मल आदि साफ करके निष्कारना। साफ सुधरा करना। सँवारना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

चिकनाना^२—क्रि० प्र० १. चिकना होना। २. स्निग्ध होना। ३. चरबी से युक्त होना। हृष्ट पुष्ट होना। मोटाना। जैसे,—
देखो ये जब से यहाँ रहने लगे हैं, कैसे चिकना आए हैं। ४. स्नेहयुक्त होना। अनुरक्त होना। प्रेमपूर्ण होना। उ०—
नहि मचाइ चितवति उगनु, नहि बोलति मुसकाइ। ज्यों ज्यों कली
खल करति, त्यों त्यों चितु चिकनाइ।—विहारी र०, दो० १६४।

चिकनापन—संज्ञा पु० [हि० चिकना + पन (प्रत्य०)] चिकना होने का भाव। चिकनाई। चिकनाहट।

चिकनारा—वि० [हि० चिकना + आरा (प्रत्य०)] ३० 'चिकना'। उ०—
केस सुदेस चमक चिकनारे कारे अति सटकारे।—
भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पु० ४१७।

चिकनाहट—संज्ञा स्त्री [हि० चिकना + हट (प्रत्य०)] ३० 'चिकनाहट'।

चिकनाहट—संज्ञा स्त्री [हि० चिकना + हट (प्रत्य०)] चिकना होने का भाव। चिककण्टा। चिकनापन।

चिकनियाँ—वि० [हि० चिकन + ण्य (प्रत्य०)] ३० 'चिकनिया'। उ०—
(क) सूरदास प्रभु बाके बस परि अब हरि भए
चिकनियाँ।—सूर (शब्द०)। (ख) या माया रघुनाथ की
बोरी बेचन बसी महेरा हो। चतुर चिकनिया चुनि चुनि मारे
काहु न राखे नेरा हो।—कबीर (शब्द०)।

चिकनिया—वि० [हि० चिकना] छेला। शौकीन। बाँका। बना ठना। उ०—
सबही ब्रज के लोक चिकनिया मेरे आएँ पास।
अब तो इहे बसी री माई नहि मानोगी पास।—सूर
(शब्द०)।

जी०—छैलचि कनियाँ।

चिकनी^१—वि० स्त्री [हि०] ३० 'चिकना'।

चिकनी^२—संज्ञा स्त्री [हि०] ३० 'चिकनी सुपारी'।

चिकनी मिट्टी—संज्ञा स्त्री [हि० चिकनी + मिट्टी] १. कासे रंग की

मखवार मिट्टी जो सिर मलने आदि के काम में आती है।
करंसी मिट्टी। काली मिट्टी।

विशेष—चना, खलसी, जो आदि इस मिट्टी में बहुत अधिक होते हैं।

२. पीले या सफेद रंग की साफ लसीली मिट्टी जो बड़ी नदियों के ऊँचे करारों में होती है और लोपने पोतने के काम में आती है।

चिकनी सुपारी—संज्ञा स्त्री [सं० चिककणी] एक प्रकार की उबाली हुई सुपारी जो चिपटी होती है। चिकनी डली।

विशेष—दक्षिण के कनारा नामक प्रदेश में यह सुपारी उबालकर बनाई जाती है, इसी से इसे दक्खनी सुपारी भी कहते हैं।

चिमरा^१—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। चिकट।

चिकरना—क्रि० प्र० [सं० चीत्कार, प्रा० चीत्कार, चिककार] चीत्कार करना। जोर से चिल्लाना। चिघाड़ना। चीखना।

चिकवा^१—संज्ञा पु० [तु० चिक + हि० वा (प्रत्य०)] बकर कसाव। मांस बेचनेवाला। बूबड़। चिक।

चिकवा^२—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का रेशमी या टसर का कपड़ा। चिकट। उ०—
चिकवा धीर मघोना लोने। मोति
लाग भी छापे सोने।—जायसी (शब्द०)।

चिकार—संज्ञा पु० [सं० चीत्कार, प्रा० चिककार] चीत्कार। चिल्लाहट। चिघाड़। उ०—
परेउ सूनि करि घोर चिकारा।—
तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

चिकारना—क्रि० प्र० [हि० चिकार के नामिक धातु] चीत्कार करना। चिघाड़ना।

चिकारा—संज्ञा पु० [हि० चिकार] [स्त्री० अल्पा० चिकारी] १. सारंगी की तरह का एक बाजा।

विशेष—इस बाजे में जिसमें नीचे की ओर चमड़े से मढ़ा कटोरा रहता है और ऊपर डाँड़ी निकली रहती है। चमड़े के ऊपर से गए हुए तारों या घोड़े के बालों को कमानी से रेतने से शब्द निकलता है।

२. हिरन की जाति का एक जंगली जानवर जो बहुत क्रूरतीला होता है। इसे छिकरा भी कहते हैं।

चिकारी^१—संज्ञा स्त्री [हि० चिकारा] छोटा चिकारा।

चिकारी^२—संज्ञा स्त्री [देश०] मच्छड़ की तरह का एक छोटा कीड़ा।

चिकित—संज्ञा पु० [सं०] एक ऋषि का नाम।

चिकितान—संज्ञा पु० [सं०] एक ऋषि का नाम।

चिकितायन—संज्ञा पु० [सं०] चिकित ऋषि के वंशज।

चिकित्सक—संज्ञा पु० [सं०] रोग दूर करने का उपाय करनेवाला। वैद्य।

चिकित्सन—संज्ञा पु० [सं०] चिकित्स करना [क्रि०]।

चिकित्सा—संज्ञा स्त्री [सं०] [वि० चिकित्सित, चिकित्स्य] १. रोग दूर करने की युक्ति या क्रिया। शरीर स्वस्थ या नीरोय करने का उपाय। रोगघाति का उपाय। रोगप्रतीकार। इलाज।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

चिरोच—आयुर्वेद के दो विभाग हैं, एक तो निदान जिसमें पहचान के लिये रोगों के लक्षण आदि का वर्णन रहता है और दूसरा चिकित्सा जिसमें भिन्न भिन्न रोगों के लिये भिन्न भिन्न औषधों की व्यवस्था रहती है। चिकित्सा तीन प्रकार की मानी गई है—बैवी, आसुरी और मानुषी। जिसमें पारे की प्रधानता हो वह बैवी, जो स्रुह रसों के द्वारा की जाय वह मानुषी और जो अस्त्र प्रयोग या चीर फाड़ के द्वारा हो वह आसुरी कहलाती है।

३. वैद्य का व्यवसाय या काम । वैदगी ।

चिकित्साशास्त्र—संज्ञा पु० [सं०] वह स्थान जहाँ रोगियों के आरोग्य का प्रयत्न किया जाय । शफाखाना । अस्पताल ।

चिकित्सावकाश—संज्ञा पु० [सं०] वह अवकाश जो किसी कर्मचारी को बीमारी के इलाज आदि के लिये चिकित्सक के पत्र के आधार पर दिया जाता है ।

चिकित्साव्यवसाय—संज्ञा पु० [सं०] वैद्य एवं चिकित्सक का व्यवसाय या पेशा ।

चिकित्साशास्त्र—संज्ञा पु० [सं०] वह शास्त्र जिसमें रोग के लक्षण, और उपचार आदि की विवेचना रहती है ।

चिकित्सित^१—वि० [सं०] जिसकी चिकित्सा हो गई हो । जिसकी बचा हुई हो ।

चिकित्सित^२—संज्ञा पु० एक ऋषि का नाम ।

चिकित्स्य—वि० [सं०] जो चिकित्सा के योग्य हो । साध्य ।

चिकिन^१—वि० [सं०] चिपटी नाकवाला [को०] ।

चिकिना^२—संज्ञा पु० [हि० चिकन] दे० 'चिकन' ।

चिकिल—संज्ञा पु० [सं०] कीचड़ । पंक ।

चिकीर्षक—वि० [सं०] कार्य करने की इच्छा करनेवाला [को०] ।

चिकीर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० चिकीर्षित, चिकीर्ष्य] करने की इच्छा । जैसे,—नाश-कर्म-चिकीर्षा ।

चिकीर्षित^१—वि० [सं०] करने के लिये इच्छित ।

चिकीर्षित^२—संज्ञा पु० इच्छा । मनोरथ । तात्पर्य ।

चिकुटी^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चिकोटी', 'चुटकी' । उ०—भृकुटी नवाह भाल चिकुटी उचाई कर चिकुटी रचाइ बित बायन चुनति फिर ।—देव (शब्द०) ।

चिकुर^१—संज्ञा पु० [सं०] १. सिर के बाल । केश । २. पर्वत । ३. साँप आदि रेंगनेवाले जंतु । सरीसृप । ४. एक पेड़ का नाम । ५. एक पक्षी का नाम । ६. एक सर्प का नाम । ७. छद्मंवर । गिलहरी । चिलुरा ।

यौ०—चिकुरकलाप । चिकुरनिकर । चिकुरपल । चिकुरपाश ।

चिकुर भार । चिकुर हस्त=केशों की लट । बालों की सजावट पुरुष ।

चिकुर^२—वि० बंश । वपल ।

चिकुरा—संज्ञा पु० [सं० चिकुर] चिड़िया का बच्चा ।

चिकुर—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'चिकुर' ।

चिकोटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चुटकी', 'चिपटी' ।

क्रि० प्र०—काटना ।

चिकक^१—वि० [सं०] चिपटी नाकवाला ।

चिकक^२—संज्ञा पु० छद्मंवर ।

चिककट^१—संज्ञा पु० [सं० चिककल (मेद नि०) अथवा हि० चिकना+कीट या काट] गंद, तेल आदि की मेल जो कहीं जम गई हो । कीट ।

चिककट^२—वि० जिसपर मेल जमी हो । मिला कुचैला । गंदा ।

चिककण^१—वि० [सं०] चिकना ।

चिककण^२—संज्ञा पु० १. सुपारी का पेड़ या फल । २. हड्डि । हूरें । ३. आयुर्वेद में पाक या अर्च की तीन अवस्थाओं में से एक । कुछ तेज अर्च ।

चिककण^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी ।

चिककणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुपारी । २. हड्डि ।

चिककदेव—संज्ञा पु० [सं०] मैसूर के एक यादववंशी राजा का नाम जिसने ई० सन् १६७२ से लेकर १७०४ तक राज्य किया था ।

चिककना^१—वि० [सं० चिककण] दे० 'चिकना', 'चिककण' ।

चिककरना—क्रि० प्र० [सं० चीत्कार] चीरकार करना । बिघाड़ना । चीखना । जोर से चिल्लाना । उ०—चिककरहि विगज डोल महि महि कोल कूरम कलमले ।—मानस, १ । २६१ ।

चिकस^१—संज्ञा पु० [सं०] १. जी का घाटा । २. हलदी और तेल में मिला हुआ जी का घाटा जो जनेऊ या व्याह में उबटन की तरह मला जाता है ।

चिकस^२—संज्ञा पु० [दे०] लोहे, पीतल आदि के छड़ का बना हुआ वह छड़ा जिसपर बुलबुल, तोते आदि बैठाए जाते हैं ।

चिक^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुपारी । २. बूढ़ा (को०) । ३. हाथी के शरीर का मध्यवर्ती भागविशेष । मातंग (को०) ।

चिक^२—संज्ञा पु० [दे०] अथवा सं० चिकक] १. दे० 'चिकका' । २. डेला । ३. एक खेल ।

चिकार—संज्ञा पु० [सं० चीत्कार] दे० 'चिकार' ।

चिकारना^(१)—क्रि० प्र० [सं० चित्कार, हि० चिकार+ना (प्रत्य०)] बिघाड़ना ।

चिकारा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'चिकारा' ।

चिकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्कार] चिकार । चिकारना । उ०—चटकत गायक मानहुं विजु पतन चिकारी ।—प्रेमचम०, भा० १, पृ० २७ ।

चिकिण—वि० [सं०] दे० 'चिककण' [को०] ।

चिकिकर—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रकार का बूढ़ा जिसके काटने से सूजन और सिर में पीड़ा आदि होती है । २. चिलुरा । गिलहरी ।

चिकिल्ल—संज्ञा पु० [सं०] १. नमी । आर्द्रता । २. चंद्रमा [को०] ।

चिकर^१—संज्ञा पु० [दे०] चने का छिलका । चने की सूसी । चने की कराई ।

चिकल्ल—संज्ञा पु० [सं०] १. कीचड़ । २. दलदल [को०] ।

चिलुर—संज्ञा पु० [सं० चिकर, हि० चिलुरा] [स्त्री० चिलुरी] चिलुरा । गिलहरी । उ०—कीचस आगे चिलुर बिगानी भालु गई है मत्ता ।—संत०, दरिया, पृ० १२७ ।

चिक्कुरन—संज्ञा स्त्री० [देश० अथवा हि०] 'चुरचन' का बहुत विप-
र्यय । वह पास जो खेत को गिराकर निकाली जाती है ।

चिक्कुरना—क्रि० सं० [देश०] खोले हुए खेत में से खाद निकालकर
बाहर करना ।

चिक्कुरा—संज्ञा पुं० [सं० चिकिर या चिकुर] [स्त्री० चिकुरी]
गिलहरी ।

चिक्कुराई—संज्ञा स्त्री० [हि० चिक्कुरना] १. चिक्कुरने का काम या
भाव । २. चिक्कुरने की मजदूरी ।

चिक्कुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिक्कुरा] गिलहरी ।

चिक्कुरीनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिक्कुरा] १. चीखने या बसने की
क्रिया । स्वाद लेने या देखने की क्रिया । २. बसने की वस्तु ।
स्वाद लेने की वस्तु । चटपटे स्वाद की बोड़ी सी वस्तु ।

चिक्कुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० चिकित्सा, प्रा० चिकित्सा] चिकित्सा ।
दवा । रोगप्रतीकार । इलाज । उ०—गज चिक्कुर इच्छा जानंत
सम्ब । नाटिक निवास सम सेस कम्ब ।—पु० रा०, १।६ ।

चिक्कुरा—संज्ञा स्त्री० [हि० चिक्कुरा + गुण] चिकित्सा की विद्या ।
उ०—मुनिवर तब तहँ भाय के गज चिक्कुरा गुण कीन । पु०
रा० २७।७ ।

चिक्कुरा—संज्ञा पुं० [पु० चगला] चगताई बंध का मुसलमान । उ०—
चिक्कुरा उखेल पकरे चरित, एक्के मेल अमेल उख ।—रा० २०,
पु० १६ ।

चिक्कुरा—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'चिनगी' । उ०—बंद सूर दोह माठी
कीन्हीं, सुषमनि चिक्कुरा सागी रे ।—कबीर ग्रं०, पु० ११० ।

चिक्कुरा, चिक्कुरा—क्रि० सं० [देश०] दे० 'चिनना' । उ०—दोह
पुड़ जोड़ि चिक्कुरा माठी, चुया महारस भारी । काम क्रोध दोह
किया बलीता छूटि गई संसारी ।—कबीर ग्रं०, पु० ११० ।

चिक्कुरा—संज्ञा स्त्री० [हि० चिक] दे० 'चिक' ।

चिक्कुरना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'चिक्कुरना' । उ०—मंदिर में बंदी
हैं कारण, चिक्कुर रहे हैं बन में कारण ।—अर्चना, पु० ५१ ।

चिक्कुरा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चिक्कुरा' ।

चिक्कुरा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चिक्कुरा' ।

चिक्कुरा—क्रि० प्र० [हि० चिक्कुरा + ना (प्रत्य०)] दे०
'चिक्कुरना' ।

चिक्कुरा—संज्ञा स्त्री० [हि० चिक्कुरा] दे० 'चिक्कुरा' । उ०—सुनि रोदन
चिक्कुरा दयावण बड़ी पंडित ।—प्रेमघन, भा० १, पु० २१ ।

चिक्कुरा—वि० [हि० चोकर] मिला । गंदा ।

चिक्कुरा—संज्ञा पुं० [देश०] १. डेढ़, दो हाथ ऊँचा एक पीथा । अपामार्ग ।

चिक्कुरा—इसमें थोड़ी थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं । गाँठों के
दोनों ओर पतली टहनियाँ या पतियाँ लगी होती हैं । पतियाँ
दो छीन अंगुल लंबी, नसदार और गोल होती हैं । फूल और
बीज लंबी लंबी सीकों में गुंछे होते हैं । बीज जोड़े के आकार
के होते हैं और कुछ नुकीले तथा रोएँदार होने के कारण
कपड़ों से कभी कभी लिपट जाते हैं । इस पीथे की जड़ मूसला
होती है । इसकी जड़, पत्ती, आदि सब दवा के काम में आती
है । अविषंभमी का प्रत रहनेवाले इसकी वस्तुपन करते हैं ।
कर्मकांडी इसे बहुत पवित्र मानते हैं । आयरणी उपाकर्म के

गणुस्मान के धनंतर इससे मार्जन करने का विधान है । यह
पीथा बरसात में अन्य घासों के साथ उगता है और बहुत दिनों
तक रहता है ।

पर्या०—अपामार्ग । धोंगा । अंकाभार । लटबीरा ।

२. किलनी या किल्ली नाम का कीड़ा जो पशुओं के शरीर में
चिमटकर उनका रक्त पीता है ।

चिक्कुरी—संज्ञा स्त्री० [?] एक कीड़ा जो चीपायों या कुत्तों बिल्लियों
के शरीर से चिमटा रहता है और उनका खून पीया करता
है । किलनी । किल्ली ।

मुहा०—चिक्कुरी सा चिमटना = पीछा न छोड़ना । साथ में बना
रहना । पिड़ न छोड़ना ।

चिक्कुरा—संज्ञा पुं० [सं० सिक्का] बाज पक्षी । उ०—आज काबि
पल छिनक में मारग मेला हित । काल चिक्कुरा नर चिक्कुरा
भोजड़ भी भोजित ।—कबीर (शब्द०) ।

चिक्कुरा—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'चिक्कुरा' । उ०—काल चिक्कुरा
है लड़ा तू जाग पियारे मित ।—कबीर सा० सं०, पु० ७८ ।

चिक्कुरा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'चक्कीड़ा' ।

चिक्कुरा—संज्ञा पुं० [सं० चिक्कुरा] चक्कीड़ा । चिक्कुरा ।

चिक्कुरा—संज्ञा पुं० [सं० चिक्कुरा] दे० 'चक्कीड़ा' ।

चिक्कुरा—क्रि० प्र० [अनु० चो चो] चिल्लाना । चीखना ।
हल्ला करना । उ०—नंदराय के भीन में लड़े करत सब गाव ।
जय जय करि चिक्कुराए तबै मिलत बजराव ।—सुकवि
(शब्द०) । (ख) चंगुल तर चिक्कुराये हो, तब मिलिहैं
मिजाज ।—पलटू, भाग ३, पु० १६ ।

चिक्कुरा—संज्ञा स्त्री० [हि० चिक्कुरा] चिल्लाहट ।

चिक्कुरा—क्रि० प्र० [अनु० या देश०] दे० 'चुचुकना' ।

चिक्कुरा—संज्ञा पुं० [हि० चक्कीड़ा] दे० 'चक्कीड़ा' ।

चिक्कुरा—क्रि० सं० [अनु० या देश०] दे० 'चक्कीड़ना' ।

चिक्कुरा—क्रि० सं० [हि० चिक्कुरा का प्रे० रूप] दे०
'चक्कीड़ाना' ।

चिक्कुरा—संज्ञा पुं० [सं० चिक्कुरा] एक विषैला कीड़ा [स्त्री०] ।

चिक्कुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शक्ति जिसका नाम चिद है ।
चित् शक्ति । परमात्मा ।

चिक्कुरा—संज्ञा पुं० [सं०] १. महाभारत के अनुसार एक देश का
नाम । २. इस देश का निवासी ।

चिक्कुरा—क्रि० प्र० [अनु०] दे० 'चिक्कुरा' । उ०—चिक्कुरा
मरे चुप साध की चातक स्वाति समें ही सबै सु बिसेख्यो ।—
केसव ग्रं०, भा० १, पु० ७१ ।

चिक्कुरा—संज्ञा पुं० [हि० चिनना ?] कारीगर । मेमार । उ०—(क)
कबिरा देवल बहि परा भई ईंट संहार । कोई चिक्कुरा चूनिषा,
मिला न दूजी बार ।—कबीर (शब्द०) । (ख) करी चिक्कुरा
श्रीतड़ी ज्यों बहै न दूजी बार ।—(शब्द०) ।

चिक्कुरा—वि० [सं० चिक्कुरा] जो जड़ एवं चेतन दोनों हो [स्त्री०] ।

चिट—संज्ञा स्त्री० [हि० चोड़ना] १. कागज का टुकड़ा । २. पुरखा ।
एक्का । छोटा पत्र । ३. कपड़े आदि का छोटा टुकड़ा ।

क्रि० प्र०—चिल्लाना ।—फटना ।

चिटक—वि० [अनु०] चिककर । मिला । गंदा ।

चिटकना—क्रि० प्र० [अनु०] १. सूखकर जगह जगह पर फटना । खरा होकर दरकना । रसाई के कारण ऊपरी सतह में बराज पड़ना । जैसे,—चौकी घुप में मत रखो, चिटक जायगी । २. गठीली लकड़ी आदि का जलते समय 'चिट चिट' शब्द करना । ३. चिट्ठना । चिट्ठिचिट्ठाना । बिगड़ना । जैसे, तुम्हें तो मैं कुछ कहता नहीं, तुम क्यों चिटकते हो ? ४. शीशे आदि का फूटना ५. झुलक होना । सूखना । उ०—सूखे झोठ गला, चिटका, मुख लटका प्राण पियासे ।—कवासि, पृ० ७१ ।

चिटका—संज्ञा पुं० [हि० चिता] चिता ।

चिटकाना—क्रि० स० [अनु०] १. किसी सूखी हुई चीज को तोड़ना या तड़काना । २. गठीली लकड़ी आदि को जलाकर उसमें से 'चट चट' शब्द उत्पन्न करना । ३. खिझाना । ऐसी बात कहना जिससे कोई चिढ़े । ४. ज्यादा आँच या ताप देकर बीघे को टूटने देना ।

चिटकी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिट्ठीकी] दे० 'चिट्ठीकी' । उ०—चिटकी देह बजावे तारी । अद्वया मनसहूँ बूझि तुम्हारी ।—सुंदर, प्र०, भा० १, पृ० ३२५ ।

चिटखनी—संज्ञा स्त्री० [अनु० या हि० चिट्खिनी] दे० 'चिट्खिनी' । उ०—पर भीतर से चिटखनी लगी हुई थी और किबाड़ नहीं जुला ।—संन्यासी, पृ० ४६४ ।

चिटनवीस—संज्ञा पुं० [हि० चिट + प्रा० नवीस] चिट्ठीपत्रों, हिसाब किताब आदि लिखनेवाला । लेखक । मुहूरिर । कारिरा ।

चिटनीस—संज्ञा पुं० [मरा० चिटनीसी, हि० चिटनवीस] लेखक । उ०—उसको त्वरा से लिखी जाने योग्य बनाने के विचार से शिवाजी के चिटनीस (मंत्री, सरिस्तेदार) बालाजी अबाजी ने इसके अक्षरों को मोड़ (तोड़ मरोड़) कर नई लिपि तैयार की जिससे इसको मोड़ी कहते हैं ।—भा० प्रा० लि०, पृ० १३२ ।

चिटो—संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्रशास्त्र के अनुसार चांडाल वेशधारिणी योगिनी, जिसकी उपासना वशीकरण के लिये की जाती है ।

चिटुकी—संज्ञा स्त्री० [हि० चुटकी] दे० 'चुटकी' ।

चिट्ट—संज्ञा स्त्री० [हि० चिट] दे० 'चिट' ।

चिट्टा—वि० [सं० सित, प्रा० चित] [वि० स्त्री० चिट्ठी] १. सफेद । धवल । श्वेत । २. गोरा । जैसे, गोरा चिट्टा ।

चिट्टा—संज्ञा पुं० कुछ विशेष प्रकार की मछलियों के ऊपर का सीप के आकार का सफेद छिलका या पपड़ी । यह दुमरी से लेकर रुपए तक के बराबर होता है और इससे रेशम के लिये मीठी तैयार की जाती है ।

चिट्टा—संज्ञा पुं० [देश०] रुपया ।—(बलाल) ।

चिट्टा—संज्ञा पुं० [हि० चिटकना] वह उत्तेजना जो किसी को कोई ऐसा काम करने के लिये दी जाय जिसमें उसकी हानि या हंसी हो । झूठा बढ़ावा ।

क्रि० प्र०—देना ।

मुहा०—चिट्टा देना, चिट्टा बढ़ाना = झूठा बढ़ावा देना ।

१-५५

चिट्टा—संज्ञा स्त्री० [हि० चिट] दे० 'चिट' ।

चिट्टा—संज्ञा पुं० [हि० चिट] १. हिसाब की बही । खाता । लेखा । जमाखर्च या सेनदेन की किताब ।

मुहा०—चिट्टा बाँधना=लेखा तैयार करना ।

२. वह कागज जिसपर वर्ष भर का हिसाब जाँचकर नफा नुकसान दिखाया जाता है । फर्द । ३. किसी रकम की सिलसिलेवार फिहरिस्त । सूची । टिप्पणी । जैसे, चंदे का चिट्टा । उ०—चिट्टा सकल नरेसन केरे । आर्वाह चले दुगासन नेरे ।—सबल (शब्द०) । ४. वह रुपया जो प्रतिदिन, प्रति सप्ताह या प्रति मास मजदूरी या तनखाह के रूप में बाँटा जाय । उ०—बिच चिट्टा चाकरी चुकाई । बसे सवे सेवा मन लाई ।—कबीर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—चुकाना ।—बँटना ।—बाँटना ।

५. खर्च की फिहरिस्त । उन वस्तुओं की मूल्य सहित सूची जो किसी कार्य के लिये आवश्यक हों । लगनेवाले खर्च का ब्योरा । जैसे,—इस मकान में तुम्हारा अधिक नहीं लगेगा, बस २००) का चिट्टा है । ६. ब्योरा । विवरण ।

मुहा०—कच्चा चिट्टा=पूरा और ठीक ठीक बृत्तांत । ऐसा सविस्तर बृत्तांत जिसमें कोई बात छिपाई न गई हो । कच्चा चिट्टा झोलना=गुप्त बातों को पूरे ब्योरे के साथ प्रकट करना । गुप्त बृत्तांत कहना । रहस्य उद्घाटित करना ।

७. सीधा जो बाँटा जाय । रसद ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—बँटना ।—बाँटना ।—मिलना ।—झोलना ।

चिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिट] १. वह कागज जिसपर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिये किसी प्रकार का समाचार आदि लिखा हो । पत्र । खत ।

क्रि० प्र०—देना ।—भेजना ।—मँगाना ।—पढ़ना, आदि ।

यौ०—चिट्टीरसा । चिट्टी पत्री ।

२. वह छोटा पुरजा जो किसी माल विशेषतः कपड़े आदि के साथ रहता है और जिसपर उस माल का दाम लिखा रहता है । ३. वह छोटा पुरजा या कागज जिसपर कुछ लिखा हो । ४. एक क्रिया जिसके द्वारा यह निश्चय किया जाता है कि कोई माल पाने या कोई काम करने का अधिकारी कौन बनाया जाय ।

विशेष—जितने आदमी अधिकारी बनने योग्य होते हैं उन सब के नाम या संकेत भलग भलग कागज के छोटे टुकड़ों पर लिखकर उनकी नोलियाँ एक में मिलाकर उनमें से कोई एक गोली उठा ली जाती है । जिसके नाम की गोली निकलती है वह उसी माल के पाने या काम के करने का अधिकारी समझा जाता है । इस क्रिया से लोग प्रायः यह भी निश्चय किया करते हैं कि कोई काम (जैसे, विवाह आदि) करना चाहिए या नहीं ।

क्रि० प्र०—उठना ।—झालना ।—पढ़ना ।

५. किसी बात का आज्ञापन ।

मुहा०—चिट्ठी करना=किसी के नाम हुंड़ी करना । किसी को रुपए दे देने की लिखित आज्ञा देना । चिट्ठी डालना=सादरी डालना ।

१. किसी प्रकार का निमंत्रणपत्र ।

क्रि० प्र०—बैटना ।

चिट्ठीपत्री—संज्ञा स्त्री० [हि० चिट्ठी + पत्री] १. पत्र । खत । जैसे,—वहाँ से कोई चिट्ठीपत्री आती है । २. पत्रव्यवहार । खत किताबत । जैसे,—आपसे उनसे चिट्ठीपत्री है ।

क्रि० प्र०—होना ।

चिट्ठीरसी—संज्ञा पुं० [हि० चिट्ठी + रसी] चिट्ठी बाँटनेवाला । डाकिया । हरकारा । पोस्टमैन ।

चिड़ना—संज्ञा स्त्री० [सं० चटक या चेश०] चिड़िया ।

चिड़चिड़ा^१—संज्ञा पुं० [सं० चिचिण्ड अथवा अनुकरणात्मक देश०] १. 'चिचड़ा' ।

चिड़चिड़ा^२—संज्ञा पुं० [अनु०] एक छोटा पक्षी जिसका रंग भूरा होता है ।

चिड़चिड़ा^३—वि० [हि० चिड़चिड़ाना] झीघ्र चिड़नेवाला । थोड़ी सी बात पर अप्रसन्न होनेवाला । तुनकमिजाज ।—जैसे,—चिड़चिड़ा आदमी, चिड़चिड़ा स्वभाव ।

चिड़चिड़ाना—क्रि० प्र० [अनु०] १. गठीली जकड़ी, पानी मिले हुए तेल आदि के जलने में चिड़चिड़ गन्ध होना । २. सूखकर जगह जगह से फटना । खरा होकर दरकना । रुखाई के कारण ऊपरी सतह का पपड़ी की तरह हो जाना । जैसे,—जाड़े की हवा से छोट चिड़चिड़ाना, रुखाई से बदन चिड़चिड़ाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. चिड़ना । बिगड़ना । क्रोध लिए हुए बोलना । झुंझलाना ।

संयो० क्रि०—उठना ।

चिड़चिड़ाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० चिड़चिड़ाना + हट (प्रत्य०)] १. चिड़चिड़ाने का भाव । २. चिड़ने का भाव ।

चिड़का—संज्ञा पुं० [हि० चिचिट] हरे, भिगोए या कुछ उबाले हुए धान की भाड़ में भूनकर और फिर कूटकर बनाया हुआ चिपटा दाना । चिड़का (बड़० में 'चिड़के' अधिक बोलते हैं) ।

विशेष—इसे लोग सूखा तथा दूध दही में भिगोकर भी खाते हैं ।

चिड़का—संज्ञा पुं० [सं० चटक] गीरा पक्षी । गौरैया का नर ।

चिड़ाना—क्रि० सं० [हि० चिड़ाना] ३० 'चिड़ाना' ।

चिड़ारा—संज्ञा पुं० [देश०] नीची जमीन का खेत जिसमें जड़हन बोया जाता है । डबरी ।

चिड़िया—संज्ञा स्त्री० [सं० जटक, हि० चिड़ा] आकाश में उड़नेवाला जीव । वह प्राणी जिसके ऊपर उड़ने के लिये पर हों । पक्षी । पक्षेक । पक्षी ।

यो०—चिड़ियाखाना । चिड़ियाघर । चिड़िया चुनमुन = चिड़िया तथा उसी तरह के छोटे पक्षी । चिड़ियाभोजन = चारों ओर का तकाजा । चारों ओर की माँग । बहुत से लोगों का किसी बात के लिये अनुगोष या दबाव । जैसे,—घर से रुपया आ जाता तो हम इस चिड़ियानोचन से छुट्टी पाते । सोने की

चिड़िया = (१) खूब बन देनेवाला आसामी । (२) अत्यंत सुंदर व्यक्ति । (३) रमणीक स्थान ।

मुहा०—अप्राप्य वस्तु । अलभ्य वस्तु । ऐसी वस्तु जिसका होना असंभव हो । चिड़िया के छिनाले में पकड़ा जाना = व्यर्थ की आपत्ति में फँसना । नाहक संभट में पड़ना । चिड़िया का खेत खाना = असावधानी के कारण अवसर निकल जाने से हाति उठाना । उ०—घर रखवाला बाहरा, चिड़िया खाया खेत । आधा परधा ऊबरे, चेत सके तो चेत ।—कबीर सा० सं०, पृ० ६५ । चिड़िया फँसना = (१) किसी स्त्री को बहकाकर सहवास के लिये राजी करना (प्रशिक्षण) । (२) किसी देनेवाले धनी आदमी को अनुकूल करना । किसी मासदार को बाँव पर चढ़ाना ।

२. मँगिया की वह सीवन जिससे कटोरियाँ मिली रहती हैं । ३. चिड़िया के आकार का गड़ा हुआ काठ का टुकड़ा जो टेक देने के लिये कहारों की लकड़ी, लँगड़ों की बैसाखी, मकानों के खंभों आदि पर लगा रहता है । भाड़ा लगा हुआ काठ का टुकड़ा जिसका एक सिरा ऊपर की ओर चिड़िया की गरदन की तरह उठा हो । ४. पायजामे या लहंगे का नली की तरह का वह पोला भाग जिसमें हजारबंद या नाला पड़ा रहता है । ५. ताश का एक रंग जिसमें तीन गोल पंखड़ियों की बूटी बनी होती है । चिड़ी । ६. लोहे का टेढ़ा झंझुड़ा जो तराश की डोड़ी में लगा रहता है । ७. गाड़ी में लगा हुआ लोहे का टेढ़ा कोड़ा या झंझुड़ा जिसमें रस्सी लगाकर पैजनी बाँटते हैं । ८. एक प्रकार की सिलाई जिसमें पहले कपड़े आदि के दोनों पत्तों को सीकर तब सिलाई की ओरवाले उनके दोनों सिरों को अलग अलग उन्हीं पत्तों पर उलटकर इस प्रकार बखिया कर तेते हैं कि उसमें एक प्रकार की बेल सी बन जाती है ।

चिड़ियाखाना—संज्ञा पुं० [हि० चिड़िया + फ़ा० खानह्] वह स्थान या घर जिसमें अनेक प्रकार के पक्षी या पशु आदि देखने के लिये रखे जाते हैं । पक्षिशाला ।

चिड़ियाघर—संज्ञा पुं० [हि० चिड़िया + घर] ३० 'चिड़िया-खाना' ।

चिड़ियावाला—संज्ञा पुं० [हि० चिड़िया + वाला] उल्लू । गावदी । सुखं । जड़ (बाजारू) ।

चिड़िहारा^(१)—संज्ञा पुं० [हि० चिड़िया + हार (प्रत्य०)] चिड़ीमार । बहेलिया । चिड़िया पकड़नेवाला । व्याध ।

चिड़ो—संज्ञा स्त्री० [हि० चिड़ा] १. ३० 'चिड़िया' । २. ताश का एक रंग जिसमें तीन गोल पंखड़ियों की काली बूटी बनी रहती है ।

चिड़ीखाना—संज्ञा पुं० [हि० चिड़ी + फ़ा० खानह्] चिड़ियाखाना । पक्षिशाला । उ०—एते द्विज आने रंग रंगन बखाने, देश देशन ते आने चिड़ीखाने हरिनाथ के ।—प्रकबरी०, पृ० ६१ ।

चिड़ीमार—संज्ञा पुं० [हि० चिड़ी + मारना] बहेलिया । चिड़िया पकड़नेवाला । व्याध ।

चिड़—संज्ञा स्त्री० [हि० चिड़ना] चिड़ने का भाव । क्रोध लिए

हुए घृणा । विरक्ति । अप्रसन्नता । कुद्व । खिन्नताहट । नफरत । जैसे,—मुझे ऐसी बातों से बड़ी चिढ़ है ।

मुहा०—चिढ़ निकालना = हूँदकर ऐसी बात कहना जिससे कोई चिढ़े । चिढ़ाने की युक्ति निकालना । छेड़ने का ढंग निकालना । कुढ़ाना । खिन्नाना । जैसे,—इस बात से यदि इतना चिढ़ोगे तो लड़के चिढ़ निकाल लेंगे ।

चिढ़कना—कि० प्र० [हि० चिढ़ना] दे० 'चिढ़ना' ।

चिढ़काना—कि० स० [हि० चिढ़ाना] दे० 'चिढ़ाना' ।

चिढ़ना—कि० प्र० [हि० चिढ़िञाना] १. अप्रसन्न होना । विरक्त होना । खिन्न होना । नाराज होना । बिगड़ना । कुढ़ना । खीजना । झल्लाना । जैसे,—तुम थोड़ी सी बात पर भी क्यों चिढ़ जाते हो ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

२. द्वेष रखना । बुरा मानना । जैसे,—न जाने क्यों मुझसे वह बहुत चिढ़ता है ।

चिढ़वाना—कि० स० [हि० चिढ़ाना का प्रे० रूप] दूसरे से चिढ़ाने का काम कराना ।

चिढ़ाना—संज्ञा स्त्री० [हि० चिढ़ना] १. चिढ़ानेवाली बात या वजह । २. चिढ़ने का भाव या स्थिति ।

चिढ़ाना—कि० स० [हि० चिढ़ना] १. अप्रसन्न करना । नाराज करना । चिढ़ाना । खिन्नाना । कुढ़ाना । कुपित और खिन्न करना । जैसे,—ऐसी बात कहकर मुझे बार बार क्यों चिढ़ाते हो ?

संयो० क्रि०—देना ।

२. किसी को कुढ़ाने के लिये मुँह बनाना, हाथ चमकाना या किसी प्रकार की और कोई चेष्टा करना । खिन्नाने के लिये किसी की आकृति, चेष्टा या ढंग को नकल करना ।

मुहा०—मुँह चिढ़ाना = किसी को छेड़ने या खिन्नाने के लिये विलक्षण आकृति बनाना । बिराना ।

३. कोई ऐसा प्रसंग छेड़ना जिसे सुनकर कोई लज्जित हो । कोई ऐसी बात कहना या ऐसा काम करना जिससे किसी को अपनी विफलता, अपमान आदि का स्मरण हो । उपहास करना । ठट्ठा करना ।

चिढ़ौनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिढ़ + धोनी (प्रत्य०)] वह बात जिसके कहने से कोई चिढ़ जाय ।

चित्^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चेतन्य । चेतना । ज्ञान ।

यौ०—चिदाकाश । चिदानंद । चिन्मय ।

चित्^२—संज्ञा पुं० १. चुननेवाला । बीननेवाला । इकट्ठा करनेवाला ।

२. अग्नि । ३. रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक जो जीव-पद-वाच्य, भोक्ता, अपरिच्छिन्न, निर्मल-ज्ञान-स्वरूप और नित्य कहा गया है । (शेष दो पदार्थ अचित् और ईश्वर हैं) ।

चित्^३—प्रत्यय संस्कृत का एक अनिवार्यवाची प्रत्यय जो कः, किम् आदि सर्वनाम शब्दों में लगता है । जैसे ; कश्चित्, किञ्चित् ।

चित्^१—वि० [सं०] १. चुनकर इकट्ठा किया हुआ । २. ठका हुआ । आच्छादित । ३. संचित । जमा किया हुआ (को०) ।

चित्^२—संज्ञा पुं० [सं० चित्त] चित्त । मन । उ०—प्रब चित चेति चित्रकूटहि चलु ।—तुलसी प्र०, पृ० ४६६ ।

विशेष—दे० 'चित्त' ।

मुहा०—दे० 'चित्त' के मुहावरे ।

चित्^३—संज्ञा पुं० [हि० चितवन] चितवन । दृष्टि । नजर । उ०—चित्त जानकी प्रथ को कियो । हरि तीन द्वै भवलो कियो ।—केशव (शब्द०) ।

चित्^४—वि० [सं० चित (= ढेर किया हुआ)] इस प्रकार पड़ा हुआ कि मुँह, पेट आदि शरीर का अगला भाग ऊपर की ओर हो और पीठ, कूट आदि पीछे का भाग नीचे की ओर किसी आधार से लगा हो । पीठ के बल पड़ा हुआ । 'पट' या 'प्रोधा' का उलटा । जैसे, चित कौड़ी ।

यौ०—चित औ मेरी पट औ मेरी = (१) हर हाथ में अपने आप-को बड़ा बढ़ाकर दिखाना । (२) पासे या कौड़ी खेलने में बेईमानी करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—चितपट ।

मुहा०—चित करना = कुश्ती में पछाड़ना । कुश्ती में पटकना । चारों लाने (या लाने) चित = (१) हाथ पैर फैलाए बिलकुल पीठ के बल पड़ा हुआ । (२) हक्का बक्का । स्तमित । ठक । जड़ीभूत । चित होना = बेसुध होकर पड़ जाना । बेहोश होना । जैसे,—इतनी माँग मे तो तुम चित हो जाओगे ।

चित्^५—क्रि० वि० पीठ के बल । जैसे,—चित गिरना, चित पड़ना, चित लेटना ।

चितवन^६—संज्ञा स्त्री० [हि० चितवन] दे० 'चितवन' ।

चितउर^७—संज्ञा पुं० [हि० चित्तोर] दे० 'चित्तोर' । उ०—देहि प्रसीत सब मिलि तुम्ह मायें नित छात । राज करहु गढ़ चितउर राखहु पिय माहवात ।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २०६ ।

चितकबरा^८—वि० [सं० चित्र + कबुर] [स्त्री० चित्रकबरी] सफेद रंग पर काले, लाल या पीले दागवाला । काले, पाल या और किसी रंग पर सफेद दागवाला । रंगबिरंगा । कबरा । चितला । शबल । वि० दे० 'कबरा' ।

चितकबरा^९—संज्ञा पुं० चितकबरा रंग ।

चितकाबरा^{१०}—वि० [हि० चितकबरा] दे० 'चितकबरा' ।

चितकूट^{११}—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकूट] दे० 'चित्रकूट' ।

चितगरी^{१२}—वि० [सं० चित + गर (प्रत्य०)] चेतवाली । होशियार । उ०—मई जो सयान भई चितगरी । पठि विद्या मह, विद्याधरी ।—इंद्रा०, पृ० १७ ।

चितगुपति^{१३}—संज्ञा पुं० [सं० चित्रगुप्त] दे० 'चित्रगुप्त' ।

चितचोर^{१४}—संज्ञा पुं० [हि० चित + चोर] चित्त को चुरानेवाला । जो को लुभानेवाला । मनोहर । मनभावना । मन को आकर्षित करनेवाला । प्यारा । प्रिय ।

चितपट^{१५}—संज्ञा पुं० [हि० चित + पट] १. एक प्रकार का खेल या बाजी जिसमें किसी फेंकी हुई वस्तु के चित या पट पड़ने पर

हार जीत का निर्णय होता है । (लोप प्रायः कीड़ी, पैसा, सूता आदि फेंकते हैं) । २. कुम्भी । मल्लयुद्ध ।

चित्तबाहु—संज्ञा पुं० [हि० चित्त + सं० बाहु] तलवार के ३२ हाथों में से एक । उ०—आविष्ट निर्मयार्द्र कुल चित्तबाहु निस्सृत रिपु दुखै ।—रघुराज (शब्द०) ।

चित्तभंग—संज्ञा पुं० [सं० चित्त + भङ्ग] १. ध्यान न लगना । उखाट । उदासी । उ०—(क) मेरो मन हरि चित्तवन समझानो । यह रसमग्न रहति निसि बासर हार जीत नहि जानो । सुरदास चित्तभग होत क्यों जो जेहि रूप समानो ।—सूर (शब्द०) । (ख) कमल, खंजन, मीन मधुकर होत है चित्तभग ।—सूर (शब्द०) । (ग) देव मान मन भंग चित्तभंग मद क्रोध लोभादि पवत दुर्ग भुवन भर्ता ।—तुलसी (शब्द०) । २. बुद्धि का लोप, होश का ठिकाने न रहना । मतिभ्रम । बीचबकापन । चकपकाहट ।

चित्तरकना—संज्ञा पुं० [सं० चित्रक + हि० ना प्रत्य०] दे० 'चित्रक' । उ०—अजमोदा चित्तरकना, पतरज बायभिरंग । सँबा सोंध आफला नासहि मास्त भंग ।—इंद्रा० पु० १५१ ।

चित्तरकारी—संज्ञा स्त्री० [हि० चित्रकारी] दे० 'चित्रकारी' । उ०—पलंग को छोड़ खाली गोद से उठ गे सजन मोता । चित्तरकारी लगे खाने हुमन को घर हुआ रीता ।—कविता को०, भा० ४, पृ० १२ ।

चित्तरन—संज्ञा पुं० [सं० चित्रण] दे० 'चित्रण' ।

यौ०—चित्तरनहार = चित्रण करनेवाला ।

चित्तरना—क्रि० स० [सं० चित्र] चित्रित करना । चित्र बनाना । नक्काशी करना । डेल बूटे बनाना ।

चित्तरवा—वि० पुं० [सं० चित्रक] एक प्रकार की चिड़िया जिसका रंग ईंट का सा लाल होता है । इसके डोंनों पर काली चित्तियाँ पड़ी होती हैं और भालें अनारखाने के समान सफेद और लाल होती हैं ।

चित्तरा—संज्ञा पुं० [सं० चित्र] दे० 'चित्तल' ।

चित्तराखा—संज्ञा पुं० [सं० चित्र] एक प्रकार का झुंडों में रहनेवाला जंतु, जो पेड़ों पर चढ़कर गिलहरियों आदि को खा जाता है ।

चित्तरौख—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्रक] एक प्रकार की चिड़िया । चित्तरवा । उ०—घोरी पांडक कहि पिय ठाऊँ । जो चित्तरौखन दूसर नाऊँ ।—जायसी (शब्द०) ।

चित्तला—वि० [सं० चित्रल] कबरा । चितकबरा । रंगविरंगा ।

चित्तला—संज्ञा पुं० १. लखनऊ का एक प्रकार का खरबूजा जिसपर चित्तियाँ पड़ी होती हैं । २. एक प्रकार की बड़ी मछली जो लंबाई में तीन चार हाथ और तौल में डेढ़ दो मन होती है ।

विशेष—इसकी पीठ बहुत उठी हुई होती है और उसपर पूँछ के पास पर होते हैं । इसमें कटि बहुत होते हैं । गले से लेकर पेट के नीचे तक ५१ कटियों की पंक्ति होती है । इस मछली की पीठ का रंग कुछ मटमैला और तामड़ा तथा बगल का चांदी की तरह सफेद होता है । यह मछली बंगाल, उड़ीसा और सिंध में होती है । इसमें से तेल बहुत निकलता है जो खाने और जलाने के काम में कामा है ।

चित्तवन—संज्ञा स्त्री० [हि० चेतना] ताकने का भाव या ढंग । अवलोकन । दृष्टि । कटाक्ष । नजर । निगाह । उ०—सखज्ज कोचनों की मनोहारी चित्तवन ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १२५ ।

मुहा०—चित्तवन चढ़ाना = थोरी चढ़ाना । भी चढ़ाना । कुपित दृष्टि करना । क्रोध की दृष्टि से देखना ।

चित्तवना—क्रि० स० [हि० चेतना] देखना । ताकना । निगाह करना । अवलोकन करना । दृष्टि डालना । उ०—चित्तवति चकित चहूँ दिसि सीता ।—मानस, १ । २३२ । (ख) सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ।—मानस, १ । २३२ ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना

चित्तवनि—संज्ञा स्त्री० [हि० चित्तवन] दे० 'चित्तवन' । उ०—(क) चित्तवनि बाक भृकुटि बर बाँकी । तिलक रेख शोभा अनु बाँकी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) तुलसिदास पुनि भरेइ देखियत राम कृपा चित्तवनि चितए ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) मनियारे दोरघ दगनु किती न सखनि समान । वह चित्तवनि भोरे कछु जिहि बस होत सुजान ।—बिहारी र०, दो० ५८८ ।

चित्तवाना—क्रि० स० [हि० चित्तवना का प्रेरक] बिलाना । तकना । उ०—चित्तवो चितवाए हँसाए हँसो भो बोलाए से बोलो रहै मति मोने ।—केशव (शब्द०) ।

चित्तविलास—संज्ञा पुं० [हि०] एक प्रकार का डिंगल गीत । उ०—इए पर दुहो भरटिया वालो फिरतुक आदि तिका मंत फालो । धुरेतिका मोहरा तुध चारो, चित्तविलास सो गीत उचारो ।—रघु० क०, पृ० १०५ ।

चित्तसरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० चित्रसारी] दे० 'चित्रसारी' । उ०—चित्त चित्तसरिया मैं लिहलौं लिखाई ।—धरनी०, पृ० १ ।

चित्तहिलोख—संज्ञा पुं० [हि०] एक प्रकार का डिंगल गीत । उ०—प्रोढ़ गीतरे उपरै तबै उलालो तोल । कहै मंद तिछनू सुकवि, आखे चित्तहिलोख ।—रघु० क०, पृ० १६३ ।

चिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चुनकर रखी हुई लकड़ियों का ढेर जिसपर रखकर मुरदा जलाया जाता है । मृतक के शवदाह के लिये बिछाई हुई लकड़ियों की राशि ।

क्रि० प्र०—बनाना ।—लगाना ।

पर्या०—चित्या । चिति । चैत्य । काष्ठमंडी ।

यौ०—चितापिंड = वह पिंडदान जो शवदाह के उपरांत होता है । चिताभस्म = चिता की राख ।

मुहा०—चिता चुनना = शवदाह के लिये लकड़ियों को नीचे ऊपर क्रम से रखना । चिता साजना । चिता तैयार करना । चिता पर चढ़ना = मरना । चिता में बैठना = सती होने के लिये विधवा का मृत पति की चिता में बैठना । मृत पति के शरीर के साथ जलना । सती होना । चिता साजना = दे० 'चिता चुनना' ।

२. धमकान । मरघट । उ०—मीख भांगि भव साहि चिता नित खोबहि । नाचहि नगन पिशाच, पिसाचिन खोबहि ।—तुलसी (शब्द०) ।

विश्वकोनी—संज्ञा स्त्री० [हि० वेतावनी] दे० 'वेतावनी' । उ०—
जलन न देतो देव बचल बचल करि, चाबुक चितावनीन मारि
मुँह मोरतो । —पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १९५ ।

चिताना—क्रि० सं० [हि० चेताना] १. सचेत करना । सावधान
करना । होशियार करना । सबरदार करना । किसी आवश्यक
विषय की ओर ध्यान दिलाना ।

संयो० क्रि०—बैना ।

३. आत्मबोध करना । ज्ञानोपदेश करना । ४. (भाग) जगाना ।
सुलगाना । जलाना ।—(साधु) ।

चिताप्रसाप—संज्ञा पुं० [सं०] जीते ही चिता पर जला देने का दंड ।

विशेष—जो स्त्री पुरुष का खून कर देती थी उसे चंद्रगुप्त के समय
जीते जी जला दिया जाता था ।—(को०) ।

चितापिण्ड—संज्ञा पुं० [सं० [चितापिण्ड] समस्तान में सबसे बड़ा के
पूर्व किया जानेवाला पिण्डदान ।

चिताभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रमथान ।

चितार—वि० [सं० चित्रल] रंग बिरंगा । उ०—है यह हीरन सों
जड़ी रंगन तापे करी कछु चित्र चितार सी । देखो बू लालन
कैसी बनी है नई यह मुँह कवन भारसी ।—भारतेंदु ग्रं०,
भा० २, पृ० १४७ ।

चितारना—क्रि० सं० [हि० चित + आर (प्रत्य०) से नाम०]
स्मरण करना । याद में लाना । उ०—ओरंग सा पातसाह
आलम कूँ चितारे । एकबर के आस की चितानाँ विचारे ।—
रा० क०, पृ० १०१ ।

चितारी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चितेरा' ।

चितारोद्दण—संज्ञा पुं० [सं०] विषया का सती होने के लिये चिता
पर जाना ।

चितावनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिताना] चिताने की क्रिया । सतर्क
या सावधान करने की क्रिया । वह सूचना जो किसी को किसी
आवश्यक विषय की ओर ध्यान देने के लिये दी जाय । सावधान
रहने की पूर्वसूचना । वेतावनी ।

क्रि० प्र०—बैना ।

चितासाधन—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्रसार के अनुसार चिता या समस्तान
के ऊपर बैठकर इष्टमंत्र का अनुष्ठान जो चतुर्दशी या अष्टमी
को देव पहर रात गए किया जाता है ।

चिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चिता । २. समूह । डेर । ३. चुनने या
इकट्ठा करने की क्रिया । चुनाई । ४. शतपथ ब्राह्मण के
अनुसार अग्नि का एक संस्कार । ५. यज्ञ में इंटों का एक
संस्कार । इष्टक संस्कार । ६. दीवार में इंटों की चुनाई । इंटों
की जोड़ाई । ७. चेतन्य । ८. दुर्गा । ९. दे० 'चित्ती' । १०.
समझ । बोध (को०) ।

चितिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. करघनी । मेखला । २. दे० 'चिति' ।

चितिया—वि० [हि० चित्ती + ह्या (प्रत्य०)] जिसपर दाग या
चित्ती पड़ी हो । दागवाला ।

चितिया गुड़—संज्ञा पुं० [देश०] सजुर की बीनी की दूरी से जमाया
गुड़ा गुड़ ।

चितिव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] गणित की वह क्रिया जिसके द्वारा
किसी बीमार या मकान में लगनेवाली इंटों और पटियों की
संख्या और नाप आदि का निश्चय होता है ।

विशेष—लीलावती के अनुसार दीवार का क्षेत्रफल निकालकर
उसमें इंटों के क्षेत्रफल का भाग देने से जो फल होगा वही
इंटों की संख्या होगी । इसी प्रकार की ओर और क्रियाएँ
स्तर आदि निकालने के लिये हैं ।

चितु—संज्ञा पुं० [सं० चित, हि० चित्त] दे० 'चित' । उ०—
फिर फिर चितु उस हीं रहनु, टुटी साज की साव ।—बिहारी
र०, दो० १० ।

चितेरा—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकार या हि० चित (= सं० चित्र) + एरा
(प्रत्य०)] [स्त्री० चितेरिन] चित्रकार । चित्र बनानेवाला ।
तसबीर खींचनेवाला । मुसीवर । कर्मगर । उ०—चकित
मई देखै डिग ठाढ़ी । मसो चितेरे लिखि लिखि काढ़ी ।
—सूर (शब्द०) ।

चितेरिन—संज्ञा स्त्री० [हि० चितेरा] १. चित्र बनानेवाली स्त्री ।
२. चित्रकार की स्त्री ।

चितेरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चितेरिन' ।

चितेरा—संज्ञा पुं० [हि० चितेरा] दे० 'चितेरा' ।

चितवन—संज्ञा स्त्री० [हि० चितवन] दे० 'चितवन' ।

चितोना—क्रि० सं० [हि० चितवना] दे० 'चितवना' ।

चितोनि—संज्ञा स्त्री० [हि० चितवन] दे० 'चितवन' । उ०—तिरछी
चितोनि मैं बरछी सी कोन ।—मति० ग्रं०, पृ० १४५ ।

चितोनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चितावनी] दे० 'चितावनी' ।

चितकार—संज्ञा पुं० [सं० चीत्कार] दे० 'चीत्कार' ।

चित्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंतःकरण का एक भेद । अंतःकरण की
एक वृत्ति ।

विशेष—वेदांतसार के अनुसार अंतःकरण की चार वृत्तियाँ हैं—
मन, बुद्धि, चित और अहंकार । संकल्प विकल्पात्मक वृत्ति को
मन, निश्चयात्मक वृत्ति को बुद्धि और इन्हीं दोनों के अंतर्गत
अनुसंधानात्मक वृत्ति को चित और अभिमानात्मक वृत्ति को
अहंकार कहते हैं । पंचदशी में इंद्रियों के निर्यता मन ही को
अंतःकरण माना है । आंतरिक व्यापार में मन स्वतंत्र है, पर
बाह्य व्यापार में इंद्रियों परतंत्र है । पंचभूतों की गुणसमष्टि
से अंतःकरण उत्पन्न होता है जिसकी दो वृत्तियाँ हैं मन और
बुद्धि । मन संशयात्मक और बुद्धि निश्चयात्मक है । वेदांत
में प्राण को मन का कारण कहा है । मृत्यु होने पर मन इसी
प्राण में लय हो जाता है । इसपर शंकराचार्य कहते हैं कि
प्राण में मन की वृत्ति लय हो जाती है, उसका स्वरूप नहीं ।
लण्केश्वरी बौद्ध चित ही को आत्मा मानते हैं । वे कहते हैं
कि चित प्रकार अग्नि अपने को प्रकाशित करके दूसरी वस्तु
को भी प्रकाशित करती है, उसी प्रकार चित भी करता है ।
बौद्ध लोग चित के चार भेद करते हैं—कामावचर, रूपावचर,
अरूपावचर और लोकोत्तर । आर्वाक के मत से मन ही प्राण्य
है । योग के आचार्य पतंजलि चित को स्वप्रकाश नहीं स्वीकार
करते । वे चित को दृश्य और चक्षु पदार्थ मानकर उसका एक

मलग प्रकाशक मानते हैं जिसे आत्मा कहते हैं। उनके विचार में प्रकाश और प्रकाशक के संयोग से प्रकाश होता है, यतः कोई वस्तु अपने ही साथ संयोग नहीं कर सकती। योगसूत्र के अनुसार चित्तवृत्ति पाँच प्रकार की है—प्रमाण, विषय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्दप्रमाण; एक में दूसरे का भ्रम—विषय; स्वरूपज्ञान के बिना कल्पना—विकल्प; सब विषयों के अभाव का बोध—निद्रा और कालांतर में पूर्व अनुभव का आरोप स्मृति कहलाता है। पंथ-वर्ती तथा और दार्शनिक ग्रंथों में मन या चित्त का स्थान हृदय या हृत्पद्मोलक लिखा है। पर प्राधुनिक शास्त्रात्म्य विज्ञान अंतःकरण के सारे व्यापारों का स्थान मस्तिष्क में मानता है जो सब ज्ञानतंतुओं का केंद्रस्थान है। खोपड़ी के अंदर जो टेढ़ी मेढ़ी गुरियों की सी बनावट होती है, वही अंतःकरण है। उसी के सूक्ष्म अर्जुन-तनु-जाल और कोशों की क्रिया द्वारा सारे मानसिक व्यापार होते हैं। भूतवादी वैज्ञानिकों के मत से चित्त मन या आत्मा कोई पृथक् वस्तु नहीं है, केवल व्यापार-विशेष का नाम है, जो छोटे जीवों में बहुत ही अल्प परिमाण में होता है और बड़े जीवों में क्रमशः बढ़ता जाता है। इस व्यापार का प्राणरस (प्रोटोप्लाज्म) के कुछ विकारों के साथ नित्य संबंध है। प्राणरस के ये विकार अत्यंत निम्न श्रेणी के जीवों में प्रायः शरीर भर में होते हैं; पर उच्च प्राणियों में क्रमशः इन विकारों के लिये विशेष स्थान नियत होते जाते हैं और उनसे इन्द्रियों तथा मस्तिष्क की सृष्टि होती है।

२. बहु मानसिक शक्ति जिससे धारणा, भावना आदि की जाती है। अंतःकरण। जी। मन। दिल।

मुहा०—चित्त चढ़ना = जी न लगना। विरक्ति होना। चित्त करना = इच्छा करना। जी चाहना। जैसे,—ऐसा चित्त करता है कि यहाँ से चल दे। चित्त चढ़ना = दे० 'चित्त पद चढ़ना'। उ०—तब चित्त चढ़े जो शंकर कहेऊ।—मानस, १।६३। चित्त चिह्नटना = (१) चित्त में पीड़ा होना। (२) चित्त के लिये आकर्षक होना। चित्त चुराना = मन मोहना। मोहित करना। चित्त आकषित करना। उ०—नैन सैन दै चितहि चुरावति यहै मंत्र टोना सिर डारि।—सूर (शब्द०)। चित्त देना = ध्यान देना। मन लगाना। गौर करना। उ०—चित्त दै सुनो हमारी बात।—सूर (शब्द०)। चित्त घरना = (१) ध्यान देना। मन लगाना। उ०—कहाँ सो कथा सुनो चित्त धार। कहे सुनै सो लहे सुख सार।—सूर (शब्द०)। (२) मन में खाना। उ०—हमारे प्रभु भवगुन चित्त न धरी।—सूर (शब्द०)। चित्त पर चढ़ना = (१) ध्यान पर चढ़ना। मन में बसना। बार बार ध्यान में आना। जैसे,—तुम्हारे तो यही चित्त पर चढ़ा हुआ है। (२) ध्यान में आना। स्मरण होना। याद पड़ना। चित्त बैठना = चित्त एकाग्र न रहना। ध्यान दो ओर हो जाना। एक विषय की ओर ध्यान स्थिर न रहना। ध्यान इधर उधर होना। चित्त बैठाना = ध्यान इधर उधर करना। ध्यान एक ओर न रहने देना। चित्त में बँसना या जमना = दे० 'चित्त में बैठना'। चित्त में

बैठना = जी में जमना। हृदय में दृढ़ होना। मन में बँसना। हृदयंगम होना। उ०—अब हमारे चित्त बैठयो यह पद होनी होउ सो होउ।—सूर (शब्द०)। चित्त में होना या चित्त होना = इच्छा होना। जी चाहना। उ०—यह चित्त होत जाउँ मैं अबहीं यहाँ नहीं मन लागत।—सूर (शब्द०)। चित्त लगना = मन लगना। जी न धराना। जी न ऊबना। मन की प्रवृत्ति स्थिर रहना। जैसे,—(क) काम में तुम्हारा चित्त नहीं लगता। (ख) अब यहाँ हमारा चित्त नहीं लगता। चित्त लेना = इच्छा होना। जी चाहना। जैसे—अपना चित्त ले चले जाओ। चित्त से उतरना = (१) ध्यान में न रहना। भूल जाना। उ०—सूर प्रथम चित्त तें नहि उतरत वह बन कुंज पत्तो।—सूर (शब्द०)। (२) दृष्टि से गिरना। प्रिय या आवरणाय न रह जाना। विरक्तिभाजन होना। चित्त से न टसना = ध्यान में बराबर बना रहना। न भूलना। उ०—सूर चित्त तें टरति नाहीं राधिका की प्रीति।—सूर (शब्द०)।

३. नृत्य में एक प्रकार की दृष्टि जिसका व्यवहार शृंगार में प्रसन्नता प्रकट करने के लिये होता है।

विशेष—दे० 'चित्त'।

चित्त^१—वि० १. विचार किया हुआ। विचारित। २. अनुभूत या अनुभव किया हुआ। ३. इच्छित। चाहा हुआ। ४. इन्द्रिय-गम्य। गोचर [को०]।

चित्तक^५—संज्ञा पु० [सं० चित्रक] दे० 'चित्रक'।

चित्तकक्षित—वि० [सं०] चित्त में या चित्त द्वारा जिसका कलन किया गया हो। अनुमित। अपेक्षित। अवकलित [को०]।

चित्तखेद—संज्ञा पु० [सं०] शोक। दुःख [को०]।

चित्तगर्भ—वि० [सं०] मनोहर। सुंदर।

चित्तचारी—वि० [सं० चित्तचारिन्] दूसरे के इच्छानुसार आचरण करनेवाला [को०]।

चित्तचौर—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'चित्तचोर' [को०]।

चित्तज—संज्ञा पु० [सं०] चित्त से उत्पन्न, आपत्तव्य।

चित्तजन्मा—संज्ञा पु० [सं० चित्तजन्म] कामदेव [को०]।

चित्तज्ञ—वि० [सं०] दूसरे की इच्छा या चित्त को जाननेवाला [को०]।

चित्तधारा—संज्ञा स्त्री [सं०] विचारधारा [को०]।

चित्तनाथ—संज्ञा पु० [सं०] स्वामी [को०]।

चित्तनारा—संज्ञा पु० [सं०] विवेक या चेतना का नाश [को०]।

चित्तनिर्धृति—संज्ञा स्त्री [सं०] प्रसाद। हर्ष। प्रसन्नता। शांति [को०]।

चित्तप्रसादन—संज्ञा पु० [सं०] योग में चित्त का संस्कार जो मैत्री, करुणा, हर्ष, उपेक्षा आदि के उपयुक्त व्यवहार द्वारा होता है। जैसे, किसी को सुखी देख उससे मित्रभाव रखना, दुखी के प्रति कष्टना दिखाना, पुण्यवान् को देख प्रसन्न होना, पापी के प्रति उपेक्षा रखना। इस प्रकार के साधन से चित्त में राजस और तामस की निवृत्ति होकर केवल सात्विक धर्म का प्रादुर्भाव होता है।

चित्तप्रमाणी—वि० [सं० चित्तप्रमायिन्] उत्तेजना पैदा करनेवाला ।
हृदय को मथनेवाला [को०] ।

चित्तभंग—संज्ञा पु० [सं० चित्तभङ्ग] बदरिकाश्रम के एक पर्वत का नाम ।

चित्तभूम्—संज्ञा पु० [सं०] कामदेव ।

चित्तभूमि—संज्ञा पु० [सं०] योग में चित्त की अवस्थाएँ ।

विशेष—व्यास के अनुसार ये अवस्थाएँ पाँच हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध । क्षिप्त अवस्था वह है जिसमें चित्त रजोगुण के द्वारा सदा अस्थिर रहे; मूढ़ वह है जिसमें चित्त तमोगुण के कारण निद्रायुक्त या स्तब्ध हो, विक्षिप्त वह है जिसमें चित्त अस्थिर रहे, पर कभी कभी स्थिर भी हो जाय, एकाग्र वह है जिसमें चित्त किसी एक विषय की ओर लगा हो, और निरुद्ध वह है जिसमें सब वृत्तियों का निरोध हो जाय, संस्कार मात्र रह जाय । इनमें से पहली तीन अवस्थाएँ योग के अनुकूल नहीं हैं । पिछली दो योग या समाधि के उपयुक्त हैं । समाधि की बीचार भूमियाँ हैं—मधुमती, मधुप्रतीका, विष्णोका और ऋतभरा, जिनके लिये दे० 'समाधि' ।

चित्तभेद—संज्ञा पु० [सं०] १. विचारसंबंधी भेद । २. चंचलता । अस्थिरता [को०] ।

चित्तभ्रम—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें संताप, मोह, विकलता, हँसना, गाना, नाचना, पतूरा लाए जैसी अवस्था आदि उपद्रव होते हैं ।

चित्तभ्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्तभ्रान्ति] दे० 'चित्तभ्रम' [को०] ।

चित्तयोनि—संज्ञा पु० [सं०] कामदेव [को०] ।

चित्तरु—संज्ञा पु० [सं० चित्र] दे० 'चित्र' ।

चित्तरसारी—संज्ञा स्त्री० [हि० चित्रसारी] दे० 'चित्रसारी' ।
उ०—जहें सोने के चित्तरसारी । बैठि बरात जानु फुलवारी ।
जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३१२ ।

चित्तराग—संज्ञा पु० [सं०] कामना । अनुराग [को०] ।

चित्तज्ञ—संज्ञा पु० [सं० या सं० चित्रज्ञ] एक प्रकार का मृग । चीतल ।

चित्तावान्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० चित्तवती] उदार चित्त का ।

चित्तविकार—संज्ञा पु० [सं०] विचार या भाव का परिवर्तन [को०] ।

चित्तचित्तेप—संज्ञा पु० [सं०] चित्त की चंचलता या अस्थिरता जो योग में बाधक है ।

विशेष—इसके ती भेद हैं—व्याधि, स्त्यान (अकर्मण्यता), संशय, प्रमाद (त्रुटि), घालस्य, अविरति (वैराग्य का अभाव), भ्रांतिदशन (मिथ्या अनुभव), असंख्यभूमिकत्व (समाधि की अप्राप्ति), और अनवस्थितत्व (चित्त का न टिकना) ।

चित्तविद्—संज्ञा पु० [सं०] १. वह जो चित्त की बात जाने । २. बौद्ध धर्म के अनुसार चित्त के भेदों और रहस्यों को जाननेवाला पुरुष ।

चित्तविप्लव—संज्ञा पु० [सं०] उन्माद ।

चित्तविभ्रंश—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'चित्तविभ्रम' [को०] ।

चित्तविभ्रम—संज्ञा पु० [सं०] १. भ्रांति । भ्रम । मोचकापन । २. उन्माद ।

चित्तविरलोप—संज्ञा पु० [सं०] चित्त फटना । विराग [को०] ।

चित्तविरलोपण—संज्ञा पु० [सं०] मैत्रीभंग । मनमुटाव [को०] ।

चित्तवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चित्त की गति । चित्त की अवस्था ।

विशेष—योग में चित्तवृत्ति पाँच प्रकार की मानी गई है—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति । इन सबके भी क्लिष्ट और अक्लिष्ट दो भेद हैं । अविद्या आदि क्लेशहेतुक वृत्ति क्लिष्ट और उससे भिन्न अक्लिष्ट हैं ।

२. विचार । ३. मनःस्थिति । भाव ।

चित्तवेदना—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्त की वेदना [को०] ।

चित्तवैकल्य—संज्ञा पु० [सं०] चित्त की विकलता [को०] ।

चित्तशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] विकाररहित चित्त । निर्विकार चित्त [को०] ।

चित्तसारी—संज्ञा स्त्री० [हि० चित्रसारी] दे० 'चित्रसारी' ।

चित्तहारी—वि० [सं० चित्तहारिन्] मन को लुभानेवाला [को०] ।

चित्ताकर्षक—वि० [सं०] मनमोहक । चित्त को आकर्षित करनेवाला ।
उ०—कई मंत्रों में पति पत्नी के प्रेम का चित्ताकर्षक चित्र खींचा है ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ११० ।

चित्तापहारक—वि० [सं०] मनोहर । सुंदर ।

चित्ताभोग—संज्ञा पु० [सं०] १. आसक्ति । २. पूरी चेतनता [को०] ।

चित्तिारना—क्रि० सं० [हि० चित्तिारना] दे० 'चित्तिारना' ।
उ०—चुगड़ चित्तिारद भी चुगड़, चुगि चुगि चित्तिारैह । कुरभी बच्चा भेलिह कइ, दूरि यकी पावेह ।—ढोला०, पृ० २०२ ।

चित्तासंग—संज्ञा पु० [सं० चित्तासङ्ग] प्रेम । अनुराग [को०] ।

चित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धिवृत्ति । प्रज्ञा । चित्तन । २. क्याति । ३. कर्म । ४. अथर्व ऋषि की पत्नी का नाम ।

चित्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्रिका, प्रा० चित्त, हि० चित्त (= सफेद दाग अथवा सं० चित्रिक) १. छोटा दाग या चिह्न । छोटा घन्ना । दुँदकी । उ०—पीले मोटे प्रमरुदों में अब लाल लाल चित्तियाँ पड़ीं ।—ग्राम्या, पृ० ३६ ।

चौ०—चित्तीदार=जिसपर दाग या घन्ना हो ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

मुहा०—चित्ती पड़ना=बहुत लगी सेंकने के कारण रोटी में स्थान स्थान पर जलने का काला दाग पड़ना ।

२. कुम्हार के चाक के किनारे पर का वह गड्ढा जिसमें डंडा डालकर चाक घुमाया जाता है । ३. मादा लाल । मुनिया । ४. अजगर की जाति का एक मोटा साँप जिसके शरीर पर चित्तियाँ होती हैं । चीतल । ५. एक और कुछ रंगड़ा हप्पा हमली का चित्र जिससे छोटे लड़के लूपा खेलते हैं ।

विशेष—हमली के चौंके को लड़के एक और इतना रंगड़ते हैं कि उसके ऊपर का काला छिलका बिलकुल निकल जाता है और उसके अंदर से सफेद भाग निकल आता है । दो तीन लड़के मिलकर अपनी अपनी चित्ती एक में मिलाकर फेंकते हैं और दीव पर चिह्न लगाते हैं । फेंकने पर जिस लड़के के चिह्न का

सफेद माथ ऊपर पड़ता है, वह और लड़कों के दाँव पर लगाए हुए चीएँ भीत लेता है।

चिस्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० चित (=चेत के बल पड़ा हुआ)] वह कीड़ी जिसकी चिपटी और खुरदरी पीठ प्रायः नीचे होती है और ऊपर चित रहती है। टैप। उ०—अंतर्गामी यही न जानत जो मो उरहि चितो। ज्यों जुझारि रस बीचि द्वारि गष सोचत पटक चितो (शब्द०)।

चिशोष—यह फेंकने पर चित अधिक पड़ती है, इसी से इसे चिस्ती कहते हैं। जुझारी इसे जूए का दाँव फेंकते हैं।

चिस्तीद्रेक—संज्ञा पु० [सं० घमंड। घटकार (की०)]।

चिस्तीक—संज्ञा पु० [हि० चित्तोर] दे० 'चित्तोर'।

चित्तोर—संज्ञा पु० [सं० चित्रकूट, प्रा० चित्तकूट, चित्तउड हि० चित्तउर] एक इतिहासप्रसिद्ध प्राचीन नगर जो उदयपुर के महाराणाओं की प्राचीन राजधानी थी।

विशेष अलाउद्दीन के समय में प्रसिद्ध महारानी पद्मावती या पद्मिनी यहीं कई सहस्र क्षत्राणियों के साथ चिता में भस्म हुई थीं। ऐसा प्रसिद्ध है कि राणाओं के पूर्वपुरुष बाप्पा रावल ने ही ईसवी सन् ७२८ में चित्तोर का गढ़ बनवाया और नगर बसाया था। सन् १५६८ तक तो मेवाड़ के राणाओं की राजधानी चित्तोर ही रही; उसके पीछे जब अकबर ने चित्तोर का किला ले लिया, तब महाराणा उदयसिंह ने उदयपुर नामक नगर बसाया। चित्तोर का गढ़ एक ऊँची पहाड़ी पर है जिसके नीचे चारों ओर प्राचीन नगर के खंभुर दिखाई पड़ते हैं। हिंदू काल के बहुत से भवन अभी यहाँ दूटे फूटे लगे हैं। किले के अंदर भी बहुत से देवमंदिर, कीर्तिस्तंभ, खवासिस्तंभ, सिंगारखोरी आदि प्रसिद्ध हैं। राणा कुंभ ने संवत् १५०५ में गुजरात और मालवा के सुलतान को परास्त करके यह कीर्तिस्तंभ स्मारक स्वरूप बनवाया था। यह १२२ फुट ऊँचा और नौ खंभों का है।

चित्य—वि० [सं०] १. चुनने या इकट्ठा करने योग्य। २. चित्ता संबंधी।

चित्य—संज्ञा पु० १. चित्ता। २. धर्म।

चित्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चुनने का कार्य। एकत्र करना। २. बनाना। ३. चित्ता (की०)।

चित्र—संज्ञा पु० [सं०] [वि० चित्रित] १. चंदन आदि से माथे पर बनाया हुआ चिह्न। तिलक। २. विविध रंगों के भेष से बनी हुई माना वस्तुओं की आकृति। किसी वस्तु का स्वरूप या आकार जो कागज, कपड़े, पत्थर, लकड़ी, लीशे आदि पर सूतिका बथवा कलम और रंग आदि के द्वारा बनाया गया हो। तस्वीर। उ०—चित्रलिखित कपि देखि डेराती।—तुलसी (शब्द०)।

चित्र—चित्रकला। चित्रविद्या।

क्रि० प्र०—उदेहना।—औँचना।—बनाना।—लिखना। करना—अचरज करना। अचंभा करना। उ०—अगहो मित्र कछु चित्र न कीँ। हरि की महिमा मैं अनु सीँ।—नंद० प्र०, पृ० २६२।

मुहा०—चित्र उतारना = (१) चित्र बनाना। तस्वीर खींचना।

(२) वर्णन आदि के द्वारा ठीक ठीक दृश्य सामने उपस्थित कर देना।

१. काव्य के तीन अंगों में से एक जिसमें व्यंग्य की प्रधानता नहीं रहती। अलंकार। ४. काव्य में एक प्रकार का अलंकार जिसमें पदों के अक्षर इस क्रम से लिखे जाते हैं कि हाथी, घोड़े, खजूर, रथ, कमल आदि के आकार के बन जाते हैं। ५. एक प्रकार का वर्णवृत्त जो समानिका वृत्ति के दो चरणों को मिलाने से बनता है। ६. आकाश। ७. एक प्रकार का कोढ़ जिसमें शरीर में सफेद चित्तियाँ या दाग पड़ जाते हैं। ८. एक यम का नाम। ९. चित्रगुप्त। १०. रेंड का पेड़। ११. अशोक का पेड़। १२. चीते का पेड़। चित्रक। १३. वृतराष्ट्र के चौदह पुत्रों में से एक।

चित्र—वि० १. अद्भुत। विचित्र। आश्चर्यजनक। विस्मयकारी। उ०—हे नृप, हाँ कछु चित्र न मानि। ते सब हरहि मिलेई जानि।—नंद० प्र०, पृ० ३१८। २. चितकबरा। कबरा। ३. रंगबिरंगा। कई रंगों का। ४. अनेक प्रकार का। कई तरह का। ५. चित्र के समान ठीक। दुस्त। उ०—बकि पर सुठि बाँक करेहीं। रातिहि कोट चित्र के लेहीं।—जायसी (शब्द०)।

चित्र—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्रिणी] दे० 'चित्रिणी'। उ०—बारि जाति है त्रिय तन पदमिनि हस्तिनि चित्र। कुनि संघिनिय प्रमान इह मन नह रंजिय मित्त—पृ० रा० २५। ११९।

चित्रकंठ—संज्ञा पु० [सं० चित्रकण्ठ] कबूतर। कपोत। परेवा।

चित्रकंबल—संज्ञा पु० [सं० चित्रकम्बल] १. कालीन। २. हाथी की भूल जिसपर चित्र बने रहते हैं (की०)।

चित्रक—संज्ञा पु० [सं०] १. तिलक। २. चीते का पेड़। चित्ता। ३. चीता। बाघ। ४. खूर। बलवान्। ५. रेंड का पेड़। ६. चिरायता। ७. मुचकुंद का पेड़। ८. चित्रकार।

चित्रकर—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चित्र बनानेवाला। चित्रकार। २. ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार एक संकर जाति जिसकी वर्णन विष्वकर्मा पुरुष और शूद्रा स्त्री से कही गई है। ३. तिमिषा का पेड़। ४. अभिनेता (की०)।

चित्रकर्म—संज्ञा पु० [सं० चित्रकर्मन्] १. चित्र बनाना। २. विचित्र कार्य करना। ३. आलेखन। ४. इंद्रजाल (की०)।

चित्रकर्मी—संज्ञा पु० [सं० चित्रकर्मिन्] १. चित्रकार। मुसीवर। कर्मगर। २. विचित्र कार्य करनेवाला। ३. तिमिषा वृक्ष।

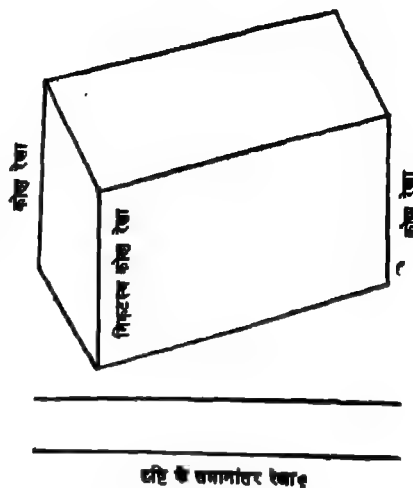
चित्रकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्र बनाने की विद्या। तस्वीर बनाने का हुनर।

विशेष—चित्रकला का प्रचार चीन, मिस्र, भारत आदि देशों में अत्यंत प्राचीन काल से है। मिस्र से ही चित्रकला यूनान में गई, जहाँ उसने बहुत उन्नति की। ईसा से १४०० वर्ष पहले मिस्र देश में चित्रों का अच्छा प्रचार था। संदन के ब्रिटिश म्यूजियम में ३००० वर्ष तक के पुराने मिस्रि चित्र हैं। भारतवर्ष में भी अत्यंत प्राचीन काल से यह विद्या प्रचलित थी, इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। रामायण में चित्रों, चित्रकारों और चित्रशालाओं का वर्णन बराबर आया है। विष्वकर्मा

शिल्पकाल में लिखा है कि स्थापक, तलक, शिल्पी आदि में से शिल्पी को ही चित्र बनाना चाहिए। प्राकृतिक दृश्यों को अंकित करने में प्राचीन भारतीय चित्रकार कितने निपुण होते थे, इसका कुछ आभास मवसूति के उत्तररामचरित के देखने से मिलता है, जिसमें अपने सामने लाए हुए वनवास के चित्रों को देख सीता अंकित हो जाती हैं। यद्यपि आजकल कोई ग्रंथ चित्रकला पर नहीं मिलता है, तथापि प्राचीन काल में ऐसे ग्रंथ अवश्य थे। काश्मीर के राजा जयवर्धन की सभा के कवि दामोदर गुप्त ने धाज से ११०० वर्ष पहले अपने कुट्टनीमत नामक ग्रंथ में चित्रविद्या के 'चित्रसूत्र' नामक एक ग्रंथ का उल्लेख किया है। अजंता गुफा के चित्रों में प्राचीन भारतवासियों की चित्रनिपुणता देख अंकित रह जाना पड़ता है। बड़े बड़े विज्ञ युरोपियनों ने इन चित्रों की प्रशंसा की है। इन गुफाओं में चित्रों का बनाना ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व से आरंभ हुआ था और आठवीं शताब्दी तक कुछ न कुछ गुफाएँ नई खुदती रहीं। अतः डेढ़ सौ हजार वर्ष के प्रत्यक्ष प्रमाण तो ये चित्र अवश्य हैं। चित्रविद्या सीकने के लिये पहले प्रत्येक प्रकार की सीधी टेढ़ी, बक आदि रेखाएँ खींचने का अभ्यास करना चाहिए। इसके उपरान्त रेखाओं के ही द्वारा वस्तुओं के स्थूल ढाँचे बनाने चाहिए। इस विद्या में दूरी आदि के सिद्धांत का पूरा अनुशीलन किए बिना निपुणता नहीं प्राप्त हो सकती। दृष्टि के समानांतर या ऊपर नीचे के विस्तार का अंकन तो सहज है, पर आँखों के ठीक सामने दूर तक गया हुआ विस्तार अंकित करना कठिन विषय है। इस प्रकार की दूरी का विस्तार प्रदर्शित करने की क्रिया को 'पर्सपेक्टिव' (Perspective) कहते हैं। किसी नगर की दूर तक सामने गई हुई सड़क, सामने की बड़ी हुई नदी आदि के दृश्य बिना इसके सिद्धांतों को जाने नहीं दिखाए जा सकते। किस प्रकार निकट के पदार्थ बड़े और साफ दिखाई पड़ते हैं, और दूर के पदार्थ क्रमशः छोटे और धुंधले होते जाते हैं, ये सब बातें अंकित करनी पड़ती हैं। देखें चित्र उदाहरण के लिये दूर पर रखा हुआ एक चौखूँटा सड़क लीजिए। मान लीजिए कि आप उसे एक ऐसे किनारे से देख रहे हैं जहाँ से उसके दो पार्श्व या तीन कोण दिखाई पड़ते हैं। अब चित्र बनाने के निमित्त हम एक पेंसिल आँखों के समानांतर लेकर एक आँख दबाकर देखेंगे तो सड़क की सबके निकटस्थ सड़ी कोणरेखा (ऊँचाई) सबसे बड़ी दिखाई देगी; जो पार्श्व अधिक सामने रहेगा, उसके दूसरे ओर की कोणरेखा उससे छोटी और जो पार्श्व कम दिखाई देगा, उसके दूसरे ओर की कोणरेखा सबसे छोटी दिखाई पड़ेगी। अर्थात् निकटस्थ कोणरेखा से लगा हुआ उस पार्श्व का कोण जो कम दिखाई देता है, अधिक दिखाई पड़नेवाले पार्श्व के कोण से छोटा होगा।

दूसरा सिद्धांत आलोक और छाया का है जिसके बिना सजीवता नहीं आ सकती। पदार्थ का जो अंश निकट और सामने रहेगा वह खुलता (आलोकित) और स्पष्ट होगा; और जो दूर या बगल में पड़ेगा, वह अस्पष्ट और कालिमा लिए होगा। पदार्थों

का चकार और गहराई आदि भी इसी आलोक और छाया के नियमानुसार दिखाई जाती है। जो अंश उठा या उभरा होगा,



दृष्टि के समानांतर रेखाएँ

वह अधिक खुलता होगा, और जो बँसा या गहरा होगा वह कुछ स्याही लिए होगा। इन्हीं सिद्धांतों को न जानने के कारण बाजारू चित्रकार सीधे आदि पर जो चित्र बनाते हैं वे बेसबाक से जान पड़ते हैं। चित्रों में रंग एक प्रकार की कूँची से भरा जाता है जिसे चित्रकार कलम कहते हैं। पहले यहाँ गिलहरा की पूँछ के बालों की कलम बनती थी। अब विलायती कुछ काम में आते हैं।

चित्रकाय—संज्ञा पु० [सं०] १. चीता। २. तेंदुआ (कौ०)।

चित्रकार—संज्ञा पु० [सं०] चित्र बनानेवाला। चित्तेरा।

चित्रकारी—संज्ञा कौ० [हि० चित्रकार + ई (प्रत्य०)] १. चित्रविद्या। चित्र बनाने की कला। २. चित्रकार का काम। चित्र बनाने का व्यवसाय।

चित्रकाव्य—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का काव्य जिसके अक्षरों को विशेष क्रम से लिखने से कोई विशेष चित्र बन जाता है। ऐसा काव्य अथम समझा जाता है।

चित्रकुंडल—संज्ञा पु० [सं० चित्रकुण्डल] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रकुष्ठ—संज्ञा पु० [सं०] सफेद कोढ़। श्वेत कुष्ठ (कौ०)।

चित्रकूट—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रसिद्ध रमणीक पर्वत जहाँ वनवास के समय राम और सीता ने बहुत दिनों तक निवास किया था।

विशेष—यह तीर्थस्थान बाँदा जिले में है और प्रयाग से २७ कोस दक्षिण में पड़ता है। इस पहाड़ के नीचे पयोष्णी नदी बहती है जिसमें मंदाकिनी नाम की एक और छोटी नदी मिलती है। रामनवमी और दीवाली के अवसर पर यहाँ बहुत दूर दूर से तीर्थ-यात्री आते हैं। भारतीयों ने रामायण में इस स्थान को भार-हाज के आश्रम से साढ़े तीन योजन दक्षिण की ओर लिखा है।

२. चित्तोर (मिलालेजों में चित्तोर का यही नाम आता है) ।

१. हिमवत् शृङ्ग के अनुसार हिमालय के एक शृंग का नाम ।

चित्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिनिष्ठा का पेड़ । २. चित्र-कार (कौ०) ।

चित्रकूट—वि० अद्भुत । विचित्र (कौ०) ।

चित्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसके पास चित्रित पताका हो । २. भागवत के अनुसार लक्ष्मण के एक पुत्र का नाम । ३. गरुड़ के एक पुत्र का नाम । ४. वशिष्ठ के एक पुत्र का नाम । ५. कंसा के गर्भ से उत्पन्न देवभाग यादव का एक पुत्र । ६. भागवत के अनुसार शूरसेन देश का एक राजा जिसे पुत्रशोक से संतप्त देख नारद ने मंत्रोपदेय दिया था ।

चित्रकोट—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकूट] चित्तोर । उ०—इगरावत आसलान आसमान साहै । उदैसिच चित्रकोट कियो सो निवाहै । —रा० क०, पृ० १२२ ।

चित्रकोण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुटकी । २. काली कपास ।

चित्रकोष्ठा—संज्ञा पुं० [सं०] क्षिपकली (कौ०) ।

चित्रगन्ध—संज्ञा पुं० [सं० चित्रगन्ध] हरताल ।

चित्रगढ़—संज्ञा पुं० [हिं० चित्र+गढ़] १० 'चित्रकोट' । राजनवर रक्षिय प्रसन करिय सन्न सामंत । उ०—माल मुति दिय चंद कवि चल्थो चित्रगढ़ मंति ।—पृ० रा०, २४ । ४८१ ।

चित्रगत—वि० [सं०] चित्रित (कौ०) ।

चित्रगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध यमराजों में से एक जो प्राणियों के पाप और पुण्य का लेखा रखते हैं ।

विशेष—चित्रगुप्त के संबंध में पद्मपुराण, गरुड़पुराण अविष्यपुराण, आदि पुराणों में कथाएँ मिलती हैं । स्कंदपुराण के प्रभासखंड में लिखा है कि चित्र नाम के कोई राजा थे, जो हिसाब किताब रखने में बड़े दक्ष थे । यमराज ने आह्वान किया कि उन्हें अपने यहाँ लेखा रखने के लिये ले जाय । अतः एक दिन जब राजा नदी में स्नान करने गए, तब यमराज ने उन्हें उठा मँगाया और अपना सहायक बनाया । इसपर राजा की एक बहिन अत्यंत दुःखी हुई और चित्रपथा नाम की नदी होकर चित्र की बूँदों में समुद्र की ओर गई । अविष्यपुराण में लिखा है कि जब ब्रह्मा सृष्टि बनाकर ध्यान में मग्न हुए तब उनके शरीर से एक विचित्रवर्ण पुरुष कलम दवात हाथ में लिए उत्पन्न हुआ । जब ब्रह्मा का ध्यान भंग हुआ तब उस पुरुष ने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज ! मेरा नाम और काम बताइए' ! ब्रह्मा जो ने संतुष्ट होकर कहा—'तुम हमारे शरीर से उत्पन्न हुए हो; इसलिये तुम कायस्थ हुए और तुम्हारा नाम चित्रगुप्त हुआ । तुम प्राणियों के पाप पुण्य का लेखा रखने के लिये यमराज के यहाँ रहो' । मनु, नागर, सेनक, गोड, श्रीवास्तव्य, मायुर, अहिष्ठा, शैकसेन और संबन्ध ये चित्रगुप्त के पुत्र हुए । यह कथा पीछे की गढ़ी हुई जान पड़ती है; क्योंकि ऊपर जो नाम दिए हैं, वे प्रायः देशभेद सूचक हैं । गरुड़पुराण के चित्रकल्प में तो लिखा है कि यमपुर के पास ही एक चित्रगुप्तपुर है, जहाँ चित्रगुप्त के अधीनस्थ कायस्थ लोग बराबर काम किया करते

हैं । बिहार, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश के सब कायस्थ अपने-अपने चित्रगुप्त के बंज बतलाते हैं । यमद्वितीया के दिन कायस्थ लोग चित्रगुप्त और कलम बाबात की पूजा करते हैं ।

चित्रगृह—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रमाला (कौ०) ।

चित्रघंटा—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्रघण्टा] एक देवी जो नी दुर्गाओं में तृतीय मानी जाती है ।

चित्रचाप—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

चित्रजल्प—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में रस के अंतर्गत एक वाक्यभेद । वह भावपूर्ण और अभिप्रायगमित वाक्य जो नायक और नायिका कूटकर एक दूसरे के प्रति कहते हैं ।

विशेष—चित्रजल्प के दस भेद किए गए हैं, यथा—प्रजल्प, परिजल्पित, विजल्प, उज्जल्प, संजल्प, अवजल्प, अभिजल्पित, व्याजल्प, प्रतिजल्प और सुजल्प ।

चित्रजात—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'चित्रयोग' ।

चित्रण—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रमय वर्णन । शब्दों द्वारा ऐसा वर्णन करना जिससे वर्ण्य का भानसिक चित्र उपस्थित हो जाय । संश्लिष्ट रूपयोजना । उ०—स्थलवर्णन में तो वस्तुवर्णन की सूक्ष्मता कुछ दिनों तक वैसी ही बनी रही पर वस्तुवर्णन में चित्रण उतना आवश्यक नहीं समझा गया जितना कुछ इनी गिनो वस्तुओं का कथन मात्र करके भावों के उद्घोषण का वर्णन ।—चिंतामणि, भा० १, पृ० १६ ।

चित्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विचित्रता । उ०—धीर गति से वह बदलता जा रहा नित खेल के पट । चित्रता पर उस चतुर की आजतक यक सँ रही है ।—चिंता, पृ० ७८ ।

चित्रतंडुल—संज्ञा पुं० [सं० चित्रतण्डुल] बायबिडंग ।

चित्रताल—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का चौताला ताल जिसमें दो द्रुत, एक प्लुत, और तब फिर एक द्रुत होता है । इसका बोल यह है,—डुगुं डुगुं धुमि धुमि धरिषा तक तक ५' थो ।

चित्रतैल—संज्ञा पुं० [सं०] रेंडी या मंडी का तेल ।

चित्रत्वक्—संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र ।

चित्रत्वक्ष्—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'चित्रत्वक्' ।

चित्रदंडक—संज्ञा पुं० [सं० चित्रदण्डक] १. सूरज । २. कपास (कौ०) ।

चित्रदीप—संज्ञा पुं० [सं०] पंचदशी नामक वेदांत ग्रंथ के अनुसार एक दीप । पट के ऊपर बने हुए चित्र के समान जगत् के विविध रूपों का आभास जिसे मायामय और मिथ्या समझना चाहिए ।

चित्रदेव—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय का अनुचर ।

चित्रदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] महेंद्रवाकणी लता । २. शक्ति या देवी का एक भेद ।

चित्रधर्मा—संज्ञा पुं० [सं० चित्रधर्म] एक देश का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है ।

चित्रधाम—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञादि में पुष्पी पर बनाया हुआ एक चौखूँटा चक्र जो चारखाने की तरह होता था और जिसके खानों को मिन मिन रंशों से भरते थे । सर्वतोभद्र मंडल ।

चित्रना—कि० सं० [सं० चित्र + ना (प्रत्यय)] १. चित्रित करना। चित्र बनाना चित्ररत्न। उ०—चित्री बहु चित्रनि परम चित्रिनि केशवदास निहारि। अनु विवरूप की समस्त धारसी रबी बिरंवि बिचारि।—केशव (शब्द०)। २. रंग भरना। चित्रित करना।

चित्रनेत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना।

चित्रपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] तिसिर पक्षी। तीतर।

चित्रपट—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह कपड़ा, कागज या पटरी जिसपर चित्र बनाया जाय या बना हो। चित्राधार। २. वह वस्त्र जिसपर चित्र बने हों। छोट। ३. चित्र। तसवीर (को०)। ४. सिनेमा की फिल्म। सिनेमा।

चित्रपटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा चित्रपट। उ०—प्राणों की चित्रपटी में आँकी सी कदल कषाएँ।—बामा, पु० २७।

चित्रपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चित्रपट' (को०)।

चित्रपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पुतली के पीछे का भाग जिसपर किरण पड़ने से पदार्थों के रूप दिखाई पड़ते हैं।

चित्रपत्र—वि० विचित्र पत्र युक्त। रंग बिरंगे परबाला (पक्षी)।

चित्रपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कपित्थपर्णी पृष्ठ। २. द्रोण-पुष्पी। गुमा।

चित्रपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपिप्पली।

चित्रपथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभास तीर्थ के अंतर्गत ब्रह्मकुंड के पास की एक छोटी नदी जो अब सूख गई है; केवल बरसात में कुछ बहती है। वि० दे० 'चित्रगुप्त'।

चित्रपदा—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में २ गण और २ गुरु होते हैं। जैसे,—रूपहि देखा मोहैं। ईश कहो नर को हूँ। संभ्रम चित भरुं। रामहि यों सब ब्रूँ।—केशव (शब्द०)। २. मैना चिड़िया। सारिका। ३. लजालू नाम की लता। छुईमुई। लजाधुर।

चित्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मजीठ। २. कर्णस्फोट लता। कनकोड़ा। ३. जलपिप्पली। ४. द्रोणपुष्पी। गुमा।

चित्रपादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना।

चित्रपिच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

चित्रपुंख—संज्ञा पुं० [सं० चित्रपुंख] बाण। तीर।

चित्रपुट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छह ताला ताल जिममें दो लघु, दो द्रुत, एक लघु, और एक प्लुत होता है। इसका बोल यह है—विगिदा। विमितक। दा० दा० तक यों। फिट बरि विचिगन यों ३'।

चित्रपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुड़िया (को०)।

चित्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] रामसर नाम की नार जाति की बास।

चित्रपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमड़ा।

चित्रपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] गोरा पक्षी। गोरैया।

चित्रफल—संज्ञा पुं० [सं०] १. चितला मछली। २. तरबूज।

चित्रफलक—संज्ञा पुं० [सं०] हापीदाँत, पत्थर, काठ, कागज आदि का तख्ता जिसपर चित्र बनाया जाता है।

चित्रफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किकड़ी। २. बैंगन। ३. कंटकारि। मटकटैया। ४. लिंगिनी लता। ५. महेंद्रवाखी। ६. फलुई मछली।

चित्रवर्ह—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोर। मयूर। २. गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

चित्रभानु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २. सूर्य। ३. चित्रक। जीते का पेड़। ४. अर्क। मदार। ५. जैरव। ६. अश्विनीकुमार। ७. साठ संवत्सरों के बारह युगों में से चौथे युग के पहले वर्ष का नाम। ८. मणिपुर के राजा जो मर्जुन की पत्नी चित्रांगदा के पिता थे।

चित्रभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी भाषा जिसमें विचारों को इस भाँति प्रस्तुत किया जाय कि उनकी कल्पना साकार हो।

चित्रभाषावाद—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रभाषा का सिद्धांत या मत।

चित्रभाष्य—संज्ञा पुं० [सं०] कूटनीतिक भाषा या व्यंजना (को०)।

चित्रभूट—वि० [सं०] दे० 'चित्रगत' (को०)।

चित्रभेषजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठगूलर। कठूमल।

चित्रभोग—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का वह सहायक या खैरखाह जो ग्राम, बाजार, वन आदि में मिलनेवाले पदार्थों तथा गाड़ी, घोड़े आदि से समय पर सहायता करे।

चित्रमंथ—संज्ञा पुं० [सं० चित्रमंथ] एक प्रकार का ताल (को०)।

चित्रमंडप—संज्ञा पुं० [सं० चित्रमण्डप] १. मर्जुन की पत्नी चित्रांगदा के पिता का नाम। ३. अश्विनीकुमार (को०)।

चित्रमंडल—संज्ञा पुं० [सं० चित्रमण्डल] एक प्रकार का सर्प (को०)।

चित्रमति—वि० [सं० चित्र + मति] विचित्र बुद्धिवाला। जिसकी बुद्धि बिलक्षण हो। उ०—विश्वामित्र पवित्र चित्रमति नामदेव पुनि।—केशव (शब्द०)।

चित्रमद—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक आदि में किसी स्त्री का अपने पति या प्रेमी का चित्र देखकर बिरहमूचक भाव दिलावना।

चित्रमृदा—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हिरन जिसकी पीठ पर सफेद सफेद चितियाँ होती हैं। जीतल।

चित्रमेखल—संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

चित्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] चौंसठ कलाओं में से एक अर्थात् बूढ़े को जवान और जवान को बूढ़ा बना देने की विद्या। वि० दे० 'कला'।

चित्रयोधी—वि० [सं० चित्रयोधिन्] विचित्र युद्ध करनेवाला। मारी योद्धा।

चित्रयोधी—संज्ञा पुं० १. मर्जुन। २. मर्जुन का पेड़।

चित्ररथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. एक गंधर्व का नाम जो कश्यप और दक्षकन्या मुनि के पुत्र थे।

विशेष—चित्ररथ कुबेर के सखा माने जाते हैं। ये गंधर्वराज, अंगारपर्ण, दग्धरय और कुबेरसख भी कहलाते हैं।

१. श्रीकृष्ण के पुत्र गद के एक पुत्र का नाम। ४. महाभारत, के अनुसार अंग देश के एक राजा का नाम। ५. एक यदुवंशी राजा जो विष्णु पुराण के अनुसार रुद्र और भागवत के

अनुसार विशदगुरु के पुत्र थे। ६. महाभारत के अनुसार ऋषदगुरु नामक राजा के एक पुत्र।

चित्ररथ^१—वि० विचित्र रथवाला।

चित्ररथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत भीष्मपर्व में वर्णित एक नदी।

चित्ररथिम—संज्ञा पुं० [सं०] महर्षियों में से एक।

चित्ररेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाणासुर की कन्या ऊषा की एक सहेली। वि० ३० 'चित्रलेखा'।

चित्ररेफ—संज्ञा पुं० [सं०] १. भागवत के अनुसार शाकद्वीप के राजा प्रियव्रत के पुत्र मेघातिथि के सात पुत्रों में से एक।

चित्रोष—मेघातिथि ने अपने सात पुत्रों को सात वर्ष बाँट दिए थे जिनके नामों के अनुसार ही उन वर्षों के नाम पड़े।

२. एक वर्ष या सूचिभाग का नाम।

चित्ररत्न—वि० [सं०] चितकबरा। रंगविरंगा। चितला।

चित्ररत्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मंजीठ।

चित्ररत्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखा इमली।

चित्ररत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुंदर निलावट। लुगलुगी।—(मनु०)। २. चित्र बनाने का कार्य।

चित्रलिपि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लिपि, जिसमें संकेतों के व्यंजक चित्रों द्वारा अभिप्राय या आशय का बोध कराया जाता है। लिपिविकास की वह अवस्था जिसमें चित्रात्मक रेखाप्रतीकों से भाषा का लेखन किया जाता था। चित्रात्मक लिपि। (सं० पिक्टोग्राफिक लिपि)।

चित्रलेखक—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रकार (को०)।

चित्रलेखन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुँदर अक्षर लिखना। २. चित्र बनाना (को०)।

चित्रलेखनिक—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूलिका (को०)।

चित्रलेखनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तसवीर बनाने की कलम। कुँची।

चित्रलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक वर्षावृत्त जिसके प्रत्येक चरण में १ मगण १ भगण, १ नगण और तीन यगण होते हैं। जैसे,—ये भीनी यों गुणनि सुनु यथा कामरी पाइ बारी। बोली ना बालि। कहत तुमसों दीन हूँ बारि बारी। २. बाणासुर की एक कन्या ऊषा की एक सहेली जो कूष्माण्ड की लड़की थी। यह चित्रकला में बड़ी निपुण थी। ३. एक अक्षरा का नाम। ४. चित्र बनाने की कलम। तसवीर बनाने की कुँची।

चित्रलोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका। मैना।

चित्रबदाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] पाठान मत्स्य। पहिना मछली।

चित्रवन—संज्ञा पुं० [सं०] गंडकी के किनारे का पुराणप्रसिद्ध एक वन।

चित्रवर्मा—संज्ञा पुं० [सं०] १. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। २. मुद्राराक्षस के अनुसार कुलूत देश के एक राजा का नाम।

चित्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विचित्र लता। २. महेंद्रवाणी।

चित्रवहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नदी।

चित्रबाज—संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुट। मुर्गा (को०)।

चित्रबाण—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

चित्रबाहन—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत में वर्णित मणिपुर के एक नाम राजा।

चित्रविचित्र—वि० [सं०] १. रंग विरंगा। कई रंगों का। २. बेतबूटे-दार। नक्काशीदार।

चित्रविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्र बनाने की विद्या।

विशेष—दे० 'चित्रकला'।

चित्रविन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] आलेखन। चित्रकर्म। चित्र बनाना (को०)।

चित्रवीर्य^१—वि० [सं०] विचित्र बली।

चित्रवीर्य^२—संज्ञा पुं० लाल रेंड। रक्त एरंड।

चित्रवेगिक—संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम।

चित्रशार्दूल—संज्ञा पुं० [सं०] चीता (को०)।

चित्रशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह घर जहाँ चित्र बनते हों या विक्रयार्थ रखे जाते हों। २. वह घर जहाँ चित्र हों। वह घर जिसमें बहुत सी तसवीरें टंगी हों। ३. वह स्थान जहाँ चित्रकारी सिखाई जाती हो। ४. वह घर या भवन जहाँ चित्र पर चित्र बने हो (को०)।

चित्रशिखंडिज—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्रशिल्लिखज] वृहस्पति।

चित्रशिखंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्रशिल्लिखन्] सप्त ऋषि। मरीचि, धांगरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वासष्ठ—ये सात ऋषि।

चित्रशिर—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्रशिरस्] १. एक गंधर्व का नाम। २. सुश्रुत के अनुसार मल मूत्र से उत्पन्न एक विष। गंदगी का जहर।

चित्रशिल्पी—संज्ञा पुं० [सं० चित्र + शिल्पिन्] चित्रकार (को०)।

चित्रशीर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] एक विषया कीड़ा (को०)।

चित्रश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रतिभा या अद्भुत सुंदरता (को०)।

चित्रसंग—संज्ञा पुं० [सं० चित्रसङ्ग] १६ अक्षरों का एक वर्णवृत्त।

चित्रसंस्थ—वि० [सं०] चित्रित। आलेखित (को०)।

चित्रसभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चित्रशाला' (को०)।

चित्रसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] चीतल साँप।

चित्रसार^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चित्रसारी] दे० 'चित्रसारी'। उ०—चित्रसार पर तक्षक भाया। रानी केर तहँ पलंग रहाया।—कबीर सा०, पृ० ७२।

चित्रसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्र + साला] १. वह घर जहाँ चित्र टंगे हों या दीवार पर बने हों। २. सजा हुआ सोने का कमरा। विलासभवन। रंगमहल।

चित्रसाल—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चित्रशाला'। उ०—प्रति चित्रसाल बनी निज महली हरिजन तहँ उरमाने।—प्राण०, पृ० ६४।

चित्रसेन—संज्ञा पुं० [सं०] १. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। २. एक गंधर्व का नाम। ३. एक पुरुवंशी राजा जो परीक्षित के पुत्रों में से थे। ४. शंबरासुर के एक पुत्र का नाम (हरिवंश)। ५. चित्तोर का एक राजा (पद्मावत)।

चित्रस्थ—वि० [सं०] चित्रित। प्रंकित। उ०—कहा मांडवी ने उच्छुक भी लगता है चित्रस्थ मला।—साकेत, पृ० १६४।

चित्रकला—संज्ञा पुं० [सं०] बार का एक हाथ । हथियार बसाने का एक हाथ (महाभारत) ।

चित्रांकन—संज्ञा पुं० [सं० चित्राङ्कन] १. चित्र अंकित करना । २. आलेखन कर्म [को०] ।

चित्रांग^१—वि० [सं० चित्राङ्ग] [वि० स्त्री० चित्राङ्गी] जिसका अंग विचित्र हो । जिसके अंग पर चित्तियाँ, चारियाँ हों ।

चित्रांग^२—संज्ञा पुं० १. चित्रक । चीता । २. एक प्रकार का सर्प । चीतल । ३. चीतल मृग । ४. ईगुर । ५. हरताल ।

चित्राङ्गद—संज्ञा पुं० [सं० चित्राङ्गद] १. सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न राजा जातनु के एक पुत्र जो विश्ववीर्य के छोटे भाई थे । २. देवी भागवत के अनुसार एक गंधर्व का नाम । ३. महाभारत, अथर्ववेद पर्व में वर्णित दशाष्ट्र देश के एक प्राचीन राजा ।

चित्राङ्गदा—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्राङ्गदा] १. मणिपुर के राजा चित्रबाहन की कन्या जो अर्जुन की व्याही थी । २. रावण की एक स्त्री जो वीरबाहु की माता थी ।

चित्राङ्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्राङ्गी] १. मजीठ । २. कनसलाई नाम का एक कीड़ा । कनसलूरा ।

चित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सत्ताईस नक्षत्रों में से चौदहवाँ नक्षत्र ।

विशेष—इसकी तारा संख्या एक मानी गई है, पर यह योगतारा भी दिखाई देता है । इसकी कला ४० और विशेष दो कला है । इसका कलाक्षेत्र है; अर्थात् यह सूर्य कक्षा के तेरहवें अंश के बीच अस्त और तेरहवें अंश पर उदय होता है । यह पूर्व दिशा में उदय होता है और पश्चिम में अस्त होता है (सूर्योदय) । अतएव ब्राह्मण के अनुसार सुंदर और चित्र विचित्र होने के कारण ही इसे चित्रा कहते हैं । फलित में यह पार्श्वमुख नक्षत्र माना गया है । इसमें गृहारंभ, गृहप्रवेश, हाथी, रथ, नौका, घोड़े आदि का व्यवहार शुभ है । इस नक्षत्र में जिसका जन्म होता है वह राक्षसगण से माना जाता है; विवाह की गणना में उसका भेल अनुपयोग के साथ नहीं होता । रात्रिमान को १५ भागों में बाँट देने से मुहूर्त निकल आता है । इनमें से चौदहवें मुहूर्त को चित्रा का मुहूर्त मान लेना चाहिए, चाहे और कोई दूसरा नक्षत्र भी हो । जो जो कार्य चित्रा नक्षत्र में हो सकते हैं, वे सब चित्रा मुहूर्त में भी हो सकते हैं ।

२. मूषिकपर्णी । ३. ककड़ी या कीरा । ४. दंती वृक्ष । ५. गंड वृक्ष । ६. मजीठ । ७. बायबिडग । ८. मूसाकानी । घालुकर्णी । ९. मजवाइन । १०. सुमद्रा । ११. एक सर्प का नाम । १२. एक नदी का नाम । १३. एक अक्षरा का नाम । १४. एक रागिनी जो भैरव राग की पाँच स्त्रियों में मानी जाती है । १५. संगीत में एक मूर्छना का नाम । १६. पञ्चम अक्षरों की एक वर्णवृत्ति जिसमें पहले तीन नगण, फिर दो यण होते हैं । जैसे—मो मो माया माही जानो याहि छाड़े बिना ना । पावे कोऊ प्यारे मो सिधू कहीं पार जाना । १७. एक छंद जिसमें प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं और अंत में एक शुद्ध होता है । इसकी पाँचवीं, आठवीं और नवीं मात्रा लघु होती है । यह चौपाई का एक नेत्र है । जैसे—

इतकहि कहि निज सवने आई ।—(अब्द०) । १८. प्राचीन काल का एक बाजा जिसमें तार लगे होते थे । १९. चितकबरी नाम ।

चित्राक्ष^१—संज्ञा पुं० [सं०] घृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

चित्राक्ष^२—वि० [वि० स्त्री० चित्राक्षी] विचित्र या सुंदर नेत्रवाला ।

चित्राक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारिका । मैना ।

चित्राक्षी—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. शिव का अनुचर घंटाकर्ण । ३. बलि दिए हुए बकरे के रक्त से रंजित बलाट या मस्तक [को०] ।

चित्राक्षि—संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद पुराण के प्रभास खंड में वर्णित प्रभास क्षेत्र में शिव की स्थापित सूर्य मूर्ति ।

चित्राक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चित्रपट । २. चित्र रखने का स्थान ।

चित्राक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] बकरी के दूध में पकाया और बकरी के कान के रक्त में रंगा हुआ जो और चावल ।

चित्राक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पूषा [को०] ।

चित्राक्ष^(३)—संज्ञा स्त्री० [हिं० चित्राक्ष (प्रत्य०)] चित्रकारी । उ०—कोरि किए चित्राक्ष बहु एक शिला के माहि । यों सुंदर सब ब्रह्म-मय ब्रह्म बिना बखु नाहि ।—सुंदर० अं०, भा० २, पृ० ८०२ ।

चित्रायस—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात । लोहा ।

चित्रायुध^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. विलक्षण अस्त्र । २. घृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

चित्रायुध^२—वि० विलक्षण अस्त्रयुक्त ।

चित्रार^(३)—संज्ञा पुं० [सं० चित्रकार] चित्रकार ।

चित्राल—संज्ञा पुं० [सं० चित्रालय] काश्मीर के पश्चिम का एक पहाड़ी प्रदेश ।

चित्रालय—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रशाला [को०] ।

चित्राक्षसु—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों से मंडित रात्रि ।

चित्राक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सत्यवान का एक नाम ।

चित्रास—संज्ञा पुं० [सं० चित्र] चित्रों का समूह । चित्रशाला । उ०—सुंदर जागत भीत महि लिप्यो जगत चित्रास ।—सुंदर० अं०, भा० २, पृ० ७८३ ।

चित्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] चेत का महीना ।

चित्रिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पद्मिनी आदि स्त्रियों के चार भेदों में से एक ।

विशेष—झीलझील न बहुत भारी न बहुत छोटा, नाक तिल के फूल की सी, नेत्र कमलदल के समान, मुँह तिल, बिंदी आदि से सँवारा हुआ, यही सब इसके लक्षण हैं । यह विविध कलाओं तथा शृंगारवेष्टा में निपुण होती है । इस जाति की स्त्री के साथ मृग जाति के पुरुष का जोड़ उपयुक्त होता है ।

चित्रित—वि० [सं०] १. चित्र में सौंचा हुआ । चित्र द्वारा दिखाया हुआ । जिसका रंग रूप चित्र में दिखाया गया हो । जैसे,—उसमें एक व्याघ्र चित्रित है । २. जिसपर चित्र बने हों ।

जिसपर नक्काशी हो। ३. जिसपर चित्तियाँ या रंग की बारियाँ हों।

चित्री—वि० [सं० चित्रिन्] १. चित्रयुक्त। चित्रित। उ०—
ऊँचा मंदर नीलहर माटी चित्री पील।—कबीर ग्रं०, पृ० ७४।

२. चितकबरा। कबरा।

चित्राकरण, चित्राकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनेक वर्णों से रंगना।
२. चित्रांकन। ३. अलंकरण। सजाना। ४. आश्रय [को०]।

चित्रोक्त—वि० [सं०] १. चित्र रूप में प्रस्तुत किया गया। उ०—
मेरा मेरा मैं, जिस शब्द योजना से चित्रीकृत भावराशि की
धनुषीति प्राप्त कर रहा है, उसका उपादान सामाजिक है,
वैयक्तिक नहीं। काव्यशास्त्र, पृ० ६६। २. सजाया हुआ।

चित्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रा नक्षत्र के पति चंद्रमा।

चित्रोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आकाश। २. अलंकृत भाषा में
कथन। ३. प्रिय और सुंदर उक्ति या भाषण [को०]।

चित्रोत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें प्रश्न ही के शब्दों
में उत्तर हो या कई प्रश्नों का एक ही उत्तर हो। जैसे,—
(क) कोकहिये जल सो सुखी काकहिये पर श्याम। काकहिये
जे रस बिना कोकहिये सुख बाम। इसमें 'कोक' 'काक' 'पाम'
आदि उत्तर दोहे के शब्दों ही में निकल आते हैं। (ख) गाउ
पीठ पर लेहु भंग राग अरु हार कर। गृह प्रकाश कर देहु
काहु कछो 'सारंग नहीं।' यह 'सारंग नहीं' से सब प्रश्नों
का उत्तर हो गया। (ग) को सुभ अक्षर? कोन युवति जो
वन बस कोनी? विजय सिद्धि संग्राम राम कहं कोने दीनी?
कंसराज यदुवंश बसत कैसे केशवपुर? बट सों कहिए कहा?
नाम जानहु अपने उर। कहि कोन युवति जग जनन किय
कमलनयन सुखम बरणि? सुन वेद पुराणन में कही सनका-
दिक 'शंकरसरणि'। इसे 'प्रश्नोत्तर' भी कहते हैं।

चित्रोत्पला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उड़ीसा की एक नदी जिसे प्रायः
कल 'चित्ररत्ना' कहते हैं। २. अस्स, मारकंडेय और वामन
पुराण के अनुसार एक नदी जो ऋक्षपाद पर्वत से निकली है।

चित्रोपला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका उल्लेख महाभारत
में है।

चित्र्य—वि० [सं०] १. पूज्य। २. चुनने या इकट्ठा करने योग्य।

चित्रड़ा—संज्ञा पुं० [सं० चोरी] = फटा हुआ या खोर धयवा खीवर
(धयवा देश०)। फटा पुराना कपड़ा। कपड़े की धज्जी।
लत्ता। लुगरा।

चौ०—चिपड़ा गुबड़ा = फटे पुराने कपड़े।

मुहा०—चिपड़ा सपेटना = फटे पुराने कपड़े पहनना।

चिपड़ा—क्रि० सं० [सं० चोरी] १. चोरना। फाड़ना। कपड़े,
चमड़े, कागज आदि चढ़र के रूप की वस्तुओं को फाड़कर टुकड़े
टुकड़े करना। धज्जी धज्जी करना। २. धज्जिया उठाना।
अपमानित। लज्जित करना। नीचा दिखाना। जलील करना।

चिंधरा—संज्ञा पुं० [हि० चिपड़ा] दे० 'चीवरा'। उ०—चिंधरा
पहिरि लंगोटी साका के गया।—पलटू०, भा० २, पृ० ७६।

चिद्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चिद्' [को०]।

चिदाकाश—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश के समान निलिप्त और सबका
आधारभूत ब्रह्म। परब्रह्म।

चिदात्मक—वि० [सं०] चेतना से युक्त [को०]।

चिदात्मा—संज्ञा पुं० [सं० चिदात्मन्] चैतन्य स्वरूप परब्रह्म।

चिदानन्द—संज्ञा पुं० [सं० चिदानन्द] चैतन्य और आनन्दमय परब्रह्म।

चिदाभास—संज्ञा पुं० [सं०] चैतन्य स्वरूप परब्रह्म का आभास या
प्रतिबिम्ब जो महत्तत्त्व या अंतःकरण पर पड़ता है। २.
जीवात्मा।

विशेष—प्रद्वैतवादियों के मत से अंतःकरण में ब्रह्म का आभास
पड़ने से ही ज्ञान होता है। माया के संयोग से यह ज्ञान अनेक
रूप विशिष्ट दिखाई पड़ता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार
स्फटिक पर जिस रंग की आभा पड़ती है, वह उसी रंग का
दिखाई पड़ता है।

चिदालोक—संज्ञा पुं० [सं०] सदैव बना रहनेवाला आत्मप्रकाश [को०]।

चिद्धन—वि० [सं०] जिसमें चेतना हो। चेतनायुक्त [को०]।

चिद्धन—संज्ञा पुं० ब्रह्मा [को०]।

चिद्रूप—संज्ञा पुं० [सं०] चैतन्य स्वरूप ब्रह्म। ज्ञानमय परमात्मा।

चिद्विलास—संज्ञा पुं० [सं० चित् + विलास] १. चैतन्य स्वरूप
इश्वर की माया। उ०—तुलसिदास कहें चिद्विलास जग ब्रूमत
ब्रूमत ब्रूमत।—तुलसी (शब्द०)। २. शंकराचार्य के एक
शिष्य।

विशेष—बहुतों का विश्वास है कि शंकरविजय नामक ग्रंथ इन्हीं
का लिखा है, जिसमें चिद्विलास ब्रह्मा और विज्ञानकव
श्रोता है।

चिन—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक बहुत बड़ा सदाबहार पेड़ जो हिमालय
पर शिमल के आसपास बहुत होता है।

विशेष—इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारतों में
लगती है।

२. एक घास जिसे चौपाए बड़ो रुचि से खाते हैं।

विशेष—यह घास खेतों के किनारे होती है। इसे सुखाकर भी
रख सकते हैं।

चिनक—संज्ञा पुं० [हि० चिनगी] १. जलन लिए हुए पीड़ा। चुनचु-
नाहट। २. मूत्रमाला की जलन या पीड़ा जो सुजाक में
होती है।

क्रि० प्र०—उठना।—होना।

चिनगी^१—संज्ञा पुं० [हि० चिनक] दे० 'चिनक'।

चिनगी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० चिनगी] दे० 'चिनगी'। उ०—पट-
विजना तहँ अधिक सतावे। छटनि ते उछटि चिनगी अनु
भावे।—नंद० ग्रं०, पृ० १३२।

चिनगटा^३—संज्ञा पुं० [हि०] चिपड़ा।

चिनगारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण, हि० चुन + गार ?] १. जलती
हुई घास का छोटा कण या टुकड़ा। जैसे,—एक
चिनगारी घास इसपर रख दो। २. बहकरी हुई घास में

से फूट फूटकर उड़नेवाला कण । अग्निकण । स्फुलिंग ।

क्रि० प्र०—उड़ना ।—छूटना ।—फूटना ।

मुहा०—झाँकों से चिनगारी छूटना = कोष से झालें लाल लाल होना । चिनगारी छोड़ना = धीरे से ऐसी बात कर बैठना जिससे किसी प्रकार का उपद्रव सड़ा हो जाय । कोई ऐसी बात कह देना जिससे लोगों में लड़ाई भगड़ा हो जाय । ऐसी बात चलना जिससे एक नई बात सड़ी हो जाय । चिनगारी डालना = (१) प्राग लगाना । (२) दे० 'चिनगारी छोड़ना' ।

चिनगी—संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण, हि० चुन + अग्नि, प्रा० अग्नि] १. अग्निकण । दे० 'चिनगारी' । २. चुस्त और चालाक लड़का । ३. वह लड़का जो नटों के साथ रहता है (नट) ।

चिनगी—संज्ञा स्त्री० [हि० चना] चना की रोटी ।

चिनना—संज्ञा पुं० [सं० चिनोति से चि + नु (विकरण), हि० चुनना] दे० 'चुनना' ।

चिनवाना—क्रि० स० [हि० चिनना] दे० 'चुनवाना' । उ०—जीवित मनुष्य को अग्नि में जला देना अथवा दीवार में चितवा देना इन शासकों के लिये साधारण कार्य था ।—हिंदी काव्य०, पृ० ६६ ।

चिनाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चिनना] चिने, चुने या जोड़ाई करने का कार्य अथवा उस कार्य की मजदूरी ।

चिनाई दीड़—संज्ञा स्त्री० [छीनना + दीड़] जहाज की घुमाव फिराव की चाल । जहाज का चक्कर ।—(लघ०) ।

चिनाना^(४)—क्रि० स० [सं० चयन] १. चुनवाना । चिनवाना । २. ईंट आदि की जोड़ाई करना । दीवार या घर उठवाना ।

चिनाब—संज्ञा पुं० [चन्द्रभागा] पंजाब की एक नदी । चंद्रभागा ।

चिनार—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बृहद् वृक्ष जो काश्मीर में होता है । इसकी पत्तियाँ हाथ के समान होती हैं ।

चिनिंग—संज्ञा पुं० [देश०] बटेर जाति का एक पक्षी जो घाघरा से छोटा, किंतु उसी जाति का होता है ।

चिनिया—वि० [हि० चीनी] १. चीनी के रंग का । सफेद । २. चीन देश का । चीनी ।

चिनिया केला—संज्ञा पुं० [हि० चिनिया + केला] छोटी जाति का एक केला जो बंगाल में होता है । यह खाने में बहुत मीठा होता है ।

चिनिया घोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० चीन या चीनी] वह घोड़ा जिसके चारों पैर सफेद हों और सारे बदन में लाल और कुछ सफेद लिचड़ी बाल हों ।

चिनियापोल—संज्ञा पुं० [हि० चिनिया + पोत] एक प्रकार का सिल्क का वस्त्र । नकली रेशमी कपड़ा । उ०—काशी के बहुमूल्य बसन बहु विधि बहुरंगी । अतलस चिनियापोल आसकट तास ताफता ।—रत्नाकर, भा० १. पृ० १०६ ।

चिनियाबस—संज्ञा पुं० [हि० चिनिया + बस] बसक की तरह एक चिड़िया ।

चिनियाबदाम—संज्ञा पुं० [हि० चिन + बादाम] भुंगफली ।

चिनियारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चुचु ?] सुसना का साथ ।

चिनोती—संज्ञा स्त्री० [हि० चुनोती] दे० 'चुनोती' । १ उ०—यह तो मुझे चिनोती देता है, मरे मरी लोष के खानेवाले सड़ा रह ।—शकुंतला, पृ० १२७ ।

चिनौटिया—वि० [हि० चिनना] चुना हुआ । चुननवाला ।

चिनौती—संज्ञा स्त्री० [हि० चुनोती] दे० 'चुनोती' । उ०—मनू के थोठ सिकुड़े । चिनौती सी देती दुई बोली, मेरे भाग्य में एक नहीं बस हाथी लिखे हैं ।—झाँसी०, पृ० ३२ ।

चिन्न—संज्ञा पुं० [सं०] चना ।

चिन्मय^१—वि० [सं०] ज्ञानमय ।

चिन्मय^२—संज्ञा पुं० परमेश्वर ।

चिन्ह—संज्ञा पुं० [सं० चिह्न] दे० 'चिह्न' ।

चिन्हवाना—क्रि० स० [हि० 'चोन्हना' का प्रे० रूप] पहचानवाना । परिचित करना । ठीक लक्षण बता देना । पहचान करा देना ।

चिन्हाटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चिन्ह + घाटी (प्रत्य०)] दे० 'चिन्हानी' ।

चिन्हाना^१—क्रि० स० [हि० 'चोन्हना' का प्रे० रूप] पहचानवाना । परिचित कराना ।

चिन्हानो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चिन्ह] १. चीन्हे की वस्तु । पहचान । लक्षण । २. ऐसी वस्तु जिससे किसी बात या मनुष्य का स्मरण हो । स्मारक । यादगार । चिह्न । रेखा । चारी । लकीर ।

क्रि० प्र०—चीन्हा ।—पारना ।

चिन्हार—वि० [हि० चिन्ह] ज्ञानपहचान का । जिससे ज्ञान पहचान हो । परिचित ।

चिन्हारी^१—वि० [हि० चिन्ह] ज्ञानपहचान । भेंट मुलाकात । परिचय । उ०—कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी ।—मानस, १।५० ।

चिन्हित^(४)—वि० [सं० चिह्नित] दे० 'चिह्नित' ।

चिन्हौटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चिन्ह + घाटी (प्रत्य०)] दे० 'चिन्हानी' ।

चिपकना—क्रि० प्र० [अनुकरणत्मक देश०] १. बीच में किसी लसीली वस्तु के कारण दो वस्तुओं का इस प्रकार जुड़ना कि जल्दी अलग न हो सकें । सटना । चिपटना । श्लिष्ट होना । जैसे,—इस पुस्तक के पन्ने चिपक गए हैं ।

क्रि० प्र०—जाना ।

२. प्रगाढ़ रूप से संयुक्त होना । लिपटना । ३. स्त्री पुरुष का संयोग होना । स्त्री पुरुष का परस्पर प्रेम में फँसना । ४. रोजगार से लगना । किसी काम में लगना ।

चिपकाना—क्रि० स० [हि० चिपकना] १. किसी लसीली वस्तु को बीच में देकर दो वस्तुओं को परस्पर इस प्रकार जोड़ना कि वे जल्दी अलग न हो सकें । चिपटना । श्लिष्ट करना । चस्पा करना । जैसे,—इस कागज पर टिकट चिपका दो ।

संयो० क्रि०—रेना ।

२. प्रगाढ़ आलिंगन करना । लिपटाना ।

संयो० क्रि०—लेना ।

३. लीकरी लगाना । किसी काम धंधे में लगाना ।

चिपचिपा—संज्ञा पुं० [धनु०] वह शब्द या धनुभव जो किसी लसदार वस्तु को छूने से होता है ।

क्रि० प्र०—करना ।

चिपचिपा—वि० [धनु० चिपचिपा या हि० चिपकना] जिसे छूने से हाथ चिपकता हुआ जान पड़े । लसदार । लसीला । जैसे,—चोटा, गहव, चाशनी आदि वस्तु ।

चिपचिपाना—क्रि० प्र० [हि० चिपचिप] छूने से चिपचिपा जान पड़ना । लसदार लग्न होना । जैसे,—स्याही में गोंद अधिक है, इसी से चिपचिपाती है ।

चिपचिपाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० चिपचिपा] चिपचिपाने का भाव । लसीलापन । लस । लसी ।

चिपट^१—वि० [सं०] चिपटी नाकवाला [को०] ।

चिपट^२—संज्ञा पुं० चिड़वा [को०] ।

चिपटना—क्रि० प्र० [सं० चिपट (=चिपटा)] १. इस प्रकार जुड़ना कि जल्दी अलग न हो सके । चिपकना । सटना । चिमटना । २. दे० 'चिपकना' ।

चिपटा—वि० [सं० चिपट] [स्त्री० चिपटी] जो कहीं से उठा या उभड़ा हुआ न हो । जिसकी सतह बड़ी घोर बराबर फैली हुई हो । जैसे,—(क) चिपटी नाक, चिपटा दाना, चिपटे बीज । उ०—पेड़ पर से गिरकर फल चिपटा हो गया ।

चिपटाना—क्रि० प्र० [हि० चिपटना] १. चिपकाना । सटाना । २. लिपटाना । आलिंगन करना ।

चिपटी^१—वि० स्त्री० [हि० चिपटा] दे० 'चिपटा' ।

चिपटी^२—संज्ञा स्त्री० १. कान में पहनने की एक प्रकार की बाली जिसे नैपथली स्त्रियाँ पहनती हैं । २. अंग । योनि ।

मुद्रां—चिपटी खेलना = दो स्त्रियों का कामवश परस्पर योनि से योनि चिपटना । उ०—आप्रो पड़ोसिन चिपटी खेलें, बैठे से बेगार भली ।—(शब्द०) । चिपटी लड़ाना = दे० 'चिपटी खेलना' ।

चिपड़ा^१—वि० [हि० चोपड़] जिसकी आँख में अधिक चोपड़ रहता हो । जिसकी आँख से अधिक चोपड़ निकलता हो ।

चिपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिपड़] गोबर के पाये हुए चिपटे टुकड़े । उपली । गोहंटी ।

क्रि० प्र०—पाथना ।

चिपरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चिपड़ी] दे० 'चिपड़ी' ।

चिपट^१—वि० [सं०] चिपटा ।

चिपट^२—संज्ञा पुं० १. चिड़वा । चिड़वा । २. चिपटी नाकवाला मनुष्य जिसका वर्णन धनुष माना जाता है । ३. दृष्टि की चकपकाहट जो आँखों को उँगली आदि से बचाने से हो ।

विशेष—इस प्रकार की चकपकाहट से कभी एक के दो या तीन पदार्थ दिखाई देते हैं, कभी पदार्थ नीचे या ऊपर हटे हुए दिखाई पड़ते हैं ।

चिपिटक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चिपीटक' [को०] ।

चिपिटग्रीव—वि० [सं०] छोटी गरदनवाला [को०] ।

चिपिटनासिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. बृहत्संहिता के अनुसार एक देश जो कैलास पर्वत के उत्तर पड़ता है । तातार या मंगोल देश जहाँ के निवासियों की नाक चपटी होती है । २. उस देश के निवासी, तातार या मंगोल ।

चिपिटनासिक^२—वि० चिपटी नाकवाला ।

चिपीटक—संज्ञा पुं० [सं०] चिड़वा । चिड़वा ।

चिपुआ^१—संज्ञा पुं० [देश०] चेल्हवा मछली ।

चिपुट—संज्ञा पुं० [सं०] चिड़वा [को०] ।

चिप्प—संज्ञा पुं० [सं०] नख का एक रोग जिसमें नाखून के नीचे मांस में जलन और पीड़ा होती है और कभी कभी नाखून पक भी जाता है ।

चिप्पख—वि० [हि० चिपकना] १. चिपका या दबका हुआ ।

चिप्पड़—संज्ञा पुं० [सं० चिपट] १. छोटा चिपटा टुकड़ा । जैसे,—इसके ऊपर कागज का एक चिप्पड़ लगा दो । २. सूखी लकड़ी आदि के ऊपर की छूटी हुई छाल का टुकड़ा । पपड़ी । ३. किसी वस्तु के ऊपर से छीलकर निकाला हुआ टुकड़ा ।

चिप्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बृहत्संहिता के अनुसार एक रात्रि-चर जंतु । २. एक चिड़िया का नाम । उ०—बाँसा, बटेर, लव आदि सचान । धूती व चिप्पिका चटक मान ।—सुर (शब्द०) ।

चिप्पी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिप्पड़] १. छोटा । चिप्पड़ । २. उपली । गोहंटी । ३. वह बटखरा जिससे सीधा तोला जाता है । ४. सीधा । जिस (साधु) । ५. फटे बर्तन पर लगाया जानेवाला घातु का टुकड़ा । ६. पतली, छोटी और चिपटी लकड़ी का टुकड़ा जिसे जोड़ को कसने के लिये लगाते हैं । पन्चर । ७. कागज का छोटा टुकड़ा जो कहीं चिपकाया जाय ।

चिचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चिचि' [को०] ।

चिचिल्ला^१—वि० [हि०] दे० 'चिलचिला' ।

चिचू—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चिचुक' [को०] ।

चिचूक—संज्ञा पुं० [सं०] लुट्टी । ठोड़ी ।

यौ०—चिचुककूप = ठोड़ी का गड्ढा । उ०—चिचुककूप छवि उमकै जोई । जगत कूप पुनि परे न सोई ।—नंद०, प्र०, पृ० १२३ ।

चिमगादड़^१—संज्ञा पुं० [हि० चमगादड़] दे० 'चमगादड़' ।

चिमटना—क्रि० प्र० [हि० चिपटना] १. चिपकना । सटना । लस जाना । २. प्रगाढ़ आलिंगन करना । लिपटना । जैसे,—वह अपने भाई को देखते ही उससे चिमटकर रोने लगा । ३. हाथ पैर आदि सब अंगों को लगाकर हड़ता से पकड़ना । कई स्थानों पर कसकर पकड़ना । गुपना । जैसे,—पीटों का चिमटना । जैसे,—जेर को देखते ही वह एक पेड़ की छाल से चिमट गया । ४. पीछे पड़ जाना । पीछा न छोड़ना । पिड न छोड़ना ।

चिमटवाना—क्रि० सं० [हि० चिमटना का प्रे० क्त] दूसरे से चिमटाने का काम कराना ।

चिमटा—संज्ञा पुं० [हि० चिमटना] [बी० बत्था० चिमटी] लोहे, पीतल आदि की दो लंबी और मचीली कट्टियों का बना हुआ एक औजार जिससे उस स्थान पर की वस्तुओं को पकड़कर उठाते हैं, जहाँ हाथ नहीं ले जा सकते । वस्तुपनाह ।

चिमटाना—क्रि० सं० [हि० चिमटना] १. चिपकाना । सटाना । मसना । २. लिपटाना । आलिंगन करना ।

चिमटी—संज्ञा बी० [हि० चिमटा] १. छोटा चिमटा । २. सोनारों का एक औजार जिससे तार आदि मोड़ने और महीन रवे उठाने का काम लिया जाता है ।

चिमोच—घोर भी कई पेशेवाले इस नाम के औजार का प्रयोग करते हैं । इसे चिमोटी या चिकोटी भी कहते हैं ।

चिमड़ा—वि० [हि०] दे० 'चिमड़' ।

चिमन(७)—संज्ञा पुं० [हि० चमन] दे० 'चमन' ।

चिमनी—संज्ञा बी० [सं०] १. ऊपर उठी हुई शीशे की वह नली जिससे लंप का धुआँ बाहर निकलता और प्रकाश फैलता है । २. किसी मकान, कारखाने, या भट्टों के ऊपर लोहे या ईंटों का बना वह लंबा छेद जिससे धुआँ बाहर निकलता है ।

चिमोच—चिमनी कई प्रकार की बनाई जाती है । रहने के मकानों में जो चिमनी बनती है, वह बहुत ऊपर उठी हुई नहीं होती पर कल कारखानों (जैसे, पुतलोघर) में जो चिमनियाँ होती हैं, वे बहुत ऊँची उठाई जाती हैं जिसमें धुआँ बहुत ऊपर जाकर आकाश में फैल जाय ।

चिमि—संज्ञा पुं० [सं०] तोता [को०] ।

चिमिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चिमि' [को०] ।

चिमोट—संज्ञा बी० [हि० चिमटना] १. चिमटने की क्रिया या भाव । २. चिमटने के कारण पड़नेवाला बनाव या भार ।

चिमोटा—संज्ञा पुं० [हि० चिमोटा] दे० 'चिमोटा' ।

चिमोटी—संज्ञा बी० [हि० चिमटी] दे० 'चिमटी' ।

चियारना—क्रि० सं० [देश०] बाना । फँसाना । खोलना । जैसे,—
दाँत चियारना ।

चिरंजीव—वि० [सं० चिरजो] चिरजीवी ।

चिमोच—इस शब्द से क्षीर्षाय होने का आशीर्वाद दिया जाता है । यह शब्द पुत्रवाचक भी है ।

चिरंजीव—संज्ञा पुं० बेटा । जैसे, पापके चिरंजीव ने ऐसा कहा है ।

चिरंजीव—अव्य० एक आशीर्वादात्मक शब्द अर्थात् बहुत दिन तक जीवो [को०] ।

चिरंजीवी—वि० [सं० चिरजिन्] दे० 'चिरजीवी' ।

चिरंटी—संज्ञा बी० [सं० चिरखी] १. सयानी लकड़ी जो पिता के घर रहे । २. युवती ।

चिरंतन—वि० [सं० चिरन्तन] बहुत दिनों का । पुरातन । पुराना ।

चिरंम—संज्ञा पुं० [सं० चिरम्] चीस ।

चिरंमण—संज्ञा पुं० [सं० चिरमण] दे० 'चिरंम' ।

चिर—वि० [सं०] बहुत दिनों का । दीर्घकालवर्ती । जैसे,—चिरकाल, चिरायु । उ०—हो एहु संतत पिपिह पियारी । चिर अहिवाह प्रसीस हमारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—चिरकमनीय चिरकुमार = ब्रह्मचारी । आजीवन अविवाहित । उ०—चिरकुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य धीत ।—अनामिका, पृ० ५८ । चिरनवीन = सदा नया रहनेवाला । उ०—उज्ज्वल, अवीर और चिरनवीन ।—अनामिका, पृ० ५८ । चिरपोषित = जिसका पोषण, रक्षण बहुत काल तक किया गया हो । चिरकाल से रक्षित प्रथवा पोषित । उ०—अपनी ही भावना को छायाएँ चिरपोषित ।—अनामिका, पृ० ७० । चिरप्रतीक्षित = जिसकी प्रतीक्षा बहुत दिनों से की जा रही हो । उ०—उसके बाद चिरप्रतीक्षित और चिरकमनीय, उसके स्वप्न और जागरण की आराध्य देवी ।—वो दुनिया, पृ० १२ । चिरसमाधि = (१) सदा से समाधिस्थ । बहुत काल से प्रसुत । उ०—चिरसमाधि में अचिर प्रकृति जब तुम अनादि तब केवल तम ।—अनामिका, पृ० ३१ । (२) मृत्यु ।

चिर—क्रि० वि० बहुत दिन । अधिक समय तक । दीर्घकाल तक । जैसे, चिरस्थायी । चिरजीवी । उ०—चिर जीवहु सुत चारि चक्रवर्ती वसरण के ।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—चिरायु । चिरकाल । चिरकारी । चिरक्रिय । चिरजात । चिरंजीवी । चिररोगी । चिरलब्ध । चिरवृत्ति । चिरसंगी ।

चिर—संज्ञा बी० तीन मात्राओं का गण जिसका प्रथम वर्ण लघु हो ।

चिरई—संज्ञा बी० [सं० चटक] चिट्ठिया । पक्षी ।

चिरईजी(७)—संज्ञा बी० [हि० चिरौजी] दे० 'चिरौजी' । उ०—राज करीदा बैरि चिरईजी ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४ ।

चिरक—संज्ञा बी० [हि० चिरकना] बहुत जोर लगाने पर होनेवाला थोड़ा सा पासाना ।

चिरकट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चिरकुट' । उ०—केचित् चिरकट बीनहि पंचा । निर्गुन रूप दिखाई कंचा ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ६२ ।

चिरकडाँस—संज्ञा बी० [हि० चिरकना + डाँसना] १. एक न एक रोग का नित्य बना रहना । कभी कुछ रोग कभी कुछ । सदा बनी रहनेवाली अवस्थता । २. नित्य का अगड़ा । रगड़ा ।

चिरकना—क्रि० अ० [अतु०] थोड़ा थोड़ा मल निकलना । थोड़ा थोड़ा हुगना ।

चिरकमनीय—संज्ञा बी० [सं०] जो स्थायी रूप से सुंदर हो । वह जिसका सौंदर्य स्थायी हो । उ०—चिरप्रतीक्षित और चिरकमनीय उसके स्वप्न और जागरण की आराध्य देवी ।—वो दुनिया, पृ० १२ ।

चिरकार—वि० [सं०] दे० 'चिरकारिक' [को०] ।

चिरकारिक—वि० [सं०] दीर्घसूची । चिरकारी ।

चिरकारी—वि० [सं० चिरकारिन्] [वि० बी० चिरकारिणी] काम में देर लगानेवाला। दीर्घसूत्री।

चिरकाल—संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घकाल। बहुत समय। जैसे—चिरकाल से यह प्रथा चली आई है।

चिरकीन^१—वि० [फ्रा०] मैला। गंदा (लश०)। उ०—माया की चिरकीन लखी तुम देखि के मुँदी नाक।—पलटू०, भा० ३, पृ० १०। २. चिरकनेवाला।

चिरकीन^२—संज्ञा पुं० उर्दू भाषा के एक बीभत्स रस के कवि।

चिरकुट—संज्ञा पुं० [सं० चिर + कुट (= काटना)] फटा पुराना कपड़ा। चिड़ड़ा। गूदड़। उ०—काढ़हु कंधा चिरकुट जाया। पहिरहु राते बगल सुहावा।—जायसी (सम्ब०)।

चिरक्रिय—वि० [सं०] काम में देर लगानेवाला। दीर्घसूत्री।

चिरक्रियता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीर्घसूत्रता।

चिरगह^१—संज्ञा पुं० [हि० चिर + गह] दे० 'चिरकुट'। उ०—चिरगट कारि चटारा लै गयी तरी सागरी छुटी।—कबीर ग्रं०, पृ० २७७।

चिरचना^१—वि० प्र० [हि०] दे० 'चिड़चिड़ाना'।

चिरचिड़ा—संज्ञा पुं० [व्यं०] १. चिड़ड़ा। अपामार्ग। २. एक ऊँची भास जो बाजरे के पीस के आकार की होती है। इसे चोपाए खाते हैं।

चिरचिरा^१—वि० [हि० चिड़चिड़ा] दे० 'चिड़चिड़ा'।

चिरचिरा^२—संज्ञा पुं० [हि० चिड़चिड़ा] दे० 'चिड़चिड़ा'।

चिरचिराहट—संज्ञा स्त्री० [हि० चिड़चिड़ाना] दे० 'चिड़चिड़ाहट'।

चिरजीवक—संज्ञा पुं० [सं०] जीवक नाम का वृक्ष।

चिरजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] अमर जीवन (को०)।

चिरजीवी^१—वि० [सं० चिरजीविन्] १. बहुत दिनों तक जीनेवाला। दीर्घजीवी। २. सब दिन जीवित रहनेवाला। अमर।

चिरजीवी^२—संज्ञा पुं० १. विष्णु। २. कौवा। ३. जीवक वृक्ष। ४. सेमर का पेड़। ५. मार्कंडेय ऋषि। ६. अपवत्यामा, बलि, व्यास, हनुमान, बिभीषण, कृपाचार्य और परशुराम जो चिरजीवी माने गए हैं।

चिरत^१—संज्ञा पुं० [सं० चिरत] दे० 'चरित'। उ०—कोट सत चिरत रघुनाथ किमो।—रघु० क०, पृ० ५७।

चिरताछ^१—वि० [हि० चिरत + छाल (प्रत्य०)] १. चरित्रवाला। चिह्नेवाला। २. नक़रेवाला। उ०—सूँस करे मालाँ सहे, चुगल बड़ी चिरताल।—बाँकी, प्र० भा० २, पृ० ५६।

चिरसिफ—संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता।

चिरसुवाररेखा—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत आदि की वह ऊँचाई जहाँ सर्वदा बर्फ जमी रहती है।

चिरत्न—वि० [सं०] [वि० बी० चिरत्नी] पुरातन। पुराना।

चिरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] स्थायित्व। चिरजीवन का भाव। दीर्घत्व। उ०—फिर आओगे निश्चय। निज चिरत्व से पसों।—प्राप्ता, पृ० ६८।

चिरना^१—क्रि० प्र० [सं० चीर, हि० चीरना या धनुकरणात्मक]

१. फटना। चीर में कटना। जैसे,—कपड़ा चिरना, लकड़ी चिरना। २. लकीर के रूप में बाँध होना। सीधा झट होना। जैसे,—फट्टी मत छुओ, उँगली चिर जायगी।

चिरना^२—संज्ञा पुं० १. चीरने का औजार। २. सोनारों का एक औजार। ३. कुम्हारों का वह भारदार सोहा जिससे वे नरियाँ चीरते हैं। ४. कसेरों का एक औजार जिससे वे चासी के बीच में ठप्पा या गोल लकीर बनाते हैं।

चिरनिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु (को०)।

चिरपरिचित—वि० [सं०] पुराना परिचित। जिससे सदा से जान पहचान हो।

चिरप्रसूत—वि० [सं०] १. बहुत दिनों तक टिकनेवाला। २. दीर्घकाल से किसी कार्य में लगा हुआ (को०)।

चिरप्रसूता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जिसे बच्चा दिए बहुत दिन हो गया हो (को०)।

चिरपाकी—संज्ञा पुं० [सं० चिरपाकिन्] कैथ। कपिरथ।

चिरपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] बकुल। मोलसिरी।

चिरबत्ती—वि० [हि० चिरना + बत्ती] चिथड़ा चिथड़ा। टुकड़ा टुकड़ा। पुरजा पुरजा।

मुहा०—चिरबत्ती कर डालना = चिथड़े चिथड़े कर डालना। फाड़ कर टुकड़े टुकड़े करना (कागज, कपड़ा आदि)।

चिरबिल्व—संज्ञा पुं० [सं०] करंज वृक्ष। कंजा।

चिरम—संज्ञा स्त्री० [देश०] गुंजा। घुँघची। उ०—पाद तरुनिकुच उक्च पद चिरम ठग्यो सबु गावँ। छुटै ठौर रहिहै वहै जुहो मोलु छवि नावँ।—बिहारी र०, दो० २३७।

चिरमिटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] गुंजा। घुँघची।

चिरमो—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चिरम' (को०)।

चिरमेही—संज्ञा पुं० [सं० चिरमेहिन] देर तक मृतनेवाला अर्थात् मरणा (को०)।

चिरझा—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी झाड़ी।

चिशोष—यह पंजाब, अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान और फारस में होती है। यह महीनों तक बिना पत्तियों के ही रहती है। इसमें काले रंग के मीठे फल लगते हैं जिनका व्यवहार औषध में होता है।

चिरबल—संज्ञा पुं० [सं० चिरबिल्व या चिरबल्सी] एक पौधा जो बंगाल और उड़ीसा से लेकर मबरास और सिहल तक होता है।

चिशोष—यह पौधा छह महीने तक रहता है। इसकी जड़ की छाल से एक प्रकार का सुंदर रंग निकलता है जिससे मछली-पट्टन, नेसोर आदि स्थानों में कपड़े रंगे जाते हैं। इन स्थानों में इस पौधे की खेती होती है। असाढ़ में इसके बीज बोए जाते हैं। इस पौधे को सुरुखी भी कहते हैं।

चिरवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चिरवाना] १. चिरवाने का भाव या

कार्य । २. चिरबाने की मजदूरी । †३. पानी बरसने पर बैठों की पहली जोताई ।

चिरबाना—क्रि० सं० [हि० चोरना का प्रे० रूप] चोरने का काम कराना । फड़वाना ।

चिरबिस्मृत—वि० [सं०] जो बहुत दिनों से भुलाया जा चुका हो ।

चिरबीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] लाल रेंग का रंग ।

चिरस्थ—वि० [सं०] दे० 'चिरस्थायी' [क्रि०] ।

चिरस्थायी—वि० [सं० चिरस्थायिन्] बहुत दिनों तक रहनेवाला ।

चिरस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत समय से मिलनेवाला प्यार । उ०—
उसके प्रति अपनी चिरस्नेह तपस्या का रहस्योद्घाटन किया ।—बो दुनिया, पृ० १२ ।

चिरस्मरणीय—वि० [सं०] १. बहुत दिनों स्मरण रखने योग्य । २. पूजनीय । प्रशंसनीय ।

चिरहँटा—संज्ञा पुं० [हि० चिहो + हंटा] चिड़ीमार । बहेलिया ।
व्याख । उ०—कतहँ चिरहँटा पंखा लावा । कतहँ पखंडी काठ नचावा ।—जायसी (शब्द०) ।

चिरहुला—संज्ञा पुं० [?] [श्री० चिरहुली] १. चिड़ा । २. पक्षी ।

चिरावा—वि० [अनु० चिर चिर (= लकड़ी आदि के जलने का शब्द)]
थोड़ी थोड़ी बात पर बिगड़नेवाला । चिड़चिड़ा ।

चिरावता—संज्ञा पुं० [हि० चिरायता] दे० 'चिरायता' ।

चिरावना—संज्ञा श्री० [हि० चिरायँव] दे० 'चिरायँव' ।

चिराई—संज्ञा श्री० [हि० चोरना] १. चोरने का भाव या क्रिया ।
२. चोरने की मजदूरी ।

चिराका—संज्ञा पुं० [क्रा० चराय] दे० 'चिराग' । उ०—(क)
सोहत चंद्र चिराक बीजना करत दसौं दिसि ।—जयसिंह (शब्द०) । (ख) गुलगुली गिलमै गलीचा है, गुनीजन हैं चाँदनी
है चिकै है चिराकन को माला है ।—पद्माकर शं०, पृ० १६५ ।

चिराकी—सं० श्री० [हि० चिरागी] दे० 'चिरागी' । उ०—
चंद चिराकी चहुँ दिसा सब सीतल जावै । सुरज भी सेवा करे,
जैसे भल मानै ।—बाबू०, पृ० ६२५ ।

चिराग—संज्ञा पुं० [क्रा० चिराग, चराय] दीपक । दीप्ता ।

क्रि० प्र०—गुल करना ।—जलना ।—जलाना ।—बुझना ।—
बुझाना ।—बढ़ाना ।

यौ०—चिराग गुल पगड़ी गायब = मीका मिलते ही धन का उड़ा
दिया जाना । चिराग जले = धँधेरा होने पर । संध्या समय ।
चिराग बत्ती का बख = संध्या का समय । चिराग सहूरी,
चिराग सुबह = (१) वह बिया जो बुझने बुझने को हो । (२)
वह व्यक्ति जिसके जीवन के अंतिम दिन करीब हों ।
मरणासन्न । चिराग का गुल = दिए या चिराग का कुचड़ा
जो रोशनी तेज करने के लिये झाड़ दिया जाता है ।

मुहा०—चिराग का हँसना = चिराग से फूल ऋझना । चिराग
की हाथ देना = चिराग बुझाना । चिराग गुल करना = (१)
दीप्ता बुझाना । (२) किसी के बंध का विनाश करना । (३)

रौनक मिटाना । चिराग गुल होना = (१) दीप का बुझ
जाना । (२) रौनक मिटना । उदासी छाना । (३) किसी
बंध का विनाश होना । चिराग ठंडा करना = चिराग
बुझाना । चिराग तले धँधेरा होना = (१) किसी ऐसे स्थान
पर बुराई होना जहाँ उसके रोकने का प्रबंध हो । जैसे,
हाकिम के सामने अत्याचार होना, पुलिस के सामने चोरी
होना, किसी उदार बनी के किसी संबंधी का दुखों मरना,
इत्यादि इत्यादि । (२) किसी ऐसे मनुष्य द्वारा कोई बुराई होना
जिससे उसकी संभावना न हो । जैसे, किसी विद्वान् द्वारा कोई
कुकर्ण होना, इत्यादि । चिराग दिखाना = रोशनी दिखाना ।
सामने उजाला करना । चिराग बढ़ाना = रोशनी बुझाना ।
चिराग बत्ती करना = दीप्ता जलाना । दीप्ता जलाने की तैयारी
करना । चिराग लेकर दूँटना = बड़ी खानबीन के साथ दूँटना ।
चारों ओर हेरान होकर दूँटना । परस्पर लाभ पहुँचाना ।
चिराग से फूल ऋझना = चिराग की जली हुई बत्ती में गोल
गोल कुचड़े निकलना या गिरना । चिराग से गुल ऋझना ।
चिराग से चिराग जलना = एक दूसरे से लाभान्वित होना ।
चिराग से फूल ऋझना = चिराग का गुल ऋझना ।

चिरागदान—संज्ञा पुं० [क्रा० चिराग + दान] दीपदत्त । फतीलसोज ।
समादान ।

चिरागी—संज्ञा श्री० [प्र०] १. चिराग जलाने का कार्य । किसी स्थान
पर दीप्ता बत्ती करते रहने का कार्य या मजदूरी । २. बुधवारियों
के झुंटे पर चिराग जलानेवाले की मजदूरी जो बहुत ही
जोतनेवाला खिलाड़ी प्रत्येक दीव जोतने पर देता है । ३. वह
भेंट जो किसी मजार पर चढ़ाई जाती है ।

क्रि० प्र०—बढ़ाना ।—देना ।

चिराटिका—संज्ञा श्री० [सं०] १. सफेद पुनर्नवा । २. चिरायता ।

चिरातन—वि० [सं० चिरन्तन] १. पुरातन । पुराना । २. जीर्ण ।
उ०—हम तो तबही तें जोग लियो । पहिरि मेखलन चीर
चिरातन पुनि पुनि कैरि सिप्राए ।—सूर (शब्द०) ।

चिरातिक्त—संज्ञा पुं० [सं० चिरतिक्त] दे० 'चिरतिक्त' ।

चिराव—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ ।

चिराव—संज्ञा पुं० [सं० चिराव] बलाक की जाति की एक प्रकार की
बड़ी बिड़िया जिसका मांस स्वादिष्ट होता है ।

चिराना—वि० [हि० चिराना] बहुत पुराना । अधिक दिनों का ।

यौ०—पुरान चिरान = बहुत पुराना । अधिक दिनों का ।

चिराना^१—क्रि० सं० [हि० चोरना] चोरने का काम कराना ।
फड़वाना । जैसे,—फोड़ा चिराना, लकड़ी चिराना ।

चिराना^२—वि० [सं० चिरन्तन] १. पुराना । पुरातन । उ०—
अरेउ सुमानस सुयस चिराना । सुखद सीत हवि चार
चिराना ।—मानस, १ । ३६ । २. जीर्ण ।

यौ०—पुराना चिराना ।

चिराबँध—संज्ञा श्री० [सं० बंध + गन्ध] वह दुर्गंध जो चरबी, चमड़े,
बाल, मांस आदि जीवों के अंगों के अंशों के जलने से
फैलती है ।

क्रि० प्र०—उठना ।—उठना ।—कलना ।—निकलना ।

हुआ०—चिरायें कलना = कलनामी कलना ।

चिरायता—संज्ञा पु० [सं० चिराया या चिराय] दो आई हाथ ऊँचा एक पीचा औ हिमालय के किनारे कम ठंडे स्थानों में काश्मीर से भूटान तक होता है। असिया की पहाड़ियों पर भी यह पीचा मिलता है।

चिराय—इसकी पतियाँ छोटी छोटी और तुलसी की पतियों के बराबर होती हैं। जाड़े के दिनों में इसके फूल लगते हैं। सूखा पीचा (जड़, बंठल, फूल, सब) औषध के काम में आता है। फूल लगने के समय पीचा उखाड़ा जाता है और दबाकर बाहर भेजा जाता है। नेपाल के मोरंग नामक स्थान से चिरायता बहुत आता है। चिरायते का सर्वांग कड़वा होता है; इसी से यह ज्वर में बहुत दिया जाता है। वैद्यक में यह दस्तावर, क्षीतल तथा ज्वर, कफ, पित्त, सूजन, सन्निपात, जुबसी, कोढ़ आदि को दूर करनेवाला माना जाता है। इसकी मरुना रक्तशोधक औषधियों में है। डाक्टरों में भी इसका व्यवहार होता है। चिरायते की बहुत सी जातियाँ होती हैं। एक प्रकार का छोटा चिरायता दक्षिण में बहुत होता है। एक चिरायता कल्पनाय के नाम से प्रसिद्ध है जो सबसे अधिक कड़वा होता है। गीमा नाम का एक पीचा भी चिरायते ही की जाति का है जो सारे भारत में जलाशयों के किनारे होता है। दक्षिण देश के वैद्य और हुकीम हिमालय के चिरायते की अपेक्षा बिलारस या बिलाजीत नाम का चिरायता अधिक काम में लाते हैं जो मकरास प्रांत के कई स्थानों में होता है।

पर्या०—भूगर्भ । प्रनार्यतिष्ठ । कैरात । काँठलिक । किरातक । किरातलिक । चिरातक । रामसेवक । सुतलिक । चिराटिका । कटुतिका ।

चिरायु^१—वि० [सं० चिरायुस्] चिरंजीवी । बड़ी उम्रवाला । बहुत दिनों तक जीनेवाला । दीर्घायु ।

चिरायु^२—संज्ञा पु० देवता ।

चिरारी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० चार] चिरौजी । उ०—जरिक दास घर गरी चिरारी । पीड़ा बदाम लेत बनवारी ।—सूर (शब्द०) ।

चिराय—संज्ञा पु० [हि० चिरना] १. चीरने का भाव या क्रिया । २. घाव जो चीरने से हो ।

चिरिटिका, चिरिटो—संज्ञा स्त्री० [सं० चिरिएटिका, चिरिएटी] दे० 'चिरंटी' ।

चिरि^१—संज्ञा पु० [सं०] तोता [की०] ।

चिरि^२—संज्ञा स्त्री० [हि० चिरी] दे० 'चिरी' ।

चिरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पुराना अस्त्र [की०] ।

चिरिया^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चिड़िया' । उ०—चिरिया सी जागी बिता जनक के जियरे ।—इतिहास, पृ० २८७ ।

चिरिहार^४—संज्ञा पु० [हि० चिरी + हार (= बाणा) (प्रत्य०)] पक्षी फँसानेवाला । बहेलिया । उ०—जो न होत चारा के

आसा । किन चिरिहार दुक्त कई आसा ।—बायली (शब्द०) ।

चिरी^५—संज्ञा स्त्री० [हि० चिड़िया] दे० 'चिड़िया' । उ०—चिरी को मरन बासकन को खेल है ।—ग्याना०, पृ० १५ ।

चिरु—संज्ञा पु० [सं०] कंधे और बाँह का जोड़ । मोड़ा ।

चिरैता^६—संज्ञा पु० [हि० चिरायता] दे० 'चिरायता' ।

चिरैया—संज्ञा स्त्री० [हि० चिड़िया] १. दे० 'चिड़िया' । २. वर्षा का पुष्प नक्षत्र । उ०—महा धान पुनर्वसु पैवा । गया किसान जो बोवे चिरैया ।—बाघ०, पृ० ७३ । ३. परिहृत का चिरा जिसे जोतनेवाला पकड़ता है ।

चिरौजी—संज्ञा स्त्री० [सं० चार + बीज] पियार या पियाल बुस के फलों के बीज की गिरी । पियार के बीज की गिरी जो जाने में बड़ी स्वादिष्ट होती है और मेवों में समझी जाती है । यह किलमिश, बादाम के साथ पकवानों और मिठाइयों में भी पड़ती है । इसे पियार मेवा भी कहते हैं । दे० 'पियार' ।

चिरौटा—संज्ञा पु० [हि० चिड़ा + छोटा (प्रत्य०)] १. चिड़ा । गीरा पक्षी । २. चिड़िया का छोटा बच्चा ।

चिरौरी—संज्ञा पु० [देश०] प्रार्थना । उ०—और कर्मचारियों का बहुत सा समय चिरौरी बिनती करने में कट जाता था ।—काया०, पृ० १७१ ।

चिर्क—संज्ञा पु० [फ्रा०] १. गंदगी । मैल । २. मल । टट्टी । पाखाना । ३. मवाद । पीब ।

चिर्मटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी ।

चिर्म—संज्ञा पु० [फ्रा०, तुलनीय सं० चर्म] चमड़ा ।

चिर्मिठी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिरमिठी] दे० 'चिरमिठी' । उ०—क्या मैं सोने के सुहावने दाने को काले मूँह की चिर्मिठी के साथ तोल दूँ ?—श्रीनिवास प्र०, पृ० ११५ ।

चिराहिन—संज्ञा स्त्री० [हि० चिरायें] दे० 'चिरइन' । उ०—मांस का चटपटाकर जलना और उसमें से चिराहिन की दुर्गंध निकलना ।—भारतेन्दु प्र०, भा० २, पृ० ८१ ।

चिरि^७—संज्ञा स्त्री० [सं० चिरिका (= एक अस्त्र का नाम)] बिजली । बज्र ।

क्रि० प्र०—चिरना ।—पड़ना ।—मारना = बिजली चिरना । स्त्रियाँ भाष में कहती हैं, तुम्हें चिरों मारे ।

चिलक^८—संज्ञा स्त्री० [हि० चिलकना] १. आमा । काँति । द्युति । चमक । झलक । उ०—(क) कहे रघुनाथ वाके मुख की लुनाई आगे चिलक जुन्हाइन की बंद सरसानो है ।—रघुनाथ (शब्द०) (ख) जब वाके रद की चिलक बमचमाति बहु कोनि । बंद होति द्युति बंद की अपति बंभला जोति ।—शृंगार सत (शब्द०) । (ग) चिलक तिहारी चाहि के सूखो तिलक लगी न ।—शृंगार सत० (शब्द०) । २. रह रहकर उठनेवाला दर्द । टीस । चमक । ३. एकबारगी पीड़ा होकर बंद हो जानेवाला दर्द । जैसे,—उठते बैठते कमर में चिलक होती है ।

क्रि० प्र०—उठना ।—होना ।

चिलका^१—संज्ञा पुं० [हि०] चिलक नामक पौधा ।

चिलकना—क्रि० प्र० [हि० चिलकी (= बिजली) या प्रभु०] २. रह रहकर चमकना । चमकमाना । झलकना । २. दर्द का रह रहकर उठना । ३. एकबारगी पीड़ा होकर बंद हो जाना । चमकना ।

क्रि० प्र०—उठना ।—होना ।

चिलका^२—संज्ञा पुं० [हि० चिलक] चमकता हुआ चाँदी का सिक्का रुपया ।

चिलका^३—वि० [हि० चिलक (= चमक)] चमका । चोषा । उ०—यह सब माया मृगजल, झूठा झिलमिलि होइ । बाहु चिलका देखि करि सत करि जाना सोइ ।—दादू, पृ० २१२ ।

चिलका^४—संज्ञा स्त्री० [देश०] उड़ीसा की एक बड़ी झील ।

चिलका^५—संज्ञा पुं० [देश०] नवजात शिशु ।

चिलकाना^१—क्रि० स० [हि० चिलक] १. चमकाना । झलकाना । २. किसी वस्तु को इतना माँजना कि वह चमकने लगे । उज्ज्वल करना ।

चिलकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चिलकना] १. चाँदी का रुपया । २. एक प्रकार का रेशमी वस्त्र ।

चिलकी^२—वि० स्त्री० चमकीली ।

चिलगोजा—संज्ञा पुं० [फ्रा० चिलगोजह्] एक प्रकार का मेवा । चीड़ या सनोबर का फल ।

विशेष—दे० 'चीड़' ।

चिलचिल—संज्ञा पुं० [हि० चिलकना] झमक । झबरक । भोंड़ल ।

चिलचिलाना^१—क्रि० प्र० [हि० 'चिलकना'] बहुत तेज चमकना । कड़ी धूप होना । जैसे, चिलचिलाती धूप ।

चिलचिलाना^२—क्रि० स० चमकाना ।

चिलड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] उलटा नाम का पकवान ।

चिलता—संज्ञा पुं० [फ्रा० चिलतह्] एक प्रकार का जिरहबकतर । एक प्रकार का कवच ।

चिलपों—संज्ञा स्त्री० [हि० चिल्ल + पों] दे० 'चिल्लपों' । उ०—कहीं किसी पर मार पड़ती थी, कहीं कोई अपनी बीजें लिए भागा जाता था । चिलपों मची हुई थी ।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ८०२ ।

चिलबिल—संज्ञा पुं० [सं० चिरबिल्व] १. एक बड़ा जंगली पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और खेती के औजार बनाने के काम में आती है । इसकी पत्तियाँ जामुन की पत्तियों की सी होती हैं । २. एक बड़ा पौधा जिसकी पत्तियाँ इमली की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं और पेड़ी, डाल आदि बहुत हलकी और हरे रंग की होती हैं ।

विशेष—यह बरसात में उगता है और चार पाँच हाथ तक ऊँचा होता है । यह पौधा तालों में भी होता है जहाँ उसके पानी के भीतर का भाग फूलकर खूब मोटा हो जाता है । इस भाग को छुलड़ी कहते हैं जिससे माली म्याह के मौर, आमर, तोरण आदि बनाते हैं ।

चिलबिला, चिलबिला—वि० [सं० चल + बल] [वि० स्त्री०

चिलबिल्ली] चंचल । चपल । शोल । नटखट । जैसे,—यह बड़ा चिलबिला लड़का है ।

चिलम—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] कटोरी के आकार का मिट्टी का एक बरतन जिसका निचला भाग चौड़ी नली के रूप में होता है ।

विशेष—इसपर तमाकू और भाग रखकर तमाकू पीते हैं । साधारणतः चिलम को हुक्के की नली के ऊपर बैठाकर तमाकू पीते हैं । पर कभी कभी चिलम की नली को हाथ में लेकर भी पीते हैं । तमाकू के अतिरिक्त गाँजा, चरस आदि भी इसपर रखकर पिए जाते हैं ।

यौ०—चिलमचट । चिलमबरदार ।

मुहा०—चिलम चढ़ाना = (१) चिलम पर तमाकू, गाँजा आदि, और भाग रखकर उसे पीने के लिये तैयार करना । (२) गुलामी करना । चिलम पीना = चिलम पर रखे हुए तमाकू का धुँआँ पीना । चिलम चाटना या चिलम चाटते फिरना = चिलम (गाँजा या तमाकू) को पीने के लिये घड़से घड़े पर जाना । चिलम भरना = दे० 'चिलम चढ़ाना' ।

चिलमगर्दा—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० चिलमगर्दह्] हुक्के में हाथ भर की या इससे अधिक लंबी बाँस की नली जो बूल और जामिन से मिली होती है । इसपर चिलम रखी जाती है । नैचाबंद ।

चिलमचट—वि० [फ्रा० चिलम + हि० चाटना] १. बहुत अधिक चिलम पीनेवाला । वह जो चिलम पीने का बहुत भासी हो । २. इस प्रकार खींचकर चिलम पीनेवाला कि वह चिलम दूसरे के पीने योग्य न रहे ।

चिलमची—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] देग के आकार का एक बरतन जिसके किनारे चारों ओर घाली की तरह दूर तक फैले होते हैं । इसमें लोग हाथ धोते और कुल्ली आदि करते हैं ।

यौ०—चिलमची बरदार = हाथ मुँह धुलानेवाला नौकर ।

चिलमन—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] बाँस की कट्टियों का परदा । चिक ।

क्रि० प्र०—डालना ।—बाँधना ।—लटकाना ।

चिलमपोश—संज्ञा पुं० [फ्रा०] धातु का एक भँभरीदार ढक्कन जिससे चिलम ढँक देने से चिनगारी नहीं उड़ती ।

चिलमबरदार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] हुक्का पिलानेवाला खिलमतगार ।

चिलमिलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जुगनू । लज्जित । २. बिजली । ३. एक प्रकार की कंठी ।

चिलमीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गले में पहनने की एक प्रकार की माला । २. जुगनू । ३. बिजली ।

चिलमन^(५)—संज्ञा पुं० [फ्रा० चिलमन] दे० 'चिलमन' । उ०—बैठि लखत श्रुतु गोभा सुमुखि सदा चिलमन विन ।—प्रेमचन०, भा० १, पृ० ६ ।

चिलबाँस—पुं० [?] एक प्रकार का फंदा जिससे चिड़ियाँ फँसाई जाती हैं ।

चिलबा—संज्ञा पुं० [हि० चिलर] दे० 'चिल्लड़' । उ०—इसकी परवा न रही कि ताजा हवा मिलती है या नहीं, भोजन कैसा मिलता है, कपड़े कितने मिले हैं, उनमें कितने चिलबे पड़े हुए

हैं कि लुकाते लुकाते देह में दिवोरे पड़ जाते हैं ।—काया०, पु० २८२ ।

चिल्ला—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का तमाकू जो काश्मीर में होता है । यह श्रीनगर के आसपास बहुत होता है और यमन में बोया जाता है ।

चिल्ला—संज्ञा पु० [सं० चिल] एक प्रकार की छोटी मछली जो डेढ़ बालिश के लगभग होती है । यह सिंध, पंजाब, उत्तर प्रदेश और बंगाल की नदियों में पाई जाती है ।

चिल्ला—संज्ञा स्त्री० [हि० चिल्ला] दे० 'चिल्ला' । उ०—चंद चिला गहि मारो बान ।—कबीर श०, पु० २० ।

चिल्लियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० चिल्ल] दे० 'चिल्ल' ।

चिल्लिया—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल] चिल्लल मछली ।

चिल्लुआ—संज्ञा स्त्री० [हि० चेलुआ] दे० 'चेलुआ' ।

चिल्लाकर—संज्ञा स्त्री० [?] प्रसूता स्त्री । अच्चा ।

चिल्ला—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० चिल्ला] १. चील । २. दुखती हुई आँख [को०] ।

चिल्ला—वि० दुखती आँखवाला । कीचड़ भरी आँखवाला [को०] ।

चिल्लाका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भींगुर [को०] ।

चिल्ला—संज्ञा पु० [सं० चिल (= वस्त्र)] सूँ की तरह का एक बहुत छोटा सफेद रंग का कीड़ा जो मँले कपड़ों में पड़ जाता है । इस कीड़े के काटने से शरीर में बड़ी खुजली होती है और छोटे छोटे बाने पड़ जाते हैं ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—बीनना ।

चिल्ला—संज्ञा स्त्री० [हि० चिल्लाना + अनु० पो] चिल्लाना । शोरगुल । पुकार । रोहड़ा ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचना ।—मचाना ।

चिल्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] नख या नखी नाम का गंधद्रव्य ।

चिल्ला—संज्ञा स्त्री० [हि० चिल्लाना] बच्चों का चिल्लाना जो जमुवा के रोग में होता है ।

चिल्ला—क्रि० सं० [हि० चिल्लाना का प्रे० रूप] चिल्लाने का काम दूसरे से कराना । चिल्लाने में प्रवृत्त करना ।

चिल्ला—संज्ञा पु० [फ्रा०] १. चालीस दिन का समय ।

यौ०—चिल्ले का जाड़ा = बहुत कड़ी सरदी ।

विशेष—घन के पंद्रह, मकर पचीस । जाड़ा जानो दिन चालीस । इन्हीं चालीस दिनों के जाड़े को चिल्ले का जाड़ा कहते हैं ।

२. चालीस दिन का व्रत । चालीस दिन का बंधेय या किसी पुण्यकार्य का नियम (मुसल०) ।

क्रि० प्र०—खोजना ।

चिल्ला—संज्ञा पु० [देश०] १. एक जंगली पेड़ । २. उदें, भूँग या रोदे के मँदे की पत्ती या बी चुपड़कर सँकी हुई रोटी । चोला । उलटा ।

चिल्ला—संज्ञा पु० [फ्रा० चिल्ला] धनुष की डोरी । पतंगिका । उ०—कई प्रकार के गुण जानती थी जिनमें से धनुष का

चिल्ला बनाना, चौवान खेलना, तीर चलाना, और कई बाजे बजाना था ।—हुमायूँ०, पु० ४८ ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—उतारना ।

चिल्ला—संज्ञा पु० [देश०] पगड़ी का छोर जिसमें कलाबतून का काम बना रहता है । तिल्ला ।

चिल्ला—संज्ञा पु० [फ्रा०] मुसलिम विचारों के अनुसार एक साधना जिसके द्वारा अस्वाभाविक शक्ति वश में की जाती है ।

चिल्लाना—क्रि० प्र० किसी प्राणी का जोर से बोलना । मुँह से ऊँचा स्वर निकालना । शोर करना । हल्ला करना ।

संयो० क्रि०—उठना ।—पड़ना ।

चिल्ला—संज्ञा पु० [सं०] छोटी छोटी चोरी करनेवाला । गिरहकट । चाँई [को०] ।

चिल्ला—संज्ञा स्त्री० [हि० चिल्लाना] १. चिल्लाने का भाव । २. हल्ला । शोर । गुल ।

संयो० क्रि०—उठना ।—पड़ना ।

चिल्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दोनों भीड़ों के बीच का स्थान । २. एक प्रकार का बधुवा साग जिसकी पत्तियाँ छोटी होती हैं । ३. मिल्ली नामक कीड़ा । मिल्लिका । भींगुर [को०] । ४. बिजली । वज्र [को०] ।

यौ०—चिल्लिका लता = (१) मीं । भू । (२) वज्र । बिजली ।

चिल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिल्ली नाम का कीड़ा ।

चिल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल्लिका (= एक अल का नाम)] बिजली । वज्र । चिरी । उ०—चक्रहूँ तें, चिल्लिन तें, प्रसै की बिजुलिन तें जमनुत्य जिल्लिन तें जगत उजेरो ।—पद्माकर प्र०, पु० ३०५ । (स) चिल्लिन की चाचा श्री बिजुलिन को बाप बड़ो बाँकुरो बवा है बड़वानल भजब को ।—पद्माकर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—गिरना ।—पड़ना ।

चिल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लोष । २. बधुआ साग ।

चिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि० चिल्ली?] एक प्रकार का छोटा वृक्ष जिसकी छाल गहरे साकी रंग की होती है और जिसपर सफेद चित्तियाँ होती हैं ।

विशेष—यह देहरादून, गढ़वाल, धवध और गोरखपुर के जंगलों में पाया जाता है । इसकी पत्तियाँ एक बालिश से कुछ कम लंबी होती हैं और गर्मी के दिनों में यह फलता है । इसके फल मछलियों के लिये जहर होते हैं ।

चिल्ला—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल्ल] दे० 'चील' और 'चील्ह' । उ०—करषि मुटिठ कम्मान तावि कनं बान छनं किय । मनहु चिलह दिसि सदस और बासं नमनं किय ।—पु० रा०, १ । ६३१ ।

चिल्ला—संज्ञा पु० [हि० चिल्ला] दे० 'चिल्ला' । उ०—अई पुछारि लीन्ह बनवास । कैरनि सबति दीन्ह चिल्ला—बासु ।—जायसी प्र० (गुप्त), पु० ३६३ ।

चिल्हवाङ्मा—संज्ञा पुं० [हि० चील] एक खेल जिसे लड़के पेड़ों पर चढ़कर खेलते हैं। गिल्हुर। गिलहुर।

चिल्ही(५)†—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल्ल] चील नाम की चिड़िया।
उ०—चिकारी चहूँ धोर से चार चिल्हीं।—सूदन (शब्द०)।

चिल्होरा—संज्ञा स्त्री० [सं० चिल्ल, हि० चील्ह + धोर (प्रत्य०)]
दे० 'चिल्ही'।

चिवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिवुक। ठोड़ी।

चिविट—संज्ञा पुं० [सं०] चिउड़ा। चिड़वा।

चिविल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की झाड़ी (को०)।

चिवुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. डुड्डो। ठोड़ी। २. मुचकुंद वृक्ष।

चिहुर(५)†—वि० [देश०] चित्र विचित्र। अद्भुत। उ०—बाजी चिहुर
रखाइ करि, रखा अपरछन होइ। माया पट पड़दा बिया,
साथें लखै न कोई।—दादू०, पृ० २१४।

चिहराना†—क्रि० प्र० [देश०] चिटकना। बरार पड़ना। उ०—
मीन लिया कोउ मार ठाँव डेला चिहराना।—पलटू०,
भा० १, पृ० २५।

चिहाना†—क्रि० प्र० [हि०] चिल्लाना। शोर करना।

चिहार(५)—संज्ञा पुं० [सं० चीत्कार, हि० चिघाड़] चीत्कार।
चिल्लाहट। चिघाड़। दे० 'चिकार'। उ०—मिले सेन पंमार
चालुक एतं। फुह रैन जुटै मनो प्रेत हेतं। ऊरं सीस तुटै
बिछुटै बिहारं। करै गल्ल प्रजै पिसाचं बिहारं।—पृ० रा०,
१२। १०४।

चिहारना(५)†—क्रि० प्र० [हि० 'चिहार' से नामिक वातु] चिघाड़ना
चिल्लाना। *

चिहारि(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० चिहार] दे० 'चिहार'। उ०—गाछे
गहो गहिर गुहारियो चिहारि कियो एहो दीनबंधु अब दीन कह
दलि गो।—गंग०, पृ० १।

चिहूँकना(५)†—क्रि० प्र० [सं० चमत्क, प्रा० चर्वेक] चींकना।

चिहूँटना(५)—क्रि० स० [सं० चिपिट, हि० चिमटना अथवा हि०
चमोटना (= चमके सहित धंग का कोई भाग पकड़ना)] १.
चुटकी काटना। चुटकी से शरीर का भाग इस प्रकार पकड़ना
जिसमें कुछ पीड़ा हो।

मुहा०—चित्त चिहूँटना—चित्त में संवेदना उत्पन्न करना। मर्म
स्पर्श करना। चित्त में चुभना। उ०—जे चुमकी निकसे बँसे
बिहूँसे धंग दिखाय। तकि तकि चित्त चिहूँटे सरी ऐड भरी
मँगिराय।—शृंगार सत० (शब्द०)।

२. चिपटना। लिपटना। उ०—बाल को बाल लई चिहूँटी
रिस के मिस बाल सों बाल चिहूँटी।—देव (शब्द०)।

चिहु टनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] गुंजा। चुँचबी। चिरमिटी।

चिहुँटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चिहूँटना] चुटकी। चिकोटी। उ०—
बाल को बाल लई चिहूँटी रिस के मिस बाल सों बाल चिहूँटी।
—देव (शब्द०)।

चिहुँ(५)—संज्ञा पुं० [प्रा० चीथ = चिता] दे० 'चिता'।

उ०—बोनों बध कीने में आई। चिहु रचि अग्नि जरी में
आई।—पावन०।—हि० क० का० पृ० २१६।

चिहु(५)†—वि० [हि० चहुँ] दे० 'चहुँ'। उ०—लगन तिथिअनु जासु
नाम चिहु चक्क चलाइय।—पृ० रा० (उ०), पृ० २१।

चिहुर(५)—संज्ञा पुं० [सं० चिकुर या चिहुर] सिर के बाल। केश।
उ०—छूटे चिहुर बदन कुम्हिलाने ज्यों नलिनी हिमकर की
मारी।—सूर (शब्द०)।

चिहुरार(५)—संज्ञा पुं० [सं० चिकुर या चिहुर + भार] केशभार
चिकुरभार।

चिहू—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चिह्नित] १. वह लक्षण जिससे किसी
चीज की पहचान हो। निशान। २. पताका। झंडी। ३.
किसी प्रकार का दाग या चन्ना। ४. छाप (पैरों का निशान)
(को०)। ५. रेखा। सकीर (को०)। ६. पथ आदि की सूचक
चीज (को०)। ७. लक्ष्य (को०)। ८. स्मृति दिलानेवाली
वस्तु (को०)।

चिह्नकारी—वि० [सं० चिन्हकारिन्] १. चिह्न बनानेवाला। २. बाध
करनेवाला। धायल करनेवाला। ३. मार डालनेवाला। ४.
भयानक (को०)।

चिह्नधारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] श्यामा नाम की लता। कालीसर।

चिह्नित—वि० [सं०] चिह्न किया हुआ। जिसपर चिह्न हो।

ची, चीची—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. पक्षियों अथवा छोटे बच्चों का
बहुत महीन शब्द। २. पक्षियों अथवा बच्चों का बहुत महीन
स्वर में बहुत बोलना या शोर करना।

मुहा०—चीं बोलना = अयोग्यता, अकर्मण्यता या अधीनता
स्वीकार करना। दबैल होना।

ची०—चींचपड़।

चींचल—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिल्लाहट। रोना।

चींचापड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] वह शब्द या कार्य जो किसी बड़े
या सबल के सामने प्रतिकार या विरोध के लिये किया जाय।
जेठे,—अगर जरा भी चींचपड़ करोगे तो हाथ पैर तोड़कर
रक्कड़ होगा।

चींटवा—संज्ञा पुं० [हि० चींटा] दे० 'चींटा' या 'च्यूँटा'। उ०—
राम मरे तो हम मरें, नातर मरे बलाय। अविनाशी का
चींटवा, मरे न मारा जाय।—कबीर (शब्द०)।

चींटा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चिउँटा'।

चींटो—संज्ञा स्त्री० [हि० चींटा] दे० 'चिउँटो'।

चीतना—संज्ञा स्त्री० [हि० चीतना] दे० 'चीतना'।

चीतना(५)—क्रि० स० [हि० चितना] १. चिता करना। २.
चेतना।

चींता गोला—संज्ञा पुं० [हि० चींटा + गोला] दे० 'चींटा गोला'।

चीथना—क्रि० स० [हि० चीथना] दे० 'चीथना'।

चीथरा(५)—संज्ञा पुं० [हि० चिथड़ा] दे० 'चिथड़ा'। उ०—बोले
हम यों भयो चीथरा बदन तुम्हारी।—अमरक०,
भा० १, पृ० ५५।

चीक^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चीत्कार] पीड़ा या कष्ट आदि के कारण बहुत जोर से चिल्लाने का शब्द । चिल्लाहट ।

चीक^२—संज्ञा पुं० [हि० चिक] मांस बेचनेवाला । कसाई । बूचर ।
विशेष—प्रायः बूचरों की दुकानों पर घाड़ के लिये चिकें टंगी रहती हैं, इसी से उन्हें चीक कहते हैं ।

चीक^३—संज्ञा पुं० [सं० चिकिल] दे० 'कीच' या 'कीचड़' ।

चीकट^१—संज्ञा पुं० [हि० कीचड़] १. तेल की मैल । तलछट । २. जटिबार । लसार मिट्टी ।

चीकट^२—संज्ञा पुं० [देश०] १. चिकट नाम का रेणुमी कपड़ा । २. वह कपड़े या जेवर आदि जो कोई मनुष्य अपने मांजे या भाजी के विवाह में अपनी बहन को देता है ।

चीकट^३—वि० बहुत मैला या गंदा ।

चीकड़ा^१—संज्ञा पुं० [सं० चिकिल या चिकल्ल] दे० 'कीचड़' ।

चीकना^१—वि० [सं० चिकण] दे० 'चिकना' ।

चीकना^२—क्रि० प्र० [सं० चीत्कार] १. पीड़ा या कष्ट आदि के कारण जोर से चिल्लाना ।

संयो० क्रि०—उठना ।—पड़ना ।

२. बहुत जोर से चिल्लाना । बहुत ऊँचे स्वर से बात करना ।

चीकना^३—वि० [हि० चिकना] [वि० स्त्री० चीकनी] दे० 'चिकना' ।
उ०—मलकाबलि काली चीकनी बुधुराली । —प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३० ।

चीकरा^१—संज्ञा पुं० [देश०] कुरें के ऊपर बना हुआ वह स्थान जिससे मोट या चरस आदि से निकाला हुआ पानी गिराया जाता है और जहाँ से पानी नालियों द्वारा होकर खेतों में पहुँचता है ।

चीख^१—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चीख] दे० 'चीक' ।

यो०—चीख पुकार = कष्ट के समय की चिल्लाहट ।

चीखना^१—क्रि० सं० [सं० चषण] किसी चीज को उसका स्वाद जानने के लिये, थोड़ी मात्रा में खाना या पीना ।

चीखना^२—संज्ञा पुं० [हि० चिखाना या चिखाना] भोजन में स्वाद बढ़ाने के लिये थोड़ी मात्रा में खाया जानेवाला पदार्थ । जैसे, चटनी, तरकारी आदि ।

चीखना^३—क्रि० प्र० [हि० चीकना] दे० 'चीकना' ।

चीखर, चीखल—संज्ञा पुं० [सं० चिकिल या चिकल्ल] १. कीच । कीचड़ । उ०—दल दाभ्या चीखल जला, विरहा लागी आगि । तिनका बपुरा ऊबरा, गल पूरा के लागि ।—कबीर (शब्द०) । २. गारा ।

चीखुर—संज्ञा पुं० [हि० चिखुरा] गिलहरी ।

चीज^१—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० चीज] वह जिसकी वास्तविक, काल्पनिक अथवा संभावित परंतु दूसरों से पृथक् सत्ता हो । सत्तात्मक वस्तु । पदार्थ । वस्तु । इत्थ । जैसे,—(क) बहुत सूख लगी है, कोई चीज (लाभपदार्थ) हो तो लाओ । (ख) मेरे पास छोड़ने के लिये कोई चीज (रजाई, दोहर या कोई कपड़ा) नहीं है । (ग) उनकी सब चीजें (सोटा, पाली, कपड़ा, किताबें आदि) हमारे यहाँ रखी हुई हैं ।

यो०—चीज वस्तु = सामान । असबाब ।

२. आभूषण । गहना । जैसे,—(क) वह चीज रखकर खपए जाए हैं । (ख) लड़की के हाथ पैर नंगे हैं, इसे कोई चीज बनवा दो ।

यो०—चीज वस्तु = जेवर आदि ।

३. गाने की चीज । राग । गीत । जैसे,—(क) कोई अच्छी चीज सुनाओ । (ख) उसने दो चीजें बहुत अच्छी सुनाई थीं ।

४. विलक्षण वस्तु । विलक्षण जीव । जैसे, (क) क्या कहें मेरी भ्रंशूठी गिर गई, वह एक चीज थी । (ख) आप भी तो एक चीज हैं । ५. महत्व की वस्तु । गिनती करने योग्य वस्तु । जैसे,—(क) काशी के आगे मथुरा क्या चीज है । (ख) उनके सामने ये क्या चीज हैं ।

चीठ^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चीकड़ (= कीचड़)] मैल । उ०—कीड़े काठ जु खादया, खाया किनहूँ बीठ । होत उपाई देखिया भीतर जाय्या चीठ ।—कबीर (शब्द०) ।

चीठा^१—संज्ञा पुं० [हि० चिट्ठा] दे० 'चिट्ठा' । उ०—नाम की लाज राम करन कर, केहि न दिए कर चीठे ।—तुलसी (शब्द०) ।

चीठी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चिट्ठी] दे० 'चिट्ठी' ।

चीड़^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का देशी लोहा । २. जूते के लिये चमड़ा साफ करने की क्रिया (मोचियों की परिभाषा) । ३. दे० 'चीड़' ।

चीड़ा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] चीड़ नाम का पेड़ ।

चीड़^२—संज्ञा पुं० [सं० सरल, प्रा० सरह, चड़, चीड़ अथवा सं० चीड़ा या क्षीर (= चीड़) ?] १. एक प्रकार का बहुत ऊँचा पेड़ जो भूतान से काश्मीर और अफगानिस्तान में बहुत अधिकता से होता है ।

विशेष—इसके पत्ते सुंदर होते हैं और लकड़ी अंदर से नरम और चिकनी होती है जो प्रायः हमारत और सजावट के सामान बनाने के काम में आती है । पानी पड़ने से यह लकड़ी बहुत जल्दी खराब हो जाती है । इस लकड़ी में तेल अधिक होता है; इसलिये पहाड़ी लोग इसके टुकड़ों को जलाकर उनसे मशाल का काम लेते हैं । इसकी लकड़ी औषध के काम में भी आती है । इसके गोंद को गंधाबिरोजा कहते हैं । ताड़पीन (तेल) भी इसी वृक्ष से निकलता है । कुछ लोग बिलगोजे को इसी का फल बताते हैं; पर बिलगोजा इसी जाति के दूसरे पेड़ का फल है । प्राचीन भारतीयों ने इसकी गणना गंधद्रव्य में की है और वैद्यक में इसे गरम, कासनाशक, चरपरा और कफनाशक कहा है । इसके अधिक सेवन से पित्त और कफ का दूर होना भी कहा है । इसे चील या सरल भी कहते हैं ।

२. चीड़ नाम का देशी लोहा ।

चीणी^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रंग । उ०—रोहड़ बड़ बंकड़ सेतह पदधर कर तोले । अस चीणी औरियो, ख बाबा धमरोले ।—रा० रू० पृ० ८७ ।

चीत^१—संज्ञा पुं० [सं० चित] १. चित्त । मन । दिल । उ०—ढोला धामण दमणउ नखतो खूद भीति । हमची कुण खद धागची बसी पुहारि भीति ।—ढोला०, दू० १३७ । २. इच्छा । विचार । उ०—के जाना के सोचना, और न कोई

चीत । सतगुरु सब्ब बिसारिया, आदि अंत का चीत ।—कबीर सा० सं०, पृ० ६२ ।

चीत^१—संज्ञा पु० [सं० चित्रा] चित्रा नक्षत्र । उ०—तोहि देखे पिउ पलुहै काया । उतरा चीत बहुरि कब माया ।—जायसी (शब्द०) ।

चीत^२—संज्ञा पु० [सं०] सीसा नामक धातु ।

चीतकार^१—संज्ञा पु० [सं० चीत्कार] १० 'चीत्कार' ।

चीतकार^२—संज्ञा पु० [सं० चित्रकार] १० 'चित्रकार' ।

चीतना^१—क्रि० सं० [सं० चेत] [वि० चीता] १. सोचना । विचारना । आवना करना । २. चेतन्य होना । होश में आना । ३. स्मरण करना । याद करना ।

चीतना^२—क्रि० सं० [सं० चित्र] चित्रित करना । तसवीर या बेल बूटे बनाना । उ०—द्वार बुहारत फिरत अष्ट सिधि । कीरेन सथिया चीतत नव निधि ।—सूर (शब्द०) ।

चीतरा^१—संज्ञा पु० [हि० चीतल] १० 'चीतल' ।

चीतरा^२—संज्ञा स्त्री० [सं० चित्र] एक प्रकार का साँप जो छोटे आकार का, लगभग एक हाथ लंबा, होता है और जिसकी पूँछ की मोटाई बराबर होती है ।

चीतल—संज्ञा पु० [सं० चित्ती (= लंबी चारी या हाथ)] १. एक प्रकार का हिरन जिसके शरीर पर सफेद रंग की चित्तियाँ या बुँदकियाँ होती हैं ।

विशेष—यह मझोले कब का होता है और सारे भारत में प्रायः जल के किनारे झुंडों में पाया जाता है । इसके अयाल नहीं होती । इसकी मादा गर्म धारण के आठ महीने बाद बच्चा देती है ।

२. भ्रजगर की जाति का पर उससे छटा एक प्रकार का साँप ।

विशेष—इसके शरीर पर छोटी छोटी चित्तियाँ होती हैं । इसके आगे का भाग पतला और मध्य का बहुत भारी होता है । यह सरगोश, बिल्ली या बकरे के छोटे बच्चों को निगल जाता है ।

३. एक प्रकार का सिमका ।

चीता^१—संज्ञा पु० [सं० चित्रक] १. बिल्ली की जाति का एक प्रकार का बहुत बड़ा हिंसक पशु ।

विशेष—यह प्रायः दक्षिणी एशिया और विशेषतः भारत के जंगलों में पाया जाता है । यह आकार में बाघ से छोटा होता है और इसकी गरदन पर अयाल नहीं होती । इसकी कमर बहुत पतली होती है और इसके शरीर पर लंबी, कासी और पीली धारियाँ होती हैं जो देखने में सुंदर होती हैं । यह बहुत तेजी से चौकड़ी भरता है और इसी प्रकार प्रायः हिरनों को पकड़ लेता है । यह साधारणतः बहुत हिंसक होता है और प्रायः पेड़ मरे रहने पर भी शिकार करता है । संघ्या समय यह जलाशयों के किनारे छिपा रहता है और पानी पीनेवाले जानवरों को उठा ले जाता है । चीता मनुष्यों पर जल्दी आक्रमण नहीं करता; पर एक बार जब उसके झुँह में आदमी

का खून लग जाता है, तो फिर वह प्रायः गावों में उसी के लिये घुस जाता है और मनुष्यों के बालकों को उठा ले जाता है । यह पेड़ पर नहीं चढ़ सकता, पर पानी में बहुत तेजी से तैर सकता है । इसकी मादा एक बार में ३—४ तक बच्चे देती है । भारत में इसका शिकार किया जाता है । कहीं कहीं बड़े आदमी इसे दूसरे जानवरों का शिकार करने के लिये भी पालते हैं । इसका बच्चा पकड़कर पाला भी जा सकता है ।

२. एक प्रकार का बहुत बड़ा झुप जिसकी पत्तियाँ जामुन की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं ।

विशेष—इसकी कई जातियाँ हैं जिनमें अलग अलग सफेद, लाल, काले या पीले फूल लगते हैं । पर सफेद फूलवाले चीते के सिवा और रंग के फूलवाले चीते बहुत कम देखने में आते हैं । इसके फूल बहुत सुगंधित और लहरी के फूलों से मिलते जुलते होते हैं और गुच्छों में लगते हैं । इसकी छाल और जड़ औषधि के काम में आती है । यह बहुत पाचक होता है । वैद्यक में इसे चरपरा, हलका, अग्निदीपक, भूख बढ़ानेवाला, कफा, गरम और संघर्षणो, कोढ़, सूजन, बवासीर, काँसी और यकृत दोष आदि को दूर करनेवाला तथा त्रिदोषनाशक माना है । कहते हैं, लाल फूलवाले चीते की जड़ के सेवन से शरीर स्थूल हो जाता है और काले फूल के चीते की जड़ के सेवन से बाल काले हो जाते हैं ।

पर्या०—चित्रक । अमल । बह्नि । विभाकर । शिलावान् । शुष्मा । पावक । दारण । शंबर । शिली । हुतभुक् । पाप्मी । इसके अतिरिक्त अग्नि के प्रायः सभी पर्याय इसके लिये व्यवहृत होते हैं ।

चीता^२—संज्ञा पु० [सं० चित्त] चित्त । हृदय । दिल । उ०—अति अमंद गति इंद्री जीता । जाको हरि बिन कबहुँ न चीता ।—तुलसी ग्रं० पृ० १० ।

चीता^३—संज्ञा पु० [सं० चेत] संज्ञा । होश । हवास । उ०—तिन को कहा परेखो कीजे कुबजा के भीता को । चढ़ि चढ़ि सेज सातहुँ सिधू बिसरी जो चीता को ।—सूर (शब्द०) ।

चीता^४—वि० [हि० चेतना या चोतना] [वि० स्त्री० चीती] सोचा हुआ । विचारा हुआ । जैसे,—अब तो तुम्हारा चीता हुआ ।

यौ०—मनचीता । मनचीती ।

चीतावती^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चेत] यादगार । स्मारक चिह्न ।

चीतार^१—संज्ञा पु० [सं० चित्रकार, प्रा० चित्त + आर (प्रत्य०)] चित्तेरा । वह व्यक्ति जो चित्र बनाता हो । उ०—बोहस गज उरद, राज ऊभो गवण तस । संभ समय चीतार, पत्र कीनो पैसकस ।—पृ० २०, ३ । ५६ ।

चीतारना^१—क्रि० सं० [हि० चीता] याद करना । उ०—चीतारंती चुगतियाँ कुंभी रोवहियाँह । दूराहुंता तज पलइ जऊ न मेलहु हियाँह ।—ढोला०, दू० २०१ ।

चीतारना^२—क्रि० सं० [सं० चित्रण] चित्रित करना । उच्चारण करना । बर्णन करना । उ०—ओषंकार बीरज संसाते । ओषंकार गुरमुख चीतारे ।—प्राण० पृ० २ ।

चीति०—संज्ञा पु० [सं० चित्त] दे० 'चित्त' ।

चीतोढ़ा—संज्ञा पु० [हि० चितोर] दे० 'चितोर' । उ०—पार्श्व कंकण सिर बंधीयो मोड़ । प्रथम पयाणुर्ते दूरन चीतोड़ ।—वी० रासो, पृ० १२ ।

चीत्कार—संज्ञा पु० [सं०] चित्लाहट । हल्सा । शोर । गुल । चित्लाने का शब्द ।

चीथड़ा—संज्ञा पु० [हि० चीथना] फटे पुराने कपड़े का छोटा रद्दी टुकड़ा ।

क्रि० प्र०—जोड़ना ।—पहनना ।—बनना ।—होना ।

मुहा०—चीथड़ा लपेटना=फटा पुराना और रद्दी कपड़ा पहनना ।

चीथड़ों खगना=बहुत दरिद्र होना । इसना दरिद्र होना कि पहनने को केवल चीथड़े ही मिलें ।

चीथना—क्रि० स० [सं० चीथ] टुकड़े टुकड़े करना । चीथना । फाड़ना (विशेषतः कपड़े के लिये) ।

चीथरा—संज्ञा पु० [हि० चीथड़ा] दे० 'चीथड़ा' ।

चीथह—वि० [फ्रा० चिथह या चिथः] चुना हुआ । छोटा हुआ (कपड़ा) ।

चीथा—वि० [फ्रा० चीथह] दे० 'चीथह' ।

चीन—संज्ञा पु० [सं०] १. झंडी । पताका । २. सीसा नामक धातु । नाग । ३. तागा । सूत । ४. एक प्रकार का रेशमी कपड़ा । ५. एक प्रकार का हिरन । ६. एक प्रकार की ईल । ७. एक प्रकार का सौंवाँ अन्न । दे० वि० 'चेना' । ८. एक प्रसिद्ध पहाड़ी देश जो एशिया के दक्षिण-पूर्व में है । ९. इसकी राजधानी पेकिंग है ।

विशेष—यहाँ के अधिकांश निवासी प्रायः बौद्ध हैं । चीन के निवासी अपनी भाषा में अपने देश को 'चंगचूह' कहते हैं । कदाचित् इसी लिये भारत तथा फारस के प्राचीन निवासियों ने इस देश का नाम अपने यहाँ 'चीन' रख लिया था । चीन देश का उल्लेख महाभारत, मनुस्मृति, ललितविस्तर आदि ग्रंथों में बराबर मिलता है । यहाँ के रेशमी कपड़े भारत में चीनांशुक नाम से इनके प्रसिद्ध थे कि रेशमी कपड़े का नाम ही 'चीनांशुक' पड़ गया है । चीन में बहुत प्राचीन काल का क्रम-बद्ध इतिहास सुरक्षित है । ईसा से २६५० वर्ष पूर्व तक के राजवंश का पता चलता है । चीन की सभ्यता बहुत प्राचीन है, यहाँ तक कि युरोप की सभ्यता का बहुत कुछ धंसा—जैसे, पहनावा, बैठने और खाने पीने आदि का ढंग, पुस्तक छापने की कला आदि—चीन से लिया गया है । यहाँ ईसा के २१७ वर्ष पूर्व से बौद्ध धर्म का संचार हो गया था पर ईसवी सन् ६१ में मिंगती राजा के शासनकाल में, जब भारतवर्ष से ग्रंथ और मूर्तियाँ गईं, लोग बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित होने लगे । सन् ६७ में कश्यप मंत्रा नामक एक बौद्ध पंडित चीन में गए और उन्होंने 'द्वाचत्वारिंशत् सूत्र' का चीनी भाषा में अनुवाद किया । तबसे बराबर चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार बढ़ता गया । चीन से भुंड के भुंड यात्री विद्याध्ययन के लिये भारत वर्ष में आते थे । चीन में अबतक ऐसे कई स्तूप पाए जाते हैं जिनके विषय में चीनियों का कथन है कि वे सम्राट् अशोक के बनवाए हैं ।

ची०—चीन की दीवार=एक प्रसिद्ध दीवार जिसे ईसा से प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व एक चीनी सम्राट् ने उत्तरीय जातियों के आक्रमण से अपने देश की रक्षा करने के लिये बनवाया था । यह दीवार प्रायः १५०० मील लंबी है और बहुत ऊँची, चौड़ी और दृढ़ बनी है । इसका कुछ भंश मंगोलिया और चीन देश की विभाजक सीमा है । इसकी गणना संसार के सात सबसे अधिक आश्चर्यजनक पदार्थों (सप्ताश्चर्य) में की जाती है ।

मुहा०—चीन का, या चीनी का बरतन या खिलौना आदि=दे० 'चीनी मिट्टी' ।

६. उक्त देश का निवासी ।

चीन^{२५}—संज्ञा पु० [हि० चीन्ह] दे० 'चित्त' ।

चीन^{२६}—संज्ञा पु० [सं० चयन] दे० 'चुनन' ।

चीनक—संज्ञा पु० [सं०] १. चेना नामक अन्न । २. कंगनी नामक अन्न । ३. चीनी कपूर ।

चीनकपूर—संज्ञा पु० [सं०] चीनी कपूर ।

चीनज—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का इस्पात लोहा जो चीन से आता है ।

चीनना—क्रि० स० [हि० चीन्हना] दे० 'चीन्हना' । उ०—द्वादश धनुष द्वादश विष्का मनमोहन षट् बिबुक्त बिहू चित चीन ।—सूर (शब्द०) ।

चीनपिट्ट—संज्ञा पु० [सं०] १. सिंदूर । सेंदुर । २. इस्पात लोहा ।

चीनबंग—संज्ञा पु० [सं०] सीसा नामक धातु ।

चीनांशुक—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रकार की लाल बनावत जो पहले चीन से आती थी । २. चीन से आनेवाला एक प्रकार का कपड़ा । ३. रेशमी वस्त्र । उ०—शुचिते, पहनाकर चीनांशुक रख सका न तुझे अतः दधि मुख ।—अपरा, पृ० १६६ ।

चीना^१—संज्ञा पु० [हि० चीन] १. चीन देशवासी । २. एक तरह का सौंवाँ । वि० दे० 'चेना' । ३. चीन देश का एक सुकुमार वृक्ष । उ०—घृदुलता सिरिस मुकुल सुकुमार, विपुल पुलकावलि चीना डाल । गुंजन, पृ० ५० ।

चीना^२—वि० चीन देश संबंधी । चीन देश का । जैसे,—चीना बाबाम ।

चीना^३—संज्ञा पु० [सं० चित्त] एक प्रकार का सफेद कबूतर जिसके शरीर पर लाल या काली चित्तियाँ होती हैं ।

चीना^४—संज्ञा पु० [सं० चीनाक] चीनी कपूर ।

चीनाक—संज्ञा पु० [सं०] चीनी कपूर ।

चीना ककड़ी—संज्ञा ची० [सं० चीना + ककड़ी] एक प्रकार की छोटी ककड़ी ।

विशेष—वैद्यक में इसे शीतल, मधुर, रुचिकारक, मारी, वात-वर्द्धक, पित्तरोग नाशक और दाह, शोथ आदि को हरनेवाली कहा है ।

चीनाचदन—संज्ञा पु० [हि० चीना + चदन] एक प्रकार का पत्ती जो दक्षिण भारत में पाया जाता है ।

विशेष—इसके पीसे शरीर पर काली धारियाँ होती हैं और

इसका स्वर मधुर होता है। मधुरभाषी होने के कारण यह पाला जाता है।

बीनाबादाम—संज्ञा पुं० [हि० चीन + क्रा० बादाम] मूँगफली।

चीनिया—वि० [देश०] चीन देश का। चीन देश संबंधी।

ची०—चीनिया केला = एक प्रकार का देशी केला। वि० दे० 'चीनी चंपा'। 'चीनिया बादाम'।

चीनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चीन (देश) + ई (प्रत्य०), अथवा सं० सिता] या दानेदार सफेद रंग का एक प्रसिद्ध मीठा पदार्थ जो चूखे रूप में होता है और ईस के रस, चुकंदर, सख्खर आदि पदार्थों से बनाया जाता है।

विशेष—चीनी का व्यवहार प्रायः मिठाइयाँ बनाने और पीने के दूध या पानी आदि को मीठा करने के लिये होता है। तरल पदार्थ में यह बहुत सरलता से घुल जाती है। भारतवर्ष में चीनी केवल ईस के रस से ही उसको बार बार उबाल और साफ करके बनाई जाती है। पर संसार के अन्य भागों में यह और भी बहुत से पौधों के मीठे रस और विशेषतः चुकंदर के रस से बनाई जाती है। जिस देशी चीनी में मेल अधिक हो उसे 'कच्ची चीनी' और जिसमें मेल कम हो उसे पक्की चीनी कहते हैं। अब भारतवर्ष में दानेदार चीनी (जिसे लोग प्रारंभ में विलायती कहा करते थे क्योंकि पहले ऐसी चीनी बिदेस से ही आती थी) भी तैयार होने लगी है। प्रारंभ में लोग इसका प्रयोग अर्धामिक समझते थे परंतु अब इसका प्रयोग बिना किसी हिचक के होता है। चीनी की खपत भारतवर्ष में अपेक्षाकृत बहुत अधिक होती है। खाड़, राब, गुड़ आदि इसी के पूर्व और अपरिष्कृत रूप हैं। प्राचीन भारतीयों ने इसकी गणना मंगलद्रव्यों में की है। सुश्रुत के अनुसार ईस का रस उबालकर बनाए हुए पदार्थ ज्यों ज्यों साफ होकर राब, गुड़, चीनी, मिस्रो आदि बनते हैं, त्यों त्यों वे उत्तरोत्तर शीतल, स्निग्ध, भारी, मधुर और तृष्णा शांत करनेवाले होते जाते हैं।

चीनी^२—वि० चीन देश संबंधी। चीन देश का। जैसे, चीनी मिट्टी, कबाब चीनी, चीनी भाषा।

चीनी^३—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा पौधा जो पंजाब और पश्चिम हिमालय में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ प्रायः चारे के काम में आती हैं।

चीनी कपूर—संज्ञा पुं० [हि० चीनी + सं० कपूर] एक प्रकार का कपूर।

चीनी कबाब—संज्ञा पुं० [हि० चीनी + कबाब] दे० 'कबाब चीनी'।

चीनी चंपा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत उत्तम केला जो आकार में छोटा होता है। इसी को 'चीनिया केला' चीनिया केला भी कहते हैं।

चीनीदानो—संज्ञा स्त्री० [हि० चीनी + क्रा० दान + ई (प्रत्य०)] वह पात्र जिसमें चीनी रखी जाती है। उ०—चीनी के लिये चीनीदानो घागे कर दी।—बो दुनिया, पृ० १२।

चीनी मिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० चीनी (वि०) + मिट्टी] एक प्रकार की मिट्टी जो पहले पहल चीन के किंग वि० चिन् नामक पहाड़

से निकली थी और अब अन्य देशों में भी कहीं कहीं पाई जाती है।

विशेष—इसके ऊपर पालिश बहुत अच्छी होती है और इससे तरह तरह के खिलौने, गुलदान और छोटे बड़े बरतन बनाए जाते हैं जो 'चीन के' या 'चीनी के', कहलाते हैं। आजकल इस प्रकार की मिट्टी मध्यप्रदेश तथा बंगाल के कुछ जिलों में भी पाई जाती है।

चीनी मोर—संज्ञा पुं० [हि० चीनी + मोर] सोहन चिड़िया की जाति का एक पक्षी।

विशेष—यह पक्षी संयुक्त प्रांत, बंगाल और आसाम में अधिकता से होता है। इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है, इसलिये शिकारी प्रायः इसका शिकार करते हैं।

चीन्हा—संज्ञा पुं० [सं० चिह्न] दे० 'चिह्न'।

चीन्हना—कि० सं० [हि० चीन्हा से नामिक धातु] पहचानना।

ची०—चीन्हा परिचय = जान पहचान।

चीन्हा^१—संज्ञा पुं० [सं० चिह्न] १. दे० 'चिह्न'। २. परिचय।

चीप^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. चार भंगुल की एक लकड़ी जो जूते के कलवूत में सबसे पीछे भरी या चढ़ाई जाती है (चमारों की परि०)। २. जमीन में से निकली हुई मिट्टी का वह घन जो एक बार फावड़ा खलाने से खुदकर निकल आए। ३. दे० 'चेप'।

चीप^२—संज्ञा पुं० १. वृक्ष, पेड़। २. मुर्दा जलाने के लिये एकत्र लकड़ियों का ढेर। उ०—तब आयरन नरपति कियो कोय न बाले चीप। आजा भंग जो को करे, ताहि बंधाऊँ चीप।—पृ० २१०, २३। २५ पृ० ६७८।

चीप^३—वि० [अं०] सस्ता। कम दाम का।

चीपड़—संज्ञा पुं० [हि० कीचड़] वह सफेद लसदार पदार्थ जो आँस के कोनो से निकलता है। आँस का कीचड़।

चीपी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] दरियाई नारियल का कर्मंडल। उ०—चिरा चीपी ज्ञान डीवी ध्यान ईधन लावन।—पलटू०, भा० ३, पृ० ६६।

चीफ^१—संज्ञा पुं० [अं० चीफ] बड़ा सरदार या राजा, विशेषतः किसी जाति या प्रांत का अधिकारप्राप्त प्रधान।

ची०—इतिहास चीफ = (भारतवर्ष में स्वतंत्रता के पूर्व का) वह राजा जिसे अपने राज्य के आंतरिक कार्यों के संबंध में पूर्ण अधिकार होता था। चीफ एक्जिक्यूटिव अफसर = मुख्य प्रबंध अधिकारी। उ०—अभी हिमाचल सरकार ने अस्थायी तौर से रियासत को संभालने के लिये मुख्य प्रबंधाधिकारी चीफ एक्जिक्यूटिव अफसर भेजा है।—किसर०, पृ० ७।

चीफ^२—वि० प्रधान। श्रेष्ठ। मुख्य। बड़ा। जैसे,—चीफ एडीटर = प्रधान संपादक।

चीफ कमिशनर—संज्ञा पुं० [अं० चीफ कमिशनर] १. वह प्रधान अधिकारी जिसको किसी कार्य को करने का अधिकारपत्र मिला हो। २. किसी छोटे प्रदेश का प्रधान अधिकारी।

विशेष—स्वतंत्रता के पूर्व चीफ कमिशनर का पद लेफ्टिनेंट गवर्नर

(छोटे माट) के पक्ष से कुछ छोटा समझा जाता था और उसके अधिकार में स्वतंत्र प्रांत होता था। इसकी नियुक्ति स्वयं गवर्नर जनरल इन कौंसिल के द्वारा होती थी और वह गवर्नर जनरल का विशिष्ट अधिकार प्राप्त प्रतिनिधि होता था। सीमाप्रांत तथा मध्यप्रदेश आदि प्रांत बीफ कमिशनर के अधीन थे।

बीफ कोर्ट—संज्ञा पुं० [सं० बीफ कोर्ट] ब्रिटिश व्यवस्था के अनुसार किसी छोटे प्रांत का प्रधान न्यायानय।

बिरोध—भारतवर्ष के पंजाब, अवध तथा दक्षिणी बरमा की सबसे बड़ी प्रदालत 'बीफ कोर्ट' कहलाती थी। इसके चीफ जज और जजों की नियुक्ति गवर्नर जनरल इन कौंसिल द्वारा होती थी।

बीफ जज—संज्ञा पुं० [सं० बीफ + जज] हाई कोर्ट के जजों में प्रधान। हाईकोर्ट का प्रधान जज।

बीफ जस्टिस—संज्ञा पुं० [सं० बीफ + जस्टिस] हाई कोर्ट का प्रधान जज।

बीफ मिनिस्टर—संज्ञा पुं० [सं० बीफ + मिनिस्टर] प्रांतीय विधान सभा के बहुमत दल का नेता। मुख्यमंत्री।

बीमड़—वि० [हि० बमड़ा] जो लींचने, मोड़ने या झुकाने आदि से न फटे या न टूटे। जैसे,—बीमड़ कपड़ा, बीमड़ कागज, बीमड़ लकड़ी आदि।

बिरोध—यह विशेषण केवल उन्हीं पदार्थों के लिये व्यवहृत होता है, जो लींचने से बढ़ या मोड़ने अथवा झुकाने से टूट सकते हैं।

बीमड़—संज्ञा पुं० [सं० बीमड़] अमलताल की जाति का, पर बहुत छोटा एक प्रकार का पौधा।

बिरोध—इसके बीज दस्तावर होते हैं; और प्रांश घाने पर पीसकर प्रांशों में डाले जाते हैं। इसे चाकसू या बनार भी कहते हैं।

बीमरा—संज्ञा पुं०, वि० [हि० बीमड़] दे० 'बीमड़'।

बीयों—संज्ञा पुं० [हि० बिबी] दे० 'चिया'।

बीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वस्त्र। कपड़ा। उ०—(क) प्रातःकाल वस्त्रान्धन करन को यमुना गोपि सिधारी। लै के बीर कदंब चढ़े हरि बिनबत है प्रजनारी।—सूर (शब्द०)। (ख) बीर के कागर ज्यो सुप बीर विभूषन, उपम मंगनि पाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६१। २. वृक्ष की छाल। ३. पुराने कपड़े का टुकड़ा। चिपड़ा। लता। ४. गौ का घन। ५. बार लड़ियों-वाली मोतियों की माला। ६. मुनियों, विशेषतः बौद्ध भिक्षुओं के पहनने का कपड़ा। ७. एक बड़ा पक्षी जो प्रायः तीन फुट लंबा होता है और जिसका शिकार किया जाता है।

बिरोध—यह कुमाऊँ, गढ़वाल तथा अन्य पहाड़ी जिलों में पाया जाता है। इसकी दुम लंबी और बहुत खूबसूरत होती है। यह 'बीर बीर' शब्द कहता है, इसी से इसे बीर कहते हैं।

न. घूप का पेड़। वि० दे० 'बीड़'। ६. छप्पर का मंगरा। मषीच। १०. सीसा नामक धातु।

बीर—संज्ञा बी० [हि० बीरना] १. बीरने का भाव या क्रिया।

बी०—बीर काङ = बीरने या फाड़ने का भाव या क्रिया।

२. चोरकर बनाया हुआ शिमाफ या बरार।

क्रि० प्र०—बातना।—पड़ना।

३. कुश्ती का एक पेंच।

बिरोध—यह उस समय किया जाता है जब जोड़ (बिपक्षी) पीछे से कमर पकड़े होता है। इसमें दाहिने हाथ से जोड़ का दाहिना हाथ धीरे धीरे बायाँ हाथ पकड़कर पहलवान उसके दोनों हाथों को अलग करता हुआ निकल आता है।

बीरफ—संज्ञा पुं० [सं०] लिखित प्रमाण के दो भेदों में से एक जिसे विकृत लेख कहते हैं।

बीरचरम—संज्ञा पुं० [सं० बीरचर्म] बाघचर्म। घुमचर्म। घुमछाला।

बीरचोर—संज्ञा पुं० [सं० बीर + चोर] बीर हरण करनेवाले श्रीकृष्ण। उ०—बीरचोर बितचोर और को सरबसु है धपनायो।—चनानंद, पृ० ४११।

बीरना—क्रि० सं० [सं० बीर] (= चौरा हुआ अथवा अनुरणनात्मक) [संज्ञा बीरा] किसी पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान तक एक सीध में योंही अथवा किसी बारदार या दूसरी बीज से बँसा या फाड़कर खंड या काँच करना। बिदीछुं करना। फाड़ना। जैसे,—धारी से लकड़ी बीरना, नखतर से पाच बीरना, नाव का पानी बीरना, दोनों हाथों से बीड़ बीरना आदि।

बी०—बीरना फाड़ना।

मुहा०—माख (या खप्पा आदि) बीरना = किसी प्रकार, विशेषतः कुछ अनुचित रूप से, बहुत धन कमाना।

बीरनिबसन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक देश का नाम जो कूर्म विभाग के ईशान कोण में बतलाया जाता है। २. उक्त देश का निवासी।

बीरपत्रिका—संज्ञा बी० [सं०] बेंच नाम का साग।

बीरपरिमह—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'बीरवासा' [बी०]।

बीरपर्य—संज्ञा पुं० [सं०] साल का पेड़।

बीरफाड़—संज्ञा बी० [हि० बीर + फाड़] १. बीरने फाड़ने का काम। २. बीरने फाड़ने का भाव।

बीरलिख—संज्ञा पुं० [सं०] सुभृत के अनुसार एक मत्स्य।

बीरवासा—संज्ञा पुं० [सं० बीरवास] १. शिव। महादेव। २. यक्ष।

बीरवासा—वि० १. छाल या वस्त्र पहननेवाला। २. चिपड़े पहननेवाला [बी०]।

बीरहरण—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण की एक लीला जिसमें वे गोपियों का बल लेकर उस समय वृक्ष पर चढ़ गए थे, जब वे नंगी होकर यमुना में स्नान कर रही थीं।

बीरा—संज्ञा पुं० [हि० बीरना] १. एक प्रकार का लहरिएदार रंगीन कपड़ा जो पगड़ी बनाने के काम में आता है।

क्रि० प्र०—बीचना।—बनाला।

बी०—बीराबंद।

२. नाव की सीमा पर गाढ़ा हुआ पत्थर या लंबा आदि । ३. बीरकर बनाया हुआ जल या चाव ।

क्रि० प्र०—देना ।—बिलना ।—लगाना ।

मुहा०—बीरा उतारना या तोड़ना = (किसी पुरुष का स्त्री के साथ) प्रथम समागम करना । कुमारी का कीर्मायं नष्ट करना ।

यो०—बीराबंद ।

बीराबंद^१—संज्ञा पु० हि० बीरा = कपड़ा + फा० बंद] बीरा बांधने-वाला । वह जो लोगों के लिये बीरे बांधकर तैयार करता है ।

बीराबंद^२—वि० बी० [हि० बीरा (जल) + फा० बंद] जिसने पुरुष के साथ समागम न किया हो । कुमारी (बाजांरु) ।

बीराबंदो—संज्ञा बी० [हि० बीरा (= पगड़ी का कपड़ा) + फा० बंदी] एक प्रकार की बुनावट जो पगड़ी बनाने के लिये ताक के कपड़े पर कारचोबी के साथ की जाती है । इस बुनावट की पगड़ी कुछ जातियों में विवाह के समय वर को पहनाई जाती है ।

बीरि—संज्ञा बी० [सं०] १. प्रांज पर बांधी जानेवाली पट्टी । २. बोली, साड़ी आदि की लांग । ३. भींगुर [बी०] ।

बीरिका—संज्ञा बी० [सं०] भींगुर । झिल्ली ।

बीरिणी—संज्ञा बी० [सं०] बदरीनारायण के निकट की एक प्राचीन नदी का नाम ।

विशेष—जिसके पास वैवस्वत मनु ने तपस्या की थी । इसका नाम महाभारत में आया है ।

बीरिखछया—संज्ञा बी० [सं०] पालक का साग ।

बीरी^१—संज्ञा पु० [सं० बीरिन्] १. भींगुर । झिल्ली । २. एक प्रकार की छोटी मछली ।

बीरो^२—संज्ञा बी० [हि० चिड़ी या चिड़िया] चिड़िया । पक्षी । उ०—सासति सहत दास कीजे पेखि परिहास बीरी को मरन खेलु बालकनि को सो है ।—तुलसी (शब्द०) ।

बीरो^३—संज्ञा बी० [हि० बीड़ या बीड़] दे० 'बीड़' ।

बीरो^४—संज्ञा बी० [हि० चिट या चिट्टी] चिट्टी । उ०—सात बरस पेहलो रह्यो बीरी जगह न भोकल्यो कोई ।—बी० रासो, पृ० ४४ ।

बीरीबाक—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रकार का कीड़ा । मनु के जल से नमक चुरानेवाला मनुष्य दूसरे जन्म में इसी योनि में जन्म लेता है ।

बीरु^५—संज्ञा पु० [सं० बीर] दे० 'बीर' ।

बीरुक—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का फल जिसे वैद्यक में रुचिकर, शाहजलक और कफ-पित्त-वर्धक माना है ।

बीरुका—संज्ञा बी० [सं०] भींगुर [बी०] ।

बीरुा—संज्ञा पु० [सं० बीर] जाल रंग का बीर जो विदेश से आता है ।

बीर्यु—वि० [सं०] फटा हुआ । बीरा या बीरा हुआ ।

बीर्युपर्यु—संज्ञा पु० [सं०] १. नीम का पेड़ । २. लज्जर का पेड़ ।

बीरु—संज्ञा बी० [सं० बिल्ल] गिट्टा और बाघ आदि की जाति की पर उनसे कुछ दुर्लभ एक प्रसिद्ध चिड़िया ।

विशेष—यह संसार के प्रायः सभी गरम देशों में पाई जाती है, और कई प्रकार के रंगों की होती है । बहुत तेज उड़ती है और घासमान में बहुत ऊँचाई पर प्रायः बिना पर हिलाए चक्कर लगाया करती है । यह कीड़े मकोड़े बूढ़े, मछलियाँ, गिरगिट और छोटे छोटे पक्षी खाती है । यह अपने बिकार को देखकर तिरछे उतरती है और बिना ठहरे हुए झपट्टा मारकर उसे लेती हुई धाकाज की धोर निकल जाती है । बाजारों में मछली और मांस की दूकानों के घासपास प्रायः बहुत सी बीलें बैठी रहती हैं और रास्ता चलते लोगों के हावों से झपट्टा मारकर खाद्यपदार्थ ले जाती हैं । यह ऊँचे ऊँचे वृक्षों पर अपना घोंसला बनाती है और पूरा माघ में तीन बार घंटे देती है । अपने बच्चों को यह दूसरे पक्षियों के बच्चे लाकर खिलाती है । यह बहुत जोर से बी, बी करती है इसी से इसका नाम बिल या बील पड़ा है । हिंदू लोग अपने मकानों पर इसका बैठना अशुभ समझते हैं और बैठते ही इसे तुरंत उड़ा देते हैं ।

पर्या०—भातापी । सकुमि । सञ्जात । कंठनीक । बिलंतन ।

यो०—बील झपट्टा = (१) किसी बीज को बीचक में झपट्टा मारकर सेने की क्रिया । (२) लड़कों का एक खेल जिसमें वे एक दूसरे के सिर पर, उसकी टोपी उतारकर बील लगाते हैं ।

मुहा०—बील का मूत = वह बीज जिसका मिलना बहुत कठिन, प्रायः असंभव हो ।

बीलड़—संज्ञा पु० [हि० बीलर] दे० 'बीलर' ।

बीलमण^६—संज्ञा पु० [देश०] सर्प की मणि । उ०—बाल करा गज बीलमण निजकर माँहि लियंत । मोताहुल मय कुंमर ऊपर वार दियंत ।—बाँकी० ब्र०, भा० ३, पृ० ७० ।

बीलर—संज्ञा पु० [देश०] जू की तरह का सफेद रंग का एक छोटा कीड़ा जो मैले कपड़ों में पड़ जाता है ।

विशेष—दे० 'बिल्लड़' ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

बीलवा^७—संज्ञा पु० [देश०] बिलड़ा नाम का पकवान ।

विशेष—दे० 'उलटा' ।

बीला—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'बिलड़ा' या 'बिल्ला' ।

बीलिका—संज्ञा बी० [सं०] झिल्ली । भींगुर ।

बीलू—संज्ञा पु० [सं०] झाड़ू की तरह का एक प्रकार का पहाड़ी मेवा ।

बील्लक—संज्ञा पु० [सं०] झिल्ली । भींगुर ।

बीलू—संज्ञा बी० [सं० बिल्ल] दे० 'बील' (पक्षी) ।

बीलूड़, बीलूर—संज्ञा पु० [हि० बीलर] दे० 'बीलर' ।

बीलूहाराब^८—संज्ञा पु० [हि० बीलू + राब] शेषनाग । उसने बीलूहाराब सीस हुआल डालवा लागा, बीगीस ठालवा लागा बिसावा दुमाल ।—रघु० ६०, पृ० २०१ ।

बीलूही^९—संज्ञा बी० [देश०] एक प्रकार का संज्ञोपचार जिसे बाजकों के कल्याणार्थ स्त्रियाँ करती हैं । उ०—मने रघुराज मुल जूनि नरुण बाधि बीलूही करवाय राई लोन उतरायी है ।—रघुराज (शब्द०) ।

बीबर—संज्ञा पुं० [सं०] १. योगियों, संन्यासियों या जिनसुओं का छटा पुराना कपड़ा। २. बीड़ संन्यासियों के पहनने के बल का ऊपरी भाग।

बिरोध—बीड़ संन्यासियों के पहनने का बल दो भागों में होता है। ऊपरी भाग को बीबर और नीचे के भाग को निवास कहते हैं।

बीबरी—संज्ञा पुं० [सं० बीबरि] १. बीड़ अभूक। २. मिष्ठमंगा।

बीस—संज्ञा स्त्री० [हि० बीस] दे० 'बीस'।

बीस—संज्ञा स्त्री० [पुं०] किलकारी। चिटकार। बिचिया-हट। कूक। उ०—घरे गेन सोसं बले बेद रोसं। गदा मुदगं रंत वारंत बीसं।—पृ० रा०, २। ६३।

बीसका—संज्ञा पुं० [हि० बीसका] दे० 'बीसका'। उ०—अलम बाँका बड़ा छुट ना बीसका जीव के संग जब मुहें लागे।—पलटू०, भा० २. पृ० ३६।

बीसना—क्रि० प्र० [हि० बीस] दे० 'बीसना'।

बीसी—संज्ञा स्त्री० [हि० बीस] दे० 'बीसी'। २. बीसन। उ०—माग्यो हसी बीसी मारी, वा मूरति की में बलि-हारी।—कबीर प्र०, पृ० २१०।

बीहा—संज्ञा स्त्री० [प्रा० बीह] बिलाहट। बीकार।

बुंगा—संज्ञा पुं० [देश०] तिर का माभूषण।

बुंगल—संज्ञा पुं० [हि० बों + अंगुल] या प्रा० अंगाल] १. बिड़ियों या जानवरों का पंजा जो कुछ टेढ़ा या झुका हुआ होता है। अंगुल। २. मनुष्य के पंजे की वह स्थिति जो उँगलियों को बिना हथेली से लगाए किसी वस्तु को लेने या पकड़ने में होती है। बटोरा हुआ पंजा। बकोटा। अंगुल। जैसे,—बुंगल भर घाटा सीँ की को।

मुहा०—बुंगल में फँसना = वश में आना। कानू में होना। पकड़ में आना।

बुंगली—संज्ञा स्त्री० [देश०] नाक में पहनने का एक माभूषण जिसे 'समवा' भी कहते हैं। एक प्रकार की नथ।

बुंगा—संज्ञा पुं० [हि० बोंगा] दे० 'बोंगा'।

बुंगी—संज्ञा स्त्री० [हि० बुंगल] १. बुंगल भर वस्तु। चुटकी भर बीज।

बो—बुंगी पैठ = वह पैठ या बाजार जिसमें हर एक दूकानदार से जमींदार को बुंगल भर बीज मिलती हो।

२. वह महसूल जो शहर के भीतर आनेवाले बाहरी माल पर लगता हो।

बो—बुंगी कचहरी = नगरपालिका का कार्यालय जहाँ अन्य कार्यों के साथ बुंगी बसूने का भी कार्य होता है। बुंगी घर—बुंगी की बसूली के लिये बना हुआ घर। बुंगी चौकी = वह स्थान जो बुंगी की बसूली और देखरेख के लिये बना हो।

बुंगल—संज्ञा पुं० [हि० बुंगल] दे० 'बुंगल'—१। उ०—ज्यों छुबित बाज लखि गन कुलंग। बुंगल चपेट करि देत अंग।

—सूचन (शब्द०)।

बुंबी—संज्ञा स्त्री० [सं० बुम्बु] दे० 'बुंब'।

बुंबरी—संज्ञा स्त्री० [सं० बुम्बरी] दे० 'बुम्बरी'।

बुंबु—संज्ञा पुं० [सं० बुम्बु] १. छलुंदर। २. वैदिक स्त्री और ब्राह्मण से उत्पन्न एक संकर जाति।

बुंबु—संज्ञा स्त्री० १. बूटी या पीषा। बिनियारी।

बुंबुक—संज्ञा पुं० [सं० बुम्बुक] बृहत्संहिता के अनुसार नेष्ट्रत्व कोण पर स्थित एक देश।

बुंबुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० बुम्बुरी] वह प्रभा जो हमली के बीमों से खेला जाय।

बुंबुल—संज्ञा पुं० [सं० बुम्बुल] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम जो संगीत शास्त्र का बड़ा भारी पंडित था।

बुंबुली—संज्ञा स्त्री० [सं० बुम्बुली] दे० 'बुंबुरी'।

बुंबुली—संज्ञा स्त्री० [देश०] बुंघनी।

बुंटा, बुंटी—संज्ञा स्त्री० [सं० बुंटा, बुंटी] दे० 'बुंटा'।

बुंठा—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा-बुंठो] कूपी। कूप।

बुंठित—क्रि० [हि० बुंठो] बुंठियावाला। बुंठीवाला। उ०—योनी कहे योग है नीको द्वितीया और न भाई। बुंठित मुंठित मौन जटाधरि तिनहुं कही सिधि पाई।—कबीर (शब्द०)।

बुंढी—संज्ञा स्त्री० [हि० बुंढी] दे० 'बुंढी'।

बुंढी—संज्ञा स्त्री० [सं० बुंढी] कुटनी। दूती।

बुंढी—संज्ञा स्त्री० [सं० बुंढी] बालों की छिला जिसे हिंदू सिर पर रखते हैं। बुंढिया।

बुंढा—क्रि० [हि० बुं (= बार + अंध)] [स्त्री० बुंढी] १. जिसे सुझाई न पड़े। २. छोटी छोटी झल्लोवाला।

बुंधियाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'बुंधाना'।

बुंब—संज्ञा पुं० [सं० बुम्ब] दे० 'बुंबन' [क्रि०]।

बुंबक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो बुंबन करे। २. कामुक। कामी। ३. धूर्त मनुष्य। ४. प्रपों को केवल इधर उधर उलटनेवाला। विषय को अच्छी तरह न समझनेवाला। ५. पानी भरते समय बड़े के मुँह पर बंधा हुआ फटा काँस। ६. एक प्रकार का पत्थर या धातु जिसमें लोहे को अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति होती है।

बिरोध—बुंबक दो प्रकार का होता है—एक प्राकृतिक दूसरा कृत्रिम। प्राकृतिक बुंबक एक प्रकार का लोहा मिला पत्थर होता है जो बहुत कम मिलता है। इससे कृत्रिम या बनावटी बुंबक ही देखने में अधिक आता है जो या तो छोड़े की नाल के आकार का होता है या सीधी छड़ के आकार का। यदि बुंबक का छड़ को लोहे के धूर के ढेर में डालें तो दिखाई पड़ेगा कि लोहे का धूर उस छड़ में यहाँ से वहाँ तक बराबर नहीं लिपटता बल्कि दोनों छोरों पर सबसे अधिक लिपटता है। इन दोनों छोरों को आकर्षण प्रांत कहते हैं। छड़ के मध्य भाग को मध्य या मूल्य प्रांत कहते हैं। कभी कभी किसी छड़ के आकर्षण प्रांत दो से अधिक होते हैं। यदि किसी बुंबक-वाला को उसके मध्यभाग (मध्यकर्षण केंद्र) पर से ऐसा ठहरावे कि वह चारों ओर धूम सके तो वह धूमकर उतार-चढ़ाव रहेगी, अर्थात् उसका एक सिरा उतार की ओर और दूसरा दक्खिन की ओर रहेगा। ध्रुवदर्शक यंत्र में इसी प्रकार की छलाका लगी रहती है। पर ध्यान रखना चाहिए कि

का यह उत्तर दक्षिण हमारे भौगोलिक उत्तर दक्षिण से ठीक ठीक मेल नहीं खाता, कहीं ठीक उत्तर से कई अंश पूर्व और कहीं पश्चिम की ओर होता है। इस अंतर को चुंबक प्रवृत्ति कहते हैं। इसे निकालने के लिये भी एक यंत्र होता है। यह चुंबक प्रवृत्ति पृथ्वी के भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न होती है जिसका हिसाब किताब जहाजी रखते हैं। इसके अतिरिक्त किसी स्थान की यह चुंबकप्रवृत्ति सब काल में एक सी नहीं रहती, गालाब्दियों के हेर फेर के अनुसार कुछ भौतिक परिवर्तनों के कारण वह बदला करती है। किसी चुंबक का एक प्रांत दूसरे चुंबक के उसी प्रांत को आकर्षित न करेगा, अर्थात् एक चुंबककलाका का उत्तर प्रांत दूसरी चुंबक कलाका के उत्तर प्रांत को आकर्षित न करेगा, दक्षिण प्रांत को करेगा। जिस वस्तु को चुंबक के दोनों प्रांत आकर्षित करें, वह स्थायी चुंबक नहीं है, केवल आकर्षित होने की शक्ति रखनेवाला है। जैसे, साधारण लोहा आदि। स्थायी चुंबक के पास लोहे का टुकड़ा लाने से उसमें भी चुंबक का गुण आ जाएगा, अर्थात् वह भी दूसरे लोहे को आकर्षित कर सकेगा। ऐसे चुंबक को स्थायी चुंबक कहते हैं। इस्पात में यद्यपि चुंबक शक्ति अधिक नहीं दिखाई देती, पर एक बार उसमें यदि चुंबक शक्ति आ जाती है, तो फिर वह जल्दी नहीं जाती। इसी से जितने कृत्रिम स्थायी चुंबक मिलते हैं, वे इस्पात ही के होते हैं। कृत्रिम चुंबक या तो चुंबक के संसर्ग द्वारा बनाए जाते हैं अथवा इस्पात की छड़ में विद्युत्प्रवाह दौड़ाने से। विद्युत्प्रवाह द्वारा बड़े शक्तिशाली चुंबक तैयार होते हैं। अब यह निश्चित हुआ है कि चुंबक विद्युत् का ही गुण है।

चुंबकीय—वि० [सं०] १. चुंबक संबंधी। २. जिसमें चुंबक का गुण हो। उ०—घोर ठेले जाने की वह क्रिया—चुंबकीय खिचाव—कभी कभी ऐसा प्रबल होता है कि उसके लिये धकून समुद्र में फँद पड़ने या बट्टान से टकराकर उसपर अपना तिर पटकने के लिये भी वह स्वेच्छा से राजी हो जाती है।—जिप्सी, पृ० ३६६।

चुंबन—संज्ञा पुं० [सं० चुम्बन] [वि० चुंबनीय, चुंबित] प्रेम के आवेग में होने से (किसी दूसरे के) गाल आदि अंगों को स्पर्श करने या दबाने की क्रिया। चुम्मा। बोसा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

चुंबना ④—क्रि० सं० [सं० चुम्बन] १. चूमना। बोसा लेना। उ०—कबहुँक माखन रोटी ले कै खेल करत पुनि मागत। मुख चुंबत जननी समझावत धाय कंठ पुनि लागत।—सूर (शब्द०)। २. स्पर्श करना। छूना। उ०—धवल घाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहु रवि ससि दुति निदत।—मानस, ७। २७।

चुंबा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चुम्बा] चुंबन (को०)।

चुंबा^२—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'सुंबा'।—(लश०)।

चुंबित—वि० [सं० चुम्बित] १. चूमा हुआ। २. प्यार किया हुआ। ३. स्पर्श किया हुआ। छुपा हुआ।

चुंबी—वि० [सं० चुम्बिन्] १. चूमनेवाला। जो चूमे। २. छूनेवाला। स्पर्श करनेवाला (को०)।

विशेष—भौगिक शब्द बनाने में इसका प्रयोग अधिक होता है। जैसे, गगनचुंबी।

३. संपर्कयुक्त। संबंधित (को०)।

चुंगना ④—क्रि० प्र० [हि० चुगना] दे० 'चुगना'।

चुंगाना ④—क्रि० सं० [हि० चुगाना] दे० 'चुगाना'।

चुंधाना—क्रि० सं० [हि० चुसाना] चुसाना। चुसाकर पिलाना। उ०—अब न तो कुछ भीत उष्ण में बचाव करना पड़ेगा और न मूल प्यास के समय दूध ही चुंधाना पड़ेगा। ये सिद्ध लोचों के दिए हुए भागे और यंत्र आपही बालक की रक्षा करेंगे।—अद्वाराम (शब्द०)।

चुंदरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चुनरी या चुनरी] दे० 'चुनरी'।

चुंदरीगर—संज्ञा पुं० [हि० चुंदरी + कार० गर] चुंदरी तैयार करनेवाला रंगरेज।

चुंधलाना—क्रि० प्र० [हि० चौ (=चार) + धंध (=अंधा)] अंधों का सहसा अधिक प्रकाश के सामने पड़ने के कारण स्तब्ध होना। चौंधना। अंधाचौंध होना। अंधों का तिलमिलाना।

चुम्बना ④—क्रि० प्र० [हि० चुम्बना] दे० 'चुम्बना'।

चुम्बना ④—क्रि० प्र० [हि० चूना] दे० 'चूना'।

चुम्बना^३—वि० चूनेवाला।

चौं—चुम्बना लोटा। चुम्बना घर।

चुम्बना^३—संज्ञा पुं० छाजन या छप्पर का वह स्थान जहाँ से होकर पानी चूता है।

चुम्बा^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पहाड़ी देश।

चुम्बा^२—संज्ञा पुं० [हि० चोम्बा] दे० 'चोम्बा'।

चुम्बाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चुम्बाना] १. चुम्बाने का काम। टपकाने की क्रिया। २. चुम्बाने की मजदूरी।

चुम्बाक—संज्ञा पुं० [हि० चुम्बाना (=टपकाना)] वह छेद जिससे पानी भावे (लश०)।

चुम्बान—संज्ञा स्त्री० [हि० चूना] जल आने का स्थान। खाई। नहर। गड्ढा। सोता। उ०—(क) सब देवताओं को ब्रह्म में कर नगर में चारों ओर जल की चुम्बान चौड़ी करवाई और अग्नि पवन का कोट बनाय निर्भय हो वह सुख से राज्य करने लगा।—लल्लू (शब्द०)। (ख) वह पुरी किस की है कि जिसके चूँ और ताँबे का कोट और पक्की चुम्बान, चौड़ी खाई, स्फटिक के चार फाटक इत्यादि हैं।—लल्लू (शब्द०)।

चुम्बाना—क्रि० सं० [हि० चूना (=टपकना)] १. टपकाना। चूँच बूँद गिराना। २. चुपड़ना। चिकनाना। रसमय करना। रसीला बनाना। उ०—वेध सुबनाइ सुधि बचन कहे चुम्बाइ जाइ तो न जरनि धरनि धन धाम की।—तुलसी (शब्द०)। ३. भ्रमके से भ्रम उतारना। जैसे,—भराब चुम्बाना। ४. दे० 'दुहाना'।

चुम्बाव—संज्ञा स्त्री० [हि० चुम्बाना] चुम्बाने की क्रिया या भाव।

चुम्बदर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] गाजर या जलजम की तरह की एक जड़ जो सुई लिए होती है और तरकारी के काम में आती है।

विशेष—इसका स्वाद कुछ मीठापन लिए होता है। कहीं कहीं इससे खाइ भी निकाली जाती है। चुम्बदर ऐसे स्थानों पर

बहुत उपजता है। जहाँ सारी मिट्टी या खारा पानी मिलता है। समुद्र के किनारे चुकंदर की पैदावार अच्छी होती है। इसके लिये शोरा और नमक मिला पानी खाद का काम करता है।

चुक^१—संज्ञा पुं० [सं० चुक] दे० 'चूक'।

चुक^२—अव्य० [हि० चुक] बोझ। क्लिप्त। उ०—मुख चुक बिखलाई मिहिर नजर बरसाई।—वनानंद, पृ० ४५६।

चुकचुकाना^१—क्रि० प्र० [हि० चुना + टपकना] १. किसी द्रव पदार्थ का बहुत बारीक छेदों से होकर सूक्ष्म कणों के रूप में बाहर जाना। रस का बाहर फैलना। उ०—चमड़े पर रंगड़ लगने से खून चुकचुका आया। २. पसीजना। घाट होना। चुकाना।

चुकचुकाना^२—क्रि० प्र० [हि० चुकना की विलक्ति] बिलकुल चुक जाना। समाप्त होना। जैसे,—घब सारी बीज चुकचुका गई। सब चुकचुकाने पर तुम आए।

चुकचुहिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. छोटी चिड़िया जो बहुत तकड़े बोलने लगती है। २. कागज या चमड़ों का बना हुआ एक खिलौना जो हिलाने या दबाने से 'चूँ चूँ' शब्द करता है।

चुकट^१—संज्ञा पुं० [हि० चुटका] दे० 'चुटका'। उ०—जग में भक्त कहावई, चुकट चून नहि देय। सिव जोरु का हूँ रहा, नाम गुरु का लेय।—संतबाणी, पृ० ५३।

चुकट—संज्ञा पुं० [हि० चुटका] दे० 'चुटका'।

चुकटा—संज्ञा स्त्री० [हि० चुटका] चंगुल। चुटकी।

मुहा०—चुटका भर=चंगुल भर। उतना (घाटा आदि) जितना चंगुल या चुटकी में आवे।

चुकटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चुटकी] दे० 'चुटकी'। उ०—तो यह गाम में एक वैष्णव चुटकी मंगिती।—बो सो बाबन०, भा० २, पृ० २०८।

चुकता—वि० [हि० चुकना] बेबाक। निःशेष। अर्थात् (अणु या खण्ड जैसे के हिसाब किताब के संबंध में इसे बोलते हैं।) जैसे,—एक महीने में हम तुम्हारा सब खपया चुकता कर देंगे।

चुकताना^१—क्रि० प्र० [हि० चुकता + ना (प्रत्य०)] चुकता करना। चुकाना।

चुकती^१—वि० [हि० चुकता] दे० 'चुकता'।

चुकना^१—क्रि० प्र० [सं० च्युत्क, प्रा० चुक्कि] १. समाप्त होना। खतम होना। निःशेष होना। न रह जाना। बाकी न रहना। उ०—(क) सारी किताब छपने को पड़ी है, कागज अभी से चुक गया। (ख) प्रान पियारे की गुन गाथा साधु कहाँ तक मैं गाऊँ। गाते गाते चुक नहीं वह चाहे मैं ही चुक जाऊँ।—श्रीधर (शब्द०)। २. बेबाक होना। अर्थात् होना। चुकता होना जैसे,—उनका सब अणु चुकता हो गया। ३. त होना। निबटना। जैसे,—भगड़ा चुकना। ४. चूकना। भूल करना। भुटि करना। खसर करना। अवसर के अनुसार कार्य न करना। उ०—(क) काल सुमाउ करम बरिषाई। भसेइ प्रकृति बस चुकई भलाई।—मानस, १। ७। (ख) वेच न पाइ

अस समय चुकाहीं। देखु विचारि मातु मन माहीं।—तुलसी (शब्द)। ५. खाली जाना। निष्फल होना। व्यर्थ होना। लक्ष्य पर न पहुँचना। उ०—विचकूट जनु भ्रमल भरेरी। चुकई न घात मार मुठ भेरी।—मानस, २। ११६।

विशेष—यह क्रिया और क्रियाओं के साथ समाप्ति का अर्थ देने के लिये संयुक्त रूप में भी आती है। जैसे,—तुम यह काम कर चुके ? तुम कब तक खा चुकोगे ? वह अब बल चुके होंगे। व्यंग्य के रूप में भी इस क्रिया का प्रयोग बहुत होता है। जैसे,—तुम अब भा चुके, अर्थात् तुम अब नहीं आओगे। 'बहु दे चुका' अर्थात् वह न देगा।

चुकना^२—वि०—चुकनेवाला। अवसर लोनेवाला। भूलनेवाला।

चुकी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] रेवड़ बीनी।

चुकरैंड—संज्ञा पुं० [देश०] दोमुहों साँप जिसे गूँगी भी कहते हैं। उ०—सेखनि डंक भुजंग की रसना भयननि जानि। गण रत्न मुख चुकरैंड के कला शिला बखानि।—केशव (शब्द०)।

चुकवाना—क्रि० प्र० [हि० चुकाना का प्रेरक] अर्थात् करना। बिलाना। बेबाक करना।

चुकाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चुकता] चुकने या चुकता होने का भाव।

चुकाना—क्रि० प्र० [हि० चुकना] १. बेबाक करना। किसी प्रकार का देना साफ करना। अर्थात् करना। परिशोध करना। जैसे,—दाम चुकाना, रुपया चुकाना, अणु चुकाना। २. निबटाना। त करना। ठहराना। जैसे,—सौदा चुकाना, भगड़ा चुकाना।

चुकाव—संज्ञा पुं० [हि० चुकना] चुकने, चुकाए जाने की स्थिति, क्रिया या भाव [को]।

चुकावड़ा—संज्ञा पुं० [हि० चुकाव + ढा (प्रत्य०)] बेबाकी। चुकाने की क्रिया या भाव।

चुकावरा^१—संज्ञा पुं० [हि० चुकाना] कर्जा चुका देने की क्रिया या भाव।

चुकिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] तेलियों की पानी में पानी देने का बरतन। कुल्हिया।

चुकौता—संज्ञा पुं० [हि० चुकना + औता (प्रत्य०)] अणु का परिशोध। कर्ज की सफाई।

मुहा०—चुकौता लिखना—भरपाई का कागज लिखकर देना। कर्जा चुकता पाने की रसीद देना। भरपाई करना।

चुक्का^१—संज्ञा पुं० [सं० चुक] दे० 'चूक' (खटाई) [को]।

चुक्कड़—संज्ञा पुं० [हि० चखना ?] १. मिट्टी का गोल छोटा बरतन जिसमें खराब आदि पीते हैं। २. पुरवा।

चुक्कार—संज्ञा पुं० [सं०] सिहनाद। गरज। गर्जन।

चुक्की^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चूक] बोला। छल। कपट।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।

चुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूक नाम की खटाई। चूक। महात्म्य। वृक्षाम्ल। २. एक प्रकार का खट्टा शाक। ३. भ्रमलवेद। ४. सड़ाया हुआ भ्रमलरस। काजी। संधान।

चुङक—संज्ञा पुं० [सं०] चूका का साग ।

चुङकल—संज्ञा पुं० [सं०] हमली ।

चुङकवास्तुक—संज्ञा पुं० [सं०] घमलोनी का साग ।

चुङकवेधक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की काँजी ।

चुङका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घमलोनी का साग । २. हमली ।

चुङकान्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूक नाम की खटाई । २. चूका का साग ।

चुङकान्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] घमलोनी का साग ।

चुङकिका, चुङ्की—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घमलोनी का साग । नोनिया । २. हमली ।

चुङकिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० चुङकिम्] खट्टापन । खटास [स्त्री०] ।

चुङ्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हिंसा । बध । २. सालन । प्रसालन (स्त्री०) ।

चुङ्खाना—क्रि० स० [सं० चुङ्ख] १. दुहते समय गाय के घन से दूध उतारने के लिये पहले उसके बछड़े को पिलाया । उ०—भाई ही गाढ़ दुहाइवे कौं सु चुखाइ चली न बछानि को घेरति । नैकु बेराय नहीं कब की वह माय रिसाय घटा चढ़ि टेरति ।—देव (शब्द०) । २. चलाया । उ०—भरि अपने कर कनक कचोरा पीवति प्रियहि चुखाए ।—सूर (शब्द०) ।

चुङद—संज्ञा पुं० [क्रा० चुङद] १. उत्पन्न पक्षी । २. मूल व्यक्ति । मूढ़ व्यक्ति । बेवकूफ मादमी ।

चुङद—वि० मूल । मूढ़ । बेवकूफ ।

चुङाना—क्रि० स० [सं० चयन] बिड़ियों का बोंब से दाना उठाकर खाना । बोंब से दाना बीनना । उ०—उबलहि सीप मोति उतराहीं । चुङहि हंस भी कैलि कराहीं ।—जायसी (शब्द०) ।

चुङाना—संज्ञा पुं० बिड़ियों का आहार । चुगा ।

चुङल—संज्ञा पुं० [क्रा० चुङल] १. परोक्ष में दूसरे की निंदा करनेवाला । पीठ पीछे शिकायत करनेवाला । इधर की उधर लगानेवाला । लुतरा । उ०—कह्य करै रसखान को, कोऊ चुङल लखार । जो पै राखनहार है भाखन खाखनहार ।—रसखान (शब्द०) । २. वह कंकड़ जिसे बिलम के छेद में रसकर तंबाकू भरते हैं । गिट्टी । गिट्टक ।

चुङलखोर—संज्ञा पुं० [क्रा० चुङलखोर] परोक्ष में निंदा करनेवाला । पीठ पीछे शिकायत करनेवाला । इधर की उधर लगानेवाला । लुतरा ।

चुङलखोरी—संज्ञा स्त्री० [क्रा० चुङलखोरी] चुङली खाने का काम । परोक्ष में निंदा करने की क्रिया या भाव ।

चुङलस—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] एक प्रकार की लकड़ी ।

चुङला—संज्ञा पुं० [हि० चुङल] दे० 'चुङलखोर' ।

चुङलाना—क्रि० स० [हि० चुङलाना] दे० 'चुङलाना' ।

चुङली—संज्ञा स्त्री० [क्रा० चुङली] पीठ पीछे की शिकायत । दूसरे की निंदा जो उसकी अनुपस्थिति में तीसरे से की जाय । उ०—

अपने गुप को इहे सुनायो । अजवारिन बटपारिन है सब चुङली आपहि जाय लगायो ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—चुङली खाना = पीठ पीछे निंदा करना । झूठी निंदा करना ।

चुगा^१—संज्ञा पुं० [हि० चुगना] वह भन्न आदि जो बिड़ियों के धागे चुगने के लिये डाला जाय । बिड़ियों का चारा ।

चुगा^२—संज्ञा पुं० [हि० चोगा] दे० 'चोगा' ।

चुगाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चुगाना + ई (प्रत्य०)] चुगने की क्रिया या भाव ।

चुगाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० चुगाना + ई (प्रत्य०)] चुगाने की क्रिया या भाव । २. चुगाने की मजदूरी ।

चुगाना—क्रि० स० [हि० चुगना] बिड़ियों को दाना खिलाना । बिड़ियों को चारा डालना । उ०—छाँड़ु मन हरि विमुखन को संग । जिनके गंग कुबुधि उपजत है परत भजन में संग । कहा होत पय पान कराए, विष नहि तजत भुजंग । कागहि कहा कपूर चुगाए स्वान न्हाए गंग ।—सूर (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—बेना ।

चुगल^१—संज्ञा पुं० [क्रा० चुगल] दे० 'चुगल' ।

चुगलखोर—संज्ञा पुं० [क्रा० चुगलखोर] दे० 'चुगलखोर' ।

चुगलखोरी—संज्ञा स्त्री० [क्रा० चुगलखोरी] दे० 'चुगलखोरी' ।

चुगली^१—संज्ञा स्त्री० [क्रा० चुगली] दे० 'चुगली' ।

चुगा—संज्ञा पुं० [हि० चुगना] दे० 'चुगा' ।

चुग्घो—संज्ञा स्त्री० [देश०] चलने की थोड़ी सी वस्तु । चाट । चक्का ।

चुचआना^१—क्रि० प्र० [हि० चुचाना] दे० 'चुचाना' । उ०—सोभित सवनति जड़ित सु गुंडल स्वेद बुंद चुचआइ ।—नंद० प्र०, पृ० ३६ ।

चुचकना—क्रि० प्र० [हि० चुचकना] दे० 'चुचकना' ।

चुचकार—संज्ञा स्त्री० [हि० चुचकारना या चुनु०] चुमकारने या चुचकारने की ध्वनि या क्रिया । चुचकारी ।

चुचकारना—क्रि० स० [चुनु०] प्यार से चुंबन के ऐसा शब्द मुँह से निकालकर बोलना । चुमकारना । चुचकारना । चुलारना । प्यार दिखाना । उ०—(क) मैया बहुत बुरी बलदाऊ । कहन सगे बन बड़ो तमासो, सब मोड़ा मिलि छाऊ । मोहूँ को चुचकारि गये सै, जहाँ सघन बन भाऊ । भागि चले कहि गयो उहाँ ते, काटि साइहै हाऊ ।—सूर (शब्द०) । (ख) चाहि चुचकारि खूबि लालत लावत उर तैसे फल पावत जैसे सुबीज बए है ।—तुलसी (शब्द०) ।

चुचकारी—संज्ञा स्त्री० [चुनु०] चुचकारने की क्रिया या भाव ।

चुचाना—क्रि० प्र० [सं० चुचन] कण कण या बूँद बूँद करके निकलना । चुना । टपकना । रसना । निचुड़ना । गरना । ('चुना' या 'टपकना' क्रिया के समान इसका प्रयोग भी टपकनेवाली वस्तु (जैसे, पानी) तथा जिसमें से टपके (जैसे, घर) दोनों के लिये होता है १) उ०—(क) अकुलित जे

पुसकित पात । अनुराग नैन चुचात ।—सूर (शब्द०) । (ख) बास भाव जिय में सुष भाई अस्तन चले चुचाय ।—सूर (शब्द०) (ग) चोगुनो रंग चढ़ो चित में चुनरी के चुचात जला के निचोखत ।—देव (शब्द०) ।

चुचावना(७)—क्रि० प्र० [हि० चुचाना] दे० 'चुचाना' । उ०—रही गुहो बेनी, लखे, गुहिवे के त्योहार । लागे नीर चुचावने, नीठि सुलाए बार ।—बिहारी (शब्द०) ।

चुचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्तन । चूँची । २. धन । ऐन [को०] ।

चुचु—संज्ञा पुं० [सं० चचु] दे० 'चचु' ।

चुचुआना—क्रि० प्र० [हि० चुचाना] दे० 'चुचाना' ।

चुचुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुचाय भाग । स्तन के सिरे या नोक पर का भाग जो गोल घुंटी के रूप में होता है । डिपनी । २. दक्षिण भारत का एक प्राचीन देश । ३. उक्त देश का निवासी ।

चुचुकना—क्रि० प्र० [सं० चुचुकना (प्रत्य०) या देह] सूखकर सिकुड़ जाना । ऐसा सूखना जिसमें झुर्रियाँ पड़ जायें । नीरस होकर संकुचित हो जाना, जैसे,—फल का चुचुकना, चेहरे का चुचुकना ।

चुचुकारना—क्रि० प्र० [हि० चुचकारना] दे० 'चुचकारना' ।

चुचूक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चुचुक' [को०] ।

चुचुचु—संज्ञा पुं० [सं०] पालक की तरह का एक प्रकार का साग जिसे शीपतिपा भी कहते हैं ।

चुचू—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चुचु' [को०] ।

चुटक—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गलीचा या कालीन ।

चुटक +—संज्ञा पुं० [हि० चोट + क (= करनेवाला)] कोड़ा । चावुक ।

चुटक^१—संज्ञा स्त्री० [अनु० चुटचुट] चुटकी ।

चुटकना^१—क्रि० प्र० [हि० चोट] कोड़ा मारना । चावुक मारना । उ०—करे बाह सी चुटकि के खरै उड़ीहैं नैन । लाज नवायें तरफरत, करत खूँद सी नैन ।—बिहारी २०, दो० ५५२ ।

चुटकना^२—क्रि० प्र० [हि० चुटकी] १. चुटकी से तोड़ना । जैसे,—साग चुटकना, फूल चुटकना ।

चुटकना^३—क्रि० प्र० [देश०] साँप काटना ।

चुटकुला—संज्ञा पुं० [हि० चुटकुला] दे० 'चुटकुला' ।

चुटका—संज्ञा पुं० [हि० चुटकी] १. बड़ी चुटकी । २. चुटकी भर घाटा या धीर कोई अन्न ।

क्रि० प्र०—बेना ।—लेना ।

चुटकारी—संज्ञा स्त्री० [हि० चुटकी + कार (प्रत्य०)] चुटकी बजाने की ध्वनि या क्रिया ।

चुटकारी—संज्ञा स्त्री० [हि० चुटकार] दे० 'चुटकी' । उ०—मदन महीष सू की बालक बसंत ताहि, प्रात ही जगावत गुलाब चुटकारी दे ।—पोद्दार० अमि० प्र०, पृ० १५७ ।

चुटकी—संज्ञा स्त्री० [अनु० चुट चुट] १. घंगूठे धीर बीच की उँगली (अथवा तर्जनी) को वह स्थिति जो दोनों को मिलाने या एक को अन्य पर रखने से होती है । किसी वस्तु को पकड़ने, दबाने या लेने आदि के लिये घंगूठे धीर बीच की (अथवा

धीर किसी) उँगली का मेल । जैसे,—चुटकी में लेना । चुटकी से उठावा । २. घंगूठे धीर मध्यमा धीर तर्जनी के योग से ध्वनि पैदा करना ।

चिशोब—चुटकी प्रायः संकेत करने, किसी का ध्यान आकषिप्त करने, किसी को बुलाने, जगाने अथवा ताल देने आदि के लिये बजाई जाती है । हिंदुओं में यह प्रथा है कि जब किसी को जमाई जाती है, तब पाछ के सोन चुटकियाँ बजाते हैं ।

चौ०—चुटकी बजानेवाला = चुशामरी । चापलूस । चुटकी भर = उतना जितना घंगूठे धीर मध्यमा के मिलाने पर दोनों के बीच आ जाय । बहुत बड़ा । जरा सा । जैसे,—चुटकी भर घाटा, चुटकी भर नमक । चुटकियों में = बहुत शीघ्र । चट पट । जैसे,—देखते रहो, अभी चुटकियों में यह काम होता है ।

मुहा०—चुटकी देना = दे० 'चुटकी बजाना' । उ०—जो मूरति जन यस में व्यापक निगम बखोजत पाई । सो मूरति तू अपने माँगन चुटकी दे दे नचाई ।—सूर (शब्द०) । चुटकी बजाना = घंगूठे को बीच की उँगली पर रखकर धीर से छटकाकर शब्द निकालना । चुटकी बजाने में या चुटकी बजाते = उतनी देर में जितनी देर चुटकी बजती है । चट पट । देखते देखते । बात की बात में । जैसे,—यह काम तो चुटकी बजाते होगा । चुटकी बंठना = किसी ऐसे काम का अभ्यास होना जो चुटकी से पकड़कर किया जाय । जैसे,—उल्लाड़ना नोचना आदि । चुटकियों में या चुटकियों पर उड़ाना = (१) बात की बात में निबटाना । अत्यंत वृच्छ या महज समझना । (२) कुछ न समझना । कुछ परवाह न करना । जैसे,—(क) ऐसे मामलों को तो मैं चुटकियों में उड़ावा हूँ । (ख) वह मेरा क्या कर सकता है, ऐसो को तो मैं चुटकियों पर उड़ाता हूँ । चुटकी लगाना = (१) किसी वस्तु को पकड़ने, नोचने, खींचने, दबाने आदि के लिये घंगूठे धीर मध्यमा (अथवा धीर किसी उँगली) को मिलाकर काम में लाना । (२) कपड़े के धान को उँगलियों से फाड़ना । याब पर से कपड़ा उतारना । (३) रपमा पैदा पुराने के लिये उँगलियों से जेब फाड़ना । जेब काटना । (४) दूध दुहने के लिये चुटकी से गाय का दूध पकड़ना । (५) चुटकी से पत्तों को मोड़कर बोना बनाना ।

२. चुटकी भर घाटा । बोड़ा घाटा । जैसे,—साधु को चुटकी दे दी । क्रि० प्र०—बेना ।

मुहा०—चुटकी माँगना = भिक्षा माँगना ।

३. चुटकी बजने का शब्द । यह शब्द जो घंगूठे की बीच की उँगली पर रखकर धीर से छटकाने से होता है । उ०—किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि डरपति जननि पानि छुटकाएँ ।—तुलसी (शब्द०) । ४. घंगूठे धीर तर्जनी के संयोग से किसी प्राणी के चमड़े को दबाने या पीड़ित करने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—काटना ।

मुहा०—चुटकी उड़ाना = दे० 'चुटकी लेना' । चुटकी भरना = (१) चुटकी काटना । (२) चुभती या लगती हुई बात कहना । वि० दे० 'चुटकी लेना' । चुटकी लगाना = चुटकी से पकड़ना । चुटकी छेना = (१) हँसी उड़ाना ।

मुहा०—चुना हुआ=बढ़िया। उत्तम। श्रेष्ठ।

४. सजाकर रखना। तरतीब से लगाना। क्रम से स्थापित करना। सजाना। जैसे,—आलमारी में किताबें चुन दो। ५. सह पर सह रखना। जोड़ाई करना। दीवार उठाना। उ०—कंकड़ चुन चुन महल उठाया लोग कहें घर मेरा। ना घर मेरा ना घर तेरा बिड़िया रंग बसेरा।—(शब्द०)।

मुहा०—दीवार में चुनना=किसी मनुष्य को खड़ा करके उसके ऊपर ईंटों की जोड़ाई करना। जीते जी किसी की दीवार में गड़वा देना।

६. चूटकी या खरों से दबा दबाकर कपड़े में चुनन या सिकुड़न बालना। शिकन डालना। जैसे, थोटी चुनना, कुरता चुनना, इत्यादि। ७. नाखून या जंगलियों से छोटना। चूटकी से कपटना। चूटकी से जोचकर प्रसंग करना। जैसे, फूल चुनना। उ०—माली धावत देखि कै, कलियाँ करी पुकार। फूली फूली चुन लई कालि हमारी बार।—कबीर (शब्द०)।

चुनरी—संज्ञा स्त्री० [हि० √ चुन + री (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का लाल रंगा हुआ कपड़ा जिसके बीच में थोड़ी थोड़ी दूर पर सफेद बुँदकियाँ होती हैं।

विशेष—चुनरी रंगते समय कपड़े को स्थान स्थान पर चुनकर बाँध देते हैं जिससे रंग में हवाने पर बँधे हुए स्थानों पर सफेद सफेद बुँदकियाँ छूट जाती हैं। अब चुनरी कई रंगों और कई प्रकार की बुँदियों से बनती है।

२. लाल रंग के एक नग का छोटा टुकड़ा। याकूत। चुन्नी।

चुनवट—संज्ञा स्त्री० [हि० √ चुन + वट (प्रत्य०)] चुनने की क्रिया या भाव। चुनट।

चुनवाई—संज्ञा पुं० [हि० चुनना] लड़का। शागिद (सुनार)।

चुनवाई—वि० चुना हुआ। चुनिदा। बढ़िया।

चुनवाना—क्रि० सं० [हि० चुनना का प्रे० रूप] चुनने का काम कराना। वि० दे० 'चुनावा'।

चुनवारी—संज्ञा स्त्री० [हि० √ चुन + वारी (प्रत्य०)] ३० 'चुनरी'। उ०—चिक्कन चिलकदार चुनवारी कारी सोंधे भीनी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४१४।

चुनवारी—वि० [हि० चुनट (=चुनना)] चुलटवाली। उ०—भुल पर तेरे लट्ठी लट लटकी। काली धूँधरवाली प्यारी चुनवारी मेरे बिग्न लटकी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १८०।

चुनाचि—अव्य० [फ्रा० चुना + चि] ३० 'चुनाचे'। उ०—चुनाचि रोला को किसी के हाथ का भोजन पाने में कोई एतराज नहीं।—किन्नर०, पृ० १०२।

चुनाचुनी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. ऐसा वैसा। इस तरह उस तरह। हथर उधर की बात। वह जो मतसब की बात न हो। जैसे,—अब चुनाचुनी मत करो, अपना सामो। २. बनावटी बात। क्रि० प्र०—करना।—निकालना।

चुनाचे—अव्य० [फ्रा० चुना + चे] इसलिये। इस वास्ते। मतः। उ०—चुनाचे में खुद गौर करता हूँ तो मुझे रणधीर सिंह की तबियत बराबर और रंजी से निहायत मुतनफिकर मालूम होती है।—भीनिवास ग्रं०, पृ० ३२।

चुनाई—संज्ञा स्त्री० [हि० √ चुन + आई (प्रत्य०)] १. चुनने की क्रिया या भाव। बिनने की क्रिया या भाव। २. दीवार की जुड़ाई या उसका ढंग। ३. चुनने की मजदूरी।

चुनाखा—संज्ञा पुं० [हि० चुनी + खा] वृत्त बनाने का औजार। परकार। कपास।

चुनाना—क्रि० सं० [हि० चुनना का प्रे०] १. बिनवाना। इकट्ठा करवाना। २. अलग करवाना। छंटवाना। ३. सजवाना। क्रम या ढंग से लगवाना। ४. दीवार की जोड़ाई कराना। ५. दीवार में गड़वाना। ६. चुनन शिकन डलवाना।

चुनाव—संज्ञा पुं० [हि० √ चुन + आव (प्रत्य०)] १. चुनने का काम। बिनने का काम। २. बहुतों में से कुछ को या किसी एक को किसी कार्य के लिये पसंद या नियुक्त करने का काम। जैसे,—इस वर्ष कोसिल का चुनाव भण्डा हुआ है। ३. बहुमत के आधार पर किसी को चुनना।

धौ०—चुनावबिहू=उम्मीदवार की मतपेटिका का चिह्नविशेष। चुनावप्रचार=किसी को चुनने के लिये उसका प्रचार करना। चुनाववाचिका=चुने हुए व्यक्ति के चुनाव को प्रवैध मानने की न्यायालय में प्रार्थना करना।

मुहा०—चुनाव लड़ना=चुने जाने के लिये उम्मीदवार होना।

चुनावट—संज्ञा स्त्री० [हि० √ चुन + आवट (प्रत्य०)] चुनन। चुनट। ३० 'चुनवट'।

चुनावना—क्रि० सं० [हि०] १. चुनवाना। २. चुनाना। खिलाना (विशेषतया चिड़ियों को)।

चुनिदा—वि० [फ्रा० चुनीवह्, अथवा हि० + चुनना + ईदा (प्रत्य०)] १. चुना हुआ। छँटा हुआ। २. बहुतों में से पसंद किया हुआ। अच्छा। बढ़िया। ३. गण्य। प्रशान। खास खास।

चुनियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० चुनी] ३० 'चुनी'।

चुनिया—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] (सुनारों की बोली में) लड़की। कन्या।

चुनिया गोंद—संज्ञा पुं० [हि० चुनी + गोंद] झाक का गोंद। पचास का गोंद। कमरकस। (यह शीघ्र के काम में आता है)।

चुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चूणिका या चूणीकृत्] १. मानिक या और किसी रत्न का बहुत छोटा टुकड़ा। चुनी। चुनी। उ०—चहचही चहल चहूँचा चाह चंदन की चंदक चुनीन चोक चोकन चड़ी है धाब।—पद्माकर (शब्द०)। २. मोटे अन्न या दाल आदि का पीसा हुआ चूर्ण जिसे प्रायः गरीब लोग खाते हैं।

धौ०—चुनीमूसी=मोटे अन्न का पीसा हुआ चूर्ण या चोकर आदि।

चुनुयाँ—संज्ञा पुं० [हि० चुनवाई] ३० 'चुनवाई'।

चुनौटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चुनौटी] ३० 'चुनौटी'।

चुनौटिया (रंग)—संज्ञा पुं० [हि० चुनौटी] एक रंग जो कालापन लिए लाल होता है। एक प्रकार का खैरा या काकरेजी रंग उ०—पचरंग रंग बंदो खनी, खरी उठी मुखजोति। पहिरें चीर चुनौटिया चटक चौगुनी होति।—बिहारी (शब्द०, ४)

चिरोच—यह रंग हल्दी, बरंग, कसीस और पतंग (बकम) की लकड़ी के संयोग से बनता है। इसकी रंगई लकड़क में होती है। यह आकिलसामी रंग से कुछ अधिक काला होता है।

चुनोटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चुना + मोटी (प्रत्यय)] बिबिया की तरह का वह वस्त्र जिसमें पाव लगाने या संबाकू में मिलाने के लिये गीला चूना रखा जाता है।

चुनोटी—संज्ञा स्त्री० [?] १. प्रवृत्ति बढ़ानेवाली बात। उत्तेजना। बढ़ावा। चिट्ठा। उ०—मदन चुपति को देश महामय चुपि बल बसि न सकत उर चैन। सूरदास प्रभु दूत दिनहि दिन पठवत भरित चुनोटी दैन।—सूर (शब्द०) २. मुँह के लिये उत्तेजना या आह्वान। ललकार। उ०—(क) लखिमन अति लाधव सो नाक कान बिनु कोन्हि। ताके कर रावन कहै मनहु चुनोटी होन्हि।—तुलसी (शब्द०)। (ख) छठे सास नहि करि सके बरस दिना करि लेय। कहै कबीर सो संत जन यम चुनोटी देय।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।

१. वह आह्वान जो किसी को बादविवाद करके अपवा और किसी प्रकार किसी विषय का निर्णय या धपना पक्ष प्रभावित करने के लिये दिया जाता है। प्रचार।

चुनोटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चुनोटी] दे० 'चुनोटी'।

चुनट—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चुनट'।

चु०—चुनटवार। उ०—बंगाली सज्जन रेशमी कुर्ता और चुनटवार धोती पहने थे और ऊपर से रेशमी चावर ओढ़े थे।—संन्यासी, पृ० १८४।

चुनव—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चुनट'।

चुन्नन—संज्ञा स्त्री० [हि० चुन्नन] दे० 'चुन्नन'।

चुन्ना—संज्ञा पु० [हि० चुन्ना] दे० 'चुन्ना'।

चुन्ना—वि० [वि० स्त्री० चुन्नी] चुन्नेवाला। जैसे चुन्नी दाल।

चुन्ना—क्रि० स० [हि० चुन्ना] दे० 'चुन्ना'।

चुन्ना—संज्ञा पु० [हि० चुना] दे० 'चुना'।

चुन्ना—वि० [हि० चुना = टपकना] चुने या रिसनेवाला। जैसे,—चुन्ना लोटा।

चुन्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० चुनीका या चुनीकृत] १. भानिक, याकृत या और किसी रत्न का बहुत छोटा टुकड़ा। बहुत छोटा नग। २. अनाज का चूर। भूखी मिले धन्न के टुकड़े। ३. स्त्रियों की चूहर। छोड़नी। ४. लकड़ी का भारीक चूर जो भारी से भारी पर निकलता है। कुनाई। ५. चमकी या सितारे जो स्त्रियाँ धपना सोहय बढ़ाने के लिये माथे और कपोलों पर बिचकाती हैं। उ०—तिलक सँवारि जो जो चुन्नी रखी। दुहज माँक जानहु कषपची।—बायसी (शब्द०)।

मुहा०—चुन्नी रखना = मस्तक और कपोलों पर सितारे या चमकी लगाना।

चुप—वि० [सं० चुप (चोपत) = मोन] जिसके मुँह से शब्द न

निकले। अवाक्। मोन। सामोश। जैसे,—चुप रहो। बहुत मत बोलो।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—साधना।—होना।

चु०—चुपचाप = (१) मोन। सामोश। (२) शांत भाव से। बिना बचसता के। जैसे,—यह लड़का बड़ी मर भी चुपचाप नहीं बैठता। (३) बिना कुछ कहे सुने। बिना प्रकट किए। गुप्त रीति से। धीरे से। छिपे छिपे। जैसे,—(क) वह चुपचाप रुपया लेकर चलता हुआ। (ख) उसने चुपचाप उसके हाथ में रुपए दे दिए। (४) निरुद्योग। प्रयत्नहीन। प्रयत्नवान्। निठल्ला। जैसे,—प्रब उठो, यह चुपचाप बैठने का समय नहीं है। चुपचुप = दे० 'चुपचाप'। चुपछिनाल = (१) छिपे छिपे व्यभिचार करनेवाली स्त्री। (२) छिपे छिपे कोई काम करनेवाला। गुप्त गुहा। छिपा दस्तम।

मुहा०—चुप करना = (१) बोलने न देना। † (२) चुप होना। मोन रहना। जैसे,—चुप करके बैठो। चुप नाथना, चुप लगाना, चुप साधना = मोनावलबन करना। सामोश रहना। चुप मारना = मोन होना। चुपके से = दे० 'चुपका' का मुहा०।

चुप—संज्ञा स्त्री० मोन। सामोशी। जैसे,—(क) सबसे मली चुप। (ख) एक चुप सी को हरावे। उ०—ऐसी मोठी कुछ नहीं जैसी मोठी चुप।—कबीर (शब्द०)।

चुप—संज्ञा स्त्री० [देश०] पक्के सोहे की वह तलवार जिसमें दूटने से बचाने के लिये एक कच्चा लोहा लगा रहता है।

चुपका—वि० [हि० चुप] [वि० स्त्री० चुपकी] १. मोन। सामोश। **क्रि० प्र०**—होना।

मुहा०—चुपके से = बिना किसी से कुछ कहे सुने। शांत भाव से। छिपाकर। गुप्त रूप से।

२. चुप्पा। चुन्ना।

चुपकाना—क्रि० स० [हि० चुपका] मोन करना। न बोलने देना। सामोश करना।

चुपकी—संज्ञा स्त्री० [हि० चुप] मोन। सामोशी।

क्रि० प्र०—साधना।

मुहा०—चुपकी लगाना = मुँह से बात न निकालना सन्नाटे में रहना।

चुपचाप—क्रि० वि० [हि० चुप + अनुच्च्० चाप] दे० 'चुप' शब्द का यौगिक 'चुपचाप'।

चुपचुप—क्रि० वि० [हि०] दे० यो० 'चुपचाप'।

चुपचुपाते—क्रि० वि० [हि० चुपचुपाना] दे० यो० 'चुपचुप'।

चुपचुपाना—क्रि० प्र० [अनुच्च्० या हि० बिपबिपाना] दे० 'बिपबिपाना'।

चुपचना—क्रि० स० [अनु०] १. किसी गोली वस्तु को फैलाकर लगाना। किसी बिपबिपी वस्तु का लेप करना। पोतना। जैसे,—रोटी में घी चुपचना। २. दोष छिपाना। किसी दोष का आरोप दूर करने के लिये झूठ उधर की बातें करना। जैसे,—उसने अपराध तो किया ही है, प्रब अपराध

चुपड़ने से क्या होता है । ३. चिकनी चुपड़ी कहना । चापसुरी करना । चुपामच करना ।

चुपड़ा—संज्ञा पुं० [हि० चुपड़ + धा (प्रत्य०)] वह जिसकी धाँसों में बहुत कीचड़ हो । कीचड़ से मरी धाँसोंवाला ।

चुपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० चुपड़ना] १. धी जगाई हुई सादी रोटी ।
क्रि० प्र०—खाना ।

२. चिकनी बात । प्रिय वचन । चुपामच की बात ।

चुपड़ना—क्रि० स० [हि० चुपड़ना] दे० 'चुपड़ना' ।

चुपरी आलू—संज्ञा पुं० [देश०] पिंडालू या खालू जो मग्रास और मध्य भारत में अधिकता से होता है ।

चुपाना^१—क्रि० प्र० [हि० चुप] चुप हो रहना । मौन रहना । क्षामोश रहना । न बोलना ।

चुपाना^२—क्रि० स० चुप करना । शांत करना । क्षामोश करना ।

चुप्पी—वि० [हि० चुप] [वि० स्त्री० चुप्पी] जो बहुत कम बोले । जो अपनी बात को मन में लिए रहे । जो बात का उत्तर जल्दी न दे । चुप्पा ।

चुप्पी—संज्ञा स्त्री० [हि० चुप] मौन । क्षामोशी ।

क्रि० प्र०—साधना ।

चुबकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चुभकी] दे० 'चुभकी' । उ०—जोग जुक्ति मूँ चुबकी लेकर काग पलटि हंसा होइ जावो ।—चरण० बानी, पृ० ६६ ।

चुबलाना—क्रि० स० [अनु०] किसी वस्तु को जीम पर रखकर स्वाद लेने के लिये मँहु में डबड़ उधर डलाना । मँहु में लेकर धीरे धीरे आस्वादन करना ।

चुबुक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चिबुक' [को०] ।

चुब्र—संज्ञा पुं० [सं०] मुख । चेहरा [को०] ।

चुभकना—क्रि० प्र० [अनु०] पानी में चुभ चुभ शब्द करते हुए गोता खाना । बार बार डूबना उतराना ।

चुभकाना—क्रि० स० [अनु०] पानी में गोता देना । बार बार पकड़कर डबाना ।

चुभकी—संज्ञा स्त्री० [अनु० चुभ चुभ] १. डूबी । गोता । उ०—(क) ले चुभकी चलि जाति जित जित जमकैलि धधीर । कीजत कैसरि नीर से तित तित कैसरि नीर ।—बिहारी र०, दो० १५२। (ख) जल बिहार मिस नीर में ले चुभकी इस बार । यह भीतर मिलि परस्पर दोऊ करत बिहार ।—पपाकर (शब्द०) । २. चुभकने की क्रिया या भाव ।

चुभन—संज्ञा स्त्री० [हि० चुभना] १. चुभने की क्रिया या भाव । २. वहाँ । टीस ।

क्रि० प्र०—होना ।

चुभना—क्रि० स० [अनु०] १. किसी नुकीली वस्तु का दबाव पाकर किसी नरम वस्तु के भीतर घुसना । गड़ना । घँसना । जैसे,—काँटा चुभना, सुई चुभना । २. हृदय में खटकना । चित पर चोट पहुँचाना । मन में व्यथा उत्पन्न होना । जैसे,—उसकी चुभती हुई बातें कहीं तक सुनें । ३. मन में बैठना । हृदय पर प्रभाव करना । चित में बना रहना । जैसे,—उसकी बात मेरे मन में चुभ गई । उ०—टरति न टारे, यह खवि मन में

चुभी ।—सूर (शब्द०) । ४. मग्न । लीन । तन्मय । उ०—जिबि बालि चस्यो लखि दुंदुषी तिमि सोखी मति रन चुभी ।—गोपाल (शब्द०) ।

चुभर चुभर—क्रि० वि० [अनु०] १. घोंठ से बूँस बूँसकर पीने का शब्द । २. बच्चों के दूध पीने का शब्द ।

चुभलाना—क्रि० स० [अनु०] दे० 'चुबलाना' ।

चुभलाना—क्रि० स० [हि० चुभना का प्रे० रूप] चुभाने का कार्य दूसरे से कराना ।

चुभाना—क्रि० स० [हि० चुभना का प्रे० रूप] घँसाना । गड़ाना ।

चुभीला^१—वि० [हि० चुभना + ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० चुभीली] १. नुकीला । २. मन में खटकने या चुभनेवाला । ३. मन को आकर्षित करनेवाला ।

चुभोना—क्रि० स० [हि०] दे० 'चुभाना' ।

चुभीना^१—वि० [हि० चुभना + धोना (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० चुभीनी] दे० 'चुभीला' ।

चुभकार—संज्ञा स्त्री० [हि० चुभना + कार] चुभने का सा शब्द जो प्यार बिलाने के लिये निकालते हैं । पुचकार ।

चुभकारना—क्रि० स० [हि० चुभकार] प्यार दिलाने के लिये चुभने का सा शब्द निकालना । पुचकारना । दुलारना । जैसे,—बहु बच्चे से चुभकारकर सब बातें पूछने लगा ।

चुभकारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चुभकार' ।

चुभलाना—क्रि० स० [हि० चुभना का प्रे० रूप] चुभने का काम दूसरे से कराना ।

चुमाना—क्रि० स० [हि० चुभना] किसी दूसरे के सामने चुभने के लिये प्रस्तुत करना ।

चुमुचुमायन—संज्ञा पुं० [सं०] चाव की कुजलाहट जो उसके पूजने के लगभग होती है [को०] ।

चुमुन^१—संज्ञा पुं० [सं० चुम्बन] दे० 'चुंबन' । उ०—साजनि तोहर सिनेह भल भल । पहिला चुमुन कि दूर गेख ।—विद्यापति, पृ० ३०६ ।

चुम्भकी—संज्ञा पुं० [सं० चुम्बक] दे० 'चुंबक' ।

चुम्मा—संज्ञा पुं० [सं० चुम्बा, हि० चुम्बना] चुंबन । बोसा ।

क्रि० प्र०—देना ।—लेना ।

यौ०—चुम्माचाटी = चुम्मा देना तथा प्यार से घंगों को चाटना ।

चुरंगी—संज्ञा पुं० [हि० चौरंगी] चार भंग या विभागवाला । दे० 'चौरंगी' । उ०—चुरंगी सु बीरं, जुटे जुद्ध मीरं । छुटे मोष बानं, मुदे घासमान ।—पृ० रा०, १। ६४० ।

चुर^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. बाघ आदि के रहने का स्थान । मौब । २. चार पाँच आदमियों के बैठने का स्थान । बैठक । उ०—घाट, बाट, चौपार, चुर, देवल, हाट, मसान ।—भगवत रसिक ।—(शब्द०) ।

चुर^२—संज्ञा पुं० [अनु०] कागज, सूखे पत्ते आदि के मुड़ने या टूटने का शब्द ।

चुर^३^१—वि० [सं० प्रचुर] बहुत । अधिक । ज्यादा । उ०—प्रेम, प्रभांसा विनय युक्त वेग वचन ये आदि तेहि ते होत अनंद चुर कुर उर सागत नाहि ।—विश्राम (शब्द०) ।

चुराव—संज्ञा स्त्री० [हि० चुराव] दे० 'चुराव' । उ०—देखि कप मूख परबै सरा । बिबि एह चुराव के अपहरा ।—चिन्ता० पृ० ३३ ।

चुरकट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चिरकुट' ।

चुरकट—वि० [हि०] दे० 'चुरकुट' ।

चुरकट—संज्ञा पुं० [हि० चोरकट] दे० 'चोरकट' ।

चुरकना—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. बोलना । चहचहाना । चहकना । चीं चीं करना । चें चें करना । (ध्वंय या तिरस्कार में बोलते हैं) । २. बटकना । चूर होना । ३. टूटना । फटना ।

चुरकी—संज्ञा स्त्री० [हि० चोटी] कुटिया । शिखा ।

चुरकुट—क्रि० वि० [हि० चूर + कूटना] चकनाचूर । चूर चूर । शूलित । उ०—मुष्टिकी गद मरवि चार गूर चुरकुट करधो कंस मनु कप भयो भई रंगधूमि अनुराग रागी ।—सूर (शब्द०) ।

चुरकुस—संज्ञा पुं० [हि० चूर] चूर चूर । चूरचूर । चूरण । कुकी । उ०—तिलक पवीता माये दसन बज के बान । जेहि हेरहि तेहि मारहि चुरकुस करे निदान ।—जायसी (शब्द०) ।

चुरगना—क्रि० प्र० [हि० चुरकना] १. दे० 'चुरकना' २. प्रसन्न होकर बोलना । प्रहृष्टपन से बोलना ।

चुरगना—संज्ञा स्त्री० [हि० चुरगना] १. प्रसन्न होकर की जाने-वाली बात । २. कानाफूसीवाली बात ।

चुरचुरा—वि० [प्रनु०] जो सरा होने के कारण जरा सा बबाने के चूर चूर शब्द करके टूट जाय । जैसे,—कुमकुमा, पापड़ आदि ।

चुरचुराना—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. बहुत थोड़े आघात से चूर चूर हो जाना । २. चुर चुर शब्द करना या होना । ३. पक जाना । चुर जाना । चुरना ।

चुरचुराना—क्रि० सं० १. किसी सरी चीज को चूर चूर करना । २. चुर चुर शब्द उत्पन्न करना ।

चुरट—संज्ञा पुं० [हि० चुरट] दे० 'चुरट' ।

चुरना—क्रि० प्र० [सं० चूर (=जलना, पकना)] १. घोंच पर झोलते हुए पानी के साथ किसी वस्तु का पकना । गीली वस्तु का गरम होना । सीकना । जैसे,—दाल चुरना । २. घापस में गुप्त मंत्रणा या बातचीत होना ।

चुरना—संज्ञा पुं० [चुनचुनाना] गूत के से महीन सफेद कीड़े जो पेट में पड़ जते हैं और मल के साथ निकलते हैं । ये कीड़े बच्चों को बहुत कष्ट देते हैं । चुनचुना ।

क्रि० प्र०—लगना ।

चुरना—वि० चुरनेवाला । जिसकी सहायता से कोई वस्तु जल्दी से चुर जाय । जैसे,—चुरना नमक ।

चुरना—क्रि० प्र० [हि०] चोरी जाना ।

चुरमुर—संज्ञा पुं० [प्रनु०] सरी या कुरकुरी वस्तु के टूटने का शब्द । करारी चीजों के टूटने की आवाज । जैसे,—सूखी पत्तियों का चुरमुर होना । उ०—बना चुरमुर बोले । बाबू जाने की मुँह बोले ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

चुरमुर—वि० [हि०] दे० 'चुरमुरा' ।

चुरमुराना—क्रि० प्र० [प्रनु०] चुरमुर शब्द करके टूटना ।

चुरमुराना—क्रि० सं० [प्रनु०] चुरमुर शब्द करके टूटना । जैसे,—बना, पापड़ आदि चुरमुराना ।

चुरबाना—क्रि० सं० [हि० चुराना (=पकाना)] पकाने का काम करना ।

चुरबाना—क्रि० सं० [हि० चुराना का प्रे० रूप] 'चोरबाना' ।

चुरस—संज्ञा स्त्री० [देश०] कपड़े आदि की शिकन । सिलबट । सिकुड़न ।

चुरस—संज्ञा पुं० [हि०] चुष्ट ।

चुरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चूरा' । उ०—देखत चुरे कपूर ज्यों उषे जाय त्रिन लाल । छिन छिन होत सरी सरी छीन छबीली बाल ।—बिहारी (शब्द०) ।

चुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चारी ।

चुराई—संज्ञा स्त्री० [हि० चुरना] चुरने की क्रिया या भाव । पकने का काम ।

चुराई—वि० [हि० चूर + आई (प्रत्यय)] चोरी की हुई । जैसे, चुराई कविता, चुराई धोती ।

चुराना—क्रि० सं० [सं० चुर (=चोरी करना)] १. किसी वस्तु को उसके स्वामी के परोक्ष या अनजान में ले लेना । किसी दूसरे की वस्तु को इस प्रकार ले लेना कि उसे खबर न हो । गुप्त रूप से पराई वस्तु हरण करना । चोरी करना ।

मुहा०—चिरा चुराना=मन को आकर्षित करना । मन मोहित करना ।

२. परोक्ष में करना । लोगों की दृष्टि से बचाना । छिपाना । जैसे,—वह लड़का पैसा हाथ में चुराए है ।

मुहा०—छाँस चुराना=नजर बचाना । सामने मुँह न करना । जी चुराना=(१) बर्बाद करना । (२) काम की उपेक्षा करना । मन लगाकर काम न करना ।

३. किसी वस्तु के देने या काम के करने में कसर करना । जैसे,—(क) यह गाय दूध चुराती है । (ख) यह गवैया सूर चुराता है ।

मुहा०—जाँगर चुराना=काम करने में कसर रखना ।

४. किसी के भाव आदि अपना लेना । भाव चुराना ।

चुराबाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'चुराना' । उ०—मोरि मुँह मुसकाय के चार चिते 'मतिराम' चुरावन लागी ।—मति० प्र०, पृ० ३८३ ।

चुरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चुरी' [स्त्री०] ।

चुरिछा—संज्ञा पुं० [हि० चुड़छा] १. काँच का छोटा टुकड़ा जिससे लड़के तल्ली या पट्टी को रगड़कर चमकाते हैं । २. मोहे की एक तूड़ी जिसमें तागा बाँधकर नचनी के बीचो बीच में बाँध देते हैं । (जुलाहे) ।

चुरिहारा—संज्ञा पुं० [हि० चुड़िहारा] दे० 'चुड़िहारा' ।

चुरिहारा—संज्ञा पुं० [हि० चुड़िहारा] दे० 'चुड़िहारा' ।

चुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चूड़ी] दे० 'चूड़ी' । उ०—(क) किंकिनी कटि कुनित कंकन कर चुरी झनकार । हृदय चीकी चमकि बैठी सुभग मोतिन हार ।—सूर (शब्द०) । (ख) घर घर हिंदुनि तुलसी देवि असीत सराहि । पतिन राखि चादर, चुरी तै राखी जयसाहि ।—बिहारी (शब्द०) ।

चुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा कुंभा ।

चुल—संज्ञा पुं० [घ० लोट् (= चेल्ट)] संवाक के पत्ते या चूर की बत्ती जिसका धूम्र लोग पीते हैं। इसका दोनों सिरा कटा रहता है। सिगार का केवल एक सिरा कटा रहता है।

चुल—संज्ञा पुं० [सं० चुलुक] चुल्लू। उ०—(क) हंसि जननी चुर भरबाए। तब कछु कछु मुख पलराए।—चुर (शब्द०)। (ख) चरि तुष्टी मारी जल त्याई। भरपो चुक सरिका लै भाई।—चुर (शब्द०)।

चुरैल—संज्ञा स्त्री० [हि० चुरैल] दे० 'चुरैल'।

चुल्ट—संज्ञा पुं० [हि० चुल्ट] दे० 'चुल्ट'।

चुर्स—संज्ञा पुं० [हि० चुल्ट] दे० 'चुल्ट'।

चुर्स—संज्ञा स्त्री० [हि० चुरस] दे० 'चुरस'।

चुल—संज्ञा स्त्री० [सं० चल (= चंचल)] १. किसी ध्वं के मले या सहलाए जाने की इच्छा। चुललाहट। २. मस्ती। कामोद्वेग।

मुहा०—चुल उठना = (१) चुललाहट होना। (२) प्रसंग की इच्छा होना। काम का वेग होना। चुल मिटाना = कामवासना वृत्त करना।

चुल—संज्ञा स्त्री० [हि० चुर] दे० 'चुर' (माँद)।

चुलका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण की एक नदी का नाम।

चुलचुलाना—क्रि० प्र० [हि० चुल] चुललाहट होना। चुल होना।

चुलचुलाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० चुलचुलाना] चुल या चुलली उठने का भाव। चुल। चुललाहट।

क्रि० प्र०—उठना।—मिटना।—मिटाना।—होना।

चुलचुली—संज्ञा स्त्री० [हि० चुलचुलाना] चुल। चुललाहट।

क्रि० प्र०—उठना।—मिटना।—मिटाना।

चुलचुल—संज्ञा स्त्री० [सं० चल + चल अथवा चलोल] चुलचुलाहट। चंचलता। चपलता।

चुलचुला—वि० [सं० चल + चल] [वि० स्त्री० चुलचुली] १. जिसके धंग उमंग के कारण बहुत अधिक हिलते डोलते रहें। चंचल। चपल। २. नटखट।

चुलचुलाना—क्रि० प्र० [हि० चुलचुल] १. चुलचुल करना। रह रहकर हिलना डोलना। २. चंचल होना। चपलता करना।

चुलचुलापन—संज्ञा पुं० [हि० चुलचुल + पन (प्रत्य०)] चंचलता। चपलता। शोली।

चुलचुलाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० चुलचुल + आहट (प्रत्य०)] चंचलता। चपलता। शोली।

चुलचुलिया—वि० [हि० चुलचुल + इया (प्रत्य०)] दे० 'चुलचुल'।

चुलचुली—संज्ञा स्त्री० [हि० चुलचुल + ई (प्रत्य०)] चंचलता। चपलता। शोली।

चुलहाया—वि० [हि० चुल + हाया (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० चुलहाई] कामोद्वेग युक्त। काम की प्रबलतावाला।

चुलाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'चुवाना'।

चुलाव—संज्ञा पुं० [देश०] बह पुलाव जिसमें मांस न पड़ा हो।

चुलाव—संज्ञा पुं० [हि० चुवाना] चुवाने या चुवाने का भाव या क्रिया।

चुलियाला—संज्ञा पुं० [? अथवा देश०] एक मात्रिक ध्वं का नाम जिसमें ११ और १६ के विधाम से २६ मात्राएँ होती हैं। इसके अंत में एक जगण और एक लघु होता है।

चिरोब—दोहे के अंत में एक जगण और एक लघु रखने से यह ध्वं सिद्ध होता है। कोई इसके दो और कोई चार पद मानते हैं। जो दो पद मानते हैं; वे दोहे के अंत में एक जगण और एक लघु रखते हैं। जो चार पद मानते हैं, वे दोहे के अंत में एक जगण रखते हैं। जैसे,—(क) मेरी बिनती भानि के हरि जू देखो नेक क्या करि। नाहीं तुम्हारी जात है दुख हरिबे की टेक सदा कर (ख) हरि प्रभु माधव और बर मन मोहन गोपति भविनासी। कर मुरलीबर और नरवरदायक काटत भव फाँसी। जम बिपदाहर राम प्रिय मन भावन संतन चटबासी। धब मम और निहारि दुख दारिद हटि कीने सुखरासी।

चुली—संज्ञा स्त्री० [हि० चुल्लू] १. धान करने के लिये हथेली में जल लेकर दिया जाने वाला संकल्प। २. चुल्लू। चुल्ही।

चुलप—संज्ञा पुं० [सं० चुलुप्य] बच्चों का लड़ा प्यार करना। शिशुओं का लालन (की०)।

चुलपा—संज्ञा स्त्री० [सं० चुलुप्पा] बकरी (की०)।

चुलपी—संज्ञा पुं० [सं० चुलुप्पिन्] एक प्रकार का मत्स्य (की०)।

चुलुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. उर्व के बूबने भर को जल। २. भारी हलदल। गहरा कीचड़। ३. गहरी की हुई हथेली जिसमें पानी इत्यादि पी सकें। चुल्लू। ४. प्राचीन काल काल का एक प्रकार का बरतन जो नापने के काम में आता था। ५. एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम। ६. उर्व का बोधन (की०)।

चुलुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका वर्णन महाभारत में आया है।

चुलुकी—संज्ञा पुं० [सं० चुलुकिन्] जलसूकर (की०)।

चुलुपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकरी (की०)।

चुलुक—संज्ञा पुं० [हि० चुलुक] दे० 'चुल्लू'।

चुल्ल—वि० [सं०] कीचड़ भरी धाँसवाला (की०)।

चुल्ल—संज्ञा पुं० कीचड़ भरी धाँस (की०)।

चुल्ल—संज्ञा स्त्री० [हि० चुल] दे० 'चुल'।

चुल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] चुल्लू (की०)।

चुल्लपन—संज्ञा पुं० [हि० चुल्ल + पन (प्रत्य०)] चंचलता। नट-खटपना। पाजीपन। शरारतीपन।

चुल्लकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शिशुमार या सूँस नाम का एक जलजंतु। २. एक प्रकार जलपात्र (की०)।

चुल्ला—संज्ञा पुं० [सं० चूडा (= वलय)] काँच का छोटा छल्ला जो कुलाहों के करघे में लगा रहता है।

चुल्ला—वि० [अनु०] चिलबिल्ला। नटखट। पाजी।

चुल्लि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चुल्ही' (की०)।

चुल्ही—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अग्न्यावहण। चूल्हा। २. चिता। ३.

तीन विभागोंवाला विशाल कक्ष जिसका एक विभाग उत्तरमुख, दूसरा पूर्वमुख और तीसरा पश्चिममुखी हो (बी०)।

चुल्की^३—वि० [हि० चुल् + ई (प्रत्य०)] बिलबिला। नटखट।

चुल्की^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चुल्नी'।

चुल्नी—संज्ञा पुं० [सं० चुलुक] गहरी की हुई हुयेली जिसमें भरकर पानी आदि पी सके। एक हाथ की हुयेली का गब्दा। (इस शब्द का प्रयोग पानी आदि द्रव पदार्थों के ही संबंध में होता है। जैसे,—चुल्नी भर पानी, चुल्नी से दूध पीना, इत्यादि।)

यौ०—चुल्नी भर = उतना (जल, दूध आदि) जितना चुल्नी में था सके।

मुहा०—चुल्नी चुल्नी साधना = थोड़ा थोड़ा करके अभ्यास करना। चुल्नी भर पानी से डूब मरो = मुंह न दिखाओ। लज्जा के मारे मर जाओ। (जब कोई अत्यंत अनुचित कार्य करता है तब उसके प्रति धिक्कार के रूप में यह मुहा० बोलते हैं)। चुल्नी भर लहू पीना = शत्रु का वध करने के बाद चुल्नी भर खून पीना (प्राचीन काल में इसका चलन था। महाभारत के अनुसार भीम ने दुःशासन के साथ यही किया था)। चुल्नी में जल्लू होना = बहुत थोड़ी सी भाँग या करारा में बेसुध होना। चुल्नी में ससुन्न न समाना = छोटे पात्र में बहुत वस्तु न धाना। कुपात्र या क्षुद्र मनुष्य से कोई बड़ा या श्रेष्ठ काम न हो सकता।

विशेष—यद्यपि कुछ लोग दोनों हुयेदियों को मिलाकर बनाई हुई बेंजली को भी चुल्नी कहते हैं, पर यह ठीक नहीं है।

चुल्हीना—संज्ञा पुं० [हि० चुल्हा + पीना (प्रत्य०)] दे० 'चुल्हा'। उ०—समथी के घर समथी आयो, आयो बहू को भाई। गोड़ चुल्हीने दे रहे, चरखा दियो उड़ाई।—कवीर (शब्द०)।

चुलना^१—क्रि० प्र० [हि० चुलना] दे० 'चूना'।

चुलना^२—क्रि० स० [हि० चुलना] दे० 'चुलना'।

चुलना^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चुलना'।

चुलना^४—संज्ञा पुं० [हि०] डूही की नली के धंवर का भास। मज्जा। मेजा।

चुला^१—संज्ञा पुं० [हि० चोला (= चार पैरोंवाला)] पशु। चौपाया। उ०—चार चुला चहुँ ओर चलें जपटें भपटें सो तमीचर लीकी।—तुलसी (शब्द०)।

चुला^२—संज्ञा पुं० [हि० चोला] दे० 'चोला'। उ०—चंदन लीरि चुला हो की बेंदी बनेली तिथा सब संग रंभाही।—गंग०, पृ० ३७।

चुलाना—क्रि० स० [हि० चुलना का प्रेरक] टपकाना। गिराना। बूँद बूँद करके गिराना। थोड़ा थोड़ा गिराना। उ०—(क)। रीमत गाय बद्ध हित सुधि करि प्रेम उमंगि बन दूध चुलावत। असुमति ग्रीष्म उठी हरषित हूँ काहूँ सेव चराये पावत।—सूर (शब्द०)। (ख) कोई मुक्त सीतल नीर चुलावै। कोई झंझल सौ पवन डोलावै।—जायसी (शब्द०)।

चुलावनि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चुलाना] चुलाने का कार्य या स्थिति। उ०—चुलनि, चुलावनि, चाटनि, चूमनि। नहि कहि परति प्रेम की धूरनि।—नंद० प्र०, पृ० २६६।

चुलामा^१—संज्ञा पुं० [हि० चुलामा] दे० 'चुलामा'। सोता। उ०—दुइ चुलामे पानी के करे। पानी साथ समपूर्ण भरे।—प्राण०, पृ० २२।

चुलनि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चुलना] चुलने का कार्य या स्थिति। उ०—चुलनि चुलावनि चाटनि चूमनि। नहि कहि परति प्रेम की धूरनि।—नंद० प्र०, पृ० २६६।

चुल^१—वि० [सं० चोष्य] दे० 'चोष्य'। उ०—चारि प्रकार बिचित्र सुव्यंजन। मध्य भोज्य चुल, लिह मनरंजन।—नंद० प्र०, पृ० ३०२।

चुसकी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चुसक] मद्य पीने का पात्र। पानपात्र। प्याला।—(दि०)।

चुसकी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० चुसना] १. थोठ से किसी पीने की चीज को सुड़कने की क्रिया। थोठ से जगाकर थोड़ा थोड़ा करके पीने की क्रिया। सुड़क। २. उतना जितना एक बार सुड़का जाय। घूँट। दम। जैसे,—दो चुसकियाँ और लेने दो। क्रि० प्र०—लगाना।—लेना।

चुसना^१—क्रि० प्र० [हि० चुसना] १. चुसा जाना। थोठ से खींचकर पिया जाना। चबाया जाना। २. निचुड़ जाना। गर जाना। निकल जाना। ३. सारहीन होना। शक्तिहीन होना। ४. धनशून्य होना। देते देते पास में कुछ रह न जाना। जैसे,—हम तो चुस गए, अब हमारे पास रहा क्या? संयो० क्रि०—जाना।

चुसना^२—संज्ञा पुं० [हि० चुसनी] बड़ी चुसनी।

चुसनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चुसना] १. बच्चों का एक खिलौना जिसे वे मुँह में डालकर चूसते हैं। २. दूध पिलाने की बीबी।

चुसवाना—क्रि० स० [हि० चुसना का प्रेरक] चुसने का काम कराना। चुसने में प्रवृत्त करना। चुसने देना।

चुसाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चुसना] चुसने की क्रिया या भाव।

चुसाना—क्रि० स० [हि० चुसना का प्रेरक] चुसने का काम कराना। चुसने में प्रवृत्त करना। चुसने देना।

चुसौबल—संज्ञा स्त्री० [हि० चुस + बल (प्रत्य०)] दे० 'चुसौबल'।

चुसौबल—संज्ञा स्त्री० [हि० चुसना] १. प्रविकृता से चुसने की क्रिया। २. बहुत से आदमियों द्वारा चुसने की क्रिया।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—होना।

चुस्की—संज्ञा स्त्री० [हि० चुसकी] दे० 'चुसकी'। उ०—बलाक ने एक चुस्की लेकर कहा।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ४६२।

चुस्त^१—वि० [फ़ा०] १. कसा हुआ। जो ढीला न हो। संकुचित। जैसे,—यह शंगा बहुत चुस्त है। २. जिसमें आलस्य न हो। तत्पर। फुरतीला। चलता।

यौ०—चुस्त चालाक = तेज और समझदार। चुस्तबन = एक व्यक्तित्व जिसका हो। जिसके विषय में डीलढाल न हो। एक निश्चयवाला। उ०—इस राह पहुँचे चुस्तबन करि नाव

उसका सेह ।— सुंवर०, पं०, भा० १, पृ० २८४ ।

३. दृढ़ । मज्झिम ।

बुद्ध^२—संज्ञा पुं० ब्रह्म का वह भाग जो अंदर की ओर झुका हो ।
मूढ़ ।—(मूढ०) ।

बुद्ध^३—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूने हुए मांस का बना हुआ भाग । २.
सूना हुआ मांस । ३. बुध । भूमी । ४. आल । झिलका [की०] ।

बुद्धा—संज्ञा पुं० [सं० बुद्ध (= मांसविह्वलित)] बकरी के बच्चे का
आमावाय जिसमें पिया हुआ दूध भरा रहता है ।

बुद्धी—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] १. फुरती । तेजी । २. कसावट । तंगी ।
३. दृढ़ता । मज्झिमी ।

बुद्धिना^४—क्रि० प्र० [अनु०] बिड़ियों का बोलना ।
बहुचहाना । उ०—चिरैया बुद्धिनी, सुन बकई की बानी,
कहत जसोदा रानी जागी मेरे लाला ।—नंद० प्र०, पृ०
३३७ ।

बुद्धी^५—संज्ञा स्त्री० [देश०] बुटकी । उ०—बुद्धी चिबुक चापि
बूमि लोक लोचन की रस में विरस कह्यो बचन मलीनो है ।
—(शब्द०) ।

बुद्धबाहटा—संज्ञा स्त्री० [अनु०] बिड़ियों का शब्द । बहुकार ।

बुद्धबुहा—वि० [अनु०] [वि० स्त्री० बुद्धबुही] १. बुद्धबुहाता हुआ ।
रसीला । २. चटकीला । शोख । उ०—पहिरे पीर सुहि सुरंग
सारी बुद्धबुह बूनरो बहुरंगनो । नीम लहंगा लाख चोली किस
जबटि केसरि सुरंगनो ।—सूर (शब्द०) ।

बुद्धबुहाहटा—संज्ञा स्त्री० [हि० बुद्धबुह + प्राहट (प्रत्य०)] २०
'बुद्धबाहट' । उ०—मैं तेरी ही हूँ इसकी साखी दिला जा,
जरा बुद्ध बुहाहट तो सुनने को प्राजा ।—हिम०, पृ० ४८ ।

बुद्धबुहाता—वि० [हि० बुद्धबुहाना] रसभरा । रसीला । सरस ।
रंगीला । मजेदार । जैसे,—कोई बुद्धबुहाता कवित्त सुनाए ।

बुद्धबुहाना—क्रि० प्र० [अनु०] १. रस टपकना । चटकीला लगना ।
२. बिड़ियों का बोलना । बहुकार मचाना । कलरव करना ।
बहुचहाना । उ०—चिरई बुद्धबुहानी चंद की ज्योति परानी
रजनी बिहानी प्राची पियरी प्रवीन को ।—सूर (शब्द०) ।

बुद्धबुही^६—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चमकीले काले रंग की एक बहुत छोटी
बिड़िया जो प्रायः फूलों पर बैठती है ।

विशेष—यह देखने में बहुत चंचल और तेज होती है । बोली भी
इसकी प्यारी होती है । इसे 'फुलसुंधनी' भी कहते हैं ।

बुद्धबुही^७—वि० [अनु०] १० 'बुद्धबुहा' उ०—बार बुद्धबुही मंजी एड़िन
ललाई लखें, अपरि चलत जै बरन बूकी रोरी को ।—घनानंद,
पृ० २०८ ।

बुद्धबुही^८—संज्ञा स्त्री० [हि० बुद्धबुही] २० 'बुद्धबुही' । उ०—
घोर होत बोलहि बुद्धबुही । बोले पांडुक एकै तूही ।—बामसी
(शब्द०) ।

बुद्ध^९—संज्ञा स्त्री० [हि० बुद्धना] १. बुद्धने की क्रिया या भाव ।
२. शपथ । कसम । सांगण ।

बुद्धना^{१०}—क्रि० प्र० [देश०] १. रौबना । कुचलना । उ०—फिरि

केरी झट्टत चलत बुद्धत दुह पद्धत भाइ ।—सूदन
(शब्द०) । २. बिकोटी काटना ।

बुद्धना^{११}—क्रि० प्र० चिमटना ।

बुद्धनी^{१२}—संज्ञा [देश०] बुँबची । गुंजा ।

बुद्धा^{१३}—संज्ञा पुं० [देश०] २० 'बुद्धा' ।

बुद्धा^{१४}—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० बुद्धी] मंजी १. हलालखोर । २.
नीच । थोखेबाज व्यक्ति । वह व्यक्ति जो करेब रखता
हो (ला०) ।

बुद्धना^{१५}—क्रि० प्र० [सं० बूषण] बातों से दबाकर किसी वस्तु के
रस को चूसना । जैसे,—ऊन बुद्धना ।

बुद्धबाजी^{१६}—संज्ञा स्त्री० [हि० बुद्धबाजी] २० 'बुद्धबाजी' ।
उ०—संत की चाल संसार से भिन्न है, सकल संसार में बुद्ध-
बाजी ।—कबीर० २०, पृ० १६ ।

बुद्ध^{१७}—संज्ञा स्त्री० [अनु० बुद्धबुह, (= बिड़ियों की बोली)] हंसी ।
ठठोली । विनोद । मनोरंजन ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचाना ।—होना ।

बुद्धलपन—संज्ञा पुं० [हि० बुद्धल + पन (प्रत्य०)] २० 'बुद्धलबाजी' ।

बुद्धलबाज—वि० [हि० बुद्धल + प्रा० बाज (प्रत्य०)] ठठोल ।
मसखरा । दिल्लगीबाज । ठठेबाज । विनोदी ।

बुद्धलबाजो—संज्ञा स्त्री० [हि० बुद्धलबाज + ई (प्रत्य०)] हंसी ।
ठठोली । दिल्लगी । मसखरापन ।

बुद्धावंधो—संज्ञा स्त्री० [हि० ब्रह्मावंधो] २० 'ब्रह्मावंधी' ।

बुद्धिया—संज्ञा स्त्री० [हि० बुद्धा] बुद्धा का स्त्री० और प्रत्यय० रूप ।

बुद्धिख—वि० [हि० बुद्धिखाना] जहाँ रौनकन हो । रमणीक ।

विशेष—स्थान के संबंध में बोलते हैं ।

बुद्धिजी—संज्ञा स्त्री० [देश०] चिकनी सुपारी ।

बुद्धटना^{१८}—क्रि० प्र० [अनु०] १. बिकोटी काटना । २. बुटकी से
पकड़ना ।

बुद्धटना^{१९}—वि० १. बिकोटी काटनेवाला । २. कसकर पकड़ने या
दबानेवाला ।

बुद्धकना^{२०}—क्रि० प्र० [सं० बूष] चूसना ।

बुद्धनी^{२१}—क्रि० प्र० [हि० चिमटना] चिमटना । चिपकना ।
पकड़ना ।

बुद्धनी^{२२}—वि० [वि० स्त्री० बुद्धनी] चिमटनेवाला । चिपकने या
पकड़नेवाला । उ०—हंसि उतारि हिय तैं दई तुम बुद्धिहि
दिना लाल । राखति प्रान कपूर ज्यो बहै बुद्धनी-माल ।—
बिहारी (शब्द०) ।

विशेष—यहाँ बुद्धनी शब्द मिलता है । इसका एक अर्थ बुँबची या
गुंजा दूसरा अर्थ चिपकने या पकड़नेवाली है ।

बुद्धनी^{२३}—संज्ञा स्त्री० [देश०] गुंजी । बुँबची । उ०—हंसि उतारि
हिय तैं दई तुम बुद्धिहि दिना लाल । राखति प्रान कपूर ज्यो
बहै बुद्धनी माल ।—बिहारी (शब्द०) ।

बूँ^{२४}—संज्ञा पुं० [अनु०] १. छोटी बिड़ियों या उनके बच्चों के
बोलने का शब्द । उ०—बूँ बूँ बूँ बूँ बूँ बूँ कथा सब भेद
बेद करती हैं ।—नबीर (शब्द०) । २. बूँ शब्द ।

मुहा०—'तू' तक न करवा = चुप रहना । एकदम मौन रहना ।
'तू' न होना या 'तू' तक न होना = सफाटा होना । काँटि होना ।
कोई उज्र या विरोध न करना । उ०—महरी—घोर घावमी
इधर उधर से गड़ाप गड़ाप कोड़े जमाते जाते हैं । कोई 'तू' तक
नहीं करता ।—कसाना०, भा० ३, पृ० ४ ।

चूँ^१—क्रि० वि० [फ्रा०] १. किस कारण से । क्यों । उ०—दादू
इन बीदार हिये के 'चूँ' वेचूँ देखाबी । घट०, पृ० २११ ।
२. जो । यदि । अगर (को०) । ३. सट्टा । समान (को०) ।

चौ०—'चूँ' चाँ = दे० 'चूँ' चरा' ।

चूँकि—क्रि० वि० [फ्रा०] इस कारण से कि । क्योंकि । इस-
लिये कि ।

चूँच^१—संज्ञा पुं० [सं० चञ्चु] दे० 'चोंच' उ०—तान चूँच सो
पकरि के, बित चिरिया हो जाय ।—रज० प्र०, पृ० ५२ ।

चूँचरा—संज्ञा पुं० [फ्रा० 'चूँ' (= क्यों) + (चरा = क्या)] १. प्रति-
बाध । विरोध । २. आपत्ति । उज्र । ३. बहाना । मिस ।

चूँची^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चुचि] दे० 'चूची' ।

चूँचूँ^१—संज्ञा पुं० [मनु०] १. चिड़ियों के बोलने का शब्द ।
दे० 'चूँ' ।

क्रि० प्र०—'चूँ' 'चूँ' होना = चिड़ियों का बहचहाना ।

२. किसी प्रकार का 'चूँ' 'चूँ' शब्द । ३. कोलाहल । निरर्थक
शब्द । बेमतलब की बात ।

चौ०—'चूँ' 'चूँ' का मुरम्मा = अनेक बेमेल चीजों का मेल ।

मुहा०—'चूँ' 'चूँ' करना = बेमतलब की बात करना । 'चूँ' 'चूँ'
लवाना = बेमतलब का धोर करना ।

४. एक प्रकार का लिलीना जिसे दबाने या खींचने से 'चूँ' 'चूँ' शब्द
होता है ।

चूँटना—क्रि० स० [हि० चुटकना] तोड़ने के लिये चुटकी से
चकड़ना ।

चूँदरो—संज्ञा स्त्री० [हि० चून्दरी] दे० 'चुन्दरी' । उ०—हैं उर जेब
जवाहिर की पुनि चोप सों चूँदरी लैं पहिरावत ।—(शब्द०) ।

चूँदी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चुँदी] दे० 'चुँदी' ।

चूँप—संज्ञा स्त्री० [हि० चोप] उत्साह । चोप । उमंग । उ०—
बाबूदास का भेरूँदास भेरूँ के रूप । बाबूदास चंद्र प्रहास
धरी प्रास की चूँप ।—रा० क०, पृ० १५१ ।

चूँचरी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] ज़रदाज़ । खूबानी ।

चूँक—संज्ञा पुं० [देश०] स्त्रियों के पहनने का एक प्रकार का महीन
ऊनी कपड़ा जो पहाड़ी देशों में बनता है ।

चूक^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चूकना] १. झूल । गलती । उ०—इह जानि
चूक बित्यो तपति रहै बस सुबिहान की ।—पृ० रा०,
१० । १० ।

क्रि० प्र०—करना ।—जाना ।—पड़ना ।—होना ।

२. बरार । बर्ज । शिगाफ ।—(लख०) । ३. झूल । कपट ।
फरेब । धगा । चोकरा । उ०—(क) मही हरि बलि सों चूक
करी ।—परमानंद दास (शब्द०) । (ख) बरम राज सी चूक

करि दुरजोधन से जीन्ह । राजपाट अर बित सब बनवास वै
दीन्ह ।—सत्सु (शब्द०) ।

चूक^२—संज्ञा पुं० [सं० चुक] १. नीबू, इमली, आम, अनार या
आंवले आदि किसी खट्टे फल के रस को गाढ़ा करके बनाया
हुआ एक पदार्थ जो अत्यंत खट्टा होता है । वैद्यक में इसे
शीपन और पाचन कहा है । २. एक प्रकार का खट्टा साग ।
चूका ।

चूक^३—वि० बहुत अधिक खट्टा । इतना खट्टा जो खाया न जा सके ।

चूकना—क्रि० प्र० [सं० चुक्, प्रा० चुचि] १. झूल करना ।
गलती करना । २. लक्ष्यभ्रष्ट होना । ३. सुप्रवसर छो
देना । उ०—समय चूकि पुनि का पछिताने ।—तुलसी
(शब्द०) । ४. समाप्त होना । चुकना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

चूका—संज्ञा पुं० [सं० चुक] एक प्रकार का खट्टा साग जिसे चूक
भी कहते हैं । वैद्यक में इसे हलका, रुचिकारक और शीपक
माना है ।

चूखना^१—क्रि० स० [सं० चूषण, हि० चुहुकना] चूखना । उ०—देखें
परहित लागि प्रेम रस चूखैं ऊलन ।—पल्लव०, भा० १, पृ० ११ ।

चूचना^१—क्रि० स० [हि० चोचना] चोंचना । चुगना । आहार
करना । उ०—कह कबीर परगट भई खेड । ले ले की चूचे
मित भेड ।—कबीर श्र०, पृ० २७४ ।

चूच^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चञ्चु] दे० 'चोंच' उ०—जैसे पंखी चूच
करि चुगत ग्रहार पुनि तैसे जानी उर में उपासना बरत हैं ।
—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ६४० ।

चूचो—संज्ञा स्त्री० [सं० चुचि या चूचुक] १. स्तन का अग्रभाग ।
कुच के ऊपर की घुंटी । २. स्त्री की छाती । स्तन । कुच ।

चौ०—चूचीपीठा = बहुत छोटा (बच्चा) । नासमझ । नादान ।

मुहा०—चूची पीना = चूची को मुँह में लगाकर उसका दूध
पीना । स्तनपान करना । चूचो मलना = (पुरुष का) संभोग
के समय आनंदवृद्धि के लिये स्त्री के स्तन को हाथों से दबाना,
मलना या मर्दन करना ।

चूचुक—संज्ञा पुं० [सं०] कुच का अग्र भाग । चूची की ठेपनी ।
उ०—चूचुक सारी परसि रहे तेहि निहुरि लखति सी ।
सुकवि क्याम को निरखि निरखि विहंसति सकुचति सी ।—
व्यास (शब्द०) ।

चूजा^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० चूजह] मुरगी का बच्चा ।

चूजा^२—वि० जिसकी अवस्था अधिक न हो । कमसिन । (बाजाल) ।

चूड़, चूड़क—संज्ञा पुं० [सं० चूड, चूडक] १. चोटी । शिखा । २.
अस्तक पर की कलगी, वैसी मुरगे या मोर के सिर पर होती
है । ३. शंखचूड़ नामक वस्त्र । ४. संभे, मकान या पहाड़
आदि का ऊपरी भाग । कंकण । ५. छोटा कूपा ।

चूड़ा^१—वि० [सं० चूडान्त] चरम सीमा । पराकाष्ठा ।

चूड़ा^२—क्रि० वि० अत्यंत । बहुत अधिक ।

चूड़ा^३—संज्ञा स्त्री० [सं० चूडा] १. चोटी । शिखा । चुरकी ।

चूड़ा—चूड़ाकरण । चूड़ाकर्म । चूड़ामणि । चूड़ारत्न ।

२. मोर के सिर पर की चोटी । ३. छाजन आदि में वह सबसे ऊँचा भाग जिसे मंगरा कहते हैं । ४. कूमा । ५. चुँचवी । ६. मस्तक । ७. प्रधान (नायक या नायिका) । अथ । खेठ । ८. बाँह में पहनने का एक प्रकार का अलंकार । ९. चूड़ाकरण नाम का संस्कार । १०. पवतशिलर । पहाड़ का शृंग (को०) ।

चूड़ा^१—संज्ञा पुं० [सं० चूड़ा (= बाहुभूषण)] १. ककण । कड़ा । बलय । २. हाथों में पहनने के लिये छोटी बड़ी बहुत सी चूड़ियों का समूह जो किसी जाति में नववधू और किसी किसी जाति में प्रायः सब विवाहिता स्त्रियाँ पहनती हैं ।

विशेष—चूड़े प्रायः हाथों दाँत के बनते हैं । उनमें की सबसे छोटी चूड़ी पहने के पास रहती है और बीच की चूड़ियाँ गावधुम रहती हैं ।

चूड़ा^२—संज्ञा पुं० [हि० चुहड़ा] दे० 'चुहड़ा' ।

चूड़ा^३—संज्ञा पुं० [हि० चिउड़ा] दे० 'चिउड़ा' ।

चूड़ाकरण—संज्ञा पुं० [सं० चूड़ाकरण] किसी बच्चे का पहले पहल सिर मुड़ाकर चोटी रखवाना । मुँहन ।

विशेष—हिंदुओं के १६ संस्कारों में से यह भी एक संस्कार है । यह बच्चे की उत्पत्ति से तीसरे या पंचमे वर्ष होता है ।

चूड़ाकर्म—संज्ञा पुं० [सं० चूड़ाकर्मन्] चूड़ाकरण ।

चूड़ामणि—संज्ञा पुं० [सं० चूड़ामणि] १. सिर में पहनने का मीराफूल नाम का एक गहना । बीज । २. सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति । सबमें खेठ । सरदार । मुखिया । अग्रगण्य । ३. चुँचवी । गुँजा ।

चूड़ामल—संज्ञा पुं० [सं० चूड़ामल] इमली ।

चूड़ार—वि० [सं० चूड़ार] १. जिसके मस्तक पर चूड़ा हो । (मनुष्य) । २. (पत्नी) जिसके मस्तक पर कलंगो हो । [को०] ।

चूड़ाल^१—संज्ञा पुं० [सं० चूड़ाल] सिर [को०] ।

चूड़ाल^२—वि० चूड़ायुक्त [को०] ।

चूड़ाला—संज्ञा स्त्री० [सं० चूड़ाला] १. सफेद चुँचवी । २. नागर-मोथा । ३. एक प्रकार की घास जिसे निविषी भी कहते हैं ।

चूड़िया—संज्ञा पुं० [हि० चूड़ी + हया (प्रत्य०)] एक प्रकार का धारीदार कपड़ा ।

चूड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चूड़ा] १. हाथ में पहनने का एक प्रकार का घुसाकार गहना जो लाख, काँच, चाँदी या सोने आदि का बनता है ।

विशेष—भारतीय स्त्रियाँ चूड़ी को सीमाग्न चिह्न समझती हैं । और प्रत्येक हाथ में कई कई चूड़ियाँ पहनती हैं । पहनी हुई चूड़ी का टूट जाना अशुभ समझा जाता है । युरोप, अमेरिका आदि की स्त्रियाँ केवल बाहिने हाथ में और प्रायः एक ही चूड़ी पहनती हैं पर अब विदेशों में भी चूड़ी पहनने का रवाज हो गया है ।

क्रि० प्र०—छठारना ।—बढ़ाना ।—पहनना । पहनाना ।

मुहा०—चूड़ियाँ ठंडी करना या तोड़ना = पति के मरने के समय स्त्री का अपनी चूड़ियाँ उतारना या ठोड़ना । वैधव्य का चिह्न

धारण करना । चूड़ियाँ पहनना = स्त्रियों का वेस धारण करना । झोरात बनना (अंग्रेज और हास्य में) । जैसे,—जब तुम इतना भी नहीं कर सकते, तो चूड़ियाँ पहन लो । (किसी पर या किसी के नाम की) चूड़ियाँ पहनना = स्त्री का किसी की अपना उपपति बना लेना । स्त्री का किसी के घर बैठ जाना । चूड़ियाँ पहनाना = विधवा स्त्री से अथवा विधवा स्त्री का विवाह कराना । चूड़ियाँ बढ़ाना = चूड़ियाँ उतारना । चूड़ियों की हाथों से अलग करना । (चूड़ियों के साथ 'उतारना' शब्द का प्रयोग स्त्रियों में अनुचित और अशुभ समझा जाता है ।)

२. वह मडलाकार पदार्थ जिसकी परिधि मात्र हो और जिसके मध्य का स्थान विस्तृत खाली हो । घुत्ताकार पदार्थ । जैसे, मशीन की चूड़ी । जो किसी पुरजे को लसकने से बचाने के लिये पहनाई जाती है, । ३. फोनोग्राफ या ग्रामोफोन बाजे का रेकार्ड जिसमें गाना भरा रहता है अथवा भरा जाता है ।

विशेष—पहले पहल जब केवल, फोनोग्राफ का आविष्कार हुआ था, तब उसके रेकार्ड लंबे और कुडलाकार बनते थे और उल्टे बाजे में लगे हुए एक लंबे नल पर चढ़ाकर बजाए जाते थे । उन्हीं रेकार्डों की चूड़ी कहते थे । पर आजकल के ग्रामोफोन के रेकार्डों की भी, जो लंबे के आकार की गोल पट्टियाँ होती हैं, चूड़ी कहते हैं ।

४. चूड़ी की आकृति का गोदना जो स्त्रियाँ हाथों पर गोधाती हैं ।

५. रेशम साफ करनेवालों का एक औजार ।

विशेष—यह चूड़ाकार मोटे कड़े की शकल का होता है और मकान की छत में बाँस की एक कमानों के साथ बँधा रहता है । इसके दोनों ओर दो टेकुरियाँ होती हैं । बाईं ओर की टेकुरी में साफ किया हुआ और दाहिनी ओर की टेकुरी में उलझा हुआ रेशम लपेटा रहता है ।

चूड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० चूड़ा] वे छोटी छोटी मेहराबें जिनमें कोई बड़ी मेहराब विभक्त रहती है ।

चूड़ीदार—वि० [हि० चूड़ी + दार (प्रत्य०)] जिसमें चूड़ी या छस्ते अथवा इसी प्रकार के घेरे पड़े हों ।

चूड़ी—चूड़ीवार पायजामा = लंबे और लंबी मोहरी का एक प्रकार का पायजामा जिसमें खुस्त ऐंठन के कारण पैर के पास चूड़ी के आकार के घेरे या शिकने पड़ी रहती हैं ।

चूड़ों—संज्ञा पुं० [हि० चूहड़ा] दे० 'चुहड़ा' ।

चूत^१—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़ ।

चूत^२—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़ । चूतकालिका । चूतमजरी । चूतलतिका । चूतांकुर । चूता-यष्टि = आम की बाँस या डाल ।

चूत^३—संज्ञा स्त्री० [सं० चूत (= भग)] स्त्रियों की गर्वद्विज । योगि । भग ।

चूत^४—संज्ञा पुं० [सं०] चूतसज्जानी = मुसलमानों की एक रस्म और उसमें सुहाग-रात की पति द्वारा पत्नी को क्षिप्त करनेवाला उपहार ।

चूतड़—संज्ञा पुं० [सं०] १. आम का पेड़ । २. छोटा कुधा (को०) ।

चूना—संज्ञा पुं० [हि० चू + ल] कमर के नीचे और जीप के ऊपर गुदा के बगल का मांसम भाग । नितम्ब ।

मुहा०—चूतड़ बिखाना = कठिन समय पर भाग जाना । पीठ बिखाना । चूतड़ पोटना या बजाना = बहुत प्रसन्न होना । खूब खुश होना । चूतड़ों का लहू भरना = एक स्थान पर जमकर बैठने के योग्य होना ।

चूतरा—संज्ञा पुं० [हि० चूतड़] दे० 'चूतड़' ।

चूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुदा । चूतड़ [स्त्री०] ।

चूतिया—वि० [हि० चूत + ईया (प्रत्य०)] नासमझ । मूर्ख । गावदी । उ०—चूतिया जलक और चोपट चबाई च्युत चोकस चिकित्सक बिबिल्ला भी चमार है ।—गंग०, पृ० १२६ ।

क्रि० प्र०—फँसना—फँसाना ।—बनाना ।—समझना ।

चूतियाकावा—वि० [हि० चूतिया + कावा] दे० 'चूतिया' ।

चूतियाचक्कर—वि० [हि० चूतिया + चक्कर] दे० 'चूतिया' ।

चूतियापंथी—संज्ञा स्त्री० [हि० चूतिया + पंथी] मूर्खता । नासमझी । बेवकूफी ।

चूतियाशहीद—संज्ञा स्त्री० [हि० चूतिया + का० शहीद] मूर्खों का शिरताज । बहुत बड़ा मूर्ख ।

चून—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] १. भाटा । पिसान । २. दे० 'चूना' ।

चून—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा घूहड़ जो हिमालय के बलित्थी भाग में तथा पंजाब के कुछ जिलों में अधिकता से होता है ।

विशेष—इसके दूध में गटापारना का ग्रंथ बहुत अधिक होता है । ताजे दूध में बहुत सुगंध होती है और वह आँस के लिये बहुत हानिकारक होता है । बासी दूध लगने से शरीर में ज्वार पड़ जाते हैं ।

चून—संज्ञा पुं० [हि० चूना] दे० 'चूना' । उ०—मूढ़ काम समझें नहीं मोह जाया लेवे । चून चुगावे कोयली, अपना कर लेवे ।—हरिया० बानी०, पृ० १ ।

चूनर, चूनरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चुनरी' ।

चूना—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] एक प्रकार का तीक्ष्ण क्षार भस्म जो पत्थर, कंकड़, मिट्टी, सीप, शंख या मोती आदि पदार्थों को लवणों में फूँककर बनाया जाता है ।

विशेष—पुरत फूँककर तैयार किए हुए चूने को कसी या बिना बुझा हुआ चूना कहते हैं । यह ठोके या उसी स्वरूप में होता है जिसमें उसका मूल पदार्थ फूँके जाने से पहले रहता है । कंकड़ का बिना बुझा चूना 'बरी' कहलाता है । बिना बुझा बना हुआ लगने से अपनी शक्ति और गुण के अनुसार पुरत या कुछ समय में चूर्ण के रूप में हो जाता है और उसकी शक्ति और गुण में कमी होने लगती है । पर पानी के संयोग से बिना बुझे चूने की यह दशा बहुत जल्दी हो जाती है । उस अवस्था में उसे 'मरका' या बुझा हुआ चूना कहते हैं । बिना बुझे चूने पर जब पानी डाला जाता है, तब पहले तो वह पानी को खूब सोखता है, पर थोड़ी ही देर बाद उसमें से बुलबुले निकलने लगते हैं और बहुत तेज गरमी निकलती है । तेज चूने

के संयोग से शरीर चरनि लगता है और उसमें कभी कभी ज्वार तक पड़ जाते हैं । पत्थर का चूना बहुत तेज होता है और मकान की दीवारों पर सफेदी करने, खेत में खाद की तरह डालने, छोट छोट छापने, पान के साथ लगाकर खाने और बवालों आदि के काम में आता है । कंकड़ का चूना भी प्रायः इन्हीं कामों में आता है; पर इसका सबसे अधिक उपयोग इमारत के काम में, ईंट पत्थर आदि जोड़ने और दीवारों पर पलस्तर करने के लिये होता है । शंख, सीप और मोती आदि का चूना प्रायः खाने और औषध के काम में ही आता है ।

मुहा०—चूना काटना = चुननी होना । चूना छूना या फेरना = चूने को पानी में घोलकर दीवारों पर सफेदी करने के लिये पोतना । दीवारों पर चूने की सफेदी करना । चूना लगाना = खूब धोखा देना, हानि पहुँचाना या दिक् करना । बहुत लज्जित करना ।

यौ०—चूनाबानी । चुनीटी ।

चूना—क्रि० प्र० [सं० चयन] १. पानी या किसी दूसरे द्रव पदार्थ का किसी छेद या छोटी दरज में से बूँद बूँद होकर नीचे गिरना । टपकना । जैसे,—छत में से पानी चूना, लोटे में से दूध चूना, गींग कपड़े से पानी चूना आदि ।

संयो० क्रि०—जाना ।—पड़ना ।

२. किसी चीज का, विशेषतः फल आदि का, प्रधानतः ऊपर से नीचे गिरना । जैसे, आम चूना, महुआ चूना । १. किसी चीज में ऐसा छेद या दरज हो जाना जिसमें से होकर कोई द्रव पदार्थ बूँद बूँद गिरे । जैसे, छत चूना, लोटा चूना, पीपा चूना आदि । ४. गर्भपात होना । गर्भ गिरना । (क०) उ०—दिक् पालन की, भुव पालन की, लोक पालन की किन बातें गईं ज्यै ।—केशव (शब्द०) ।

चूना—वि० [हि० चूना (क्रि० प्र०)] चुनना जिसमें किसी चीज के चूने योग्य छेद या दरज हो । जैसे,—चूना चढ़ा, चूना घर ।

चूनाबानी—संज्ञा स्त्री० [हि० चूना + का० दान] वह छोटी बिबिया या इसी प्रकार का कोई पात्र जिसमें पान या सुरती के साथ खाने लिये चूना रखा जाता है । चुनीटी ।

चूनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्णिका] १. भस्म का छोटा टुकड़ा । भस्मकण ।

यौ०—चूनी भूखी = मोटे भस्म का पीसा हुआ चूर्ण या चोकर आदि ।

२. रत्नकण । चुन्नी । दे० 'चुन्नी' ।

चूनेदानी—संज्ञा स्त्री० [हि० चूनादानी] दे० 'चूनादानी' ।

चूप—संज्ञा स्त्री० [हि० चोप] दे० 'चोप' । उ०—अवन शब्द को प्रहृत हैं नयन प्रहृत हैं रूप । गंध प्रहृत है नासिका रसना रस की चूप ।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० ५० ।

चूपकी—संज्ञा स्त्री० [हि० चुपड़ना] वी चुपड़ी हुई रोटी । किसी चिकनी वस्तु का लेप की हुई वस्तु । उ०—रूखा सूखा खाह के, ठंडा पानी पीव । देखि बिरानी चूपड़ी, मठ मलपाने बीव ।—संतबाणी०, पृ० ६२ ।

चूमचाम—संज्ञा स्त्री० [हि० चूमा से विवृद्ध स्वर द्वित्त] चूम्ना । सहजाना । प्यार दिखाना । उ०—यु मत तू प्रणय गान बिसके उसके बिसान । मादक, मोहक, मलीन चूमचाम की सुभाष । कर न मुझे बाहकील, एक गीत, एक गीत ।—हिम०, पृ० ६० ।

चूमना^१—क्रि० सं० [सं० चुम्बन] प्रेम के भावेन में धक्का यों ही होतों से (किसी दूसरे के) गाल आदि धंगों को धक्का किसी और पदार्थ को स्पर्श करना, चूसना या दबाना । चुंभा लेना । बोसा लेना ।

मुहा०—चूमकर छोड़ देना=किसी भारी कार्य को आरंभ करके या किसी वस्तु को छूकर बिना उसका पूरा उपयोग किए छोड़ देना । चूमना चाटना=प्यार करना । चूमना ।

विशेष—किसी किसी देश में आदर या सम्मान के लिये भी बड़ों के हाथ आदि धंगों को चूमते हैं ।

चूमना^२—संज्ञा पुं० हिंदुओं में विवाह की एक रस्म जिसमें घर की धँजुली में बावल और जो घरकर पाँच सोहाबिनी स्त्रियाँ मंगल धीत गाती हुई घर के माथे, कंधे और घुटने आदि पाँच धंगों को हरी दूब से छूती और तब उस दूब को चूमकर फेंक देती हैं ।

चूमनि^३—संज्ञा स्त्री० [हि० चूमना] चूमने का कार्य । चुंबन । उ०—चुबनि, चुवाबनि, चाटनि चूमनि । नहीं कहि परति प्रेम की घुरनि नंब० धं०, पृ० २६६ ।

चूमा—संज्ञा पुं० [सं० चुम्बन, हि० चूमना] चूमने की क्रिया । चुंबन । चूम्मा । मिट्टी ।

क्रि० प्र०—देना—लेना ।

धौ०—चूमाचाटी ।

चूमाचाटी—संज्ञा पुं० [हि० चूमना + चाटना] चूमने और चाटने का काम । चूम और चाटकर प्रेम प्रकट करने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना—होना ।

चूर—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] १. किसी पदार्थ के बहुत छोटे छोटे टुकड़े जो उस पदार्थ को खूब तोड़ने, कूटने आदि से बनते हैं ।

मुहा०—चूर करना या चूरचूर करना=किसी पदार्थ को तोड़ फोड़ कर उसके बहुत छोटे छोटे टुकड़े करना ।

२. किसी पदार्थ के वे बहुत सहीन कण जो इस पदार्थ को रेती से रेतने धक्का धारी से धोरने आदि से निकलते हैं । दुरादा । चूर ।

धौ०—चूरचार=बहुत छोटा या भारीक टुकड़ा ।

चूर^२—वि० १. (किसी कार्य आदि में) तन्मय । निमग्न । तल्लीन । जैसे—काम में चूर, खेल में चूर । २. जिसपर नशे का बहुत अधिक प्रभाव हो । नशे में बहुत मग्न । जैसे,—भाग में चूर, शराब में चूर, गजि में चूर ।

चूर^३—संज्ञा स्त्री० [हि० चूर्ण] दे० 'चूर्ण' ।

चूरण^४—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] दे० 'चूर्ण' ।

चूरण^५—वि० दे० 'चूर्ण' ।

चूरन—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] १. दे० 'चूर्ण' । २. बहुत सहीन पीसी हुई पाचक औषधों का चूर्ण ।

चूरनहार—संज्ञा पुं० [सं० चूर्णहार] एक प्रकार की जंगली बेज जिसके पत्ते बहुत लंबे, चिकने और कुछ मोटे होते हैं ।

विशेष—इसमें मीठी गंधवाले छोटे छोटे फूल भी लगते हैं । इसकी जड़, पत्तियों और छाल आदि का व्यवहार औषधों में होता है । वैद्यक में इसे कसेला, गरम, मिदोषनाशक, शिरविकार को दूर करनेवाला और कुमिनाशक माना है । कहते हैं, विषम ज्वर की यह बहुत अच्छी दवा है ।

चूरना^६—क्रि० सं० [सं० चूर्णन] १. चूर करना । टुकड़े टुकड़े करना । २. तोड़ना । तोड़ डालना । उ०—(क) बहुरंग कोरि जीब यों मिल्यो धुलोक जाइ । गेह चूरि ज्यों बकोर चंद्रमें मिलै ऊढाय ।—केशव (शब्द०) । (ख) बाँधि गा सुबा करत सुख कैली । चूरि पीछ मेलेसि बरि डेली ।—जायसी (शब्द०) ।

चूरमा—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] रोखी या पूरी को चूर चूर करके भी में घुना हुआ और चीनी मिलाया हुआ एक खाद्य पदार्थ । बहुधा यह बाजरे का बनता है ।

चूरमूर^७—संज्ञा पुं० [देश०] वे खूँडियाँ जो जी या गेहूँ के कट जाने पर खेत में रह जाती हैं ।

चूरमूर^८—नष्ट । टूटा हुआ । तोड़ा हुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना । उ०—धीरेन की सुधि सहज भुलावत हिय हुलसावत । सब जगचिता चूरमूर करि चूर बहावत ।—प्रेमचन०, भा० १, पृ० ३ ।

चूरा^९—संज्ञा पुं० [सं० चूर्ण] किसी वस्तु का पीसा हुआ भाग । चूर्ण । चुराहा । वि० दे० 'चूर' ।

चूरा^{१०}—संज्ञा पुं० [हि० चूड़ा] दे० 'चिउड़ा' ।

चूरामणि^{११}—संज्ञा स्त्री० [सं० चूडामणि] दे० 'चूडामणि' ।

चूरामनि—संज्ञा स्त्री० [हि० चूडामणि] १. श्लेष्ठ । शिरोमणि । उ०—बिषु वहन बकोर चार चतुर चूरामनि चरचित चरन ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८८ । २. दे० 'चूडामणि' ।

चूरी^{१२}—संज्ञा स्त्री० [हि० चूड़ी] दे० 'चूड़ी' ।

धौ०—चूरीगर=चूड़ी बनानेवाला । मनिहार । उ०—दूक, दूक चूरीगर लोन्हा । बरिया करम आँख पुनि दीन्हा ।—घट० पृ० २२३ ।

चूरी^{१३}—संज्ञा स्त्री० [सं० चूर्ण] १. चूर । चूरा । २. चूरमा ।

चूरु—संज्ञा पुं० [हि० चूर] एक प्रकार की चरस जो गजि के मादा पेड़ों से निकलती और कुछ निकृष्ट समझी जाती है

चूर्ण^{१४}—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूखा पीसा हुआ धक्का बहुत ही छोटे छोटे टुकड़ों में किया हुआ पदार्थ । सफूफ । चुकनी । २. कई पाचक औषधों का भारीक पीसा हुआ सफूफ । ३. मबीर । ४. धूल । गर्द । ५. चूना । ६. कोड़ी । कपर्दक । ७. आटा । पिसान (को०) । ८. गंधद्रव्य का चूर्ण (को०) ।

चूर्ण^{१५}—वि० १. जो किसी प्रकार तोड़ा फोड़ा या नष्ट भ्रष्ट किया गया हो । जैसे,—गर्द चूर्ण करना । २. चूर्ण किया हुआ । चाँदी, सोना आदि का किया हुआ चूर [को०] ।

चूल्हा—संज्ञा पुं० [सं०] १. सलू। सलुषा। २. वह मछ जिसमें छोटे छोटे मछ हों तथा सड़े समासवाले मछ और कठोर या मुठिकटु प्रकार न हों। ३. एक प्रकार का वृक्ष। भास्मली विशेष। ४. एक प्रकार का शालिषाम्य। ५. गंधद्रव्य का चूर्ण (को०)।

चूल्हाकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूर्ण करनेवाला। २. घाटा बेचने-वाला। ३. एक वस्त्रसंस्कार जाति।

विशेष—परास्तर के मत से यह नट जाति की स्त्री और पुद्गल जाति के पुरुष से उत्पन्न हुई थी।

चूल्हाकार—वि० १. चूर्ण करनेवाला। पीसनेवाला। २. चूना फूँकने-वाला (को०)।

चूर्णकुंठल—संज्ञा पुं० [सं० चूर्णकुन्तल] मलक। जुल्फ। लट।

चूर्णकुंठ—संज्ञा पुं० [सं० चूर्णकुन्तल] कंकड़।

चूर्णन—संज्ञा पुं० [सं०] चूर्ण करना (को०)।

चूर्णपारव—संज्ञा पुं० [सं०] शिवरफ।

चूर्णमुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुठ्ठी भर गंधद्रव्य का चूर्ण (को०)।

चूर्णयोग—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत से सुगंधित पदार्थों का मिश्रण।

चूर्णशाकिक—संज्ञा पुं० [सं० चूर्णशाकाकिक] गौरसुवर्ण नाम का साग जो बिजऊड में अधिकता से होता है। वि० २० 'गौरसुवर्ण'।

चूर्णहार—संज्ञा पुं० [सं०] चूर्णहार नाम की बेल।

चूर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मार्ग छंद का दसवाँ भेद जिसमें १८ गुण और २१ लघु होते हैं। २. तौल में ३२ रत्ती मोतियों की संख्या के हिसाब से भिन्न भिन्न लड़ियाँ।

चूर्णि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कोड़ी। कपदक।

चौ०—चूर्णिवासी—चकड़ी पीसनेवाली। पिसनहारी।

२. चूर्णन। चूर्ण करना या बनाना (को०)। ३. एक सौ कीड़ियों का समूह (को०)। ४. कार्षापण नामक प्राचीन सिक्का (को०)। ५. पाणिनि कृत अष्टाध्यायी के सूत्रों पर पतंजलि मुनि प्रणीत महाभाष्य (को०)।

चौ०—चूर्णकृत—महाभाष्यकार पतंजलि।

चूर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सलू। सलुषा। २. गव का एक भेद। ३० 'चूर्णक'। ३. प्रश्न की जानकारी के लिये उसका शाब्द या शब्दार्थ प्रादि देना।

चूर्णिकृत—संज्ञा पुं० [सं० चूर्णिकृत] महाभाष्यकार पतंजलि मुनि।

चूर्णित—वि० [सं०] १. चूर्ण किया हुआ। २. पीसा हुआ (को०)।

चूर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कार्षापण नामक पुराना सिक्का या कोड़ी। २. एक प्राचीन नदी का नाम। ३. पतंजलि प्रणीत व्याकरण का भाष्य।

चूर्णी—वि० [सं० चूर्णित] चूर्ण। मिलाया हुआ या चूर्ण से बनाया हुआ (को०)।

चूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जाना। समन करना (को०)।

चूर्मी—संज्ञा पुं० [हि० चूर्मा] २० 'चूर्मा'।

चूल्हा—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० चूल्हा] १. चोटी। शिखा। २. रीछ के बाल।—(कलंदरों की भाषा) ३. सिर के बाल (बंग०)। ४. सबसे ऊपर का कमरा (को०)।

चूल्हा—संज्ञा स्त्री० [देश०] किसी लकड़ी का वह पतला सिरा जो किसी दूसरी लकड़ी के छेद में उससे साथ जोड़ने के लिये ठोका जाय।

मुहा०—चूर्से ढीली होना—अधिक परिश्रम के कारण बहुत थकावट होना।

चूल्हा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धूँड़। वि० १० 'चूर्ण'।

चूल्हाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी की कनपटी। २. हाथी के काम का मूल। ३. खंभे का ऊपरी भाग। ४. किसी घटना या विषय की परोक्ष से सूचना।

चूलका—संज्ञा स्त्री० [सं० चूलिका] ३० 'चूलिका'। उ०—व्यवहार-सूत्र की चूलका में लिखा है कि पाँचवें काल में किसी मनुष्य की मुक्ति नहीं होगी।—कबीर मं०, पृ० २४६।

चूलवान—संज्ञा पुं० [सं० चूलि + आधान] १. बाबर्चीखाना। रसोई-घर। पाकशाला।—(लग०)। २. बैठने या चीजें धादि रखने के लिये सीढ़ीनुमा बना हुआ स्थान। गेलरी।—(लग०)।

चूल्हा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चोटी। शिखा। २. सबसे ऊपर का कमरा। चट्टाला (को०)।

चूलिक—संज्ञा पुं० [सं०] लूची नामक पक्वान्न। मैदे की पतली पूगी। लुचुई।

चूलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चूलक। २. नाटक का एक अंग जिसमें नेपथ्य से किसी घटना के हो जाने का सूचना दी जाती है।

विशेष—संस्कृत साहित्य के नियमानुसार रंगशाला पर मुख या धुर्यु आदि का दृश्य दिखलाना निषिद्ध है; इसलिये उसकी सूचना नेपथ्य से हो जाया करती है। संस्कृत के नाटककार भवभूतिकृत वीरचरित नाटक में इस प्रकार की एक चूलिका है। उसमें नेपथ्य से कहा जाता है—'राम ने परशुराम पर विजय पा ली है; अतः हे विमान पर बैठनेवालो, आप लोग मंगलगीत प्रारंभ करें।

३. मुँगे की कलेंगी (को०)। ४. हाथी की कनपटी या कर्णमूल (को०)। ५. धनुष का सिरा या ऊपरी भाग (को०)।

चूलिकोपनिषद्—संज्ञा स्त्री० [सं० चूलि] प्रयववेदीय एक उपनिषद् का नाम।

चूली—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष। उ०—छेतों का सबसे बड़ा भूभाग जंगलों से प्रत्यक्ष है, और वहाँ चूली, बेमो, अक्षरोट के अतिरिक्त दूसरी तरह के वृक्ष नहीं हैं।—कल्लर०, पृ० ६५।

चूल्हा—संज्ञा पुं० [सं० चूलि] प्रंगीठी की तरह का मिट्टी या लोहे आदि का बना हुआ पात्र जिसका आकार प्रायः बोड़े की नाल का सा या अर्धचंद्राकार होता है और जिसपर नीचे प्राण जलाकर, भोजन पकाया जाता है।

चौ०—चूल्हा—वह चूल्हा जिसपर एक साथ दो चीजें पकाई जा सकें।

मुहा०—चूल्हा जलना—भोजन बनना। जैसे,—आज उनके घर

चूल्हा नहीं जला। चूल्हा गीतना = घर के सब लोगों को निर्ममण देना। चूल्हा फूंकना = भोजन पकावा। चूल्हे में डालना = (१) नष्ट भष्ट करना। (२) दूर करना। चूल्हे में जाना = नष्ट भष्ट होना। अस्तित्व मिटना। चूल्हे में पड़ना = दे० 'चूल्हे में जाना'। (इन मुहावरों का प्रयोग कोष में या अत्यंत निरादर प्रकट करने के समय होता है। जैसे,—चूल्हे में जाय तुम्हारा समाधा। चूल्हे में डालो अपनी सीगात। चूल्हे से निकलकर भाड़ या मट्टी में पड़ना = छोटी विपत्ति से निकलकर बड़ी विपत्ति में फँसना।

चूषण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० चूषणीय, चूष्य] चूसने की क्रिया।

चूषणीय—वि० [सं०] चूसने योग्य। जो चूसा जाय।

चूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हाथी की कमर में बाँधी जानेवाली बड़ी पेटी या पट्टा। २. चूसने का कार्य या स्थिति (की०)। ३. पेटी या कमरबंद (की०)।

चूष्य—वि० [सं०] चूसने के योग्य। जो चूसा जाय या जो चूसा जा सके।

चूसना—क्रि० सं० [सं० चूषण] १. जीभ और होंठ के संयोग से किसी पदार्थ का रस खींच खींचकर पीना। जैसे,—घाम चूसना, गँबेरी चूसना। २. किसी चीज का सार भाग ले लेना। जैसे,—किसी स्त्री का पुसव को चूस लेना। किसी बदमाश का भले आदमी को चूसना अर्थात् उसका धन आदि अपहरण करना।

संयोग क्रि०—डालना।—लेना।

१. किसी वस्तु को चूस चूसकर समाप्त करना जैसे,—लेमनचूस का चूसना। ४. किसी वस्तु का मीलापन सोख लेना।

चूहड़ा—संज्ञा पुं० [हि० चूहड़ा] दे० 'चूहड़ा'।

चूहड़ी—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० चूहड़ी] १. भंगी या मेहतर। चाँदाख। शक्कल। २. निम्न प्रकार का या लफंगा व्यक्ति।

चूहरा^५—संज्ञा पुं० [हि० चूहड़ा] दे० 'चूहड़ा'।

चूहरा^५—संज्ञा पुं० [हि० चूहड़ा] दे० 'चूहड़ा'। उ०—जीम का फूहरा, पंथ का चूहरा। तेज तमा धरे आप खोवे।—कबीर दे०, पृ० ३२।

चूहरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चुरिहारिन] चूड़ी बेचने या पहनानेवाली स्त्री। चुरिहारिन।

चूहरी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] 'चूहड़ा' का स्त्री० रूप।

चूहा—संज्ञा पुं० [अनु० चू + हा (प्रत्यय०)] [स्त्री० अल्पा० चुहिया, चूही आदि] चार पैरोंवाला एक प्रसिद्ध छोटा जंतु जो प्रायः घरों या खेतों में बिल बनाकर रहता है। मूसा। मूषक।

विशेष—यह समस्त एशिया, युरोप और अफ्रिका में पाया जाता है और इसकी छोटी बड़ी अनेक जातियाँ होती हैं। साधारणतः भारतीय चूहों का रंग कालापन लिए लाली होता है, पर नीचे के भाग में कुछ सफेदी भी होती है। इसके दाँत बहुत तेज होते हैं और यह खाने पीने की चीजों के सिवा कपड़ों और दूसरी चीजों को भी काटकर बहुत हानि पहुँचाता है। कभी कभी यह मनुष्यों को भी काटता है। इसके काटने से एक

प्रकार का हुल्ला मच जाता है। किसी किसी जाति के चूहे बहुत लड़ाके होते हैं और आपस में खूब लड़ते हैं। इसकी भावा एक साथ कई बच्चे देती है। इस देश में बिलायस से मिलते जुलते एक प्रकार के सफेद चूहे भी पाते हैं जिन्हें बिलायसी चूहा कहते हैं। इनके एक जोड़े से बढ़कर एक साल के अंदर कई सौ चूहे हो जाते हैं। इस जाति के चूहे प्रायः अपने बच्चे को अन्नसे ही या कुछ दिनों के अंदर खा जाते हैं। साधारणतः चूहे प्रायः कुत्तों और विशेषतः बिलियों के शिकार हो जाते हैं।

चूहादंती^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चूहा + दंती] स्त्रियों के पहनने की एक प्रकार की पहुवी जो बाँधी या सोने की बनती है।

विशेष—इसके दाने चूहे के दाँत से लंबे और मुकीले होते हैं और रेशम या सुत में पिरोए रहते हैं।

चूहादंती^२—वि० चूहे के दाँत के आकार का।

चूहादान—संज्ञा पुं० [हि० चूहा + दान] [स्त्री० चूहादानी] चूहों को फँसाने का एक प्रकार का पिजड़ा। चूहेदानी।

चूही—संज्ञा स्त्री० [हि० चूहिया] दे० 'चूहिया'। उ०—कोन कुपुडि लगी यह तोकों होत सिंह तै चूही।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ८३६।

चूहेदानी—संज्ञा स्त्री० [हि० चूहादानी] दे० 'चूहादान'।

चेंज—संज्ञा पुं० [अंग०] १. (एक स्थान से दूसरे स्थान को) वायु-परिवर्तन के लिये जाना। वायुपरिवर्तन। हवा बदलना। जैसे,—बाफ्टरों की खलाह से वे चेंज में गए हैं। २. (किसी जंकशन पर) एक गाड़ी से उतरकर दूसरी पर चढ़ना। बदलना। जैसे,—मुगलसराय में चेंज करना पड़ेगा। ३. बड़े सिक्कों का छोटे सिक्कों में बदलना। विनिमय। जैसे,—(क) आपके पास नोट का चेंज होगा? (ख) टिकट बाबू को नोट दिया है, चेंज ले लें तो चखता हूँ।

चें—संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिड़ियों के बोलने का शब्द। चें चें।

मुहा०—चें बोलना = दे० 'ची' के मुहा० में 'ची बोलना'।

चेंगड़ा^१—संज्ञा पुं० [अनु०] [स्त्री० चेंगड़ी] छोटा बच्चा। बालक।

चेंगना—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'चेंगड़ा'।

चेंगा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चेंगड़ा'।

चेंगा^२—संज्ञा स्त्री० [हि० चेंगना] दे० 'चेंगना'।

चेंगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] चमड़े की चकती अथवा सन या सुतली का धेरा जिसे पैजनी और पहिए के बीच में इसलिये पहना देते हैं कि जिसमें दोनों एक दूसरे से रगड़ न लायें।

चेंघो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चेंगी] दे० 'चेंगी'।

चेंच—संज्ञा पुं० [सं० चञ्च] एक प्रकार का साग जो बरसात में बहुत उगता है।

विशेष—इसमें पीले फूल और फलियाँ लगती हैं। इसकी पत्तियाँ सुपाबवार होती हैं।

बैर—वि० [बै बै से अनु०] बै बै करनेवाला । बक बक करके-
वाला । बकवादी । बकबी ।

बैरियाना—क्रि० प्र० [अनु० या हि० बैरियाना] १०
'बैरियाना' उ०—बैरियाकर महाराजिन ने सचेत किया ।—
भस्मावृत०, पृ० ६३ ।

बैरुआ—संज्ञा पु० [बै बै से अनु०] घातक का बच्चा ।

बैरुआ—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का पशुमान ।

बैरुआ—इसके बनाने में पहले सूँधे हुए आटे या मैदे की पूरी की
तरह पतला बेलकर गोलते और चौखुँटा बनाकर कुछ दबा
देते हैं और तब घी आदि में तल लेते हैं ।

बै बै—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. बैरियों के बोलने का शब्द । बीं बीं ।
२. व्यर्थ की बकवाद । बकबक ।

क्रि० प्र०—करना ।—सचना ।—होना ।

बैर—संज्ञा पु० [प्र०] वह बड़ा कमरा जिसमें किसी विषय की
मंत्रणा हो । सभागृह ।

बैर आफ कामर्स—संज्ञा पु० [प्र० बैर ऑफ कामर्स] किसी नगर
के प्रधान व्यापारियों की वह सभा जिसका संघटन उन व्यापा-
रियों के व्यापार संबंधी स्वत्वों की रखा के लिये हुआ हो ।

बै दियारो—संज्ञा स्त्री० [देश०] प्रबलक रंग का एक प्रकार का वृक्ष
जहाँ जलपसी ।

बैरो—इसके पैर प्रायः हाथ भर लंबे और चौथे एक बालित्त
की होती है । इसके तिर पर बाल या पर नहीं होते । इसका
मांस स्वादिष्ट होता है और इसी लिये इसका शिकार किया
जाता है ।

बैटी—संज्ञा स्त्री० [हि० बीटी] १० 'बैटी' ।

बैटुआ—संज्ञा पु० [हि० बैटुआ] बैटुआ का बच्चा । उ०—
घंड़ फोरि करघो बैटुआ तुष परघो बीर निहारि । गहि बगुल
• जातिक अतुर बारघो बाहिर बारि ।—हुलसी (शब्द०) ।

बैटुआ—संज्ञा पु० [हि० बैटुआ] १० 'बैटुआ' ।

बैथरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] मस्तक का सबसे ऊपरी भाग । उ०—
अकल बैथरी में चढ़ गई सो अब उन्हें कछु सुमत्त नह्यो ।—
झासी०, पृ० १११ ।

बैथो—संज्ञा स्त्री० [हि० बैथी] १० 'बैथी' ।

बै पै—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. वह धीमा शब्द या कार्य जो किसी बड़े
के सामने किसी प्रकार का विरोध प्रकट करने के लिये किया
जाय । बीं चपड़ । २. व्यर्थ की बकवाद । बकबक ।

बैफा—संज्ञा पु० [देश०] ऊल का छिलका ।

बैर—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. बैठने की कुर्सी ।

यौ०—ईजी बैर = पाराम फुरसी ।

२. किसी विश्वविद्यालय में किसी विषय के पढ़ाने के लिये किसी
महान् व्यक्ति के नाम पर स्थापित की हुई व्यवस्था । जैसे,—
इतिहास की बड़ीदा बैर, कानून की डैंगोर बैर । ३. अध्यक्ष
के पद पर बैठा हुआ व्यक्ति । जैसे,—बैर का प्रस्ताव ।

बैरमैन—संज्ञा पु० [प्र०] किसी सभा या बैठक का प्रधान ।
सभापति । अध्यक्ष ।

बैरती—संज्ञा पु० [हि० बैरती (= रस्ती)] कुम्हार का वह घोरा
जिसके द्वारा चाक पर तैयार किया हुआ बरतन जैसे मिट्टी के
काटकर घलत किया और उतारा जाता है ।

बैक—संज्ञा पु० [प्र०] १. वह स्क्वा या आज्ञापन जो किसी बैंक
आदि के नाम लिखा गया हो और जिसके देने पर वहाँ से उस-
पर लिखी हुई रकम मिल जाय । एक प्रकार की हुंसी ।

बैरो—साधारणतः बैंकों का एक निश्चित स्वरूप हुआ करता
है । किसी बैंक के नाम बैक लिखने का अधिकार उसी को
होता है जिसका रुपया बैंक में जमा हो ।

मुद्रा—बैक काटना = बैक लिखकर (बैक बुक में से घलत कर
या उसमें से काटकर) देना ।

यौ०—बैक बुक = बहुत से सादे बैंकों को सीकर बनाई हुई
किताब ।

२. बहुत सी सीधी रेखाओं पर आड़ी सीधी हुई रेखाएँ जिनसे
बहुत से चौकोर खाने बन जाय । चारखाना । ३. एक प्रकार
का चारखाने का कपड़ा ।

बैकित—संज्ञा पु० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

बैकित—वि० बहुत बड़ा जानी ।

बैकितान—संज्ञा पु० [सं०] १. महादेव । शिव । २. केकय देश के
राजा धृष्टकेतु के पुत्र का नाम जिसने महाभारत के युद्ध में
पांडवों की सहायता की थी ।

बैकितान—वि० बहुत बड़ा जानी ।

बैचक—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] शीतला या माता नामक रोग ।

बैचकरू—संज्ञा पु० [फ्रा०] वह जिसके मुँह पर शीतला के दाग हों ।

बैजा—संज्ञा पु० [हि० छेव ?] सूरस । छेव । छिद्र । उ०—
आखिरी रतनालिया बैजा करे पताल । मैं तोहि बूझीं माछनी
तूँ क्यों बंधी जाल ।—कबीर (शब्द०) ।

बैजारा—संज्ञा पु० [देश०] दीवाल उठानेवाला । दीवाल की चुनाई
करनेवाला । स्पष्ट । यवई । राजगीर । उ०—कबीर मंदिर
बहि पढ़्या सेंट भई सेवार । कोई बैजारा बलि गया, मिल्या
न हुआ बार ।—कबीर प्र०, पृ० २२ ।

बैट—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० बैटी या बैटिका] १. दास । सेवक ।
नोकर । २. पति । साविध । ३. नायक और नायिका को
मिलानेवाला प्रवीण पुरुष । मंजूवा । ४. एक प्रकार की
मछली । ५. भाई ।

बैटक—संज्ञा पु० [सं०] १. सेवक । दास । नोकर । २. चटक मटक ।
३. दूत । ४. जल्दी । फुरती । ५. चाट । चसका । मजा ।

क्रि० प्र०—सगना ।

१. उपपति । चार (को०) ।

बैटक—संज्ञा पु० [हि०] १. जादू या इंद्रजाल विद्या । नजरबंद
का तमाशा । उ०—कोऊ न काहू की कामि करे, कछु
बैटक सो जु करघो जुदुरया ।—ब्रज०, पृ० १५० ।

२. भाई का तमाशा । कीतुक । उ०—(क) कतहें नाह
शब्द हो भूला । कतहें नाटक बैटक कला ।—जायसी

(शब्द०) । (क) नट ज्यों जिन पेट कुपेट कुकोटिक चेटक कोटिक ठाट ठडपो ।—तुलसी (शब्द०) ।

चेटकनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चेटक] 'चेटक' का स्त्री० रूप ।

चेटका—संज्ञा स्त्री० [सं० चिता] १. मुरदा जलाने की चिता । २. शमशान । मरघट । उ०—जरे जूह नारी बड़ी चित्रसारी । मनो चेटका में सती सत्यपारो ।—केशव (शब्द०) ।

चेटकी—संज्ञा पुं० [हि० चेटक] १. इंद्रजाली । जादूगर । उ०—किसवी किसान कुल बनिक, मिसारी, माट चाकर बपल नट, चोर, चार चेटकी ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२० । २. अनेक प्रकार के कौतुक करनेवाला । कौतुकी । उ०—परम गुरु रतिनाथ हाथे सिर दियो प्रेम उपदेश । चतुर चेटकी मथुरानाथ सो कहियो आय आदेश ।—सूर (शब्द०) ।

चेटवा—संज्ञा पुं० [हि० चेटुवा] दे० 'चेटुवा' ।

चेटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवा करनेवाली स्त्री । दासी ।

चेटिकी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० चेटिका] दे० 'चेटिका' ।

चेटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी । लोधी ।

चेटुका—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चेटुका' ।

चेटुका^१—संज्ञा पुं० [हि० चेटुक] दे० 'चेटुवा' । उ०—छलल पच्छ के चेटुका, वाको कोन कहौ उपदेश । उलटि मिले परिवार में, बासे कोन कहै संदेश ।—पलटू०, भा० ३, पृ० ५१ ।

चेटुवा—संज्ञा पुं० [हि० चिट्टिया] चिट्टिया का बच्चा । उ०—देव मुटु निनद विनोद मदनालै रब रटत समोद चारु चेटुवा चटक के ।—देव (शब्द०) ।

चेड—संज्ञा पुं० [सं० चेड] दे० 'चेटक' [को०] ।

चेडक—संज्ञा पुं० [सं० चेडक] दे० 'चेटक' ।

चेडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० चेडिका] दे० 'चेटिका' [को०] ।

चेडी—संज्ञा स्त्री० [सं० चेडी] दे० 'चेटी' [को०] ।

चेतर्ता—वि० [हि०] १. सावधान । चौकन्ना । २. चेतन । सचेत ।

चेत्—अव्य० [सं०] १. यदि । अगर । २. कालिदास । कदाचित् ।

चेत—संज्ञा पुं० [सं० चेतस्] १. चित्त की वृत्ति । चेतना । संज्ञा । होश । २. ज्ञान । बोध । उ०—मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहि विरंचि सम ।—तुलसी (शब्द०) । ३. सावधानी । चौकसी । ४. खयाल । स्मरण । सुष ।

क्रि० प्र०—करना ।—कराना ।—दिलाना ।—धराना ।—रखना ।—पढ़ना ।—होना ।

५. चित्त । मन ।

चेतक^१—संज्ञा पुं० [सं० चेतकी] हरे । उ०—धमया, पय्या, अव्यया, अमृता, चेतक होइ ।—नंद० ग्रं०, पृ० १०४ ।

चेतक^२—संज्ञा पुं० महाराणा प्रताप का प्रसिद्ध ऐतिहासिक घोड़ा ।

चेतक^३—वि० [सं०] १. सचेत करनेवाला । २. चेतन [को०] ।

चेतक^४—वि० [सं० चेटक] जादूगरी । उ०—घात लै झपूठी बरे चेतक चितौन मूठी, धूँधरि चिलक चौंघ चौंघ चौंघ सौं टिके ।—बनारस०, पृ० ४४ ।

चेतकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हरीतकी । साधारण हड़ । २. सात प्रकार की हड़ों में से एक विशेष प्रकार की हड़ जिसपर तीन बारियाँ होती हैं ।

बिरोध—यह हड़ दो प्रकार की होती है । एक सफेद और बड़ी जो प्रायः पाँच छह अंगुल लंबी होती है; और दूसरी काली और छोटी जो प्रायः एक अंगुल लंबी होती है । भावप्रकाश के अनुसार पहले प्रकार की हड़ के पेड़ के नीचे जाने से भी पशुओं और पक्षियों तक को दस्त हो जाता है । आजकल के बहुत से देशी बिक्रितकों का विश्वास है कि इस प्रकार की हड़ को हाथ में लेने या सूँघने से दस्त हो जाता है; पर इस जाति की हड़ अब कहीं नहीं मिलती ।

३. चमेली का पौधा । ४. एक रागिनी का नाम जिसे कुछ लोग ओ राग की प्रिया मानते हैं ।

चेतना—संज्ञा स्त्री० [हि० चेत + त (प्रत्य०)] दे० 'चेतना' ।

चेतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. आत्मा । जीव । २. मनुष्य । आदमी । ३. प्राणी । जीवधारी । ४. परमेश्वर ।

यौ०—चेतन मन = मन का वह स्तर या भाग जिसमें विचारों के प्रति मन उद्यत रहता है ।

चेतनकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरीतकी । हड़ ।

चेतनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] चेतन का धर्म । चैतन्य । सज्जानता ।

चेतनत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चेतनता' ।

चेतना^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धि । २. मनोवृत्ति । ३. ज्ञानात्मक मनोवृत्ति । ४. स्मृति । सुधि । याद । ५. चेतनता । चैतन्य । संज्ञा । होश ।

चेतना^२—क्रि० अ० [हि० चेत + ना (प्रत्य०)] १. संज्ञा में होना । होश में आना । २. सावधान होना । चौकस होना । उ०—यह तन हरियर चेत, तछनी हरिनी चर गई । अजहँ चेत अचेत, यह अचंचरा बचाइ लै ।—सम्भन (शब्द०) ।

चेतना^३—क्रि० सं० [सं० चिन्तन] विचारना । समझना । ध्यान देना । सोचना । जैसे,—धर्म चेतना, आगम चेतना, जला चेतना, बुरा चेतना ।

चेतनीय—वि० [सं०] १. जो चेतन करने योग्य हो । २. जानने योग्य । ज्ञान करने योग्य ।

चेतनीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋद्धि नामक लता ।

चेतन्य—वि० [सं० चैतन्य] दे० 'चैतन्य' ।

चेतवनि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चैतावनी] दे० 'चैतावनी' ।

चेतवनि^२—संज्ञा स्त्री० [हि० चितवन] दे० 'चितवन' ।

चेतव्य—वि० [सं०] जो चयन (संग्रह) करने योग्य हो । इकट्ठा करने लायक । संग्रह योग्य ।

चेता^१—संज्ञा पुं० [सं० चित्] १. संज्ञा । होश । बुद्धि । २. स्मृति । याद ।—(पश्चिम) ।

मुहा०—चेता भूलना = याद न रहना । स्मरण न रहना ।

चेता^२—वि० [सं० चेतस्] चेतनावाला ।

बिरोध—समस्त पदों के अंत में ही इसका प्रयोग मिलता है । जैसे, धर्मचेता ।

चेताना—क्रि० सं० [हि० चेत या चेतना] १. मूली बात याद दिलाता । २. ज्ञानोपदेश करना । ३. चेतानवी देना । ४. जलाना या सुलगाना (पूर्व) । जैसे, भाग या चूल्हा चेताना । ५. धमकी देना ।

चेतानवी—संज्ञा स्त्री० [हि० चेतना] वह बात जो किसी को होशियार करने के लिये कही जाय । सतर्क होने की सूचना ।

क्रि० प्र०—चेना ।—मिलना ।

चेतिका ①—संज्ञा स्त्री० [सं० चिति] मुरदा जलाने की चिता । सरा । उ०—चेतिका कड़ुआ रची, सब छाँड़ि और उपाइ । क्यों जियों जननी बिना, मरिहूँ मिलै जो छाइ ।—केशव (शब्द०) ।

चेतुरा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिट्ठिया जो संसार के सब भाषों में पाई जाती है ।

विशेष—इसके नर और मादा के रंग में भेद होता । यह पेड़ों पर कटोरे के आकार का घोंसला बनाती है ।

चेतुवा ②—वि० [हि० चेत + उवा (प्रत्य०)] चेतनेवाला । उ०—जात सबन कहैं देखिया, कहहि कबीर पुकार । चेतुवा है तो चेतहु, विवस परतु है बार ।—कबीर जी०, पृ० १६६ ।

चेतोजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० चेतोजन्मन्] कामदेव ।

चेतोभष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चेतोजन्मा' (को०) ।

चेतोभू—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव (को०) ।

चेतोबिकार—संज्ञा पुं० [सं०] चित संबंधी विकार (को०) ।

चेतोहर—वि० [सं०] चेतना का हरण करनेवाला (को०) ।

चेतौनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चेतानवी] दे० 'चेतानवी' ।

चेत्य—वि० [सं०] १. जो जानने योग्य हो । ज्ञातव्य । २. जो स्तुति करने योग्य हो ।

चेदि—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश का नाम ।

विशेष—यह किसी समय शुक्तिमती नदी के पास था । महाभारत का शिशुपाल इसी देश का राजा था । वर्तमान बुंदेलखंड का बखेरी नगर इसी प्राचीन देश की सीमा के अंतर्गत है । इस देश का नाम नैपुर और चेद भी है ।

२. इस देश का राजा । ३. इस देश का निवासी । ४. कौशिक मुनि के पुत्र का नाम ।

चेदिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चेदि' ।

चेदिपति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चेदिराज' ।

चेदिराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिशुपाल नामक राजा जिसका वध श्रीकृष्ण ने किया था । २. एक वसु का नाम जिन्हें इंद्र से एक विमान मिला था और जो पृथ्वी पर नहीं चलते थे, ऊपर ही ऊपर आकाश में भ्रमण करते थे । इनका दूसरा नाम उपरिचर भी था ।

चेन^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत सी छोटी छोटी कड़ियों को एक में गुथकर बनाई हुई मृत्तिका । सिकड़ी । बजीर । जैसे,—रेलगाड़ी के दो छिन्नों को जोड़ने की चैन, बड़ी में लगाने की चैन ।

चेन^२—संज्ञा पुं० [हि० चैन] दे० 'चैन' । उ०—चिन रात्रि सेवा बिनु चैन परत नहीं ।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ८१ ।

चेन^३—संज्ञा पुं० [सं० चणक, हि० चेना] दे० 'चेना' । उ०—बारह पानी चैन, नहीं तो लेन का देन ।—लोकोक्ति ।

चेनछा—संज्ञा स्त्री० [हि० चैनवा] दे० 'चैनवा' ।

चेनगा—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी मछली जो उत्तर तथा पश्चिम भारत की नदियों और बड़े बड़े तालाबों, विशेषतः ऐसी नदियों और तालाबों में जिनमें घास अधिक हो, पाई जाती है ।

विशेष—यह प्रायः एक बालिशव लंबी होती है और इसका सिर गिरई से कुछ बड़ा होता है । इसे प्रायः नीच जाति के और गरीब लोग खाते हैं । इसे चेंगा या चैनमा भी कहते हैं ।

चेनबर्गी—संज्ञा पुं० [हि० चेना] दे० 'चेना' ।

चेना^१—संज्ञा पुं० [सं० चणक] १. कँगनी या सार्वा की जाति का एक अन्न जो चैत, बैसाख में बोया या असाढ़ में काटा जाता है ।

विशेष—इसके दाने छोटे, गोल और बहुत सुंदर होते हैं । इसे पानी की बहुत आवश्यकता होती है, यहाँ तक कि काटने से तीन बार दिन पहले तक इसमें पानी दिया जाता है । इसी लिये खेतिहरों में एक मसल है—'बारह पानी चैन, नहीं तो लेन का देन ।' कहते हैं, इस देश में यह अन्न मिला या अरब से आया है । यह हिमालय में १०,००० फुट की ऊँचाई तक होता है । यह पानी या दूध में चावल की तरह पकाकर खाया जाता है और बहुत पीष्टिक समझा जाता है । सिमला के घासपास के लोग इसकी रोटियाँ भी बनाकर खाते हैं । पंजाब में इसकी खेती प्रायः बार के लिये ही होती है । वैद्यक में इसे शीतल, कसैला, शक्तिवर्धक और भारी माना है ।

२. चेंच नामक साग ।

चेना^२—संज्ञा पुं० [हि० चीना] दे० 'चीनी कपूर' ।

चेप^१—संज्ञा पुं० [हि० चिपचिप से अनु०] १. कोई गाढ़ा चिपचिपा या लसदार रस । जैसे,—घाम का चेप, सीतला का चेप । २. लास जो चिट्ठियों को फँसाने के लिये बाँस की लकड़ियों में लगाया जाता है । उ०—बनतन की निकसत लसत हँसत हँसत उत प्राय । दगलजम पहिलै गयो, चितबनि चेप लगाय ।—बिहारी (शब्द०) ।

चेप^२—संज्ञा पुं० [हि० चोप] चाव । उत्साह ।

चेप^३—संज्ञा पुं० [अनु०] डेला । मिट्टी का डेला । उ०—हमरे बचने जे तोहहि विराम । फेके लेखो चेप पवि पुनु ठाम ।—विद्यापति, पृ० ३०३ ।

चेपदार—वि० [हि० चेप+दा० बार (प्रत्य०)] जिसमें चेप या लस हो । चिपचिपा ।

चेपना—क्रि० सं० [हि० चेप से नामिक वातु] चिपकाना । सटाना ।

चेपांग—संज्ञा पुं० [देश०] नेपाल में रहनेवाली एक पहाड़ी जाति ।

चेबुत्ता—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी छाल चमड़ा सिन्धने और रंग बनाने में काम आती है ।

विशेष—यह ऊँचाई में ८० या १०० फुट तक होता है और समस्त भारत में पाया जाता है।

चेर^१—वि० [सं०] जो चयन करने योग्य हो। जो संग्रह करने योग्य हो। चयनीय।

चेर^२—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं०] वह अग्नि जिसका विधानपूर्वक संस्कार हुआ हो।

चेर^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चेर'।

चेरमैन—संज्ञा पुं० [अंग०] दे० 'चेरमैन'।

चेरा^४—संज्ञा पुं० [सं० चेट या चेड] दास। सेवक। गुलाम।

चेरना—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की छेनी जिससे नकाशी करने वाले सीधी लकीर बनाते हैं।

चेरा^५—संज्ञा पुं० [सं० चेटक, प्रा० चेडय, चेडा] [स्त्री० चैरी] १. नौकर। दास। सेवक। गुलाम। उ०—करव बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहिके उर चेरा।—मानस, २। १३१। २. चेला। शिष्य। शिष्या। विद्यार्थी।

चेरा^६—संज्ञा पुं० [दे०] मोटे ऊन का बना हुआ। गलीचा।

चेराई^७—संज्ञा स्त्री० [हि० चैराई] दासत्व। सेवा। नौकरी। उ०—ऐसे करि मोकों तुम पायो मनो इनकी मैं करों चैराई। सूरग्राम दे दिन बिसराये जब बाँधे तुम ऊलल लाई।—सूर (शब्द०)।

चेरायता—संज्ञा पुं० [हि० चिरायता] दे० 'चिरायता'।

चेरि, चैरी^८—संज्ञा स्त्री० [सं० चेटि, या चेटि अथवा चेटो, चैरी] 'चेरा' का स्त्री रूप।

चेरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ग्राम। गाँव। २. तंतुवाय या बुनकरो की बस्ती या मुहल्ला [को०]।

चेरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० चेटिका, चेटिका, प्रा० चेटिया] दासी। जैसे—रानी की बात, चेरिया सुभाव नहीं जाता।

चेरु—वि० [सं०] जिसे संग्रह करने का अभ्यास हो। संग्रह करनेवाला।

चेरुआ—संज्ञा पुं० [दे०] एक जाति पदार्थ जो सतुषा सानकर पिठोरा की तरह बनाकर अथर्व में पकाने से तैयार होता है।

चेरुई—संज्ञा स्त्री० [दे०] बड़े के आकार का, पर उससे कुछ बड़ा एक प्रकार का मिट्टी का बरतन।

चेरु—संज्ञा स्त्री० [सं० सेव (अकड़नेवाले) अथवा दे०] एक जंगली जाति जिसके अनेक रीति रिवाज क्षत्रियों से प्रायः मिलते जुलते हैं।

विशेष—पाँच छह सौ वर्ष पहले भारत के अनेक स्थानों में इस जाति का बहुत जोर था, और अनेक प्रदेशों में इसका राज्य था। कहते हैं, यह नाग जाति के अंतर्गत है। बिहार के अनेक स्थानों में इस जाति के लोगों की बनवाई हुई बहुत सी पुरानी इमारतें हैं। आजकल इस जाति के लोग मिरजापुर जिले तथा दक्षिण भारत में पाए जाते हैं।

चेर^९—संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र। कपड़ा।

यौ०—चेलगंगा = महाभारत में वर्णित एक नदी जो गोकर्ण के समीप है। चेलबीरा = वस्त्र से फाड़ा हुआ टुकड़ा। चेलधावक, चेलनिर्णयक, चेलप्रक्षालक = धोबी।

चेर^{१०}—वि० अथवा। निकृष्ट।

विशेष—इसका अयोग समस्त पद के अंत में होता है। जैसे,—
मायचेल = अथवा या निकृष्ट पत्नी।

चेलक^१—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक मुनि का नाम।

चेलक^२—संज्ञा पुं० [हि० चेंगड़ा या हि० चेला] १. बालक। कुमार। शिशु। उ०—गोरि बटि हक चेलक बासं। देव सरूप कोटि रवि भासं।—पु० रा०, २४। ३२१। २. चेला। शिष्य।

चेलकाई^३—संज्ञा स्त्री० [हि० चेला] चेलहाई। चेलों का समूह। शिष्यवर्ग।

चेलकी^४—संज्ञा स्त्री० [हि० चेलक] दे० 'चेटिका' उ०—हास्मारक करे चेलकी। भोज चण्डी देसी तेंदबहोड़।—बी० रातो, पृ० २४।

चेलगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० चेलगङ्गा] एक प्राचीन नदी का नाम जो किसी समय गोकर्ण क्षेत्र (वर्तमान मालाबार) में बहती थी, और जिसका उल्लेख महाभारत में आया है।

चेलप्रक्षालक^५—वि० [सं०] कपड़ा धोनेवाला [को०]।

चेलप्रक्षालक^६—संज्ञा पुं० धोबी [को०]।

चेलबा^७—संज्ञा स्त्री० [हि० चेलुवा] दे० 'चेलुवा'।

चेलहाई^८—संज्ञा स्त्री० [हि० चेला + हाई (प्रत्य०)] चेलों का समूह। शिष्यवर्ग।

मुहा०—चेलहाई करना = भेंट और पूजा आदि संग्रह करने के लिये चेलों में घूमना।

चेला^९—संज्ञा पुं० [सं० चेटक, प्रा० चेडय, चेडा] [स्त्री० चेलिन, चेली] १. वह जिसने दीक्षा ली हो। वह जिसने कोई धार्मिक उप-देव ग्रहण किया हो। शिष्य।

क्रि० प्र०—करना।— बनना।— बनाना।— होना।

मुहा०—चेला मूँड़ना = चेला बनाना। शिष्य बनाना।

विशेष—संन्यासियों में दीक्षा के समय दीक्षित का चिर मूँड़ा जाता है; इसी से यह मुहावरा बना है।

२. वह जिसने शिक्षा ली हो। वह जिसने कोई विषय सीखा हो। शिष्य। विद्यार्थी। छात्र।

विशेष—दीक्षा या शिक्षा देनेवाले को गुरु और दीक्षा या शिक्षा लेनेवाले को उस (गुरु) का चेला कहते हैं।

यौ०—चेलाबाटो—चेलों का वर्ग या समूह।

चेला^{१०}—संज्ञा पुं० [दे०] १. एक प्रकार का साँप जो बंगाल में अधिकता से पाया जाता है। २. एक प्रकार की छोटी मछली। चेलहा।

चेलान^{११}—संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज की लता।

चेलान^{१२}—संज्ञा पुं० [हि० चेला + आन (प्रत्य०)] [स्त्री० चेलानी] १. चेलों का समूह। २. चेलों की बस्ती या निवास।

चेलाल—संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज की लता।

चेलालक—संज्ञा पुं० [सं०] कपड़े आदि में लगनेवाला कीड़ा।

चेलिक—वि० [सं० चेटक, हि० चेला] शिष्य। शिष्या। उ०—बूढ़ न बार तक नहि चेलिक बाको तिलक लगाई हो।—बरम०, पृ० ५०।

वैदिक—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिठली नाम का, रेसमी कपड़ा। २. चोली। बँगिया (को०)।

वैदिकार्द्ध—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'वैलकाई' या 'वैलहाई'।
उ०—रेनिदिवस में तहवीं नारि पुरुष समताई हो। ना मैं बालक ना मैं बूढ़ो ना मोरे वैलिकाई हो।—कबीर (शब्द०)।

वैलिन, वैली—संज्ञा स्त्री० [हि० वैला का स्त्री रूप] विष्णु।

वैलुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के बौद्ध मिक्षु।

वैलूहा—संज्ञा स्त्री० [सं० विल (=मछली)] एक तरह की छोटी मछली जो नमकीनी घोर पतली होती है।

वैलूहा—संज्ञा स्त्री० [हि० वैलूहा] ३० 'वैलूहा'।

वैवारी—संज्ञा स्त्री० [देरा०] एक प्रकार का बाँस जो दक्षिण घोर पश्चिम भारत में होता है।

विशेष—इसकी बटाइयाँ घोर टोकरियाँ बनाई जाती हैं और इसकी पतियाँ चारे के काम में आती हैं।

वैवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी का नाम।

वैष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्मों की गति। भावधर्म। २. क्रिया [को०]।

वैष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो वैष्ट करे। वैष्टा करनेवाला।
२. एक प्रकार का रतिबंध।

वैष्टन—संज्ञा पुं० [सं०] वैष्टा करना। वैष्टा का भाव या स्थिति [को०]।

वैष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शरीर के धर्मों की वह गति या अवस्था जिससे मन का भाव या विचार प्रकट हो। वह कायिक व्यापार जो आंतरिक विचार या भाव का स्रोतक हो। २. नायिका या नायक का वह प्रयत्न या उपाय जो नायक नायिका के प्रति प्रेम प्रकट करने के लिये हो। ३. उद्योग। प्रयत्न। कोशिश। ४. कार्य। काम। ५. श्रम। परिश्रम। ६. इच्छा। कामना। स्वाहिस। ७. मुँह की वह प्राकृति जिससे मानसिक स्थिति प्रकट होती है [को०]।

वैष्टानाश—संज्ञा पुं० [सं०] सृष्टि का अंत। प्रलय।

वैष्टानिरूपण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी व्यक्ति की वैष्टा को देखना या लक्षित करना [को०]।

वैष्टावत्—संज्ञा पुं० [सं०] कलित ज्योतिष में ग्रहों का विशेष गति या स्थिति के अनुसार अधिक बलवान् हो जाना। जैसे, उत्तरायण में सूर्य या वक्रणामी मंगल ग्रहवा चंद्रमा के साथ संयुक्त कोई ग्रह। इससे ग्रह का शुभ या अशुभ फल बढ़ जाता है।

वैष्टित—वि० [सं०] वैष्टायुक्त। सवैष्ट। उ०—प्रातमरसा के लिये वैष्टित नहीं दिखलाते...।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० २१२।

वैष्टित—संज्ञा पुं० १. कार्य। व्यवहार। २. गतिविधि [को०]।

वैष्टिता—वि० स्त्री० [सं०] गतिवाली। स्थितियुक्त। क्रियावाली।
उ०—अनसिधु तरंगवैष्टिता। नगरी थी अब द्वीपवैष्टिता।
—साकेत, पृ० ३४२।

वैस—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का लोहे का चौकटा, जिसके बीच में कंपोज किए हुए टाइप रखकर प्रेस पर छापने के लिये कसे जाते हैं। अब टाइप इसमें रखकर कस दिए जाते हैं, अब

फिर वे कहीं छपर उधर खिसक नहीं सकते। २. शतरंज का खेल।

वै०—वैस बोझ = शतरंज की बिसात।

वैस्टर—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा घीर बंधा कोट। उ०—वैस्टर में सर्दी से सिंकुड़ता हुआ।—अस्मावृत्त०, पृ० १७।

वैहरई—वि० [हि० वैहरा] हुलका गुलाबी (रंग)।

वैहरई—संज्ञा स्त्री० १. चित्रकला में मूर्ति की बनावट। २. चेहरे में रंग भरना। ३. वह छड़ी जिसपर वैहरा बना हो।

वैहरा—संज्ञा पुं० [फ्रा० वैहरह] १. शरीर का वह ऊपरी गोल और भगला भाग जिसमें मुँह, आँख, नासा, नाक आदि सम्मिलित है। मुसड़ा। बदन।

वै०—वैहरा मोहरा = सूरत शकल। प्राकृति। वैहरावाही = वह रूपया जिसपर किसी बादशाह का चेहरा बना हो।
वैहराकुशा = चित्रकार। वैहरामवीस = हुलिया मिलनेवाला।
वैहराबंदी = हुलिया।

मुहा०—वैहरा उतरना = लज्जा, शोक, बिता या रोग आदि के कारण चेहरे का तेज जाता रहना। वैहरा जर्द होना = वैहरा सूखना। चेहरे का रंग उतर जाना। उ०—क्या बताऊँ हाथों के तोते उड़ गए। घरे अब क्या होगा सिपहरभारा का वैहरा जर्द हो गया।—फिसाना० भा० ३, पृ० २६१। वैहरा तमतमाना = गरमी या क्रोध आदि के कारण चेहरे का लाल हो जाना। वैहरा बिगड़ना = (१) मार खाने के कारण चेहरे की रंगत फीकी पड़ जाना। (२) निस्तेज या विवर्ण हो जाना। वैहरा बिगाड़ना = इतना मारना कि सूरत न पहचानी जाय। बहुत मारना। वैहरा भोपना = किसी के मन की बात चेहरे से जान लेना। वैहरा होना = फौज में नाम लिखा जाना। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ना = चबराहट से चेहरे का रंग उतर जाना। २. किसी चीज का भगला भाग। सामने का रस। प्रागा। ३. कागज, मिट्टी या बातु आदि का बना हुआ किसी देवता, शानम या पशु आदि की प्राकृति का वह साँचा जो सीला या स्वीग आदि में स्वरूप बनने के लिये चेहरे के ऊपर पहना या बाँधा जाता है। प्रायः बालक भी मनोविनोद घोर खेल के लिये ऐसा वैहरा लगाया करते हैं।

क्रि० प्र०—उतारना।—बीचना।—लगाना।

मुहा०—वैहरा उठाना = नियमपूर्वक पूजन आदि के उपरांत किसी देवी या देवता का वैहरा लगाना।

विशेष—हिंदुओं का नियम है कि जिस दिन नृसिंह, हनुमान या काली आदि देवी देवताओं का वैहरा उठाना (लगाना) होता है, उस दिन वे दिन भर उस देवी या देवता के नाम से व्रत या उपवास करते हैं; और जब संव्या समय विधिपूर्वक उस देवी या देवता का पूजन करने के उपरांत वैहरा उठाते हैं।

वैहल—वि० [फ्रा०] चालीस [को०]।

वैहल—संज्ञा स्त्री० [हि० वहल] ३० 'वहल'।

चैतन्य—संज्ञा पुं० [क्रि०] १. वह रसम जो मुसलमानों में मुहर्रम के वालीसर्वे दिन होती है। २. मृत्यु का वालीसर्वे दिव (क्रि०)।
३. उक्त दिन होनेवाला उत्सव।

चैताना—क्रि० प्र० [हि० चिहाना] ३० 'चिहाना'।

चै'बर—संज्ञा पुं० [चं०] ३० 'चै'बर'।

चैसजर—संज्ञा पुं० [चं० चांसजर] ३० चैसजर।

चैसेजर—संज्ञा पुं० [चं० चांसजर] १. जर्मनी के राष्ट्रपति का अधिकार। २. युनिवर्सिटी का प्रधान। विश्वविद्यालय का मुख्य अधिकारी। चांसजर।

विशेष—युनिवर्सिटी में चैसजर का वही काम है, जो प्रायः सभा समितियों में सभापति का हुषा करता है। चैसजर के साथ एक सहायक या वाइस चैसेजर भी होता है। चैसेजर के अधिकारों का कार्य प्रायः वाइस चैसेजर को ही करने पड़ते हैं।

चैटी—संज्ञा स्त्री० [हि० चैटी या चोटी] ३० 'चिउंठी'।

चै०—संज्ञा पुं० [सं० चय] समूह। डेर। उ०—उठपो चट चोकि चहुं धीर चितवन लग्यो चिरा चिता जगी चैन चै चोरिगो।
—रघुराज (शब्द०)।

चैक—पुं० [चं० चैक] ३० 'चैक'।

चैकित—संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम।

चैकितान—वि० [सं०] जो चैकितान के वंश में उत्पन्न हुआ हो।

चैकित्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो चैकित ऋषि के गोत्र का ही।

चैत—संज्ञा पुं० [सं० चैत] १. वह चांद्र मास जिसकी पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र पड़े। फागुन के बाद और वैशाख से पहले का महीना। २. चैती फसल। रबी की फसल।

चैतन्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. चित्स्वरूप आत्मा। चेतन आत्मा। २. ज्ञान।

विशेष—न्याय में ज्ञान और चैतन्य को एक ही माना है। और उसे आत्मा का धर्म बतलाया है। पर सांख्य के मत से ज्ञान से चैतन्य भिन्न है। यद्यपि इसमें रूप, रस, गंध आदि विशेष गुण नहीं हैं, तथापि संयोग, विभाग और परिमाण आदि गुणों के कारण सांख्य में इसे भलग द्रव्य माना है और ज्ञान को बुद्धि का धर्म बतलाया है।

१. परमेश्वर। ४. प्रकृति। ५. एक प्रसिद्ध बंगाली वैष्णव धर्मप्रचारक जिनका पूरा नाम श्रीकृष्ण चैतन्यचंद्र था।

विशेष—इनका जन्म नवद्वीप में १४०७ शकाब्द के फागुन की पूर्णिमा को रात में चंद्रग्रहण के समय हुआ था। इनकी माता का नाम शची और पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र था। कहते हैं, शास्त्रावस्था में ही इन्होंने अनेक प्रकार की बिलक्षण सीलाएँ बिखलानी प्रारंभ कर दी थीं। पहले इनका विवाह हुआ था, पर पीछे ये संन्यासी हो गए थे। ये सदा भगवद्भजन में मग्न रहते थे। पहले इनके शिष्यों और तदुपरांत अनुयायियों की भी संख्या बहुत बढ़ गई थी। अब

भी बंगाल में इनके बलाए हुए संप्रदाय के बहुत से लोग हैं जो इन्हें श्रीकृष्णचंद्र का पूर्ण अवतार मानते हैं। ४८ वर्ष की अवस्था में इनका शरीरांत हो गया था। इनके चैतन्य महाप्रभु और निमाई बाबि और भी कई नाम हैं।

यौ०—चैतन्यचरितामृत = कृष्णदास कविराज लिखित चैतन्यदेव का जीवनचरित। चैतन्यबाहिनी नाडी = इंद्रियब ज्ञान को अस्तिष्क तक पहुंचानेवाली नाड़ी। चैतन्य संप्रदाय = चैतन्य-देव द्वारा प्रवर्तित मत।

चैतन्य—वि० १. चेतनायुक्त। चचेत। २. होशियार। सावधान।

चैतन्यघन—संज्ञा पुं० [सं०] चैतन्य रूप परमात्मा। उ०—सर्वविश्व सब काल, पूरि रह्यो चैतन्यघन। सदा एकरस चाल, बंदन वा परब्रह्म की।—शब्द० पं०, पृ० १०६।

चैतन्यता—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'चेतनता'।

चैतन्यभैरवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तान्त्रिकों की एक भैरवी का नाम।

चैतन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] घनाहत चक्र की चौथी मात्रा।

चैतसिक—वि० [सं०] चित्त या चेतन संबंधी। उ०—समुक्त समुक्त प्रकार के सत्त्वों को जो कायिक और चैतसिक धर्म सामान्य हैं उनको ध्यागम 'समागत' संज्ञा से प्रज्ञप्त करता है।—संपूर्ण० अमि० पं०, पृ० ३३४।

चैता—संज्ञा पुं० [सं० चित्रित] एक पक्षी जिसका सिर काला छाती चितकबरी और पीठ काली होती है।

चैता—संज्ञा पुं० [हि० चैत+आ (प्रत्य०)] ३० 'चैती'।

चैतस्वरा—संज्ञा पुं० [हि० चैत+स्वर] चैत में गाया जानेवाला गीत। चैतागीत (बिहार)।

चैती—संज्ञा स्त्री० [हि० चैत+ई (प्रत्य०)] १. वह फसल जो चैत में काटी जाय। रब्बी।

क्रि० प्र०—कटना।—बोना।—होना।

२. जमुपा नील जो चैत में बोया जाता है। ३. एक प्रकार का चलता गाना जो चैत में गाया जाता है।

चैती—वि० चैत संबंधी। चैत का। चैते,—चैती गुलाब।

चैती गौरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चैती+गौरी] चैत में संध्या समय गाई जानेवाली एक रागिनी। वि० ३० 'चैतगौरी'।

चैतुआ—संज्ञा पुं० [हि० चैत+आ (प्रत्य०)] रब्बी की फसल काटनेवाला।

चैत—वि० [सं०] चित्त संबंधी। चित्त का।

चैत—संज्ञा पुं० बौद्धों के मत से विज्ञान स्कंध के अतिरिक्त शेष सब स्कंध।

विशेष—बौद्ध लोग रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार ये पांच स्कंध मानते हैं। वि० ३० 'स्कंध' और 'संज्ञा'।

चैतक—वि० [सं०] ३० 'चैत'।

चैतसिक—वि० [सं०] चित्त या चेतस् संबंधी (क्रि०)।

चैतसिक—वि० [सं०] चित्त या बुद्धि संबंधी (क्रि०)।

चैत्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकान । घर । २. मंदिर । देवालय । ३. वह स्थान जहाँ यज्ञ हो । यज्ञशाला । ४. वृक्षों का वह समूह जो गाँव की सीमा पर रहता है । ५. बुद्ध । ६. बुद्ध की मूर्ति । ७. भगवत्पथ का पेड़ । ८. बेल का पेड़ । ९. बौद्ध संन्यासी या भिक्षु । १०. बौद्ध संन्यासियों के रहने का मठ । बिहार । ११. वह मंदिर जो भगविबुद्ध के उद्देश्य से बना हो । १२. चिता । १३. बल्मीक । बमोट (को०) । १४. सूत्रिभाग का सूचक परंपर का ढेर (को०) । १५. समाधिमंदिर (को०) । १६. चित्तन । बिहार (को०) । १७. राजमार्गस्थित कोई वृक्ष (को०) ।

यौ०—चैत्यतर । चैत्यद्रुम । चैत्यवृक्ष । चैत्यपाल ।

चैत्य^२—वि० चिता संबंधी । चिता का ।

चैत्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भगवत्पथ । पीपल । २. चैत्य का प्रधान अधिकारी । ३. वर्तमान राजगृह के पास के एक प्राचीन पर्वत का नाम ।

विशेष—इस पर्वत पर एक चरणचिह्न है जिसके दर्शनों के लिये प्रायः जैनी वहाँ जाते हैं ।

चैत्यतर—संज्ञा पुं० [सं०] १. भगवत्पथ । पीपल । २. गाँव का कोई प्रसिद्ध वृक्ष ।

चैत्यद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. भगवत्पथ । पीपल । २. भग्नोक का पेड़ ।

चैत्यपाल—संज्ञा पुं० [सं०] चैत्य का रक्षक । चैत्यक । प्रधान अधिकारी ।

चैत्यमुख—संज्ञा पुं० [सं०] कमंडलु ।

चैत्यवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जिसका वरुण भगवत्पथ पर गृह्यसूत्र में बताया है ।

विशेष—प्राचीन काल में इस यज्ञ का संकल्प किसी बीज के लो जाने पर और अनुष्ठान उस बीज के मिल जाने पर होता था ।

चैत्यवन्दन—संज्ञा पुं० [सं० चैत्यवन्दन] १. जैनियों या बौद्धों की मूर्ति । २. जैनियों या बौद्धों का मंदिर । ३. चैत्य या देवालय संबंधी धन की रक्षा ।

चैत्यबिहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. बौद्धों का यठ । २. जैनियों का मठ ।

चैत्यवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चैत्यतर' ।

चैत्यस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह स्थान जहाँ बुद्धदेव की मूर्ति स्थापित हो । २. कोई पवित्र स्थान ।

चैत्र^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह मास जिसकी पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र पड़े । संवत् का प्रथम मास । चैत । २. सात वर्षपर्वतो में से एक । ३. बौद्ध भिक्षुक । ४. यज्ञसूत्रि । ५. देवालय । मंदिर । ६. चैत्य । ७. पुराणानुसार चित्रा नक्षत्र के गर्भ से उत्पन्न बुध ग्रह का एक पुत्र जो पुराणोक्त सातों ढीपों का स्वामी माना जाता है ।

चैत्र^२—वि० चित्रा नक्षत्र संबंधी । चित्रा नक्षत्र का ।

चैत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] चैत्रमास । चैत्र ।

चैत्रगौड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋद्धि जाति की एक रागिनी जो संवत्स समय भयवा रात के पहले पहर में गाई जाती है ।

विशेष—कोई कोई आचार्य इसे श्रीराग की पुत्रवधू मानते हैं ।

चैत्रमस—संज्ञा पुं० [सं०] चैत्र मास के उत्सव जो प्रायः मदन संबंधी होते हैं ।

चैत्ररथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुबेर के बाग का नाम जो बिजय का बनाया हुआ और इलावत खंड के पूरब में अवस्थित माना जाता है । २. एक प्राचीन मुनि का नाम जिनका जिक्र महाभारत में आया है ।

चैत्ररथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का बाग । चैत्ररथ ।

चैत्रवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका नाम हरिवंश में आया है ।

चैत्रसखा—संज्ञा पुं० [सं० चैत्रसख] कामदेव । मदन ।

चैत्रावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चैत्रशुक्ला त्रयोदशी । २. चैत्र की पूर्णिमा ।

पर्या०—मधुस्तवातुवसंत । काममह । वासंती । कर्दमी ।

चैत्रि—संज्ञा पुं० [सं०] चैत्रमास । चैत [को०] ।

चैत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चैत्रि' [को०] ।

चैत्रो^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रा नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा । चैत की पूर्णिमा ।

चैत्रो^२—संज्ञा पुं० [सं० चैत्रिन्] चैत्रमास [को०] ।

चैदिक—वि० [सं०] चेदि देश संबंधी । चेदि देश का ।

चैथ^१—संज्ञा पुं० [सं०] शिशुपाल ।

चैथ^२—वि० चेदि संबंधी । चेदि का [को०] ।

चैन^१—संज्ञा पुं० [सं० शयन] १. आराम । सुख । आनंद ।

क्रि० प्र०—आना ।—करना ।—देना ।—पढ़ना ।—मिलना ।—होना ।

मुहा०—चैन उठाना = चैन करना । आनंद करना । चैन पढ़ना = शांति मिलना । सुख मिलना । चैन से कटना = सुखपूर्वक समय बीतना । चैन की बातें बजाना = आनंद का भोग करना ।

२. शांति । मानसिक शांति ।

चैन^२—संज्ञा पुं० [सं० चैलक ?] एक नीच जाति ।

चैपला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी । उ०—कहत पीपली पीपली, नितहि चैपला अह । मोत सुख यह अरथ की समझ लेहु चित बाह ।—रसनिधि (शब्द०) ।

चैयों^१—संज्ञा स्त्री० [?] बाँह । उ०—चैयों चैयों गहो चैयों चैयों चैयों ऐसे बोल्यो ।—सूर (शब्द०) ।

चैराही—वि० [हि०] दे० 'चैहरई' (रंग) ।

चैल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपड़ा । वस्त्र । २. पहनने के योग्य बना हुआ कपड़ा । पोशाक ।

यौ०—चैलवाक = घोड़ी ।

चैलक—संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध पिता और मातृया माता से उत्पन्न एक प्राचीन वरुणसंकर जाति ।

चैला—संज्ञा पुं० [हि० चोरना, छीलना] [स्त्री० चैला] कुल्हाड़ी से चीरी हुई लकड़ी का टुकड़ा जो चलाने के काम में आता है । फट्टा ।

बैलाराक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छोटा कीड़ा जो कपड़े में लगनेवाले कीड़ों को खाता है ।

बैलिक—संज्ञा पुं० [सं०] कपड़े का टुकड़ा ।

बैली—संज्ञा स्त्री० [हि० बैला] १. लकड़ी का छोटा टुकड़ा जो छीलने या काटने से निकलता है । २. जमे हुए खून का टुकड़ा या सफ़्ता जो गरमी के कारण नाक से निकलता है ।

क्रि० प्र०—गिरना ।—पड़ना ।

बैलेंज—संज्ञा पुं० [अंग०] किसी प्रकार लड़ने, झगड़ने अथवा मुकाबला या वादविवाद आदि करने के लिये दी हुई ससकार । चिनोती । चुनोती ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—मिलना ।

बौं—अव्य० [क्रा० बूँ] क्यों । उ०—'बना के लट्ठियाँ बौं नाथी, मेरे पीहर में जलेशी रसवार' ।—पोद्दार० ग्रंथ०, पृ० ८७६ ।

बौक—संज्ञा स्त्री० [?] वह चिह्न जो चुंबन में दाँत लग जाने के कारण गाल पर पड़ जाता है । उ०—'बहचही चुभके चुभी है बौक चुंबन की लहलही लामि लटे सटकी सुलंक पर ।—पद्माकर (शब्द०) ।

बौकना—क्रि० स० [हि० बौका से नासिक वायु] १. स्तन मुँह से लगाकर दूध पीना । २. पानी पीना ।

बौकरा—संज्ञा पुं० [हि० बौकर] दे० 'बोकर' ।

बौका—संज्ञा पुं० [सं० बूषण या देश०] १. बूसने की क्रिया या भाव । २. गाय या भैंस के स्तन को दबाकर उससे दूध की धारा फोड़कर मुँह में डालना ।

मुहा०—बौका पीना=(१) बच्चों का माँ के स्तन में मुँह लगाकर दूध पीना । (२) गाय या भैंस के स्तन से धार फोड़कर मुँह में डालना ।

बौकूटा—वि० [हि० बौकूटा] बौकूटा । चतुष्कोण । उ०—'किए रुपइया एकटे बौकूटे धरु गोल । रीते हाथिन वै गए सु हरि बोलो हरि बोल ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३१५ ।

बौख—वि० [हि० बौला] दे० 'बोला' । उ०—'अब तो पियहु बौख मद मेरा । होइ की पूजै कारज तोरा ।—इंद्रा०, पृ० ७६ ।

बौखना—क्रि० स० [हि०] दे० 'बोखना' ।

बौगा—संज्ञा पुं० [हि० बुंगी] बाँस की वह खोलली नली या पोर जिसका एक सिरा गूँठ के कारण बंद हो और दूसरा सिरा खुला हो । सोनार आदि इसमें प्रायः अपने धोआर रखते हैं । २. इस आकार की कागज आदि की बनी हुई नली जो कोई चीज रखने के लिये बनाई जाय ।

बौगा—वि० [हि०] अनाड़ी । मूर्ख । बेवकूफ ।

बौगी—संज्ञा स्त्री० [हि० बौगा का स्त्री० अल्पा०] माथी में की वह नली जिसके द्वारा होकर हवा निकलती है ।

बौबना—क्रि० स० [हि० 'बुगना'] दे० 'बुगाना' । उ०—'कबिरा टुक टुक बौबना, पल पल गई बिहाय । जीव जँजाओं पर रहा, दिया दमामा प्राय ।—कबीर (शब्द०) ।

बौबा—वि० [हि०] बेवकूफ । मूर्ख । नासमझ ।

बौब—संज्ञा स्त्री० [सं० बम्बु] १. पत्तियों के मुँह का अगला भाग जो हड्डी का होता है और जिसके द्वारा वे कोई चीज उठाते, तोड़ते और खाते हैं । पत्तियों के लिये यह सम्मिलित हाथ, होंठ और दाँत का काम देती है । टोंट । पुं० । २. मुँह । (हास्य या व्यंग्य में) । जैसे,—बहुत हुमा, अब अपनी बौब बंद करो ।

मुहा०—बौब खोलना=बात कहना । उ०—'जवाब जरूर दो देखें तो क्या कहती हो । जरा बौब तो खोलो ।—फिसाना० भाग ३, पृ० ५८६ । दो दो बौबे होना=कहा सुनी होना । कुछ सड़ाई भगड़ा होना । बौब बंद करना या कराना=अपने चुप रहना या अर्थ दिखाकर चुप कराना ।

बौबला—संज्ञा पुं० [हि० बोबला] दे० 'बोबला' ।

बौबाला—वि० [हि० बौबल वा बोबला] बौबल । बपल । नटखट । उ०—'रामू कितना बौबाल या ।—गोदान, पृ० २६६ ।

बौटना—क्रि० स० [हि० बिकोटो या अनु०] नोचना । तोड़ना । उ०—'बढ़त निकसि कुछ कोर रुचि, कड़त गौर भुबभूल । मनु लुटि गी लोटनु बढ़त बौटत ऊँचे फूल ।—बिहारी र०, दो० ६६८ ।

बौटली—संज्ञा स्त्री० [?] सफेद चुंबकी ।

बौडा—संज्ञा पुं० [सं० बूडा] १. स्त्रियों के सिर के बाल । जूड़ा । भौटा ।

मुहा०—बौडे पर (कोई काम करना)=सिर पर चढ़कर या सामने होकर (कोई काम करना) ।

२. सिर । माथा । मस्तक ।

बौडा—संज्ञा पुं० [सं० बुएडा (= छोटा कुर्मा)] वह छोटा कच्चा कुर्मा जो खेत के आसपास सिचाई के लिये खोद लिया जाता है ।

बौतरा—संज्ञा पुं० [हि० बौतरा] दे० 'बूतरा' । उ०—'अपने बौतरा पर बैठे हतो ।—दो लो बावन०, भा० १, पृ० ३०० ।

बौथे—संज्ञा पुं० [अनु०] गाय भैंस आदि के उतने गोबर का ढेर जितना हगते समय एक बार गिरे ।

मुहा०—बौथ लगाना=हगकर गूँह का ढेर लगाना ।

बौथ—संज्ञा स्त्री० [हि० बौथना] बौथने की क्रिया या भाव ।

बौथना—क्रि० स० [अनु०] १. किसी चीज में से उसका कुछ अंश बुरी तरह फाड़ना या नोचना । चीथना । २. हाथापाई में बुरी तरह धायल करना । नोचना बकोटना । ३. किसी का धन जबरदस्ती से लेना ।

बौथना—क्रि० स० [हि० बौथना] दे० 'बौथना' ।

बौथर—वि० [हि० बौथयाना] १. जिसकी धाँसे बहुत छोटी हों । २. मूर्ख । गावदी ।

बौथरा—वि० [हि० बौथर] दे० 'बौथर' ।

बौथी—संज्ञा पुं० [हि० बोप] दे० 'बोप' ।

बौथी—संज्ञा स्त्री० [हि० बोप] दे० 'बोप' ।

बौहका—संज्ञा पुं० [हि० बौका] दे० 'बौका' ।

चोखा—संज्ञा पुं० [हि० चुपाना (= टपकाना)] १. एक प्रकार का सुगंधित द्रव पदार्थ जो कई गंधद्रव्यों को एक साथ मिलाकर गरमी की सहायता से उनका रस टपकाने से तैयार होता है।

विशेष—इसके तैयार करने की कई रीतियाँ हैं— (क) चंदन का बुरादा, देवदार का बुरादा और मरसे के फूलों को एक में मिलाते और गरम करके उनमें से रस टपकाते हैं। (ख) केसर, कस्तूरी आदि को मरसे के फूलों के रस में मिलाते और गरम करके उसमें से रस टपकाते हैं। (ग) देवदार के निर्यास को गरम करके टपकाते हैं।

२. वह कंकड़, पत्थर या इसी प्रकार की और कोई चीज जो किसी वाट की कमी को पूरा करने के लिये पलड़े पर रखी जाती है। पसंगा। ३. खेल में लगे हुए दो समूहों में से किसी समूह का वह आदमी किसी खिलाड़ी के बल जाने पर या चोट खाने पर उसके स्थान पर खेलता है।

मुहा०—चोवा लगना = किसी की ओर से कोई काम करना।

४. वह थोड़ी चीज जो किसी प्रकार की कमी पूरी करने के लिये उसी जाति की अधिक चीज के साथ रखी जाती है। ५. वह दौब जो मुख्य जुधारी के साथ दूसरे जुधारी छोटी रकम के रूप में लगाते हैं। ६. दे० 'चोटा' या 'छोटा'।

चोई—संज्ञा स्त्री० [? या हि०] कुछ मछलियों के शरीर पर होनेवाला गोलाकार छिलका।

चोई—संज्ञा स्त्री० [?] दाल का वह छिलका जो उसको भिगो और मलकर अलग किया जाता है और जो दाल चुरते समय आपसे आप दाने से अलग होकर ऊपर उतरा जाता है। कराई। २. मछली के ऊपर का चमकदार छिलका।

चोक^१—संज्ञा पुं० [सं०] मडभाड़ या सत्यानासी नामक क्षुप की जड़ जिसका व्यवहार औषधि में होता है।

चोका^२—संज्ञा पुं० [चोखा] चोखा नाम का गंधद्रव्य। उ०—केसर और कपूर, चोक (व) वेदोक्त चषण।—रा० क०, पृ० ३५६।

चोकर—संज्ञा पुं० [देश० या हि० चुन (= घाटा) + कराई (= छिलका)] घाटे का वह भाग जो छानने के बाद छलनी में बच जाता है। यह प्रायः पीसे हुए अन्न (गेहूँ, जौ आदि) की भूसी या छिलका होता है।

चोकस—वि० [गुज० चोकस, हि० चोकस] दे० 'चौकस'। उ०—एक भाई चोकस हतो।—बो सो बावन०, भा० १, पृ० २०६।

चोका^३—संज्ञा पुं० [सं० चूषण] चूसने की क्रिया। चूसना।

मुहा०—चोका लगाना = मुँह लगाकर चूसना। उ०—ते छकि रस नय केलि करेहीं। चोका लाइ अंधर रस जेहीं।—जायसी ग्रं०, पृ० १४०।

चोका^४—वि० [हि० चोखा] दे० 'चोखा'।

चोकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चोकी] दे० 'चोकी'।

चोक्ष—वि० [सं०] १. शुद्ध। पवित्र। २. दक्ष। होशियार। ३. तीक्ष्ण। तेज। ४. जिसकी प्रशंसा की गई हो।

चोख^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चोखा] तेजी। फुरती। बेग। उ०—एक जे सयाने भर माठी जस आने ले चढ़ाए चाम चाम फेट बाँधि ठाढ़े चोख सों।—हनुमान (कव्द०)।

चोख^२—वि० [सं० चोख] दे० 'चोखा'।

चोख^३—संज्ञा पुं० [सं० चक्षु, हि० चक्ष] प्राल (बैंग)।

चोखना^१—क्रि० सं० [सं० चूषण हि० चूसना] चूसना या चूसकर पीना।

चोखना^२—क्रि० प्र० १. स्तनपान किया जाना (बच्चों द्वारा)।

२. दुहा जाना (गाय आदि का)। ३. धार तेज किया जाना।

चोखना^३—संज्ञा पुं० [सं० चिचिकर] बूझा। मूसा।

चोखना^४—संज्ञा स्त्री० [हि० चोखना] चोखने की क्रिया या भाव। चूषण।

चोखा^१—वि० [सं० चोख] १. जिसमें किसी प्रकार का मेल, झोट या मिलावट आदि न हो। जो शुद्ध और उत्तम हो। जैसे,—चोखा घो, चोखा माल। २. जो सच्चा और ईमानदार हो। खरा। जैसे,—चोखा मसामी। ३. जिसकी चार तेज हो। चारदार। ४. सबमें चतुर या श्रेष्ठ। जैसे, तुम्हीं, जोसे निकले जो अपना सब काम करके छुट्टी पा गए।

चोखा^२—संज्ञा पुं० [देश०] १. उबाले या सूने हुए बैंगन, आलू या अरुई आदि को नमक मिर्च आदि के साथ मलकर (और कभी कभी घी या तेल में छौंककर) तैयार किया हुआ सानन। भरता। भरता। २. चावल।—(हि०)।

चोखी—वि० स्त्री० [हि० चोखा] दे० 'चोखा'।

मुहा०—चोखी चुटकियाँ लेना = खिल्ली उड़ाना। उ०—उनकी चूक पर चोखी चुटकियाँ ले उनकी अंतरात्मा दुखाई जाय।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४६७। चोखी छुरी चलाना = चुमती बात कहना। उ०—उन्हीं पर अपनी जीम की चोखी छुरी चलाते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०६।

चोखाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चोखा + ई (प्रत्य०)] 'चोखा' का भाव। चोखापन।

चोखाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० चोखना] 'चोखना' का भाव या काम। चूसने की क्रिया या भाव। चुसाई।

चोखाना^१—क्रि० सं० [हि० चोखना] १. स्तनपान करना (बच्चों द्वारा)। २. (गाय आदि का) दूध दुहना। ३. धार चोखी करना।

चोखाना^२—क्रि० प्र० [हि० चोख से नामिक धातु] उध होना। प्रचंड होना। जैसे,—किसके बूते पर इतना चोखाते हो?

चोगड़द^१—क्रि० वि० [हि० चोगिदं] दे० 'चोगिदं'। उ०—पाँच सात छोरा चोगड़दे बैठो कहि कहि बोले।—राम० बर्म०, पृ० ४५।

चोगड़—संज्ञा पुं० [हि० चुगड़] दे० 'चुगड़'।

चोगर—संज्ञा पुं० [फ्रा० चुगद] वह घोड़ा जिसकी आँखें उल्लू की सी हों।

विशेष—ऐसा घोड़ा ऐसी समझा जाता है।

चोगा^१—संज्ञा पुं० [चु० चोगा] पैरों तक लटकता हुआ बहुत ढीला ढाला एक प्रकार का पहनावा जिसका धागा बंद नहीं होता और जिसे प्रायः बड़े आदमी पहनते हैं । लबादा ।

चोगा^२—संज्ञा पुं० [हि० चुगा] दे० 'चुगा' ।

चोगाना^१—संज्ञा पुं० [हि० चोगान] दे० 'चोगान' ।

चोच—संज्ञा पुं० [सं०] १. छाल । बल्कल । २. चमड़ा । साल । ३. तेजपत्ता । ४. दालचीनी । ५. नारियल । ६. केला । ७. फल का वह अंग जो खाद्य न हो (को०) । ८. तालफल । ताड़ का फल (को०) ।

चोचक—संज्ञा पुं० [सं०] बल्कल । छाल (को०) ।

चोचलहाई^१—वि० स्त्री० [हि० चोचला + हाई (प्रत्य०)] चोचला करनेवाली । नखरेबाज ।

चोचला—संज्ञा पुं० [धनु०] १. अंगों की वह गति या चेष्टा जो प्रिय के मनोरंजनार्थ, या किसी को मोहित करने के लिये धृष्ट हृदय की किसी प्रकार की, विशेषतः जबानी की, उमंग में की जाती है । हाव भाव । २. नखरा । नाज ।

चोचलेबाज—नखरेबाज । **चोचलेबाजी**—नखरा या नखरेबाजी ।

मुहा०—चोचला दिखाना या बघारना = प्रसन्न करने के लिये हाव भाव दिखाना ।

चोज—संज्ञा पुं० [सं० √ चुद] १. वह चमत्कारपूर्ण उक्ति जिससे लोगों का मनोविनोद हो । दूसरों को हँसानेवाली युक्तिपूर्ण बात । सुभाषित । २. हँसी ठट्ठा, विशेषतः व्यंग्यपूर्ण उपहास । उ०—किहू के बल उत्तर दीजें उन्हें सो सुने बने चोज चबाइन को ।—प्रताप (शब्द०) ।

चोज्य^१—वि० [वैश०] स्वादु । स्वादयुक्त । उ०—अक्षय भोज्य ग्रह लेख्य चोज्य ओ चोख्य पेय ले समित करें । ब्रज० प्र०, पृ० १६८ ।

चोट—संज्ञा स्त्री० [सं० चुट (= काटना)] १. एक वस्तु पर किसी दूसरी वस्तु का वेग के साथ पतन या टक्कर । आघात । प्रहार । मार । जैसे,—लाठी की चोट, हथौड़े की चोट । उ०—पत्थर की चोट से यह कीड़ा फूटा है ।—(शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।—पड़ना ।—पहुँचाना ।—मारना ।—लगना ।—लगाना ।—सहना ।

मुहा०—चोट खाना = आघात ऊपर लेना । प्रहार सहना ।

२. आघात या प्रहार का प्रभाव । भाव । जख्म । जैसे,—(क) चोट पर पट्टी बाँध दो । (ख) उसे सिर में बड़ी चोट आई ।

यौ०—चोट चपेट = घाव । जख्म ।

क्रि० प्र०—घाना ।—पहुँचना ।—लगना ।

मुहा०—चोट उभरना = चोट में फिर से पीड़ा होना । चोट खाए हुए स्थान का फिर से दर्द करना ।

३. किसी को मारने के लिये हथियार आदि चलाने की क्रिया । मार । आक्रमण ।

क्रि० प्र०—करना ।—सहना ।

मुहा०—चोट खाधी जाना = मार का निशाने पर न बैठना । आक्रमण व्यर्थ होना । चोट बचाना = चोट न लगने देना ।

४. किसी हिसक पशु का आक्रमण । किसी जानवर का काटने या खाने के लिये झपटना । जैसे,—यह जानवर आसपास पर बहुत कम चोट करता है ।

क्रि० प्र०—करना ।

५. हृदय पर का आघात । मानसिक व्यथा । मर्मभेदी दुःख । शोक । संताप । जैसे,—इस दुर्घटना से उन्हें बड़ी चोट पहुँची । ६. किसी के धनिष्ठ के लिये चली हुई चाल । एक दूसरे को परास्त करने की युक्ति । एक दूसरे का हानि के लिये दाँव पेंच । चकाचकी । जैसे,—आजकल लोग मछुब चोटें चल रही हैं ।

क्रि० प्र०—चलना ।

७. व्यंग्यपूर्ण विवाद । आवाजा । बौछार । ताना । जैय,—इन दोनों कवियों में खूब चोटें चलती हैं । ८. विमर्शघात । चोखा । दगा । जैसे,—यह आदमी ठीक वक्त पर चोट मार जाता है । ९. मार । दफा । मरतबा । उ०—(क) आधो एक चोट हमारी तुम्हारी हो जाय । (ख) कल यह बुनबुल कई चोट सड़ा ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः ऐसे ही कार्यों के लिये होता है जिसमें विरोध की भावना होती है ।

चोटइला^१—वि० [हि० चोट + इल (प्रत्य०)] दे० 'चुटेल' ।

चोटइयाल^१—वि० [हि० चोटड़ी + याल (प्रत्य०)] चोटीवाला । उ०—बहुलायण आतुर मेघ बले । जिम चोटइयाल समुद्र बले ।—रा० रू०, पृ० १०४ ।

चोटड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चोटी] चुटिया । शिला ।

चोटना—क्रि० स० [हि० चोटना] दे० 'चकोटना' । उ०—चोटले के समान पीड़ा होय, यह मांस मेदोगत वायु का लक्षण है ।—माधव०, पृ० १३५ ।

चोटहा—वि० [हि० चोट + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० चोटही] जिसपर आघात का चिह्न हो । जिसपर चाट या निशान हो ।

चोटहिला—वि० [हि० चोट + हिल (प्रत्य०)] दे० 'चोटहन' ।

चोटा—संज्ञा पुं० [हि० चोप्पा] राब का वह पसेव जो उसे कपड़े में रखकर बचाने या छानने से निकलता है । इसका व्यवहार प्रायः तंबाकू या देशी सराब या स्फिरिट आदि बनाने में होता । लपटा । चोप्पा । माठ । छोप्पा । जूसी ।

चोटाना^१—क्रि० प्र० [हि० चोट से नासिक धातु] चोट खाना । घायल हो जाना ।

चोटाना^२—क्रि० स० चोट या प्रहार करना ।

चोटारा^१—वि० [हि० चोट + आर (प्रत्य०)] १. चोट करनेवाला । चोट पहुँचानेवाला । उ०—आयसि कवनेउ ओखा सुगना सार । परिणी दाम अघरवा चोट चोटार ।—रहीम (शब्द०) । २. चोट खाया हुआ । चुटेल ।

चोटारना^१—क्रि० प्र० [हि० चोटार + ना] १. चोट करना । उ०—पहले निहारि नैन चोटनि चोटारि फेरि हाय माहि सोप्ये पास प्यारी पंचसर के ।—रसकुसुमाकर (शब्द०) । २.

बोड़ा बोड़ा कुचलना । कुचकुचाना (कच्चा आम आदि) ।

बोटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लहंगा [को०] ।

बोटियाली—वि० [बोट+इयल (प्रत्य०)] चोट करनेवाला । चुटेल ।

बोटिया—संज्ञा स्त्री० [हि० बोटो + इया (प्रत्य०)] दे० 'बोटी' ।

बोटिया^२—संज्ञा पुं० बोटोघारी । बोटोवाला । छात्र ।

बोटियाना^१—क्रि० सं० [हि० बोट से नामिक घातु] बोट लगाना वा मारना ।

बोटियाना^२—क्रि० सं० [हि० चोटो] १. चोटो पकड़ना । २. बल-प्रयोग करना ।

बोटियाल^३—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गीत ।

बिरोध—गरवत गीत के दो दो पदों के बाद बस मात्राएँ रखकर तुकाल करने से चोटियाल गीत बनता है । जैसे,—गरवत कीजै गीत, पद दुय, दुय रे ऊपरें । मोहरा दसकल गीत, चोटियाल तिरुनू चबै ।—रघु० ६०, पृ० १३० ।

बोटियाल^४—वि० [हि० चोटो] [वि० स्त्री० चोटियाली] लंबे केशोंवाला ।

बोटियाल^५—संज्ञा पुं० भूत । प्रेत । पिशाचादि ।

बोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० बूडा] १. सिर के मध्य में के थोड़े से घोर कुछ बड़े बाल जो प्रायः हिंदू नहीं मुड़ाते या काटते । शिखा । चुड़ी ।

मुहा०—बोटी कटाना = (१) साधु या संन्यासी होना । (२) बस में होना (सा०) । बोटी कतरना = बस में करना । बोटी दबाना = दे० 'बोटी हाथ में होना' । बोटी रखना = बोटी के लिये सिर के बीच के बाल बढ़ाना । (किसी की) बोटी (किसी के) हाथ में होना = किसी प्रकार के दबाव में होना । काबू में होना । जैसे,—घब दे कहाँ जायगी उनकी 'बोटी तो हमारे हाथ में है' ।

यौ०—बोटीवाला ।

२. एक में गुंथे हुए स्त्रियों के सिर के बाल ।

मुहा०—बोटी करना = सिर के बालों को एक में मिलाकर गुंथना । वि० दे० 'कंची बोटी करना' ।

क्रि० प्र०—गुंथना ।—बांधना ।

३. सूत या ऊन आदि का वह बोरा जिसका व्यवहार स्त्रियों को बोटी गुंथने और प्रंत में बालों को बांधने में होता है । ४. पान के आकार का एक प्रकार का आसूषण जिसे स्त्रियाँ अपने लूँठे में खोसती या बाँधती हैं । ५. पसियों के सिर के वे पर जो आगे की ओर ऊपर उठे रहते हैं । कलगी । ६. सबसे ऊपर का उठा हुआ भाग । शिखर । जैसे,—पहाड़ की बोटी । मकान की बोटी ।

मुहा०—बोटी का = सबसे बढ़िया । अच्छा । सर्वोत्तम ।

७. चरम सीमा । जैसे,—आजकल ढाल का भाव बोटी पर है ।

बोटो^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] लहंगा । साया । पेटीकोट [को०] ।

बोटोघार—वि० [हि० बोटो + घा० वार (प्रत्य०)] जिसके चोटो हो । चोटोवाला ।

बोटोपोटी—वि० स्त्री० [देश०] १. चिकनी चुपड़ी (बात) ।

बुशामब से भरी हुई (बात) । २. झूठी या बनाबटा (बात) । इधर उधर की (बात) । उ०—तुम जानति राधा है छोटी । चतुराई घंग घंग भरी है पूरन ज्ञान न बुद्धि की मोटी । हम सों सदा दुरावति सो यह बात कहत मुख चोटी पोटी ।—सूर (शब्द०) ।

बोटोवाला—संज्ञा पुं० [हि० चोटो + वाला] भूत, प्रेत या पिशाच ।

बोटो—संज्ञा पुं० [हि० चोर + टा (प्रत्य०)] [स्त्री० चोटो] वह जो चोरी करता हो । चोर ।

यौ०—चोटो का या चोटोवाला = एक प्रकार की गाली ।

चोड़—संज्ञा पुं० [सं० चोड] १. उत्तरीय वस्त्र । २. चोल नामक प्राचीन देश । ३. कुरती । भोगिया । चोमी [को०] ।

चोड़क—संज्ञा पुं० [सं० चोडक] एक प्रकार का पहनने का कपड़ा ।

चोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० चोडा] बड़ी गोरखमूँड़ी ।

चोड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० चोडो] १. स्त्रियों के पहनने की साड़ी । २. कुरती । चोली [को०] ।

चोढ़ा—संज्ञा पुं० [?] उमंग । उ०—गूँज गये सिर मोरपक्षा मतिराम हों गाय चरावत चोढ़े ।—मतिराम प्र०, पृ० ३४८ ।

चोख—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढालचीनी । २. छाल । बस्कल ।

चोथ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चौथ' ।

चोथना—क्रि० सं० [हि० चौथना] १. नोचना । २. काढ़ना ।

चोथाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चौथ + आई (प्रत्य०)] १. चौथने का काम या स्थिति । २. चौथने की मजदूरी ।

चोढ़ी—संज्ञा पुं० [सं०] १. चाबुक । २. वह लंबी लकड़ी जिसके सिरे पर कोई तेज और नुकीला लोहा लगा हो ।

चोढ़^२—वि० प्रेरक [को०] ।

चोढ़क^१—वि० [सं०] चोदना करनेवाला । प्रेरणा करनेवाला । कोई काम करने के लिये उकसानेवाला ।

चोढ़क^२—संज्ञा पुं० कार्य में प्रवृत्त करानेवाला विधि वाक्य [को०] ।

यौ०—चोढ़कवाक्य ।

चोढ़ककड़^१—संज्ञा पुं० [हि० चोदना] बहुत अधिक स्त्रीप्रसंग करनेवाला । अत्यंत कामी ।—(बाजाक) ।

चोढ़ककड़^२—संज्ञा स्त्री० [हि० चुदना या चूदकड़] बहुत चोदवाने-वाली स्त्री ।

चोदन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चोदना' ।

चोदना^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह वाक्य जिसमें कोई काम करने का विधान हो । विधि वाक्य । २. प्रेरणा । ३. योग आदि के संबंध का प्रयत्न ।

चोदना—क्रि० सं० स्त्रीप्रसंग करना । संभोग करना ।

संयो० क्रि०—डासना ।—देना ।

चोदवासा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चोदास' ।

चोदवासा—वि० [हि०] [वि० स्त्री० चोदवासी] दे० 'चोदासा' ।

चोदाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चोदना + ई (प्रत्य०)] १. चोदने की क्रिया । संभोग । २. चोदने का भाव ।

चोदास—संज्ञा स्त्री० [हि० चोदना + आस (प्रत्य०)] स्त्री को

पुरुषप्रसंग की अपवा पुरुष को स्त्रीप्रसंग की प्रबल कामना ।
कामेच्छा ।

क्रि० प्र०—सगना ।

चोदासा—वि० पु० [हि० चोदास] [वि० स्त्री० चोदासी] जिसे चोदास
लगी हो । जिसे संभोग की प्रबल इच्छा हो ।

चोदू^१—संज्ञा पु० [हि० चोदना] दे० 'चोदक' ।

चोदू^२—वि० [हि० चोदू (= चूतिया)] कायर । डरपोक । उ०—
मंगल मिलियाँ रोय दे, चोदू खूब कहाय ।—बाँकी० प्र०,
भा० २, पृ० ३८ ।

चोद्य^१—वि० [सं०] जो प्रेरणा करने योग्य हो ।

चोद्य^२—संज्ञा पु० १. प्रयत्न । सवाल । २. वादविवाद में पूर्वपक्ष ।

चोप^१—संज्ञा पु० [हि० चाप] १. चाह । इच्छा । स्वाहिष ।
२. चाप । शोक । संघ । उ०—दे उर जेब जबाहिर की पुनि
चोप सो जूँदरि ले पहिरावत ।—सुंदरी सिंदूर (शब्द०) ।
३. उत्साह । उमंग । उ०—(क) अरुन नयन भृकुटी कुटिल
चितवत द्रुपन्ह सकोष । मनहु मत्त गजगन निरखि सिध
किसोरहि चोप —मानस १।२६७। (ख) चोर के चोच
चकोरन की मनो चोप ते बग जुवावत चारे ।—(शब्द०) ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।

४. बढ़ावा । उत्तेजना ।

क्रि० प्र०—देना ।

चोप^२—संज्ञा पु० [हि० चूना (= टपकना)] कच्चे घाम की डेपनी का
बहु रस जो उसमें से सीके तोड़ते समय बहता है ।

विशेष—इसका असर तेजाब का सा होता है । शरीर में जहाँ
लग जाता है, वहाँ छाया पड़ जाता है ।

चोप^३—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० चोब] दे० 'चोब' ।

चोपदार—संज्ञा पु० [फ्रा० चोबदार] दे० 'चोबदार' ।

चोपन^१—वि० [सं०] हिलने डुलनेवाला । [को०] ।

चोपन^२—संज्ञा पु० मंदगति ।

चोपड़^१—संज्ञा पु० [हि० चुपड़ना] धी तेल इत्यादि स्नेह
पदार्थ । जो चुपड़ा जा सके । उ०—कापड़ चोपड़ पान रस,
दे सह खाँवे दाम ।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ६० ।

चोपड़^२—संज्ञा पु० [हि० चोपड़] दे० 'चोपड़' । उ०—सो श्री गोवर्धन
नाथजी भाप बासों बाते करें, चोपड़ खेले ।—दो सौ बावन०,
भा० पृ० ८२ ।

चोपना^१—क्रि० प्र० [हि० चोप] किसी वस्तु पर मोहित हो
जाना । मुग्ध हो जाना ।

चोपरना^१—क्रि० प्र० [हि० चुपड़ना] दे० 'चुपड़ना' । उ०—तेल
फुलेल कहा चोपरना । समुझि देखि निखै करि मरना ।
—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ३३४ ।

चोपो^१—वि० [हि० चोप] १. इच्छा रखनेवाला । चाह रखने-
वाला । २. जिसके मन में उत्साह हो । उत्साही ।

चोपो^२—संज्ञा स्त्री० [हि० चोप + ई (प्रत्य०)] कच्चे घाम की
ढंपी तोड़ देने पर निकलनेवाला रस । चोप ।

चोब—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. सामियाना लड़ा करने का बड़ा
संघा । २. नगाड़ा या ताशा बजाने की लकड़ी । ३. सोने या
चाँदी से मड़ा हुआ डंडा ।

चो०—चोबदार ।

४. छड़ी । सोंटा । डंडा ।

चोबकारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] एक प्रकार का जरदोजी का काम ।

चोबचोनी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] एक काष्ठोपध ।

विशेष—यह चीन और जापान में होनेवाली एक सता की जड़
है जिसके पत्ते अश्वगंधा के पत्तों के समान होते हैं । इसका
रंग कुछ पीलापन लिए हुए सफेद होता है । यह रक्तशोषक
होती है और गरमी तथा गठिया आदि की दवाओं में पड़ती
है । वैद्यक में इसे तिक्त, उष्णवीर्य, अग्निबीपक, मलमूत्र
शोषक और शूल, बात, फिरग, उन्माद तथा अपस्मार आदि
रोगों को दूर करनेवाली कहा है ।

चोबदस्त, चोबदस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] लाठी [को०] ।

चोबदार—संज्ञा पु० [फ्रा०] वह नौकर जिसके पास चोब या छसा
रहता है । असबरदार ।

विशेष—ऐसे नौकर प्रायः राजों, महाराजों और बहुत से रईसों
की बघोड़ियों पर समाचार आदि ले जाने और ले जाने तथा
इसी प्रकार के दूसरे कामों के लिये रहते हैं । सवारी या
बारात आदि में ये आगे आगे चलते हैं ।

चोबा—संज्ञा पु० [हि० चोब] दे० 'चोब'—१ ।

चोबी—संज्ञा स्त्री० [हि० चोब] दे० 'चोब' । उ०—छिमा भाव सहज
की चोबी ओरी ज्ञान की ओरी ।—कबीर० भा०, भा० १,
पृ० ४२ ।

चोभा—संज्ञा स्त्री० [हि० चुभना] १. चुभने की स्थिति या भाव ।
चुभन । २. चुभनेवाली चीज ।

चोभना^१—क्रि० प्र० [हि० चोभ] दे० 'चुभना' ।

चोभा^१—संज्ञा पु० [हि० चोभना] १. वह पोटली जिसमें कई दवाई
बंदी होती है और जिससे शरीर के किसी पीड़ित अंग
विशेषतः घाँव को सँकेते हैं । लोपा ।

मुहा०—चोभा देना = घीषण को पोटली में बाँधकर उससे
शरीर के किसी पीड़ित अंग को सँकेना ।

२. एक प्रकार का औजार जिसमें लकड़ी के दस्ते या लट्टू में आगे
की ओर चार पाँच मोटो सुइयाँ रहती हैं ।

विशेष—इस औजार से आँवले या पेठे आदि का मुरब्बा बनाने
के पहले उसे इसलिये कोचते हैं कि उसके अंदर तक रस या
शीरा चला जाय ।

चोभाकारी—संज्ञा स्त्री० [हि० चोभना + फ्रा० कारी] बहुमूल्य पत्थरों
पर रत्नों या सोने आदि का ऐसा जड़ाव जो कुछ उभरा
हुआ हो ।

चोभाना^१—क्रि० प्र० [हि० चुभना] दे० 'चुभाना' ।

चोभ—संज्ञा स्त्री० [अ० जोभ] १. जोष । उत्साह । २. गर्व । घमंड ।
अभिमान (राज०) ।

चोया—संज्ञा पु० [हि० चोया] दे० 'चोया' ।

चोर—संज्ञा पु० [सं०] १. जो छिपकर पराई वस्तु का अपहरण करे। स्वाधी की अनुपस्थिति या अज्ञानता में छिपकर कोई चीज ले जानेवाला अनुष्य। चुराने या चोरी करनेवाला। तस्कर।

मुहा०—चोर की बाड़ी में तिक्का = चोर का संशंकित रहना। चोर के घर छिछोर = ३० 'चोर के घर डिछोर'। चोर के घर डिछोर = पक्के बदमाश से किसी नौसिबुए का उलभना। चोर के घर मोर पड़ना = घूत के साथ घूतता होना। चोर के पाँव कितने = चोर की हिम्मत कम होती है। उ०—इन गोदड़ अपकियों में हम न जाने के चोर के पाँव कितने।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २३८। चोर चोर मोसेरे आई = चुरे लोगों में स्नेह सहयोग होना। चोर पड़ना = चोर का आकर कुछ चुरा ले जाना। चोर पर मोर पड़ना = घूत के साथ घूतता होना। चालाक के साथ चालाकी होना। चोर से कहें चोरी करो, शाह से कहना जागता रह = दो बिरोधी तत्वों को प्रोत्साहन देना। उ०—पुलिसवाले चोर से कहें चोरी कर शाह से कहें जागता रह।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ८४। चोरों का पीर उठाईगीर = चोरों से भी बड़ा उच्चरका। चोरी से बोला बड़ा ठहराना। उ०—यह शरत बबसास भी घरले सिरे के थे। चोरों के पीर उठाई गीरों के लंगोटिए यार।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ४१। मन में चोर बैठना = मन में किसी प्रकार का सटका या संदेह होना।

बौ०—चोर बकार = चोर उच्चरका। चोरीबकारी, चोरीबकारी = चोरी पूर्ण मजाक। उ०—क्या चोरीबकारी की। खुदा न बसासता किसी को कल कर डाला किसी को मार डाला किसी का घर फाँदे।—फिसाना० भा० ३, पृ० ७६। कामचोर। मुँहचोर।

२. बाब आदि में वह दूषित या विकृत अंग जो अज्ञान में अंदर रह जाता है और जिसके ऊपर का बाब अच्छा हो जाता है।

विशेष—ऐसा दूषित अंग अंदर ही अंदर बढ़ता रहता है और भीघ ही उस बाब का मुँह फिर से खोलना पड़ता है।

३. वह छोटी संधि या अवकाश जिसमें से होकर कोई पदार्थ वह या निकल जाय या जिसके कारण इसी प्रकार का और कोई अनिष्ट हो। जैसे, छत में का चोर। मेंहदी का चोर।

विशेष—मेंहदी का चोर हथेली की संधियों आदि का वह सफेद अंग कहलाता है जिसपर असावधानी से मेंहदी नहीं लगती या बाब पड़ने से मेंहदी के सरक जाने के कारण रंग नहीं बढ़ता। यद्यपि इससे किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं होता, तथापि यह देखने में भद्दा जान पड़ता है।

४. खेल में वह लड़का जिससे दूसरे लड़के दाँव लेते हैं और जिसे औरों की अपेक्षा अधिक श्रम का काम करना पड़ता है।

विशेष—चोर को प्रायः दूसरे खिलाड़ियों को खूना, हूँकना या अपनी पीठ पर चढ़ाकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना पड़ता है। खेल में चोर जिसे खूता या हूँक लेता है वही चोर हो जाता है।

मुहा०—चोर चोर खेलना = इस प्रकार का खेल खेलना।

५. ताश या गंजीके आदि का वह पत्ता जिसे खिलाड़ी अपने हाथ में दबाए या छिपाए रहता है और जिसके कारण दूसरे खिलाड़ियों की जीत में बाधा पड़ती है।

बौ०—मुलाम चोर = ताश का एक खेल जिसमें गड्डी में का एक पत्ता गुप्त रूप से निकालकर छिपा दिया जाता है और खेल पत्ते सब खिलाड़ियों में रंग और टिप्पियों के हिसाब से जोड़ा मिलाने के लिये बाँट दिए जाते हैं। अंत में किसी खिलाड़ी के हाथ में छिपाए हुए पत्ते के जोड़ का पत्ता रह जाता है। जिसके हाथ में वह पत्ता रह जाता है, वह भी चोर कहलाता है।

६. चोरक नाम का गंधद्रव्य। ७. (मन की) दुर्भावना। जैसे,—मन का चोर। ८. रहस्य संप्रदाय का पारिभाषिक शब्द जिसका अर्थ है षड्विकार या मृत्यु।

चोर—वि० १. जिसके वास्तविक स्वरूप का ऊपर से देखने से पता न चले।

चोर उरद—संज्ञा पु० [हि० चोर + उरद] उरद का वह कड़ा बाना जो न तो चक्की में पिसता है और न गलाने से गलता है।

चोरकंटक—संज्ञा पु० [सं० चोरकण्टक] चोरक नामक गंधद्रव्य।

चोरक—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रकार का गठिवन जिसकी गणना गंधद्रव्यों में होती है।

विशेष—वैद्यक में इसे तीव्रगंध, कड़वा और बात, कफ, नाक तथा सुँह के रोग, अजीर्ण, कृमिदोष, श्मिद्विकार और मेघ आदि का नाशक माना जाता है।

२. एक प्रकार का गंधद्रव्य जिसका व्यवहार प्रीषधों में भी होता है और जिसे असबरग भी कहते हैं।

चोरकट—संज्ञा पु० [हि० चोर + कट (= काटनेवाला)] चोर। चोट। उच्चरका।

चोरकर्म—संज्ञा पु० [सं० चोरकर्मन्] चोरी [को०]।

चोरखाना—संज्ञा पु० [हि० चोर + फ़ा० खाना] १. संदूक आदि में का गुप्त खाना। २. पिजड़े आदि में का वह छोटा खाना जो बड़े खाने के अंदर हो।

चोरखिड़की—संज्ञा स्त्री० [हि० चोर + खिड़की] छोटा चोर दरवाजा।

चोरगढ़ा—संज्ञा पु० [सं० चोर + हि० गढ़ा] गुप्त या छिपा हुआ गढ़ा।

चोरगणेश—संज्ञा पु० [सं०] तांत्रिकों के एक गणेश।

विशेष—इनके विषय में यह विश्वास है कि यदि जप करने के समय हाथ की उँगलियों में संधि रह जाय, तो ये उसका फल हरण कर लेते हैं।

चोरगली—संज्ञा स्त्री० [हि० चोर + गली] १. वह पतली और तंग गली जिसे बहुत कम लोग जानते हों। २. पायजामे का वह भाग जो दोनों जाँघों के बीच में रहता है।

चोरचकार—संज्ञा पुं [हि० चोर + चक्र + चकार] [स्त्री० चोरचकारी] चोर । उचकका ।

चोरचमार—वि० [हि० चोर + चमार] चोरो करनेवाला । नीच कार्य करनेवाला ।

चोरछिद्र—संज्ञा पुं [सं०] दो चीजों के बीच का अन्तर्काय । संधि । दरज ।

चोरछेदा—संज्ञा पुं [हि० चोर + छेद] दे० 'चोरछिद्र' ।

चोरजमीन—संज्ञा स्त्री० [हि० चोर + जमीन] वह जमीन जो ऊपर से देखने में तो ठीक जान पड़े, पर नीचे से पोली हो और जिसपर पैर रखते ही नीचे धँस जाय ।

चोरटा—संज्ञा पुं [हि० चोर + टा (प्रत्य०)] [स्त्री० चोरटी] दे० 'चोट्टा' ।

चोरताला—संज्ञा पुं [हि० चोर + ताला] वह ताला जिसका पता दूर से या ऊपर से न लगे ।

विशेष—ऐसा ताला प्रायः किवाड़ों के पत्ते के अंदर लगा रहता है ।

चोरथन—वि० [हि० चोर + थन] दुहने के समय अपना पूरा दूध न देनेवाली और थनों में कुछ दूध चुरा रखनेवाली (गो, भैस या बकरी आदि) ।

चोरदंत—संज्ञा पुं [हि० चोर + दंत] वह दाँत जो बत्तीस दाँतों के प्रतिरिक्त निकलता है और निकलने के समय बहुत कष्ट देता है ।

चोरदंता†—संज्ञा पुं [हि० चोरदंत + आ (प्रत्य०)] दे० 'चोरदंत' ।

चोरदंता†—वि० जिसके चोरदंत निकले हों । चोरदाँतवाला ।

चोरदरवाजा—संज्ञा पुं [हि० चोर + दरवाजा] किसी मकान में पीछे की ओर या अलग कोने में बना हुआ कोई ऐसा गुप्त द्वार जिसका ज्ञान बहुत कम लोगों को हो ।

चोरदाँत—संज्ञा पुं [हि० चोर + दाँत] दे० 'चोरदंत' ।

चोरद्वार—संज्ञा पुं [हि० चोर + द्वार] दे० 'चोरदरवाजा' ।

चोरधज—संज्ञा पुं [हि० चोर + धज] तलवार की लड़ाई का एक तरीका ।

चोरनाउ—क्रि० सं० [हि० चोर से नामिक धातु] चुराना ।

चोरपट्टा—संज्ञा पुं [हि० चोर + पाट (= सन)] एक प्रकार का जहरीला पोषा जो दक्षिण हिमालय, आसाम, बरमा और लंका में अधिकता से होता है ।

विशेष—भगिया की तरह इसके पत्तों और अंठलों पर भी बहुत जहरीले रोएँ होते हैं जो शरीर में लगने से सूजन पैदा करते हैं । सूजे हुए स्थान पर बड़ी जलन होती है और वह कई दिनों तक रहती है । इसमें से बहुत बढ़िया रेसा निकल सकता है, पर इसी बोध के कारण कोई इसे छूता नहीं; और इसलिये इसका कोई उपयोग भी नहीं हो सकता । इसे सूरस भी कहते हैं ।

चोरपहरा—संज्ञा पुं [हि० चोर (= गुप्त) + पहरा] १. वह पहरा

जो शत्रु के आसूनों से रक्षा की रक्षा के लिये गुप्त रूप से रखा जाता है । २. किसी प्रकार का गुप्त पहरा ।

चोरपुष्प—संज्ञा पुं [सं०] दे० 'चोरपुष्पी' ।

चोरपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'चोरपुष्पी' ।

चोरपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुप जिसका अंठल कुछ लाली लिए होता है ।

विशेष—इसके पत्ते लंबे और रोएँदार होते हैं । इसमें आसमानी रंग का फूल लगता है जो नीचे की ओर लटका रहता है । वैद्यक में इसे नेत्रों के लिये हितकारी और मूत्रगर्भ को आक-बंध करनेवाला माना है । इसे प्रंधाहुली या शंखाहुली भी कहते हैं ।

पर्या०—शंखिणी । केशिनी । अश्व-पुष्पी । अमरपुष्पी । राक्षी ।

चोरपेट—संज्ञा पुं [हि० चोर + पेट] १. वह पेट जिसमें के गर्म का जल्दी पता न लगे । २. किसी चीज के मध्य में वह गुप्त स्थान जिसमें रखी हुई कोई चीज लोगों पर प्रकट न हो । ३. वह चीज जिसके मध्य में कोई ऐसा गुप्त स्थान हो ।

चोरपैर—संज्ञा पुं [हि० चोर + पैर] ऐसे ढंग से रखे जानेवाले पैर जिनकी आहट न मालूम हो ।

चोरबाजार—संज्ञा पुं [हि० चोर + बाजार] वह बाजार जहाँ अवैध व्यापार होता हो या चोरी से चीजें बिकती हों ।

चोरबाजारिया—वि० [हि० चोरबाजार + इया (प्रत्य०)] चोरबाजारी करनेवाला ।

चोरबत्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० चोर + बत्ती] बिजली की एक प्रकार की बत्ती जो बटन दबाकर जलाई जाती है । यह सूखी बैटरी से जलती है । टाच ।

विशेष—यह चोरो के लिये विशेष लाभप्रद होता है क्योंकि इसे जलाने के लिये दियासलाई की जरूरत नहीं पड़ती तथा इसका प्रकाश चोतरफा न पड़कर सामने पड़ता है । अतः गुप्त स्थान में पड़ी वस्तु देखी जा सकती है और साथ ही दूसरे इसका प्रकाश करनेवाले को नहीं देख सकते । यदि किसी व्यक्ति के मुँह पर इसका प्रकाश सीधे डाला जाय तो उसकी आँख चौंधने लगती है तथा वह चोरबत्ती जलानेवाले को नहीं पहचान सकता । अतः चोर भागते समय भी इससे लाभ उठा लेते हैं ।

चोरबदन—संज्ञा पुं [हि० चोर + फा० बदन] वह मनुष्य जिसकी मोटाई प्रकट न हो । वह मनुष्य जो वास्तव में बलवान् हो, पर देखने में दुबला जान पड़े ।

चोरबाजार—संज्ञा पुं [हि० चोर + बाजार] काला बाजार । चोरी से खरीदा या बेचा जाना । गैरकानूनी व्यापार । निश्चित मूल्य से अधिक पर बेचा जाना ।

चोरबाजारी—संज्ञा स्त्री० [हि० चोर + बाजारी] चोर बाजार का व्यापार । चोर बाजार में खरीदने या बेचे जाने की स्थिति या भाव ।

चोरबाहू—संज्ञा पुं० [हि० चोर + बाहू] वह बाहू या रेत जिसके नीचे दलदल हो ।

चोरमहल—संज्ञा पुं० [हि० चोर + महल] वह महल या बड़ा मकान जहाँ राजा घोर रईस अपनी अविवाहिता स्त्री या प्रेमिका रखते हैं ।

चिरोब—कभी कभी लोग 'चोर महल' से अविवाहिता स्त्री या गुप्त प्रेमिका का भी अर्थ लेते हैं ।

चोरमिहीचनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चोर + (मीचनी = बंद करना)] मौखमिचोली नाम का खेल ।

चोरमूँग—संज्ञा पुं० [हि० चोर + मूँग] मूँग का वह कड़ा घाना जो न तो चक्की में पिसता है और न गलाने से गलता है ।

चोररस्ता—संज्ञा पुं० [हि० चोर + रस्ता] दे० 'चोरगली' ।

चोरसीढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० चोर + सीढ़ी] वह सीढ़ी जिसका पता जल्दी न लगे । गुप्त सीढ़ी ।

चोरस्नायु—संज्ञा पुं० [सं०] कौवाठोँठो ।

चोरहटियाँ—संज्ञा पुं० [हि० चोर + हटिया] वह दूकानदार जो चोरों से माल लूरीदता हो ।

चोरहुली—संज्ञा स्त्री० [सं० चोरपुष्पी] दे० 'चोरपुष्पी' ।

चोरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चोरपुष्पी । गंजाहुली ।

चोराख्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चोरपुष्पी' ।

चोराचोरी—संज्ञा पुं० [हि० चोर + चोरी] छिपे छिपे । चुपके चुपके ।

चोराना—क्रि० सं० [हि० चोरना] दे० 'चुराना' ।

चोरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चुराने का काम । चोरी ।

चोरिखा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़िया चारा जिसके दाने कभी कभी गरीब लोग भ्रनाज की तरह खाते हैं । पशुधों को यह चारा बीज पड़ने से पहले खिलाया जाता है ।

चोरित—क्रि० [सं०] चुराया हुआ [कौ०] ।

चोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चोर + ई] १. छिपकर किसी दूसरे की वस्तु लेने का काम । चुराने की क्रिया । २. चुराने का भाव ।

चौं—चोरीचारी या चोरी छिनाला = दूषित निन्दित कर्म ।

मुहा०—चोरी चोरी = छिपाकर । गुप्त रूप से । चोरी लगना = चोरी के दोष का आरोप होना । चोरी लगाना = चोरी करने का दोष आरोपित करना । चोरी का अमियोग लगाना ।

चोरीठा—संज्ञा पुं० [हि० चोरेठा] दे० 'चोरेठा' ।

चोलंडुक, चोलोंडुक—संज्ञा पुं० [सं० चोलण्डुक, चोलोण्डुक] पगड़ी [कौ०] ।

चोल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन देश का नाम ।

विशेष—इसका विस्तार मदरास प्रांत के वर्तमान कोयंबतूर, त्रिचनापल्ली और तंजौर आदि से मैसूर के आगे बलिंगी भाग तक था । रामायण और महाभारत आदि में इस देश का जिक्र पाया है ।

२. उक्त देश का निवासी । ३. स्त्रियों के पहनने की एक प्रकार की घंगिया । चोली । ४. कुरते के ढंग का एक प्रकार का

बहुत संबा पहनावा जिसे चोला कहते हैं । ५. मजीठ । ६. छात्र । बल्कल । ७. कबच । जिरह बकतर ।

चोल—वि० मजीठ का रंग । लाल (रंग) । उ०—ढोला ढोली हर मुक्त, दीठड घणो जरोह । चोल वरन कपड़े, साबर धन पाणेह ।—ढोला०, दू० १३६ ।

चोलक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'चोल' ।

चोलकी—संज्ञा पुं० [सं० चोलकिन्] १. बाँस का कल्ला । २. नारंगी का पेड़ । ३. हाथ की कलाई । ४. करील का पेड़ ।

चोलखंड—संज्ञा पुं० [सं० चोल + खण्ड] कपड़े का वह टुकड़ा जो ऐसे हिसाब से बुना जाता है कि उसमें से एक चोली बनकर तैयार हो ।

विशेष—इसके गले और बाँहवाले भंशों पर प्रायः कलाबत्तू या जर्दोजी आदि की बेलें बनी होती हैं ।

चोलन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चोलकी' ।

चोलना—संज्ञा पुं० [हि०] १. वस्त्र । परिवान । २. दे० 'चोला' । उ०—भला बना संयोग प्रेम की चोलना । तन मन भरो सोस साहेब हैंसि बोलना ।—कबीर (शब्द०) ।

चोलना—क्रि० सं० [देश०] थोड़ी मात्रा में कोई चीज खाना ।

चोलरंग—संज्ञा पुं० [सं० चोल (= मजीठ) + हि० रंग] मजीठ का रंग जो पक्का और लाल होता है ।

चोलसुपारी—संज्ञा स्त्री० [सं० चोल + हि० सुपारी] चिकनी सुपारी जो प्रायः चोल देश में अधिकता से होती है ।

चोला—संज्ञा पुं० [सं० चोल] १. एक प्रकार का बहुत संबा और ढोला ढाला कुरता जो प्रायः सामु, फकीर और मुस्ला आदि पहनते हैं । २. एक रसम जिसमें नए जनमे हुए बालक को पहले पहल कपड़े पहनाए जाते हैं । यह रसम प्रायः अन्न-प्राशन आदि के समय होती है । ३. वह कपड़ा जो पहले पहल बच्चे को पहनाया जाता है ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

४. शरीर । बदन । जिस्म । तन । जैसे,—कुछ दिनों तक यह दवा खाओ, कंचन सा चोला हो जायगा ।

मुहा०—चोला छोड़ना = मरना । प्राण त्यागना । चोला बध-लना = (१) एक शरीर परित्याग करके दूसरा शरीर धारण करना (साधुधों की बोली) । (२) नया रूप धारण करना ।

चोलो—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्त्रियों का एक पहनावा जो घंगिया से मिलता जुलता होता है ।

विशेष—घंगिया से इसमें भेद यह होता है कि इसमें पीछे की ओर बंद नहीं होता, बल्कि दोनों बगलों से कपड़े का ही कुछ भाग बढ़ा रहता है जिसे खींचकर स्त्रियाँ पेट के ऊपर गाँठ देकर बाँध लेती हैं ।

२. चोला नाम का एक प्रकार का कुरता । दे० 'चोला' ।

३. डलिया जिसमें पान आदि रखते हैं । ४. घंगरखे आदि का वह ऊपरी भंश जिसमें बंद लगे रहते हैं ।

मुहा०—चोली दामन का साथ = बहुत अधिक साथ या अनिच्छता । ऐसा साथ जिसके जल्दी छूटने की संभावना न हो ।

बोलीमार्ग—संज्ञा पु० [सं०] बाममार्ग का एक भेद ।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि इस मार्ग के अनुयायी स्त्री पुरुष एक स्थान पर एकत्र होकर मांस, मद्य और मत्स्य आदि का सेवन करते हैं और सदुपरांत सब उपस्थित स्त्रियों की बोलियाँ एक घड़े में रस दी जाती हैं । प्रत्येक मनुष्य बारी बारी से उस घड़े में हाथ डालता और एक बोली निकालता है । जिसके हाथ में जिस स्त्री की बोली आ जाती है, वह उसी के साथ संयोग करता है ।

बोला—संज्ञा पु० [हि० बोला] दे० 'बोला' । उ०—बूढ़ा भासिक भैंस पधिनी, मेंढ़क ताल लगावे । बोला पहिर के गदहा नाचे, ऊँट विसुनपद गावे ।—कबीर (शब्द०) ।

बोवड़ा—वि० [हि० बोहरा] बोगुना । उ०—दूजा बोवड़ बोवड़ा, ऊँटकटालऊ लाए । जिए मुखि नागर बेलियाँ सो करहुउ के काण ।—ढोला०, पृ० ३०६ ।

बो०—बोवड़ बोवड़ = दुगना बोगुना ।

बोवा—संज्ञा पु० [हि० बोघा] दे० 'बोघा' । उ०—बोवा बित चेतन पर-कासा आवत बास घनो री ।—कबीर० ज०, भा० १, पृ० ८५ ।

बोवना—क्रि० स० [हि० चुवाना] दे० 'चुवाना' । उ०—दसवैं द्वारे बोवे माठी । तीरथ परसे सै सै साठी ।—प्राण०, पृ० १०३ ।

बोव—संज्ञा पु० [सं०] भावप्रकाश के मत से एक प्रकार का रोग जिसमें रोगी को बगल में ऐसी जलन मालूम होती है कि मानो उसके भासपास आग जलती हो ।

बोव^३—संज्ञा पु० [बंग० बोव, हि० बल] दे० 'बोव' । उ०—पुनि अंतह कोषं निर्मल बोवं नाहीं बोवं गुन सोव ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० २४३ ।

बोवक—वि० [सं०] बूसनेवाला ।

बोवण—संज्ञा पु० [सं०] बूसने की क्रिया । बूसना ।

बोवना—क्रि० स० [सं० बोवण] बूसना ।

बोव्य—वि० [सं०] जो बूसने के योग्य हो । जो बूसा जा सके । बूष्य ।

बोसर—संज्ञा बी० [हि० बीसर] दे० 'बीसर' ।

बोसा—संज्ञा पु० [व्यं०] लकड़ी रेतने की एक प्रकार की रेतो जो प्रायः एक हाथ लंबी और दो अंगुल चौड़ी होती है ।

बोस्क—संज्ञा पु० [सं०] १. उत्तम जाति का घोड़ा । २. सिदुबार नाम का पेड़ ।

बोहल—संज्ञा बी० [हि० बुहल] दे० 'बुहल' । उ०—भाज इसके भागे हंस बोहल की बातें कर, गाने की चर्चा छोड़, शास्त्र का प्रसंग ला, इनके मत की रचि परस लें ।—श्रीविवास प्र०, पृ० १६ ।

बोहला—संज्ञा पु० [हि०] [बी० बोहली] छोटा गढ़वा जिसमें पानी और कीचड़ रहता है ।

बोहाना—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'बोहान' ।

बोवक—वि० [सं० बोवक] १. जिसमें चुंबक शक्ति हो । आकर्षण करनेवाला । २. जिसमें चुंबक मिला हो ।

बो^३—पण्य० [फ्रा० बू] क्यों । किसलिये । उ०—बो अग्या हरीशंकर का है रयो है ।—सत्य० (श्रु०), पृ० ४ ।

बो^३—संज्ञा बी० [सं० चमलकृत, प्रा० चर्मक, चवकि, चर्विक] वह चंचलता जो भय, आश्चर्य या पीड़ा के सहसा उपस्थित होने पर हो जाती है । एकाएक डर जाने या आश्चर्य में पड़ जाने के कारण शरीर का झटके के साथ हिल उठना और चित्त का उचट जाना । भ्रमक । भड़क ।

क्रि० प्र०—उठना ।—जाना ।—पड़ना ।

बो^३—संज्ञा पु० [देश०] करोल का पीषा ।

बो^३—संज्ञा पु० [?] चारो तरफ । उ०—बो^३ उसका पडया था जग में हाँक । वो नगिना घस में था पाँव टंक ।—दक्खिनी०, पृ० १८४ ।

बो^३—क्रि० प्र० [हि० बो^३ + ना (प्रत्य०)] १. भय या पीड़ा के सहसा उपस्थित हो जाने से चंचल हो उठना । एकाएक डर जाने या पीड़ा आदि अनुभव करने पर झट से काँप या हिल उठना । भ्रमकना । जैसे,—(क) बंदूक छूटते ही वह बो^३ उठा । (ख) वह बच्चा न जाने क्यों सोते से बो^३ उठता है । (ग) सूर्य जुभाते ही वह बो^३कर उठ पड़ा ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।—पड़ना ।

२. बो^३लना होना । खबरबार होना । सतर्क होना । जैसे,—वे तो खपया दिए देते थे, पर उसकी पिछली बातें याद कर बो^३ गए ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३. चकित होना । भीचका होना । हैरान होना । विस्मित होना । जैसे,—उसके मरने का हाल सुनकर वे बो^३कर कहने लगे,—'हैं अभी तो मैंने उसको कल देखा था' ।

क्रि० प्र०—उठना ।—पड़ना ।

४. किसी कार्य में प्रवृत्त होने से डरना । भय या आशंका से हिचकना । भड़कना । जैसे,—बो^३ते क्यों हो, इसे हाथ में लेते क्यों नहीं । ५. किसी आशंका या ग्राह्य के कारण जानबरो' का भड़कना ।

बो^३—क्रि० स० [हि० बो^३ना का प्रेरक] १. एकबारगी भय उत्पन्न करके चंचल कर देना । जी पड़का देना । भड़काना । जैसे,—उसने बाजा बजाकर बो^३ को बो^३ दिया । २. बो^३लना करना । खबरबार करना । सतर्क करना । किसी बात का खटका पैदा कर देना । भड़काना । जैसे,—सुम यों ही हमारे गाहकों को बो^३ दिया करते हो । ३. चकित करना । विस्मित करना । आश्चर्य में डालना ।

बो^३—संज्ञा पु० [हि० बो + फा० चह] सिंचाई के लिये पानी हकट्टा करने का वह गड्ढा जिसमें नीचे से पानी चढ़ाकर लाया जाता है ।

बो^३—क्रि० स० [हि० बूटना या चोटना] चूटकी के छहारे तोड़ना । चोटना ।

बो^३—संज्ञा पु० [सं० बूडाला या भूतोबुद्धा] सफेद धुँबसी । भूत चिरमिटी ।

बो^३—संज्ञा पु० [हि० बंडोल] दे० 'बंडोल' ।

बो^३—संज्ञा पु० [सं० बुएडा] वह स्थान जहाँ खेत सींचनेवाले कूप ।

से मोट द्वारा खचवा जाहे से दोगला या बेड़ी द्वारा निकालकर पानी गिराते हैं। पावी गिराने की कुएँ की डाल। चित्तारा। लिलारी।

चौडा^१—संज्ञा पुं० [हि० चौड़ा] दे० 'चोड़ा'। (स्त्रियों के सिर का बाल)।

चौडा^२—संज्ञा पुं० [हि० चौड़ा] दे० 'चोड़ा'।

चौतरा^१—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्वार, हि० चौतरा] दे० 'चतुतरा'।

चौतिस^१—वि० [सं० चतुर्विंशत्, प्रा० चतुत्तिसो, पा० चत्तीसो] जो गिनती में तीस और चार हो।

चौतिस^२—संज्ञा पुं० तीस और चार की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—३४।

चौतिसवाँ—वि० [हि० चौतिस + वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में तैनीसवें के उपरांत पड़े। जिसका स्थान तैनीस और वस्तुओं के पीछे हो।

चौतीस^१—वि०, संज्ञा पुं० [हि० चौतिस] दे० 'चौतिस'।

चौध—संज्ञा स्त्री० [सं० च० च० (= चमकना) या चौ (= चारो ओर) + धंघ] अत्यंत अधिक चमक या प्रकाश के सामने दृष्टि की अस्थिरता। चकाचौध। तिलमिलाहट।

चौधना^१—क्रि० प्र० [हि० चौध] १. किसी वस्तु का दृष्टिगत प्रकाशित होना। चमकना। चौध होना। २. तेज प्रकाश आँखों पर पड़ने से अंधकार के अलावा कुछ न दिखाई देना।

चौधा^१—संज्ञा पुं० [हि० चौध] चकाचौध।

चौधा^२—संज्ञा पुं० [सं० चतुर् + ध्यान] सावधानता। जागरूकता। सतर्कता।

चौं—चौधा चाटक = सावधानी और प्रतिभा।

चौधियाना—क्रि० प्र० [हि० चौध] १. अत्यंत अधिक चमक या प्रकाश के सामने दृष्टि का स्थिर न रह सकना। चकाचौध होना। जैसे,—आँख चौधियाना। २. दृष्टि मंद होना। आँखों से सुझाई न पड़ना (तिरस्कार)।

चौधी—संज्ञा स्त्री० [हि० चौध] १. चकाचौध। तिलमिलाहट। उ०—चितवत मोहि लगी चौधी सी जानो न कोन कहाँ ते आए।—तुलसी (शब्द०)। २. आँखों का एक रोग जो दिन में बराबर ताप जानें से या कमजोरी से हो जाता है। इसके रोगी को रात में केवल रोशनी दिखाई देती है और कुछ नहीं।

चौप^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चौप] दे० 'चोप'।

चौरगाय—संज्ञा स्त्री० [हि० चौर + गाय] सुर नाम की गाय।

चौर—संज्ञा पुं० [सं० चामर] १. सुरा या चोरी मृग (= चामर मृग) गाय की पूँख के बालों का गुच्छा जो एक डंड़ी में लगा रहता है और पीछे या बगल से राजा महाराजाधों या देवपुत्रियों के सिरों पर इसलिये हिलाया जाता है जिसमें मस्त्रियाँ आदि न बैठने पावें। चँवर। दे० 'चँवर'।

क्रि० प्र०—करना।—डुलाना।—होना।

मुहा० चौर डलना = सिर पर चँवर हिलाया जाना। चौर डालना = सिर पर चौर हिलाना। चौर डरना = दे० 'चौर डलना'। चौर डुराना = दे० 'चौर डालना'।

२. भठभाँड की जड़। सत्यानाशी की जड़। चोक। ३. पिगल

में मगल के पहले मेद (५) की संज्ञा। जैसे, चौ.....। ४. आसर। कुँवना। उ०—(क) तैस चौर बनाए भी बाँसे गल भँप। बँसे सेत गजगाह तहँ जो देखे सो कंष।—बायसी (शब्द०)। (ख) बहु फूल की माख लपेटि के खंमन धूप सुगंध सो ताहि बुपाइए। तापे चहँ दिसि बंद छपा है सुसोषित चौर घने लटकाइए।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

चौरा^१—संज्ञा पुं० [सं० चुएड (= गड्ढा)] १. घनाज रखने का गड्ढा। गाड़। २. चौड़ा।

चौरा^२—संज्ञा पुं० [हि०] चँवर। चौर। उ०—तीन एक चंडोल में, रैदास गाह कबीर। गरीबवास चौरा करे, बादशाह बनबीर।—कबीर मं०, पृ० १२१।

चौरा^३—संज्ञा पुं० [हि० चौर + धा (प्रत्य०)] सफेद पूँछवाला बैल।

चौराना^१—क्रि० [सं० चामर] १. चँवर डुलाना। चँवर करना। २. कूँबा फेरना। झाड़ू देना। जुहारना। उ०—चौरावत सब राजमग बंदन जल छिरकाइ। प्रकट पताका घर घरन बाँधत द्विय हरसाइ।—पद्माकर (शब्द०)।

चौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० चामर, हि० चौर + ई (प्रत्य०)] १. काठ की डंडी में लगा हुआ घोड़े की पूँख के बालों का गुच्छा जो मस्त्रियाँ उड़ाने के काम में आता है। घोड़े के सवार इसे प्रायः अपने पास रखते हैं। २. वह डोरी जिससे स्त्रियाँ सिर के बाल गुँथकर बाँधती हैं। चोटी या वेणी बाँधने की डोरी। उ०—चौरी डोरी विगलित केश। भूमत लटकत मुकुट मुदेष।—सूर (शब्द०)। ३. सफेद पूँछवाली गाय। ४. सुरा गाय। ५. किसी चीज के आगे लटकनेवाला कुँवना।

चौसठ^१—वि० [सं० चतुर्विंश, प्रा० चत्तसठि] जो गिनती में साठ और चार हो।

चौसठ^२—संज्ञा पुं० साठ और चार की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—६४।

चौसठवाँ—वि० [हि० चौसठ + वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में तिरसठवें के उपरांत पड़े। जिसका स्थान तिरसठ और वस्तुओं के बाद हो।

चौहा^१—संज्ञा पुं० [दे०] दे० 'गलफड़ा'।

चौही^१—संज्ञा स्त्री० [दे०] इस की एक लकड़ी जिसे परिहारी भी कहते हैं।

चौ^१—वि० [सं० चतुः, प्रा० चउ] चार (संख्या)।

चौ—चौपहल। चौबगला। चौमासा। चौघड़ा।

चिरौघ—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग अब समाप्त हो में होता है।

चौ^२—संज्ञा पुं० मोती तोलने का एक मान। जोहरियों का एक ताल।

चौ^३—प्रत्य० [सं० स्य अथवा स्यक्, प्रा० चवधा, तुल० मरा० चा] [अन्य रूप चह, चउ, चौ, चो] संबंध कारक की विभक्ति। का। उ०—सादूली लाजें ससी, घात करण घिरताह। कुंभायत चौ लाय पल, गजमोती खिरताह।—बाँकी मं०, भाग० १, पृ० ३१।

चौघन—वि०, संज्ञा पुं० [हि० चौघन] दे० 'चौघन'।

चौधारी—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पाद] गाय, बैल, जैसे भारि पशु । चौपाया । (विशेषकर गाय बैल के लिये) ।

चौधारी—संज्ञा पुं० [हि० चौ (= चार)] १. हाथ की चार उँगलियों का विस्तार । चार अंगुल की माप । २. ताश का वह पत्ता जिसपर चार दूटियाँ हों । वि० दे० 'चौवा' ।

चौधारी—संज्ञा स्त्री० [हि० चौधारी] दे० 'चौवा' ।

चौधाना—क्रि० प्र० [हि० चौकना] १. चकपकाना । चकित होना । विस्मित होना । उ०—भोर भए जागे यतिराई । चहुँ दिशि ललत भए चौधारी ।—रघुराज (शब्द०) । २. चौकना होना । चबरा जाना । उ०—साँच दाम जेतनो रह्यो, तेतनो लिख्यो देखान । पीपा कहूँ तू बावरो, वणिक चित्त चौधाम ।—रघुराज (शब्द०) । ३. सतर्क होना ।

चौक—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्क, प्रा० चतुष्क] १. चौकीर भूमि । चौखूँटी खुली जमीन । २. घर के बीच की कोठरियों और बरामदों से घिरा हुआ वह चौखूँटा स्थान जिसके ऊपर किसी प्रकार की छाजन न हो । घाँगन । सहन । ३. चौखूँटा चबूतरा । बड़ी वेदी । ४. मंगल अवसरों पर घाँगन में या और किसी समतल भूमि पर घाटे, मबीर आदि की रेखाओं से बना हुआ चौखूँटा क्षेत्र जिसमें कई प्रकार के खाने और चित्र बने रहते हैं । इसी क्षेत्र के ऊपर देवताओं का पूजन आदि होता है । उ०—(क) कदली खंभ, चौक मोतिन के, बाँधे बंधनवार ।—सूर (शब्द०) । (ख) मंगलचार भए घर घर में मोतिन चौक पुराए ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पूरना ।—बँठना ।

५. नगर के बीच में वह लंबा चौड़ा खुला स्थान जहाँ बड़ी बड़ी दुकानें आदि हों । शहर का बड़ा बाजार ।

६. वेश्याओं की बस्ती या मुहल्ला जो अधिकतर चौक या मुख्य चौराहों के पास होता है । उ०—चौक में जाके अपने कूनवे की किसी को बिठाओ । लुट जाके बैठो ।—सेर०, भा० १, पृ० २८ ।

मुहा०—चौक में बँठना=वेश्यावृत्ति करना । वेश्या का पंथा या पेशा करना । उ०—जो चौक में बैठना होता तो यह छद्म रूपे और खाने पर न पड़े रहते ।—सेर०, भा० १, पृ० २८ ।

७. नगर के बीच का वह स्थान जहाँ से चारों ओर रास्ते गए हों । चौराहा । चौमुहानो । ८. चौसर खेलने का कपड़ा । बिसात । उ०—राखि सत्रह पुनि अठारह ओर पाँचों भारि । भारि दे तू तीन काने चतुर चौक निहारि ।—सूर (शब्द०) ।

९. सामने के चार बातों की पंक्ति । उ०—बसन चौक बैठे जनु हीरा । भी बिच बिच रंग स्याम गँभीरा ।—जायसी (शब्द०) ।

१०. सीमंत कर्म । अठवाँसा । ओढ़े । ११. चार समूह । उ०—पुनि सोरहो सिंगार जस चारिहु चौक कुलीन । दीरघ चारि चारि लघु चारि सुमट चौ खीन ।—जायसी (शब्द०) ।

चौकगोभी—संज्ञा स्त्री० [देश० चौक ? + हि० गोभी] एक प्रकार की गोभी ।

चौकचाँदनी—संज्ञा स्त्री० [हि० चौक + चाँदनी] भादों के कृष्ण पक्ष में पड़नेवाला एक त्योहार ।

चौकठ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चौखट' ।

क्रि० प्र०—पूजना=मुख्य द्वार पर किवाड़ लगाते समय एक प्रकार का पूजन संस्कार करना जो मंगल के लिये होता है ।—साधना ।

चौकठा—संज्ञा पुं० [हि० चौकठ] दे० 'चौखटा' ।

चौकड़—वि० [हि० चौ + सं० कला (= अंग, भाग)] दुस्त । बढ़िया । अच्छा । जैसे,—चौकड़ माल ।—(बाजारू) ।

चौकड़पाऊँ—संज्ञा पुं० [१.] बूंदेलखंड में होली के दिनों में गाया जानेवाला एक गीत ।

चौकड़ा—संज्ञा पुं० [हि० चौ + कड़ा] १. कान में पहनने की बाली जिसमें दो दो मोती हों । २. फसल की एक प्रकार की बँटाई जिसमें से जमींदार को चौधारी मिलता है ।

चौकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ (= चार) + सं० कला (= अंग)] १. हरिण की वह ढीङ्ग जिसमें वह चारों पैर एक साथ फँकता हुआ जाता है । चौफाल कुदान । फनांग । कुलाच । उडान । छलांग ।

क्रि० प्र०—भरना ।

मुहा०—चौकड़ी भूल जाना=एक भी चाल न सूझना । बुद्धि का काम न करना । किकर्तव्यविमूढ़ होना । सितपिटा जाना । चबरा जाना । भोक्का रह जाना ।

२. चार आदमियों का गुट । मंडली ।

चौ०—चाँबाल चौकड़ी=उपद्रवी मनुष्यों की मंडली ।

३. एक प्रकार का गहना । ४. चार युगों का समूह । चतुर्युगी । ५. पलखी ।

क्रि० प्र०—भारना ।

६. चारपाई की वह नुनावट जिसमें चार चार सुतलियाँ इकट्ठी करके जुनी गई हों ।

७. मंदिरों का शिखर जो चार खंभों पर स्थित रहता हो ।

चौकड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ + घोड़ी] वह गाड़ी जिसमें चार घोड़े जुते । चार घोड़ों की गाड़ी ।

चौकनिकास—संज्ञा पुं० [हि० चौक + निकास] वह कर या महसूल जो किसी चौक (बाजार) में बैठनेवाले दुकानदारों से लिया जाता है ।

चौकना—क्रि० प्र० [हि० चौकना] दे० 'चौकना' । उ०—देव कहाँ कहों राधिका के गुन तो तिन सीतिन के डर सारैं । प्राजु लो लाज लजी चित चौकति सोख यथोचित सादर चालैं ।—देव प्र०, पृ० ६५ ।

चौकना—वि० [हि० चौ (= चारों ओर) + कान] १. सावधान । होशियार । चौकस । सजग ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२. चौका हुआ । आशंकित । ३. विपत्ति का सामना करने के लिये प्रस्तुत ।

चौकरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चौकड़ी] दे० 'चौकड़ी' ।

चौकल—संज्ञा पुं० [सं०] चार मात्राओं का समूह । इसके पवित्रमेद हैं (ऽऽ, ऽऽऽ, ऽऽऽऽ, ऽऽऽऽऽ) ।

चौकलियाई—वि० [हि० छिनुला] छिलकेदार । उ०—हूँ तो राखन

कैती बीबा दारि, चौकलमाई राब गई।—पीटार ग्रामि०
पृ०, पृ० ६५६।

चौकस—वि० [हि० चौ (= चार) + (कस = कसा हुआ)] १. साव-
धान। सचेत। चौकन्ना। होशियार। खबरदार। २. ठीक।
बुद्धिमान। पूरा। जैसे,—चौकस भास।

चौकसाई—संज्ञा स्त्री [हि० चौकसो] १० 'चौकसी'।

चौकसी—संज्ञा स्त्री [हि० चौकस + ई (प्रत्यय)] सावधानी। होश-
यारी। निगरानी। निगहबानी। खबरदारी।

कि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

चौका—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्क, प्रा० चतुष्क] १. पत्थर का चौकोर
टुकड़ा। चौखंडी सिल। २. काठ या पत्थर का घाटा जिसपर
रोटी बेलते हैं। चकला। ३. सामने के चार दाँतों की
पंक्ति। उ०—नैकु हंसोही जानि तबि लख्यो परत मुँहु गोठि।
चौका चमकनि चौंघि मे परति चौंघि सी डोठि।—बिहारी
(शब्द०)। ४. सिर का एक गहना। सीसफूल। ५. वह
ईंट जिसकी लंबाई चौड़ाई बराबर हो। ६. वह लिपा पुता
स्थान जहाँ हिंदू लोग रसोई बनाते खाते हैं। (इस स्थानपर
बाहरी खोख या बिना नहाए धोए घर के लोग भी नहीं
जाने पाते।) ७. मिट्टी या गोबर का लेप जो सफाई के
लिये किसी स्थान पर किया जाय। मिट्टी या गोबर की तह
जो लीपने या पोतने में भूमि पर चढ़े।

कि० प्र०—देना।—केरना।—खगाना।

चौ०—चौका बरतन। चौका बासन = बरतन मंजना और रसोई-
घर की सफाई तथा लिपाई पुताई करना। उ०—कुछ दिनों
से चौकर हटाकर घर का काम बंधा करना शुरू कर दिया है,
चौका बासन भी करती है।—सुनीता, पृ० २२। चौकाचार =
चौके बूल्हे का आचार। उ०—चौकाचार विचार राग
अनुरागेई।—जग० ज०, पृ० ६१। चौके की रीढ़ = जो
विवाह के तुरंत बाद ही विधवा हो गई हो।

मुहा०—चौका बरतन करना = बरतन मंजने और रसोई का
घर लीपने पोतने का काम करना। चौका बोलना = दे०
'चौका लगाना'। चौका लगाना = (१) लीप पोतकर बराबर
करना। (२) सत्यानाश करना। चौपट करना। उ०—कियो
तीन तेरह सबै चौका चौका साय।—हरिचंद्र (शब्द०)।
८. एक प्रकार का जंगली बकरा जिसे सींग होते हैं।

विशेष—यह प्रायः जलाशय के आसपास की झाड़ियों में रहता
है। रंग इसका बादामी होता है। यह २ फुट ऊँचा और
४, ५ फुट लंबा होता है। बचपन ही से यदि यह पाला
जाय तो रह सकता है। इसके बाल पतले और कसे होते हैं।
इसे चौंसिय भी कहते हैं।

९. एक ही स्थान पर मिला या सटाकर रखी हुई एक ही प्रकार
की चार वस्तुओं का समूह। जैसे, पंगोछे का चौका, चुनरी
का चौका, चौकी का चौका, मोलियों का चौका। १०. ताब
का वह पत्ता जिसमें चार बूटियाँ हों। जैसे, ईंट का चौका।
११. एक प्रकार का मोटा कपड़ा जो कर्ण या आंख बनाने
के काम में आता है। १२. एक बरतन का नाम। १३.

किसी स्थान को लीपकर उसमें घाटे से रखाएँ पारना। इस
स्थान पर पवित्र कार्य या विवाह आदि होता है। १३. कुर्चा
भरना। उ०—हमारी कुम्भित मोड़ी जुते हुए खेत में चौका
बलती है।—ज्ञान०, पृ० ६६।

चौकाज—वि० [?] चौगुना। उ०—मुष्क से छुणवू में रेसम से चमक
में ये चौकासे हैं। जुल्फ के फंदे तुम्हारे सबसे यार निरासे हैं।
—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० २०२।

चौकिया सोहागा—संज्ञा पुं० [हि० चौको + सोहागा] छोटे छोटे
टुकड़ों में कटा हुआ सोहागा जो मोषध के लिये विशेष
उपयुक्त होता है।

चौकी—संज्ञा स्त्री [सं० चतुष्की] १. काठ या पत्थर का चौकोर
आसन जिसमें चार पाए लगे हों। छोटा तख्त। उ०—चौक
में चौकी जराय जरी जिहि पै खरी बार बगारत सोमे।
—पद्माकर (शब्द०)। २. कुरसी।

मुहा०—चौकी देना = बैठने के लिये कुरसी देना। कुरसी
पर बैठाना।

३. मंदिर में मंडप की ओर के खंभों के ऊपर का वह घेरा
जिसपर उसका शिखर स्थित रहता है। ४. मंदिर में
मंडप के खंभों के बीच का स्थान जिसमें से होकर मंडप
में प्रवेश करते हैं। ५. पड़ाव या ठहरने की जगह। टिकान।
अड्डा। सराय। जैसे,—चले चलो, आगे की चौकी पर
डैरा डालेंगे।

मुहा०—चौकी जाना = कसब कमाने जाना। खरबी पर जाना।

६. वह स्थान जहाँ आसपास की रक्षा के लिये थोड़े से सिपाही
आदि रहते हों। जैसे, पुलिस की चौकी। ७. किसी वस्तु
की रक्षा के लिये या किसी व्यक्ति को आगने से रोकने के
लिये रखकों या सिपाहियों की नियुक्ति। पहरा। खबर-
दारी। रखवाली। उ०—करिकें निसक तट बट के तरे
तू बास चौके मत चौकी यहाँ पाहूँ हमारे की।—कविद
(शब्द०)।

चौ०—चौकी पहरा।

मुहा०—चौकी देना = पहरा देना। रखवाली करना। चौकी
बैठना = पहरा बैठना या निगरानी के लिये सिपाही तैनात
होना। चौकी बैठाना = पहरा बैठाना। खबरदारी के लिये
पहरा बैठाना। चौकी भरना = पहरा पूरा करना। अपनी
बारी के अनुसार पहरा देना।

८. वह भेट या पूजा जो किसी देवी, देवता, ब्रह्म, पीर आदि के
स्थान पर चढ़ाई जाती है।

मुहा०—चौकी भरना = किसी देवी या देवता के दर्शनों को मन्नत
के अनुसार जाना। ९. जादू। टोना। १०. तेलियों के कोल्हू
में लगी हुई एक लकड़ी। ११. गले में पहनने का एक
गहना जिसमें चौकोर पट्टी होती है। एक प्रकार की जुवनी।
पट्टी। उ०—(क) चौकी बदलि परी प्यारे हरि।—हरिदास
(शब्द०)। (ख) मानो लसी तुलसी हनुमान हिए जब जीत
जराय के चौकी।—गुलसी (शब्द०) १२. रोटी बेलने का

छोटा चकत्ता । ११. भेड़ों और बकरियों का रात के समय किसी छेत में रहना ।

विशेष—खाद के लिये किसान प्रायः भेड़ों को छेत में रखते हैं, जिनके मल मूत्र से खाद होती है ।

१४. मेलों के व्यवसर पर निकलनेवाली देवमूर्तियों की सवारी ।
क्रि० प्र०—उठना । —चलना । —पहुँचना ।

चौकीदार—संज्ञा पुं० [हि० चौकी + दार] १. पहरा देने-वाला । २. गोदत । ३. वह खूँटा जो महतो की बगल में भाँव की डोरी फँसाने के लिये गड़ा रहता है । (जुलाहे) ।

चौकीदारा—संज्ञा पुं० [हि० चौकीदार + द्रा (प्रत्य०)] चौकीदार रखने का चंदा । चौकीदारी ।

चौकीदारी—संज्ञा स्त्री० [हि० चौकीदार + ई (प्रत्य०)] १. पहरा देने का काम । रखवाली । पहरेदारी । २. चौकीदार का पद । ३. वह चंदा या कर जो चौकीदार रखने के लिये दिया जाय ।

चौकीदोड़—संज्ञा स्त्री० [हि० चौकी + दोड़] प्रतियोगिकात्मक दोड़ का एक प्रकार जिसमें दोड़नेवालों के लिये चौकियाँ रखी रहती हैं ।

चौकुरा—संज्ञा पुं० [हि० चौ (=चार) + कुरा] फसल की बटाई जिसमें से तीन चौथाई ग्रामी और एक चौथाई जमींदार लेता है ।

चौकोना—वि० [सं० चौ + कोन] दे० 'चौकोना' ।

चौकोना—वि० [सं० चतुष्कोण, प्रा० चउक्कोण] [स्त्री० चौकोनी] [वि० चौकोनिया] जिसके चार कोने हों । चौखूँटा । चतुष्कोण ।

चौकोर—वि० [सं० चतुष्कोण, प्रा० चउक्कोण] १. जिसके चार कोने हों । चौखूँटा । चतुष्कोण । २. क्षत्रियों की एक जाति या शाखा ।

चौक—वि० [सं०] १. पवित्र । निर्मल । स्वच्छ । २. सुंदर । लुभावना । प्रार्थनादायक । ३. चोखा [को०] ।

चौखंड^१—संज्ञा पुं० [देश०] [वि० चौखंडी] १. वह घर जिसमें चार खंड हों । चौमंजिला मकान । २. वह घर जिसमें चार भागन या चौक हों ।

चौखंड^२—वि० चार खंडोंवाला । उ०—घासन वासन मानुस अंडा । भए चौखंड जो ऐस पखंडा ।—जायसी (शब्द०) ।

चौखंडा^१—संज्ञा पुं० [हि० चौखंड + द्रा (प्रत्य०)] दे० 'चौखंड' ।

चौखंडा^२—संज्ञा पुं० [हि० चखोड़ा] डीठा । धनख । काला विट्ट जिससे स्त्रियाँ बच्चों के सिर में इसलिये लगा देती हैं जिससे उन्हें नजर न लगे । बिठोना । उ०—पुनि नैनन महँ काजर कीरहा । विष्टिनेवार चौखंडा धीन्हा ।—चित्रा०, पृ० १६७ ।

चौखंडी—संज्ञा पुं० [हि० चौखंड] चौवाल । बैठक । उ०—ता ऊपर चौ कुंवर मंडी । सौ चित्रावलि की चौखंडी ।—चित्रा०, पृ० १० ।

चौखट—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ (=चार) + काठ] १. द्वार पर लगा हुआ चार लकड़ियों का ढाँचा जिसमें किवाड़ के पत्ते, लगे रहते हैं । २. देहली । बेहरी । बहलीज ।

मुहा०—चौखट लीधना=घर के अंदर या बाहर जगना ।

चौखटा—संज्ञा पुं० [हि० चौखट] दे० १. 'चौखट' । २. चार लकड़ियों का ढाँचा जिसमें मुँह देखने का या तलवीर का लीधा चढ़ा जाता है । धाड़ना, तलवीर धाड़ि का फेम ।

चौखना^१—क्रि० सं० [हि० सं० चौखण, चौखना] चकना । आस्वादन करता । उ०—मोने बरिस धन सुनिवारे चौखतह तपु नाम ।—विद्यापति, पृ० ३४३ ।

चौखना^२—वि० [हि० चौ + सं० खण्ड > हि० खन (जंते, सतखन)] चार खंड का । चौमंजिला (मकान) ।

चौखाना—संज्ञा पुं० [हि० चौ + खाना] वह स्थान जहाँ चार गाँवों की सीमा मिलती हो ।

चौखाना^२—वि०, संज्ञा पुं० [हि० चारखाना] दे० 'चारखाना' ।

चौखानि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ (=चार) + खानि (=जाति, प्रकार)] अंडज, पिंडज, स्वेदज, उद्भिज आदि चार प्रकार के जीव । उ०—मानुष ते बड़ पापिया, प्रक्षर गुर्वहि न मानि । चार चार मन कुकुही गर्म धरे चौखानि ।—कबीर (शब्द०) ।

चौखूँट^१—संज्ञा पुं० [हि० चौ + खूँट] १. चारो दिशा । २. भुमंडल ।

चौखूँट^२—क्रि० वि० चारो ओर ।

चौखूँट^३—वि० दे० चौखूँटा ।

चौखूँटा—वि० [हि० चौ + खूँट] जिसमें चार कोने हों । चौकोना । चतुष्कोण ।

चौगड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि० चौ + गड़ (=पैर)] १. खरहा । खरगोश ।

चौगड़ा^२—वि० चार पैरोंवाला ।

चौगड़ा^३—संज्ञा पुं० [हि० चौगड़ा] दे० 'चौगड़ा' ।

चौगड़ा—संज्ञा पुं० [हि० चौ + गड़ (=मेल)] १. वह स्थान जहाँ चार गाँवों की सीमा मिली हो । चौहड़ा । चौसिहा । चौखा । २. चार चीजों का समुह ।

चौगड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ + गड़ा] बाँस की फट्टियों का वह ढाँचा जिसमें जानवर फँसाते हैं ।

चौगान—संज्ञा पुं० [प्रा०] १. एक खेल जिसमें लकड़ी के बल्ले से गेंद मारते हैं । यह छोटे पर चढ़कर भी खेला जाता है । यह खेल हाकी या पोलो नामक अंगरेजी खेलों के ही समान होता है । उ०—(क) ते तब सिर कुंदुक सम नाना । खेलिहहि भालु कीस चौगाना ।—मानस ६। २। (ख) श्री मोहन खेलत चौगान । द्वारावती कोट कंचन में रच्यो रुचिर मैदान । यादव नीर बराह बटाई एक हलधर एक धापे ओर । निकसे सब कुंवर असवारी उच्चैःश्रवा के पोर । लीले सुरंग, कुमैत श्याम तेहि पर बं सब मन रंग ।—सूर (शब्द०) । २. चौगान खेलने की लकड़ी जो धागे की ओर टेढ़ी या झुकी होती है । उ०—(क) कर कमलनि विचित्र चौगाने खेलन लगे खेल रिभ्रप ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) लै चौगान बटा करि प्रागे प्रभु पाए जब बाहर । सूर श्याम पूछत सब खालन खेलेंगे केहु ठाहर ।—सूर (शब्द०) । ३. चौगान खेलने का मैदान । उ०—अंतःपुर चौगान लौ निकसत कसमस होइ । नरनारी

बावत सुख आवत पूछत कोठ नहि कोइ ।—रघुराज (शब्द०)।

४. नगाड़ा बजाने की लकड़ी।

चौगासी—संज्ञा स्त्री० [फा० चोगान ?] हुनके की सीधी नली जिससे घुमा खींचते हैं। निगासी। सटक।

चौगिर्ह—क्रि० वि० [हि० चौ + फा० बिर्ह (= तरफ)] चारो ओर। चारो तरफ।

चौगुना—वि० [चतुर्गुण, हि० चौगुना] दे० 'चौगुना'।

चौगुना—वि० [सं० चतुर्गुण, प्रा० चतुर्गुण] [वि० स्त्री० चौगुनी] चार बार और उतना ही। चतुर्गुण। चहारबंद।

मुहा०—मन चौगुना होना = उत्साह बढ़ना। चित्त और प्रसन्न होना। उ०—विध्यावली तिया सी न देखी कहूँ तिया नैना धीप्यो प्रभु पिया देखि कियो मन चौगुना।—प्रिया (शब्द०)।

चौगुना—वि० [हि० चौगुना] दे० 'चौगुना'। उ०—चौगुना रंगु चढयो बित्त मै चुनरी के चुवात जला के निचोरत।—देव प्र०, पृ० १५०।

चौगून—वि० [हि० चौगुन] दे० 'चौगुना'।

चौगून—संज्ञा पुं० [हि० चौगुना] १. चौगुना होने का भाव। २. प्रारंभ में गाने या बजाने में जितना समय लगाया जाय, प्रागे चलकर उसके चौथाई समय में गाना या बजाना। दून से भी प्रागे समय में गाना या बजाना।

विशेष—प्रायः किसी चीज के गाने या बजाने का प्रारंभ धीरे धीरे होता है, पर प्रागे चलकर उसकी लय बढा दी जाती है और वही गाना या बजाना जल्दी जल्दी होने लगता है। जब गाना या बजाना साधारण समय से प्रागे समय में हो, तब उसे दून, जब तिहाई समय में हो, तब उसे तिगून और जब चौथाई समय में हो, तब उसे चौगून कहते हैं।

चौगोड़ा—वि० [हि० चौ (= चार) + गोड़ (= पैर)] चार पैरोंवाला।

चौगोड़ा—संज्ञा पुं० खरगोश। खरहा।

चौगोड़िया—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ (= चार) + गोड़ (= पैर)] १. एक प्रकार की ऊँची चौकी जिसके पायों में चढ़ने के लिये सीढ़ी की तरह बड़े लगे रहते हैं। टिकटी।

विशेष—यह छत, दीवार आदि ऊँचे स्थानों तक पहुँचने, झाड़ने पोंछने, सफेदी या रंग आदि करने के काम में आती है।

२. बाँस की तीलियों का बना हुआ एक ढाँचा या फंदा जिसके चारों पत्तों में तेल में पकाया हुआ पीपल का गोँद लगा रहता है।

विशेष—बहेलिए इससे चिड़िया फँसाते हैं।

† ३. मेंढक। मंडक।

चौगोशा—संज्ञा पुं० [हि० चौ + फा० गोशा] चौखूँटी तफ्तरी जिसमें मेवे, मिठाइयाँ आदि रखकर कहीं भेजते हैं।

चौगोशिया—वि० स्त्री० [फा०] चार कोनेवाली।

चौगोशिया—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की टोपी जो कपड़े के चार तिकोने टुकड़ों की सीकर बनाई जाती है।

चौगोशिया—संज्ञा पुं० गुरकी घोड़ा।

चौघड़—संज्ञा पुं० [हि० चौ (= चार) + ढाड़] किनारे का वह चौड़ा

और बिपटा दाँत जो आहार कूँचने वा चबाने के काम में आता है।

चौघड़ा—संज्ञा पुं० [हि० चौ (= चार) + घर (= खाना)] १. चाँदी सोने आदि का बना हुआ एक प्रकार का डिब्बा जिसमें चार खाने बने होते हैं।

विशेष—यह कई आकार का बनता है। विशेषतः गोल होता है और खाने फूल की पंजुड़ी के आकार के बनाए जाते हैं। इन खानों में इलायची, लौंग, जाबिनी, सुपारी इत्यादि भरकर महुफिस्तों में रखते हैं।

२. चार खानों का बरतन जिसमें मसाला आदि रखते हैं। ३. दीवाली के दिनों में बिकनेवाला मिट्टी का एक खिलौना जिसमें आपस में जुड़ी हुई चार छोटी छोटी कुल्हियाँ होती हैं। लड़के इसमें मिठाई आदि रखकर खाते हैं। ४. परत की खोंगी जिसमें चार बीड़े पान हों। जैसे,—दो चौघड़े उभर दे घाघो। ५. बड़ी जाति की गुजराती इलायची। ६. एक प्रकार का बाजा। चौडोल। उ०—सौ तुषार तेइस गज पावा। दुंदुभि श्री चौघड़ा दियावा।—जायसी (शब्द०)।

चौघड़िया—वि० [हि० चौ (= चार) + घड़ी + हया (प्रत्य०)] चार घड़ियों का। चार घड़ी संबंधी। जैसे, चौघड़िया मुहूर्त।

चौघड़िया—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ (= चार) + गोड़ा (= पावा)] एक प्रकार की छोटी ऊँची चौकी जिसमें चार पावे होते हैं। तिरपाई। तिपाई। स्टूल।

चौघड़िया मुहूर्त—संज्ञा पुं० [हि० चौघड़िया + सं० मुहूर्त] एक प्रकार का मुहूर्त जो प्रायः किसी जल्दी के काम के लिये, एक दो दिन के अंदर ही निकाला जाता है।

विशेष—जब कोई शुभ मुहूर्त दूर होता है, और यात्रा या इसी प्रकार का और कोई काम जल्दी करना होता है, तब इस प्रकार मुहूर्त निकलवाया जाता है। ऐसा मुहूर्त दिन के दिन या एक दो दिन के अंदर ही निकला जाता है। ऐसा मुहूर्त घड़ी, दो घड़ी या चार घड़ी का होता है और उतने ही समय में उस कार्य को प्रारंभ कर दिया जाता है।

चौघड़ी—वि० स्त्री० [हि० चौ + घेरा] चार तह की। चार परत की।

चौघरा—वि० [देश०] घोड़ों की एक चाल। चौफाल। पोइया। सरपट। उ०—प्रबलक अबरस लखी सिराजी। चौघर चाल समुंद सब ताजी।—जायसी (शब्द०)।

चौघर—संज्ञा पुं० [हि० चौघड़] दे० 'चौघड़'।

चौघरा—संज्ञा पुं० [हि० चौ + घर] १. पीपल की दीपट जिसके दीये में चार बतियाँ जलती हैं। २. दे० 'चौघड़ा'।

चौघरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] गहनार्द्र। रोशनचौकी। उ०—बाजन लागु चपल चौघरिया बित्त चतुरता भागि रे।—धरनी०, पृ० २८।

चौघोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ + घोड़ा] चौकड़ी गाड़ी। चार घोड़ों की गाड़ी या रथ।

चौबंद—संज्ञा पुं० [हि० चौब + बंद या चबाव + बंद] १. कलंक-सुषक अपवाद। बदनामी की चर्चा। निंदा। उ०—सक्ति।

हो या रंगिले के रंगी रंगी ये बचावने चौबंद कीचो करे ।
—चुं० सत० (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—चौबंद पारना = बचाव करना । बदनामो करना ।

२. ओर । उ०—चित चौपन बाह के चौबंद में हहराय हिराय के हारि परों ।—घनानंद, पृ० २६ ।

चौबंदहाई—वि० बी० [हि० चौबंद + हाई (प्रत्य०)] बचाव करनेवाली । बदनामी फैलावेवाली । दूसरों की बुराई करनेवाली । उ०—चौबंदहाई जरै ब्रज की जे परायो बनो सब भक्ति बिगारै ।—ठाकुर (शब्द०) ।

चौज—संज्ञा पुं० [हि० चौज] दे० 'चोज' ।

चौजाम—संज्ञा पुं० [हि० चौ + जाम (=प्रहर)] चार प्रहर ।

चौजामा—वि० [हि० चौजाम + मा (प्रत्य०)] चार प्रहर की । चार प्रहर की । उ०—मुसाफिर बेत करो निसि बीत गई चौजामा ।—भारतेंदु प्र०, भाग २, पृ० ८४६ ।

चौजुगी—संज्ञा बी० [सं० चतुर्गुणी, हि० चौ + सं० युग] चार युगों का काल ।

चौठी—संज्ञा बी० [सं० चतुर्थी हि०, चौथी] लवनी का चौथा अंग । ताड़ी चुमाने के बतन का चौथा भाग ।

चौजुस—वि० [हि० चौ + सं० युक्त, प्रा० जुक्त] चतुर्दिक् । चारो ओर ।

चौड़^१—संज्ञा पुं० [सं० चौड] चूड़ाकरण संस्कार ।

चौड़^२—वि० [हि० चौपट] चौपट । सत्यानाश ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

चौड़कर्म—संज्ञा पुं० [सं० चौडकर्मन्] दे० 'चौड़' ।

चौड़ना—क्रि० सं० [हि० चौड़] चौपट करना । सत्यानाश करना ।

चौड़ा^१—वि० [हि० चौ (=चार) + पाट (=चौड़ाई) या सं० चिपिट = चिपटा] [वि० बी० चौड़ी] लंबाई की ओर के दोनों किनारों के बीच विस्तृत । लंबाई से भिन्न दिशा की ओर फैला हुआ । चकला ।

यो०—चौड़ा चकला ।

चौड़ा^२—संज्ञा पुं० [सं० चुटा (=कूएँ के पास का गड्ढा)] १. कूएँ के पास का वह गड्ढा जिसमें मोट आदि से निकाला हुआ पानी गिरता है । चौड़ा । २. गड्ढा । वह गड्ढा जिसमें अनाज रखते हैं ।

चौड़ाई—संज्ञा बी० [हि० चौड़ा + ई (प्रत्य०)] लंबाई से भिन्न दिशा की ओर का विस्तार । लंबाई के दोनों किनारों के बीच का फैलाव ।

चौड़ान—संज्ञा बी० [हि० चौड़ा + आन (प्रत्य०)] चौड़ाई ।

चौड़ाना—क्रि० सं० [हि० चौड़ा से नासिक धातु] चौड़ा करना । फैलाना ।

चौड़ावाँ—संज्ञा पुं० [हि० चौड़ा + वाव (प्रत्य०)] दे० 'चौड़ान' ।

चौड़ी—वि० बी० [हि० चौड़ा का बी०] दे० 'चौड़ा' ।

चौडोख^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चंडोल' ।

चौडोख^२—संज्ञा पुं० [हि० चौ + डोल ?] एक प्रकार का बाजा जिसे चौबड़ा भी कहते हैं । उ०—मासपास बाजत चौडोखा । दुंदुभि कीक तूर बफ होला ।—जायसी (शब्द०) ।

चौसगो—वि० [हि० चौ + तांगा] वह डोरा जिसमें चार तांगे लगे हों ।

चौसनियाँ—संज्ञा बी० [हि० चौ (=चार) + तनी (=बंद)] १. चौतनी । उ०—आल तिलक मसि बिदु विराजत सोहति सीस साख चौतनियाँ ।—तुलसी (शब्द०) । २. भँगिया । चौसी । चौबंदी । उ०—नारंगी नीवु उरोजनि जानि दए नख बानर चौतनियाँ में ।—सेवक ग्याम (शब्द०) ।

चौसनिया—संज्ञा बी० [हि० चौतनी + इया (प्रत्य०)] दे० 'चौतनियाँ' । उ०—(क) करत सिंगार चार मेघा मिलि मोभा बरनि न जाइ । चित्र विचित्र सुभग चौतनिया इंदधनुष छवि छाइ ।—सूर (शब्द०) ।

चौतनी—संज्ञा बी० [हि० चौ (=चार) + तनी (=बंद)] बच्चों की टोपी जिसमें चार बंद लगे रहते हैं । उ०—(क) पीत चौतनी सिरन सुहाई ।—तुलसी (शब्द०) (ख) रुबिर चौतनी सुभग सिर मेचक कुण्डि केस । नख सिख सुंदर बंधु होइ मोभा सकल सुदेस ।—मानस, १।२।१६ ।

चौतरका—संज्ञा पुं० [हि० चौ + तड़क (=लकड़ो, बरन)] एक प्रकार का खेमा या तंबू ।

चौतरफ—क्रि० वि०, वि० [हि० चौ + तरफ] चारों ओर । सभी ओर ।

चौतरफा—अव्य० [हि० चौ + तरफ] चारो ओर । चारों तरफ ।

चौतरा^१—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्भुज] दे० 'चतुर्तरा' ।

चौतरा^२—संज्ञा पुं० [हि० चौ + तार] एकतारे की तरह का एक प्रकार का बाजा जिसमें बजाने के लिये चार तार होते हैं ।

चौतरा^३—वि० चार तारोंवाला । जिसमें चार तार हों ।

चौतरिया^१—संज्ञा बी० [हि० चौतरा] छोटा चतुर्तरा ।

चौतरिया^२—वि० [हि० चौ + तार + इया (प्रत्य०)] चार तारोंवाला ।

चौतहा^१—वि० [हि० चौ + तहा] चार तहोंवाला ।

चौतहो—संज्ञा बी० [हि० चौ + तह] खेस की बनावट (बहरिपदार) का एक कपड़ा जो इतना लंबा होता है कि चार तह करके बिछाने पर भी एक मनुष्य के लेटने पर को होता है ।

चौतार—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पद] चौपाया । चतुष्पद ।

चौताला—संज्ञा पुं० [हि० चौ + ताल] १. मृदंग का एक ताल ।

विशेष—इसमें छह दीर्घ अथवा १२ लघु मात्राएँ होती हैं और चार आघात और दो खाली होते हैं । इसका बोल यह है—
धा धा धिनता कत्ता गेदिनता तेटेकता गेदिधिन ।

२. एक प्रकार का गीत जो होखी में गाया जाता है ।

चौताला—वि० [हि० चौ + ताल] चार तालोंवाला । जिसमें चार ताल हों ।

चौधरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कपास की छेंडी या डोडा जिसमें छे कई निकलती है।

चौधुका—वि० [हि० चौ + तुक + प्रा० (प्रत्य०)] जिसमें चार तुक हों।

चौधुका—संज्ञा पुं० एक प्रकार का छंद जिसके चारों चरणों की तुक मिली हो।

चौथ—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्थी, प्रा० चउत्थि, हि० चउथि] १. प्रतिपक्ष की चौथी तिथि। हर पक्षवारे का चौथा दिन। चतुर्थी।

मुहा०—चौथ का चांद = भाद्र शुक्ल चतुर्थी का चंद्रमा जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यदि कोई देख ले तो भूठा कलंक लगता है। उ०—लगे न कहूं ब्रज गलिन में भावत जात कलंक। निरखि चौथ को चंद यह सोचत सुमुखि ससंक।—पद्माकर (शब्द०)।

विशेष—मागवत आदि पुराणों में लिखा है कि श्रीकृष्ण ने चौथ का चंद्रमा देखा था; इसी से उन्हें स्यमंतक मणि की चोरी लगी थी। प्रवक्त कहते हैं कि चौथ के चंद्रमा का दर्शन बचाते हैं; और यदि किसी को भूठ भूठ कलंक लगता है तो कहते हैं कि उसने चौथ का चांद देखा है। काशी में लोग इसे देला चौथ कहते हैं।

२. चतुर्थांश। चौथाई भाग। ३. मराठों का लगाया हुआ एक प्रकार का कर जिसमें ग्रामदनी या तहसील का चतुर्थांश ले लिया जाता था।

चौथ—संज्ञा पुं० [सं० चौथी] उ०—चंपकलता चौथ दिन जान्यो घुममद सोर लगायो।—सूर (शब्द०)।

चौथपन—संज्ञा पुं० [सं० चौथा + पन] मनुष्य के जीवन की चौथी अवस्था। बुढ़ाई। बुढ़ापा। उ०—होइ न विषय विराय भवन बसत भा चौथपन। हृदय बहुत दुख लाग जनम गएउ हरि मगति बिनु।—मानस १।१४२।

चौथा—वि० [सं० चतुर्थ, प्रा० चउत्थ] [वि० स्त्री० चौथी] क्रम में चार के स्थान पर पड़नेवाला। तीसरे के उपरांत का। जिसके पहले तीन और हों।

चौथा—संज्ञा पुं० मृतक के घर होनेवाली एक रीति जिसमें संबंधी तथा बिरादरी के लोग इकट्ठे होते हैं और दाह करनेवाले को रुपया, पगड़ी आदि देते हैं। यदि मृतक की विधवा स्त्री जीवित हो तो उसे बोती चदर आदि दी जाती है। जैसे,—कल तुम उनके चौथे में गए थे ?

चौथाई—संज्ञा पुं० [हि० चौथा + ई (प्रत्य०)] चौथा भाग। चार सम भागों में से एक भाग। चतुर्थांश। चतुर्थांश।

चौथी—संज्ञा स्त्री० [हि० चौथ] दे० 'चौथ'।

चौथीआई—संज्ञा पुं० [हि० चौथाई] दे० 'चौथाई'।

चौथीहारा—वि०, संज्ञा पुं० [हि० चौथी + हार (प्रत्य०)] चौथी लानेवाला।

चौथिया—संज्ञा पुं० [हि० चौथा] १. वह ज्वर जो प्रति चौथे दिन आए।

क्रि० प्र०—प्राया।

चौ०—चौथिया घर। चौथिया सुखार।

२. चौथाई का हकदार। चतुर्थांश का अधिकारी।

चौथी—वि० स्त्री० [हि० चौथा का स्त्री०] दे० 'चौथा'।

चौथी—संज्ञा स्त्री० [सं० चतुर्थी] १. विवाह की एक रीति जो विवाह हो जाने पर चौथे दिन होती है। इसमें घर कन्या के हाथ के कंगन खोले जाते हैं। उ०—चौथे विषस रंपपति प्राप। विधि चौथी कर चार कराए।—रघुराज (शब्द०)।

मुहा०—चौथी का जोड़ा = वह जोड़ा या लहंगा जो घर के घर से आता है और जिसे दुलहिन चौथी के दिन पहनती है। चौथी खेलना = चौथी के दिन दुल्हा दुलहिन का एक दूसरे के ऊपर मेवे, फल आदि फेंकना। चौथी छूटना = चौथी के दिन घर कन्या के हाथों का कंगन खुलना। चौथी की रीति होना। चौथी छुड़ाना = चौथी की रीति करना।

२. विवाह तथा गीने के चौथे दिन वधू के घर से घर के घर मानेवाला उपहार। उ०—गीने के चौस छ सातक बोते न, चौथी कहा भवहीं बलि आई।—मति० प्र०, पृ० ३१६।

विशेष—चौथी भेजने की प्रथा दो प्रकार की है। एक के अनुसार विवाह तथा गीना दोनों में चौथी भेजी जाती है। परंतु कहीं कहीं वधू के ससुराल रहने पर ही चौथी भेजी जाती है। यह चार दिनों के पूर्व या बाद भी भेजी जाती है।

३. मुसलमानों की एक प्रथा, जिसमें शादी के बाद लड़का अपनी पत्नी से मिलने के लिये ससुराल आता है। इस प्रथा के अनुसार मिलन चौथी आने पर ही होता है। ४. फसल की बाट जिसमें जमींदार चौथाई लेता है और भूस्वामी तीन चौथाई। चौकुर।

चौथिया—संज्ञा पुं० [हि० चौथाई] चौथाई। चतुर्थांश।

चौथिया—संज्ञा स्त्री० छोटी नाव जिसमें बहुत थोड़ा बोझ लद सके।

चौदंता—वि० [सं० चतुर्दन्त] [वि० स्त्री० चौदंती] १. चार दांतोंवाला। जिसके चार दांत हों। जो पूरी दाढ़ को न पड़वा हो। बचपन और जवानों के बीच का। उमड़ती जवानी का।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार चोड़े के बच्चों और बेटों आदि के लिये होता है।

२. अल्हड़। उ०। उड्ड।

चौदंता—संज्ञा पुं० स्याम देश के हाथी की एक जाति जिसे चार दांत होते हैं।

चौदंती—संज्ञा स्त्री० [हि० चौदंता] अल्हड़पन। उड्डता। मृष्टता। छिटाई।

चौदंती—वि० स्त्री० दे० 'चौदंता'।

चौद—संज्ञा पुं० [हि० चौदह] दे० 'चौदह'। उ०—चौद ब्रह्मंड रखा भर पानी।—रामानंद०, पृ० ११।

चौदरा—संज्ञा स्त्री [सं० चतुर्दशी] दे० 'चौदस'।

चौदस—संज्ञा स्त्री [सं० चतुर्दशी, प्रा० चउद्सि] वह तिथि जो किसी पक्ष में चौदहवें दिन होती है। चतुर्दशी। उ०—कागुन बधि चौदस को शुभ दिन यह रविवार सुहायो। नखत उत्तरा प्राप विचारयो काल कंस को आयो।—सूर (शब्द०)।

चौदसि ④—वि० [हि० चौदस] क्रम में चौदस को पढ़नेवाला ।
दे० 'चौदस' । उ०—कीन्ह घरगवा मरवन, भी सखि बीन्ह
अन्धान । पुनि मे चाँद जो चौदसि, रूप गएउ छवि भान ।
—जायसी शं० (गुप्त), पृ० ३४३ ।

चौदसी ④—संज्ञा स्त्री [हि० चौदस] १. चतुर्दशी । २. पूर्णिमा
(मुसलमान पूनम को चौदहवीं कहते हैं) ।

मुहा०—चौदसी का चाँद = (१) पूर्ण कलाओं से उदित होने-
वाला चाँद । (२) बहुत सुंदर व्यक्ति (ला०) ।

चौदह—वि० [सं० चतुर्विंश प्रा०, चउहस, अप० चउहह]
जो गिनती में दस और चार हो । जो दस से चार
अधिक हो ।

चौदह—संज्ञा पुं० दस और चार के जोड़ की संख्या जो धंकों में दस
प्रकार लिखी जाती है—१४ ।

मुहा०—चौदह बिद्या, चौदह भुवन, चौदह रत्न = दे० 'विद्या',
'भुवन' और 'रत्न' ।

घौ०—चौदह सं० = चौदह भुवन । उ०—चौदह सं० बसे जाके
मुक्त, सबको करत महारा हो । —कबीर सा०, भा० २,
पृ० १४ । चौदह चंदा = चौदह विद्याओं का प्रकाश । उ०—
चौसठ बीवा जोय के, चौदह चंदा माहि । तेहि पर किसका
चाँदना, जेहि घर सतगुरु नाहि । —कबीर सा० सं० भा० १,
पृ० १७ । चौदह ठहर = चौदह लोक । उ०—बाहरि एक
विधाते कीन्हा-चौदह ठहर पाठ सो जीन्हा । —कबीर बी०,
पृ० १२ ।

चौदहवाँ—वि० [हि० चौदह + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान तेरहवें
स्थान के उपरांत हो । जिसके पहले तेरह और हों ।

चौदहवीं—संज्ञा स्त्री [हि० चौदह + वीं = (प्रत्य०)] मुसलमानों
के अनुसार पूर्णिमा की तिथि ।

मुहा०—चौदहवीं का चाँद = (१) पूनम का चाँद । (२) पूरे
चाँद वैसा सुंदर व्यक्ति ।

चौदास ④—संज्ञा पुं० [हि० चौ (= चार) + दास] दो हाथियों की
सड़ाई । हाथियों की मुठभेड़ । उ०—पीलहि पील देखावा मयो
बोहैं चौदास । राजा यहै बुढ़ ना चाह यहै सह मात । —
जायसी (सन्द०) ।

चौदावाँ—वि० [हि० चौ (= चार) + वाँ] वह खेल (विशेषतः
सोरही या इसी प्रकार का और जूए का खेल) जिसमें चार
बाँव हों । वह खेल जिसमें चार बाँव लग सके ।

चौदा—संज्ञा पुं० [हि० चौना] दे० 'चीना' ।

चौदा ④^२—वि० [हि० चौदह] दे० 'चौदह' । उ०—जब बरस
चौदा मने सो प्राया । हल्म होर हिकमत हुनर सब प्राया ।
—दक्खिनी०, पृ० ३६३ ।

चौदानिया—संज्ञा स्त्री [हि० चौदानी] दे० 'चौदानी' ।

चौदानी—संज्ञा स्त्री [हि० चौ (= चार) + दाना + ई० (प्रत्य०)]
१. एक प्रकार की बाली जिसमें चार पत्तियों की सोने की

जड़ाक टिकड़ी लगी होती है । २. काल की वह बाली जिसमें
मोती के चार बाने लगे हों ।

चौदायनि—संज्ञा पुं० [सं०] एक मोक्ष प्रवर्तक ऋषि का नाम ।

चौदावाँ, चौदावीं—वि० [हि० चौदावाँ] दे० 'चौदावाँ' ।

चौधर—क्रि० वि० [हि० चौ + धर] चारों ओर । चारों तरफ ।
उ०—रचा दो तस्त बल्ले का खशी सूँ, के चौधर चौक मोतियाँ
सूँ सँबारे । —दक्खिनी०, पृ० ७५ ।

चौधर—संज्ञा पुं० [देश०] जोड़ों की एक जाति । उ०—ऐराकी
कक्षो सबज सुरवा समस सुरंग । बादामी प्रबलव बने, चौधर
मुकर पिलव । —प० रासो, पृ० १३८ ।

चौधराई—संज्ञा स्त्री [हि० चौधरी] १. चौधरी का काम । २.
चौधरी का पद ।

चौधरात—संज्ञा स्त्री [हि० चौधरी] दे० 'चौधराना' ।

चौधराना—संज्ञा पुं० [हि० चौधरी] चौधरी का काम । २. चौधरी
का पद । ३. वह धन जो चौधरी को उसके कार्यों के बदले
मिले । ४. कुम्हियों का मुहल्ला या टोला ।

चौधरामी—संज्ञा स्त्री [हि० चौधरी] चौधरी की स्त्री ।

चौधरी—संज्ञा पुं० [सं० चतुर (= तर्किया, मसनब) + धर (= धरने-
वाला)] १. किसी जाति, समाज या मंडली का मुखिया
जिसके विरुद्ध को उस जाति, समाज या मंडली के लोग
मानते हैं । प्रधान । उ०—भने रघुराज कारपण्य पण्य चौधरी
हैं जग के बिकार जेते सबै सरदार हैं । —(सन्द०) ।
२. कुम्भी या कुर्मो नामक जाति ।

विशेष—कुछ लोग इस शब्द की व्युत्पत्ति 'चतुर्धुरीण' शब्द से
बतलाते हैं ।

चौधारी ④^१—संज्ञा स्त्री [हि० चौ (= चार) + धारा] वह कपड़ा
जिसमें छाड़ी और देड़ी धारियाँ बनी हों । चारखाना । उ०—
वेमया डोरिया घी चौधारी । साम, सेत, पीयर हरियारी ।
—जायसी (सन्द०) ।

चौधारी—वि० [देश०] चौपहलू । उ०—दोनों चरणों का इकसार
चौधारी (चौपहलू) बूरा, धुँधरू और नुपूर । —पोद्दार अभि०
ग्रं०, पृ० १६३ ।

चौना—संज्ञा पुं० [पुं० क्यवन] कूर्प पर का वह डालुवाँ स्थान जहाँ
खेत सींचनेवाले डेंकुली या चरस आदि से पानी निकालकर
गिराते हैं । चौकर । लिनारी ।

चौनावा—वि० [हि० चौ + नाव (वि० रेखा)] [स्त्री० चौनाबी]
(तलवार आदि का फल) जिसपर चार नाँव बनी हों ।
जिसमें गड्ढे बने हों ।

चौप—संज्ञा पुं० [हि० चौप] दे० 'चोप' ।

चौपई—संज्ञा स्त्री [सं० चतुष्पदी] एक छंद का नाम जिसके
चरण में १५ मात्राएँ होती हैं और छंद में गुरु लघु होते हैं ।
जैसे,—राम रमापति पुन मम देव । नहि प्रभु होत तुम्हारी

सेव । दीन दयानिधि मेव धामेव । मम दिशि देखो यह
यस सेव ।

चौपत्ता—संज्ञा पुं० [हि० चौ (=चार) + तं क्त, हि० पाठ]
परिचा । चहारदीवारी ।

चौपगा—संज्ञा पुं० [हि० चौ + पग] चार पैरोवाला पशु । चौपाया ।

चौपट—वि० [हि० चौ (=चार) + पट (=किसाड़ा), या हि०
चापट] चारों ओर से घुला हुआ । घेरलित ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।

चौपट^२—वि० [हि० चौ (=चार) + पट (=सतह) तात्पर्य, चारों
तरफ से बराबर या बिपरीत (=नष्ट)] नष्ट भ्रष्ट । विध्वंस ।
तबाह । बरबाद । सत्यानाश । उ०—चौ दिन प्रति चहार कर
नोई । बिज बेगि सब चौपट होई ।—मानस, १।१८० ।

चौ०—चौपट चरण = जिसके कहीं पहुँचते ही सब कुछ नष्ट भ्रष्ट
हो जाय । सञ्जकदम । चौपटा ।

चौपटहा—वि० [हि० चौपट + हा (प्रत्य०)] [वि० जी० चौपटही]
चौपट करनेवाला । नष्ट करनेवाला । सर्वनाशी ।

चौपटा—वि० [हि० चौपट] चौपट करनेवाला । नाश करनेवाला ।
काम बिगाड़नेवाला । सत्यानाशी ।

चौपटानंद—वि० [हि० चौपटा + नंद] अत्यंत सत्यानाशी । जिसका
प्राण छ बुरा हो ।

चौपड़—संज्ञा जी० [सं० चतुष्पट, प्रा० चउप्पट] १. चौसर नामक
खेल । नर्दनाजी । २. इस खेल की विज्ञात और गोटियाँ आदि ।
३. पलंग आदि की वह बनावट जिसमें चौसर के से जाने
बने हों । ४. प्रांगण की बनावट जिसमें चौसर के जाने
बने हों ।

चौपत्ता^१—संज्ञा जी० [हि० चौ (=चार) + परत] कपड़े की तह या
घड़ी जो लगाई जाती है ।

चौपत्त^२—संज्ञा जी० दे० 'चौपत्तिया' ।

चौपत्त^३—संज्ञा पुं० परत का वह टुकड़ा जिसमें एक कील जगी रहती
है और जिसपर कुम्हार का चाक रहता है ।

चौपतना—क्रि० स० [हि० चौपत से नामिक चातु] तह लगाना ।
परत लगाना । (कपड़े आदि की) ।

चौपताना—क्रि० स० [हि० चौपत] कपड़े आदि की तह लगाना ।
घड़ी लगाना ।

चौपत्तिया^१—संज्ञा जी० [हि० चौ + पत्ती] १. एक प्रकार की घास
जो गेहूँ के खेत में उत्पन्न होकर फसल को बहुत हानि पहुँचाती
है । २. एक प्रकार का साग । छटंगन । ३. कच्चीदे घास में
वह बूटी जिसमें चार पत्तियाँ हों ।

चौपत्तिया^२—वि० १. चार पत्तियोंवाला । २. (कच्चीदे) जिसमें
चार पत्तियाँ दिखलाई गई हों ।

चौपथ—संज्ञा पुं० [पुं० चतुष्पथ] १. चौराहा । चौरस्ता । चौमुहानी ।
२. चौपत नाम का परत जिसपर चाक रहता है ।

चौपद^३—संज्ञा पुं० [पुं० चतुष्पद] चार पैरोवाला पशु । चौपाया ।

चौपया^४—संज्ञा पुं० [हि० चौपाया] दे० 'चौपाया' ।

चौपर^१—संज्ञा जी० [हि० चौपड़] दे० 'चौपड़' ।

चौपर^२—संज्ञा जी० [हि० चौपड़ (=चौसर के जानेवाला प्रांगण)]
प्रांगण । प्रांगण । उ०—स्वामिगौर कर मूवरी होरन की जु
उदोत । मनो मदनपुर चौपरें दीपमालिका होत ।—ब्रज ग्रं०,
पृ० ६६ ।

चौपरतना—क्रि० स० [हि० चौ (=चार) + परत + ना (प्रत्य०)]
कपड़े आदि की तह लगाना । कपड़े आदि को चारों ओर से
कई छेर मोड़कर परत बँटाना ।

चौपरि^३—संज्ञा जी० [हि० चौपड़] दे० 'चौपड़' । उ०—मनपति
सोहत त्याम दिग सरसुति राधे संग । दंपतिहित संपतिसहित
खेलत चौपरि रंग ।—ब्रज ग्रं०, पृ० ६५ ।

चौपड़—संज्ञा पुं० [पुं० चतुष्फलक] चौपत नाम का पत्थर जिसपर
कुम्हार का चाक रहता है ।

चौपहरा—वि० [हि० चौ (=चार) + पहर] १. चार पहर का ।
चार पहर संबंधी । २. चार चार पहर के अंतर का ।

मुहा०—चौपहरा देना = चार चार पहर के अंतर पर चौड़े से
काम लेना ।

चौपहल^१—संज्ञा पुं० [हि० चौ+पहल] चार पहल या पार्श्व ।

चौपहल^२—वि० [हि० चौ + फा० पहल, भि० सं० फलक] जिसके
चार पहल या पार्श्व हों । जिसमें लंबाई, चौड़ाई और मोटाई
हो । वर्गात्मक ।

चौपहला^३—वि० [हि० चौपहल + प्रा (प्रत्य०)] दे० 'चौपहल' ।

चौपहला^४—वि० [हि० चौपहल + प्रा (प्रत्य०)] एक प्रकार का
ढोला । वि० दे० 'चौपाल ५' ।

चौपहल^५—वि० [हि० चौपहल + ऊ (प्रत्य०)] दे० 'चौपहला' ।

चौपहिया^१—वि० [हि० चौ+पहिया] चार पहियों का । जिसमें
चार पहिए हों ।

चौपहिया^२—संज्ञा जी० चार पहियों की गाड़ी ।

चौपहिल^३—वि० [हि० चौपहला] दे० 'चौपहला' । उ०—हाथनि
चारि चारि चूरी पाइन इक सार चूरा चौपहिल इक टक रहे
हरि हेरी ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

चौपही^४—संज्ञा जी० [हि० चौपाई] दे० 'चौपाई' । उ०—कथा
संस्कृत सुनि कछु थोरी । भाषा बाँधि चौपही जोरी ।—
भाषवानल०, पृ० १८७ ।

चौपा^५—संज्ञा पुं० [पुं० चतुष्पाद] दे० 'चौपाया' ।

चौपाई—संज्ञा जी० [सं० चतुष्पदी] १. एक प्रकार का छंद जिसके
प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं । इसके बनाने में केवल
त्रिकल और त्रिकल का ही प्रयोग होता है । इसमें किसी त्रिकल
के बाद दो गुरु और सबसे अंत में जगण या तगण न पड़ना
चाहिए । इसे रूप चौपाई या पादाकुलक भी कहते हैं ।

विशेष—वास्तव में चौपाई (चतुष्पदी) वही है जिसमें चार
चरण हों और चारों चरणों का अनुपात मिला हो । जैसे,—
छुप्रत सिला मइ नारि सुहाई । पाहन तें न काठ कठिनाई ।
तरनिउ मुनि वरनी होइ जाई । बाट परइ मोरि नाव उछाई ।

पर साधारणतः लोग दो चरणों को ही (जिन्हें वास्तव में अर्धाली कहते हैं) चौपाई कहते और मानते हैं । मानिक के अतिरिक्त कुछ चौपाइयाँ ऐसी भी होती हैं जो वल्लभस्य के अंतर्गत आती हैं और जिनके अनेक भेद और विन्न विन्न नाम हैं । उनका वर्णन अलग अलग दिया गया है ।

† २. चारपाई । आठ ।

चौपाइ—संज्ञा पुं० [हि० चौपाल] दे० 'चौपाल' ।

चौपायनि—संज्ञा पुं० [सं०] चुप नामक ऋषि के वंशज ।

चौपाया^१—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पाद, प्रा० चतुष्पाद] चार पैरोंवाला पशु । गाय, बैल, भैर आदि पशु । (प्रायः गाय बैल आदि के लिये ही अधिक बोलते हैं) ।

चौपाया^२—वि० जिसमें चार पावे लगे हों ।

चौपार^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चौपाल] दे० 'चौपाल' ।

चौपाल—संज्ञा पुं० [हि० चौबार] १. खुली हुई बैठक । लोगों के बैठने उठने का वह स्थान जो ऊपर से छाया हो, पर चारों ओर खुला हो ।

विशेष—गाँवों में ऐसे स्थान प्रायः रहते हैं जहाँ लोग बैठकर पंचायत, बातचीत आदि करते हैं ।

२. बैठक । उ०—सब चौपारहि चंदन खेंभा ; बैठा राजा मह तब सभा ।—जायसी (शब्द०) । ३. बालान । बरामबा । ४. घर के सामने का छायादार चबूतरा । ५. एक प्रकार की खुली पालकी जिसमें परदे या किवाड़ नहीं होते । चौपहला ।

चौपास^१—क्रि० वि० [हि० चौ (= चार) पास + (= तरफ)] चारों ओर । उ०—बेड़ल सकल सखी चौपासा । अति लीन स्वास बहइ तनु नासा ।—विद्यापति, पृ० ४८३ ।

चौपुरा—संज्ञा पुं० [हि० चौ (= चार) + पुर (= बरस) + प्रा (प्रत्य०)] वह कुर्सी जिसपर चार पुर या मोट एक साथ चल सकें । वह कुर्सी जिसपर चार चरसे एक साथ चलते हों ।

चौपेज—वि० [हि० चौ (= चार) + पं० पेज (= पृष्ठ)] १. चार पृष्ठोंवाला । २. एक ताव कामज में चार पृष्ठ होनेवाला (पुस्तकों की छपाई आदि) ।

चौ०—चौपेजी छपाई ।

चौपैया—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पदी] १. चार चरणोंवाले एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १०, ८ और १२ के विग्राम से ३० मात्राएँ होती हैं और अंत में एक गुरु होता है ।

विशेष—इसके आरंभ में एक द्विक्रम के उपरांत सब चौकल होने चाहिए और प्रत्येक चौकल में सम के उपरांत सम और विषम के उपरांत विषम कल का प्रयोग होना चाहिए; साथ ही चारो चरणों का अनुपात भी मिलना चाहिए । जैसे,—भै प्रकट कृपाला, दीन दयाला, कोशल्य हितकारी । हर्षित महतारी, मुनि मन हारी अद्भुत रूप निहारी । लोचन अनिरामा लनु बनमयामा, निज आधुष भुजचारी । भूषन बनमाळा, नयन विद्याला, शोभा सिंधु सरारी ।

† २. चारपाई । आठ ।

चौफला—वि० [हि० चौ + फल] जिसमें चार फल या धारदार लोहे हों (चाकू) ।

चौफुलिया—वि० [हि० चौ + फूल + ह्या (प्रत्य०)] १. जिसमें चार फूल एक साथ निकलते हों (चौपा) । २. जिसमें चार फूल एक साथ बने हों (बिज) ।

चौफेर—क्रि० वि० [हि० चौ + फेर] चारो ओर । चारो तरफ ।

चौफेरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ + फेरा] चारो ओर घूमना । परिक्रमा ।

चौफेरी^२—क्रि० वि० चारो ओर ।

चौफेरी^३—संज्ञा स्त्री० मुगदर का एक हाथ जिसमें बगली का हाथ करके मुगदर को पीठ की ओर से सामने छाती के समानांतर लाकर इतना तानते हैं कि वह छाती की बगल में बहुत दूर तक निकल जाता है ।

चौबंदो—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ + बंद] १. एक प्रकार का छोटा कुत्त बंगा या कुरती जिसमें जामे की तरह एक पल्का नीचे और एक पल्का ऊपर होता है और दोनों बगल चार बंद लगते हैं । बगलबंदी । † २. राजस्व । कर । ३. घोड़े के चारो सुनों की मालबंदी । ४. चारों ओर से बंद करने, घेरने, बंधने का भाव ।

चौबंसा—संज्ञा पुं० [सं०] एक वृक्ष का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक यगण होता है । जैसे,—नय चव एका । न भजु अनेका । इसे शशिबदना, चडरसा और पावाकुलक भी कहते हैं ।

चौबगला^१—संज्ञा पुं० [हि० चौ + बगल + आ (प्रत्य०)] मिरजई, फनुही, कुरती, अंगे इत्यादि में बगल के नीचे और कली के ऊपर का भाग ।

चौबगला^२—वि० चारो ओर का । जो चारों ओर हो ।

चौबगला^३—क्रि० वि० चारों ओर । चारो तरफ ।

चौबगली—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ + गं० बगल] बगलबंदी ।

चौबगुआ—संज्ञा पुं० [हि० चबूगुआ] १. कुंड । होज । छोटा गड्ढा जिसमें पानी रहता है । २. वह गड्ढा जिसमें घन गड़ा हो । जैसे, किले के भीतर कई चौबगुआ भरे पड़े हैं ।

चौबरदी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ (= चार) + बर्दे (= बैल) + ई (प्रत्य०)] चार बैलों की गाड़ी ।

चौबरसी—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ + बरस + ई (प्रत्य०)] १. वह उत्सव या क्रिया, आदि जो किसी घटना के चौथे बरस हो । २. वह आद्य आदि जो किसी के निमित्त उसके मरने के चौथे बरस हो ।

चौबरा^१—संज्ञा पुं० [हि० चौ (= चार) + बाट (= हिस्सा)] फसल की वह बंटाई जिसमें से जमींदार चतुर्धाग लेता है ।

चौबरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चौबारी + ह्या (प्रत्य०)] दे० 'चौबारा' । उ०—खेलत रहलौ बाबा चौबरिया आइ गए खलहार हो ।—बरम०, पृ० ३४ ।

चौबा—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्बंदी] [स्त्री० चौबाइन] १. ब्राह्मणों की एक जाति या जाड़ा । २. मयुरा का अंश । दे० 'चौबे' ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा ली० [हि० श्री] श्री की स्त्री ।

श्रीमद्भक्ति—संज्ञा ली० [हि० श्री + भाई (= भ्राता)] १. चारों ओर से बहनेवाली हवा । २. प्रफवाह । किचदंती । उड़ती खबर । ३. धूमधाम की वर्षा ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा पुं० [हि० श्री (= चार) + बाधना (= कर या बंधा बधुष करना)] एक प्रकार का कर जो दिल्ली के बादशाहों के समय में लगता था ।

विशेष—यह कर चार वस्तुओं पर लगता था—पाग (प्रतिभुष्य), ताग (प्रति करघनी (प्रति बालक), कूरी (प्रति घलाव या कोड़ा, (प्रति घर), और पूछी (प्रति चौपाया) ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा ली० [हि० श्री + भागी] चार प्रकार की माछी, हैं—परा, पयसंती, मध्यमा और वैखरी । उ०—परा पसंती मध्यमा वैखरी, श्रीमद्भक्त ना मानी । पाँच कोष नीचे कर देखो, इनमें सार न जानी ।—कबीर० सा०, मा० २, पृ० ६६ ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा पुं० [हि० श्रीमद्भक्त] १० 'श्रीमद्भक्त' ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा पुं० [हि० श्री (= चार) + चार (= द्वार)] १. कोठे के ऊपर की वह कोठरी जिसके चारों ओर दरवाजे हों । बँगला । बालाखाना । २. बुलौ हुई बैठक । लोगों के बैठने उठने का ऐसा स्थान जो ऊपर से छाया हो, पर चारों ओर खुला हो ।

श्रीमद्भक्त—क्रि० वि० [हि० श्री (= चार) + चार (= बफा)] चौबी दफा । चौबी बार ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा ली [हि० श्रीमद्भक्त का ली०] १० 'श्रीमद्भक्त' ।

श्रीमद्भक्त—वि० [हि० श्री + बाधना (= जोतना)] जोने से पूर्व बार बार जोता जानेवाला (सेत) ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा पुं० बार बार जोतने की क्रिया ।

श्रीमद्भक्त—वि० [हि० श्रीमद्भक्त] १० 'श्रीमद्भक्त' ।

श्रीमद्भक्त—वि० [सं० चतुर्विध, प्रा० चतुर्विध] जो गिनती में बीस और बार हो । बीस से बार अधिक ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा पुं० बीस से बार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—२४ ।

श्रीमद्भक्त—वि० [हि० श्रीमद्भक्त + भा (प्रत्य०)] कम में जिसका स्थान तेइसवें के आगे हो । जिसके पहले तेइस और हों ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्विध, प्रा० चतुर्विध, हि० चतुर्विध] [ली० श्रीमद्भक्त] ब्राह्मणों की एक जाति या बाला ।

विशेष—मथुरा के सब पंडे श्रीमद्भक्त कहलाते हैं ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा पुं० [हि० श्री + बोल] एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ८ और ७ के विश्राम से १५ मात्राएँ होती हैं । अंत में लघु गुरु होता है । जैसे,—रघुबर दुज सों बिनती करों । कीबै सोई जाते तरों । भिलारीदास ने इसके दुगने का श्रीमद्भक्त मानकर १६ और १४ मात्राओं पर यति मानी है ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा ली० [हि० श्री + दाढ़] दाढ़ का वह चौड़ा, चिपटा और गढ़ुंवर दाढ़ जिससे आहार कूचते या चबाते हैं ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा ली० [हि० श्रीमद्भक्त] १० 'श्रीमद्भक्त' ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा ली० [हि० श्रीमद्भक्त] नगर या नगरा से मिला हुआ हल का वह भाग जिसमें फल लगा होता है और फुट्टाई के समय जिसका कुछ भाग फल के साथ धनी के घर रहता है ।

श्रीमद्भक्त—वि० [हि० श्री (= चार) + फा० मंजिल] चार मरातिब या खंडोंवाला (मकान आदि) ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा पुं० [हि० श्री + मास] वह सेत जो रबी की बोवाई के लिये वर्षा के चार मास जोता गया हो । श्रीमासा ।

श्रीमद्भक्त—वि० [हि० श्री + मास] १. चार महीने का । २. वर्षा के चार महीनों में होनेवाला । ३. मौसम संबंधी ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा पुं० वह हलवाहा जो चार महीने के लिये नीकर रखा गया हो ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा पुं० [हि० चार + माशा] चार मासे का ढाढ । चार मासे तेल का बटकारा ।

श्रीमद्भक्त—वि० [हि० श्री + महल] चार खंडों का । चार मरातिब का (मकान) ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा ली० [हि० श्री + माप] [वि० श्रीमापी] १. किसी चीज की खंवाई, चौड़ाई, ऊँचाई तथा काल नापने का चार अंग । २. उक्त चारों अंगों का समन्वित रूप । चारों आयाम ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा पुं० [सं० चतुर्मास] चौरस्ता । श्रीमद्भक्त ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा पुं० [हि० श्रीमासा] १० 'श्रीमासा' ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा पुं० [सं० चातुर्मास] १. वर्षा काल के चार महीने आषाढ़, आश्विन, आश्विन और आश्विन । चातुर्मास । २. वर्षा ऋतु के संबंध की कविता । ३. करीफ की फसल उगने का समय । ४. वह सेत जो वर्षा काल के चार महीनों (असाढ़, सावन, माघ और कुवार) में जोता गया हो । ५. किसी स्त्री के गर्भवती होने के चौथे महीने में किया जानेवाला उत्सव । ६. १० 'श्रीमद्भक्त' ।

श्रीमद्भक्त—वि० १. श्रीमासे में होनेवाला । श्रीमासा संबंधी । २. चार मास में होनेवाला ।

श्रीमद्भक्त—संज्ञा ली० [[हि० श्रीमास + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना जो प्रायः बरसात में गाया जाता है ।

श्रीमद्भक्त—वि० १० 'श्रीमासा' ।

श्रीमद्भक्त—क्रि० वि० [हि० श्री (= चार) + मुख (= ओर)] चारो ओर । चारो तरफ । उ०—चमचमात बामीकर मंदिर श्रीमुख चित्त विचार ।—रघुराज (शब्द०) ।

श्रीमद्भक्त—वि० १० 'श्रीमुखा' । जैसे, श्रीमुख दिवना (= दीप) ।

श्रीमद्भक्त—वि० [हि० श्री = चार + मुख + भा (= प्रत्य०)] [ली० श्रीमुखी] १. चार मुँहोंवाला । जिसके मुँह चारों ओर हों ।

श्रीमद्भक्त—श्रीमद्भक्त दीप = वह दीपक जिसमें चारों ओर चार बलियाँ जलती हों ।

श्रीमद्भक्त—श्रीमद्भक्त दीप बलाना = दिवाला निकालना ।

विशेष—सोच कहते हैं कि प्राचीन समय में जब महाजन को अपने दिवाने की सूचना देनी होती थी, तब वह अपनी दूकान पर चौमुहानी धोया जाता देता था।

चौमुहानी—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ (= चार) + फ्रा० मुहाना] चौराहा चौरस्ता। चतुर्धन्य।

चौमैदा—संज्ञा पुं० [हि० चौ (= चार) + मैदा + भा (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ पर चार मैदा या सीमाएँ मिलती हैं।

चौमेला—वि० [हि० चौ (= चार) + मेला + भा (प्रत्य०)] चार मेलोंवाला। जिसमें चार मेला या कीलें हों।

चौमेला—संज्ञा पुं० एक प्रकार का कठोर दंड जिसमें अपराधी को जमीन पर चित या पट लिटाकर उसके दोनों हाथों और दोनों पैरों में सेलें ठोक देते थे।

चौरंग—संज्ञा पुं० [हि० चौ (= चार) + रंग (= प्रकार, डब)] तलवार का एक हाथ। तलवार चलाने का एक डब जिससे चीजें कटकर चार टुकड़े हो जाती हैं। सङ्ग प्रहार का एक रंग।

चौरंग—वि० १. तलवार के चार से कई टुकड़ों में कटा हुआ। सङ्ग के आघात से खंड खंड। उ०—कहूँ तेग को पालिके, करहिं टूक चौरंग। सुनि, लखि पितु बिनुनाथ रुप, होत मनहिं मन दंग। —(शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—काटना।

मुहा०—चौरंग उड़ाना या काटना = (१) तलवार आदि से किसी चीज को बहुत सफाई से काटना। (२) एक में बंधे हुए ऊँट के चारों पैरों को तलवार के एक हाथ में काटना।

विशेष—देखी रियासतों तथा अन्य स्थानों में चौरंग की परीक्षा के लिये यह परीक्षा थी। इसमें ऊँट के चारों पैर एक साथ बांध दिए जाते हैं। ऊँट के पैर की जलियाँ बहुत मजबूत होती हैं; इसलिये जो उन चारों पैरों को एक ही हाथ में काट देता है, वह बहुत वीर समझा जाता है। २. चार रंगोंवाला। ३. चारों तरफ समान रूप से होनेवाला। ४. जो चारों तरफ एक जैसा हो।

चौरंगा—वि० [हि० चौ + रंग] [वि० स्त्री० चौरंगी] चार रंगों का। जिसमें चार रंग हों। सुंदर। चित्र विचित्र। उ०—बहुन बटी सी सुरंग बमर पसगी चौरंगा। पंच पाट पंचास प्रस्ति संबोली जंगा।—पु० रा०, १२। ११८।

चौरंगिया—संज्ञा पुं० [हि० चौ + रंग] मालखंज की एक कसरत जिसमें बैठ को एक जंघे पर बाहर की ओर से लेकर पिठरी को छुलाते हुए उसी पैर के घँगूठे में घटकाते हैं और फिर दूसरे जंघे से उसे भीतर लेकर पिठरी से बाहर करते हुए दूसरे घँगूठे में घटकाते हैं।

चौरंगी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. चौराहा। बंगाल में कलकत्ते का एक प्रमुख स्थान।

चौर—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूसरों की वस्तु चुरानेवाला। चोर।

चौरा—चौरकर्म = चोरी।

१. एक गंध द्रव्य। ३. चौरपुष्पी। चौरपंचाशिका के रचयिता संस्कृत के एक कवि का नाम।

चौर^१—संज्ञा पुं० [सं० चमर] दे० 'चमर'। उ०—चौर इसे है न्याये पवन चेरी।—दक्खिणी०, पु० ३०।

चौर^२—संज्ञा पुं० [सं० छुएडा] ताल जिसमें बरसाती पानी बहुत दिन तक रुका रहे। खादर।

चौरई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'चौराई'।

चौरचारा—संज्ञा स्त्री० [देश०] बहुत पहल।

चौरठा—संज्ञा पुं० [हि० चाउर + पीठा] 'चौरैठा'।

चौरठा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'चौरैठा'।

चौरदार—संज्ञा पुं० [सं० चमर, हि० चौर + फ्रा० दार (प्रत्य०)] दे० 'चंवरदार'। उ०—चौरदार सुखपासी गहवा। चौरा पर उन खबर जनइया।—घट०, पु० १६२।

चौरस^१—वि० [हि० चौ (= चार) + (एक) रस (= समान)] १. जो ऊँचा नीचा न हो। समथल। हमवार। बराबर। जैसे, चौरस मैदान। २. चौपहल। वर्गमय।

चौरस^२—संज्ञा पुं० १. ठठेरों का एक भोजार जिससे वे घुरघुरकर बरतन चिकने करते हैं। २. एक वर्णयुत जिसके प्रत्येक चरण में एक तगण और एक यगण होता है। इसको 'तनुमन्वा' कहते हैं। जैसे,—तू यों किमि आली। यूँ मतवाली (शब्द०)।

चौरसा^१—संज्ञा पुं० [हि० चौ + रस] १. ठाकुर जी की शय्या की चद्दर। २. चार रुपये भर का बाट (सुनार)।

चौरसा^२—वि० जिसमें चार रस हों। चार रसोंवाला।

चौरसाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चौरसाना] १. चौरसाने की क्रिया। २. चौरसाने का माव। ३. चौरसाने की मजदूरी।

चौरसाना—क्रि० स० [हि० चौरस से नामिक वातु] चौरस करना। बराबर करना। हमवार करना।

चौरसी—संज्ञा स्त्री० [हि० चौरस] १. बाहु पर पहनने का एक चौखूँटा गहना।

विशेष—सीतापुर आदि जिलों में इसका प्रचार है।

२. चौरस करने का भोजार। ३. अन्न रखने का कोठा या बखार।

चौरस्ता—संज्ञा पुं० [हि० चौ + फ्रा० रास्ता] चौराहा।

चौरहा—संज्ञा पुं० [हि० चौरा] दे० 'चौरा'। उ०—जब वह लहरें मारता कबीरचौरहा के समीप पहुँचा, तब सामने कबीर साहब को बैठा देखा।—कबीर मं०, पु० ८०।

चौरहा^१—संज्ञा पुं० [हि० चौ + राह + भा (प्रत्य०)] दे० 'चौराहा'।

चौरा^१—संज्ञा पुं० [सं० चत्वरक प्रा० चउर] [स्त्री० प्रत्या० चोरी] १. चोतरा। चबूतरा। बेदी। २. किसी देवी, देवता, सती, पूत महात्मा, शूत, प्रेत आदि का स्थान जहाँ बेदी या चबूतरा बना रहता है। जैसे, सती का चौरा। उ०—पेट को मारि मरें पुनि शूत है चौरा पुजावत देख समाने।—रघुराज (शब्द०)। ३. चौपाल। चौबारा।

चौरा^२—संज्ञा पुं० [हि० चौला या देश०] लोबिया। चोड़ा। अर्द्ध। रवाँस। उ०—गेहूँ चाँद बना उरद जब मूँग मोठ तिल। चौरा मटर मसूर तुवर सरसों महुवा मिल।—सूरज (शब्द०)।

चौरा^३—संज्ञा पुं० [सं० चामर] वह वेल जिसकी पूँछ सफेद हो ।

चौरा^४—संज्ञा स्त्री० [सं०] गायत्री का एक नाम ।

चौराई—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ + राई] १. चौलाई नाम का साग ।

उ०—चौराई तो राई तोराई मुरइ मुरबा आरी जी ।—
विश्राम (शब्द०) । २. अगरवाले बनियों की एक रीति जिसमें
किसी उत्सव पर किसी को निमंत्रण देते समय उसके द्वार
पर हल्दी में रंगे पीले चावल रख आते हैं । ३. एक चिट्ठिया ।

विशेष—इसकी गरदन मटमेली, डेने चितकबरे, दुम नीचे सफेद
धीरे ऊपर लाल धीरे नीचे पीली होती है । इसके पैर भी
पीले ही होते हैं ।

चौरानवे^१—वि० [सं० चतुर्नवति, प्रा० चउण्णवह] नब्बे से चार
अधिक ।

चौरानवे^२—संज्ञा पुं० नब्बे से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस
प्रकार लिखी जाती है—६४ ।

चौराया^१—संज्ञा पुं० [हि० चौराहा] ३० 'चौराहा' । उ०—
बिकट चौरायी पवन आवत बहु धोर की ।—पोद्दार० अमि०
पं०, पु० ५७५ ।

चौराष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] वाङ्मय जाति का एक संकर राग जो
प्रातःकाल गाया जाता है ।

चौरासी—वि० [सं० चतुरशीति, प्रा० चउरासीह] अस्सी से चार
अधिक । जो संख्या में अस्सी और चार हो ।

चौरासी^१—संज्ञा पुं० १. अस्सी से चार अधिक की संख्या जो इस
प्रकार लिखी जाती है—८४ । २. चौरासी लक्ष योनि । उ०—
आकर बारि लाख चौरासी । जाति जीव जल यल नम बासी ।
—मानस, १ । ८ ।

विशेष—पुराणों के अनुसार जीव चौरासी लाख प्रकार के माने
गए हैं ।

मुहा०—चौरासी में पड़ना या भरमना = निरंतर बार बार कई
प्रकार के शरीर धारण करना । आवागमन के चक्र में पड़ना ।

उ०—चौरासी पर नाचत उस उपदेसत छविधारी ।—
देवस्वामी । (शब्द०) ।

१. एक प्रकार का पुष्पक । पैर में पहनने का पुँछुवर्णों का गुच्छा
जिसे नाचते समय पहनते हैं । उ०—मानिक जड़े सीम धौ
काधे । चँवर लाग चौरासी बाधे—जायसी (शब्द०) । ४.
पत्थर काटने की एक प्रकार की टाँकी । ५. एक प्रकार
की रस्सानी ।

चौराहा—संज्ञा पुं० [हि० चौ (= चार) + राह (= रास्ता)] वह
स्थान जहाँ चार रास्ते या सबकें मिलती हों । वह स्थान जहाँ
से चार तरफ की चार रास्ते गए हों ।

चौरियाना^१—क्रि० प्र० [हि० चोरी से नामिक भातु] दूब या
घास का फैलकर घना होना ।

चोरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० चोरा] १. छोटा चबूतरा । बेदी । उ०—
रबी चोरी आप ब्रह्मा चरित संन लगाइ के ।—सूर (शब्द०) ।
२. किसी देवी, देवता, सती आदि के लिये बनाया हुआ छोटा
चौरा या चबूतरा जिसके ऊपर एक छोटा सा स्तूप बैसा बना

होता है । इस स्तूप में मूर्ति या प्रतीक की पूजा की जाती है ।
कहीं कहीं स्तूप में एक और त्रिकोना या गोल गढ़ा होता है
जिसमें दिया रखते हैं । ३० 'चोरा'—१. १. मूल स्थान ।
आदि स्थान । ४. अकेली दूब का या जमीन पर पसरनेवाली
किसी एक घास का घना और छोटा विस्तार । घास या
दूब का थक्का । जैसे, दूब की चोरी ।

चोरी^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक पेड़ जो हिमालय पर तथा
रावी नदी के किनारे के जंगलों में होता है । मकरास तथा
मध्य प्रदेश में भी यह पेड़ मिलता है ।

विशेष—इसकी लकड़ों बिकनी और बहुत मजबूत होती है और
मेज, कुरसी, आलमारी, तसबीर के चौखटे आदि बनाने के
काम में आती है । इसकी छाल दवा के काम में आती ।

२. एक पेड़ जिसकी छाल से रंग बनता और चमड़ा सिमाया
जाता है ।

चोरी^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चोरी । २. गायत्री का एक नाम ।

चोरेठा—संज्ञा पुं० [हि० चाउर + पीठा] पानी के साथ पीसा
हुआ चावल ।

चौर्य—संज्ञा पुं० [सं०] चोरी । स्तेय ।

यौ०—चौर्यत = गुप्त मैथुन । चौर्यवृत्ति = (१) चोरी पर जीबिका
चलानेवाला । (२) चोरी करनेवाला ।

चौर्यक—संज्ञा पुं० [सं०] चोरी [चोरी] ।

चौल^१—संज्ञा पुं० [सं०] चोल नामक देश । वि० ३० 'चोल' ।

चौल^२—वि० [सं०] चूड़ाकर्म संबंधी [को०] ।

चौल^३—संज्ञा पुं० मुंडन । चूड़ाकर्म [को०] ।

चौलकर्म—संज्ञा पुं० [सं० चौलकर्म] चूड़ाकर्म । मुंडन ।

चौलड़ा—वि० [हि० चौ + लड़] जिसमें चार लड़ें हों ।

चौला—संज्ञा पुं० [देश०] लोबिया । बोड़ा ।

चौलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ + राई (= चाने)] एक पीसा जिसका
साग लाया जाता । उ०—चौलाई लाह्वा अर पीई । मध्य
मेलि निबुधान निचोई ।—सूर (शब्द०) ।

विशेष—यह हाथ भर के करीब ऊँचा होता है । इसकी गोल
पत्तियाँ सिरे पर चिपटी होती हैं और डंठलों का रंग लाल
होता है । यह पीसा वास्तव में छोटी जाति का मरसा है ।
इसमें भी मरसे के समान मंजरियाँ लगती हैं जिनमें राई के
इतने बड़े काले दाने पड़ते हैं । वैद्यक में चौलाई हलकी,
शीतल, रुखी, पित्त-कफ-नाशक, मल-मूत्र-निःसारक, बिष-
नाशक और दीपन मानी जाती है ।

पर्याय—तंडुलीय । मेघनाभ । कोठेर । तंडुलेरक । मंजीर ।
बिषघ्न । प्रत्यमारिष, इत्यादि ।

चौलाबा^१—संज्ञा पुं० [हि० चौ + लाना (= लगाना)] ऐसा कुम्हा
जिसमें एक साथ चार मोट बल सकें ।

चौलि—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम ।

चौलुक्या^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुषुक ऋषि के वंशज । २.
'चालुक्य' ।

चौकी—संज्ञा पुं० [देश०] बोड़ा ।

चौकन—वि० [सं० चतुष्पाद, प्रा० चतुष्पादो, प्रा० चतुष्पाद] पचास से चार अधिक । जो गिनती में पचास से चार ऊपर हो ।

चौकन—संज्ञा पुं० पचास से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—५४ ।

चौका—संज्ञा पुं० [हि० चौ (= चार)] १. हाथ की चार उँगलियों का समूह । २. अँगूठे को छोड़कर बाकी चार उँगलियों की पंक्ति में लपेटा हुआ तागा । जैसे,— एक चौका तागा ।

मुहा०—चौका करना = चार उँगलियों में तागा आदि लपेटना ।

३. हाथ की चार उँगलियों का विस्तार । चार अंगुली की माप । ४. ताग का वह पत्ता जिसमें चार दूटियाँ हों । ५. गुठ्ठी की ओर को पंजा फैलाकर अँगूठे और कनिष्ठिका में इस प्रकार लपेटना जिसमें ओर एक दूसरे को बीच से काटती हुई जाय । इसका आकार अंग्रेजी अंक ४ की तरह होता है ।

चौका—संज्ञा पुं० [सं० चतुष्पाद] गाय, बैल, आदि पशु । चौपाया ।

चौकाई—संज्ञा स्त्री० [हि० चौ + काई (= बात)] दे० 'चौकाई' ।

चौकालीस—वि० [सं० चतुष्पत्वारिंशत्, प्रा० चतुष्पत्तालीसति, प्रा० चतुष्पत्तालीसह] चालिस से चार अधिक । जो गिनती में चार ऊपर चालीस हो ।

चौकालीस—संज्ञा पुं० चालीस से चार अधिक की संख्या जो अंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—४४ ।

चौकाह(उ)—वि० [सं० चतुर्बाहु] चार बाहुवाला । चतुर्बाहु । उ०—चतुर ओर चतुर्वान चार मुखो चौकाह—पृ० रा०, १।२७६ ।

चौस—संज्ञा पुं० [हि० (= कृषि)] १. चार बार जोता हुआ खेत । दे० 'चौबाहा' । २. खेत का चौथी बार जोता जाना ।

चौस—संज्ञा पुं० [देश०] बुकनी । चूरा । चूर्ण ।

चौसई(उ)—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बहुत मोटा कपड़ा । दुसूती से भी मोटा गरीबों के काम का सस्ता कपड़ा । उ०—ताके आगे चौसई आनि धरे बहुतेर—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ६६ ।

चौसठ—वि० [हि०] दे० 'चौसठ' ।

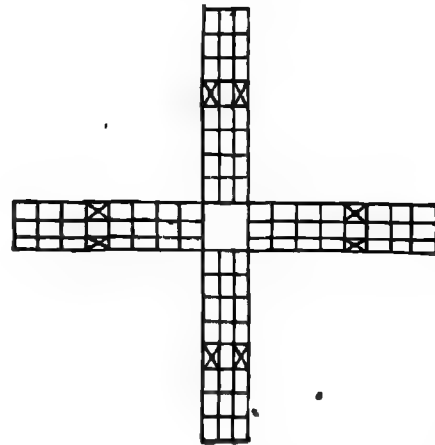
चौसठो घड़ी—दिन रात । सारा दिन । आठो पहर । चौसठ सीढ़ियाँ = तानिकों एवं सिढनाथों की परंपरा में ६४ वर्षों की सीढ़ी । ये वर्षें मूला-से लेकर ऊपर के कमलों के वर्षों पर होते हैं । कुल वर्षों और दलों का योग ६४ होता है । उ०—अकृत निर्मं (२) लाई । उलट दरियाव निर्मरिया । यह विधि बढ़ना चौसठ सीढ़ियाँ ।—रामानंद०, पृ० १० ।

चौसर—संज्ञा पुं० [हि० चौ (= चार) + सर (= बाजी)] अथवा सं० चतुस्सारि १. एक प्रकार का खेल जो विसात पर चार रंगों की चार चार गोठियों और तीन पासों से दो अनुष्यों में खेला जाता है । चौपड़ । नंदबाजी ।

विशेष—दोनों खेलनेवाले दो दो रंगों की आठ आठ गोठियाँ ले लेते हैं और बारी बारी से पास फेंकते हैं । पासों के दाँव आने पर कुछ विशेष नियमों के अनुसार गोठियाँ चली जाती हैं । यह खेल जब पासों के बदले सात कौड़ियाँ फेंककर खेला जाता है, तब उसे पचीसी कहते हैं ।

क्रि० प्र०—खेलना ।

२. इस खेल की विसात जो प्रायः कपड़े की बनी होती है ।



विशेष—इसका मध्य भाग धैली का सा होता है जिसमें खेल की समाप्ति पर गोठियाँ भरकर रखी जाती हैं । मध्य भाग के चारों सिरों की तरफ चार लंबे चौकोर टुकड़े सिले रहते हैं । जिनमें से हर एक की लंबाई में आठ आठ चौकोर आंगों की तीन तीन पंक्तियाँ होती हैं ।

क्रि० प्र०—बिछाना ।

चौसर का बाजार—चौक बाजार । वह स्थान जिसके चारों ओर एक ही तरह के चार बाजार हों ।

चौसर—सं० पुं० [चतुरस्र] चौलड़ी । चार लड़ों का हार ।

उ०—(क) चौसर हार अमोल गरे को देहु न मेरी माई ।—सूर (शब्द०) । (ख) ओर भाँति भए गए चौसर चंदन चंद । बिहारी (शब्द०) ।

चौसरी—संज्ञा स्त्री० [हि० चौसर] दे० 'चौसर' ।

चौसस्ता—संज्ञा पुं० [हि० चौ + सासना] किसी वस्तु को ऊपर रखने के लिये आधार स्वरूप रखी चार लकड़ियाँ । २. चौसत्ते पर रखी हुई वस्तु ।

चौसिधा—वि० [हि० चौ (= चार) + सिंध] चार सिंघोंवाला । जिसके चार सिंघ हों । जैसे, चौसिधा बकरा ।

चौसिधा—संज्ञा पुं० [हि० चौसिहा] दे० 'चौसिहा' ।

चौसिहा—संज्ञा पुं० [हि० चौ (= चार) + सिंध (= सीमा) + हा (प्रत्यय)] वह स्थान जहाँ चार गाँवों की सीमाएँ मिलती हों ।

चौहट(उ)—संज्ञा पुं० [हि० चौ + हाट] दे० 'चौहट्टा' । उ०—चौहट्ट हाट समान वेद चहुँ जानिए । विविध भाँति की वस्तु बिकत तहँ मानिए ।—विश्राम (शब्द०) ।

चौहट्टा—संज्ञा पुं० [हि० चौहट्ट + आ (प्रत्यय)] चौहट्टा । बाजार । उ०—जुरे हैं कंचन चौहटे अपुने अपुने टोल ।—नंद० प्र०, पृ० ३८८ ।

चौहट्ट—संज्ञा पुं० [हि० चौ + हट्ट] दे० 'चौहट्टा' । उ०—चौहट्ट हट्ट मुबट्ट बीधी आरु पुर बहु बिधि बना ।—तुलसी (शब्द०) ।

चौहट्टा—संज्ञा पुं० [हि० चौ (= चार) + हाट] १. स्थान जिसके चारों ओर झूकने हों । चौक । २. चौमुहानी । चौरस्ता । चौराहा ।

चौहड़—संज्ञा पुं० [हि० चौभड़] दे० 'चौभड़' ।

बौद्ध—संज्ञा पुं० [हि० बौद्ध] छोटा बलानय । बौद्ध ।

बौद्धर—वि० [सं० बौद्धरः, प्रा० बौद्धरि] जो सत्तर से चार अधिक हो । जो गिनती में सत्तर और चार हो ।

बौद्धर—संज्ञा पुं० तिहत्तर के बाव की संख्या । सत्तर से चार अधिक की संख्या जो धंकों में इस प्रकार लिखी जाती है—७४ ।

बौद्धी—संज्ञा स्त्री० [सं० बाहुमंत्र, प्रा० बाउहृ + ई (प्रत्य०)] एक अवस्था जो जायफल, पिप्पली, काकड़ासिगी और पुष्करमूल को पीसकर सहृद में मिलाने से बनता है ।

बौद्धी—संज्ञा स्त्री० [हि० बौ + धृ + हि० ई (प्रत्य०)] चारों ओर की सीमा ।

बौहरा—वि० [हि० बौ (= चार) + हर (प्रत्य०)] १. जिसमें चार केरे या तहें हों । चार परतवाला । जैसे, बौहरा कपड़ा । २. बौधना । जो चार बार हो । उ०—दोहरे, तिहरे, चौहरे सुपन जाने जात ।—बिहारी र०, पृ० ६८० । ३. चार लड़ावा । उ०—हीरा लाल जवाहिर चर के मानिक मोती बौहरा । कौन बात की कमी हमारे भरि भरि राखे बौहरा ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ११४ ।

बौहरा—संज्ञा पुं० [हि० बौघड़ा] वह पत्ता जिसमें पान के बीड़े लपेटे हों । बौघड़ा ।

बौहलका—संज्ञा पुं० [हि० बौ (= चार) + धृ + हलका ?] गलीचे की बुनावट का एक प्रकार ।

बौहान—संज्ञा पुं० [देश०] अग्निकुल के अंतर्गत क्षत्रियों की प्रसिद्ध शाखा ।

विशेष—इसके मूल पुरुष के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि उसके चार हाथ थे और उसकी उत्पत्ति राजसों का नाश करने के लिये बलिष्ठ जी के यज्ञकुंड से हुई थी । प्रायः ए-हवार वर्ष पहले मालवे और राजपूताने में इस जाति के राजाओं का राज्य था और पीछे इसका विस्तार दिल्ली तक हो गया था । भारत के प्रसिद्ध अंतिम सम्राट् पृथ्वीराज इसी बौहान जाति के थे । कुछ लोगों का यह भी अनुमान है कि इस जाति के मूल पुरुष माणिक्य नामक एक राजा थे, जो लगभग ईस्वी सन् ८०० में अजमेर में राज्य करते थे । इस जाति के अग्रिय प्रायः सारे उत्तरीयभारत में फैले हुए हैं ।

बौह—क्रि० वि० [देश०] चारों ओर । चारों तरफ । उ०—राम कहै बकित चुरेबैं चहुँ भल्लैं त्यों सबी सकरि भल्लैं बौहैं बकित भसान को ।—रामकवि (शब्द०) ।

ब्यवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूना । करना । टपकना । २. एक ऋषि का नाम ।

विशेष—इनके पिता भृगु और माता पुलोमा थीं । इनके विषय में कहा है कि जब वे गर्भ में थे, तब एक राक्षस इनकी माता को धकेली पाकर दूर ले जाना चाहता था । यह देख ब्यवन गर्भ से निकल आए और उस राक्षस को उन्होंने अपने तेज से मरम कर डाला । वे आपसे आप गर्भ से गिर पड़े थे, इसी से इनका नाम ब्यवन पड़ा । एक बार एक सरोवर के किनारे तपस्या करते करते इन्हें इतने दिन हो गए कि इनका सारा शरीर बत्तीक (बिमोट = दीमक की मिट्टी) से ढक गया, केवल चमकती हुई आँखें खुली रह गईं । राजा शर्वाति की कन्या सुकन्या ने इनकी आँखों को कोई अद्भुत वस्तु

समझ उनमें कटि चुभा दिए । इसपर ब्यवन ऋषि ने क्रुद्ध होकर राजा शर्वाति की सारी सेना और अनुचर सर्व का मलमूत्र रोक दिया । राजा ने घबराकर ब्यवन ऋषि से क्षमा माँगी और उनकी इच्छा देस अपनी कन्या सुकन्या का उनके साथ ब्याह कर दिया । सुकन्या ने भी उस क्रुद्ध ऋषि से विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं की । विवाह के पीछे एक दिन अश्विनीकुमारों ने आकर सुकन्या से कहा—“बूढ़े पति को छोड़ दो, हम लोगों से विवाह कर लो” । पर जब वह किसी प्रकार संमत न हुई, तब अश्विनीकुमारों ने प्रसन्न होकर ब्यवन ऋषि को बूढ़े से सुंदर युवक कर दिया । इसके पहले में ब्यवन ऋषि ने राजा शर्वाति के यज्ञ में अश्विनीकुमारों को सोमरस प्रदान किया । इंद्र ने इसपर आपत्ति की । जब इन्होंने नहीं माना, तब इंद्र ने इनपर बज्र चलाया । ब्यवन ऋषि ने इसपर क्रुद्ध होकर एक महा विकराल असुर उत्पन्न किया, जिसपर इंद्र ब्रह्मघ्न होकर इनकी धरण में प्राया ।

ब्यवनप्राश—संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद में एक प्रसिद्ध अवलैह जिसके विषय में यह कहा है कि ब्यवन ऋषि का वृद्धत्व और अश्वत्थ नाश करने के लिये अश्विनीकुमारों ने इसे बनाया था ।

विशेष—इसका वर्णन इस प्रकार है—पके हुए बड़े बड़े ताजे ५०० आंवसे लेकर मिट्टी के पात्र में पकाकर रस निकाले और उस रस में ५०० टके भर मिली जाकर चालनी बनावे । यदि संभव हो तो इसे चाँदी के बरतन में रखे; नहीं तो उसी मिट्टी के पात्र में ही रहने दे । फिर उसमें मुनक्का, अमर, चंदन, कमलगट्टा, इलायची, हड़ का छिलका, काकोली, सीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, गुरग, काकड़ासिगी, पुष्करमूल, कबूतर, अदुसा, बिबारीकंद, बरियारा, जीवंती, शालपर्णी, पुष्पपर्णी, दोना, कटियाली, बेल की गिरी, धरलू, कुंभेर और पाठा—ये सब चीजें टके टके भर मिलावे और ऊपर से मधु ६ टके भर, पिप्पली २ टके भर, खज २ टंक, तेजपात २ टंक, नागकेसर २ टंक, इलायची २ टंक और बंसलोचन २ टंक इन सबका चूर्ण कर डाले । फिर सबको मिलाकर रख ले । इससे स्वरभंग, यक्ष्मा, शुक्रदोष आदि दूर होते हैं और स्मृति, कांति, इन्द्रियसामर्थ्य, बलवीर्य आदि की अत्यंत वृद्धि होती है ।

च्यार—वि०, संज्ञा पुं० [हि० चार] २० ‘चार’ ।

च्यावन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चुपाना । २. निकाल देना ।

च्यावना—क्रि० सं० [सं० च्यावन] चुपाना । उ०—पूरन इंद्रु सी कुंभन सी मृदु मंभ हँसी रस बूंदनि च्यावे । चंपक फूलनि पीत दुकूलनि पी गल में भुजमूलनि ल्यावे ।—देव प्र०, पृ० ७२ ।

च्युत—वि० [सं०] १. टपका हुआ । गिरा हुआ । चुपा हुआ । ऋद्धि हुआ । २. गिरा हुआ । पतित । ३. अष्ट । ४. अपने स्थान से हटा हुआ । ५. विमुख । पराङ्मुख । जैसे, कर्तव्य है च्युत ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

च्युत—च्युतात्मा = कुटिल । च्युताधिकार = पद से हटाया हुआ ।

च्युतमध्यम—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो पीति नामक श्रुति से आरंभ होता है । इसमें दो श्रुतियाँ होती हैं ।

च्युतषड्ज—संज्ञा पुं० [सं० च्युतषड्ज] संगीत में एक विकृत स्वर

जो मेधा नामक वृत्ति से प्रारंभ होता है। इसमें दो वृत्तियाँ होती हैं।

अनुसंस्कारवा—संज्ञा जी० [सं०] साहित्यदर्पण के मत से काव्य का वह दोष जो व्याकरणविरुद्ध पद्यव्यास से होता है। काव्य का व्याकरण संबंधी दोष।

विशेष—यह दोष प्रधान दोषों में है।

अनुसंस्कृति—संज्ञा जी० [सं०] २० 'अनुसंस्कारता'।

अनुति—संज्ञा जी० [सं०] १. पतन। स्तलन। झड़ना। गिरना। २. गति। उपयुक्त स्थाव से हटना। ३. बूझ। कर्तव्यविमुखता। ४. आभाव। कसर। ५. पुष्ट्यार। गुदा। ६. भय। योनि।

छ

छ—हिंदी वर्णमाला में व्यंजनों के स्वरां नामक भेद के अंतर्गत चवनों का दूसरा व्यंजन। इसके उच्चारण का स्थान तालु है। इसके उच्चारण में अघोष और महाप्राण नामक प्रयत्न लगते हैं।

छंग—संज्ञा पुं० [सं० उत्सङ्ग प्रा० उच्छंग, पु० हि० उच्छंग > छंग] गोद। प्रक। उ०—सर को कहीं धरगजा लेपन मकंठ भूषण प्रंग। गज को कहा नुवाये सरिता बहिरि भरे सहि छग (शब्द०)।

छगा—वि० [हि० छह + उंगली] छह उंगलियोंवाला। जिसके एक पंजे में छह उंगलियाँ हों।

छंगू—वि० [हि० छह + प्रंगु (= प्रंगुली)] २० 'छंगा'।

छंछु—संज्ञा पुं० [अनु० या प्रा० छिछोली > छिछ > छंछ] छीटा। धार। प्रबाह। उ०—रवि छंछ छुट्टि समुह बलिय प्रति अद्भुत सुनिषिष्यो।—पृ० ११०, ३। २४।

छंछाला—संज्ञा पुं० [हि० छछ + आल (प्रत्य०)] १. हाथी। २. हाथी की सूँड। उ०—बड़े जोर छंछाल ठै मुख नीरं। लगे गंड गुंजार सो बोर भीरं।—पृ० रासो, पृ० १६७।

छंछाला—वि० मस्त। मदमस्त। उ०—छकियो बज छंछाल, औरंग यूँ हाणी लग्यो।—नट०, पृ० १७२।

छंछोरी—संज्ञा जी० [हि० छिछ + बरी] एक एकवान। २० 'छंछोरी'।

छंछना—संज्ञा पुं० [हि० छोड़ना] २० 'छंछना'।

छंद—संज्ञा पुं० [सं० छन्दस्] १. वेदों के वाक्यों का वह भेद जो प्रक्षरों की गणना के अनुसार किया गया है।

विशेष—इसके मुख्य सात भेद हैं—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, इहती, पंक्ति, विष्टुप् और जगती। इनमें प्रत्येक के आधी, वैषी, धासुरी, प्राजापत्या, याजुषी, साम्नी, आधी और बाहरी नामक आठ आठ भेद होते हैं। इनके परस्पर संमिश्रण से अनेक संकर जाति के छंदों की कल्पना की गई है। इन मुख्य सात छंदों के प्रतिरिक्त अतिजगती, जम्बरी, अतिजम्बरी, अष्टि, अष्ट्याष्टि, धृति, अतिधृति कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संस्कृति, अमिकृति और उत्कृति नाम के छंद भी हैं जो केवल यजुर्वेद के यजुषों में होते हैं। वैदिक पद्य के छंदों में मात्रा

अनुसं—संज्ञा पुं० [सं०] मुख। चेहरा [क्रि०]।

अनुंटा—संज्ञा पुं० [हि०] २० 'चिउंटा'।

अनुंटी—संज्ञा जी० [हि०] २० 'चिउंटी'।

अनुंठा—संज्ञा पुं० [हि०] २० 'चिउंठा'।

अनुत—संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़ या फल।

अयोना—संज्ञा पुं० [दे०] घटिया।

अयोक्त—संज्ञा पुं० [सं०] बूना। टपकना। गिरना [क्रि०]।

अथवा लघु गुण का कुछ विचार नहीं किया गया है; उनमें छंदों का निर्णय केवल उनके प्रक्षरों की संख्या के अनुसार होता है।

२. वेद। वि० दे० 'वेद'। ३. वह वाक्य जिसमें वर्ण या मात्रा की गणना के अनुसार विराम आदि का नियम हो।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है—वर्णिक और मात्रिक। जिस छंद के प्रति पाद में प्रक्षरों की संख्या और लघु गुण के क्रम का नियम होता है, वह वर्णिक या वर्णवृत्त और जिसमें प्रक्षरों की गणना और लघु गुण के क्रम का विचार नहीं, केवल मात्राओं की संख्या का विचार होता है, वह मात्रिक छंद कहलाता है। रोला, रूपमाला, दोहा, चौपाई इत्यादि मात्रिक छंद हैं। वंशस्थ, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, मंत्राकौता इत्यादि वर्णवृत्त हैं। पादों के विचार से वृत्तों के तीन भेद होते हैं—समवृत्ति, अर्धसम वृत्ति और विषमवृत्ति। जिस वृत्ति में चारों पाद समान हों वह समवृत्ति, जिसमें दो असमान हों वह विषमवृत्ति और जिसके पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरण समान हों, वह अर्धसमवृत्ति कहलाता है। इन भेदों के अनुसार संस्कृत और भाषा के छंदों के अनेक भेद होते हैं।

४. वह विद्या जिसमें छंदों के लक्षण आदि का विचार हो। यह छह वेदांगों में मानी गई है। इसे पाद भी कहते हैं। ५. अधिधाया। इच्छा। ६. स्वेराचार। स्वेच्छाचार। मनमाना व्यवहार। ७. बंधन। गाँठ। ८. जाल। संघात। समूह। उ०—बीज के कुंभ में है तम छंद कविद्वजा मुंद लसे दरसामी।—(शब्द०)। ९. कपट। छल। भ्रमकर। उ०—(क) राजबार भस गुणी न चाही जेहि दूना कर खोज। यही छंद ठग बिद्या छला सो राजा भोज।—जायसी (शब्द०)। (ख) कहा कहति तू बात भयानी। वाके छंद भेद को जाने मोन कबहुँ भी पीवत पानी।—सूर (शब्द०)।

यो०—छंदकपट = २० 'छलछंद'। उ०—हम देखें इहि भाँति गुण। छंदकपट कलु जानति भाँतिन सूषी हैं प्रज की सब बाल।—सूर०, १०। १७७८।

छलछंद = कपट । बोखेबाजी । बालबाजी । उ०—छोम छल-
छंद को बाईं पाप छंद को किकिर के फंदन को फारिहै पै
फारिहै ।—पपाकर (शब्द०) ।

१०. बाल । युक्ति । कला । उपाय । उ०—छंद की मृगी लीं
छंद छुटिबे को नेकी नाहि, चारपों ओर कोरि कोरि भाँतिन
सों रोक है ।—चनानंद, पृ० २०७ । ११. बालबाजी ।
उ०—(क) योगिहि बहुत छंद धोराहीं । बूढ़ सुप्राती जैसे
पाहीं ।—जायसी (शब्द०) । (ख) सुनि नंद नंद प्यारे तेरे
मुख चंद सम चंद पै न भयो कोटि छंद करि हारयो है ।—
केशव (शब्द०) । १२. रंग ढंग । आकार । चेष्टा । उ०—
विरगिट छंद धरे दुख तेता । खन खन पीत रात खन
सेता ।—जायसी (शब्द०) । १३. अभिप्राय । मतसब ।
१३. एकांत । निजंन । १५. विष । जहर । १६. डक्कन ।
आवरण । १७. पत्नी ।

छंद^१—संज्ञा पुं० [सं० छन्दक] एक आभूषण जो हाथ में त्रुडियों
के बीच पहना जाता है ।

छंद^२—वि० [सं० छन्द] आकर्षक । मनोरम । २. ऐकांतिक ।
गोपनीय । अपकट । गुप्त । ३. प्रशंसक (कौ०) ।

छंदक^१—वि० [सं० छन्दक] १. रसक । २. छली ।

छंदक^२—संज्ञा पुं० १. कृष्णछंद का एक नाम । २. बुद्धदेव के सारथी
का नाम । ३. छल ।

छंदज—संज्ञा पुं० [सं० छन्दज] वैदिक देवता । ऐसे देवता जिनकी
स्तुति वेदों में हो । बहु आदि देवता ।

छंदन—संज्ञा पुं० [सं० छन्दन] तुष्ट करना । प्रसन्न करना ।
रिझाना (कौ०) ।

छंदना^७—क्रि० प्र० [सं० छंद (= बंधन)] पैरों में रस्सी लगाकर
बाँधा जाना ।

छंदपासन—संज्ञा पुं० [सं० छन्दपासन] बनावटी साधु । साधु
बेकबारी ठग । छली । बोखेबाज ।

छंदप्रबंध—संज्ञा पुं० [हि० छंद + प्रबंध] १० 'छन्दःप्रबंध' ।

छंदबंध—संज्ञा पुं० [हि० छंद + बंध] छल । कपट । धोखा ।

छंदवासिनी—वि० स्त्री० [सं० छन्दवासिनी] स्वतंत्र जीविकावाली ।
(स्त्री) जो किसी दूसरे पर निर्भर न करती हो ।—(कौ०) ।

छंदस्कृत—संज्ञा पुं० [सं० छन्दस्कृत] [स्त्री० छंदस्कृता] १. वेद,
जिसमें गायत्री आदि छंद हैं । २. वेदमंत्र ।

छंदःप्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० छन्दःप्रबन्ध] पद्यरचना । छंदरचना ।

छंदःशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० छन्दःशास्त्र] वह शास्त्र जिसमें छंदरचना
संबंधी नियमों का विवेचन हो ।

छंदःस्तुम—संज्ञा पुं० [सं० छन्दःस्तुम] १. वैदिक देवता जिनकी
स्तुति वेदों में की गई है । २. ऋषि जो वैदिक छंदों द्वारा
देवताओं की स्तुति करें । ३. सूर्य का सारथी । प्रहण ।

छंदानुवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० छन्दानुवृत्ति] कुशामद । चापतुसी ।
प्रसन्न करना । संतुष्ट करना (कौ०) ।

छंदित—वि० [सं० छन्दित] संतुष्ट किया हुआ । तोषित । प्रसन्न ।
रीझा हुआ । (कौ०) ।

छंदी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० छंद (= बंधन)] एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ
हाथों में कलाई के पास पहनती हैं ।

विशेष—यह गोल कंगन की तरह होता है जिसपर रत्ने की जगह
गोल चिपटी टिकिया बैठाई रहती है । यह कंगन धीरे पछेले
के बीच में पहना जाता है ।

छंदी^२—वि० [हि० छंद + ई (प्रत्य०)] कपटी । बोखेबाज । छली ।

छंदेली—संज्ञा स्त्री० [हि० छंद + एली (प्रत्य०)] १. एक आभूषण ।
२० 'छंदी' । २. छलछंद करनेवाली औरत ।

छंदोग—संज्ञा स्त्री० [सं० छन्दस् + ग] १. सामगान करनेवाला
गुरुप । सामग । सामवेदी । २. सत्वर छंद या पद्य पढ़नेवाला
व्यक्ति (कौ०) । ३. सामवेद (कौ०) ।

छंदोगपरिशिष्ट—संज्ञा पुं० [सं० छन्दोगपरिशिष्ट] सामवेद के
गोमिल सूत्र का परिशिष्ट भाग जो कात्यायन जी का बनाया
हुआ है ।

छंदोदेव—संज्ञा पुं० [सं० छन्दोदेव] महाभारत के अनुसार मतंग
नामक चांडाल ।

विशेष—इनकी उत्पत्ति नापित पिता और ब्राह्मणी माता से
हुई थी । इन्होंने ब्राह्मणत्व त्याग करने के लिये जब बड़ी
तपस्या की, तब इंद्र ने इन्हें वर दिया कि तुम कामरूप बिहंग
होगे । तुम्हारा नाम छंदोदेव होगा और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि
सब वर्णों की स्त्रियाँ तुम्हारी पूजा करेंगी ।

छंदोदोष—संज्ञा पुं० [सं० छन्दोदोष] छंदरचना का एक दोष (कौ०) ।

छंदोबद्ध—वि० [सं० छन्दोबद्ध] श्लोकबद्ध । जो पद्य के रूप में
हो । जैसे, छंदोबद्ध ग्रंथ ।

छंदोभंग—संज्ञा पुं० [सं० छन्दोभङ्ग] छंद रचना का एक दोष जो
मात्रा, वर्ण आदि की गणना या लघु गुरु आदि के नियम का
पालन न होने के कारण होता है ।

छंदोम—संज्ञा पुं० [सं० छन्दोम] १. द्वादशाह याग के अंतर्गत एक
कृत्य का नाम ।

विशेष—यह द्वादशाह याग के आठवें, नवें और दसवें दिन तीन
दिन तक होता था और प्रतिदिन उन तीन स्तोमों का गान
होता था जो इसी नाम से विख्यात हैं । इस याग का फल
कोई कोई राज्यप्राप्ति मानते हैं ।

२. वे तीन स्तोम जिनका गान छंदोम में होता था ।

छंम^७—वि० [सं० क्षम] समर्थ । जोड़ित । शक्तियुक्त । उ०—ज्यों
दब तगो जंगले रहे छंम कोई घास । त्यों मेवाड़ उबेलियी भेट
कर्मधामाम ।—रा० क०, पृ० १७८ ।

छंमनिया^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] २० 'छमुनी' ।

छंमनिया, छंमली—संज्ञा स्त्री० [हि०] २० 'छमुनी' ।

छंझार—संज्ञा पुं० [प्रा० छिछोली] १. घारा । फुहारा । जल
उ०—मुनि मोर दान छुटे छंझार । अनु भूत मंति अयभीत
भार ।—पृ० रा०, ५ । १८ । २. दे 'छंझाल' ।

छंझोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० छाँछ + बरी] एक प्रकार का एकवर्ण
जो छाँछ में बनाया जाता है । उ०—हुमकौरी, मुँगछौरी,
रिक्कछ, देहहर क्षीर, छंझोरी जी ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

छटना—क्रि० प्र० [सं० चटन (= तोड़ना, छेदना)] १. कटकर अलग होना। किसी वस्तु के अंशों का छिल होना। जैसे, पेड़ की डाल छटना, सिर के बाल छटना। २. अलग होना। दूर होना। निकल जाना। जैसे, मैल छटना। ३. समूह से अलग होना। तितर बितर होना। छितराना। जैसे, बावस छटना, गोल के आदमियों का छटना। ४. साथ छोड़ना। संग से अलग हो जाना।

मुहा०—छंटे छंटे फिरना या रहना = दूर दूर रहना। साथ बचाना। कुछ संबंध या लगाव न रखना।

५. चुना जाना। चुनकर अलग कर लिया जाना। जैसे,—इसमें से अच्छे अच्छे ग्राम तो छंट गए हैं।

मुहा०—छंटा या छंटा हुआ = (१) चुना हुआ। अलग किया हुआ। (२) बाजाक। चतुर। धूर्त।

६. साफ होना। मैल निकलना। जैसे, धूम्र छटना, पेट छटना। ७. क्षीण होना। दुबला होना। जैसे, बदन छटना।

छंटनी—संज्ञा स्त्री० [हि० छंटना] १. छंटने का काम। छंटाई। २. काम करनेवालों में से कुछ को हटाना। कर्मचारियों की संख्या में कमी करना।

छंटवाना—क्रि० प्र० [हि० छंटना] १. किसी वस्तु का अंश या अधिक भाग कटवा देना। २. बहुत सी वस्तुओं में से कुछ वस्तुओं को पृथक् कराना। चुनवाना। ३. कटवाना। छिलवाना।

छंटा—वि० [हि० छंटना] [वि० स्त्री० छंटी] (पशु) जिसके पैर छाने गए हों। जिसके पिछले पर बांधकर उसे चरने के लिये छोड़ा जाय।

विशेष—यह शब्द प्रायः लड़कूँ घोड़ों और गधों आदि के लिये आता है।

छंटाई—संज्ञा स्त्री० [हि० छंटना] १. छंटने का काम। अलग अलग करने का काम। बिलगाने का काम। २. चुनाई। चुनने की क्रिया। ३. साफ करने का काम। ४. छंटने की मजदूरी। ५. दे० 'छंटनी' २।

छंटाना—क्रि० प्र० [हि० छंटना] दे० 'छंटवाना'।

छंटाव—संज्ञा पु० [हि० छंटना] १. दे० 'छंटन'। २. छंटने का भाव और क्रिया। छंटाई।

छंटेख—वि० [हि० छंटना + ऐल (प्रत्य०)] १. छंटा हुआ। बाबबाव। २. छंटकर पृथक् किया हुआ।

छड़ना^१—क्रि० प्र० [हि० छोड़ना] १. छोड़ना। त्यागना। २. अन्न को थोड़ी सी में डालकर कूटना। छंटना।

छड़ना^२—क्रि० प्र० [सं० छदन, प्रा० छडण] झोकना। फै करना। बमल करना।

छड़रना—क्रि० प्र० [सं० छड़ या देश०] १. दे० 'छिनकना'। २. छेद का फैलकर या बनाव से कट जाना।

छड़ाना^३—क्रि० प्र० [हि० छड़ाना] छीनना। छड़ाकर ले लेना। उ०—(क) सेह छड़ाई सीय कहैं, कोऊ। गरि बांधहु

रूप बालक बोक।—तुलसी (शब्द०)। (क) ससन संग हरि जेवत जात। सुबल सुदामा धीरामा संग सब भिनि भोजन राखि सों जात। बालन कर ते कीर छड़ावत मुख से भेलि सराहत जात।—सूर (शब्द०)।

छड़ूआ^४—वि० [हि० छोड़ना] १. जो छोड़ दिया गया हो। मुक्त। २. जो बंध आदि से मुक्त हो। अदृश्य। ३. जिसके ऊपर किसी प्रकार दबाव या शासन न हो।

छड़ूआ^५—संज्ञा पु० १. वह पशु जो किसी देवता के उद्देश्य से छोड़ा गया हो। देवता को उत्सर्ग किया हुआ पशु। २. ब्याज, कर या ऋण आदि का वह भाग जिसे पानेवाले ने छोड़ दिया हो। छूट।

छड़ना—क्रि० प्र० [सं० छन्द (= बधन)] पैरों में रस्ती लगाकर बांधा जाना।

छड़^६—संज्ञा स्त्री० [हि० छाया] छाह। छाया। आवरण। उ०—तत्तरि तुमर नरिद भयो तब गहर पत छह।—पु० रा०, ७। १६६

छड़ाना^७—क्रि० प्र० [हि० छाह] छाया में विश्राम लेना। सुस्ताना। शीतल होना। उ०—बला जात जस होइ बटोही। भाइ छड़ाइ बिरछ तर बोही।—इंद्रा०, पु० ३।

छड़^८—संज्ञा पु० [सं०] १. काटना। २. डंकना। आच्छादन। ३. चर। ४. खंड। टुकड़ा।

छड़^९—वि० [सं०] १. निमल। साफ। २. तरल। चंचल।

छड़^{१०}—वि० [सं० चट्, प्रा० छ] गिनती में पाँच से एक अधिक। जो संख्या में पाँच और एक हो। छः। छह।

छड़^{११}—संज्ञा पु० १. वह संख्या जो पाँच से एक अधिक हो। २. उस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६।

छड़ख—संज्ञा पु० [अप० छल्ल] रसिक। छेला। उ०—वन सो जउवन छल्लभो जाती। कामिनी बिनु कइसे गेलि मधुरासी।—विद्यापति, पु० ८६।

छड़^{१२}—संज्ञा स्त्री० [सं० लयी] दे० 'क्षयी'।

छक—संज्ञा स्त्री० [सं० चकन (= तृप्ति)] १. तृप्ति। परिपूर्णा। २. मद। नशा। ३. आकांक्षा। लालसा।

छकड़ा^{१३}—संज्ञा पु० [सं० शकट, प्रा० सगड़ो, छगड़ो] बोक लावने की दुपहिया गाड़ी जिसे बैल खींचते हैं। बैलगाड़ी। सगड़। लड़ी।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।

मुहा०—छकड़ा लावना = छकड़े में बोक या सामान भरना।

छकड़ा^{१४}—वि० जिसका डींचा डींचा हो गया हो। जिसके अंजर पंजर ढीले हो गए हो। टूटा फूटा।

क्रि० प्र०—होना।

छकड़िया—संज्ञा स्त्री० [हि० छह + करी] वह पालकी जिसे छह कहार उठाते हो।

छकड़ी^{१५}—संज्ञा स्त्री० [हि० छह + कड़ा] १. छह का समूह। छह की राशि। २. वह पालकी जिसे छह कहार उठाते हो।

छकड़िया । ३. बारपाई बुनने का एक प्रकार जिसमें छह बांध उठाए और छह बैठाए जाते हैं ।

छकड़ी^२—वि० जिसमें छह धवयव हों । छह से बना हुआ ।

छकना^१—क्रि० प्र० [सं० चकन (= तृप्त होना)] [संज्ञा छक] १. खा पीकर भ्रमना । तृप्त होना । भ्रमना । जैसे,—उसने खूब छककर खाया । उ०—मन्नामी, हुजूर वह खूब छककर खा चुकी ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ११ ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. तृप्त होकर उन्मत्त होना । मद्य आदि पीकर नशे में चूर होना । उ०—(क) ते छकि नव रस केलि करेहीं । जोग बाह भ्रमरन रस लेहीं ।—जायसी (शब्द०) । (ख) केशववास चर चर ताबत फिरहि गोप एक रहे छकि ते भरेई गुनियत हैं ।—केशव (शब्द०) ।

छकना^२—क्रि० प्र० [सं० चक (= भ्रम)] १. चकराना । भ्रमने में जाना । २. हैरान होना । तंग होना । दिक होना । जैसे—वहाँ जाकर हम खूब छके, कहीं कोई नहीं था ।

छकरी—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'छकड़ी' ।

छकाछक—वि० [हि० छकना] १. तृप्त । भ्रमना हुआ । संतुष्ट । २. परिपूर्ण । भरा हुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।

३. उन्मत्त । नशे में चूर । मदमत्त ।

छकाना^१—क्रि० प्र० [हि० छकना] १. खिला पिलाकर तृप्त करना । खूब खिलाना पिलाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. मद्य आदि से मदमत्त करना ।

छकाना^२—क्रि० प्र० [सं० चक (= भ्रम)] १. भ्रमने में डालना । चककर में डालना । २. हैरान करना । दिक करना । तंग करना । जैसे,—बुनने तो कल हमें खूब छकाया ।

संयो० क्रि०—डालना ।

छकिहारी^१—संज्ञा स्त्री [हि० छक + हारी (प्रत्य०)] छक ले जाने-वाली । उ०—जित तित छकिहारी चुरि चलीं । लगति रबानी ब्रज की गलीं ।—चनानंद, पृ० २१७ ।

छकीला^१—वि० [हि० √ छक = ईला (प्रत्य०)] छका हुआ । मस्त । उ०—रंगनि ढरीले ही छकीले मद्य मोह तें ।—चनानंद, पृ० ११२ ।

छकीही^२—वि० स्त्री [हि० √ छक + भीही (प्रत्य०)] १. मस्त करनेवाली । छका देनेवाली । २. छकी हुई । मस्त ।

छकुर—संज्ञा पुं० [हि० छ + कुरा] फसल की वह बेंटाई जिसमें उपज का छठा भाग जमींदार पाता है ।

छककवै^३—वि० [सं० चकवर्ती] दे० 'चकवर्त' । उ०—भ्रमनपाल छककवै बुद्धि जो इसी उकल्लिय ।—पृ० रा० (उ०), पृ० ८६ ।

छकका^४—संज्ञा पुं० [सं० चक, या चट्क, प्रा० छक्को] १. छह का समूह या वह वस्तु जो छह धवयवों से बनी हो । २. पूए का एक दाँव जिसमें कोई या चित्ती फेंकने से छह कीड़ियाँ

चित्त पड़ें । यही दाँव दो, या दस, या चौदह कीड़ियों के चित्त पड़ने पर भी माना जाता है ।

मुहा०—छकका पंजा = दाँवपेच । चालबाजी । छकका पंजा बूलना = युक्ति काम न करना । चाल न चलना । कर्तव्य न सुझाई पड़ना । बुद्धि का काम न करना ।

३. पासे का एक दाँव जिसमें पासा फेंकने से छह बिधियाँ ऊपर पड़ें ।

क्रि० प्र०—डालना ।—पड़ना ।—फेंकना ।

४. जुआ । घूँस

क्रि० प्र०—खेलना ।—फेंकना ।—डालना ।

५. वह ताक जिसमें छह बूटियाँ हों । ६. पाँच ज्ञानेन्द्रियों और छठे मन का समूह । होश हवास । सुष । शक्ता । शोसान ।

मुहा०—छक्के छटना = (१) होश हवास जाता रहना । होश उड़ना । बुद्धि काम न करना । स्तब्ध होना । उ०—सुननेवालों के छक्के छूट जाते ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० ३४० । (२) हिम्मत हारना । साहस छटना । घबरा जाना । जैसे, नई सेना के आते ही शत्रुओं के छक्के छूट गए । छक्के छुड़ाना (१) चकित करना । बिस्मित करना । हैरान करना । (२) साहस छुड़ाना । अघोर करना । घबरा देना । पस्त करना । पेर उखाड़ देना । जैसे,—सिखों ने काबुलियों के छक्के छुड़ा दिए । उ०—चोड़े पर हम तरह सवार होते हैं जैसे किसी ने मेक गाड़ दी, मगर टट्टू ने इनके भी छक्के छुड़ा दिए ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २३ ।

छग—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० छगी] छाग । बकरा ।

छगड़ा—संज्ञा स्त्री [सं० छगल या छगलक] [स्त्री० छगड़ी] बकरा । उ०—(क) एक छगड़ी एक छगड़ा लीलसि नौ मन लीलसि केराव । बारह भैंसा सरसों लीलसि भौ चोरासी गाँव । कबीर (शब्द०) । (ख) ना मैं छगड़ी ना मैं भेंड़ी ना मैं छुरी गंदास में ।—कबीर श०, भा० १, पृ० १०२ ।

छगण्य—संज्ञा पुं० [सं०] सूखा गोबर । कंड़ा ।

छगन^१—संज्ञा पुं० [सं० चङ्गट (= एक छोटी मछली) या चिङ्गट (= लीला मछली)] छोटा बच्चा । प्रिय बालक ।

छगन^२—वि० बच्चों के लिये एक प्यार का शब्द । उ०—कहत मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन कबीले छोटे छिया ।—सुलसी, प्र०, पृ० २७७ ।

यौ०—छगन मगन, छगना मगना = छोटे छोटे बच्चे । प्यारे बच्चे । हँसते खेलते बच्चे । (बच्चों के लिये प्यार का शब्द) । उ०—(क) बछरु छबीलो छगन मगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाइ । सानुज द्विय तुलसति सुलसी के प्रनु की ललित बरिकाई ।—सुलसी प्र०, पृ० १७७ । (ख) गिरि गिरि परत दुदुखनि रंगत खेलत हैं शोच छगना मगना ।—सूर० १० । ११२ । (ग) कहा काज मेरे छगन मगन को रूप मधुपुरी बुलायो । सुफलक सुत मेरे प्राण हतन को काल रूप छैं प्रायो ।—सूर (शब्द०) ।

छगना^३—क्रि० प्र० [सं० चकन, हि० छकना] तृप्त होकर उन्मत्त होना । मर जाना । छकना । उ०—चण्डमान कन्हू धनी सुवर

ता पण्डे लोहण बग्यी । जापुलित सत बर बीर मति
बीर बीर रस सौं छगरी ।—पृ० रा०, ५।४३।

छगरी—संज्ञा स्त्री० [सं० छगली] छोटी बकरी ।

छगल—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० छगला, छगली] १. छाग ।
बकरा । २. बृहदारक नामक पेड़ । बिचारा । ३. अत्रि
अथि का नाम । ४. नीले रंग का कपड़ा । ५. वह देश जहाँ
बहुत बकरे होते हैं ।

छौं—छगलानिका, छगलानी = (१) मेढ़िया । (२) बिचारा
या अर्धांगी वृक्ष ।

छगलक—संज्ञा पुं० [सं०] छाग । बकरा [स्त्री०] ।

छगुन—वि० [हि० छ + गुण] छगुणा । छह गुना । उ०—छिप्यो
छपाकर छितिज छीरनिधि छगुन छंख छल छीन्हो ।—
रामाय०, पु० १२० ।

छगुनी—संज्ञा स्त्री० [हि० छोटी + उंगली] हाथ के पंजे की सबसे
छोटी उंगली । कनिष्ठिका । कानी उंगली । छिगुनी ।

छगर(७)†—संज्ञा पुं० [सं० छत्रदण्ड या शकट (=गाड़ी, बोक
या देश०)] छत्र आदि सामान । उ०—अति गंभीर पटुपंग
मन सु दब्बे दग लज्जह । कवन काज छगरह पानिपाही नट
कज्जह ।—पृ० रा०, ६१।६५६ ।

छछंद(७)†—संज्ञा पुं० [सं० छलछन्द] १० 'छलछन्द' । उ०—सो
जोग्यंज जोग जुगता अविचल सारं । छछंद मुक्ता भे अमपारं ।
—गोरख०, पु० १६१ ।

छछदा(७)†—वि० [छः] बेगवान । बहनेवाला । गतिशील । उ०—
छछदा बूत चहु दिस छंजे, धवनी पत मंडे आरंभ ।—रघु०
क०, पु० १०० ।

छछिया, छछिया—संज्ञा स्त्री० [हि० छछ + ह्या (प्रत्य०)] १.
छछि पाने या नापने का छोटा पात्र । उ०—ताहि महीर की
छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ।—कविता
को०, भा० १, पु० १७६ ।

२. छाछ । मट्ठा । तक्र ।

छछिहारी—संज्ञा स्त्री० [हि० छछि + हारी (प्रत्य०)] वही
बिलोनेवाली । अहीरिन । उ०—इला च्यंगुला सुषमन नारी ।
बेग बिलोह ठाही छछिहारी ।—कबीर ग्रं०, पु० २६० ।

छछीन(७)†—वि० [सं० छीन] अति छीन । दुर्बल । कृष । उ०—
छछीन हीन लंकय । कमान काम अंकय ।—पृ० रा०, २५।
१३८ ।

छछुंदर†—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं० चच्छुन्दर] १० 'छछुंदर' ।

छछुंदर—संज्ञा पुं० [सं० चच्छुन्दर] [स्त्री० चच्छुंदरी] १. बूढ़े
की जाति का एक जंतु ।

छिरोष—इसकी बनावट बूढ़े की सी होती है, पर इसका पूवन
अधिक निकला हुआ और मुकीला होता है । इसके शरीर के
रोएँ भी छोटे और कुछ आसमानी रंग लिए आकी या राज
के रंग के होते हैं । यह जंतु बिन की बिलकुल नहीं देखता और
रात को छु छु करता चरने के लिये निकलता है और कीड़े
मकोड़े खाता है । इसके शरीर से बड़ी तीव्र दुर्गंध आती

है । लोगों का विश्वास है कि छछुंदर के छु जाने से तलवार
का लोहा सराब हो जाता है और फिर वह अच्छी काट
नहीं करता । यह भी कहा जाता है कि जब साँप छछुंदर
को पकड़ लेता है, तब उसे दोनों प्रकार से हानि पहुँचती है;
यदि छोड़ दे तो संघा हो जाय और यदि का ले तो वह मर
जाता है; इसी से तुलसीदास ने कहा है—धर्म सनेह उभयमति
धेरी । यह गति साँप छछुंदर धेरी । छछुंदर तंत्रों के प्रयोगों
में भी काम आता है ।

२. एक प्रकार का यंत्र या तावीज जिसे राजपूताने में पुरोहित
अपने यजमानों को पहनाता हैं । यह गुल्ली के आकार का
सोने चाँदी आदि का बनाया जाता है । ३. एक आतिशबाजी
जिसके छोड़ने से छु छु का शब्द निकलता है । ४. वह व्यक्ति
जो छछुंदर की तरह व्यर्थ इधर उधर घूमता हो ।

मुद्दा०—छछुंदर छोड़ना=ऐसी बात कहना जिससे लोगों में
हलचल मच जाय । घाग लगाना ।

छछेरु†—संज्ञा पुं० [हि० छाछ + एक (प्रत्य०)] बी का वह फेन
या मैल जो खरा करते समय उसके ऊपर आ जाता है ।

छछना—कि० प्र० [सं० सज्जन, हि० सजना] १. लोभा देना ।
सजना । अच्छा लगना । सोहना । उ०—(क) बालम के
बिछुरे ब्रजबाल को हाल कह्यो न परे कछु छाहीं । कब सी
गई दिन तीन हो में तब अघि लौं क्यों छजिहँ छहीं छाहीं ।
—केशव (शब्द०) । (ख) कूबर अनूप रूप छतरी छवत
तैसी छज्जन में मोती लटकत छबि छावने ।—गिरधर (शब्द०)
२. उपयुक्त जान पड़ना । ठीक जँचना । उचित जान पड़ना ।

छज्जा—संज्ञा पुं० [हि० छाजना या छाना] १. छाजन या छत का
वह भाग जो दीवार के बाहर निकला रहता है । झोलती ।
उ०—कूबर अनूप रूप छतरी छजत तैसी छज्जन में मोती
लटकत छबि छावने ।—गिरधर (शब्द०) । २. कोठे या
पाटन का वह भाग जो कुछ दूर तक दीवार के बाहर निकला
रहता है और जिसपर लोग हवा खाने या बाहर का दृश्य
देखने के लिये बैठते हैं । उ०—छज्जन तें छूटति पिचकारी ।
रंगि गई बालरि महल छटारी ।—सूर (शब्द०) । ३. दीवार
या दरवाजे के ऊपर लगी हुई पत्थर की पट्टी जो दीवार से
बाहर निकली रहती है । ४. टोपी या हैट के किनारे का
निकला हुआ भाग जिससे धूप से बचाव होता है ।

मुद्दा०—छज्जेदार=जिसका किनारा घागे की ओर निकला
हुआ हो । जिसमें छज्जा हो । जैसे, छज्जेदार टोपी ।

छज्जा(७)†—संज्ञा पुं० [हि० छज्जा] १० 'छज्जा' । उ०—संवर
अतर सौं तर है जिनसे सुमन अके हैं । मलतूल के अर्ध हैं जिय
में रहे अके हैं ।—ब्रज० ग्रं०, पु० ५६ ।

छटकी†—संज्ञा स्त्री० [हि० छटाँक] १. छटाँक का बटखरा । वह
बाट जिससे छटाँक वस्तु तीसी जाय ।

छटकी†—वि० १. बहुत छोटा । छटाँक भर का । दुबला अतला ।
कृष्णात (व्यक्ति) । २. नटखट । चंचल (बालक) ।

छटक—संज्ञा पुं० [सं०] खस्ताख के ग्यारह अंशों में से एक ।

छटकना—क्रि० प्र० [प्रनु० या हि० छटना] १. किसी वस्तु का दाब या पकड़ से बेग के साथ निकल जाना। बेग से अलग हो जाना। सटकना। जैसे, हाथ के नीचे से गोली छटक गई मुट्ठी में से मछली छटक गई। २. दूर दूर रहना। अलग अलग फिरना। जैसे, वह कई दिनों से छटका छटका फिरता है। ३. बग में से निकल जाना। बहक जाना। दीव से निकल जाना। हल्ले न चढ़ना। हाथ न घाना। जैसे, देखना, उसे हम बिलासा देते रहना; छटकने न पावे। ४. कूटना। उछलना।

छटका—संज्ञा पुं० [हि० छटकना] मछलियों के फँसाने का एक गद्दा जो दो जलाशयों के बीच तंग मेंड़ पर लोदा जाता है। उ०—छटका परे छटकि कहीं जइहो मीन बन्धा है जाले।—सं० दरिया, पृ० १०६।

बिगोष—यह गद्दा चार छह हाथ लंबा और हाथ दो हाथ चौड़ा तथा दो तीन हाथ गहरा होता है। मछलियाँ एक जलाशय से दूसरे में जाने के लिये कूदती हैं और इसी गद्दे में गिरकर रह जाती हैं। यह गद्दा प्रायः पान के खेतों की मेंड़ पर पानी सुखने के समय लोदा जाता है।

क्रि० प्र०—लगाना।

छटकाना—क्रि० प्र० [हि० छटकना] १. छटक जाने देना। किसी वस्तु को दाब या पकड़ से बलपूर्वक निकल जाने देना।

छटकाना^२—क्रि० प्र० १. बलपूर्वक झटका देकर पकड़ या बंधन से छुड़ाना। छुड़ाना। जैसे, हाथ छटकाना। उ०—रिसि करि लींकि लींकि लट झटकति श्याम भुजनि छटकाए दीन्हों।—सूर (शब्द०)। २. सोलना। मुक्त करना। छोड़ देना। जैसे, गाय का बंधन छटकाना। ३. पकड़ या दबाव में रखनेवाली वस्तु का बलपूर्वक अलग करना। बंधन को जोर करके दूर करना। जैसे,—रस्ती छटकाना।

छटना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'छटना'।

छटपट^१—संज्ञा पुं० [प्रनु०] छटपटाने की क्रिया। बंधन या पीड़ा के कारण हाथ पैर फटकाने की क्रिया। उ०—गजराज पंक में बँसा हुआ। छटपट करता था फँसा हुआ।—साकेत, पृ० १५६।

क्रि० प्र०—करना।

छटपटा^२—वि० बंजल। चपल। नटखट।

छटपटाना—क्रि० प्र० [प्रनु०] १. बंधन या पीड़ा के कारण हाथ पैर फटकाना। तड़फड़ाना। तड़फना। जैसे,—(क) बेसो बछड़े का गला फँस गया है, वह छटपटा रहा है। (ख) वह बंद के सारे छटपटा रहा है। २. बेचैन होना। व्याकुल होना। बिकल होना। अघोर होना। ३. किसी वस्तु के लिये आकुल होना। अधीनतापूर्वक उत्कंठित होना।

छटपटी—संज्ञा स्त्री० [प्रनु०] १. चबराहट। व्याकुलता। बेचैनी। अघोरता। २. किसी वस्तु के लिये आकुलता। गहरी उत्कंठा।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

छटौक—संज्ञा स्त्री० [हि० छ+टौक, टंक] एक तोल जो सेर का सोलहवाँ भाग है। पाब सर का चौथाई।

मुहा०—छटौक सर=(१) तोल में पाब का चौथाई भाग। (२) बहुत थोड़ा। स्वल्प। कम।

छटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बीति। प्रकाश। प्रभा। झलक। २. घोषा। सोदयें। छवि। ३. विजली। उ०—चमकहि छाग छटा सी राजे।—रघुनाथ (शब्द०)। ४. न टूटनेवाली परंपरा या श्रृंखला। लड़ी (को०)। ५. डेर। पुज। राशि। संघात (को०)।

छटाफल—संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का पेड़। पूग का फल या फल।

छटाभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विधुत्। क्षणप्रभा। २. बिजली की चमक। ३. चेहरे की कांति।

छटो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० सटो (=छड़ी)] छड़ी। उ०—नितंति देवन्तो छवि जटी। लटकै अनु कि छटन की छटी।—नव० प्र०, पृ० २२७।

छट्टा^२—संज्ञा पुं० [देश०] राजस्व या कर के रूप में लिया जानेवाला प्राय का छठा भाग। उ०—छट्टे (खिराज) वास्तविक प्राय के छठे हिस्से की दर से लगाई और बराबर छहमाही किस्तों से मदा की जायगी।—राज०, पृ० १०४५।

छट्टक^३—वि० [हि० छ+ट्टक] छह टुकड़ों में विभक्त। अत-विभक्त। उ०—लास तिहारे नैन सर अचिरज करत अचूक। बिन कंचुक छेद करे छाती छेद छट्टक।—मति० प्र०, पृ० ४५३।

छट्टेल—वि० [हि० छटना] १. छँटा हुआ। २. चाबाक।

छट्टा^४—संज्ञा स्त्री० [सं० छठ] दे० 'छठ'।

छट्टी^५—संज्ञा स्त्री० [सं० छठी] दे० 'छठी'।

यौ०—छट्टी बारही = दे० 'छठी बारही'।

छठ—संज्ञा स्त्री० [सं० छठ, प्रा० छट्ट] पक्षवारे का छठा दिन। प्रति पक्ष की छठी तिथि।

छठई—वि० स्त्री० [हि० छठवाँ] दे० 'छठा'।

छठवाँ, छठवाँ—वि० पुं० [सं० छठक] दे० 'छठा'। उ०—करी छठी छठवें दिन राती। नगरी सकल भई रंगरासी।—रस रं०, पृ० २१।

छठा—वि० [सं० छठक] [वि० स्त्री० छठी] जो क्रम में पाँच और वस्तुओं के उपरांत हो। गिनती के क्रम से जिसका स्थान छह पर हो।

मुहा०—छठे छमासे = कभी कभी। बहुत दिनों पर।

छठी—संज्ञा स्त्री० [सं० छठी, प्रा० छठी] १. जन्म से छठे दिन की पूजा। छट्टी। उ०—काजर रोरी भानू (मिलि) करी छठी की चार। ऐपन की सी पूतरी सब सखियनि कियाँ सिंगार।—सूर०, १०।४०।

यौ०—छठी बारही = जन्म से छठे और बारहवें दिन का उत्सव। उ०—छठी बारही लोक वेद विधि करि सुविधाव विधानी। राम लखन रिपुवन भरत धरे बाम ललित मुनि ज्ञानी।—गुलशो (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। उ०—करी छठी छठवें दिन राती। रस रं०, पृ० २१। पूजना।—पूजाना।

मुहा०—छठी का पूष निकलना=कठिन बन पड़ना। बहुत हिरानी होना। भारी संकट पड़ना। छठी का पूष याद आना=सब सुख भूल जाना। बचपन की सारी सिलाई पिछाई निकल जाना। थोर परिश्रम पड़ना। बहुत हिरानी होना। भारी संकट पड़ना। छठी का राजा=पुत्रवती धर्मर। पुराना रहस्य।

२. भाग्य। नियति। तकदीर। उ०—पड़ियो परचो न छठी छ मत ऋगु, जजुर घषबन, साम को।—सुलसी प्र०, पृ० ५३७।

मुहा०—छठी में नहीं पड़ना=(१) भाग्य में न होना। (२) प्रकृति में न होना। प्रकृतिविरुद्ध होना। स्वभाव के प्रतिकूल होना। जैसे,—देना तो उनकी छठी में ही नहीं पड़ा है।

३. एक वेदी जिनकी पूजा छठी के दिन होती है।

छड़—संज्ञा स्त्री० [सं० शर] चातु या लकड़ी आदि का संडा पतला बड़ा टुकड़ा। चातु या लकड़ी का संडा। जैसे, लोहे की छड़, बाँस की छड़।

विशेष—बहुत से स्थानों में यह शब्द पुं० भी बोला जाता है।

छड़ना—क्रि० स० [हि० छटना] १. अनाज आदि को मोलली में कूटकर साफ करना। मोलली में रखकर अनाज कूटना जिसमें कर्ने निकल जायें और अनाज साफ हो जाय। छोटना। जैसे, चावल छड़ना। ५२. त्यागना। छड़ना। छोड़ना।

छड़वालों—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'छड़ियाल'।

छड़ाई—क्रि० स० [हि०] ३० 'छड़ाना'। उ०—जामु देस नृप लीन्ह छड़ाई। समर सेज तजि नयेड पराई।—मानस, १। १५८।

छड़ा—संज्ञा पुं० [हि० छड़] १. पैर में पहनने का लूड़ी के आकार का एक गहना। यह चाँदी की पतली छड़ या ऐंठे हुए तारों का बनाया जाता है और पाँच से लेकर दस बीस तक एक एक पैर में पहना जाता है। २. मोतियों के लड़कों का गुच्छा। लच्छा।

छड़ा^२—वि० [हि० छड़ना] [वि० स्त्री० छड़ी] अकेला। एकाकी। थो०—छड़ी सवारी। छड़ी छड़ाक।

छड़ाना ५—क्रि० स० [हि०] छीन लेना। अपने वश में कर लेना। उ०—जामु देस नृप लीन्ह छड़ाई। समर सेन तजि नयेड पराई।—मानस, १। १५८।

छड़ाला—वि० [हि० छड़ियाल] कुंतपारी। आलावाला। उ०—मार लियो कहते मुहर, घर लीजियो छड़ाल।—रा० रू०, पृ० २४१।

छड़ाबाँस—संज्ञा पुं० [हि० छड़+बाँस] जहाज पर की मंडी। फरहारा (लक्ष०)।

छड़िया—संज्ञा पुं० [हि० छड़ी, छड़ (> छड़ी = वंड) + इया (प्रत्य०)] छड़ीवाला। दंडधारी डेवदीदार। बरबान। द्वारपाल। उ०—(क) द्वार लड़े प्रभु के छड़िया तहँ नृपति जान न पावत मेरे।—कविता० को०, भा० १, पृ० १४६। (ख) पटिया भाँगन और की लट छट छड़िया काम। तिल जो बिनुक पर लसत है सो सिगार रस बाम।—मुबारक (शब्द०)।

छड़ियाल—संज्ञा पुं० [हि० छड़ी] एक प्रकार का आला या करछा।

छड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० छड़] १. सीधी पतली लकड़ी। पतली लाठी। २. लहंगे, पाजामे आदि में गोखरू, कुट्टी की आदि की सीधी टैकाई।—(बरजी)। ३. मंडी जिसे लोग मुसलमान पीरों की मजार पर चढ़ाते हैं। सहा। मंडी। जैसे, मजार की छड़ी। ४. गुड़िया पीटने या चौकी छड़ाने की पतली लकड़ी।

छड़ी^२—वि० स्त्री० [हि० छड़ना] अकेली। एकाकी।

मुहा०—छड़ी छटाक या छड़ी सवारी=(१) बिना किसी संगी साथी के। अकेले। एकाकी। (२) बिना कोई बोक या असबाब लिए। तन तनहा।

छड़ीदार^१—वि० [हि० छड़ी+दार (प्रत्य०)] १. जो छड़ी लिए हो। छड़ीवाला। २. जिसमें सीधी पतली लकीरें हों। लकीरदार। सीधी लकीरोंवाला।—(कपड़ा)। जैसे, छड़ीदार छोट, छड़ीदार नलता।

छड़ीदार^२—संज्ञा पुं० बोकदार। आसबंददार। द्वारपालक। रक्षक। उ०—छड़ीदार तब बचन सुनावा। कोउ नहिं साथ राय के भावा।—कबीर सा०, पृ० ४८३।

छड़ीबरदार—संज्ञा पुं० [हि० छड़ी+का० बरदार] बड़े आदमियों की सवारी के साथ सोने चाँदी की छड़ी लिए हुए चलनेवाला। सेवक। बोकदार।

छड़ीला—संज्ञा पुं० [सं० शैल्य] ३० 'छरीला'।

छण—संज्ञा पुं० [सं० क्षण] ३० 'क्षण'।

छणदा—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षणदा] ३० 'क्षणदा'।

छत^१—संज्ञा स्त्री० [सं० छत, प्रा० छत] १. एक घर की दीवारों के ऊपर का पटिया, चूना, कंकड़ आदि डालकर बनाया हुआ फर्श। पाटन। उ०—छिति पर, छान पर, छाजत छतान पर, ललित सतान पर, लाड़िली की लट पै।—पद्माकर (शब्द०)।

विशेष—कच्चे मकान की छत कड़ियों पर पतले बाँस या उनकी लपटियाँ बिछाकर उसके ऊपर लसदार मिट्टी की तह बैठाने से तैयार होती है। ऐसी छत भीतरी होती है। जिसके ऊपर लपरेल आदि का छाजन रहता है।

मुहा०—छत पटना या पड़ना=दीवार के ऊपर बैठ गई कड़ियों पर कंकड़, सुरली, चूना आदि पीटा जाना। छत बनना।

२. घर के ऊपर की खुली हुई पाटन। ऊपर का खुला हुआ कोठा। जैसे,—गरमी में लोग छत पर सोते हैं। ३. ऊपर तानने की चादर। चाँदनी। छतगीर।

मुहा०—छत बाँधना=बादलों का घेरकर आना।

४. छत। उ०—जिन घर उदैसिह छत बैहो। अवर न को जोड़ घर ऐहो।—रा० रू०, पृ० १५।

छत ५—संज्ञा पुं० [सं० क्षत] घाव। जखम। उ०—सुनि सुति सहमेउ राजकुमार। पाके छत अनु लाग अंगार।—मानस १। १६१।

छत^३—क्रि० वि० [सं० सत्] होते हुए। रहते हुए। आछत। उ०—(क) गनती गनिबे ते रहे छतह अछत समान। भलि अब ये तिबि भोम लों परे रहौ तन प्रान।—बिहारी २०, बो० २७५। (ख) प्रान पिड को तजि बसे मुवा कहे सब कोय। जीव छुटै जामें मरे सुछम लखै न सोय।—कबीर (शब्द०)। (ग)

यंछ छाता परबस परयो सूचा के बुधि नाहि।—संतबानी०, पु० ३२।

अक्षगीर—संज्ञा स्त्री० [हि० अक्ष + का० गीर] दे० 'अक्षगीरी'।

अक्षगीरी—संज्ञा स्त्री० [हि० अक्ष + का० गीर] १. वह कपड़ा या चाँदनी जो किसी कमरे में ऊपर की ओर सोभा के लिये छत से लट्टी हुई टंगी रहती है। २. वह कपड़ा जो रात को सोने के समय जोस आदि से रक्षित रहने के लिये पलंग के ऊपरी भाग में उसके पायों के ऊपर चारों ओर चार डंडे लगाकर तान दिया जाता है।

अक्षज—संज्ञा पु० [सं० अक्षज] १. रक्त। सून। जहू। उ०—रघुनंदन दसकंध के काटे मुंड कराल। अक्षज अक्षज कबंध तै करयो भूमि नभ खाल।—स० सप्तक, पु० ३६७। २. रक्त के समान लाल उ०—अक्षज नयन सर बाहु बिसाल। हिमशिखरि निभ तनु कछु एक बाल।—मानस, १। ५२।

अक्षना—संज्ञा पु० [सं० अक्षन, हि० अक्षता, अव० अक्षौना] पत्तों का बना हुआ छाता। उ०—सौहन सचाई बात करत रचाई दोऊ अक्षि सौ बचाई छीटें ओर अक्षनान की।—रसकुसुमाकर (शब्द०)।

अक्षनारी—वि० [हि० अक्षता या अक्षना] छाते की तरह फैला हुआ। दूर तक फैला हुआ। विस्तृत।

अक्षोच—इस शब्द का प्रयोग प्रायः वृक्षों के लिये होता है।

अक्षर—संज्ञा पु० [सं० अक्षर] दे० 'अक्षर'। उ०—आक रोमी सब पूं बेहतर था मुझे। ना अक्षर हो तस्त यो अक्षर मुझे।—बकिनी०, पु० १८८।

अक्षरना—क्रि० प्र० [सं० स्तरण] दे० 'अक्षरना'। उ०—बाहर स्टेशन की तरफ नील फूल की लता चढ़ाई हुई सारे स्टेशन की दीवार पर अक्षर रहती है।—काले०, पु० ३७।

अक्षरिया बिच—संज्ञा पु० [सं० अक्षर + हि० इया (प्रत्य०) + बिच] एक प्रकार की धुमो जो बहुत विषम होती है।

अक्षरी—संज्ञा पु० स्त्री० [सं० अक्षर] १. छाता। २. पत्तों का बना हुआ छाता। उ०—जै कर सुघर धुरिया पिय के साथ। अक्षरी एक अक्षरिया बरखत पाय।—रहीम (शब्द०)। १. मंडप। ४. राजाओं की पिता या साधु महात्माओं की समाधि के स्थान पर स्मारक रूप से बना हुआ अज्जेदार मंडप। ५. कबूतरों के बैठने के लिये बाँस की फट्टियों का बना हुआ टट्टर जो एक ऊँचे बाँस के सिरे पर बँधा रहता है। ६. कहारों की डोबी के ऊपर छाया के लिये रखा हुआ बाँस की फट्टियों का टट्टर जिसपर कपड़ा डालते हैं। ७. बहल या इसके आदि के ऊपर का छावण। ८. जहाज के ऊपर का भाग। ९. धुनी। कुकुरमृत्ता। १०. छोटा छाता। ११. एक प्रकार का गुम्बारा या छाता जिसके सहारे व्यक्ति वायुयान से कूदकर जमीन पर आ सकता है। पैराशूट।

अक्षरीदार—वि० [हि० अक्षरी + का० दार] जिसके ऊपर अक्षरी लगी हो। अक्षरी से युक्त।

अक्षरीधारी—संज्ञा पु० [हि० अक्षरी + धार] अक्षरी धारण करने वाला। अक्षरी धारी।

अक्षरीनुमा—वि० [हि० अक्षरी + का० नुमह] अक्षरी के आकार-वाला। अक्षरी नुमा।

अक्षरीबाज—संज्ञा पु० [हि० अक्षरी + का० बाज] अक्षरी या (पैराशूट) के सहारे वायुयान से उतरकर आक्रमण करने-वाले सैनिक। अक्षरी के द्वारा वायुयान से उतरनेवाला।

अक्षरीसेना—संज्ञा पु० [हि०] अक्षरी के सहारे वायुयानों से उतरने-वाली सेना।

अक्षलोह—संज्ञा स्त्री० [हि० अक्ष + लोहना] एक प्रकार की कसरत जिसमें गच के ऊपर पेट के बल पट सेटकर सोटते हैं। इससे तोंह नहीं निकलती।

अक्षता—संज्ञा पु० [सं० अक्ष] १. छाता। २. अक्षसाल। उ०—सीस भयो हर हार सुमेर अक्षता भयो आप सुमेर को बासी।—मतिराम (शब्द०)।

अक्षि—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि] हानि। नुटि। नुकसान। उ०—का अक्षि आमु खून धनु तोरे। देखा राम बप के ओरे।—मानस, १। २०२।

अक्षिया—संज्ञा स्त्री० [हि० अक्षी] छाती। वक्षस्पल। उ०—सुनहु श्याम तुमको ससि डरपत है कहत प सरन तुम्हारी। सूर श्याम बिभ्राने सोए लिए लगाइ अक्षिया महतारी।—सूर० (शब्द०)।

अक्षियाना—क्रि० स० [हि० अक्षी] १. छाती के पास से जाना। २. बंदूक छोड़ने के समय कुंदे को छाती के पास लगाना। बंदूक तानना।

अक्षिबल—संज्ञा पु० [सं० अक्षिबल, प्रा० अक्षिबल, सत्त्वबल, अक्षिबल, सत्त्वबल; अक्षिबल, अक्षिबल] एक पेड़ जो भारत के प्रायः सभी तर प्रदेशों में बोझा बहुत मिलता है। सप्तपर्णी। सप्तछद।

अक्षिबल—इसके एक एक पत्ते में सात सात छोटी छोटी पतियाँ होती हैं। इसका पेड़ बड़ा होता है और इसकी टहनियों के तोड़ने से दूध निकलता है। इसकी छाल द्रव्य, कृमिनाशक, पुष्टिकारक, ज्वरघ्न और संकोचक होती है। इसका दूध फोड़े पर लगाया जाता है और तेल में मिलाकर दर्द दूर करने के लिये कान में डाला जाता है। इसकी लकड़ी संदूक, अलमारी आदि बनाने के काम में आती है। दक्षगुप्त नामक काढ़े में इसकी छाल पड़ती है।

अक्षीस—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'अक्षीस'।

अक्षीरा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'अक्षीस'। उ०—अक्षीर सौ गार्ड बजाके सब राय रागिनी पुत्र बंधूच सहीच अक्षीर।—मकचरी०, पु० १०५।

अक्षीसा—वि० [हि० अक्षीस] [वि० अक्षीसी] १. जिसे अक्षीस बुझि हो। चतुर। सयाना। चालाक। उ०—(क) पीसी है मनोज की सी छुटेगी अक्षीसी छंटी सुरत उड़ी सी चरी बाग की नदी सी है।—रघुराज (शब्द०)। (ख) आए हो पठाए वा अक्षीसे अक्षिया के इत बीस बिस ऊँची बीरबाबन कलौच हूँ।—रत्नाकर, भा० १, पु० १४५। २. मककोर। घृतं। जैसे,—नाई की जाति बड़ी अक्षीसी होती है।

अक्षीसापन—संज्ञा पु० [हि० अक्षीसा + पन] मककारी। चालाकी। घृतता।

अक्षीसो—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'अक्षीसी'।

छतुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० छतरी] १० 'छतारी' । उ०—कोठ कर पीकवान कोठ के छतुरी छवि छावत ।—प्रेमचम०, पृ० १२ ।

छतौना—संज्ञा पुं० [हि० छाता] १. छाता । २. छत्रक । जुमी ।

छत्त†—संज्ञा पुं० [हि०] १० 'छत' ।

छत्त†—संज्ञा पुं० [सं० छत्र प्र० छत्त] १० 'छत्र' । उ०—बलह तें चामर परह भरिष छत्त तिरहुति उगाहिष ।—कीर्ति०, पृ० ५८ ।

छत्तर†—संज्ञा पुं० [हि०] १. १० 'छत्र' । २. १० 'सत्र' ।

छत्तरी†—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रिय] १० 'क्षत्रिय' । उ०—मालूम होता है, छत्तरी बंस है ।—मान०, भा० ५, पृ० ६ ।

छत्ता—संज्ञा पुं० [सं० छत्र, प्रा० छत्त] १. छाता । छतरी । २. पटाव या छत जिसके नीचे से रास्ता हो । ३. मधुमक्खी, भिड़ आदि के रहने का घर जो मोम का होता है और जिसमें बहुत से जाने रहते हैं । ४. छाते की तरह दूर तक फैली हुई वस्तु । छतनार चीज । चकता । जैसे, दूब का छत्ता । बाद का छत्ता । ५. कमल का बीजकोश । ७. १. छत्रसाल राजा ।

छत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य अर्थशास्त्र में कथित चमड़े का कुप्पा आदि जिसके सहारे नदी पार उतरते थे ।

छत्ती†—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रिय] क्षत्रिय । क्षत्री । उ०—रवि धार धार भई भूमि रती । रमै जानि बांसत निस्संक छत्ती ।—पृ० रा०, १२ । १०६ ।

छत्तीस†—वि० [सं० षटत्रिंशत्, प्रा० छत्तीसा] जो गिनती में तीस और छह हो । उ०—बिगसंत बदन छत्तीस बंस । जदुनाथ जन्म जनु जडुन बंस ।—पृ० रा०, १ । १७१५ ।

छत्तीस†—संज्ञा पुं० १. तीस और छह के योग की संख्या । २. इस संख्या को सूचित करनेवाला चक्र जो इस प्रकार लिखा जाता है—३६ ।

छत्तीसवाँ—वि० [हि० छत्तीस + वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में पैंतीस और वस्तुओं के उपरांत हो । क्रम में जिसका स्थान छत्तीस पर हो ।

छत्तीसा†—संज्ञा पुं० [हि० छत्तीस] (छत्तीस जातियों की सेवा करनेवाला या जिसे छत्तीस बुद्धि हो) नाई । हज्जाम ।

छत्तीसी†—वि० [वि० स्त्री० छत्तीसी] घृत । चालाक । चतुर ।

छत्तीसी—वि० [हि० छत्तीस + ई (प्रत्य०)] १. गहरे क्लृप्त खंदाली (स्त्री) । उ०—भरे यह छिनाल बड़ी छत्तीसी है ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ३१ । २. छिनाल ।

छत्तुरी—संज्ञा पुं० [सं० छत्र, प्रा० छत्त + उर (प्रत्य०)] १. छाता । २. वह गोबर जो कंठों के ठेर (कंडोर) की चोटी पर छोपा जाता है । ३. वह गोबर जो खलिहान में घनाज की राशि के सिर पर चोरी या नजर से बचाने के लिये रखा या छोप दिया जाता है । ४. वह छप्पर जो शूरे की राशि के ऊपर छाया या रक्खा जाता है । ५. छोटा छाता । १० 'छतरी' ।

छत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. छाता । छतरी । २. राक्षसों का छाता जो राजचिह्नों में से एक है । उ०—तिय बदले तेरो कियो, भीर बंग सिर छत्र ।—हम्मोर०, पृ० १८ ।

विशेष—यह छाता बहुमूल्य स्वर्णदंड आदि से युक्त रत्न-उदित तथा मोती की झालरों आदि से अलंकृत होता है । भोजराज कृत 'युक्तिकल्पतरु' नामक ग्रंथ में छत्रों के परिमाण, वर्ण आदि का विस्तृत विवरण है । जिस छत्र का कपड़ा सफेद हो और जिसके सिरे पर सोने का कलश हो, उसका नाम कमलदंड है । जिसका डंडा, कमानों, कील आदि विभूत सोने की हों, कपड़ा और डोरी कृष्ण वर्ण हो, जिसमें बत्तीस बत्तीस मोतियों की बत्तीस लड़ों की झालरें लटकती हों और जिसमें अनेक रत्न जड़े हों, उस छत्र का नास 'नवदंड' है । इसी नवदंड छत्र के ऊपर यदि आठ भंगुल की एक पताका लगा दी जाय तो यह 'दिक्विजयी' छत्र हो जाता है ।

यौ०—छत्रछाँह, छत्रछाया = रक्षा । शरण ।

मुहा०—किसी की छत्रछाँह में होना किसी की संरक्षा में रहना ।

१. जुमी । भूफोड़ । कुकुरमुत्ता । ४. बच की तरह का एक पेड़ । ५. छत्ररिया विष । क्षर विष । अतिछत्र । ६. गुरु के दोष का गोपन । बड़ों के दोष छिपाना ।

छत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जुमी । भूफोड़ । कुकुरमुत्ता । २. छाता । ३. तासमखाने की जाति का एक पीछा जिसके पत्ते और फल ललाई लिए होते हैं । ४. कौड़िला नाम की चिड़िया । मछरंग । ५. शिव के पूजार्थं निमित्त मंदिर । मंथप । देवमंदिर । ६. सहृदय का छाता । ७. मिर्ची का कूजा ।

छत्रकदेही—संज्ञा पुं० [सं० छत्रकदेहिन्] रावण चाकी नामक जलजंतु जिसके शरीर के ऊपर एक गोल छाता सा रहता है । यह समुद्र में होता है ।

छत्रचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] शुभाशुभ फल निकालने के लिये फलित ज्योतिष का एक चक्र ।

विशेष—इसमें नौ नौ चरों की तीन पंक्तियाँ बनाते हैं जिनमें क्रमशः पश्चिमी से लेकर अश्लेषा तक, मघा से लेकर ज्येष्ठा तक और मूल से रेवती तक नौ नौ चक्रों के नाम रखते हैं । फिर नक्षत्र के नाम के अनुसार शुभाशुभ की गणना करते हैं ।

छत्रछाँह—संज्ञा स्त्री० [सं० छत्र + हि० छाँह] रक्षा । शरण । उ०—या की छत्रछाँह सुख बसियत सकल समाधा है ।—बनारस, पृ० ५४६ ।

छत्रछाया—संज्ञा स्त्री० [सं० छत्रछाया] १० 'छत्रछाँह' । उ०—व्यापारी निगमों की आर्थिक शक्ति उनकी छत्रछाया में उलटा बड़ी ही दीखती है ।—भा० ६० रु०, पृ० ६२८ ।

छत्रधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. छत्र धारण करनेवाला व्यक्ति । २. राजा । ३. वह सेवक जो राजा के ऊपर छाता लगाता है ।

छत्रधार—संज्ञा पुं० [सं०] 'छत्रचारी' । उ०—छत्रधार देखत ठहि जाइ । अधिक गरब में झाक मिलाइ !—कबीर सं०, पृ० २०६ ।

छत्रधारी—वि० [सं० छत्रधारिन्] [वि० जी० छत्रधारिणी] जो छत्र धारण करे। जैसे, छत्रधारी राजा।

छत्रधारी—संज्ञा पुं० [सं०] १. छत्र धारण करनेवाला, राजा। २. वह सेवक जो राजाओं के ऊपर छाता लगावे।

छत्रपति—संज्ञा पुं० [सं०] छत्र का अधिपति, राजा। उ०—जस निर्मल चिर चिर जिवे छत्रपति साहि सलेयु।—प्रकबरी०, पृ० ६८। २. बंबूरीप का एक नरेश (को०)। ३. शिवाजी की उपाधि।

छत्रपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थलपत्र। २. भोजपत्र का वृक्ष। पटुम। ३. मानपत्र। मानकम्बू। मान। ४. छतिवन।

छत्रपुत्र—संज्ञा पुं० [सं० छत्र + पुत्र] क्षत्रिय का पुत्र। राजपूत। उ०—तोहि बुध कीन्ह छत्रपुत्र मारी। सुनहु दुःख जो भई दुखारी।—हिंदी प्रेम०, पृ० २७७।

छत्रपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] तिलक पुष्प।

छत्रबंधु—संज्ञा पुं० [सं० छत्रबन्धु] नीच कुल का क्षत्रिय। क्षत्रियाधम। उ०—छत्रबंधु तैं बिप्र बोलाई। बालै लिये सहित समुदाई।—मानस, १। १७४।

छत्रभंग—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा का नाश। २. ज्योतिष का एक योग जो राजा का नाशक माना गया है। ३. स्त्री की पति द्वारा परित्यक्तावस्था। वैषम्य। विधवपन। ४. पराजयता। ५. हाथी का एक दोष जो उसके दोनों हाँतों के कुछ नीचे ऊपर होने के कारण माना जाता है। ६. परनिर्भरता। पराधीनता। पराश्रयता (को०)।

छत्रमहाराज—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार आकाशस्थ चार दिक्पाल।

विशेष—ये एक एक दिशाओं के अधिपति माने जाते हैं। इनके नाम और क्रम इस प्रकार हैं—प्रथम वीणाराज जो पूर्व दिशा के अधिपति हैं और हाथ में बीणा लिए रहते हैं; दूसरे लङ्गराज जो पश्चिम दिशा के अधिपति हैं और हाथ में लङ्ग लिए रहते हैं; तीसरे ध्वजराज जो उत्तर दिशा के अधिपति हैं और हाथ में ध्वज लिए रहते हैं; चौथे चैत्यराज जो दक्षिण दिशा के अधिपति हैं और हाथ में चैत्य धारण करते हैं। बौद्ध मंदिरों में प्रायः इनकी मूर्तियाँ रहती हैं।

छत्रवर्ती—संज्ञा जी० [सं०] एक प्राचीन राज्य जो पांचाल के उत्तर पड़ता था। इसे अहिच्छत्र या अहिक्षेत्र भी कहते थे। महामारत, हरिवंश और विष्णुपुराण इत्यादि में इसका उल्लेख है।

छत्रवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] मुचकुंद का पेड़।

छत्रांग—संज्ञा पुं० [सं० छत्राङ्ग] गोवंती हरताल।

छत्रा—संज्ञा जी० [सं०] १. खुमी। डिगरी। २. धमियाँ। ३. सोवा। सोमा। ४. मजीठ। ५. रास्ना। रासन। ६. सुश्रुत के अनुसार एक रसायन औषधि।

छत्राक—संज्ञा पुं० [सं०] १. खुमी। डिगरी। २. कुकुरमुत्ता। ३. जलबबूल।

छत्राकार—वि० [सं०] छाते के समान। उ०—अद्भुत कमं कान्ह जब ऊपर्यो। छत्राकार महागिरि धरयो।—नव० प्र०, पृ० ३१२।

छत्राकी—संज्ञा जी० [सं०] १. रास्ना नाम की औषधि। २. सर्पाकी। ३. छत्रिका (को०)।

छत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] छाता लेकर चलनेवाला व्यक्ति (को०)।

छत्रिका—संज्ञा जी० [सं०] खुमी। डिगरी।

छत्रो—वि० [सं० छत्रिन्] [वि० जी० छत्रिणी] छत्र धारण करनेवाला। छत्रयुक्त।

छत्रो—संज्ञा पुं० नापित। नाई।

छत्रो—संज्ञा पुं० [सं० क्षत्रिय] दे० 'क्षत्रिय'।

छत्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर। २. कुंज।

छदंग—संज्ञा पुं० [सं० क्षत + अङ्ग] गंडस्थल। उ०—पद संगर जंजीर जरि, कज्जल गिरवर प्रंग। दिग्ध दंत बग धन धरन, भरत मदंग छदंग।—पृ० रा०, ८। ४६।

छदंब—संज्ञा पुं० [सं० छय] दे० 'छदम'।

छद—संज्ञा पुं० [सं०] १. ठकनेवाली वस्तु। धावरण (चादर, ढक्कन, छाल इत्यादि)। जैसे,—रदच्छद। उ०—चाव विषु मंडल में बिहुम विराई, छद मोतिन के छाज ते छपाए छपते नहीं।—(लज्ज०)। २. चिड़ियों का पंख। पक्ष। ३. पत्ता। पक्ष। परां।—अनेकार्य०, पृ० ५२। ४. अधिपत्य वृक्ष। गणिवन। ५. तमाल वृक्ष। ६. तेजपत्ता। ७. म्यान। खोल (को०)।

छदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. धावरण। धाच्छादन। ढक्कन। २. पत्ता। उ०—अमल कमल सा बदन महा। धावर छरीले छदन महा। उ०—साकेत, पृ० ७६। ३. चिड़ियों का पंख। ४. तमालपत्र। ५. तेजपत्ता।

छदपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'छदपव' (को०)।

छदपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. तेजपत्ता। २. भोजपत्र।

छदम—संज्ञा पुं० [सं० छय] दे० 'छदम'।

छदाम—संज्ञा पुं० [हि० छ + दाम] पैसे का चौथाई भाग।

छदि, **छदिस्**—संज्ञा जी० [सं०] १. गाड़ी के ऊपर की छत। उ०—वह युद्ध या सवारी के लिये रथ, माल ढोने के लिये छक्रे बनाता था, जिनकी छत छदिस् कहलाती थी।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ७८। २. मकान की छत (को०)।

विशेष—संस्कृत में छदि स्त्रीलिंग और छदिस् नपुंसक लिंग है।

छहरा—संज्ञा पुं० [हि० छ + सं० रव या हि० हाँत] १. वह पशु जो छह हाँत तोड़ चुका हो। २. नटखट लड़का। शरीर लड़का।

छझ—संज्ञा पुं० [सं० छझन्] १. छिपाव। गोपन। २. व्याज। बहाना। हीला। ३. छल। कपट। धोखा। जैसे, छझवेश। ४. मकान की छत या छाजन (को०)।

छझतापस—संज्ञा पुं० [सं०] छली तपस्वी। बना हुआ तापस। कपटी साधु (को०)।

छझवेश—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरों को धोखा देने के लिये बनाया हुआ वेश। बदला हुआ वेश। कृत्रिम वेश।

छझवेशी—वि० [सं० छझवेशिन्] जो वेश बदले हो। जो अपना असली रूप छिपाए हो।

छझिका—संज्ञा जी० [सं०] गुबुच। गिलोय।

छझी—वि० [सं० छझिन्] [वि० जी० छझिनी] १. बनावटी वेश

धारण करनेवाला। अपना असली रूप छिपानेवाला। छनी। कपटी।

छन^१—संज्ञा पुं० [सं० क्षण] १. वर्ष का समय। पुण्यकाल। उ०—सागर उजागर की बहु बाहिनी को पति छन दान प्रिय किष्कि सुरज प्रमल है।—केशव (शब्द०)। २. उत्सव। ३. नियम। नेम। ४. मुहूर्त। उ०—छन उत्सव छन नेम पुनि छन मुहूर्त कहियत।—धनेकाशं०, पृ० ५३। ५. काल। समय। क्षण। उ०—सो को कबि जो छवि कहि सके ता छन जपुना तीर।—भारतेंदु शं०, भा० १, पृ० ४५५।

छन^२—संज्ञा स्त्री० [अनु०] जलती या तपती वस्तु पर पानी पड़ने से उत्पन्न शब्द। छनक।

छनकना^१—क्रि० सं० [अनु०] किसी वस्तु को वेग से फेंकना। सनकाना। उ०—(क) करवि मुट्टि कम्मान। तानि कन बाल छनकिय।—पृ० रा०, १। ६३६।

छनकना^२—क्रि० प्र० छन छन शब्द करना। छनकना। उ०—सनकत सेल बलत्तार तोर। छनकत तेग जंजीरनु मोर।—सूदन (शब्द०)।

छनक^३—संज्ञा स्त्री० [अनु०] छन छन करने का शब्द। झनझनाहट। झनकार। उ०—कवि मतिराम भूवननि की छनक सुनि चाँद जो चरल चित रसिक रसास की।—मतिराम (शब्द०)। २. जलती या तपती हुई वस्तु पर पानी आदि पड़ने के कारण छन छन होने का शब्द।

छनक^४—संज्ञा स्त्री० [सं० शङ्कु या हि० सनक] किसी आशंका से चौंकर भागने की क्रिया। मड़क।

छनक^५—संज्ञा पुं० [सं० क्षण, हि० छन + एक] एक क्षण। उ०—परि छोटी पनि ए नहीं, जातें होत बिगार। टन समूह को छनक में, आरत तनिक भोगार।—बृंद (शब्द०)।

छनकना^१—क्रि० प्र० [अनु० छन छन] १. किसी तपती हुई धातु (जैसे गरम तवा) पर से पानी आदि की बूँद का छन छन शब्द करके उड़ जाना। उ०—मैं ले दियो लयी सु कर, छुवत छनकि गो नीर। लाल तुम्हारी भरगजा उर हैं लगी बहीर।—बिहारी (शब्द०)। २. छन छन शब्द करना। झनकार करना। झनझनाना।

छनकना^२—क्रि० प्र० [सं० शङ्कन] चौकन्ना होकर भागना। मड़कना। जैसे,—यह गाय पास जाते ही छनकती है।

छनक मनक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. गहनों के बजने का शब्द। आभूषणों की झनकार। २. साज बाज। ठसक। जैसे—न्योते में लिप्या बड़ी छनक मनक से जाती हैं। ३. ६० 'छगन मगन'।

छनकाना^१—क्रि० सं० [हि० छनकना] १. पानी को आँच पर रखकर भाप बनाकर उड़ाना जिससे उसका परिमाण कुछ कम हो जाय। २. तपे हुए बरतन में पानी या घीर कोई द्रव पदार्थ डालकर गरम करना। बलकाना। ३. फेंकना। छोड़ना। छटकाना। ४. ऐसे बपए जैसी वस्तु को हिसा लगाकर छन छन, झन झन शब्द उत्पन्न करना। उ०—जाने

किस किस की माताएँ जेवों में ऐसे छनकाएँ।—बंदन०, पृ० ६२।

छनकाना^२—क्रि० सं० [हि० छनकना (= शंका करना)] चौकाना। चौकन्ना करना। मड़काना।

छनकार—संज्ञा स्त्री० [हि० छनकना] १. छन छन की आवाज। छनछनाहट। २. बघों की रिमझिम। उ०—बिदुप्रो को छनती छनकार, बादुरों के वे दुहरे स्वर।—पल्लव, पृ० २१।

छनछनाना^१—क्रि० प्र० [अनु०] १. किसी तरी हुई धातु (जैसे गरम तवा) पर पानी आदि पड़ने के कारण छन छन शब्द होना। २. झोलते हुए घों, तेल आदि में किसी गीली वस्तु (जैसे, आटे की जोई, तरकारी आदि) के पड़ने के कारण छन छन शब्द होना। छन छन शब्द होना। ३. झनझनाना। झनकार होना। ४. जलन होना। चुनचुनाना। लगना।

छनछनाना^२—क्रि० सं० १. छन छन का शब्द उत्पन्न करना। २. झनकार करना।

छनछवि—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षणछवि] क्षणप्रभा। बिजली। उ०—केसोदास ऐसै प्रीति छिावति छननि में जैसे छनछवि छूटै छिो जाइ घन में।—केशव शं०, पृ० ७८।

छनछेप—संज्ञा पुं० [सं० संक्षेप] बोधे में कोई बात कहना। सारांश। निष्कर्ष। समास। उ०—गीता पुरान का वेद मने छनछेप में भीत चेतन्य हुआ।—सं० दरिया, पृ० ६६।

छनदा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षणदा] १. रात। रात्रि। उ०—तजी रंक सकुचति न चित, बोलति बाकु कुबाकु। छिन छनदा छाकी रहत, छुटत न छिन छवि छाकु।—बिहारी २०, शो० २१८। २. बिजली। बिद्युत्। उ०—नम्रमंडल हूँ छितिमंडल हूँ, छनदा की छटा छहरान लगी।—मतिराम (शब्द०)।

छननमनन—संज्ञा पुं० [अनु०] कड़ाह के झोलते घों या तेल में किसी तली जानेवाली गीली वस्तु के पड़ने का शब्द।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—छनन मनन होना = कड़ाह में पूरी कबोरी आदि निकलना। पूरी, पकवान आदि बनना।

छनना—क्रि० प्र० [सं० क्षरण] १. किसी चूर्ण (जैसे आटा) या द्रव पदार्थ (जैसे, दूध, पानी आदि) का किसी कपड़े या जाली के महीन छेवों में से होकर इस प्रकार नीचे गिरना कि मैल, खद, सीठी आदि बलग होकर ऊपर रह जाय। छननी से साफ होना। २. छोटे छोटे छेदों से होकर घाना। जैसे,—पेड़ की पत्तियों के बीच से घूप छनछनकर आ रही है। ३. किसी नये का पिया जाना। जैसे, भाँग छनना, शराब छनना।

मुहा०—गहरी छनना = (१) खूब मेल जोल होना। गाढी मंत्री होना। (२) परस्पर रहस्य की बातें होना। खूब घुट घुटकर बात होना। (३) आपस में चलना। बिगाड़ होना। मड़ाई होना। एक दूसरे के विरुद्ध प्रयत्न होना। जैसे—उन दोनों में आजकल गहरी छन रही है।

४. बहुत से छेदों से युक्त होना। स्थान स्थान पर छिद जाना। छननी हो जाना। जैसे,—इस कपड़े में घब क्या रह गया है,

विषकुल जन गया है। ५. बिच जाना। अनेक स्थानों पर चोट खाना। जैसे,—उसका सारा शरीर तीरों से छन गया है। ६. छानबीन होना। निर्णय होना। सच्ची और झूठी बातों का पता चलना। जैसे, मामला छनना। ७. कड़ाह में से पूरी पकवान भादि तखकर निकलना। जैसे, पूरी छनना।

छनना^२—संज्ञा पुं० छनने की वस्तु। किसी वस्तु को छानने का साधन। जैसे, महीन छनना (कपड़ा)।

छननी—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षरण] वह छेददार वस्तु जिसमें कोई चीज छानी जाय। चलनी। उ०—मस्मीभूत अस्थियों के अनगिन, स्तर की छननी में छनकर। एक मनोमोहक उन्मादक भ्रममिल निर्भर रूप ग्रहण कर।—इत्यमर, पृ० ६८।

छनपरभा^३—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षणप्रभा] बिजली। उ०—छनपरभा के छल रही चमकि मार करबार।—स० सप्तक, पृ० २७२।

छनमंगु^४—वि० [सं० क्षणमङ्गु] नाशवान्। अनिरय। उ०—राम विरह तनु तजि छनमंगु।—मानस, २। २१०।

छनमंगुर^५—वि० [सं० क्षणमङ्गुर] अनिरय। नाशवान्। क्षणस्थायी। उ०—तनु मिथ्या छनमंगुर जानी। चेतन जीव सदा विर मानो।—सूर०, ५। ४।

छनभर—क्रि० वि० [हि०] थोड़ी देर। लहमा भर।

छनदधि^६—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षण+दधि (= कति, प्रभा)] क्षणप्रभा। बिजली। उ०—छनदधि छटा मकाल की तड़ित चंचला होइ।—अनेकार्यं, पृ० ३८।

छनबाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'छनाना'।

छनाका—संज्ञा पुं० [अनु०] १. लनाका। ठनाका। भ्रमकार। २. क्षयों के बजने का शब्द।

छनाना—क्रि० सं० [हि०] छनना। १. किसी दूसरे से छानने का काम करना। २. नशा आदि पिलाना। जैसे, भाँग छनाना। ३. कड़ाह में पकवान तलवाना।

छनिक^७—वि० [सं० क्षणिक] दे० 'क्षणिक'।

छनिक^२—संज्ञा पुं० [हि०] छन + एक] एक क्षण। अल्प काल।

छनिक^३—क्रि० वि० दे० 'छन भर'।

छन्न^१—वि० [सं०] १. ढका हुआ। आवृत। आवच्छादित। २. लुप्त। गायब।

छन्न^२—संज्ञा पुं० १. एकांत स्थान। निर्जन स्थान। गुप्त स्थान।

छन्न^३—संज्ञा पुं० [अनु०] १. किसी तपी हुई चीज पर पानी आदि पड़ने से उत्पन्न शब्द। २. कड़कड़ाते हुए तेल या घी में तलने की वस्तु सड़ने का शब्द।

मुहा०—छन्न होना = सूख जाना। उड़ जाना।

१. वायुओं के पसरों की परस्पर टक्कर से उत्पन्न शब्द। छनकार। ठनकार। ४. छोटी छोटी कंकड़ियाँ। बजरी।

छन्न^४—संज्ञा पुं० [सं० छन्द] [स्त्री० छन्नी] छंद नाम का गहना। हाथ का एक आभूषण। उ०—चाहे उसके लिये माँ के हाथों के छन्न कफना ही क्यों न मिरबी रखने पड़े।—ज्ञानदान, पृ० ६७।

छन्नमति—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि पर परदा पड़ा हो। जड़। मूर्ख।

छन्ना—संज्ञा पुं० [हि० छन्ना] दे० 'छनना'।

छप्^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. पानी में किसी वस्तु के एकबारगी जोर से गिरने का शब्द। २. पानी के एकबारगी पड़ने का शब्द। पानी के छोटों के जोर से पड़ने का शब्द।

यौ०—छपछप, छपाछप = (१) भरपूर। (२) छप् छप् की लगातार आवाज। (३) छप् छप् की ध्वनि के साथ।

छप—वि० [हि० छिपन, छपन] गायब। लुप्त। मद्यट।

यौ०—छपलाक = मद्यट जगत्। उ०—तब तोहि जानी पंढिता, मुत्ती कहि देहु भाय। छपलोक की बात कहू तब मोर मन पतियाय।—संतवाणी०, भा० १, पृ० १२५।

छपक^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. तलवार भादि के चलने की आवाज। २. छप छप की आवाज। दे० 'छप'।

छपक^२—संज्ञा स्त्री० [हि० छिपना] छिपने या छुपकने की स्थिति।

छपकना—क्रि० प्र० [हि० छिपना] दे० 'छिपना'। उ०—बबकत छपकत चीता भावें तीनु जने धरि खावे।—स० हरिया, पृ० १२६।

छपकना^३—क्रि० सं० [हि० छप से अनु०] १. पतली कमची से किसी को मारना। पतली लचोली छड़ी से किसी को पीटना। २. कटारी या तलवार के आघात से किसी वस्तु को काट डालना। छिन्न करना। ३. थोड़े जल में छप छप की आवाज करना। थोड़े पानी में हाथ पेर चलाना।

छपकली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'छपकली'। उ०—छपकली से, चोर से, मृत से वह बहुत डरता है।—सुनीता, पृ० ११३।

छपका^१—संज्ञा पुं० [हि० चपकना] सिर में पहनने का एक गहना जिसे लखनऊ में मुसलमान स्त्रियाँ पहनती हैं।

छपका^२—संज्ञा पुं० [हि० छपकना] पतली कमची। सीटा।

छपका^३—संज्ञा पुं० [हि० चार+पका] खुरवाले पशुओं का एक रोग जिसमें पशुओं के खुर पक जाते हैं। खुरपका।

छपका^४—संज्ञा पुं० [अनु०] १. पानी का भरपूर छींटा। २. एक प्रकार का जाल जिसमें कबूतर फँसाए जाते हैं। ३. लकड़ी के संदूक में ऊपर का वह पट्टा जिसमें कुड़े की जजीर लगी रहती है। ४. पानी में हाथ पेर भारने की क्रिया या भाव। ५. दाग। धब्बा। ६. छापा।

क्रि० प्र०—भारना।—लेना।

छपछपाना^१—क्रि० प्र० [अनु०] १. पानी पर कोई वस्तु जोर से पटककर छप छप शब्द उत्पन्न करना। पानी पर हाथ पोंव पटकना। २. कुछ तैर लेना। जैसे,—वे तैरते क्या हैं, यों ही पानी पर छपछपाते हैं।

छपछपाना^२—क्रि० सं० [अनु०] छड़ी या हाथ भादि पटककर पानी को इस प्रकार हिलाना जिसमें छप छप शब्द उत्पन्न हो।

छपटना^३—क्रि० प्र० [सं० चिपिट, हि० चिपटना] १. चिपकना। किसी वस्तु से लगना या सटना। २. आलिंगित होना।

छपटना^४—क्रि० प्र० [हि० छपटना] दे० 'छपटना'।

अपठाना—क्रि० स० [हि० अपठना] १. चिपकाना । चिमटाना ।
२. छाती से लगाना । आसिगन करना ।

अपटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० अपठना] लकड़ी का टुकड़ा जो छीलने से निकले । बेली ।

अपटी^२—वि० पतला । दुबला । कुल ।

अपटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का भुजंगा पक्षी ।

अपट—संज्ञा पुं० [सं० षट्, प्रा० छ + सं० पठ] अमर । और ।
उ०—(क) उलटि तहाँ पग धारिये जासौ मन मान्यो । अपट कंज तजि देखि सौं लटि प्रेम न जान्यो ।—सूर (शब्द०) ।
(ख) अपट सुनहि वर बचन हमारे । बिनु बचनाय ताप नैनन की कोन हरे हरि अंतर करे ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) सिधुर मदकर सिद्धरा ऊखेई बखराय । तज कावेरी कमल बन अपट सीधा छाय ।—बांकी० प्र०, भा० ३, पृ० ६६ ।

अपन^१—वि० [हि० छिपना] १. गुप्त । गायब । लुप्त । (पश्चिम में प्रयुक्त) । उ०—न जाने कहीं अपन हो गई ।—अष्टाराम (शब्द०) ।

अपन^२—वि० [सं० षट्पञ्चाशत्, प्रा० अपन्न] दे० 'अपन्न' । उ०—क्रोध काल प्रत्यक्ष ही कियो सकल को नास । सुंदर कौरव पांडवा अपन कोटि परमास ।—सुंदर प्र०, भा० पृ० ७०६ ।

यौ०—अपनकोट, अपनकोटि = अपन्न करोड़ । उ०—सागर कोट जाके कलसार । अपन कोट जाके पनिहार ।—दरिया० बानी, पृ० २३ ।

अपन^३—संज्ञा पुं० [सं० अपण] विनाश । नाश । संहार । उ०—छोनी में न छोड़यो छप्यो, छोनिय को छोना छोटी छोनिय अपन बांकी बिरह कहनु हो ।—तुलसी प्र०, पृ० १६० ।

अपनहार—वि० [हि० अपन + हार (प्रत्य०)] विध्वंसकर्ता । विनाशक । उ०—कीन्हों छोनी छकी बिनु छोनिय अपनहार । कठिन कुठारपानि भीर बानि जानि कै ।—तुलसी, प्र० पृ० १८८ ।

अपना^१—क्रि० प्र० [हि० अपना (= दबना)] १. छापा जाना । चिह्न या दाब पड़ना । २. चिह्नित होना । अंकित होना । ३. मुद्रित होना । जैसे,—पुस्तक अपना । ४. शीतला का टीका लगना ।

अपना^२—क्रि० प्र० [हि० छिपना] दे० 'छिपना' । उ०—मार-तंड छपि अंधकार छाये दिसानु दस ।—हम्मीर०, पृ० ४३ ।

अपरा^१—संज्ञा पुं० [हि० अपर] जैसे, अपरखट, अपरबंद, अपरिया ।

अपरखट—संज्ञा स्त्री० [हि० अपर + खाट] वह पसंग जिसके ऊपर ढोंगे के सहारे कपड़ा तना हो । मसहरीदार पसंग ।

अपरखाट—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'अपरखट' ।

अपर अपर^१—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'अप', 'अपप' ।

अपर अपर^२—तर । भीगा हुआ या गोला ।

अपरबंद^१—वि० [हि० अपर + बंद] [संज्ञा अपरबंदी] १. जिनका पर बना हो । बाबाद । बसे हुए । पाही का उखटा । जैसे, अपरबंद असाही, अपरबंद बासिदा । २. अपर छाने का काम करनेवाला । अपर छानेवाला ।

अपरबंदी^१—संज्ञा पुं० [देश०] पूना के आसपास बसनेवाली एक जाति जो अपने को राजपूत कुल से उत्पन्न बतलाती है ।

अपरबंदी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० अपरबंद + ई (प्रत्य०)] १. अपर छाने का काम । छाई । २. छाने की मजदूरी । छाई ।

अपरा^२—संज्ञा पुं० [हि० अपर] १. बांस का टोकरा जो पत्तों से बड़ा होता है और जिसमें तमोली पान रखते हैं । २. दे० 'अपर' । ३. बिहार का एक जिला और नगर जिसको सारन भी कहते हैं ।

अपरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० अपर + रिया (प्रत्य०)] छोटा अपर । दे० 'अपरी' ।

अपरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० अपर] भोपड़ी । मढ़ी । उ०—चंदन की कुटकी भली, बंबूर की अबरौड़ें । बैलों की अपरी भली, ना सावत का बड़ गाँड़ें ।—कबीर प्र०, पृ० ५२ ।

अपवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० आपना] दे० 'अपाई' ।

अपवाना—क्रि० स० [हि० आपना] दे० 'अपाना' ।

अपवैया^१—संज्ञा पुं०, वि० [हि० आपना] १. आपनेवाला । २. आपनेवाला । ३. मुद्रित करानेवाला (प्रकाशक) । उ०—मंगल सदाहीं करै राम हैं प्रसन्न सदा राम रसिकावली या अथ अपवैया को ।—जुगलेश (शब्द०) ।

अपरी^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] सोने या चांदी का एक गहना जिसे स्त्रियाँ हाथ की उँगलियों में पहनती हैं ।

अपा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० अपा] १. रात्रि । रात । उ०—अपन अपा के, रवि इव मा के, बड़ उत्तंग उड़ाके । विविध कता के, बड़े पताके, छुवै जे रवि रव चाके ।—रघुराज (शब्द०) । २. हरिदा । हलदी ।

अपाई—संज्ञा स्त्री० [हि० आपना] १. आपने का काम । मुद्रण । अंकन । २. आपने का ढग । ३. आपने की मजदूरी ।

अपाकर—संज्ञा पुं० [सं० अपाकर] १. चंद्रमा । चांद । उ०—छियो अपाकर छितिज छोरनिधि छपुन छंद छल छीन्हो ।—श्यामा०, पृ० १२० । २. कपूर । कपूर ।

अपाका—संज्ञा पुं० [अनु०] १. पानी पर किसी वस्तु के जोर से पड़ने का शब्द । २. जोर से उछाला या फेंका हुआ पानी या तरल वस्तु का छीटा ।

क्रि० प्र०—मारना ।

अपाना^१—क्रि० स० [हि० आपना का प्रे० रूप] १. आपने का काम कराना । २. चिह्नित कराना । अंकित कराना । ३. आपेखाने में पुस्तक आदि अंकित कराना । मुद्रित कराना । ४. शीतला का टीका लगवाना ।

अपाना^२—क्रि० स० [हि० आपना] दे० 'अपाना' । उ०—जाहि लय गेलहु, से बल आयल, तै तर रहसि अपाई ।—विद्यापति, पृ० ३५७ ।

अपाना^३—क्रि० प्र० [अनु० अपाप या हि० आपना] जोतने के लिये खेत को सींचना ।

अपानाय^१—संज्ञा पुं० [सं० अपानाय] दे० 'अपानाय' ।

अपाव^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अपाव' ।

अपन्न^१—वि० [सं० षट्पञ्चाशत्, प्रा० अपण, अपन्न] जो गिनती में पचास और छह हो । पचास से छह अधिक ।

अप्यन^१—संज्ञा पुं० १. पचास और छह की संख्या। २. इस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—५६।

मुहा०—अप्यन टके का खर्च = अधिक खर्च। उ०—पूछो, रोटी घाल में ऐसा कौन सा अप्यन टके का खर्च है।—रंगभूमि, भा० २, पृ० ७०२।

बी०—अप्यन भोग = (१) अप्यन प्रकार के भोजन। (२) अंधिरो में होनेवाला एक उत्सव जिसमें अप्यन प्रकार के भोज्य पदार्थ भगवान् को अर्पण किए जाते हैं। उ०—व्याजान चार प्रकार के अप्यन भोग बिलास। रामा एकल भाव में जाणी हरि के पास।—राम० बर्म०, पृ० २४।

अप्यव—संज्ञा पुं० [सं० अप्यव, प्रा० अप्यव] एक मानिक छंद जिसमें छह चरण होते हैं।

विशेष—इस छंद में पहले रोला के चार पद, फिर उल्लास के दो पद होते हैं। जघु गुरु के क्रम से इस छंद के ७१ अक्ष होते हैं। जैसे—अजय विजय बलकरां बीर बैताल बिहंकर। मकंठ हरि हर बह्म इंद्र चंवल जु शुभंकर। आन सिंह बाहुन कच्छ कोकिल सर सुंजर। मदन मत्स्य साटंक मेघ सारंग पयोधर। शुभकमल कंद बारण मलम, मदन भजंगम सर सरस। गणि समर सु सारस मेर कहि, मकर मली सिद्धिहि सरस।

अप्यर—संज्ञा पुं० [हि० अप्यर] १. बाँस या लकड़ी की फट्टियों और फूस आदि की बनी हुई छानन जो मकान के ऊपर छाई जाती है। छानन। छान।

क्रि० प्र०—छाना।—छालना।—पड़ना।—रखना।

बी०—अप्यरबंध।

मुहा०—अप्यर पर रखना = दूर रखना। भलग रखना। रहने देना। छोड़ देना। चर्चा न करना। जिक्र न करना। जैसे,—तुम अपनी घड़ी अप्यर पर रखो, लामो हमारा रुपया दो। अप्यर पर फूस न होना = अत्यंत निर्धन होना। कंगाल होना। अकिंचन होना। अप्यर फाड़कर देना = मनायास देना। बिना परिश्रम प्रदान करना। बंटे बंटाए अकस्मात् देना। चर बंटे पहुँचाना। जैसे,—जब देना होता है तो ईश्वर अप्यर फाड़कर देता है। अप्यर रखना = (१) पहचान रखना। भोग रखना। निहोरा लगाना। उपकृत करना। (२) बोझोपशु करना। दोष लगाना। कलंक लगाना।

२. छोटा ताल या गड्ढा जिसमें बरसाती पानी इकट्ठा रहता है। बाबर। पोखर। तमैया।

अप्यरबंध^१—संज्ञा पुं० [हि० अप्यर+फा० बंध] १. अप्यर छानेवाला। २. पूना के आसपास बसनेवाली एक जाति जो अपने को राजपूत कुल से उत्पन्न बतलाती है।

अप्यरबंध^२—वि० जिसने घर बना लिया हो। जो बस गया हो। बसा हुआ। आबाद। जैसे,—अप्यरबंध मसामी।

अप्यरबंध—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'अप्यरबंध'। उ०—चितेरा विधेरा बारी लखेरा ठेहरा राज, पटुवा अप्यरबंध नाई मारमुनिया।—अर्थ०, पृ० ४।

अप्यर्वा—संज्ञा बी० [सं० अप्यर्वा] दे० 'अप्यर्वा'। उ०—जब इस वज्र अप्यर्वा की लकड़ी बिलाय। तो जोहुर हो ज्यों दिप मने अरुणागद। बसिखनी, पृ० १३८।

अप्यकास—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का काष्पदोष। डिगल काष्प में जब डिगल भाषा से भिन्न और भी भाषाएँ प्रयुक्त हों, तब वहाँ अप्यकास दोष होता है। उ०—कले उक्तरो रूप, अप्य सो नाम उचारें। कहे बले अप्यकास, विरुष भाषा बिसतारें।—रघु० क०, पृ० १४।

अप्यड़ा—संज्ञा पुं० [दे०] [अप्य० प्रत्या० अप्यड़ा] १. टोकरा। डला। भावा। छितना। २. खाँचा।

अप्यतखती^१—संज्ञा बी० [हि० अप्य+प्र० तक्रतीप्र] शरीर की सुंदर बनावट। सुंदरता। सज चज।

अप्यतखती^२—संज्ञा बी० [हि०] दे० 'अप्यतखती'।

अप्यरा—संज्ञा पुं० [दे०] अप्यड़ा। डलिया। पिटारी। उ०—जैसे काहू सपे को छबरे पकरि घरयो सु।—अज० प्र०, पृ० ७३।

अप्यि—संज्ञा बी० [सं० अप्यि] शोभा। काति। दे० 'अप्यि'। उ०—सो को कबि जो अप्यि कहि सके ता छन जमुना नीर की।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ५४४।

यौ०—अप्यिकंद = शोभा का पुंज। अत्यंत सुंदर। उ०—पियत भए सुंदर नंदनद। मुसकत जात मंद अप्यिकंद।—तंद प्र०, पृ० २३८। अप्यिरास = दे० 'अप्यिकंद'। उ०—रोवत मांसु रक्त को, इद्रावति अप्यिरास।—इद्रा०, पृ० ८६।

अप्यिलबा^१—वि० [हि०] दे० 'अप्यिल'।—उ०—मोरा मन बाँधि ली, सोरे गुन छैन अप्यिलवा रसिक रसिलवा।—बनारस, पृ० ४११।

अप्याला—वि० [हि० अप्य+ईला (प्रत्य०) या सं० अप्यिल, प्रा० अप्यिल] [वि० बी० अप्यिली] शोभायुक्त। सुहावना। सुंदर सज्जन का। नौका। उ०—(क) अप्याली लाल को, नवल नेह लहि नारि। बूँबति चाहति, जाइ उर, पहिरति धरति उतारि।—बिहारी र०, दो० १२३। (ख) अनु रे अप्यिली तोहि अप्यि लागी। नैन गुलाल कंत संग जागी,—जायसी प्र०, पृ० १४३।

अप्युदकिया—संज्ञा बी० [हि०] दे० 'अप्युदा'।

अप्युदा—संज्ञा पुं० [हि० अप्य+दु०] गुबरेले की तरह का एक कीड़ा।

विशेष—इसकी पीठ पर छद् काली बुँदकियाँ होती हैं। यह बड़ा विषैला होता है। कहते हैं, इसका काटा नहीं जीता।

अप्यी—संज्ञा बी० [हि० अप्य] दलालों की बोली में पैसा।

अप्योस^१—वि० [सं० अप्योस, प्रा० अप्योसा] जो गिनती में बीस और छह हो।

अप्योस^२—संज्ञा पुं० १. बीस से छह अधिक की संख्या। २. इस संख्या का सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—२६।

अप्योसर्वा—वि० [हि० अप्योस+वा (प्रत्य०)] जो क्रम में पचीस अंक और वस्तुओं के उपरांत हो। जिसका स्थान अप्योस पर हो।

छब्बीसी—संज्ञा स्त्री० [हि० छब्बीस] १. छब्बीस वस्तुओं का समूह । २. फलों की बिन्नी का सेकड़ा जो प्रायः छब्बीस गाढ़ी या १३० का होता है ।

छमंड—संज्ञा पुं० [सं० छमण्ड] वह बालक जिसका पिता मर गया हो । पितृविहीन बालक ।

छम^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. पुंषरू आदि के बजने का शब्द । २. पानी बरसने का शब्द ।

स्त्री०—छमाछम ।

छम^२—संज्ञा पुं० [सं० क्षम] दे० 'क्षम' ।

छम^३—वि० क्षमयुक्त । शक्तियुक्त । समर्थ ।

छमक—संज्ञा स्त्री० [हि० छम] चाल ढाल की बनावट । ठसक । टाटबाट ।—(स्त्रियों के लिये) ।

छमकना—क्रि० प्र० [हि० छम+क] १. पुंषरू आदि हिलाकर छमछम करना । २. गहने आदि बजाना । गहनों को झनकार करना । ठसक दिखाना (स्त्रियों के लिये) । ३. दे० 'छोकना' ।

छमच्छर—संज्ञा पुं० [सं० संबरसर] संवत्सर । संवत् । उ०—संमत मेक सयरा मिले गुणसटौ छमच्छर ।—रा० क०, पृ० ३७१ ।

छमछम—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. वह शब्द जो चलने में पैर में पहने हुए गहनों के बजने से होता है । मृपूर, पायल, पुंषरू आदि के बजने का शब्द । उ०—छमछम करि छिति चलति छटौ पायल दोउ छाजी ।—सुकवि (शब्द०) । २. बानी बरसने का शब्द ।

छमछम^२—क्रि० वि० छम छम शब्द के साथ ।

छमछमाना—क्रि० प्र० [अनु०] १. छम छम शब्द करना । २. छम छम शब्द करके चलना ।

छमना^१—क्रि० प्र० [सं० क्षमन, प्रा० क्षमन] क्षमा करना । उ०—छमिहँहि सज्जन मोर छिठाई । सुनिहँहि बाल बचन मन लाई ।—मानस, १ । ८ ।

छमनीय—वि० [सं० क्षम] सामर्थ्यवान् । क्षम । उपयुक्त ।

छमबाना—क्रि० प्र० [सं० क्षमापन] दे० 'क्षमाना' । उ०—बहुरि बिधि जाइ छमबाइ के रूढ़ को बिस्तु बिधि रुढ़ तहँ तुरत जाए ।—सूर०, ४।६ ।

छमसी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० छ+मास] दे० 'क्षमासी' ।

छमा^२—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षमा, प्रा० क्षमा] दे० 'क्षमा' ।

छमा^३—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षमा] पुषिबी । चरती । अचनि । उ०—संत समाज पयोषि रमा सी । विश्व भार मर अचल क्षमा सी ।—मानस, १ । ३१ ।

छमाई—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षमा] दे० 'क्षमापन' ।

छमाछम^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. गहनों के बजने का शब्द । २. पानी बरसने का शब्द ।

छमाछम^२—क्रि० वि० लगातार छम छम शब्द के साथ । जैसे,—छमाछम पानी बरसना ।

क्षमापन—संज्ञा पुं० [सं० क्षमापन] दे० 'क्षमापन' ।

क्षमावान—वि० [सं० क्षमावान्] दे० 'क्षमावान' ।

क्षमाशी—संज्ञा स्त्री० [हि० क्ष+माशा] छह मासे का बाढ ।

क्षमासी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० क्ष+सं० मास] वह मास जो किसी की मृत्यु से छह महीने पर उसके संबंधी करते हैं ।

क्षमासी^२—वि० छह मास को । छह महीने की अवधिवाली । उ०—एक टकटकी पंख निहाक, भई क्षमासी रैन ।—संतबाणी०, भा० २, पृ० ७२ ।

क्षमिच्छा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षमच्छा] १. क्षमच्छा । २. इशारा । संकेत ।

क्षमो^१—संज्ञा पुं० [सं० क्षमो] एक वृक्ष । शमी । उ०—समिध पलास छमी न्याइय ।—संतबाणी०, भा० १, पृ० २३ ।

क्षमो^२—वि० [सं० क्षमिन्] क्षमाशील । समर्थ । उ०—सुर हरिभक्त असुर हरिद्रोही । सुर प्रति छमी असुर प्रति कोही ।—सूर०, ३ । ११ ।

क्षमुल—संज्ञा पुं० [हि० क्ष+मुल] पशुपान । कार्तिकेय ।

क्षय—संज्ञा पुं० [सं० क्षय] नाश । विनाश । उ०—जेहि रिपु क्षय सोइ रचेहि उपाऊ । भावी वश न जान कछु राऊ ।—मानस, १ । १७० ।

विशेष—दे० 'क्षय' ।

क्षयना^१—क्रि० प्र० [सं० क्षयण] क्षय होना । नाश होना ।

क्षयना^२—क्रि० प्र० [सं० क्षयनाशन] १. क्षा जाना । चिर जाना । उ०—मायामय उनमद है गयो । सुक न कछु अंध तम छयो ।—नंद० प्र०, पृ० २७० । २. क्षोभित होना । क्षाजना । उ०—षट सत रथ कंचन के नए । गज सत चारि मस्त छवि छए ।—नंद०, प्र० पृ० २२१ ।

क्षयल—संज्ञा पुं० [प्रा० क्षयल] दे० 'खैल' । उ०—तिन्ह सब क्षयल भए असबारा । भरत सरिस धय राजकुमारा ।—मानस, १ । २६८ ।

क्षयल्ल—संज्ञा पुं० [सं० क्षयिल्ल, प्रा० क्षयल्ल, क्षयिल्ल, क्षयल्ल] १. बिस्वस । चतुर । २. दे० 'खैल' या 'खेला' । उ०—कुटत गिलोला हृष्य तें पारत चोट पयल्ल । कमल नयन जनु कामिनी करत कटाछ क्षयल्ल ।—पृ० रा०, १ । ७२८ ।

क्षयल्ल—संज्ञा पुं० [सं० खैलक] प्रज । बकरा । छाग । उ०—बहु बचन गाय महिषीन तुंग । खेला क्षयल्ल गडरन्न पुंग ।—पृ० रा०, १७ । ३३ ।

छर^१—संज्ञा पुं० [सं० छल] दे० 'छल' । उ०—(क) पहिचानिय कवि बंद बीर बाबन सूर बर । महाकाय मदमत्त अंत जनु अहित हनुज छर ।—पृ० रा०, ६ । १३ । (ख) सहचरि चतुर तुरत लै भाई, बाह मोल दे करिके बहु छर ।—सूर०, १०।२४५५ ।

छर^२—संज्ञा स्त्री० [अनु०] छरी या कणों के वेग से निकलने या गिरने का शब्द । जैसे,—छर छर कंकड़ियाँ गिर रही हैं ।

स्त्री०—छर छर ।

छर^३—संज्ञा पुं० [सं० छर] दे० 'छर' ।

छर^५—क्रि० [सं० छर] नरवर । नाशवान् । उ०—छर ही बाद वेद
भर पंक्ति छर जामी यत्नानी ।—चरण० बानी, पृ० १२७ ।

छरई—संज्ञा स्त्री० [छेड़] एक तरह का टप्पा ।

छरकना^१—क्रि० प्र० [छनु० छर छर] १. छर छर करके छिटकना
या बिलरना । २. किसी पदार्थ का कभी तल को स्पर्श करते
हुए और कभी उछलते हुए वेग से किसी ओर जाना ।

छरकना^२—क्रि० प्र० ३० 'छलकना' ।

छरकायल^५—वि० [हि० छरकना] बिलरा हुआ । उ०—पाय लगों
छोरो न अब हायल नंद कुमार । छूटत ही घायल करे
छरकायल ये बार ।—स० समक, पृ० २६६ ।

छरकीला^१—वि० [हि० √ छरक + ईला (प्रत्य०)] छिटकनेवाला ।
दूर रहनेवाला । उ०—वे स्वभाव से ही छरकीले होते हैं
और अपनी बातें छिपाने की अपाधि उनमें अधिक है ।—
सुबल अभि० प्र०, (विविध) पृ० ३६ ।

छरछं^५—संज्ञा पुं० [हि० छलछं] ३० 'छलछंद' । उ०—इक
प्रंबर के दूक को निसि मैं झोड़त चंद । दिन मैं झोड़त ताहि
रबि तू क्यों कर छरछंद ।—ब्रज प्र०, पृ० १०६ ।

छरछंदी^१—वि० [हि० छरछंद + ई (प्रत्य०)] ३० 'छलछंदी' ।

छरछर—संज्ञा पुं० [छनु० छर] १. कणों या छरों के वेग से
निकलने और दूसरी वस्तुओं पर गिरने का शब्द । उ०—
तिहि फिर मंडल बीच परी गोली भर भर भर । तहँ फुटिय
कर गौर श्रोन छुटिय छत छर छर ।—सूदन (शब्द०) ।
२. पतली लचीली छड़ी के लगने का शब्द । सट सट । उ०—
काहे कौं हरि इतनी आस्थो । सुनि रो मैया मेरें मैया कितनी
गोरस नास्थो । जब रजु सौं कर गाढ़े बांधे छर छर मार ।
सांटी । सूने घर बाबा नंब नाहीं, ऐसे करि हरि डांटी ।—
सूर०, १०।३७५ ।

छरछराना^१—क्रि० प्र० [सं० छार, हि० छार से आच्छेदित नामिक
धातु] १. नमक या छार आदि लगने से शरीर के घाव
या छिले हुए स्थान में पीड़ा होना । जैसे,—हाथ छरछरा रहा
है । २. छार, नमक आदि का शरीर के घाव या कटे हुए
स्थान पर जगकर पीड़ा उत्पन्न करना । जैसे—नमक घाव
पर छरछराता है ।

छरछराना^२—क्रि० प्र० [छनु० छर छर] कणों का वेग से किसी
वस्तु पर गिरना या बिलरना ।

छरछराहट—संज्ञा स्त्री० [हि० √ छरछरा + हट (प्रत्य०)] १. छरों
या कणों के वेगपूर्वक एक साथ निकलने और गिरने
का भाव । २. घाव में नमक आदि लगने से उत्पन्न पीड़ा ।
उ०—छरछराहट जब कलेजे में हुई । मुस्कराहट होंठ पर कैसे
रहे ।—चोखे०, पृ० ५६ ।

छरद^५—संज्ञा पुं० [सं० छर्द] ३० 'छर्द' । उ०—जो छिया छरद
करि सकल संतनि तजी तामु तैं मूकमति प्रीति ठानी ।—
सूर०, १।११० ।

छरन^५—संज्ञा पुं० [सं० छरण] विनाश । नाश । छरण । उ०—
तबही छरन जान अपछरा । सुषन लाग न बांधे छरा ।—
चित्रा०, पृ० ७४ ।

छरना^१—क्रि० प्र० [सं० छरण, प्रा० छरण] १. घूना । बहना ।
टपकना । भरना । उ०—ऊंची घटा घटा इव राजहि छरति
छटा छिति छोरें ।—रघुराज (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. चक्ककाना । चुबुवाना । उ०—बियुरी प्रलक, शिथिल कटि
होरी नलकृत छरितु मरालगामिनी ।—सूर (शब्द०) । ३.
छंटना । दूर होना । न रह जाना । उ०—जब हरि मुरली
प्रधर धरत । थिर धर, धर धिर, पवन धकित रहैं जमुना
जल न बहत । खग मोहैं, मृगजृण भुलाही, निरखि बदन छवि
छरत ।—सूर०, १०।६२० । ४. चावल का फटककर साफ
किया जाना । ५. छंटकर अलग होना । दूर होना । उ०—
जहि जेहि मग सिय राम लखन गए तहैं तहैं नर नारि बिनु
छट छरिगे ।—तुलसी (शब्द०) ।

छरना^२—क्रि० प्र० [सं० छरण] कन्ना अलग करने के लिये चावल
को फटककर साफ करना । ३० 'छड़ना' ।

छरना^३—क्रि० प्र० [हि० छरना] भूत प्रेत आदि द्वारा मोहित
होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

छरना^४—क्रि० प्र० [हि० छलना] १. छलना । धोखा देना ।
ठगना । उ०—लोगी कीन बड़ी संकर तैं, ताकौं काम छरे ।
—सूर०, १।३५ । २. मोहित करना । लुभाना । उ०—
तू काँवर पराबस टोना । भूला योग छरा तोहि सोना ।—
जायसी (शब्द०) ।

छरपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० शर + हि० पूर] १. छरीला । २. एक पुष्पिया
जिसमें छरपुरी आदि सुगंधित द्रव्य होते हैं जो विवाहों में
बढ़ाए जाते हैं ।

छरभार^५—संज्ञा पुं० [सं० सार + भार] १. प्रबंध या कार्य का
बोझ । कार्य भार । उ०—(क) देस कोस परिजन परिवार ।
गुरु पद रजहि लाग छरभार ।—तुलसी (शब्द०) । (ख)
लखि अपने मिर सब छरभार । कहि न सकहि कछु करहि
बिचार ।—तुलसी (शब्द०) । २. भ्रंश । बखेड़ा ।

छररा^५—संज्ञा पुं० [हि० छरी] ३० 'छरी' । उ०—बारति भरि
भरि मूठि मूठि छररा ज्यों लागत । सबही अंग अनंग पीर
प्रानन में जागत ।—ब्रज० प्र०, पृ० १७ ।

छरहरा^१—वि० [हि० छल + हारा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० छरहरी, संज्ञा
छरहरापन] १. क्षीणांग । सुबुका । छलका । जो मोटा या
मढ़ा न हो । जैसे, छरहरा बदन । उ०—राधिका संग मिलि
गोग नारी । ...जुबति प्रानंद मरी, मई जुनि कै लरी, मई
छरहरी मुठि बैस थोरी । सूर प्रभु सुनि लवन, तहाँ कोम्ही
गवन, तरुनि मन रवन सब ब्रज किसोरी ।—सूर० १०।१७५१ ।
२. चुस्त । चालाक । तेज । फुरतीला ।

छरहरा^२—वि० [हि० छर (= छड़) + हारा (प्रत्य०)] (= छड़) या
सं० क्षीण-भार] बहुरूपिया ।

छरहरापन—संज्ञा पुं० [हि० छरहरा + पन] १. क्षीणांगता । सुबुकपना ।
२. चुस्ती । फुरती ।

छरा—संज्ञा पुं० [सं० छर, हि० छड़] १. छड़ा । उ०—कंचन पद

पक्षिकों के छरा। सुंदर गजमोतिन के हरा।—नंद० प्र०, पु० २३५। २. सर। लड़ी। उ०—गुंजहरा के छरा उर में पेट पितंबर की छवि न्यारी।—(शब्द०)। ३. रस्ती। ४. नारा। इजारबंद। नीची। उ०—(क) कहे पचाकर नवीन घबनीबी खुबी घबलुले छहरि छरा के छोर छलकै।—पचाकर (शब्द०)। (स) तहें प्रीतम डोठ भए रस के बस हाथ बलावत जोरी करें। गिरि अछुवधून के बल कसु स्त्रिषि, छोर छरान की डोरी परें।—तन्मणुसिंह (शब्द०)।

छराना(७)—कि० सं० [हि० छलना] छलना। डराना। मुग्ध करना। भुलाना। धाविष्ट करना। उ०—दूटि तार मंगार बगावै। कामभूत जनु मोहि छरावै।—नंद० प्र०, पु० १३४।

छरिदा—वि० [प्र० जरीदह, हि० छरीदा] दे० 'छरीदा'।

छरिया—संज्ञा पु० [हि० छड़ी + रिया (प्रत्य०)] छड़िया। छड़ीबरवारा। चौबदार।

छरिला—संज्ञा पु० [हि० छरीला] दे० 'छरीला'।

छरी(७)—संज्ञा ली० [हि० छड़] दे० 'छड़ी'।

छरी^२—वि० [हि० लीबना] दे० 'छड़ी'।

छरी^३—वि० [सं० छलिन् > छली] दे० 'छली'।

छरीदा—वि० [प्र० जरीदह] १. प्रकेला। तने तनहा। बिना किसी लंगी साथी का। २. बिना कोई बोक या धमबाब लिए।

विशेष—यात्रा के संबंध में इस शब्द का प्रयोग अधिक होता है।

छरीदार(७)—वि०, संज्ञा पु० [हि० छरीदार] दे० 'छरीदार'। उ०—(क) छरीदार वैराग विनोदी मिटाके बाहिरे कीन्हें।—सूर०, १४०। (ख) इकहस गोरि ठाढ़ जब जयऊ। छरीदार तब पूछल जयऊ।—कबीर सा०, पु० २५७।

छरीला—संज्ञा पु० [सं० शैलेय] काई की तरह का एक पौधा जिसमें केसर या फूल नहीं लगते। पथरफूल। बुढ़ना।

विशेष—यह पौधा वास्तव में खुदी के समान परांगमयी (पारासाइट) पौधा है जो भिन्न भिन्न प्रकार की काइयों पर चमकर उन्हीं के साथ मिलकर अपनी वृद्धि करता है। यह सीढ़वाली जमीन यथा बड़ी है कड़ी चट्टानों पर उभरे हुए चकरीयों या बाल के लच्छों के रूप में फैलता है और कुछ सुरापन लिए होता है। यह पौधा अधिक है अधिक गर्मी या सदी सह सकता है; यहाँ तक कि जहाँ धीरे कोई वनस्पति नहीं हो सकती, वहाँ भी यह पाया जाता है। सूखने पर इसमें के एक प्रकार की मोठी सुगंध आती है जिसके कारण यह मसालों में पड़ता है। शीघ्र में भी इसका प्रयोग होता है। वैद्यक में यह चरपरा, कड़ुआ, कफ धोर वात का नाशक और तृष्णा या दाह को दूर करनेवाला माना जाता है तथा खाज, फोड़, पथरी आदि रोगों में दिया जाता है। इसे पथरफूल और बुढ़ना भी कहते हैं। हिमालय पर यह चट्टानों, पेड़ों आदि पर बहुत दिखाई देता है।

पर्या०—शैलेय। शैलस्थ। वृद्ध। शिलापूष्प। गिरिपुष्पक। शिलासन। शैलज। शिलेय। कालानुसारं। गृह। पलित। जीर्ण। शिलावृद्ध।

छरेरा—वि० [हि० छरहरा][वि० ली० छरेरी] दे० 'छरहरा'। उ०—बदन छरेरा है या बुहरा।—फिसाना०, भा० ३, पु० ५२।

छरोरा, छरोरा—संज्ञा पु० [सं० क्षुर, प्र० हि० छिलोर, छिलोरवा, छिलोरा (= छिलना)] करीर में कटे या धीरे किसी मुलीली वस्तु के चुभकर कुछ दूर तक खिंच जाने के कारण पड़ी हुई लकीर। खरोच। उ०—पैहों छरोर जो पात को फटिहै पटके हैं तो हों न डरही।—(शब्द०)।

छर्द—संज्ञा पु० [सं०] उलटी। कै। वमन [को०]।

छर्दन—संज्ञा पु० [सं०] वमन। कै करना।

छर्दि^१—संज्ञा ली० [सं०] १. वमन। कै। उलटी। २. एक रोग जिसमें रोगी के मुँह से पानी छूटता है और उसे मचली आती है और वमन होता है।

विशेष—वैद्यक में इस रोग के दो भेद माने गए हैं—एक साधारण जो कड़ुई, लमकीन, पनीली या तेल की बीजों अधिक खाने तथा अधिक धीरे अकाल भोजन करने से हो जाता है। अन्य रोगों के समान इसके भी चार भेद हैं—वातज, पित्तज, श्लेष्मज और त्रिविधज। दूमरा आर्गन्तुक जो अत्यंत श्रम, भय, उद्वेग, अजीर्ण आदि के कारण उत्पन्न होता है। वैद्यक में यह पाँच प्रकार का माना गया है—वीभत्स, वीहृदज, आमज, असात्म्यज और कृमिज। इस रोग से कास, श्वास, उवर आदि भी हो जाते हैं।

पर्या०—प्रचक्षिका। छर्द। वमन। वमि। छर्दिका। वांति। उर्गार। छर्दन। उत्कासिका।

छर्दि^२—संज्ञा ली० [सं० छर्दिस्] १. घर। २. आच्छादनयुक्त स्थान। मुरजित स्थान (को०)। ३. तेज। ४. उदगार। वमन।

छर्दिका—संज्ञा ली० [सं०] १. वमन। २. विष्णुक्रांता।

छर्दिकारिपु—संज्ञा ली० [सं०] छोटी इलायची।

छर्दिघन^१—वि० [सं०] वमनरोधक। मिचली का नाशक।

छर्दिघन^२—संज्ञा पु० [सं०] महानिद्र। अक्रायन।

छरी—संज्ञा पु० [हि० छरना, भरना या अनु० छरछर] [ली० छरी] १. छोटी कंकड़ी। कंकड़ आदि का छोटा टुकड़ा। २. लोहे या सीसे के छोटे छोटे टुकड़ों का समूह जो बंदूक में भरकर चलाया जाता है। ३. वेग में फेंके हुए पानी के छोटे छोटे छोटों या कणों का समूह।

छलंका—संज्ञा ली० [हि० छलंग] दे० 'छलंग'। उ०—चंचलता के चलन सी अचनहुँ माहि हरी न। ऐसे कीन हरीन हैं जासु छलंक हरी न।—स० सप्तक, पु० २६६।

छलंग(७)—संज्ञा ली० [हि०] दे० 'छलंग'।

छल—संज्ञा पु० [सं०] १. वास्तविक रूप को छिपाने का कार्य जिससे कोई वस्तु या कोई बात धीरे की धीरे देख पड़े। वह व्यवहार जो दूसरे को धोखा देने या बहाने के लिये किया जाता है। २. ध्याज। धिम। बहाना। ३. धूर्तता। वंचना। ठगपन।

यौ०—छलकपट। छलछप। छलछिद्र। छलछात। छलछेव। छलबल। छलबिद्या = छलछिद्र।

४. कपटन दम् । ५. युद्ध के नियम के विरुद्ध शत्रु पर हल-प्रहार । ६. न्याय शास्त्र के सोलह पदार्थों में से चौदहवाँ पदार्थ जिसके द्वारा प्रतिवादी बक्ता की बात का वाक्य के अर्थविकल्प द्वारा विधान या खंडन करता है ।

विशेष—श्याम में यह तीन प्रकार का माना गया है—बाकछल, सामान्यछल और उपचारछल । जिसमें साधारणतः कहे हुए किसी वाक्य का बक्ता के अभिप्राय से भिन्न अर्थ कल्पित किया जाता है, वह बाकछल कहलाता है; जैसे किसी ने कहा कि 'यह बालक नव कंबल लिए है' । इसपर प्रतिवादी या छलवादी नव शब्द का बक्ता के अभिमत अर्थ से भिन्न अर्थ कल्पित करके खंडन करता है और कहता है कि 'बालक नव कंबल कहीं लिए है, उसके पास तो एक ही है' । जिसमें संभावित अर्थ का प्रति सागान्य के योग से असंभूत अर्थ कल्पित किया जाय वह सामान्य छल है । जैसे, किसी ने कहा कि 'ब्राह्मण विद्याचरण संपन्न होता है' । इसपर छलवादी कहता है—'हाँ विद्याचरण संपन्न होना तो ब्राह्मण का गुण ही है; पर यदि यह गुण ब्राह्मण का है तो वाक्य भी विद्याचरण संपन्न होगा; क्योंकि वह भी ब्राह्मण ही है' । अर्थविकल्प (मुद्वाविरा, अलंकार, लक्षणा व्यंजना आदि) द्वारा सूचित अभिप्रेत अर्थ का जहाँ शब्दों के मूल अर्थ आदि को लेकर निषेध किया जाय, वहाँ उपचार छल होता है । जैसे, किसी ने कहा 'सारा घर गया है' । इसपर प्रतिवादी कहता है कि 'घर कैसे जायगा ? वह तो जड़ है' ।

छल—संज्ञा पुं० [अनु०] जल के छोटों के गिरने का शब्द । पानी की चार जो पथिकों को ऊपर से पानी पिलाने में बँध जाती है ।

मुद्वा—छल पिलाना = कटोरे बजा बजाकर राहु चलते पथिकों को पानी पिलाना ।

छलक—संज्ञा स्त्री० [हि० छलकना] छलकने का भाव या किया । उ०—गिर करारे टूट के नदी छलक मारें ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४८६ ।

छलक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] छल करनेवाला ।

छलकन—संज्ञा स्त्री० [हि० छलकना] १. छलकने का भाव । पानी आदि की उछाल । पानी या धीर किसी पतले पदार्थ के हिलने और ढोलने के कारण उछलकर बरतन से बाहर आने का भाव । २. उद्गार । स्फुरण । उ०—छबि छलकन भरी पीक पलकन त्योही श्रम जलकन अधिकाने खै ।—पद्याकर (शब्द०) ।

छलकना—क्रि० प्र० [अनु०] १. पानी या धीर किसी पतली चीज का हिलने ढुलने आदि के कारण बरतन से उछलकर बाहर गिरना । आघात के कारण पानी आदि का बरतन से ऊपर उठकर बाहर आना ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग पात्र और पात्र में भरे हुए जल आदि दोनों के लिये होता है । जैसे, मधजल गगरी छलकत जाय ।

२. उमड़ना । बाहिर प्रकट होना । उद्गारित होना । उ०—(क)

मनहुँ उमगि भ्रंग भ्रंग छबि छलकै ।—तुलसी (शब्द०) । (क) भोकुल में गोपिन गोविंद संग खेली फाग राति भ्रि, प्रात समय ऐसी छबि छलकै ।—पद्याकर (शब्द०) ।

छलकाना—क्रि० सं० [हि० छलकना] किसी पात्र में भरे हुए जल आदि को हिला ढुलाकर बाहर उछालना ।

छलछल—संज्ञा पुं० [हि० छल + छल] [वि० छलछली] कपट का जास । कपट का व्यवहार । चालबाजी । धूर्तता ।

छलछली—वि० [हि० छलछल] कपटी । धूर्त । चालबाज । धोखेबाज ।

छलछल—संज्ञा पुं० [सं० छल + छल] छल कपट । छल का भाव ।

छलछल—संज्ञा पुं० [अनु०] छलछल का शब्द । जल के छलकने की ध्वनि । छलकने का भाव । उ०—कल कल छलछल सरिता बहतो छिन छिन ।—मधुज्वाल, पृ० ४१ ।

छलछलाना—क्रि० प्र० [अनु०] १. आँखों में आँसू आ जाना । आँखें भर आना । २. छल छल शब्द करना । पानी आदि थोड़ा थोड़ा करके गिराना जिसमें छल छल शब्द उत्पन्न हो ।

छलछाया—संज्ञा पुं० [सं० छल + छाया] मायाजाल । छलावा । उ०—कोऊ छनी छलीहों मूरति छलछाया सो गयो दिखाइ ।—ब्रज० प्र०, पृ० १६२ ।

छलछिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] कपट व्यवहार । धूर्तता । धोखेबाजी । उ०—मोहि सपनेहु छलछिद्र न भावा ।—तुलसी (शब्द०) ।

छलछिद्री—संज्ञा पुं० [हि० छलछिद्र] धोखेबाज । छली । कपटी ।

छलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० छलित] छल करने का कार्य । उ०—बिहरत पास पलास बास नहि मोहत कामे । निरस कठोर छलीक छनन की लाली जामे ।—दीन० प्र०, पृ० २०५ ।

छलना—क्रि० सं० [सं० छल] किसी को धोखा देना । धुलाने में डालना । दगा देना । प्रतारित करना ।

छलना—संज्ञा स्त्री० [सं०] धोखा । छल । प्रतारणा । उ०—किनु वह छलना थी, मिथ्या अधिकार की ।—लहर, पृ० ७८ ।

छलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० चालनी, हि० चालना या सं० चालिनी] महीन कपड़े या छेबदार चमड़े से मढ़ा हुआ एक मँडरेदार बरतन जिससे चोकर, भूसी आदि अलग करने के लिये आटा छानते हैं । आटा चालनेका बरतन । चलनी ।

मुद्वा—(किसी वस्तु को) छलनी कर डालना या कर देना = (१) किसी वस्तु में बहुत से छेद कर डालना । (२) किसी वस्तु को बहुत से स्थानों पर फाड़कर बेकाम कर डालना । (किसी वस्तु का) छलनी हो जाना = (१) किसी वस्तु में बहुत से छेद हो जाना । (२) किसी वस्तु का स्थान स्थान पर फटकर बेकाम हो जाना । छलनी में डाल छाज में उड़ाना = बात का बतगड़ करना । थोड़ी सी बुराई या दोष को बहुत बढ़ाकर कहना । थोड़ी सी बात को लेकर चारों ओर बढ़ा बढ़ाकर कहते फिरना । (स्वर्ग) कलेषा छलनी होना = (१) दुःख या अशुभ सहते सहते हृदय जंजर हो जाना । निरंतर कष्ट से जी ऊब जाना । (२) जो दुखानेवाली बात सुनते सुनते घबरा जाना ।

छलबल—संज्ञा पुं० [सं० छल + बल] दे० 'छलछंद' । उ०—महामत्स

या प्रेम की जब छिय करत उद्योत । तब वाके छलबल निरखि,
बिचि हूँ कायर होत । —बज० प्र०, पृ० १०५ ।

छलमलाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'छलकना' उ०—बंसी पुनि
बनघोर रूप बल छलमलै ।—वनानंद, पृ० १७६ ।

छलबिद्या—संज्ञा स्त्री० [सं० छल + विद्या] मायाबाल । जादू । उ०—
कोउ कहँ महो बरस बेत पुनि लेत दुराई । यह छलबिद्या कही
कौन पिय तुमहि सिखाई ।—नंद० प्र०, पृ० १७६ ।

छलहार्द^१—वि० स्त्री० [सं० छल + हृद (प्रत्य०)] छली । कपटी ।
बासबाज । धूर्त । उ०—ये छलहार्द सुगई सबै निसि घोस
निबाज हमें बहसी हैं ।—निबाज (शब्द०) ।

छलहार्द^२—संज्ञा स्त्री० छल । कपट ।

छलाँग—संज्ञा स्त्री० [हि० उछल + अंग] पैरों को एकबारगी दूर तक
फेंककर वेग के साथ आगे बढ़ने का कार्य । कुद्दान । फलाँग ।
चोकड़ी ।

क्रि० प्र०—भरना ।—मारना ।

छलाँगना—क्रि० प्र० [हि० छलाँग] चोकड़ी भरना । कुद्कर
आगे बढ़ना । फलाँग मारना ।

छला^१—संज्ञा पुं० [सं० छल्ली (= लता)] छल्ला उँगली में पहनने
का गहना । उ०—छला परोसिनि हाथ तैं छल करि लियो
पिछानि । पियहि बिखायो लखि बिलखि रिससूचक मुसकानि ।—
बिहारी २०, दो० ३७६ ।

छला^२—संज्ञा स्त्री० [सं० छटा] धामा । चमक । दीप्ति । भलक ।

छलाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० छल + धाई (प्रत्य०)] छल का भाव ।
कपट । उ०—पंडू के पूत कपूत सपूत सुओधन भो कलि छोटो
छलाई ।—बुलसी (शब्द०) ।

छलाना, छलाबना^१—क्रि० स० [हि० छलना का प्रे० रूप] धोखे
में डलवाना । धोखा दिलाना । प्रतारित करना । उ०—
कुमुदिनि तुह बैरिनि नहि धाई । मोहि मसि बोलि छलावसि
धाई ।—जायसी (शब्द०) ।

छलाव—संज्ञा पुं० [हि० छल + आव (प्रत्य०)] दे० 'छलावा' । उ०—
सिर तैं हूँ अघसिर करे सिर सिर चहुँ चहुँ पाब । ऐसे सिर
बालीस हैं मन कहिये क छलाव ।—सुंदर० प्र०, भा० २,
पृ० ७३० ।

छलावा—संज्ञा पुं० [हि० छल] १. मूल प्रेत आदि की छाया जो एक
बार दिखाई पड़कर फिर भूत से अवृण्य हो जाती है । माया-
दृश्य । उ०—छलावैं की तरह भासित हुए उस रूपक को
'छायादृश्य' (फेन्टोमेटा) कहते हैं ।—चिंतामणि भा० २,
पृ० २०० ।

मुहा०—छलावा सा = बहुत चंचल । उ०—कर तैं छटक छटी
छलकि छलावा सी ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

२. वह प्रकाश या लुक जो दलदलों के किनारे या जंगलों में रह
रहकर दिखाई पड़ता-धीरे गायब हो जाता है । धगिया
बैताल । उल्कापुल प्रेत ।

मुहा०—छलावा खेलना = धगिया बैताल का इधर उधर दिखाई
पड़ना । इधर उधर लुक फिरता हुआ दिखाई देना ।

३. चपल । चंचल । धोख । ४. धंदाबाज । जादू ।

छलिक—संज्ञा पुं० [सं०] नाट्य शास्त्र में रूपक का एक भेद ।

छलित—वि० [सं०] जिसे धोखा दिया गया हो । छला हुआ ।
प्रतारित । बंचित ।

छलितक—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक का एक भेद ।

छलिया—वि० [सं० छल + हि० हया (प्रत्य०)] छल करनेवाला ।
कपटी । धोखेबाज । उ०—(क) यह छलिया सपने मिलि
मोसों । गयो पराय कहीं सति तोसों ।—रघुराज (शब्द०) ।
(ख) या छलिया ने बनाय के खासो पठायो है याहि न जाने
कहाँ सों ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

छलिहारी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० छल + हारी (प्रत्य०)] दे० 'छलहार्द' ।
उ०—साख बात तक धरो करो पन साख दूर, धीर को सिखा
के देखी केती छलिहारी है ।—शुक्ल ग्राम० प्र० (सा०)
पृ० ३१ ।

छली—वि० [सं० छलित्] छल करनेवाला । कपटी । धोखेबाज ।
उ०—भ्याबी बंचक कुटिल सठ छपी धूर्त छली जु ।—
अनेकार्य०, पृ० ४८ ।

छलीक^१—वि० [हि० छली] दे० 'छली' । उ०—विहतर पास
पलास बास नहि मोहत कामै । निरस कठोर छलीक छलन
की खाली जामै ।—दीन० प्र०, पृ० २०५ ।

छलीकरी—संज्ञा स्त्री० [हि० छाला] एक रोग जिसमें उँगलियों के
नाखून के भीतर छाला पड़ जाता है ।

विशेष—सोमों में यह प्रवाद है कि यह रोग उस मिट्टी के लगने
से होता है जिसपर साँप का मूद गिरा रहता है । इस रोग
में उँगलियों में पीड़ा होने लगती है और कभी कभी नाखून
पक भी जाता है ।

छलीही^१—वि० [हि० छल + छली (प्रत्य०)] छलनेवाला । उ०—कोऊ
छली छलीही मूरति छलछाया सी गयो दिखाई ।—बज० प्र०,
पृ० १६२ ।

छला—संज्ञा पुं० [सं० छल्ली (= लता)] १. वह सादी घेंगूड़ी जो बातु
के तार के टुकड़े को मोड़कर बनाई जाती है और हाथ पैर
की उँगलियों में पहनी जाती है । मुंदरी । उ०—घेंगूड़ी लाल
की करती कयामत आज मर होती । जिन्हें की धान घट्टी
सड़ मुए वह एक छल्ले पर ।—कविता को०, भा० ४, पृ०
२६ । २. घेंगूड़ी की तरह की कोई मंडलाकार वस्तु । कड़ा ।
कुंडली । ३. नैचे की बधिर में वे गोले चिह्न जो रेशम या
तार लपेटकर बनाए जाते हैं । ४. वह पक्की पतली दीवार
जो ऊपर से दिखाने या रक्षा के लिये कच्ची दीवार से
लगाकर बनाई गई हो । ५. तेल की बूँदों जो नीबू आदि की
झर्क की बोतल में ऊपर से इसलिये डाल दी जाती है जिससे
झर्क बिगड़ने न पावे । ६. एक प्रकार का पञ्जाबी गीत या
तुकबंदी जिसे गा गाकर हिजड़े भील मांगते हैं ।

छल्लि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'छल्ली' ।

छल्ली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० छल्ला] कच्ची दीवार की रक्षा के लिये
उससे लगाकर उठाई हुई पक्की दीवार ।

छल्ली^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छाल । २. लता । ३. संतति । ४. एक
प्रकार का फूल ।

अस्त्रोदार—वि० [हि० अस्त्र + का० दार] १. जिसमें अस्त्र लगे हों । २. धुंधला या पेषदार (बाल) । ३. जिसमें संबलाकार चिह्न या घेरे बने हों ।

अवः—संज्ञा पुं० [सं० अवि] अप । अवि । उ०—वर कामची उर-वाक, अपवर अव घरे, हावा भावकर मृदु हरे बोली सुण हरे ।—रघु० उ०, पृ० १२८ ।

अवना—संज्ञा पुं० [सं० शाव, सावक] [भी० अवनी] १. बच्चा । छीना । उ०—भई हैं प्रकट प्रति दिव्य देह धरि मानो विभुवन अवि अवनी ।—तुलसी (शब्द०) । २. सूधार का बच्चा ।

अवना—क्रि० स० [सं० अवण, प्रा० सवण, माग० सवण] सुनना । उ०—गुह मुखि भवना, गुहमुखि अवना, गुहमुखि रवना रे ।—दादू०, पृ० ५०० ।

अवा—संज्ञा पुं० [सं० शावक, प्रा० सावय] किसी पशु का बच्चा । बछड़ा । उ०—(क) तैं रन केहरि केहरी के बिदले भरि कुंजर छैल अवा से ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) हय हंकि धर्मक उठाइ रन । जिमि सिंह अवा कड़ि सेन वन ।—सुदन (शब्द०) ।

अवा—संज्ञा पुं० [देश०] ऐंड़ी । उ०—(क) अवान की छुई न जाति कुध साधु माधुरी ।—केशव (शब्द०) । (ख) ऐसे दुराज दुहूँ बय के सब ही को लगे अब भोचद सूझन । लूटन लागी प्रभा कड़ि के बढ़ि केस अवान सों लागे अरुझन ।—रस कुसुमाकर (शब्द०) ।

अवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० आना, आवना] १. आने का काम । २. आने की मजदूरी ।

अवाना—क्रि० स० [हि० आना का प्रेरण] आने का काम कराना । उ०—पूछे आनि लोग कीन्हें आई हो ? अवाई लीजे, दीबे जोइ भावे, तन मन प्राण वारिये ।—भक्तमाल (प्रि०), पृ० ४६२ ।

अवाली—संज्ञा स्त्री० [हि० अ+वाला] छोटी जठराची जो पत्थर आदि उठाने के काम में आती है ।

अवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अवीला] १. गोआ । सोदय २. कांति । प्रभा । चमक । ३. त्वचा । चमड़ी । खाल (की०) । ४. त्वचा का रंग (की०) ५. सामान्यतः कोई भी रंग (की०) । ६. प्रकाश की किरण (की०) ।

अवि—संज्ञा स्त्री० [अ० शवीह] चित्र । फोटो । प्रतिकृति ।

अवेया—संज्ञा पुं० [हि० आना] वह जो छप्पर आदि आए । आनेवाला ।

अवा—वि०, संज्ञा पुं० [सं० अट् > षण्, प्रा० अ, अप० अह] दे० 'अ' । उ०—तब श्री गुसाई जी रामदास को आज्ञा करी जोतू 'दबवली सिला' भागें बैठि अह महीना ताई अष्टाक्षर मंत्र को जप करायो करि ।—दो सो बावन०, भा० २, पृ० ५६ ।

अहत्तर—वि० संज्ञा पुं० [सं० अट्ससति, प्रा०, अस्तयति, अहत्तर] दे० 'अहत्तर' । उ०—ताके दम की अहत्तर हजार की हुंडी भई ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० १६३ ।

अहर, अहरन—संज्ञा स्त्री० [सं० अरण अथवा देव०] बिखरने का भाव ।

अहरना—क्रि० प्र० [सं० अरण, प्रा० अरण, अरण अथवा देव०] बिखराना । बिखरना । छिटकना । फैलना । उ०—(क) अवि केसरि की अहरे तन तैं कड़ि बाहर से तन कोलिन पै ।—सुंदरीसंबंध (शब्द०) । (ख) जनु इंदु उयो अघनीतल से चहुँ ओर अटा अवि की अहरो ।—सुंदरीसंबंध (शब्द०) ।

अहरो—वि० [हि० अ+ह्रा (प्रत्य०)] १. अह परत का । अह पस्तेवाला । २. उपज का अटा (भाग) ।

अहरना—क्रि० प्र० [सं० अरण, हि० अहरना अथवा हि० अहरना का प्र० रूप] छितराना । बिखरना । चारों ओर फैलना । उ०—(क) कबुकि चूर चूर भई तानी । टूटे हार मोति अहरानी ।—जायसी (शब्द०) । (ख) नीरज तैं कड़ि नीर नदी अवि अजीत ओरधि पै अहरानी । (ग) जेहि पहिरे अगुनी मरी, अगुनी अवि अहराहि (शब्द०) ।

अहरना—क्रि० स० बिखराना । छितराना । फैलाना । उ०—सीस से सग सखी मुमुखो अवि कोटि अपाकर की अहरावनि ।—देव (शब्द०) ।

अहरना—क्रि० स० [मं० अह] क्षार करना । भस्म करना । उ०—न्योछावर के तन अहरावहु । अह होहु संग बहुरि न भावहु ।—जायगी (शब्द०) ।

अहरीला—वि० [हि० अहरी] [वि० आ० अहरीली] १. अहरील । हनका । २. फुरतीला । धुंस्त । ३. अहरेनेवाला । बिखरने या फैलनेवाला ।

अहलना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'अहरना' । उ०—रहो अवि आए एह अहरे मुनि देखि के रूप अहलत मनि कौन हेरा ।—मं० दरिया, पृ० ७६ ।

अहियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० अही] अहि । आया । उ०—दक्षरथ कोशल्या के प्राण तत्त सुमन की अहियाँ । मानो चारि हंस सरवर ते बैठे पाइ सदहियाँ ।—सूर (शब्द०) ।

अही—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह चिड़िया (प्रायः कबूतर) जो अपने घड़ों से उड़कर दूसरे के घड़ों पर जा रहे और फिर कुछ दिनों में वही की कुछ चिड़ियों को बहकाकर अपने घड़ों पर ले जाए । कुट्टा । गुल्लू ।

आंदस—वि० [सं० आन्दस] [वि० भी० आंदसा] १. वेदपाठी । वेदज्ञ । २. वेद संबंधी । वेदिक । ३. अद या वृत्त संबंधी । ४. गद्द । रटनेवाला । ५. मुक्त ।

आंदस—संज्ञा पुं० १. वेद । २. वेद में निष्ठात ब्राह्मण (की०) ।

आंदसीय—वि० [सं० आन्दसीय] अदशास्त्र का ज्ञाता । पिंगल का जानकार (की०) ।

आंदिक—वि० [सं० आन्दिक] अद संबंधी । अद के अनुरूप । उ०—यह हमारे अनुभव की बात है कि निरर्थक शब्दों के प्रवाह से कवि ऐसी आंदिक गति पैदा कर देता है ।—पा०, सा० सि०, पृ० ६ ।

आंदोग्य—संज्ञा पुं० [सं० आन्वोग्य] १. सामवेद का एक ब्राह्मण जिसके प्रथम दो भागों में विवाह आदि का वर्णन है और प्रतिम आठ प्रपाठकों में उपनिषद् है । २. आन्वोग्य ब्राह्मण का उपनिषद् ।

विशेष—इस उपनिषद् के प्रथम प्रपाठक (ब्राह्मण के तृतीय) में १३ खंड हैं जिनमें प्रायः ओ३म् का ही वर्णन है। दूसरे में २४ खंड हैं जिनमें यज्ञों की विधि और यज्ञों के गायन की शिक्षा बड़े विस्तार से है। तीसरे प्रपाठक के १६ खंड हैं जिनमें सृष्टि की उत्पत्ति आदि का वर्णन तथा ब्रह्म विद्या का सूक्ष्म विचार है। चत्वारिंश संध्या और सूर्य के जप आदि का भी विवरण है। चौथे प्रपाठक में १७ खंड हैं जिनमें सत्यकाम जाबालि के प्रति उपदेश है, यज्ञों की विधियाँ बताई गई हैं और ऋक्, यजु, साम के भूः, भुवः, स्वः गणाक्रम तीन देवता मानकर तप के विधान का प्रतिपादन है। पाँचवें प्रपाठक के २४ खंड हैं। इसी में प्राण और इंद्रियों का वर्णन है और गायत्रा द्वारा यह बताया गया है कि अग्निहोत्र से सृष्टि की वृद्धि होती है, उसी से मेघ होता है, मेघ से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न होता है, अन्न से रस होता है और रस से संतान आदि की वृद्धि होती है। छठे प्रपाठक में १६ खंड हैं जिनमें उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से सृष्टि की उत्पत्ति आदि का वर्णन करके कहा है—‘हे श्वेतकेतु ! तू ही ब्रह्म है’। इन प्रपाठक में वेदांत का महावाक्य ‘तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धियो नो ज्योतिर्गते’ कई बार प्राया है। सातवें प्रपाठक में, जिसमें २६ खंड हैं, यमकुमारों ने नारद को आतुर देख उन्हें ब्रह्मविद्या का उपदेश किया है। नारदजी ने कहा है कि मैंने वेद, इतिहास, पुराण, राजविद्या, दैवविद्या, निषिद्धविद्या, वाकीवाक्य विद्या, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, संप्रदेवजन्तविद्या इत्यादि बहुत सी विद्याएँ सीखी हैं। इन विद्याओं से आजकल लोग भिन्न अभिप्राय निकालते हैं। आठवें प्रपाठक में ब्रह्मविद्या का स्पष्टता और विस्तार के साथ उपदेश देकर कहा गया है कि ब्रह्मज्ञान के परचात् जन्म नहीं होता।

छाँ—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया, हि० छाँह] दे० ‘छाँह’।

छाँक—संज्ञा पुं० [प्रा० चाक] खड। टुकड़ा। जैसे,—बदली का छाँक।—(लश०)।

छाँई—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] परछाँही। छाया। ज०—बन्यो है मंजुल मोर बंन चलत देखत छाँई।—नंद ग्रं०, पृ० ३६५।

छाँगना—क्रि० सं० [सं० दशा० अथवा हि० छन + करना] काटना। छाँटना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग प्रायः कुन्हाड़ी आदि से पेड़ की डाल, टहनो आदि के काटने के अर्थ में होता है। पूरबी हिंदी में इसे ‘छिनगाना’ कहते हैं।

छाँगुर—संज्ञा पुं० [हि० छ + अंगुल] वह मनुष्य जिसके पजे में छह उँगलियाँ हों। छह उँगलियोंवाला।

छाँछ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० ‘छाछ’।

छाँट—संज्ञा स्त्री० [हि० छाँटना] १. छाँटने की क्रिया। छिन्न करने की क्रिया। काटने या कतरने की क्रिया।

यो०—काट छाँट।

२. काटने या कतरने का ढंग। ३. बेकाम टुकड़े जो किसी वस्तु के विशेष रूप से कटने पर निकलते हैं। कतरन। ४. भूरी

या कना जो अनाज छाँटने पर निकलता है। ५. भलग की हुई निकम्मी वस्तु।

छाँट—संज्ञा स्त्री० [सं० छाँटि, प्रा० छाँटि] वमन। के।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

छाँटन—संज्ञा स्त्री० [हि० छाँटना] १. वह वस्तु जो छाँट दी जाय। कतरन। २. भलग की हुई निकम्मी वस्तु।

छाँटना—क्रि० सं० [सं० छाँटन] १. किसी पदार्थ से उसके किसी अंश को काटकर भलग करना। जैसे, कलम छाँटना, पेड़ छाँटना, सिर के बाल छाँटना। उ०—जो छाँटत, परिमुंड समर मह पैठि सिंह सम।—प्रमथन०, भा० १, पृ० ५५।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग भग और भगी दोनों के लिये होता है। जैसे,—डाल छाँटना, पेड़ छाँटना।

२. किसी वस्तु को किसी विशेष आकार में लाने के लिये काटना या कतरना। जैसे, कपड़ा छाँटना।—(दरजी)।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

३. अनाज में से कन या भूसी कूट फटकारकर भलग करना। अनाज को साफ करने के लिये कूटना फटकना। जैसे,—चावल छाँटना, तिल छाँटना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

४. बहुत सी वस्तुओं में से कुछ को प्रयोजनीय या निकम्मी समझकर भलग करना। लेने के लिये चुनना या निकालने के लिये पृथक् करना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

विशेष—चुनने के अर्थ में संयो० क्रि० ‘लेना’ का प्रयोग होता है और निकालने के अर्थ में संयो० क्रि० ‘देना’ का प्रयोग होता है। जैसे, (क) हम अच्छे अच्छे आम छाँट लेंगे। (ख) हम सड़े आम छाँट देंगे, आदि; पर जहाँ दूसरे के द्वारा छाँटने का काम कराना होना है, वहाँ संयो० क्रि० ‘देना’ का प्रयोग चुनने या ग्रहण करने के अर्थ में भी होता है। जैसे, मेरे लिये अच्छे अच्छे आम छाँट दो।

५. गंदी या बुरी वस्तु निकालना। दूर करना। हटाना। जैसे,—(क) यह दना खूब कफ छाँटती है। (ख) यह साबुन खूब मेल छाँटता है। ६. गंदी या निकम्मी वस्तुओं को निकालकर शुद्ध करना। साफ करना। जैसे,—कूड़ा छाँटना। उस दवा ने खूब पेठ छाँटा। ७. किसी वस्तु का कुछ अंश निकालकर उसे छोटा या संक्षिप्त करना। ८. गढ़ गढ़कर बाँटें करना। हिंदी की बिंदी निकालना। जैसे,—कानून छाँटना, बाँटें छाँटना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग अकेले नहीं होता, कुछ शब्दों के साथ ही होता है।

९. भलग रखना। दूर रखना। संमिलित न करना। जैसे,—तुम समय पर हमें इसी तरह छाँट दिया करते हो।

छाँटा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० ‘छोटा’। उ०—दाढ़ सबही मृतक

समान है, जीया तबही छाँह। बाबू छाँटा अभी का, को साधू बाहें बाँधि।—दादू०, पृ० १०।

छाँटा^{१५}—संज्ञा पु० [हि० छाँटना] घोसा।

क्रि० प्र०—देना।

छाँड़ चिट्ठो—संज्ञा स्त्री० [हि० छाँड़ना + चिट्ठो] वह पत्र या परवाना जिसे देखकर उसके रखनेवाले व्यक्ति को कोई रोक न सके। रखना।

छाँड़ना^{१६}—क्रि० स० [सं० छर्जन, प्रा० छड्ढ] छोड़ना। त्यागना। उ०—सप्त वीथ मुज बन बस कीन्हें। लेह लेह दंड छाँड़ि सब पीन्हें।—तुलसी (शब्द०)।

छाँड़—संज्ञा स्त्री० [सं० छन्द (= बंधन)] १. छोटी रस्सी जिससे घोड़े गवहे बांधि के दो पैरों को एक दूसरे से सटाकर बांध देते हैं जिसमें वे दूर तक भाग न सकें, केवल कूद कूदकर इधर उधर चरते रहें। उ०—जो मन घेरि बेन्हिए बाँधो, मार्ज छाँड़ि तुराई।—चरनी०, पृ० ५। २. वह रस्सी जिससे अहीर गाय दुहते समय गाय के पैर बांध देते हैं। नोई। नोइड़ा।

छाँड़ना—क्रि० स० [सं० छन्दन] १. रस्सी आदि से बाँधना। बकड़ना। कसना।

यौ०—बाँधना छाँड़ना=बाँधना। जैसे—असबाब बाँध छाँड़कर रख दो।

२. घोड़े या गवहे के पिछले पैरों को एक दूसरे से सटाकर बांध देना जिसमें वह दूर तक भाग न सके, पास ही पास चरता रहे। ३. किसी के पैरों को दोनों हाथों से जकड़कर बैठ जाना और उसे जाने न देना। जैसे—वह स्त्री अपने स्वामी का पैर छाँड़कर बैठ गई और रोने लगी।

मुहा०—पैर छाँड़ना=जाने से रोकना।

छाँटा^{१७}—संज्ञा पु० [हि० छाँटना] हिस्सा। बखरा। भाग।

छाँटा^{१८}—संज्ञा पु० [हि० छानना] उत्तम भोजन। पकवान।

क्रि० प्र०—उड़ाना।

छाँनी^{१९}—वि० [हि० छाना] छिपी हुई। ठंकी हुई। दबाई हुई (बात)। उ०—केड़े पड़ी रहे आनंदधन छाँनी बात उधाई छै।—घनानंद, पृ० ३३५।

छाँम—वि० [सं० क्षाम] ३०. 'छाम'। उ०—पेहलें मुसकाइ लजाइ कछु, क्यों चितै मुरि मों तन छाँम किया।—पोद्दार, अमि० प्र०, पृ० ४६५।

छाँँ—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] ३०. 'छाँह'।

छाँबड़ा^{२०}—संज्ञा पु० [सं० शावक, प्रा० छावघ + डा (स्वा० प्रत्य०) तुलसीय हि० छोना] [स्त्री० छाँबड़ी, छोड़ी] १. जानवर का बच्चा। किसी पशु का छोटा बच्चा। उ०—वरिये नपाँव बलि जाँव राधे चंद्रमुखी चारी गतिमंद पै गयंघपति छाँबड़े।—देव (शब्द०)। २. छोटा बच्चा। बालक। शिशु।

छाँस—संज्ञा स्त्री० [हि० छाँटना] १. सूखी या कन जो धनाज झाँटने से निकलता है। ०. कूड़ा करकट।

छाँह—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] १. वह स्थान जहाँ आड़ या रोक के कारण धूप या चाँदनी न पड़ती हो। छाया। जैसे, पेड़ की

छाँह। उ०—हरषित भये नंदलाल बैठि तर छाँह में।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—छाँह करना=आड़ करना। छोट करना। छाँह में होना=छोट में होना। छिपना। उ०—पंच घसि कठिन, पथिक कौड संग नहि तेज भए तारागन छाँह अभी रवि है।—(शब्द०)। छाँह धूप न गिनना=आराम और तकलीफ न विचारना। उ०—ऐसी अनूप घुड़ला मरोरि मारे सुमन मुख सुवास मृगमद कदन। तिय रूप लखि छाँह धूप नहि गिनत मन।—ब्रज० प्र०, पृ० ६१।

२. ऐसा स्थान जिसके ऊपर मेंह आदि रोकने के लिये कोई वस्तु हो। ऊपर से आवृत या छाया हुआ स्थान जैसे—पानी बरस रहा है, छाँह में चलो। ३. बचाव या निवाह का स्थान। आरण। संरक्षा। जैसे—अब तो तुम्हारी छाँह में आ गए हैं; जो चाहो सो करो।

यौ०—छत्रछाँह।

४. पदार्थों का छाया रूप आकार जो उनके पिछों पर प्रकाश होने के कारण धूँ, चाँदनी या प्रकाश में दिखाई पड़ता है। परछाईं। उ०—आगन में आई पछताई ठाढ़ी देहली में, छाँह देखै अपनी ओ राह देखे पिय की।—(शब्द०)।

मुहा०—छाँह न छूने देना=पास न फटकने देना। निकट तक न आने देना। छाँह बचाना=दूर दूर रहना। पास न जाना। अलग रहना। छाँह छूना=पास जाना। पास फटकना। उ०—मुँह माहीं लगी जक माहीं मुबारक, छाँहीं छुप खरकें उछले।—मुबारक (शब्द०)।

५. पदार्थों का आकार जो पानी, धीसे आदि में दिखाई पड़ता है। प्रतिबिंब। उ०—केहि मग प्रविसति जाति हँक ज्यों दरपन महँ छाँह। तुलसी त्यों जगजीव गति करो जीव के नाँह।—तुलसी (शब्द०)। ६. भूत प्रेत आदि का प्रभाव। आसेव। बाधा। उ०—भाल की, कि काल की, कि रोष की, विशेष की है, वेदना विषम पाप ताप छल छाँह की।—तुलसी (शब्द०)।

छाँहगीर—संज्ञा पु० [हि० छाँह + गीर] १. छत्र। राजछत्र। उ०—उयो सरद राका ससी करति क्यों न चित चेत। मनो मदन छितिपाम की छाँहगीर छवि देत।—बिहारी (शब्द०)। २. दण्ड। आइना। ३. छड़ी के सिरे पर बँधा हुआ एक आइना जिसके चारों ओर पान के आकार की किरनें लगी रहती हैं और जो विवाह में दुल्हन के साथ आसा आदि की तरह चलता है।

छाँहड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० छाँह + डी, (प्रत्य०)] ३०. 'छाँह'। उ०—बासुरि गमि न रँगि गनि, नां सुपनेतर गम। कबीर तहाँ बिजबिया जहाँ छाँहड़ी न घम।—कबीर प्र०, पृ० ५४।

छाँहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० छाह + री (प्रत्य०)] ३०. 'छाँह'। (क) सुंदर यों अभिमान करि भूलि गयो निज रूप। कबहूँ बैठे छाँहरी कबहुँ बैठे धूप।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ७७४।

छाँही—संज्ञा स्त्री० [हि० छाँह] ३०. 'छाँह'। उ०—प्रभु सिय जखन बैठि बट छाँहीं। प्रिय परिजन वियोग बिलखाहीं।—आनस, २। ३२०।

छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छाच्छादन । छिपाना । २. शावक । छीना । शिशु । ३. पारा । ४. चिह्न [को०] ।

छाई—संज्ञा स्त्री० [सं० छाई] १. राख । उ०—काहे को शिरि छाई गई ।—प्राण०, पृ० ८३ । २. पस । खाद । ३. बायबर में पूरी तरह जलने के बाद निकला हुआ कोयले का छरी बिसे महीन करके ईंटों की जोड़ाई की जाती है ।

छाक—संज्ञा स्त्री० [हि० छकना] १. तुष्टि । इच्छापूर्ति । जैसे, छाक भर खाना, प्यास भर पीना । २. वह भोजन जो काम करनेवाले भोपहर को करते हैं । दुपहरिया । उ०—(क) बलवाऊ देखियत दूर से आवत छाक पठाई मेरी मिया ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सुनो महाराज प्राप्त हो एक दिन श्रीकृष्ण बछड़े चरावने बन को चले, जिनके साथ सब त्वाजबाल भी अपने अपने घर से छाक ले ले हो लिए ।—मत्स्य० (शब्द०) । (ग) भाई छाक बुलायो ग्याम ।—सूर (शब्द०) । ३. नशा । मस्ती । मद । उ०—(क) सज्जशा मिलिया सज्जशा, तन मन नयन परत । मणपीछइ पाणग ज्यू, नयरो छाक चढ़त ।—बोला०, दू० ५३४ ।

(ख) उर न टरे नीब न परे, हरे न कान बिपाक । छिन छाकै उछकै न फिर सरी विषम छबि छाक ।—बिहारी (शब्द०) । (ग) तजी संक सकुचित न चित मोलति बाक जुबाक । दिन छनदा छाकी रहति छुटति न छिन छबि छाक ।—बिहारी (शब्द०) । ४. मीठे के बने हुए बड़े बड़े तुलान को बिवाहों में जाते हैं । माठ ।

छाकना—क्रि० प्र० [हि० छकना] १. ला पीकर तृप्त होना । भयाना । भ्रमरना । उ०—लटरस भोजन नाना बिधिके करत महल के माहीं । छाके सात त्वाज बंडल में बैसो ठो सुख नाही ।—सूर (शब्द०) । २. सराब छाबि पीकर मस्त होना । उ०—सुख के निधान पाए द्विय के पिधान लिए ठग के है नादू लाए बेम मधु छाके हैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

छाकना—क्रि० प्र० [हि० छकना (= हिरान होना)] चकित होना । मोचकता रह जाना । हिरान होना । उ०—विबिध कता के जिन्हें ताके सूर बृंछ छाके, वासव धनुष उपमा के तुंगता के हैं ।—रघुराज (शब्द०) ।

छाग—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० छागी] १. बकरा ।

विशेष—माषप्रकाश में इसके मांस को बलवर्धक और निदोष-नाशक कहा है । भोजराज के युक्तिकल्पतरु में वर्ण के अनुसार इनका परीक्षण है तथा बृहत्संहिता के ६५ वें अध्याय में इनके शुभागुण लक्षण हैं । वि० दे० 'बकरा' ।

२. मेघ राजि (को०) । ३. बहु घोड़ा जो चल न सके । छिन्नगमन ग्रन्थ (को०) । ४. बकरी का वृष (को०) । ५. पाहति । पुरोवाश (को०) ।

छागण, **छागन**—संज्ञा पुं० [सं०] कंठी या उपली की छाग ।

छागभोजी—संज्ञा पुं० [सं० छागभोजिन्] १. वह जो बकरे का मांस खाता हो । २. मेड़िया ।

छागमय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो (आकृति आदि में) बकरे के समान हो, बकरा जैसा । २. कार्तिकेय का छोटा मुख ।

छागमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम ।

छागमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय का छोटा मुख जो बकरे का सा था । २. कार्तिकेय का एक अनुचर ।

छागरी—संज्ञा स्त्री० [सं० छागल] बकरी । उ०—छागर एक साधु ने लाया ब्राह्मण लाया गई ।—पु० दरिया, पृ० ११२ ।

छागरथ—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।

छागल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बकरा । बकरे के साल की बनी हुई बीज । ३. एक प्रकार का मत्स्य (को०) ।

छागल—संज्ञा स्त्री० १. चमड़े का डोल या छोटी मशक जिसमें पानी भरा या रखा जाता है । यह प्रायः बकरे के चमड़े का बनता है । २. मिट्टी का करवा ।

छागल—संज्ञा स्त्री० [हि० सांकल] एक गहना जिसे लियी पेरों में पहनती हैं । चांदी की पट्टी का गोल कड़ा जिसमें घुंघरू लगे रहते हैं । झंजिन ।

छागवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि का एक नाम (को०) ।

छागिका, **छागी**—संज्ञा स्त्री० [सं०] बकरी (को०) ।

छाछ—संज्ञा स्त्री० [सं० छाछिका] १. वह पनीला बही या दूध जिसका घी या मक्खन निकाल लिया गया हो । मथा हुआ बही । मठा । बही । सारहीन तक । उ०—ताहि छहोर की छोहरिया छछिया भर छाछ पै नाच नचाव ।—रसखान (शब्द०) । २. वह मट्टा जो घी या मक्खन तपाने पर नीचे बैठ जाता है ।

छाछठा—वि० [हि०] दे० 'छासठ' ।

छाछि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'छाछ' ।

छाज—संज्ञा पुं० [सं० छाज] १. मनाज फटकने का सीक का बरतन । सुप ।

मुहा०—छाज सी दाढ़ी—बड़ी और चौड़ी दाढ़ी । छाजों में हूँ बरसना = बहुत पानी बरसना । मूसलधार पानी बरसना ।

२. छाजन । छप्पर । ३. गाड़ी या बग्गी के आगे खज्जे की तरह बिकला हुधा वह बाज जिसपर कोयवान के पैर रहते हैं ।

छाजन—संज्ञा पुं० [सं० छादन] आच्छादन । वस्त्र । कपड़ा । उ०—छाजन भोजन प्रीति सों दीक्षे साधु बुलाय । जीवत जस हो जगत में अंत परमपव पाय ।—कबीर (शब्द०) ।

यौ०—भोजन छाजन = खाना कपड़ा ।

छाजन—संज्ञा स्त्री० १. छप्पर । छान । लपरेल । उ०—तपे लाग जब जेठ अषाढ़ी । भइ भोक्छैं यह छाजन गाढ़ी ।—जायसी (शब्द०) । २. छाने का काम या ढंग । छावाई । ३. कोढ़ की तरह का एक रोग जिसमें उंगलियों के जोड़ के पास तलवा चिड़चिड़ाकर फटता है और उसमें घाव हो जाता है । यह रोग हाथियों को भी होता है । छपरस ।

छाजना—क्रि० प्र० [सं० छाजन] [वि० छाजित] १. शोभा देना । अच्छा लगना । मला लगना । फटना । उपयुक्त जान पड़ना । उ०—(क) मोही छाज छत्र प्रो पाद । सब राजन मुहें धरा लनाद ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जो कछु कहहु तुमहि सब छाजा ।—तुलसी (शब्द०) । २. शोभा के सहित

विद्यमान होना । विराजना । सुशोभित होना । उ०—मुकुट
मोर पर पुंज मंजु सुरधनुष विराजत । पीत वसन छिन छिन
मनीन छिनछिन छाँके छाजत ।—मतिराम (शब्द०) ।

छाजा^७—संज्ञा पुं० [सं० छाज] १. छज्जा । उ०—ऊँचे भवन
मनोहर छाजा, मणि कंधन की भीति ।—सूर (शब्द०) ।
२. छाजन ।

छाजित^७—वि० [हि० छाजना] शोभित ।

छाजना, छाजना^१—क्रि० प्र० [सं० छाज] के करना । उसटी
करना । धमन करना ।

छाजना, छाजना^२—क्रि० स० [हि०] दे० 'छाड़ना', 'छोड़ना' ।

छात^७—संज्ञा पुं० [सं० छात्र, प्रा० छत्त] १. छाया । छतरी । २.
राजछत्र । उ०—रूपवंत मानि दिए सलाटा । माथे छात
बैठ सब पाटा ।—जायसी (शब्द०) । ३. आश्रय ।
आधार । उ०—हम से छोड़ के पाया छातू । मूल गए सँग
रह्य न पातू ।—जायसी (शब्द०) ।

छात^२—वि० [सं०] १. कटा हुआ । छिन्न । २. दुर्बल । कृश ।

छात^१—संज्ञा स्त्री० [सं० छात्र, प्रा० छत्त, हि० छत] दे० 'छत' ।
उ०—सेवरा हराए बादी, भाए नूर पास, ऊँचे छात पर बैठि
एक माया फंद डारयो है ।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४६६ ।

छाता—संज्ञा पुं० [सं० छात्र, प्रा० छत्त] १. लोहे, बाँस आदि की
तीलियों पर कपड़ा चढ़ाकर बनाया हुआ आच्छादन जिसे
मनुष्य भूप, मेहु आदि से बचने के लिये काम में लाते हैं ।
बड़ा छतरी । उ०—फूला केवल रहा होइ राता । महस सहस
पलुरित कर छाता ।—जायसी श्रं०, पृ० १२ ।

मुहा०—छाता बना या लगाना = (१) छाते का व्यवहार करना ।
(२) छाता ऊपर तानना ।

२. छाता । छुमी । ३. चौड़ी छाती । विशाल वक्षस्थल । ४.
वक्षस्थल की चौड़ाई की नाप ।

छाती—संज्ञा स्त्री० [सं० छातिन्, छाती (=आच्छादन करनेवाला)]
१. हड्डी की ठठरियों का पल्ला जो कलेजे के ऊपर पेट तक
फैला होता है । पेट के ऊपर का भाग जो गरदन तक होता
है । सीना । वक्षस्थल ।

विशेष—छाती की पक्षियों पीछे की ओर पीछे ओर छागे की
ओर एक मध्यवर्ती अस्थिबंध से लगी रहती है । इनके अंदर
के कोठे में फुफ्फुस और कलेजा रहता है । दूध पिलानेवाले
जीवों में यह काठा पेट के कोठे से, जिसमें अंतर्ही आदि रहती
है, परदे के द्वारा बिलकुल अलग रहता है । पक्षियों ओर
सरीसृपों में यह विभाग उतना स्पष्ट नहीं रहता । जंतुचरों
तथा रेंगनेवाले जीवों में तो यह विभाग होता ही नहीं ।

मुहा०—छाती का जम = (१) दुःखदायक वस्तु या व्यक्ति ।
हर वड़ी कष्ट पहुँचानेवाला आदमी या वस्तु । (२) वष्ट
पहुँचाने के लिये सदा घेरे रहनेवाला आदमी । (३) घृष्ट
मनुष्य । हीठ आदमी । छाती पर का पत्थर या पहाड़ = (१)
ऐसी वस्तु जिसका खटका सदा बना रहता हो । बिता उन्नयन
करनेवाली वस्तु । जैसे,—कुमारी लक्ष्मी, जिसके विवाह की

बिता सदा बनी रहती है । (२) सदा कष्ट देनेवाली वस्तु ।
दुःख से दबाए रहनेवाली वस्तु । छाती कटना = दे० 'छाती
पीटना' । उ०—कटते हैं तो बंदी को कट दें । कट मरें, क्यों
कटते छाती रहें ।—चुबते० पृ० ३६ । छाती के किवाड़ =
छाती का पंजर । छाती का परदा या विस्तार । छाती का
किवाड़ खुलना = (१) छाती फटना । (२) कंठ से
बोत्कार निकलना । गहरी चीख निकलना । जैसे,—मैं तो
घाता ही था; तेरी छाती के किवाड़ क्या खुल गए । (३)
हृदय के कपाट खुलना । हिए की मालि खुलना । हृदय में जान
का उदय होना । अंतर्बोध होना । तत्त्व का बोध होना । (४)
बहुत आनंद होना । छाती के किवाड़ खोलना = (१) कलेजा
टुकड़े टुकड़े करना । (२) जी खोलकर बातें करना । हृदय की
बात साफ कहना । मन में कुछ गुप्त न रखना । (३) हृदय
का अंधकार दूर करना । अज्ञान मिटाना । अंतर्बोध कराना ।
छाती खोलना = बातों द्वारा हृदय को बेचना । अपने कथन से
किसी को धोखा पहुँचाना । उ०—आकाशक बकि घोर भी
बुधा न छाती छोड़ ।—सुंदर० पं०, भा० २, पृ० ७३६ ।
छाती तने रखना = (१) पाम से अलग न होने देना । सदा
अपने गमीय या गमीनी रत्न में रखना । (२) अत्यंत प्रिय करके
रखना । छाती तने रहना = (१) पास रहना । आँखों के सामने
रहना । (२) अत्यंत प्रिय होकर रहना । छाती बरकना = दे०
'छाती फटना' । छाती तरना = सताना । बनेषा देना । उ०—
ब्रजवास ते ऊयो प्रवास करो, पब खूब ही छाती दरी सो
दरी ।—नट०, पृ० २६ । छाती निकालकर चलना = लनकर
चलना । अफ़डकर चलना । गेंडकर चलना । छाती परथर की
करना = भारी दुःख सहने के लिये हृदय कठोर करना ।
छाती पर मूँगे या कोबो दलना = (१) किसी के सामने ही ऐसी
बात करना जिसे उसका जी दुखे । किसी को दिखा बिस्वाकर
ऐसा काम करना जिससे उसे शोक या अंतःप हो । किसी के
आँख के सामने ही उगरी हानि या बुराई करना । जैसे,—
यह स्त्री बड़ी कुलटा है; अपने पति की छाती पर कोबो दलती
है (अर्थात् अन्य पुरुष से बातचीत करती है) । (२) अत्यंत कष्ट
पहुँचाना । खूब पीड़ित करना । (स्त्रियाँ प्रायः तेरी छाती पर
मूँगे दलूँ कहकर गर्ते भी देती हैं) । छाती पर चढ़ना =
कष्ट पहुँचाने के लिये पास जाना । छाती पर चढ़कर डाँट
सुलू नहू पीना = कठिन दंड देना । आणुदंड देना ।
छाती पर धरकर ले जाना = अपने साथ परलोक में ले जाना ।
—(धन आदि के विषय में लोग सोचते हैं कि 'क्या छाती पर
धरकर ले जाओगे?') । छाती पर परथर रखना = किसी
भारी शोक या दुःख या आघात सहना । दुःख सहने के लिये
हृदय कठोर करना । छाती पर बाल होना = उदारता,
व्यापशीलता आदि के लक्षण होना ।—(लोगों में प्रवाद है कि
मृग या विश्वासपातक की छाती पर बाल नहीं होते) ।
छाती पर सौंप नोटना या फिरना = (१) दुःख में कलेजा दहल
जाना । हृदय पर दुःख शोक आदि का आघात पहुँचाना ।
मन मसोसना । मानसिक व्यथा होना । (२) ईर्ष्या से हृदय
व्यथित होना । डाह होना । जलन होना । छाती पर होना =

छाती पर चढ़ जाना । उ०—अगर एक लफ्फ एक कलमा भी तेरी जवान से निकला तो छाती पर होगा ।—किसाना०, भा० १ पृ० ४७४ । छाती पिलाकर पालना=मनोयोग से पालना । कष्ट सहकर पावन पोषण करना । उ०—आन को बारकर जिलाती है, पालती है पिला पिला छाती ।—बोबे०, पृ० ५ । छाती पीटना=(१) छाती पर जोर जोर से हाथ पटकना । (२) दुःख या शोक से व्याकुल होकर छाती पर हाथ पटकना । शोक के आवेग में हृदय पर आघात करना । (छाती पर हाथ पटकना शोक प्रकट करने का चिह्न है) । जैसे छाती पीट पीटकर रोना । छाती फटना=(१) दुःख से हृदय व्यथित होना । दुःख शोक आदि से चित्त व्याकुल होना । अत्यंत मानसिक क्लेश होना । अत्यंत संताप होना । (२) ईर्ष्या से हृदय व्यथित होना । चित्त में डाह होना । जी जलना । कुड़न होना । जैसे,—दूसरे की बढ़ती देखकर तुम्हारी छाती क्यों फटती है । छाती फटना(५)=भय आदि से दहलना । कांपना । उ०—गरजनि तरजनि अनु अनु भीती । फूटें कान धरु फाटें छाती ।—नंद० प्र०, पृ० १६१ । छाती फाड़ना=जी तोड़ मेहनत करना । उ०—प्रब भी छाती फाड़तो हूँ, सब भी छाती फाड़ेंगी ।—मान०, भा० ५, पृ० १६७ । छाती कुलाना=(१) प्रकट कर चलना । तनकर चलना । इतराकर चलना । (२) घमंड करना अभिमान दिखलाना । (किसी की) छाती लोन से मीजना(५)=कष्ट पर और कष्ट देना । किसी की पीड़ा को और बढ़ाना । उ०—नाचें मोर कोलाहल कीजें । इंद्र की छाती लोन सौं मीजें ।—नंद० प्र०, पृ० १६२ । छाती से परावर टलना=(१) किसी ऐसे भारी काम का हो जाना जिसका भार अपने ऊपर रहा हो । किसी कठिन वा बड़े काम के पूरे होने पर चित्त निश्चित होना । किसी ऐसे कार्य का पूरा हो जाना जिसका खटका सदा बना रहता हो । (२) बेटी का ब्याह हो जाना । छाती से लगना=आलिंगन होना । गले लगना । हृदय से लिपटना । छाती से लगाना=आलिंगन करना । गले लगाना । प्यार करना । प्रेम से दोनों मुजाओं के बीच दवाना । छाती से लगा रखना=(१) अपने पास से जाने न देना । प्रेम-पूर्वक सदा अपने समीप रखना । २. अत्यंत प्रिय करके रखना । अपनी देखरेख और रक्षा में रखना । बच्चे की छाती=ऐसा कठोर हृदय जो दुःख सह सके । अत्यंत सहिष्णु हृदय ।

२. कलेजा । हृदय । मन । जी ।

मुहा०—छाती उड़ी जाना=दुःख या आशंका से चित्त व्याकुल होना । कलेजा दहलना । जी चबारना । छाती जमड़ जाना=प्रेम या करुणा के आवेग से हृदय परिपूर्ण होना । प्रेम या करुणा से गद्गद होना । छाती छलनी होना=कष्ट या अपमान सहते सहते हृदय जर्जर हो जाना । बार बार दुःख या कुड़न से चित्त का अत्यंत व्यथित होना । दुःख झेनते झेलते या कुड़ते कुड़ते जी ऊब जाना । जैसे,—तुम्हारी बातें सुनते सुनते तो छाती छलनी हो गई । छाती जलना=(१) कलेजे पर गरमी मालूम होना । अजीर्ण आदि के कारण हृदय में जलन मालूम होना । (२) शोक से हृदय व्यथित होना । हृदय दग्ध

होना । मानसिक व्यथा होना । संताप होना । (३) ईर्ष्या या क्रोध से चित्त संतप्त होना । डाह होना । जलन होना । उ०—जी वह भली नेक हूँ होती तो मिलि सबनि बताती । वह पापिनी दाहि कुल आई देखि जरत मोरि छाती ।—सूर (शब्द०) । छाती जलाना=(१) हृदय संतप्त करना । संताप देना । मानसिक व्यथा पहुंचाना । जी जलाना । कष्ट पहुंचाना । (२) कुड़ाना । चिढ़ाना । † छाती जुझाना=(१) [कि० प्र०] दे० 'छाती ठंडी होना' । (२) [कि० सं०] छाती ठंडी करना । हृदय शीतल करना । चित्त शांत और प्रसन्न करना । हृदय संतुष्ट और प्रफुल्लित करना । इच्छा या हौसला पूरा करना । कामना पूर्ण करना । मन का आवेग संग्रह करना । उ०—(क) मेहि परस्पर प्रति प्रिय पाती । हृदय लगाय जुझावहि छाती ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) खोजत रहेउं तोहि सुत चाती । आबु निपाति जुझावहुं छाती ।—तुलसी (शब्द०) । छाती ठंडी करना=हृदय शीतल करना । चित्त शांत और प्रफुल्लित करना । मन का आवेग शांत करना । मन की अभिलाषा पूर्ण करना । हौसला पूरा करना । छाती ठंडी होना=हृदय शीतल होना । चित्त शांत और प्रफुल्लित होना । मन का आवेग शांत होना । कामना पूर्ण होना । हौसला पूरा होना । छाती ठुकना=हिम्मत बंधना । साहस बंधना । चित्त में दृढ़ता होना । जैसे,—मुंशी चुनौलाल और बाबू बेजनाथ ने इनको हिम्मत बंधाने में कसर नहीं रखी; परंतु इनका मन कमजोर है, इससे इनकी छाती नहीं ठुकती ।—परीक्षागुरु (शब्द०) । छाती ठोकना=किसी कठिन कार्य के करने की साहसपूर्वक प्रतिज्ञा करना । किसी भारी या कठिन कार्य को करने का दृढ़तापूर्वक निश्चय दिलाना । कोई पुंकर कार्य करने का साहस प्रकट करना । हिम्मत बांधना । जैसे,—मैं छाती ठोककर कहता हूँ कि उसे आज पकड़ लाऊंगा । छाती चढ़कना=भय या आशंका से हृदय कंपित होना । कलेजा धक धक करना । खटके या डर से कलेजा जल्दी जल्दी उछलना । जी दहलना । छाती धामकर रह जाना=ऐसा भारी शोक या दुःख अनुभव करना जो प्रकट न किया जा सके । कोई भारी मानसिक आघात सहकर स्तब्ध हो जाना । शोक से ठक रह जाना । छाती पकड़कर रह जाना या बैठ जाना=दे० 'छाती धामकर रह जाना' । छाती पक जाना=दे० 'छाती छलनी होना' । छाती परावर की करना=अत्यंत शोक या दुःख सहने के लिये जी कड़ा करना । भारी कष्ट या संताप सह लेना या सहने के लिये प्रस्तुत होना । छाती परावर की होना=अत्यंत शोक या दुःख सहने के लिये जी कड़ा होना । हृदय इतना कठोर होना कि वह शोक या दुःख का आघात सह ले । छाती पर फिरना=बड़ी बड़ी ध्यान में आना । बार बार स्मरण होना । छाती भर आना=प्रेम या करुणा के आवेग से हृदय परिपूर्ण होना । प्रेम या करुणा से गद्गद होना । उ०—वारि बिलोचन बाँधत पाती । पुलकि गात भरि आई छाती ।—तुलसी (शब्द०) । छाती मसोसना=चुपचाप हृदय में

ऐसा मोर दुःख होना जो प्रकट न किया जा सके। मन ही मन संतप्त होना। छाती में छेद होना या पड़ना = कष्ट या अपमान सहते सहते हृदय जर्जर होना। बार बार के दुःख या कुड़न से बिसर अत्यंत व्यथित होना। कुड़ते कुड़ते या दुःख भेलते भेलते जी ऊब जाना। उ०—मेदिना सो भेद कहियो छेब सो छाती परो।—सूर (शब्द०)।

१. स्तन। कुच। उ०—छाह रहे छद छाती कपोलनि भानन ऊपर ओप चढ़ाई।—कविराज (शब्द०)।

मुहा०—छाती उभरना = युवावस्था प्रारंभ होने पर स्त्रियों के स्तन का उठना या बढ़ना। छाती बेना = बच्चे के मुँह में पीने के लिये स्तन डालना। दूध पिलाना। छाती पकना = स्तनों पर क्षत होना। स्तनों पर घाव होना। छाती भर जाना = (१) छाती में दूध भर जाना। दूध उतरना। (२) १०. 'छाती उमड़ना'। (३) अत्यंत दुःख होना। बाँधों में बाँस भर जाना। छाती में दूध छलकना = प्यार से छाती भर जाना या छाती में दूध उतरना। उ०—प्यार से छाती उछलती ही रही। दूध छाती में छलकता ही मिला।—बोले०, पृ० ७। छाती मसलना = छाती मलना। स्तन दबाना या मरोड़ना (संभोग का एक अंग)।

४. हिम्मत। साहस। दृढ़ता। जैसे,—किसी की छाती है जो उसका सामना करे। ५. एक प्रकार की कसरत जो दुबगली के ढंग की होती है। उ०—एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब विपक्षी दोनों ओर से हाथ कमर पर ले जाकर कमर बाँधकर झोंका देना चाहता है। इसमें विपक्षी के हाथ को ऊपर से मपेटते हुए खेलाड़ी अपने हाथ मजबूत बाँधकर बाहरी या बगली टाँग मारता है।

छात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिष्य। चेला। विद्यार्थी। अंतर्वासी। २. मधु। ३. छतया नामक मधुमक्खी जो कुछ पीले और कपिल वर्ण की होती है। सरघा। ४. छतया नामक मधुमक्खी का मधु।

छात्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. छतया या सरघा नामक मधुमक्खी का बनाया हुआ मधु। २. विद्यार्थी। छात्र।

छात्रगण्ड—संज्ञा पुं० [सं० छात्रगण्ड] वह शिष्य जो बलोक का एक चरण मात्र सुनकर सारे बलोक का भाव समझ जाय। तीक्ष्ण बुद्धिवाला शिष्य। २. अल्पज्ञ छात्र (को०)।

छात्रदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] राजा मन्सन।

छात्रवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह वृत्ति या धन जो विद्यार्थी को विद्याभ्यास की दशा में सहायता के लिये मिले। स्कालरशिप।

छात्राख्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ विद्यार्थियों के ठहरने का प्रबंध हो। बोर्डिंग हाउस।

छात्रावास—संज्ञा पुं० [सं० छात्र + आवास] १०. 'छात्रालय'।

छाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. छाजन। छप्पर। २. छत (को०)।

छादक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] १. छाननेवाला। प्राच्छादन करनेवाला। २. छपरेल या छप्पर छानेवाला। छपरबंद। ३. कपड़ा सत्ता देनेवाला।

छादन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० छादित] १. छाने या ढकने का काम। २. वह जिससे छाया या ढका जाय। आवरण। प्राच्छादन। ३. नीला म्लान वृक्ष। नीला कीरिया। ४. छिपाव। गोपन। ५. पत्ता। पत्र (को०)।

छादनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़ा। खाल (को०)।

छादित—वि० [सं०] ढका हुआ। छाया हुआ। प्राच्छादित।

छादी—वि० [सं० छादिन्] [वि० स्त्री० छादिनी] छादक। आवरणकारी। प्राच्छादन करनेवाला।

छादिक^१—वि० [सं०] १. जो वेश छिपाए हो। छद्म रूपधारी। २. पाखंडी। मक्कार। ३. बहुरूपिया।

छादिक^२—संज्ञा पुं० ठग (को०)।

छान—संज्ञा स्त्री० [सं० छादन, छाजन, प्रा० छायेण छान] छप्पर। चास फूस की छाजन। उ०—टूटी छान मेघ जल बरसे टूटे पलंग बिछाए।—सूर (शब्द०)।

छान^१—छान छप्पर = छाजन। छपरेल।

छान^२—संज्ञा स्त्री० [सं० छन्द] वह रस्सी जिससे किसी पशु के पैर बाँधे जायें। बंधन।

छान^३—संज्ञा पुं० [हि० छानना] छानना का समास में प्रयुक्त रूप। जैसे, छानपछोर छानफटक, छानबीन आदि।

छानना^१—क्रि० सं० [सं० चालन या क्षरण] १. किसी पूर्ण या तरल पदार्थ को महीन कपड़े या और किसी छेददार वस्तु के पार निकालना जिसमें उसका कूड़ा करकट अथवा खुरदुरा या मोटा अंश निकल जाय। जैसे, पानी छानना, शराब छानना, आटा छानना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

२. मली जुली वस्तुओं को एक दूसरे से अलग करना। मली और बुरी अथवा साह्य और त्याज्य वस्तुओं को परस्पर पृथक् करना। बिलगना। उ०—(क) जानि कै मनजान हुआ तत्व न लीया छानि।—कबीर (शब्द०)। (ख) मज्जन पानि कियो को सुरसरि कर्मनाश जल छानि?—तुलसी (शब्द०)। ३. विवेक करना। अन्वीक्षण करना। जाँचना। पड़तालना। ४. देखभाल करना। ढूँढ़ना। अनुसंधान करना। अन्वेषण करना। तलाश करना। खोज करना। जैसे,—सारा घर छान डाला, पर कागज न मिला।

संयो० क्रि०—डालना।—भारना।

५. भेदकर पार करना। किसी वस्तु को छेदकर इस पार से उस पार निकालना। उ०—जब ही मारयो खंखि के तन मैं मूँबा जानि। मागी चोट जो सबद की गई करेजे छानि।—कबीर (शब्द०)। ६. नष्टा पीना। जैसे,—माँग छानना, शराब छानना। ७. घृत या तेल आदि में कोई लावण्यपूर्ण तैयारी।

छानना^२—क्रि० सं० [सं० छन्दन, हि० छादना] १. रस्सी से बाँधना। रस्सी आदि से कसना। जकड़ना।

छानना^३—बाँधना छानना। जैसे,—असबाब बाँध छानकर पहुँचे से रख दो।

२. मोड़े, गढ़े आदि के पैरों को रस्सी से जकड़कर बांधना ।
उ०—कबीर प्रगटहि राम कहि छाने राम न पाव । फूस के
जोड़ा धर कब बहुरि न लागे लाव ।—कबीर (शब्द०) ।
(ख) बहि चलत भयो है मंद पोन । मनु गढ़ा को छान्यो
पेर ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ३७५ ।

छाननी—संज्ञा स्त्री० [हि० छानना+नीना] १. पूर्ण अनुसंधान या
अन्वेषण । जाँच पड़ताल । गहरी खोज । २. पूर्ण विवेचना ।
विस्तृत विचार । पूर्ण समीक्षा ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

छानवे^१—वि० [सं० वणवति, प्रा० छणवह, अप० छाणवई > हि०
छानवे] जो सस्या में नब्बे और छह हो । नब्बे से छह अधिक ।

छानवे^२—संज्ञा पु० छानवे की संख्या या शंक जो इस प्रकार लिखा
जाता है—१६ ।

छाना^१—क्रि० स० [सं० छादन] १. किसी वस्तु के सिरे या ऊपर
के भाग पर कोई दूसरी वस्तु इस प्रकार रखना या फैलाना
जिसमें वह पूरा पूरा ढक जाय । ऊपर से आच्छादित करना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

२. पानी, धूप आदि से बचाव के लिये किसी स्थान के ऊपर
कोई वस्तु तानना या फैलाना । जैसे, छप्पर छाना, मंडप
छाना, घर छाना । उ०—(क) पुष्य नक्षत्र सिर ऊपर आवा ।
हो बिनु नाहें मंदिर को छावा ।—जायसी (शब्द०) ।
(ख) ऊपर राता चंदवा छावा । भो मुंद सुरेंग बिछाव
बिछावा ।—जायसी (शब्द०) ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग आच्छादन और आच्छादित दोनों
के लिये होता है । जैसे, छप्पर छाना, घर छाना ।

संयो० क्रि०—ढालना ।—देना ।—लेना ।

३. बिछाना । फैलाना । उ०—मायके की सखी सों मंगाय फूल
मालती के चादर सों ठपि छाव तोसक पहल में ।—रघुनाथ
(शब्द०) । ४. शरण में लेना । रक्षा करना । उ०—छत्रहि
अछत, अछत्रहि छावा । दूसर नाहि जो सरिवरि पावा ।—
जायसी (शब्द०) ।

छाना^२—क्रि० प्र० १. फैलाना । पसरना । बिछ जाना । भर जाना ।
जैसे, बाबल छाना, हरियाली छाना । उ०—(क) फूले कास
सकल महि छाई ।—मानस, ४।१६ । (ख) बरषा काल
मेघ नभ छाए । गुंजत जागत परम सुहाए ।—मानस, ४।१३ ।
(ग) कैसे बरौं धीर धीर पावस प्रबल भायो, छाई
हरियाई छिति, नभ बग पाँती है ।—घासीराम (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

२. डेरा डालना । बसना । रहना । टिकना । उ०—(क) जब
सुषीव भवन फिरि आए । राम प्रवर्षन गिरि पर छाए ।—
मानस, ४।१२ । (क) हम तौ इतनै ही सजु पायो । सुंदर
स्याम कमलदल सोचन बहुरी बरस दिखायो । कहा भयो जो
लोग कहत हैं कान्हू द्वारिका छायो । सुनि कै बिरह दसा
योकुल की अति आतुर हूँ पायो ।—सूर० १०।४२६६ ।

- छाना^३—वि० [सं० छज, प्रा० छण] [वि० स्त्री० छानी] छिपा हुआ ।

गुप्त । उ०—(क) सुंदर छाना क्यों रहै जग में, जाहर होइ ।
—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ६८६ । (ख) कस्तूरी कर्पूर
छिपावे कैसे छानी रहै सुवास ।—सुंदर प्र०, भा० १,
पृ० १५६ ।

यौ०—छाने छाने = गुप्त रूप से । चुपके चुपके । लुके छिपकर ।

छामि^१, छानी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० छादन, हि० छाज] १. ईस के रस
की नाँव के ऊपर का ढक्कन जो सरकड़े या बाँस की पतली
फट्टियों का बनता है । २. छान । छप्पर । उ०—(क) कर्ल
में नामा प्रगट ताकि छानि छावावे ।—सूर०, १।४ । (ख)
या घर में हरि सो बिसरे सुतु बारि दे बाबरु बार से बोरे ।
छानि बरेडि भो पाट पछोनि मयारि कहा किहू काम के
कोरे ।—सकबरी०, पृ० ३५४ ।

छाप^१—संज्ञा स्त्री० [हि० छापना] १. वह चिह्न जो किसी रंग पुटे
हुए सचि को किसी वस्तु पर दबाकर बनाया जाय । खुदे या
उभरे हुए ठप्पे का निशान । जैसे, चंदन या गेहूँ की छाप,
बूटी की छाप, हथेली की छाप । २. प्रसर । प्रभाव ।

क्रि० प्र०—ढालना ।—पड़ना ।—लगना ।—लगाना ।

३. मुहर का चिह्न । मुद्रा । उ०—दान दिए बिनु जान न पैहो ।
भाँगत छाप कहा बिलरामो को नहि हमको जानत । सूर
ब्याम तब कह्यो स्वारि सौं तुम मोकों क्यों मानत ।—सूर
(शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—लगना ।—लगाना ।

४. शंख, चक्र आदि के चिह्न जिन्हें वैष्णव अपने श्रंगों पर गरम
चातु से अंकित कराते हैं । मुद्रा । उ०—(क) द्वारका छाप लगे
भुज मूल पुरानन माहि महातम भौन हैं ।—(शब्द०) ।
(ख) मेटे क्यों हूँ न मिटति छाप परी टटकी । सूरवास प्रभु
की छवि हृदय में अटकी ।—सूर (शब्द०) । ५. वह
निशान जो सचि से अन्न की राशि के ऊपर मिट्टी डालकर
लगया जाता है । चाँक । ६. एक प्रकार की झगड़ी जिसमें
नगीने की जगह पर अक्षर आदि खुदा हुआ ठप्पा रहता है ।
उ०—विद्वम अंकुर अंगुरि पानि बरे रंग सुंदरता सरसानो ।
छाप छला मुंदरी भलकै, दमकै पहुँची गजरा मिलि मानो ।
—गुमान (शब्द०) । ७. कवियों का उपनाम ।

छाप^२—संज्ञा स्त्री० [सं० छेप (= छेप)] १. काँटे या लकड़ी का बोझ
जिसे लकड़हारे जंगल से सिर पर उठाकर लाते हैं । २. बाँस
की बनी हुई टोकरी जिससे सिचाई के लिये जलाशय से पानी
उलीचकर ऊपर बढ़ाते हैं ।

छापना—क्रि० स० [सं० चपन] १. किसी ऐसी वस्तु को जिस-
पर स्याही, गीला रंग आदि पुता हो, दूसरी वस्तु पर रखकर
या छुलाकर उसकी आकृति चिह्नित करना । २. किसी सचि
को किसी वस्तु पर इस प्रकार दबाना कि उसकी, अथवा
उसपर के खुदे या उभरे हुए चिह्नों की आकृति उस वस्तु पर
उतर आवे । ठप्पे से निशान डालना । मुद्रित करना । ३. अंकित
करना । जैसे,—पुस्तक छापना, प्रसवार छापना । ४. टोका
लगाना (विशेषतः चेक का) ।

छाया—संज्ञा पुं० [हि० छापना] १. ऐसा चीज़ा जिसपर गीला रंग या स्याही आदि पोतकर किसी वस्तु पर उसकी छापवा उसपर छुदे या उभरे हुए चिह्नों की आकृति उतारते हैं। ठप्पा। जैसे, छीपियों का छापा, तिखक लगाने का छापा। २. मुहर। मुद्रा। ३. ठप्पे या मुहर से बचाकर डाला हुआ चिह्न या अक्षर। ४. व्यापार के रास पर डाला हुआ चिह्न। मारका। ५. रंग, चक्र आदि का चिह्न जिसे वैष्णव अपने बाहु आदि अंगों पर गरम धातु से अंकित कराते हैं। उ०—जप माला छापा तिलक सरे न एको काम।—बिहारी (शब्द०)। ६. पजे का वह चिह्न जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर हंसदी आदि से छावकर (दीवार, कपड़े आदि पर) डाला जाता है। ७. वह कल जिससे पुस्तकें आदि छापी जाती हैं। छापे की कल। मुद्रा यंत्र। प्रेस। वि० दे० 'प्रेस'।

छी०—छापाकल। छापाखाना।

८. एक प्रकार का ठप्पा जिससे खलिहानों में राशि पर रास रखकर चिह्न डाला जाता है। यह ठप्पा गोल या चौकोर होता है जिसमें डेढ़ दो हाथ का डंडा लगा रहता है। ९. किसी वस्तु की ठीक ठीक नकल। प्रतिकृति। १०. रात में सोते हुए या बेखबर लोगों पर सहसा आक्रमण। रात्रि में असावधान शत्रु पर आबा या वार।

क्रि० प्र०—मारना।

छापाकल—संज्ञा स्त्री० [हि० छापा + कल] छापने या मुद्रण का कार्य करने की मशीन।

छापाखाना—संज्ञा पुं० [हि० छापा + फा० खाना] वह स्थान जहाँ पुस्तकें आदि छापी जाती हैं। मुद्रणालय। प्रेस।

छापामार—वि० [हि०] अचानक बेखबर दुश्मन पर आक्रमण करनेवाला। छापा मारनेवाला (सैनिक)।

छी०—छापामार लड़ाई। छापामार युद्ध = गुरिल्ला युद्ध।

छापित—वि० [हि० छाप + इत (प्रत्य०)] छापीं से भरा हुआ छापा हुआ। उ०—तन भीजि सारी रंग रंग के बारि बहुत उद्योत। सब रंग मिलि के बसन छापित मैं प्रगट मुख जोत।—भारतेंदु प्र०, भा० २ पृ० ११०।

छाब—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'छबड़ा'। उ०—फूलन छाब भरी हुई चारी। नाना विधि के फूल अपारी।—कबीर सा०, पृ० ५४४।

छाबड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'छबड़ा'। उ०—नैहो भावे नाग पकड़ीबै, छाबड़ पड़े।—बाकी० प्र०, भा० १, पृ० ६७।

छाम—वि० [सं० छाम] क्षीण। पतला। कृश। उ०—सीस फूल सरकि सुहावने जलाट लाग्यो लंबी लटे लटक परी हैं कटि छाम पे।—हिजदेव (शब्द०)।

छामोदरी—वि० [सं० छामोदरी] छोटे पेटवाली। कृशोदरी। उ०—तै है सूच्छम छामोदरी कटि केहरि की हरि संक ना ऐसी।—प्रज (शब्द०)।

विशेष—छोटा पेट सौंदर्य का चिह्न माना जाता है।

छायखाना—संज्ञा पुं० [हि० छाया] लियों का एक पहरावा। उ०—

भय कटाव कस अंगिया राती। छायाल बंद लाए गुजराती।—जायसी (शब्द०)।

छायांक—संज्ञा पुं० [सं० छायाङ्क] चंद्रमा।

छाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रकाश का अभाव जो उसकी किरणों के व्यवधान के कारण किसी स्थान पर होता है। उजाला डालनेवाली वस्तु और किसी स्थान के बीच कोई दूसरी वस्तु पड़ जाने के कारण उत्पन्न कुछ अंधकार या कालिमा। वह थोड़ी थोड़ी दूर तक फैला हुआ अंधेरा जिसके आस पास का स्थान प्रकाशित हो। साया। जैसे, पेड़ की छाया, मंढप की छाया।

क्रि० प्र०—पड़ना।

२. वह स्थान जहाँ किसी प्रकार की आड़ या व्यवधान के कारण सूर्य, चंद्रमा, दीपक या और किसी आलोकप्रद वस्तु का उजाला न पड़ता हो। ३. फैले हुए प्रकाश को कुछ दूर तक रोकनेवाली वस्तु की आकृति जो किसी दूसरी ओर अंधकार के रूप में दिखाई पड़ती है। परछाईं। जैसे, खंभे की छाया। वि० दे० 'छाई'। ४. जल, दर्पण आदि में दिखाई पड़नेवाली वस्तुओं की आकृति। अक्स। ५. तद्रूप वस्तु। प्रतिकृति। अनुहार। सदृश वस्तु। पटतर। उ०—कहहु सप्रेम प्रवट को करई। केहि छाया कवि मति अनुसरई।—तुलसी (शब्द०)। ६. अनुकरण। नकल। जैसे,—यह पुस्तक एक बंगला उपन्यास की छाया है। ७. सूर्य की एक पत्नी का नाम।

विशेष—इसकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है। विवस्वान् सूर्य की पत्नी संज्ञा थी जिसके गर्भ से वैवस्वत, आद्य देव, यम और यमुना का जन्म हुआ। सूर्य का तेज न सह सकने के कारण संज्ञा ने अपनी छाया से अपनी ही ऐसी एक स्त्री उत्पन्न की और उससे यह कहकर कि तुम हमारे स्थान पर इन पुत्रों का पालन करना और यह भेद सूर्य पर न खोलना, वह अपने पिता विश्वकर्मा के घर चली गई। सूर्य ने छाया को ही संज्ञा समझकर उससे सारणि और शनेश्वर नामक दो पुत्र उत्पन्न किए। छाया इन दोनों पुत्रों को संज्ञा की सतति की अपेक्षा अधिक चाहने लगी। इसपर यम क्रुद्ध होकर छाया को लात मारने चले। छाया ने शाप दिया कि तुम्हारा पेर कटकर गिर जाय। जब सूर्य ने यह सुना तब उन्होंने छाया से इस भेदभाव का कारण पूछा, पर उसने कुछ न बताया। अंत में सूर्य ने समाधि द्वारा सब बातें जान लीं और छाया ने भी सारी व्यवस्था ठीक ठीक बतला दी। जब सूर्य क्रुद्ध होकर विश्वकर्मा के यहाँ गए, तब उन्होंने कहा—'संज्ञा तुम्हारा तेज न सह सकने के कारण ही यहाँ चली आई थी और अब एक थोड़ी का रूप धारण करके तप कर रही है'। इसपर सूर्य संज्ञा के पास गए और उसने अपना रूप परिवर्तित किया।

८. कांति। दीप्ति। ९. शरण। रक्षा। जैसे,—प्रब तुम्हारी छाया के नीचे आ गए हैं; जो चाहे सो करो। १०. उत्कोच। घुस। रिशवत। ११. पंक्ति। १२. कात्यायनी। १३. अंधकार। १४. आर्या छंद का भेद जिसमें १७ गुरु और १५ लघु होते हैं। १५. एक राशिनी।

विशेष—संगीतसार के मत से यह हुम्मीर और मुख नट के योग से उत्पन्न रागिनी है। इसमें पंचम बादी, ऋषभ संवादी और अवरोहण में तीव्र मध्यम लगता है। दामोदर के मत से यह मोड़व है जिसका सरगम है—नि ष म ग सा।

१६. भूत प्रेत का प्रभाव। भासेव। जैसे,—इसपर किसी की छाया है।

छायाकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. छाया करनेवाला। किसी के लिये छाता लेकर चलनेवाला। २. एक छंद [को०]।

छायागणित—संज्ञा पुं० [सं०] गणित की एक क्रिया जिसमें छाया के सहारे ग्रहों की गति, धननाश का गमनागमन आदि निरूपित किया जाता है। इसमें एक शंकु के द्वारा विषुवन्मंडल स्थिर करके छायाकरण निर्धारित किया जाता है।

छायाग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] दर्पण। आइना।

छायाग्राहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जिसने समुद्र फाँदते हुए हनुमान की छाया पकड़कर उन्हें खींच लिया था।

छायाग्राहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० छायाग्राहिणी] दे० 'छायाग्राहिणी'। उ०—या अब वाराणसी को उल्लेख पार को जाय। तिय छबि छायाग्राहिनी ग्रहैं बीच हीं माय।—बिहारी २०, दो० ४३३।

छायाचित्र—संज्ञा पुं० [सं० छाया + चित्र] आलोक चित्र। प्रकसी तस्वीर। फोटो।

छायातनय—संज्ञा पुं० [सं०] शनैश्चर।

छायातप—संज्ञा पुं० [सं० छाया + तप] १. छाया और धूप। उ०—और बदलते रहते चलपट छायातप के।—रजत०, पृ० १०।

छायातरु—संज्ञा पुं० [सं०] सुस्पृग्भाग। छतिवन। २. वह वृक्ष जिसकी छाया घनी और विस्तृत हो। छायादार वृक्ष। उ०—जीवन के मरु का छायातरु, लहराया, उत्कल जल निर्भर।—बेला, पृ० ३७।

छायात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] छाया का पुत्र। शनैश्चर।

छायात्मा—संज्ञा पुं० [सं० छायात्मन्] परछाईं। प्रतिबिम्ब [को०]।

छायादान—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहजन्य प्ररिष्ट के निवारणार्थ एक प्रकार का दान।

विशेष—छायादान करनेवाला घी या तेल से भरे कसि के कटोरे में अपनी छाया या परछाईं देखा और उसमें कुछ दक्षिणा बालकर दान करता है। यह दान ग्रहजनित शरीर के परिष्ट की शांति के निमित्त किया जाता है और इसे कुलीन ब्राह्मण नहीं ग्रहण करते।

छायादेह—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना शरीर की मूर्ति। काल्पनिक मूर्ति।

छायाद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'छायातरु' [को०]।

छायाद्वितीय—वि० [सं०] एकाकी। अकेला। जिसके साथ केवल अपनी छाया ही हो।

छायानट—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक राग।

विशेष—यह राग छाया और नट के योग से उत्पन्न है तथा केदार नट, कल्याण नट आदि नौ नटों के अंतर्गत है।

इसमें सा बादी और ग संवादी है और अवरोहण में तीव्र मध्यम लगता है। संगीतसार के मत से यह संपूर्ण जाति का राग है और इसका ग्रह तथा भ्रम और न्यास धैर्य है। यह संध्या के समय एक दंड से पाँच दंड तक गाया जाता है। इसकी स्वरलिपि इस प्रकार है—ष स स रे ग म प ष स नि ष प म म रे ष ष प म प म म म रे ष प स म रे स रे स स स।

छायान्वित—वि० [सं०] छायायुक्त। सायादार।

छायापथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाशगंगा। हाथी की बहुर। आकाश जनेऊ। २. देवपथ। उ०—नील नभोमंडल सा जलनिधि, पुल या छायापथ सा ठोक। खींच दो गई एक अमिट सी पानी पर भी प्रभु की छोक।—साकेत, पृ० ३६०। ३. आकाश। उ०—छायापथ में नव तुषार का सघन मिखन होता जितना।—कामायनी, पृ० ८।

छायापद्—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक यज्ञ। इसमें बारह भंगुल का शंकु होता था जिसकी छाया से काल का ज्ञान होता था।

छायापुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] शनैश्चर। उ०—छायापुत्र सहोदर छाँके, छोह न तापर छेले।—रघु० ६०, पृ० २५।

छायापुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] हठयोग के अनुसार मनुष्य की छाया रूप आकृति जो आकाश की ओर स्थिर दृष्टि से बहुत देर तक देखते रहने की साधना करने से दिखाई पड़ती है।

विशेष—तत्र में लिखा है कि इस छाया रूप आकृति के वर्णन से छह महीने के भीतर होनेवाली भविष्य बातों का पता लग जाता है। यदि पुरुष की आकृति पूरी पूरी दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि छह महीने के भीतर मृत्यु नहीं हो सकती। यदि आकृति मस्तक शून्य दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि छह महीने के भीतर अवश्य मृत्यु होगी। यदि वरुण न दिखाई पड़े तो भार्या की मृत्यु और यदि हाथ न दिखाई पड़े तो भाई की मृत्यु निकट समझनी चाहिए। यदि छायापुरुष की आकृति रश्मिबर्ण दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि धन की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार की और बहुत सी कल्पनाएँ हैं।

छायाभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

छायाभय—वि० [सं०] छायायुक्त। छायादार [को०]।

छायामान—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. छाया की माप [को०]।

छायामित्र—संज्ञा पुं० [सं०] छाता। छतरी।

छायामृगधर—संज्ञा पुं० [सं०] मृगलांछन। चंद्रमा [को०]।

छायायंत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह यंत्र जिससे छाया द्वारा काल का ज्ञान हो। सूर्यसिद्धांत में शंकु, वनु, चक्र आदि इसके अनेक प्रकार बतलाए गए हैं। २. धूपघड़ी।

छायालोक—संज्ञा पुं० [सं०] काल्पनिक जगत्।

छायावाद—संज्ञा पुं० [सं० छाया + वाद] आधुनिक हिंदी की एक काव्यगत शैली।

विशेष—सन् १९१८ ई० के आसपास बिदेही युग की काव्यचारा

के बीच रीतिकालीन काव्यप्रवृत्तियों के विरोध में इस नवीन काव्यधारा का जन्म हुआ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मतानुसार पुराने ईसाई संतों के छायाभास (फैंटॅमेन्स) तथा यूरोपीय काव्यक्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (सिंबलिज्म) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगाल में ऐसी कविताएँ 'छायावाद' कहो जाने लगीं। इस धारा का हिंदी काव्य अंगरेजी के रोमांटिक कवियों तथा बंगला के रवींद्र काव्य से प्रभावित था। अतः हिंदी में भी इस नई काव्यधारा के लिये 'छायावाद' नाम प्रचलित हो गया। इस धारा के प्रमुख कवि प्रसाद, निराला और पंत आदि माने जाते हैं। बाद में स्वच्छंदतावाद का नाम भी अनेक हिंदी आलोचकों ने दिया।

छायावेष्टित—वि० [सं० छाया + आवेष्टित] अस्पष्ट। धुँधला। उ०—कौन उसमें ऐसे छायावेष्टित रहः स्थल हैं।—नदी०, पृ० ८।

छायावान्—वि० [सं० छायावत्] [वि० स्त्री० छायावती] १. छायायुक्त। सायादार। छाँहवाला। २. शांतियुक्त।

छायाविप्रतिपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आयुर्वेद का एक प्रकरण जिसके अनुसार रोगों की कालि, ग्रामा, वेष्टा आदि में उलट-फेर या परिवर्तन देखकर यह निश्चय किया जाता है कि अब यह आसन्नमरण है या नहीं अच्छा होगा।

छायासुत—संज्ञा पुं० [सं०] छाया के पुत्र शनैश्चर।

छार—संज्ञा पुं० [सं० छार] कुछ जली हुई वनस्पतियों या रासायनिक क्रिया से धुली हुई धातुओं की राख का नमक। छार। २. खारी नमक। ३. खारी पदार्थ। ४. मम्म। राख। खाक। उ०—(क) जो निम्नान तन होइहि छारा। माटी पोखि मरइ को भारा।—जायसी (शब्द०)। (ख) तुरतहि काम मयो जरि छारा।—तुलसी (शब्द०)।

छो—छार छार करना=मम्म करना। नष्ट भ्रष्ट करना। सत्यानाश करना। उ०—उपजा ईश्वर कोष ते प्राया भारत बीच। छार छार सब हिंद कर्मे में तो उत्तम नहि नोच।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। ५. घूल। गदं। रेणु। उ०—(क) गति तुलसीस की लखै न कोऊ जो करति पन्धे ते छार, छार पन्धे सो उपलक्ष ही।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मूढ़ छार डारे गजराजक पुकार करे, पुंडरीक बूझ्यो री, कपूर लायो कदली।—केशव (शब्द०)।

छारकर्म—संज्ञा पुं० [सं० छारकर्म] एक नरक। ३० 'छारकर्म'।

छारछबीला—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'छरीला'।

छाल—संज्ञा स्त्री० [सं० छल, छाल अथवा सं० शाल्क] १. पेड़ों के बड़, शाखा, टहनी और जड़ के ऊपर का आवरण जो किसी किसी में मोटा और कड़ा होता है और किसी में पतला और मुलायम। बुझ की त्वचा। बकल। जैसे, नीय की छाल। बल्कल। बबूल की छाल। २. छाल का बल्क, ३. त्वचा। चमड़ा। ४. एक प्रकार की मिठाई। उ०—भई मिठाई कही न जाई। मुख सन मेलस जाइ बिलाई। मतलह, छाल और मरकोरी। माठ, पिराई और कुंदरी।—जायसी (शब्द०)। ५. चीनी जो खूब साफ न की गई हो।

छालटी—संज्ञा स्त्री० [हि० छाल + टी] १. छाल का बना हुआ बल्क। सन या पाठ का बना हुआ कपड़ा।

छिरोब—यह पहले धलसी की छाल का बनता था और इसी को फारसी में कर्ता कहते थे। २. सन या पाठ का बना हुआ एक प्रकार का बिकना और फूलदार कपड़ा जो देखने में रेखम की तरह जान पड़ता है।

छालना^१—क्रि० सं० [सं० चालन] १. छलनी में रखकर (भाटा आदि) साफ करना। चालना। छानना। २. छेद करना। छलनी की तरह छिद्रमय करना। भँकरा करना।

छालना^२—क्रि० सं० [सं० क्षालन] धोना। साफ करना। पखारना।

छाला—संज्ञा पुं० [सं० छाल] १. छाल या चमड़ा। बर्म। जिह्म। जैसे, घुगछाला। उ०—(क) जरहि मिरिग बनखंड तेहि ज्वाला। भाते जरहि बैठ तेहि छाला।—जायसी प्र०, पृ० ८६। (ख) सेस नाग जाके कंठ माला। तनु भयूति हस्ती कर छाला।—जायसी प्र०, पृ० ६०। २. किसी स्थान पर जलने, रगड़ खाने या और किसी कारण से उत्पन्न चमड़े की ऊपरी झिल्ली का फूलकर उभरा हुआ तल जिसके भीतर एक प्रकार का जेप या पानी भरा रहता है। फफोला। आबला। भलका। उ०—पाँयन मे छाले परे, बाँधवे कोनाले परे, तऊ, लाल, लाले परे रावरे दरस को।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।

३. वह उभरा हुआ दाग जो लोहे या शीशे आदि में पड़ जाता है।

छालित^१—वि० [सं० क्षालित] धोया हुआ। प्रक्षालित।

छालियो—संज्ञा पुं० [सं० स्थाली हि० थाली] कसि का एक बरतन जिसमें घी तेल आदि भरकर छायादान दिया जाता है। छाया-धान। छायादान की कटोरी।

छालिया^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'छाली'।

छाली^१—संज्ञा स्त्री० [हि० छाला] १. कटी हुई सुपारी का चिपटा टुकड़ा। सुपारी का फल। २. सुपारी। पूगीफल।

छालो^२—संज्ञा पुं० [सं० छागल, प्रा० छागलो, हि० छेली] [स्त्री० छाली] बकरा। उ०—छाली हंदा कौनडा, एवालां धाधीन।—बाँकी० प्र०, भा० २, पृ० ५५।

छाँव—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] १. छाया। साया। जैसे,—बैठ जाता हूँ जैसे,—जहाँ छाँव घनी होती है। २. शरण। पनाह जैसे—अब तो हम तुम्हारी छाँव में आ गए हैं, जो चाहो सो करो। ३. प्रतिबिंब। प्रक्स। वि० दे० 'छाँह'।

छावन—संज्ञा पुं० [सं० छादन, प्रा० छावण, छावण] १. छाजन। छप्पर। उ०—तुल गुफा जरि छावन छाया।—प्राण०, पृ० ५६। २. बेरा। आवास। निवास। उ०—दोय मास हत छावन किज्य।—प० रासो, पृ० १८१।

छावना^१—क्रि० सं० [हि० छाना] दे० 'छावा'। उ०—बरख

बोह चरणोदक लीनों माँगि देउ मनबाधन । तीन पेंड बसुचा
ही चाहौं परणकुटी को छावन ।—सूर (शब्द०) ।

छावनी—संज्ञा स्त्री० [हि० छाना प्रथमा देखी छावणिया, छावणी]
१. छप्पर । छान ।

क्रि० प्र०—छाना ।

२. डेरा । पड़ाव ।

क्रि० प्र०—छालना ।—पड़ना ।

३. सेना के ठहरने का स्थान । फौज की बारिक ।

छावद—संज्ञा पुं० [सं० शावक] मछलियों के छोटे छोटे बच्चे को
झुंड बाँधकर एक साथ तैरते हैं ।

छावरा^१—संज्ञा पुं० [सं० शावक] [स्त्री० छावरी] छोना ।
जानवर का बच्चा । उ०—भूषन मनस कीबै उरारी भुवाल
बस पुरब के लीजिए रसाल यज छावरे ।—भूषन (शब्द०) ।

छावला^२—वि० [प्रा० छविल्ल, छवल्ल, हि० छेला] सुकप । सुबोल ।
रूपवान । उ०—देह इसकी गोरी—मानो छोटे छावले की
छोरी हो ।—श्यामा०, पृ० ३१ ।

छावा—संज्ञा पुं० [सं० शावक] १. बच्चा । शिशु । २. पुत्र । बेटा ।—
(हि०) । ३. १० से २० वर्ष तक का हाथी । जवान हाथी ।

छासठ^३—वि० [सं० चटवष्टि, प्रा० छछठि] जो गिनती में साठ
और छह हो ।

छासठ^४—संज्ञा पुं० साठ और छह की संख्या तथा उसका सूचक अंक
को इस प्रकार लिखा जाता है—६६ ।

छाह^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'छाछ' ।

छाह^६—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'छाह' । उ०—माह छाह कफरी
नहि भावय प्रीतम प्रान पियारा ।—विद्यापति, पृ० १०० ।

छाहर^७—संज्ञा पुं० [सं० छाया] छाया । उ०—बाहुते छाहर भावहि
बाहर, गालिम गणपण पारीषा ।—कीर्ति०, पृ० ४६ ।

छाहर^८—वि० [सं० उत्साह, प्रा० उच्छाह+इ (प्रत्य०)] मत्त ।
मत्तवाला । उ०—हय हृष्यन घन हंकि बीर छुटपी छकि
छाहर । मरदन सौं मिलि मरब मरब बुल्यो मुख नाहर ।—
पृ० रा०, ७ । ११५ ।

छाहौंगीरा^९—संज्ञा पुं० [हि० छाह+फा० गीर (प्रत्य०)] छत्र ।
छाता । उ०—मुकुट की छाहौंगीर कियै बजनिधि । ठाढ़ी,
मुख की छटा की छवि छाकनि छके रह्यो ।—ब्रज० पं०,
पृ० १४७ ।

छिछ, छिछि^{१०}—संज्ञा स्त्री० [अनु०] छीटा । बार । फौवारा ।
उ०—(क) छोनित छिछ उखरि आकासहि गज बाजनि
सिर मागि ।—सूर०, ६।१५८ । (ख) मोन छिछि छूटत
बदन भीम अई सेहि काल । मानो कृष्ण कुटिलयुत पावन
ज्वाल कराल ।—केशव (शब्द०) । (ग) अति उच्छलि छिछि
त्रिकूट छयो । पुर, रावण के जल जोर भयो ।—केशव
(शब्द०) ।

छिकना—क्रि० प्र० [हि० छेकना] छेका जाना । रोका जाना ।
उ०—जो छिके जी की कचाई से नहीं । छेकने से छींक के ये
कब छिके ।—बुभटे०, पृ० ४१ ।

छिकाना—क्रि० प्र० [हि० छींकना का प्रे० रूप] छींकने की क्रिया
कराना । छींक लाना ।

छिगुनिया, छिगुनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'छिगुनी' ।

छिगुलिया, छिगुली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'छिगुनी' ।

छिटुआ, छिटुआ—संज्ञा पुं० [हि० छोटना] बीज बोने का एक
ढंग जिसमें बीज को हाथों में लेकर खेत में बिखराते हैं ।
छीटा ।

छिड़ाना—क्रि० प्र० [हि० छीनना] जबरदस्ती से लेना ।
छीनना । उ०—(क) श्याम सखन सौं कहेउ टेर दै धेरी
सब सब जाय । बहुत बोट यह भई ग्यासिनी मटुकी लेहु
छिड़ाय ।—सूर (शब्द०) । (ख) गोरख लेहु री कोउ प्राय ।
...हरनि तुम्हरे आति नाही लेत दहिउ छिड़ाय ।—सूर
(शब्द०) ।

छिः, छि—अव्य [अनु०] १. घृणासूचक शब्द । घिन जताने का
शब्द । जैसे, छि, छि ! देखो तो तुम्हारे हाथ में कितनी
मैल लगी है । २. तिरस्कार या अरुणिसूचक शब्द । जैसे,—
छि ! तुम्हें माँगते सज्जा नहीं आती ।

छिड़कहाँ—वि० [हि० छिड़का] [स्त्री० छिड़कही] लकड़ी, पेड़,
पेड़ की डाल आदि जिसमें छिड़के लगे हों या जिसे छिड़कों ने
का लिया हो ।

छिड़का—संज्ञा पुं० [हि० चिउँटा] [स्त्री० छिड़की, वि० छिड़कहा]
एक प्रकार का चिउँटा जो साधारण चिउँटे से छोटा और
पतला तथा सूरे रंग का होता है और बड़े जोर से काटता
है । यह प्रायः पेड़ों पर होता है ।

छिड़की—संज्ञा स्त्री० [हि० चिउँटी] १. एक प्रकार की छोटी
चींटी जो बड़े जोर से काटती है । २. एक छोटा उड़नेवाला
कीड़ा जिसके काटने से बड़ी जलन होती है । ३. मोहे का
एक प्रोजार जो छवाली से छोटा होता है और बंधार में
लगाया जाता है । यह लकड़ी उठाने के काम में आता है ।
४. रस्सी की वह मुदी जो बोरों में हसलिये लगी रहती है कि
घोड़े की पीठ पर लादने पर उनमें एक लकड़ी फँसा दी जाय ।

छिड़का—संज्ञा पुं० [देश०] पलाश । छीवल । ढाक ।

छिउला—संज्ञा पुं० [सं० छुप, हि० छुप+ला (प्रत्य०)] छोटा पेड़ ।
पोषा

छिकनी—संज्ञा स्त्री० [सं० छिकनी] एक प्रकार की बहुत छोटी
घास या झूटी का फूल जिसे सूंधने से छींक आती है ।

बिशेष—यह जमीन हो पर फैलती है, ऊपर नहीं बढ़ती । इसमें
छोटी छोटी घुँहियों की तरह के मूंग के दाने के बराबर गोल
फूल लगते हैं जिन्हें सूंधने से बहुत छींक आती है । यह घास
प्रायः ऐसे स्थानों पर अधिक होती है जहाँ कुछ दिनों तक
पानी जमा रहकर सूख गया हो; जैसे छिछले तान आदि ।
यह पोषण के काम में आती है और वैद्यक में गरम,
रुचिकारक, अग्निदीपक तथा श्वेत कुष्ठ, आदि त्वचा के रोगों

को बूढ़ करनेवाली मानी जाती है। इसे नकखिकनी भी कहते हैं।

पर्याय—खिक्कनी। अक्कल। सीकरा। उपा। उअक्का। अक्क। कूरनासा। घ्राणकुक्षय।

खिक्करा—संज्ञा पुं० [सं० खिक्कर] हिरन की जाति का एक जानवर जो बहुत तेज होता है। बृहत्संहिता के अनुसार ऐसे मृग का बाहिनी घोर से निकलना शुभ है।

खिक्कार—संज्ञा पुं० [सं० खिक्कार] दे० 'खिक्कार' उ०—भिरगो एक पक्षि है हरिलो जयमें तोन खिक्कार। अपने अपने रस के लोभी चरत है म्यारा म्यार।—राम० चर्म०, पृ० ५२।

खिक्कुसा—संज्ञा पुं० [हि० छिलका] छिलका। उ०—प्रेम बिकल, प्रति आर्ष उर बरि कबली खिक्कुसा लाए।—सूर०, १।१३।

खिक्कर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृग। खिक्करा।

खिक्कनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नकखिकनी बूढ़ी। वि० दे० 'खिकनी'।

खिक्का^१—संज्ञा पुं० [सं०] छीक (को०)।

खिक्का^२—संज्ञा पुं० [हि० छीका] दे० 'छीका'। उ०—खिक्के पर छोटी सी हैदिया टंग रही थी, कोने में।—नई०, पृ० १२६।

खिक्कार—संज्ञा पुं० [सं०] खिक्कर नामक मृग।

खिक्किका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खिकनी। नकखिकनी।

खिगुननाई—कि० प्र० [देश०] मशोसना। खिल्ल होना। उ०—शेखर की याद सताती है वह खिगुन खिगुन रह जाती है।—रेणुका, पृ० ५७।

खिगुनिया—संज्ञा स्त्री० [हि० खिगुनी] दे० 'खिगुनी'।

खिगुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० मृद मङ्गली] सबसे छोटी उँगली। कनिष्ठिका। उ०—(क) गोरी खिगुनी नल अरुन छला मयाम खबि देख। लहत मुक्ति रति छिनेक यह नैन त्रिवेनी सेह।—बिहारी (शब्द०)। (ख) भापे भाप भली करो भेट न मान मरोर। करो दूर यह देखिहै छाल खिगुनिया छोर।—बिहारी (शब्द०)।

खिगुली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खिगुनी'।

खिचोरा—वि० [हि० छिछला] दे० 'खिछोरा'। उ०—जिन खिचोरों की तरफ कोई स्त्री प्रीति से नहीं देखती वो अपने संगठियों में बैठकर झूठी बातें बनाने में अपनी बड़ाई समझते हैं।—श्रीनिवास शं० पृ० ६४।

खिच्छ^७—संज्ञा स्त्री० [अनु०] बूँद। छीटा। सीकर। उ०—(क) राम शर लागि मनु लागि गिरि पर जरी उछलि खिच्छनि शरनि मानु छाप।—सूर (शब्द०)। (ख) कहुँ ओन खिच्छ अति लाल लाल। मनु बँदुबधू करि रहिय जाल।—सुदन (शब्द०)।

खिक्कारना^१—कि० स० [अनु०] खिक्कना।

खिक्का^२—संज्ञा पुं० [सं० चुच्छ, प्रा० छुच्छ] दे० 'खीछड़ा'।

खिक्की—संज्ञा स्त्री० [हि० छिछड़ा] लिगेद्रिय के ऊपर का वह अण्डा आवरण जो बाहर की ओर कुछ बड़ा हुआ होता है

घोर जो मुसलमानों में खतने या मुसलमानी के समय कांठ दिया जाता है।

खिक्कियाना^१—कि० स० [अनु० छि छि] कुरसा करना। निरा करना। चिन करना।

खिक्कलना—कि० प्र० [हि० छिछला] किसलना। छटकना। धूते हुए निकल जाना। उ०—आजाब ने एक मनी लगाई, छिक्कलनी हुई चोट पड़ी।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १३६।

खिक्कलना—वि० [हि० छिछलना (प्रत्य०)] प्रयवा देश० [वि० स्त्री० छिछली] (पानी की सतह) जो गहरी न हो। उथला। जैसे,—खिक्कल पानी, खिक्कल घाट, खिक्कली नदी। २. निम्न स्तर का। भ्रमंभीर। सुद्ध। खिछोरा। जैसे,—वह खिक्कले स्वभाव का आदमी है।

खिक्कलना—वि० [हि०] दे० 'खिक्कल'।

खिक्कलनाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० छिछला] खिक्कल होने का भाव।

खिक्कली^१—वि० स्त्री० [हि० छिछला] दे० 'खिक्कल'।

खिक्कली^२—संज्ञा स्त्री० [अनु०] लड़कों का एक खेल जिसमें वे एक पतले ठीकरे को पानी पर इस तरह फेंकते हैं कि वह दूर तक उछलता हुआ चला जाता है।

कि० प्र०—खेलना।

खिछोरा^१—वि० [हि० खिछोरा] दे० 'खिछोरा'। जैसे, चोरखिछोरा।

खिछोरपन—संज्ञा पुं० [हि० खिछोरा+पन] खिछोरा होने का भाव। सुद्धता। मोछापन। नीचता।

खिछोरा—वि० [हि० छिछला] [वि० स्त्री० खिछोरी] सुद्ध। मोछा। जो गंभीर या सौम्य न हो। नीच प्रकृति का।

खिछोरपन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'खिछोरपन'।

खिजना^१—कि० प्र० [सं० विकरणविशिष्ट रूप लिख] दे० 'खीजना'।

खिजाना—कि० स० [हि० खीजना] किसी वस्तु को ऐसा करना कि वह खीज जाय। खीजने या नष्ट होने देना।

छिटकना—कि० प्र० [सं० लिख, प्रा० खित्त, या सं० छित्त+करण] १. इधर उधर पड़कर फेलना। चारों ओर बिखरना। खितराना। बगरना।

संयो० कि०—जाना।

२. प्रकाश की किरणों का चारों ओर फैलना। प्रकाश का व्याप्त होना। उजाला छाना। जैसे, चाँदनी छिटकना, सारे छिटकना। उ०—(क) जहँ जहँ बिहँसि सभा महँ हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी।—जायसी (शब्द०)। (ख) नखत सुमन नम बिटप बोहि मनो छपा छिटकि खबि छाई।—तुलसी शं०, पृ० २७७। ३. छटकना। दूर भागना। फलंग हो जाना। उ०—अब मत छिटको दूर, प्राणधन; देखो, होता है घन गर्जन।—कवासि, पृ० १८।

छिटकनी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] अर्सेल / चटकनी। सिटकनी।

छिटका^१—संज्ञा पुं० [हि० छिटकना] पालकी के मोहार का वह भाग जो दरवाजे के सामने रहता है और जिसे उठाकर लोग पालकी में घुसते, निकलते या उसमें से बाहर देखते हैं। परदा।

छिटकाना—क्रि० सं० [हि० छिटकना] चारों ओर फैलाना । इधर उधर डालना । बिखराना । २. छटकाना । घुर करना ।

छिटकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] २० 'छोट', 'छोटा' ।

छिटकुनी—संज्ञा स्त्री० [मनु०] पतली छड़ी । कमची ।

छिटनी—संज्ञा स्त्री० [सं० शिष्य या हि० छेटना] बाँस की फट्टियों या पेड़ के डंठलों आदि की बनी हुई छोटी टोकरी । कौवा । डलिया ।

छिटवा—संज्ञा पुं० [सं० शिष्य या हि० छिटना] [स्त्री० छिटनी] बाँस की फट्टियों आदि का टोकरा ।

छिटका—संज्ञा पुं० [हि० छिटकाना] एक बालिशत संबी मोटी लकड़ी जिसे धुनिएँ पैर के अंगूठे और उसके पास की उँगली से दबाकर और उसमें फटके की ताँत फँसाकर रुई बुनते हैं ।

छिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० छोट्टा] छोटा छोट्टा । सीकर । सूक्ष्म जमकण ।

छिड़कना—क्रि० सं० [हि० छोट्टा + करना] १. पानी या किसी और द्रव पदार्थ को इस प्रकार फेंकना कि उसके महीन छींटे फैलकर इधर उधर पड़ें । पानी आदि के छींटे डालना । मिगोने या तर करने के लिये किसी वस्तु पर जल बिखराना । जैसे, पानी छिड़कना, रंग छिड़कना, गुलाबजल छिड़कना । उ०—पानी छिड़क दो तो यहाँ की धूल बैठ जाय ।—(शब्द०) । २. व्योछावर करना । जैसे, जान छिड़कना (स्त्री) । ३. घुरकना । घुरघुराना ।

छिड़कवाना—क्रि० सं० [हि० छिड़कना] छिड़कने का काम कराना ।

छिड़काई—संज्ञा स्त्री० [हि० छिड़कना] १. छिड़कने की क्रिया या भाव । छिड़काव । २. छिड़कने की मजदूरी ।

छिड़काना—क्रि० सं० [हि० छिड़कना का प्रे० रूप] २० 'छिड़कवाना' ।

छिड़काव—संज्ञा पुं० [हि० छिड़कना] पानी आदि छिड़कने की क्रिया । छींटों से तर करने का काम । जैसे,—यहाँ सड़कों पर छिड़काव नहीं होता । उ०—सड़क सफाई होत करि छिड़काव । बगीठी बैठि हवा खाते भावे उमराव ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ९८१ ।

छिड़ना—क्रि० प्र० [हि० छेड़ना] आरंभ होना । शुरू होना । चल पड़ना । जैसे, बात छिड़ना, झगड़ा छिड़ना, चर्चा छिड़ना, सितार छिड़ना ।

छिड़ाना—क्रि० सं० [सं० छिड़] १. मुक्त करना । छुड़ावा । छुड़ा देना । उ०—बुढ़ बंधन संसार सें गुह्यक विष्ट छिड़ाव ।—नव० प्र०, पृ० २५४ । २. छुड़ा देना । छोड़ देना । उ०—देखि सबी हरि की मुख चार । मनहुँ छिड़ाव लियो नंदनंदन, वा ससि की सत सार ।—सूर०, १० । १७६९ ।

छिड़िआना—क्रि० प्र० [देश०] छितरा जाना । बिखरना । विकीर्ण होना । उ०—करतल कापु कुसुम छिड़िआव । विपुन पुलक तनु बसन भँपाव ।—विद्यापति, पृ० ५१३ ।

छिड़िआ—संज्ञा पुं० [सं० छिड़] २० 'छिड़' ।

छित—वि० [सं०] १. बिभक्त । २. कृपा । दुर्बल [कौ०] ।

छित^१—वि० [सं० छित] श्वेत । धवल ।

छित^२—संज्ञा स्त्री० [सं० छिति] पृथ्वी । धरती । उ०—मध्यम हित आराध छित, बाल नारि इमि जानि ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ५३४ ।

छौ—छितनायक = राजा । उ०—छाटा घर तीढी छितनायक । सबलां वायक प्रजा सहायक ।—रा० क०, पृ० १३ ।

छितना—संज्ञा पुं० [हि०] [स्त्री० छितनी] छिछला और बड़ा टोकरा ।

छितनारा—वि० [हि० छितनार] छितराया हुआ । फैला हुआ ।

उ०—चिप्या चारि हाहँ छितनारा । सुर नर मुनि महि सोवनहारा ।—सं० दरिया, पृ० १६ ।

छितनी—संज्ञा स्त्री० [सं० छन, प्रा० छत] छोटी और छिछली टोकरी ।

छितरना—क्रि० प्र० [हि०] २० 'छितराना' ।

छितरबितर—वि० [हि०] २० 'छितरबितर' ।

छितराना—क्रि० प्र० [सं० क्षित + करण, प्रा० छितकरण, छितरण अथवा सं० संस्तरण] खंडों या कणों का गिरकर इधर उधर फैलना । बहुत सी वस्तुओं का बिना किसी क्रम के इधर उधर पड़ना । तितर बितर होना । बिखरना । जैसे,—(क) हाव से गिरकर सब बने जमीन पर छितरा गए (ख) सब चीजें इधर उधर छितराई पड़ी हैं, उठाकर ठिकाने से रख दो ।

छितराना^२—क्रि० सं० १. खंडों या कणों को गिराकर इधर उधर फैलाना । बहुत सी वस्तुओं को बिना किसी क्रम के इधर उधर डालना । बिखराना । छोटना । २. सटी हुई वस्तुओं को भलग भलग करना । दूर दूर करना । बनी वस्तुओं को बिरल करना ।

मुहा०—टाँग छितराना = दोनों टाँगों को बगल की ओर दूर दूर रखना । टाँगों को बगल या पार्श्व की ओर फैलाना । जैसे, टाँग छितराकर चलना ।

छितराव—संज्ञा पुं० [हि० छितराना] छितराने का भाव । बिखरने का भाव ।

छिति^१—संज्ञा स्त्री० [सं० छिति] १. भूमि । पृथ्वी । उ०—सुंदरि मनि मंदिर सरी छिति छलकत छवि जाल । लसत मंजु महँदी बखनि चखनि बिलोकहु लाल ।—सं० सप्तक, पृ० ३६० । २. एक का भंग । उ०—संवत् प्रह सति जखनि छिति छठ तिथि पासर चंद । चैत भास पख कृष्ण में पूरन आनंदकंद ।—बिहारी (शब्द०) ।

छितिकांत^१—संज्ञा पुं० [सं० क्षितिकान्त] भूपति । राजा ।

छितिज—संज्ञा पुं० [सं० क्षितिज] २० 'क्षितिज' । उ०—छिप्यो छपाकर छितिज छोरनिधि छगुन छंद छल छीन्हो ।—श्यामा०, पृ० १२० ।

छितिनाथ^१—संज्ञा पुं० [सं० क्षितिनाथ] भूपति । राजा ।

क्षितिपाद^७—संज्ञा पुं० [सं० क्षितिपाल] दे० 'क्षितिपाद' । उ०—
क्षांक्षि क्षितिपाल जो परीक्षित भए कृपासु ।—तुलसी ग्रं०,
पृ० २४५ ।

क्षितिराना—क्रि० घ० [हि०] दे० 'क्षितिराना' । उ०—मानुष
भरि भरती भों आई । भाटी होय हाथ क्षितिराई ।—इंद्रा०,
पृ० १६१ ।

क्षितिरुद्ध^७—संज्ञा पुं० [सं० क्षितिरुद्ध] पेड़ । वृक्ष ।

क्षितीस^७—संज्ञा पुं० [सं० क्षितीस] राजा ।

क्षिति^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] काटना । छेदन करना । विभाजित
करना । खंड खंड करना [को०] ।

क्षिति^२^७—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिति, प्रा० क्षित] दे० 'क्षिति' ।
उ०—तेग भातिर पंमार जेत जग हृष्य बस किय । मंगै हैल
सुगल्ह तात अविबेक क्षिति दिय ।—पु० रा०, १२ । ३८ ।

क्षित्तर—वि० [सं०] १. छेदक । २. चूत । ३. बेरी ।

क्षिद^७—संज्ञा पुं० [सं० क्षिद] दे० 'क्षिद' । उ०—पंच सरल क्षिद
हारि किए मनमथ को बेझा ।—नंद० ग्रं०, पृ० २१० ।

क्षिदक—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र का प्रायुष । वज्र । २. होरा ।
[को०] ।

क्षिदना^१—क्रि० घ० [हि० छेदना] १. छेद से युक्त होना ।
सूरासहार होना । भिदना । बिधना । जैसे,—इस पतनी सुई
से यह कागज नहीं छिदेगा । २. असंपूर्ण होना । घायल होना ।
जखमी होना । जैसे,—सारा शरीर तीरों से छिद गया था ।

क्षिदना^२—क्रि० स० १. घाम लेना । सहारे के लिये पकड़ लेना ।
२. छेदना । छेद करना । उ०—सटनि तैं चुवति जु जलकन
जोती । जनु ससि छिदि छिदि डारत भोती ।—नंद० ग्रं०,
पृ० २६८ ।

क्षिदना^३—संज्ञा पुं० [सं० छन्द (= नियंत्रण)] वरन्ध्या । फलदान ।
भोगनी ।

क्षिदरा^१—वि० [सं० क्षिद] [वि० स्त्री० क्षिदरी] १. क्षितराया
हुमा । जो घना न हो । विरल । उ०—इस तेरी क्षिदरी
छाया में वो बंधे हुए मन देखे हैं ।—दीप ज०, पृ० १४६ ।
२. भँकरीदार । छेदवार । ३. फटा हुआ । जर्जर ।

क्षिदरा^२—वि० [सं० क्षिद] छोटा ।

क्षिदवाना—क्रि० स० [हि०] दे० 'छेदना' ।

क्षिदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] छेदने या काटने की क्रिया [को०] ।

क्षिदाना^२—क्रि० स० [हि०] दे० 'छेदना' ।

क्षिदि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुल्हाड़ी । २. वज्र । ३. उच्छेदन ।
काटना [को०] ।

क्षिदिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुल्हाड़ा । कुठार । २. तलवार ।
भसि । ३. अमल । अग्नि । पाषाण । ४. रस्सा । डोरी [को०] ।

क्षिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० क्षिद्रित] १. छेद । सुरास । २.
गड्ढा । बिबर । बिल । ३. अवकाश । जगह । ४. दोष ।
त्रुटि । जैसे, क्षिद्रान्वेषण ।

क्षी०—संज्ञा स्त्री० । क्षिद्रानुजीवी, क्षिद्रानुसंधानी, क्षिद्रानुसारी =
दे० 'क्षिद्रान्वेषी' ।

५. कलित ज्योतिष के अनुसार लग्न से साठवाँ घर । ६. नी की
संख्या । राजनीति में शत्रु का भेद्य या दुर्बल पक्ष । कभी ।
कमजोरी (को०) । ८. आकाश (को०) ।

क्षिद्रकर्ण—वि० [सं०] छिदे या बिधे कानवाला । जिसके कान
छिदे हों [को०] ।

क्षिद्रवा—संज्ञा स्त्री० [हि० क्षिद्र + ता प्रत्य०] कलंक । दोष ।
हीनता । उ०—समुंद क्षार गंगा गदल, जल गुनबंता सीत ।
रबी तेज ससि क्षिद्रता, दरिया संता रीत ।—हरिया० बानी,
पृ० ३६ ।

क्षिद्रदर्शी^१—वि० [सं० क्षिद्रदर्शिन] [वि० स्त्री० क्षिद्रदर्शिनी]
पराया दोष देखनेवाला । नुक्स निकालनेवाला । खुचर
निकालनेवाला ।

क्षिद्रदर्शी^२—संज्ञा पुं० एक योगभ्रष्ट ब्राह्मण का नाम जो हरिबंध के
अनुसार बाभ्रव्य का पुत्र था ।

क्षिद्रपिप्पली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'क्षिद्रवैदेही' [को०] ।

क्षिद्रवैदेही—संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली । गजपीपल ।

क्षिद्रांतर—संज्ञा पुं० [सं० क्षिद्र + अन्तर] बेंत । सरकंडा ।
नरकुल [को०] ।

क्षिद्रांश—संज्ञा पुं० [सं०] सरकंडा । नरकुल [को०] ।

क्षिद्रात्मा—वि० [सं० क्षिद्रात्मन्] १. खलस्वभाव । कुटिल । झल ।
२. अपनी त्रुटि कहनेवाला । दूसरों से अपना दोष व्यक्त करने-
वाला [को०] ।

क्षिद्रान्वेषण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० क्षिद्रान्वेषी] दोष ढूँढना ।
नुक्स निकालना । खुचर करना । उ०—इस क्षिद्रान्वेषण रत
जग में सभी क्षिद्र लखते हैं, प्रियतम ।—अपलक, पृ० ६६ ।

क्षिद्रान्वेषी—वि० [सं० क्षिद्रान्वेषिन्] [वि० स्त्री० क्षिद्रान्वेषिणी]
क्षिद्र ढूँढनेवाला । पराया दोष ढूँढनेवाला । खुचर
निकालनेवाला ।

क्षिद्राफल—संज्ञा पुं० [सं०] माजुफल ।

क्षिद्रित—वि० [सं०] १. छेदा हुआ । वेधा हुआ । २. जिसमें दोष
लगा हो । दूषित । ऐसी ।

क्षिद्रोदर—संज्ञा पुं० [सं०] क्षतोदर नामक पेट का रोग ।

क्षिद्र^७—संज्ञा पुं० [सं० क्षण] दे० 'क्षण' । उ०—सखि, क्षिद्र घूप
धोर क्षिद्र छाया । यह सब बीमासे की माया ।—साकेत, पृ०
२७९ ।

क्षिद्रक^७—क्रि० वि० [सं० क्षण + एक] एक क्षण । दस मिनट ।
बोड़ी देर । उ०—तुन सवूह की क्षिद्रक में जारत तनिक
भंगा ।—(शब्द०) ।

क्षिद्रकना^१—क्रि० स० [हि० क्षिद्रकना] नाक का मल जोर से साँस
बाहर करके निकालना । जैसे,—नाक क्षिद्रकना ।

क्षिद्रकना^२—क्रि० घ० [हि० चमकना] १. भड़ककर भागना ।
चमकना । दे० 'छिनकना' । २. रंजक बात जाना (बंदूक) ।

क्षिद्रक्षि^७—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षण + क्षि] बिजली ।

छिनवा^५—संज्ञा पुं० [सं० क्षीय+वा (प्रत्य०)] क्षीयवा । पुर्वसता । कमजोरी । उ०—छिनवा तन में बहुत लावे । कबहीं कुछ नाहीं कुछ पावे ।—सं० बरिषा, पृ० ४१ ।

छिनवा^५—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षणवा] ३० 'क्षणवा' ।

छिनना^१—क्रि० प्र० [हि० क्षीनना] क्षीन लिया जाना । हरण होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

छिनना^२—क्रि० सं० [सं० छिन्न या हि० छेनी] १. पत्थर का छेनी या टांकी के आघात से कटना । २. सिल, चक्की आदि का छेनी के आघात से क्षुरदरी या गद्देदार होना । कुटना ।

छिनभंग^५—वि० [सं० क्षणभङ्ग] नश्वर । क्षणभंगुर । उ०—तप तीरथ तन्नी रमन विद्या बहुत प्रसंग । कहीं कहीं मुनि वचि करै पायी तन छिनभंग ।—ब्रज० प्र०, पृ० ११४ ।

छिनभिन्न^५—वि० [सं० छिन्नभिन्न] ३० 'छिन्न भिन्न' । उ०—तिन भग परिण पहुँसान बीर । छिनभिन्न होय बारा सरीर ।—पृ० रा०, १ । ६६४ ।

छिनरा—वि० पुं० [देशो छिण्णाल, हि० छिनार] [वि० स्त्री० छिनरी, छिनार, छिनाल] परस्त्रीगामी (पुरुष) । संपट । वृषल ।

छिनवाना^१—क्रि० सं० [हि० 'छीनना' का प्रे० रूप] छीनने का काम कराना ।

छिनवाना^२—क्रि० सं० [सं० छिन्न] १. पत्थर को छेनी से कटवाना । २. सिल, चक्की आदि को छेनी से क्षुरदरी कराना । कुटाना ।

छिनहरा^१—पुं० [सं० छिन्नगृह, प्रा० छिनहर; या सं० छिद्र+हि०+हर (प्रत्य०)] छिन्न भिन्न । टूटा फूटा । जीर्ण शीर्ण । उ०—छिनहर घर घर फिरहर टाटी । घन गरजत कंप मेरा छाती ।—कबीर प्र०, पृ० १८१ ।

छिनाना^१—क्रि० सं० [हि० क्षीनना का प्रे० रूप] छीनने का काम कराना ।

छिनाना^२—क्रि० सं० क्षीनना । हरण करना । उ०—कामधेनु जमदग्नि की ले गयो वृषति छिनाय ।—सूर (चन्द०) ।

छिनाना^३—क्रि० सं० [सं० छिन्न] १. टांकी या छेनी से पत्थर आदि कटाना । २. टांकी या छेनी से सिल, चक्की आदि को क्षुरदरी कराना ।

छिनार—वि० स्त्री० [हि० छिनाल] ३० 'छिनाल' ।

छिनाल^१—वि० स्त्री० [सं० छिन्ना+नारी; देशो छिण्णालिआ, छिण्णाली पू० हि० छिनारि] व्यभिचारिणी । कुलटा । परपुरुषगमिनी । उ०—अरे यह छिनाल बड़ी छतीसी है ।—भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ३१ ।

छिनाल^२—संज्ञा स्त्री० व्यभिचारिणी स्त्री । कुलटा स्त्री ।

छिनालपन, छिनालपना—संज्ञा पुं० [हि० छिनाल+पन] व्यभिचार । छिनाल ।

छिनाला—संज्ञा पुं० [हि० छिनाल] स्त्री पुरुष का अनुचित सहवास । व्यभिचार ।

छिनु^५—संज्ञा पुं० [हि० छिन] ३० 'छन' । उ०—छिनु छिनु बाई

छवि कैसे कई कोठ कवि तन के छिलर मानी गए हैं काम रहित ।—नंद० प्र०, पृ० ३७७ ।

छिनौछवि^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'छिनछवि' ।

छिन्न^१—वि० [सं०] १. जो कटकर भलग हो गया हो । जो काटकर पृथक् कर दिया गया हो । खंडित ।

यौ०—छिन्नकणं=कनकटा (पशु) । छिन्नकेश=जिसके बाल काटे गए हों । मुंडित । छिन्नद्रुम=कटा हुआ वृक्ष । छिन्ननास=छिन्ननासिक=नासिकाविहीन । नकटा । छिन्नभिन्न । छिन्न-मस्त, छिन्नवस्तक=जिसका सिर कट गया हो । कटे सिरवाला ।

२. बका हुआ । क्लृप्त (को०) । ३. दूर किया हुआ । नष्टभ्रष्ट (को०) । ४. ह्रासोन्मुख । क्षीण (को०) ।

छिन्न^२—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का मंत्र । २. वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का फोड़ा ।

विशेष—इसका सत सीधी या टेढ़ी लकीर के रूप में होता है और इसमें मनुष्य का भंग चलने लगता है ।

छिन्नक—वि० [सं०] भग्नतः कटा । जिसका कुछ भग्न कटा हो (को०) ।

छिन्नमंथिका—संज्ञा स्त्री० [सं० छिन्नमंथिका] एक प्रकार का कंद । त्रिपर्णिका (को०) ।

छिन्नद्वैष—वि० [सं०] जिसकी द्विषा मिट गई हो । जिसे असमंजस न हो (को०) ।

छिन्नवान्य (सैन्य)—संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जिसके पास धान्य न पहुँच सकता हो ।

विशेष—कीटिल्य ने लिखा है कि छिन्नधान्य तथा छिन्नपुरुषबीज (जिसकी मनुष्य तथा पदार्थ संबंधी सहायता रुक गई हो) सैन्य में छिन्नवान्य उत्तम है; क्योंकि वह दूसरे स्थान से धान्य लाकर या स्थावर तथा जंगम (तरकारी तथा मांस) आहार कर लड़ाई लड़ सकता है । सहायता न मिलने के कारण छिन्न-पुरुषबीज यह नहीं कर सकता ।

छिन्ननास्य—वि० [सं०] (पशु) जिसकी नास टूट गई हो (को०) ।

छिन्नपक्ष—वि० [सं०] (पक्षी) जिसके डेने टूट या कट गए हों ।

छिन्नपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा । पाड़ा ।

छिन्नपुरुषबीज (सैन्य)—संज्ञा पुं० [सं०] कीटिल्य के अनुसार वह सेना जिसको मनुष्य तथा पदार्थ संबंधी सहायता रुक गई हो ।

छिन्नपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] तिलक वृक्ष ।

छिन्नबंधन—वि० [सं० छिन्नबंधन] जिसके बंधन कट गए हों । बंधनमुक्त (को०) ।

छिन्नभक्त—वि० [सं०] १. जिसके भोजन में बाधा या पड़े । २. सुखों मरनेवाला । जिसे जाने का ठिकाना न हो (को०) ।

छिन्नभिन्न—वि० [सं०] १. कटाकुटा । खंडित । टूटा फूटा । नष्टभ्रष्ट । ३. जिसका क्रम खंडित हो गया हो । भ्रष्ट-व्यस्त । तितर बितर । उ०—सुंकेत किया मैंने मलिन, जिस ओर कुंडली छिन्न भिन्न ।—अनामिका, पृ० १२५ ।

छिन्नवस्तका—वि०, संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'छिन्नवस्तु' ।

छिन्नमस्ता^१—वि० [सं०] जिसका माथा कटा हो ।

छिन्नमस्ता^२—संज्ञा स्त्री० एक देवी जो महाविद्याओं में छठी हैं ।

विशेष—इनका ध्यान इस प्रकार है—अपना ही कटा हुआ सिर अपने बाएँ हाथ में लिए, मुँह खोले और जीभ निकाले हुए अपने ही गले से निकली हुई रक्तधारा को चाटती हुई, हाथ में खड्ग लिए, मुँहों की माला चारण किए और दिगंबर । इनका नाम प्रबंध चंडिका और प्रचंडिका भी है । तंत्रसार में इनका पूरा विवरण लिखा है ।

छिन्नमूल—वि० [सं०] मूलोच्छेद किया हुआ । जड़ से काटा हुआ । [को०] ।

छिन्नरुह—संज्ञा पुं० [सं०] तिलक वृक्ष । पुत्राग ।

छिन्नरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुडुच । गिलोय ।

छिन्नवेशिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा ।

छिन्नजगु—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी सस्त्र से कटा हुआ धाव । २. वह फोड़ा जो किसी ऐसे धाव पर हो जो सस्त्र से लगा हो ।

छिन्नश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जो श्वास का अंद माना जाता है ।

विशेष—इस रोग में रोगी का पेट फूलता है, पसीना आता है और साँस रुकता है तथा शरीर का रंग बदल जाता है ।

छिन्नसंशय—वि० [सं०] जिसका संदेह दूर हो गया हो । संशय-रहित [को०] ।

छिन्नांत्र—संज्ञा पुं० [सं० छिन्नांत्र] कोष्ठभेद नामक एक उदर-रोग [को०] ।

छिन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गुडुच । गिलोय । २. पुंश्चली । छिनाल । कुलटा ।

छिन्नोद्ग्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुडुच । गिलोय [को०] ।

छिपकली—संज्ञा स्त्री० [हि० छिपकना या देश०] १. पेट जमीन पर रखकर पंजों के बल चलनेवाला एक सरीसृप या जंतु ।

विशेष—यह एक बिले के लगभग लंबा होता है और मकान की दीवार आदि पर प्रायः दिखाई पड़ता है । यह जंतु गोधा या गोह की जाति का है और छोटे छोटे कीड़े पकड़कर खाता है । छिपकली चिकनी से चिकनी खड़ी सतह पर सुगमता से चढ़ सकती है ।

पर्व०—पलमी । भुषली । गृहगोधा । विशंबरी । ज्येष्ठा । कुडचमस्त्य । गृहगोलिका । माणिक्या । भित्तिका । गृहोलिका । २. दुबली पतली स्त्री । कृष्ण शरीर की औरत ।

विशेष—प्रायः दुबली पतली स्त्री को भी लोग विनोदवस्तु छिपकली कह देते हैं ।

३. कान का एक गहना ।

छिपका^१—संज्ञा पुं० [हि० छिपकली] गृहगोधा । विसतुद्रया । छिपकली । उ०—माछर पलारी काँठ छाँड़ि है हमारो नाम नीर व बिलाव छिपकाहू अपनायो है ।—राम धर्म०, पृ० ६६ ।

छिपना—क्रि० प्र० [सं० छिप + डालना] १. आवरण या छोट में होना । ऐसी स्थिति में होना जहाँ से दिखाई न पड़े । जैसे,—

(क) वह सड़का हमें देखकर छिपने का यत्न करता है । (ख) यहाँ न जाने कितने प्रचरल छिपे पड़े हैं । २. आवरण या छोट में होने के कारण दिखाई न देना । अदृश्य होना । देखने में न आना । जैसे, सूर्य का छिपना । ३. जो प्रकट न हो । जो स्पष्ट न हो । गुप्त । जैसे,—इसमें उनका कुछ छिपा हुआ मतलब तो नहीं है ।

छिपली^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्याली] १० छोटी पाली । रकाबी । उ०—चाची ने फूल की उसी कमचमाती छिपली में खाना परोस रखा था ।—रति०, पृ० ५७ ।

छिपाछिपी—क्रि० वि० [हि० छिपना] चुपके से । छिपाकर । गुप्त रीति से । चुपचाप । गुप्तगुप्त ।

छिपाधिप^१—संज्ञा पुं० [सं० सपाधिप] रात्रि का स्वामी । चंद्रमा । निशापति । उ०—रज नंकिय बाह कमल भुम्रं । छिति भिरा छिपाधिप चित्त धुम्रं ।—पृ० १०, १६ । १०१ ।

छिपाना—क्रि० सं० [सं० छिप + डालना] [संज्ञा छिपाव] १. आवरण या छोट में करना । ऐसी स्थिति में करना जिसमें किसी को दिखाई न पड़े या पता न चले । ढाँकना । धाड़ में करना । दृष्टि से अशुभ करना । गोपन करना । २. प्रकट न करना । सूचित न करना । गुप्त रखना । जैसे, बात छिपाना, दोष छिपाना ।

छिपावस्तम—संज्ञा पुं० [हि० छिपना + प्रा० वस्तम] १. वह व्यक्ति जो अपने गुण में पूर्ण हो, परंतु प्रख्यात न हो । उ०—अरी, तू तो छिपी वस्तम है । आज तक हमको अपना गाना नहीं सुनाया था ।—सेर०, पृ० २६ । २. ऐसा दुष्ट जिसकी दुष्टता लोगों पर प्रकट न हो । गुप्त गुंडा । उ०—क्यों मियाँ, यह कहिए छिपे वस्तम निकले मियाँ खलील ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १६६ ।

छिपाव—संज्ञा सं० [हि० छिपना] किसी बात या भेद को छिपाने का भाव । बातों को एक दूसरे से गुप्त रखने का भाव । परस्पर के व्यवहार में हृदय के भावों का गोपन । दुराव । क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।

छिपावना^१—क्रि० सं० [हि० छिपाया] गोपन करना । गुप्त रखना । छिपाना । उ०—तो सौ न छिपावति हौं, एरी मट्, अपराध इतनी कीन्हों मैं जो कही हँसि के ।—रघुराज (शब्द०) ।

छिपी^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. छोट आपनेवाल । छोपी । २. दबी । सीवक ।

छिपे छिपे—क्रि० वि० [हि० छिपाना] अप्रकट रूप से । गुप्त रूप से ।

छिप्र^१^१—क्रि० वि० [सं० छिप्र] १० 'छिप्र' । उ०—सरा-सेर रूप लोह मर्गायव । लोहकार दह छिप्र कुलायव ।—पृ० रासी, पृ० ३ ।

छिप्र^२—संज्ञा पुं० [सं० छिप्र] एक मर्म स्थान जो पैर के बँगुठे और उसके पास की उँगलियों के बीच में होता है ।

छिपड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] १० 'छपड़ा' ।

छिपड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० छिपरीय] खटोली के आकार की एक बोली जिसपर रैतीले मैदानों में घाना करते हैं ।

छिबकी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० छिबका] १. छोटा टोकरा । २. चाँचा ।

छिबना^१—क्रि० प्र० [सं० स्पर्शन, प्रा० छिबण, हि० छूना] लगना । स्पर्श करना । छूना । उ०—(क) ये भाटी छिबता घसमाएँ । किसबाँ सूँ छटा केबाँएँ ।—रा० क०, पृ० २७७ । (ख) ईश्वराण मुकनेस रो, यह केबाँएँ तरस्त । घासमान छिब प्राणियो, भाई बाँएँ तरस्त ।—रा० क०, पृ० ७५ ।

छिमा^७—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षमा] १. 'क्षमा' । उ०—छिमा करवान है विसाल धीर कर बीच, बरने ब्याल कोष नीच कौ नसायो है ।—दीन० प्र०, पृ० १३४ ।

छिमाछिम^७—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षमा से हि० छिमा की द्विवक्ति] क्षमा का आदर । क्षमा करने का प्रवृत्ति या आचार । तात्कालिक क्षाति । उ०—छिन एक छिमाछिम रखके । जावदिसि नृप बिटयो ।—पृ० रा०, १० । १७ ।

छिय छिय—प्रत्यय [अनु०] धृणासूचक उक्ति । तिरस्कार का शब्द । १. 'छि' । उ०—धीर सिधु सेबि रूपे बिलास । छिय छिय तोहर रमसमय भास ।—विद्यापति, पृ० ५८७ ।

छियना^७—क्रि० प्र० [सं० स्पर्श] १. 'छूना' ।

छिया^१—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिप्त, प्रा० छिब, हि० छि; छिः] १. वह जिसे देखकर लोग खी खी करें । वृणित वस्तु । चिन्तनी चीज । २. मल । गलीज । मँला । उ०—हैं समुझत, साईं ब्रह्म की गति छार छिया रे ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—छिया छरह करना = खी खी करना । मल और बमन के समान वृणित समझना । चिन्तना । उ०—जो छिया छरह कर सकल संतन तजो तासु मतिभूढ़ रस प्रीति डानी ।—सूर (शब्द०) । छिया छार होना = चिन्तनी होना । वृणित एवं मँला होना । वृणित और नष्ट होना । उ०—सो तन छिया छार होय जैहै, नाम न तेहँ कोई ।—कबीर श०, पृ० ४३ ।

छिया^२—वि० मँला । मलिन । वृणित ।

छिया^३—संज्ञा स्त्री० [हि० बछिया] छोकरी । बहूकी । उ०—कीन की छाँह छिपीगी छिया छहिया तबि नाह की माह निसा में ।—सु० सर्व० (शब्द०) ।

छियाछो—संज्ञा स्त्री० [हि० छूना + छिपना] छूने और छिपने का खेल । भाँस मिचौनी । उ०—बलो छिया छी हो अंतर में । तुम चंदा में रात सुहागन । बमक बमक उट्टे भाँगन में । बलो छिया छी हो अंतर में ।—हिम०, पृ० ११ ।

छियाब्—संज्ञा पुं० [सं० क्षय + व्याज] कटुप्रा व्याज ।

छियानबो^१—वि०, संज्ञा पुं० [हि०] १. 'छानबे' ।

छियालीस—वि०, संज्ञा पुं० [हि० छियालीस] १. 'छियालीस' ।

छियालीस^१—वि० [सं० बट् + चालीस, हि० छह + चालीस] जो संख्या में चालीस और छह हो ।

छियालीस^२—संज्ञा पुं० १. छह और चालीस की संख्या । २. उक्त संख्या का द्योतक शब्द जो इस प्रकार लिखा जाता है—४६ ।

छियासी^१—वि० [सं० बट् + सीति, प्रा० छासीति, प्रा० छासी] छह और अस्सी । जो गिनती में अस्सी से छह अधिक हो ।

छियासी^२—संज्ञा पुं० १. छह और अस्सी की संख्या । २. उक्त संख्या का द्योतक शब्द जो इस प्रकार लिखा जाता है—८६ ।

छिरकना—क्रि० प्र० [हि० छिड़कना] १. 'छिड़कना' । उ०—एकादशी एक सखि भाई बारणो सुभग भबीर । एक हाथ पीतांबर पकरणो छिरकत कुंकुम नीर ।—सूर (शब्द०) ।

छिरकाना—क्रि० प्र० [हि० छिड़काना] १. 'छिड़काना' ।

छिरना^७—क्रि० प्र० [हि० छिलना] १. 'छिलना' । उ०—मकरि क तार तेहि कर चीर । सो पहिरे छिरि जाइ सरीर ।—जायसी (शब्द०) ।

छिरहटा—संज्ञा पुं० [हि०] १. 'छिरेटा' ।

छिरहा^१—वि० [हि० छेड़ना] हठी । जिद्दी ।

छिरेटा—संज्ञा पुं० [हि० छिलहिट] [स्त्री० अल्पा० छिरेटी] एक छोटी बेल जो मैदानों, नवी के करारों आदि पर होती है ।

विशेष—इसकी पत्तियों का कटाव सींके की धोर कुछ पान सा होता है, पर बोड़ी ही दूर चलकर पत्तियों की चौड़ाई एक-बारगी कम हो जाती है और वे दूर तक लंबी बढ़ती जाती हैं । यह चौड़ाई छिरे पर भी उतनी ही बनी रहती है । इन पत्तियों की लंबाई चौड़ाई तीन अंगुल से अधिक नहीं होती और इनका रस निचोड़कर जल, दूध आदि में डालने से जल या दूध गाढ़ा होकर जम जाता है । इस बेल में बहुत छोटे छोटे फल गुच्छों में लगते हैं जो पकने पर कासे हो जाते हैं । वैद्यक में छिरेटा मधुर, वीर्यवर्धक, श्लेष्माकारक तथा पित्त, बाह्य और विष को दूर करनेवाला माना जाता है ।

पर्या०—छिलहिट । पातालमण्ड । महामूल । बत्सावली । बिकाणा । मोचकाभिजा । ताकी । सोपरी । गारुडी । दीर्घ-कांडा । महाबला । दीर्घवल्ली । दकुलता ।

छिलकना^७—क्रि० प्र० [हि० छिड़कना] १. 'छिड़कना' ।

छिलका—संज्ञा पुं० [सं० शल्क (= चल्कल, छाल), बेसी छल्लो (= छाल)] फलों, कदों तथा इसी प्रकार की धीर वस्तुओं के ऊपर का कोश या बाहरी आवरण जो छीलने, काटने या तोड़ने से सहज में अलग हो सकता है । फलों की त्वचा या ऊपरी झिल्ली । एक परत की छोल जो फलों, बीजों आदि के ऊपर होती है । जैसे, सेब का छिलका, कटहल का छिलका गन्ने का छिलका, मूँदे का छिलका ।

विशेष—छाल, छिलका और भूसी में अंतर है । छाल पेड़ों के बड़, डाल और टहनियों के ऊपरी आवरण को कहते हैं, जो काटने, छीलने आदि से जल्दी अलग हो जाता है । भूसी महीन दानों के सुखे हुए आवरण को कहते हैं जो कटने से अलग होता है ।

छिलछिल—वि० [हि०] १. 'छिलछिला' । उ०—जहँ नहि नीर नैनीर तहाँ मस भँवरी परई । छिलछिल सखिल न परे परे तो छवि नहि करई ।—नंद० प्र०, पृ० १३ ।

छिलछिला^७—वि० [पेट०] हिलता चलता हुआ । जो जमा न हो । डीला । उ०—धोरन कौं द्रव्यो छिलछिलो लागत मैंने तो जोटाइ जमायो बचि बचि भरि के तभी ।—नंद० प्र०, पृ० ३६१ ।

खिलना—क्रि० प्र० [हि० खीलना] १. इस प्रकार कटना जिसमें ऊपरी सतह या बाहरण निकल जाय। खिलके या चमड़े का कटकर प्रलग होना। उबड़ना। २. रगड़ या घाघाव से ऊपरी चमड़े का कुछ भाग कटकर प्रलग हो जाना। खरोंच जाना। जैसे,—पैर में खरा सा खिल गया है। ३. गले के भीतर चुनचुनाहट या जुजुमी सी होना। जैसे,—सूरन से सारा गला खिल गया।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

खिलना—वि० [हि० खिलना या सं० खीण] कृश। दुर्बल। उ०—
खिनु खिनु बाढ़े खिबि, कैसे कहें कोउ कबि, तन के खिलर मालों
भए हैं कामरहित।—नंद बं०, पृ० ३७७।

खिलना—संज्ञा पु० [हि० खीलना] वह मनुष्य जो ईस के सेतों में ईस काबकर उसकी पतियों को खीलकर दूर करता है।

खिलवाना—क्रि० सं० [हि० 'खिलना' का प्रे० रूप] खीलने के लिये प्रेरित करना। खीलने का काम कराना जैसे, पास खिलवाना।

खिलहिट—संज्ञा पु० [सं० खिलहिण्ड] खिरहटा। खिरेटा।

खिलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खीलन] १. खीलने का काम। २. खीलने की मजदूरी।

खिलाना—क्रि० सं० [हि० खिलना] दे० 'खिलवाना'।

खिलाव—संज्ञा पु० [हि० खीलना] खीलने का भाव या क्रिया।
खिलाई।

खिलावट—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'खिलाव'।

खिलोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० खाला] छोटा खाल। आबला।

क्रि० प्र०—पड़ना।

खिल्लड़—संज्ञा पु० [हि० खिलका] खिलका। मूसी।

खिल्लर—वि० [सं० खल्लसति, प्रा० खल्लसति, पा० खल्लसति, अहल्लर] जो गिनती में सत्तर से छह अधिक हो। छह और सत्तर।

खिल्लर—संज्ञा स्त्री० १. छह और सत्तर की संख्या। २. उक्त संख्या को सूचित करनेवाला शंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७६।

खिलरना—क्रि० प्र० [हि० खिलरना] बिलरना। फैलना।
खिलराना। वि० दे० 'खहराना'।

खिलराना—क्रि० सं० [हि० खहराना] दे० 'खहराना'।

खिहाई—संज्ञा स्त्री० [हि० खिहाना] १. खिहाने का काम। २. चिता।
सरा। ३. मरघट।

खिहाना—क्रि० सं० [सं० खयन] [संज्ञा खिहानी] किसी वस्तु को सले ऊपर रखकर राखि या ढेर लगाना। गंजना। ढेर लगाना।

खिहानी—संज्ञा पु० [हि० खिहाना] शमशान। मशान। मरघट।

खिहारना—क्रि० सं० [सं० खरणु; खार] दे० 'खहराना'।

खीक—संज्ञा स्त्री० [सं० खिकका] नाक और मुँह से वेग के साथ सहसा निकलनेवाला वायु का झोंका या स्कोट।

विशेष—यह स्कोट नाक की फिस्ली में चुनचुनाहट होने से, या घाँस में तीक्ष्ण प्रकाश पड़ने के कारण तिलमिलाहट होने से होता है। इसमें कभी कभी नाक और मुँह से पानी या श्लेष्मा भी निकलता है। हिंदुओं में एक प्राचीन रीति है कि जब कोई खीकता है तब कहते हैं 'शतं जीव' या 'चिरं जीव'। यह प्रथा यूनानियों, रोमनों और यहूदियों में भी थी। अंगरेजों में भी जब कोई खीकता है, तब पुरानी परिपाटी के लोग कहते हैं कि 'ईश्वर कल्याण करे'। हिंदुओं में किसी कार्य के शारंभ में खीक होना अशुभ माना जाता है।

क्रि० प्र०—जाना।—होना।—मारना।—लेना।

मुहा०—खीक होना=बुरा लज्जुन होना।

खीकना—क्रि० प्र० [हि० खीक] नाक और मुँह से वेग के साथ वायु निकालना जिससे छब्ब होता है। उ०—जसुमति चली
रसोई भीतर तबहि खालि एक खीकी।—सूर०, १०। ५४०।

मुहा०—खीकते नाक काटना=थोड़ी थोड़ी बात पर बिड़ना या दंड देना। अत्याचार करना।

खीका—संज्ञा पु० [हि० खीका] दे० 'खीका'। उ०—कैसे कहति
मिगी खीके तें खाल कंध दे लात।—सूर०, १०। २६०।

खीट—संज्ञा स्त्री० [सं० खित, प्रा० खिता] १. पानी या और किसी द्रव पदार्थ की महीन बूँद। जलकण। सीकर। उ०—राखे
खिरकति खीट खीसी। कुछ कुंकुम कंबुकि बंद दूटे, लटक
रही लट गीली।—सूर (शब्द०)। २. पानी आदि की पड़ी हुई बूँद या कण का चिह्न जो किसी वस्तु पर पड़ जाय।
३. वह कपड़ा जिसपर रंग बिरंग के बेल बूटे रंगों से छापकर बनाए गए हों। उ०—संख्या चनमाला की सुंदर छोड़े रंग
बिरंगी खीट।—कामायनी, पृ० ३०

विशेष—प्राचीन काल में कपड़े पर रंग बिरंग के खीटे बालकर खीट बनाते थे।

यो०—मोमी खीट=एक प्रकार का खूब हुआ कपड़ा जो स्त्रियों के पहरावे के काम में आता है।

खीटना—क्रि० सं० [सं० खित, प्रा० खिता + हि० ना (प्रत्य०)] किसी वस्तु के कणों को इधर उधर गिराकर फैलाना। बिलराना।
खिलराना।

संयो० क्रि०—देना।

खीटा—संज्ञा पु० [सं० खित, प्रा० खिता, हि० खीटना] १. पानी (या और किसी द्रव पदार्थ) की महीन बूँद जो पानी को उछालने या जोर से फेंकने से इधर उधर पड़े। जलकण।
सीकर।

क्रि० प्र०—उड़ना।—पड़ना।

यो०—खीटा गोवा=तोप का गोवा, जिसके भीतर बहुत सी छोटी छोटी गोलियाँ या कील कटे आदि भरे होते हैं।

२. महीन महीन बूँदों की हलकी दृष्टि। ऊड़ी। जैसे,—मेंह का एक खीटा आया था। ३. किसी द्रव पदार्थ की पड़ी हुई बूँद का चिह्न। जैसे,—इन स्याही के खीटों को धोकर छुआ लो।
४. मक्क या चंद की एक मात्रा। दम। ५. अमृपुण्य उक्ति

जो किसी की मजबूत करके कही गई हो। इसका आशय।
छिपा हुआ ताना।

क्रि० प्र०—कसना।—छोड़ना।—देना।

यौ०—छोटाकसी।

१. किसी चीज पर पड़ा हुआ कोई छोटा दान। जैसे,—इस
मग पर कुछ छीटे हैं।

छोटाकसी—संज्ञा स्त्री० [हि० छोटा + कसना] आशय करने की
क्रिया। छिपा हुआ ताना देने की क्रिया।

छोटा—संज्ञा पुं० [सं० छिद्र, हि० छेद] छिद्र। छेद। सुरास।
उ०—हुकुम तुम्हार जहाँ जहाँ से कान कुबुद्धिहि कीन्ही
छीव।—सं० दरिया, पृ० ११८।

छोटा—संज्ञा स्त्री० [सं० शिम्बी, हि० छोमी] छोमी। कमी।

छो—अव्य० [सं० छिः] घृणासूचक शब्द। घिन प्रकट करने का
शब्द। घनावर या अवशिष्टशेषक शब्द। जैसे,—छो! तुम्हें
ऐसा करते लज्जा नहीं आती।

मुहा०—छो छो करना = घिनाना। घनावर, अवशिष्ट या घृणा
प्रगट करना। उ०—बेच भये बिच भावे न सूचन भोजन की
कछुही नहि ईछी। मीच के साचन सोंच सुचा, दबि हूष मो
मासन भाविहु छी! छी।—(शब्द०)।

छोटा—संज्ञा पुं० [अनु०] बड़ शब्द जो घाट पर कपड़ा जोते समय
बोवियों के मुँह से निकलता है। उ०—घाट पर ठाड़ी घाट
पारति बटोहिन की चेटकी सी डीठ मन काकी न हरति है।
लटक लटक 'छी' करति खुले भुजमुख मुकि मुकि स्वेद
कण फूल से भरति है।—देव (शब्द०)।

छोडला—संज्ञा पुं० [देश०] पलाश। डाक।

छोका—संज्ञा पुं० [सं० शिष्य, हि० सीका] १. गोल पात्र के आकार
का रस्सियों का बना हुआ जाल जो छत में इसलिये लटकाया
जाता है कि उसपर रखी हुई जाले पीने की चीजों (जैसे,
हूष, दही आदि) को कुत्ते, बिल्ली आदि न पा सकें। सीका।
सिकहर। उ०—मब कहि देव कहत किन यों कहि मागत
वही बरयो जो है छोके।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—छोका दटना = घनायास ऐसी घटना होना जिससे किसी
को कुछ लाभ हो जाय। जैसे,—बिल्ली के भाग से छोका दटा।
२. जालीदार सिक्की या झरोखा। ३. रस्सियों का जाल जो
काम लेते समय बेलों के मुँह में इसलिये पहनाया जाता है
जिससे वे कुछ काने के लिये इधर उधर मुँह न चला सकें।
जाबा। मुसका।

क्रि० प्र०—छोका।—सगाना।

४. रस्सियों का बना हुआ झूलनेवाला पुल। झूला। ५.
बाँस या पतली टहनियों को बुनकर बनाया हुआ टोकरा
जिसमें बड़े बड़े छेद छूटे रहते हैं। छिटनी। छँचिया।

छोछका—संज्ञा पुं० [सं० पुच्छ, प्रा० पुच्छ] १. मांस का पुच्छ
और निकम्मा टुकड़ा। मांस का बेकाम मज्जा। जैसे,—बिल्ली
को छोछे ही भाते हैं। २. पशुओं की घोंतड़ी का वह भाग
जिसमें मल मरा रहता है। मल की बेली।

छोछला—वि० [हि०] २० 'छिछला'।

छोछलेवर—संज्ञा स्त्री० [हि० छो छो] दुर्दशा। दुर्बल। सराबी।
कमीश्वर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

छोछी—संज्ञा स्त्री० [हि०] मल। गू। विष्ठा। छिया। उ०—घाँ
बन्नों को कमरों और माँगों के फर्श पर जहाँ तहाँ छोछी
करां देती थीं।—जनानी०, पृ० १४७।

छोज—संज्ञा स्त्री० [हि० छोजना] हास। घटाव। घाटा। कमी।
उ०—रातहि दिवस रहे सब भीजा। लाभ न देखत देखी
छीजा।—जायसी (शब्द०)।

छोजन—संज्ञा स्त्री० [हि० छोजना] २० 'छीज'।

छोजना—क्रि० प्र० [सं० क्षयण या क्षीण] क्षीण होना। घटना।
कम होना। हास होना। घबनत होना। उ०—(क) छोछहि
निशिचर दिन भी राती। निज मुख कहे सुकृत जेहि भाती।
—तुलसी (शब्द०) (ख) बहर भकोर उड़हि जल भीजा।
तौहि रूप रंग नहि छोजा।—जायसी (शब्द०)। (घ)
सखि! जा दिन तें परदेस गए पिय ता दिन ते तन छोषत
है।—सुंदरीसर्वस्व (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

छोट—संज्ञा स्त्री० [हि०] २० 'छीट'।

छोटना—क्रि० प्र० [हि०] २० 'छीटना'।

छोटा—संज्ञा पुं० [सं० शिष्य, हि० छोका] [स्त्री० छोटनी]
१. बाँस की कर्मचियों या पतली टहनियों को परस्पर जाल
की तरह बुनकर बनाया हुआ टोकरा। जाँचा।

यौ०—छोटा गोला = डोल या पीपे के आकार का बना हुआ
टोकरा।

२. बिलमन।

छोटा—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षीण] आदमियों की कमी। मीढ़ का
अभाव।

छोटा—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षिति] २० 'छिति'। उ०—तब नहि
छोत न सेस गहेसू।—२० सागर, पृ० १३।

छोतना—क्रि० प्र० [सं० छिद + हि० ना (प्रत्यय०)] १. बिच्छू, जिर
आदि का डंक मारना। २. मारना। कटना।

छोतस्वामी—संज्ञा पुं० [हि०] अष्टछाप के एक वैष्णव भक्त। ये
बल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। इनके कृष्ण संबंधी रचे पद्य
इनके संप्रदाय के लोग अवसक्त गाते हैं।

छोटा—संज्ञा पुं० [देश०] बड़ के भायके या ससुराल जाने की
साहत।

छोटा—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षति] १. हानि। घाटा। २. बुराई।
उ०—तेरी तन धन रूप महागुन सुंदर श्याम सुनो यह कीति।
सु करि सूर जिहि भाति रहे पति, जनि बल बाँधि बढ़ावहु
छोति।—सूर०, १०। २७७५।

छोटीछान—वि० [सं० क्षति + छिन्न या छन्न] छिन्न भिन्न। तितर
बितर। उ०—बहु सब सेना असुरों की छोटीछान हो वहीं
की वहीं बिसाय गई।—सत्सू (शब्द०)।

छोटा—वि० [सं० छिद्र] १. जिसमें बहुत से छेद हों। जिसके तंतु
दूर दूर पर हों। जिसकी बुनावट घनी न हो। झोकरा।

खिरा २. जो दूर दूर पर हो। जो घना न हो। खिरल।
उ०—ताम कई समयद घूँघरी। माँहिनी माँहिनी छोवा
होइ।—वी० राखी, पृ० ५।

छीन^१—वि० [सं० क्षीण] १. दुबला। पतला। कम। २. क्षिप्त।
मंद। मलिन। उ०—पूँछ की तबि असुर घोरि के मुख गह्यो
सुरन तब पूँछ की घोर लोन्ही। मयत गए छीन, तब बहुरि
बिगती करी श्री महाराज निज सक्ति बीनी।—सूर०, ८। ८।

छीन^२—संज्ञा पु० [सं० क्षण, हि० क्षिन] क्षण। क्षण भर का
समय। उ०—पलटू बरस भी मास दिन पहर घड़ी पल छीन।
ज्यों ज्यों सूखे ताल है त्यों त्यों मीन मलीन।—पलटू०,
पृ० २५।

छीनचंद्र—संज्ञा पु० [सं० क्षीणचन्द्र] द्वितीया का चंद्रमा।

छीनवा—संज्ञा बी० [हि०] दे० 'क्षीणता'।

छीनना—क्रि० स० [सं० क्षिप्त + हि० ना (प्रत्य०)] १. क्षिप्त
करना। काटकर भक्षण करना। उ०—धीर हूँ मैं न्यायो
कीनी चक चक सीस छीनी, देवकी के प्यारे लाल एँचि लाए
बल में।—सूर०, ८। ५। २. किसी दूसरे की वस्तु जबरदस्ती
से लेना। किसी वस्तु के दूसरे के अधिकार से बलात् अपने
अधिकार में कर लेना। हुरण करना। उ०—काक कंक लै
भुजा उड़ाहीं। एक से एक छीनि लै जाहीं।—मानस,
१। ८७।

छीन^३—छीनाखसोटी। छीना भपटी। छीनाछोनी।

१. अनुचित रूप से अधिकार करना। उ०—बलि जब बहु जल
किए इह सुनि सकायो। छल करि लइ छीनि मही, बामन है
बायो।—सूर०, ८। ११८। ४. सिल, चक्की आदि को
छेनी से छुरदुरा करना। कूटना। रेटना। ५. छेनी से पत्थर
आदि काटना या बराबर करना। ६. दे० 'छेना'।

छीना^१—क्रि० स० [सं० छुप (= छुना) या सं० स्पृश, प्रा० छिब
(= छुना)] छुना। स्पर्श करना। उ०—(क) बालि बचन
सुनि कहति जसोमति जसे सुनि पर बाहर छोबो।—गुलसी
(शब्द०)। (ख) हरि राधिका मानसरोवर के तट ठाढ़े री
हाथ सो हाथ छिए।—केशव (शब्द०)।

छीना^२—संज्ञा पु० [सं० छिन्न] १. घड़े के नीचे का कपाल या मोल
भाग जो फोड़कर भक्षण कर दिया गया हो। २. मिट्टी का
बहु सींचा जिसपर कुम्हार घड़े, कुंड़े आदि की पेंदी या कपाल
को रखकर बापी से पीटते हैं।

छीनाखसोटी—संज्ञा बी० [हि० छीनवा + खसोटना] दे० 'छीना
भपटी'।

छीनाछोनी—संज्ञा बी० [हि० छीनना की द्विरक्ति] दे० 'छीना-
भपटी'।

छीनाभपटी—संज्ञा बी० [हि० छीनना + भपटना] जबरदस्ती
या भाड़ भपट के साथ किसी वस्तु को ले लेने की क्रिया।

छीन्ह—संज्ञा पु० [सं० क्षीण, हि० क्षीन] दे० 'क्षीण'। उ०—छिप्यो
—छपाकर छित्त छोरनिधि छगुन छंद छल छीन्हो।—श्यामा०,
पृ० १२०।

छीप^१—वि० [सं० क्षिप्र] तेज। वेगवान्। उ०—सात छीप रुप
दीव छीप गति बहुत समर सरि।—गोपाल (शब्द०)।

छीप^२—संज्ञा बी० [सं० क्षुक्ति, हि० सीप] दे० 'सीप'। उ०—(क) सब
तरवर चंदन नहीं सब कदली न कपूर। सब छीपन मुकता
नहीं, सब बल नाहिन सूर।—रस र०, पृ० २२३। (ख)
छीप रूपहि करी परकासा। स्वाति रूप इच्छा नीबासा।
—कबीर सा०, पृ० ८६३।

छीप^३—संज्ञा बी० [हि० छाप] १. छाप। चिह्न। दाग। २. वह
दाग या चन्ना जो छोटी छोटी बिंदियों के रूप में शरीर पर
पड़ जाता है। सेहूमाँ। एक प्रकार का चर्म रोग।

छीपा^१—संज्ञा पु० [सं० क्षप, या क्षय] माक्रमण। नाश। विनाश।
उ०—छीप करे दल दुज्जणों जीप सड़ो रण जंग।—रा०
क०, पृ० २३२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

छीप^२—संज्ञा बी० [देश०] वह छड़ी जिसमें डोरी बाँधकर मछली
फँसने की कंटिया लगाई जाती है। डपन। बंसी। २. एक
पेड़ का नाम जिसके फल की तरकारी होती है। इसे लीप
धीर लीप भी कहते हैं।

छीपका^१—वि० [हि० छाप] छपी हुई। छोटदार। उ०—बरी तीर
सब छीपक सारी। सरवर मेंहु पैठी सब बारी।—जायसी
श्र० (गुप्त), पृ० १६०।

छीपना^१—क्रि० स० [सं० क्षिप] कंटिया में मछली फँसने पर उसे
बंसी के द्वारा खींचकर बहर फेंकना।

छीपना^२—क्रि० स० [सं० स्पृश, प्रा० छिबण] दे० 'छुना'।
उ०—देदास तू कावंच फली तुझे न छोपे कोइ।—दे०
बानी, पृ० १।

छीपा^१—संज्ञा पु० [सं० क्षेप] १. तंग मुँह का मिट्टी का एक बरतन
जिसमें बहोर दूध दुहकर डालते जाते हैं। २. दे० 'छीपी'।
उ०—बनिया मोदी सगरे बाये, छीपा सेठ चौबरी बाये।—
कबीर सा०, पृ० ४५७।

छीपिधरा^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'छीपी'। उ०—ए भेना,
कौहर के छीपिधरा बुलाऊँ कौहर बैठि रंगाइए।—पोद्दार
अभि० श्र०, पृ० ११४।

छीपी^१—संज्ञा पु० [हि० छोप] [बी० छोपिन] वह व्यक्ति जो
कपड़े पर बेलबूटे छापता हो। छोट छापनेवाला। रंगरेज।

छोपी^२—संज्ञा बी० [देश०] १. वह लंबी छड़ी जिससे लोग कबूतर
आदि उड़ाते हैं। इसके सिरे पर कपड़ा बंधा रहता है। २.
घातु आदि की छोटी तलतरी।

छोबर—संज्ञा बी० [देश०, हि० छापना] मोटी छोट। वह कपड़ा
जिसपर बेल बूटे छपे हों। उ०—हा हा हमारी सो साँची
कहो वह को हुती छोहरी छोबर बारी।—(शब्द०)।

छोमर^१—संज्ञा बी० [देश० या हि० छोप (= बंद)] दे० 'छोबर'।
उ०—ढीमर वह छोमर पहिरि लूमर मदन धरेर। चितहि
चुरावत चाहि के वेचत बेर सुरेर।—स० सप्तक, पृ० ३८१।

छोमी—संज्ञा बी० [सं० शिम्बी] १. फली। जैसे, मटर की छोमी।

उ०—मछली पेटियों सी बटकीं क्षीमियां, क्षिपाए बीब लड़ी।—ग्राम्या, पु० १३। २. बाब मेंस भाबि के स्तन के बूबुक जो फली की तरह होते हैं। ३. स्तनों का बूबुक। स्तनाघ। कुषाग्र।—(पशिष्ट)।

क्षीर'—संज्ञा पु० [सं० क्षीर, प्रा० क्षीर]। उ०—(क) माता प्रसूत क्षीर बिन सुत नरे, अथा कंठ कुच सेई।—सूर०, १। २००। (ख) क्षीर बंही भूतल नदी त्रिविध बसे पवमान।—प० रासो, पु० १३।

क्षीर'—संज्ञा बी० [सं० क्षिरा, प्रा० क्षिरा, हि० क्षोर] १. कपड़े भाबि का वह किनारा जहाँ लंबाई समाप्त हो। क्षोर।

मुहा०—क्षीर बालना=बोटी भादि में किनारे का तागा निकालकर झालर बनाना।

२. वह चिह्न जो कपड़े पर डाला जाय। ३. कपड़े के फटने का चिह्न।

क्रि० प्र०—पड़ना।

क्षीरज^५—संज्ञा पु० [सं० क्षीरज] दधि। बही।

क्षीरधि^५—संज्ञा पु० [सं० क्षीरधि] क्षीरसागर। दूध का समुद्र। उ०—जय रही 'मलिराम' कहे छिति क्षोरनि क्षीरधि की अधि छाबै।—मत्ति० प्र०, पु० ४११।

क्षीरनिधि^५—संज्ञा पु० [सं० क्षीरनिधि] क्षीरसागर। दूध का समुद्र। उ०—जब वृजासुर के भय सों सुर सब भागे, तब क्षीरनिधि के निकट जाइके यह कहत अए।—पोद्दार अभि० प्र०, पु० ४६२।

क्षीरप^५—संज्ञा पु० [सं० क्षीरप] दुधमुही बालक। दूधपीता बच्चा।

क्षीरफेन^५—संज्ञा पु० [सं० क्षीरफेन] दूध की मलाई। उ०—बिबिध बसन उपधान तुराई। क्षीरफेन मृदु बिसव सुहाई।—मानस, १११।

क्षीरसागर^५—संज्ञा पु० [सं० क्षीरसागर] १० 'क्षीरसागर'।

क्षीरसिंधु^५—संज्ञा पु० [सं० क्षीर+सिन्धु] क्षीरसागर। दूध का समुद्र। उ०—क्षीरसिंधु गवने मुनिनाथा।—मानस, १। १२८।

क्षीलक^५—संज्ञा पु० [हि० क्षिलका] १० 'क्षिलका'। उ०—दीन हुतो बिलसात फिरै नित इंदिर के बस क्षीलक छोले।—सुंदर० प्र०, भा० १, पु० ५८७।

क्षीलना—क्रि० प्र० [हि० क्षाल] १. किसी वस्तु का क्षिलका या क्षाल उतारना। लगी हुई क्षाल या ऊपरी आवरण को काट कर अलग करना। ऊपरी सतह की कुछ मोटाई काटकर अलग करना। जैसे, सेव क्षीलना, गन्ना क्षीलना, लकड़ी क्षीलना, पेंसिल क्षीलना। २. ऊपर लगी हुई या जमी हुई वस्तु को सुरक्षित अलग करना। जैसे, बाकू से हरफ क्षीलना, पास क्षीलना। ३. सुरोचना। सरौटना। ४. गले के भीतर चुनचुनाहट या जुबली सी उत्पन्न करना। जैसे,—सूरज ने गला क्षील डाला।

क्षीलर—संज्ञा पु० [प्रा० क्षिलर, हि० क्षिलरा अववा सं० क्षील] १.

एक छोटा बड़ा जो कुर्छ पर इसलिये बना रहता है कि मोठ का पानी उसमें डाला जाय। क्षिलरा। क्षिलारी। २. छोटा क्षिलका गड़ड़ा। तलैया। उ०—(क) कबिरा राम रिझाव ले बिहारा सो करि मित। हरि सागर जनि बीसरे क्षीलर देखि अनित।—कबीर (शब्द०)। (ख) अब न सुहात विषय रस क्षीलर वा समुद्र की पास।—सूर (शब्द०)।

क्षीलरी^५—संज्ञा बी० [प्रा० क्षिलर] १० 'क्षीलर'। उ०—बाहु हंस मोती पुणै, मानसरोवर बाह। बगुला क्षीलरी बापुड़ा, पुणि पुणि मछली लाह।—बाहु०, पु० १२१।

क्षीव^५—संज्ञा पु० [सं० क्षीव] १० 'क्षीव'।

क्षीवना^५—क्रि० प्र० [सं० क्षीयन, प्रा० क्षवण, क्षिवण] १० 'क्षीवना'। उ०—प्रधिराज विष्ट भावें नहीं चिकट कुंभ ज्याँ जल अमिद। लगी न नीर पवह कमल। मिद न मति क्षीवे उछिद।—पु० रा०, २४। ४८४।

क्षुद्रां—वि० [सं० क्षुद्र] १० 'क्षुद्र'। उ०—वे जो क्षुद्र जमाज्यों के बने बचाए यत्किंचित् रोष जल।—प्रेमचन०, भा० २, पु० ६।

क्षुंगली^५—संज्ञा बी० [हि० खँगुली] एक प्रकार की खँगूठी जिसमें बूँद लगे होते हैं। यह छोटी उँगली में पहनी जाती है।

क्षुभानां—क्रि० प्र० [सं० क्षुभ, प्रा० क्षिब, क्षुब] १. स्पर्श करना। छूना। २. छूना करना। सफेदी करना।

क्षुभाई—संज्ञा बी० [हि० क्षुना] छूने, स्पर्श करने का भाव।

क्षुभाक्षुत—संज्ञा बी० [हि० क्षुना] १. यक्षुत को छूने की क्रिया। अस्पृश्य स्पर्श। अशुचि संसर्ग। जैसे,—यहाँ क्षुभाक्षुत मत करो। २. स्पृश्य अस्पृश्य का विचार। छूत का विचार। जैसे,—वहाँ क्षुभाक्षुत का बसेड़ा नहीं है।

क्षुभाना—क्रि० प्र० [हि० क्षुलाना] १. १० 'क्षुलाना'। २. १० 'क्षुलाना'।

क्षुई मुई—संज्ञा बी० [हि० क्षुना+मुवना] एक छोटा कंटीला पीचा जिसकी पत्तियाँ बबूल की सी होती हैं। इसमें यह विशेषता है कि जहाँ पत्तियों को किसी ने छूया कि वे बंद हो जाती हैं और उनके सीके लटक जाते हैं। लज्जावती। लज्जाधुर। लज्जारी। वि० १० 'लज्जावती'। २. अत्यंत कमजोर कोई चीज। ३. लज्जाधुर की तरह स्वभाव-वाला व्यक्ति। नाजुकमिजाज।

मुहा०—क्षुई मुई बनना=संकुचित होना। कायल होता। मीन हो जाना। उ०—सब बातों में जोख तुम्हारी रट सी लगी हुई है। किंतु स्पर्श से तर्क करो के बनता क्षुई मुई है।—कामायनी, पु० १११।

क्षुगुन^५—संज्ञा पु० [अनु० क्षुनक्षुन] बुद्धि। उ०—कटि करधन क्षुगुन छत्रत श्यामल बदन सुहाय। मनहु नीलमणि मंदिर बसेउ बासुकी आय।—शृंग० सत० (शब्द०)।

क्षुगार^५—संज्ञा पु० [सं० क्षुगदण्ड] छाता। छत्र। उ०—पान सु पात तुम्हें गर बलिहय। महु कहे कर क्षुगार झलिये।—पु० रा०, ६१। ८१८।

छुछा—वि० [सं० छुछ, प्रा० छुछ] १. बोहा। स्वल्प। कम।
उ०—राम किसम किसी सरस कहत लगे बहु बार। छुछ
भाव कवि बंध की सिर बहुमाना भार।—पृ० रा०, २।
५८५। २. दे० 'छूछा'। उ०—गरजे छुछ होर सुख मारा।
—कबीर सा०, पृ० १५८७।

छुछा—वि० [हि०] [वि० जी० छुछो] दे० 'छूछा'।
छुछी—संज्ञा जी० [हि० छूछा] १. पतली पोली छोटी नली।
२. नरकट की चार पाँच घंगुल संबी नली जिसमें जोलाहे तागा
लपेटकर उसे ठरकी में लगाकर बुनते हैं। नरी। ३. नाक में
पहनने का एक गहना। नाक की कील। लींग।

जियोच—यह लींग की तरह का होता है, पर इसमें फूल की जगह
चारों ओर उमड़े हुए रवे अथवा बंदक रहती है जिसपर नग
बड़े जाते हैं। इसके बीच में एक छेद भी होता है जिसमें नख
ढालकर पहनी जाती है।

४. एक पतली नली जो एक तिकोनीय पर लगी होती है और
जिसमें बत्ती लगाकर गिलास में जलाई जाती है। ५. वह
पतली नली जिसका एक छोर गिलास की तरह चौड़ा होता
है और जिसे लगाकर एक बरतन से दूसरे बरतन में तेल
आदि ढालते हैं। कीप।

छुछं—वि० [सं० स्वच्छन्, हि० सुखर] स्वच्छंद। स्वतंत्र।
मुक्त। उ०—जे बाँध्या ते छुछं मुक्ता बाँधनहार बाँध्या।—
कबीर प्र०, पृ० १४६।

छुछा—वि० [सं० तुच्छ, प्रा० छुछ] १. वह जो रिक्त हो। दे०
२. स्वल्प। तुच्छ। छूछा।

छुछकारना—क्रि० स० [अनु०] १. कुत्ते को शिकार आदि के
पीछे लगाना। ललकारना। २. झिड़कना। डाँट फटकार
बताना।

छुछमछली—वि०, संज्ञा जी० [हि० छुछमछली] दे० 'छुछमछली'।

छुछमछली—संज्ञा जी० [सं० सूक्ष्म, पु० हि० सूक्ष्म + मछली अथवा
सं० तुच्छ, प्रा० छुछ + हि० मछली] मेढक के बच्चे का एक प्रारं-
भिक रूप जो लंबी पूँछवाले कीड़े या मछली के बच्चे का सा
होता है। इसके उपरांत कई रूपांतर होने पर तब यह अपने
असली अतुल्य रूप में आता है।

छुछमछली—वि० अस्थिर। चंचल।

छुछहँ—संज्ञा जी० [हि० छूछी + हंडी] छूछी हाँडी।

मुहा०—छुछहँ बिसाया = (१) माँगते पर किसी वस्तु को देने से
इनकार करना या उसका अभाव बतलाना। (२) छुछहँ
मिलना = यात्रा के समय खाली घड़ा सामने दिखाई पड़ना।
अपशकुन होना।

छुछंदर—संज्ञा पु० [सं० छुछंदर] [जी० छुछंदरी] छूछंदर।

छुछाना—क्रि० प्र० [अनु० छुछ] छूछंदर की तरह छू छू करते
फिरना। व्यर्थ इधर उधर घूमते फिरना।

छुछुछुछा—संज्ञा जी० [हि०] हठयोगियों के अनुसार वह सिद्धि
जिसे प्राप्त कर लेने पर अनुप्य हलका या सूक्ष्म हो जाता है।

लविमा नाम की सिद्धि। उ०—छुछुमुक्ता सिद्धि ताकी अक्षिण,
मन माने वहाँ सरीर छाड़े।—गोरख०, पृ० २४८।

छुट—क्रि० प्र० [हि० छूटना] छोड़कर। सिवाय। अतिरिक्त।
उ०—जब ते जन्म पाय जीव है कहायो। तब ते छुट अवगुण
इक नाम न कहि आयो।—सूर (शब्द०)।

छुट—वि० [हि० छोटा] हिबी छोटा का समासगत रूप। जैसे,
छुटपन, छुटमेया।

छुटका, **छुटका**—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'छुटकारा'। उ०—काम
कोष ग्रह लोभ यह त्रिगुन बसे मन माँहि। सत्य नाम पाए
बिना जम ते छुटको नाहि।—कबीर सा०, पृ० ४५६।

छुटका—वि० [हि०] [वि० जी० छुटकी] दे० 'छोटा'।

छुटकाना—क्रि० स० [हि० छटना] [संज्ञा छुटकारा] १.
छोड़ना। अलग करना। पकड़े न रहना। उ०—किलकि
किलकि नाचत छुटकी मुनि डरपति जननि पानि छुटकाए।—
तुलसी (शब्द०)। २. छोड़ना। साथ न लेना। उ०—माधव
जु गज ग्राह ते छुड़ायो। चितवत चित ही में बितामणि अक
लए कर धायो। आते कछुआ कारि कछुआमय हरि गच्छहि
हैं छुटकायो।—सूर (शब्द०)। ३. छुड़ाना। मुक्त करना।
छुटकारा देना। उ०—(क) लागि पुकार सुरत छुटकायो
काटयो बचन बाकी।—सूर (शब्द०)। (ख) हों बसि के बन
मुपति को मुनु, कैकयि के ऋण ते छुटकाऊँ।—हनुमान
(शब्द०)। ४. खोलना। फैलाना। ढालना। उ०—हार
भरोखनि जवनिका खि लै छुटकाऊँ।—बनारस, पृ० ३१३।

छुटकारा—संज्ञा पु० [हि० छुटकाना या छूट] १. किसी बंधन
आदि से छूटने का भाव या क्रिया। मुक्ति। रिहाई। २.
किसी बाधा, आपत्ति या चिंता आदि से रक्षा। निस्तार।
जैसे, ऋण से छुटकारा, विपत्ति से छुटकारा।

क्रि० प्र०—करना।—पाना।—मिलना।—होना।

३. किसी काम से छुटो। किसी कार्यभार से मुक्ति।

क्रि० प्र०—देना।—होना।

छुटना—क्रि० प्र० [हि० छूटना] दे० 'छूटना'।

छुटना—वि० [हि०] छोटा। लघु उ०—देखत कौं तो छुटनी
बाल। ऐपरि आहि काल की काल—तंद० प्र०, पृ०
२३८।

छुटपना—संज्ञा पु० [हि० छोटा + पन (प्रत्य०)] १. छोटाई।
लघुता। २. बचपन। लड़कपन।

छुटमेया—संज्ञा पु० [हि० छोटा + मेया] साधारण हैसियत का
आदमी। छोटे दरजे का या निम्नवर्गीय व्यक्ति।

छुटवाना—क्रि० स० [हि० छोड़ना] दे० 'छोड़वाना'।

छुटाई—संज्ञा जी० [हि० छोटा] दे० 'छोटाई'।

यौ०—छुटाई बड़ाई।

छुटाना—क्रि० स० [सं० छुट (= काटकर अलग करना)] छुड़ाना।

उ०—(क) तब गज हरि की शरण आयो न सुरवास प्रभु
ताहि छुटायो।—सूर (शब्द०)। (ख) छुटे छुटावे बचस

तें सटकारे सुकुमार । मन बाँधत बेनी बने नील छुटौते बार ।
—बिहारी (शब्द०) ।

छुटाना^१—क्रि० प्र० गाय या भैंस का दूध देना या बंद कर देना ।

छुटानी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० छुटना] दे० 'छूट' । उ०—सत गुह
मिलै तो होय छुटानो ।—कबीर सा०, पृ० १५८२ ।

छुटारा^३—संज्ञा पु० [हि० छूट] दे० 'छुटकारा' । उ०—पंमराज
ते अए छुटारा । निर्भय हंसा लोक सिधारा ।—कबीर सा०,
पृ० ४५३ ।

छुटैया—संज्ञा स्त्री० [हि० छूट] भाँड़ों और स्थांग करनेवालों के
घुटकुले ।

छुटौती—संज्ञा स्त्री० [हि० छूट] १. वह सूख या लगन जो छोड़ दिया
जाय । छड़ुआ । २. छोड़ने या छुड़ाने के कार्य के एतद में
दिया गया धन ।

छुटा—वि० [हि० छूटना] [वि० स्त्री० छुटी] १. जो बँधा न हो ।

यौ०—छुटा पान = बिना लगा हुआ पान । पान का पत्ता । छुटा
सड़ि = (१) निर्बंध बैल । (२) बधनविहीन व्यक्ति । बिना
जोरु जाँटा का भादमी ।

(२) एकाएकी एकाकी । अकेला । (३) जिसके साथ कुछ
माल प्रसबाव न हो ।

मुहा०—छुटा छरिदा = एकाकी । अकेला । जिसके साथ यात्रा
में माल प्रसबाव या साथी न हो । छुटे हाथ = खाली हाथ ।
हाथ में बिना छड़ी या हथियार आदि लिए ।

छुटी—संज्ञा स्त्री० [हि० छूट] १. छुटकारा । मुक्ति । रिहाई ।
जैसे,—बिना लगान दिए छुटी नहीं है ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।—होना ।

मुहा०—छुटी पाना = संकट से बचना । पीछा छुड़ाना ।
जवाबदेही या जिम्मेदारी से प्रलग होना । जैसे,—तुम तो यह
कहकर छुटी पा जाओगे, तंग होंगे हम । छुटी होना = संकट
दूर होना । काम निबटना या समाप्त होना ।

२. वह समय जिसमें कोई कार्य न हो । काम से खाली वक्त
या समय । अवकाश । फुरसत । जैसे,—(क) भाजकल मेरे
सिर इतना काम है कि खाने पीने तक की छुटी नहीं । (ख)
उसने तीन बहीने की छुटी ली है ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।—लेना ।

मुहा०—छुटी पर जीना या होना = नियत कार्य से अवकाश
ग्रहण करना ।

३. वह दिन जिसमें नियत कार्य बंद रहे । कार्यालय या स्कूल
के बंद रहने का दिन । सातील । जैसे,—आज स्कूल में
छुटी है ।

मुहा०—छुटी मनाना = अवकाश का दिन आनंद से बिताना ।
छुटी लेना = कार्य से अवकाश लेना ।

४. काम से छुड़ाए जाने की क्रिया । मोड़की । ५. प्रस्थान करने
की अनुमति । जाने की आज्ञा । जैसे,—प्रब छुटी दीजिए,
बहुत देर हो रही है । ६. भाँड़ों का घुटकुला ।

छुड़वाना—क्रि० प्र० [हि० छोड़ना का प्रे० रूप] छोड़ने का काम
कराना । छोड़ने के लिये प्रेरित या उद्यत करना । जैसे,—
बढ़ेलिए से नीलकंठ छुड़वाना ।

छुड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि० छुड़ाना] १. छोड़ने की क्रिया ।

यौ०—छोड़ छोड़ाई = माफी ।

२. वह धन जो किसी व्यक्ति या वस्तु के छोड़ने के बदले में
दिया या लिया जाय । जैसे,—पशुपति की छुड़ाई, नीलकंठ
की छुड़ाई । ३. बड़े कनकोए को दूर ले जाकर ऊपर उछालना
जिससे कि पतंग ऊपर उड़ जाय । छुड़ैया ।—(पतंग) ।

क्रि० प्र०—करना । देना ।

छुड़ाना^१—क्रि० प्र० [हि० छोड़ना] १. किसी वस्तु को ऐसा करना
जिसमें वह छूट जाय । दूसरे की पकड़ से प्रलग करना ।
बँधी, फँसी उलझी या लगी हुई वस्तु को पुष्ट करने । जैसे,
वह हाथ छुड़ाकर भागा; लड़के का पैर चारपाई में फँस गया
है, छुड़ा दो; गठि छुड़ाना आदि । उ०—बाँह छुड़ाए जात ही
निबल जानि के मोहि । हिरदय में से जाइयो मरद बहूना
तोहि ।—(शब्द०) । २. दूसरे के अधिकार से प्रलग करना ।
जैसे, रेहन रखा हुआ खेत छुड़ाना, माल छुड़ाना, बिस्ती
छुड़ाना आदि ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

३. किसी वस्तु पर पुती हुई वस्तु को दूर करना । जैसे,—रंग
छुड़ाना । दाग छुड़ाना, मैल छुड़ाना ।

संयो० क्रि०—खालना ।—देना ।—लेना ।

४. कार्य से प्रलग करना । नौकरी से हटाना । बरखास्त
करना । जैसे,—उसने उस पुराने नौकर को छुड़ा दिया ।

संयो० क्रि०—देना ।

५. किसी नियमित क्रिया का त्याग कराना । किसी प्रवृत्ति को
दूर कराना । जैसे, अभ्यास छुड़ाना, मुक्त कराना । जैसे,—
हम उसका माना जाना छुड़ा देंगे ।

छुड़ाना^२—क्रि० प्र० [हि० छोड़ना का प्रे० रूप] छोड़ने का काम
कराना । दे० 'छुड़वाना' ।

छुड़ैया^३—वि० [हि० छुड़ाना+ऐया (प्रत्य०)] छुड़ानेवाला ।
बचानेवाला । रक्षक ।

छुड़ैया^४—संज्ञा [हि० छोड़ना+ऐया (प्रत्य०)] किसी की गुद्दी
या पतंग को उड़ाने के लिये कुछ दूर पर जाकर, दोनों हाथों
से पकड़कर ऊपर आकाश की ओर छोड़ना या हवा
में उड़ाना ।

क्रि० प्र०—देना ।

विशेष—जिस समय हवा कम होती है और गुद्दी या पतंग
आदि के उड़ने में कुछ कठिनाता होती है, उस समय एक
दूसरा आदमी पतंग या गुद्दी की पकड़कर कुछ दूर ले जाता
है; और तब वहाँ से उसे ऊपर की ओर छोड़ता या उड़ता
है; जिससे वह सहज में और जल्दी उड़ने लगती है ।

छुड़ौती^५—संज्ञा स्त्री० [हि० छुड़ाना] १. देनदार या प्रसामी के
पावना छोड़ देने की क्रिया । २. वह रूपया जो प्रसामी या

देनदार से दयावश या धीर किसी कारण से न लिया जाय, सब दिन के लिये छोड़ दिया जाय। छुट। २. वह जब जो किसी को बंधन मुक्त करने के लिये दिया जाय।

छुट^५—संज्ञा स्त्री [सं० छुट] छुटा। छुल।

छुटहा^५—वि० [हि० छुट] १. 'छुतिहा'।

यौ०—छुटहा अस्पताल = वह चिकित्सालय जहाँ छुट से उत्पन्न और फैलनेवाले रोगों का इलाज होता है।

छुसिया^५—वि० [हि० छुट + दया (प्रत्य०)] १. २. 'छुतिहा'। २. स्पर्श से रहित। उ०—यह बिधि पिब बहान समाना। ताको तुम छुतिहा कर जाना।—चट०, पृ० २५६।

छुसिहरा^५—संज्ञा पुं [हि० छुन + हरी] १. वह बड़ा या बरतन जो किसी धातु के वस्तु के संसर्ग से धुल्ल हो गया हो और जिसमें जाने पीने की वस्तु न रखी जाती हो। २. कुपाय। निरक्षर। तिरस्कार्य व्यक्ति। नीच आदमी।

छुसिहा^५—वि० [हि० छुट + हा (प्रत्य०)] १. छुसवासा। जिसमें छुट लगी हो। जो छुने योग्य न हो। अस्पृश्य। २. कलंकित। धुषित। पतित। निकृष्ट।

छुसिहा^५—संज्ञा पुं वह मयक जो नोली मिट्टी से निकाला जाता है। कोरे का नमक।

छुतेरिन—संज्ञा स्त्री [हि० छुतिहर] अस्पृश्य। छुटवाली। छोटी जाति की स्त्री। उ०—यह किन छुतेरिनों को साथ लाई है आप ?—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३।

छुसित^५—वि० [सं० छुसित, प्रा० छुसित] १. 'छुसित'। उ०—वेद जिस छुसित तृपित राजा बाजि समेत। खोजत भ्याकुल सरित सर जब बिनु भएउ अचेत।—मानस, १। १५७।

छुद्र^५—वि० [सं० छुद्र] २. 'छुद्र'। उ०—छुद्र पतित तुम तारि रमापति जब न करी जिय गारी।—सूर०, १। १३१।

छुद्रचंटि^५—संज्ञा स्त्री [सं० छुद्र + चण्डिका] २. 'छुद्रचण्डिका'। उ०—छुद्रचण्डि मोहहि नर राजा। ईश भवार माह जनु साजा।—जायसी चं० (ग्रन्थ), पृ० १६७।

छुद्रचण्डिका^५—संज्ञा स्त्री [सं० छुद्रचण्डिका] २. 'छुद्रचण्डिका'। उ०—छुद्रचण्डिका पायल बाज रतन बजाई। रिनु बसंत की आनी मोतिन मांग भराई।—पलटू०, भा० ३, पृ० ८८।

छुद्रा^५—संज्ञा स्त्री [सं० छुद्रा] २. 'छुद्रा'।—अनेकाचं०, पृ० १३०।

छुद्राबलि^५—संज्ञा स्त्री [हि०] २. 'छुद्रचण्डिका'। उ०—कटि छुद्राबलि भजन पूरा। पायन्ह पहिरे पागल बुरा।—जायसी (शब्द०)।

छुद्राबली^५—संज्ञा स्त्री [हि०] २. 'छुद्रचण्डिका'।

छुष^५—संज्ञा स्त्री [सं० छुषा, प्रा० छुष] छुल। दुमुका। उ०—निद्रा पिपास छुष मोह तजि, दुष्ण सुष्ण इव न गनै।—पृ० रा०, १२। ५६।

छुषा^५—संज्ञा स्त्री [सं० छुषा] [वि० छुषित] छुषा। छुल। उ०—वेद छुषा तँ मुल कुम्हिलानी अति कोमल तन स्याम।—सूर०, १०। ३६१।

छुषित^५—वि० [सं० छुषित] छुल। उ०—वेद छुषित हलधर संग रंग कच नैन निरखि सुख पाऊँ। छिन छिन छुषित जानि पय कारन हँसि हँसि निकट बुलाऊँ।—सूर०, १०। ७५।

छुनछुनाना—कि० प्र० [प्रनु०] 'छुन छुन' शब्द करवा। मनकार के साथ बजना।

छुननमुनन—संज्ञा पुं [प्रनु०] २. 'छुनमुन'।

छुनमुन—संज्ञा पुं [प्रनु०] १. २. 'छनन मगन'। २. बच्चों के पैर के धातुवर्ण का शब्द।

छुप^५—संज्ञा पुं [सं०] १. स्पर्श। २. झाड़ी। जप। ३. वायु। ४. संघर्ष। युद्ध (को०)।

छुप^५—वि० चंचल।

छुपना—कि० प्र० [हि०] २. 'छिपना'।

छुपाना—कि० प्र० [हि०] २. 'छिपाना'।

छुबुक—संज्ञा पुं [सं०] चिबुक। डुडी।

छुभित^५—वि० [सं० छुभित] १. विचलित। चंचल। उ०—चलत कटक दिगसिधुर दिगही। छुभित पयोधि कुबर जगमगही।—मानस, ६। ७८। २. बबराया हुआ।

छुभिराना^५—कि० प्र० [हि० छोभ] छोभ को प्राप्त होना। झुलना। चंचल होना। उ०—चैया चैया गहो चैया नैया ऐसे बोलो बड़ि बैया करो दया हमें काहे छुभिराने हो।—सूदन (शब्द०)।

छुमकना—कि० प्र० [हि०] २. 'छमकना'। उ०—जब क्या कमलम से छुमकेगा, भांगन ग्वालिवियों का।—हिम त०, पृ० ४३।

छुरण^५—संज्ञा पुं [सं०] १. लेपन। लेप करना। लेप लगाना। २. पसारना। फैलाना। (को०)।

छुरचार^५—संज्ञा स्त्री [सं० छुरचार] छुरे की चार। पतली चार जिससे छुरा जाते हैं कोई वस्तु कट जाय। उ०—देव बिकट तर बक छुरचार प्रमदा तोत्र दप कंदर्प सर खज्ज बारा।—तुलसी (शब्द०)।

छुरहरी^५—संज्ञा स्त्री [हि० छुरा + हरना] नाऊ की पेटी जिसमें वह छुरे रखता है। किसबत।

छुरा^५—संज्ञा पुं [सं० छुर] [स्त्री० छुरा] १. वह हथियार जिसमें एक बेंद में लोहे का एक चारदार संघा टुकड़ा लगा रहता है। यह चाकमण करने या मारने के काम में आता है।

यौ०—छुरेबाज = (१) छुरे द्वारा किसी की हत्या करनेवाला।

छुरेबाजी = छुरा भोंकना। छुरा भोंकने का काम। (२) छुरा भोंकने की बटना।

२. वह हथियार जिससे नाई बाज मूँड़ते हैं। उत्तरा।

छुरा^५—संज्ञा स्त्री [सं०] चूना। एक प्रकार का तीक्ष्ण क्षार मल्ल। वि० २. 'चूना'।

छुरिका—संज्ञा पुं [सं०] २. 'छुरी'।

छुरिकारी—संज्ञा पुं [सं० छुरि + कार] नाई। नापित उ०—गंधकार छुरिकार मल्ल आम्नायिक।—बर्णरत्नाकर, पृ० ६।

छुरित^५—संज्ञा पुं [सं०] १. वास्तव नामक वृत्त्य का एक शेष।

वह वृत्त जिसमें नायक और नायिका दोनों रसपूर्ण हो परस्पर प्रेमप्रदर्शनपूर्वक चुंबनादि करते हुए वृत्त करते हैं । २. बिजली की चमक । ३. कटाव । मत्त (को०) ।

छुरित^२—वि० १. क्षित । जड़ित । खुदा हुआ । २. लेप किया हुआ । पोता हुआ । लेपित (को०) । मिला हुआ (को०) । ४. कटा हुआ (को०) ।

छुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काटने या चीरने काटने का छोटा हथियार जिसमें एक बेंट में लोहे का लंबा धारदार टुकड़ा लगा रहता है । इससे नित्य प्रति के व्यवहार की वस्तु जैसे, फल, तरकारी, कलम आदि काटते हैं । २. लोहे का एक धारदार हथियार जिसमें बेंट लगा रहता है ।

मुद्दा—छुरी चलना = (१) छुरी की लड़ाई होना । (२) चीरने काटने के लिये छुरी का प्रयोग होना । (किसी पर) छुरी चलाना = चीर कट पहुँचाना । चीर दुःख देना । भारी हानि पहुँचाना । चीर प्रनिष्ट करना । बुराई करना । ग्रहित साधन करना । छुरी देना = मारना । गला काटना । (किसी पर) छुरी तेष होना = प्रनिष्ट करने या हानि पहुँचाने की तैयारी होना । (किसी पर) छुरी फेरना = किसी का प्रनिष्ट करना । किसी को भारी हानि पहुँचाना । (किसी के) गले पर छुरी फेरना = दे० 'छुरी फेरना' । छुरी कटारी रहना = लड़ाई क्रमशः रहना । बिगाड़ रहना । बँर रहना । (किसी के) छुरियाँ कटावन पड़ना = (१) किसी के कारण या उसके द्वारा किसी वस्तु का नष्ट या क्षय होना । कट्टे लगना । जैसे,—यही आम रले थे, न जाने किसके छुरियाँ कटावन पड़े (अर्थात् न जाने किसने से लिए या खा लिए) । यह वाक्य प्रायः स्त्रियाँ क्रोध में शाप के रूप में बोलती हैं । (२) रक्ता-तिसार होना । लोहू गिरना ।

छुरोधार—संज्ञा स्त्री० [सं० छुरी + धार] छुरे के धाकार का हाथोवाँत का एक भोजार जिसमें जाली कटी रहती है ।

छुलकना—क्रि० प्र० [अनु० छुल छुल] थोड़ा थोड़ा करके मूतना ।

छुलकी—संज्ञा स्त्री० [अनु०] थोड़ा थोड़ा करके पेशाब करने की क्रिया ।

छुलछुल—संज्ञा पुं० [अनु०] थोड़ा थोड़ा करके मूतने से निकला हुआ कण्ड ।

छुलछुलाना—क्रि० प्र० [अनु० छुल छुल] थोड़ा थोड़ा करके मूतना । २. थोड़ा थोड़ा करके पानी डालना । ३. इतराना । इठलाना ।

छुलाना—क्रि० सं० [हि० छूना] एक वस्तु को दूसरी वस्तु के इतने पास ले जाना कि एक दूसरे से लग या मिल जाय । स्पर्श कराना छुवाना ।

छुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० छुरिका, प्रा० छुरिया] की तरह का एक-प्रस्थ । छुरी । चाकु । उ०—जमवदु शहार छेद छुलिका । उरा पार छुट्टे हवके कसकका ।—पृ० रा, १ । १५१ ।

छुलना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'छूना' ।

छुलकस—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'छुलकस' ।

छुवाना—क्रि० सं० [हि० का छूना का सक० रूप०] स्पर्श करना । छुलाना । उ०—बितई सलचोई बसनि मटि घूँघट पट माहि । छल सौं चली छुवाय के छिनुक छबीली छाहि ।—बिहारी र०, दो०, १२ ।

छुवावा—संज्ञा पुं० [हि० छुवाना] लगाव । संबंध । संसर्ग ।

बी०—छुवाव लगाव । लगाव छुवाव ।

छुवारी अजवायन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'छुवारी अजवायन' ।

छुहना^१—क्रि० प्र० [हि० छुहना] १. छू जाना । २. रंगा जाना । लिपना । पुतना । रजित होना । उ०—कवि देव कह्यो किन काहू कछ जब ते उनके अनुराग छुही ।—देव (शब्द०) । संयो० क्रि०—जाना ।

छुहना^२—क्रि० सं० दे० 'छूना' । उ०—जयमान गुलाब बनाइ छुही । वसि केसर कुंकुम मडि छुही ।—रत्न र०, पृ०, १७६ ।

छुहाना^३—क्रि० प्र० [हि० छोह] दे० 'छोहाना' ।

छुहाना^४—क्रि० सं० [हि० छुहना] सफेदी कराना । पोतवाना । रंगाना ।

छुहारवेर—संज्ञा पुं० [हि० छुहारा] पका हुआ वेर ।

छुहारा—संज्ञा पुं० [सं० क्षुत+हार ?] १. एक प्रकार का लज्जुर जिसका फल खाने में अधिक मोठा होता है । खुरमा । पिंड लज्जुर । खरिक खुरमा ।

विशेष—इसका पेड़ भरव, सिध आदि मरु स्थानों में होता है । वैद्यक में यह पुष्टिकारक, शुक्र और बल को बढ़ानेवाला, तथा मुर्छा और बात पित्त का नाश करनेवाला माना गया है । २. पिंड लज्जुर का फल ।

विशेष—दे० 'लज्जुर' ।

छुहारो—संज्ञा स्त्री० [देश० छुहारा] छोटी और निकुष्ट जाति का छुहारा । उ०—कोइ कमरस कोइ गुवा छुहारी ।—जायसी ग्रं०, पृ० २४७ ।

छुहारी अजवायन—संज्ञा स्त्री० [सं० चोहार+यवानी] फारस से आनेवाली अजमोठा ।

छुहो—संज्ञा स्त्री० [हि० छूना] खरिया । सफेद मिट्टी ।

छूँछा^१—वि० [हि० छूँछा] दे० 'छूँछा' । उ०—भाप छूँछ औरन बत टारे, वेद जाल जिन नाहि उचारे ।—कबीर रा०, पृ० ४६५ ।

छूँछना—संज्ञा पुं० [हि०] दरी आदि की छोर पर निकला हुआ संबा रेखा ।

छूँछा—वि० [सं० चुच्छ, प्रा० चुच्छ, छुच्छ] [वि० स्त्री० छूँछी] १. जिसके भीतर कोई वस्तु न हो । खाली । रीता । रिक्त । जैसे, छूँछा घड़ा, छूँछी बली, छूँछा हाथ । उ०—(क) पैठें खजिन सहित चर सुने माखन वधि सब खाई । छूँछी छाँड़ि मटुक्किया वधि को हँसि सब बाहिर आई ।—सूर (शब्द०) । (ख) जब बिन प्राण पिंड है छूँछा । धर्म लाग कहिए जो पूँछा ।—जायसी (शब्द०) ।

मुद्दा—छूँछा हाथ = (१) दृष्य से खाली हाथ । (२) बिना हथियार का हाथ । हाथ जिसमें छड़ी या बंडा आदि न हो ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः छोटी वस्तुओं के लिये होता

है, मकान आदि की बड़ी वस्तुओं के लिये नहीं; पर कहीं कहीं मकान के लिये भी इसका प्रयोग प्राप्त होता है।

२. जिसके भीतर कुछ तत्व या मार न हो। निःसार। ३. जिसके पास रुपया पैसा न हो। निर्धन। जैसे,—छूछे को कीन पूछे ?।

कूँडा—वि० की० [हि०] निष्कल। कोरा। बेकार। उ०—घब सुठि मरौं कूँछि गे पाती पेम पिघारे हाथ। भेंट होत दुख रोइ सुनावत जीब जास जौ साथ।—जायसी ब० (गुप्त), पृ० २७१।

कूँछी—संज्ञा की० [हि०] १० 'छुच्छी'।

कूँ—संज्ञा पु० [प्रनु०] मंत्र पढ़कर फूँक मारने का शब्द। मंत्र की फूँक।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—छू बनना या होना = चलता बनना। चंपत होना। गायब होना। उड़ जाना। जाता रहना। न रहना। छू छू बनाना = उल्लू बनाना। बेवकूफ बनाना। छू मंतर = मंत्र की फूँक। छू मंतर होना = चट पट दूर होना। मिट जाना। गायब होना। जाता रहना। न रहना। जैसे, दर्द का छू मंतर होना। विशेष—इंद्रजालिक या बाजीगर प्रायः मंत्र पढ़ते हुए छू कहकर वस्तुओं को गायब कर देते हैं।

कूबक—संज्ञा पु० [सं० सूतक] १. अशीष। सूतक। २. बच्चा उत्पन्न होने पर छह दिन का काल।

कूछा—वि० [हि०] [वि० की० खूछी] १० 'छूँछा'। उ०—तुष ने सयाँ जो कुछ पूछा, बस उत्तर हुआ वही पूछा।—साकेत, पृ० १५७। (ख) तेरी बात लगत मुहि खूछी।—ह० रासो, पृ० ११५।

कूख—वि० [सं० तुच्छ, हि० खूछा] मूर्ख। जड़। अहमक।

क्रि० प्र०—बनना।—बनाना।

कूख—संज्ञा की० [प्रनु०] बच्चों को सेलानेवाली स्त्री। दाई।

कूट—संज्ञा की० [हि० छूटना] १. छूटने का भाव। छुटकारा।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

२. अचकाश। फुरसत।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।—होना।

३. देनदारों या असाभियों के ऋण या लगान की माफ़ी। उस रुपए या धन को अपनी इच्छा से छोड़ देना जो किसी के यहाँ बाहता हो। छुड़ीती। ४. किसी कार्य या उसके किसी धंग को भूल से न करने का भाव। किसी कार्य से संबंध रखनेवाली किसी बात पर ध्यान न जाने का भाव। उ०—करि स्नान अन्न दे दाना। एको तासै नाम बखाना। यहि के माहि छूट जो होई। एकादसि बिसरावः सोई।—सबल (शब्द०)।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।—पाना।

५. वह धन या रुपया जो किसी यहाँ बाहता या बकाया हो पर किसी कारण से जमींदार या महाजन जिसे छोड़ दे। वह देना जो माफ हो जाय। ६. स्वतंत्रता। स्वच्छवता। आजादी। ७. वह उपहास की बात जो किसी पर लक्ष्य करके

निःसंकोच कही जाय। वह उक्ति जो बिना शिष्टता आदि की विचार किए किसी पर कही जाय। गाली गलौज।

क्रि० प्र०—चलना।—होना।

८. पटेंट, फेंकैज बंकेज आदि की वह लड़ाई जिसमें जहाँ जिसे दाँव मिले वह बेघड़क वार करे।

क्रि० प्र०—लड़ना।

९. स्त्री पुरुष का परस्पर संबंधस्थान। तिलाक। १०. वह स्थान जहाँ से कबूतरबाज शर्त बदकर कबूतर छोड़ें। ११. बीछार। छौंटा। १२. मालखंभ की एक कसरत जिसमें कोई पकड़ करके हाथों के धपेड़े देकर नीचे कूदते हैं।

बिरोध—यह दो प्रकार की होती है, एक 'दो हथी' दूसरी 'उलटी'। दो हथी में दोनों हाथों से बेंत पकड़ते हैं फिर जिस प्रकार उड़ान की थी उसी प्रकार पैरों को पीठ के पास ले जाकर उलटा उतारते हैं।

छूटछुटाव—संज्ञा पु० [हि०] संबंधविच्छेद।

छूटनहार—वि० [सं० छुट (=छेद), प्रा० छुटण, हि० छूटन+हार (प्रत्यय)] छूटनेवाला। उ०—ताते यह द्रव्य दिए आपुन छूटनहार नही।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० २०२।

छूटना—क्रि० प्र० [सं० छुट (=बंधनादि काटना)] १. किसी बंधी, लगी, फँसी, उलझी या पकड़ी हुई वस्तु का अलग होना। लगाव में न रहना। संलग्न न रहना। दूर होना। जैसे, (छूटे से) घोंडा छूटना, छिलका छूटना, (चिपका हुआ) टिकट छूटना, गीठ छूटना, (पकड़ा हुआ) हाथ छूटना, आदि उ०—सखि, सरद निसा बिधुबदनि बधूटी। ऐसी ललना सलोनी न भई, न है होनी। रतिहु रची विधि जो छोलत छबि छूटी।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—शरीर छूटना = मृत्यु होना। प्राण छूटना = मृत्यु होना। साहम या हिम्मत छूटना = साहस न रहना। छूट पड़ना = किसी पकड़ी या बंधी हुई वस्तु का अलग होकर नीचे गिर जाना। जैसे,—गिलास हाथ से छूट पड़ा और फूट गया।

२. किसी बाँधने या पकड़नेवाली वस्तु का ढीला पड़ना या अलग होना। जैसे, रस्सी छूटना, बंधन छूटना। ३. किसी पुली या लगी हुई वस्तु का अलग होना या दूर होना। जैसे,—रंग छूटना, भेल छूटना।

संयो० क्रि०—जाना।

४. किसी बंधन से मुक्त होना। छुटकारा होना। रिहाई होना। किसी ऐसी स्थिति से दूर होना जिसमें स्वच्छंद गति आदि का अवरोध हो। जैसे,—कैद से छूटना।

संयो० क्रि०—जाना।

५. प्रस्थान करना। रवाना होना। चल पड़ना। चला जाना। जैसे,—चारों को पकड़ने के लिये चारों ओर सिपाही छूटे हैं।

६. किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थान का अपने से दूर पड़ जाना।

विमुक्त होना । बिछुड़ना । जैसे, घर छूटना, आई बंधु छूटना ।
जैसे,—वह बुकान तो पीछे छूट गई ।

संयो० क्रि०—जाना ।

मुहा०—बंदूक छूटना=बंदूक से गोली निकलना और शब्द होना । बंदूक चलना ।

विशेष—बंदूक, पढ़ाके आदि के संबंध में केवल शब्द होने के अर्थ में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है ।

८. किसी बात का, जो रह रहकर बराबर होती रहे, बंद होना । किसी क्रिया का, जो समय समय पर बराबर होती रहे, दूर होना । न रह जाना । जैसे, घाना जाना छूटना, आदत छूटना, अभ्यास छूटना, शराब (अर्थात् शराबी का पीना) छूटना, रस छूटना, बुखार छूटना, रोग छूटना, चोथिया छूटना ।

विशेष—कोड़ा, बवासीर, फोलेपाव आदि बाहरी शरीर पर स्थायी लक्षण रखनेवाले रोगों के लिये इस क्रिया का व्यवहार प्रायः नहीं होता । इसी प्रकार समय समय पर होनेवाली बात का किसी एक विशेष समय में न होना छूटना नहीं कहलाता । जैसे, यदि किसी को बुखार चढ़ा है या सिर में दर्द है और वह दवा देने से उस समय दूर हो गया तो उसे 'छूटना' नहीं कहेंगे 'उतरना' या 'दूर होना' ही कहेंगे ।

मुहा०—नाड़ी छूटना=(१) नाड़ी का चलना बंद हो जाना । (२) नाड़ी की गति का अपने स्थान पर न मिलना ।

९. किसी वस्तु में से वेग के साथ निकलना । जैसे,—रक्त की धार छूटना । १०. रस रस कर (पानी) निकलना । जैसे,—इस तरकारी में से पकाते वक्त पानी बहुत छूटता है । ११. किसी ऐसी वस्तु का अपने-क्रिया में तत्पर होना जिसमें से कोई वस्तु कणों या छोटों के रूप में वेग से बाहर निकले । जैसे,—पिचकारी छूटना, फोवारा छूटना, आतिशबाजी छूटना ।

मुहा०—पेट छूटना=इस्त जारी होना ।

१२. काम आने से बचना । शेष रहना । बाकी रहना । जैसे,—उसके भागे जो छूटा है तुम खा लो । १३. किसी काम का या उसकी किसी अंग का, भूल से न किया जाना । कोई काम करते समय उससे संबंध रखनेवाली किसी बात या वस्तु पर ध्यान न जाना । भूल या प्रमाद से किसी वस्तु का कहीं पर प्रयुक्त न होना, रखा न जाना या लिया न जाना । रह जाना । जैसे लिखने में अक्षर-छूटना, इकट्ठा करने में कोई वस्तु छूटना, रस पर छाता छूट जाना, आदि ।

संयो० क्रि०—जाना ।

१४. किसी कार्य से हटाया जाना । नौकरी से अलग किया जाना । बरखास्त होना । जैसे, नौकरी से छूटना । १५. किसी वृत्ति या जीविका का बंद होना । रोजी या जीविका का न रह जाना । जैसे, नौकरी छूटना, बेंचा हुआ सीधा छूटना ।

१६. पशुओं का अपनी मादा से संयोग करना ।

मुहा०—किसी पर छूटना=किसी मादा से संयोग करना ।

छूटिक ①—छूट १० [हि० छूट] बंधन से मुक्ति । छुटकारा । उ०—
बिन बाधिन तेरी छूटिक नाही सोई मन तेरे भायो । कामी

हैं बिधिया सँग लाग्यो रोम रोम लपटायो ।—बाद०,
पृ० ५८८ ।

छूत—संज्ञा स्त्री० [हि० छूना] १. छूने का भाव । स्पर्श । संसर्ग । छुवाव ।

यौ०—छूमा छूत । छूत छात ।

२. गंदी अशुचि या रोगसंचारक वस्तु का स्पर्श । अस्पृश्य का संसर्ग । जैसे,—(क) बहुत से रोग छूत से फैलते हैं । (ख) शीतला में लोग छूत बचाते हैं ।

यौ०—छूत का रोग, छूत की बीमारी=वह रोग जो किसी से छू जाने से हो । स्पर्शाज्य रोग ।

३. अशुचि वस्तु के छूने का दोष या दूषण । जैसे,—इस बरतन में कोम सी छूत लगी है ?

मुहा०—छूत उतारना=अशुचि स्पर्श का दोष दूर होना ।

४. किसी मनहूस आदमी या भूत प्रेत को छाया । भूत आदि लगने का बुरा प्रभाव ।

मुहा०—छूत उतारना=भूत प्रेत की छाया का प्रभाव मंत्र से दूर करना । छूत भाड़ना=१० 'छूत उतारना' ।

छूति ①—संज्ञा स्त्री० [हि० छूत] भूत प्रेत या मनहूस अथवा कापालिक आदि की छाया । छूत उ०—देवि भूति छूति मोहि लागी ।
कावे चाँद, सूर सौ भागी ।—जायसी ग्रं०, पृ० १३४ ।

क्रि० प्र०—लगना ।

छूना^१—क्रि० प्र० [सं० छुष, प्रा० छुव + हि० ना (प्रत्य०), पूर्वाह्नि० छुवना] एक वस्तु का दूसरी वस्तु के इनने पास पहुँचना कि दोनों के कुछ अंश एक दूसरे से लग जायें । एक वस्तु के किसी अंश का दूसरी वस्तु के किसी अंश से इस प्रकार मिलना कि दोनों के बीच कुछ अंतर या अवकाश न रह जाय । स्पर्श होना । आशिक संयोग होना । जैसे,—चारपाई ऐसे ढंग से बिछाओ कि कहीं बीवार से न छू जाय ।

संयो० क्रि०—जाना ।

छूना^२—क्रि० सं० १. किसी वस्तु तक पहुँचकर उसके किसी अंग को अपने किसी अंग से सटाना या लगाना । किसी वस्तु की ओर आप बढ़कर उसे इतना निकट करना कि बीच में कुछ अवकाश या अंतर न रह जाय । स्पर्श करना । संसर्ग में लाना । जैसे,—धीरे धीरे यह डाल छत को छू लेगी ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

मुहा०—आकाश छूना=बहुत ऊँचे तक जाना । बहुत ऊँचा होना ।

२. हाथ बढ़ाकर जँगलियों के संसर्ग में लाना । हाथ लगाया । त्वगिन्द्रिय द्वारा अनुभव करना । जैसे,—(क) इसे छूकर देखो कितना कड़ा है । (ख) इस पुस्तक को मत छूओ ।

मुहा०—छूने से होना या छूने को होना=रजस्वला होना ।

३. दान के लिये किसी वस्तु को स्पर्श करना । दान देना । जैसे, लिचड़ी छूना, बछिया छूना या छूकर देना । सोना छूना ।

विशेष—दान देने के समय वस्तु को मंत्र पढ़कर स्पर्श करने का विधान है ।

४. बीड़ की बाजी में किसी को पकड़ना । ५. उन्मत्ति की स्थिति में पकड़ना । जैसे,—यह लड़का अभी छोटे बरजे में है पर बी बरस में मुझे छु लेना । ६. बीरे से मारना । जैसे, तुम जरा सा छूने से रोने लगते हो । ७. थोड़ा व्यवहार करना । बहुत कम काम में लाना । जैसे, छुट्टी में तुमने कभीकिताब छुई है । ८. पोतना । लगाना । जैसे,—छूना छूना, रंग छूना ।

छुई—संज्ञा स्त्री [हि० छोई] सीटी । सोई । छोई । उ०—छानत द्वार फिरे निस बासर कोड़ी की सब भू ही । अमृत छाड़ि निलज्ज मूढ मति पकरत नीरस छुई ।—सुंदर बं०, भा० २, पृ० ८४० ।

छुई^१—संज्ञा स्त्री [सं० स्तूप ?] १. मिट्टी या ईंट की छोटी दीवाल । २. कुएं की जगह पर कच्ची मिट्टी के बने स्तूप ।

छुरा—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'छुरी' ।

छुरी—संज्ञा स्त्री [हि० छुरा] दे० 'छुरी' ।

छेक—संज्ञा स्त्री [हि०] छेकने का भाव ।

छेक—छेक छेक । रोक छेक ।

छेकना—क्रि० सं० [सं०/छेक (= ठीकना) + करण अथवा सं० छेदक (= काटनेवाला, ला० रोकना, धरना, बाधक होना), प्रा० छेक > छेक > हि०/छेक + ना (प्रत्य०)] १. बाधना करना । स्थान धरना । जगह लेना । जैसे,—(क) कितनी जगह तो यह पेड़ छेके है । (ख) इस रोग की दवा करो नहीं तो यह सारा चेहरा छेक लेगा । २. धरना । रोकना । गति का अवरोध करना । रास्ता बंद करना । जाने न देना । उ०—(क) प्रभु कवणामय परम विवेकी । तनु तजि रहत छेह किमि छेकी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मेघनाद सुनि जवन भस गढ़ पुनि छेका पाइ । उत्तरि दुर्ग ते बीर बर सम्मुख चलेउ बजाइ ।—तुलसी (शब्द०) । ३. लकीरों से धरना । रेखा के भीतर डालना । ४. लिसे हुए घसर को लकीर से काटना । मिटाना । जैसे,—इस पोथी में जहाँ जहाँ घण्टा हो छेक दो । उ०—सोइ गोसाईं विधि गति जेह छेकी । सकल को टारि टेक जो टेकी ।—तुलसी (शब्द०) ।

छेकर—संज्ञा पुं [देश०] एक जास जो चारे के काम आती है । घंटौल ।

छेक^१—वि० [सं०] १. पालतू । बरेलू । २. नागर । विदग्ध । ३. सहृदी । नागरिक [स्त्री०] ।

छेक^२—संज्ञा पुं १. घर के पालतू पशु पक्षी । २. नागर व्यक्ति । ३. छेकानुशास ।

छेक^३—संज्ञा पुं [हि० छेक] १. छेक । सूरज । उ०—सत गुरु सांवा सूरमा शब्द जो मारा एक । लागत ही अय मिट गया परा कलेजे छेक ।—कबीर (शब्द०) । २. कटाव । विभाग । उ०—कबिरा सपने रैन में परा जीब में छेक । जैसे हृत्तो दुह जना जो जागू तो एक ।—कबीर (शब्द०) ।

छेकनी—वि० [हि० छेकना] छेकनेवाली । रोकनेवाली । उ०—यह हस्त की रीति छेकनी कह देखनी । कई स्याम सौ श्रीति लोक लाख सब छेकनी ।—ब्रज० बं०, पृ० ३५ ।

छेकानुशास—संज्ञा पुं [सं०] एक शब्दालंकार । अनुशास अलंकार

के पाँच मेंदों में एक जिसमें एक ही चरण में दो या अधिक वर्णों की प्राप्ति कुछ अंतर पर होती है । जैसे—संयोग अंक अंश उमंग सुभंग पुलकावलि छई ।—मानस; १।११८ ।

छेकापद्धति—संज्ञा स्त्री [सं०] एक अलंकार जिसमें दूसरे के ठीक अनुमान या अटकल का अयथायं उक्ति से संबन्ध किया जाता है । जैसे—सीसी कर न सिखात है करत अघर छत पीर । कहा मित्यो नागर पिपा ? नहि सखि सिसिर समीर । यहाँ नायिका के अघर पर सत देखकर सखी अपना अनुमान प्रकट करती है कि क्या नायक मिला या ? इसपर नायिका ने यह कहकर कि 'नहीं शिशिर की हवा लगती है', उसके अनुमान का संबन्ध किया ।

छेकास, छेकिल—वि० [सं०] दे० 'छेक' ।

छेकोक्ति—संज्ञा स्त्री [सं०] वह लोकोक्ति जो अर्थांतरणमय हो अर्थात् जिससे अन्य अर्थ की भी ध्वनि निकले । जैसे,—बानत ससे भुजंग ही जग में चरण भुजंग ।—(शब्द०) ।

छेटा^१—संज्ञा स्त्री [सं० छिन्न, प्रा० छित्त] बाधा । रुकावट । उ०—कालो कुलिद भूप कर नेटा । डाँड़ देत में डारत छेटा ।—रघुराज (शब्द०) ।

छेड़^१—संज्ञा स्त्री [हि० छेद] १. छू या खोद खादकर तंग करने की क्रिया । २. व्यंग्य, उपहास आदि के द्वारा किसी को बिड़ाने या तंग करने की क्रिया । हँसी ठठोली करके कुढ़ाने का काम । चुटकी ।

छेड़^२—छेड़खानी । जेदछाड़=हँसी ठठोली । चुटकी ।

३. ऐसी बात या क्रिया जिससे दूसरा कोई बिड़े । बिड़ानेवाली बात ।

मुहा०—छेड़ निकालना = बिड़ानेवाली बात स्थिर करना । जैसे,—उसे बिड़ाने के लिये तुमने अच्छी छेड़ निकाली है ।

४. रगड़ा । झगड़ा । परस्पर की चोटें । एक दूसरे के विरुद्ध आवेपच । विरोध । जैसे,—उन दोनों में खूब छेड़ चली है । ५. बाजे में गति या शब्द उत्पन्न करने के लिये उसे छूने की क्रिया । बजाने के लिये किसी (विशेषतः तारवाले, जैसे; सितार) वाद्ययंत्र का स्पर्श ।

छेड़^३—संज्ञा पुं छेद । सुराख ।

छेड़ना—क्रि० सं० [हि० छेड़ना] १. छूना या खोदना खादना । दबाना । कोंबना । जैसे,—इस फोड़े को छेड़ना मत, बवा लगाकर छोड़ देना । २. छू या खोद खादकर चढ़काना या तंग करना । जैसे,—कुत्ते को मत छेड़ो, काट लायगा । ३. किसी को उत्तेजित करने या बिड़ाने के लिये उसके विरुद्ध कोई ऐसा कार्य करना जिससे वह बयला लेने के लिये तैयार हो । जैसे,—तुम पहले उसे न छेड़ते तो वह तुम्हारे पीछे क्यों पड़ता । ४. व्यंग्य, उपहास आदि द्वारा किसी को बिड़ाना या तंग करना । हँसी ठठोली करके कुढ़ाना । चुटकी लेना । बिलसी करना । ५. कोई बात या कार्य धारम करना । खंडाना । शुरू करना । जैसे, काम छेड़ना, बात छेड़ना, चर्चा छेड़ना, राग छेड़ना, आदि । ६. बाजे (विशेषतः तारवाले)

में शब्द या गति उत्पन्न करने के लिये उठे हुना । वाद्ययंत्र में क्रिया या शब्द उत्पन्न करने के लिये उठे स्पर्श करना । बजाने के लिये बाजे में हाथ लगाया । जैसे, सितार खेदना, सारंगी खेदना । ७. खेद करना । ८. नष्टर से कोड़ा चीरना ।

खेदना—क्रि० प्र० [हि० खेदना का प्रे० रूप] खेदने का काम कराना ।

खेदा—संज्ञा पुं० रस्सी । साँट । —(संज्ञा०) । जैसे, चारीक खेदा ।

खेतर—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्र] दे० 'क्षेत्र' । उ०—राजस तामस सातुकी, खेतर तीनहि भाँति । क्षेत्रक भातम देव है सबको महि ये भाँति ।—चरण० बानी, भा० २, पृ० २२० ।

खेतरना—क्रि० प्र० [सं० खि/विर (= विचारण, क्षेत्र)] १. दुःख देना । पीड़ा पहुँचाना । उ०—(क) हित विख प्यारा सज्जन, खल करि खेतरियाह । पहिली लाइ सदाह करि, पाछइ परिहरियाह ।—ढोला०, पृ० ४७१ । (ख) भावि विदेसी वल्लहा खल करि खेतरियाह ।—ढोला०, पृ० ४१८ । (ग) सोहणा, ये मने खेतरि बीजी बीजी खेल ।—ढोला०, पृ० ५११ ।

खेती—संज्ञा स्त्री० [प्रा० खिती] १. विच्छेद । बिलगाव । रुकाव । उ०—तीरभूमि निहारि हिय तें जाति जइसा वेति । द्रवित भानवधन निरंतर परति नाहिन खेति ।—चनानंद, पृ० ४६२ । २. अंतर । फासला । दूरी । उ०—ऊँसर बिच खेती घणी घाते गयउ जिहाज । चारण डोलइ साँमुहउ, भाइ कियउ सुभ राज ।—ढोला०, पृ० ६४३ ।

खेता—वि० [सं० क्षेत्र] १. काटनेवाला । खेद करनेवाला । २. नष्ट करनेवाला । निवारण करनेवाला । दूर करनेवाला । (भ्रमादि) ३. लकड़ी काटनेवाला [को०] ।

खेत्र—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्र] दे० 'क्षेत्र' ।

खेत्रक—संज्ञा पुं० [सं० क्षेत्रक] दे० 'क्षेत्रक' । उ०—राजस तामस सातुकी खेतर तीनहि भाँति । क्षेत्रक भातम देव है, सबको महि ये भाँति ।—चरण० बानी, भा० २, पृ० २२० ।

खेद^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेदन । काटने का काम । २. नाश । ध्वंस । जैसे, उच्छेद, वंशच्छेद । ३. खेदन करनेवाला । ४. गणित में भाजक । ५. लंब । टुकड़ा । ६. श्वेतांबर जैन संप्रदाय के ग्रंथों का एक भेद । ७. विराम । अवसान । समाप्ति (को०) । ८. कोई परिचयात्मक चिह्न । लक्षण (को०) । ९. कटने का घाव या चिह्न (को०) ।

खेद^२—संज्ञा पुं० [सं० खिद] १. किसी वस्तु में वह खाली स्थान जो फटने या सुई, काँटे इत्यादि आदि के भारपार चुभने से होता है । किसी वस्तु में वह गुल्य या बुला स्थान जिसमें होकर कोई वस्तु इस पार उस पार जा सके । सुरास । छिद्र । रंध्र । जैसे, छलनी के छेद, कपड़े में छेद, सुई का छेद । जैसे,—दीवार के छेद में से बाहर की चीजें दिखाई पड़ती हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२. वह खाली स्थान जो (चुबने, कटने, फटने या और किसी

कारण से) किसी वस्तु में कुछ दूर तक पड़ा हो । बिल । बरज । खोखला । बिबर । कुहर । ३. बोव । दूषण । ऐव ।

क्रि० प्र०—हूँटना—मिलना ।

खेदक—वि० [सं०] १. खेदनेवाला । काटनेवाला । २. नाश करनेवाला । ३. विभाजक । भाजक । छेद ।

खेदकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़ी काटनेवाला । बड़ई [को०] ।

खेदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. काटने या भारपार चुभाने की क्रिया या भाव । काटकर अलग करने का काम । चीरफाड़ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२. नाश । ध्वंस । ३. छेदक । ४. काटने या खेदने का मूल । ५. वह औद्योगिक जो कफ आदि को छाँटकर निकाल दे ।

खेदनहार—वि० [हि० खेदन + हार (प्रत्य०)] खेदने या काटनेवाला ।

खेदना^१—क्रि० प्र० [सं० खेदन] १. किसी वस्तु को सुई, काँटे, भाँसे, बरखी आदि से इस प्रकार दबाना कि उसमें भारपार छेद हो जाय । सुई, कील या और कोई नुकीली वस्तु एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व तक चुभाकर किसी वस्तु को छिद्रयुक्त करना । मेथना । मेदना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—बेना ।

विशेष—यदि किसी से कतरकर, या और किसी ढंग से किसी वस्तु में छेद बनाए जाएँ तो यह कार्य उस वस्तु को 'खेदना' नहीं कहलाएगा ।

२. क्षत करना । घाव करना । जैसे,—तीरों ने उसका सारा शरीर खेद डाला । ३. काटना । छिन्न करना ।

खेदना^२—संज्ञा पुं० वह औजार जिससे खेद किया जाय । जैसे, सूया, सुतारी, भाँसे ।

खेदनिहार—वि० [हि०] दे० 'खेदनहार' । उ०—सहसबाहु भुज खेद-निहारा । परसु बिलोकु महीपकृमारा ।—मानस, १।२७२ ।

खेदनीय—वि० [सं०] खेदने के योग्य । खेद्य ।

खेदा—संज्ञा पुं० [हि० खेदना] १. घुन नाम का कीड़ा । २. घन में वह विकार जो इस कीड़े के कारण पैदा होता है । घुन द्वारा लाए जाने के कारण अनाज के खोखला होने का दोष । ३. छेद । सुरास । छिद्र ।

खेदि^१—वि० [सं०] १. काटने या खेदन करनेवाला । २. तोड़नेवाला । नष्ट करनेवाला [को०] ।

खेदि^२—संज्ञा पुं० १. बड़ई । २. इन्द्र का वज्र [को०] ।

खेदित—वि० [सं०] काटा हुआ । विभक्त । छिन्न [को०] ।

खेदी—वि० [सं० खेदिन्] १. काटनेवाला । विभाजन करनेवाला । २. नष्ट करनेवाला । हटानेवाला [को०] ।

खेदोपस्थानिकचारित्र—संज्ञा पुं० [सं०] गणाधिप के दिए हुए प्राणा-तिपातादि पाँच महाव्रतों का पालन । खेदोपस्थानीय । (जैन) ।

खेद^३—वि० [सं०] खेदन करने योग्य । खेदनीय ।

खेद्य^१—संज्ञा पुं० १. परेवा । कबूतर । २. वैद्यक में पीछ के रोगों की

बिक्रिस्ता का एक टंव । इसमें घाँस में नमक का पूर्ण ढाँसते हैं तथा कभी कभी बलबिक्रिस्ता भी करते हैं । १. अंगच्छेदन । चीरफाड़ । सत्य क्रिया (कौ०) ।

खेयकंठ—संज्ञा पुं० [सं० खेयकण्ठ] कबूतर । परेवा ।

खेना—संज्ञा पुं० [सं० खेन] १. फाड़ा हुआ दूध जिसका पानी निचोड़कर निकाल दिया गया हो । फटे दूध का खोया । पनीर ।

विशेष—इसके बनाने की रीति यह है कि खोलते हुए दूध में खटाई या फिटकरी डाल देते हैं जिससे वह फट जाता है अर्थात् उसके पानी का अंश सकेव घुरघुरे अंश से अलग हो जाता है । फिर फटे हुए दूध को एक कपड़े में रखकर निचोड़ते हैं जिससे पानी निकल जाता है और दूध का सफेद घुरघुरा अंश बच रहता है जो खेना कहलाता है । इस खेने से बंगाल में अनेक प्रकार की मिठाइयाँ बनती हैं । वही गरम करके भी एक प्रकार का खेना बनाया जाता है ।

२. कंडा । उपला । मोहँठा । मोहरी ।

खेना—क्रि० सं० १. कुल्हाड़ी आदि से काटना या चाब करना । छिनगना । २. छीजना । ३. 'खेना' ।

खेनी—संज्ञा स्त्री० [हि० खेना] १. लोहे का वह बीजार जिससे चाबु, पत्थर आदि काटे या नकाशे जाते हैं । टाँकी ।

विशेष—यह पाँच छह अंगुल लंबा लोहे का टुकड़ा होता है जिसके एक ओर चौड़ी चार होती है । नक्काशी करते समय इसे नोक के बल रखकर ऊपर से ठोकते हैं । नक्काशी करने की खेनी के सोलह भेद हैं—(१) खेरना । इससे गोल लकीर बनाई जाती है । (२) चेरना । इससे सीधी लकीर बनाई जाती है । (३) पगेरना । इससे लहर बनाई जाती है । (४) गुलसुम । इससे गोल गोल बाने बनाए जाते हैं । (५) फुलना । इससे फूल और पत्तियाँ बनाई जाती हैं । (६) बलिस्त । इससे बड़ी बड़ी पत्तियाँ बनाई जाती हैं । (७) डोन्नदं । इससे छोटी पत्तियाँ बनाई जाती हैं । (८) तिलरा । (९) डिगा । इन दोनों से गोल महराब काटा जाता है । (१०) किरा । इससे वेज और पत्तियाँ बनाई जाती हैं । (११) मलकरना । इससे दोहरी लकीर बनती है । (१२) सूतवार पगेरना । इससे एक बार में दोहरी लहर बनती है । (१३) गोटरा । इससे गोल नक्काशी बनाई जाती है । (१४) पनवार गोटरा । इससे पान बनाया जाता है । (१५) चौकोना गुलसुम । (१६) तिकोना गुलसुम । इन दोनों से चौकोनी और तिकोनी नक्काशी बनाई जाती है ।

२. वह नहरनी जिससे पोस्ते से अफीम पोछकर निकाली जाती है ।

खेमंड—संज्ञा पुं० [सं० खेमण्ड] बिना माँ बाप का लड़का । अनाथ या यतीम बच्चा ।

खेम(पुं)—संज्ञा पुं० [सं० खेम] ३० 'खेम' । उ०—(क) जाय कहव करतूति बिनु जाय जोग बिनु खेम । तुलसी जाय उपासव बिना राम पव प्रेम ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बड़ि प्रतीति

पठबंध ते बड़ो जोग ते खेम । बड़ो सुखेवक साई ते बड़ो नाम ते प्रेम ।—तुलसी (शब्द०) ।

खेमकरी(पुं)—संज्ञा स्त्री० [सं० खेमकरी] सफेद चील । उ०—(क) खेमकरी कहूँ खेम बितेखी । श्यामा बाम सुतह पर देखी ।—मानस, १ । ३०३ । (ख) लाम लाम लोका कहत खेमकरी कहूँ खेम । चलत विभीषनु सगुन सुनि तुलसी पुलकत प्रेम ।—तुलसी (शब्द०) ।

खेमा(पुं)—संज्ञा स्त्री० [सं० खमा, पु० हि० खिमा] ३० 'खमा' । उ०—खेमा कषाढ का तासा, कुंजी सुरत निरत का तीर ।—रामानंद०, पु० ३२ ।

खेरना—क्रि० प्र० [सं० खरण] अणु के कारण बार बार घासाना फिरना ।

खेरी—संज्ञा स्त्री० [सं० खेलिका] बकरी । भजा ।

खेल(पुं)—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'खेल' । उ०—तरतम तजेकर दूरे खेल हखहि छोड़ह मोर चीर ।—विद्यापति, पु० २०३ ।

खेल्क—संज्ञा पुं० [सं०] बकरा (कौ०) ।

खेल चिकनिया(पुं)—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'खेलचिकनिया' । उ०—तब चाचा हरिवंस जी ने कही जो यहाँ कहूँ वह खेल चिकनिया भायो होइगो ।—दो सो बावन०, भा० १, पु० ५७ ।

खेली—संज्ञा स्त्री० [सं० खेलिका] ३० 'खेरी' । उ०—बहु बचन गाय महिषीन तुंग । खेली खयल गहरन पुंग ।—पु० रा०, १७।३३ ।

खेव—संज्ञा पुं० [सं० खेव, प्रा० खेव] १. काटने, छीलने आदि के लिये किया हुआ आधात । बार । चोट । उ०—तब मेव यह कही बीर ठाढ़ो रहूँ ठाढ़ो । अब नहिँ जीवत आइ लोह करिहो रन गाढ़ो । सुनत राव हूँ कूट जुद्ध में तेगहिँ भारी । तहीं मेव गहिँ खेव तुरंगम ते गहिँ भारी । सू परधो परी हूँ तीन अंसि बड़गुजर के अंग पर । लियो सीस काटि साथी सहित राव रंड सोयो समर ।—सूदन (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—खलना ।—मारना ।—लगना ।—लगाना ।

२. वह बिल जो काटने छीलने आदि से पड़े । खलन । घाव । जैसे,—उसने इस पेड़ में कुल्हाड़ी से कई खेव लगाए हैं । उ०—अरिन के उर माहिँ कीन्हो हमि खेव है ।—सूषण (शब्द०)

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।—पड़ना ।

खुहा०—खल खेव = कपट व्यवहार । कुटिलता का दाय पेंच । खल छिद । उ०—जानत नहीं कहीं तैं सीखे चोरी के खल खेव ।—सूर (शब्द०) ।

३. धानेवासी आपत्ति । होनहार । दुःख । ४. किसी दुष्कर्म या क्रूर ग्रह आदि के प्रभाव से होनेवाला अनिष्ट ।

क्रि० प्र०—उत्तरना ।—छूटना ।—टलना ।—मिटना ।

खेव—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'खेव' ।

खेव—संज्ञा पुं० [देशी खेव] अंत । समाप्ति । पर्यंत । और ।

खेवन—संज्ञा पुं० [हि० खेवना, = काटना,] वह ठागा जिससे कुम्हार चाक पर के बरतन को काटकर अलग करते हैं ।

शेखना^१—संज्ञा स्त्री० [हि० शेखा] ताड़ी ।

शेखना^२—क्रि० सं० [सं० शेखन] १. काटना । छिल्ल करना । छिनगाना । २. चिह्नित करना । चिह्न लगाना ।

शेखना^३—क्रि० सं० [सं० शेखण] १. फेंकना । मारना । उ०—
अंत भयो प्रारब्ध को पायो निश्चय मेह । आतम परमात्म
मिल्यो देह सेह महं शेख ।—निश्चय (शब्द०) । २.
ऊपर डालना ।

मुहा०—जी पर शेखना = अपने ऊपर विपत्ति डालना । जी पर
खेलना । उ०—जो अस कोई जित पर शेखा । बेवता भाइ
करहि नित सेवा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) और सोचि
अस पावे केवा । तुम्ह कारण मैं जिय पर शेखा ।—जायसी
(शब्द०) ।

शेखनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० शेखा (=काटना)] दे० 'शेखी' ।

शेखरा^१—संज्ञा पुं० [हि० शेखरा] १. छाल । बकल । २. छिलका ।
३. चमड़ा । त्वचा ।

क्रि० प्र०—उपेक्षना ।—उपेक्षना ।

शेखरा^२—संज्ञा पुं० [हि० शेखर] दे० 'शेखर' ।

शेखा^१—संज्ञा पुं० [हि० शेख] १. छीलने या काटने का काम । २.
बहु भाषात जो छीलने या काटने के लिये किया जाय । चोट ।
छीलने या काटने का चिह्न । घाव । जखम । ४. अत्यंत वेग
से बहने वाला जल ।—(महाकाव्य) ।

शेख^१—संज्ञा पुं० [हि० शेख] १. दे० 'शेख' । २. खंडन । नाश ।
उ०—ब्रह्म भिन्न मिथ्या सब भाख्यो । तिनको भेद हेत कहि
राख्यो । उपजो यह मोको संदेहा । प्रभु ताको घब कीजे
छेहा ।—निश्चय (शब्द०) ।

शेख^२—क्रि० १. टुकड़े टुकड़े किया हुआ । खंडित । २. न्यून । कम ।
उ०—पुरा सहज गुण करे गुण ना भावं छेह । सायर पोसे
सर भरे दामन भीगे मेह ।—कबीर (शब्द०) ।

शेख^३—संज्ञा पुं० [सं० शिप्] नृप का एक भेद ।

शेख^४—संज्ञा स्त्री० [सं० शार] मिट्टी । राल । क्षार । वि० दे० 'लेह' ।

शेख^५—संज्ञा स्त्री० [हि० छाया या छाह] दे० 'छाया' ।

शेख^६—क्रि० [अप० छेह] छह । उ०—जलहि तत्त्व पै सूर्य सवारा ।
छेह मास आनंद बिचारा ।—कबीर सा०, पृ० ८७६ ।

शेख^७—संज्ञा पुं० [प्रा०, छेख] अंत । समाप्ति । प्रांत । पर्यंत ।
किनारा । उ०—(क) सादृश्य हल्लण सौमसह ऊमी प्रांगण
छेह । काजल जल मेला करी, नाखी नाख भरेह ।—डोला०,
पृ० १३७ । (ख) केता पूछो जीव सनेही । गिनत गिनत ना
पावे छेही ।—कबीर सा०, पृ० ५४६ ।

शेखंडा^१—क्रि० [हि० छेह + ड (प्रत्य०)] न्यून । कम । दे०
'छेह' । उ०—सौदा सतगुरु सूँ बिया राम नाम बन काज ।
लाम न कोई छेहड़ो तोटा सबही भाज ।—राम० चर्य०,
पृ० ५८ ।

शेखुरा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० छाया] छाया । छाया ।

शेखुरा^२—संज्ञा पुं० [सं० छाया] अलगाव । व्यवधान । विच्छेद ।

विरह । उ०—कह्यो न परत कछु रह्यो न परत, है सह्यो न
परत छिन छेहरा ।—बनारस, पृ० ३३८ ।

शेख^१—वि०, संज्ञा पुं० [सं० खट्] दे० 'ख' ।

शेख^२—संज्ञा स्त्री० [सं० खय] दे० 'खय', 'खय' । उ०—यह कहि
पारख हरि पुर गए । सुखी सकल आदव छै गए ।—सूर०,
१ । २८६ ।

शेख^३—वि० [हि०] खहों । उ०—सार वेद चारो की जोइ ।
शेख साख सार पुनि सोइ ।—सूर०, ७ । २ ।

शेखरा^१—संज्ञा पुं० [हि० खय, छे] खय । विनाश । उ०—होखे
दुरमति बंध तुम्हारा । ताते होखे विद छेकारा ।—कबीर
सा०, पृ० २१० ।

शेखा^१—क्रि० प्र० [सं० √शि > खयण; हि० खय + ना < प्रत्य०]
१. खीजना । कीण होना । कम होना । २. नष्ट होना ।

मुहा०—शेखा जाना = खेव का फट जाना । किसी खेव का फैलकर
इतना बढ़ जाना कि उसके आसपास का स्थान फट जाय ।
जैसे, कान छे जाना; अर्थात् कान में किए हुए खेव का इतना
फैल जाना कि जी फट जाना ।

शेखा^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'छाव' । उ०—(क) जाति पाति
हम तें बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छेपा ।—सूर०, १० ।
२४५ । (ख) माई माजु तो हिंदोर भूनें छेपा कदम की ।
गोपी सब ठाढ़ी मानों बिन सी सदन की ।—नंद० प्र०,
पृ० ३७८ ।

शेखा^३—संज्ञा पुं० [सं० शावक, हि० खवना] बच्चा । बत्स ।
(प्यार का शब्द) । उ०—(क) कहत महाह लाइ उर छिने
छिन छगन छबीले छोटे छेपा —तुलसी प्र०, पृ० २७७ । (ख)
बिसकर्मा सुतहार, रच्यो काम हूँ सुनार, मनगल लागे अपार
काज महुर छेपा ।—सूर०, १० । ४१ ।

शेखा^४—वि० [हि०] १. लय होनेवाला । खोजनेवाला । २. नष्ट
करनेवाला ।

शेख^५—संज्ञा पुं० [सं० खवि + प्रा० इल्ल (प्रत्य०), प्रा० खविल्ल,
खपल्ल, छइल्ल] सुंदर और बना ठना प्रादमी । सुंदर बेल-
विन्यासयुक्त पुरुष । बहु पुरुष जो अपना भंग खूब सजाए हो ।
बाँका । शोकीन । रंगीला । उ०—छरे खबीले छेन सब सूर
सुजान नबीन । जुग पद चर असवार प्रति जे असिकला प्रवीन ।
—मानस, १ । २६८ ।

शेख^६—छेल चिकनियाँ । छेल खबीला ।

छेल चिकनियाँ—संज्ञा पुं० [देश०] शोकीन । बना ठना प्रादमी ।
उ०—छेल चिकनिया उमै घनेरे ।—कबीर सा०, पृ० ३१ ।

छेलखबीला—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० छेलखबीली] १. सजावजा
और युवा पुरुष । रंगीला पुरुष । बाँका । उ०—उत नव नामरि
राविका, छेलखबीली सोय । काग रंग रस रंग मैं, तामस
और न कोय ।—ब्रज० प्र०, पृ० २३ । २. खरीला नाम
का पीघा ।

छेलपन—संज्ञा पुं० [हि० छेल + पन (प्रत्य०)] बाँकापन । खबीला-
पन । उ०—हमें खबला चिक' अलप गेमान । तोहर छेलपन
निरत मान ।—विद्यापति, पृ० २८४ ।

जोडा—संज्ञा पुं० [सं० ज्वि + प्रा० क्त (प्रत्य०), प्रा० ज्वित्स, ज्वित्स, ज्वित्स] सुंदर और बना ठना भादमी । सुंदर वेश-विन्यासयुक्त पुरुष । वह पुरुष जो अपना अंग खूब सजाए हो । सजीला । बाँका । रंगीला । शोकीन ।

जोकर—संज्ञा पुं० [सं० शङ्करा] शमी का वृक्ष । सफेद कीकर ।
उ०—जोकर के वृक्ष बहुतों मिला दियो, कियो जाय बरसन, सुख भयो भारिए ।—भक्तमाल, पृ० ५९६ ।

जोकरा—संज्ञा पुं० [सं० शङ्करा] दे० 'जोकर' ।

जोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० ज्वेड] वह लकड़ी जिससे दही मया जाता है । मयानी ।

जोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० शावक] [बी० ज्वेड, ज्वेडी] दे० 'जोड़ा' ।

जोड़ि—संज्ञा बी० [सं० ज्वेडिका] मयानी ।

जोड़ि—संज्ञा बी० [सं० जोड़ि] बड़ा बरतन ।

जोड़ि—संज्ञा पुं० [हि०] छिलका । उ०—प्रोगल सह कर एकठा, विदर बगाया वेह । ज्यों मम काँदा ज्वेत जिम, छिदरी रो नहि छेह ।—बाँकी प्र०, भा० २, पृ० ६१ ।

जो—संज्ञा पुं० [सं० जोम, हि० जोह] १. छोड़ । प्रेम । प्रीति । चाह । २. गया । कृपा । ३. क्रोधजनित दुःख । जोम । कोप । गुस्सा ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।—रखना ।

जोड़ियाँ—संज्ञा बी० [देशी०] दे० 'जोड़ी' ।

जोड़ी—संज्ञा बी० [देशी छोड़या, मयना हि० जोलना] १. ईश की पत्नियाँ जो उसमें से जोलकर एक दो जाती हैं । २. गन्ने की वह गहरी या गन्ना जिसका रस चूसकर या पेरकर निकाल लिया गया हो । बिना रस की गहरी । सीठी । जोड़ी । उ०—गहरी की सी जोड़ी कर डाले, रहन न देत मिठाई ।—कबीर० भा०, पृ० ७ ।

जोड़का—संज्ञा पुं० [सं० शावक, प्रा० ज्वक + रा (प्रत्य०)] [बी० जोकड़ी] लड़का । बालक । अनुभवशून्य या अपरिपक्व बुद्धि का युवक । लोड़ा । (प्रायः बुरे भाव से) ।

जोड़कापन—संज्ञा पुं० [हि० जोड़का + पन (प्रत्य०)] १. लड़कपन । २. छिछोरापन । नादानी ।

जोड़ियाँ—संज्ञा बी० [हि०] दे० 'जोड़ि' ।

जोड़ि—संज्ञा बी० [हि० जोड़का] लड़की । कन्या । बेटो ।

जोकर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'जोकर' ।

जोकरा—संज्ञा पुं० [हि०] [बी० जोकरी] दे० 'जोकर' ।

जोकरियाँ—संज्ञा बी० [हि०] दे० 'जोकर' ।

जोकरो—संज्ञा बी० [हि०] दे० 'जोकर' ।

जोकरा—संज्ञा पुं० [सं० ज्वल] जोल । छिलका । बकल ।

जोगा—वि० [देश०] धैरा । उ०—विदर बुराई बीटिया, विदर बड़ा बापाल । विदर पदा लावे सुरत, जोगाला चिरताल ।—बाँकी प्र०, भा० २, पृ० ८५ ।

जोड़—वि० [सं० ज्व हि० छोटा, मयवा देशी छुट] दे० 'छोटा' ।
उ०—को बड़ छोटा कहत मयराधु । सुनि गुन भव समुझिहि साधु ।—मानस, १ । २१ ।

जोड़का—वि० [हि० छोटा + का (प्रत्य०)] [वि० बी० जोड़की] जोड़ा ।

जोड़—पूरबी प्रत्यय (का, की,) ऐसी विशेष वस्तुओं के लिये आता है जो सामने होती है, जिनका उल्लेख पहले हो चुका रहता है, या जिनका परिचय सुननेवाले को कुछ रहता है ।

जोड़पनी—संज्ञा पुं० [हि० छोटा + पन (प्रत्य०)] छोटापन । जोड़ाई

जोड़फलों—संज्ञा बी० [हि० छोटा + फल] कम बोड़े मुँहवाली मटकी । छोटे मुँह की ठलिया । तंग मुँह की गगरी ।

जोड़भैया—संज्ञा पुं० [हि० छोटा + भाई] पत्न या मान मर्यादा में छोटा भादमी । कम हैसियत का भादमी ।

जोड़ा—वि० [सं० ज्व या देशी छुट, छुट] [वि० बी० जोटी] १. जो बड़ाई या विस्तार में कम हो । आकार में लघु या न्यून । डील डौल में कम । जैसे, छोटा मोटा, छोटा घर, छोटा पेड़, छोटा हाथ ।

जो—छोटा मोटा = छोटा । जैसे छोटा मोटा घर ।

२. जो विस्तार या परिधि में भी कम हो । जिसमें फैलाव न हो । उ०—असवार चबते पाय चलते पुहवी भए जा छोटी ।

—कीर्ति०, पृ० ६४ । ३. जो अवस्था में कम हो । जिसका वय अल्प हो । जो बोड़ी उम्र का हो । जैसे, छोटा भाई ।

उ०—हम तुमसे तीन बरस छोटे हैं । ३. जो वह और प्रतिष्ठा में कम हो । जो शक्ति, गुण, योग्यता मानमर्यादा आदि में न्यून हो । जैसे, बड़े भादमियों के सामने छोटे भादमियों को कौन पूछता है ? उ०—अरि छोटी ननि नही जातें होत बिगार । तिन समूह को छिनक में जारत तनक संगार ।—बृंद (शब्द०) ।

जो—छोटा मोटा ।

४. जो महत्व का न हो । जिसमें कुछ शार या गौरव न हो । सामान्य । जैसे,—इतनी छोटी बात के लिये लड़ना ठीक नहीं । ५. जिसमें गंभीरता, उदारता या शिष्टता न हो । जिसका भावय महत् या उच्च न हो । जोड़ा । जूड़ा । जैसे,—(क) किसी से कुछ माँगना बड़ी छोटी बात है । (ख) वह बड़े छोटे बी का भादमी है ।

मुहा०—छोटे मुह बड़ी बात = साधारण या छोटे व्यक्ति द्वारा किसी अल्प या शिष्ट के प्रति अनुचित एवं निदात्मक बातें कहना ।

जो—छोटा भादमी = छोटा व्यक्ति ।

जोड़ाई—संज्ञा बी० [हि० छोटा + ई (प्रत्य०)] १. छोटापन । लघुता । २. नीचता । क्षुद्रता ।

जो—जोड़ाई बड़ाई ।

जोटा कचूर—संज्ञा पुं० [हि० छोटा + कचूर] कपूर कचरी । गंधवाली ।

जोटा कपड़ा—संज्ञा पुं० [हि० छोटा + कपड़ा] रँगिया । चोली ।

जोटा कुँवार—संज्ञा बी० [हि० छोटा + सं० कुमारी] एक जाति का चौकुंवार ।

जोरा—इसके पत्ते छोटे होते हैं और चीनी में मिलकर दस्त की बीमारी में खाए जाते हैं । यह मैसूर प्रांत में अधिक होता है ।

जोटा चौद—संज्ञा पुं० [हि० छोटा + चौद] एक रत्ता जिसकी लंबाई साँप के बिच की उम्रम मोपक की जाती है । इस रत्ता की लंबाई

की सुझाकर धीरे धीरे करके सड़ के कार हुए स्थान पर लंगोले धीरे उसका काड़ा करके २४ घंटे में डेढ़ पाव तक पिंसाते हैं।

छोटापन—संज्ञा पुं० [हि० छोटा + पन (प्रत्य०)] १. छोटा होने का भाव। छोटाई। लघुता। २. बचपन। बालपन। लड़कपन।

छोटा पाट—संज्ञा पुं० [हि० छोटा + पाट] रेसम के कीड़े का एक भेद।

छोटा पीलू—संज्ञा पुं० [हि० छोटा + पीलू] रेसम के कीड़े का एक भेद।

छोटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रँगूठा तथा मध्यमा अंगुली को परस्पर मिलाकर ध्वनि करना। चुटकी [को०]।

छोटी—संज्ञा पुं० [सं० छोटिन्] मछली फँसानेवाला। मछुमा [को०]।

छोटी—वि० स्त्री० [देशी० छुट्ट] १० 'छोटा'।

थो—छोटी जात, छोटी जाति = समाज की निम्न जाति। नीची कीम। छोटी बात = छोटी बात। प्रसन्न वार्ता।

छोटी इलायची—संज्ञा स्त्री० [हि० छोटी + इलायची] सफेद या गुबराती इलायची। वि० १० 'इलायची'।

छोटी मैल—संज्ञा स्त्री० [देशी०] एक प्रकार की चिड़िया।

छोटी रकरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० छोटी + रकरिया] एक चास जो पंजाब के हिसार आदि स्थानों में मिलती है। यह पाँच बार साल तक रहती है और इसे थोड़े चाव से खाते हैं।

छोटी सहेली—संज्ञा स्त्री० [हि० छोटी + सहेली] एक छोटी चिड़िया का नाम जो देखने में बड़ी सुंदर होती है।

छोटी हाजिरी—संज्ञा स्त्री० [हि० छोटी + हाजिरी] भारत में रहनेवाले प्रंसेजों या यूरोपियनों का प्रातःकाल का कसेबा (कानसामा)।

छोड़—वि० [सं० छोड़ण, हि० छोड़ना] (प्रायः समासों में) छोड़नेवाला। त्यागनेवाला। जैसे,—'रणछोड़ राय का मंदिर' में 'छोड़' शब्द।

छोड़चिट्ठी—संज्ञा स्त्री० [हि० छोड़ना + चिट्ठी] वह लेख या कागज जिसके कारण कोई व्यक्ति किसी प्रकार के ऋण या बंधन से मुक्त समझा जाय। कारखती।

छोड़ छुट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० छोड़ना + छुट्टी] नाता टूटना या संबंध-त्याग।

क्रि० प्र०—करना।—बोसना।—होना।

छोड़ना—क्रि० सं० [सं० छोड़ण] १. किसी पकड़ी हुई वस्तु को पुष्क कराना। पकड़ से भलग करना। जैसे,—हथौरा हाथ क्यों पकड़े हो? छोड़ दो।

संयो० क्रि०—देना।

२. किसी लगी या बिपकी हुई वस्तु का उस वस्तु से भलग हो जाना जिससे वह लगी या बिपकी हो। उ०—बिना आँच दिखाए यह पट्टी चमड़े की न छोड़ेगी। ३. किसी जीव या व्यक्ति को बंधन बाध से मुक्त करना। छुटकारा देना। रिहाई देना। जैसे, कैदियों को छोड़ना, चौपायों को छोड़ना। ४. बंद बाध न देना। अपराध क्षमा करना। मुआफ करना। जैसे,—(क) इस बार तो हम छोड़ देते हैं; फिर कभी ऐसा न करना। (ख) जब ने अभियुक्तों को छोड़ दिया। ५.

न बहल करना। न लेना। हाथ से जाने देना। जैसे,—मिलता हुआ धन क्यों छोड़ते हो। ६. उस धन को दयावश या धीरे किसी कारण से न लेना जो किसी के यहाँ बाकी हो। देना। मुआफ करना। ऋणी या देनदार को ऋण से मुक्त करना। छूट देना। जैसे,—(क) महाजन ने सब छोड़ दिया है, केवल मूल चाहता है। (ख) हम एक पैसा न छोड़ेंगे सब बसूल करेंगे। ७. अपने से दूर या भलग करना। त्यागना। परित्याग करना। पास न रखना। जैसे,—वह घर बार, सबके बाँसे छोड़कर साधु हो गया। ८. साथ न लेना। किसी स्थान पर पड़ा रहने देना। च उठाना या लेना। जैसे,—(क) तुम हमें यहाँ अकेले छोड़कर कहीं चले गए। (ख) यहाँ एक भी चीज न छोड़ना, सब उठा लावा।

संयो० क्रि०—जाना।

मुहा०—ध्यान (बर, गाँव, नगर आदि) छोड़ना = स्थान से चला जाना या गमन करना। जैसे,—हमें घर छोड़े प्राय तीन दिन हुए।

९. प्रस्थान कराना। गमन कराना। चलाना। बोड़ाना। जैसे,—गाड़ी छोड़ना, घोड़ा छोड़ना, सिपाही छोड़ना, सवार छोड़ना।

मुहा०—किसी पर किसी को छोड़ना = किसी के पीछे किसी को बोड़ाना। किसी को पकड़ने, तंग करने या चोट पहुँचाने के लिये उसके पीछे किसी को लगा देना। जैसे,—हिरन पर कुत्ते छोड़ना, चिड़िया पर बाज छोड़ना। मादा (पशु) पर नर (पशु) छोड़ना = बोड़ा खाने के लिये नर को मादा के सामने कराना।

१०. किसी दूर तक जानेवाले वस्तु को चलाना या फेंकना। भेषण करना। जैसे,—गोली छोड़ना, तीर छोड़ना।

विशेष—बंदूक, पड़ाके आदि के संबंध में केवल शब्द करने के अर्थ में भी इस क्रिया का प्रयोग होता है।

११. किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थान से भागे बढ़ जाना। जैसे,—उसका घर तो तुम पीछे छोड़ आए।

संयो० क्रि०—माना।

१२. किसी काम को बंद कर देना। किसी हाथ में लिए हुए कार्य को न करना। किसी कार्य से भलग होना। स्थान देना। जैसे,—काम छोड़ना, आदत छोड़ना, अभ्यास छोड़ना, धाना जाना छोड़ना। जैसे,—(क) सब काम छोड़कर तुम इसे लिख डालो। (ख) उसने नौकरी छोड़ दी। १३. किसी रोग या व्याधि का दूर होना। जैसे,—बुखार नहीं छोड़ता है। १४. नीतर से वेग के साथ बाहर निकलना। जैसे,—हल अपने मुँह से पानी की धार छोड़ती है। १५. किसी ऐसी वस्तु को चलाना या अपने कार्य में लगाना जिसमें से कोई वस्तु कणों या छोटों के रूप में वेग से बाहर निकले। जैसे,—पिचकारी छोड़ना, फौवारा छोड़ना, घातशबाजी छोड़ना। १६. बचाना। शेष रखना। बाकी रखना। व्यवहार या उपयोग में न लाना। जैसे,—(क) उसने अपने भागे कुछ भी नहीं छोड़ा, सब खा गया। (ख) उसने किसी को नहीं छोड़ा है; सबकी विलगी उड़ाई है।

मुहा०—(किसी को) छोड़ या छोड़कर = (किसी के) परित्यक्त । सिवाय । जैसे,—तुम्हें छोड़ और कौन हुआ सहायक है ।

१७. किसी कार्य को या उसके किसी अंग को मूल से न करना कोई काम करते समय उससे संबंध रखनेवाली किसी बात या वस्तु पर ध्यान न देना । मूल या विस्तृति से किसी वस्तु को कहीं से न लेना, न रखना या न प्रयुक्त करना । जैसे,—सिक्के में छलर छोड़ना, इकट्ठा करने में कोई वस्तु छोड़ना, रेल पर छाता छोड़ना । १८. ऊपर से गिराना या डालना । जैसे,—(क) हाथ पर थोड़ा पानी तो छोड़ दो । (ख) इसपर थोड़ी राख छोड़ दो ।

छोड़वाना—क्रि० सं० [हि० छोड़ना का प्रे० रूप] छोड़ने का काम कराना ।

छोड़वाना—क्रि० सं० [हि० छुड़ाना का प्रे० रूप] छुड़ाने का काम कराना ।

छोड़ाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'छुड़ाना' ।

छोव, छोति ७—संज्ञा स्त्री० [हि० छूत] दे० 'छूत' । उ०—(क) पाप पुण्य नहि तागे छोट ।—कबीर श०, पृ० १११ । (ख) जाकी छोति जगत की लागे तापरि तूँ ही धरे । अमर भाष ले करे गुलाई माखी हूँ न मरे ।—दादू०, पृ० ६०७ ।

छोटी ७—वि० [हि०] छूतवाला । अपवित्र । उ०—गिने आन छोटी इसे हेत तासी ।—राम० धर्म०, पृ० १८१

छोना ७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'छोना' । उ०—मनो नाग छोना सई होड मंडी ।—हु० रासो, पृ० १३१ ।

छोना ७—क्रि० सं० [सं० क्षेप, प्रा० छोह] काटना । फेंकना । छोड़ना । उ०—घरनी मन मनिया, इक ताग में परोई । आपन करि जान लेहु, कर्म फंव छोई ।—संतवानी०, पृ० १२६ ।

छोनि ७—संज्ञा स्त्री० [छोणि] दे० 'छोनी' ।

छोनिप ७—संज्ञा पुं० [सं० क्षोणिप] राजा । उ०—रहे असुर छल छोनिप बेला । तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देला ।—मानस, १। २४१ ।

छोनी ७—संज्ञा स्त्री० [सं० क्षोणी] पुष्पी । सुमि । उ०—सोक कमकलोचन मति छोनी । हरी विमल गुन गन जग जोनी ।—मानस, २। २६६ ।

छोप—संज्ञा पुं० [सं० क्षेप, हि० छेप] १. किसी गाढ़ी या गीली वस्तु की मोटी तह जो किसी वस्तु पर चढ़ाई जाय । मोटा लेप ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।

२. गाढ़ी या गीली वस्तु की मोटी तह चढ़ाने का कार्य । ३. गीली मिट्टी या पानी में सनी हुई और किसी वस्तु का जोड़ा जो बीवार बचवा और किसी वस्तु पर गढ़े मूँके या सतह बराबर करने आदि के लिये रखा और फैलाया जाय ।

क्रि० प्र०—चढ़ाना ।—रखना ।

यौ०—छोप छाप=मरम्मत ।

४. आच्छाद । बार । प्रहार । उ०—जहाँ जात जूटि तहाँ दृष्टि परे

बादर, त्यों छटे बल मड, सीस फूटि डारें छोप सों ।—गोपाच (शब्द०) । ३. छिपाव । बचाव ।

यौ०—छोप छा= (१) दोष आदि का छिपाव । (२) बचाव । रक्षा । (३) देख रेख ।

छोपना—क्रि० सं० [हि० छुपाना या हि० छोप + ना (प्रत्य०)]

१. किसी गीरी या गाढ़ी वस्तु को दूसरी वस्तु पर इस प्रकार रखकर फैलाना कि उसकी मोटी तह चढ़ जाय । गाढ़ा लेप करना । जैसे,—नीम की पत्ती पीसकर फोड़े पर छोप दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. गीली मिट्टी या पानी में सनी हुई और किसी वस्तु के लोंदे को किसी दूसरी वस्तु पर इस प्रकार फैलाकर रखना कि वह उससे चिपक जाय । गिलावा लगाना । थोपना । जैसे,—दीवार में जहाँ जहाँ ढुँ है, वहाँ मिट्टी छोप दो ।

यौ०—छोपन छापना=गढ़े आदि मूँके मरम्मत करना । फटे या गिरे पड़े को दुरुस्त करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

३. किसी वस्तु पर इस प्रकार पड़ना कि वह बिलकुल ढक जाय । किसी पर इस प्रकार चढ़ बैठना कि वह इधर उधर अंग न हिला सके । धर दबाना । प्रसना । जैसे,—शेर बकरी को छोपकर बैठा रहा ।

संयो० क्रि०—लेना ।

आच्छादित करना । ढकना । छेंकना । † ५. किसी बात को छिपाना । परदा डालना । ६. किसी को दार या आघात से बचाना । आक्रमण आदि से रक्षा करना । † ७. कोई वस्तु किसी के गत्ये थोपना या बाध्य करके उसे दे देना ।

छोपा—संज्ञा पुं० [हि० छोपना] पाल के चारों कोनों पर बंधी हुई रस्सियाँ जिनसे उसे ऊपर चढ़ाते हैं ।

छोपाई—संज्ञा स्त्री० [हि० छोपना] १. छोपने का भाव । २. छोपने की क्रिया । ३. छोपने की मजदूरी ।

छोम—संज्ञा पुं० [सं० क्षोम] [वि० छोमित] १. चित्त की विचलता जो दुःख, क्रोध, मोह, कण्ठा आदि मनोवेगों के कारण होती । जी की खलबली । उ०—तात तीनि प्रति प्रबल ये काम क्षोम अह सोम । मुनि विज्ञान धाम मन करहि निमिष महुँ छोम ।—मानस, ३। ३२ । २. नदी, तालाब आदि का भरकर फैलना ।

छोमना ७—क्रि० प्र० [हि० छोम + ना (प्रत्य०)] चित्त का विचलित होना । कण्ठा, दुःख, क्रोध, मोह, क्षोम आदि के कारण चित्त का विचल होना । जी में खलबली होना । क्षुब्ध होना । उ०—(क) जासु बिलोकि अलोकि सोम । सहज पुगीत मोर मनु छोमा ।—मानस, १। २३१ । (ख) नीक निरखि नयन भरि सोमा । पितु पन सुमिरि बहुरि मनु छोमा ।—मानस, १। २५८ ।

छोमिस ७—वि० [सं० क्षोमित] क्षोभित । विचल । विचलित ।

उ०—(क) छोमित सिधु सेव सिर कंथित पक्क भयी गति पंगु । ईद हंस्यो हुरहि बिलखान्धी, जानि बचन की अंग ।—सूर०,

६। १५५। (क) हे हरि छोमित करि हई मयन पयन सर
मारि। हरिहि हरिनमयनी लगी हेरनहर निहारि।—मृ०
संत० (शब्द०) ।

छोम^५—वि० [सं० छोम (= घससी का बना बिकना कपड़ा)] १.
बिकना। २. कोमल। उ०—मोम सरिस मन छोम, सरे करि
रोम भर्जहि मट।—गोपाल (शब्द०) ।

छोर—संज्ञा पु० [हि० छोड़ना] १. किसी वस्तु का वह किनारा
जहाँ उसकी संवर्द्ध का अंत होता हो। आमत विस्तार की
सीमा। चौड़ाई का हानिया। जैसे, दुपट्टे का छोर, ताने का
छोर। उ०—काननि कनकूल उपवीत सुकूल पियरे पुकूल
बिलसत छाछे छोर है।—तुलसी (शब्द०) ।

यौ०—छोर छोर = यदि अंत।

२. विस्तार की सीमा। हव। ३. किनारे का सूक्ष्म भाग।
नोक। कोर। कोना। उ०—सिला छो छुवत अहल्या भई
विष्य देह गुन पेखु पारस पंकज पय के।—तुलसी (शब्द०) ।

छोर छुटी—संज्ञा ली० [हि०] २० 'छोड़ छुटी'।

छोरटी, छोरकी^५—संज्ञा ली० [हि० छोरा + (प्रत्य०)] ६०
'छोरी'।

छोरण—संज्ञा पु० [सं०] छोड़ना। त्यागना [को०]।

छोरदार—वि० [हि० छोर (= किनारा, कोर) + दार (प्रत्य०)]
छोरयुक्त। संपूर्ण। पूरा। उ०—'उरदाम' सुता सहृदय
नृति सीन्हों, सरम भरम, रही एकहू न छोर।—पोद्दार
अभि० प्र०, पृ० ५७३।

छोरना^१—क्रि० सं० [सं० छोरण (= परित्याग)] १. बंधन आदि
अलग करना। उलझन या फँसाव आदि र करना। २.
बंधन से मुक्त करना। उ०—जरासिंधु की छोर उधारयो,
फारि कियो हँ फाँको। छोरी बंदि विदा कियोजा, राजा हँ
गए राँको।—सूर०, १। ११३। ३. हुरण का। छीनना।
उ०—जोरि अंजलि मिले, छोरि तंतुल लए, के विभव तँ
अधिक बाढ़ी।—सूर०, १। ५।

'संयो० क्रि०—देना। लेना।

छोरा^१—संज्ञा पु० [सं० शावक, हि० छावक + र (प्रत्य०)]
[ली० छोरी] छोड़ड़ा। लड़का। बालक।

छोरा^२—संज्ञा पु० [देश०] एक नाम को दूसरी नाम आप बधिर
ले जाने का कार्य।

छोराछोरी^१—संज्ञा ली० [हि० छोड़ना] १. छीनकर। छीना-
छीनी। २. झगड़ा। बबेड़ा। झगड़। उ०—जयदेवराज
नित विहरत यामें नहि बहुत छोराछोरी।—लखनामी
(शब्द०) ।

छोराबना^५—[हि० छोड़ना का प्रे० रूप] अलग करना। गुनी
या मिली बीज को अलग अलग कराना। छोड़ना। उ०—
तब मेरव सुवान बोर बर। कीन हुकम कारी कर।
छोराबहु गजराज पंनि गहि। बहुरि जरी र गान
कहि।—पु० रा०, ६। १६३।

छोरि^१—संज्ञा पु० [हि० छोर] किनारा। कोर। छो। उ०—

बसन छोरि तँ छोरि, बिप्र भीषर करे क्षीनों।—नंद० प्र०,
पृ० २०४।

छोरी^१—संज्ञा ली० [हि० छोरा] लड़की। छोकरा।

छोलंग—संज्ञा पु० [सं० छोलङ्ग] नीबू (को०)।

छोला^५—संज्ञा ली० [हि० छोलना] १. छिल जाने का चिह्न या
भाव। २. साँप के काटने में उसके दाँत छपने का एक प्रेद
जिसमें केवल चमके में खरोच लग जाता है।

छोला^५—संज्ञा ली० [हि०] १. आवरण। घेरा। उ०—भाठहू पहर
मस्तान माता रहै, ब्रह्म की छोल में साव जीवै।—सुरसी०,
म०, पृ० ६५। ३. कोड़ा। खेल। उ०—सीता बरी जनक पण
साँव, सुपह किया अपसोसै। छाता ललाई उतोले छोला, छाता
तुल करोसै।—रघु० क०, पृ० १६१। ३. तरंग। लहर।
उ०—इए बिष आभरणहि मनु सुकता मिथी। छक तख्ताहि
छोल पयोनिष ज्यों छिली।—बाकी० प्र०, भा० ३, पृ० ४०।

छोलवारी—संज्ञा ली० [हि० छोरना + वरना = छोरवरी] या सं०
सोलवारी (= सेना) एक प्रकार का छोटा सेना। छोटा तंबू।

छोलना^१—क्रि० सं० [हि० छाल] १. छीलना। सतह का ऊपरी
हिस्सा काटना। उ०—सखि सरद बिमल बिधुबनि बधूटी।
ऐसी ललना सलोनी न भई, न है, न होनी, रणो रची बिधि
जो छोलत छवि छूटी।—तुलसी प्र०, पृ० ३३४। २.
छुरचना। जैसे,—कलेजा छोलना अर्थात् हृदय को अत्यंत
अपित करना।

छोलना^२—संज्ञा पु० [ली० छोलना] लोहे का एक औजार जिससे
सिकलीगर हथियारों का मुरचा छुरचते हैं।

छोलनी^१—संज्ञा ली० [हि० छोलना] १. छीलने का औजार। २.
इस छीलने का औजार। ३. चिलम में छेद बनाने का
औजार। ४. हलबाइयों का कड़ाही छुरचने का औजार जो
छुरपी के आकार का होता है। छुरचनी।

छोला—संज्ञा पु० [हि० छोलना] १. वह पुरुष जो इस को काटता
घोर छीलता है। २. चना। बूट।

छोवन—संज्ञा पु० [हि० छेवना] कुम्हारों का वह डोरा जिससे वे
बाक पर चढ़े हुए बरतन को अलग करते हैं।

बिरोच—कुम्हार लोग इस डोरे को एक सरकड़े में बाँधकर
पानी में रखे रहते हैं। बाक पर सामान तैयार हो जाने के
बाद इसी डोरे से उसे काटकर अलग करते घोर फिर उसी
पानी में छोड़ देते हैं।

छोवना^५—क्रि० प्र० [हि०] सोना। नींद लेना। उ०—बाहु
गफिल खोवतों, मंके रव निहारि। मंकेई पिय पाण जी
मंकेई बिचार।—दादू०, पृ० ८७।

छोवा^५—संज्ञा पु० [सं० शावक] २० 'छावा'। उ०—एहि बन
बहुत जंतु सुख सोवा। यो बिष साँहि जो मानुष छोवा।—
बिना०, पृ० ३२०।

छोह^१—संज्ञा पु० [हि० छोम] १. ममता। प्रेम। स्नेह। उ०—
तजब छोम जनि अंजिम छोह^१। करमु कठिन कछु दोह^१।

मोह । —आमस, २ । ६६ । २. दया । अनुग्रह । कृपा । उ०—
पारवती कम पति प्रिय होह । देवि न हम पर छोड़
छोह । —आमस, २ । ११८ ।

छोह^१—संज्ञा पुं० [देशी] १. समूह । यूथ । जत्था । उ०—आराध
सुन्न बनि काच छोह । देवत नैन मुनि मगन मोह । —पु०
रा०, १८ । ६२ ।

छोहगर^१—वि० [हि० छोह+गर (प्रत्य०)] प्रेमी । स्नेही । ममता
रखनेवाला ।

छोहगरा^१—वि० [देशी] कम । थोड़ा ।

छोहना^१—क्रि० प्र० [हि० छोह+ना (प्रत्य०)] विचलित
होना । चंचल होना । झुब होना । उ०—बड़गूजरहूँ कोछो ।
पवानन क्यों छोछो । —सूदन (शब्द०) ।

छोहना^२—क्रि० प्र० [हि० छोह (= प्रेम+) ना (प्रत्य०)] प्रेम
करना । अनुराग करना ।

छोहनारा^१—वि० [देशी] कम । थोड़ा । अल्प ।

छोहनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० छोहिणी] दे० 'छोहिनी' । उ०—ज्ञान
बल छोहनी मालु बानर सिहे । —पलटू०, भा० २, पृ० १५ ।

छोहरा^१—संज्ञा पुं० [सं० शावक, प्रा० छावक, छाव+रा (प्रत्य०)]
[स्त्री० छोहरी] लड़का । बालक । छोकड़ा । उ०—आपुस
हो में कहत हंसत है प्रभु हिरदै यह सासत । तनक तनक से
गवाल छोहरन कंस प्रबहि बधि घालत । —सूर (शब्द०) ।

छोहरियां^१—संज्ञा स्त्री० [हि० छोहरी] दे० 'छोहरी' ।

छोहरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० छोहरा] लड़की । बालिका । छोकड़ी ।
उ०—ताहि महीर की छोहरियां छछिया भर छाछ पै नाच
नचावे । —रसखान (शब्द०) ।

छोहना^३—क्रि० प्र० [हि० छोह] १. मुहम्मद करना । प्रेम
बिखाना । उ०—मग गोहूँ कर हिया चराना । पै सो पिता न
हिए छोहना । —जायसी (शब्द०) । २. अनुग्रह करना ।
दया करना । उ०—तुलसी तिहारे विद्यमान युवराज प्राज
कोपि पाठं रोपि बसि कै छोहाय छाड़ियो । —तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—किसी पर छोहना = (१) किसी पर स्नेह प्रगट करना ।
(२) किसी पर दया या अनुग्रह करना ।

छोहारा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'छहारा' ।

छोहिनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० छोहिणी] दे० 'छोहिनी' ।

छोही^१—वि० [हि० छोह] प्रेमी । स्नेही । ममता रखनेवाला ।
अनुरागी । उ०—कियो नेत यह बैछाबछोही । राजा भई साधु
को छोही । —रघुराज (शब्द०) ।

छोही^२—संज्ञा स्त्री० [हि० छोहना] जोहना । बूझी हुई गंदेरी की
सीठी । उ०—रस छाड़ि छोही गई कोलूँ पेरत देख । गह
प्रसार प्रसार को हिरदै नाहि विवेक । —कबीर (शब्द०) ।

छोहक^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] बघार । तड़का ।

छोह^३—छोक बघार ।

छोहना^४—क्रि० प्र० [अनु० छावें छावें (= तपी हुई वस्तु पर धापी
पड़ने का शब्द)] १. हींग, मिरचा, जीरा, राई, लहसुन आदि

से मिले हुए कड़कड़ाते ची को बाल आदि में डालना जिससे बह-
सोबी या सुगंधित हो जाय । बघारना । जैसे, बाल छोहना ।
२. मेथी, मिरचा, हींग आदि से मिले हुए कड़कड़ाते ची में
कच्ची तरकारी, धान के दले या भीये बाने आदि को सुनने के
लिये डालना । तड़का देना । जैसे,—तरकारी छोहना ।

छोका^१—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डा (= गड्ढा)] जमीन में खोदा हुआ बड़
गड्ढा जिसमें खानाज रखते हैं । खाना । गाड़ ।

छोका^२—संज्ञा पुं० [सं० सनु या शावक, हि० छोना] [स्त्री० छोड़ी]
लड़का । बालक ।

छोड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] लड़की । बालिका । उ०—छोलन की छोड़ी
सो निखो छोटी जाति पाति, कीन्ही लीन आपु में सुनारी
भोंडे जीकी । —तुलसी (शब्द०) ।

छोह, छोहा^१—क्रि० [सं० छाया (= कांति, सादृश्य)] सट्टा । समान ।
(समासी में प्रयुक्त) जैसे, छरछोह । ललछोहा ।

छोकना^१—क्रि० प्र० [सं० चतुष्क, प्रा० चउक] किसी जानवर
(घोर, बिल्ली आदि) का चारों पैर उठाकर किसी की घोर
कृपना आक्रमण करना । चौकड़ी के साथ आक्रमण ।

छोना^१—संज्ञा पुं० [सं० सनु (= पुत्र प्रसवा सं० शावक, प्रा० छाव+
छोना (प्रत्य०)] [स्त्री० छोनी] १. पशु का बच्चा । किसी
जानवर का बच्चा जैसे,—घुगछोना, सूअर का छोना ।
२. बालक । शिशु । छोटा बच्चा । उ०—बाछक छोले
छोना खन मगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाई । —तुलसी
(शब्द०) ।

छोनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० छोणि] दे० 'छोणी' । उ०—पुष्पी, छिति,
छोनी, छमा, धरनी, धात्री, गाइ । —नंद० प्र०, पृ० ६४ ।

छोह^२—संज्ञा पुं० [सं० क्षार, हि० छोरा] दे० 'छोरा' ।

छोह^३—संज्ञा पुं० [सं० क्षोर] दे० 'क्षोर' ।

छोर^१—संज्ञा पुं० [हि० छेवर (= चमड़ा)] पुराने समय में सरहद के
मगहों के संबंध में आपस खाने की एक रीति ।

विशेष—आपस खाने की इस रीति में बासी प्रतिवादी या किसी
तीर्थ व्यक्ति को, जिसके सत्यकथन पर मगहों का निपटेरा
छोड़ दिया जाता था, गाय का चमड़ा सिर पर रखकर उस
साइ या सिवान पर घूमना पड़ता था ।

छोरना^१—क्रि० प्र० [हि० छोहना] दे० 'छोहना' । उ०—प्रपनो
छोरि के उहाँ क्यों बघारे हुते । —बो सी बावन०,
पृ० १, पृ० १६२ ।

छोरा^१—संज्ञा पुं० [सं० क्षर (= नाकबंद, मच्छ)] १. उबार या बाजरे
का बंडल जो चारे के काम में आता है । डाँठ । कोवर ।
२. सरई । ३. कपास का बंडल ।

छोख^१—संज्ञा स्त्री० [देशी] दे० 'छोल' । उ०—करत कसोला
छाव के बीच में बहा की छील में हंस झूले । —संतबासी०,
पृ० २, पृ० ११ ।

छोखना^१—क्रि० प्र० [हि० छुवाना] छुवाना । स्पर्श करना । उ०—
कपूर मनमय रही मिलि तन-नुति मुकुटासि । छिन छिन
रो विचछिनी, नखति छाव सिनु जालि । —विहारी (शब्द०) ।

